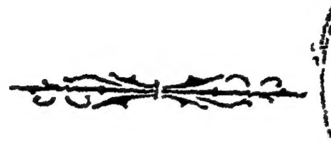
श्री 'कल्हण' महाकविविरचिता—

राजतरंगिणी

पाण्डेय रामतेजशास्त्रिकृतया 'शोभना'ऽभिधया हिन्दीटीकयाऽऽटीकिता तेनैव सम्पादिता च ।

(सम्पूर्णा)



KALHANA'S

RAJATARANGINI

'CHRONICLE OF THE KINGS OF KASHMIR'

Edited & Translated by :-

PANDEYA RAMTEJ SHASTRI

PANDIT PUSTAKALAYA, KASHI.

1960

यत्किञ्चित्

बात १९५९ की है। उन दिनों मैं तीर्थाटनके प्रसंगमें दक्षिण भारतकी यात्रा कर रहा था। विष्णुकांचीमें भगवान्‌का दर्शन करके जो गाड़ीमें बैठा तो सहसा मेरे ही डब्बेमें एक गौराङ्ग महोदय सामनेवाली सीटपर आ विराजे। बड़ी ही भव्य आकृति थी उन महानुभावकी। सुविस्तृत ललाटपर माध्वसंप्रदायका तिलक, गलेमें तुलसीकी सुन्दर कण्ठी, कंधेपर पीत यज्ञोपवीत तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे। रेशमी गोमुखीके भीतर विद्यमान सुमिरनीपर उनके दाहिने हाथकी उँगलियाँ थिरक रही थीं। पीले ही रंगकी रेशमी धोती पहने थे। पाँवमें खूँटीदार खड़ाऊँ सुशोभित था। उनकी वह मनोहारी वेश-भूषा देखते ही परिचय प्राप्त करनेके लिए मन मचल उठा। किन्तु यह सोचकर जी झिझका कि कहीं मेरी बात अनसुनी न कर दें। अतएव जब तक गाड़ी स्टेशनपर रुकी रही, तब तक तो कुछ नहीं बोला। किन्तु उसके चलते ही बड़े विनम्र भावसे मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

मैंने गौरसे देखा कि मेरे प्रश्नपर उन्हें रत्तीभर भी झुंझलाहट नहीं हुई। बड़े प्रेमसे उन्होंने गद्गद होकर तीन बार 'श्रीकृष्णः शरणं मम' का उच्चारण किया और गोमुखी झोलीमें रखकर कहने लगे—'मित्र! आजके दस वर्ष पहले मैं अमेरिकाके चिकागोविश्वविद्यालयमें प्राच्य इतिहासका प्रोफेसर था। उस समय मैं 'प्रोफेसर एलेग्जेण्डर' था और अब मुझे लोग 'गोरे बाबा' कहते हैं। बिना संस्कृत-ज्ञानके प्राच्य इतिहासका पठन-पाठन अधूरा समझकर मैंने न्यूयार्कके धुरंधर संस्कृतज्ञ विद्वान् हार्डिगसे संस्कृत सीखी। उसके बाद रुचि बढ़नेपर ऋग्वेद, बृहदारण्यकोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, शांकर तथा रामानुज भाष्यकी गीता, रामायण एवं पुराणोंका अध्ययन किया। भागवतके तो कितने ही पारायण किये। उसके बाद जब अध्यापनके लिए चिकागो गया तो एक दिन वहाँकी लायब्रेरीमें कल्हण कविरचित 'राजतरंगिणी' सहसा दीख गयी। उसे लेकर मैंने बड़ी तन्मयताके साथ पढ़ा। जिससे मैंने अपने आपमें एक विचित्र प्रकारकी स्फुरणाका अनुभव किया। फिर संशय हुआ कि कहीं मेरा छलिया मन मेरे साथ कोई छलावा तो नहीं कर रहा है? इसलिए उपर्युक्त ग्रन्थको फिरसे पढ़ना आरम्भ किया और उसकी एक-एक लाइनको जैसे अपने मानसके अन्तस्तलमें सँजोते हुए स्वाध्यायके साथ-साथ मनन भी करता रहा। जिससे द्वितीय पारायणके बाद पहलेसे भी अधिक रस मिला। उसके बाद तो वह ग्रन्थ मेरे लिए रामायण और गीता जैसा धर्मग्रन्थ बन गया। उसके अनेकानेक नायकोंके उत्थान-पतनकी गाथाका परिशीलन करनेसे एक विचित्र प्रकारका वैराग्य उदित हुआ और विशेष करके महाराज हर्षदेवके चरित्रने तो मेरे मनपर एक अनोखी छाप डाली। जिससे सांसारिक सुखासक्तिसे जी हटने लगा और जीवनके मुख्य ध्येयकी प्राप्तिकी ओर रुझान हो चली। हृदयमें भाँति भाँतिकी जिज्ञासायें करवट बदलने लगीं, जिससे मैं अमेरिकाके बड़े बड़े मनीषियोंके पास समाधानके लिए गया। किन्तु उनकी बातसे मुझे बोध नहीं हुआ।

उन्हीं दिनों वाशिंगटनमें स्वामी शिवानन्दसे मिलनेका सुयोग प्राप्त हुआ और उनके समक्ष भी मैंने अपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्वकी समस्या रक्खी। उन्होंने बहुत ही सरल और सरस रीतिसे मेरी

शंकाओंका समाधान किया और यह भी कहा कि 'आपके प्रश्नोंका सही-सही उत्तर मेरे पास भी नहीं है। सही उत्तर तो वही दे सकता है, जो भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त कर चुका हो और जिसकी साधना चरम सीमापर पहुँच गयी हो। ऐसे महापुरुष आपको भारतवर्षमें ही मिल सकेंगे'। मेरे विशेष अनुरोधपर उन्होंने वृन्दावनके युगल बाबाका नाम बताया। बाल्यकालसे ही मेरे अन्तःकरणमें वैराग्यका कुछ अंश विद्यमान था। इसी कारण मैंने विवाह करके गृहस्थी नहीं बसायी थी। तबतक लगभग पन्द्रह वर्ष अध्यापन करते हुए मैंने कतिपय ग्रन्थ भी लिख डाले थे। जिनके प्रकाशकसे मुझे अच्छी रकम मिल चुकी थी। कुल मिलाकर छब्बीस हजार डालरका मेरा बैंकबैलेंस बन चुका था और इतने धनकी सहायतासे मैं आसानीसे भारतवर्ष पहुँचकर साधनाके काममें लग सकता था। जीवन यापनके लिए तो प्रकाशककी रायल्टी थी ही।

इस प्रकार ऊहापोह करनेके बाद मैं अमेरिकासे सीधे वृन्दावन पहुँचा। वहाँ अनायास मुझे युगल बाबाकी शिष्यता प्राप्त हो गयी। थोड़ा बहुत संस्कृतका ज्ञान मुझे था ही। अतएव उनके श्रीचरणोंमें रहकर हिन्दी सीखनेमें विशेष आयास नहीं करना पड़ा। उन्होंने ही मुझे सूर-तुलसी और मीरा-कबीरके अनेक ग्रन्थ पढ़ाये और उनके रहस्यकी कुंजी भी बतायी। उसके बाद उन्होंने मुझे साधनाके पथका पथिक बना दिया। उन्हींके आदेशानुसार मैं तीर्थयात्रापर निकला हूँ। पूरे छ महीने तीर्थाटन करके फिर गुरुदेवके श्रीचरणोंमें लौट जाऊँगा'। मेरे पूछनेपर फिर वे कहने लगे—'इस जीवनसे मैं भलीभाँति संतुष्ट हूँ। अमेरिकाकी अपेक्षा भारतवर्षकी सादगी, यहाँके निवासियोंकी धर्मपरायणता और यथालाभ संतोषकी प्रवृत्तिसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ।' मैंने कहा—'अमेरिका तो संसारका सब सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण राज्य है। वहाँ किसी भी वस्तुकी कमी नहीं है। वहाँके लोग बड़े आनन्दका जीवन बिता रहे हैं। सुनता हूँ कि वहाँ हर तीन व्यक्तिके पीछे एक मोटरकार है। घर-घर टेलिविजन, रेडियो, रेफ्रिजेटर तथा टेलीफोन हैं। तब आप अमेरिका जैसे महान् देशकी नागरिकता त्यागकर इस प्रकार तन-मनसे भारतीय साधु क्यों बन गये हैं?' मेरे प्रश्न सुनकर बड़े ही गद्गद स्वरमें वे बोले—'आपका कथन यथार्थ है। आपने अभी जिन सुख-सुविधाओंका चर्चा की है, उनसे भी बहुत अधिक आमोद-प्रमोदके साधन अमेरिकामें सुलभ हैं। किन्तु क्या आप जानते हैं कि वहाँ इस महान् वैभवकी उपलब्धि कैसे हुई? पहले तो योरोपके लोगोंने वहाँ पहुँचकर उस देशके भोले-भाले मूलनिवासियोंको भरपूर लूटा-खसोटा और लाखों प्राणियोंकी क्रूरतापूर्वक हत्या की। बादमें उनकी सम्पत्ति, उनकी उपजाऊ जमीन और उनकी इज्जतपर डाके डाले। अन्तमें बचे-खुचे लोगोंको बेकार करके उनसे बेगार लेने लगे। उसी बेगारीके आधारपर अपनी बड़ी-बड़ी कोठियाँ, फैक्टरियाँ, खेतोंके फार्म, रेल, जहाज, तार, टेलीफोन आदि बनाये। आज भी वहाँ विशालसंख्यक नीग्रोजातिके लोग पशुवत् समझे जाते हैं। हाँ, इधर कुछ दशकोंसे कम्युनिज्मके भयवश उन्होंने रंगीन जातियोंके भी जीनेका हक मान लिया है और उन्हें भी किसी तरह जीवित रहने भरको पारिश्रमिक दिया जाने लगा है। मैं तो यहाँ तक कहनेको तैयार हूँ कि उन्हीं गरीबोंकी हायसे वहाँके गोरे सुखी नहीं हैं। प्रत्येक अमेरिकन नागरिक बैंक, बीमाकम्पनी या सरकारी विभागोंका कर्जदार है। वह रात-दिन कर्ज उतारनेके लिए घनघोर परिश्रम करता है। फिर भी विरला ही व्यक्ति उऋण होकर सुखसे मर पाता है। कर-

भार इतना अधिक है कि बहुतोंको आधे पेट खाकर जीवन यापन करना पड़ता है। इन दिनों तो कम्युनिज्मके हौवेने अमेरिकन सरकार और वहाँके गोरे नागरिकोंके जीवनको और भी नारकीय बना दिया है। उन्हें सदा भय बना रहता है कि न जाने कब क्या हो जाय।

यह सब इसीलि. होता है कि वहाँकी सम्पदा सात्त्विकी नहीं है। यह सही है कि अतीत कालमें भारतवर्ष भी बाहरी-भीतरी आक्रमणका शिकार था। सदियों इसे स्वदेशी राजाओंके आक्रमण-प्रत्याक्रमणके कड़वे घूंट पाने पड़े। यहाँके नागरिकोंको असीम यंत्रणायें भोगते हुए भीषण धन-जनका संहार सहना पड़ा। विदेशियोंके धावोंने तो गजब ही ढा दिया। देशके बड़े-बड़े देवमन्दिर लूटे तथा अपवित्र किये गये और उनके आराधक परधर्म स्वीकार करनेको बाध्य हुए। यहाँके नागरिकोंपर विदेशी इतिहास, विदेशी भाषा, विदेशी वेष-भूषा और विदेशी रहन-सहनका भार लादा गया। इनकी सम्पदा जहाजोंपर लाद-लादकर सात समुद्र पार भेज दी गयी और ये सर्वथा कंगाल बनकर विदेशियोंकी गुलामीको करनेको बाध्य हो गये। किन्तु हर्षकी बात यह है कि इतनी बर्बर यातनाओंको सहते हुए भी भारत और भारतीयोंकी आत्मा मरी नहीं। इनकी संस्कृति और इनका उच्च आदर्श अछूता बना रहा। यही कारण है कि आजादीकी हल्की-सी हवा लगते ही यह देश समस्त संसारका सिरमौर बन गया। आज सारी दुनिया बड़े गौरसे और बड़ी आशाभरी दृष्टिसे इसकी ओर निहार रही है। सबको यह विश्वास है कि शीतयुद्धके घने अन्धकारमें भटकते हुए विश्वको भारत ही प्रकाश दे सकता है।

कवि कल्हण और राजतरंगिणी

उनकी वाग्धाराको बीच ही में रोककर मैंने महाकवि कल्हण और उनकी रचित राजतरङ्गिणीका प्रसंग उभाड़ दिया। किन्तु उस महान् मनीषीको तनिक भी अड़चन नहीं पड़ी और उनकी भारती फिर मुखरित हो उठी। वे कहने लगे—'महाकवि कल्हण उस चम्पक महामंत्रीके पुत्र थे, जिसने सन् १०८९ से ११०१ तक महाराज हर्षदेवका प्रधानमंत्रित्व किया था। बाल्यकालसे ही पिताके सम्पर्कमें रहनेके कारण कविको राजा हर्षदेवके कार्यकलाप एवं उत्थान-पतनकी गाथाको निकटसे अध्ययन करनेका सुयोग सुलभ हो गया था। परिहासपुरकी स्थली उनकी जन्मभूमि थी और ब्राह्मण होनेके नाते संस्कृत भाषापर उनका पूर्ण अधिकार था। इसी कारण अपने ग्रन्थमें यत्र-तत्र उन्होंने योग्य एवं तपस्वी ब्राह्मणोंकी महत्ता और उनके स्वाभिमानका गुणगान किया है, किन्तु स्वार्थी और लोभी ब्राह्मणोंके द्वारा पद-पदपर किये जानेवाले अनशनोंकी भर्त्सना भी की है। उन्होंने ४२२४ लौकिक वर्ष अर्थात् सन् ११४८ ई० में राजतरंगिणीकी रचना आरम्भ की और सन् ११५०में समाप्त किया। इस काव्यात्मक ग्रन्थमें उन्होंने एक निष्पक्ष इतिहासकारका कर्तव्य निभाया है। उन्होंने कहीं रत्तीभर भी कविसुलभ चाटुकारिताको प्रश्रय नहीं दिया है। जिस राजामें जो गुण थे, उन्हें जी खोलकर बखाना और जो अवगुण थे, उनको डंकेकी चोट जनसाधारणके समक्ष प्रकट कर दिया। सो भी सप्रमाण और तिथि-संवत् समेत।

विल्सन, बूलर और स्टीन आदि कतिपय पाश्चात्य इतिहासप्रेमी विद्वानोंका कहना है कि 'महाकवि कल्हण अपने इतिहासप्रणयनकार्यमें पूर्ण सफल रहे हैं। उन्होंने विभिन्न कश्मीरनरेशोंके उत्थान-पतनकी गाथाको सन् तथा तिथिसमेत लिखकर भारतीय इतिहासका बहुत बड़ा

उपकार किया है। उनके इस सत्प्रयत्नसे विस्मृतिगर्तमें पड़े बहुतेरे महापुरुषोंके जीवनकालका निर्णय करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। उसकी यह कृति देखकर हम इस निश्चयपर पहुँचते हैं कि कल्हण बड़ा ही चतुर कलाकार था। वह मानव स्वभावका अद्भुत पारखी था। वह अपने देशकी नैतिक, भौतिक एवं आर्थिक परिस्थितिसे भली-भाँति परिचित था। प्राचीन इतिहासके अन्वेषणमें उसकी सुतीक्ष्ण प्रतिभा विलक्षण कार्य करती थी। वह स्वाभिमानी काव्यशिल्पी था। उसने यह ऐतिहासिक महाकाव्य किसी राजासे पुरस्कार प्राप्त करनेके निमित्त नहीं लिखा था। अपितु ऐतिहासिक तथ्य विश्वके समक्ष रखनेके उद्देश्यसे ही उसने यह भगीरथ प्रयत्न किया और इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। सच तो यह है कि कल्हणने राजतरंगिणी इतिहास नहीं, बल्कि काव्य समझकर लिखी है। प्राचीन कालमें पाश्चात्य देशके विद्वान् भी इस प्रकारके काव्यग्रन्थ लिखा करते थे। उन दिनों इतिहासग्रन्थोंका भी काव्यग्रन्थोंमें ही समावेश समझा जाता था। इसी सिद्धान्तको हृदयंगम करके कल्हणने भी काव्यात्मक शैलीसे राजतरंगिणीकी रचना की है। इसीलिए ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर अलंकारबहुल भाषाका उन्होंने उपयोग किया है। इसे एक सर्वाङ्गसुन्दर महाकाव्यका रूप देनेके लिए कल्हणने इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि बहुतसे अलंकारोंका समावेश किया है। भाव, भाषा और घटनावैचित्र्यसे तो सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। यहाँतक कि अन्तरात्माके भावोंको अभिव्यक्त करते समय कविने ग्रन्थकी तुन्दिलताको भी नगण्य समझ लिया था'।

यह सब होते हुए भी कल्हणको इतिहासका वास्तविक महत्त्व पूर्णरूपसे ज्ञात था। इतिहासकारको न्यायाधीशके समान पक्षपातशून्य होना चाहिए। यही सोचकर उसने जिन ग्रन्थोंसे सहायता ली थी, उनका निःसंकोच नामनिर्देश किया है। उसका कहना है कि 'प्राचीन इतिहासकारोंने कश्मीरपर जो इतिहासग्रन्थ लिखे, उनमें ऐसे दूषण विद्यमान थे कि जिनके कारण यहाँका सच्चा इतिहास लोगोंको मालूम ही नहीं हो सकता था'। प्रसंगानुसार कल्हणने रामायण और महाभारतसे भी सहायता ली थी। इसी प्रकार कश्मीरी राजाओंके ग्यारह इतिहासग्रन्थोंमेंसे तीनका नामोल्लेख भी भी किया है। उसने नीलमतपुराणका भी भलीभाँति स्वाध्याय किया था। उपर्युक्त तीन ग्रन्थोंमें 'सुव्रतकृत कश्मीरका इतिहास' क्षेमेन्द्रकृत 'नृपावली' और हेलाराजकृत 'पार्थिवावली' हैं। कल्हणने छविल्लाकर तथा पद्ममिहिर नामके दो विद्वानोंका भी नामोल्लेख किया है। इन प्रामाणिक ग्रन्थोंके सिवाय देवालय आदिमें प्राप्त शिलालेख, ताम्रपत्र तथा सनद आदिका भी उपयोग किया है। पुरातन प्रशस्तियों, विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थों और पुराने सिक्कोंको भी उपयोगमें लाया गया है। कल्हणने तत्कालीन दन्तकथाओंका भी उपयोग किया है। किन्तु उनकी प्रामाणिकताके विषयमें उसने कुछ नहीं लिखा है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टिसे दन्तकथाओंका विशेष महत्त्व नहीं माना जाता। अपने समयके इतिहासको उसने प्रत्यक्षद्रष्टा होनेके कारण बहुत अच्छे ढंगसे और विस्तारपूर्वक लिखा है। उसके पूर्वका इतिहास उसने अपने पिता-पितामह आदि पूर्वजोंसे सुनकर लिखा है। उसके बादका इतिहास किसी प्रामाणिक व्यक्ति अथवा राजकीय कार्यकर्ताओंके कथनानुसार लिखा गया है।

राजतरंगिणीकी ऐतिहासिक योग्यताका कालनिर्णय करनेके लिए इसमें की गयी कालगणनापर भी एक बार विवेचनात्मक दृष्टिपात करना आवश्यक है। क्योंकि इस विषयमें कई आपत्तियें उठती हैं।

ग्रन्थमें आरम्भके तीन तरंगोंमें अर्थात् ईसवी सन्‌की सातवीं शताब्दीके आरम्भ तक कालगणना सर्वथा कृत्रिम दीखती है। किन्तु उसको विश्वनीय स्वरूप देनेके लिए महाकवि कल्हणने एड़ी-चोटीका जोर लगाया है। युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके समयसे राजतरंगिणीका कथारम्भ होता है। यद्यपि वह काल कृत्रिम है, तथापि ग्रन्थकारने उसे सत्य मान लिया है। आगे चलकर राजा रणादित्यका शासनकाल तीन सौ वर्ष मानकर कवि कल्हणने हम इतिहासके जिज्ञासुओंको और भी भ्रममें डाल दिया है। किन्तु इस प्रमादका अपराधी हम केवल कल्हणको ही नहीं मान सकते। अपितु प्राचीन दन्तकथाओंपर आस्था रखनेवाले हिन्दुओंके स्वभावका ही यह परिणाम है। हिन्दुओंके सरल स्वभावका सूक्ष्म दृष्टिसे पर्यवेक्षण करके अल्वेरूनीने भी कहा है कि 'हिन्दू लोग सच्चे इतिहासकी परम्पराकी ओरसे उदासीन रहते हैं, यह बड़े ही परितापकी बात है। अपने राज्यकी विश्वस्त परम्परा प्रदर्शित करनेकी ओर वे प्रवृत्त ही नहीं होते। कदाचित् उनके इतिहासको कोई परखनेके लिए अग्रसर होता है तो वे घबड़ा जाते हैं।' उसका यह कथन राजतरंगिणीके आरम्भिक कालगणनाके बारेमें यथार्थ सिद्ध होता है।

यद्यपि कवि कल्हणके ग्रन्थमें उपर्युक्त कमियाँ विद्यमान हैं, फिर भी उसमें यह विशेष गुण है कि उसने वास्तविक स्थिति एवं पक्षपातशून्यताको पर्याप्तरूपसे अपनाया है। महाकविने अपने समयके इतिहासमें स्पष्टवादिताका पूर्ण परिचय दिया है। तत्कालीन राजाओंके गुण-दोष, मंत्रियोंका कार्यकौशल एवं दूषण, राजसेवकोंकी कृतघ्नता तथा स्वामिभक्तिका बड़ा ही सुन्दर खाका उसने खींचा है। दरबारी कवियोंकी तरह उसने अपने आश्रयदाताको सर्वगुणसम्पन्न और विपक्षियोंको सब तरहसे अयोग्य साबित करनेका प्रयास नहीं किया है। निन्दा और स्तुति दोनों ही निष्पक्ष भावसे और बड़ी सचाईके साथ अंकित की गयी हैं। इस प्रकारकी स्पष्टवादिता ही कविको एक विवेचनशील इतिहासकारके पदपर अधिष्ठित कर देती है। सप्तम और अष्टम तरंगके कथाभागमें कल्हणने जो सावधानी दिखायी है, वह उसके चातुर्य एवं सूक्ष्म निरीक्षणशक्तिका स्पष्ट निदर्शन है।

ऐसा लगता है कि कल्हणका दैवकी महिमापर अटूट विश्वास था। इसी कारण वह प्रत्येक अद्भुत घटनामें विधाताके प्रभावको ही मुख्य कारण मानता था। अपने ग्रन्थमें अनेक स्थानोंपर उसने इस बातका उल्लेख भी किया है। हर्षदेव जैसे राजनीतिज्ञ एवं गुणी राजाको अन्तमें बड़े ही दुःखमय तथा नैराश्यपूर्ण जीवन बिताकर अपने ही सेवकोंके द्वारा मरना पड़ा। इसका कारण कल्हणकी दृष्टिमें दैवकी प्रतिकूलता ही थी। इसी तरह 'पुनीत तीर्थ, क्षेत्र एवं देवमन्दिर आदि धार्मिक स्थानोंमें अत्याचार करनेपर ईश्वरीय कोपका पात्र बनकर राजाको नष्ट हो जाना पड़ता है।' कल्हणकी यह सुदृढ़ मान्यता थी। हर्षके शासनकालमें देवस्थानोंपर भीषण अत्याचार किये गये थे। इसी कारण उसका ऐसा बुरा अन्त हुआ। इसी तरह कश्मीरियोंके पूज्य नागोंके विषयमें भी लोगोंका ऐसा विश्वास है कि 'सुश्रवा नागके कोपसे नरपुरका विनाश हो गया था'। कल्हणने भी इस ग्रन्थमें यह बात लिखी है। शुभाशुभ शकुनों तथा उत्पातोंके विषयमें भी कल्हणकी यही धारणा थी। इन बातोंसे तत्कालीन लोकमतका सही-सही परिचय प्राप्त होता है'।

इस प्रकार अनवरत वाग्धारा बहाते-बहाते गोरेबाबा तब रुके, जब हमारी गाड़ी कांजीवरम्‌से चलकर विल्लुपुरम् पहुँच गयी। वहाँ ही हम दोनोंको गाड़ी बदलकर चिदम्बरम् जाना था। मैंने

कुलीको आवाज दी तो गोरेबाबा बोले—'इतने थोड़ेसे सामानके लिए कुलीकी क्या आवश्यकता ?' यह कहकर उन्होंने बेग और अपना सामान सम्हाला और सामने खड़ी चिदम्बरम् जानेवाली गाड़ीमें ले जाकर रख दिया। मैं यह सब कौतुक देखकर हैरान था। उन्होंने मुझे कुछ कहने-सुननेका अवसर ही नहीं दिया। गाड़ी छूटनेमें अभी एक घण्टेकी देर थी। यह सोचकर वे गाड़ीसे उतरे और सामनेकी दूकानसे एक दर्जन केला, सेरभर सेब और आध सेर खजूर ले आये। उसके बाद झोलेसे एक बड़ासा लोटा निकाला और सामनेके नलसे पानी भरकर रख दिया और सामनेकी सीटपर बैठ गये। तनिक देर बाद बड़े ही विनम्रभावसे बोले—'भोजनका समय हो गया है। स्टेशनपर मनमाफिक सात्त्विक भोजन नहीं मिल सकता। अतएव इन फलोंको ले आया हूँ। बस, अब शुरू कर दीजिए'। गोरे बाबाका मुझपर इतना प्रभाव पड़ चुका था कि मैं कुछ ननु-नच करनेमें असमर्थ था। अतएव उनके परामर्शानुसार फल खाया और खजूर खाकर जल पिया। इस कामसे निवृत्त होते-होते गाड़ी चल पड़ी और बाबाजीको शान्त देखकर मैंने फिर राजतरंगिणीकी चर्चा छेड़ दी। मेरी बात सुनी तो अपने मन्द मुसकानके फूल बिखेरते हुए बोले—'उस समय मैंने जो राजतरंगिणीका विवेचन किया था। वह मैं नहीं, बल्कि आजके दस वर्ष पहलेके प्रोफेसर एलेग्जेण्डर बोले थे। गोरेबाबा तो राजतरंगिणीमें भगवद्गीताके एकादशाध्यायोक्त भगवान कृष्णके विराट् स्वरूपकी झाँकी पाता है। उस महाकाव्यकी शान्तरसमयी धारामें अवगाहन करके अपनेको कृतकृत्य मानता है। उस ग्रन्थने गोरेबाबाको जो नवजीवन दिया है वह अजर है, अमर है और अविनाशी है'। कुछ देरमें हम दोनों चिदम्बरम् पहुँच गये और वहाँ ताण्डवनृत्यनिरत नटराज शंकरजीका दर्शन पाकर निहाल हो गये।

इस प्रकार रामेश्वरम्, धनुष्कोटि, मदुरा, पक्षीतीर्थ आदि तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए बारह दिनतक हम और गोरेबाबा साथ-साथ रहते हुए मद्रास पहुँचे। वहाँ दो दिन विश्राम करके बाबाजी तिरुपतिकी ओर गये और मैं जगन्नाथपुरीको चल पड़ा। काशी लौटनेपर भी महीनों पत्रव्यवहार द्वारा हमारा और बाबाजीका सम्पर्क बना रहा। उसके बाद सहसा उनका पत्र आना बन्द हो गया और वृन्दावन अनेक पत्र लिखनेपर भी आज लगभग चार वर्षसे कोई खबर नहीं मिली कि वे कहाँ हैं। ठीक ही है, रमते योगी और बहते पानीको किसने पकड़ पाया है। किन्तु बारह दिनोंके सम्पर्कमें गोरे बाबा मेरे सुकुमार हृदयपर जो छाप छोड़ गये हैं, वह यावज्जीवन अमिट बना रहेगा। उन्हीं महानुभावके आदेशानुसार लगभग पचास वर्षसे अप्राप्य इस ग्रन्थको सटीक रूपमें प्रकाशित करके मैं आप सरीखे गुणग्राहकोंके पावन करकमलोंमें अर्पित करता हुआ अपार हर्षका अनुभव कर रहा हूँ।

काशीधाम
विजयादशमी
सं० २०१७

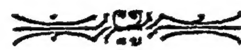
— पाण्डेय रामतेज शास्त्री

श्रीकृष्णः शरणं मम ।

श्री'कल्हण'महाकविविरचिता-

राजतरङ्गिणी

'शोभना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता ।



प्रथमस्तरङ्गः ।

भूषाभोगिफणारत्नरोचिःसिचयचारवे । नमः प्रलीनमुक्ताय हरकल्पमहीरुहे ॥ १ ॥
भालं वह्निशिखाङ्कितं दधदधिश्रोत्रं वहन्भुजगोत्कुण्डलिजृम्भितं जलधिजच्छायाच्छकण्ठच्छविः ।
वक्षो बिभ्रदहीनकञ्चुकचितं बद्धाङ्गनार्धस्य वो भागः पुंगवलक्ष्मणोऽस्तु यशसे वामोऽथ वा दक्षिणः ॥ २ ॥
वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः । येनायाति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥ ३ ॥
कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः । कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥ ४ ॥
न पश्येत्सर्वसंवेद्यान्भावान्प्रतिभया यदि । तदन्यद्दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥ ५ ॥
कथादैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते । तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत्प्रीतये सताम् ॥ ६ ॥
श्लाघ्यः स एव गुणवान्रागद्वेषबहिष्कृता । भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ ७ ॥

अलंकारस्वरूप सर्पोंके फणामण्डलमें विद्यमान रत्नोंकी दीप्तिसे देदीप्यमान एवं मुक्तजनों द्वारा आराधित शिवरूपी कल्पतरुको नमस्कार है ॥ १ ॥ तृतीय नेत्रमें स्थित अग्निकी लपटों तथा केसरके तिलकसे सुशोभित ललाटयुक्त एवं केलि करते हुए सर्पोंके चपलमुख तथा झूलते हुए कुण्डलोंसे शोभायमान कानोंवाला, समुद्रसे उत्पन्न अथवा शंखकी दीप्तिसे निर्मल कण्ठकी शोभासे सम्पन्न, वृषके चिह्नसे चिह्नित, उत्तम कंचुकीसे आवृत वक्षःस्थलयुक्त एवं आधी देहसे नर और आधीसे नारीका वेष धारण किये हुए शिवजीका दाहिना अथवा वामभाग आप लोगोंका कल्याण करे ॥ २ ॥ अमृतके प्रवाहको भी तुच्छ कर देनेवाला एवं अनिर्वचनीय सुकविजनोंका गुण वन्दनीय है। उसके प्रभावसे अपना और पराया यशरूपी शरीर अमर हो जाता है। क्योंकि अमृतपानसे केवल पान करनेवालेका भौतिक शरीर अमर होता है, किन्तु कविके काव्यामृतका पान करनेपर कविका और उसके काव्यमें वर्णित पात्रोंका यशशरीर चिरस्थायी हो जाता है। इसी कारण काव्यरसको अमृतसे भी श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३ ॥ रमणीय काव्यके निर्माणकारी कवियोंके सिवाय अन्य कौन प्राणी भूतकालकी बातोंको वर्तमान कालकी तरह प्रत्यक्ष उपस्थित कर सकता है ॥ ४ ॥ सर्वान्तर्यामी सूझ देनेवाली अपनी बुद्धिसे कवि यदि सहृदयसंवेद्य भावोंको न देखता तो उसकी दिव्यदृष्टिका प्रमाण ही क्या होता? ॥ ५ ॥ कथाविस्तारके भयसे यद्यपि इस ग्रन्थमें विचित्र रचनाओंका समावेश नहीं हो पाया है, फिर भी सहृदय जनोंके लिए सुखदायी कुछ कथानक स्थान-स्थानपर अवश्य रक्खे हुए मिलेंगे ॥ ६ ॥ वह गुणवान् कवि ही प्रशंसाका पात्र होता है, जिसकी

पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति । प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्यं नोचितं सताम् ॥ ८ ॥
दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् । अर्वाक्कालभवैर्वार्ता यत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ ९ ॥
दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन्भूतार्थवर्णने । सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ॥ युग्मम् ॥ १० ॥
विस्तीर्णाः प्रथमे ग्रन्थाः स्मृत्यै संक्षिपतो वचः । सुव्रतस्य प्रबन्धेन छिन्ना राजकथाश्रयाः ॥ ११ ॥
या प्रथामगमन्नैति साऽपि वाच्यप्रकाशने । पाटवं दुष्टवैदुष्यतीव्रा सुव्रतभारती ॥ १२ ॥
केनाप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि । अंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य नृपावली ॥ १३ ॥
दृग्गोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाश्रयाः । मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि ॥ १४ ॥
दृष्टैश्च पूर्वभूभर्तृप्रतिष्ठावस्तुशासनैः । प्रशस्तिपट्टैः शास्त्रैश्च शान्तोऽशेषभ्रमक्लमः ॥ १५ ॥
द्वापञ्चाशतमाम्नायभ्रंशाद्यान्नास्मरन्नृपान् । तेभ्यो नीलमताद्दृष्टं गोनन्दादिचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
बद्धा द्वादशभिर्ग्रन्थसहस्रैः पार्थिवावलिः । प्राग्महाव्रतिना येन हेलाराजद्विजन्मना ॥ १७ ॥
तन्मतं पूर्वमिहिरोऽद्रष्टाऽशोकादिपूर्वगान् । अष्टौ लवादीन्नृपतीन्स्वस्मिन्ग्रंथे न्यदर्शयत् ॥ युग्मम् ॥ १८ ॥
येऽप्यशोकादयः पञ्च श्रीच्छविल्लाकरोऽब्रवीत् । तान्द्वापञ्चाशतो मध्याच्छ्लोकस्तस्य तथा ह्ययम् ॥ १९ ॥
आऽशोकादभिमन्योर्ये प्रोक्ताः पञ्च महीभुजः । ते द्वापञ्चाशतो मध्यादेव लब्धाः पुरातनैः ॥ २० ॥
इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः । भैषज्यभूतसंवादिकथा युक्तोपयुज्यते ॥ २१ ॥
संक्रान्तप्राक्तनानन्तव्यवहारः सुचेतसः । कस्येदृशो न संदर्भो यदि वा हृदयंगमः ॥ २२ ॥

वाणी राग-द्वेषसे रहित एवं सच्चे इतिहासको बतलानेमें समर्थ हो ॥ ७ ॥ प्राचीन इतिहासकारोंके लिखे इतिहास-को फिरसे लिखते हुए मुझ कल्हणसे पुनर्लेखनके प्रयोजनको समझे बिना ही सुजनोंका विमुख हो जाना अनुचित है ॥ ८ ॥ पूर्वकालके इतिहासकारोंने विस्तारके साथ राजाओंके जो इतिहास लिखे हैं, उन्हें देख तथा उनकी सत्यता एवं असत्यताको परखकर सच्चे इतिहासको जनसाधारणके सम्मुख रखना क्या साधारण नैपुण्यका कार्य है ? नहीं। अतएव पूर्णत निर्दोष और सत्य इतिहासको प्रकट करनेके लिए ही मैं यह उद्योग कर रहा हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ पहलेके लिखित इतिहासग्रन्थ बहुत विस्तृत थे। उन्हें संक्षिप्त करनेके लिए सुव्रतने अन्य ग्रन्थ-की रचना कर दी। जिससे वे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ लुप्त हो गये ॥ ११ ॥ किन्तु कवि सुव्रतकी रचना कठोर विद्वत्तापूर्ण होनेके कारण लोगोंको वास्तविक इतिहासका ज्ञान प्राप्त करानेमें समर्थ नहीं हो सकी ॥ १२ ॥ क्षेमेन्द्र कविकृत 'नृपावलि' नामका इतिहासग्रन्थ यद्यपि काव्यकी दृष्टिसे एक उत्तम रचना है, किन्तु अनव-धानता वश उसमें इतनी त्रुटियाँ हो गयी हैं कि उसका कोई अंश निर्दोष नहीं रह गया है ॥ १३ ॥ मैंने प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित राजकथाविषयक ग्यारह ग्रन्थ पढ़े हैं और नीलमुनि द्वारा विरचित नीलमत-पुराणका भी अध्ययन किया है ॥ १४ ॥ प्राचीन राजाओं द्वारा निर्मित देवमन्दिरों, नगरों, ताम्रपत्रों, आज्ञापत्रों, प्रशस्तिपत्रों एवं अन्यान्य शास्त्रोंका मनन-मन्थन करनेके कारण मेरा सारा भ्रम दूर हो चुका है ॥ १५ ॥ ऐतिहासिक प्रमाणोंके अभाव वश पुराने ग्रन्थकारोंको ५२ राजाओंका इतिहास ज्ञात ही नहीं था। उनमेंसे गोनन्द आदि चार राजाओंका इतिवृत्त मुझे नीलमत-पुराणसे ज्ञात हुआ, ॥ १६ ॥ प्राचीनकालमें महाव्रती हेलाराज नामके विप्रने १२ हजार श्लोकोंमें 'पार्थिवावलि' नामके ग्रन्थकी रचना की थी ॥ १७ ॥ उसीके आधारपर पूर्वमिहिर नामके विद्वान्ने अपने ग्रन्थमें अशोकके पूर्वज लव आदि आठ राजाओंका वर्णन किया है ॥ १८ ॥ इसी तरह छविल्लाकर नामके विद्वान्ने भी अपने ग्रन्थमें बावन राजाओंमेंसे अशोकसे लेकर अभिमन्यु तकके पाँच नरेशों-का उल्लेख किया है। उसका श्लोक यह है—'अशोकसे लेकर अभिमन्यु तकके पाँच नरपतियोंको प्राचीन कवियोंने उन अप्रसिद्ध बावन राजाओंमेंसे ही उपलब्ध किया है' ॥ १९ ॥ २० ॥ मेरे द्वारा रचित यह इतिहासग्रन्थ विभिन्न राजाओंके शासनकालमें देश-कालकी उन्नति एवं अवनतिके विषयमें पुरातन ग्रन्थोंसे उत्पन्न भ्रमको दूर करनेमें सहायक सिद्ध होगा ॥ २१ ॥ सुन्दर ढंगसे वर्णित प्राचीन कालके अनेक व्यवहारोंसे परिपूर्ण यह ग्रन्थ किस

क्षणभङ्गिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते । मूर्धाभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम् ॥२३॥
तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम् । श्रोत्रशुक्तिपुटैः स्पष्टमङ्ग राजतरङ्गिणी ॥२४॥
पुरा सतीसरः कल्पारम्भात्प्रभृति भूरभूत् । कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट् ॥२५॥
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान् । द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा ॥२६॥
कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम् । निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम् ॥युग्मम्॥२७॥
उग्रद्वैतस्तनिःस्यन्ददण्डकुण्डातपत्रिणा । यत्सर्वनागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते ॥२८॥
गुहोन्मुखी नागमुखापीतभूरिपया रुचिम् । गौरी यत्र वितस्तात्वं याताप्युज्झति नोचिताम् ॥२९॥
शङ्खपद्ममुखैर्नागैर्नानारत्नावभासिभिः । नगरं धनदस्येव निधिभिर्यन्निषेव्यते ॥३०॥
यत्तार्क्ष्यभीत्या प्राप्तानां नागानां गुप्तये ध्रुवम् । प्रसारितभुजं पृष्ठे शैलप्राकारलीलया ॥३१॥
भुक्तिमुक्तिफलप्राप्तिः काष्ठरूपमुमापतिम् । पापसूदनतीर्थान्तर्यत्र संस्पृशतां भवेत् ॥३२॥
संध्यादेवी जलं यस्मिन्धत्ते निःसलिले गिरौ । दर्शनं पुण्यपापानामन्वयव्यतिरेकयोः ॥३३॥
स्वयंभूर्यत्र हुतभुग्भुवो गर्भात्समुन्मिषन् । जुह्वतां प्रतिगृह्णाति ज्वालाभुजवनैर्हविः ॥३४॥
देवी भेडगिरेः शृङ्गे गङ्गोद्भेदशुचौ स्वयम् । सरोऽन्तर्दृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती ॥३५॥
नन्दिक्षेत्रे हरावासप्रासादे द्युचरार्पिताः । अद्यापि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दनबिन्दवः ॥३६॥
आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात् । तरङ्गिणी मधुमती वाणी च कविसेविता ॥३७॥
चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते । तिलांशोपि न यत्रास्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्बहिष्कृतः ॥३८॥

सहृदय प्राणीके लिए न आनन्ददायक होगा ? ॥ २२ ॥ सभी प्राणियोंके जीवनकी क्षणभङ्गुरताको सोचकर शान्त-रसको ही सब रसोंमे प्रधान स्थान देना उचित है ॥ २३ ॥ अतएव हे सहृदय सज्जनों ! शान्त रसके प्रबल प्रवाह-से रमणीय इस राजतरंगिणीकी कथाको कर्णपुट द्वारा आप तृप्ति पर्यन्त पीजिये ॥ २४ ॥ कल्पके आरम्भसे छ मन्वन्तर तक हिमालयके मध्यमें अगाधजलसे परिपूर्ण सतीसर नामका एक महान् सरोवर था ॥ २५ ॥ तदनन्तर वैवस्वत नामके सप्तम मन्वन्तरमें महर्षि कश्यपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंके द्वारा उस सरोवरमें रहनेवाले जलोद्भव नामके असुरको मरवाकर सरोवरकी भूमिपर काश्मीर मण्डलकी स्थापना की ॥ २६ ॥ २७ ॥ वितस्ता नदीके वहावरूपी दण्ड तथा कुण्डरूपी छत्र धारण किये हुए सब नागोंके राजा नीलनाग इस मण्डलका पालन करते हैं ॥ २८ ॥ स्वामिकार्तिकेयकी आश्रयदात्री, गणेशको दुग्धपान करानेवाली, कन्दराओंसे युक्त होनेके कारण गुहाश्रिता और सर्पोंको जलपान करानेके कारण नागपीतपया वितस्तारूपधारिणीने पार्वती अपना औचित्य नहीं त्यागा। जैसे पार्वतीमें गुहाश्रितत्व तथा नागपीतपयस्त्वरूपी दोनों धर्म रहते हैं, वैसे ही वितस्ता नदीमें भी दोनों धर्म विद्यमान दीखते है ॥ २९ ॥ शंख-पद्म आदि विविध रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित नागों युक्त कुबेरके नगरके सदृश वह कश्मीरमण्डल विभिन्न निधियोंसे भरा पर्वतके समान प्राकाररूपी भुजाओंको उठाकर यह नगर गरुड़के भयसे शरणागत सर्पोंकी प्राणरक्षाके लिए उद्युक्त-सा रहता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यहाँके पापसूदन तीर्थमें विराजमान काष्ठरूपधारी उमेशका दर्शन तथा स्पर्श करनेसे भोग तथा मोक्ष दोनों फल प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ संध्या देवी यहाँके निर्जल पर्वतोंपर पाप और पुण्यका निर्णय जलरूपसे करती है अर्थात् यहाँ पुण्यात्माओंको जल मिलता है और पापियोंको नहीं मिल पाता ॥ ३३ ॥ यहाँकी पृथ्वीसे स्वतः निकली हुई आग अपनी ज्वालारूपी भुजाओंसे होताओं द्वारा अर्पित हव्य ग्रहण करती है ॥ ३४ ॥ गंगाके प्रादुर्भावसे पवित्र यहाँके भेड पर्वतके सरोवरमें हंसरूपधारिणी सरस्वती प्रत्यक्ष दिखायी देती है ॥ ३५ ॥ यहाँपर नन्दिक्षेत्रके शिवालयमें देवताओं द्वारा अर्पित पूजाके चन्दनबिन्दु आज भी दीख रहे हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ सरस्वतीके दर्शनमात्रसे कविसेवित मधुरवाणी तथा मधुमती नदी दोनों प्राप्त हो जाती है ॥ ३७ ॥ चक्रधर, विजयेश, केशव एवं ईशान आदि पुनीत देवालयों युक्त कश्मीर प्रदेशका कोई भी स्थान ऐसा नहीं है कि जिसको तीर्थ न

विजीयते पुण्यबलैर्बलैर्यत्तु न शस्त्रिणाम् । परलोकात्ततो भीतिर्यस्मिन्निवसतां परम् ॥३९॥
सोष्मस्नानगृहाः शीते स्वस्थतीरास्पदा रये । यादोविरहिता यत्र निम्नगा निरुपद्रवाः ॥४०॥
असन्तापार्हतां जानन्यत्र पित्रा विनिर्मिते । गौरवादिव तिग्मांशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम् ॥४१॥
विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुमं सहिमं पयः । द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ॥४२॥
त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या तस्यां धनपतेर्हरित् । तत्र गौरीगुरुः शैलो यत्तस्मिन्नपि मण्डलम् ॥४३॥
तत्र कौरवकौन्तेयसमकालभवान्कलौ । आ गोनन्दात्स्मरन्ति स्म न द्वापञ्चाशतं नृपात् ॥४४॥
तस्मिन्काले ध्रुवं तेषां कुकृत्तैः काश्यपीभुजाम् । कर्तारः कीर्तिकायस्य नाभूवन्कविवेधसः ॥४५॥

भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां जलधिरशना मेदिन्यासीदसावकुतोभया ।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे ॥४६॥

येऽप्यासन्निभकुम्भगायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे येषामप्यवसन्पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिकाः ।
ताँल्लोकोयमवैति लोकतिलकान्स्वप्नेऽप्यजातानिव भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धं जगत्त्वां विना ॥४७॥

अष्टषष्ट्यधिकामब्दशतद्वाविंशतिं नृपाः । अपीपलंस्ते कश्मीरान्गोनन्दाद्याः कलौ युगे ॥४८॥
भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः । केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ युग्मम् ॥४९॥
लब्धाधिपत्यसंख्यानां वर्षान्संख्याय भूभुजाम् । भुक्तात्कालात्कलेः शेषो नास्त्येवं तद्विवर्जितान् ॥५०॥
गतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले । कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन्कुरुपाण्डवाः ॥५१॥
लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम् । सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥५२॥
प्रायस्तृतीयगोनन्दादारभ्य शरदां तदा । द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयम् ॥५३॥

कहा जासके ॥ ३८ ॥ पुण्य-बलसे ही इस प्रदेशपर विजय प्राप्त की जा सकती है, शस्त्र-बलसे नहीं । अतएव कश्मीर-वासी परलोकसे ही डरते हैं, शत्रुओंसे नहीं डरते ॥ ३९ ॥ शीत-कालमें स्नान करनेके योग्य यहाँ अनेक स्थान हैं, जहाँके स्नानागारोंमें गरम जल मिलता रहता है और उष्ण-कालमें स्नान योग्य तथा जल-जन्तुओंके भयसे रहित एवं शीतल जलवाले कई नदी-तट विद्यमान हैं ॥ ४० ॥ अपने पिता कश्यपके द्वारा निर्मित इस कश्मीर-प्रदेशको सूर्यनारायण अपनी उष्ण-किरणोंसे तपानेके अयोग्य समझकर गौरव भरे हृदयसे ग्रीष्मकालमें भी तीव्रता प्रगट नहीं करते ॥ ४१ ॥ यहाँपर बड़े बड़े विद्या-भवन, हिम-सदृश शीतल जल एवं द्राक्षाफल आदि स्वर्गमें भी दुर्लभ पदार्थ साधारण वस्तु माने जाते हैं ॥ ४२ ॥ तीनों लोकोंमें भूलोक श्रेष्ठ है, भूलोकमें कौवेरी (उत्तर) दिशाकी शोभा उत्तम है, उसमें भी हिमालय पर्वत प्रशंसनीय है और उस पर्वतपर भी काश्मीर मण्डल परम रमणीक है ॥ ४३ ॥ कलियुगमें यहाँ कौरव-पाण्डवके समकालीन तृतीय गोनन्द तक ५२ बावन राजे हो चुके थे ॥ ४४ ॥ परन्तु उस समय उन नरेशोंके कुकृत्यसे यश-शरीरनिर्माता कवि नहीं थे ॥ ४५ ॥ जिन महा-प्रतापशाली राजाओंकी भुजवनरूपी वृक्षोंकी छायामें यह समुद्रपरिवेष्टिता भूमि सर्वथा निर्भय थी, उन राजाओं-का भी नाम जिनके अनुग्रहके विना स्मरण नहीं आता, स्वभावतः महत्त्वशालिनी उस कविकृतिको हम सादर प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥ जिन नरपतियोंके चरण हाथियोंके मस्तकोपर पड़ते थे, जो लक्ष्मीको प्राप्त कर चुके थे, जिनके महलोंमें दिनके समय भी चमकनेवाली चन्द्रिका जैसी सुन्दरी युवतियाँ रहा करती थीं, उन लोकतिलक नरेशोंको यह संसार जिस कवि-कृतिके विना स्वप्नमें भी उत्पन्न नहीं मान सकता, अतः हे भ्रातः कविकृत्य ! हम सैंकड़ों स्तुतियोंसे आपके गुण कहाँ तक गायें । बस, इतना ही कहना पर्याप्त है कि आपके विना सारा संसार अन्धा है ॥ ४७ ॥ कलियुगमें उन गोनन्द आदि बावन राजाओंने २२६८ वर्ष तक कश्मीर देशपर शासन किया । 'महाभारतका युद्ध द्वापरयुगके अन्तमें हुआ था' ऐसी मिथ्या वार्ताओंसे भ्रान्तचित्त अनेक इतिहासकार मेरी इस काल-गणनाको सही नहीं मानते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ किन्तु कश्मीरके राज्यासनको अलंकृत करनेवाले राजाओंका शासन-काल तथा भुक्त कलिका समय दोनों बराबर हैं ॥ ५० ॥ कलिके ६५३ वर्ष बीत जानेपर कौरव-पाण्डव

वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिश्च संयुता । भूभुजां कालसंख्यायां तद्द्वापञ्चाशतो मता ॥५४॥
ऋक्षादृक्षं शतेनाब्दैर्यातसु चित्रशिखण्डिषु । तच्चारे संहिताकारैरेवं दत्तोऽत्र निर्णयः ॥५५॥
आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥५६॥
कश्मीरेन्द्रः स गोनन्दो वेल्लद्गङ्गादुकूलया । दिशा कैलासहासिन्या प्रतापी पर्युपास्यत ॥५७॥
विहाय देहं शेषाहेर्विषाश्लेषभयादिव । भूर्गारुत्मतरत्नाङ्के भेजे तस्य भुजे स्थितिम् ॥५८॥
साहायकार्थमाहूतो जरासंधेन बन्धुना । स संरुरोध कंसारेर्मथुरां पृथुभिर्बलैः ॥५९॥
तेनोपकूलं कालिन्द्याः स्कन्धावारं निवध्नता । यादवीहसितैः सार्धं योधानां मीलितं यशः ॥६०॥
एकदा सर्वतो भग्नाः स्वसेनास्त्रातुमुद्यतः । तं संरुरोध योद्धारं संगरे लाङ्गलध्वजः ॥६१॥
तयोस्तुल्यौजसोर्युद्धे चिराय करवर्तिनी । मम्लौ विजयसंदेहे किं जयस्रग्जयश्रियः ॥६२॥
अथ शस्त्रक्षतैरङ्गैरालिलिङ्ग रणाङ्गने । भुवं काश्मीरिको राजा यादवस्तु जयश्रियम् ॥६३॥
गतिं प्रवीरसुलभां तस्मिन्सुक्षत्रिये गते । श्रीमान्दामोदरो नाम तत्सूनुरभृत क्षितिम् ॥६४॥
भोगयोगोर्जितं राज्यं प्राप्तवानपि भूपतिः । ध्यायन्पितृवधं मानी नोपलेभे स निर्वृतिम् ॥६५॥
अथोपसिन्धु गान्धारैः सज्जे कन्यास्वयंवरे । निमन्त्र्य शुश्रावानीतान्वृष्णीन्दर्पोष्णदोर्द्रुमः ॥६६॥
ततस्तस्यातिसंरम्भात्तानदूरस्थितान्प्रति । यात्राभूद्ध्वजिनीवाजिरेणुग्रस्तनभस्तला ॥६७॥
तदाहवे विवाहोत्का निघ्नति स्म पतिंवरा । आसीत्तु द्युपुरन्ध्रीणां गान्धारेषु स्वयंवरः ॥६८॥
तदाक्रान्तासुहृच्चक्रः स चक्रायुधसंगरे । चक्रधाराध्वना धीरश्चक्रवर्ती दिवं ययौ ॥६९॥

हुए थे ॥ ५१ ॥ इस समय शककालके २४वें लौकिक वर्षमें १०७० वर्ष बीत चुके हैं ॥ ५२ ॥ तीसरे गोनन्दके समयसे लेकर आज तक प्रायः १३३० वर्ष बीते हैं ॥ ५३ ॥ अब उन ५२ बावन राजाओंके शासनकालका १२६६ वाँ वर्ष है ॥ ५४ ॥ 'चित्रशिखण्डि (सप्त-ऋषिगण) एक नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्र पर १०० वर्षमें जाते हैं' यह ज्योतिष-संहिताकारोंका निर्णय है ॥ ५५ ॥ राजा युधिष्ठिर जब पृथ्वीपर शासन करते थे, तब सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर विद्यमान थे। युधिष्ठिरका शक-काल २५५६ माना जाता है ॥ ५६ ॥ उस समय गंगाका चञ्चल प्रवाहरूपी शुभ्र वस्त्र धारण करके कैलास पर्वतकी धवलिमाका उपहास करती हुई उत्तर दिशा परम प्रतापी कश्मीरनरेश राजा गोनन्दकी सेवामें संलग्न थी ॥ ५७ ॥ विषसे भयभीत पृथ्वी शेषनागका मस्तक त्यागकर इन्द्रनीलमणिखचित आभूषणोंसे आभूषित राजा गोनन्दकी भुजाओंका आश्रय पाकर निर्भय हो गयी थी ॥ ५८ ॥ एक बार अपने मित्र जरासंध द्वारा सहायताके लिए आमन्त्रित राजा गोनन्दने यमुनाके तीरपर अपनी सेना टिका दी और चारों ओरसे मथुरा नगरीको घेर लिया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार सेनाको डटाकर गोनन्दने अपने प्रबल आतंकसे यादव रमणियोंकी मुसकानके साथ ही यादव वीरोंका यश भी लुप्त कर दिया था ॥ ६० ॥ उस युद्धमें यादवी सेनाको बुरी तरह हारते देख उसकी रक्षाके लिए बलरामने आकर गोनन्दको घेर लिया ॥ ६१ ॥ समान बली उन दोनों वीरोंके युद्धमें बहुत समय तक किसी भी पक्षकी विजयको अनिश्चित देखकर जयश्रीके करकमलोंमें विद्यमान विजयमाला मुरझा गयी ॥ ६२ ॥ कालान्तरमें गोनन्दने बलरामके शस्त्रप्रहारोंसे जर्जरित होकर पृथ्वीका आलिंगन किया और बलदेवको विजयलक्ष्मीके आलिंगनका श्रेय मिला ॥ ६३ ॥ इस प्रकार गोनन्दको वीरगति मिल जानेके बाद उसका पुत्र दामोदर पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ ६४ ॥ सर्वथा भोग-सम्पत्तिसम्पन्न राज्य मिलनेपर भी स्वाभिमानी राजा दामोदरको पिताके वधका स्मरण करनेपर शांति नहीं प्राप्त होती थी ॥ ६५ ॥ उसी समय गांधार देशके नरेश द्वारा अपनी कन्याके स्वयंवरमें यादवोंका निमन्त्रण सुनकर दामोदर युद्धकी इच्छासे फड़कती भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिए घोड़ोंकी टाप द्वारा उड़ी धूलसे आकाशको आच्छादित करती हुई विशाल सेना साथ लेकर लड़नेके निमित्त गांधार देशमें जा पहुँचा ॥ ६६ ॥ ॥६७॥ इससे उस कन्याके स्वयंवरमें ऐसा विघ्न उत्पन्न हुआ कि जिससे युद्धमें मरे वीरोंके साथ स्वर्गीय रमणियों-

अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं तदा यदुकुलोद्वहः । राज्ये यशोवतीं नाम द्विजैः कृष्णोऽभ्यषेचयत् ॥७०॥
तस्मिन्काले स्वसचिवान्साससूयान्विन्यवीवरत् । इमं पौराणिकं श्लोकमुदीर्य मधुसूदनः ॥७१॥
कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः । नावज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ॥७२॥
पुंसां निर्गौरवा भोज्ये इव याः स्त्रीजने दृशः । प्रजानां मातरं तास्तामपश्यन्देवतामिव ॥७३॥
अथ वैजनने मासि सा देवी दिव्यलक्षणम् । निर्दग्धस्यान्वयतरोरङ्कुरं सुषुवे सुतम् ॥७४॥
तस्य राज्याभिषेकादिविधिभिः सह संभृताः । द्विजेन्द्रैर्निरवर्त्यन्त जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥७५॥
स नरेन्द्रश्रिया सार्धं लब्धवान्बालभूपतिः । नाम गोनन्द इत्येवं नप्ता पैतामहं क्रमात् ॥७६॥
आस्तां बालस्य संनद्धे द्वे धात्र्यौ तस्य वृद्धये । एका पयःप्रस्रविणी सर्वसंपत्प्रसूः परा ॥७७॥
तस्यावन्ध्यप्रसादत्वं रक्षन्तः पितृमन्त्रिणः । पार्श्वगेभ्यो ददुर्वित्तमनिमित्तस्मितेष्वपि ॥७८॥
अबुद्ध्वानुतिष्ठन्तस्तस्याव्यक्तं शिशोर्वचः । कृतागसमिवात्मानममन्यन्ताधिकारिणः ॥७९॥
पितुः सिंहासनं तेन क्रामता बालभूभुजा । नोत्कण्ठा पादपीठस्य लम्बमानांघ्रिणा हृता ॥८०॥
तं चामरमरुल्लोलकाकपक्षं नृपासने । विधाय मन्त्रिणोऽशृण्वन्प्रजानां धर्मसंश्रयम् ॥८१॥
इति काश्मीरिको राजा वर्तमानः स शैशवे । साहायकाय समरे न निन्ये कुरुपाण्डवैः ॥८२॥
आम्नायभङ्गान्निर्नष्टनामकृत्यास्ततः परम् । पञ्चत्रिंशन्महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे ॥८३॥
अथाभवल्लवो नाम भूपालो भूमिभूषणम् । वेल्लद्यशोदुकूलायाः प्रीतिपात्रं जयश्रियः ॥८४॥
यस्य सेनानिनादेन जगदौन्निद्र्यदायिना । निन्यिरे वैरिणश्चित्रं दीर्घनिद्राविधेयताम् ॥८५॥

का स्वयंवर होने लग गया ॥ ६८ ॥ अन्तमे शत्रुसैन्यपर भीषण प्रहार करनेवाले वीरश्रेष्ठ दामोदरने श्रीकृष्णके सुदर्शन चक्रके आघातसे वीरगति प्राप्त की ॥ ६९ ॥ तब यादवश्रेष्ठ कृष्णने ब्राह्मणोंके द्वारा दामोदरकी गर्भवती स्त्री यशोमती देवीका राज्याभिषेक करा दिया ॥ ७० ॥ इस कार्यकलापसे अपने मन्त्रि-मण्डलको रुष्ट देखकर भगवान् कृष्णने "कश्मीर देश पार्वतीका स्वरूप है और वहाँका राजा साक्षात् शिव है। अतएव दुष्ट होनेपर भी वह कल्याणेच्छुक विद्वानोंके लिये पूजनीय है" ऐसे पौराणिक श्लोकका प्रमाण देकर उन्हे शांत किया ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ पहले जो लोग स्त्रियोंको भोग्य पदार्थके समान गौरवविहीन दृष्टिसे देखते थे, वे ही अब रानी यशोमतीको देवताकी भाँति आदरपूर्ण दृष्टिसे देखने लग गये ॥ ७३ ॥ दशम मासमे यशोमतीके गर्भसे दग्ध वंशवृक्षके अंकुरकी तरह एक दिव्य पुत्र जनमा ॥ ७४ ॥ राज्याभिषेकके साथ ही प्रचुर सामग्रियोंको एकत्रित करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा उस बालकका जातकर्म संस्कार कराया गया ॥ ७५ ॥ उस बालक राजाने राज्यश्रीके साथ-साथ पितामहके क्रमसे (द्वितीय) गोनन्दका नाम भी लाभ किया ॥ ७६ ॥ उसका उचित पोषण करनेके लिये जलपूर्ण वितस्ता नदी और सर्वसंपत्प्रसविनी भूमि ये दोनों ही उपमाताओंका कार्य करने लगीं ॥ ७७ ॥ उस बालक राजाकी अकारण मुसकानको भी देखकर उसकी प्रसन्नताको सफल बनानेके निमित्त मंत्रिगण अनुचरोंको पारितोषिक (इनाम) देकर संतुष्ट करते रहते थे ॥ ७८ ॥ उस बालककी अव्यक्त वाणीका आशय न समझनेके कारण आज्ञा पालन करनेमें असमर्थ मन्त्री अपनेको अत्यन्त अपराधी मानते थे ॥ ७९ ॥ अपने पिताके सिंहासनपर बैठे उस बालक नरेशके पैर पादपीठ तक नहीं पहुँचते थे। अतएव उस पादपीठकी निराशा दूर नहीं होने आती थी ॥ ८० ॥ चामरोंकी पवनसे चञ्चल काकपक्षवाले उस बालक नरेशको राज्यासनपर बैठाकर मन्त्री लोग राज्य-कार्य करते थे ॥ ८१ ॥ महाभारतके युद्धमें कौरवों तथा पाण्डवोंने कश्मीर-शासक उस राजाको बालक जानकर सहायतार्थ निमन्त्रित नहीं किया था ॥ ८२ ॥ उसके बाद जो राजे हुए, उनका इतिहास नष्ट हो जानेके कारण वे विस्मृति-सागरमें डूब गये हैं और इतिहास न मिलनेसे आज उन्हे कोई नहीं जानता ॥ ८३ ॥ तदनन्तर फरफराते हुए यशोवस्त्रसे वेष्टित तथा जयश्रीका प्रेम-पात्र एवं भूमि-भूषणस्वरूप लव नामका राजा कश्मीरका शासक बना ॥ ८४ ॥ समस्त संसारकी निद्रा भंग करनेवाले उसके सेनानिनादने शत्रुओंको दीर्घ-

तेन षोडशभिर्लक्षैर्विहीनामश्मवेश्मनाम् । कोटिं निष्पाद्य नगरं लोलोरं निरमीयत ॥८६॥
दत्त्वाग्रहारं लेदर्या लेवारं द्विजपर्षदे । स ग्राममनिन्द्यशौर्यश्रीरारुरोह महाभुजः ॥८७॥
कुशेशयाक्षस्तत्पुत्रः प्रतापकुशलः कुशः । कुरुहाराग्रहारस्य दाताऽभूत्तदनन्तरम् ॥८८॥
ततस्तस्य सुतः प्राप रिपुनागकुलान्तकः । धुर्यः शौर्याश्रयः श्रीमान्खगेन्द्रः पार्थिवेन्द्रताम् ॥८९॥
स खागिखोनमुषयोः कर्ता मुख्याग्रहारयोः । हरहासमितैः कृत्यैः क्रीतॉल्लोकान्क्रमाद्ययौ ॥९०॥
अनर्घमहिमा दीर्घमघवत्तावहिष्कृतः । अथ माश्चर्यचर्योऽभूत्सुरेन्द्रस्तत्सुतो नृपः ॥९१॥
शतमन्युः शान्तमन्योर्गोत्रभिद्गोत्ररक्षिणः । लेभे यस्य सुरेन्द्रस्य सुरेन्द्रो नोपमानताम् ॥९२॥
दरद्देशान्तिके कृत्वा सोरकाख्यं स पत्तनम् । श्रीमान्विहारं विदधे नरेन्द्रभवनाभिधम् ॥९३॥
तेन स्वमण्डलेऽखण्डयशसा पुण्यकर्मणा । विहारः सुकृतोदारो निर्मितः सौरसाभिधः ॥९४॥
तस्मिन्निःसंततौ राज्ञि प्रशान्तेऽन्यकुलोद्भवः । बभार गोधरो नाम सभूधरवरां धराम् ॥९५॥
गोधरो हस्तिशालाख्यमग्रहारमुदारधीः । स प्रदाय द्विजन्मभ्यः पुण्यकर्मा दिवं ययौ ॥९६॥
तस्य सूनुः सुवर्णाख्यस्ततोऽभूत्स्वर्णदोऽर्थिनाम् । सुवर्णमणिकुल्यायाः कराले यः प्रवर्तकः ॥९७॥
तत्सूनुर्जनको नाम प्रजानां जनकोपमः । विहारमग्रहारं च जालोराख्यं च निर्ममे ॥९८॥
शचीनरस्तस्य सूनुः क्षितिं क्षितिशचीपतिः । ततः श्रीमान्क्षमाशीलो ररक्षाक्षतशासनः ॥९९॥
राजाग्रहारयोः कर्ता शमाङ्गासाशनारयोः । सोऽभूदपुत्रः सुत्रामविष्टरार्धसमाश्रयी ॥१००॥
प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः । अथावहदशोकाख्यः सत्यसंधो वसुंधराम् ॥१०१॥
यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम् । शुष्कलेत्रवितस्तात्रौ तस्तार स्तूपमण्डलैः ॥१०२॥

कालीन निद्राके अधीन कर दिया ॥ ८५ ॥ उस नरेशने ८४ लाख पत्थरके मकान बनवाकर लोलोर नगर बसाया ॥ ८६ ॥ निष्कलंक वीरश्रीसे विभूषित राजा लव लेदरी नदीके तटपर बसा लेवार ग्राम ब्राह्मणोंको दान देकर स्वर्ग चला गया ॥ ८७ ॥ उसके बाद उसका परम प्रतापी पुत्र कुशेशयाक्ष राजा बना और उसने कुरुहार नामका अग्रहार ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर शत्रुरूपी सर्पवंशका घातक एवं महावीर खगेन्द्र नामक उसका पुत्र कश्मीर देशका शासक बना ॥ ८९ ॥ खागी और खोनमुष नामके दो अग्रहारोंको स्थापित करके राजा खगेन्द्र भगवान् शंकरके अट्टहासकी तरह अपने निर्मल पुण्यके प्रभावसे स्वर्गको सुशोभित करने चला गया ॥ ९० ॥ उसके बाद परम प्रतापवान् राजा सुरेन्द्रने कश्मीर देशके राज्यसिंहासनको अलंकृत किया। वह खगेन्द्रका पुत्र था, अत उससे इन्द्र भी लज्जित होता था। क्योंकि इन्द्र 'शतमन्यु' (सैकड़ों तरहसे क्रुद्ध) था, वह शान्तमन्यु (शांतक्रोध) था और इन्द्र गोत्रभिद् (पर्वतनाशक) कहलाता है और राजा सुरेन्द्र गोत्र-(कुल) रक्षक था ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ श्रीमान्, यशस्वी और परम पुण्यात्मा उस राजाने दरद देशके पास सोरक नामका एक प्रसिद्ध नगर बसाया। उसके साथ ही उसने नरेन्द्रभवन तथा सौरभ नामके दो विहार भी बनवाये ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ कोई सन्तान न होनेसे उसकी मृत्युके पश्चात् अन्यवंशज राजा गोधर सपर्वता पृथ्वीपर शासन करने लगा ॥ ९५ ॥ परम पुण्यात्मा और उदार राजा गोधर ब्राह्मणोंको हस्तिशाला नामका अग्रहार देकर स्वर्ग चला गया ॥ ९६ ॥ उसके बाद याचकोंको प्रचुर सुवर्ण देनेवाला तथा कराल नामके देशमें सुवर्णमणिकुल्या नदी बहा देनेवाला उसका पुत्र सुवर्ण कश्मीर देशका राजा हुआ ॥ ९७ ॥ उसके बाद जनक (पिता) के समान विज्ञ उसका पुत्र जनक अपने पिताके सिंहासनका अधिकारी हुआ और प्रजाका पालन करने लगा। उसने विहार तथा जालोर नामके अग्रहारका निर्माण कराया ॥ ९८ ॥ उसके दिवंगत होजानेपर श्रीमान् तथा परम क्षमाशील उसका पुत्र शचीनर सिंहासनासीन हुआ। कोई भी व्यक्ति उसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता था ॥ ९९ ॥ शमाङ्ग और असाशनार नामके अग्रहारोंका निर्माण कराके अपुत्री वह राजा कुछ समय बाद इन्द्रके आधे आसनका अधिकारी होता हुआ स्वर्गवासी हो गया ॥ १०० ॥ उसके बाद राजा शकुनी-

धर्मारण्यविहारान्तर्वितस्तात्रपुरेऽभवत् । यत्कृतं चैत्यमुत्सेधावधिप्राप्त्यक्षमेक्षणम् ॥१०३॥
स षण्णवत्या गेहानां लक्षैर्लक्ष्मीसमुज्ज्वलैः । गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपः ॥१०४॥
जीर्णं श्रीविजयेशस्य विनिवार्य सुधामयम् । निष्कल्मषेणाश्ममयः प्राकारो येन कारितः ॥१०५॥
सभायां विजयेशस्य समीपे च विनिर्ममे । शान्तावसादः प्रासादावशोकेश्वरसंज्ञितौ ॥१०६॥
म्लेच्छैः संछादिते देशे स तदुच्छित्तये नृपः । तपःसंतोषिताल्लेभे भूतेशात्सुकृती सुतम् ॥१०७॥
सोऽथ भूभृज्जलौकोऽभूद्भूलोकसुरनायकः । यो यशःसुधया शुद्धं व्यधाद्ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥१०८॥
यस्य दिव्यप्रभावस्य कथाः श्रुतिपथं गताः । आश्चर्याचार्यतां यान्ति नियतं द्युसदामपि ॥१०९॥
कोटिवेधिनि सिद्धे हि स रसे हाटकार्पणैः । आसीत्सुपिरतां हर्तुं हेमाण्डस्य ध्रुवं क्षमः ॥११०॥
संस्तभ्याम्भः प्रविष्टेन तेन नागसरोन्तरम् । तारुण्यं फणिकन्यानां निन्ये संभोगभव्यताम् ॥१११॥
तत्कालप्रबलप्रेद्धबौद्धवादिसमूहजित् । अवधूतोऽभवत्सिद्धस्तस्य ज्ञानोपदेशकृत् ॥११२॥
विजयेश्वरनन्दीशक्षेत्रज्येष्ठेशपूजने । तस्य सत्यगिरो राज्ञः प्रतिज्ञा सर्वदाऽभवत् ॥११३॥
ग्रामे ग्रामे स्थितैरश्वैर्धावनं प्रतिपिद्धवान् । स्वेनावहत्तं सततं नागः कोऽपि सुहृत्तया ॥११४॥
स रुद्धवसुधान्म्लेच्छान्निर्वास्याखर्वविक्रमः । जिगाय जैत्रयात्राभिर्महीमर्णवमेखलाम् ॥११५॥
ते यत्रोज्झटितास्तेन म्लेच्छाश्छादितमण्डलाः । स्थानमुज्झटडिम्बं तज्जनैरद्यापि गद्यते ॥११६॥
जित्वोर्वीं कान्यकुब्जाद्यां तत्रत्यं स न्यवेशयत् । चातुर्वर्ण्यं निजे देशे धर्म्यांश्च व्यवहारिणः ॥११७॥

का प्रपौत्र एवं सत्यप्रतिज्ञ अशोक पृथ्वीका शासक हुआ ॥ १०१ ॥ वह बड़ा पुण्यात्मा था। जैनधर्मको स्वीकार करके उसने शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामके दो स्थानोंपर अनेक स्तूप बनवाये ॥ १०२ ॥ उसने वितस्तात्रपुरके धर्मारण्य विहारमें इतना ऊँचा जैनमन्दिर बनवाया था कि जिसकी ऊँचाईका निर्णय करनेमें दर्शकोंकी आँखें असमर्थ हो जाती थीं ॥ १०३ ॥ उस परम प्रतापी एवं अतिशय धनाढ्य राजाने धन-जनसे परिपूर्ण छानवे लाख दिव्य भवनोंसे विभूषित बहुत बड़ा श्रीनगर नामका नगर बसाया ॥ १०४ ॥ उस पूतात्माने चूनेके बने श्रीविजयेश्वर मन्दिरका जीर्ण-शीर्ण प्राकार तुड़वाकर उसकी जगह पत्थरोंका सुदृढ प्राकार बनवाया ॥ १०५ ॥ आलस्यहीन राजा अशोकने विजयेश्वरके समीप ही अशोकेश्वर नामके दो प्रासाद बनवाये ॥ १०६ ॥ कश्मीरको म्लेच्छोंसे आच्छादित होते देखकर उस राजाने उनका समूल नाश करनेकी इच्छासे भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तपस्या की। उस तपसे संतुष्ट शंकरजीसे उसने सुयोग्य पुत्र पाया ॥ १०७ ॥ अशोकके बाद जलौक पृथ्वीका राजा हुआ। उसने अपनी धवल कीर्तिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डलको शुद्ध कर दिया था ॥ १०८ ॥ दिव्य प्रभावशाली उस महात्माकी पवित्र कथायें सुनकर देवता लोग भी आश्चर्यचकित होजाते थे ॥ १०९ ॥ कोटिवेधी रस सिद्ध करके वह पारदादि धातुओंके द्वारा इतना अधिक सुवर्ण बनाता था कि जिससे समस्त ब्रह्माण्डकी खाली जगहोंको वह सुवर्णसे भर सकता था ॥ ११० ॥ उस राजाने नागसरोवरका जल रोककर नागकन्याओंके साथ संभोग करके अपना यौवन सफल कर लिया था ॥ १११ ॥ उसका गुरु बुद्धिमान्, तेजस्वी, अवधूत एवं तत्कालीन अनेक बौद्ध विद्वानोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाला परम विरक्त सन्त था ॥ ११२ ॥ वह सत्यवादी राजा प्रतिदिन नियमसे नन्दीश क्षेत्रमें स्वयंभू श्रीज्येष्टेश्वर नामके शंकरजीकी पूजा किया करता था ॥ ११३ ॥ पूजनके लिये उतनी दूर जानेमें उसका मित्र एक नाग प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उसकी सहायता करता था। अतएव उसको प्रत्येक ग्राममें अश्वका प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी ॥ ११४ ॥ उस धैर्य्यवान् और परम वीर राजाने सर्वत्र फैले हुए दुष्ट म्लेच्छोंको परास्त करके अपनी विजयशालिनी सेनाकी सहायतासे सारी पृथ्वी जीत ली ॥ ११५ ॥ अपने राष्ट्रपर आक्रमण करनेवाले म्लेच्छोंको उसने जहाँसे मारकर भगा दिया था, लोग उस स्थानको उज्झटडिम्ब कहने लगे ॥ ११६ ॥ कान्यकुब्ज आदि देशोंको जीतकर राजा जलौकने वहाँसे चारों वर्णोंके धार्मिक विद्वानोंको कश्मीरमें लाकर बसाया और चतुर्वर्णाश्रम धर्मकी व्यवस्था की

यथावद्वृद्धिमप्राप्ते व्यवहारधनादिभिः । सामान्यदेशवद्राज्यं तावदस्मिन्हि मण्डले ॥११८॥
धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोशाध्यक्षश्चमूपतिः । दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोऽभवन् ॥ युग्मम् ॥११९॥
कर्मस्थानानि धर्म्याणि तेनाष्टादश कुर्वता । ततः प्रभृति भूपेन कृता यौधिष्ठिरी स्थितिः ॥१२०॥
स विक्रमप्रभावाभ्यां समुपार्जितया श्रिया । विदधे वारवालादीनग्रहारानुदग्रधीः ॥१२१॥
द्वारादिषु प्रदेशेषु प्रभावोग्राण्युदग्रया । ईशानदेव्या तत्पत्न्या मातृचक्राणि चक्रिरे ॥१२२॥
श्रुतनन्दिपुराणः स व्यासान्तेवासिनो नृपः । सेवनं सोदरादीनां नन्दीशस्पर्धया व्यधात् ॥१२३॥
प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य श्रीनगर्यां वितन्वता । तेन नन्दीशसंस्पर्धा न मेने सोदरं विना ॥१२४॥
विस्मारितो नित्यकृत्यं कार्यव्यग्रतयैकदा । विदूरसोदरजलाप्लवनालाभदुर्मनाः ॥१२५॥
अपश्यन्निर्जलान्स्थानादकस्मादुत्थितं पयः । स सोदराविसंवादि वर्णास्वादादिभिर्गुणैः ॥ युग्मम् ॥१२६॥
प्रादुर्भूते ततस्तस्मिंस्तीर्थे कृतनिमज्जनः । स नन्दिरुद्रस्पर्धायां मानी पर्याप्तिमासदत् ॥१२७॥
तेन जातु परीक्षार्थं निक्षिप्तः सोदरान्तरे । सपिधानाननः स्वर्णभृङ्गारः सुपिरोदरः ॥१२८॥
दिनद्वयेन सार्धेन श्रीनगर्युद्भवाम्भसः । उन्मग्नः स महीभर्तुस्तस्य चिच्छेद संशयम् ॥१२९॥
नूनं नन्दीश एवासौ भोक्तुं भोगानवातरत् । दृष्टादृष्टक्रियासिद्धिर्न भवेत्तादृगन्यथा ॥१३०॥
राज्ञस्तस्य कदाचित्तु व्रजतो विजयेश्वरम् । ययाचे काचिदबला भोजनं मार्गमध्यगा ॥१३१॥
यथेष्टमशनं दातुं ततोऽनेन प्रतिश्रुते । व्यवृणोद्विकृता भूत्वा सा नृमांसाश्रयां स्पृहाम् ॥१३२॥
स सत्त्वहिंमाविरतस्तस्यै मांसं स्वविग्रहात् । अनुज्ञां प्रददौ भोक्तुं यदा सैवं तदाऽब्रवीत् ॥१३३॥
बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल कोऽपि सत्त्वोर्जितव्रतः । कारुण्यं प्राणिषु दृढं यस्येदृक्ते महात्मनः ॥१३४॥

॥११७॥ पहले वहाँ साधारण राज्योंके समान धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, परराष्ट्रसचिव, पुरोहित और ज्योतिषी ये सात अधिकारी रहा करते थे ॥११८॥११९॥ अब उसने अष्टादश कर्मस्थान (कार्योंके विभाग) स्थापित करके राजा युधिष्ठिरके समान अपने राज्यका सुन्दर प्रबन्ध कर दिया ॥ १२० ॥ अतिशय बुद्धिमान् उस राजाने अपने पराक्रम तथा प्रभावसे उपार्जित सम्पत्तिके द्वारा वारवाल आदि अग्रहारोंका निर्माण कराया ॥ १२१ ॥ राजा जलौककी पटरानी ईशानदेवीने कश्मीर तथा अन्य देशोंके द्वारोंपर अनेक प्रभावशाली मातृचक्र स्थापित किये ॥ १२२ ॥ व्यासके एक शिष्यसे उस राजाने पुराण सुना था। अतएव वह नन्दीशतीर्थकी स्पर्धावश सोदरादि तीर्थोंका सेवन करने लगा ॥ १२३ ॥ श्रीनगरमें ही यद्यपि उसने भगवान् ज्येष्ठेश्वरकी स्थापना थी। फिर भी सोदरादि तीर्थके विना उसके हृदयमें जागृत नन्दीशक्षेत्र-स्पर्धाका दूर होना सर्वथा असम्भव था ॥ १२४ ॥ उसके निवासस्थानसे सोदरतीर्थ बहुत दूर था। इस लिए एक दिन वह कार्यव्यग्रताके कारण वहाँ नहीं जा सका। इससे उसके हृदयको बड़ी ठेस पहुँची ॥ १२५ ॥ उसी समय अकस्मात् भूमिके भीतरसे सोदरतीर्थके सदृश निर्मल एवं मधुर जल निकलता दीखा ॥ १२६ ॥ एकाएक भूगर्भसे निकले उस पवित्र तीर्थजलमें स्नान करनेसे उसे सोदरतीर्थमें स्नान करनेके समान प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ १२७ ॥ एक बार परीक्षाके लिए उसने सोदरतीर्थमें एक सोनेकी झारी डाल दी। ढकन समेत वह झारी दो दिन बाद श्रीनगरके उसी नवीन तीर्थमें आ निकली। इससे राजाको निश्चय हो गया कि यह जल सोदरतीर्थका ही है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इससे सिद्ध हो गया कि वह राजा साक्षात् नन्दीश्वर था और भोग भोगनेके लिए धरतीपर आया था। अन्यथा ऐसे आश्चर्यजनक कार्य उसके द्वारा कैसे हो पाते ॥ १३० ॥ एक बार वह विजयेश्वरका दर्शन करने जा रहा था। बीच राहमें एक स्त्रीने उससे भोजन माँगा ॥ १३१ ॥ उसे राजाने जब यथेष्ट भोजन देनेकी प्रतिज्ञा की, तब उसने भयंकर रूप धारण करके नरमांस खानेकी इच्छा प्रकट की ॥ १३२ ॥ उस अहिंसाव्रती राजाने जब उसे अपने शरीरका मांस खानेकी आज्ञा दे दी, तब उसने कहा—॥ १३३ ॥ "हे राजन्! आप सत्यव्रतके पालक साक्षात् बोधिसत्त्व हैं।

बौद्धभाषामजानानो माहेश्वरतया नृपः । को बोधिसत्त्वो यं भद्रे मां वेत्सीति जगाद ताम् ॥१३५॥
पुनर्बभाषे सा भूपं श्रोतव्यं मत्प्रयोजनम् । अहं ह्युत्थापिता बौद्धैः क्रोधाद्विप्रकृतैस्त्वया ॥१३६॥
लोकालोकाद्रिपार्श्वस्थास्तामस्यः कृत्तिका वयम् । बोधिसत्त्वैकशरणाः काङ्क्षन्त्यस्तमसः क्षयम् ॥१३७॥
लोके भगवतो लोकनाथादारभ्य केचन । ये जन्तवो गतक्लेशा बोधिसत्त्वानवेहि तान् ॥१३८॥
सागसेऽपि न कुप्यन्ति क्षमया चोपकुर्वते । बोधिं स्वस्यैव नेष्यन्ति ते विश्वधरणोद्यताः ॥१३९॥
विहारतूर्यनिर्घोषैरुन्निद्रः प्रेरितः खलैः । पुरा भवान्व्यधात्क्रोधाद्विहारोद्दलनं यदा ॥१४०॥
महाशाक्यः स नृपतिर्न शक्यो बाधितुं त्वया । तस्मिन्दृष्टे तु कल्याणि भविता ते तमःक्षयः ॥१४१॥
अस्मद्गिरा प्रेरणीयो विहारकरणाय सः । दत्त्वा स्वहेमसंभारं त्वयाम लिनितः खलैः ॥१४२॥
तस्मिन्कृते न जायेत विहारच्छेदवैशसम् । तस्य तत्प्रेरकाणां च प्रायश्चित्तं कृतं भवेत् ॥१४३॥
क्रुद्धैर्बौद्धैरनुध्याता त्वद्वधाय प्रधाविता । अनुशिष्टा समाहूय बोधिसत्त्वैस्तदेत्यहम् ॥कुलकम्॥१४४॥
तस्मात्सत्त्वातिरेकस्ते मिषादेवं परीक्षितः । क्षीणपापाऽद्य संवृत्ता स्वस्ति ते साधयाम्यहम् ॥१४५॥
कृतप्रतिश्रवे राज्ञि विहारकृतये पुनः । प्रहर्षोत्फुल्लनयना कृत्यादेवी तिरोदधे ॥१४६॥
अथ कृत्याश्रमे कृत्वा विहारं वसुधाधिपः । तत्रैव क्षीणतमसं कृत्यादेवीमसंश्रयत् ॥१४७॥
विधाय सोऽश्मप्रसादं नन्दिक्षेत्रे क्षमापतिः । भूतेशाय क्षमां कोशैः पूजां रत्नमयीं ददौ ॥१४८॥
चीरमोचनतीर्थान्तर्गणरात्रं तपस्यता । ब्रह्मासननिविष्टेन ध्याननिःस्पन्दमूर्तिना ॥१४९॥
राज्ञा कनकवाहिन्याः सुचिरात्पुण्यकर्मणा । नन्दीशस्पर्शनोत्कण्ठा तेनानीयत कुण्ठताम् ॥१५०॥

हे महात्मन्! आज आपकी प्राणिमात्रपर दयाका महत्त्व मैंने देख लिया ॥ १३४ ॥ एक शैव होने तथा बौद्धभाषा न जाननेके कारण राजाको बोधिसत्त्व शब्दका अर्थ नहीं ज्ञात था। अतएव उसने पूछा—'हे भद्रे! बोधिसत्त्व कौन है? जिसे तू मुझको समझ रही है?' ॥ १३५ ॥ उसने कहा—'महाराज! अपना प्रयोजन बताती हूँ। मुझे आपके द्वारा परास्त होकर क्रुद्ध बौद्धोंने यहाँ भेजा है ॥ १३६ ॥ लोकालोक पर्वतके समीप रहनेवाली हम कृत्या है। उस पर्वतके समीपका सारा प्रदेश अन्धकाराच्छन्न रहता है। सो वहाँ हम अपने किये हुए दुष्कर्मजनित पापरूपी अंधकारसे मुक्त होनेके लिये बोधिसत्त्वकी सेवामें रहती हैं ॥ १३७ ॥ भगवान् बुद्धसे लेकर आजतक जितने महात्मा अविद्या-अस्मिता आदि क्लेशोंसे मुक्त हो चुके है, वे ही बोधिसत्त्व कहे जाते हैं ॥ १३८ ॥ वे बोधिसत्त्व अपराधियोंपर कभी क्रुद्ध नहीं होते, उनके अपराधोंको क्षमा कर देते हैं और उनका उपकार करते हैं। संसारका कल्याण ही वे अपना कर्तव्य समझते हैं ॥ १३९ ॥ एक दिन विहारमे बजाये गये वाद्योंसे आपकी निद्रा टूट गयी। अतएव कुछ दुष्टोंकी प्रेरणासे क्रुद्ध होकर आपने सभी विहारोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ॥ १४० ॥ इस कार्यसे क्रुद्ध बौद्धोंने आपका नाश करनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। यहाँ आते समय उन बोधिसत्त्वोंने कहा—'हे कल्याणी! वह राजा जलौक महाशाक्य है। अतएव उसे तू पीड़ा नहीं दे सकती। उसके दर्शनसे तेरे पापोंका अन्त हो जायगा और तुझे सद्गति प्राप्त होगी। उसके चित्तमे कुछ दुष्टोंने मालिन्य उत्पन्न कर दिया है। उसे अपने पासका संचित असंख्य सुवर्ण देकर तू हमारी आज्ञासे पुन विहार बनवानेकी सूचना दे देना। ऐसा करनेसे उसके तथा विहारके ध्वंसका अनुमोदन करनेवाले दुष्टोंके पापोंका मार्जन हो जायगा ॥ १४१ ॥ १४४ ॥ अतएव इस समय मैंने भोजन माँगकर आपके सत्त्वकी परीक्षा की थी। आपके दर्शनसे मेरा पाप नष्ट हो चुका है। आपका कल्याण हो। अब मैं जाती हूँ' ॥ १४५ ॥ वह कृत्या ऐसा कह और विहार बनवानेके लिये राजाकी प्रतिज्ञा सुनकर हर्षित होती हुई अदृश्य हो गयी ॥ १४६ ॥ तदनन्तर राजाने कृत्याश्रममे विहार बनवाकर उस निष्पाप कृत्या देवीकी आराधना आरम्भ कर दी ॥ १४७ ॥ इसी प्रकार नन्दीक्षेत्रमे भगवान् भूतेशका पाषाणमय तथा सुदृढ मन्दिर बनवाकर विविध प्रकारके रत्नोंसे उनका विधिवत् पूजन किया ॥ १४८ ॥ चीरमोचन तीर्थमें ब्रह्मासन लगा तथा ध्यानमग्न होकर कई दिनों तक तप करते हुए राजाने कनकवाहिनीके हृदय-

ह्लादोदयान्नृत्तगीतक्षणे नर्तितुमुत्थितम्। प्रददौ ज्येष्ठरुद्राय स्वावरोधवधूशतम् ॥१५१॥
भुक्त्वैश्वर्यं स पर्यन्ते प्रविष्टश्चीरमोचनम्। पत्न्या समं ययौ राजा सायुज्यं गिरिजापतेः ॥१५२॥
अथाशोककुलोत्पन्नो यद्वाऽन्याभिजनोद्भवः। भूमिं दामोदरो नाम जुगोप जगतीपतिः ॥१५३॥
ऋद्ध्या जाज्वलितस्योच्चैर्माहेश्वरशिखामणेः। अद्यापि श्रूयते यस्य प्रभावो भुवनाद्भुतः ॥१५४॥
हरप्रसादपात्रेण सच्चरित्रानुरागिणा। ववन्ध सुखिना सख्यं येन वैश्रवणः स्वयम् ॥१५५॥
कुवेर इव यो राज्ञामग्र्यः स्वाज्ञाविधायिनः। आदिश्य गुह्यकान्दीर्घं गुड्डसेतुमवन्धयत् ॥१५६॥
सूदे दामोदरीये यत्तस्यासीत्स्वकृतं पुरम्। सेतुना तेन तत्रैच्छत्कर्तुं सोऽम्भःप्रतारणम् ॥१५७॥
हितं लोकोत्तरं किंचिच्चिकीर्षोरुन्नतात्मनः। रोहन्ति हा धिक्प्रत्यूहा मितपुण्यतया नृणाम् ॥१५८॥
स हि कारयितुं यक्षैर्यतते स्म स्वमण्डले। दीर्घानश्मसमयान्सेतूंस्तोयविप्लवशान्तये ॥१५९॥
तपोविभूतयोऽचिन्त्या द्विजानामुग्रतेजसाम्। तादृशामपि ये कुर्युः प्रभावस्य विपर्ययम् ॥१६०॥
दायादादिवलैर्नष्टा दृष्टा भूयः समुत्थिता। श्रीर्विप्रावज्ञया राज्ञामपुनःसंभवा पुनः ॥१६१॥
श्राद्धार्थमुत्थितः स्नातुं द्विजैः कैश्चिद्वुभुक्षितैः। प्राक्स्नानाद्भोजनं राजा स कदाचिदयाच्यत ॥१६२॥
यियासुना वितस्तान्तर्यदा तेनावधीरितम्। तदा प्रभावात्ते तस्य तां धुनीमग्रतो व्यधुः ॥१६३॥
सेयं वितस्ता दृष्ट्वैनां भोजयास्मान्स तैरिति। उक्तोऽपि मायाविहितामज्ञासीत्सरिदाहृतिम् ॥१६४॥
भोज्यं ददामि नास्नातो विप्राः सर्पत सांप्रतम्। तेनेत्युक्तास्तमशपंस्ततः सर्पो भवेति ते ॥१६५॥
अशेषमेकेनैवाह्ना श्रुत्वा रामायणं तव। शापस्य शान्तिर्भवितेत्यूचिरे ते प्रसादिताः ॥१६६॥
स दामोदरसूदान्तर्दीर्घचन्द्रमुदन्यया। शापोष्णश्वासधूमेन जनैरद्यापि लक्ष्यते ॥१६७॥

से नन्दीशके स्वर्गकी उत्कण्ठा कुण्ठित कर दी। भगवान् ज्येष्ठेशकी पूजाके समय नृत्य करनेके लिये उसने नृत्य-गीत-कुशल अन्तःपुरकी सौ स्त्रियोंको नियुक्त किया था। इस प्रकार ऐश्वर्य भोगनेके वाद अपनी धर्मपत्नीके साथ चीरमोचन तीर्थमें अपना शरीर त्यागकर वह राजा जलौक शिवस्वरूपमे लीन हो गया॥ १४९–१५२॥ तदनन्तर अशोकवंशोत्पन्न अथवा अन्यवंशीय राजा दामोदर कश्मीरका राजा हुआ॥ १५३॥ शैवश्रेष्ठ तथा परम धनाढ्य उस तेजस्वी राजाका अद्भुत प्रभाव आज भी सुना जा रहा है॥ १५४॥ शंकरजीके कृपापात्र एवं सच्चरित्रानुरागी उस राजाके साथ स्वयं कुवेरने प्रसन्नतापूर्वक मित्रता की थी॥ १५५॥ राजाओंमे कुवेरके समान श्रेष्ठ उस भूपतिने अपने आज्ञाकारी यक्षोंको नियुक्त करके गुड्ड नामका एक सेतु (वॉध) वनवाया॥१५६॥ उसने दामोदरसूद प्रदेशमे एक नगर वसाया था, जहॉ उस सेतुके द्वारा वह जल पहुँचाना चाहता था॥ १५७॥ जनताके कल्याणार्थ कोई लोकोत्तर कार्य करनेवाले उदार पुरुषोंके कार्योंमें पुण्योंकी अल्पतावश अवश्य विघ्न आ उपस्थित होते हैं॥ १५८॥ अपने राज्यमे जलाभावके उपद्रवको दूर करनेके लिये वह राजा यक्षोंके द्वारा पाषाणमय दृढ सेतु वनवानेका प्रयत्न कर रहा था॥१५९॥ तपस्वी ब्राह्मणोंके तपकी विभूतियॉ अचिन्तनीय होती हैं। वे ब्राह्मण राजाके प्रभावको भी नष्ट कर सकते है॥ १६०॥ शत्रु द्वारा अपहृत राजलक्ष्मी कालान्तरमे फिर भी मिल सकती है, परन्तु ब्राह्मणोंके अपमानसे नष्ट सम्पदाका पुन मिलना दुर्लभ होता है॥ १६१॥ सो एक समय वह राजा श्राद्धके निमित्त वितस्ता नदीके तटकी ओर स्नान करने जा रहा था। इतनेमें वहुतसे भूखे ब्राह्मण उसके समीप आ धमके और स्नानके पहले ही भोजन मॉगने लगे॥ १६२॥ राजाने उनकी वातपर जव ध्यान नहीं दिया, तव अपने तपोवलसे उन्होंने वितस्ता नदी उसके सन्मुख लाकर उपस्थित कर दी॥ १६३॥ वे कहने लगे—"राजन्! यही वितस्ता नदी है। इसे देखकर हमें भोजन प्रदान करिए।" उनके यह कहनेपर भी राजाने इस घटनाको जादूका खेल समझा और उसने कहा—'मैं स्नान किये विना आप लोगोंको भोजन नहीं दे सकता। आप यहॉसे चले जाइये।' राजाके इन तिरस्कारपूर्ण वचनोंको सुनकर ब्राह्मणोंने क्रोधसे शाप दे दिया कि 'तू सर्प हो जा'॥१६४॥१६५॥ वादमें राजाकी विनम्र प्रार्थनासे प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि 'एक दिनमें सम्पूर्ण रामायण

अथाभवन्स्वनामाङ्कपुरत्रयविधायिनः । हुष्कजुष्ककनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रैव पार्थिवाः ॥१६८॥
स विहारस्य निर्माता जुष्को जुष्कपुरस्य यः । जयस्वामिपुरस्यापि शुद्धधीः संविधायकः ॥१६९॥
ते तुरुष्कान्वयोद्भूता अपि पुण्याश्रया नृपाः । शुष्कलेत्रादिदेशेषु मठचैत्यादि चक्रिरे ॥१७०॥
प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां प्रायः कश्मीरमण्डलम् । भोज्यमास्ते स्म बौद्धानां प्रव्रज्योर्जिततेजसाम् ॥१७१॥
तदा भगवतः शाक्यसिंहस्य परनिर्वृतेः । अस्मिन्महीलोकधातौ सार्धं वर्षशतं ह्यगात् ॥१७२॥
बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन्नेको भूमीश्वरोऽभवत् । स च नागार्जुनः श्रीमान्षडर्हद्वनसंश्रयी ॥१७३॥
अथ निष्कण्टको राजा कण्टकोत्साग्रहारदः । अभीर्बभूवाभिमन्युः शतमन्युरिवापरः ॥१७४॥
स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्कशेखरं विरचय्य सः । परार्ध्यविभवं श्रीमानभिमन्युपुरं व्यधात् ॥१७५॥
चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वा देशात्तस्मात्तदागमम् । प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतम् ॥१७६॥
तस्मिन्नवसरे बौद्धा देशे प्रबलतां ययुः । नागार्जुनेन सुधिया बोधिसत्त्वेन पालिताः ॥१७७॥
ते वादिनः पराजित्य वादेन निखिलान्बुधान् । क्रियां नीलपुराणोक्तामच्छिन्दन्नागमद्विषः ॥१७८॥
मण्डले विप्लुताचारे विच्छिन्नबलिकर्मभिः । नागैर्जनक्षयश्चक्रे प्रभूतहिमवर्षिभिः ॥१७९॥
हिमान्यां बौद्धबाधाय पतन्त्यां प्रतिवत्सरम् । शीते दार्वाभिसारादौ षण्मासान्पार्थिवोऽवसत् ॥१८०॥
तदा प्रभावः कोऽप्यासीद्बलिहोमविधायिनः । नानश्यन्यद्द्विजाढ्याग्र्या बौद्धाश्च निधनं गताः ॥१८१॥
नीलमुद्दिश्य देशस्य रक्षितारमहीश्वरम् । काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यस्तपस्तेपे ततो द्विजः ॥१८२॥
तस्य प्रत्यक्षतां यातो नीलस्तुहिनविप्लवम् । न्यवारयज्जगादापि स्वपुराणविधिं पुनः ॥१८३॥

सुननेपर तुम्हें शापसे मुक्ति मिल जायगी' इस प्रकार उन्होंने शापका प्रतीकार बतलाया ॥ १६६ ॥ तदनुसार आज भी वह शापग्रस्त राजा प्याससे घबराकर दामोदर सूदमें इधर-उधर घूमता और गरम श्वास लेता हुआ लोगोंको दिखलाई देता है ॥ १६७ ॥ राजा दामोदरके बाद हुष्क, जुष्क और कनिष्क नामके तीन राजे हुए। अपने नामके अनुसार उन्होंने हुष्कपुर, जुष्कपुर तथा कनिष्कपुर नामके तीन नगर बसाये ॥ १६८ ॥ उनमेंसे जुष्कने जुष्कपुर एवं जयस्वामिपुरमें बहुतेरे विहार बनवाये ॥ १६९ ॥ ये तीनों राजे तुरुष्क होते हुए भी बड़े पुण्यवान् थे। उन्होंने शुष्कलेत्रादि क्षेत्रोंमें अनेक मठों एवं चैत्योंका निर्माण कराया ॥ १७० ॥ उस समय धन-धान्यपरिपूर्ण काश्मीरमण्डलमें प्रव्रज्याके तेजसे जाज्वल्यमान बौद्धभिक्षुओंका प्राधान्य था ॥ १७१ ॥ उस समय शाक्यसिंह अर्थात् भगवान् बुद्धके निर्वाणको डेढ़ सौ वर्ष बीते थे ॥ १७२ ॥ बोधिसत्त्वोंके इस देशमें षडर्हद्वननिवासी नागार्जुन भी सर्वेश्वर तथा बोधिसत्त्व माना जाता था ॥ १७३ ॥ तदुपरान्त इन्द्र जैसा तेजस्वी, निष्कंटक और निर्भय अभिमन्यु नामका राजा कश्मीर देशका पालन करने लगा। उसने कण्टकोत्स नामका अग्रहार ब्राह्मणोंको दान दिया था ॥ १७४ ॥ उस श्रीमान् राजाने अपने नामसे अभिमन्युपुर नामक नगर बसाकर उसमें भगवान् शंकरका परम वैभवसम्पन्न मन्दिर भी बनवाया ॥ १७५ ॥ उसकी आज्ञासे चन्द्राचार्य्य आदि महान् पण्डितोंने लुप्तप्राय व्याकरण-महाभाष्यका पुनः प्रचार किया और अपने नामसे उसने चान्द्र व्याकरण रचा ॥ १७६ ॥ बोधिसत्त्व एवं विद्वान् नागार्जुनके द्वारा रक्षित बौद्ध देश भरमें उस समय अत्यन्त प्रबल हो उठे थे ॥ १७७ ॥ उन वेदद्वेषी बौद्धोंने शास्त्रार्थमें बड़े-बड़े वादियोंको परास्त करके नीलमतपुराणके सिद्धान्तोंको उच्छिन्न कर दिया ॥ १७८ ॥ इससे उस सदाचारहीन देशमें बलिदान-पूजा आदि शास्त्रोक्त कर्मोंके लुप्त हो जानेके कारण नागोंने क्रुद्ध होकर वर्फ बरसाते हुए प्रजाका संहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १७९ ॥ वह राजा शीतकालमें छः महीने तक बौद्धोंका विनाश करनेके लिये भीषण हिमपात होनेके कारण दार्वाभिसार प्रान्तमें रहने लगा ॥ १८० ॥ उस समय भी बलिदान एवं होमादि धार्मिक कृत्य करनेवाले ब्राह्मणोंका अपने सत्कर्मके प्रभावसे विनाश नहीं होता था और बौद्ध मरते जाते थे ॥ १८१ ॥ उन्हीं दिनों काश्यपगोत्रीय चन्द्रदेव नामका एक ब्राह्मण कश्मीर देशके रक्षक नील नामके नागराजको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करने लगा ॥ १८२ ॥

आद्येन चन्द्रदेवेन शमितो यक्षविप्लवः । द्वितीयेन तु देशेऽस्मिन्दुःसहो भिक्षुविप्लवः ॥१८४॥
राजा तृतीयो गोनन्दः प्राप्तो राज्ये तदन्तरे । यात्रायागादि नागानां प्रावर्तयत पूर्ववत् ॥१८५॥
राज्ञा प्रवर्तिते तेन पुनर्नीलोदिते विधौ । भिक्षवो हिमदोषाश्च सर्वतः प्रशमं ययुः ॥१८६॥
काले काले प्रजापुण्यैः संभवन्ति महीभुजः । यैर्मण्डलस्य क्रियते दूरोत्सन्नस्य योजनम् ॥१८७॥
ये प्रजापीडनपरास्ते विनश्यन्ति सान्वयाः । नष्टं तु ये योजयेयुस्तेषां वंशानुगाः श्रियः ॥१८८॥
इत्येतत्प्रतिवृत्तान्तं देशेऽस्मिन्वीक्ष्य लक्षणम् । भाविनां भूमिपालानां प्राज्ञैर्ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥१८९॥
नवीकृतवतो देशं तस्य वंश्यैरियं मही । सिद्धैः प्रवरसेनाद्यैश्चिरं भुक्ता सुकर्मभिः ॥१९०॥
गोनन्दान्वयिनामाग्र्यः स रघूणां रघुर्यथा । नृपतिः काश्यपीं वर्षान्पञ्चत्रिंशतिमन्वशात् ॥१९१॥
वर्षषष्टिं सषण्मासैः षड्भिर्वर्षैर्विवर्जिताम् । विभीषणाभिधोऽरक्षत्क्षितिं गोनन्दनन्दनः ॥१९२॥
इन्द्रजिद्रावणाख्याभ्यां पितापुत्रौ नृपौ क्रमात् । पञ्चत्रिंशत्सहार्धाश्च वर्षांस्त्रिंशद्द्वयोर्ययुः ॥१९३॥
बिन्दुरेखाच्छविर्यस्य दृष्टा भाव्यर्थशंसिनी । स रावणस्य पूजार्थं लिङ्गं भाति वटेश्वरः ॥१९४॥
चतुःशालमठस्यान्तःकृतायादायि भूभुजा । वटेश्वराय निखिलं तेन कश्मीरमण्डलम् ॥१९५॥
पञ्चत्रिंशतमब्दानां क्ष्मां बुभोज महाभुजः । रावणक्षोणिभृत्सूनुः सार्धांसमन्यो विभीषणः ॥१९६॥
किन्नराख्यनामाय किन्नरैर्गीतविक्रमः । विभीषणस्य पुत्रोऽभून्नरनामा नराधिपः ॥१९७॥
सदाचारोऽपि स नृपः प्रजाभाग्यविपर्ययैः । व्यधाद्विषयदोषेण महाऽनर्थपरंपराम् ॥१९८॥
विहारे निवसन्नेकः किन्नरग्रामवर्तिनि । तस्य योगबलात्कोऽपि श्रमणोऽपाहरत्प्रियाम् ॥१९९॥

उसके तपसे प्रसन्न होकर नीलनागने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। साथ ही हिमपातका उपद्रव शान्त करके उसने नीलमत-पुराणोक्त विधि बतायी ॥ १८३ ॥ पहलेवाले विद्वान चन्द्रदेवने यक्षोंका उत्पात शान्त किया था और इस दूसरे चन्द्रदेवने बौद्ध भिक्षुओंकी बाधा शान्त की ॥ १८४ ॥ अभिमन्युके बाद तृतीय गोनन्द नामका राजा कश्मीरका शासक हुआ। उसने पहलेकी तरह नागपूजन, नागयज्ञ, नाग-यात्रा आदि नागोंका उत्सव प्रारम्भ कर दिया ॥ १८५ ॥ राजा तृतीय गोनन्दके द्वारा नीलमत-पुराणोक्त विधिसे धार्मिक कार्योंके प्रारम्भ कर देनेपर बौद्ध-बाधा और हिम-बाधा दोनों ही नष्ट हो गयीं ॥ १८६ ॥ इसी तरह समय-समयपर देशमें ऐसे पुण्यात्मा राजे उत्पन्न होते रहते हैं और उनके प्रभावसे प्रजाके क्लेश दूर हो जाते हैं ॥ १८७ ॥ जो राजे अपनी प्रजाको सताते हैं, वे सपरिवार नष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत जो पिछड़े हुए राष्ट्रमें सुख-शान्तिकी स्थापना करते हैं, उनकी राजलक्ष्मी कई पीढ़ियों तक स्थिर रहती है ॥ १८८ ॥ इस प्रकार कश्मीरके पुरातन राजाओंके इतिहाससे लोग उनकी विशेषताओंको समझें और भावी राजाओंके शुभाशुभका निर्णय करें ॥१८९॥ नवीन प्रकारके सुधारोंसे देशकी उन्नति करनेवाले राजा गोनन्दके वंशज प्रवरसेन आदि राजाओंने अपने सत्कर्मोंके प्रभावसे चिरकाल तक वसुन्धराके ऐश्वर्यका सुख भोगा ॥ १९० ॥ इस तरह रघुवंशियोंमें रघुके समान उद्योगी और अपने वंशजोंमें मूर्धन्य उस प्रतापशाली राजाने पैंतीस वर्षतक पृथ्वीपर शासन किया ॥ १९१ ॥ तदनन्तर उसका पुत्र विभीषण तिरपन वर्ष छः महीने तक कश्मीर देशका शासक रहा ॥ १९२ ॥ विभीषणके बाद उसके पुत्र इन्द्रजीतने पैंतीस वर्षतक कश्मीरपर राज किया। उसके बाद उसका पुत्र रावण सैंतीस वर्षतक पृथ्वीका शासक रहा ॥ १९३ ॥ राजा रावण वटेश्वर नामके शिवलिंगका नित्य पूजन करता था। उस लिंगकी रेखाओं तथा बिन्दुओं से ही भावी शुभाशुभका ज्ञान हो जाता था ॥ १९४ ॥ कालान्तरमें राजा रावणने उस शिवलिंगको चतुःशाल मठमें स्थापित करके सारा कश्मीर-राज्य उसे अर्पित कर दिया ॥ १९५ ॥ उसके बाद सुदृढ़ भुजाओंवाला रावण-का पुत्र द्वितीय विभीषण पृथ्वीका शासन करने लगा। उसने पैंतीस वर्ष छः महीने तक राज्य-कार्य किया ॥ १९६ ॥ उसके दिवंगत होनेपर उसका पुत्र किन्नर कश्मीर देशका राजा बना। युद्धमें किये हुए उसके अद्भुत पराक्रम किन्नरों द्वारा गाये जाते थे ॥१९७॥ पहिले अत्यन्त सदाचारी होते हुए भी राजा किन्नर आगे चलकर प्रजाके दुर्भाग्यवश

विहाराणां सहस्राणि तत्कोपान्निर्ददाह सः । अजिग्रहच्च तद्ग्रामान्द्विजैर्मध्यमठाश्रयैः ॥२००॥
ऋद्धापणं राजपथैर्नौयानोज्ज्वलनिम्नगम् । स्फीतपुष्पफलोद्यानं स्वर्गस्येवाभिधान्तरम् ॥२०१॥
दिग्जयोपार्जितैर्वित्तैर्जितवित्तेशपत्तनम् । वितस्तापुलिने तेन नगरं निरमीयत ॥ युग्मम् ॥२०२॥
तत्रैकस्मिन्किलोद्याने स्वच्छस्वादुजलाञ्चितम् । आसीत्सुश्रवसो नाम्नो नागस्य वसतिः सरः ॥२०३॥
कदाचित्तस्य दूराध्वक्लान्तो मध्यंदिने युवा । छायार्थी तत्सरःकच्छं विशाखाख्योऽविशद्द्विजः ॥२०४॥
सच्छायपादपतले समीरैः शमितक्लमः । शनैर्जलमुपस्पृश्य भोक्तुं सक्तून्प्रचक्रमे ॥२०५॥
तान्पाणौ गृह्णतैवाथ तेन तीरविहारिभिः । पूर्वमाकर्णितो हंसैः शुश्रुवे नूपुरध्वनिः ॥२०६॥
निर्गते मञ्जरीकुञ्जादपश्यत्पुरतस्ततः । कन्ये नीलनिचोलिन्यौ स केचिच्चारुलोचने ॥२०७॥
कर्णिकापद्मरागाब्जनालनीलायितस्पृशा । मनोज्ञधवलापाङ्गे तनीयोऽञ्जनरेखया ॥२०८॥
हारिनेत्राञ्चलैर्मन्दमारुतान्दोलनाकुलैः । सनाथांसयुगे रूपपताकापल्लवैरिव ॥ तिलकम् ॥२०९॥
ते शशाङ्कानने दृष्ट्वा शनैरभ्यर्णमागते । विररामाशनारम्भान्मुहुर्व्रीडाजडीकृतः ॥२१०॥
भुञ्जाने कच्छगुच्छानां शिम्बीरम्बुजलोचने । ते पुनर्दृष्टवानग्रे किंचिद्व्यापारितेक्षणः ॥२११॥
आकृतेर्हा धिगीदृश्या भोज्यमेतदिति द्विजः । ध्यायन्कृपार्द्रः संमान्य स ते सक्तूनभोजयत् ॥२१२॥
उपनिन्ये च संगृह्य पुटकैश्चटसीकृतैः । तयोः पानाय पानीयं सरसः स्वच्छशीतलम् ॥२१३॥
आचान्ते शुचितां प्राप्ते कृतासनपरिग्रहे । ततश्च वीजयन्पर्णतालवृन्तैरभापत ॥२१४॥
भवत्यौ पूर्वसुकृतैः कैश्चित्संप्राप्तदर्शनः । चापलाद्विप्रसुलभात्प्रष्टुमिच्छत्ययं जनः ॥२१५॥

विपयलम्पट होकर अनेक प्रकारके महान् अनर्थ करने लगा ॥ १९८ ॥ जिसका कारण यह था कि किन्नरपुरके विहारमें रहनेवाले एक वौद्ध भिक्षुने जादूके जोरसे उसकी स्त्रीका अपहरण कर लिया ॥ १९९ ॥ अतएव क्रुद्ध होकर उसने सैकड़ों वौद्ध विहार जला डाले और उन विहारोंको दानरूपमें दिये हुए गाँव छीन लिये ॥ २०० ॥ वीर राजा किन्नरने दिग्विजय करके एकत्रित किये हुए पुष्कल धनसे वितस्ता नदीके किनारे वड़ी-वड़ी सड़कोंसे सुसज्जित एवं विविध उद्यानोंसे विभूपित एक नवीन और समृद्ध नगर वसाया ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ उसी नगरके किसी उद्यानमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण एक तालाव था। जिसमें सुश्रवा नामका एक नाग रहा करता था ॥ २०३ ॥ एक दिन दूरतक चलनेके कारण थका हुआ विशाख नामका एक तरुण ब्राह्मण दोपहरके समय वृक्षकी सघन छायामें सुस्तानेके लिये सरोवरके तीरपर उस वगीचेमें जाकर वैठ गया ॥ २०४ ॥ वहाँ वैठनेसे उसकी थकावट दूर हो गयी। तदनन्तर हाथ-मुँह धोकर वह सत्तू खाने लगा ॥ २०५ ॥ सत्तूके ग्राससे युक्त हाथको ज्यों ही उसने मुँहकी ओर वढाया, त्यों ही जलनिवासी हंसोंकी ध्वनिकी भाँति श्रुतपूर्व सुमधुर नूपुरोंकी ध्वनि सुनी ॥ २०६ ॥ तदनन्तर उसने समीपके ही लताकुञ्जसे निकलती तथा नील वस्त्रोंसे सुसज्जित एवं अपने सुन्दर नेत्रोंसे चारो ओर देखती हुई दो अत्यन्त सुन्दरी नागकन्याएँ देखीं ॥ २०७ ॥ काजलकी रेखासे उनके नेत्र वड़े ही सुन्दर दीख रहे थे। वे कर्णपाशमें सुशोभित माणिक्यजटित आभूपणस्वरूप कमलोंको नेत्रनिर्गत कटाक्ष द्वारा मृणालनालकी शोभासे संयुक्त कर रहे थे ॥ २०८ ॥ मन्द-मन्द पवनसे हिलते हुए नेत्रांचल उनके स्कन्धोंपर पताकाकी शोभा धारण किये हुए थे ॥ २०९ ॥ उन अनुपम सुन्दरियोंको देखते ही वह तरुण ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने भोजन त्याग दिया ॥२१०॥ तभी वे नागकन्याएँ तृणधान्य (तिन्नी) की वाले खाने लगीं। यह देखकर उस ब्राह्मणको वड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन-ही-मन कहने लगा—॥२११॥ 'अहो! इस अप्रतिम सौन्दर्यके लिये यह दरिद्र भोजन? 'उसने कहा—धिक्! यह वड़ी ही आश्चर्यजनक घटना है'। उसके पश्चात् दयार्द्रभावसे उसने उन्हें वुलाकर सत्तू खिलाया और पत्तोंके दोनेमें निर्मल जल लाकर पिलाया ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ जव वे खा-पीकर वैठ गयीं। तव कमलके पत्तोंसे उनको हवा करता हुआ वह वोला—॥ २१४ ॥ 'अपने पूर्वजन्मोंके किसी सुकृतसे आपका दर्शन पानेवाला यह दास ब्राह्मणसुलभ चपलतासे प्रेरित होकर कुछ पूछना चाहता है ॥ २१५ ॥

कल्याणिनीभ्यां कतमा पुण्या जातिः परिष्कृता । कुत्र वा क्रान्तमेतादृग्विरसं येन भुज्यते ॥२१६॥
एका तमूचे विद्ध्यावामस्य सुश्रवसः सुते । स्वादु भोक्तव्यमप्राप्तं किमीदृङ्नोपभुज्यते ॥२१७॥
पित्रा विद्याधरेन्द्राय प्रदातुं परिकल्पिता । इरावत्यहमेषा च चन्द्रलेखा यवीयसी ॥२१८॥
पुनर्द्विजोऽभ्यधादेवं नैष्किंचन्यं किमस्ति वः । ताभ्यामवादि तातोऽत्र हेतुं वेत्ति स पृच्छ्यताम् ॥२१९॥
ज्येष्ठेऽत्र कृष्णद्वादश्यां यात्रायै तक्षकस्य तम् । आगतं चूडया तोयस्यन्दिन्या ज्ञास्यसि ध्रुवम् ॥२२०॥
द्रक्ष्यस्यावामपि तदा तदभ्यर्णकृतस्थिती । इत्युक्त्वा फणिकन्ये ते क्षणादास्तां तिरोहिते ॥२२१॥
क्रमात्प्रववृते सोऽथ नटचारणसंकुलः । प्रेक्षिलोकसमाकीर्णस्तत्र यात्रामहोत्सवः ॥२२२॥
द्विजोऽपि कौतुकाकृष्टः पर्यटन्नङ्गमञ्जसा । कन्योक्तचिह्नज्ञातस्य नागस्यान्तिकमाययौ ॥२२३॥
पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां पूर्वमावेदितोऽथ सः । द्विजन्मने व्याजहार स्वागतं नागनायकः ॥२२४॥
ततः कथान्तरे क्वापि पृष्टः कारणमापदाम् । जगाद तं द्विजन्मानं निःश्वस्य श्वसनाशनः ॥२२५॥
अभिमानवतां ब्रह्मन् युक्तायुक्तविवेकिनाम् । युज्यतेऽवश्यभोग्यानां दुःखानामप्रकाशनम् ॥२२६॥
परदुःखं समाकर्ण्य स्वभावसुजनो जनः । उपकारासमर्थत्वात्प्राप्नोति हृदयव्यथाम् ॥२२७॥
वृत्तिं स्वां बहु मन्यते हृदि शुचं धत्तेऽनुकम्पोक्तिभिर्व्यक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वन्स्तुतीरात्मनः ।
गर्ह्योपायनिषेवणं कथयति स्थास्नुं वदन्व्यापदं श्रुत्वा दुःखमरुंतुदां वितनुते पीडां जनः प्राकृतः ॥२२८॥
अत एव विवेक्तॄणां यावदायुः स्वमानसे । जीर्णानि सुखदुःखानि दहत्यन्ते चितानलः ॥२२९॥
कः स्वभावगभीराणां लक्षयेद्बहिरापदम् । बालापत्येन भृत्येन यदि सा न प्रकाश्यते ॥२३०॥

अपने पवित्र जन्मसे आपने कौन जाति अलंकृत की है ? और फिर ऐसी नीरस वस्तु आप क्यों खा रही थीं ?" उस ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर उनमेंसे एक बोली—'हम सुश्रवा नागकी पुत्री हैं । अच्छा भोजन यदि न मिले तो क्या ऐसी वस्तु भी न खायी जाय ? ॥२१६॥२१७॥ मेरा नाम इरावती है । पिताजीने मुझे चक्रवर्ती विद्याधरको देनेका संकल्प किया है । मेरी इस छोटी बहिनका नाम चन्द्रलेखा है' ॥ २१८ ॥ ब्राह्मणने पूछा—'आपलोग ऐसी गरीब क्यों हैं ?' नागकन्याने कहा—"इसका कारण हमारे पिताको ज्ञात है । अतएव आप उन्हींसे पूछिये । वे आपको अवश्य बतला देंगे ॥ २१९ ॥ ज्येष्ठ कृष्णपक्ष द्वादशी तिथिको तक्षक नागकी यात्रामें वे यहाँ आयेंगे । उनके मस्तकसे सर्वदा जलधारा बहती रहती है । इसी चिह्नसे आप उन्हें पहिचान लेंगे ॥ २२० ॥ उस समय हमें भी आप उनके पास देखेंगे' । यह कहकर तत्काल वे नागकन्याएँ अन्तर्धान हो गयीं ॥ २२१ ॥ कुछ दिन बीतनेके बाद नट-चारण आदि पुरुषोंसे व्याप्त एवं दर्शकोंकी भीड़से भरा तक्षक नागका यात्रामहोत्सव प्रारम्भ हुआ ॥ २२२ ॥ उस उत्सवमें घूमता हुआ कुतूहलाकृष्ट वह तरुण ब्राह्मण भी नाग-कन्याओंके बताये चिह्नसे सुश्रवा नागका परिचय पाकर उसके पास जा पहुँचा ॥ २२३ ॥ अपने पास ही खड़ी कन्याओं द्वारा ब्राह्मणका वृत्तान्त सुनकर नागराजने बड़े आदरके साथ उसका स्वागत किया ॥ २२४ ॥ तदनन्तर वार्ताके प्रसंगमें ब्राह्मणने उस नागसे विपत्तिका कारण पूछा । तब लम्बी साँस लेकर नाग अपना वृत्तान्त बताने लगा ॥ २२५ ॥ उसने कहा—हे विप्र ! भलाई-बुराई सोचनेवाले स्वाभिमानी पुरुष अपना अनिवार्य्य दुःख किसीके भी सम्मुख नहीं प्रकट करते ॥ २२६ ॥ दूसरोंका दुःख सुनकर स्वभावतः सज्जन उसका प्रतीकार करनेमें असमर्थ होनेपर अतिशय हार्दिक वेदनाका अनुभव करने लगते हैं ॥ २२७ ॥ साधारण श्रेणीके पुरुष उन दुखियोंकी करुण गाथा सुनकर अपनेको उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझ बैठते है । वे दयाका प्रदर्शन करते हुए भी उनके क्लेशको बढ़ा देते हैं । वे उनकी निन्दा करते हैं और दुःख-निवृत्तिके लिये उन्हें कुत्सित कार्योंमें लगाते हैं और आपत्तिकी स्थिरता दिखलाकर वे उनके क्लेशको दूना कर देते है ॥ २२८ ॥ इस कारण विचारवान् पुरुषोंके दुःख जीवनभर हृदयमें छिपे रहकर चिताकी आगमें जलकर शान्त हो जाते हैं ॥ २२९ ॥ गम्भीर प्रकृतिवाले पुरुषोंकी विपत्तियोंको भला कौन जान सकता है ? हाँ, यदि छोटा बालक अथवा मूर्ख सेवक उसे प्रकट न कर दे ॥ २३० ॥

तदस्मिन्नेतयोर्बाल्याद्वस्तुनि व्यक्तिमागते । तत्राग्रे गोपनं साधो न ममाप्युपपद्यते ॥२३१॥
त्वयाप्यस्मद्धितार्थाय निसर्गसरलात्मना । ईषत्प्रयासः कल्याणिन्क्रियतां यदि शक्यते ॥२३२॥
योऽयं तरुतले मुण्डश्चूडालो दृश्यते व्रती । अमुना सस्यपालेन कान्दिशीकाः कृता वयम् ॥२३३॥
अभुक्ते मान्त्रिकैरन्ने नवे नागैर्न भुज्यते । अयं नात्ति च तत्तेन समयेन हता वयम् ॥२३४॥
क्षेत्राणि रक्षत्येतस्मिन्दृष्ट्वापि फलसंपदम् । भोक्तुं नैव समर्थाः स्मः प्रेता इव सरिज्जलम् ॥२३५॥
तथा कुरु यथा भ्रश्येत्समयादेष नैष्ठिकः । योग्यां प्रतिक्रियां विद्मो वयमप्युपकर्तृषु ॥२३६॥
स तथेति ततो नागमुक्त्वा यत्नपरो द्विजः । अचिन्तयद्दिवारात्रं सस्यपालस्य वञ्चनाम् ॥२३७॥
गूढं तस्य बहिःक्षेत्रकुटीगर्भकृतस्थितेः । पच्यमानान्नभाण्डान्तर्नवान्नं न्यक्षिपत्ततः ॥२३८॥
भुञ्जान एव तत्तस्मिन्क्षणादेव जहार सः । अहीन्द्रः करकासारवर्षी स्फीतां फलश्रियम् ॥२३९॥
तं च व्युत्क्रान्तदारिद्र्यः सरसोऽभ्यर्णमागतम् । कृतोपकारमन्येद्युर्निजोर्वीमनयद्द्विजम् ॥२४०॥
स तत्र पितुरादेशात्कन्याभ्यां विहितार्हणः । अमर्त्यसुलभैर्भोगैरतोष्यत दिने दिने ॥२४१॥
कालेन सर्वानामन्त्र्य स्वां भुवं गन्तुमुद्यतः । प्रतिश्रुतवरं नागं चन्द्रलेखामयाचत ॥२४२॥
संबन्धायोग्यमपि तं कृतज्ञत्ववशंवदः । संविभेजे स भुजगः कन्यया च धनेन च ॥२४३॥
एवं नागवरावाप्तश्रियस्तस्य द्विजन्मनः । महान्नरपुरे कालस्तैस्तैर्नित्योत्सवैर्ययौ ॥२४४॥
भुजगेन्द्रतनूजापि तं पतिं पतिदेवता । अतोपयत्परार्ध्यश्रीः गोलाचारादिभिर्गुणैः ॥२४५॥
तस्यां कदाचित्सौधाग्रस्थितायां प्राङ्गनाद्बहिः । आतपायोज्झितं धान्यं बुभुजे विहरन्हयः ॥२४६॥

इन कन्याओंकी बाल-सुलभ सरलतासे आपने मेरी स्थिति जान ली है । अतएव हे साधो ! मैं भी आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहता ॥ २३१ ॥ हमारे हितके लिये आप कुछ कर सकते हों तो परोपकारकी दृष्टिसे आप जैसे सरल-स्वभाव पुरुषको अवश्य करना चाहिये ॥ २३२ ॥ उधर उस वृक्षके नीचे तपस्वीके समान जो जटाधारी पुरुष बैठा है, उसीने हमें महान् दुःख दे रक्खा है ॥ २३३ ॥ मान्त्रिक जबतक नया अन्न नहीं खाते, तबतक नाग भी नवीन अन्नको नहीं खा सकते । यह नया अन्न नहीं खाता, इसी कारण हम दु खी रहते हैं ॥ २३४ ॥ जैसे प्रेत नदीके स्वच्छ जलको देखकर भी उसे नहीं पी पाता, उसी प्रकार इसे खेतकी रक्षा करते देखकर हम नवीन अन्नसे परिपूर्ण खेतोंको सामने देख करके भी वह अन्न खानेमें सर्वथा असमर्थ रहते हैं ॥ २३५ ॥ अतएव आप ऐसा कोई उपाय कीजिये कि जिससे वह व्रती अपने व्रतसे भ्रष्ट हो जाये । हे महात्मन् ! हम उपकारका प्रत्युपकार करना भली भाँति जानते हैं ॥ २३६ ॥ वह ब्राह्मण भी नागसे "तथास्तु" कहकर उस मांत्रिकको व्रतभ्रष्ट करनेके लिये योग्य अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३७ ॥ किसी समय अवसर पाकर उस ब्राह्मणने खेतपर रहनेवाले उस मांत्रिकके रन्धनपात्रमें गुप्तरीतिसे नया अन्न छोड़ दिया ॥ २३८ ॥ इस प्रकार उसके नवान्न खा लेनेसे व्रत भंग देखकर नागराजने ओले बरसाकर उसके खेतका सब अन्न नष्ट कर डाला ॥ २३९ ॥ इस प्रकार दारिद्र्यमुक्त नागराज ब्राह्मणके उपकारसे प्रसन्न होकर उसे सरोवरके मार्गसे अपने घर ले गया ॥ २४० ॥ वहाँ पिताके आदेशसे वे दोनों नाग-कन्यायें बड़े आदरपूर्वक मानवदुर्लभ दिव्य उपभोगोंसे उस ब्राह्मणका प्रतिदिन सत्कार करने लगीं ॥ २४१ ॥ कुछ समय बीतनेके बाद वह ब्राह्मण अपने घर जानेको उद्यत हुआ । तब नागराज सुश्रवाने उससे वरदान माँगनेका आग्रह किया । इसपर ब्राह्मणने उसकी कन्या चन्द्रलेखाकी याचना की ॥ २४२ ॥ यद्यपि उस विप्रके साथ कन्याका सम्बन्ध सर्वथा अनुचित था । फिर भी उसका उपकार स्मरण करते हुए नागराजने उसको अपनी कन्या दे दी और उसके साथ ही बहुत सा धन भी प्रदान किया ॥ २४३ ॥ तदनन्तर वहाँसे नरपुरमें आकर वह नागराजकी कृपासे अनेक प्रकारके उत्सवपूर्ण सुख भोगने लगा ॥ २४४ ॥ वह पतिपरायणा नागकन्या भी अपने सदाचारसे सदा पतिको प्रसन्न रखने लगी ॥ २४५ ॥ एक समय वह अपने भवनकी अट्टालिकापर खड़ी थी । तभी धूपमें सूखते हुए अन्नको एक अश्व खाने लगा

तं वारयितुमाहूता भृत्या नासन्गृहे यदा । शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरा सा तदाऽवातरत्स्वयम् ॥२४७॥
एकहस्तधृतावेगस्रस्तशीर्षांशुकान्तया । तया पाणिसरोजेन धावित्वा सोऽथ ताडितः ॥२४८॥
भोज्यमुत्सृज्य यातस्य फणिस्त्रीस्पर्शतस्ततः । सौवर्णी पाणिमुद्राङ्गे तुरगस्योदपद्यत ॥२४९॥
तस्मिन्काले नरो राजा चारैस्तां चारुलोचनाम् । श्रुत्वा द्विजवधूं तस्थौ प्रागेवाङ्कुरितस्मरः ॥२५०॥
तस्य धावन्तमुन्मत्तमन्तःकरणवारणम् । बलान्नियमितुं नासीदपवादभयाङ्कुशः ॥२५१॥
तस्मिन्नुद्वृत्तरागाग्निविप्लवे भूपतेः पुनः । उवाह हयवृत्तान्तो दृप्तवातानुकारिताम् ॥२५२॥
चक्रे पर्यस्तमर्यादः सरलाङ्गुलिशोभिना । स काञ्चनकराङ्केन शशाङ्केनेव वारिधिः ॥२५३॥
व्रीडानिगडनिर्मुक्तो दूतैराकूतशंसिभिः । तामुपच्छन्दयन्सोऽथ सुन्दरीमुदवेजयत् ॥२५४॥
सर्वोपायैरसाध्यां च विप्रस्तत्पतिरप्यसौ । तेनायाच्यत लुब्धेन रागान्धानां कुतस्त्रपा ॥२५५॥
अथ निर्भर्त्सनां तस्मादपि प्राप्तवताऽसकृत् । हठेन हर्तुं तां राज्ञा समादिश्यन्त सैनिकाः ॥२५६॥
तैर्गृहाग्रे कृतास्कन्दो निर्गत्यान्येन वर्त्मना । त्राणार्थी नागभवनं सजानिः प्राविशद्द्विजः ॥२५७॥
ताभ्यामभ्येत्य वृत्तान्ते ततस्तस्मिन्निवेदिते । क्रोधान्धः सरसस्तस्मादुज्जगाम फणीश्वरः ॥२५८॥
उद्गर्जज्जिह्मजीमूतजनितध्वान्तसंततिः । स घोराशनिवर्षेण ददाह सपुरं नृपम् ॥२५९॥
दग्धप्राण्यङ्गविगलद्वसासृक्स्नेहवाहिनी । मयूरचन्द्रकाङ्केव वितस्ता समपद्यत ॥२६०॥
शरणाय प्रविष्टानां भयाच्चक्रधरान्तिकम् । मुहूर्तान्निरदह्यन्त सहस्राणि शरीरिणाम् ॥२६१॥
मधुकैटभयोर्मेदः प्रागूर्वो रिव चक्रिणम् । दग्धानां प्राणिनां तत्तदा सर्वाङ्गमस्पृशत् ॥२६२॥

॥ २४६ ॥ उसे हटानेको मकानमें कोई नौकर उपस्थित नहीं था। इस कारण नूपुरोंका झनकार करती हुई वह स्वयं उसे हटानेके लिये अट्टालिकासे नीचे उतरी ॥ २४७ ॥ तनपरसे गिरता हुआ उत्तरीय वस्त्र एक हाथसे सँभालकर उस नागकन्याने जल्दीसे दौड़कर उस घोड़ेको दूसरे हाथसे मारा ॥ २४८ ॥ इससे धान्य खाना छोड़कर भागते हुए उस अश्वकी पीठपर नाग-कन्याके हाथका स्पर्श होते ही सुवर्णमय हस्त-चिह्न उभर आया ॥ २४९ ॥ उन्हीं दिनों वहाँके राजा नरने भी अपने गुप्तचरों द्वारा उस सुनयनी द्विजभार्याके सौन्दर्य्यकी प्रशंसा सुनी थी। इससे उस राजाके हृदयमें कामका उदय हो चुका था ॥ २५० ॥ किन्तु लोकापवाद-जनित भयरूपी अंकुश निर्भय भावसे भागते हुए उस राजाके अन्तःकरणरूपी मत्तगजराजपर अपना अधिकार जमानेमें असमर्थ था ॥ २५१ ॥ तभी उस राजाके हृदयमें धधकती हुई कामाग्निको दूनी करनेके लिये वह अश्ववृत्तान्त वायुके जैसा सहायक बन गया ॥ २५२ ॥ उन सुन्दर अंगुलियोंसे घोड़ेकी पीठपर सुशोभित उस स्वर्णमय हस्त चिह्नने चन्द्रोदयसे क्षुब्ध समुद्रके समान राजाको मर्य्यादासे बाहर कर दिया ॥ २५३ ॥ तदनुसार लज्जारूपी जंजीर तोड़कर वह राजा इंगितज्ञ दूतोंके द्वारा उस नाग-कन्याको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये अनेकशः प्रयत्न करता हुआ उसे सताने लगा ॥ २५४ ॥ इन सभी उपायों द्वारा उसकी प्राप्तिको असंभव समझकर उस राजाने लज्जाको तिलाञ्जलि दे दी और उसके पतिके सम्मुख अपनी इच्छा प्रकट की। क्योंकि कामान्धोंको कहीं लज्जा होती है ? ॥ २५५ ॥ इसपर ब्राह्मणने उसे बुरी तरह फटकार दिया। इस प्रकार उसके द्वारा अनेकशः तिरस्कृत होकर राजाने उसे बलात् प्राप्त करनेकी इच्छासे अपनी सेना द्वारा उसका घर चारों ओरसे घेर लिया ॥ २५६ ॥ राजाकी सेना द्वारा अपना घर घिरा देखकर वह ब्राह्मण किसी रास्ते निकलकर अपनी रक्षाकी इच्छासे नागराजके पास गया ॥ २५७ ॥ उस सपत्नीक ब्राह्मणको आते देख और उसके मुखसे सब वृत्तान्त सुना तो क्रुद्ध होकर नागराज सुश्रवा सरोवरसे बाहर निकला और मेघ-गर्जनके समान फुफकारते हुए उसने ओलेके बड़े-बड़े पत्थर बरसाकर उस राजाके समेत सारा नगर तहस-नहस कर दिया ॥ २५८ ॥ २५९ ॥ उसकी विषाग्निसे जले हुए प्राणियोंके शरीरसे निकले रक्त, मज्जा, वसा तथा मांसादि बहाती हुई वितस्ता नदी मोरपंखके समान रंगीन दिखाई देने लगी ॥ २६० ॥ उस समय अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये भगवान् चक्रधरके मन्दिरमें छिपे हुए हजारों मनुष्य उसके भीतर ही क्षण भरमें जल मरे ॥ २६१ ॥ सृष्टिके आरम्भमें जैसे भगवान् विष्णुकी

स्वसा सुश्रवसो नागी रमण्याख्याद्रिगह्वरात् । साहायकायाश्मगणीन्समादाय तदाऽऽययौ ॥२६३॥
सा योजनाधिके शेषे मार्गस्यारात्सहोदरम् । कृतकार्यं निशम्याश्मवर्षं ग्रामेषु तज्जहौ ॥२६४॥
योजनानि ततः पञ्च जाता ग्रामधरा खिला । सा रमण्यटवीत्यद्याप्यस्ति स्थूलशिलाबिला ॥२६५॥
घोरं जनक्षयं कृत्वा प्रातः सानुशयोऽप्यहिः । लोकापवादनिर्विण्णः स्थानमुत्सृज्य तद्ययौ ॥२६६॥
दुग्धाब्धिधवलं तेन सरो दूरगिरौ कृतम् । अमरेश्वरयात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते ॥२६७॥
श्वशुरानुग्रहान्नागीभूतस्यापि द्विजन्मनः । जामातृसर इत्यन्यत्तत्र च प्रथितं सरः ॥२६८॥
प्रजानां पालनव्याजान्निःशङ्कक्षयकारिणः । अकस्मादन्तकाः केचित्संभवन्ति तथाविधाः ॥२६९॥
अद्यापि तत्पुरं दग्धं श्वभ्रीभूतं च तत्सरः । उपचक्रधरं दृष्ट्वा कथेयं स्मर्यते जनैः ॥२७०॥
राज्ञां रागः क्रियान्नाम दोषः स्वल्पदृशां मते । तत्तस्य तेन संवृत्तं यन्नाभूत्क्वापि कस्यचित् ॥२७१॥
सतीदेवतविप्राणामप्येकस्य प्रकोपतः । श्रुतो हि प्रतिवृत्तान्तं त्रैलोक्यस्यापि विप्लवः ॥२७२॥
चत्वारिंशतमब्दान्स मासैश्चोनां त्रिभिः समाम् । भुवं भुक्त्वा क्षितिभृपा दुर्नयेन क्षयं ययौ ॥२७३॥
अप्यल्पकालसंदृष्टप्राकाराट्टालमण्डलम् । तत्किंनरपुरं लेभे गन्धर्वनगरोपमाम् ॥२७४॥
एकस्तु तनयस्तस्य वैचित्र्यात्कर्मणां गतेः । स्वधात्र्या विजयक्षेत्रं नीतः प्राणैर्न तत्यजे ॥२७५॥
राजा सिद्धाभिधः सोऽथ तथा निःशेषितं जनम् । नवीचकार जलदो दावदग्धमिवाचलम् ॥२७६॥
इति वृत्तं महाश्चर्यं तस्य पित्र्यं महामतेः । संसारासारताज्ञाने प्राप पुण्योपदेशताम् ॥२७७॥

जंघाएँ मधु और कैटभ दैत्यके रक्तसे लिप्त हुई थीं। वैसे ही इस समय अर्धदग्ध मृतकोंके रक्त, मज्जा तथा मांस आदिसे भगवान् चक्रधरका सम्पूर्ण शरीर लिप्त हो गया ॥ २६२ ॥ उसी समय नागराजकी वहिन रमण्या नामकी नागिन भी अपने भाईकी सहायता करनेके लिये पत्थरोंका समूह लेकर पर्वत-कन्दरासे बाहर निकली ॥ २६३ ॥ एक योजन रास्ता बाकी रह गया था, तब मार्गमें ही उसे अपने भाईकी विजयकी बात ज्ञात हो गयी। अतएव उसने वहाँ ही वह सारा पत्थर बरसाकर कई ग्राम नष्ट कर डाले ॥ २६४ ॥ उसके ऐसा करनेसे पाँच योजन तकका प्रदेश पाषाणमय हो गया। आज भी वह प्रदेश 'रमण्याटवी' के नामसे विख्यात है ॥ २६५ ॥ इस प्रकार घोर नरसंहार करनेके कारण सन्तप्त एवं लोकापवादसे उद्विग्न वह नाग सवेरे वहाँसे चला गया ॥ २६६ ॥ वहाँसे बहुत दूर जाकर उसने रहनेके लिये एक रम्य पर्वतपर क्षीरसागरके समान भव्य एक सरोवर बनाया। अमरनाथकी यात्राके समय वह सरोवर आज भी दीखता है ॥ २६७ ॥ ससुरकी कृपासे नागत्व-को प्राप्त उस ब्राह्मणका निवासस्थान भी जामातृ-सरोवरके नामसे उसी सरोवरके समीप विद्यमान है ॥२६८॥ प्रजापालनके बहाने निःशंकभावसे प्रजाको कष्ट देनेवाले राजाओंका नाश करनेके लिये कभी-कभी अकस्मात् ऐसे कारण उपस्थित हो जाया करते हैं ॥ २६९ ॥ उस नष्ट नगर और चक्रधर मन्दिरके समीप स्थित उस सरो-वरको देखते ही आज भी प्रेक्षकोंके हृदयमें यह वृत्तान्त स्मरण हो आता है ॥ २७० ॥ "एक अदूरदर्शी राजाका उस ब्राह्मण-पत्नीपर अनुरक्त होना कोई बड़ी बात नहीं थी। किन्तु इतने अल्प कारणसे सम्पूर्ण नगरका नष्ट कर दिया जाना और इतने छोटे अपराधका इतना बड़ा दण्ड कहीं भी नहीं देखा गया"—ऐसा बहुतेरे संकुचित बुद्धिवाले मनुष्योंका कहना है ॥ २७१ ॥ लेकिन इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि पतिव्रता स्त्री, देवता तथा तपस्वी ब्राह्मणके क्रोधसे त्रैलोक्यका भी विनाश हो सकता है ॥ २७२ ॥ इस प्रकार राजा नरने उनचालीस वर्ष नौ मास तक राज्य किया और अपने दुष्कर्मसे उसका इस प्रकार अन्त हुआ ॥ २७३ ॥ अनेकानेक अटारियों एवं प्राकारोंसे सम्पन्न वह नरपुर गन्धर्व-नगरके समान देखते-देखते नष्ट हो गया ॥ २७४ ॥ उस भयंकर अनर्थके समय भी भाग्यवैचित्र्यवश उस राजाका एक पुत्र अपनी उपमाताके साथ विजयेश्वरकी यात्राके लिये विजयक्षेत्र गया हुआ था। अतएव वह जीवित बच गया ॥ २७५ ॥ उसका नाम सिद्ध था। अब वही राज्यका उत्तराधिकारी हुआ। उसने दावानलसे जली भूमिमें नववृष्टि-जनित अंकुरोंके समान उस नगर तथा प्रजाका पुनरुद्धार किया ॥ २७६ ॥ वह बुद्धिमान् राजा अपने पिताका विचित्र वृत्तान्त सुनकर

भोगयोगेन मालिन्यं नेतुं मध्यगतोऽपि सः । न शक्यते स्म पङ्केन प्रतिमेन्दुरिवामलः ॥२७८॥
दर्पज्वरोष्णभूपालमध्ये निर्ध्यायतोऽनिशम् । सुधाप्लुतिकलामौलिं तस्यैवोल्लाघतोऽभ्ययौ ॥२७९॥
गणितं गुणिना तेन मणींस्तृणमिवोज्झता । खण्डेन्दुमण्डनार्चायां मण्डनत्वमखण्डितम् ॥२८०॥
राज्ञस्तस्यैव राजश्रीः परलोकानुगाऽभवत् । यस्तामयोजयद्धूर्तो धर्मेणाव्यभिचारिणा ॥२८१॥
षष्टिमब्दान्प्रशास्योर्वीमासन्नानुचरान्वितः । आरुरोह सदेहोऽसौ लोकाञ्शशिशिखामणेः ॥२८२॥
भृत्या नरं समाश्रित्य प्रययुः शोचनीयताम् । तत्सुतं तु समालम्ब्य प्रभुं भुवनवन्द्यताम् ॥२८३॥

यात्याश्रितः किल समाश्रयणीयलभ्यां निन्द्यां गतिं जगति सर्वजनार्चितां वा ।
गच्छत्यधस्तृणगुणः श्रितकूपयन्त्रः पुष्पाश्रयी सुरशिरोभुवि रूढिमेति ॥२८४॥

सिद्धः सिद्धः सदेहोऽयमिति शब्दं सुरा दिवि । प्राघोषयंस्ताडयन्तः पटहं सप्त वासरान् ॥२८५॥
उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया गतः । तत्सूनुस्त्रिंशतं सार्धां वर्षाणामन्वशात्महीम् ॥२८६॥
तस्य सूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाङ्कं पुरं व्यधात् । क्ष्मां सप्तत्रिंशतिं वर्षान्सप्त मासांश्च भुक्तवान् ॥२८७॥
हिरण्यकुल इत्यस्य हिरण्योत्सकृदात्मजः । षष्टिं षष्टिं वसुकुलस्तत्सूनुरभवत्समाः ॥२८८॥
अथ म्लेच्छगणाकीर्णे मण्डले चण्डचेष्टितः । तस्यात्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥२८९॥
दक्षिणां सान्तकामाशां स्पर्धया जेतुमुद्यता । यन्निपादुत्तरहरिद्भारान्यमिवान्तकम् ॥२९०॥
सांनिध्यं यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाशनोत्सुकान् । अजानन्गृध्रकाकादीन्दृष्ट्वाग्रे धावतो जनाः ॥२९१॥

संसारकी असारतासे पूर्ण परिचित हो गया था। जिससे उसके मनमें पवित्र विचार घर कर गये॥ २७७॥ अतएव संसारमें रहकर सुख-भोग करते समय दुर्विचारोंकी संभावना रहनेपर भी वह राजा प्रतिमागत चन्द्रमाके समान विषय-पंकसे सर्वथा निर्लिप्त रहा करता था॥ २७८॥ प्रायः सभी राजे पराक्रमके उन्मादसे सर्वदा उन्मत्त रहते हैं। परन्तु राजा सिद्ध शान्तचित्त होकर सदा भगवान् चन्द्रशेखरके ध्यानमें मग्न रहता था॥ २७९॥ रत्नोंको तृणके समान देखते हुए उस गुणवान् राजाने भगवान शंकरके नित्य पूजन और शृंगारको अपना बहुमूल्य आभूषण समझ लिया था॥ २८०॥ केवल उसी राजाकी राज्यलक्ष्मी भी उसके साथ परलोक तक गयी थी। क्योंकि उस चतुर राजाने उसे अविनश्वर धर्मसे युक्त कर दिया था॥ २८१॥ इस तरह उसने साठ वर्ष तक निष्कंटक राज्य किया। उसके पश्चात् वह कुछ सेवकों सहित सदेह शिवलोक (कैलास) को चला गया॥ २८२॥ उसके बाद उसके सेवकोंने तीव्र शोक तथा उसके पुत्रने राज्यका ग्रहण एक ही समय किया॥ २८३॥ अपने स्वामीके साथ भला या बुरा वर्ताव करनेवाले सेवक अपनेको लोक तथा परलोकमें वन्दनीय अथवा निन्दनीय बना सकते हैं। जैसे घासकी बनी रस्सी घड़ेका साथ करके कुएँमें नीचे गिरती है और पुष्पोंके साथ देवताओंके मस्तकपर जा चढ़ती है॥ २८४॥ "सिद्धश्रेष्ठ राजा सिद्ध सदेह स्वर्गको आ रहा है" इस प्रकारकी जयघोषणा करते हुए देवताओंने सहर्ष विभिन्न बाजे बजाकर सात दिनतक देवलोकमें बड़ा उत्सव मनाया॥ २८५॥ पश्चात् कमल सदृश सुन्दर नेत्रोंवाला उसका पुत्र उत्पलाक्ष कश्मीरका राजा हुआ। उसने साढ़े तीस वर्ष तक पृथ्वीपर राज्य-किया॥ २८६॥ उसके बाद उसका पुत्र-हिरण्याक्ष राज्याधिकारी हुआ। अपने शासनकालमें उसने अपने नामसे हिरण्याक्ष नगर बसाया और सैंतीस वर्ष ७ महीने तक पृथ्वीका शासन किया॥ २८७॥ उसके दिवंगत होनेके बाद उसके पुत्र और पौत्र अर्थात् हिरण्यकुल तथा वसुकुलने क्रमशः साठ-साठ वर्षतक राज किया॥ २८८॥ उनके पश्चात् वसुकुलका पुत्र मिहिरकुल राज्य-सिंहासन पर बैठा। वह राजा यमराजके समान भीषण तथा दुष्टस्वभावका था। उसके शासन-कालमें उत्तरी प्रदेश म्लेच्छोंसे भर गया था। उस म्लेच्छकुलरूपी धुएँसे कलुषित उत्तर दिशा यमपालित दक्षिण दिशाकी तरह भयावनी हो रही थी॥ २८९॥ २९०॥ राजा मिहिरकुलके सैनिकों द्वारा मारे गये शत्रुओंकी लाशोंके मांसको उत्कंठापूर्वक खाते तथा उड़ते हुए काक-गृद्धादि पक्षियोंको देखकर

दिवारात्रं हतप्राणिसहस्रपरिवारितः । योऽभूद्भूपालवेतालो विलासभवनेष्वपि ॥२९२॥
बालेषु करुणा स्त्रीषु घृणा वृद्धेषु गौरवम् । न बभूव नृशंसस्य यस्य घोराकृतेर्गतः ॥२९३॥
स जातु देवीं संवीतसिंहलांशुककञ्चुकाम् । हेमपादाङ्कितकुचां दृष्ट्वा जज्वाल मन्युना ॥२९४॥
सिंहलेषु नरेन्द्रांघ्रिमुद्राङ्कः क्रियते पटः । इति कञ्चुकिना पृष्टेनोक्तो यात्रामदात्ततः ॥२९५॥
तत्सेनाकुम्भिदानाम्भोनिम्नगाकृतसंगमः । यमुनालिङ्गनप्रीतिं प्रपेदे दक्षिणार्णवः ॥२९६॥
स सिंहलेन्द्रेण समं संरम्भादुदपाटयत् । चिरेण चरणस्पृष्टप्रियालोकनजां रुषम् ॥२९७॥
दूरात्तत्सैन्यमालोक्य लङ्कासौधैर्निशाचराः । भूयोऽपि राघवोद्योगमाशंक्य प्रचकम्पिरे ॥२९८॥
स तत्रान्यं नृपं दत्त्वा तीव्रशक्तिरुपाहरत् । पटं यमुषदेवाख्यं मार्तण्डप्रतिमाङ्कितम् ॥२९९॥
व्यावृत्य चोलकर्णाटलाटादींश्च नरेश्वरान् । सिन्धुरानिव गन्धेभो गन्धेनैव व्यदारयत् ॥३००॥
तस्मिन्प्रयाते प्राप्तेभ्यः शशंसुस्तत्पराभवम् । नगर्यो नरनाथेभ्यस्त्रुट्यदट्टालमेखलाः ॥३०१॥
काश्मीरं द्वारमासाद्य श्वभ्रभ्रष्टस्य दन्तिनः । श्रुत्वा स त्रासजं घोषं तोषरोमाञ्चितोऽभवत् ॥३०२॥
तदाकर्णनसंरम्भे सहर्षोऽथ विरुद्धधीः । शतमन्यद्गजेन्द्राणां हठेन निरलोठयत् ॥३०३॥
स्पर्शोऽङ्गानि यथा वाचं कीर्तनं पापिनां तथा । संदूषयेदतो नोक्ता तस्यान्यापि नृशंसता ॥३०४॥
को वेत्त्यद्भुतचेष्टानां कृत्यं प्राकृतचेतसाम् । धर्मं सुकृतसंप्राप्तिहेतोः सोऽपि यदाददे ॥३०५॥
श्रीनगर्यां हि दुर्बुद्धिर्विदधे मिहिरेश्वरम् । होलडायां स मिहिरपुराख्यं पृथु पत्तनम् ॥३०६॥

लोग उस राजाको अपने नगरके समीप आया हुआ समझ लेते थे ॥ २९१ ॥ रात-दिन मरे हुए हजारों मनुष्योंके शवोंसे परिवेष्टित वह राजा अपने अन्तःपुरमें भी पिशाचके समान भयङ्कर दीखता था ॥ २९२ ॥ उस भीषण आकृतिवाले हत्यारे राजाके कठोर हृदयमें बालकोंके प्रति कृपा, स्त्रियोंके लिए दया तथा वृद्धोंके प्र त गौरव भाव अणुमात्र भी नहीं शेष रह गया था ॥ २९३ ॥ एक दिन उसने अपनी पत्नीको सिंहल द्वीपमें बने हुए सुवर्णपदचिह्नित वस्त्रकी कंचुकी पहिने देख लिया। उसे देखकर वह क्रोधसे लाल हो गया ॥ २९४ ॥ तत्काल उसने सुवर्णपद-चिह्नके विषयमे जाँच की, तब उसके कंचुकीने कहा—'सिंहलद्वीपमें वहाँके राजाके चरणचिह्नसे युक्त ऐसा वस्त्र बनता है'। कंचुकीके उस वचनको सुनते ही उसने सिंहलनरेशसे युद्ध करनेके लिए प्रस्थान कर दिया ॥ २९५ ॥ उस समय उसकी सेनाके हजारों मदोन्मत्त हाथियोंके बहते हुए मदकी नदीसे मिला हुआ समुद्र यमुनाके आलिङ्गन-जनित सुखको प्राप्त करता दीखने लगा ॥ २९६ ॥ उस प्रभावशाली राजा मिहिरकुलने सिंहलेश्वरको राज्यसे और क्रोधको अपने हृदयसे उखाड़ फेका ॥ २९७ ॥ लंकाके उच्च भवनोंपर चढ़कर उसकी सेनाको देखते हुए राक्षस रामचन्द्रके फिरसे आक्रमणकी आशंका करके काँप उठे ॥ २९८ ॥ उसने सिंहल द्वीपके राज्यसिंहासनपर एक दूसरे राजाको बैठा दिया और वहाँसे सूर्य्यप्रतिमायुक्त यमुषदेव नामक वस्त्र ले लिया ॥ २९९ ॥ वहाँसे वापस लौटते समय उसने चोल, कर्णाट, लाट आदि देशोंके राजाओंको परास्त करके वैसे ही राज्यच्युत कर दिया, जैसे मदवाही गजराज हथिनियोंके झुण्डको तितर-बितर कर देता है ॥ ३०० ॥ उसके चले जानेपर उन राजधानियोंके अर्धभग्न प्रासादों एवं टूटी-फूटी गृहश्रेणियोंने अपने राजाओंको पराभवका हाल बता दिया ॥ ३०१ ॥ कश्मीरके प्रवेशद्वारपर गढ़ेमे गिरकर चिंघाड़ते हुए एक हाथीका आर्तनाद सुनकर वह दुष्ट राजा मिहिरकुल हर्षातिरेकसे रोमाञ्चित हो उठा ॥ ३०२ ॥ वह शब्द सुननेकी उसके हृदयमें अत्यंत प्रबल उत्कंठा जागृत हो गयी। इसलिये उसने उस गढ़ेमें क्रमशः सौ हाथी और गिरवा दिये ॥ ३०३ ॥ जिस तरह पापियोंके स्पर्शसे शरीर अपवित्र होता है, वैसे ही उनके कुकृत्य वर्णनमे वाणी भी दूषित हो जाती है। इसी कारण यहाँ हमने उसके बहुतेरे कुकृत्योंका उल्लेख नहीं किया है ॥ ३०४ ॥ अद्भुत चेष्टाओं द्वारा अत्याचार करनेवाले क्षुद्र पुरुषोंके कुकृत्योंका अनुमान कौन कर सकता है। क्योंकि उसने पुण्यसंचयके लिये बहुतसे धार्मिक कार्य भी किये थे ॥ ३०५ ॥ उस दुष्टने श्रीनगरमे मिहिरेश्वर नामके शंकरजीकी स्थापना की थी और होलडाप्रांतमें मिहिरपुर नामक नगर बसाया

अग्रहाराङ्गगृहिरे गान्धारा ब्राह्मणास्ततः । समानशीलास्तस्यैव ध्रुवं तेऽपि द्विजाधमाः ॥३०७॥

मेघागमः फणिभुजं प्रथितान्धकारः प्रीणाति हंसममलो जलदात्ययश्च ।
प्रीतेः समानरुचितैव भवेन्नितान्तं दातुः प्रतिग्रहकृतश्च परस्परस्य ॥३०८॥

स वर्षसप्ततिं भुक्त्वा भुवं भूलोकभैरवः । भूरिरोगार्दितवपुः प्राविशज्जातवेदसम् ॥३०९॥
सोऽयं त्रिकोटिहा मुक्तो यः स्वात्मन्यपि निर्घृणः । देहत्यागेऽस्य गगनादुच्चचारेति भारती ॥३१०॥
इत्यूचुर्ये मते तेषां स व परिहारदः । खण्डयन्वीतघृणतामग्रहारादिकर्मभिः ॥३११॥
आक्रान्ते दारदैर्भौट्टैर्म्लेच्छैरशुचिकर्मभिः । विनष्टधर्मे देशेऽस्मिन्पुण्याचारप्रवर्तनम् ॥३१२॥
आर्यदेश्यान्स संस्थाप्य व्यतनोद्दारुणं तपः । संकल्प्य स्ववपुर्दाहं प्रायश्चित्तक्रियां व्यधात् ॥३१३॥
अत एवाग्रहाराणां सहस्रं प्रत्यपादयत् । गान्धारदेशजातेभ्यो द्विजेभ्यो विजयेश्वरे ॥३१४॥
क्षुरखङ्गासिधेन्वादिपूर्णेऽयःफलके तदा । वह्निप्रदीप्ते सहसा पर्यन्ते स्वां तनुं जहौ ॥३१५॥
इत्येतस्मिञ्जनाम्नाये केचिदव्यभिचारिणि । प्राहुः पुरुषसिंहस्य क्रौर्यं तस्याविगर्हितम् ॥ कुलकम् ॥३१६॥
ये नागेन रुषा प्लुष्टे नगरे प्राभवन्खशाः । तेषां नाशाय वृत्तान्तं पूर्वोक्तं जगदुः परे ॥३१७॥
अवतारयतस्तस्य चन्द्रकुल्याभिधां नदीम् । अशक्योन्मूलना मध्ये शिलाऽभूद्विघ्नकारिणी ॥३१८॥
ततः कृततपाः स्वप्ने देवैरुक्तः स भूपतिः । यक्षः शिलायां बलवान्ब्रह्मचार्यत्र तिष्ठति ॥३१९॥
साध्वी स्पृशति चेदेनां निरोद्धुं न स शक्नुयात् । ततोऽपरेद्युः स्वप्नोक्तं शिलायां तेन कारितम् ॥३२०॥
तासु तासु कुलस्त्रीषु व्यर्थतास्वथाचलत् । चन्द्रवत्याख्यया स्पृष्टा कुलाल्या सा महाशिला॥३२१॥

था ॥ ३०६ ॥ उसीके जैसे शीलवान् तथा गन्धारकुलोत्पन्न ब्राह्मणाधमोंने उसके दिये हुए अग्रहारको ग्रहण किया था ॥ ३०७ ॥ अन्धकार युक्त वर्षाकाल सर्पको आनन्दप्रद होता है तथा निर्मल शरत्काल हंसको सुख देता है। उसी तरह दाता और प्रतिग्रहीताका सम्बन्ध भी समान-शीतलताके अधीन रहता है ॥ ३०८ ॥ इस प्रकार उस महाभयंकर राजाने ७० वर्ष पर्यन्त पृथ्वीपर शासन करनेके बाद सांघातिक रोगसे पीड़ित होकर अपने शरीरको अग्निकुण्डमें झोंक दिया ॥ ३०९ ॥ उसके देह-त्यागके समय "अपनी देहपर भी दया नहीं करनेवाला तथा तीन करोड़ प्राणियोंका घातक मिहिरकुल मुक्त हो गया"—ऐसी आकाशवाणी हुई ॥ ३१० ॥ ऐसा कहनेवालोंके मतसे यही सिद्ध होता है कि अग्रहारादि दानोंको करके उसने अपने सब पाप नष्ट कर दिये थे ॥ ३११ ॥ साथ ही अपवित्र कार्य करनेवाले दारद, भौट्ट तथा म्लेच्छादिकोंको मारकर संसारमें पवित्र आचारका स्थापन किया था ॥ ३१२ ॥ आर्यजातिकी स्थिति सुदृढ करके उसने दारुण तपस्या द्वारा पापों-का प्रायश्चित्त किया और अन्तमें अपना शरीर तक भस्म कर डाला ॥ ३१३ ॥ इसी कारण उसने एक हजार अग्रहार गान्धार देशके ब्राह्मणोंको दिये थे। यह दान उसने जयेश्वर तीर्थमें किया था ॥ ३१४ ॥ उसके बाद उसने छुरा-तलवार आदि अनेक शस्त्रोंसे युक्त एवं अग्निसे तप्त (लोहेके तख्ते) पर अपनी देह रखकर जला दिया। अतएव क्रूर होनेपर भी यह नरश्रेष्ठ निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। उस राजाके पक्ष-पातियोंका यह कथन है ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ जब सुश्रवा नागने नगर जला दिया, तब वहाँ खश जातिके लोगोंने अपना अधिकार जमा लिया था। उनका विनाश करनेके लिये ही उस राजाने ऐसी क्रूरता अपनायी थी—ऐसा भी बहुतसे इतिहासकारोंका कथन है ॥ ३१७ ॥ एक बार चन्द्रकुल्या नदीके प्रवाहको मोड़कर लाते समय राजा मिहिरकुलके कार्यमें एक बड़ी शिलाने विघ्न उपस्थित कर दिया ॥ ३१८ ॥ बहुत प्रयत्न करनेपर भी जब वह शिला नहीं हटी, तब राजा चिन्तातुर होकर तप करने लगा। तदनन्तर उसे स्वप्नमें ज्ञात हुआ कि इस शिलापर एक प्रबल ब्रह्मचारी यक्ष बैठा हुआ है। कोई पतिव्रता स्त्री यदि इसे स्पर्श कर ले तो वह कार्यमें बाधक नहीं होगा। यह जानकर उस राजाने दूसरे दिन अनेक स्त्रियों द्वारा उस शिलाका स्पर्श करवाया ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ अनेक स्त्रियों द्वारा स्पर्श करानेपर भी जब वह शिला तनिक भी नहीं हिली। तब चन्द्रवती

कोटित्रयं नरपतिः क्रुद्धस्तेनागसा ततः । सपतिभ्रातृपुत्राणामवधीत्कुलयोषिताम् ॥३२२॥
इयं चान्यमते ख्यातिः प्रथते तथ्यतः पुनः । अभव्या सनिमित्ताऽपि प्राणिहिंसा गरीयसी ॥३२३॥
एवं क्षुद्रोऽपि यद्राजा संभूय न हतो जनैः । तत्कर्म कारयद्भिस्तद्दैवतैरेव रक्षितः ॥३२४॥
प्रजापुण्योदयैस्तीव्रैश्चिरात्तस्मिन्क्षयं गते । वकस्तत्प्रभवः पौरैः सदाचारोऽभ्यपिच्यत ॥३२५॥
तत्रापि पूर्वसंस्कारादुक्तत्रासं दधे जनः । श्मशानविहिते लीलावेश्मनीव नृपास्पदे ॥३२६॥
अतिसंतापदाज्जातः स जनाह्लादकोऽभवत् । जलौघो जलदश्यामात्तपात्ययदिनादिव ॥३२७॥
लोकान्तरादिवायातं मेने धर्मं तदा जनः । अभयं च परावृत्तं प्रवासाद्गहनादिव ॥३२८॥
स वकेशं वकश्वभ्रे वकवत्यापगां तथा । कृत्वा पुरं परार्ध्यश्रीर्लवणोत्साभिधं व्यधात् ॥३२९॥
तत्र त्रिषष्टिवर्षाणां सत्रयोदशवासरा । अत्यवाह्यत भूपेन तेन पृथ्वीं प्रशासता ॥३३०॥
अथ योगेश्वरी काचिद्भट्टाख्या रजनीमुखे । कृत्वा कान्ताकृतिं काम्यामुपतस्थे विशां पतिम् ॥३३१॥
तया मनोहरैस्तैस्तैर्वचनैर्ग्लपितस्मृतिः । स यागोत्सवमाहात्म्यं द्रष्टुं हृष्टो न्यमन्त्र्यत ॥३३२॥
पुत्रपौत्रशतोपेतः प्रातस्तत्र ततो गतः । चक्रवर्ती तया निन्ये देवीचक्रोपहारताम् ॥३३३॥
कर्मणा तेन सिद्धाया व्योमाक्रमणसूचकम् । जानुमुद्राद्वयं तस्या दृषद्यद्यापि दृश्यते ॥३३४॥
देवः शतकपालेशो मातृचक्रं शिला च सा । खेरीमठेषु तद्वार्तास्मृतिमद्यापि यच्छति ॥३३५॥
देव्या कुलतरोः कन्दः क्षितिनन्दोऽवशेषितः । ततस्तस्य सुतस्त्रिंशद्वत्सरानन्वशान्महीम् ॥३३६॥
द्वापञ्चाशतमब्दान्क्ष्मां द्वौ च मासौ तदात्मजः । अपासीद्वसुनन्दाख्यः प्रख्यातस्मरशास्त्रकृत् ॥३३७॥

नामकी एक कुम्भकारकी स्त्रीने शिलाका स्पर्श किया। उसके स्पर्श करते ही वह महाशिला उठानेपर उठ गई ॥ ३२१ ॥ इस अपराधसे क्रुद्ध होकर राजा मिहिरकुलने पति-पुत्र-बांधव समेत तीन करोड़ कुलस्त्रियोंका वध करा दिया ॥ ३२२ ॥ कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि किसी भी कारणसे की गई भयङ्कर हिंसा सर्वथा निन्दनीय होती है ॥ ३२३ ॥ उस समय जो प्रजाने एकत्रित होकर ऐसे कुकर्मी एवं क्षुद्र राजाको मार नहीं डाला, इसका कारण यह था कि ऐसे दुष्कृत्योंको करनेकी प्रेरणा देनेवाले देवताओंने उसकी रक्षा की थी ॥ ३२४ ॥ प्रजाके प्रबल पुण्योदयसे जब दुष्ट मिहिरकुल मर गया, तब वहाँके नागरिकोंने उसके सदाचारी पुत्र वकको कश्मीरका राजा बनाया ॥ ३२५ ॥ किसी श्मशान भूमिमें बने भव्य भवनसे भी जैसे लोग डरते हैं वैसे ही प्रजा प्राचीन संस्कारके कारण उस राजा वकके सिंहासनके आगे भी थर-थर काँपती थी ॥ ३२६ ॥ किन्तु भयङ्कर एवं सन्तापकारी पितासे उत्पन्न राजा वक गर्मीके बाद मेघाच्छन्न वर्षाकालीन मेघके समान समस्त प्रजाके लिए अतिशय सुखदायक सिद्ध हुआ ॥ ३२७ ॥ राजा वकके शासनकालमें जनता धर्मको लोकान्तरमें और अभयको दीर्घ प्रवाससे लौटे हुएके समान समझने लगी ॥ ३२८ ॥ उस राजाने वकश्वभ्रमें वकेश्वरका मन्दिर बनवाया और वकवती नदी बहाकर लवणोत्स नगर बसाया ॥ ३२९ ॥ इस प्रकार उस राजाने ६३ वर्ष और १३ दिन पृथ्वीपर शासन किया ॥ ३३० ॥ एक दिन सायंकालके समय भट्टा नामकी एक योगिनी सुन्दरी रमणीका वेष बनाकर राजाके पास जा पहुँची ॥ ३३१ ॥ अपने मोहक मादक एवं मधुर वचनोंसे राजाको मुग्ध करके उसने यज्ञके उत्सवकी महिमा देखनेके लिये उसे निमन्त्रित किया ॥ ३३२ ॥ तदनन्तर अपने सैकड़ों पुत्र-पौत्रों समेत यज्ञमें उपस्थित राजाको उस योगिनीने मातृ-चक्रके सम्मुख बलिदान दे दिया ॥ ३३३ ॥ ऐसा करनेसे उस योगिनीको आकाश-गमनकी सिद्धि प्राप्त हो गयी। आज भी वहाँकी शिलापर उस योगिनीकी जानु-चिह्नमयी मुद्रा दिखाई देती है ॥ ३३४ ॥ खेरीमठमें विद्यमान शतकपालेश्वर शिवकी प्रतिमा, मातृचक्र एवं योगिनीकी जानु-मुद्रासे अंकित उस शिलाको देखनेसे वह प्राचीन वृत्तान्त आज भी स्मरण हो आता है ॥ ३३५ ॥ देवीकी कृपासे उस वंशवृक्षका अंकुर राज-पुत्र क्षितिनन्द उस विपत्तिसे बच गया था। उसने ३० वर्षतक कश्मीरपर राज्य किया ॥ ३३६ ॥ तदनन्तर उसका पुत्र वसुनन्द राज्यका शासक बना। उसने कामशास्त्रका एक प्रसिद्ध तथा

नरः षष्टिं तस्य सूनुस्तावतोऽक्षश्च तत्सुतः । वर्षानभूद्विसुर्ग्रामं योऽक्षवालमकारयत् ॥३३८॥
जुगोप गोपादित्योऽथ क्ष्मां सद्वीपां तदात्मजः । वर्णाश्रमप्रत्यवेक्षादर्शितादियुगोदयः ॥३३९॥
सखोलखागिकाहाडिग्रामस्कन्दपुराभिधान् । शमाङ्गासमुखांश्चाग्रहारान्यः प्रत्यपादयत् ॥३४०॥
ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्यदेशजाः । गोपाग्रहारान्कृतिना येन स्वीकारिता द्विजाः ॥३४१॥
भूक्षीरवाटिकायां यो निर्वास्य लशुनाशिनः । खासटायां व्यधाद्विप्रान्निजाचारविवर्जितान् ॥३४२॥
अन्यांश्चानीय देशेभ्यः पुण्येभ्यो वाश्चिकादिषु । पावनानग्रहारेषु ब्राह्मणान्स न्यरोपयत् ॥३४३॥
उत्तमो लोकपालोऽयमिति लब्ध्य प्रशस्तिषु । यः शस्त्रान्विना यज्ञं चक्षमे न पशुक्षयम् ॥३४४॥
सषड्दिनां वर्षषष्टिं पालयित्वा स मेदिनीम् । भोक्तुं पुण्यपरीपाकं लोकान्सुकृतिनामगात् ॥३४५॥
गोकर्णस्तत्सुतः क्षोणीं गोकर्णेश्वरकृद्दधे । अष्टपञ्चाशतं वर्षांस्त्रिंशत्याह्नां विवर्जितान् ॥३४६॥
सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य खिङ्खिलान्याभिधोऽभवत् । भूतेश्वरप्रतिष्ठानामक्षयिण्याश्च कारकः ॥३४७॥
दिव्यानुग्रहभागुग्राभिधो यस्य गुरुर्व्यधात् । उग्रेशं मातृचक्रं च प्रभावोदग्रविग्रहः ॥३४८॥
भुक्त्वा षट्त्रिंशतं वर्षान्शतं चाह्नां विशुर्भुवः । स दीर्घैर्नवभिर्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥३४९॥
युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः । यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥३५०॥
तेन क्रमागतं राज्यं सावधानेन शासता । अनुजग्मे मितं कालं पूर्वभूपालपद्धतिः ॥३५१॥
काले कियत्यपि ततो यात्यभाग्यवशादसौ । सिषेवे श्रीमदक्षीबो यत्किंचनविधायिताम् ॥३५२॥
नान्वग्रहीदनुग्राह्यान्न संजग्राह धीमतः । न प्रवृत्तोपचाराणां प्रागिवासीत्प्रियंकरः ॥३५३॥

विस्तृत अन्य लिखा और ५२ वर्ष २ मास तक राज किया ॥ ३३७ ॥ उसके बाद राजा नर राज्याधिकारी हुआ । उसने ६० वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर उसका पुत्र अक्ष शासक हुआ और उसने अक्षवाल नामक नगर बसाया । उसने भी ६० वर्ष तक राज्य किया । उसके बाद उसका पुत्र गोपादित्य सिंहासनासीन हुआ । सप्तद्वीपा वसुन्धरापर उसका अक्षुण्ण अधिकार था । उसके शासनकालमें शास्त्रानुसार वर्णाश्रमधर्मके सब कार्य होते थे । इसलिये प्रजाकी दृष्टिमें वह समय सत्ययुग-सा प्रतीत हो रहा था ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥ उसने खोल, खागिक, थाहाडिग्राम, स्कन्दपुर, शमाग तथा असमुख आदि अनेक ग्राम दान करके ब्राह्मणोंको दिये थे ॥ ३४० ॥ गोपगिरिपर उसने श्रीज्येष्ठेश्वरकी प्रतिमा स्थापित की और आर्यदेशीय ब्राह्मणोंको गोप्र नामके अग्रहार दिये ॥ ३४१ ॥ लशुनभक्षकोंको उसने भूक्षीर-वाटिका नामके ग्राममें और अभक्ष्यभक्षी एवं दुराचारी ब्राह्मणोंको खासटा नामक ग्राममें भेजकर आर्यावर्तसे सदाचारी, धार्मिक एवं विद्वान ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें वाश्चिका आदि अग्रहार रहनेके लिये प्रदान किया ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥ उसके लिए लिखे गये प्रशस्तिपत्रोंमें राजा नरको उत्तम लोकपाल कहा गया है । वह यज्ञादि धार्मिक कार्योंके सिवाय अन्य कार्योंमें पशु-हिंसा नहीं होने देता था ॥ ३४४ ॥ उस राजाने ६० वर्ष ६ दिन तक पृथिवीका पालन किया और उसके बाद उज्ज्वलतम पुण्यफल भोगनेके लिए स्वर्गलोक चला गया ॥ ३४५ ॥ उसके दिवंगत हो जानेपर उसका पुत्र गोकर्ण पृथ्वीका शासक बना । उसने गोकर्णेश्वर शिवकी स्थापना की और ५७ वर्ष ११ मास तक धरतीपर राज्य किया ॥ ३४६ ॥ उसके पश्चात् सूर्य सदृश तेजस्वी उसका पुत्र खिंखिलान्य कश्मीरका राजा हुआ । उसे लोग नरेन्द्रादित्य भी कहते थे । उसने भूतेश्वर शिवका मन्दिर बनवाया और बहुतेरे अन्नक्षेत्र खोले ॥ ३४७ ॥ देवोंका कृपापात्र एवं महान् प्रभावशाली उग्र उस राजाका गुरु था । उसने उग्रेश शिव तथा मातृ-चक्रकी स्थापना की ॥ ३४८ ॥ इस प्रकार उसने ३६ वर्ष ३ मास तथा १० दिन तक पृथ्वीके ऐश्वर्यका उपभोग करके अन्तमें अपने पुण्यबलसे पवित्र लोक प्राप्त किया ॥ ३४९ ॥ उसके पश्चात् उसका पुत्र युधिष्ठिर शासक हुआ । सूक्ष्मनेत्र होनेके कारण वह अन्धयुधिष्ठिरके नामसे विख्यात था ॥ ३५० ॥ कुछ समय तक उसने प्राचीन पद्धतिके अनुसार परम्परा-प्राप्त राज्यका कार्य अच्छी तरह चलाया ॥ ३५१ ॥ तदनन्तर दुर्भाग्य एवं धनके उन्माद वश राजा युधिष्ठिर मनमानी करने लगा ॥ ३५२ ॥ अब उसने

दुर्विद्यपर्षदा साकं निर्विशेषं सभाजितैः। परिजह्रे स दुर्जातो जाततेजोवधैर्बुधैः ॥३५४॥
सर्वत्र समदृष्टित्वं गुणोऽयं खलु योगिनः। अकीर्तिहेतुः स महान्दोषस्तु पृथिवीपतेः ॥३५५॥
नयद्भिर्गुणतां दोषान्दोषतां च गुणान्विटैः। स लुप्तप्रतिभश्चक्रे शनकैः स्त्रीजितोपमः ॥३५६॥
चाट्वमर्मच्छेदिनी दीर्घं नर्म शश्वत्कथा विटैः। अनीश्वरोचिता तस्य क्रीडापि भयदाऽभवत् ॥३५७॥
पुरो मिथ्या गुणग्राही परोक्षं दोषदर्शकः। असुस्थिरादरो भूभृत्सोभूद्द्वेष्योऽनुजीविनाम् ॥३५८॥
मनागनवधानेन स्खलतस्तस्य भूपतेः। इत्थं राज्यस्थितिरगादचिरेण विसूत्रताम् ॥३५९॥
उपेक्षितस्य निर्द्रोहैश्चपलतन्ताजितात्मनः। अथ लब्धबलास्तस्य नाशाय द्रोहिमन्त्रिणः ॥३६०॥
प्रभोः संकोचिताज्ञैस्तैश्चरद्भिर्निरवग्रहम्। राज्यं जिहीर्षवो भूपाश्चक्रिरे भूम्यनन्तराः ॥३६१॥
तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते नानादिगाश्रयाः। आसन्नराज्यामिषं प्राप्तुं श्येना इव ससंभ्रमाः ॥३६२॥
अथोत्पन्नभयो राजा न शशाक निजस्थितिम्। व्यवस्थापयितुं यन्त्रच्युतां कारुः शिलामिव ॥३६३॥
चिरं क्षुण्णे क्षमाभर्तुस्तस्मिन्राज्ये विसंस्थुले। उपायोऽस्य स्थितेर्हेतुर्नैकः कश्चन पप्रथे ॥३६४॥
दृष्टदोषान्स्थितिं प्राप्तो हन्यादस्मानसंशयम्। विचिन्त्येति न सामास्य जगृहुर्निजमन्त्रिणः ॥३६५॥

अथ निरुरुधुस्ते संनद्धा बलैर्नृपमन्दिरं व्यवहितजनाक्रन्दं भेरीरवैरतिभैरवैः।
मदकरिघटाकेतुच्छायानिरुद्धरविप्रभा भवनवलभीः संतन्वन्तो दिवापि तमोवृताः ॥३६६॥

तैर्गन्तुं स्वभुवो निवारितरणैर्दत्तेऽवकाशे ततस्त्यक्तश्रीर्नगरान्तरात्स नृपतिस्तात्पर्यतो निर्ययौ।
आजानेयरजोङ्कराजललनाप्रस्थानसंदर्शनक्षुभ्यत्पौरजनाश्रुलाजकणिकाकीर्णेन राजाध्वना ॥३६७॥

अनुग्राह्य जनोंपर अनुग्रह करना त्यागकर बुद्धिमान् पुरुषोंका संग्रह बन्द कर दिया। इससे सेवकोंका भी उसपरसे प्रेम हट गया॥ ३५३॥ अब उसके यहाँ विद्वानोंका तिरस्कार होने लगा। इसीसे विद्वानोंने भी उसको त्याग दिया॥ ३५४॥ प्राणिमात्रमें समदर्शिता योगियोंका गुण है, किन्तु यही गुण राजाओंके लिये अपकीर्तिका कारण बनकर महान् दोषके रूपमें परिणत हो जाता है॥३५५॥ गुणोंको दोष एवं दोषोंको गुण बतलानेवाले धूर्तोंके फेरमें पडकर वह राजा प्रतिभाहीन एवं स्त्रैण बन गया॥ ३५६॥ उसकी बातें मर्मभेदिनी होती थीं। वह चाटुकारोंके साथ हास्य-विनोद करता था। राजाओंके लिए अनुचित उसके क्रीडा-कौतुक भी भयदायक हुआ करते थे॥ ३५७॥ वह राजा युधिष्ठिर प्रत्यक्षमें तो लोगोंके गुणकी प्रशंसा करता था, किन्तु परोक्षमें निन्दा। इस कारण उसके सब सेवक भी उससे द्वेष करने लगे थे॥ ३५८॥ इस प्रकार उसके पतनोन्मुख तथा असावधान होनेके कारण उसकी राज्यस्थिति शीघ्र ही लड़खड़ा गयी॥ ३५९॥ सत्पुरुषोंके द्वारा उपेक्षित उस चपल प्रकृति राजाके मंत्री प्रबल द्रोही बन तथा राज्यपर अधिकार करके उसके विनाशका उपक्रम करने लगे॥ ३६०॥ तदनुसार उन मंत्रियोंने राजाज्ञाका उल्लंघन करके पास-पड़ोसके राजाओंको उसपर आक्रमण कर देनेके लिए उभाडना आरम्भ कर दिया॥ ३६१॥ इस प्रकार प्रोत्साहित राजे राज्यरूपी मांसके लोलुप बनकर बाज पक्षीके समान उसपर चारों ओरसे टूट पड़े॥ ३६२॥ जैसे मशीनकी पकड़से छूटकर गिरे हुए शिलाखण्डको मिस्त्री नहीं सम्हाल पाता, वैसे ही राज्यकी बिगड़ी हुई स्थितिको वह राजा काबूमें नहीं कर सका॥ ३६३॥ बहुत समयसे विश्रृंखलित राज्यको सुधारनेके लिए उस राजाको कोई भी उपाय नहीं सूझा॥ ३६४॥ उसके मंत्रियोंकी यह भावना थी कि 'राजा हमारे दोषोंको जानता है। अतएव राज्यमें शान्ति स्थापित होते ही वह हमें हमारी करनीका दण्ड देगा'। ऐसा सोचकर उन्होंने राजाकी सान्त्वनापूर्ण बातोंपर एकदम ध्यान नहीं दिया॥ ३६५॥ तदनन्तर शत्रुओंने उसपर प्रबल आक्रमण करके राजमहलको चारों ओरसे घेर लिया। इससे घबड़ाकर हाहाकार करनेवालोंकी आवाज शत्रुओंकी रणभेरीकी ध्वनिसे दब गयी। बड़े-बड़े मदवाही गजोंकी पीठपर फहराती हुई पताकाओंसे सूर्यनारायणका प्रकाश तिरोहित हो गया और दिनके समय भी चारों ओर अन्धेरा छा गया॥ ३६६॥ उस समय शत्रुओंने उस अन्धयुधिष्ठिर राजाको नगर तथा राजमहल छोडकर निकल भागनेकी सुविधा दे दी। जिससे वह अभागा राजा उस अवसरसे लाभ उठाकर भाग गया।

राज्याच्च्युतस्य बहुशः परिवाररामाकोशादि तस्य रिपवो व्रजतोपजह्रुः।
उर्वीरुहो विगलितस्य नगेन्द्रशृङ्गाद्वल्लीफलादि रभसादिव गण्डशैलाः ॥३६८॥
रम्यैः शैलपथैर्व्रजञ्श्रमवशाच्छायां श्रितः शाखिनामासीनप्रचलायितेन सुमहद्दुःखं विसस्मार सः।
दूरात्पामरफूत्कृतैः श्रुतिपथप्राप्तैः प्रबुद्धस्त्वभूद्दृष्टो निर्झरवारिभिः सह मनः श्वभ्रे निमज्जन्निव ॥३६९॥
नानावीरुत्तृणपरिमलैरुग्रगन्धा वनोर्वीरम्भःक्षोभप्रतिहतशिलाः पिच्छिलाश्चाद्रिकुल्याः।
क्रान्त्वा श्रान्तैर्बिसकिसलयच्छायमुग्धाङ्गलेखैरभ्युत्सङ्गं निहिततनुभिर्मूर्छितं तस्य दारैः ॥३७०॥
पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य सुचिरं दूरीभवन्मण्डलं द्रागामन्त्रयितुं जहत्सु नृपतेर्दारेषु पुष्पाञ्जलीन्।
क्षोणीपृष्ठविकीर्णपक्षतिनमत्तुण्डं स्वनीडस्थितैः सावेगं गिरिकन्दरासु पततां वृन्दैरपि क्रन्दितम् ॥३७१॥
स्तनयुगतलनद्धस्रस्तमूर्धांशुकानां त्रिकवलनविलोलं वीक्ष्य दूरात्स्वदेशम्।
अवहत रुदतीनां मौलिविन्यस्तहस्तं पथि नृपवनितानामश्रुभिर्निर्झराम्भः ॥३७२॥
प्रीतिस्थैर्यैरुचितवचनाक्षिप्तया शोकशान्त्या निर्व्याजाज्ञाग्रहणगुरुभिस्तैश्च तैश्चोपचारैः।
तस्य स्नेहादुपगतवतो राज्यविभ्रंशदुःखं मन्दीचक्रुः स्वभुवि सुजना भूपतेर्भूमिपालाः ॥३७३॥

इति काश्मीरिकमहामात्यश्रीचम्पकप्रभुसूनो कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां प्रथमस्तरङ्ग ॥ १ ॥
चतुर्दशाधिकं वर्षसहस्रं नव वासरा। मासाश्च विगता ह्यस्मिन्नेकविंशतिराजसु ॥



अन्तःपुरमें रहनेवाली राजाकी रानियोंको धूलमें दौड़ते देखकर दुःखित नागरिकोंने अश्रुबिन्दुओंके बहाने उनपर धानके लावाकी वर्षा की ॥ ३६७ ॥ इस प्रकार वह राजा राज्यच्युत होकर जंगलों-झाड़ियोंमें दौड़ते-दौड़ते थक गया। उसी समय उसके शत्रुओंने मार्गमें आक्रमण करके उसका सारा धन तथा कतिपय अन्त पुरकी सुन्दरियोंको वैसे ही छीन लिया, जिस तरह पर्वतकी घाटियाँ वृक्षोंसे गिरी हुई लताओं, पुष्पों और फलोंको अपहृत कर लेती हैं ॥ ३६८ ॥ भागते-भागते वह राजा जब किसी वृक्षकी छायामें सुस्ताता था, तब उसे कुछ शान्ति मिलती थी। किन्तु वहाँ भी क्षुद्रप्रकृति भीलोंका कोलाहल सुनकर वह पर्वतीय नदियोंके समान भीषण शोकके गर्तमे गिरकर डूबने-उतराने लगता था ॥ ३६९ ॥ उसकी रानियाँ विविध तृणधान्यों, सुगन्धि-द्रव्यों, फिसलन भरी बड़ी-बडी शिलाओं एवं प्रबल प्रवाहमयी नदियोंको लाँघनेके श्रमसे मूर्छित हो गयीं ॥ ३७० ॥ जब वे राजरानियाँ अपनी सीमापर विद्यमान पर्वतकी तलैटीसे मातृभूमिको बड़ी देरतक सस्नेह निहार तथा श्रद्धापूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पित करने लगीं, तब अपने-अपने घोसलोंमें बैठे हुए वहाँके पक्षी बड़े दु खके साथ पंख फैला तथा माथा झुकाकर रोने लगे ॥ ३७१ ॥ माथेसे सरकी हुई साड़ीकी छोरसे दोनों स्तन ढाँकके पीछेकी ओर मुडकर अपने देशको निहारती हुई वे राजरानियाँ जब कपारपर हाथ रखके रोने लगीं, तब मार्गमें उनके आँसुओंसे झरने बहने लगे ॥ ३७२ ॥ इस प्रकार वह दुःखित राजपरिवार जब परराष्ट्रमे पहुँच गया, तब उसके करुणापूर्ण वचन सुनकर वहाँके सज्जन राजा तथा राजकर्मचारियोंका हृदय दयासे भर आया और वे सब कपटशून्य प्रेमसे सत्कार करके राज्यभ्रंशसे उत्पन्न उसके शोकको विस्मृत करानेके उपाय करने लगे ॥ ३७३ ॥

काश्मीरिक महामात्य चम्पक प्रभुके पुत्र महाकवि कल्हणकृत राजतरङ्गिणीका प्रथम तरंग समाप्त हुआ ॥१॥
इस तरह उपर्युक्त अठतीस राजाओंने एक हजार चौदह वर्ष नौ दिनतक कश्मीरपर राज्य किया।



अथ द्वितीयस्तरङ्गः ।

विहितमजगोशृङ्गाग्राभ्यां धनुर्घटितं तथा नरकरटिनोर्देहार्धाभ्यां गणं परिगृह्णतः ।
विविधघटनावाल्लभ्यानां निधेरुचिता विभोर्जयति ललनापुंभागाभ्यां शरीरविनिर्मितिः ॥१॥
भूयो राज्यार्जनोद्योगस्तेनात्यज्यत भूभुजा । जरसा शमिवाण्या च कर्णमूलमवाप्तया ॥२॥
अनयद्विनयोदात्तः समं स्वविषयेण तान् । विषयान्वशिनामग्र्यः स तान्पश्चापि विस्मृतिम् ॥३॥
धावन्राज्येच्छया दुर्गागलिकायां स्वमन्त्रिभिः । कालेन स्थापितो बद्ध्वेत्यभ्यधायि तु कैरपि ॥४॥
अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् । विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥
शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः । अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादि कदर्थितम् ॥६॥
इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम् । कंचित्कालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम् ॥७॥
असपूर्वापि तेनोर्वी सपूर्वेव महीभुजा । लालिता हृदयज्ञेन पत्या नववधूरिव ॥८॥
भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान्भुवं तस्मिन्दिवं गते । जलौकास्तत्सुतो भूमेर्भूषणं समपद्यत ॥९॥
पितुरेव समं कालं वृद्धिहेतोः स दिद्युते । विपुवत्पूर्णशीतांशुरिव शीतेतरार्चिषः ॥१०॥
अथ वाक्पुष्टया सार्धं देव्या दिव्यप्रभावया । भुवं तत्प्रभवो भुञ्जंस्तुञ्जीनोऽरञ्जयत्प्रजाः ॥११॥
दंपतिभ्यामियं ताभ्यामभूष्यत वसुंधरा । गङ्गामृगाङ्कखण्डाभ्यां जटाभूरिव धूर्जटेः ॥१२॥
मण्डलं साध्वधत्तां तौ नानावर्णमनोरमम् । शतह्रदापयोवाहौ माहेन्द्रमिव कार्मुकम् ॥१३॥

अज तथा गोशृङ्गनिर्मित धनुष धारण किये, गणेश एवं गजचर्मधारी, नाना प्रकारकी विचित्रताओंसे परिपूर्ण तथा स्त्री-पुरुष दो भागोंमें विभक्त सर्वव्यापक भगवान् शंकरके शरीरकी जय हो ॥ १ ॥ उसके बाद राजा अन्धयुधिष्ठिरने वृद्धावस्थासे तथा मुनियोंके शान्तिप्रद उपदेश सुनकर खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करनेका प्रयत्न त्याग दिया ॥ २ ॥ जितेन्द्रियोंमें अग्रणी उस राजाने अब इन्द्रियों तथा उनके शब्द-स्पर्शादि पाँचों विषयों-को चित्तसे उतारकर सदाके लिए भुला दिया ॥ ३ ॥ कुछ इतिहासकारोंका यह भी कथन है कि—'राजा अन्धयुधिष्ठिर अपने राज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए जब इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था, तब उसके मंत्रियोंने दुर्गागलीमें उसे पकड़कर कारागारमें डाल दिया ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन मंत्रियोंने राजा विक्रमादित्यके वंशज प्रतापादित्यको देशान्तरसे लाकर राजसिंहासनपर बिठाया' ॥ ५ ॥ कुछ इतिहासकारोंका यह लेख भ्रामक है कि 'शकारि विक्रमादित्य और यहाँ वर्णित विक्रमादित्य दोनों एक ही थे' ॥ ६ ॥ कश्मीरमें आपसी मन-मोटाव राजा प्रतापादित्यके राज्यकालतक बना रहा। किन्तु देशके हर्ष आदि बाहरी राजाओंकी अधीनतामें जाने-पर वह वैमनस्य दूर हो गया। इसके बाद उन हर्ष आदि राजाओंका कुछ समयतक यहाँ आधिपत्य बना रहा ॥ ७ ॥ यद्यपि कश्मीर उसका परम्पराप्राप्त राज्य नहीं था। तथापि जैसे कोई सुन्दर पति अपनी नयी दुल-हिनका लालन-पालन करता है, उसी प्रकार राजा प्रतापादित्यने बड़ी तत्परताके साथ उसका पालन किया ॥ ८ ॥ बत्तीस वर्षों तक पृथिवीका शासन करके जब वह दिवङ्गत हुआ, तब उसका पुत्र जलौक राजा बना ॥ ९ ॥ जैसे सूर्यसे दीप्ति प्राप्त करके चन्द्रमा चमकता है, उसी प्रकार उस राजाने भी अपने पिताका राज्य प्राप्त करके प्रजाका कल्याण करते हुए ३२ वर्ष तक सुचारुरूपसे शासन किया ॥ १० ॥ उसके बाद उसका पुत्र तुंजीन अपनी दिव्य प्रभावशालिनी रानी वाक्पुष्टाके साथ शासन करता हुआ प्रजाजनोंको आनन्दित करने लगा ॥ ११ ॥ जैसे चन्द्रमाकी कला तथा गंगाकी धारासे शंकरजीके जटाजूटकी शोभा बढती है, वैसे ही राजा तुंजीन और महारानी वाक्पुष्टासे उन दिनों कश्मीरकी शोभा बढ रही थी ॥ १२ ॥ जिस तरह बिजली और बादलके संयोगसे नाना प्रकारके रंगोंवाला इन्द्रधनुष प्रस्तुत होता है, वैसे ही राजा जलौक और रानी वाक्पुष्टासे समस्त

चक्राते च महाभागौ विश्रमाभरणं भुवः । तुङ्गेश्वरं हरावासं कतिकाख्यं च पत्तनम् ॥१४॥
क्वचिन्मडवराज्यान्तःस्थाने चण्डातपोज्ज्वले । तत्प्रभावेण फलितं बृक्षैस्तत्क्षणरोपितैः ॥१५॥
नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः । द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्दकोऽभवत् ॥१६॥
तयोः प्रभावमाहात्म्यजिज्ञासार्थमिवोद्यता । प्रजासु दुःसहा जातु व्यापद्दैवी व्यजृम्भत ॥१७॥
पाकोन्मुखशरच्छालिच्छन्नकेदारमण्डले । मासि भाद्रपदेऽकस्मात्पपात तुहिनं महत् ॥१८॥
तस्मिन्विश्वक्षयोद्युक्तकालाट्टहसितोपमे । न्यमज्जञ्छालयः साकं प्रजानां जीविताशया ॥१९॥
अथासीत्क्षुत्परिक्षामजनप्रेतकुलाकुलः । प्राकारो निरयस्येव घोरो दुर्भिक्षविप्लवः ॥२०॥
पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं पितृदाक्षिण्यमातुरः । कुक्षिंभरिः क्षुदुत्तप्तो विसस्माराखिलो जनः ॥२१॥
क्षुत्तापाढ्यस्मरल्लज्जामभिमानं कुलोन्नतिम् । अशनाहंक्रियाघातो लोको लक्ष्मीकटाक्षितः ॥२२॥
क्षामं कण्ठगतप्राणं याचमानं सुतं पिता । पुत्रो वा पितरं त्यक्त्वा चकार स्वस्य पोषणम् ॥२३॥
स्नाय्वस्थिशेषे बीभत्से स्वदेहेऽहंक्रियावताम् । अभूद्भोज्यार्थिनां युद्धं प्रेतानामिव देहिनाम् ॥२४॥
रूक्षाभिभाषी क्षुत्क्षामो घोरो दिक्ष्वक्षिणी क्षिपन् । एक एको जगज्जीवैरियेष स्वात्मपोषणम् ॥२५॥
तस्मिन्महाभये घोरे प्राणिनामतिदुःसहे । ददृशे लोकनाथस्य तस्यैव करुणार्द्रता ॥२६॥
निवारितप्रतीहारः स रत्नौषधिशोभिना । दर्शनेनैव दीनानामलक्ष्मीक्लममच्छिनत् ॥२७॥
सपत्नीको निजैः कोशैः संचयैर्मन्त्रिणामपि । क्रीतान्नः स दिवारात्रं प्राणिनः समजीवयत् ॥२८॥
अटवीषु श्मशानेषु रथ्यास्ववसथेषु च । क्षुत्क्षामः क्ष्माभुजा तेन न हि कश्चिदुपैक्ष्यत ॥२९॥

कश्मीरमण्डलको अनोखा सौन्दर्य प्राप्त हो रहा था ॥१३॥ महान् भाग्यशाली उस दम्पतीने धरतीके आभूषण भगवान् तुंगेश्वरजीका मन्दिर बनवाकर कतिका नामकी नगरी बसायी ॥ १४ ॥ एक बार सूर्यनारायणकी प्रचण्ड किरणोंसे सन्तप्त मरुभूमिके सदृश शुष्क मडव राज्यमें उस राजाके पुण्यप्रभावसे तत्काल बोये गये बीजसे फल निकल आये थे ॥ १५ ॥ राजा तुंजीनके शासनकालमें ही द्वैपायन व्यास मुनिका अंशावतार एवं नाटककार चंदक नामका कवि हुआ था ॥ १६ ॥ जैसे उन दोनोंके पुण्यप्रभावकी परीक्षाके निमित्त ही एक बार एकाएक उसकी प्रजापर दुःसह दैवी विपत्ति आ पड़ी ॥ १७ ॥ जब कि भाद्रपदमासमें शालि धान्य पक रहा था, तभी अकस्मात् जोरोंसे बर्फ गिरने लगी ॥ १८ ॥ समस्त विश्वका विनाश करनेके लिए उद्यत कालके अट्टहासकी भाँति उस भीषण हिमपातसे प्रजाके जीवनकी आशाके साथ खेतोंका सारा शालिधान्य बर्फमें डूब गया ॥ १९ ॥ अतएव भूखसे तड़प-तड़पकर मरनेवाले हजारों प्रेतोंसे वह दुर्भिक्ष नरकके प्राकार सरीखा दीखने लगा ॥ २० ॥ उस भीषण अकालके समय क्षुधाके कारण पेट पालनकी लालसावश लोग पत्नीका प्रेम, पुत्रका स्नेह एवं पिताके प्रति भक्तिभाव-आदि सब कुछ भूल गये ॥ २१ ॥ भूखकी ज्वालासे सन्तप्त होकर लोकलाज, स्वाभिमान एवं कुलीनता आदि सभी सद्गुणोंको बिसारकर धनी लोग केवल भोजनप्राप्तिके अहंकारसे मत्त होकर इतराने लगे ॥ २२ ॥ दुर्बल तथा भूखसे कण्ठतक प्राण आजानेपर भोजन माँगते हुए पुत्रकी उपेक्षा करके पिता अपना पेट भरता था। उसी प्रकार क्षुधासे तड़पते हुए पिताकी ओर न निहारकर पुत्र अपना उदर भर लिया करता था ॥ २३ ॥ अस्थिचर्मावशिष्ट एवं प्रेतकी तरह भयंकर उन कंगालोंमें अपने शरीरकी रक्षाके लिए भोजनके निमित्त परस्पर द्वंद्व युद्ध होने लगा ॥ २४ ॥ वे आपसमें एक दूसरेको जली-कटी बातें सुनाते हुए भूखसे पीडित होकर चारों ओर ताकते थे और सबको अपने प्राण बचानेकी चिन्ता हो रही थी ॥ २५ ॥ उस भीषण दुर्भिक्षके समय एकमात्र उस परम दयालु राजामें ही दयाभाव दीख रहा था ॥ २६ ॥ जब प्रजाकी दशा बहुत शोचनीय हो गयी, तब रत्न तथा औषधिके समान शोभासम्पन्न उस राजाने द्वारपालोंको हटा दिया और समस्त प्रजाजनोंको अपना दर्शनमात्र देकर उनका दारिद्र्य दुःख दूर कर दिया ॥ २७ ॥ इसके बाद वह सपत्नीक राजा अपने तथा मंत्रियोंके संचित कोषसे अन्न खरीदकर प्रजाका पालन करने लगा ॥ २८ ॥ वह जंगलों,

ततो निःशेषितधनः क्षीणान्नां वीक्ष्य मेदिनीम् । क्षपायामेकदा देवीमेवमूचे स दुःखितः ॥३०॥
देव्यस्मदपचारेण ध्रुवं केनापि दुस्तरा । जाता निरपराधानां जनानां व्यापदीदृशी ॥३१॥
धिङ्मामधन्यं यस्याग्रे लोकोऽयं शोकपीडितः । पश्यन्नशरणामुर्वीमनुग्राह्यो विपद्यते ॥३२॥
प्रजा निःशरणा एता अन्योन्यं बान्धवोज्झिताः । अरक्षतो भयेऽमुष्मिन्किं कार्यं जीवितेन मे ॥३३॥
यथा कथंचिल्लोकोऽयं दिनान्येतानि यत्नतः । मयातिवाहितः सर्वो न च कोऽपि व्यपद्यत ॥३४॥
अतिक्रान्तप्रभावेयं कालदौरात्म्यपीडिता । निष्किंचनाऽद्य संजाता पृथिवी गतगौरवा ॥३५॥
तदिमाः सर्वतो मग्ना दारुणे व्यसनार्णवे । उपायः कतमस्तावत्समुद्धर्तुं क्षमः प्रजाः ॥३६॥
निरालोको हि लोकोऽयं दुर्दिनग्रस्तभास्करः । कालरात्रिकुलैर्विष्वक्परीत इव वर्तते ॥३७॥
हिमसंघातदुर्लङ्घ्यक्षितिभृद्रुद्धनिर्गमाः । बद्धद्वारकुलायस्थखगवद्विवशा जनाः ॥३८॥
शूराश्च मतिमन्तश्च विद्यावन्तश्च जन्तवः । कालदौरात्म्यतः पश्य जाता निहतयोग्यताः ॥३९॥
आशाः काञ्चनपुष्पकुड्मलकुलच्छन्ना न काः क्ष्मातले सौजन्यामृतवर्षिभिस्तिलकितं सेव्यैर्न किं मण्डलम् ।
पन्थानः सुचिरोपचाररुचिरैर्व्याप्ता न कैः संस्तुतैस्तेषामत्र वसन्ति निह्नुतगुणाः कालेन ये मोहिताः ॥४०॥
तदेष गलितोपायो जुहोमि ज्वलने तनुम् । न तु द्रष्टुं समर्थोऽस्मि प्रजानां नाशमीदृशम् ॥४१॥
धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुखं ये निशि शेरते । पौरान्पुत्रानिव पुरः सर्वतो वीक्ष्य निर्वृतान् ॥४२॥
इत्युक्त्वा करुणाविष्टो मुखमाच्छाद्य वाससा । निपत्य तल्पे निःशब्दं रुरोद पृथिवीपतिः ॥४३॥
निवातस्तिमितैर्दीपैरुद्ग्रीवैः कौतुकादिव । वीक्षमाणाऽथ तं देवी जगाद जगतीभुजम् ॥४४॥
राजन्प्रजानां कुकृतैः कोऽयं मतिविपर्ययः । येनेतर इव स्वैरमवीरोचितमीहसे ॥४५॥

श्मशानों, गलियों और बाजारोंमें कहीं भी मिलनेवाले भूखे लोगोंकी उपेक्षा नहीं करता था ॥ २९ ॥ इस प्रकार खुले हाथों दान करनेके कारण उस राजाका सारा खजाना खाली हो गया और देशभरमें कहीं अन्नका एक कण भी नहीं रह गया। तब अत्यन्त दुःखित होकर राजाने अपनी प्रियतमासे कहा—देवि ! हमारे किसी अज्ञात पापके कारण ही इन निपराध प्रजाजनोंपर ऐसी भयावह विपत्ति आयी हुई है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मुझ सरीखे अभागेको अनेकशः धिक्कार है, जिसकी भूखी प्रजा आज असहाय होकर मेरे देखते-देखते मर रही है ॥ ३२ ॥ परस्पर बान्धवभाव त्यागकर मारी-मारी फिरनेवाली प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ मुझ जैसे पामरके जीवनसे क्या लाभ ? ॥ ३३ ॥ इतने दिनों तक मैंने किसी-किसी तरह इस दीन प्रजाके प्राणोंकी रक्षा की, जिससे इनमेसे किसीको भी कोई कष्ट नहीं हुआ ॥ ३४ ॥ विकराल कालकी दुष्टतासे पीडित होकर इस समय यह पृथिवी भी अकिंचन, प्रभावहीन एवं गौरवसे विहीन हो गयी है ॥ ३५ ॥ सर्वथा दारुण दुःखरूपी समुद्रमें डूबी हुई प्रजाके उद्धारका क्या उपाय है ॥ ३६ ॥ दुर्दिनके कारण सूर्यका दर्शन नहीं होता, सब तरफ अँधेरा छाया हुआ है और सारा संसार कालरात्रियोंसे घिरा दीखता है ॥ ३७ ॥ सभी पर्वतीय मार्ग बर्फसे अवरुद्ध हो गये हैं। अतएव मेरी प्रजा पींजरेमें बन्द पंछीकी तरह विवश हो गयी है ॥ ३८ ॥ वीर, बुद्धिमान् और विद्वान् सभी लोग कालकी दुष्टतासे आज बुद्धिहीन एवं प्रभाशून्य हो गये हैं ॥ ३९ ॥ इस जगतीतलकी कौन-सी दिशा सुवर्णपुष्पकी कलियोंसे रहित है, कौनसा प्रदेश सौजन्यरूपी अमृत बरसानेवाले धनियोंसे शून्य है और अपनी योग्यता तथा सेवासे ख्याति प्राप्त किये हुए ऐसे कितने मनुष्य हैं, जिन्हें अपनी उन्नतिका मार्ग न सूझता हो। किन्तु अभाग्यके चक्करमें पड़कर इस देशके सभी गुणी मनुष्योंके गुण आज लुप्त हो गये हैं ॥ ४० ॥ अतएव सब प्रकारसे निरुपाय होकर अब मैं अपनी देह अग्निमें होम दूँगा। अपनी प्रजाका यह भीषण विनाश मैं नहीं देख सकता ॥ ४१ ॥ वे राजे धन्य हैं, जो पुत्रोंकी भाँति प्रिय अपनी प्रजाको सर्वथा सुखी देखकर रातको सुखकी नींद सोते हैं ॥ ४२ ॥ यह कहकर करुणासे आर्द्र हृदयवाला वह राजा वस्त्रसे मुँह ढाँक तथा शय्यापर गिरकर रोने लगा ॥ ४३ ॥ जब कि रात्रिके समय निर्वात स्थानमें स्थित दीपक कुतूहलके साथ अपनी गर्दनें उठा-उठाकर देख

यद्यसाध्यानि दुःखानि छेत्तुं न प्रभविष्णुता । तन्महीपाल महतां महत्त्वस्य किमङ्कनम् ॥४६॥
कः शक्रः कतमः स्रष्टा वराकः कतमो यमः । सत्यव्रतानां भूपानां कर्तुं शासनलङ्घनम् ॥४७॥
पत्यौ भक्तिर्व्रतं स्त्रीणामद्रोहो मन्त्रिणां व्रतम् । प्रजानुपालनेऽनन्यकर्मता भूभृतां व्रतम् ॥४८॥
उत्तिष्ठ व्रतिनामग्र्य क्व विपर्येति मद्वचः । प्रजापाल प्रजानां ते नास्त्येव क्षुत्कृतं भयम् ॥४९॥
इति संरम्भतः प्रोक्ते तयाऽनुध्याय देवताः । प्रतिगेहं गतप्राणः कपोतनिवहोऽपतत् ॥५०॥
प्रातस्तन्नृपतिर्वीक्ष्य व्यरंसीन्मरणोद्यमात् । प्रजाश्च प्रत्यहं प्राप्तैः कपोतैर्जीवितं दधुः ॥५१॥
वस्त्वन्तरं किमपि तत्साध्वी नूनं ससर्ज सा । जनताजीविताबाप्त्यै न कपोतास्तु तेऽभवन् ॥५२॥
तादृशां न हि निर्व्याजप्राणिकारुण्यशालिनाम् । हिंसया धर्मचर्यायाः शक्यं क्वापि कलङ्कनम् ॥५३॥
अभवन्निर्मलं व्योम देवीकृत्यैः सह क्रमात् । साकं भूपालशोकेन दुर्भिक्षं च शमं ययौ ॥५४॥
सा भूतिविभवोदग्रमग्रहारं द्विजन्मनाम् । सती कतीमुषं चक्रे रामुषं चापकल्मषा ॥५५॥
वर्षैः षट्त्रिंशता शान्ते पत्यौ विरहजो ज्वरः । तत्यजे ज्वलनज्वालानलिनप्रच्छदे तया ॥५६॥
सा यत्र शुचिचारित्रा विपन्नं पतिमन्वगात् । स्थानं जनैस्तद्वाक्पुष्टाटवीत्यद्यापि गद्यते ॥५७॥
चारुचारित्रया तत्र तया सत्रेऽवतारिते । नानापथागतानाथसार्थैरद्यापि भुज्यते ॥५८॥
आभ्यामभ्यधिकं कर्तुं शक्तिः कस्येति निश्चितम् । विचिन्त्यारोचकी धाता नापत्यं निर्ममे तयोः ॥५९॥
वेधाः परां धुरमुपैति परीक्षकाणामिक्षोः फलप्रजननेन कृतश्रमो यः ।
विस्मारितोद्धुरसुधारसयोग्यतां तत्तस्मादुदेत्य किमिवाभ्यधिकं विदध्यात् ॥६०॥

रहे थे, तब रानीने राजासे कहा— ॥ ४४ ॥ 'महाराज ! प्रजाजनोंके दुर्भाग्यसे आपकी बुद्धिमें ऐसे विपरीत विचार क्यों उत्पन्न हो रहे हैं ? असाधारण धैर्यशाली होते हुए भी आप अधीरजनोचित बातें क्यों करने लगे हैं ? ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! यदि बड़े लोग दुःखियोंके दुःख न दूर कर सके तो उन बड़ोंका बड़प्पन ही क्या रहा ? ॥ ४६ ॥ सत्यप्रतिज्ञ राजाओंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी सामर्थ्य इन्द्र, ब्रह्मा और बेचारे यममें भी नहीं है ॥ ४७ ॥ पतिभक्ति स्त्रियोंका व्रत है, निर्वैर भावसे प्रजाके व्यवहारोंको चलाना मंत्रियोंका व्रत है और अन्य सभी काम छोड़कर प्रेमपूर्वक प्रजाका पालन करना राजाका व्रत होता है ॥ ४८ ॥ हे व्रतियोंमें अग्रणी ! आप उठिए। क्या कभी मेरी बात मिथ्या हुई है ? हे प्रजापालक ! अब आपकी प्रजाको क्षुधाजनित संकटका भय नहीं होगा ॥ ४९ ॥ देवताओंका स्मरण करके रानी वाक्पुष्टाने बड़े विश्वासके साथ ये वचन कहे थे। अतएव तत्काल प्रजाजनोंके प्रत्येक घरमें बहुतेरे मरे हुए कबूतर आकाशसे आ गिरे ॥ ५० ॥ प्रातःकालके समय राजाने यह घटना घटित देखकर प्राण त्यागनेका विचार छोड़ दिया। उधर प्रजाजन भी नित्य आकाशसे गिरे कबूतरोंको खाकर जीवन यापन करने लगे ॥ ५१ ॥ सच तो यह है कि प्रजाकी जीवनरक्षाके लिए उस सतीने अपने पातिव्रत धर्मके प्रभावसे किसी अन्य वस्तुको कबूतर बना दिया था, वास्तवमें वे कबूतर नहीं थे ॥ ५२ ॥ क्योंकि निःस्वार्थभावसे प्राणिमात्रपर दया करनेवाले अहिंसक महात्माओंपर हिंसाका कलंक नहीं लगाया जा सकता ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उस देवीके प्रभावसे धीरे-धीरे आकाश निर्मल होने लगा और राजा तुंजीनके शोकके साथ-साथ दुर्भिक्षका भी अन्त हो गया ॥ ५४ ॥ आगे चलकर उस साध्वी रानीने प्रचुर वैभवसे परिपूर्ण कतीमुष और रामुष नामके दो अग्रहार दान करके ब्राह्मणोंको दिये ॥ ५५ ॥ इस प्रकार पूरे ३६ वर्ष राज्य करनेके बाद जब उसके पतिका देहान्त हो गया, तब धधकती हुई आगके चितारूपी कमलपर बैठकर उसने पतिवियोगजनित विरहज्वरका ताप दूर किया ॥ ५६ ॥ पुनीत आचारवाली उस पतिव्रताने जहाँ पतिदेवके साथ चितामें अपना शरीर भस्म किया था, उस स्थानको आज भी जनसाधारणके लोग 'वाक्पुष्टाटवी' कहते हैं ॥ ५७ ॥ उच्च चरित्रवती वाक्पुष्टा देवीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्रोंमें आज भी बहुतेरे अतिथि भोजन पाते हैं ॥ ५८ ॥ उनके जैसे असाधारण काम करनेवाले दम्पती विरले ही उत्पन्न होते हैं, तब उनसे अधिक कार्य करनेकी शक्ति भला किसमें हो सकती है ? यही सोचकर परीक्षक विधाताने उस दम्पतीको निःसन्तान रक्खा था ॥ ५९ ॥

दीर्घदुर्दिननष्टार्कं राष्ट्रमात्मापचारतः । ज्ञात्वा राज्यग्निसाद्देहं सा चकारेति केचन ॥६१॥
ततोऽन्यकुलजो राजा विजयोऽष्टावभूत्समाः । पत्तनेन परीतं यश्चकार विजयेश्वरम् ॥६२॥
सुतो महीमहेन्द्रस्य जयेन्द्रस्तस्य भूपतेः । क्ष्मामाजानुभुजो राजा द्युभोजाऽथ पृथुप्रथः ॥६३॥
अलोलकीर्तिकल्लोलदुकूलवलनोज्ज्वलाम् । बभार यद्भुजस्तम्भो जयश्रीसालभञ्जिकाम् ॥६४॥
तस्याभूदद्भुतोदन्तभवभक्तिविभूषितः । राज्ञः संधिमतिर्नाम मन्त्री मतिमतां वरः ॥६५॥
नास्त्युपायः स संसारे कोऽपि योऽपोहितुं क्षमः । भूपालमत्तकरिणामेषां चपलकर्णताम् ॥६६॥
अत्यद्भुतमतिः शङ्क्यः सोऽयमुक्त्वेति यद्विटैः । तस्मिन्धीसचिवे द्वेषस्तेनाग्राह्यत भूभुजा ॥ युग्मम् ॥६७॥
निवारितप्रवेशोऽथ सकोपस्तमहेतुकम् । निनाय हृतसर्वस्वं यावदायुर्दरिद्रताम् ॥६८॥
तस्य भूपतिविद्वेषग्रीष्मोष्मपरिशोषिणः । आप्यायं राजपुरुषा वार्तयाऽपि न चक्रिरे ॥६९॥
गिरं गभीरो गृह्णाति क्ष्माभृद्यावत्तदग्रगाः । उक्तानुवादिनस्तावद्भवक्त्कं प्रतिरवा इव ॥७०॥
स तु राजविरुद्धत्वदारिद्र्याभ्यां न विव्यथे । गतप्रत्यूहया प्रीतः प्राप्तया हरसेवया ॥७१॥
अथ भाव्यर्थमाहात्म्यात्पप्रथे प्रतिमन्दिरम् । राज्यं संधिमतेर्भावीत्यश्रुतापि सरस्वती ॥७२॥
नाचोदिता वाक्चरतीत्याप्तेभ्यः श्रुतवान्नृपः । ततः संभूतसंत्रासः कारावेश्मनि तं न्यधात् ॥७३॥
तत्र तस्योग्रनिगडैः पीडिताङ्घ्रेर्विशुष्यतः । पूर्णोऽभूद्दशमो वर्षो भूपतेश्चायुषोऽवधिः ॥७४॥
निष्पुत्रः स महीपालो मुमूर्षुर्दाहमादधे । रोगोत्थया पीडया च चिन्तया च तदीयया ॥७५॥

विधाता सच्चा परीक्षक इसी लिए कहा जाता है कि उसने ऊँखको अत्यन्त मधुर समझकर उसमें फल नहीं लगाये। क्योंकि उसे इस बातका पूरा विश्वास था कि अमृतसे भी श्रेष्ठ इस ऊँखसे बढ़कर और कौनसी वस्तु श्रेष्ठ हो सकती है? ॥ ६० ॥ बहुतेरे इतिहासकारोंका यह कहना है कि देवी वाक्पुष्टा यह सोचकर अग्निकुंडमें जल मरी थी कि 'मेरे ही किसी अज्ञात पापसे राज्यमें बहुत समय तक बादल छाये रहनेके कारण सूर्यनारायणके दर्शन नहीं हुए और दुर्भिक्ष पड़ा' ॥ ६१ ॥ उसके बाद किसी अन्य राजकुलमें उत्पन्न राजा विजयने आठ वर्षतक कश्मीरके राजसिंहासनको सुशोभित करते हुए राज्य किया। उसने मन्दिर निर्माण कराके उसमें विजयेश्वर शिवकी स्थापना की और मन्दिरके चारों ओर विजयनगर बसाया ॥ ६२ ॥ उसके बाद उसका पुत्र जयेन्द्र राज्य करने लगा। राजा जयेन्द्र महाराज पृथुके समान प्रतापवान् और आजानुबाहु था ॥ ६३ ॥ चिरस्थायी कीर्तिपरम्परारूपी वस्त्रसे अलंकृत उसका भुजदण्ड जयश्रीरूपिणी पुत्तलिकाका आधारस्तम्भ था ॥ ६४ ॥ परमबुद्धिमान्, कीर्तिमान् और असाधारण शिवभक्त सन्धिमति उस राजाका मंत्री था ॥ ६५ ॥ किन्तु मदोन्मत्त राजा तथा हाथियोंके चंचल कानोंको स्थिर कर देनेका संसारभरमें कोई उपाय नहीं निश्चित हो सका है ॥ ६६ ॥ क्योंकि 'यह मंत्री अत्यधिक बुद्धिमान् है। इससे आपको सदा सशंक रहना चाहिए' यह कहकर धूर्तोंके बहकानेसे राजा जयेन्द्र उस बुद्धिमान् मंत्रीसे द्वेष करने लगा ॥ ६७ ॥ कालान्तरमें कुपित राजाने अकारण उसे राजदरबारमें आनेसे रोक दिया और उसका सर्वस्व छीनकर उसे जीवन भरके लिए दरिद्र बना डाला ॥ ६८ ॥ इस प्रकार राजाके रोषरूपी ग्रीष्मतापसे सूखते हुए उस मंत्रीको कोई राजकर्मचारी वचनसे भी सन्तोष नहीं देता था ॥ ६९ ॥ विचारवान् राजे सहसा किसीकी बातपर विश्वास नहीं करते। हाँ, गम्भीर विचार करनेके बाद भले ही उसकी बातपर विश्वास कर लें। किन्तु प्रतिध्वनिमात्र करने तथा पर्वतके स्वभाववाले राजे किसीकी भी बातपर तुरन्त विश्वास कर लेते हैं ॥ ७० ॥ किन्तु निर्बाधभावसे शिवभक्ति करते रहनेके कारण प्रसन्न मंत्री सन्धिमति राजरोष तथा दारिद्र्यसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ ॥ ७१ ॥ कुछ दिनों बाद भावीकी प्रबलतावश प्रत्येक देवमन्दिरमें यह आकाशवाणी होने लगी कि 'भविष्यमें इस राज्यका राजा मंत्री सन्धिमति होगा' ॥ ७२ ॥ विश्वस्त पुरुषोंके मुखसे आकाशवाणीका समाचार सुनकर भयभीत राजाने उस मंत्रीको जेलमें डाल दिया ॥ ७३ ॥ इस प्रकार बेड़ी पहिनकर पीडित पैरोंसे कारागारमें पड़े-पड़े उस मंत्रीके दस वर्ष बीत गये और तबतक

ऊष्मायमाणो विद्वेषवह्निना ज्वलताऽनिशम्। न विना तद्वधं मेने भवितव्यप्रतिक्रियाम् ॥७६॥
भाव्यर्थस्याबुधाः कुर्युरुपायं स्थगनाय यम्। स एवापावृतं द्वारं ज्ञेयं दैवेन कल्पितम् ॥७७॥
दग्धाङ्गारकदम्बके विलुठतः स्तोकोन्मिषत्तेजसो वेधा वह्निकणस्य शक्तिमतुलामाधातुकामो हठात्।
तन्निर्वापणमिच्छतः प्रतनुते पुंसः समीपस्थिते संतापद्रुतभूरिसर्पिषि घटे पानीयकुम्भभ्रमम् ॥७८॥
अथ राजाज्ञया क्रूरैर्वधकर्माधिकारिभिः। निशि संधिमतिः शूले समारोप्य विपादितः ॥७९॥
प्रोतशूले श्रुते तस्मिञ्शोकशङ्कुर्महीपतेः। निरगाद्रोगभग्नस्य पूर्वं पश्चात्तु जीवितम् ॥८०॥
सप्तत्रिंशतिवर्षेषु यातेष्वस्मिन्निरन्वये। प्रशान्तभूमिपालाऽभूत्कतिचिद्दिवसानि भूः ॥८१॥
अथ संधिमतिं बुद्‍ध्वा तथा व्यापादितं गुरोः। ईशानाख्यस्य हृदयं विवशं वशिनोऽप्यभूत् ॥८२॥
शिरीष इव संसारे सुखोच्छेद्ये मनीषिणाम्। हन्तानृशंस्यं तद्वृन्तमिवैकमवशिष्यते ॥८३॥
स श्मशानभुवं प्रायादनाथस्येव शुष्यतः। कर्तुं विनयिनस्तस्य स्वोचितामन्तसत्क्रियाम् ॥८४॥
तं चास्थिशेषमद्राक्षीत्कृष्यमाणं बलाद्वृकैः। शूलमूलावबद्धास्थिखण्डावष्टंभनिश्चलम् ॥८५॥
समीरणसमाकीर्णमुण्डरन्ध्राग्रनिर्गतैः। ध्वनितैरनुशोचन्तमिवावस्थां तथाविधाम् ॥८६॥
हा वत्स द्रष्टुमीदृक्त्वे जीवाम्यद्येति वादिना। तस्याकृष्यत शूलान्तःप्रोतं तेनाथ कीकसम् ॥८७॥
वेष्टितांघ्रिः शिरःशीर्णैस्तत्कचैर्धूलिधूसरैः। अनैषीत्तं स कङ्कालं वारयन्भपतो वृकान् ॥८८॥
उचितां सत्क्रियां कर्तुं ततस्तस्य समुद्यतः। भाले विधातृलिखितं श्लोकमेतमवाचयत् ॥८९॥
यावज्जीवं दरिद्रत्वं दश वर्षाणि बन्धनम्। शूलस्य पृष्ठे मरणं पुना राज्यं भविष्यति ॥९०॥

राजा जयेन्द्रका भी अन्त समीप आ गया ॥ ७४ ॥ अब वह मरणोन्मुख और निःसन्तान राजा रोगकी वेदना तथा उस मंत्रीकी चिन्तासे मन ही मन जलने लगा ॥ ७५ ॥ इस प्रकार रात-दिन हृदयमें धधकती हुई विद्वेषाग्निसे सन्तप्त वह राजा मंत्रिवधको ही अपनी भवितव्यताके प्रतीकारका उपाय समझ बैठा ॥ ७६ ॥ संसारमें मूर्ख लोग भावीको रोकनेका जो उपाय करते हैं, वह उपाय ही दैवी कल्पनासे भावीके लिए खुला द्वार बन जाता है ॥ ७७ ॥ जले हुए कोयलेमें तनिक-सी चमकती हुई चिनगारीको दैव यदि बरबस भड़काना चाहता हो तो उसे बुझानेका उद्योग करनेवाले मनुष्योंको तापसे पिघला हुआ घीका घड़ा जलकलशके रूपमें दृष्टिगोचर होता है ॥७८॥ तदनन्तर 'राजाकी आज्ञासे क्रूर वधिकोंने सन्धिमतिको रात्रिके समय सूलीपर चढाकर मार डाला' यह सुनकर पहले राजा जयेन्द्रके हृदयका शोकशंकु और उसके बाद रोगसे भग्न प्राण निकल गये ॥७९॥८०॥ इस प्रकार उसने सैंतीस वर्षतक राज्य किया। उसके कोई सन्तति नहीं थी। इस लिए कुछ समय कश्मीरका राजसिंहासन सूना पड़ा रहा ॥८१॥ उधर अपने परम प्रिय शिष्य सन्धिमतिके देहान्तकी बात सुनकर जितेन्द्रिय होनेपर भी उसके गुरु ईशानको अपार दुःख हुआ ॥८२॥ मनीषी पुरुष शिरीष पुष्पके समान कोमल इस संसारको अनायास उच्छिन्न कर सकते हैं। एकमात्र उनका दयाभाव ही वृन्त बनकर इसकी रक्षा करता है ॥८३॥ सो योगी ईशान अपने शिष्य संधिमतिका दाहसंस्कार करनेके लिए श्मशानमें गया। क्योंकि सन्धिमति बड़ा विनयी और अनाथ था ॥ ८४ ॥ सूलीके निकट पहुँचकर उसने देखा कि अस्थि-चर्ममात्र अवशिष्ट उसके शरीरकी भेड़ियोंने बड़ी दुर्दशा की थी। उस समय उसकी ठठरी सूलीके अग्रभागपर लटकी हुई थी ॥ ८५ ॥ उसके मस्तकके छिद्रमें जब वायु प्रविष्ट होती थी, देखते ही 'हा तब ऐसा स्वर निकलता था कि जैसे उसकी दुर्दशापर कोई रो रहा हो ॥ ८६ ॥ उसे वत्स! तेरी यह दशा देखनेके लिए ही क्या मैं अबतक जीवित हूँ ?' यह कहता हुआ ईशान विलाप करने लगा। कुछ देर बाद उसका शव सूलीसे उतारकर मार्गमें चिल्लाते हुए भेड़ियोंको हटाता हुआ वह नरकंकाल उठाये हुए चला। उस समय उस योगीके धूलिधूसरित केश मृतकके चरणोंमें लिपट गये थे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ जब वह उसका दाहसंस्कार करनेको उद्यत हुआ, तब उसने मृतकके ललाटपर लिखा हुआ यह श्लोक पढ़ा—॥ ८९ ॥ 'यह व्यक्ति जीवनभर दरिद्र रहता हुआ दस वर्ष कारागार भोगेगा। उसके बाद यह सूलीपर

पादत्रयस्य दृष्टार्थः श्लोकस्यासीत्स योगिवित्। द्रष्टव्ये तुर्यपादार्थप्रत्यये कौतुकान्वितः ॥९१॥
अचिन्तयच्च संभ्रान्तः कथमेतद्भविष्यति। उवाच च विधेः शक्तिमचिन्त्यां कलयंश्चिरम् ॥९२॥
तत्तत्कर्मव्यतिकरकृतः पारतन्त्र्यानुरोधात्सज्जाः सर्वे व्यवसितहठोन्मूलनाय प्रयत्नात्।
चित्रं तत्राप्युदयति विधेः शक्तिरप्यद्भुतेयं यन्माहात्म्याद्विविधघटनासिद्धयो निर्निरोधाः ॥९३॥
मणिपूरपुरे पार्थं निहतं समजीवयत्। फणिकन्याप्रभावेण सर्वाश्चर्यनिधिर्विधिः ॥९४॥
द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं मातुर्गर्भे परीक्षितम्। जीवयन्कृष्णमाहात्म्याद्धाता धुर्योऽधिकारिणाम् ॥९५॥
कचं भस्मीकृतं दैत्यैर्नागांस्तार्क्ष्येण भक्षितान्। पुनर्जीवयितुं को वा दैवादन्यः प्रगल्भते ॥९६॥
इत्युक्त्वा भाविनोऽर्थस्य द्रष्टुं सिद्धिं समुद्यतः। तत्रैव बद्धवसतिः कङ्कालं स ररक्ष तम् ॥९७॥
अथार्धरात्रे निर्निद्रस्तयैवाद्भुतचिन्तया। धूपाधिवासमीशानो घ्रातवान्दिव्यमेकदा ॥९८॥
उच्चण्डलाडनादण्डोद्घृष्टघण्टौघटांकृतैः। चण्डैर्डमरुनिर्घोषैर्घर्घरं श्रुतवान्ध्वनिम् ॥९९॥
उद्घाटिततमोरिः स ततः पितृवनावनौ। ददर्श योगिनीस्तेजःपरिवेषान्तरस्थिताः ॥१००॥
तासां संभ्रममालक्ष्य कङ्कालं चापवाहितम्। ईशानस्तां श्मशानोर्वीं धृतासिश्चकितो ययौ ॥१०१॥
अथापश्यत्तरुच्छन्नः शायितं मण्डलान्तरे। संधीयमानसर्वाङ्गं कङ्कालं योगिनीगणैः ॥१०२॥
उल्लसद्वरसंभोगवाञ्छा मद्यपदेवताः। वीरालाभात्समन्विष्य कङ्कालं तमपाहरन् ॥१०३॥
एकमेकं स्वमङ्गं च विनिधाय क्षणादथ। कुतोऽप्यानीय पुंलक्ष्म पूर्णाङ्गं तं प्रचक्रिरे ॥१०४॥

चढाकर मार डाला जायगा। तदनन्तर इसे राज्यकी प्राप्ति होगी' ॥९०॥ इस श्लोकके तीन चरणोंका अर्थ तो उस योगीने प्रत्यक्ष घटित होते देख लिया था। अतएव अब चतुर्थ चरणका अर्थ देखनेके लिए उसके मनमें प्रबल उत्कंठा जागृत हो गयी ॥९१॥ बड़े विस्मयके साथ वह सोचने लगा कि 'मर जानेके बाद यह राजा कैसे होगा?' बड़ी देर तक सोच-विचारके बाद उसने मन ही मन कहा कि 'विधाताकी शक्ति अचिन्त्य है ॥९२॥ (संसारका प्रत्येक प्राणी विविध प्रयत्नोंके द्वारा हठात् दैवी विधानका प्रतिरोध करना चाहता है। तथापि अघटितघटनापटीयान् विधाताका विलक्षण प्रभाव और उसकी अद्भुत शक्ति अपना काम कर ही गुजरती है ॥९३॥ क्योंकि आश्चर्यके निधान विधाताने मणिपूरपुरमें मरे हुए अर्जुनको एक नागकन्या द्वारा फिरसे जीवित कर दिया था ॥९४॥ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा द्वारा माताके गर्भमें ब्रह्मास्त्रसे दग्ध परीक्षितको भगवान् कृष्णके माहात्म्यसे पुनर्जीवित कर दिया था। इसलिए कहना पड़ता है कि विधाताका अधिकार सर्वथा अक्षुण्ण है ॥९५॥ क्योंकि दैत्यों द्वारा भस्मीभूत कच एवं गरुड़के द्वारा भक्षित सर्पोंको विधाताके सिवाय और कौन पुनर्जीवित कर सकता था' ॥९६॥ मन ही मन ऐसा कहकर योगी ईशान भावी कार्यसिद्धिको देखनेकी अभिलाषासे वहाँ ही रहता हुआ उस नरकंकालकी रक्षा करने लगा ॥९७॥ उस अद्भुत भविष्यकी जिज्ञासासे चिन्तातुर तथा निद्राविहीन उस योगीने एक बार आधी रातके समय दिव्य धूपकी सुगन्धि सूँघी ॥९८॥ उसके बाद भीषण घण्टानाद तथा प्रचण्ड घर्घर शब्द करनेवाले डमरूकी ध्वनि भी उसे सुनायी दी ॥९९॥ जब उसने आँख खोली तो उस श्मशानभूमिपर ही तेजोमण्डलके बीचमें विद्यमान बहुतेरी योगिनियाँ उसे विद्यमान दिखायी पड़ीं ॥१००॥ तदनन्तर उसने देखा कि कोलाहलके साथ योगिनियाँ उस नरकंकालको उठाकर ले जाने लगीं। तब आश्चर्यविभोर योगी ईशान हाथमें तलवार लेकर उनके पीछे-पीछे चला ॥१०१॥ कुछ आगे जाकर वह एक वृक्षकी ओटमें खड़ा होकर उन योगिनियोंका कार्य-कलाप देखने लगा। अब उन योगिनियोंने उस नरकंकालको एक स्थानपर रख दिया और चारों ओरसे घेरकर उसके प्रत्येक अवयवोंको जोड़ने लगीं ॥१०२॥ क्योंकि उन्होंने मद्यपान किया था। इसलिए उन्हें मनुष्यके साथ संभोग करनेकी इच्छा हुई। उस समय उनको कोई पुरुष नहीं मिल सका। इसी कारण उन्होंने इस नरकंकालका अपहरण किया था ॥१०३॥ तब थोड़ी ही देरमें वे योगिनियाँ उसके सभी अंगोंको यथास्थान रखनेके बाद कहींसे पुरुषलिंग ले आयीं और उसे लगाकर शवको पूर्णाङ्ग बना

अथ पुर्यष्टकं भ्राम्यदनाक्रान्तान्यविग्रहम् । योगेनाकृष्य योगेश्यस्तत्र संधिमतेर्न्यधुः ॥१०५॥
ततः सुप्तोत्थित इव प्रत्तदिव्यविलेपनः । समभुज्यत ताभिः स यथेच्छं चक्रनायकः ॥१०६॥
ईशानस्तस्य देवीनां वितीर्णाङ्गाहृतिं पुनः ।
क्षपायां क्षीयमाणायां चकितः पर्यशङ्कत ॥१०७॥
नर्दंस्तद्रक्षया धीरः स च तत्स्थानमाययौ । तच्च योगेश्वरीचक्रं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥१०८॥
अथाश्रूयत वाक्तासां माभूदीशान भीस्तव ।
नास्त्यङ्गहानिरस्माकं व्रते चास्मिन्न वञ्चना ॥१०९॥
अस्मद्वराद्दिव्यवपुःसंवितः संधिमानसौ । आर्यत्वादार्यराजश्च ख्यातो भुवि भविष्यति ॥११०॥
ततो दिव्याम्बरः स्रग्वी दिव्यभूषणभूषितः । ववन्दे संधिमान्प्रह्वः प्राप्तपूर्वस्मृतिर्गुरुम् ॥१११॥
ईशानोऽपि तमालिङ्ग्य स्वप्नेष्वपि सुदुर्लभम् ।
भूमिकामाललम्बे कामिति को वक्तुमर्हति ॥११२॥
असारं च विचित्रं च संसारं ध्यायतोर्मिथः । विवेकविशदा तत्र प्रावर्तत तयोः कथा ॥११३॥
अथ वार्तां विदित्वेमां कुतोऽपि नगरौकसः । सबालवृद्धाः सामात्यास्तमेवोद्देशमाययुः ॥११४॥
पूर्वाकृतिविसंवादाद्भ्रमो नायं स इत्यथ ।
तेनाच्छिद्यत संवादिनिखिलान्पृच्छता वचः ॥११५॥
अर्थनां शासितुं राष्ट्रं पौरगणामपराजकम् । सोऽन्वमन्यत कृच्छ्रेण निःस्पृहः शासनाद्गुरोः ॥११६॥
प्राप्योपवनोपान्तं तं दिव्याकृतिशोभिनम् । सतूर्यं स्नापयामासुरभिषेकाम्बुभिर्द्विजाः ॥११७॥

दिया ॥ १०४ ॥ तदनन्तर उन योगिनियोंने अष्टपुरियोंमें चक्कर काटते हुए तथा शरीरान्तरमें अप्रविष्ट सन्धिमतिका लिंगशरीर उस देहमें प्रविष्ट कराके उसे जीवित कर दिया॥ १०५ ॥ जिससे सन्धिमति सोये हुएके समान उठ बैठा। अब उन योगियोंने उसके शरीरमें दिव्य लेप लगाया और उसने उस मण्डलका नायक बनकर उनके साथ यथेच्छ योग किया ॥ १०६ ॥ यह देखकर योगी ईशानको यह संशय हुआ कि 'सवेरा होनेपर सन्धिमतिके अंगोंको अलग-अलग करके ये योगिनियाँ इसे उठा ले जायँगी' ॥ १०७ ॥ तदनन्तर सन्धिमतिकी रक्षा करनेके लिए वह योगी भीषणरूपसे गर्जन करता हुआ उन योगियोंकी ओर दौड़ा। उसे आते देखकर योगियोंका झुण्ड अलक्षित हो गया ॥ १०८ ॥ थोड़ी देर बाद उसे उनके ये वचन सुनायी पड़े—'हे ईशान ! तुम डरो मत। इसके समस्त अंग पूर्ण हैं। हमने इसके साथ किसी प्रकारकी प्रवंचना नहीं की है ॥ १०९ ॥ अब हमारे वरदानसे जुड़े अंगों युक्त एवं दिव्यदेहधारी सन्धिमति अपनी श्रेष्ठतावश जगतीतलमें आर्यराजके नामसे विख्यात होगा' ॥ ११० ॥ तदनन्तर दिव्य वस्त्र, दिव्य माला एवं दिव्य आभूषणोंसे आभूषित सन्धिमतिने पूर्वकालकी बातोंका स्मरण करके अपने गुरु ईशानको विनम्र भावसे प्रणाम किया ॥ १११ ॥ तब ईशानने स्वप्नमें भी दुर्लभ अपने प्रिय शिष्य सन्धिमतिको उठाकर हृदयसे लगा लिया। उस समय उस योगीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन भला कौन कर सकता है ?॥ ११२ ॥ इसके बाद इस 'विचित्र एवं असार संसारके विषयमें वे दोनों परस्पर शान्तरसमय वार्तालाप करने लगे ॥ ११३ ॥ उसी समय किसी प्रकार सन्धिमतिके पुनर्जीवनका समाचार सुनकर मंत्रियोंके साथ आबालवृद्धवनिता झुण्डके झुण्ड नागरिक उस स्थानपर जा पहुँचे ॥ ११४ ॥ वहाँपर एकत्र लोगोंके मनमें यह सन्देह होने लगा कि 'यह वही सन्धिमति है या उसके समान आकृतिका कोई अन्य पुरुष है ?' किन्तु प्रश्नोत्तरके क्रमसे प्राचीन वृत्तान्तोंको बताकर उसने उस नागरिकोंका सन्देह निवृत्त कर दिया ॥ ११५ ॥ तदनन्तर शासनकार्यसे निस्पृह सन्धिमतिने अपने गुरु ईशानके अनुरोधपर कश्मीरके अराजक राज्यसिंहासनको बड़े कष्टसे अंगीकार किया ॥ ११६ ॥ उसके बाद दिव्य आकृतिसम्पन्न सन्धिमतिके

नवराजोचिताचारे न स शिक्षामपैक्षत । दृष्टकर्मा समस्तास्तु निस्तुषाः प्रक्रिया व्यधात् ॥११८॥

स राजोचितनेपथ्यः पौराङ्गीर्घोपशोभिनीम् ।
सौधोन्मिपल्लाजवर्षां ससैन्यः प्राविशत्पुरीम् ॥११९॥

तस्मिन्विरजसि प्राज्यमाक्रामति नृपासनम् । आचक्राम प्रजा व्यापन्न देवी न च मानुषी ॥१२०॥

अहरन्हृदयं तस्य शृङ्गाररहितविभ्रमाः । नितम्बिन्यो वनभुवः शमिनो न तु योषितः ॥१२१॥

वनप्रसूनसंपर्कपुण्यगन्धैस्तपस्विनाम् । कर्पूरधूपसुरभिः करैः स्पृष्टः स पिप्रिये ॥१२२॥

भूतेशवर्धमानेशविजयेशानपश्यतः । नियमो राजकार्येषु तस्याभूत्प्रतिवासरम् ॥१२३॥

हरायतनसोपानक्षालनाम्भःकणान्वितैः । संस्पृष्टः पवनैः सोऽभूदानन्दास्पन्दविग्रहः ॥१२४॥

पूर्वपूजापनयने निराडम्बरसुन्दरः । तेनैव द्रष्टुमज्ञायि स्नपितो विजयेश्वरः ॥१२५॥

लिङ्गपीठलुठत्स्नानकुम्भाम्भःक्षोभभूर्ध्वनिः । शयानस्याप्यभूत्तस्य वल्लभो वल्लकीध्वनिः ॥१२६॥

तापसैर्भस्मरुद्राक्षजटाजूटाङ्कितैर्बभौ । तस्य माहेश्वरी पर्षदिव भूमिपतेः सभा ॥१२७॥

शिवलिङ्गसहस्रस्य प्रतिष्ठाकर्मणि प्रभोः ।
प्रतिज्ञा प्रत्यहं तस्य नाभूद्विघटिता क्वचित् ॥१२८॥

प्रमादात्तदनिष्पत्तौ शिलामुत्कीर्य कल्पिता । सहस्रलिङ्गी तद्भृत्यैः सर्वतोऽद्यापि दृश्यते ॥१२९॥

तासु तासु स वापीषु लिङ्गव्याजादरोपयत् । स्वपुण्यपुण्डरीकाणां जन्मनेक्षपरम्पराम् ॥१३०॥

स्थाने स्थाने जलान्तश्च बहुसंख्यैर्निवेशितैः ।
अनयन्नर्मदाभङ्गिं शिवलिङ्गैस्तरङ्गिणीः ॥१३१॥

राज्यके पुरोहित समीपके उपवनमें ले गये और वाद्यध्वनिके साथ उन ब्राह्मणोंने पुनीत जलसे उसका अभिषेक किया ॥ ११७ ॥ इस प्रकार नवीन राजा होनेपर भी उसे शिक्षाकी आवश्यकता नहीं पड़ी। क्योंकि अपने मंत्रित्वकालमें ही वह सब काम देख चुका था। अतएव भली भाँति वह राजकार्य करने लगा ॥ ११८ ॥ तदनन्तर बड़े समारोहसे नागरिकों तथा सैनिकोंके साथ वह नगरमें प्रविष्ट हुआ। नगरप्रवेशके समय वहाँ बहुत बड़ी भीड़ थी और लोग अपनी-अपनी अटारियोंपरसे उसके ऊपर धानका लावा बरसा रहे थे ॥ ११९ ॥ उस पुण्यात्मा राजाके राज्यकालमें प्रजापर कभी कोई दैवी या मानवी विपत्ति नहीं आयी ॥ १२० ॥ तरह-तरहके शृंगार करके विविध हाव-भाव प्रदर्शन करनेवाली सुन्दर ललनायें उसका मन नहीं मोह सकीं। उसका मन वनस्थलियोंको देखकर आनन्दित होता था—स्त्रियोंको देखकर नहीं ॥ १२१ ॥ वन्य पुष्प, कपूर एवं धूपका स्पर्श करनेके कारण सुगन्धित मुनियोंके हाथसे संस्पृष्ट होनेपर उसे अपार आनन्द प्राप्त होता था ॥ १२२ ॥ वह प्रतिदिन भूतेश, वर्धमानेश और विजयेश शिव तथा गुरु ईशानका दर्शन कर लेनेके बाद ही राज्यकार्य किया करता था ॥ १२३ ॥ शिवमन्दिरकी सीढ़ियाँ धोते समय पवनके झोंकेसे उड़े जलकणोंका स्पर्श होनेपर उसे बहुत सुख मिलता था ॥ १२४ ॥ प्रथम पूजाके समय चढ़े पुष्प-माल्य आदि सामान हट जानेपर वह आडम्बर-विहीन तथा निर्मल जलसे प्रक्षालित विजयेश्वर शिवलिंगका ही दर्शन करता था ॥ १२५ ॥ वीणा-मृदंग आदि वाद्योंसे द्वेष करनेवाले उस राजाको कलशसे शिवलिंगपर गिरती हुई जलधाराकी ध्वनि सोते समय भी सुनायी देनेपर बड़ी मधुर लगती थी ॥ १२६ ॥ साक्षात् शंकरजीके दरबारकी तरह उस राजाकी सभा भस्म, रुद्राक्ष और जटाजूटमें सुशोभित तपस्वियोंसे सदा भरी रहती थी ॥ १२७ ॥ नित्य एक सहस्र शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेका उस राजाका व्रत भी खंडित नहीं होता था ॥ १२८ ॥ प्रमादवश एकदिन वह शिवलिंगोंको नहीं प्रतिष्ठित कर सका, तब कारीगरोंने एक शिलापर एक हजार शिवलिंग उत्कीर्ण कर दिये। वह शिला आज भी वहाँ विद्यमान है ॥ १२९ ॥ अपने राज्यकी विभिन्न बावलियोंमें उसने पुनीत कमलपुष्पोंका उत्पादन होते रहनेके लिए कमलके बीज बो दिये थे ॥ १३० ॥ अनेकानेक नदियोंमें शिवलिङ्ग स्थापित कर-करके उसने उन नदियोंको

प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः प्रत्यपाद्यन्त तेन ये । पर्षदामद्य तद्भोगः कालेनान्तर्विमागतः ॥१३२॥
अकरोत्स महाहर्म्यैर्महालिङ्गैर्महावृषैः । महात्रिशूलैर्महतीं महामाहेश्वरो महीम् ॥१३३॥
कृत्वा संधीश्वरं देहसंधानपितृकानने । ईशानस्य गुरोर्नाम्ना व्यधादीशेश्वरं हरम् ॥१३४॥
येदां च भीमादेवीं च देशाँश्चान्यान्पदे पदे ।
स मठप्रतिमालिङ्गैर्हर्म्यैर्निन्ये महार्घताम् ॥१३५॥
स्वयंभूभिश्च तीर्थैश्च पूतं भक्तिविभूषितः । स एव भोक्तुमज्ञासीत्प्राज्ञः कश्मीरमण्डलम् ॥१३६॥
स्नातस्य निर्झराम्भोभिः पुष्पलिङ्गार्चनोत्सवैः । राज्ञस्तस्य वनोर्वीषु मासः पुष्पाकरो ययौ ॥१३७॥
स चातिरम्यः काश्मीरो ग्रीष्मस्त्रिदिवदुर्लभः ।
हिमलिङ्गार्चनैः प्रायाद्वनान्तेषु कृतार्थताम् ॥१३८॥
फुल्लाब्जषण्डरुद्धाशाः प्राप्य पुष्करिणीतटीः । लक्ष्मीसखः स खण्डेन्दुचूडध्यानपरोऽभवत् ॥१३९॥
नीलोत्पलवतीर्वापीरगस्त्योदयनिर्विपाः । अवगाह्य हरार्चाभिः शरदं निर्विवेश सः ॥१४०॥
सार्धं तपोधनैस्तैस्तैर्भजतो जागरोत्सवान् ।
तस्याभूवन्भुवो भर्तुरमोघा माघरात्रयः ॥१४१॥
अत्यद्भुतं राज्यलाभमित्थं सफलयन्कृती । पञ्चाशतं त्रिवर्षोनानत्यक्रामत्स वत्सरान् ॥१४२॥
शमव्यसनिनस्तस्य राज्यकार्याण्यपश्यतः । तस्मिन्काले प्रकृतयो विरागं प्रतिपेदिरे ॥१४३॥
अन्वैष्यत नृपस्ताभिः कश्चिद्राज्याय शुश्रुवे ।
राजपुत्रो जिगीषुश्च श्रीमान्यौधिष्ठिरे कुले ॥१४४॥

नर्मदा नदीके सदृश शिवलिंगमयी बना दिया था ॥ १३१ ॥ प्रत्येक शिवमन्दिरकी पूजा तथा भोगके लिए उसने जो बड़े बड़े गाँव दान दिये थे, इतना समय बीतनेपर भी पर्षदके कार्यकर्ता ब्राह्मण आज भी उनका उपभोग कर रहे हैं ॥ १३२ ॥ उस महान् शिवभक्त सन्धिमतिने बड़े-बड़े शिवमन्दिर, विशाल शिवलिंग, बड़ी बड़ी नदियाँ एवं बड़े बड़े त्रिशूलोंका निर्माण कराके समस्त कश्मीरमण्डलको पूजनीय बना दिया था ॥ १३३ ॥ जिस श्मशानभूमिपर योगिनियोंने उस राजाके मृत शरीरको जोड़ा था, वहाँपर सन्धीश्वर और अपने गुरुके नामपर ईशानेश्वर नामके शिवलिङ्गकी उसने स्थापना की ॥ १३४ ॥ उसने येदा तथा भीमादेवी आदि अनेक स्थानोंपर विविध मठ, प्रतिमा तथा शिवलिंग स्थापित करके एवं बहुतेरे महल बनवाकर कश्मीरकी शोभा बढायी ॥ १३५ ॥ अनेक स्वयंभू शिवलिङ्गों तथा विभिन्न तीर्थोंसे पवित्र कश्मीरमण्डलका उपभोग करना वास्तवमे वही जानता था ॥ १३६ ॥ वसन्त ऋतुमें वह वनमें रहता हुआ पहाड़ोंके झरनोंमे स्नान करके ऋतुकालमे उत्पन्न होनेवाले फूलोंसे शिवजीका पूजन करता था ॥ १३७ ॥ इसी तरह ग्रीष्मकालमे वह देवदुर्लभ कश्मीरके पर्वतीय वनोंमे रहकर हिमके शिवलिङ्गोंका पूजन किया करता था ॥ १३८ ॥ साक्षात् लक्ष्मीका पति वह राजा असंख्य पुष्पित कमलोंसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर बैठकर द्वितीयाके चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाले भगवान् शंकरका ध्यान करता था ॥ १३९ ॥ अगस्त्य नक्षत्रके उदित होनेपर निर्मल जलसे भरी एवं पुष्पित नील कमलोंसे सुशोभित बावलियोंमें स्नान करके वह राजा शिवपूजन करता हुआ शरद् ऋतु बिताता था ॥ १४० ॥ विभिन्न तपस्वियोंके साथ रात्रिजागरणका महोत्सव मनाते हुए उसके लिए माघमासकी रात्रियाँ बड़ी ही पुण्यदायिनी हो जाती थीं ॥ १४१ ॥ इस तरह अद्भुत ढंगसे राज्य पा करके उस पुण्यात्मा राजाने जीवनको सफल बनाते हुए ४७ वर्ष तक राज्यका भोग किया ॥ १४२ ॥ आगे चलकर वह शान्तरसके कार्योंमें विशेष रस लेने लगा, जिससे उसने राज्यकार्य देखना छोड़ दिया । इसी कारण प्रजा भी धीरे-धीरे उसकी ओरसे विरक्त हो गयी और राज्यकार्यका संचालन करनेके लिए वह किसी अन्य पुरुषकी खोज करने लगी। ऐसा करनेपर उसे युधिष्ठिरके कुलमे उत्पन्न एक विजयेच्छुक राजपुत्रका पता लगा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

गान्धाराधिपतिस्तदा ॥१४५॥
जुगोप गोपादित्याख्यं कश्मीरेन्द्रजिगीषया । युधिष्ठिरप्रपौत्रं हि
वसन्नप्राप्तसाम्राज्यः स तत्र तनयं क्रमात् । अवाप लक्षणैर्दिव्यैरमोघं मेघवाहनम् ॥१४६॥
स तत्र पितुरादेशाद्वैष्णवान्वयजन्मनः । राष्ट्रं प्राग्ज्योतिषेन्द्रस्य ययौ कन्यास्वयंवरे ॥१४७॥
तत्र तं वारुणं छत्रं छायया राजसंनिधौ ।
भेजे वरस्रजा राजकन्यका चामृतप्रभा ॥१४८॥
तेन तस्य निमित्तेन वृद्धिमागामिनीं जनाः । अजानन्नम्बुवाहस्य पाश्चात्येनेव वायुना ॥१४९॥
राज्ञा हि नरकेणैतद्वरुणाद्दुष्णवारणम् । आनीतमकरोच्छायां न बिना चक्रवर्तिनम् ॥१५०॥
तमन्तिकं पितुः प्राप्तं पत्न्या लक्ष्म्या च संश्रितम् । भुवा निमन्त्रयामासुर्मन्त्रिणो वंशयोग्यया ॥१५१॥
अथार्यराजो विज्ञाय स्वराज्यं भेदजर्जरम् ।
प्रतिचक्रे न शक्तोऽपि तस्थौ तु त्यक्तुमुत्सुकः ॥१५२॥
अचिन्तयच्च सत्यं मे संप्रीतो भूतभावनः । सिद्धिविघ्नानमून्दीर्घानपाकर्तुं समुद्यतः ॥१५३॥
कृत्ये वहुनि निष्पाद्ये श्रमात्कौसीद्यमाश्रयन् । प्रावृषीवाध्वगो दिष्ट्या मोहितोऽस्मि न निद्रया॥१५४॥
स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं विरक्तां बन्धकीमिव ।
हठनिर्वासनव्रीडा दिष्ट्या नासादिता मया ॥१५५॥
शैलूषस्येव मे राज्यरङ्गेऽस्मिन्वल्गतश्चिरम् । निर्व्यूढमपि वैरस्यं दिष्ट्या न प्रेक्षका गताः ॥१५६॥
दिष्ट्या सदैव वैमुख्यमुच्चैरुद्घोपयञ्श्रियः । त्यागक्षणे न भीतोऽस्मि विकत्थन इवाहवे ॥१५७॥

किसी समय गान्धार देशके राजाने कश्मीरनरेशको जीतनेके लिए अन्धयुधिष्ठिरके प्रपौत्र गोपादित्यको पाला-पोसा था ॥ १४५ ॥ वहाँ रहते समय ही गोपादित्यको सभी सुलक्षणोंके सम्पन्न एवं दृढनिश्चयी मेघवाहन नामका पुत्ररत्न प्राप्त हुआ ॥ १४६ ॥ एक वार मेघवाहन अपने वैष्णव पिताके आज्ञानुसार राजा प्राग्ज्योतिपेश्वरकी कन्याके स्वयंवरमें गया ॥ १४७ ॥ वहाँ अमृतप्रभा नामकी कन्याने वरुणदेवके छत्रकी छायामें वैठे मेघवाहनके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ १४८ ॥ जैसे पश्चिमी वायुके वहावसे लोगोंको मेघोदयका आभास मिल जाता है, उसी प्रकार उस समय राजकन्याकी प्राप्तिसे राजाको मेघवाहनके भाग्योदयका आभास मिल गया ॥ १४९ ॥ राजा नरकको एक छत्र वरुणदेवसे प्राप्त हुआ था। उससे चक्रवर्ती राजापर ही छाया होती थी, अन्य किसी व्यक्तिपर नहीं ॥ १५० ॥ इस प्रकार विवाह करके पत्नीके साथ पिताके पास आये हुए मेघवाहनको कश्मीरके मन्त्रिगण राज्य सम्हालनेके लिए आमंत्रित करने लगे ॥ १५१ ॥ यद्यपि आर्यराज (पूर्वभूत सन्धिमति) को इस वातका पता लग गया था और यदि चाहता तो वह उस षड्यंत्रको विफल कर सकता था, किन्तु वह स्वयं राज्य त्यागनेको उत्सुक था। इसलिए उसने कोई प्रतीकार नहीं किया ॥ १५२ ॥ उसके विपरीत उसने यह सोचा कि सचमुच शंकरजी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। तभी तो वे सिद्धिमें बाधक इन राज्य आदि वडे-वडे विघ्नोंको दूर करनेके लिए सन्नद्ध हो गये हैं ॥ १५३ ॥ मुझे वहुत बड़े-बड़े काम करने है और मुक्ति प्राप्त करके मानव जन्मको सार्थक करना है। राज्यके सुखभोगमें पड़कर मैं आलसी हो गया था। फिर भी कुशल यही है कि वर्षाऋतुमें यात्रा करनेवाले यात्रीके समान मैं नींदकी चपेटमें नहीं पड़ा ॥ १५४ ॥ विरक्त कुलटा स्त्रीके समान ठीक समयपर राज्यलक्ष्मीको स्वेच्छया छोड़ देनेसे मुझे वरबस राज्यच्युत होनेकी लज्जाका अनुभव नहीं करना पड़ेगा ॥ १५५ ॥ एक अभिनेताके समान मैंने इस राज्यरूपी रंगमंचपर चिरकाल तक अभिनय करते हुए कौशलके साथ राज्यका संचालन किया। अव विना किसी कटुताका दर्शन किये इन प्रेक्षकोंके समक्ष यवनिकाके पीछे जा रहा हूँ। यह वड़े ही हर्षकी वात है ॥ १५६ ॥ यह भी वडे हर्षका विषय है कि मैंने सदा राजलक्ष्मीकी ओरसे विमुखताकी घोषणा की है। अतएव अव राज्यके त्यागकालमें भी मैं अपने विचारपर दृढ़ हूँ। ऐसा करनेसे संग्रामभूमिमें वीरताकी 'झूठी' डींग

इति संचिन्तयन्नंतः सर्वत्यागोन्मुखो नृपः । मनोराज्यानि कुर्वाणो दरिद्र इव पिप्रिये ॥१५८॥
अन्येद्युः प्रकृतीः सर्वाः संनिपत्य सभान्तरे । ताभ्यः प्रत्यर्पयन्न्यासमिव राज्यं सुरक्षितम् ॥१५९॥

उज्झितं स्वेच्छया तत्र प्रयत्नेनापि नाशकत् ।
तं स्वीकारयितुं कश्चित्फणीन्द्रमिव कञ्चुकम् ॥१६०॥

अर्चालिङ्गमुपादाय सोऽथ प्रायादुदङ्मुखः । धौतवासा निरुष्णीषः पद्भ्यामेव प्रजेश्वरः ॥१६१॥

तस्य पादार्पितदृशो व्रजतो मौनिनः प्रभोः ।
पन्थानं जगृहुः पौरा निःशब्दस्रवदश्रवः ॥१६२॥

स विलङ्घितगव्यूतिरुपविश्य तरोरधः । जनमेकैकमुद्बाष्पं न्यवर्तयत सान्त्वयन् ॥१६३॥

पथि शिखरिणां मूले मूले विलम्ब्य जहज्जनान्मितपरिकरो गच्छन्नूर्ध्वं क्रमात्समदृश्यत ।
गहनवसुधाः संपूर्यैर्व्रजन्स निजात्पदान्नद इव विनिर्यातः स्तोकैः कृतानुगमो जलैः ॥१६४॥
निःशेषं निकटान्स लोकमटवीमध्ये निरुन्धन्पदं शोकावेशसबाष्पगद्गदपदं संमान्य चोत्सार्य च ।
भूर्जत्वक्परिरोधमर्मरमरुन्निद्राणसिद्धाध्वगश्रेणीमौलिमणिप्रभोज्ज्वलगुहागेहं जगाहे वनम् ॥१६५॥

अथ वनसरसीतटद्रुमाधः पुटकघटोदरसंभृताम्बुपूराम् ।
वसतिमकृत वासरावसाने शुचितरुपल्लवकल्पितोच्चतल्पाम् ॥१६६॥

शृङ्गासक्तसितातपाः शबलितच्छायाभुवः शाद्वलैरुत्फुल्लामलमल्लिकातलमिलत्सुप्तव्रजस्त्रीजनाः ।
सध्वाना वनपालवेणुरणितोन्मिश्रैः प्रपाताम्बुभिः श्रान्तं दृक्पथमागतास्तमनयन्निद्रामदूराद्रयः ॥१६७॥

हाँकनेवाले किसी राजाकी जैसी दुर्दशा होती है, वैसी दुर्दशा मेरी नहीं हुई ॥ १५७ ॥ मन ही मन इस तरह सोचता हुआ वह राजा मनोराज्यमें मग्न किसी दरिद्रके समान बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १५८ ॥ दूसरे दिन राजा आर्यराजने समस्त प्रजाजनोंको राज्यसभामें बुलाकर कश्मीरका सुरक्षित राज्य उनको लौटा दिया ॥ १५९ ॥ जैसे सर्प त्यागी हुई केंचुलको फिर नहीं धारण करता, वैसे ही प्रजाके अनेकशः आग्रह करनेपर भी उसने त्यागे हुए राज्यको नहीं अपनाया ॥ १६० ॥ बल्कि अब समस्त राज्यचिह्न त्याग, धुले वस्त्र पहन तथा नित्य पूजनका शिवलिंग हाथमें लेकर खुले सिर वह राजा पैदल ही उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा ॥ १६१ ॥ उस राजाके चरणोंपर आँखें लगाये कश्मीरके नागरिक भी मौनभावसे आँसू बरसाते हुए उसके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ १६२ ॥ इस प्रकार दो कोस मार्ग चलकर आर्यराज एक वृक्षकी छायामें बैठ गया। उसके बाद उसने रोते हुए एक-एक मनुष्यको प्रेमके साथ समझा-समझाकर लौटाया ॥ १६३ ॥ मार्गमें वह प्रत्येक पर्वतकी तलैटीमें विश्राम करता था और साथवाले लोगोंको समझा-बुझाकर लौटाता रहता था। मार्गके गहनस्थलोंको भरके ऊपर ही ऊपर पैदल चलता हुआ वह इस तरह आगे बढ़ता था, जैसे निर्मल और स्वल्प जलप्रवाहवाला कोई नद बह रहा हो ॥ १६४ ॥ इस प्रकार चलते-चलते वह राजा गहनवनमें जा पहुँचा। वहाँपर शोकके आवेगसे गद्गद स्नेही जनोंको सम्मानित करके उसने लौटाया। उसके बाद भोजपत्रकी मर्मर ध्वनियुक्त पवनके झोंकेसे मस्त होकर पर्वतकी कन्दराओंमें सोये हुए सिद्धजनोंके आभूषणोंमें जड़े रत्नोंके प्रकाशसे देदीप्यमान निर्जन वनमें प्रविष्ट हुआ ॥ १६५ ॥ सायंकालके समय जब सूर्यनारायण अस्त हो गये, तब कोमल पत्तोंके दोनेसे जल पीकर वह राजा नवपल्लवोंकी शय्यापर लेटा ॥ १६६ ॥ उस समय पर्वतोंकी चोटियोंपर सूर्यकी उजली किरणें फैली थीं, हरी-हरी घासोंसे पर्वतोंकी छायायुक्त तलैटियाँ चितकबरी दीख रही थीं, फूली हुई मल्लिकालताकी कुंजोंमें गोपवधूटियाँ सुखसे सो रही थीं और गोपों द्वारा बजायी गयी बाँसुरीकी मधुर ध्वनि पर्वतीय झरनोंके स्वरमें मिलकर चारों ओर गूँज रही थी, ऐसे असीम शोभासम्पन्न आस-पासके पर्वतोंके दृश्यसे आनन्दित उस थके राजाको नींद आ गयी ॥ १६७ ॥

वनकरिरसितैः पदे पदे स प्रतिभटतां पटहध्वनेर्दधानैः ।
अमनुत रटितैश्च कर्करेटोः परिगलितां गमनोन्मुखस्त्रियामाम् ॥१६८॥

अन्येद्युर्विधिवदुपास्य पूर्वसंध्यामासन्ने नलिनसरस्यपास्तनिद्रः ।
क्ष्मापालः परिचितसोदराम्बुतीर्थं नन्दीशाध्युषितमवाप भूतभर्तुः ॥१६९॥

नन्दिक्षेत्रे त्रिभुवनगुरोः सोऽग्रतस्तत्र यावत्तस्थौ तावत्स्वयमभिमतावाप्तये जायते स्म ।
भस्मस्मेरः सुघटितजटाजूटबन्धोऽक्षसूत्री रुद्राक्षाङ्को जरठमुनिभिः सस्पृहं वीक्ष्यमाणः ॥१७०॥

भ्राम्यञ्श्रीकण्ठदत्तव्रतजनितमहासत्क्रियो भैक्षहेतोर्भिक्षादानोद्यतासु प्रतिमुनिनिलयं संभ्रमात्तापसीषु ।
वृक्षैर्भिक्षाकपाले शुचिफलकुसुमश्रेणिभिः पूर्यमाणे मान्यो वैराग्ययोगेप्यनुपनतपरप्रार्थनालाघवोभूत् ॥१७१॥

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यश्रीचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां द्वितीयस्तरङ्गः ॥२॥

शतद्वये वत्सराणामष्टाभिः परिवर्जिते । अस्मिन्द्वितीये व्याख्याताः षट् प्रख्यातगुणा नृपाः ॥



सवेरे भेरीध्वनि सदृश वनगजोंके भीषण चिंघाड़ तथा पक्षियोंकी मीठी बोलसे उसे रात्रिसमाप्तिकी सूचना मिली ॥ १६८ ॥ तब वह पर्णशय्या छोड़कर उठ बैठा और पासके सरोवरमे स्नान करके सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य-कृत्य पूर्ण किया। तत्पश्चात् पूर्वपरिचित नन्दीश तीर्थके समीपवर्ती सोदराम्बुतीर्थकी ओर चला और कुछ ही देर बाद वह वहाँ पहुँच गया ॥ १६९ ॥ नन्दिक्षेत्रमे पहुँचकर वह समस्त त्रिलोकीके अधिपति शंकर भगवान्के समक्ष जा खड़ा हुआ। वहाँ पहुँचनेसे ही उसकी सारी अभिलाषाये पूर्ण हो गयीं। भस्म, रुद्राक्षकी माला एवं जटाजूटसे विभूषित राजा आर्यराजको वहाँके बड़े बड़े मुनि भी आदरकी दृष्टिसे देख रहे थे ॥ १७० ॥ शैवी मंत्रदीक्षा लिये रहनेके कारण सर्वत्र महान् सत्कार प्राप्त करता हुआ वह राजा भिक्षाके लिए प्रत्येक मुनिके आश्रमपर जाता था, तब मुनिपत्नियाँ बड़े आदरके साथ उसे भिक्षा देती थी। किन्तु भिक्षा माँगनेकी उसे बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी। क्योंकि वहाँके वृक्ष ही अपने फलोंसे उसका भिक्षापात्र भर दिया करते थे। इस प्रकार उस वैराग्यावस्थामे भी उसको किसीसे कोई प्रार्थना करनेकी लघुताका अनुभव नहीं हो पाया ॥ १७१ ॥

इस तरंगमें ६ राजाओंका वृत्तान्त, आदिसे अबतक ४३ राजाओंका वृत्तान्त और आदिसे यहाँतकके श्लोकोंकी संख्या ४४३ हुई ॥

काश्मीरिक महामात्य चम्पकप्रभुके पुत्र कल्हणकविकृत राजतरंगिणीका द्वितीय तरंग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

इस द्वितीय तरंगमें १९२ वर्षतकके समयमे कुल छ राजाओंके राज्यकार्यका वर्णन किया गया है।



अथ तृतीयस्तरङ्गः ।

मुञ्चेभाजिनमस्य कुम्भकुहरे मुक्ताः कुचाग्रोचिताः किं भालज्वलनेन कज्जलमतः स्त्रीकार्यमक्ष्णोः कृते ।
संधाने वपुरर्धयोः प्रतिवदन्नेवं निषेधेऽप्यहेः कर्तव्ये प्रिययोत्तरानुसरणोद्युक्तो हरः पातु वः ॥ १ ॥
अथोल्लसत्पृथुश्लाघमानिन्युर्मेघवाहनम् । गन्धारविषयं गत्वा सचिवाधिष्ठिताः प्रजाः ॥ २ ॥
रक्तप्रजस्य भूभर्तुः पश्चाल्लोकानुरञ्जनम् । तस्याज्ञायि जनैर्धौतक्षौमक्षालनसंनिभम् ॥ ३ ॥
स पुनर्बोधिसत्त्वानामपि सत्त्वानुकम्पिनाम् । चर्यामुदात्तचरितैरत्यशेत महाशयः ॥ ४ ॥
तस्याभिषेक एवाज्ञां धारयन्तोऽधिकारिणः । सर्वतोऽमारमर्यादापटहानुदघोषयन् ॥५ ॥
कल्याणिना प्राणिवधे तेन राष्ट्रान्निवारिते । निष्पापां प्रापिता वृत्तिं स्वकोशात्सौनिकादयः ॥ ६ ॥
तस्य राज्ये जिनस्येव मारविद्वेषिणः प्रभोः । क्रतौ घृतपशुः पिष्टपशुर्भूतबलावभूत् ॥ ७ ॥
स मेघवननामानमग्रहारं विनिर्ममे । मयुष्टग्रामकृत्पुण्यज्येष्ठं मेघमठं तदा ॥ ८ ॥
भोगाय देश्यभिक्षूणां वल्लभास्यामृतप्रभा । विहारमुच्चैरमृतभवनाख्यमकारयत् ॥ ९ ॥
देशैकदेशाल्लोर्नाम्नः प्राप्तस्तस्याः पितुर्गुरुः । स्तुन्पा तद्भाषया प्रोक्तो लोस्तोन्पास्तूपकार्यकृत् ॥१०॥
चक्रे नडवने राज्ञो यूकदेव्यभिधा वधूः । विहारमद्भुताकारं सपत्नीस्पर्धयोद्यता ॥११॥
अर्धे यद्भिक्षवः शिक्षाचारास्तत्रार्पितास्तया । अर्धे गार्हस्थ्यगर्ह्याश्च सस्त्रीपुत्रपशुस्त्रियः ॥१२॥

भगवती पार्वतीने पूछा—'हे प्रभो ! गजचर्म छोड़ दीजिये, इसकी क्या आवश्यकता है ?' शंकरजीने कहा—'इसके मस्तकसे तुम्हारे दोनों स्तनोंकी शोभा बढ़ानेवाले मोती उत्पन्न होते हैं।' फिर पार्वतीजीने प्रश्न किया—'मस्तकपर जो आपने अग्नि (तीसरी आँख) रख छोड़ी है, इसकी क्या जरूरत है ?' भगवान् त्रिलोचनने उत्तर दिया—'इस अग्निसे उत्पन्न होनेवाले काजलसे तुम्हारे दोनों नयनोंका शृंगार किया जाता है।' इसी तरह सर्पविषयक प्रश्नका भी उत्तर देनेके लिए सन्नद्ध अर्धनारीनटेश्वर शंकर भगवान् आप सबकी रक्षा करें ॥ १ ॥ इस प्रकार आर्यराजके चले जानेपर कश्मीरकी प्रजा तथा मन्त्रिगण गान्धारदेश गये और महान् यशस्वी मेघवाहनको अपने यहाँ ले आये ॥ २ ॥ जैसे बारम्बार धुलनेपर वस्त्र निखरता जाता है, उसी प्रकार दिनोदिन उस नये राजाका प्रजापर अनुराग बढ़ता गया। इससे उसपर कश्मीरकी प्रजाका भी प्रेम उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करता रहा ॥ ३ ॥ प्राणिमात्रपर दया करनेवाले बोधिसत्त्वोंकी महिमाको भी उस उत्तम विचारसम्पन्न राजाने अपने गम्भीर तथा उदात्त चरित्रसे दबोच दिया ॥ ४ ॥ राज्याभिषेकके समय ही उसकी आज्ञाका पालन करते हुए मंत्रियोंने राज्यभरमें जीवहिंसा बन्द करनेकी घोषणा करा दी ॥ ५ ॥ तदनुसार उसने कसाई आदि हिंसक कर्मसे जीविकार्जन करनेवाले लोगोंको राज्यकोशसे पुष्कल धन देकर पवित्र धन्धे द्वारा जीविकार्जन करने योग्य बना दिया ॥ ६ ॥ साक्षात् जिनदेवके समान अहिंसक उस राजाके यज्ञमें पशुबलिके स्थानपर पिष्टपशु (आटेसे बने पशु) तथा घृतपशुसे बलिदानका काम चलाया जाने लगा ॥ ७ ॥ उसने मेघवन नामका अग्रहार दान करके ब्राह्मणोंको दिया, मयुष्ट ग्राम बसाया और परम पुनीत मेघमठका निर्माण कराया ॥ ८ ॥ राजा मेघवाहनकी प्रियतमा रानी अमृतप्रभाने विदेशी भिक्षुओंके निवासार्थ अमृतभवन नामका एक बहुत बड़ा और ऊँचा विहार बनवाया ॥ ९ ॥ उस अमृतभवन विहारमें रानी अमृतप्रभाके पिताका गुरु सिद्ध अह्लोर आकर रहने लगा। कालान्तरमें उसने वहाँ लोस्तोन्पा यूपका निर्माण कराया। कश्मीरके नागरिक अपनी भाषामें उसे स्तुन्पा कहते हैं ॥ १० ॥ राजा मेघवाहनकी दूसरी पत्नी यूकदेवीने अपनी सौत अमृतप्रभाके स्पर्धावश नडवनमें एक बहुत विशाल विहार बनवाया ॥ ११ ॥ उस विहारके आधे हिस्सेमें भिक्षुओंके रहनेकी व्यवस्था थी और शेष आधे भागमें स्त्रियों, पुत्रों तथा पशुओंके साथ गृहस्थोंके निवासका प्रबन्ध

अथेन्द्रदेवीभवनमिन्द्रदेव्यभिधा व्यधात् । विहारं सचतुःशालं स्तूपं भूपप्रियाऽपरा ॥१३॥
अन्याभिः खादनासम्माप्रमुखाभिर्निजाख्यया । देवीभिस्तस्य महिता विहारा बहवः कृताः ॥१४॥
अर्वाक्कालोद्भवस्यापि राज्यकालोऽस्य भूपतेः । न्यक्कृतादिनृपोदन्तैर्वृत्तान्तैरद्भुतोऽभवत् ॥१५॥
स बहिर्विहरञ्जातु भूभृद्भीतैरुदीरितम् । चौरश्चौरोऽयमित्याराद्शृणोत्क्रन्दितध्वनिम् ॥१६॥
कः कोऽत्र वध्यतां चौर इत्युक्ते तेन सक्रुधा । शशामाक्रन्दितध्वानो न च चौरो व्यभाव्यत ॥१७॥
पुनर्द्वित्रैर्दिनैस्तस्य निर्गतस्याग्रतस्ततः । अभवन्नभयार्थिन्यो द्वित्रा दिव्यप्रभाः स्त्रियः ॥१८॥
ताः संश्रुतेप्सितास्तेन रुद्धाश्वेन कृपालुना । अभ्यभाषन्त सीमन्तपुञ्जिताञ्जलयो वचः ॥१९॥
देव दिव्यप्रभावेण भुवने भवता धृते । अपरस्माद्भयं जातु कस्य स्यात्करुणानिधे ॥२०॥
तदानीं तोयदा भूत्वा छादयन्तो नभस्तलम् । अकाण्डकरकापातशङ्किभिः कार्षकैर्नृप ॥२१॥
पक्वशालिवनस्फीतिरक्षाक्षुभितमानसैः । नागास्त्वत्कोपसंरम्भभूमितां गमिताः प्रभो ॥२२॥
तेऽस्माकं पतयश्चौरश्चौर इत्यार्तभाषितम् । श्रुत्वा देवेन वध्यन्तामित्यवादि यदा क्रुधा ॥२३॥
तदा त्वदाज्ञामात्रेण न्यपतन्पाशवेष्टिताः । प्रसादः क्रियतां तेषामस्मत्करुणयाधुना ॥ चक्कलकम् ॥२४॥
तदाकर्ण्यावदद्राजा प्रसादविशदाननः । सर्वे ते बन्धनान्नागास्त्यज्यन्तामिति सस्मितः ॥२५॥
तया तस्याज्ञया राज्ञो नागा विधुतबन्धनाः । प्रणम्य चरणौ तूर्णं प्रययुः सपरिग्रहाः ॥२६॥
अथ ग्राहयितुं भूपानाज्ञां हिंसानिवृत्तये । स दिग्जयाय निर्व्याजधर्मचर्यो विनिर्ययौ ॥२७॥
अभूदभीतजनतावेक्षणश्लाघ्यविक्रमः । स्पृहणीयो जनस्यापि तदीयविजयोद्यमः ॥२८॥

किया गया था ॥ १२ ॥ महाराज मेघवाहनकी तृतीया पत्नी इन्द्रदेवीने भी इन्द्रदेवीभवन नामका एक चौमहला विहार एवं स्तूपका निर्माण कराया ॥ १३ ॥ इसी प्रकार खादना-सम्मा आदि उस राजाकी अन्यान्य पत्नियोंने भी अपने-अपने नामोंके अनुसार अनेकानेक विहार बनवाये ॥ १४ ॥ यद्यपि मेघवाहन अभी नया राजा था, फिर भी उसका राज्यकाल इतना सुन्दर बीत रहा था कि जिससे उसके पहलेवाले पुराने राजाओंके शासनकालका इतिहास अकिंचन लगने लगा ॥ १५ ॥ एक बार नगरके बाहर वह राजा विहार कर रहा था, उसी समय अपनी छावनीके पास ही उसने कुछ भयभीत लोगोंके मुखसे 'यह चोर है—चोर है' की चिल्लाहट सुनी ॥ १६ ॥ इससे कुपित होकर राजाने कहा—'यहाँ पहरेपर कौन है ? देखो कहाँ चोर है—उसे तुरन्त बाँध लो' । उसके यह आज्ञा देते ही जनताका हल्ला तो शान्त हो गया, किन्तु चोरका पता नहीं लगा ॥ १७ ॥ उसके दो-तीन दिन बाद जब राजा भ्रमणके लिए निकला, तब दो-तीन दिव्य दीप्तिसम्पन्न स्त्रियाँ उसके सम्मुख खड़ी होकर अभयकी याचना करने लगीं ॥ १८ ॥ जब उस दयालु राजाने अपना घोड़ा रोककर उन्हें अभयदान दे दिया, तब वे सुन्दरियाँ माथेपर अञ्जलि रखकर बोलीं—॥ १९ ॥ 'हे करुणानिधान ! अपने लोकोत्तर प्रभावसे जनसाधारणकी रक्षाके लिए तत्पर आपके राज्यमें किसीको किसी अन्य व्यक्तिसे भय क्योंकर हो सकता ? ॥ २० ॥ स्वामिन् ! उस समय हमारे पति नागगण मेघ बनकर आकाशमण्डलमें विचर रहे थे । उन्हें देखकर धानकी रखवाली करनेवाले किसानोंको व्यर्थ ओले पड़नेकी आशंका हो गयी । इससे अपने खेतोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे उन क्षुब्ध किसानोंने 'चोर-चोर' चिल्लाना शुरू कर दिया । वह चीत्कार सुनकर आपने उन्हें पकड़नेकी आज्ञा दे दी । आपके कोपसे वे नाग आपके सेवकों द्वारा पकड़े जाकर बँधे पड़े हैं । अब दया करके आप उन्हें बन्धनमुक्त करा दीजिए ॥ २१-२४ ॥ उन सुन्दरियोंकी विनम्र प्रार्थनासे प्रसन्न होकर राजा मेघवाहनने आज्ञा दे दी—'सभी नाग तत्काल छोड़ दिये जायँ' ॥ २५ ॥ राजाकी उस आज्ञासे नागगण तुरन्त बन्धनमुक्त हो गये और राजाके चरणोंको प्रणाम करके सानन्द और परिवार सहित अपने घर चले गये ॥ २६ ॥ तदनन्तर निष्कपटभावसे धर्मका आचरण करनेवाला राजा मेघवाहन जगतीतलके सभी राजाओंसे अहिंसाकी आज्ञा मनवानेके लिए दिग्विजय करनेको चला ॥ २७ ॥ उस राजाका वह

प्रभावविजितान्कृत्वा सोऽहिंसादीक्षितान्नृपान्। अर्णसां पत्युरभ्यर्णमवापावर्णवर्जितः ॥२९॥
तत्र तालीवनच्छायासुखविश्रान्तसैनिकः। युक्तिं द्वीपान्तराक्रान्तौ क्षणमन्तर्व्यचिन्तयत् ॥३०॥
अथ वेलावनोपान्तात्तेनार्ताक्रन्दितध्वनिः। मेघवाहनराज्येऽपि हतोऽहमिति शुश्रुवे ॥३१॥
तप्तायःशङ्कुनेवान्तर्व्रणितः स द्रुतं ततः। संचारिणातपत्रेण सत्रा तां वसुधामगात् ॥३२॥
अपश्यदथ केनापि चण्डिकायतनाग्रतः। नरं शबरसेनान्या हन्यमानमधोमुखम् ॥३३॥
अनात्मज्ञ धिगेतत्ते कुकर्मेति महीभुजा। तर्जितः स भयादेवं शबरस्तं व्यजिज्ञपत् ॥३४॥
शिशुर्मुमूर्षुर्मे राजन्नयं रोगार्दितः सुतः। कर्मैतद्दैवतैरुक्तमस्य श्रेयोलवावहम् ॥३५॥
उपहारनिरोधेन सद्य एव विपद्यते। बन्धुवर्गमशेषं च विद्ध्येतज्जीवजीवितम् ॥३६॥
अरण्यगहनाल्लब्धमनाथं देव रक्षसि। बहुलोकाश्रयं बालं कथमेतमुपेक्षसे ॥३७॥
अथाभ्यधान्महात्मा स वचोभिः शबरस्य तैः। वध्यस्य दृष्टिपातैश्च विक्लवैर्विवशीकृतः ॥३८॥
किरात कातरो मा भूः स्वयं संरक्ष्यते मया। बहुबन्धुस्तव सुतो वध्योऽप्ययमबान्धवः ॥३९॥
उपहारं करोम्येष चण्डिकायै स्वविग्रहम्। मयि प्रहर निःशङ्कं जीवत्वेतज्जनद्वयम् ॥४०॥
तदद्भुतमहासत्त्वचित्तोदात्तत्वविस्मितः। उन्मिषद्रोमहर्षस्तं ततः स शबरोऽभ्यधात् ॥४१॥
अतिकारुण्यमिषतस्तवायं पृथिवीपते। कश्चिन्मतिविपर्यासप्रकारो हृदि रोहति ॥४२॥
त्रैलोक्यजीवितेनापि यो रक्ष्यो हेलयैव तम्। पृथिवीभोगसुभगं कथं कायमुपेक्षसे ॥४३॥

पुर्नोन विजययोग संसारके समस्त प्राणियोंको अभयदान द्वारा निःशंक बनानेके लिए ही था ॥ २८ ॥ तदनुसार अपने प्रतापसे बहुतेरे राजाओंको परास्त करके उसने अहिंसाव्रतका पालन करनेके लिए विवश कर दिया। इस प्रकार क्रमशः अनेकानेक राजाओंपर विजय प्राप्त करता हुआ राजा मेघवाहन समुद्रतटपर जा पहुँचा ॥ २९ ॥ वहाँ उसके सैनिक तालवृक्षोंकी छायामें सुस्ताने लगे और राजा मेघवाहन मन ही मन समुद्रको पार करके द्वीपान्तरोंमें भ्रमण करनेके मंसूबे बनाने लगा ॥ ३० ॥ उसी समय पास ही समुद्रतटसे यह करुणक्रन्दन सुनायी पड़ा—'हाय! महान् धर्मात्मा राजा मेघवाहनके राज्य में नाहक मारा जा रहा हूँ ॥ ३१ ॥ ये शब्द उसके हृदयमें तपाये हुए लौहशंकुके समान जा चुभे। तत्काल वह राजा छत्र धारण करके उस ओर चल पड़ा ॥ ३२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि एक शबर-सेनापति हाथमें तलवार लिये देवीमन्दिरके समक्ष नतमस्तक एक मनुष्यका बलिदान करनेको उद्यत है। यह देखा तो क्रुद्ध होकर राजाने कहा—'अरे नीच! ऐसा दुष्कर्म करते हुए तुझे लाज नहीं लगती? महाराज मेघवाहनके धमकानेपर वह भयभीत शबर बोला—॥ ३३ ॥ ३४ ॥—'राजन्! भयानक रोगसे पीड़ित मेरा पुत्र मरणासन्न है। इस संकटसे बचनेके लिए देवताओंने मनुष्यका बलिदान ही एकमात्र उपाय बताया है ॥ ३५ ॥ यदि यह बलिदान न किया गया तो मेरा बच्चा मर जायगा। उस बालकके जीवनपर ही मेरा और मेरे परिवारका जीवन निर्भर है ॥ ३६ ॥ हे देव! जब आप गहन वनोंमें विचरनेवाले मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, तब अनेक मनुष्योंके जीवनाधार मेरे बालकके जीवनकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? ॥ ३७ ॥ इस तरह दुखिया शबर-सेनापतिके दीनवचन तथा उस वध्य पुरुषकी आशाभरी एवं कातर दृष्टिसे विवश होकर राजा मेघवाहनने कहा—॥ ३८ ॥ 'शबर! तुम घबड़ाओ नहीं। अनेक बान्धवों युक्त तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा बान्धवविहीन इस वध्यकी भी मुझे रक्षा करनी है ॥ ३९ ॥ अतएव इन दोनोंकी रक्षाके लिए मैं अपने आपको देवीके अर्पण करता हूँ। अब तू निर्भय होकर मुझपर खड्गका प्रहारकर। जिससे इन दोनोंका जीवन बच जाय ॥४०॥ महासत्त्व राजा मेघवाहनकी यह अद्भुत जीवदया तथा उदारता देखकर विस्मित एवं पुलकित होता हुआ शबर कहने लगा—॥ ४१ ॥ 'हे राजन्! मुझे ऐसा लगता है कि दयाके आधिक्यसे आपकी बुद्धि कुछ भ्रान्त-सी हो गयी है ॥ ४२ ॥ सारे संसारके जीवोंके प्राण देकर रक्षा करने योग्य तथा समस्त पृथिवीका सुख भोगने

न मानं न यशो नार्थान्न दारान्न च बान्धवान् । न धर्मं न सुतान्भूपा रक्षन्ति प्राणतृष्णया ॥४४॥
तत्प्रसीद प्रजानाथ मा वध्येऽस्मिन्कृपां कृथाः । शिशुश्चैष प्रजाश्चैता जीवन्तु त्वयि जीवति ॥४५॥
उपाजिहीर्षुरात्मानं दन्तद्योतार्घडम्बरैः । अर्चयन्निव चामुण्डामथोवाच स पार्थिवः ॥४६॥
सदाचारसुधास्वादे के भवन्तो वनौकसः । जाह्नवीमज्जनप्रीतिं न जानन्ति मरुस्थिताः ॥४७॥
ध्रुवापायेन कायेन क्रीणतः कीर्तिमव्ययाम् । ममाभीष्टं प्रमाष्टुं ते मूढ रूढोऽयमाग्रहः ॥४८॥
मा वोचः किंचिदपरं प्रहर्तुं चेद्घृणा तव । न किं निजः कृपाणो मे शक्तः प्रकान्तसिद्धये ॥४९॥
इत्युक्त्वा स स्वयं देहमुपहर्तुं समुद्यतः । खण्डनाय स्वमुण्डस्य विकोशं शस्त्रमाददे ॥५०॥
ततः प्रहर्तुकामस्य तस्य द्युकुसुमैः शिरः । करश्च दिव्यवपुषा रुद्धः केनाप्यजायत ॥५१॥
अथापश्यत्तथाभूतः कंचिद्दिव्याकृतिं पुरः । न चण्डिकां न तं वध्यं न किरातं न दारकम् ॥५२॥
स तं दिव्यस्तदावादीन्मां त्वं सत्त्ववशीकृतम् । विद्धि मध्यमलोकेन्दो वरुणं करुणानिधे ॥५३॥
यदेतत्त्वामुपास्तेऽद्य छत्रं तन्मत्पुरात्पुरा । महाबलोऽहरद्भौमः पुराणश्वशुरस्तव ॥५४॥
रसातलैकतिलकं माहात्म्यवदिदं विना । उपद्रवाः प्राणहराः पौराणां नः पदे पदे ॥५५॥
तदिदं प्राप्तुकामेन त्वदौदार्यं परीक्षितुम् । कारुण्यमथ मायेयं निरमायि मयेदृशी ॥५६॥
त्वदादिर्यो व्यधाज्जन्तून्व्यसून्वसुकुलात्मजः । प्रायश्चित्तभमारेण चरसीव तदेनसः ॥५७॥
भयस्पृहाजनकयोर्धरणीधारणोचिते । शेषदेहे विषोद्गारफणारत्नौघयोरिव ॥५८॥
तमःप्रकाशावहयोस्तेजःक्रान्तदिगन्तरे । उपर्बुधे धूमजालज्वालापल्लवयोरिव ॥५९॥

लायक आप अपने कीमती शरीरकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? ॥ ४३ ॥ अन्य राजे तो अपनी प्राणरक्षाके लिए कीर्ति, मान, धन, धर्म, स्त्री-पुत्र आदिकी रक्षाको भी आवश्यक नहीं समझते ॥ ४४ ॥ अतएव हे प्राणनाथ! आप इस वध्यपर कृपा मत कीजिए। यदि आप जीवित रहेंगे तो सारी प्रजा, हम सब तथा यह बालक सब लोग जीवित रह जायँगे ॥ ४५ ॥ शबरकी बात सुनी तो अपने हास्यसे दाँतोंके दीप्तिरूपी जलका उपहार देवीके चरणोंमें अर्पित करता हुआ राजा मेघवाहन बोला—॥ ४६ ॥ 'जैसे मरुस्थलके निवासी लोग गंगाजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होनेवाले आनन्दको नहीं जान सकते, वैसे ही तुम वनवासी लोग सदाचाररूपी अमृतका स्वाद नहीं जान सकते ॥ ४७ ॥ ओ मूढ! इस अवश्य विनाशशील शरीरसे अविनाशिनी कीर्ति खरीदनेके लिए उद्यत मुझको तेरा यह दुराग्रह बाधक प्रतीत हो रहा है ॥ ४८ ॥ इसलिए अब तू कुछ भी न बोल। यदि तुझे मारनेमें दया आती हो तो क्या मेरी तलवार यह कार्य नहीं कर सकती?' ॥ ४९ ॥ ऐसा कह और तलवार म्यानसे निकालकर राजा अपने हाथों अपना मस्तक काटकर देवीको अर्पण कर देनेके लिए सन्नद्ध हो गया ॥ ५० ॥ इस प्रकार प्राण देनेको उद्यत राजा मेघवाहनके मस्तकपर देवताओंने पुष्पवर्षा की और किसी दिव्य पुरुषने आकर पीछेसे उसका हाथ पकड़ लिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उस राजाने अपने समक्ष एक दिव्य आकृतिवाले पुरुषको खड़े देखा। तब वहाँपर उसे देवीकी मूर्ति, शबर बालक एवं वध्य पुरुष कोई भी वहाँ नहीं दीखा ॥ ५२ ॥ उस दिव्य पुरुषने राजासे कहा—'हे करुणानिधे! मैं मध्यलोकका प्रभु वरुण देवता देवता हूँ। तुम्हारा असाधारण धैर्य देखकर मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ ॥ ५३ ॥ हे भूपतिवर्य! तुम्हारे मस्तकपर जो छत्र लगा हुआ है, वह मेरा ही है। तुम्हारे पुराने ससुर भौमासुरने मेरे नगरमें आकर इसे मुझसे छीन लिया था ॥ ५४ ॥ यह छत्र मेरे लोकका एक बहुमूल्य रत्न है। इसके न रहनेसे इस समय मेरे पुरवासियोंमें पद-पदपर नानाप्रकारके उपद्रव हो रहे हैं ॥ ५५ ॥ हे दयानिधे! इस छत्रको पाने तथा तुम्हारी उदारताकी परीक्षाके हेतु मुझे ऐसी माया रचनी पड़ी ॥ ५६ ॥ हे राजन्! आप अपनी इस अद्भुत प्राणिदयाके द्वारा उस वसुकुलतनय राजा मिहिरकुलके पापोंका प्रायश्चित्त कर रहे हैं, जिसने अकारण बहुतेरे प्राणियोंका वध किया था ॥ ५७ ॥ जैसे पृथिवीको धारण करनेवाले शेषनागके शरीरमें विद्यमान विषैली फुफकार और फणमण्डलमें स्थित रत्नराशि भय तथा लोभ दोनों उत्पन्न करती है। जैसे अपने तेजसे

क्षमाप्यायक्रियाभाजो रुद्धतेजस्विमण्डले । प्रावृट्पयोदच्छन्नेऽह्नि संतापासारयोरिव ॥६०॥
द्वयोरालोकितं चित्रं जन्मैकस्मिन्महाकुले । तस्य त्रिकोटिहन्तुश्च तवाहिंसस्य च प्रभोः ॥ चक्कलकम् ॥६१॥
नम्रः सम्राडथैवं स वदतो यादसां प्रभोः । चकार पूजां स्तोत्रेण छत्रेण च कृताञ्जलिः ॥६२॥
तं च स प्रतिगृह्णन्तं प्रणयादुष्णवारणम् । जगाद गुणिनामग्र्यो वरुणं धरणीधरः ॥६३॥
कल्पद्रुमाश्च सन्तश्च नार्हन्ति समशीर्षिकाम् । अर्थिना प्रार्थिता पूर्वे फलन्त्यन्ये स्वयं यतः ॥६४॥
अवालम्बिष्यतच्छत्रं कथं न पुण्यपण्यताम् । तत्प्रार्थयिष्यत न चेदार्तोपकृतये भवान् ॥६५॥
वदान्यः संविभाग्येभ्यः पूर्णं कुर्यादनुग्रहम् । छाययाप्याययन्दद्यात्फलान्यपि महीरुहः ॥६६॥
तदेवं विहितोदात्तसंविभागाभिचोदितः । जनोऽयं भगवन्किंचिद्वरं प्रार्थयते परम् ॥६७॥
वशीकृतेयं पृथिवी कृत्स्ना भवदनुग्रहात् । जेतुं द्वीपान्कथ्यतां तु युक्तिः पाथोधिलङ्घने ॥६८॥
इत्यभ्यर्थ्यमानोऽकथयद्भूमिपालं जलेश्वरः । तितीर्षा भवति स्तम्भं नीयतेऽम्भो मयाम्बुधेः ॥६९॥
ततो महान्प्रसादोऽयमित्युक्ते पृथिवीभुजः । तिरोबभूव भगवान्वरुणः सोष्णवारणः ॥७०॥
अन्येद्युर्विस्मयस्मेरैर्बलैः सीमन्तयञ्जलम् । प्रभावस्तम्भितक्षोभं प्रोत्ततार स वारिधिम् ॥७१॥
गुणरत्नाकरः शैलं स रत्नाकरशेखरम् । नानारत्नाकरं सैन्यैरारुरोहाथ रोहणम् ॥७२॥
तत्र तालीतरुवनच्छायाध्यासितसैनिकम् । प्रीत्या लङ्काधिराजस्तमुपतस्थे विभीषणः ॥७३॥
समागमः स शुशुभे नरराक्षसराजयोः । वन्दिनादाश्रुतान्योन्यप्रथमालापसंभ्रमः ॥७४॥

सभी दिशाओंपर आक्रमण करनेवाले अग्निदेवमें धूमसमूह तथा प्रकाशके उत्पादक लपटें एक साथ दिखायी देती हैं। जैसे सूर्यमण्डलको बादलोंसे ढॉक लेनेवाले वर्षाकालमें क्षान्ति तथा शान्ति दोनोंको उत्पन्न करनेवाला सन्ताप तथा वर्षा दोनों प्राप्त होते हैं। ठीक उसी प्रकार एक ही अतिशय श्रेष्ठ कुलमें तीन करोड़ प्राणियोंके घातक मिहिरकुल एवं आपके सदृश दयालु पुरुषका जन्म देखा जा रहा है' ॥५८-६१॥ वरुणदेवके वचन सुनकर सम्राट् मेघवाहनने विनम्रभावसे छत्र अर्पण करके स्तुतिपूर्वक प्रणाम तथा सत्कार किया ॥ ६२ ॥ जब वरुणदेव उसके हाथसे छत्र लेने लगे, तब परम गुणवान् राजाने कहा—'भगवन्! मॉगनेपर इच्छा पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष तथा बिना मॉगे ही कामना पूर्ण कर देनेवाले सन्त दोनों एक जैसे नहीं हो सकते। क्योंकि कल्पवृक्ष मॉगनेपर याचककी इच्छा पूर्ण करता है, किन्तु सन्त बिना मॉगे कामना पूर्ण कर देते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ दुखियोंका दुःख दूर करनेके लिए यदि आप मुझसे इस छत्रकी मॉग न करते तो यह छत्र इतना पुण्यदायक कैसे होता ॥ ६५ ॥ जैसे वृक्ष अपने आश्रित जनोंको छाया प्रदान द्वारा सुखी करनेके बाद भी फल देकर सन्तुष्ट करता है, उसी प्रकार उदार पुरुष याचकोंपर पूर्ण कृपा करते हैं ॥ ६६ ॥ अतएव आपकी उदारतासे प्रेरित होकर यह दास भी आपसे कुछ वर मॉगना चाहता है ॥ ६७ ॥ आपकी कृपासे मैंने सारी वसुधा जीतकर अपने अधीन कर ली है। अब आप कृपा करके मुझे कोई ऐसा उपाय करिए कि जिससे मैं समुद्र लॉघकर समुद्रके मध्यवर्ती द्वीपोंपर विजय प्राप्त कर सकूँ' ॥ ६८ ॥ राजा मेघवाहनके इस प्रकार याचना करनेपर वरुणदेवने कहा—'राजन्! जब जब तुम समुद्रको पार करना चाहोगे, तब तब मैं समुद्रके जलको स्तम्भित कर दिया करूँगा' ॥ ६९ ॥ राजाने कहा—'मुझपर आपकी यह बहुत बड़ी अनुकम्पा होगी'। उसके यह कहते ही छत्रसमेत वरुणदेव अन्तर्धान हो गये ॥ ७० ॥ दूसरे दिन आश्चर्यचकित सेनाके साथ वह राजा वरुणदेवके प्रभावसे स्तम्भित जलके ऊपरसे समुद्रके पार हो गया ॥ ७१ ॥ गुणोंके समुद्र उस राजाने वहॉसे आगे बढ़कर विविध रत्नोंकी खानस्वरूप रत्नाकर शिखरपर अपनी सेनाके साथ चढ़ाई की ॥ ७२ ॥ वहॉपर जब राजा मेघवाहनके सैनिक तालवृक्षोंकी छायामें विश्राम कर रहे थे, उसी समय लंकानरेश विभीषणने मिलकर बड़े प्रेमके साथ उसका सत्कार किया ॥ ७३ ॥ उस समय नरराज और राक्षसराजका मिलन बहुत ही सुन्दर लग रहा था। उभयपक्षके बन्दीजनोंने दोनों वंशोंकी प्रशस्तियोंसे मिश्रित श्रुतिमधुर गीतोंके द्वारा

अथ रक्षःपतिर्लङ्कां नीत्वाऽलंकरणं क्षितेः । अमर्त्यसुलभाभिस्तं विभूतिभिरुपाचरत् ॥७५॥
यदासीत्पिशिताशा इत्यन्वर्थं नाम रक्षसाम् । तदा तदाज्ञाग्रहणे प्रापि तद्रूढिशब्दताम् ॥७६॥
रक्षःशिरःप्रतिच्छन्दैः स्थिरप्रणतिसूचकैः । सनाथशिखरान्प्रादात्तस्मै रक्षःपतिर्ध्वजान् ॥७७॥
पाराद्वारिनिधेः प्राप्ताः कश्मीरेष्वधुनापि ये । राज्ञां यात्रासु निर्यान्ति ख्याताः पारध्वजाः पुरः ॥७८॥
इत्यमाराक्षसकुलं प्राणिहिंसां निषिध्य सः । स्वमण्डलं प्रति कृती न्यवर्तत नराधिपः ॥७९॥
ततः प्रभृति तस्याज्ञा सार्वभौमस्य भूपतेः । हिंसाविरतिरूपा सा न कैश्चिदुदलङ्घ्यत ॥८०॥
क्षुद्रैरुग्रादिभिर्नाप्सु सिंहाद्यैर्गहने न च । न श्येनप्रमुखैर्व्योम्नि तद्राज्ये जन्तवो हताः ॥८१॥
अतिक्रामति कालेऽथ कोऽपि शोकाकुलो द्विजः । पुत्रं गदार्तमादाय द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥८२॥
दुर्गया प्रार्थितं राजन्पश्वाहारं विनैष मे । अनन्यसंततेः सूनुर्ज्वरेणाद्य विपद्यते ॥८३॥
यद्यहिंसाग्रहेणेमं क्षितिपाल न रक्षसि । एतद्विपत्तौ तत्कोऽन्यो निमित्तं प्रतिभाति मे ॥८४॥
निर्णयो वर्णगुरुणा त्वयैवैष प्रदीयताम् । ब्राह्मणस्य पशोर्वा स्यात्प्राणानां कियदन्तरम् ॥८५॥
तपःस्थानपि ये जघ्नुर्ब्राह्मणप्राणलब्धये । हा मातस्तेऽधुना भूमे प्रजापालास्तिरोहिताः ॥८६॥
इति ब्रुवति साक्षेपं शोकरूक्षाक्षरं द्विजे । आपन्नार्तिहरो राजा चिरमेवं व्यचिन्तयत् ॥८७॥
न वध्याः प्राणिन इति प्राज्ञया समयः कृतः । विप्रार्थमपि किं कुर्यां स प्रतिज्ञातविप्लवम् ॥८८॥
निमित्तीकृत्य मामद्य विपद्येत द्विजो यदि । तत्राप्यत्यन्तपापीयानर्थः संकल्पविप्लवः ॥८९॥
नैति मे संशयभ्रान्तमेकपक्षावलम्बनम् । संभेदावर्तपतितं प्रसूनमिव मानसम् ॥९०॥

उस अनुपम समागमको और भी सरस बना दिया ॥ ७४ ॥ तदनन्तर बड़े आदरके साथ लंकाधिपति विभीषणने अपनी राजधानी लंकामें ले जाकर दिव्य विभूतियोंसे मेघवाहनका सत्कार किया ॥ ७५ ॥ यद्यपि राक्षसोंका 'पिशिताशन (मांसाहारी)' यह नाम सार्थक था, किन्तु अब राजा मेघवाहनके अहिंसा व्रतको अंगीकार कर लेनेसे वह नाम रूढ़मात्र रह गया ॥ ७६ ॥ सदाके लिए विनम्रभावको सूचित करनेवाले पर्वतप्रदेशमें राक्षसोंके मस्तकोंसे अंकित बहुतेरी पताकायें विभीषणने राजा मेघवाहनको दीं ॥ ७७ ॥ वे पताकायें समुद्रपारसे लायी गयी थीं, अतएव उनका नाम पारध्वज पड़ गया था। आज भी वे ध्वज राजाकी सवारीके आगे-आगे चलते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार राक्षसों तकको अहिंसाव्रतका आदेश देकर वह कर्मठ राजा कश्मीर लौट आया ॥ ७९ ॥ तबसे उस सार्वभौम राजाके अहिंसाव्रतसम्बन्धी आदेशका कोई भी प्राणी उल्लंघन नहीं करता था ॥ ८० ॥ यहाँ तक कि उसके राज्यमें नक्र आदि जलचर, सिंह आदि गहन वनचर तथा बाज आदि नभचर हिंस्र प्राणियोंने भी हिंसा त्यागकर दयालु जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। इनमेंसे कोई जीव किसी जन्तुका वध नहीं करता था ॥ ८१ ॥ कुछ दिनों बाद एक ब्राह्मण अपने बीमार बालकको राजद्वारपर लाकर शोकाकुल भावसे चिल्लाकर कहने लगा—'दुर्गादेवीने मुझसे पशुबलि माँगी है। यदि मैं बलि न दूँगा तो मेरा यह एकमात्र पुत्र भीषण ज्वरसे पीड़ित होकर मर जायगा ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ यदि अहिंसाके आग्रहवश आप इस बालककी रक्षा न करेंगे तो इसके मरणका हेतु आपके सिवाय और कौन होगा ? ॥ ८४ ॥ हे राजन् ! एक ब्राह्मणके बालक तथा क्षुद्र पशुके प्राणोंमें कितना अन्तर होता है, इस बातका निर्णय आप ही कर दीजिए। क्योंकि आप सभी वर्णोंके गुरु हैं ॥ ८५ ॥ हा माता वसुन्धरे ! ब्राह्मणोंकी प्राणरक्षाके लिए जो राजे तपस्वियों तकका वध कर देते थे, वे प्रजापालक नरेश सदाके लिए समाप्त हो गये ॥ ८६ ॥ उस शोकार्त ब्राह्मणके इन आक्षेपपूर्ण वचनोंको सुनकर दुःखियोंका दुःख दूर करनेवाला राजा मेघवाहन बड़ी देर तक कुछ सोचता रहा ॥ ८७ ॥ वह इस विचारमें उलझा हुआ था कि 'मैंने जीवनभर प्राणिवध न होने देनेकी जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसे इस ब्राह्मण बालकके लिए कैसे त्याग दूँ ॥ ८८ ॥ यदि मेरे कारण यह बालक कहीं मर गया, तब भी मेरे संकल्पमें एक महान् विप्लवकी घड़ी आ जायगी ॥ ८९ ॥ जैसे कोई पुष्प दो नदियोंके संगमवाले तरंगोंमें

तत्स्वदेहोपहारेण दुर्गां तोषयता मया । प्रतिज्ञया समं न्याय्यं रक्षितुं जीवितं द्वयोः ॥९१॥
इति संचिन्त्य सुचिरं देहदानोद्यतो नृपः । श्वः प्रियं तव कर्तास्मीत्युक्त्वा विप्रं व्यसर्जयत् ॥९२॥
क्षपायां क्ष्मापतिमथ स्वमुपाहर्तुमुद्यतम् । निषिध्य दुर्गा व्यधितं प्रकृतिस्थं द्विजन्मजम् ॥९३॥
इत्याद्यद्भुतस्यापि चरितं तस्य भूपतेः । पृथग्जनेष्वसंभाव्यं वर्णयन्तस्त्रपामहे ॥९४॥
अथवा रचनानिर्विशेषसार्येण वर्त्मना । प्रस्थिता नानुरुन्धन्ति श्रोतृचित्तानुवर्तनम् ॥९५॥
तस्मिन्नस्तंगते भुक्त्वा क्ष्मां चतुस्त्रिंशतं समाः । अनादित्यमिवाशेषं निरालोकमभूज्जगत् ॥९६॥
अथ क्ष्माभृद्ररक्ष क्ष्मां श्रेष्ठसेनस्तदात्मजः । आहुः प्रवरसेनं यं तुञ्जीनं चाक्षमा जनाः ॥९७॥
दोःस्तम्भसंसृतासक्तौ कृपाणमणिदर्पणे । संक्रान्तेवात्मभूर्लक्ष्मीर्यस्य भुवनश्रीर्व्यभाव्यत ॥९८॥
समातृचक्रं निर्माय यः पूर्वं प्रवरेश्वरम् । पुण्याः पुराणाधिष्ठाने प्रतिष्ठा विविधा व्यधात् ॥९९॥
गृहाङ्गणमिव क्षोणीं गणयन्नवनिर्नाम् । त्रिगर्तोर्वीं ग्राममध्ये प्रवरेशाय यो ददौ ॥१००॥
ईशो नृपाणां निःशेषक्ष्माकेदारकुटुम्बिनाम् । स समास्त्रिंशतं भूभृदतित्रिंशाग्र्योऽभवत् ॥१०१॥
हिरण्यतोरमाणाख्यं व्यधत्तामथ तत्सुतौ । साम्राज्ययुवराजत्वभाजने रक्षणं क्षितेः ॥१०२॥
बलाहतानां प्राचुर्यं विनिवार्यासमञ्जसम् । तोरमाणेन दीनाराः स्वाहताः संप्रवर्तिताः ॥१०३॥
सामवज्ञाय राजेव कृत्यादनेन वर्त्तितम् । इति तं पूर्वजो राजा कोपनो बन्धने व्यधात् ॥१०४॥
चिरं स्थितिनिरुद्धशुचस्तत्र तस्याञ्जनाभिधा । ऐक्ष्वाकन्यात्मजा राज्ञी वज्रेन्द्रस्यास्त गुर्विणी ॥१०५॥

पड़कर किसी ओरका नहीं रह जाता, उसी प्रकार दो विपत्तियोंके भँवरमें पड़ा हुआ मेरा मन किसी एक पक्षका अवलम्बन नहीं कर पाता ॥ ९० ॥ अतएव यदि मैं अपना ही शरीर बलिदानके रूपमें अर्पित करके भगवती दुर्गा देवीको सन्तुष्ट कर दूँ तो मेरी प्रतिज्ञाके साथ-साथ दो प्राणियोंकी रक्षा हो जायगी ॥ ९१ ॥ इस तरह बड़ी देर तक विचार करनेके बाद अपना ही शरीर देनेको उद्यत राजाने उस ब्राह्मणसे कहा—'कल आपकी कामना पूर्ण हो जायगी।' ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया ॥ ९२ ॥ तदनन्तर रात्रिके समय बलिके रूपमें अपना शरीर देनेके लिए उद्यत राजाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर देवीने उसे आत्मदान देनेसे रोका और बीमार विप्रबालकको स्वस्थ कर दिया ॥ ९३ ॥ इस प्रकार एक नवीन राजाके अद्भुत चरित्रका वर्णन करते हुए मुझको इसलिए लज्जाका अनुभव हो रहा है कि कहीं लोग मेरी बातपर अविश्वास न करने लग जायँ ॥ ९४ ॥ क्योंकि आज शैलीमें इतिहास लिखनेवाले किसी भी कविकी रचना श्रोताओंके हृदयका स्पर्श नहीं करती ॥ ९५ ॥ इस प्रकार चौंतीस वर्ष राज्य करके राजा मेघवाहन जब स्वर्गवासी हुआ तो जैसे उस राजारूपी सूर्यके अभावमें समस्त संसार अन्धकाराच्छन्न हो गया ॥९६॥ उसके बाद उसका पुत्र श्रेष्ठसेन राजा बना। आगे चलकर वह प्रवरसेन तथा द्वितीय तुंजीनके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ९७ ॥ राजा प्रवरसेनकी भुजाओंके आश्रित होकर समस्त त्रिलोकीकी राज्यलक्ष्मी उसकी नङ्गी तलवाररूपी मणिके दर्पणमें प्रतिबिम्बित होकर शोभित होने लगी ॥ ९८ ॥ उस राजाने पहले प्रवरेश्वर शिवकी स्थापना की। तत्पश्चात् पुराणाधिष्ठानमें मातृचक्र प्रतिष्ठित करके अनेकानेक देवालयोंका निर्माण कराया ॥ ९९ ॥ वह राजा समस्त पृथिवीको अपने घरका आँगन समझता था। उसने भगवान् प्रवरेश्वरकी सेवा-पूजाके लिए बहुतेरे ग्रामोंके साथ सारा त्रिगर्त देश अर्पित कर दिया ॥ १०० ॥ सारी वसुन्धराको अपनी पैतृक सम्पदा समझनेवाले नरेशोंका शासक होते हुए भी अतिशय सौम्यप्रकृति राजा प्रवरसेनने पूरे तीस वर्ष तक पृथिवीपर निष्कण्टक राज्य किया ॥ १०१ ॥ तदनन्तर हिरण्य तथा तोरमाण नामके उसके दो पुत्र राजा तथा युवराज बनकर सुन्दर शासन द्वारा प्रजावर्गकी रक्षा करने लगे ॥ १०२ ॥ राजा तोरमाणने 'बालाहत' नामक प्राचीन सिक्कोंका प्रचलन बन्द करके अपने प्रभावसे 'दीनार' नामका सिक्का चलाया ॥ १०३ ॥ इस कार्यसे कुपित होकर उसके ज्येष्ठ भ्राता हिरण्यने अपना अपमान एवं तोरमाणके स्वयं राजा बननेकी धृष्टता समझकर उसको कारागारमें डाल दिया ॥ १०४ ॥ चिरकाल तक जेलमें बन्द रहनेपर तोरमाणका शोक दूर हो गया। उन दिनों उसकी पत्नी तथा इक्ष्वाकु-

आसन्नप्रसवा भर्त्रा सा त्रपार्तेन बोधिता। सुतं प्रविष्टा प्रासोष्ट कुलालनिलये क्वचित् ॥१०६॥
स कुम्भकारगेहिन्या काक्येव पिकशावकः। पुत्रीकृतो राजपुत्रः पर्याप्तं पर्यवर्धत ॥१०७॥
जनयित्र्याः कुलाल्याश्च रक्षित्र्या विदितोऽभवत्। रत्नसूतेर्भुजंग्याश्च प्रच्छन्न इव शेवधिः ॥१०८॥
पौत्रः प्रवरसेनस्य गिरा मातुर्नृपात्मजः। पैतामहेन नाम्नैव कुलाल्या ख्यापितोऽभवत् ॥१०९॥
वर्धमानः स संपर्कं न सेहे सहवासिनाम्। तेजस्विमैत्रीरसिकः शिशुः पद्म इवाम्भसाम् ॥११०॥
तं कुलीनैश्च शूरैश्च विद्याविद्भिश्च दारकैः। अन्वीतमेव ददृशुः क्रीडन्तं विस्मयाज्जनाः ॥१११॥
स्वच्छन्दस्यात्युदारौजा राजा चक्रे स दारकैः। मृगेन्द्रशावः क्रीडद्भिर्वने बालमृगैरिव ॥११२॥
संविभेजेऽनुजग्राह वशीचक्रे च सोऽर्भकान्। अराजोचितमाचारं नैव कंचिदसेवत ॥११३॥
भाण्डादि कर्तुं मृत्पिण्डं कुम्भकारैः समर्पितम्। स्वीकृत्य चक्रिरे तेन शिवलिङ्गपरम्पराः ॥११४॥
तथा साश्चर्यचर्यः स क्रीडञ्जातु व्यलोक्यत। मातुलेन जयेन्द्रेण सादरं चाभ्यनन्द्यत ॥११५॥
आवेद्यमानं शिशुभिस्तं जयेन्द्रोऽयमित्यसौ। भूपालवत्सावहेलं पश्यन्नन्वग्रहीदिव ॥११६॥
संभाव्य सत्त्वावष्टम्भात्तमसामान्यवंशजम्। सादृश्याद्भगिनीभर्तुर्भागिनेयमशङ्कत ॥११७॥
सत्वरस्तत्त्वजिज्ञासारसेनानुससार तम्। प्राप्तस्तद्गृहमौत्सुक्यात्स्वसारं च व्यलोकयत् ॥११८॥
सा स चान्योन्यमुन्मन्यू पश्यन्तौ भ्रातरौ चिरात्। निःश्वासद्विगुणोष्माणि मुहुरश्रूण्यमुञ्चताम् ॥११९॥
कुलाल्या दारको मातः कावेताविति पृष्टवान्। अकथ्यतेत्थं वत्सैषा माताऽयं मातुलश्च ते ॥१२०॥

वंशज राजा वज्रेन्द्रकी पुत्री अंजना गर्भवती थी ॥ १०५ ॥ जब उसके प्रसवका समय समीप आया, तब अपने पतिकी आज्ञासे कारागार त्यागकर वह एक कुम्हारके यहाँ जाकर रहने लगी और वहाँ ही उसने एक पुत्रको जन्म दिया ॥ १०६ ॥ जैसे कौएकी पत्नी कोयलके शावकका पालन करती है, उसी प्रकार उस कुम्हारकी स्त्री अपनी सन्ततिके समान उस बालकका पालन करने लगी और धीरे-धीरे वह बालक बढने लगा ॥ १०७ ॥ इस बातको केवल उस बालककी माता तथा वह कुलालपत्नी ही जानती थी। जैसे पृथिवीके भीतर छिपी रत्नराशिको पृथिवी तथा रत्नोंकी रक्षा करनेवाली नागिनियाँ ही जानती है ॥ १०८ ॥ बालककी माताके आज्ञानुसार कुलालपत्नीने पितामहके नामपर उस बालकका भी नाम प्रवरसेन रक्खा ॥ १०९ ॥ उत्तरोत्तर बढता हुआ वह तेजस्वियोंकी मैत्रीका प्रेमी बालक निकृष्ट श्रेणीके सहवासियोंकी मित्रताको नहीं पसन्द करता था। जैसे कमलकी मैत्री जलसे ही होती हैं—अन्य किसी वस्तुसे नहीं ॥ ११० ॥ जब लोग उसे कुलीन, शूरवीर तथा विद्याविद् बालकोंके ही साथ खेलते देखते थे, तब उन्हे बहुत आश्चर्य होता था ॥ १११ ॥ जैसे वनमे सिंहशावकके साथ खेलते हुए मृगके बच्चे उसे अपना नायक मान लेते है, उसी प्रकार साथ खेलनेवाले बालकोंने प्रवरसेनको अपना राजा मान लिया ॥ ११२ ॥ प्रवरसेनको खानेके लिए जो सामग्री मिलती थी, उसे वह सभी बालकोंमें बाँटकर खाता था। उसकी सब बच्चोंपर कृपादृष्टि रहती थी। इससे वहाँके सब बालक उसके वशमें हो गये थे। राजपुत्रोंके लिए अनुचित लगनेवाला कोई भी काम वह नहीं करता था ॥ ११३ ॥ उस घरका मालिक कुम्हार बर्तन बनानेके लिए जो मिट्टी तैयार करता था, उससे प्रवरसेन बहुतेरे शिवलिंग बना डालता था ॥ ११४ ॥ इस प्रकार आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले उस बालकको खेलते देखकर एक दिन उसके मामा जयेन्द्रने बड़े प्रेमके साथ अभिनन्दन किया ॥ ११५ ॥ निकटवर्ती बालकोंने जब उसका परिचय देते हुए बताया कि ये जयेन्द्र हैं, तब बालक प्रवरसेनने एक राजपुत्रके समान अवहेलना भरी दृष्टिसे निहारकर जैसे उसपर कृपा की ॥ ११६ ॥ उस बालककी मनस्विता देखकर जयेन्द्रने उसको किसी उच्च कुलका वंशज समझा। बादमें अपने बहनोईसे मिलती-जुलती मुखाकृति देखकर उसको अपना भाजा मान लिया ॥ ११७ ॥ सही-सही बातकी जिज्ञासा होनेपर जयेन्द्र बालकके पीछे-पीछे चलकर उस कुम्हारके घर पहुँचा, तब वहाँ उसकी बहिन मिल गयी ॥ ११८ ॥ इस प्रकारके मिलनसे दोनों बहुत देरतक परस्पर एक दूसरेको देखते तथा लम्बी साँसें लेते हुए आँसू बहाते रहे

पितुर्बन्धेन सक्रोधं तं कालापेक्षयाक्षमम् । शिक्षयित्वा जयेन्द्रोऽथ कार्यशेषाय निर्ययौ ॥१२१॥
उत्पिञ्जो पादनासञ्जे तस्मिन्भ्रात्रा यदृच्छया । बन्धात्त्यक्तो नृतरणिस्तोरमाणोऽस्तमाययौ ॥१२२॥
निवार्य मरणोद्योगं मातुर्निर्वेदखेदितः । ययौ प्रवरसेनोऽथ तीर्थौत्सुक्यादिगन्तरम् ॥१२३॥
रक्षित्वा दशमासोनाः क्ष्मामेकत्रिंशतिं समाः । तस्मिन्क्षणे हिरण्योऽपि शान्तिं निःसंततिर्ययौ ॥१२४॥
तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः । एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥१२५॥
भूपमद्भुतसौभाग्यं श्रीर्वल्लभमाऽभजत् । विहाय हरिबाहूंश्च चतुरः सागरांश्च यम् ॥१२६॥
लक्ष्मीं कृत्वोपकरणं गुणे येन प्रवर्धिते । श्रीमत्सु गुणिनोऽद्यापि तिष्ठन्त्युद्धुरकन्धराः ॥१२७॥
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः । शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः ॥१२८॥
नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् । तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत् ॥१२९॥
स गम्भीरस्य भूभर्तुरनुभावं महाद्भुतम् । विविधास्थानसंवृद्धस्तस्याभ्यूह्य व्यचिन्तयत् ॥१३०॥
सोऽयमासादितः पुण्यैः क्षोणिपालो गुणिप्रियः । परभागोपलम्भाय पूर्वेऽमुष्य महीभुजः ॥१३१॥
यस्मिन्राजनि तत्त्वज्ञैः सूरिभिः संभृतश्रुतैः । नाञ्जलिर्दीयते जातु मानाय च गुणाय च ॥१३२॥
भङ्ग्याऽमुष्मिन्विदधती स्वाभिप्रायप्रकाशनम् । वैदग्ध्यवन्ध्यतां नैति बुद्धिः कुलवधूरिव ॥१३३॥
खिलीकृतखलालापे युक्तायुक्तविवेक्तरि । नायाति सेव्यमानेऽस्मिन्स्वगुणोऽनर्थकारिताम् ॥१३४॥

॥ ११९ ॥ जब बालक प्रवरसेनने कुम्हारिनसे पूछा—'माता ! ये दोनों कौन हैं ?' तब उसने बताया—'वत्स ! ये तुम्हारी माता है और ये मामा हैं' ॥ १२० ॥ जब बालकने अपने पिताके कारावासका वृत्तान्त सुना तो उसे बहुत क्षोभ हुआ। किन्तु बचपनके कारण उसका प्रतीकार करनेमें असमर्थ समझकर मामा जयेन्द्र उसे सांत्वना देकर अपना शेष काम पूर्ण करने चला गया ॥१२०॥१२१॥ कालान्तरमें सज्ञान होनेपर प्रवरसेन हिरण्यका वध करनेके लिए षड्यंत्र रचने लगा। उसी समय हिरण्यने स्वेच्छया अपने भ्राता तोरमाणको बन्धनमुक्त कर दिया। किन्तु अभाग्यवश वह मानवसूर्य तोरमाण शीघ्र ही मर गया ॥ १२२ ॥ इस प्रकार पिताके मरणसे खिन्न प्रवरसेनने असह्य वैधव्य क्लेशसे दुःखिता माताको प्राणत्यागके लिए उद्यत देखकर ढाढस बँधाया और वह उसके साथ तीर्थयात्राके लिए चल पड़ा ॥ १२३ ॥ इसी समय निःसन्तान राजा हिरण्य भी तीस वर्ष दो महीने राज्य करके स्वर्ग सिधार गया ॥ १२४ ॥ उन दिनों उज्जयिनीमें श्रीमान् हर्ष नामका चक्रवर्ती राजा विक्रमादित्य राज्य कर रहा था ॥ १२५ ॥ उस समय भगवान् विष्णुकी भुजाओं तथा चारों समुद्रोंको त्यागकर लक्ष्मी उस अद्भुत भाग्यवान् राजाकी प्रणयिनी बनी हुई थी ॥ १२६ ॥ उस गुणज्ञ राजा विक्रमादित्यने लक्ष्मीको साधन बनाकर गुणोंकी वृद्धि की थी। इसी कारण आज भी गुणीजन धनिकोंके समक्ष ऊँची गर्दन करके जाते है ॥ १२७ ॥ राजा विक्रमादित्यने शकोंका विनाश करके म्लेच्छ जातिका उच्छेद करनेके लिए भविष्यमें अवतार लेनेवाले कल्कि भगवान्का कार्यभार पहले ही से बहुत-कुछ हल्का कर दिया था ॥ १२८ ॥ उसकी ख्याति दिग्दिगन्तरोंमें व्याप्त हो चुकी थी और गुणीजन बिना किसी रुकावटके उसके पास पहुँच सकते थे। इसीसे मातृगुप्त नामका एककवि उसके यहाँ रहने लगा था ॥ १२९ ॥ अनेक राजसभाओंमे कवि मातृगुप्तने अपनी योग्यतासे सम्मान प्राप्त किया था। राजा विक्रमकी गम्भीरता तथा अद्भुत प्रभावकी ख्याति सुनकर ही वह उसके पास आकर रहने लगा था। वहाँ रहता हुआ मातृगुप्त बराबर यही सोचा करता था कि अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्यसे ही मुझे ऐसा गुणज्ञ राजा प्राप्त हुआ है। इससे पहले जिन राजाओंकी सेवामें रह चुका हूँ, उनकी स्थितिको सोचकर इस राजाकी श्रेष्ठता स्वतः परिलक्षित हो जाती है ॥ १३० ॥ १३१ ॥ राजा विक्रमादित्यके दरबारमें तत्त्वज्ञानियों, विद्वानों एवं गुणियोंको सम्मान तथा धन प्राप्त करनेके लिए बड़ी देरतक हाथ जोड़कर विनती नहीं करनी पड़ती थी ॥ १३२ ॥ उसके समक्ष कवियोंको आलंकारिक भाषामें अपना मनोभाव प्रकट करनेके निमित्त कुलांगनाके सदृश लज्जित नहीं होना पड़ता था ॥ १३३ ॥ योग्य और अयोग्यकी विवेचनामें निपुण एवं दुष्टोंकी बकवासपर ध्यान न देनेवाले उस राजाकी सेवा करनेपर गुणीजनोंका गुण व्यर्थ

अनाम्नुवद्भिः सावग्रहुर्विधसमग्रीपिंकाम् । जीवन्मरणमस्याग्रे गुणिभिर्नानुभूयते ॥१३५॥
संभावनानुसारेण प्रवृत्तोऽस्माद्विवेकिनः । शोच्यते नाश्चितोच्छ्वासं प्रीतिदायो महाशयः ॥१३६॥
गृह्णन्यथागुणं स्वान्तमुचितप्रतिपत्तिभिः । अन्तरज्ञः समस्तानामयमुत्साहवर्धनः ॥१३७॥
सेवया दृष्टकष्टस्य दाक्षिण्योत्पादने श्रमः । अस्य यो न स भृत्यानां हिमाद्रौ हिमविक्रयः ॥१३८॥
मिथ्याख्यातगुणो नाप्तो नामात्यः कलहप्रियः । असत्यसंधः स्थैर्यो वा नास्थानेऽस्य महीपतेः ॥१३९॥
अश्लीलालापिनोऽन्योन्यं नर्मोक्त्या मर्मभेदिनः । अन्यप्रवेशासहनाः संहता नास्य सेवकाः ॥१४०॥
छन्दानुवर्तिनामेष निजविज्ञानवन्दिनाम् । सर्वज्ञंमन्यतान्धानां मुखप्रेक्षी न पार्थिवः ॥१४१॥
अनेन सह संजातः संलापो विपुलोदयः । लभ्यते नान्तराच्छेत्तुं दुर्जातैर्जातु दुर्जनैः ॥१४२॥
सर्वदोषोज्झितं सेव्यं नृपमेवमिमं मम । समासादयतः पुण्यैरदूरे स्वार्थसिद्धयः ॥१४३॥
गम्भीरश्च गुणज्ञश्च स्थिरबुद्धिश्च पार्थिवः । एष क्लेशभयं त्यक्त्वा निषेव्यः प्रतिभाति मे ॥१४४॥
न चास्माद्धनमादाय रञ्जिताढन्यराजवत् । भ्राम्यतो भूतलेऽमुष्मिन्सेव्योऽन्यः प्रतिभाति मे ॥१४५॥
इति संचिन्त्य सुदृढं स नवामिव तां सभाम् । नाग्ञ्जयन्न चास्ते स्म गुणिगोष्ठीषु मध्यगः ॥१४६॥
मृदुपूर्वं गुणानेवं दर्शयन्तं विशांपतिः । विशिष्टयोन्यताज्ञप्त्यै विवेदावसरोन्मुखम् ॥१४७॥
अचिन्तयच्च नायं स्याद्गुणिमात्रं महाशयः । उदात्तं सत्क्रियार्हत्वं वदत्यस्य गभीरता ॥१४८॥

नहीं जाता था ॥ १३४ ॥ राजा विक्रमादित्यके समक्ष विद्वान और मूर्ख एक जैसे नहीं समझे जाते थे । इस कारण गुणियोंको मरणके समान कष्टका अनुभव नहीं करना पड़ता था ॥ १३५ ॥ वह वड़ा चतुर राजा था । अतएव उचित सम्मान पानेकी आशासे आये हुए विद्वानोंको निराश होकर नहीं लौटना पड़ता था ॥ १३६ ॥ प्रत्येक गुणीके गुणोंका तारतम्य समझ तथा उसकी योग्यताका भली भाँति विवेचन करनेके वाद ही वह किसी गुणीका सत्कार करके उसे प्रोत्साहित करता था ॥ १३७ ॥ उसे प्रसन्न करनेके लिए उसके सेवकोंको जो कष्ट उठाने पड़ते थे, उनसे राजा विक्रमादित्यको दुःख होता था । किन्तु सेवकोंको तनिक भी क्लेश नहीं होता था । क्योंकि वे समझते थे कि उनका उद्योग हिमालय पर्वतपर वर्फकी विक्रीके समान व्यर्थ नहीं होगा ॥ १३८ ॥ उस राजाके आप्त पुरुषोंमेंसे कोई भी ऐसा नहीं था कि जिसके गुणोंकी मिथ्या ख्याति हुई हो । उसके सेवक मिथ्याभाषी, झगड़ालू एवं चंचलचित्त नहीं थे ॥ १३९ ॥ वे सेवक अश्लीलभाषी, हँसी-हँसीमें दिलपर चोट पहुँचानेवाली वात कहनेवाले एवं किसी दूसरे पुरुषका राजदरवारमें प्रवेश असह्य समझनेवाले नहीं थे । वे कोई गुट वनाकर राजाको परेशान नहीं करते थे ॥ १४० ॥ वह राजा जीहुजूरी करके अपनी प्रशंसा करनेवालों एवं अपने आपको सर्वज्ञ समझकर अभिमानसे अन्धे मनुष्योंका मुँह भी देखना नहीं पसन्द करता था ॥ १४१ ॥ उसके साथ वातचीत करते समय दुर्जनोंको वीचमें वात काटकर विक्षेप उपस्थित करनेका अवसर नहीं मिल पाता था ॥ १४२ ॥ इस लिए कवि मातृगुप्त वरावर यही सोचता रहता था कि पूर्वजन्मके पुण्योदयसे ही मुझे ऐसा सेव्य राजा मिला है । अव मेरा अभीष्ट सिद्ध होनेमें देर नहीं लगेगी ॥ १४३ ॥ अन्य सेवकोंको भी चाहिए कि वे सेवाजनित कष्टसे भयभीत न होकर इस गम्भीर प्रकृति, गुणज्ञ तथा स्थितप्रज्ञ राजाकी सेवा करें ॥ १४४ ॥ जगतीतलके अन्य राजाओंकी भाँति इसको प्रसन्न करके पारितोषिक प्राप्त करनेके वाद किसी दूसरे राजाकी सेवा प्राप्त करनेके लिए चक्कर न काटना चाहिए । क्योंकि मेरी समझमें तो इससे वढकर कोई सेव्य राजा संसारमें है ही नहीं ॥ १४५ ॥ इस प्रकारका दृढ निश्चय करके कवि मातृगुप्त उस नवीन राजसभा तथा गुणियोंकी गोष्ठीमें सम्मिलित होकर अपने गुणोंसे राजा विक्रमादित्यका मनोरंजन करने लगा ॥ १४६ ॥ उसका उच्च व्यवहार देखकर राजाने भी समझ लिया कि यह विद्वान् अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित करनेके लिए किसी उचित अवसरकी प्रतीक्षामें है ॥ १४७ ॥ वह राजा अपने मनमें वरावर यही सोचता था कि यह केवल गुणी ही नहीं, वल्कि उच्च विचारका भी है । इसकी गम्भीरता उदात्त सत्कारप्राप्तिकी योग्यताको सूचित

इति संचिन्त्य राजापि ज्ञातुं तस्यान्तरं मतेः। नाक्रियन्त परीक्षार्थं यथावल्लाभसत्क्रियाः ॥१४९॥
स तेनानुपचारेण तमुदात्ताशयं नृपम्। स्वीकर्तुं विदन्धीमान्सिषेवे प्रीतिमाश्रितः ॥१५०॥
क्रमोपचीयमानेन सेवाभ्यासेन धीमतः। तस्य नोद्वेगमगमत्स्वकाय इव पार्थिवः ॥१५१॥
नातीव स्वल्पया स्थित्या नातीवाप्यथ दीर्घया। शरन्निशाक्षणेनेव राजा निन्ये प्रसन्नताम् ॥१५२॥
नर्मभिर्गर्भचेटानां द्वाःस्थानां विक्रियाक्रमैः।
मिथ्यास्तवैर्विटानां च न स क्षोभमनीयत ॥१५३॥
प्रसन्नालापसंप्राप्तौ छायाग्रह इवाचलः। प्रतिस्पर्धीव च क्रुध्यन्नावज्ञायामभूत्प्रभोः ॥१५४॥
वीक्षणं राजदासीनां राजद्विष्टैः सहासनम्। राजाग्रे च कथां नीचैः कालविन्नाचचार सः ॥१५५॥
स्वभावाद्राजपुरुषैः सजनैं राजनिन्दकैः। नास्मात्प्रभोरुपालम्भो लेभे पैशुन्यजीविभिः ॥१५६॥
वदद्भिरादरात्स्थैर्ये वैफल्याद्यन्वहं प्रभोः। निन्ये नोत्साहशैथिल्यं सेवोत्साहासहिष्णुभिः ॥१५७॥
अन्योत्कर्षानपि वदन्प्रसङ्गेन निराग्रहः। स्वविद्याद्योतकः सोऽभूत्सभ्यानां हृदयंगमः ॥१५८॥
एवं स सेवमानस्तमुद्योगेन बलीयसा। अनिर्विण्णो मातृगुप्तः षडृतूनत्यवाहयत् ॥१५९॥
अथ तं कृशसर्वाङ्गं धूसरं जीर्णवाससम्। बहिर्जातु विनिर्यातो राजा वीक्ष्य व्यचिन्तयत् ॥१६०॥
वैदेशिको निःशरणो गुणवान्बान्धवोज्झितः। दार्ढ्यं जिज्ञासुना कष्टं सोऽयमायासितो मया ॥१६१॥
कोऽस्याश्रयः किमशनं कानि प्रावरणानि वा। इत्यैश्वर्यविमूढेन मया हन्त न चिन्तितम् ॥१६२॥
वसन्तेनेव न मया शोभयाऽद्यापि योजितः। शीतवातातपैः शुष्यन्सोऽयं पुरुषपादपः ॥१६३॥

करती है ॥ १४८ ॥ ऐसा विचार करके राजा विक्रमादित्यने उसकी बुद्धिमानीकी परीक्षा करनेके लिए उसका यथोचित सत्कार नहीं किया ॥ १४९ ॥ कवि मातृगुप्त भी ऐसे वर्तावसे राजाकी सत्यप्रियताको परखकर प्रेमके साथ उसकी सेवा करता रहा ॥ १५० ॥ धीरे-धीरे बढ़ते हुए मातृगुप्तके सेवाभ्याससे राजा विक्रम तनिक भी उद्विग्न नहीं हुआ ॥ १५१ ॥ शरत्कालीन रात्रिके समान वह कवि राजाके पास न बहुत अधिक देर तक रहता था और न बहुत कम समय तक। इस मध्यम स्थितिसे उसने राजाको प्रसन्न कर लिया ॥ १५२ ॥ वह कवि अन्तःपुरके सेवकोंकी कुत्सित चेष्टाओं, द्वारपालोंके चंचल एवं विचित्र व्यवहारों धूर्तोंकी मिथ्या प्रशंसाओं तथा विभिन्न दृश्योंसे वह तनिक भी क्षुब्ध नहीं होता था ॥ १५३ ॥ राजाकी प्रसन्नता भरी बातें सुन करके भी वह छायाग्रहके समान स्थिर बना रहता था और उसके द्वारा अपमानित होनेपर प्रतिस्पर्धी क्षुद्र पुरुषोंके समान कुपित नहीं होता था ॥ १५४ ॥ राजाके परोक्षमें सेवकोंका मनोगत भाव जाननेके लिए उनके समक्ष राजाकी निन्दा करनेवाले धूर्तोंने कवि मातृगुप्तके मुखसे राजाकी निन्दा कभी भी नहीं सुनी ॥ १५५ ॥ समयकी कीमत जाननेवाले मातृगुप्तने राजदासियोंकी ओर कभी आँख उठाकर नहीं देखा। वह राजद्वेषियोंके साथ कभी भी नहीं बैठा और राजाके समक्ष नीचे दर्जेके लोगोंसे बात नहीं की ॥१५६॥ 'सदा राजाकी सेवामें तल्लीन रहकर प्राण देनेसे कोई लाभ नहीं' इस प्रकारकी विपरीत सलाह देनेवाले लोगोंके कहनेपर भी उसने राजसेवासम्बन्धी उत्साहमें कुछ भी शैथिल्य नहीं आने दिया ॥ १५७ ॥ समय-समयपर प्रसंगवश औरोंके गुणोंकी प्रशंसा, दुराग्रहके परित्याग और आत्मगुणप्रकाशन आदि अच्छे गुणोंसे वह राजसभाके सभी सभ्योंका स्नेहभाजन बन गया ॥ १५८ ॥ इस प्रकार पूर्ण प्रयत्नपूर्वक राजा विक्रमादित्यकी सेवा करते हुए मातृगुप्तने छ ऋतु अर्थात् एक वर्ष विताया ॥ १५९ ॥ एक दिन कहीं जाते समय राजाने अतिशय दुर्बल, मलिनवस्त्र तथा मलिनदेह मातृगुप्तको देखकर मन ही मन विचारा कि इस परदेशी, गुणी, असहाय एवं बन्धु-बान्धवोंसे बिछड़े विद्वान्‌की कठोर परीक्षा करते हुए मैंने इसको बहुत दुःख दिया ॥ १६० ॥ १६१ ॥ ऐश्वर्यके मदसे मूढ बनकर मैंने कभी यह भी नहीं सोचा कि यह कहाँ रहता है, क्या खाता है और क्या पहनता है ॥ १६२ ॥ शीत, वात और आतपसे सूखते हुए इस पुरुषरूपी वृक्षको

अस्य ग्लानस्य भैषज्यं निर्विण्णस्य विनोदनम् । श्रान्तस्य वा श्रमच्छेदं को विदध्यादसंपदः ॥१६४॥
नास्मै चिन्तामणिं दद्यां नामृतं वा निषेवितः । मया यदयमेतावद्व्यामूढेन परीक्ष्यते ॥१६५॥
तदमुष्य गुणित्वस्य तीव्रसेवाश्रमस्य च । प्रतिपत्त्या कतमया तावदानृण्यमाप्नुयाम् ॥१६६॥
इति चिन्तयतस्तस्य राज्ञस्तं सेवकं प्रति । स्वप्रसादोचिता काचिन्नत्यभान्नैव सत्क्रिया ॥१६७॥
ततः प्रावर्तत स्फारनीहारलववाहिभिः । दहन्निवाङ्गं प्रालेयपवमानैर्हिमागमः ॥१६८॥
संततध्वान्तमिषतस्तीव्रशीतवशीकृताः । आशाश्चकाशिरे नीलनिचोलाच्छादिता इव ॥१६९॥
शीतार्त्या द्युमणावौर्वदहनोष्माभिलाषतः । तूर्णं यातीव जलधिं दिनानि लघुतां ययुः ॥१७०॥
अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि लसद्धीमहसन्तिके । कदाचिन्नृपतिर्दैवादर्धरात्रे व्यबुध्यत ॥१७१॥
स हेमन्तानिलैर्भूरिझांकारपरुषैः पुरः । दीपान्प्रकम्पितानीषत्प्रविष्टैर्धाम्नि दृष्टवान् ॥१७२॥
तानुज्ज्वलयितुं भृत्यानन्विष्यन्नभ्यधात्ततः । यामिकेषु बहिः सज्जः को वर्तत इति स्फुटम् ॥१७३॥
सुखसुप्तेषु सर्वेषु बाह्यकक्ष्यान्तगस्ततः । राजन्नयमहं मातृगुप्त इत्यशृणोद्वचः ॥१७४॥
प्रविशेति स्वयं राज्ञा दत्तानुज्ञस्ततो गृहम् । लक्ष्मीसांनिध्यरम्यं तदपृष्टोऽन्यैर्विवेश सः ॥१७५॥
दीपानुज्ज्वलयेत्युक्तो निष्पाद्य चतुरैः पदैः । बहिर्यियासुरूचेऽथ क्षणं तिष्ठेति भूभुजा ॥१७६॥
स नयद्द्विगुणीभूतशीतकम्पः प्रभोः पुरः । किंस्विद्वक्ष्यतीति विमृशन्नातिदूरेऽभ्युपाविशत् ॥१७७॥
अथ पप्रच्छ भूपालः कियत्यस्ति निशेति तम् । सोऽभ्यधादेव यामिन्या यामः सार्धोऽवशिष्यते ॥१७८॥

आजतक मैंने कभी वसन्त ऋतुके समान शोभासम्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की ॥१६३॥ इस गरीबको ग्लानावस्थामें दवा, ग्लानिके समय मनोरंजन तथा थकावटके समय सान्त्वना कौन देता होगा? ॥१६४॥ उन्मत्त होकर मैंने जिस तरह इसकी अग्निपरीक्षा की है, उस महती सेवाके बदलेमें मैं इसे कौन चिन्तामणि या अमृतकलश सौंप दूँगा ॥१६५॥ तब इसके असाधारण गुण और इसकी तीव्र सेवारूपी श्रमके अनुरूप कौन-सा प्रत्युपकार करके मैं इसके ऋणसे उऋण हूँगा' ॥१६६॥ उस सेवक मातृगुप्तके विषयमें बड़ी देर तक विचार करनेके बाद भी राजाको उसके सत्कारका कोई भी उपाय नहीं सूझा ॥१६७॥ कुछ ही दिनों बाद ओसकी चंचल बिन्दुओंसे युक्त तथा अतिशय शीतल वायुके स्पर्शसे शरीरकी चमड़ीको रूक्ष कर देनेवाला शिशिरकाल आ पहुँचा ॥१६८॥ अत्यन्त तीव्र ठंडकसे जड़ बनी हुई दसों दिशाएँ रात्रिके प्रबल अन्धकार-रूपी वस्त्रसे जैसे अपना शरीर ढाँकती हुई दीखने लगीं ॥१६९॥ ठंडकसे भयभीत भगवान् सूर्य समुद्रमें रहनेवाले वड़वानलका आश्रय पानेकी इच्छासे जल्दी ही समुद्रमें प्रविष्ट होंगे, इस बातको सूचित करते हुए जैसे शिशिरऋतुके दिन भी बहुत ही छोटे होने लग गये ॥१७०॥ एक रातको उस प्रबल शीतके समय सुन्दर दीपकोंकी मनमोहिनी कान्तिसे उज्ज्वल तथा धधकती हुई अंगीठीयुक्त राजमहलके शयनागारमें सानन्द सोया हुआ राजा दैवात् एकाएक जाग गया ॥१७१॥ उस समय उसने भीषण हाहाकार करके महलके भीतर प्रविष्ट होनेवाले हेमन्तकालीन वायुके झोंकेसे दीपकोंको कम्पित होते देखा ॥१७२॥ उन दीपकोंको ठीक करनेके लिए किसी भृत्यको खोजते हुए राजाने पुकारा—'पहरेपर कौन है?' ॥१७३॥ उस घोर रात्रिके समय सभी सेवक महलके बाहरी कक्षमें सुखसे सो रहे थे। किन्तु मातृगुप्त उस समय भी जाग रहा था। सो उसने तुरन्त उत्तर दिया—'मैं मातृगुप्त सेवामें उपस्थित हूँ। कहिए, क्या आज्ञा है?' ॥१७४॥ यह सुनकर राजाने कहा—'भीतर आओ'। उनके आज्ञानुसार मातृगुप्त लक्ष्मीके सामीप्यसे रमणीक उस शयनागारमें प्रविष्ट हुआ ॥१७५॥ 'दीपकोंको ठीकसे जला दो' राजाकी यह आज्ञा मिलनेपर वह उन्हें ठीक करके लौटने लगा। तब राजाने कहा—'अभी क्षणभर यहीं ठहरो' ॥१७६॥ ठंडकके कारण मातृगुप्त पहलेसे ही काँप रहा था। अब राजाकी इस आज्ञासे उसकी कँपकँपी दूनी हो गयी। 'देखें, राजा क्या कहता है' यह सोचकर वह राजाकी शय्याके पास ही जमीनपर बैठ गया ॥१७७॥ तदनन्तर राजाने उससे पूछा—'अब

ततो भूभृद्बभाषेनं कथं सम्यङ्निशाक्षणः । त्वयाऽवधारितो निद्रा कथं नाभूच्च ते निशि ॥१७९॥
अथ कृत्वा क्षणाच्छ्लोकमेतं तं स व्यजिज्ञपत् । अवस्थावेदनादाशां दैन्यं वा त्यक्तुमुद्यतः ॥१८०॥
शीतेनोद्धृषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे ।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी ॥१८१॥
तदाकर्ण्य महीपालः साधुवादैः परिश्रमम् । अभिनन्द्य कवीन्द्रं तं पूर्वस्थानं व्यसर्जयत् ॥१८२॥
अचिन्तयच्च धिङ्मां यः सगुणात्खिन्नचेतसः । दुःखोत्तप्तं वचः शृण्वन्नेवमेवाधुना स्थितः ॥१८३॥
निरर्थकान्साधुवादानन्यस्येव विदन्मम । अयमज्ञातहृदयो दुःखमास्ते ध्रुवं बहिः ॥१८४॥
चिरं चिन्तयतो यत्नात्सदृशीमस्य सत्क्रियाम् । देयं महार्हमद्यापि न किंचित्प्रतिभाति मे ॥१८५॥
अथवाऽस्यैव सूक्तेन स्मारितोऽस्म्यधुना यथा । वर्तते राजरहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम् ॥१८६॥
पात्रायास्मै मही तस्मात्सा मया प्रतिपाद्यते । अवधीर्य महीपालान्महतोऽप्यर्थनापरान् ॥१८७॥
इति निश्चित्य चतुरं क्षपायामेव पार्थिवः । गूढं व्यसर्जयद्दूतान्काश्मीरीः प्रकृतीः प्रति ॥१८८॥
आदिदेश च तान्यो वो दर्शयेच्छासनं मम । मातृगुप्ताभिधो राज्ये निःशङ्कं सोऽभिषिच्यताम् ॥१८९॥
अथ दूतेषु यातेषु लेखयित्वा स्वशासनम् । क्ष्मापतिस्तं क्षपाशेषं कृतकृत्योऽत्यवाहयत् ॥१९०॥
मातृगुप्तस्तु नृपतेः संलापमपि निष्फलम् । ध्यायन्गृहीतनैराश्यस्त्यक्तभार इवाभवत् ॥१९१॥
अन्तर्दध्यौ च कर्तव्यं कृतं शान्तोऽद्य संशयः । आशापिशाचिकात्यक्तश्चरिष्याम्यधुना सुखम् ॥१९२॥

कितनी रात बाकी है ?' उसने कहा—'डेढ पहर' ॥ १७८ ॥ तब राजा विक्रमादित्यने कहा—'तुम्हें इस तरह रात्रिका निश्चित समय कैसे मालूम हुआ ? क्या तुम सोये नहीं थे ?' ॥ १७९ ॥ यह प्रश्न सुनकर मातृगुप्तने सोचा कि 'राजाको अपनी करुण कहानी सुना देनेका यह बड़ा अच्छा अवसर प्राप्त हो गया है' । तदनन्तर आशा और दीनतासे छूटनेका दृढ निश्चय करके उसने तुरन्त यह श्लोक रचकर अपनी दीनताका नग्न चित्र खींच दिया—॥ १८० ॥ 'उड़दकी फलीके सदृश शीतसे पीड़ित, चिन्तारूपी समुद्रमें डूबते, बुझी हुई आगको अपने फटे होठोंसे फूँकते एवं क्षुधासे दुर्बल कण्ठवाले मुझ दरिद्र पुरुषकी नींद किसी अपमानित नायिकाके समान मुझको त्यागकर दूर चली गयी है और किसी सुपात्रको दी हुई धरतीके समान रात्रि किसी तरह बीतती ही नहीं ॥ १८१ ॥ उस कविके वचन श्रवण करके राजाने साधुवादके द्वारा उसके परिश्रमकी सराहना की और उसे अपने स्थानपर जानेकी अनुमति दे दी ॥ १८२ ॥ उसके बाद राजा मन ही मन सोचने लगा—'मुझे धिक्कार है, जो गुणी होते हुए भी खिन्नमनस्क इस विद्वान् पुरुषके मुखसे ऐसे दुःखभरे वचन सुन करके भी मैं तटस्थोंकी भाँति चुप बैठा हूँ ॥ १८३ ॥ अन्य साधारण पुरुषोंके समान मेरे साधुवादको भी व्यर्थ समझकर मेरी मानसिक भावनाको नहीं समझता हुआ यह दुखिया बाहर बैठा है ॥ १८४ ॥ बहुत दिनोंसे सोचते हुए भी मैं इसकी योग्यताके अनुरूप सत्कार करके इसे देने योग्य कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं दे सका ॥ १८५ ॥ अथवा इस कवीन्द्रकी सूक्तिने ही मुझे यह स्मरण करा दिया है कि 'इस समय कश्मीरके राज्यमण्डलमें कोई राजा नहीं है ॥ १८६ ॥ यद्यपि बहुतेरे राजे उस राज्यको प्राप्त करनेके लिए लालायित होकर प्रार्थना कर चुके हैं, किन्तु उन सबकी प्रार्थना ठुकराके मैं वह राज्य इसी महानुभावको दूँगा' ॥ १८७ ॥ उसी रातमें ऐसा दृढ निश्चय करके राजा विक्रमने अपने चतुर दूतोंको कश्मीरी मंत्रिमण्डलके पास भेज दिया ॥ १८८ ॥ उन दूतोंके द्वारा उसने यह सन्देश भेजा कि 'मेरा आज्ञापत्र लेकर मातृगुप्त नामका जो व्यक्ति आपके पास जाय, उसको निःसन्देह कश्मीरके राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त करके वहाँका शासक बना लीजिए' ॥ १८९ ॥ यह सन्देश भेजनेके बाद तुरन्त राजाने आज्ञापत्र लिखकर तैयार किया और अपनेको कृतार्थ मानते हुए वह रात्रि आनन्दपूर्वक बितायी ॥ १९० ॥ उधर कवि मातृगुप्त राजाके उस रात्रिवाले वार्तालापको भी निष्फल मानकर निराशाका अवलम्बन करके अपने आपको भारमुक्त जैसा समझने लगा ॥ १९१ ॥ इसके

गतानुगतिकत्वेन कोऽयमासीन्मम भ्रमः । जनप्रवादात्सेव्यत्वं येनास्य ज्ञातवानहम् ॥१९३॥
भुञ्जानाः पवनं सरीसृपगणाः प्रख्यापिता भोगिनो गायद्भृङ्गनिवारका निगदिता विस्तीर्णकर्णा गजाः ।
यश्चाभ्यन्तरसंभृतोष्मविकृतिः प्रोक्तः शमी स द्रुमो लोकेनेति निरर्गलं प्रलपता सर्वं विपर्यासितम् ॥१९४॥
अथ वा विद्यतेऽमुष्य न काप्यनभिगम्यता । लक्ष्मीप्रणयिनो येन कृताः प्रणयिनां गृहाः ॥१९५॥
त्यागिनो निष्कलङ्कस्य को दोषोऽस्य महीपतेः । ममापुण्यं तु तन्निन्द्यं यच्छ्रेयःप्रतिबन्धकम् ॥१९६॥
रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरंल्लहरीः समीरैरब्धिः क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुख्यः ।
दोषोऽर्थिनः स खलु भाग्यविपर्ययाणां दातुर्मनागपि न तस्य तु दातृतायाः ॥१९७॥
उत्तानफललुब्धानां वरं राजोपजीविनः । न तु तत्स्वामिनस्तीव्रपरिक्लेशैः फलन्ति ये ॥१९८॥
तिष्ठन्ति ये पशुपतेः किल पादमूले संप्राप्यते झटिति तैर्नहि भस्मनोऽन्यत् ।
ये तद्वृषस्य तु समुज्ज्वलजातरूपप्राप्त्या न कानि सुदिनानि सदैव तेषाम् ॥१९९॥
चिन्तयन्नपि पश्यामि न कंचिद्दोषमात्मनः । यातो विरक्तिं यं ज्ञात्वा सेव्यमानोप्ययं नृपः ॥२००॥
अथवानादृतोऽन्येन संप्राप्तोऽन्तिकमाप्नुयात् । कः फलेनाभिसम्बन्धं गतानुगतिकात्प्रभोः ॥२०१॥
अन्तर्ये सततं लुठन्त्यगणितास्तानेव पाथोधरैरात्तानापततस्तरङ्गवलयैरालिङ्ग्य गृह्णन्नसौ ।
व्यक्तं मौक्तिकरलतां जलकणान्संप्रापयत्यम्बुधिः प्रायोन्येन कृतादरो लघुरपि प्राप्तोर्च्यते स्वामिभिः ॥२०२॥
इदं संचिन्तयन्सोऽभूत्सेव्ये तस्मिन्निरादरः । खिन्नस्य हि विपर्येति तत्त्वज्ञस्यापि शेमुषी ॥२०३॥

बाद उसने सोचा कि 'आज मेरा कर्तव्य पूर्ण हो गया। इससे मेरे सारे संशय दूर हो गये और मुझे आशापिशाचनीसे छुटकारा मिल गया। अब मैं सानन्द विचर सकूँगा ॥ १९२ ॥ गतानुगतिकताके चक्करमें पड़कर मैं कितने भ्रममें पड गया था, जो लोगोंके मुखसे प्रशंसा सुनकर इस राजाको अपना सेव्य समझ बैठा ॥ १९३ ॥ जन साधारण लोग पवन पीकर जीनेवाले सर्पोंको 'भोगी' कहते हैं, कलगान करनेवाले भौरोंको भगा देनेवाले मत्त गजराजको 'विस्तृतकर्ण' कहते हैं। जो अपने भीतर आग छिपाये रहता है, उस वृक्षको लोग 'शमी' कहते हैं। इस प्रकार अनर्गल प्रलाप करनेवाले संसारी लोगोंने सभी वस्तुयें विपरीतरूपसे उपस्थित कर रक्खी हैं ॥ १९४ ॥ फिर भी इस राजाने अपने बहुतेरे कृपापात्र प्रेमियोंको धन देकर सम्पन्न बनाया है और सभी लोग निर्बाधरूपसे इसके पास पहुँच सकते हैं ॥ १९५ ॥ अथवा इस त्यागी तथा निष्कलंक राजाका क्या दोष है ? निन्दनीय तो मेरा वह पाप है, जो मेरे अभ्युदयका बाधक बना हुआ है ॥ १९६ ॥ रत्नो जैसी उज्ज्वल तरंगोंको इधर-उधर उछालनेवाला समुद्र देनेको उद्यत हो, किन्तु यदि उलटी हवाके वेगसे पानेवाले उसे न पाये तो उन पानेवालोंका ही अभाग्य कहा जायगा। क्योंकि माँगी हुई वस्तुकी प्राप्तिके विषयमें दाताकी अपेक्षा याचकका भाग्य ही विशेष उपयोगी माना जाता है ॥ १९७ ॥ उच्च कोटिका फल प्राप्त करनेके अभिलाषी पुरुषोंमे राजसेवक ही श्रेष्ठ होते हैं—राजे नहीं। क्योंकि उन सेवकोंके स्वामी बहुत परिश्रम करनेपर फल देते हैं ॥ १९८ ॥ जो लोग शंकरजीके चरणोंकी उपासना करते है, उन्हें भस्मके सिवाय और कुछ नहीं मिलता। किन्तु जो उनके वृषभ नन्दीकी सेवा करते हैं, उन्हें चमकीला सुवर्ण प्राप्त होता है और उत्तरोत्तर उनको सुदिनोंकी प्राप्ति होती जाती है ॥ १९९ ॥ बहुत सोचनेपर भी मैं अपनमे कोई ऐसा दोष नहीं देखता कि जिससे इतनी कठोर सेवा करनेपर भी यह राजा मुझपर प्रसन्न न हो ॥ २०० ॥ अथवा गतानुगतिक क्रमका अनुसरण करनेवाले इन राजाओंसे वह मनुष्य कुछ भी नहीं पा सकता, जो किसी अन्य राजाओंके द्वारा सत्कृत होकर न आया हुआ हो ॥ २०१ ॥ क्योंकि अपने उदरमें जो जल रहता है, समुद्र उसका आदर नहीं करता। किन्तु जब मेघगण उसी जलको पीकर बरसाने लगते हैं, तब वही समुद्र उन बूँदोंको उज्ज्वल मोतियोंके रूपमे परिणत कर दिया करता है। ठीक उसी तरह यदि कोई साधारण मनुष्य भी अन्यत्र सम्मान पाये रहता है तो ये राजे भी उसका सम्मान करने लग जाते हैं' ॥ २०२ ॥ ऐसा सोचते हुए कवि मातृगुप्तके हृदयमे उस सेव्य राजाके प्रति अनादरका

प्रभातायां विभावर्यामथास्थानस्थितो नृपः । आकार्यतां मातृगुप्त इति क्षत्तारमादिशत् ॥२०४॥
ततः प्रधावितानेकप्रतीहारप्रवेशितः । प्रविवेश महीभर्तुस्त्यक्ताश इव सोऽन्तिकम् ॥२०५॥
तस्मै कृतप्रणामाय मुहूर्तादेव पार्थिवः । भ्रूसंज्ञितेन व्यतरल्लेखं लेखाधिकारिणा ॥२०६॥

स्वयं च तमुवाचाङ्ग कश्मीरान्वेत्ति किं भवान् ।
गत्वा तत्राधिकारिभ्य एतच्छासनमर्प्यताम् ॥२०७॥

स शापितोस्मद्देहेन यो लेखं वाचयेत्पथि । संविदेषा प्रयत्नेन विस्मर्तव्या न जातुचित् ॥२०८॥
अविज्ञाताशयो राज्ञस्तामाज्ञां क्लेशशङ्कितः । सोऽबुद्ध दहनज्वालां न तु रत्नाङ्कुरद्युतिम् ॥२०९॥
यथादेशस्तथेत्युक्त्वा मातृगुप्ते विनिर्गते । निर्गर्वः पूर्ववद्राजा तस्थावाप्तैः सहालपन् ॥२१०॥
अथाक्लेशोचितं क्षाममपाथेयमबान्धवम् । दृष्ट्वा यान्तं मातृगुप्तं निनिन्देति नृपं जनः ॥२११॥
अहो नरेश्वरस्येयं यत्किंचनविधायिता । पृथग्जनोचिते कर्मण्यर्हतो नियुनक्ति यः ॥२१२॥
दुराशया धृतक्लेशं सेवमानमहर्निशम् । ध्रुवं क्लेशार्हमेवैनं ज्ञातवानबुधो नृपः ॥२१३॥
उपायं यं पुरस्कृत्य सेवते सेवकः प्रभुम् । अनन्तरज्ञस्तत्रैव योग्यं तं किल मन्यते ॥२१४॥

सुखार्थी नागारिप्रतिभयशमात्प्रस्तुत सुखं जहौ शेषस्तल्पीकृततनु निषेव्यासुररिपुम् ।
यतस्तेनामुष्मिन्नधिगतवता क्लेशसहतां प्रमादायि न्यस्तं निरवधि धराभारवहनम् ॥२१५॥

अयमेतद्गृहीतेषु गुणवत्सु गुणाधिकम् । आत्मानं गुणवान्पश्यन्नास्थयैनमशिश्रियत् ॥२१६॥
अनन्तरज्ञः कोन्योस्माद्गुणान्दर्शयतेधिकान् । अस्मै गुणवते पूजां यश्चकार किलेदृशीम् ॥२१७॥

भाव जागृत हो गया। क्योंकि मतिमान् पुरुष भी कभी-कभी हताश होकर भ्रममें पड़ जाते हैं ॥ २०३ ॥ सवेरा होनेपर जब राजा विक्रमादित्य अपनी राजसभामें पहुँचा तो सबसे पहले उसने मातृगुप्तको बुला लानेके लिए द्वारपालको आदेश दिया ॥ २०४ ॥ राजाके आज्ञानुसार तुरन्त अनेक प्रतीहार दौड़ पड़े और तुरन्त उस निराश कविको उन्होंने महाराजके पास पहुँचाया ॥ २०५ ॥ जैसे ही उसने प्रणाम किया, तैसे ही राजाके भ्रूसंकेतसे लेखाधिकारीने मातृगुप्तको लिखित आज्ञापत्र दे दिया ॥ २०६ ॥ उस समय राजाने स्वयं भी कहा—'क्यों भाई! क्या तुम कश्मीर देशको जानते हो? वहाँ जाकर तुम यह आज्ञापत्र वहाँके अधिकारियोंको दे देना ॥ २०७ ॥ यह आज्ञापत्र रास्तेमें खोलकर पढनेवालेको मेरी सौगन्ध है। तुम यह बात मत भूलना' ॥ २०८ ॥ राजाका आशय न समझ पानेके कारण वह क्लेशशंकित कवि उस आज्ञापत्रको रत्नकिरणोंकी शोभा न समझकर आगकी लपट मानने लगा ॥ २०९ ॥ राजाज्ञाको अंगीकार करके मातृगुप्त जब वहाँसे चल पड़ा, तब गर्वशून्य राजा भी पूर्ववत् आप्तजनोंके साथ वार्तालाप करने लगा ॥ २१० ॥ तदनन्तर उस दुर्बल, असहाय तथा संकट सहनेमें असमर्थ मातृगुप्तको इस प्रकार राजाज्ञाके अनुसार यात्रा करते देख सभाके बहुतेरे लोग राजाकी निन्दा करने लगे ॥ २११ ॥ उन्होंने कहा—'यह बड़े विस्मय बात है कि यह राजा विना सोचे-समझे जो मनमें आता है, वही कर गुजरता है। क्योंकि अब यह साधारण हरकारेका काम विशिष्ट पुरुषोंसे लेने लगा है ॥ २१२ ॥ व्यर्थकी आशावश रात-दिन सेवा करनेवाले मातृगुप्तको इस अज्ञानी राजाने एकमात्र क्लेशका अधिकारी समझ लिया है ॥ २१३ ॥ जिस किसी उपायको सेवक राजाका परिचय प्राप्त करनेका साधन समझता है तो सेवकोंके तारतम्यसे अनभिज्ञ राजा उसको उसी कार्यके योग्य मानने लगता है ॥ २१४ ॥ क्योंकि गरुड़के भयसे छुटकारा पाने तथा सुखी होनेके लिए एक बार शेषनागने अपने आपको असुररिपु विष्णुभगवान्‌की शय्या बनाया। सो उनका दुःख दूर करनेकी बात तो दूर ही रह गयी, उसके बदले क्लेश सहनेमें असमर्थ समझकर भगवान्‌ने सदाके लिए उनके सिरपर पृथिवीका भार लादकर उन्हें और भी दुखिया बना दिया ॥ २१५ ॥ ठीक उसी प्रकार इस मातृगुप्तने राजाके अन्यान्य सेवकोंकी अपेक्षा अपनेको विशेष गुणी समझकर किसी विशिष्ट आशासे इसका आश्रय लिया था ॥ २१६ ॥ राजाके मनोगत अभिप्राय न जानकर मातृगुप्तने सोचा था कि गुणी पुरुषोंका आदर करनेवाले इस

यो नानाद्युतिमत्पदार्थरसिकोऽसारेपि शक्रायुधे सप्रेमा स विलोक्य बर्हमिह मे किं किं न कुर्यात्प्रियम् ।
इत्याविष्कृतबर्हराजि नटते यो बर्हिणोम्भोलवान्नान्यन्मुञ्चति तं विहाय जलदं कोन्योस्ति शून्याशयः ॥२१८॥
गच्छतो मातृगुप्तस्य निर्दैन्यस्यैव वर्त्मसु । नाभूद्भाव्यर्थमाहात्म्याद्विकल्पः कोपि चेतसि ॥२१९॥
अहंपूर्विकयोद्यद्भिर्निमित्तैः शुभशंसिभिः । स वितीर्णकरालम्ब इव न श्रममाददे ॥२२०॥
अपश्यत्स फणाकोटौ खञ्जरीटमहेः पथि । स्वप्ने प्रासादमारुह्य स्वं चोल्लङ्घितसागरम् ॥२२१॥
अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो निमित्तैः शुभशंसिभिः । एतैर्भूभर्तुरादेशो ध्रुवं मे स्याच्छुभावहः ॥२२२॥
फलं मम तनीयोऽपि कश्मीरेषु भवेद्यदि । अनर्घदेशमाहात्म्यात्किं किं नातिशयेत तत् ॥२२३॥
अकृच्छ्रलङ्घ्याः पन्थानो वल्लभातिथयो गृहाः । उपानपन्गच्छतोऽस्य सत्क्रियाश्च पदे पदे ॥२२४॥
इत्थं विलङ्घिताध्वा स लोलानोकहशाद्वलम् । मङ्गल्यदधिपात्राभं ददर्शाग्रे हिमाचलम् ॥२२५॥
सरलस्यन्दसुभगागङ्गाशीकरवाहिनः । प्रत्युद्ययुस्तं मरुतः पाल्यायाः संस्तुता भुवः ॥२२६॥
क्रमवर्ताभिधाने स प्रदेशे प्राप्तवांस्ततः । ढक्कं काम्बुवनामानं योऽद्य शूरपुरे स्थितः ॥२२७॥
नानाजनपदाकीर्णे स्थाने तत्राथ शुश्रुवान् । काश्मीरिकान्महामात्यान्स्थितान्केनापि हेतुना ॥२२८॥
ततोऽपनीतप्राग्वेषः प्रावृतो धवलांशुकैः । स जगामान्तिकं तेषां दातुं नृपतिशासनम् ॥२२९॥
तं प्रयान्तं समुद्यद्भिः शकुनैः सूचितोदयम् । पान्थाः केऽप्यन्वयुर्द्रष्टुं निमित्तानां फलोद्गमम् ॥२३०॥
श्रुत्वाऽथ विक्रमादित्यदूतः प्राप्त इति द्रुतम् । द्वाःस्थाः काश्मीरमन्त्रिभ्यस्तमासन्नं न्यवेदयन् ॥२३१॥

राजासे बढकर गुणज्ञ पुरुष भला और कौन होगा ? ॥ २१७ ॥ क्योंकि 'चमकीली वस्तुओंसे प्रेम करनेवाला मेघ निःसार इन्द्रधनुषको देखकर ही पुलकित हो उठता है, तब विविध रंगवाले मेरे पंख देखकर यह अवश्य बहुत प्रसन्न होगा और नानाप्रकारके प्रिय कार्य करके मुझे सुखी करेगा।' इस आशासे मयूर अपने पंख फैलाकर बादलके समक्ष नाचने लगता है, किन्तु उसके बदले एक दो बूँद जल गिराकर उसे निराश करनेवाले मेघसे बढकर हृदयहीन भला और कौन होगा ॥ २१८ ॥ किन्तु दीनता त्यागकर प्रसन्न मनसे कश्मीर जानेवाले पथके पथिक मातृगुप्तके मनमें भावी भाग्योदयकी आशासे किसी भी प्रकारका संकल्प-विकल्प नहीं उत्पन्न हुआ ॥२१९॥ रास्तेमें उसे विभिन्न प्रकारके एकसे एक बढकर शुभ शकुन दीखते गये और उन्हींके सहारे वह मार्गमें कहीं भी बिना रुके बराबर चलता ही रहा ॥ २२० ॥ मार्गमें उसने सर्पके फणपर खंजरीट पक्षीको विराजमान और स्वप्नमें जहाजपर बैठकर समुद्र पार करते देखा ॥ २२१ ॥ इन शुभसूचक शकुनोंको देखकर शास्त्रज्ञ मातृगुप्तने मनमें सोचा कि 'यह राजाज्ञा मेरे लिए अवश्य लाभदायक होगी ॥ २२२ ॥ उस कश्मीर देशमें यदि मुझे थोड़ा भी लाभ हुआ तो उस अत्युत्तम प्रदेशके माहात्म्यसे क्या-क्या नहीं मिल जायगा' ॥ २२३ ॥ राहमें चलते समय मातृगुप्तको किसी प्रकारका कोई कष्ट नहीं हुआ। अतिथियोंसे स्नेह रखनेवाले सद्गृहस्थोंने स्थान-स्थानपर उसका आतिथ्य सत्कार किया और उपहार दिये ॥ २२४ ॥ इस तरह लम्बा रास्ता पार करनेके बाद उसने वायुके झोंकेसे चचल वृक्षों तथा हरी-हरी घासोंसे अलकृत मगलमय दधिपात्रके समान सुन्दर हिमालय पर्वत देखा ॥२२५॥ वहाँ गंगाजीके जलकी फुहियोंसे युक्त तथा देवदारु वृक्षोंके सम्पर्कसे सुगन्धित कश्मीरी वायुने भविष्यमें होनेवाले राजा मातृगुप्तका सबसे पहले स्वागत किया ॥ २२६ ॥ इस प्रकार चलता हुआ वह क्रमावर्त नामके प्रदेशमें पहुँचकर काम्बुक घाटीके द्वारपर जा पहुँचा, जिसे इस समय शूरपुर कहा जाता है ॥२२७॥ वहाँ पहुँचकर मातृगुप्तने सुना कि 'इन दिनों किसी आवश्यक कार्यसे कश्मीरका मंत्रिमंडल यहाँ ही आया हुआ है और कितने ही विदेशी भी आये हैं' ॥ २२८ ॥ तब उसने गन्दे वस्त्र उतार दिये और धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहिन लिये। तदनन्तर महाराज विक्रमादित्यका आज्ञापत्र देनेके लिए वह मन्त्रिमडलके पास गया ॥ २२९ ॥ उसके यात्राकालमें होनेवाले शुभ शकुनोंको देख तथा भावी भाग्योदयकी सूचना पाकर 'भविष्यमें क्या होता है' इस जिज्ञासासे बहुतेरे पथिक उसके साथ हो लिये थे ॥ २३० ॥ महाराज विक्रमादित्यके दूतका आगमन सुनकर तत्काल यह समाचार मंत्रि-

आगच्छत प्रविशतेत्युच्यमानोऽथ सर्वतः। स तान्समस्तसामन्तानाससादानिवारितः ॥२३२॥
यथाप्रधानं सचिवैर्विहितोचितसत्क्रियः। ततः परार्ध्यमध्यास्त तन्निदर्शितमासनम् ॥२३३॥
कृतार्हणैरथामात्यैराज्ञां पृष्टो महीभुजः। शनैस्तच्छासनं तेभ्यो लज्जमान इवार्पिपत् ॥२३४॥
तेऽभिवन्द्य प्रभोर्लेखमुपांशु मिलितास्ततः। उन्मुच्य वाचयित्वैतमवोचन्विनयान्विताः ॥२३५॥
मातृगुप्त इति श्लाघ्यं भवतामेव नाम किम्।
एवमेवैतदित्यूचे सोऽपि तान्विहितस्मितः ॥२३६॥
कः कोऽत्र संनिधातॄणामित्यश्रूयत वाक्ततः। राज्याभिषेकसंभारो दृश्यते स्म च संभृतः ॥२३७॥
ततः कलकलोत्तालभूरिलोकसमाकुलः। प्रदेशः क्षणमात्रेण सोऽभूत्क्षुब्धमिवार्णवः ॥२३८॥
अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः। संनिपत्य प्रकृतिभिर्मातृगुप्तोऽभ्यषिच्यत ॥२३९॥
तस्य विन्ध्यतटव्यूढवक्षसः परिनिर्लुठत्। सशब्दमभिषेकाम्बु रेवास्रोत इवाबभौ ॥२४०॥
अथ स्नातानुलिप्ताङ्गं सर्वाङ्गामुक्तभूषणम्। व्यजिज्ञपंस्तं राजानं क्रान्तराजासनं प्रजाः ॥२४१॥
अर्थितेन स्वयं त्रातुं विक्रमादित्यभूभुजा। निर्दिष्टः स्वसमानस्त्वं शाधि नः पृथिवीमिमाम् ॥२४२॥
मण्डलानि विलभ्यन्ते येनानेन प्रतिक्षणम्। मा मंस्था मण्डलं राजन्निदं लब्धं तदिदं परैः ॥२४३॥
कर्मभिः स्वैरवाप्तस्य जन्मनः पितरौ यथा। राज्ञां तथाऽन्ये राज्यस्य प्रवृत्तावेव कारणम् ॥२४४॥
इत्थं स्थितेऽपरं कंचित्त्वदीयोऽस्मीति शंसता। न नेया भवता राजन्नयमात्मा च लाघवम् ॥२४५॥
इति तैस्तथ्यमुक्तोऽपि संस्मरन्स्वामिसत्क्रियाम्। मातृगुप्तो महीपालः क्षणमासीत्कृतस्मितः ॥२४६॥

मंडलको सुनानेके लिए द्वारपालगण दौड़ पड़े ॥ २३१ ॥ वहाँसे लौटकर वे 'आइए, चलिये' ऐसा सत्कारपूर्वक कहने लगे। तब मातृगुप्त बिना रुकावट उनके साथ चलकर मंत्रियोंके समीप जा पहुँचा ॥ २३२ ॥ वहाँ अपने-अपने पदकी योग्यताके अनुसार उन सचिवोंने सत्कार करके उसको एक बहुमूल्य आसनपर बिठाला ॥ २३३ ॥ इस प्रकार यथोचित सम्मान करनेके बाद मंत्रियोंने महाराज विक्रमादित्यकी किसी आज्ञाके विषयमें पूछा। सो सुनकर सलज्ज भावसे उसने वह आज्ञापत्र उन्हें दे दिया ॥ २३४ ॥ अपने प्रभुके आज्ञापत्रकी उन लोगोंने वन्दना की और एकान्तमें लेजाकर उसे सम्मिलितरूपसे बाँचा। उसके बाद विनम्र भावसे वे बोले—॥ २३५ ॥ 'क्या मातृगुप्त यह आदरणीय नाम आपका ही है?' तब मुस्कराके मातृगुप्तने कहा—'जी हाँ, यह मेरा ही नाम है' ॥ २३६ ॥ यह उत्तर सुनते ही 'इस समय यहाँ कितने कार्यकर्ता उपस्थित हैं?' इस वाक्यकी ध्वनिसे वह स्थान गूँज उठा और तुरन्त वहाँपर राज्याभिषेककी सामग्रियाँ जुटने लगीं ॥ २३७ ॥ धीरे-धीरे बहुतसे लोग एकत्र हो गये और क्षण ही भरमें जैसे उस जगह मानवसमुदायका क्षुब्ध समुद्र लहराने लगा ॥ २३८ ॥ तदनन्तर एक सिंहासनपर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन मंत्रियोंने मातृगुप्तका अभिषेक कर दिया ॥ २३९ ॥ उस समय उसके विशाल वक्षःस्थलसे बहनेवाला अभिषेकजल विन्ध्यपर्वतके तटसे टकराकर गर्जन करते हुए बहनेवाले नर्मदानदीके प्रवाह जैसा सुन्दर लग रहा था ॥ २४० ॥ इस प्रकार स्नानके पश्चात् उसके शरीरपर दिव्य चन्दन लगाकर सभी अंगोंमें आभूषण पहनाये गये। उसके बाद जब वह राज्यके सिंहासनपर बैठा, तब प्रजाजनोंने कहा—॥ २४१ ॥ 'कश्मीर देशकी रक्षाके लिए हम लोगोंने महाराज विक्रमादित्यसे प्रार्थना की थी। तदनुसार उन्होंने अपने समान आपको इस कार्यपर नियुक्त किया है। अतएव अब आप सुचारुरूप इस धरतीपर शासन करिये ॥ २४२ ॥ हे राजन्! इस देशके शासकको प्रतिक्षण नये-नये राज्य प्राप्त करनेका सुअवसर मिलता रहता है। अतएव इस राज्यको आप किसी अन्यके द्वारा प्राप्त न समझें ॥ २४३ ॥ जैसे अपने पूर्वजन्मके कर्मानुसार जन्म लेनेवाले प्राणीके माता-पिता जन्मदानके निमित्तमात्र होते हैं, उसी प्रकार अपने पुण्यबलसे राज्य प्राप्त करनेवाले राजाके लिए अन्य लोग प्रवर्तकमात्र हुआ करते हैं ॥ २४४ ॥ ऐसी स्थितिमें 'मैं आपलोगोंका सेवक हूँ' यह कहकर अपने आपको और हम सबको तुच्छ न बनाइए ॥ २४५ ॥ उनके इन सत्य वचनोंको सुनकर अपने

दानेन सुदिनं कुर्वन्नवराज्योर्जितेन सः। तत्रैव मङ्गलोदग्रं तदहो निरवर्तयत् ॥२४७॥
पुरप्रवेशायान्येद्युरर्थ्यमानोऽथ मन्त्रिभिः। अद्भुतप्राभृतं दूतं राज्यदातुर्व्यसर्जयत् ॥२४८॥
देशौन्नत्यानुसारेण स्पर्धामिव च तां विदन्। स्वामिनो मनसि ह्रीतः सागसं स्वममन्यत ॥२४९॥
अथ ह्रियाऽपरान्भृत्यान्वक्तुं सेवास्मृतिं प्रभोः। अल्पार्घाण्यपि सात्म्यानि प्राहिणोत्प्राभृतानि सः॥२५०॥
असामान्यान्गुणांस्तस्य स्मरन्पर्यश्रुलोचनः। स्वयं लिखित्वा श्लोकं च स्वकमेकं व्यसर्जयत् ॥२५१॥

नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि।
निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राजन्संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः॥२५२॥

ततः प्रविश्य नगरं सैन्यैः पिहितदिक्तटैः। क्रमागतामिव महीं यथावत्पर्यपालयत् ॥२५३॥
त्यागे वा पौरुषे वापि तस्यौचित्योन्नतात्मनः। क्ष्माभुजस्तर्कुकस्येव नाऽभूत्परिमितेच्छता ॥२५४॥
यष्टुं यज्ञान्धृतोद्योगस्त्यागी विततदक्षिणान्। पशुबन्धमनुध्याय करुणाकूणितोऽभवत् ॥२५५॥
अमारमादिशेशाथ यावद्राज्यं स्वमण्डले। चूर्णीकृत्य सुवर्णादि प्रददौ च करम्भकम् ॥२५६॥
करम्भके कीर्यमाणे मातृगुप्तेन भूभुजा। वैतृष्ण्यमुन्मिपत्तोपो न को नाम न्यपेवत ॥२५७॥
गुणी च दृष्टकष्टश्च वदान्यश्च स पार्थिवः। विक्रमादित्यतोऽप्यासीदभिगम्यः शुभार्थिनाम् ॥२५८॥
विवेचकतया तस्य श्लाघ्यया सुरभीकृताः। लक्ष्मीविलासाः क्ष्माभर्तुरशोभन्त मनीषिषु ॥२५९॥
हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्नवम्। आसमाप्ति ततो नापत्साध्वसाध्विति वा वचः ॥२६०॥

स्वामीके सत्कारका स्मरण करके राजा मातृगुप्त तनिक देरतक हँसता रहा ॥ २४६ ॥ उस नवीन राज्यकी प्राप्तिके महान् उत्सवके अनुरूप विचित्र प्रकारके दान देकर उस दिनको सुदिन बनाता हुआ वह दिनभर वहाँ ही रहा ॥ २४७ ॥ दूसरे दिन सवेरे ही मंत्रियोंने जब नगरप्रवेशकी प्रार्थना की, तब उसने अपने राज्यदाता महाराज विक्रमादित्यके पास बहुमूल्य उपहारोंके साथ अनेक दूत भेजे ॥ २४८ ॥ किन्तु तुरन्त ही देशकी श्रेष्ठताके अनुसार उन कीमती उपहारोंको भेजकर अपनेको स्पर्धालु एवं अपराधी मानता हुआ वह लज्जाका अनुभव करने लगा ॥ २४९ ॥ तदनन्तर उस लज्जाका परिमार्जन करनेके लिए अपने स्वामीकी सेवाका स्मरण करके कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए उसने अन्य दूतोंके द्वारा अल्पमूल्य होते हुए भी लाभदायक उपहार महाराज विक्रमके पास भेजवाये ॥२५०॥ साथ ही महाराजके असाधारण गुणोंका स्मरण करते हुए आँखोंमें आँसू भरके मातृगुप्तने यह एक श्लोक भी लिखकर भेजा—॥ २५१ ॥ 'हे महाराज ! आप न अपने आकारका प्रदर्शन करते हैं और न डींग हाँकते हैं। फिर भी चुपचाप याचकको जो देना चाहते हैं, वह दे देते हैं। जैसे विना गर्जन-तर्जन किये बहुतेरे मेघ जल बरसाते हैं, उसी प्रकार आपकी प्रसन्नता फलप्रदानसे ही जानी जाती है' ॥ २५२ ॥ तदनन्तर क्षितिज पर्यन्त विस्तृत सेनाके साथ बड़े समारोहपूर्वक वह नगरमें प्रविष्ट हुआ और समुचित रीतिसे पृथिवीका पालन करने लगा ॥ २५३ ॥ राजा मातृगुप्तने त्याग तथा पुरुषार्थके प्रदर्शनमें कभी कुछ भी कृपणता नहीं दिखलायी। चर्खेमें लगे तकुएके समान उस राजाकी उच्च आकाक्षाये कभी भी सीमित नहीं हुईं ॥ २५४ ॥ उदारता वश वह बहुत बड़ा यज्ञ करके दान-दक्षिणा देना चाहता था, किन्तु उस यज्ञमें होनेवाली पशुहिंसाका ध्यान आते ही उसका हृदय करुणासे द्रवीभूत हो गया। जिससे उसने यज्ञका विचार त्याग दिया ॥ २५५ ॥ अपने राज्य भरमें राजा मातृगुप्तने हिंसा बन्द करा दी और राज्यमे प्रचलित सिक्केकी जगह करम्भक नामक स्वर्णमुद्राका प्रचलन कर दिया ॥ २५६ ॥ जब कि राजा मातृगुप्त याचकोंमे स्वरूप करम्भक नामकी स्वर्णमुद्राये बाँटने लगता था, उस समय कोई याचक वहाँसे खाली हाथ नहीं लौटता था ॥ २५७ ॥ गुणवान्, दुःख देखा हुआ और उदार वह राजा कुछ ही दिनोंमें याचकोंके लिए विक्रमादित्यसे भी अधिक सुखदायी एवं लोकप्रिय हो गया ॥ २५८ ॥ उस राजाकी परम प्रशंसनीय विवेचनशक्तिके कारण उसका मनोज्ञ वैभव विद्वज्जनोंके लिए विशेष आनन्दप्रद हो रहा था ॥ २५९ ॥ एक समय मेण्ठ नामका एक कवि स्वरचित हयग्रीव वध नामक काव्यको नवीन रचना कहकर उसे सुना रहा था। जब तक कविने पूरे ग्रन्थको नहीं सुना दिया, तबतक उसकी अच्छाई-बुराईके विषयमें

अथ ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् । लावण्यनिर्याणभिया तदधः स्वर्णभाजनम् ॥२६१॥
अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसत्कृतिः । भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥२६२॥
स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं निर्ममे मधुसूदनम् । कालेनादत्त यद्ग्रामान्मम्मः श्वशुरसद्मने ॥२६३॥
इत्यासादितराज्यस्य शासतः क्ष्मां क्षमापतेः । त्रिमासोना ययुस्तस्य सैकाहाः पञ्च वत्सराः ॥२६४॥
कृतार्थतां तीर्थतोयैराज्ञनेयोऽनयत्पितॄन् । जातं तादृशमश्रौपीत्स्वस्मिन्देशे पराक्रमम् ॥२६५॥
पितृशोकार्द्रता तस्य क्रोधेनान्तरधीयत । तरोरिवार्कतापेन नैशाम्बुलवसिक्तता ॥२६६॥
श्रीपर्वते पाशुपतव्रतिवेषस्तमागतम् । आचख्यावश्वपादाख्यः सिद्धः कन्दाशनं ददत् ॥२६७॥
जन्मान्तरे लब्धसिद्धिस्त्वामस्म्युपरि साधकम् । वाञ्छामपृच्छं राज्यार्थमभिलाषस्तु तेऽभवत् ॥२६८॥
सयत्नं तव कर्तुं तन्मनोरथमनन्यथा । अथ क्ष्मामित्थमादिक्षत्क्षपारमणशेखरः ॥२६९॥
गणोऽयं मामकः सिद्धो यस्तवोपरि साधकः । जन्मान्तरेऽस्य राज्येच्छां कुर्यामहमनन्यथा ॥२७०॥
भावं भवस्तद्भवतो भगवान्दत्तदर्शनः । साफल्यं नेष्यतीत्येवमभिधाय तिरोदधे ॥२७१॥
साम्राज्येच्छोः समामेकां तत्र तस्य तपस्यतः । लब्धस्मृतिः सिद्धगिरा प्रददौ दर्शनं शिवः ॥२७२॥
व्रतिवेषं तमादिष्टवाञ्छितार्थसमर्पणम् । स जगन्निर्जयोन्निद्रं नरेन्द्रत्वमयाचत ॥२७३॥
उपेक्ष्य मोक्षं किं क्ष्माभृद्भोगानिच्छसि भङ्गुरान् । इति जिज्ञासुना भावं शंभुना सोऽभ्यधीयत ॥२७४॥
स तं बभाषे शंभुं त्वां बुद्ध्वा व्याजतपोधनम् । अभ्यर्थामिदमद्धा त्वं न स देवो जगद्गुरुः ॥२७५॥

राजा मातृगुप्त कुछ नहीं बोला ॥ २६० ॥ जब वह कवि पुस्तक समेटने लगा, तब राजाने इस लिए सुवर्ण-पात्र पोथीके नीचे रखवा दिया कि जिससे उस काव्यामृतका रस जमीनपर गिरकर वह न जाय ॥ २६१ ॥ राजा मातृगुप्तके द्वारा किये गये इस आदरसे सन्तुष्ट मेण्ठ कविने कविताके उपलक्ष्यमे प्राप्त बहुमूल्य पारितोपिकको पिष्टपेषणमात्र तथा तुच्छ समझा ॥ २६२ ॥ कालान्तरमे उस राजाने अपने नामपर मातृगुप्तस्वामी नामका एक विशाल मन्दिर बनवाया और उसमे मधुसूदन भगवान्की स्थापना की। उनकी सेवा-पूजाके लिए मन्दिरके नामसे बहुतेरे गाँव भी दिये थे, किन्तु आगे चलकर मम्मने उन्हे अपने मन्दिरके लिए ले लिया ॥ २६३ ॥ इस प्रकार शासनकार्य करते हुए राजा मातृगुप्तके चार वर्ष नौ मास और एक दिन बीत गया ॥ २६४ ॥ उन्हीं दिनों कश्मीरके प्राचीन राजवंशमें उत्पन्न प्रवरसेन नामका राजपुत्र पिताके मरणसे उद्विग्न होकर माता अंजनाके साथ पितरोंकी सद्गतिके लिए विभिन्न तीर्थोंकी यात्रा कर रहा था। उसी समय उसने कश्मीरमे राजा मातृगुप्तके शासक होनेका समाचार सुना ॥ २६५ ॥ यह सुनते ही उसकी पितृशोकरूपिणी आर्द्रता तीव्र क्रोधके तापसे उसी तरह सूख गयी, जैसे सूर्यकी किरणे पड़ते ही रातके समय वृक्षोंपर गिरे हुए ओसके कण सूख जाते हैं ॥ २६६ ॥ उसी समय श्रीपर्वतनिवासी एवं पाशुपतव्रती अश्वपाद नामका सिद्ध अपने मेहमान राजपुत्र प्रवरसेनको भोजनके लिए कन्द-मूल देता हुआ बोला—॥ २६७ ॥ 'युवराज! पूर्वजन्ममें मैं एक सिद्ध था और आप मेरे शिष्य थे। सिद्धि प्राप्तिके बाद मैंने आपकी अभिलाषा पूछी। तब राज्यप्राप्तिके लिए आपको अत्यन्त उत्कण्ठित देखकर मैंने आपकी इच्छा पूर्ण करनेका वचन दिया। इस प्रकार आपका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए मुझे सचेष्ट देखकर शिवजीने दर्शन देकर कहा—॥ २६८ ॥ २६९ ॥ 'तेरा यह शिष्य मेरा गण है। अतएव अगले जन्ममे मैं स्वयं उसकी इच्छा पूर्ण करूँगा ॥२७०॥ अतएव हे प्रवरसेन! प्रत्यक्ष दर्शन देकर शंकरजी स्वयं आपकी कामना पूर्ण करेंगे। इतना कहकर वह सिद्ध वहाँ ही अन्तर्धान हो गया ॥ २७१ ॥ तदनन्तर साम्राज्यप्राप्तिकी अभि-लाषासे पूरे एक वर्ष तप करनेके बाद सिद्ध अश्वपादकी सूचनापर शिवजीने युवराज प्रवरसेनको दर्शन दिया ॥ २७२ ॥ एक संन्यासीके रूपमे प्रत्यक्ष उपस्थित शंकरजीने जब वर माँगनेको कहा, तब राजकुमारने जगद्विजय-से प्राप्त साम्राज्यकी याचना की ॥ २७३ ॥ तब उसकी परीक्षा लेनेके हेतु शंकरभगवान्ने कहा—'हे राजकुमार! अविनाशी मोक्षसुखकी उपेक्षा करके तुम क्षणभंगुर साम्राज्यसुखकी कामना क्यों करते हो ?' ॥ २७४ ॥ इससे

महान्तो ह्यर्थिताः स्वल्पं फलन्त्यल्पेतरत्स्वयम् । उदन्यया वदान्योऽदाद्दुग्धाब्धिं स पयोर्थिने ॥२७६॥
अस्य वैकल्यकैवल्यलाभनिश्चलचेतसः । नो वेत्स्यभिजनस्याभिभूतिं मर्मव्यथावहाम् ॥२७७॥
जगत्परिवृढः प्रौढप्रीतिस्तं सफलार्थनम् । कृत्वा प्रादुष्कृतवपुस्ततो भूयोऽप्यभाषत ॥२७८॥
मज्जतो राज्यसौख्येषु सायुज्यावाप्तिदूतिकाम् । मदाज्ञयाऽश्वपादस्ते संज्ञां काले करिष्यति ॥२७९॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे स कृतव्रतपारणः । आगच्छदश्वपादं तमापृच्छ्याभिमतां भुवम् ॥२८०॥
ततो विदितवृत्तान्तो मातृगुप्ताभिषेणनात् । निषिध्य सविधायातानमात्यानब्रवीद्वचः ॥२८१॥
विक्रमादित्यमुत्सिक्तमुच्छेत्तुं यतते मनः । मातृगुप्तं प्रति न नो रोषेणारूषितं मनः ॥२८२॥
अप्रियैरपि निष्पिष्टैः किं स्यात्क्लेशासहिष्णुभिः । ये तदुन्मूलने शक्ता जिगीषा तेषु शोभते ॥२८३॥
यान्यब्जान्युदयं द्विषन्ति शशिनः कोन्यस्ततोसंमतस्तन्निर्माथिकरीन्द्रदन्तदलनं यन्नाम कोयं नयः ।
सामर्थ्यप्रथनाय चित्रमसमैः स्पर्धां विधायोन्नता ये तेषु प्रभवन्ति तत्र जहति व्यक्तं प्ररूढा रुषः ॥२८४॥
त्रिगर्तानां भुवं जित्वा स व्रजन्नथ भूपतिः । विक्रमादित्यमशृणोत्कालधर्ममुपागतम् ॥२८५॥
तस्मिन्नहनि भूभर्त्रा शोकान्निःश्वसताऽनिशम् । नास्नायि नाशि नास्वापि स्थितेनावनताननम् ॥२८६॥
अन्येद्युर्भुवमुत्सृज्य कश्मीरेभ्यो विनिर्गतम् । शुश्राव मातृगुप्तं स नातिदूरे कृतस्थितिम् ॥२८७॥
कैश्चिन्निर्वासितो मा स्विन्मदीयैरिति शङ्कितः । ययौ प्रवरसेनोऽस्य पार्श्वं मितपरिच्छदः ॥२८८॥

तनिक क्षुब्ध होकर राजपुत्र प्रवरसेनने कहा—'भगवन्! यतिवेषधारी आपको साक्षात् शंकर भगवान् समझकर मैंने आपके आगे अपनी अभिलाषा प्रकट की थी। किन्तु आपके प्रश्न सुनकर ऐसा लगता है कि आप शंकर भगवान् नहीं हैं ॥ २७५ ॥ क्योंकि महापुरुष तो थोड़ा माँगनेपर बहुत दे देते हैं। प्राचीनकालमें जल माँगनेपर प्यासे उपमन्युको उदार दानी शिवजीने दूधका समुद्र दे दिया था ॥ २७६ ॥ मेरे मनमें मोक्ष प्राप्त करनेकी तनिक भी लालसा नहीं है। गत वैभवके लाभसे ही मेरे मर्ममें पीड़ा उत्पन्न करनेवाली पराजयका शोक दूर होगा। यह बात क्या आपको नहीं मालूम है?' ॥ २७७ ॥ उसके इन वचनोंको सुनकर समस्त जगतीतलके प्रभु शंकर भगवान् उसके समक्ष प्रकट हो गये और उस राजपुत्रकी कामना पूर्ण करके बोले—'जब तू राज्य-सुखके जालमें फँसकर डूबने लगेगा, तब मेरी आज्ञासे सिद्ध अश्वपाद तेरे पास जाकर सायुज्यप्राप्तिके लिए सचेष्ट होनेका संकेत कर देगा' ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ यह कहकर शंकरजीके अन्तर्धान हो जानेपर राजकुमारने व्रतका पारण किया और वहाँसे सीधे सिद्ध अश्वपादके निकट गया और उससे आज्ञा लेकर वह इच्छित स्थानकी ओर चल पड़ा ॥ २८० ॥ तदनन्तर उसके मंत्रियोंने प्रवरसेनको कश्मीरका सब वृत्तान्त सुनाया। सो सुनकर मातृगुप्तपर आक्रमण करनेके लिए उद्यत साथियोंको रोककर उसने कहा—॥ २८१ ॥ 'मेरा मन तो उस अभिमानी विक्रमादित्यको पराजित करनेके प्रयत्नमें हैं। मातृगुप्तके प्रति मेरे मनमें कुछ भी रोष नहीं है ॥ २८२ ॥ दुःख सहनेमें असमर्थ शत्रुको पीस देनेमें कौन बड़ी वीरता है? जो आक्रामकको उखाड़ फेंकनेकी सामर्थ्य रखते हों, उन्हें पराजित करनेमें ही सच्ची वीरता होती है ॥२८३॥ चन्द्रोदयसे कमल द्वेष करते हैं, किन्तु चन्द्रमा उन कमलोंका नाश नहीं करता। बल्कि वह तो उन कमलोंके विनाशकारी हाथियोंके दाँत तोड़नेमें ही औचित्य समझता है। क्योंकि महान् लोग निर्बल शत्रुओंको सतानेकी अपेक्षा प्रबल शत्रुको पददलित करके संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि बड़ोंके कोपका पात्र बड़ा ही होता है ॥ २८४ ॥ तत्पश्चात् सेना एकत्र करके उसने दिग्विजय प्रारम्भ कर दिया। जब त्रिगर्त देशपर विजय प्राप्त करके वह आगे बढ़ा, तब उसने महाराज विक्रमादित्यके मरणका समाचार सुना ॥ २८५ ॥ उस रोज राजा प्रवरसेनने बारम्बार शोकपूर्ण तथा उष्ण निःश्वास लेते हुए न नहाया, न खाया और न शयन ही किया। वह मस्तक नवाकर दिनभर चुपचाप बैठा रहा ॥ २८६ ॥ दूसरे दिन प्रवरसेनने सुना कि राजा मातृगुप्त कश्मीर राज्य छोड़कर जा रहा है और वह पास ही किसी स्थानपर ठहरा हुआ है ॥ २८७ ॥ यह सुनकर उसे यह सन्देह हुआ कि कहीं मेरे पक्षपातियोंने उसको राज्यच्युत तो नहीं कर दिया है। यह सोचकर वह कतिपय विश्वस्त पुरुषोंको साथ लेकर राजा मातृगुप्तके पास पहुँचा

कृतार्हणं सुखासीनं ततः पप्रच्छ तं शनैः। विनयावनतो राजा राज्यत्यागस्य कारणम् ॥२८९॥
बभाषे तं क्षणं स्थित्वा स निःश्वस्य विहस्य च। गतः स सुकृती राजन्येन भूमिभुजो वयम् ॥२९०॥
यावन्मूर्ध्नि रवेः पादास्तावद्द्योतयते दिशः। द्योतते नान्यथा किंचिद्ग्रावैव तपनोपलः ॥२९१॥
अथ राजाऽभ्यधात्केन राजन्नपकृतं तव। यत्प्रत्यपचिकीर्षायै तमीशमनुशोचसि ॥२९२॥
मातृगुप्तस्ततोऽवादीत्कोपस्मितसिताधरः। अस्मानुत्सहते कश्चिन्नापकर्तुं बलाधिकः ॥२९३॥
नयता गण्यतामस्मानन्तरज्ञेन तेन हि। न भस्मनि हुतं सर्पिर्नोप्तं वा सस्यमूषरे ॥२९४॥
उपकारं स्मरन्तस्तु कृतज्ञत्ववशंवदाः। पदवीमुपकर्तॄणां यान्ति निश्चेतना अपि ॥२९५॥
निर्वाणमनुनिर्वाति तपनं तपनोपलः। इन्दुमिन्दुमणिः किं च शुष्यन्तमनुशुष्यति ॥२९६॥
पुण्यां वाराणसीं गत्वा तस्माच्छमसुखोन्मुखः। इच्छामि सर्वसंन्यासं कर्तुं द्विजजनोचितम् ॥२९७॥
मणिद्वीपमिवेशं तमन्तरेणान्धकारिताम्। बिभेमि द्रष्टुमप्युर्वीं भोगयोगे कथैव का ॥२९८॥
इत्यौचित्यनिधेस्तस्य वाणीमाकर्ण्य विस्मितः। धीरः प्रवरसेनोऽपि व्याजहारोचितं वचः ॥२९९॥
सत्यं विश्वंभरा देवी भूपते रत्नसूरियम्। उत्पत्त्या द्योतते धर्म्यैः कृतज्ञैर्या भवादृशैः ॥३००॥
अन्तरज्ञतया श्लाघ्यः कोऽन्यस्तस्मान्महीभुजः। इत्थं जडे जगत्येकस्त्वां यथावद्विवेद यः ॥३०१॥
चिरं खलु खिलीभूताः कृतज्ञत्वस्य वीथयः। धीर त्वय्येव न त्वासु संचारो यदि दर्श्यते ॥३०२॥
पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽत्र तदसौ प्रागेव नादात्किमु स्वार्थश्चेन्न मयास्य किं न भजते दीनान्स्वबन्धूनयम्।
मत्तो रन्ध्रदृशोऽस्य भीर्यदि न तल्लुब्धः किमेष त्यजेदित्यन्तः पुरुषाधमः कलयति प्रायः कृतोपक्रियः ॥३०३॥

॥ २८८ ॥ वहाँपर मातृगुप्तने प्रवरसेनका पूर्णरूपसे सत्कार किया। इसके बाद जब दोनों सानन्द बैठे, तब बड़े विनीत भावसे प्रवरसेनने मातृगुप्तसे राज्यके त्यागका कारण पूछा ॥ २८९ ॥ तब क्षणभर रुक तथा लम्बी साँस लेते हुए मातृगुप्तने हँसकर कहा—'राजन्! जिसकी कृपासे मैं राजा बना था, वह पुण्यात्मा राजा संसारसे चला गया ॥ २९० ॥ भगवान् सूर्यकी किरणें जबतक दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हैं, तभी तक सूर्यकान्त मणिमें रहती हैं। उस प्रकाशके अभावमें क्या वह पत्थर नहीं हो जाता ?' ॥ २९१ ॥ यह सुनकर प्रवरसेनने कहा—'राजन्! क्या किसीने आपको कोई कष्ट पहुँचाया है, जिससे आप इस तरह उद्विग्न होकर महाराज विक्रमादित्यका स्मरण करते हैं ?' ॥ २९२ ॥ इस प्रश्नसे कुछ क्षुब्ध होकर हँसता हुआ मातृगुप्त बोला—'राजन्! कोई महाशक्तिशाली राजा भी मेरा अपकार नहीं कर सकता ॥ २९३ ॥ किन्तु उस महान् गुणज्ञ राजा विक्रमादित्यने मेरा जो असाधारण सन्मान किया है, वह राखमें आहुति नहीं की है और ऊसर भूमिमें बीज नहीं बोया है ॥ २९४ ॥ उपकार करनेवालोंके उपकारका स्मरण करते हुए अचेतन प्राणी भी उपकारीके मार्गका अनुसरण करते हैं। अर्थात् जब उपकारी संसारमें नहीं रह जाता, तब वे भी अपना तन त्याग देते हैं ॥ २९५ ॥ देखिए न, सूर्यनारायणके अस्त हो जानेपर सूर्यकान्त मणि शान्त हो जाता है और चन्द्रमाके अस्त होनेपर चन्द्रकान्त मणि सूख जाता है ॥ २९६ ॥ अब मेरी यह इच्छा हो रही है कि यहाँसे पुनीत काशीधाममें जाकर ब्राह्मणधर्मके अनुसार संन्यास ले लूँ और जीवनके शेष दिन शान्तिपूर्वक बिताऊँ ॥ २९७ ॥ रत्नदीपकी भाँति प्रकाश फैलानेवाले महाराज विक्रमके अभावमें सर्वथा अन्धकारपूर्ण धरतीकी ओर देखनेमें भी मुझे डर लगता है, तब राज्यसुख भोगनेकी तो बात ही न्यारी है ॥ २९८ ॥ महापुरुष मातृगुप्तके इन निःस्पृह वचनोंको सुनकर धैर्यशाली प्रवरसेन बोला—॥ २९९ ॥ 'राजन्! आप जैसे धर्मात्मा, कृतज्ञ एवं निरपेक्ष पुरुषोंके जन्मसे ही यह सुन्दर और विश्वम्भरा पृथिवी वस्तुतः रत्नप्रसविनी कहलाती है ॥ ३०० ॥ आप जैसे गुणी पुरुषके गुणको पहचाननेवाले महाराज विक्रमके सिवाय इस जड़ संसारमें गुणग्राही भला और कौन हो सकता है। सच्चे अर्थमें वे ही आपको जानते थे ॥ ३०१ ॥ इस धरतीपर यदि आप सरीखे कृतज्ञताके पथका प्रदर्शन करनेवाले लोग न उत्पन्न होते तो कृतज्ञताका मार्ग कभीका अवरुद्ध हो गया होता ॥ ३०२ ॥ इस समय तो यदि

अत्युदात्तगुणेष्वेषा कृतपुण्यैः प्ररोपिता । शतशाखीभवत्येव यावन्मात्रापि सत्क्रिया ॥३०४॥
तत्त्वं गुणवतामग्र्यस्तत्त्वज्ञैश्चाभिनन्दितः । परीक्षितो मणिरिव व्यक्तं बहुमतः सताम् ॥३०५॥
तस्मादनुगृहाणास्मान्मा स्म त्याक्षीर्नरेन्द्रताम् । ममापि ख्यातिमायातु गुणवत्पक्षपातिता ॥३०६॥
पूर्वं तेनाथ चरमं मयापि प्रतिपादिताम् । भवान्प्रतिप्रणयिनीं विदधातु पुनर्भुवम् ॥३०७॥
अव्याजौदार्यचर्यस्य श्रुत्वेति नृपतेर्वचः । कृतस्मितो मातृगुप्तः शनैर्वचनमब्रवीत् ॥३०८॥
यान्यक्षराण्यन्तरेण वाच्यं वक्तुं न पार्यते । का गतिस्तदुपादाने मर्यादोल्लङ्घनं विना ॥३०९॥
अतः परुषमप्यद्य किंचिदेव मयोच्यते । अव्याजार्जवमप्येतदार्यत्वमवधीर्यते ॥३१०॥
सर्वः स्मरति सर्वस्य प्रागवस्थासु लाघवम् । आत्मैव वेत्ति माहात्म्यं वर्तमाने क्षणे पुनः ॥३११॥
पूर्वावस्था मदीया ते त्वदीया या च मे हृदि । ताभ्यां विमोहितावावां न विद्वोन्योन्यमाशयम् ॥३१२॥
राजा भूत्वा कथं मादृक्प्रतिगृह्णातु संपदः । कथमेकपदे सर्वमौचित्यं परिमार्जतु ॥३१३॥
असाधारणमौदार्यमाहात्म्यं तस्य भूपतेः । भोगमात्रकृते मादृक्किं साधारणतां नयेत् ॥३१४॥
अपि च स्पृहयालुः स्यां भोगेभ्यो यदि भूपते । ध्रियमाणेऽभिमाने मे केन ते विनिवारिताः ॥३१५॥
यन्ममोपकृतं तेन तद्विना प्रत्युपक्रियाम् । जीर्णमेवाधुनाङ्गेषु प्रभवत्वेष निश्चयः ॥३१६॥
या गतिर्भूभुजोऽमुष्य मया तामनुगच्छता । पात्रापात्रविवेक्तृत्वख्यातिर्नेया प्रकाश्यताम् ॥३१७॥

कोई दयालुपुरुष किसी साधारण मनुष्यका कोई उपकार करता है तो वह अधम एवं उपकृत मनुष्य अभिमानके साथ कहने लगता है कि 'यह मेरे पूर्वजन्मका पुण्यफल है। यदि ऐसा न होता तो इसने कुछ समय पहले मेरा उपकार क्यों नहीं किया? अथवा उसने जो मेरा उपकार किया है, उसमें उसका अवश्य कुछ न कुछ स्वार्थ होगा। ऐसा न होता तो यह अपने दीन-दुखी बान्धवोंका उपकार क्यों नहीं करता? अथवा मैं इसकी गुप्त बातें जानता हूँ, इसी कारण वह मेरा उपकार कर रहा है। नहीं तो यह लोभी भला ऐसा क्यों करता?' ॥ ३०३ ॥ अतिशय उत्तम गुणवाले पुरुषोंके द्वारा किया गया उपकार तथा उर्वरा भूमिमें लगायी हुई लता नन्हीं होनेपर भी शीघ्र ही पल्लवित तथा पुष्पित होकर सैकड़ों शाखाओं युक्त हो जाती है ॥ ३०४ ॥ अतएव हे महाराज! आप परखे हुए मणिके सदृश श्रेष्ठ, धन्य एवं अभिनन्दनीय हैं ॥ ३०५ ॥ हे भूपते! आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके कश्मीर राज्यका त्याग न करिए और मेरी गुणीजनोंके प्रति पक्षपतिताके भावको विकसित होने दीजिए ॥ ३०६ ॥ अतएव पहले महाराज विक्रमादित्य और अब मेरे द्वारा समर्पित इस कश्मीर राज्यकी धरतीको सनाथ करिए ॥ ३०७ ॥ राजा प्रवरसेनके ये कपटशून्य एव उदार वचन सुनकर मन्द-मन्द मुसकाते हुए मातृगुप्तने धीरेसे कहा—॥ ३०८ ॥ 'जिन बातको कहे बिना मनुष्य अपना मनोभाव व्यक्त करनेमें असमर्थ रहता है, उन्हें कहनेके लिए विवश होकर मर्यादाका उल्लंघन करना पड़ जाता है ॥ ३०९ ॥ अतएव अब मैं आपसे कुछ कठोर वचन भी कहूँगा। क्योंकि सभ्यताके लक्षण-स्वरूप अव्याज माधुर्यका तिरस्कार करना ही पड़ता है ॥ ३१० ॥ संसारका प्रत्येक मनुष्यको अपनी अवनत दशाकी विपन्न अवस्थाका जैसे स्मरण रहता है, वैसे ही उन्नत स्थितिमें भी गौरवपूर्ण अवस्थाका स्मरण एवं ज्ञान उसको रहता ही है ॥ ३११ ॥ मेरी पूर्वावस्थाका ज्ञान आपको है और आपकी पूर्वावस्थाका ज्ञान मुझे है। इसीसे मोहित होकर हम दोनों परस्पर एक दूसरेका आशय नहीं समझ पाते ॥ ३१२ ॥ राजा होता हुआ भी मेरे जैसा पुरुष एकाएक औचित्यको त्यागकर किसी दूसरेकी दी हुई सम्पदाका उपभोग भला कैसे कर सकता है? ॥ ३१३ ॥ महाराज विक्रमादित्यकी असाधारण उदारता और उनके माहात्म्यको भोगतृष्णाके वशीभूत होकर मैं साधारण श्रेणीमें कैसे रख सकता हूँ ॥ ३१४ ॥ हे राजन्! यदि मेरे मनमें भोगकी इच्छा होती तो मैं अपने स्वाभिमानकी रक्षा करता हुआ भी नाना प्रकारके सुख भोग सकता था—उस समय मुझे रोकनेवाला कौन था ॥ ३१५ ॥ उस राजाने जो मेरा उपकार किया है, यदि मैं उसका प्रत्युपकार नहीं करता हूँ तो वह उपकार मेरे अंगोंमें ही जीर्ण हो जायगा ॥ ३१६ ॥ उस नरेशका अनुसरण करके मुझे

एतावत्येव कर्तव्ये यातेऽस्मिन्कीर्तिशेषताम्। भोगमात्रपरित्यागाद्विदध्यां सत्यसंधताम् ॥३१८॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिञ्जगाद जगतीपतिः। त्वदीया न मया स्पृश्यास्त्वयि जीवति संपदः ॥३१९॥
अथ वाराणसीं गत्वा कृतकाषायसंग्रहः। सर्वं संन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः ॥३२०॥
राजा प्रवरसेनोऽपि काश्मीरोत्पत्तिमञ्जसा। निखिलां मातृगुप्ताय प्राहिणोद्दृढनिश्चयः ॥३२१॥
स हठापतितां लक्ष्मीं भिक्षाभुक्प्रत्यपादयत्। सर्वार्थिभ्यः कृती वर्षान्दश प्राणानधारयत् ॥३२२॥
अन्योन्यंसाभिमानानामन्योन्यौचित्यशालिनाम्। त्रयाणामपि वृत्तान्त एष त्रिपथगापयः ॥३२३॥
राजा प्रवरसेनोऽथ नमयन्नवनीधरान्। अकृच्छ्रलङ्घ्याः ककुभो वृद्धस्य यशसो व्यधात् ॥३२४॥
पीताब्धिर्लङ्घितोर्वीभृत्कुम्भयोनिरिवानयत्। तस्य प्रतापः प्रभवन्भुवनानि प्रसन्नताम् ॥३२५॥
शुष्यत्तमालपत्राणि शीर्णताडीदलानि च। तत्सेनार्णवतीराणि चक्रेऽरिस्त्रीमुखानि च ॥३२६॥
स गङ्गालिङ्गिताङ्गस्य पूर्ववारिनिधेर्व्यधात्। सैन्येभमदनिष्पन्दैः कालिन्दीसंगमश्रियम् ॥३२७॥
रोधस्यपरपाथोधेः कटकैः स्पृष्टदिक्तटैः। चकारोत्पाट्य सौराष्ट्रानसौ राष्ट्रविपाटनम् ॥३२८॥
यशोऽर्थिनः पार्थिवेषु द्वेषरागबहिष्कृतः। ववृधे धर्मविजयस्तस्य क्षितिशतक्रतोः ॥३२९॥
वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात्। राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥३३०॥
सिंहासनं स्ववंश्यानां तेनाहितहृतं ततः। विक्रमादित्यवसतेरानीतं स्वपुरं पुनः ॥३३१॥
हेतूनुदीर्य विविधानमन्वानं पराजयम्। सप्त वारान्स तत्याज जित्वा मुम्मुनिभूभुजम् ॥३३२॥

संसारके समक्ष उसकी सत्पात्रपरीक्षाके उत्कर्षकी ख्याति फैलानी चाहिए ॥ ३१७ ॥ इतना कर्तव्य कार्य समाप्त करनेके बाद सारे सासारिक सुख त्यागकर कीर्तिमात्रावशिष्ट महाराज विक्रमादित्यके पथके अनुसरण द्वारा मैने सत्यप्रतिज्ञ होनेका संकल्प किया है' ॥ ३१८ ॥ यह सुनकर प्रवरसेन बोला—'हे राजन्! आप जब तक जीवित रहेंगे, तब तक मैं कश्मीरकी सम्पदाका स्पर्श न करूँगा' ॥ ३१९ ॥ इसके बाद धर्मात्मा मातृगुप्त सीधे काशी गया और सर्वस्वत्यागपूर्वक संन्यास लेकर उसने काषायवस्त्र धारण कर लिया ॥ ३२० ॥ दृढनिश्चयी राजा प्रवरसेन भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कश्मीर राज्यकी सारी वार्षिक आय मातृगुप्तके पास भेज दिया करता था ॥ ३२१ ॥ किन्तु मातृगुप्त भिक्षासे अपना जीवन निर्वाह करता हुआ प्रवरसेनसे अनायास प्राप्त सारा धन याचकोंको दान दे देता था। उसके ऐसा करते-करते दस वर्षका समय बीत गया ॥ ३२२ ॥ इस प्रकार परस्पर यथोचित स्वाभिमान निभानेवाले उदार महाराज विक्रमादित्य, मातृगुप्त तथा प्रवरसेन इन तीनोंका इतिहास गंगाजलके समान पुनीत है ॥ ३२३ ॥ तदनन्तर राजा प्रवरसेनने भी अपने असाधारण प्रभावसे जगतीतलके अन्यान्य राजाओंको परास्त करके अनायास दसों दिशाओंमें अपनी कीर्ति फैला दी ॥ ३२४ ॥ समुद्रके शोषक तथा विन्ध्य पर्वतोंको लाँघनेवाले महामुनि अगस्त्यके प्रभावसे जैसे जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार राजा प्रवरसेनके प्रतापसे सभी भुवन निर्मल हो गये ॥ ३२५ ॥ उसकी सेनाने समुद्रतटवर्ती ताल-तमाल आदि वृक्षोंके पत्र गिरा दिये। बस, इसीसे उस राजाके शत्रुओंकी स्त्रियोंके माथेके तमालतिलक तथा कानोंके ताटंक (झुमके) लुप्त हो गये ॥ ३२६ ॥ उस राजा प्रवरसेनकी सेनाके हजारों मस्त हाथियोंके कपोलोंसे बहनेवाले काले रंगके मदजल द्वारा गंगासे मिलनेवाले पूर्वी समुद्रके यमुनासंगमकी शोभा अनायास प्राप्त हो गयी ॥ ३२७ ॥ उसकी सेनाके दिग्विजयी सैनिकोंने पश्चिमी समुद्र तटवर्ती सौराष्ट्र देशपर आक्रमण करके उस राज्यको समूल नष्ट कर दिया ॥ ३२८ ॥ वह पृथिवीका इन्द्रस्वरूप राजा प्रवरसेन केवल यशमात्रका अभिलाषी तथा राग-द्वेषसे रहित था। अतएव उसकी दिग्विजय धर्मविजय कहलाती थी ॥३२९॥ उसने शत्रुओ द्वारा राज्यच्युत किये गये महाराज विक्रमादित्यके पुत्र प्रतापशीलके नामसे विख्यात शीलादित्यकी सहायता करके फिर उसे उज्जयिनीका राजा बना दिया ॥ ३३० ॥ उसके पूर्वजोंका जो सिंहासन राजा विक्रमने कश्मीरसे उज्जैन मँगवा लिया था, वह उसे फिर उज्जैनसे कश्मीर ले आया ॥ ३३१ ॥ किसी न किसी बहाने

धाष्टर्यादथाष्टमे वारे हेतुमाख्यातुमुद्यतम् । धिक्पशून्वध्यतां सोऽयमित्यूचे नृपतिः क्रुधा ॥३३३॥
अवध्योऽहं पशुत्वेन वीरेत्युक्त्वाऽभयोत्सुकः । मध्येसभं ननर्तास्य सोऽनुकुर्वन्कलापिनम् ॥३३४॥
नृत्तं केकां च शिखिनो दृष्ट्वास्मै द्रविणं नृपः । अभयेन समं प्रादात्तालावचरणोचितम् ॥३३५॥
वसतोऽस्य दिशो जित्वा नप्तुः पैतामहे पुरे । कर्तुं पुरं स्वनामाङ्कं प्रथते स्म मनोरथः ॥३३६॥
रात्रौ क्षेत्रं च लग्नं दिव्यं ज्ञातुमथैकदा । स वीरो वीरचर्यायां निर्ययौ पार्थिवार्यमा ॥३३७॥
गच्छतः क्ष्मापतेरतस्य मौलिरत्नाग्रबिम्बितः । बभार तारानिकरो रक्षासर्षपविभ्रमम् ॥३३८॥
अथानन्तचितालोकस्पष्टभीमतटद्रुमाम् । श्मशानप्रान्ततटिनीं पर्यटन्नाससाद सः ॥३३९॥
ततस्तस्य सरित्पारे मुक्तसंरावमग्रतः । ऊर्ध्वबाहु महद्भूतं प्रादुरासीन्महौजसः ॥३४०॥

नृपतिस्तस्य दृक्पातैर्ज्वलद्भिः कपिशीकृतः ।
उल्काज्योतिःकृताश्लेषः कुलाद्रिरिव दिद्युते ॥३४१॥

तमथ प्रतिशब्देन घोरेणापूरयन्दिशः । अत्रासं विहसन्नुच्चैरुवाच क्षणदाचरः ॥३४२॥
संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्त्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् । त्वां च भूपाल पर्याप्तं धैर्यमन्यत्र दुर्लभम् ॥३४३॥
वसुधाधिपते वाञ्छासिद्धिस्तव विधीयते । सेतुमेतं समुत्तीर्य पार्श्वमागम्यतां मम ॥३४४॥
इत्युदीर्य निजं जानुं रक्षः पारात्प्रसारयत् । तन्महासरितो वारि सेतुसीमन्तितं व्यधात् ॥३४५॥
अङ्गेन रक्षःकायस्य ज्ञात्वा सेतुं प्रकल्पितम् । वीरः प्रवरसेनोऽथ विकोशां छुरिकां दधे ॥३४६॥
स तयोत्कृत्य तन्मांसं कृतसोपानपद्धतिः । अतरद्यत्र तत्स्थानं छुरिकाबल- उच्यते ॥३४७॥

बार-बार पराजय अस्वीकृत करनेवाले राजा मुम्मुनिको उसने सात बार परास्त करके छोड़ दिया था ॥ ३३२ ॥ आठवीं बार पराजित होनेके बाद भी जब वह राजा बहाना बनाकर पराजय अस्वीकृत करने लगा, तब राजा प्रवरसेनने कुपित होकर अपने सैनिकोंको आज्ञा दी कि 'इस धिक्कृत पशुतुल्य राजाको पकड़कर मार डाला जाय' ॥ ३३३ ॥ तब राजा मुम्मुनिने कहा—'हे वीर ! पशु होनेके नाते मैं अवध्य हूँ ।' ऐसा कहकर वह राजा प्रवरसेन-की भरी सभामें मयूरकी तरह नाचने लगा ॥ ३३४ ॥ इस प्रकार मुम्मुनिको मोरके समान बोलते तथा नाचते देखकर राजा प्रवरसेनने क्षमा प्रदान करके बहुत-सा धन, अभिनेताओंके पहनने योग्य वस्त्र एवं नृत्य-गायनो-पयोगी बहुतेरी वस्तुयें दीं ॥ ३३५ ॥ इस तरह सभी दिशाओंको जीत तथा अपने पितामहके नगरमें रहकर राज्य करते हुए राजा प्रवरसेनके मनमें अपने नामसे एक नगर बसानेकी प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हुई ॥ ३३६ ॥ तदनु-सार पृथिवीका सूर्यस्वरूप वह राजा एक रोज रात्रिके समय नगरके लिए उपयोगी भूमि एवं शुभ मुहूर्त देखनेके लिए अपने महलसे निकला ॥ ३३७ ॥ उस समय उस राजाके मुकुटजटित रत्नोंमें प्रतिबिम्बित तारिकायें रक्षाके लिए छिनरायी हुई सर्षपों (सरसों) जैसी लग रही थीं ॥ ३३८ ॥ रात्रिमें भ्रमण करता हुआ वह एक नदीके तटपर जा पहुँचा । वहाँ अनेक चितायें जल रही थीं और उनके प्रकाशमें दीखनेवाले वृक्ष बड़े भयानक लग रहे थे ॥ ३३९ ॥ उस नदीके उत्तरी तटपर उसे भुजायें ऊपर उठाकर भीषण गर्जन करता हुआ एक पिशाच मिला । उसके नेत्रोंसे अग्निकी ज्वालायें निकल रही थीं । उन ज्वालाओंसे आवृत राजा प्रवरसेन उल्काओंसे घिरे कुलपर्वतकी तरह दीखता था ॥ ३४० ॥ ३४१ ॥ तदनन्तर अपने गर्जनकी प्रतिध्वनिसे दसों दिशाओंको गुंजाय-मान करता हुआ वह पिशाच जोरोंसे हँसकर उस निर्भीक राजासे कहने लगा—॥ ३४२ ॥ 'हे राजन् ! महाराज विक्रमादित्य, परम वीर राजा शूद्रक और आपके सिवाय मैंने किसी भी मनुष्यमें इतना प्रबल धैर्य नहीं देखा ॥ ३४३ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! आप इस पुलसे होकर नदीके पार मेरे पास आ जाइए । मैं आपकी सभी कामनायें पूर्ण कर दूँगा' ॥ ३४४ ॥ ऐसा कहकर नदीके उस पारसे पिशाचने अपना पैर फैला दिया, जिससे नदीका जल दो भागोंमें विभक्त हो गया ॥ ३४५ ॥ उस राक्षसके पैरका बना पुल देखकर वीर राजा प्रवरसेनने म्यानसे छुरी निकाल ली ॥ ३४६ ॥ उसीसे पिशाचके पैरका मांस काट-काटकर सीढ़ी बनाता हुआ उसीके सहारे नदीको

पार्श्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा प्रातर्मत्सूत्रपातनम् । दृष्ट्वा पुरं विधेहीति वदन्रूपं तिरोदधे ॥३४८॥
देव्या शारिकयाढ्येन यक्षेणाधिष्ठिते च सः । ग्रामे शारीटकेऽपश्यत्सूत्रं वेतालपातितम् ॥३४९॥
भक्त्या प्रतिष्ठां शक्तिरमिन्निनीषौ प्रवरेश्वरम् । जयस्वामी स्वयं पीठे भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥३५०॥
वेतालावेदितं लग्नं जानतो जगतीभुजा । स्थपतेः स जयाख्यस्य नाम्ना प्रख्यापितोऽभवत् ॥३५१॥
नगरप्रातिलोम्याय भक्त्या तस्य विनायकः । प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखतां भीमस्वामी स्वयं ययौ ॥३५२॥
सद्भावश्र्यादिका देव्यस्तेन श्रीशब्दलाञ्छिताः । पञ्च पञ्चजनेन्द्रेण पुरे तस्मिन्निवेशिताः ॥३५३॥

वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।
ख्याता ततः प्रभृत्येव तादृङ्नौसेतुकल्पना ॥३५४॥

श्रीजयेन्द्रविहारस्य बृहद्बुद्धस्य च व्यधात् । मातुलः स नरेन्द्रस्य जयेन्द्रो विनिवेशनम् ॥३५५॥
बुभोज सिंहलादीन्यो द्वीपान्स सचिवोऽकरोत् । मोराकनामा मोराकभवनं भुवनाद्भुतम् ॥३५६॥
षट्त्रिंशद्गृहलक्षाणि पुरं तत्पप्रथे पुरा । यस्यास्तां वर्धनस्वामी विश्वकर्मा च सीमयोः ॥३५७॥
दक्षिणस्मिन्नेव पारे वितस्तायाः पुरा किल । निर्मितं तेन नगरं विभक्तैर्युक्तमापणैः ॥३५८॥
ते तत्राभ्रंलिहाः सौधा यानध्यारुह्य दृश्यते । वृष्टिस्निग्धं निदाघान्ते चैत्रे चोत्कुसुमं जगत् ॥३५९॥
तद्विना नगरं कुत्र पवित्राः सुलभा भुवि । सुभगाः सिन्धुसंभेदाः क्रीडावसथवीथिषु ॥३६०॥
दृष्टः क्रीडानगोऽन्यत्र न मध्येनगरं क्वचित् । यतः सर्वौकसां लक्ष्मीः संलक्ष्या द्युपथादिव ॥३६१॥

पार कर गया । इन दिनों उस स्थानको लोग छुरिकावल कहते है ॥ ३४७ ॥ उस राजाको अपने पास खड़ा देखा पिशाचने शुभ लग्न बताकर कहा—'मेरे लगाये हुए सूतके अनुसार आप अपने नगरका निर्माण करिएगा ।' इतना कहकर वह वहाँ ही अन्तर्धान हो गया ॥ ३४८ ॥ तदनन्तर प्रातःकालके समय राजाने शारीटक ग्राममें उस पिशाच द्वारा किया हुआ सूत्रपात देखा, जहाँपर किसी यक्षके द्वारा निर्मित शारिका देवीका मन्दिर था ॥ ३४९ ॥ बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ राजा प्रवरसेनने उस स्थानपर जब प्रवरेश्वर नामका शिवलिङ्ग स्थापित करनेकी इच्छा की, उसी समय लिंगस्थापनाके लिए निर्मित यंत्रका भेदन करके उस सिंहासनपर जयस्वामी नामके विष्णु-भगवान् विराजमान दिखायी पड़े ॥ ३५० ॥ उस पिशाचके बताये शुभ लग्नको जाननेवाले राजा प्रवरसेनने जय-नामक शिल्पीके नामपर उस विष्णुप्रतिमाको 'जयस्वामी' इस नामसे विख्यात किया ॥ ३५१ ॥ उस राजाकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भीमस्वामी नामके गणेशजीने राजाके नगरसे विपरीतमुख न रहनेके अभिप्रायसे पश्चिमा-भिमुखता त्यागकर पूर्वाभिमुखता स्वीकार कर ली ॥ ३५२ ॥ इन्द्रके समान तेजस्वी राजा प्रवरसेनने उस नवीन नगरमे सद्भावश्री आदि श्रीशब्दयुक्त नामवाले पाँच मन्दिर बनवाये ॥ ३५३ ॥ उसने वितस्ता नदीपर नावोंका एक विशाल पुल निर्मित करायां । उसी समयसे संसारमें नावों द्वारा सेतुनिर्माणकी प्रथा प्रचलित हुई ॥ ३५४ ॥ राजा प्रवरसेनके मामा जयेन्द्रने एक बड़ा मन्दिर बनवाकर उसमें बुद्धभगवान्की मूर्ति स्थापित की और जयेन्द्रविहार-का निर्माण कराया ॥ ३५५ ॥ प्रवरसेनका मंत्री मोराक सिंहल आदि द्वीपोंपर शासन करता था । उसने मोराकश्रव नामका एक ऐसा भव्य भवन बनवाया, जो सारे संसारमें श्रेष्ठ माना जाता था ॥ ३५६ ॥ उस नगरकी सीमापर वर्धनस्वामी तथा विश्वकर्माका मन्दिर बना हुआ था । लोगोका कहना है कि उस नगरमें छत्तीस लाख घर थे ॥ ३५७ ॥ वितस्ता नदीके दक्षिण तटपर वह नगर बसा हुआ था और उसके सुन्दर बाजार वितस्ताके किनारे विद्यमान थे ॥ ३५८ ॥ उस नगरमे बड़े बड़े गगनचुम्बी भवन बने हुए थे । जिनकी छतसे गर्मीके अन्त-मे बरसातसे चिकने तथा चैत्रमासमें पुष्पित संसारको देखा जा सकता था ॥ ३५९ ॥ उसके अतिरिक्त इस पृथिवीपर और किस नगरमें वैसी सजी हुई बाजारे तथा खेल-कूदके मैदानोंके मार्गोंपर दोनों ओर निर्मल जलसे भरी सुन्दर नहरे बहती देखी जा सकती थीं ? ॥ ३६० ॥ उसके सिवाय भला और किस नगरके बीचो-बीच क्रीडापर्वत विद्यमान था ? जिसके शिखपर चढकर सारे नगरकी सुन्दर छटा देखी जा सके ॥ ३६१ ॥

वैतस्तं वारि श्रान्तव्यैर्बृहत्तुहिनशर्करम्। ग्रीष्मोग्रेऽह्नि स्ववेश्माग्रात्क ततोऽन्यत्र लभ्यते ॥३६२॥
प्रतिदेवगृहं कोशास्ते तस्मिन्नर्पिता नृपैः। सहस्रशः शक्यते यैः क्रेतुं भूः सागराम्बरा ॥३६३॥
पुरे निवसतस्तस्मिंस्तस्य राजप्रजासृजः। शनैः साम्राज्यलाभस्य षष्टिः संवत्सरा ययुः ॥३६४॥
ललाटे शूलमुद्राङ्के जराशुक्लाः शिरोरुहाः। तस्य शंभुभ्रमासङ्गि गङ्गाम्भोविभ्रमं दधुः ॥३६५॥
अथाश्वपादेनेशाननिदेशात्तत्क्षणागतः। काश्मीरिको जयन्ताख्यो द्विजन्मायोजि पार्श्वगः ॥३६६॥
श्रान्तोऽस्यध्वन्य नान्यस्माद्देशात्तेऽभिमतं भवेत्। राज्ञे प्रवरसेनाय लेख एष प्रदर्श्यताम् ॥३६७॥
इत्युक्त्वार्पितलेखोऽसावसमर्थः पथः पृथून्। गन्तुं प्रस्थानखिन्नोऽस्मि सद्यस्तेनेत्यगद्यत ॥३६८॥
स्नाह्यद्य तावत्त्वं स्पृष्टो द्विजः कापालिना मया। उक्त्वेति तेन क्षिप्तोऽसावासन्ने दीर्घिकाजले ॥३६९॥
उन्मीलितेक्षणोऽद्राक्षीत्स्वं स्वदेशादथोत्थितम्। तस्थुपश्चार्चने राज्ञो भृत्यान्व्यग्राञ्जलाहृतौ ॥३७०॥
स्वमावेदयितुं नद्या नीयमाने नृपान्तिकम्। अभ्याक्षिप्तोऽक्षिपल्लेखं स स्नानकलशे ततः ॥३७१॥
प्रवरेशं स्नापयता स्रस्तं तत्कलशात्पुनः। राज्ञा लेखं वाचयित्वा जयन्तः प्रापितोऽन्तिकम् ॥३७२॥
कृतं कृत्यं महद्दत्तं भोगा भुक्ता वयो गतम्। किमन्यत्करणीयं ते एहि गच्छ शिवालयम् ॥३७३॥
ततस्तं वृत्तसंकेतः संतोष्याभिमतार्पणात्। भित्त्वा तमश्मप्रासादं जगाहे विमलं नभः ॥३७४॥
जनैः स ददृशे गच्छन्कैलासतिलकां दिशम्। विशदे घटयन्व्योम्नि द्वितीयतपनोदयम् ॥३७५॥

उस नगरके निवासियोंको प्रचण्ड ग्रीष्मऋतुमें वर्फकी नन्ही-नन्ही छरियोंसे युक्त वितस्ता नदीका शीतल जल अनायास पीनेको मिलता था। यह सुख अन्यत्र कहाँ उपलब्ध हो सकता है ? ॥ ३६२ ॥ कश्मीरके राजाओंने प्रत्येक देवालयके निर्माणमें जितना धन लगाया था, उतने धनसे सहस्रों वार समुद्रसे परिवेष्टित समस्त पृथिवी खरीदी जा सकती थी ॥ ३६३ ॥ उस नगरमें निवास करते हुए राज्यकी प्रजाके रक्षक महाराज प्रवरसेनके राज्यलाभके साठ वर्ष बीत गये ॥ ३६४ ॥ शंकरजीके त्रिशूलकी मुद्रासे अंकित राजा प्रवरसेनके माथेपर लहराते हुए वृद्धावस्थाके कारण श्वेत केशोंको देखकर हरएक दर्शकके मनमें गंगाकी तरंगोंसे विभूषित जटाजूटधारी शिवजीका भ्रम हो जाया करता था ॥ ३६५ ॥ एक वार भगवान् शंकरकी आज्ञासे अपने समीप आये हुए कश्मीरनिवासी जयन्त नामके ब्राह्मणको देखकर कापालिक अश्वपादने कहा—॥ ३६६ ॥ 'हे पथिक ! तुम वहुत थके-से दीख रहे हो। अन्य किसी भी देशमें तुम्हारी कामना नहीं पूर्ण होगी। सो तुम मेरा यह पत्र लेकर राजा प्रवरसेनके पास जाओ और उसे दिखा दो। वहाँ ही तुम्हारी अभीष्टसिद्धि होगी' ॥ ३६७ ॥ पत्र पा जानेके वाद वह विप्र वोला—'हे प्रभो ! मार्ग चलते-चलते मैं वहुत थक गया हूँ। अतएव अव मैं इतनी लम्बी यात्रा नहीं कर सकूँगा' ॥ ३६८ ॥ तव अश्वपादने कहा—'मैं कापालिक हूँ और ब्राह्मण होते हुए भी आपने मुझे छू लिया है। इसलिए जाकर स्नान करिए' यह कहकर उसने उसको अपने पासवाले एक तालावके जलमें ढकेल दिया ॥ ३६९ ॥ इसके वाद जव उस ब्राह्मणने आँख खोलें, तव उसने अपने आपको अपनी मातृभूमि कश्मीरमें उपस्थित पाया और वहाँके राजसेवकोंको पूजनसामग्री जुटानेमें व्यस्त देखा ॥ ३७० ॥ तदनन्तर उस ब्राह्मणने अपने आगमनकी सूचना देनेके लिए राजाके पूजार्थ नदीसे जानेवाले जलमें बड़ी सावधानीसे वह अश्वपादका पत्र डाल दिया ॥ ३७१ ॥ जव राजा भगवान् प्रवरेश्वरको स्नान कराने लगा, तव कलशसे वह पत्र गिर पड़ा। उसे पढकर राजाने तत्काल उस जयन्त ब्राह्मणको अपने पास वुलाया ॥ ३७२ ॥ उस पत्रमें लिखा था—'जो कुछ करना था, वह सव आपने कर लिया। जो देना था सो दे चुके। सव प्रकारके सांसारिक सुख भी भोग लिये। अवस्था भी वीत चली। अव आपको करना ही क्या है ! आइए, कैलास चलें' ॥ ३७३ ॥ उस पत्रसे शंकरभगवान्‌का अभिप्राय समझ लेनेके वाद राजा प्रवरसेनने मनचाहा धन देकर ब्राह्मण जयन्तको सन्तुष्ट किया और अपने योगवलसे उस पाषाणनिर्मित प्रासादका भेदन करके वह निर्मल गगनमण्डलमें उड़ गया ॥ ३७४ ॥ वहाँ उपस्थित लोगोंने राजा प्रवरसेनको आकाशमार्गसे उडकर कैलासविभूषित उत्तर दिशामें जाते देखा। उस समय आकाशमें उदित द्वितीय

जयन्तेनाद्भुतोदन्तहेतुनाऽवाप्य संपदः । स्वनामाङ्काग्रहारादिकर्मभिर्निर्मलाः कृताः ॥३७६॥
एवं स भुवनैश्वर्यं भुक्त्वा भूमिभृतां वरः । अनेनैव शरीरेण भेजे भूतपतेः सभाम् ॥३७७॥
प्रासादे प्रवरेशस्य सिद्धिक्षेत्रे क्षमापतेः । स्वर्गद्वारप्रतिमटं द्वारमद्यापि लक्ष्यते ॥३७८॥
तस्य रत्नप्रभादेव्यां जातो राजा युधिष्ठिरः । अपासीन्नवमासोनाः क्ष्मां चत्वारिंशतिं समाः ॥३७९॥
सर्वरत्नजयस्कन्दगुप्तशब्दाङ्कितामिधाः । आसन्विहारचैत्यादिकृत्यैस्तत्सचिवा वराः ॥३८०॥
भवच्छेदाभिधं ग्रामं स्तुत्यं चैत्यादिसिद्धिभिः । यो व्यधात्सोऽस्य वज्रेन्द्रोऽप्यासीन्मन्त्री जयेन्द्रजः ॥३८१॥
दिक्कामिनीमुखोत्कीर्णकीर्तिचन्दनचित्रकाः । आसन्कुमारसेनाद्यास्तस्यान्येऽप्यन्यमन्त्रिणः ॥३८२॥

पद्मावत्यां सुतस्तस्य नरेन्द्रादित्य इत्यभूत् ।
लखणापरनामा यो नरेन्द्रस्वामिनं व्यधात् ॥३८३॥

वज्रेन्द्रतनयौ वज्रकनकौ यस्य मन्त्रिणौ । अभूतां सुकृतोदन्तौ राज्ञी च विमलप्रभा ॥३८४॥
स विधायाधिकरणं लिखितस्थितये निजम् । द्यां त्रयोदशभिर्वर्षैरारुरोह महाभुजः ॥३८५॥
तस्यानुजो धरणिभृद्रणादित्यस्ततोऽभवत् । तुञ्जीनापरनामानं यं जनाः प्राहुरञ्जसा ॥३८६॥
जगद्विलक्षणं यस्य शङ्खमुद्राङ्कितं शिरः । अपूर्वशर्वरीशान्तर्लीनभानुश्रियं दधे ॥३८७॥
रिपुकण्ठाटवीप्रवासीधस्य धाराधरः पतन् । तद्वधूनेत्रकुण्डेषु जलाविस्यमधारयत ॥३८८॥
अपूर्वो यत्प्रतापाग्निः प्रविश्योर्वीं द्विषां न्यधात् । नारीनेत्रेषु नीरोर्मीन्मन्दिरेषु तृणाङ्कुरान् ॥३८९॥
यस्य पाणिप्रणयितां कृपाणे समुपागते । कबन्धेभ्यः परो नृत्तं न व्यधत्त द्विषद्दले ॥३९०॥

सूर्यके समान वह देदीप्यमान हो रहा था ॥ ३७५ ॥ उस जयन्त ब्राह्मणने इस अद्भुत घटनाके द्वारा प्राप्त सम्पदाको अपने नामसे अग्रहारनिर्माण आदि शुभ कार्योंपर व्यय करके उनका सदुपयोग किया ॥ ३७६ ॥ इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ राजा प्रवरसेन जगतीतलका ऐश्वर्य भोगकर सशरीर कैलास जा पहुँचा और शंकर भगवान्‌की सभाको सुशोभित करने लगा ॥ ३७७ ॥ इस समय भी सिद्धिक्षेत्रके प्रवरेश्वरमन्दिरमें उस राजाके आकाशगमनका मार्ग स्वर्गद्वारके समान विराजमान है ॥ ३७८ ॥ इसके बाद राजा प्रवरसेनकी पत्नी रानी रत्नप्रभाकी कोखसे उत्पन्न राजा युधिष्ठिरने उनतालीस वर्ष तीन महीना कश्मीर देशपर शासन किया ॥ ३७९ ॥ उसके सर्वरत्न, जय तथा स्कन्दगुप्त नामके मंत्रियोंने अनेक विहार-चैत्य आदिका निर्माण कराया ॥ ३८० ॥ चैत्यादि दिव्य स्थानोंके कारण प्रशंसनीय भवच्छेद नामक ग्राम बसानेवाला जयेन्द्रपुत्र वज्रेन्द्र राजा युधिष्ठिरका मंत्री था ॥ ३८१ ॥ दिशारूपिणी ललनाओंके मुखोंको अपने यशरूपी चन्दनसे सुशोभित करनेवाले कुमारसेन आदि भी राजा युधिष्ठिरके श्रेष्ठ मंत्री थे ॥ ३८२ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी पत्नी पद्मावतीका पुत्र नरेन्द्रादित्य जो लखण नामसे भी प्रसिद्ध था, कश्मीरमण्डलका राजा हुआ। उसने नरेन्द्रस्वामी नामके शंकर भगवान्‌की स्थापना की थी ॥ ३८३ ॥ वज्रेन्द्रके पुत्र वज्र और कनक ये दोनों उस राजाके मंत्री थे और राजा नरेन्द्रादित्यकी पत्नी विमलप्रभा थी ॥ ३८४ ॥ राजकीय लेखोंको सुरक्षित रखनेके लिए उसने एक नये विभागकी स्थापना की और तेरह वर्ष राज्य करनेके बाद राजा नरेन्द्रादित्यका देहान्त हो गया ॥ ३८५ ॥ तदनन्तर उसका छोटा भाई रणादित्य कश्मीरका राजा बना। उसको लोग तुंजीन भी कहते थे ॥ ३८६ ॥ समस्त संसारके लिए विलक्षण तथा शंखकी मुद्रासे चिह्नित उसका मस्तक सूर्यमण्डलसे मिश्रित चन्द्रमाके बिम्ब जैसा सुन्दर लगता था ॥ ३८७ ॥ शत्रुओंके कंठरूपी जंगलपर जब राजा रणादित्यकी तलवारका भीषण प्रहार होता था, तब उनकी पत्नियोंके नेत्ररूपी कुंड आँसुओंसे भर जाया करते थे ॥ ३८८ ॥ उस राजाकी विलक्षण प्रतापरूपी अग्नि जैसे ही शत्रुओंके देशों प्रविष्ट होती थी- उसी समय शत्रुनारियोंके नेत्रोंमें आँसुओंकी तरंगें उमड़ पड़ती थीं और शत्रुके राजभवनोंपर नये नये तृणांकुर उग आते थे ॥ ३८९ ॥ वह वीर जब हाथमें तलवार ले लेता था, तब रणभूमिमें शत्रुपक्षवालोंके कबन्धोंके अतिरिक्त और कोई भी नृत्य करता हुआ नहीं दिखायी

तस्याव्यपोह्यमाहात्म्या देवी दिव्याकृतेः प्रिया । विष्णुशक्तिः क्षितिं प्राप्ता रणारम्भाभिधाभवत् ॥३९१॥
स हि जन्मान्तरे पूर्वं द्यूतकारोऽभवत्किल । कदापि प्राप निर्वेदं सर्वस्वं कितवैर्जितः ॥३९२॥
देहत्यागोद्यतोऽप्यासीत्प्राप्यं किंचिद्विचिन्तयन् । न पर्यन्तेऽप्युपेक्षन्ते कितवाः स्वार्थसाधनम् ॥३९३॥
अवन्ध्यदर्शनां विन्ध्ये देवीं भ्रमरवासिनीम् । द्रष्टुमैच्छद्वराकांक्षी निर्व्यपेक्षः स्वजीविते ॥३९४॥
भ्रमरैः शङ्कुपुच्छाद्यैः खण्ड्यमानस्य देहिनः । तदास्पदं हि विशतो दुर्लङ्घ्या पञ्चयोजनी ॥३९५॥
स वज्रशङ्कुपुच्छानां धीमांस्तेषां प्रतिक्रियाम् । देहेऽवश्यपरित्याज्ये मन्वानोऽभूददुष्कराम् ॥३९६॥
प्रागयोवर्मणा देहं ततो महिषचर्मणा । तेन छादयता दत्तो मृल्लेपोऽथ सगोमयः ॥३९७॥
अथ भानुकरोच्छुष्कमृल्लेपाम्रेडिताङ्गकः । स लोष्ट इव संचारी प्रतस्थे क्रूरनिश्चयः ॥३९८॥
सरलां सरणिं त्यक्त्वा जीवितस्पृहया समम् । गुहा तेन ततः सान्द्रतमोभीमा व्यगाह्यत ॥३९९॥
अथोदतिष्ठन्गर्तेभ्यो घोरा भ्रमरमण्डलाः । पक्षशब्दैः श्रुतिं घ्नन्तो मृत्युतूर्यरवैरिव ॥४००॥
ते तमुच्छुष्कमृल्लेपरेणुव्रणितलोचनाः । सहसा नाक्रमन्ते स्म प्रहरन्तोऽपि बाधितुम् ॥४०१॥
रेणुभिर्येऽन्धितदृशस्ते न्यवर्तन्त षट्पदाः । तेऽखण्डयंस्तु मृल्लेपं न्यपतन्ये नवा नवाः ॥४०२॥
तैः खण्ड्यमानमुचण्डैर्व्रजतो योजनत्रयीम् । क्रमान्मृत्कवचं तस्य पथि संक्षयमाययौ ॥४०३॥
ततो मुहुः प्रहरतां तेषां महिषचर्मणि । घोरश्चटचटाघोषः प्रादुरासीद्भयंकरः ॥४०४॥
चतुर्थयोजनस्यार्धमतिक्रम्य विवेद सः । रणत्कारैर्द्विरेफांस्तानयोवर्मनिपातिनः ॥४०५॥
यावंस्ततोऽतिवेगेन खण्ड्यमानेन षट्पदैः । स शस्त्रवर्मणाऽमोचि चित्तं धैर्येण नो पुनः ॥४०६॥

देता था ॥ ३९० ॥ उस सुन्दर आकारवाले राजा रणादित्यकी पत्नी रणारम्भा देवी थी, जो समस्त महिमाओंको धारण करनेवाली साक्षात् वैष्णवी शक्ति थी ॥ ३९१ ॥ पूर्वजन्ममें वह राजा जुआड़ी था। एक बार दूसरे पक्षके एक जुआड़ीने परास्त करके उसका सर्वस्व ले लिया। इससे उसके हृदयको बहुत बड़ा आघात पहुँचा। जुआड़ी लोग अन्त तक अपना स्वार्थ साधन करते रहते हैं, इस नियमके अनुसार वह जुआड़ी अपना शरीर तक त्यागकर स्वार्थ साधनेको उद्यत हो गया ॥३९२॥३९३॥ तब वरदान प्राप्त करनेके लिए उसने अपने प्राणों तककी चिन्ता त्यागकर विन्ध्याचलपर अमोघदर्शना भ्रमरवासिनी भगवतीके दर्शनका निश्चय कर लिया ॥ ३९४ ॥ भगवती भ्रमरवासिनीके मन्दिरकी राह पाँच योजन लम्बी और बहुत ही विकट थी। उस मार्गके यात्रियोंको वज्रके सदृश तीक्ष्ण डंकवाले भौंरे छेद डालते थे। अतएव वह मार्ग दुर्लङ्घ्य माना जाता था ॥ ३९५ ॥ किन्तु शरीर त्यागनेको तैयार उस बुद्धिमान् जुआड़ीने उन वज्रसदृश डंकवाले भौंरोंसे बचनेके उपायको कठिन नहीं समझा ॥ ३९६ ॥ इसके लिए उसने सबसे पहले लौहकवचसे अपनी देह ढाँक ली और उसके भी ऊपर भैंसेका चमड़ा मढ लिया। फिर उसके ऊपर मिट्टी और गोबर लीप दिया ॥ ३९७ ॥ तब उसे धूपमें सुखा तथा ओढकर चलता हुआ वह मिट्टीके ढेले सदृश दिखायी देने लगा ॥ ३९८ ॥ बादमें अपने जीवनकी आकाङ्क्षाके साथ ही सीधे मार्गको त्यागकर गाढ अन्धकार भरी एक भीषण गुफामें घुस गया ॥ ३९९ ॥ उसके भीतर अपने पंखोंसे मृत्युवाद्यके समान भयंकर ध्वनि करके कानोंको कष्ट देनेवाले भीषण भौंरोंके समूह मँडराने लगे ॥ ४०० ॥ तत्काल उन्होंने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया, किन्तु सूखी मिट्टीके लेपकी धूलसे उनकी आँखोंको कष्ट होने लगा। अतएव वे आक्रमण करके भी उसे विशेष कष्ट नहीं पहुँचा सके ॥४०१॥ लेकिन जो भौंरे मृत्तिकाकी धूलसे अन्धे हो गये थे वे तो चले गये। उनके चले जानेपर नये-नये आनेवाले भौंरे उस मिट्टीके लेपको नष्ट करने लगे ॥४०२॥ उन प्रचण्ड भौंरोंके आक्रमणको सहते हुए तीन योजन मार्ग पार करते-करते उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया ॥ ४०३ ॥ उसके बाद वे महिषचर्मपर प्रहार करने लगे और उस प्रहारसे चट-चटकी ध्वनि निकलने लगी ॥ ४०४ ॥ चौथे योजनका आधा भाग पार करनेके बाद उसे यह अनुभव हुआ कि भौंरोंने महिष-चर्मका आवरण काटकर लौहकवचपर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया है ॥ ४०५ ॥ तदनन्तर बड़े वेगसे

गव्यूतिमात्रमासन्ने देवीधामनि धैर्यवान् । धुन्वन्कराभ्यां मधुपान्धावतिस्म स धीरधीः ॥४०७॥
अथ स्नाय्वस्थिशेषाङ्गो लूनमांसः षडंघ्रिभिः । कराभ्यामक्षिणी रक्षन्देव्यायतनमासदत् ॥४०८॥
प्रशान्ते भृङ्गसंपाते प्रकाशमवलोकयन् । स देव्याः पादयोरग्रे पपातोद्भ्रान्तजीवितः ॥४०९॥
स्तोकावशेषप्राणं तं देव्याश्वासयितुं ततः । अभिरामं वपुः कृत्वा पस्पर्शाङ्गेषु पाणिना ॥४१०॥
दिव्येन पाणिस्पर्शेन तेन पीयूषवर्षिणा । स क्षिप्रासादितस्वास्थ्यो दिक्षु चिक्षेप चक्षुषी ॥४११॥
प्रविष्टमात्रः प्रैक्षिष्ट सिंहविष्टरसीम्नि याम् । घोराकारां स तां देवीं तदाद्राक्षीन्न तां पुनः ॥४१२॥
ददर्श पुनरुद्यानलतावासे विलासिनीम् । स्थितां पुष्करिणीतीरे श्यामां पुष्करलोचनाम् ॥४१३॥
गृहीतहारमुक्तार्घां वद्ध्वा पीनस्तनाञ्जलिम् ।
महार्हैः कान्तिकुसुमैर्यौवनेनार्चिताङ्गकाम् ॥४१४॥
यावकाहारिणौ पादौ दधतीं कृच्छ्रचारिणौ । स्तनच्छन्नमुखं द्रष्टुं तपस्यन्ताविवान्वहम् ॥४१५॥
भास्वद्बिम्बाधरां कृष्णकेशीं सितकराननाम् । हरिमध्यां शिवाकारां सर्वदेवमयीमिव ॥४१६॥
तां विभाव्यानवद्याङ्गीं निर्जने यौवनोर्जिताम् । निन्येऽवारितवामेन स कामेन विधेयताम् ॥४१७॥
दधती रूपमाधुर्यपूरच्छन्नामधृष्यताम् । अप्सराः प्रत्यभात्तस्य सा हि चित्ते न देवता ॥४१८॥
कृपामृदुरवादीत्तं व्यथितोऽसि चिरं पथि । मुहुः सौम्य समाश्वस्य प्रार्थ्यतामुचितो वरः ॥४१९॥
स तां बभाषे शान्तो मे भवत्या दर्शनाच्छ्रमः । अदेवी किं तु भवती वरं दातुं कथं क्षमा ॥४२०॥
देवी जगाद तं भद्र कोऽयं ते मनसि भ्रमः । देवी वा स्यामदेवी वा वरीतुं त्वां तु शक्नुयाम् ॥४२१॥

दौड़ते हुए उस बटोहीका भ्रमरोंके प्रहारसे टूटे हुए उस लौहकवचने भी साथ छोड़ दिया, किन्तु उस समय भी धैर्यने उसका साथ नहीं छोड़ा ॥ ४०६ ॥ जब देवीका धाम केवल दो कोस दूर रह गया, तब वह धैर्यवान् पथिक दोनों हाथोंसे भौरोंको उडाता हुआ बड़े वेगसे दौड़ने लगा ॥ ४०७ ॥ इस तरह भौरोंके प्रहारसे केवल स्नायु तथा अस्थिमात्रावशिष्ट-देहधारी वह पथिक हाथोंसे आँखे बचाते हुए देवीके मन्दिरमे गया ॥ ४०८ ॥ क्षणभर बाद भौरोंका आक्रमण शान्त हो जानेपर उसने उजालेका दर्शन किया और बड़ी आतुरतापूर्वक भगवतीके चरणोंमें गिर पड़ा ॥ ४०९ ॥ तब मनोहर रूप धारण करके देवी प्रगटीं और उस अल्पप्राणशेष भक्तको आश्वस्त करनेके लिए उन्होंने अपने हाथों उसकी देहका स्पर्श किया ॥ ५१० ॥ उस अमृतवर्षी तथा दिव्य हाथके स्पर्शसे वह तुरन्त स्वस्थ हो गया और उसने चारों ओर निगाह दौड़ायी ॥४११॥ मन्दिरमें प्रविष्ट होते समय जिस भीषण आकृतिवाली सिंहवाहिनी देवीको उसने देखा था, अब वह मूर्ति वहाँ नहीं रही ॥ ४१२ ॥ तनिक देर बाद उसने एक सरोवरके तटवर्ती उद्यानके लतामण्डपमें क्रीड़ा करती हुई कमलनयनी देवीको देखा ॥ ४१३ ॥ उस समय मूर्तरूपमें विद्यमान यौवन मुक्ताहाररूपी अर्घ्य एवं कान्तिरूपी पुष्पोंसे उनके अंगोंका पूजन कर रहा था ॥ ४१४ ॥ आलतासे रंगे हुए देवीके दोनों चरण स्तनसे ढँके मुखका दर्शन करनेके लिए जैसे कृच्छ्रव्रतका पालन करते हुए तप कर रहे थे ॥ ४१५ ॥ उनके होंठ बिम्बफलकी भाँति लाल थे, उनके केश काले थे, चन्द्रमण्डलके समान उनका मुख था और सिंहकी कमर जैसी पतली कमर थी। उनकी शोभन आकृति सर्वदेवमयी-सी लगती थी ॥ ४१६ ॥ उस सर्वाङ्ग सुन्दर एवं यौवन-से खिले रमणीय रूपको देखकर उस जुआड़ीका मन कामातुर हो उठा ॥ ४१७ ॥ अब उसकी दृष्टिमें रूप तथा लावण्यकी छटासे अलंकृत वह नारी देवीके रूपमें न दीखकर एक अप्सराके रूपमें दीखने लगी ॥ ४१८ ॥ तब कृपापूर्वक देवीने उससे कहा—'वत्स ! रास्तेमें तुम्हें दारुण दुःख भोगना पड़ा है। इस लिए क्षणभर विश्राम करने-के बाद तुम उचित वर माँग लो' ॥ ४१९ ॥ यह सुनकर जुआड़ी बोला—'आपके दर्शनसे ही मेरी सारी थकावट दूर हो गयी है। किन्तु आप देवी तो हैं नहीं, फिर मुझे वरदान कैसे देंगी ?' ॥ ४२० ॥ देवीने कहा—'भद्र ! तुम्हारे मनमें इस प्रकारका भ्रम कैसे आगया ? अस्तु, मैं देवी होऊँ या और कोई—तुम्हें वरदान देनेकी सामर्थ्य

इति सोऽभीष्टसंप्राप्तौ कारयित्वा प्रतिश्रवम् । दूरमुत्क्रान्तमर्यादः संगमं तामयाचत ॥४२२॥
तमभ्यधात्सा दुर्बुद्धे कोऽयं तेऽनुचितो विधिः । प्रार्थयस्वेतरद्यस्मात्साऽहं भ्रमरवासिनी ॥४२३॥
देवीं तां जानतोऽप्यस्य नाभूदव्यहितं मनः । निरुद्धा वासनाः केन जन्मान्तरनिबन्धनाः ॥४२४॥
स तामुवाच सत्यां चेद्देवि स्वां गिरमिच्छसि । प्रमाणीकुरु मद्वाणीमहमन्यन्न कामये ॥४२५॥
पूर्वमेव हि जन्तूनां योऽधिवासो निलीयते । तिलानामिव तेषां स पर्यन्तेऽपि न शीर्यते ॥४२६॥
देवी वा भव कान्ता वा भीमा वा शोभनापि वा । यादृशीं पूर्वमद्राक्षं तादृश्येवावभासि मे ॥४२७॥
तमित्थं कथयन्तं सा ज्ञात्वा निश्चलनिश्चयम् । एवं जन्मान्तरे भावीत्यभ्यधादनुरोधतः ॥४२८॥
उत्सहन्ते हि संस्प्रष्टुं न दिव्या मर्त्यधर्मिणः । तद्गच्छ क्रूरसंकल्पेत्युक्त्वा साऽन्तर्दधे ततः ॥४२९॥
अशून्यजन्मा भूयासं तया देव्येति चिन्तयन् । प्रयागवटशाखाग्रादहासीत्स वपुस्ततः ॥४३०॥
सोऽजायत रणादित्यो रणारम्भा च सा भुवि । मर्त्यभावेऽपि या नैव जहौ जन्मान्तरस्मृतिम् ॥४३१॥
रतिसेनाभिधश्चोलराजः सज्जोऽब्धिपूजने । तां तरङ्गान्तराल्लेभे रत्नराजिमिवोज्ज्वलाम् ॥४३२॥
आ बाल्याद्व्यक्तदिव्योक्तिं तामलंकृतयौवनाम् । दिव्यार्हां पृथिवीशेभ्यो नार्थिभ्योपि ददौ नृपः ॥४३३॥
रणादित्यनृपामात्ये दूत्यायाते तथैव तम् । प्रत्याख्यानेच्छुमाचख्यौ सैव तद्वरणं वरम् ॥४३४॥
तदर्थमेव कथितस्वोत्पत्तिं तां ततः पिता । द्रुतं कुलूतभूभर्तुः सुहृदः प्राहिणोद्गृहान् ॥४३५॥
प्रहृष्टो विप्रकृष्टं तं देशं गत्वा व्यधत्त ताम् । परिणीय रणादित्यः शुद्धान्तस्याधिदेवताम् ॥४३६॥

तो मुझमें है ही' ॥ ४२१ ॥ इस तरह पूर्णरूपसे आश्वासन प्राप्त करनेके बाद उस जुआड़ीने मर्यादा त्यागकर उनसे सहवासका वरदान माँगा ॥ ४२२ ॥ तब भगवतीने कहा—'अरे दुर्बुद्धि ! तू मुझसे ऐसा नीच प्रस्ताव क्यों कर रहा है ? मैं साक्षात् भ्रमरवासिनी देवी हूँ । इस लिए तू कोई दूसरा वर माँग' ॥ ४२३ ॥ इस प्रकार उनके कहनेपर उनको देवी समझ करके भी उस जुआडीका निश्चय नहीं बदला । ठीक ही है, जन्मान्तरकी वासनाओंको कोई कैसे रोक सकता है ? ॥ ४२४ ॥ उसने कहा—'यदि वास्तवमें आप देवी हैं और अपना वचन सत्य करना चाहती है तो मुझे मुँहमाँगा वरदान देकर अनुगृहीत करें । इसके सिवाय मैं और कोई वरदान नहीं चाहता' ॥ ४२५ ॥ पूर्वजन्ममें प्राणीके हृदयमें जो संस्कार जम जाते है, वे शरीरपर दीखनेवाले तिलके समान दूसरे जन्ममें भी ज्योंके त्यों बने रहते है ॥ ४२६ ॥ वह बोला—'आप देवी हों या कोई सामान्य स्त्री और भयंकर हों या सुन्दरी । मुझे तो आप अब भी उसी रूपमें दीख रही हैं, जिस रूपमें मैंने अभी-अभी आपको देखा था' ॥ ४२७ ॥ उसके बार बार ऐसा कहनेसे उसका निश्चय दृढ जानकर भगवतीने कहा—'तेरे दूसरे जन्ममें ऐसा ही होगा ॥ ४२८ ॥ देवता लोग मनुष्यका स्पर्श नहीं कर सकते । अतएव ओ क्रूरसंकल्प ! तू यहाँ से चला जा ।' यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी ॥ ४२९ ॥ 'अगले जन्ममें मुझे देवीका प्रेम प्राप्त करनेका सुअवसर मिलेगा' इस आशासे उस जुआड़ीने प्रयागके अक्षयवटकी एक शाखासे कूदकर अपने प्राण त्याग दिये ॥ ४३० ॥ दूसरे जन्ममें वह जुआड़ी रणादित्य और भगवती भ्रमरवासिनी रणारम्भाके रूपमें जनमीं । इस प्रकार मानव रूपमें जन्म लेनेपर भी देवीको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा ॥ ४३१ ॥ चोलदेशके नरेश रतिसेन जब समुद्रका पूजन कर रहे थे । उसी समय रत्नराशिके समान सुन्दरी एक कन्या समुद्रके तरंगोंमें उन्हें मिली ॥ ४३२ ॥ बाल्यावस्थासे ही उस कान्यामें दिव्य चिह्न दिखलायी दे रहे थे और जब वह तरुणावस्थामें पहुँची, तब बहुतेरे राजे उसे राजा रतिसेनसे माँगने लगे । किन्तु उन्होंने उसे किसीको नहीं दिया ॥ ४३३ ॥ उसी प्रकार राजा रणादित्यका दूत भी उसी कामसे राजा रतिसेनके पास पहुँचा और राजाने उसे भी लौटा देना चाहा, किन्तु रणारम्भाने उसीके साथ विवाह करनेका विचार करके राजाको अपना मन्तव्य बता दिया और कहा कि 'रणादित्यके लिए ही मैंने जन्म लिया है' । यह सुनकर राजाने उसे तुरन्त अपने मित्र कुलूत देशके नरेशके यहाँ भेज दिया ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ तदनन्तर राजा रणादित्यने भी बडी प्रसन्नताके साथ उस दूर देशमें

मर्त्यसंस्पर्शभीरुः सा महादेवी भवन्त्यपि । तं मायया मोहयन्ती न पस्पर्श कदाचन ॥४३७॥
व्यधान्मायामयीं राज्ञस्तल्पे स्वसदृशीं स्त्रियम् । स्वयं सा भ्रमरीरूपा निर्जगाम बहिर्निशि ॥४३८॥
स नाम्ना स्वस्य देव्याश्च कृत्वा सुरगृहद्वयम् । माहेश्वरः शैवलिङ्गे कारयामास कारुभिः ॥४३९॥
श्वः प्रतिष्ठाप्रसङ्गेऽथ सज्जे तल्लिङ्गयोर्द्वयम् । देशान्तरागतः कश्चिद्दूषयामास दैववित् ॥४४०॥
स दृष्टप्रत्ययः शश्वत्तयोर्घटितलिङ्गयोः । अश्मखण्डैः समण्डूकैर्बभाषे गर्भमावृतम् ॥४४१॥
किंकर्तव्यतया मूढं प्रतिष्ठाविघ्नविह्वलम् । दिव्यदृष्टिः स्वयं देवी ततो राजानमब्रवीत् ॥४४२॥
राजन्गिरिसुतोद्वाहे पौरोहित्यं पुरा भजन् । स्वमर्चादिवमादत्त पूजाभाण्डात्प्रजापतिः ॥४४३॥

तां विष्णोः प्रतिमां वीक्ष्य पूजितां तेन धूर्जटिः ।
शून्यामिव तदा मेने शक्तिरूपां विना शिवम् ॥४४४॥

निमन्त्रितैर्ढौकितानि रत्नान्यथ सुरासुरैः । पिण्डीकृत्य स्वयं चक्रे लिंगं भुवनवन्दितम् ॥४४५॥
तां विष्णुप्रतिमां तच्च लिंगमीशानपूजितम् । स्वयं प्रजासृजः पूज्यं कालेनादत्त रावणः ॥४४६॥
तेनाप्यभ्यर्च्यमानं तल्लङ्कायामभवच्चिरम् । देवद्वयं रावणान्ते नीतमासीच्च वानरैः ॥४४७॥
तिर्यक्तया ते कपयो मुग्धा हिमनगौकसः । गन्तौत्सुक्याः शनैर्देवौ न्यधुरुत्तरमानसे ॥४४८॥
प्रागेव सरसस्तस्मात्कुशलैः शिल्पिभिर्मया । तावुद्धृतौ प्रातरत्र प्राप्तौ द्रक्ष्यस्यसंशयम् ॥४४९॥
तयोः प्रतिष्ठा क्रियतामित्युक्त्वा पृथिवीभुजम् । देवी प्रयाता शुद्धान्तं सिद्धान्सस्मार खेचरान् ॥४५०॥

रहनेवाले राजाकी कन्यासे विवाह करके उसे अपने अन्तःपुरकी अधिष्ठात्री देवी बनाया ॥ ४३६ ॥ राजपत्नी होती हुई भी रणारम्भा मनुष्यके स्पर्शसे डरती थी। अतएव उसने राजा रणादित्यको अपनी मायासे मोहित करके कभी भी उसका स्पर्श नहीं किया ॥ ४३७ ॥ अपनी मायाके बलसे वह नित्य राजाकी सेजपर अपने ही समान सुन्दरी एक स्त्रीको बिठाकर स्वयं भ्रमरीका रूप धारण करके बाहर निकल जाया करती थी ॥ ४३८ ॥ कालान्तरमें राजा रणादित्यने सुयोग्य शिल्पीके द्वारा अपने तथा अपनी प्रियतमा रणारम्भाके नामसे दो मन्दिर बनवाकर उन दोनोंमें स्थापित करनेके लिए दो शिवलिंग भी बनवाये ॥ ४३९ ॥ उनकी प्रतिष्ठाके लिए निर्धारित दिनसे एक दिवस पहले किसी विदेशी ज्योतिषीने उन दोनों शिवलिङ्गोंको देखकर कहा कि 'ये दोनों लिंग बेमेल हैं' ॥४४०॥ साथ ही उसने अपने अनुभव द्वारा राजाके मनमें विश्वास उत्पन्न कराते हुए कहा—'इन दोनों शिवलिंगोंके भीतर मण्डूक समेत प्रस्तरखण्ड विद्यमान हैं' ॥ ४४१ ॥ लिंगप्रतिष्ठामें इस प्रकार विघ्न आजानेसे विह्वल तथा किंकर्तव्यविमूढ राजा रणादित्यसे उस दिव्यदृष्टि रणारम्भाने कहा—॥ ४४२ ॥ 'हे राजन्! पूर्वकालमें भगवती पार्वतीके विवाहके समय स्वयं ब्रह्माजी पुरोहितका कार्य कर रहे थे। उस समय उन्होंने अपनी पुजाही (पूजन-सामग्री) मेंसे एक विष्णुमूर्ति निकालकर वहाँ रख दी ॥ ४४३ ॥ किन्तु शंकरजीने इस विचारसे उस मूर्तिको अपूर्ण समझा कि 'विष्णुमूर्ति शक्तिस्वरूपा होती हुई भी शिवलिङ्गके बिना शून्य रहती है' ॥ ४४४ ॥ तदनन्तर उस विवाहोत्सवमें आये हुए देवताओं तथा असुरों द्वारा उपहारस्वरूप अर्पित रत्नोंको पिंडित करके शंकरजीने अपने हाथों एक शिवलिंगका निर्माण किया और उस जगद्वन्द्य शिवलिंगकी विधिवत् स्थापना की गयी ॥ ४४५ ॥ बादमें वह विष्णुमूर्ति और शिवलिंग दोनों एक साथ पूजे गये। कालान्तरमें पितामह ब्रह्माकी पूज्य उन दोनों मूर्तियोंको रावण उठा ले गया ॥ ४४६ ॥ वह लंकामें उन दोनोंकी बहुत समय तक पूजा करता रहा। बादमें वानरोंने लंकासे उन दोनों मूर्तियोंका अपहरण कर लिया ॥ ४४७ ॥ वे वानर पशु ही थे, सो अपने चंचल स्वभावके अनुसार उन दोनों प्रतिमाओंको हिमालय पर्वतपर लेजाकर उन्होंने मानसरोवरमें डाल दिया ॥ ४४८ ॥ अत मैंने पहलेसे ही उत्तम शिल्पियों द्वारा उन दोनों मूर्तियोंको वहाँसे निकाल लानेका प्रबन्ध कर दिया है। कल सवेरे ही उन दोनों मूर्तियोंको आप अपने समक्ष उपस्थित देखेंगे ॥ ४४९ ॥ अतः उन्हीं मूर्तियोंकी स्थापना करिएगा'। यह कहकर रानी रणारम्भा अपने अन्तःपुरमें चली गयी। वहाँ पहुँचकर उसने आकाश-

ते ध्यातमात्रा संप्राप्ता देव्यादेशेन पाथसः । उद्धृत्य नृपतेर्धाम्नि देवौ हरिहरौ न्यधुः ॥४५१॥
दिव्यैः प्रसूनैः संवीतौ हरनारायणौ जनः । प्रातर्नृपगृहे दृष्ट्वा परं विस्मयमाययौ ॥४५२॥
सज्जे प्रतिष्ठालग्नेऽथ माहेश्वरतया नृपः । रणेश्वरप्रतिष्ठायां पूर्वं यावत्समुद्यतः ॥४५३॥
रणारम्भानुभावेन तावद्देवाद्भुतावहः । स्वयं पीठे रणस्वामी भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥४५४॥
कर्तुं प्रभावजिज्ञासां राज्या दत्तधनस्ततः । स स्वयंभूः स्वयं भक्तांस्तांस्तान्ग्रामानदापयत् ॥४५५॥
कुम्भदासतया छन्नः सिद्धो ब्रह्माभिधो वसन् । परिज्ञाय तयोर्देव्या प्रतिष्ठाकर्म कारितः ॥४५६॥
स वृत्तप्रत्यभिज्ञः सन्प्रतिष्ठाप्य रणेश्वरम् । व्योम्ना व्रजन्रणस्वामिप्रतिष्ठां गूढमादधे ॥४५७॥
जनास्त्वलक्षयन्यत्स स्वयं पीठमवातरत् । इति केषामपि हृदि प्रवादोऽद्यापि वर्तते ॥४५८॥
सा ब्रह्मप्रतिमं सिद्धं देवी ब्रह्मविदां वरम् ।
अकारयत्तमुद्दिश्य परार्ध्यं ब्रह्ममण्डपम् ॥४५९॥
रणारम्भास्वामिदेवौ दम्पतिभ्यां व्यधीयत । मठः पाशुपतानां च ताभ्यां प्रद्युम्नमूर्धनि ॥४६०॥
आरोग्यशाला निरघाप्युल्लाघत्वाय रोगिणाम् । तेन सेनामुखीदेवीभयशान्त्यै च कारिता ॥४६१॥
ख्यातिं रणपुरस्वामिसंज्ञया सर्वतो गतम् । स सिंहरोत्सिकाग्रामे मार्तण्डं प्रत्यपादयत् ॥४६२॥
अमृतप्रभया तस्य राज्ञः पत्न्यान्यया कृतः । दक्षिणेऽस्मिन्रणेशस्य पार्श्वे देवोऽमृतेश्वरः ॥४६३॥
मेघवाहनभूभर्तृपत्न्या भिन्नाख्यया कृते । विहारेऽपि तया बुद्धबिम्बं साधु निवेशितम् ॥४६४॥
राज्ञे देव्यनुरक्ताय सानुक्रोशाय सैकदा । पातालसिद्धिदं मन्त्रं प्रददौ हाटकेश्वरम् ॥४६५॥

चारों सिद्धोंका स्मरण किया ॥ ४५० ॥ इस प्रकार उस देवीके स्मरण करते ही वे सिद्ध उसके समक्ष आ उपस्थित हुए और उसके आदेशानुसार उन विष्णु और शिवकी मूर्तियोंको मानसरोवरसे निकालकर उन्होंने राजभवनमें ला रक्खा ॥ ४५१ ॥ अगले दिन प्रातःकाल स्वर्गीय पुष्पोंसे पूजित विष्णु तथा शिवजीकी मूर्तियोंको देखकर लोग बड़े अचम्भेमें पड़ गये ॥४५२॥ राजा रणादित्य उच्च कोटिका शैव था। अतएव शुभ मुहूर्तमें उसने रणेश्वर नामके शिवलिंगकी स्थापनाका निश्चय किया था ॥ ४५३ ॥ उसी समय देवी रणारम्भाके प्रभावसे यंत्रका भेदन करके भगवान रणस्वामी उस सिंहासनपर विराजमान हो गये ॥ ४५४ ॥ उस मूर्तिके प्रभावको समझनेके लिए रानी रणारम्भाने मन्दिरको बहुतेरी सम्पदा समर्पित की। तब स्वयंभू रणस्वामीने स्वयं उसमेंसे बहुतेरे ग्राम अपने भक्तोंको दिला दिये ॥ ४५५ ॥ वहाँपर ब्रह्म नामका एक सिद्ध जल लानेवाले ब्राह्मणका धन्धा करता हुआ रहा करता था। उसे पहचानकर देवीने उसीके द्वारा उन दोनों मूर्तियोंकी स्थापना करायी ॥ ४५६ ॥ भगवान् रणेश्वर-की स्थापना करते ही अपनी सिद्धताका भेद खुल गया जानकर वह ब्राह्मण आकाशमार्गसे उड़ गया, किन्तु प्रच्छन्न रूपसे रणस्वामीकी भी प्रतिष्ठा उसने कर दी ॥ ४५७ ॥ उस सिद्धके विषयमें लोगोंकी ऐसी मान्यता है कि वह स्वयं वहाँ मूर्तिके रूपमें अवतीर्ण हुआ था। यह प्रवाद कश्मीरके नागरिकोंमें आज भी घर किये हुए है ॥ ४५८ ॥ तदनन्तर रानी रणारम्भाने ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ एवं सिद्ध उस ब्रह्मके उद्देश्यसे पुष्कल धन व्यय करके एक ब्रह्म-मण्डपका निर्माण कराया ॥ ४५९ ॥ इसी तरह राजा और रानी दोनोंने रणारम्भास्वामी तथा रणारम्भादेव नामके दो मन्दिर बनवाये और पाशुपत यतियोंके निवासार्थ प्रद्युम्नशिखरपर एक मठका भी निर्माण कराया ॥ ४६० ॥ उस नरेशने रोगियोंको नीरोग करनेके लिए आरोग्यशाला तथा भय शान्तिके निमित्त सेनामुखी देवीकी स्थापना की ॥ ४६१ ॥ सिंहरोत्सिका ग्राममें उसने रणस्वामीके नामसे विख्यात मार्तण्डमन्दिरका निर्माण कराया ॥ ४६२ ॥ राजा रणादित्यकी दूसरी पत्नी अमृतप्रभाने रणेश्वर भगवानकी दाहिनी ओर अमृतेश्वर शिवको स्थापित किया ॥ ४६३ ॥ उसी अमृतप्रभाने राजा मेघवाहनकी पत्नी भिन्नाके द्वारा निर्मित प्राचीन विहारमें बुद्धभगवानकी एक बहुत ही सुन्दर मूर्ति स्थापित की ॥ ४६४ ॥ राजा रणादित्यका रणारम्भा देवीपर अत्यधिक प्रेम था। अतएव देवीने अपना मिलन अन्वर्थ सिद्ध करनेके लिए पातालवासियोंपर भी राजाकी प्रभुता स्थापित

मा भून्मोघास्य मत्प्राप्तिरिति मत्वा तयार्पितम् । असाधयत्स तं प्राप्य वंशान्तं वत्सरान्बहून् ॥४६६॥
कृत्वेष्टिकापथे कष्टं तपो नन्दिशिलां गतः । भूरिभिंव सरैर्मन्त्रसिद्धेः प्रणयितां ययौ ॥४६७॥
स्वप्नैश्च सिद्धिलिंगैश्च जाताभङ्गुरनिश्चयः । चन्द्रभागाजलं भित्त्वा नमुचेः प्राविशद्बिलम् ॥४६८॥
बिलेपावृततां याते दिवसान्येकविंशतिम् । प्रविश्य पौरान्प्राङ्निन्ये दैत्यस्त्रीभोगभोगिताम् ॥४६९॥
एवं स भूपतिर्भुक्त्वा भुवं वर्षशतत्रयम् । निर्वाणश्लाघ्यनिर्व्यूढि पातालैश्वर्यमासदत् ॥४७०॥
सानुगे नृपतौ याते दैतेयदयितान्तिकम् । देवी सा वैष्णवी शक्तिः श्वेतद्वीपमगाहत ॥४७१॥
राजवंशेष्वनेकेषु राज्ञोर्वंशद्वये परम् । द्वयोरेवात्र निर्व्यूढिं प्रजावात्सल्यमागतम् ॥४७२॥
रणादित्यस्य गोनन्दवंशे रामस्य राघवे । लोकान्तरसुखस्यापि ययोरंशभुजः प्रजाः ॥४७३॥
विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृत्सुतः । तस्यासीद्विक्रमादित्यस्त्रिविक्रमपराक्रमः ॥४७४॥

राजा ब्रह्मगलूनाभ्यां सचिवाभ्यां समं महीम् ।
सोऽपासीद्वासवसमो द्वाचत्वारिंशतिं समाः ॥४७५॥

चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा गलूनो लूनदुष्कृतः । रत्नावल्याख्यया वध्वा विहारं निरमापयत् ॥४७६॥
राज्ञोऽनन्तरजस्तस्य राजाऽभूत्तदनन्तरम् । तापितारातिभूपालो बालादित्यो बलोर्जितः ॥४७७॥
लवणार्णवपानेन तर्षोत्कर्षमिवोद्वहन् । यत्प्रतापो रिपुस्त्रीणां सनेत्राम्भोजन्मुखम् ॥४७८॥
आसन्येऽरिमनोगाधबोधदण्डा इवाहृताः । यस्याद्यापि जयस्तम्भाः सन्ति ते पूर्ववारिधौ ॥४७९॥
प्रभावाङ्केन वङ्गालाञ्जित्वा येन व्यधीयत । काश्मीरिकनिवासाय कालम्ब्याख्यो जनाश्रयः ॥४८०॥

करनेके निमित्त हाटकेश्वर मंत्र प्रदान कर दिया ॥ ४६५ ॥ उसके द्वारा प्रदत्त मंत्र व्यर्थ न हो जाय, इसलिए राजा रणादित्यने भी उस मंत्रकी बहुत वर्षोंतक साधना की ॥ ४६६ ॥ सर्वप्रथम उसने इष्टिकापथमें जाकर कठोर तप किया। वहाँसे वह नन्दिशिला चला गया, जहाँ कई वर्ष रहकर उसने उस सिद्ध मंत्रका आनन्द लिया ॥ ४६७ ॥ विविध शुभ स्वप्नों एवं दैवी चमत्कारोंको देखकर वह दृढनिश्चयी राजा चन्द्रभागा नदीके प्रवाहका भेदन करके नमुचि दैत्यकी कन्दरामें जा पहुँचा ॥ ४६८ ॥ इस प्रकार उसकी गुफाका द्वार खुल जानेपर वह राजा अपने बहुतसे नागरिकोंको भी वहाँ ले गया और उनको वहाँकी बहुतेरी दैत्यसुन्दरियोंके साथ सम्भोग करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ ॥ ४६९ ॥ इस प्रकार राजा रणादित्यने पूरे तीन सौ वर्षतक कश्मीरपर राज्य किया और पाताललोकका भी ऐश्वर्य प्राप्त करनेके बाद परम धाम चला गया ॥ ४७० ॥ अनुयायियोंके साथ राजा रणादित्यके दैत्यसुन्दरियोंके सम्पर्कमें चले जानेपर वैष्णवीशक्तिस्वरूपा देवी रणारम्भा श्वेतद्वीपको चली गयी ॥ ४७१ ॥ पुरातन राजवंशोंमें केवल दो ही राजवंश श्रेष्ठ माने गये थे। पहला रघुवंश और दूसरा गोनन्दवंश। उनमें भी रघुवंशमें भगवान् राम तथा गोनन्दवंशमें राजा रणादित्य इन दोनोंने अपनी प्रजाको स्वर्गसुख प्राप्त करा दिया था। इसी कारण इन दोनोंका प्रजाप्रेम सारे संसारमें अनुपम माना गया है ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥ राजा रणादित्यके बाद विक्रमादित्य कश्मीरका शासक बना। उसने त्रिविक्रम अर्थात् विष्णुभगवान्के सदृश अपने अद्भुत पराक्रमसे समस्त विश्वपर अधिकार कर लिया और विक्रमेश्वर नामके शिवकी स्थापना की ॥ ४७४ ॥ इन्द्रके समान तेजस्वी उस राजाने ब्रह्म तथा गलून नामक दो मंत्रियोंके साथ बयालीस वर्षतक पृथ्वीपर राज्य किया ॥ ४७५ ॥ उसके ब्रह्म नामक मंत्रीने ब्रह्ममठ बनवाया और दूसरे मंत्री पुण्यात्मा गलूनने अपनी पत्नी रत्नावलीके नामपर एक विहारका निर्माण कराया ॥ ४७६ ॥ राजा विक्रमादित्यके बाद उसका छोटा भाई बालादित्य कश्मीरका शासक बना। उसके पराक्रमसे सभी शत्रु राजे काँपा करते थे ॥ ४७७ ॥ उस वीर बालादित्यका प्रताप खारे समुद्रका जल पीकर प्यास और भी अधिक बढ़ जानेपर शत्रुओंकी स्त्रियोंके आँसू भरे नेत्रोंवाले मुखोंपर विराजमान रहता था ॥ ४७८ ॥ उसके द्वारा निर्मित जयस्तम्भ विजित शत्रुओंके हार्दिक दुःखोंको नापनेवाले मापदण्डके समान आज भी पूर्वी समुद्रतटपर खड़े दिखायी देते हैं ॥ ४७९ ॥ उसने अपने प्रभावसे बंगालको जीतकर कश्मीरियोंके

कश्मीरेषु धनाढ्यमग्रहारं द्विजन्मनाम् । राजा मडवराज्ये यो भेडराख्यमकारयत् ॥४८१॥
विशां विपाटितारिष्टमरिष्टोत्सादने व्यधात् । वल्लभा यस्य विम्बोष्ठी बिम्बा विम्बेश्वरं हरम् ॥४८२॥
भ्रातरो मन्त्रिणस्तस्य त्रयो मठसुरौकसोः । सेतोश्च कारका आसन्खङ्खशत्रुघ्नमालवाः ॥४८३॥
बभूव तस्य भूभर्तुर्भुवनाद्भुतविभ्रमा । तनयाऽनङ्गलेखाख्या शृङ्गारोदधिकौमुदी ॥४८४॥
तां वीक्ष्य लक्षणोपेतां मृगाक्षीं पितुरन्तिके । अमोघप्रत्ययो व्यक्तं व्याजहारेति दैववित् ॥४८५॥
भविता तव जामाता जगतीभोगभाजनम् । त्वदन्तमेव साम्राज्यं गोनन्दान्वयजन्मनाम् ॥४८६॥
सुतासंतानसाम्राज्यमनिच्छन्नथ पार्थिवः । दैवं पुरुषकारेण जेतुमासीत्कृतोद्यमः ॥४८७॥
अराजान्वयिने दत्ता नेयं साम्राज्यहारिणी । मत्वेति प्रददौ कन्यां न कस्मैचन भूभुजे ॥४८८॥
हेतुं स रूपतामात्रं कृत्वा जामातरं नृपः । अथाश्वघासकायस्थं चक्रे दुर्लभवर्धनम् ॥४८९॥
मातुः कार्कोटनागेन सुस्नातायाः समीयुषा । राज्यायैव हि संजातो राज्ञा नाज्ञायि तेन सः ॥४९०॥
निश्चिन्वते हि ज्ञंमन्या यमेवायोग्यमाग्रहात् । जिगीषयेव तत्रैव निदधाति विधिः शुभम् ॥४९१॥
मात्सर्येण जहद्ग्रहान्विसदृशे धूमध्वजे योग्यतां ज्ञात्वा स्वां निदधन्विषं दिनपतिर्हास्यः प्रशान्त्युन्मुखः ।
दैवं वेत्ति न यः शिखी तु परतो नामास्तु तत्संभवाः स्युर्दीपा अपि यद्वशेन जगतस्तिग्मांशुविस्मारकाः ॥४९२
धिया भाग्यानुगामिन्या चेष्टमानो नयोचितम् । अभूत्सर्वस्य चक्षुष्यः स तु दुर्लभवर्धनः ॥४९३॥
प्रज्ञया द्योतमानं तं प्रज्ञादित्य इति प्रथाम् । कौबेरभाग्यस्वाम्यं च शनकैः श्वशुरोऽनयत् ॥४९४॥

निवासार्थ कालम्व्य नामका जनपद बसाया ॥ ४८० ॥ कश्मीरमें उसने मडवराज्यके अन्तर्गत भेडर नामका एक सुसमृद्ध अग्रहार ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ ४८१ ॥ बिम्बफल सदृश लाल होठोंवाली उसकी प्रियतमा पत्नी बिम्बाने अरिष्टोत्सादन नामक स्थानमें जनसाधारणका कष्ट दूर करनेके लिए बिम्बेश्वर शिवकी स्थापना की ॥ ४८२ ॥ खंख, शत्रुघ्न तथा मालव नामके भ्राता राजमंत्रियोंने भी अनेक मठ, मन्दिर तथा बाँधोंका निर्माण कराया ॥ ४८३ ॥ कुछ समय बाद उसके यहाँ अद्भुत विलासोंसे विभूषित तथा शृंगाररूपी समुद्रको तरंगित करनेवाली अनंगलेखा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४८४ ॥ एक दिन उस मृगनयनी तथा समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न कन्याको पिताके पास बैठी देखकर एक सत्यभाषी ज्योतिषीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—॥ ४८५ ॥ 'हे राजन्! गोनन्दवंशके साम्राज्यभोक्ता राजाओंमें आप अन्तिम राजा हैं। आपके बाद आपका जामाता इस राज्यका राजा होगा' ॥ ४८६ ॥ उस ज्योतिषीके वचन सुने तो अपना साम्राज्य कन्याके हाथोंमें जाना अनुचित समझकर उस राजाने भाग्यको पुरुषार्थसे जीतनेका निश्चय किया ॥ ४८७ ॥ तदनुसार उसने यह सोचकर कि 'यदि यह कन्या किसी राजवंशको न देकर किसी साधारण युवकको दे दी जाय तो इसे साम्राज्यका अधिकार नहीं प्राप्त हो सकेगा' और उसका किसी राजवंशके साथ विवाह नहीं किया ॥ ४८८ ॥ अत्यधिक सुन्दरताका समर्थन करते हुए उसने एक साधारण कुलमें उत्पन्न दुर्लभवर्धन नामके अश्वघास कायस्थके साथ अपनी कन्या व्याह दी ॥ ४८९ ॥ किन्तु राजाको यह नहीं मालूम था कि किसी समय स्नान करती हुई दुर्लभवर्धनकी माताके साथ कर्कोटक नागने भोग किया था और उसीके वीर्यसे दुर्लभवर्धनका जन्म राज्यसुख प्राप्त करनेके निमित्त ही हुआ था ॥ ४९० ॥ संसारमें प्रायः देखा जाता है कि अपनेको पण्डित समझनेवाले लोग जिसे अयोग्य समझ लेते हैं तो उन्हें मूर्ख साबित करनेके लिए दैव भी उस अयोग्य व्यक्तिको ही भाग्यवान् बना देता है ॥ ४९१ ॥ अस्ताचलोन्मुख सूर्य ईर्ष्यावश सब ग्रहोंका निरादर करके अपना तेज अग्निको सौंपकर संसारमें हास्यास्पद बनता है। क्योंकि उसे दैवकी महत्ताका ज्ञान नहीं रहता। आगे चलकर अग्निकी तो बात ही न्यारी रही, उसी अग्निसे उत्पन्न नन्हें-नन्हें दीपक भी अपने प्रकाशसे सूर्यको भुला देते हैं ॥ ४९२ ॥ कुछ ही दिनों बाद भाग्यानुसारिणी बुद्धिके अनुसार नैतिक मार्गमें चलता हुआ दुर्लभवर्धन लोकप्रियता प्राप्त करके सब लोगोंकी आँखकी पुतली बन गया ॥ ४९३ ॥ अपनी प्रतिभाके चमत्कारसे देदीप्यमान दुर्लभवर्धनको राजा बालादित्यने कुबेरके सदृश धनाढ्य बनाकर प्रज्ञादित्य

पित्रोः प्रेयस्तयोद्वृत्ता तारुण्यादिमदेन च । राजपुत्री यथावत्तु गणयामास नैव तम् ॥४९५॥
स्वैरिणीसंगमो भोगा युवानोऽग्रे पितुर्गृहम् । पत्युर्मृदुत्वमित्यस्याः किं नाभूच्छीलविघ्नकृत् ॥४९६॥
सा नित्यदर्शनाभ्यासाच्छनकैर्विशता मनः । अनङ्गलेखा खङ्खेन संप्रायुज्यत मन्त्रिणा ॥४९७॥
छन्नप्रेमसुखाभ्यासनष्टह्रीभीतिसंभ्रमा । धाष्टर्यं दिनादिनं यान्ती ततस्तन्मयतां ययौ ॥४९८॥
स मन्त्री दानमानाभ्यां वशीकृतपरिच्छदः । अन्तःपुरे यथाकामं विजहार तया सह ॥४९९॥
उपलेभे च शनकैस्तस्यास्तं शीलविप्लवम् । विरागलिङ्गैस्त्वद्भिर्धीमान्दुर्लभवर्धनः ॥५००॥
सखीमध्ये रहः स्मेरा विवर्णा भर्तृदर्शने । अकाण्ड एव प्रोत्थाय पश्यन्ती सस्मितं पथः ॥५०१॥
पत्युः कोपे कृतावज्ञा भ्रूनेत्रचिबुकाञ्चनैः । तदप्रियं भाषमाणे सस्मितं न्यस्तलोचना ॥५०२॥
तत्तुल्यगुणनिर्विण्णा तद्विपक्षस्तुतौ रता । रिरंसां तस्य संलक्ष्य सखीभिर्बद्धसंकथा ॥५०३॥
तच्चुम्बने भुग्नकण्ठी तदाश्लेषेऽसहाङ्गका । तत्संभोगे त्यक्तहर्षा तत्तल्पे व्याजनिद्रिता ॥५०४॥
भवेद्धि प्रायशो योषित्प्रेमविक्रीतचेतना ।
निवेदयन्ती दौःशील्यपिशाचावेशवैकृतम् ॥ कुलकम् ॥५०५॥
निगूढदारदौरात्म्यचिन्ताकृशवपुस्ततः । शुद्धान्तमविशज्जातु निशि दुर्लभवर्धनः ॥५०६॥
सोऽपश्यत्सुरतक्लान्तिसुलभस्वापनिःसहाम् । दुर्जारभर्तुरंगेषु प्रत्युप्तामिव वल्लभाम् ॥५०७॥
श्वासैरगलितावेगैः कम्पयद्भिः कुचांकुरौ । निवेदयन्तीं तत्कालमेव निर्वहणं रतेः ॥५०८॥

नामसे संसारमें प्रख्यात किया ॥ ४९४ ॥ माता-पिताके दुलार तथा यौवनके मदसे उन्मत्त राजपुत्री अनंगलेखा अपने पति दुर्लभवर्धनके साथ उचित व्यवहार नहीं करती थी ॥ ४९५ ॥ कुलटा स्त्रियोंका साथ, मनमाना भोग, युवकोंके साथ विशेष मेल-जोल, पिताके घर निवास एवं पतिका कोमल स्वभाव आदि दुर्गुण सदाचारसे च्युत करनेके लिए ये सभी सामग्रियाँ उस राजपुत्रीमें विद्यमान थीं ॥ ४९६ ॥ अतएव नित्य मिलन तथा परस्पर एक दूसरेके अवलोकन आदि कारणोंसे अनंगलेखा राजमंत्री खंखके साथ फँस गयी ॥ ४९७ ॥ इस प्रकार गुप्त-प्रेमका स्वाद मिल जानेपर वह एक कुलवन्ती कन्याके लिए उचित लज्जा-भय-संभ्रम आदि सद्गुण त्यागकर दिनो-दिन ढीठ होती-होती दुराचारिणी हो गयी ॥ ४९८ ॥ मंत्री खंख भी अपने प्रभाव तथा दान-मानसे अन्त पुरके सेवकोंको वशीभूत करके राजकन्याके साथ स्वच्छन्द विहार करने लगा ॥ ४९९ ॥ बुद्धिमान् दुर्लभवर्धनने भी उसके अनादरसूचक रूखे व्यवहारसे उसके पुंश्चली हो जानेकी बात जान ली थी ॥ ५०० ॥ वह एकान्तमें तो सखियोंके साथ मजेमें हँसती-बोलती थी, किन्तु पतिका सामना होते ही उदास हो जाती थी। तनिक ही देर बाद खड़ी होकर मुस्कुराती हुई मार्गकी ओर निहारने लगती थी ॥ ५०१ ॥ वह यदि कभी पतिको कुपित देखती तो उसकी अवहेलना कर देती थी। कभी-कभी पतिकी ओर ताकती हुई आँखों, भौहों तथा होंठोंसे बिचकाने लगती थी। यदि क्रोधमें आकर पति कुछ भला-बुरा कहने लगता तो वह ठठाकर हँस पड़ती थी ॥ ५०२ ॥ पतिके समान गुणी लोगोंसे वह कतराती थी, उसके प्रतिद्वन्द्वियोंकी प्रशंसाको बड़े चावसे सुनती थी और पतिके रमण करनेकी इच्छा देखकर उधरसे ध्यान हटाती हुई सखियोंसे बात करने लग जाती थी ॥ ५०३ ॥ पति जब चुम्बन करना चाहता था, तब वह मुँह फेर लेती थी। वह आलिंगन करता तो अपने शरीरको शिथिल कर देती थी। समागमके समय अनमनी हो जाती और उसकी शय्यापर जाकर नींदका बहाना करने लगती थी ॥ ५०४ ॥ प्रायः देखा जाता है कि प्रेमके मूल्यपर अपना तन यारके हाथों बेच देनेवाली कुलटाओंके शरीरमें रहनेवाली अनीतिरूपिणी पिशाचिनीका कुकृत्य छिपा नहीं रह जाता ॥ ५०५ ॥ राजपुत्री अनंगलेखाके उन प्रच्छन्न दुराचारोंकी चिन्तासे धीरे-धीरे दुर्लभवर्धनका शरीर दुर्बल होने लगा। एक दिन वह एकाएक अपने अन्तःपुरमें जा पहुँचा ॥ ५०६ ॥ वहाँ उसने देखा कि विविध प्रकारकी रति करनेके पश्चात् अनंगलेखा खंखके शरीरके लिपटकर सोयी हुई है ॥ ५०७ ॥ श्वासके वेगसे उसके कुचका अग्रभाग काँप रहा था, जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि वह

अन्यस्यापि क्रुधो हेतुं पुनरप्यक्षमावहाम् । तां तथावस्थितां वीक्ष्य स प्रजज्वाल मन्युना ॥५०९॥
अजिहीर्षुः स रोषेण विमर्शेन निवारितः । प्रहृत्येव प्रहृत्येव निवृत्तं स्वममन्यत ॥५१०॥
ततस्तथाविधः क्षुभ्यत्प्रकोपावेशसागरः । विचारवेलया तस्य बलाच्छममनीयत ॥५११॥
नमस्तस्मै ततः कोऽन्यो गण्यते वशिनां धुरि । जीर्यन्ते येन पर्याप्ता ईर्ष्याविषविषूचिकाः ॥५१२॥
सोऽचिंतयदहो कष्टाश्चेष्टारागानुगा इमाः । विचारवन्ध्याः क्षिप्यंते क्षिप्रं याभिरधो नराः ॥५१३॥
स्त्रीति नामेन्द्रियार्थोऽयमिन्द्रियार्था यथापरे । तथैव सर्वसामान्या वशिनामत्र काः क्रुधः ॥५१४॥
निसर्गतरला नारीः को नियन्त्रयितुं क्षमः । नियंत्रणेन किं वा स्याद्यत्सतां स्मरणोचितम् ॥५१५॥
यः शुनोरिव संघर्ष एकार्थाभिनिविष्टयोः । रागिणोर्यदि मानः स कोऽवमानस्ततः परः ॥५१६॥
ममकारो मृगाक्षीषु क इवायं सचेतसाम् । स्वदेहेऽनुपपन्नोऽपि यः सोऽन्यत्र कथं मतः ॥५१७॥
उद्वेगोत्पादनादेषा वध्या चेत्प्रतिभाति मे । रागस्तद्विस्मृतः कस्मान्मूलमुद्वेगशाखिनः ॥५१८॥
सप्तपातालनिक्षिप्तमूलो रागमहीरुहः । भूमिभूतमनुत्पाट्य द्वेषमुन्मूल्यते कथम् ॥५१९॥
द्वेषो नामैष दुर्धर्षो जितो येन विवेकिना । क्षणार्धेनैव रागस्य तेन नामापि नाशितम् ॥५२०॥
वीक्ष्यैतद्दिव्यया दृष्ट्या रागिणां वाच्यमौषधम् । ईर्ष्या जेया ततो रागः स्वयमाशाः पलायते ॥५२१॥
इति ध्यात्वाऽलिखद्दर्पान्खङ्गस्यांशुकपल्लवे । वध्योऽपि न हतो यत्त्वं स्मर्तव्यं तत्तवेत्यसौ ॥५२२॥

अभी-अभी रतिकार्यसे निवृत्त हुई है ॥ ५०८ ॥ ऐसी परिस्थितिमें किसी उदासीन पुरुषको भी क्रोध आये बिना नहीं रह सकता था, तब वह कैसे क्षमा करता। उस दुराचारमयी स्थितिको देखकर दुर्लभवर्धन मारे क्रोधके लाल हो उठा ॥५०९॥ अतएव म्यानसे तलवार निकालकर वह उसपर प्रहारकर देनेको उद्यत हो गया, किन्तु उसके विवेकने ऐसा नहीं करने दिया। इस प्रकार कईबार उसने प्रहार करनेकी इच्छा की, किन्तु विवेकके कारण वह वैसा नहीं ही कर सका ॥५१०॥ इस तरह उसके बढ़े हुए क्रोधके समुद्रको विवेकरूपी तटने बरबस रोक लिया ॥५११॥ ऐसे महापुरुष-को प्रणाम है। उस मनुष्यसे बढकर जितेन्द्रिय और कौन हो सकता है, जिसने ईर्ष्याविषरूपिणी विषूचिका (हैजे) पचा लिया हो ॥ ५१२ ॥ उसने मन ही मन सोचा कि विकारोंसे अनुराग रखनेवाली ये स्त्रियाँ कितनी नीच होती हैं कि विवेकसे इनका कोई सरोकार ही नहीं रहता और इन्हींके कारण पुरुषोंका भी पतन हो जाता है ॥५१३॥ अन्यान्य प्रकारके इन्द्रियभोग्य विषयोंके समान ही स्त्री भी एक इन्द्रियका भोज्य विषय है। इसी कारण संयमी पुरुष इनके ऊपर क्रोध नहीं किया करते ॥ ५१४ ॥ स्वभावतः चंचल स्त्रीजातिका नियंत्रण भला कौन कर सकता है? और फिर इनका नियंत्रण करनेपर सज्जन पुरुषोंको ऐसा कौन-सा लाभ हो जायगा कि जिसे वे स्मरण कर सकें ॥ ५१५ ॥ किसी एक कुतियाके पीछे-पीछे दौड़नेवाले कुत्तोंके समान एक स्त्रीपर आसक्त दो पुरुषोंकी आपसी संघर्षको यदि मान कहा जाय तो अपमान किसे कहा जायगा? ॥ ५१६ ॥ सहृदय एवं ज्ञानी पुरुषके मनमें इन मृगनयनियोंके प्रति ममता अथवा स्नेह ही क्यों उत्पन्न होगा? जब अपनी देहपर भी उनकी ममता नहीं होती, तब औरोंपर होना तो बड़ी दूरकी बात है ॥ ५१७ ॥ उद्वेगके आवेशमें आकर मैं इसे वध्य समझता हूँ, परन्तु उद्वेगके मूल कारण रागको भी तो मुझे नहीं भूलना चाहिए ॥ ५१८ ॥ इस राग अथवा प्रेमरूपी वृक्षकी जड़ सात पातालोंको भेदकर नीचे तक चली जाती है, उसका उन्मूलन करनेके लिए उसके आधारस्वरूप द्वेषका विनाश अत्यन्त आवश्यक हो जाता है ॥ ५१९ ॥ जो विवेकवान् पुरुष अपने विवेकबलसे इस द्वेषरूपी दुर्धर्ष शत्रुको परास्त कर देता है, वह आधे क्षणमें ही राग (आसक्ति) को भी नष्ट कर सकता है ॥ ५२० ॥ प्रेमियोंके लिए इस अचूक औषधिको दिव्य दृष्टिसे देखकर इसके द्वारा सर्व प्रथम ईर्ष्याको और उसके बाद रागको जो मनुष्य जीत लेता है तो आशायें स्वतः समाप्त हो जाती हैं ॥ ५२१ ॥ ऐसा विचार करके उसने खंखके वस्त्रकी छोरपर लिखा—'खंख! यद्यपि तू वध कर देने योग्य प्राणी है। फिर भी दयावश मैं तुझे नहीं मार रहा हूँ'। उसके बाद वह चुपचाप वहाँसे चला आया

जनैरलक्ष्यमाणेऽथ याते दुर्लभवर्धने । त्यक्तनिद्रः स मन्त्री तद्दृष्ट्वा वर्णानवाचयत् ॥५२३॥
दाक्षिण्यात्प्राणदस्यास्य खङ्खः स मनसा तदा । विसस्मारानङ्गलेखां दध्यौ तु प्रत्युपक्रियाम् ॥५२४॥

तस्योपकर्तुरुचितं प्रतिकारमिच्छोश्चिन्ताऽविशन्न तु मनः स्मरवाणपंक्तिः ।
दृग्गोचरे परिचयप्रणयं प्रपेदे निर्निद्रता न तु कदाचन राजपुत्री ॥५२५॥
भूत्वा सप्तत्रिंशतिमब्दान्स चतुर्भिर्मासैर्यन्ध्यां मूर्धनि रत्नं नृपतीनाम् ।
तस्मिन्काले लोकमवापोज्ज्वलकृत्यो बालादित्यो बालशशाङ्काङ्कितमौलेः ॥५२६॥
पूर्वं विपन्नतनयोऽभिजनस्य शेषे गोनन्दसंततिरजायत तत्र शान्ते ।
प्राग्दन्तिभुग्ननलिनाऽथ हठप्रविष्टतोयौघपाटितबिसा नलिनीव दीना ॥५२७॥
अथ शिथिलितमुख्यामात्यवैमत्यविघ्नः कनकघटविमुक्तैः पावनं तीर्थतोयैः ।
कथमपि स कृतज्ञो राजजामातुरुच्चैर्व्यधित विधिवदिष्टं मूर्ध्निराज्याभिषेकम् ॥५२८॥

काकोंटप्रभवः प्रभुः स मुकुटप्रत्युप्तमुक्ताकिरणद्योतश्रेणिफणाङ्कुराङ्कितबृहद्बाहुर्महीमुद्वहन् ।
ज्ञातिप्रीतिसतोपऽफणभृत्संफुल्लदृक्पल्लवन्यासावर्जकहाटकाब्जपटलस्रग्धामशोऽभवत् ॥५२९॥
अथ विगलिता गोनंदोर्वीभुजोभिजनाच्छुचेरतिशुचिनि भूः कार्कोटाहेः कुले व्यधित स्थितिम् ।
चिरपरिचितात्स्वर्गाभोगाध्वनः पतनं श्रिता त्रिभुवनगुरोः शंभोर्मौलाविवामरनिम्नगा ॥५३०॥

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यश्रीचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां तृतीयस्तरङ्गः ॥३॥



॥ ५२२ ॥ इस प्रकार चुपकेसे दुर्लभवर्धनके चले जानेपर जब खंख जागा, तब उसके लिखित वाक्यको पढ़कर सोचा—॥ ५२३ ॥ 'आज उस उदार पुरुषकी उदारतासे ही मैं जीवित बचा हूँ'। उसी समय वह अनंगलेखाको भूल गया और उसके मनमें दुर्लभवर्धनके उस महान् उपकारका बदला चुकानेकी भावना जागृत हो गयी ॥ ५२४ ॥ उसी दिनसे खंखका मन केवल समुचित प्रतीकारकी ही बात सोचने लगा, उसमें अब कामदेवके बाणोंको प्रविष्ट होनेका अवकाश नहीं रह गया था। अब उसकी आँखें निर्निद्रतासे व्याप्त रहा करती थीं, राजपुत्री अनंगलेखासे नहीं ॥ ५२५ ॥ इस प्रकार उदात्तकर्मा बालादित्य छत्तीस वर्ष चार महीने राज्य करके अपने पुण्यबलसे कैलासनिवासी तथा बालचन्द्रधारी शंकर भगवान्‌के चरणोंमें जा पहुँचा ॥ ५२६ ॥ कश्मीरके गोनन्दवंशका वह अन्तिम राजा था। उसके निकटसम्बन्धियोंके यहाँ पहले ही पुरुष-परम्परा समाप्त हो चुकी थी। जैसे किसी सरोवरमें कोई मतवाला हाथी उतरकर कमलोंको नष्ट कर दे और उसके बाद बाढ आनेसे मृणालनाल एवं कमलकन्द भी नष्ट हो जानेपर कमलिनी दुखिया हो उठे, उसी प्रकार वह गोनन्दवंश भी परम दुःखद स्थितिमें जा पहुँचा था ॥ ५२७ ॥ तदनन्तर प्रत्युपकारकी प्रबल आकांक्षा-से प्रेरित होकर मंत्री खंखने अपने बुद्धिबलसे मुख्यमंत्री आदि अन्यान्य मंत्रियोंका मतभेद दूर करके राजजामाता दुर्लभवर्धनको राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया और उसके मस्तकपर विधिवत् अभिषेकका जल डाला गया ॥ ५२८ ॥ कर्कोटक नागके वंशमें उत्पन्न, मुकुटमें जटित मोतियोंकी किरणोंसे देदीप्यमान फणाकुरके सदृश सुन्दर एवं विशालबाहुयुगलसे विभूषित राजा दुर्लबर्धन अपने एक वंशजके राज्यप्राप्तिसे प्रसन्न भगवान् शेषनागके हर्षोत्फुल्ल दो हजार नेत्रपल्लवोंके समूहकी स्वर्णकमल द्वारा निर्मित माला पहननेपर वह बहुत ही शोभायमान होने लगा ॥ ५२९ ॥ जिस तरह गंगाजीने स्वर्गमार्गका परित्याग करके त्रिलोका-धिपति भगवान् शंकरके जटाजूटको अपना आश्रय बनाया था। उसी प्रकार उस समय कश्मीरकी भूमिने पुनीत गोनन्दवंशको छोड़कर परम पवित्र कर्कोटक नागवंशको अपना आश्रय बनाया ॥ ५३० ॥

काश्मीरिक महामात्य चम्पक प्रभुके पुत्र महाकवि कल्हणरचित राजतरंगिणीका तृतीयतरंग समाप्त ॥ ३ ॥

इस तरंगमें १० राजाओंके ५३६ वर्ष तकके राज्यकालका विवरण बताया गया है।



अथ चतुर्थस्तरङ्गः ।

तद्वित्तव्यतिरेकमद्रितनयादेहेन मिश्रीभवन्निष्प्रत्यूहमिह व्यपोहतु वपुः स्थाणोरभद्राणि वः ।
वेण्या भोगिवधूशरीरकुटिलश्यामत्विषा वेष्टिता जूटाहेरपि यत्र भाति दयितामूर्त्येव पृक्ता तनुः ॥१॥
स महीं राजकन्यां च प्राप्तवानेकतः कुलात् । रत्नानां च सुतानां च राजाऽभूद्भाजनं शनैः ॥२॥
पतिगोपितदौःशील्या तुल्यसौभाग्यगौरवा । अनङ्गभवनं चक्रे विहारं नृपतिप्रिया ॥३॥
शिशुरेवाल्पायुष्ट्वं दैवज्ञोक्तं विचिन्तयन् । राज्ञः सुतो मल्हणाख्यो मल्हणस्वामिनं व्यधात् ॥४॥
पारेविशोककोटादौ प्रदत्तप्रतिपत्तिना । अदीयत द्विजेन्द्रेभ्यश्चन्द्रग्रामः क्षमाभुजा ॥ ५ ॥
श्रीनगर्यां प्रतिष्ठाप्य दुर्लभस्वामिनं हरिम् । षट्त्रिंशता स वर्षाणां क्ष्माधिपोऽस्तमुपाययौ ॥ ६ ॥
अनङ्गदेव्यां संभूतस्तस्य दुर्लभकः सुतः । शशास वासवसमस्ततो वसुमतीं कृती ॥ ७ ॥
मातामहस्य यो मात्रा दौहित्रस्तनयीकृता । प्रतापादित्य इत्याख्यां तत्कुलानुगुणां दधे ॥ ८ ॥
औडैनैडविडात्प्राप्तश्रिया यन्मन्त्रिणा कृताः । अग्रहारा हनुमता पुण्यानुमतसंपदा ॥ ९ ॥
प्रतापतापितारातिः प्रतापपुरपत्तनम् । मघवन्नगरस्पर्धि दीर्घबाहुर्व्यधत्त सः ॥१०॥
नानादिगन्तरायाततत्तत्क्रयिकसंकुले । नोणाभिधोऽवसत्तस्य देशे रौहीतको वणिक् ॥११॥
रौहीतदेशे जातानां निवेशाय द्विजन्मनाम् । महागुणो नोणमठं पुण्यज्येष्ठं चकार सः ॥१२॥
स जातु राजभवने राज्ञा प्रीत्या निमन्त्रितः । अर्चितोऽभवदेकाहमुपचारैर्नृपोचितैः ॥१३॥

भगवती पार्वतीके आधे अंगसे युक्त, निर्विघ्न, सिद्धिदायक तथा त्रिकालाबाधित भगवान् शंकरका यह शरीर आपके अकल्याणोंको दूर करे, जिसमें नागिनकी देहके समान कुटिल (टेढ़ी) तथा श्यामल कान्तिसम्पन्न केशके लटोंसे आवेष्टित जटाजूटमें बैठे सर्पका शरीर भी अर्धाङ्गिनी युक्त दीख रहा है ॥ १ ॥ उस राजा दुर्लभवर्धनने एक ही गोनन्दवंशसे राजकन्या तथा पृथिवी दोनों प्राप्त की थी। आगे चलकर धीरे-धीरे उन दोनोंके संयोगसे उसे विविध रत्नों तथा पुत्रोंकी भी प्राप्ति हुई ॥ २ ॥ उस राजाने अपनी पत्नी अनंगलेखाके अवगुणोंकी कहीं तनिक भी चर्चा नहीं की। अतएव उस रानीकी प्रतिष्ठा तथा सौभाग्य दोनों बढ़े और उसने अनंगभवन नामके विहारका निर्माण कराया ॥ ३ ॥ ज्योतिषियोंने उस राजाके पुत्र मल्हणको अल्पायु बताया था। अतएव बहुत थोड़ी उम्रमें ही उस पुत्रने एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें मल्हण स्वामीकी स्थापना कर दी ॥ ४ ॥ राजा दुर्लभवर्धनने अनेक प्रतिष्ठित ब्राह्मणोंका सत्कार करके परिविशोक दुर्गके पार्श्ववर्ती चन्द्रग्राम आदि अनेक गाँव उन्हें दिये ॥ ५ ॥ श्रीनगरमें भी उसने दुर्लभस्वामी नामकी विष्णुमूर्ति स्थापित की। इस तरह पूरे छत्तीस वर्ष तक पृथिवीका शासन करके वह राजा परमधाम चला गया ॥ ६ ॥ तदनन्तर अनंगलेखाकी कोखसे उत्पन्न तथा देवराज इन्द्रके समान प्रभावशाली पुत्र दुर्लभक कश्मीरके राजसिंहासनपर बैठा ॥ ७ ॥ अनंगलेखाने उसे, अपना दौहित्र मानकर बालादित्यका उत्तराधिकारी बनाया था। अतएव समयानुसार उसका प्रतापादित्य नाम पड़ा ॥ ८ ॥ ऊडतनय हनुमान नामक उसके मंत्रीने कुबेरसे प्राप्त धन द्वारा पुण्यप्राप्त्यर्थ बहुतेरे अग्रहार स्थापित किये ॥ ९ ॥ उस विशालबाहु तथा अपने प्रतापसे शत्रुओंको समाप्त करनेवाले प्रतापादित्यने इन्द्रकी अमरावतीपुरीसे होड़ करनेवाला प्रतापपुर नामका एक बहुत बड़ा नगर बसाया ॥ १० ॥ उस नगरमें अनेक देशोंके बहुतसे व्यापारी नानाप्रकारके क्रय-विक्रयका व्यापार करते हुए रहा करते थे। उन्हींमें रोहितदेशवासी नोण नामका एक वैश्य भी रहता था ॥ ११ ॥ सो उस महागुणवान् सेठने रोहितदेशनिवासी ब्राह्मणोंके निवासार्थ एक उत्तम-कोटिका मठ बनवाया ॥ १२ ॥ एक बार राजा प्रतापादित्यने बड़े आदरपूर्वक उसे अपने भवनमें बुलवाया

प्रातः सुखासिकां प्रेम्णा पृष्टोऽथ पृथिवीभुजा । शीर्षव्यथामकथयत्प्रजातां दीपकज्जलैः ॥१४॥
ततः क्रमेण नृपतिस्तेन जातु कृतार्थनः । वसंस्तदास्पदेऽद्राक्षीत्क्षपायां मणिदीपकान् ॥१५॥
विलासित्वेन लक्ष्म्या च तादृश्या तस्य विस्मितः । अथ द्वित्राण्यहान्यासीत्तत्रैव स कृतार्हणः ॥१६॥
एकदा तेन तत्कान्ता व्यलोकि ललिताकृतिः । श्रीनरेन्द्रप्रभा नाम हर्म्ये हिमकरानना ॥१७॥
उरोजपूर्णकुम्भाङ्का सदूर्वाहितविभ्रमा । मूर्तिमन्मङ्गलमिव स्मरस्य च गृहस्य च ॥१८॥
हर्म्यस्य निर्जनतया स निःशङ्कविहारिणीम् । तां विलोक्यानवद्याङ्गीमभिलापेण पस्पृशे ॥१९॥
साऽपि दर्शितमालीभिः किंचित्साचीकृतानना । अपश्यत्काश्यपीकान्तं श्रोत्रविश्रान्तया दृशा ॥२०॥
प्राग्जन्मप्रेमबन्धाद्वा निदेशाद्वा मनोभुवः । सपक्षपातं सा तस्य दृष्टैव विदधे मनः ॥२१॥
क्षणादलब्धस्पर्शोऽपि तां सौभाग्यसुधामयीम् । मज्जानमपि संस्पृश्य स्थितामिव विवेद सः ॥२२॥
हर्म्यस्तम्भच्छन्नगात्री क्षणं भूत्वा जगाम सा । व्यावर्त्य वक्त्रं पश्यन्ती पार्थिवं तं मुहुर्मुहुः ॥२३॥
गृहीतहृदयस्तन्व्यास्तावतैव महीपतिः । स चिन्ताजिह्मनयनो राजधानीं शनैर्ययौ ॥२४॥
तत्र तस्य तदाकारध्यानावहितचक्षुषः । सममन्तःपुरप्रीत्या प्रपेदे तानवं तनुः ॥२५॥
अचिन्तयत्स धिक्कष्टं रूढोऽयमशुभावहः । अस्मिन्मे मानसोद्याने रागनामा विषद्रुमः ॥२६॥
अहो नु सुभगा रागवृत्तिश्चित्तं विजित्य या । विवेकादीन्व्यधाद्दूरे सुहृदः परिपन्थकान् ॥२७॥
भाव्यं कौलीनभीतेन येन भूमिभृता सता । तस्य मे दुःसहः कोऽयं सदाचारविपर्ययः ॥२८॥

और राजोचित आतिथ्य करके एक दिन उसको अपने ही यहाँ रख लिया ॥ १३ ॥ दूसरे दिन सवेरे राजाने बड़े प्रेमपूर्वक पूछा—'कहिए शेठजी, रात तो सानन्द बीती ?' वैश्यने कहा—'राजन् ! दीपकोंके काजलसे रातभर मेरा सिर दुखता रहा' ॥ १४ ॥ कुछ समय बाद एक दिन उस वैश्यने राजाको अपने घर बुलाया। उसके यहाँ रात्रिके समय राजाने रत्नमय दीपक जलते देखे ॥ १५ ॥ उस शेठकी विलासिता तथा उसका अपार वैभव देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। इसके बाद उसके द्वारा सत्कृत होता हुआ राजा दो-तीन दिन वहाँ ही रह गया ॥ १६ ॥ वहाँ रहते समय राजाने एक बार सहसा चन्द्रमाके सदृश मुखवाली तथा अत्यन्त सुन्दरी उस शेठकी पत्नी नरेन्द्रप्रभाको देख लिया ॥ १७ ॥ स्तनरूपी कलशद्वयसे युक्त एवं मनोहर जाँघोंसे सुशोभित वह सुन्दरी उस घर तथा कामदेवके लिए दूर्वाङ्कुर एवं रमणीय कलशयुक्त मूर्तिमान् मंगलके समान देदीप्यमान हो रही थी ॥ १८ ॥ उस समय उस भव्य भवनमें और कोई नहीं था, इसलिए वह निःशंक होकर विचर रही थी। उस सुन्दरीको देखते ही वह राजा उसपर मोहित हो गया ॥ १९ ॥ उसी समय उसकी सखीने दिखाया, तब कानोंतक आँखें फैलाकर बड़े कौतूहलके साथ उस सुन्दरीने भी राजाको देखा ॥ २० ॥ पूर्वजन्मके प्रेमबन्धन या कामदेवके आदेशसे उस सुनयनीने केवल एक बार निहारकर ही राजाका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया ॥ २१ ॥ अब उसका स्पर्श पाये विना ही राजा सौभाग्यसुधामयी सुन्दरीके आलिंगनका भ्रमात्मक आनन्द लेने लगा ॥२२॥ उसी समय खम्भेकी आड़में अपना शरीर छिपा और मुँह तनिक-सा घुमाकर राजाको पुनः पुनः निहारती हुई वह सुन्दरी वहाँसे चली गयी ॥२३॥ उस नारीने इस थोड़ेसे विलाससे ही राजाका मन हर लिया और राजा उसे अपना हृदय देकर चिन्ताके कारण अलसाये नेत्र लिये हुए अपने महलोंको चला गया ॥ २४ ॥ वहाँ वह रात-दिन उस सुन्दरीकी ही आकृतिका ध्यान करता रहता था। अतएव अन्तःपुरकी सुन्दरियोंके प्रेमके साथ-साथ उस राजाका शरीर भी दुर्बल होने लगा ॥ २५ ॥ राजाने सोचा—'धिक्-धिक्, यह दुःखकी बात है कि मेरे पुनीत मानस उद्यानमें यह प्रेमरूपी अपवित्र विषवृक्ष उग आया है ॥२६॥ इस विस्मयकारिणी रागात्मिका वृत्तिने मेरे अन्तःकरणकी विचारधाराके सहायक विवेक आदि अच्छे गुणोंको हृदयसे निकालकर दूर फेंक दिया है ॥ २७ ॥ राजा होते हुए भी आजतक मैंने सभी तरहके सभ्यताविरोधी दुर्विचारोंका कभी स्पर्शतक नहीं किया है। क्योंकि मैं उनसे डरता हूँ। तब मेरे मनमें ऐसी दुःसह और सदाचारके विपरीत भावनायें क्यों घर कर

यत्र दारापहरणं राजैव कुरुते विशाम् । परः को नाम तत्रास्तु शासिता नीत्यतिक्रमे ॥२९॥
विमृश्यन्निति भूपालो विस्मर्तुमभवत्क्षमः ! न पद्धतिं साधुसेव्यां न च तां दीर्घलोचनाम् ॥३०॥
तमथ प्रथितास्वास्थ्यं नेदीयोमरणं वणिक् । स जनाज्ज्ञातवृत्तान्तः सुजनो विजनेऽब्रवीत् ॥३१॥
इमामवस्थां प्राप्तोऽसि किं धर्मेण निरुध्यसे । न प्राणसंशये जन्तोरकृत्यं नाम किंचन ॥३२॥
यन्मतानि प्रतीक्ष्यन्ते विबुधैर्धर्मसंशये । तेषामपीदृशे कृत्ये श्रूयते संयमव्ययः ॥३३॥
यशोऽनुरोधादुचितं नापि देहमुपेक्षितुम् । स्वकीर्तिर्न परासूनां कीर्णा कर्णरसायना ॥३४॥
माभून्मदनुरोधस्ते त्वत्प्रियार्थं हि पार्थिव । प्राणा अपि न मे गण्या इन्द्रियार्थेषु का कथा ॥३५॥
एवमुक्तोऽपि नादत्से तां चेत्तत्सा सुरास्पदात् । गृह्यतां नर्तकी भूत्वा नृत्तज्ञत्वान्मयार्पिता ॥३६॥
तेनेति प्रेर्यमाणः स बलिना च मनोभुवा । प्राग्लज्जामथ जग्राह कथंचित्तां सुलोचनाम् ॥३७॥
कृत्यैरुदात्तैः सापास्ततादृक्चारित्रलाघवा । नरेन्द्रमहिषी चक्रे श्रीनरेन्द्रेश्वरं हरम् ॥३८॥
क्रमेण च प्रजापुण्यैश्चन्द्रापीडाभिधं सुतम् । प्रासोष्ट पार्थिववधूर्निधानमिव मेदिनी ॥३९॥
तस्याभिजनमालिन्यं स्वच्छैरच्छेदि तद्गुणैः । शाणाश्मकषणैः काष्र्ण्यमाकरोत्थं मणेरिव ॥४०॥
धूमाद्गाढमलीमसाच्छुचि पयः सूते घनस्योद्गमो लोहस्यातिशितस्य जातिरचलात्कुण्ठाश्ममालाभयात् ।
किंचात्यन्तजडाज्जलाद्युतिमतो ज्वालाध्वजस्योद्भवो जन्मावन्यनुकारिणो न महतां सत्यं स्वभावाः क्वचित् ॥
तारापीडोऽपि तनयः क्रमात्तस्यामजायत । अविमुक्तापीडनामा मुक्तापीडोऽपि भूपतेः ॥४२॥

रही है ॥ २८ ॥ यदि राजा ही प्रजाजनोंकी स्त्रियोंका अपहरण करने लगेगा, तब परदारगामी दुष्टोंपर शासन कौन करेगा ?' ॥ २९ ॥ इस प्रकार बार-बार सोच करके भी वह राजा न सदाचारको भूल पाता था और न वह विशालनयनी सुन्दरी ही उसके ध्यानसे उतरती थी ॥ ३० ॥ तदनन्तर लोगोंसे मरणासन्न राजाकी अस्वस्थताका कारण जानकर वह परम सज्जन शेठ नोण भी उसे देखने गया और एकान्तमें राजासे कहने लगा—॥ ३१ ॥ 'महाराज ! आपकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी है । ऐसी स्थितिमें आपको धर्म-अधर्मके झमेलेमें नहीं पड़ना चाहिए । क्योंकि प्राणसंकटके समय किया गया कोई भी कर्म अधर्म नहीं कहलाता ॥ ३२ ॥ बड़े-बड़े जिन संयमी महापुरुषोंको लोग प्रमाण मानते हैं, उन लोगोंको भी संकटके समय संयम त्यागते देखा गया है ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! अपने यशकी रक्षाके लिए भी इस प्रकार देहकी उपेक्षा करना उचित नहीं है । क्योंकि जो लोग मर जाते हैं, वे वह श्रुतिमधुर यश भी तो नहीं सुन सकते ॥ ३४ ॥ मेरे विषयमें शंकित होकर आप अपने हितसे मुँह न मोड़िए । आपका कल्याण करनेके लिए मैं अपने प्राणोंको भी महत्त्व नहीं देता, तब इन्द्रियभोग्य किसी पदार्थके विषयमें क्या कहना ॥ ३५ ॥ मेरे इतना कहनेपर भी यदि आप मेरी पत्नीको अंगीकार नहीं करना चाहते तो मैं उसे देवमन्दिरमें नृत्यगायनके लिए देवदासीके रूपमें अर्पण कर दूँगा और वहाँसे आप उसे ले आइएगा' ॥ ३६ ॥ उस सज्जन वैश्यके आग्रह तथा कामदेवकी प्रबल प्रेरणासे राजा पहले तो कुछ लज्जित हुआ, किन्तु उसके विशेष आग्रह करनेपर उसने किसी-किसी तरह उस सुनयनीको स्वीकार कर लिया ॥ ३७ ॥ यद्यपि इस कार्यसे नरेन्द्रप्रभाका चरित्र कुछ कलंकित हुआ, किन्तु उसने अपने औदार्य आदि सद्गुणोंके प्रभावसे उस कलंकको धो डाला और नरेन्द्रेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ३८ ॥ तदनन्तर कुछ समय बाद जैसे धरतीसे बहुमूल्य रत्ननिधि प्राप्त होती है, वैसे ही प्रजाजनोंके पुण्यप्रतापसे राजरानी नरेन्द्रप्रभाने चन्द्रापीड नामक पुत्ररत्नको जन्म दिया ॥ ३९ ॥ जैसे खानसे निकला हुआ रत्न सानपर चढाकर घिसनेसे स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार उस बालकका जन्मविषयक दोष भी उसके सुन्दर गुणोंसे नष्ट हो गया ॥ ४० ॥ जैसे अतिशय मलिन धुएँसे घने काले-काले बादल निर्मल जल बरसाते हैं, टेढी-मेंढ़ी चट्टानोंसे भरे पर्वतसे तीक्ष्ण लौह निकलता है और अत्यन्त जड़ तथा शीतल जलसे धधकता हुआ बडवानल जायमान होता है । वैसे ही श्रेष्ठ तथा भाग्यवान पुरुषोंके स्वभाव अपने उत्पत्तिस्थानका अवलम्बन नहीं करते ॥ ४१ ॥ आगे चलकर क्रमशः

वज्रादित्योदयादित्यललितादित्यसंज्ञकाः । प्रतापादित्यजाः ख्याताश्चन्द्रापीडादयोऽपि ते ॥४३॥
वर्षान्पञ्चाशतं भुक्त्वा भुवं दुर्लभभूपतिः । पुण्यनिःश्रेणिभिः पुण्यामारुरोह दिवं शनैः ॥४४॥
राजचूडामणिः श्रीमांश्चन्द्रापीडस्ततोऽभवत् । पीडितेन्दुत्विषा कीर्त्या कलेः पीडां चकार यः ॥४५॥
एकपादाकृतिर्धर्मः समस्यैवोज्झितो नृपैः । शुद्धश्लोककृता येन पादैः संयोजितस्त्रिभिः ॥४६॥
यं क्षमाविक्रममुखाः परस्परविरोधिनः । सिषेविरे गुणास्तुल्यं दिव्योद्यानमिवर्तवः ॥४७॥
स्थाने स्थाने यदीया श्रीस्तुल्यमाप्याययन्त्यभूत् । द्रुमानुद्यानकुल्येव निखिलाननुजीविनः ॥४८॥

दोषांस्त्यक्त्वाऽन्यभूपेषु यं शुद्धा श्रीरशिश्रियत् ।
मार्गाद्रिष्वोघकालुष्यं क्षिप्त्वा सिन्धुरिवार्णवम् ॥४९॥

कार्यज्ञो यो न तच्चक्रे यत्फलेऽभूद्विविलक्षधीः । परं समाचरन्स्तुत्यं स्तूयमानस्त्रपां दधे ॥५०॥
व्यनीयत न योऽमात्यैर्विनयं तान्स्वशिक्षयत् । वज्रं न भिद्यते कैश्चिद्भिनत्त्यन्यान्मणींस्तु तत् ॥५१॥
यस्याधर्मभयादासीत्संत्याज्यो धर्मसंशये । निजोऽपि पक्षः कुलिशत्रासादिव गरुत्मतः ॥५२॥
न्याय्यं दर्शयता वर्त्म तेन राज्ञा प्रवर्तिताः । स्थितयो वीतसन्देहा भास्वतेव दिनक्रियाः ॥५३॥
नियन्त्रिता यद्गुणितिस्तद्गुणोदीरणादियम् । अतिप्रसंगभंगात्तन्नेयत्तावाशितः पुनः ॥५४॥
तस्य त्रिभुवनस्वामिप्रासादारम्भकर्मणि । चर्मकृत्कोऽपि न प्रादात्कुटीं क्षेत्रोपयोगिनीम् ॥५५॥

उसके तारापीड, मुक्तापीड एवं अविमुक्तापीड नामके तीन पुत्र जायमान हुए ॥४२॥ प्रतापादित्यके चन्द्रापीड आदि पुत्र क्रमशः वज्रादित्य, उदयादित्य और ललितादित्यके नामसे विख्यात हुए ॥ ४३ ॥ इस प्रकार राजा दुर्लभक पचास वर्षतक पृथिवीका राज्य भोगकर अपनी बनायी हुई पुण्यरूपिणी सीढ़ियोंके सहारे स्वर्गलोक चला गया ॥ ४४ ॥ उसके बाद राजाओंका मुकुटमणि चन्द्रापीड राजा हुआ। अपनी उज्ज्वल कीर्तिसे चन्द्रमाकी चाँदनीको भी मात कर देनेवाले उस वीरने कलियुगको भी बहुत तंग किया ॥ ४५ ॥ उसके पहलेवाले राजाओंने समस्याके समान धर्मका केवल एक चरण सुरक्षित रखा था। किन्तु उस पुण्यात्मा तथा यशस्वी राजाने धर्मके शेष तीन चरण जोड़कर उसे फिरसे चतुष्पाद बना दिया ॥ ४६ ॥ जैसे वर्षा-वसन्तादि छहों ऋतुयें दिव्य उद्यानकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार क्षमा तथा पराक्रम आदि परस्परविरोधी गुणगण समानरूपसे उस नरेशकी सेवा करने लगे ॥ ४७ ॥ जैसे उद्यानमें बहनेवाली नहर वहाँके प्रत्येक वृक्षको अपने जलसे तृप्त करती है, उसी प्रकार उस राजाकी कीर्ति भी स्थान-स्थानपर रहनेवाले सभी अनुजीवियोंको प्रसन्न किये रहती थी ॥ ४८ ॥ जैसे नदियाँ अपना कूड़ा-कचरा मार्गके पर्वतोंपर छोड़ती हुई निर्मलरूपमें समुद्रसे जा मिलती हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीने भी अपने सारे दोष अन्य राजाओंको सौंपकर विशुद्धरूपसे राजा चन्द्रापीडका आश्रय ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ कार्य करनेके ढंग उसे यद्यपि भलीभाँति मालूम थे, फिर भी वह कोई ऐसा काम नहीं करता था कि जिससे भविष्यमें पछताना पड़े। वह अपने किये कामोंसे प्रशंसित होनेपर लज्जाका अनुभव करने लगता था ॥५०॥ जैसे वज्र (हीरा) सब रत्नोंका भेदन कर सकता है, किन्तु हीरेको अन्य रत्न नहीं बींध सकते। उसी प्रकार वह राजा अपने सभी मंत्रियोंको राजनीति सिखा सकता था, किन्तु कोई मंत्री उसको नैतिक शिक्षा देनेकी सामर्थ्य नहीं रखता था ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार वज्रके भयसे गरुडने अपना पक्ष त्याग दिया था, उसी प्रकार धर्मसंशयके अवसरपर वह राजा भी अपना पक्ष त्याग देता था ॥ ५२ ॥ उदयकालमें जैसे सूर्यनारायण सन्देह नामके राक्षसोंका विनाश करते हैं, उसी प्रकार वह राजा भी न्यायपथपर चलकर दैनिक कार्योंमें आ पड़नेवाले सन्देहोंका विनाश करता था ॥ ५३ ॥ कथाक्रम विच्छिन्न हो जानेके भयसे उस राजाके गुणोंका इतना ही वर्णन करके अब मैं आगेका वृत्तान्त बताता हूँ। किन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिये कि राजा चन्द्रापीडमें इतने ही गुण थे ॥ ५४ ॥ एक समय भगवान् त्रिभुवनस्वामीका मन्दिर बन रहा था। इस मन्दिरकी ही हदमें एक चमारकी झोपड़ी पड़ रही थी। उस सीमाके भीतर पड़नेके कारण झोपड़ी लेना

शश्वत्प्रतिश्रुतार्थानां नवकर्माधिकारिणाम् । नैरागिंकाग्रहग्रस्तः सूत्रापातं न चक्षमे ॥५६॥
विज्ञापितोऽथ तैरेत्य तमर्थं पृथिवीपतिः । तानेव सागसो मेने चर्मकारं न तं पुनः ॥५७॥
सोऽभ्यधात्तान्धिगेतेषामप्रेक्षापूर्वकारिताम् । प्रागेव यैरपृष्ट्वा तं प्रविष्टं नवकर्मणि ॥५८॥
नियम्यतां विनिर्माणं यद्वाऽन्यत्र विधीयताम् । परभूम्यपहारेण सुकृतं कः कलङ्कयेत् ॥५९॥
ये द्रष्टारः सदसतां ते धर्मविगुणाः क्रियाः । वयमेव विदध्मश्चेद्यातु न्याय्येन कोऽध्वना ॥६०॥
इत्युक्तवति भूपाले प्रेषितो मन्त्रिपर्षदा । पार्श्वात्पादूकृतस्तस्य दूतः प्राप्तो व्यजिज्ञपत् ॥६१॥
इच्छति स्वामिनं द्रष्टुं स च ब्रूते न चेन्मम ।
युक्तः प्रवेश आस्थाने बाह्याल्यवसरेऽस्तु तत् ॥६२॥
अन्येद्युरथ भूपेन स वहिर्दत्तदर्शनः । पुण्यकर्मणि नो विघ्नः किं त्वमेवेत्यपृच्छ्यत ॥६३॥
प्रतिभाति गृहं तच्चेद्रम्यं तत्र ततोऽधिकम् । तदर्थ्यतां धनं वापि भूयैवं चाभ्यधीयत ॥६४॥
तूष्णीं स्थितं ततो भूपं चर्मकारो व्यजिज्ञपत् । दन्तांशुसूत्रैस्तत्सत्त्वमानं ज्ञातुमिवोद्यतः ॥६५॥
राजन्विज्ञाप्यते किंचिद्यदस्माभिर्यथाशयम् । न स्थेयमवलिप्तेन तत्र द्रष्ट्रा सता त्वया ॥६६॥
नाहमूनः शुनो नास्ति काकुत्स्थात्पार्थिवः पृथुः । क्षुभ्यन्तीवाद्य त्वत्सभ्याः संलापेऽस्मिन्किमावयोः ॥६७॥
आप्तस्य जन्तोः संसारे भङ्गुरः कायकञ्चुकः । अहंताममताख्याभ्यां शङ्कुभ्यामेव बध्यते ॥६८॥
कङ्कणांगदहारादिशोभिनां भवतां यथा । निष्किंचनानामस्माकं स्वदेहेऽहंक्रिया तथा ॥६९॥
देवस्य राजजान्येषा यादृशी सौधहासिनी । कुटी घटमुखानद्धतमोऽरिस्तादृशी मम ॥७०॥

अत्यन्त आवश्यक था। किन्तु चमार अपनी कुटिया नहीं छोड़ता था ॥ ५५ ॥ मन्दिरनिर्माणके कामपर नियुक्त अधिकारी उसे वार-वार समझाते थे और उस कुटियाका दाम भी चुकानेको तैयार थे, किन्तु चमार किसी तरह राजी नहीं हो रहा था ॥ ५६ ॥ अन्तमें उन अधिकारियोंने यह बात राजा चन्द्रापीडको वतायी। उसे सुनकर राजाने उन अधिकारियोंको ही दोषी ठहराया, चमारको नहीं ॥ ५७ ॥ उसने कहा—'उस चर्मकारकी अनुमति लिये विना तुम लोगोंने काम ही क्यों लगाया? तुम सब लोग विचारशून्य हो, तुम्हें धिक्कार है ॥ ५८ ॥ अब या तो मन्दिरनिर्माणका काम वन्द कर दो अथवा किसी दूसरी जगह वह काम करो, परायी जमीन छीनकर अपने यशको कौन कलंकित करेगा ॥ ५९ ॥ धर्म तथा अधर्मकी विवेचना करनेवाले हमीं लोग अधर्म करने लगेंगे तो न्यायके पथपर कौन चलेगा' ॥ ६० ॥ राजा चन्द्रापीडके यह कहनेपर मंत्रिपरिषद्ने उस पादुकाकारके पास दूत भेजा और दूतने वहाँसे लौटकर कहा कि 'वह चर्मकार महाराजसे मिलना चाहता है। उसका यह भी कहना है कि यदि मैं दरवारमें आनेके अयोग्य समझा जाऊँ तो कहीं वाहर मिलनेकी व्यवस्था कर दी जाय' ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अगले दिन महाराजने दरवारके वाहर उस चर्मकारको दर्शन देकर पूछा—'तुम मेरे धर्मकार्यमें क्यों वाधा डाल रहे हो? ॥ ६३ ॥ यदि तुम्हें वही घर पसन्द हो तो मैं उससे और भी अच्छा घर वनवा दूँगा' ॥ ६४ ॥ इतना कहकर जव महाराज चुप हो गये, तव जैसे अपने दन्तद्युतिरूपी सूत्रसे राजाके सत्त्वको नापता हुआ वह चर्मकार वोला—॥ ६५ ॥ 'राजन्! मैं आपको अपने मनकी वात वता रहा हूँ। प्रसंगवश इसमें यदि कोई सत्य किन्तु कड़ुई वात आ जाय तो आपको कुपित न हो जाना चाहिए ॥ ६६ ॥ महाराज! मैं कुत्तेसे न्यून नहीं हूँ और आप राजा काकुत्स्थसे वड़े नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें आपके ये सभासद् हम दोनोंके संभाषणसे क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं? ॥ ६७ ॥ संसारमें उत्पन्न प्रत्येक प्राणीका नाशवान् शरीररूपी वस्त्र अहंता और ममतारूपी दो खुटियोंके सहारे टिका हुआ है ॥ ६८ ॥ कंकण-विजायठ आदि आभूषणोंसे आभूषित आप जैसे राजाओंको जिस तरह स्वाभिमान है, उसी प्रकार मुझ जैसे दरिद्रको भी दैहिक स्वाभिमान रखनेका अधिकार है ॥ ६९ ॥ जैसे आपको अट्टालिकाओंसे परिपूर्ण अपनी राजधानी प्यारी है, उसी प्रकार फूटे घड़ेके समान अगणित छिद्रोंसे युक्त मेरी कुटिया मुझको प्यारी

आ जन्मनः साक्षिणीयं मातेव सुखदुःखयोः। मठिका लोठ्यमानाऽद्य नेक्षितुं क्षस्यते मया ॥७१॥
नृणां यद्वेश्महरणे दुःखमाख्यातुमीश्वरः। तद्विमानच्युतोऽमर्त्यो राज्यभ्रष्टोऽथ पार्थिवः ॥७२॥
एवमप्येत्य मद्वेश्म सा चेद्देवेन याच्यते। सदाचारानुरोधेन दातुं तदुचितं मम ॥७३॥
इति तेनोत्तरे दत्ते भूभृद्दत्वा तदास्पदम्। कुटीं जग्राह वित्तेन नाभिमानः शुभार्थिनाम् ॥७४॥
अवोचच्चर्मकारस्तं तत्र स व्यञ्जिताञ्जलिः। राजन्धर्मानुरोधेन परवत्ता तवोचिता ॥७५॥
श्वविग्रहेण धर्मेण पाण्डुसूनोः पुरा यथा। धार्मिकत्वं तथा तेद्य मयाऽस्पृश्येन वीक्षितम् ॥७६॥
स्वस्ति तुभ्यं चिरं स्थेया धर्म्या वृत्तान्तपद्धतीः। दर्शयन्नीदृशीः शुद्धाः श्रद्धेया धर्मचारिणाम् ॥७७॥
एवं निष्कल्मपाचारः स चक्रे पावनीं भुवम्। राजा त्रिभुवनस्वामिकेशवस्य प्रतिष्ठया ॥७८॥
कृत्यैः प्रकाशदेव्याख्या प्रकाशाकाशकान्तिभिः। प्रकाशिकाविहारस्य तत्पत्नी कारयित्र्यभूत् ॥७९॥
गुरुर्मिहिरदत्ताख्यस्तस्योदात्तगुणोऽभवत्। विश्वंभरस्य गम्भीरस्वामिनाम्नो विधायकः ॥८०॥
सर्वाधिकरणस्थैर्योच्छेत्ता छलितकाभिधः। नगराधिकृतस्तस्य छलितस्वामिनं व्यधात् ॥८१॥
कदाचन सभासीनं पृष्टा धर्माधिकारिभिः। प्रायोपविष्टा राजानं ब्राह्मणी काचिदब्रवीत् ॥८२॥
त्वयि प्रशासति महीमहो गर्हानिवर्हणे। सुखसुप्तस्य मे पत्युर्हृतं केनापि जीवितम् ॥८३॥
एषैव महती लज्जा सदाचारस्य भूपतेः। यदकालभवो मृत्युस्तस्य संस्पृशति प्रजाः ॥८४॥
कलिकालबलात्तच्चेत्त्वादृशैरपि दृश्यते। पापात्पापतरेऽमुष्मिन्दोषे कथमुदास्यते ॥८५॥
चिन्तयन्त्यपि नावैमि भर्तुः कंचिद्विरोधिनम्। निर्दोपस्य हि तस्यासन्सर्वतः शीतला दिशः ॥८६॥

है ॥ ७० ॥ जन्मसे लेकर आजतक माताके समान मेरे सुख-दुःखकी साक्षिणी उस झोपड़ीका विनाश मैं नहीं देख सकता ॥ ७१ ॥ जिस मनुष्यका घर छिन जाता है, उसको जो कष्ट होता है उसका अनुभव दो ही व्यक्ति कर सकते हैं। एक तो राजच्युत राजा और दूसरा विमानसे गिरा हुआ देवता ॥ ७२ ॥ हाँ, यदि आप मेरे यहाँ आकर याचना करें तो अलवत्ते शिष्टाचारके नाते मैं आपको अपनी झोंपड़ी दे दूँ' ॥७३॥ ऐसा उत्तर सुनकर राजा चन्द्रापीड उस चमारके पास गया और धन देकर उसकी झोपड़ी खरीद ली। क्योंकि कल्याणेच्छुक पुरुषोंको व्यर्थ अभिमान नहीं होता ॥ ७४ ॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर उस चर्मकारने कहा—'राजन्! आपकी धर्म-परतंत्रता उचित ही है ॥ ७५ ॥ जिस तरह पूर्वकालमें धर्मराजने कुत्तेका रूप धरके महाराज युधिष्ठिरकी धार्मिकताकी परीक्षा ली थी, उसी प्रकार इस अछूतने भी आपकी परीक्षा ली है ॥ ७६ ॥ हे राजन्! आपका कल्याण हो और आप इसी तरह धार्मिक आचार-विचारवाले लोगोंकी आचारपद्धतिका प्रदर्शन करते हुए बहुत समयतक राज्य करें' ॥ ७७ ॥ इस तरह पुनीत आचरणवाले राजा चन्द्रापीडने त्रिभुवनस्वामी नामक विष्णुभगवान्‌को स्थापित करके पृथिवीको पवित्र किया ॥ ७८ ॥ इसी प्रकार उसकी पत्नी प्रकाशदेवीने प्रकाशके आधारस्वरूप विमल आकाशके सदृश अपने उज्ज्वल कर्मोंसे सारे संसारको प्रकाशान्वित करते हुए प्रकाशिका विहारका निर्माण कराया ॥ ७९ ॥ राजा चन्द्रापीडका गुरु मिहिरदत्त बड़े उच्चकोटिके गुणोंसे परिपूर्ण था। उसने विश्वम्भर विष्णुभगवान्‌की गम्भीर स्वामी नामक मूर्ति स्थापित की ॥ ८० ॥ इसी तरह छलितक नामके नगरपालने छलित स्वामीकी स्थापना की ॥ ८१ ॥ एक बार ऐसा हुआ कि एक ब्राह्मणी अनशन कर रही थी। राज्यके अधिकारियोंने उसे दरबारमें विराजमान राजा चन्द्रापीडके समक्ष पहुँचाया और राजाने उससे अन-शनका कारण पूछा ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणी बोली—'इस धरतीपर आप जैसे न्यायप्रिय शासकके होते हुए भी किसी अधम पुरुषने सानन्द सोये हुए मेरे पतिका वध कर दिया है ॥ ८३ ॥ किसी भी सदाचारी राजाके लिए यह बात सबसे अधिक लज्जास्पद होती है कि उसके राज्यमें कोई प्रजाजन अकालमृत्युका शिकार बने ॥ ८४ ॥ यदि इसे कलिका दोष कहा जाय, फिर भी इस प्रकारके अतिशय भीषण पापोंको देखते हुए भी आप उदासीन क्यों बैठे हैं ? ॥ ८५ ॥ बहुत सोचनेपर भी मुझे अपने पतिका कोई शत्रु नहीं दिखायी देता। क्योंकि वह

अनसूयो निरुत्सेकः प्रियवाग्गुणवत्सलः । पूर्वाभिभाषी निर्लोभो न विद्वेष्यो हि कस्यचित् ॥८७॥
तस्य तुल्यवया बाल्यात्प्रभृत्यध्ययनेऽधमः । माक्षिकस्वामिवास्तव्यो विप्रः शङ्क्योऽभिचारवित् ॥८८॥
गुणदारिद्र्यनिर्निद्रैः क्षुद्रैः कौशलशालिनाम् । प्रसिद्धिस्पर्धया वन्ध्यैर्बाध्यन्तेऽसूययासवः ॥८९॥
नापुंश्चलेयो दुःशीलो नाद्रोहो नित्यशङ्कितः । नवाचालो मृषाभाषी नाकायस्थः कृतघ्नधीः ॥९०॥
नादातृगृहजो लुब्धो नानीर्ष्यो नित्यदुःखितः । नास्त्रीजितः सर्वहास्यो नावृद्धः स्निग्धभाषितः ॥९१॥
नानन्यजः पितृद्वेषी नारागी निरपत्रपः । नाक्षुद्रविद्यः पापीयानिति भूतार्थसंग्रहः ॥तिलकम् ॥९२॥
इत्युक्तवत्यां ब्राह्मण्यां तच्छङ्कावसतिं द्विजम् । आनीय परिशुध्यस्वेत्यभ्यधाद्वसुधाधिपः ॥९३॥
भूयो ब्राह्मण्यवादीत्तं ख्यातः खार्खोदविद्यया । निःसंभ्रमः स्तम्भयितुं देव दिव्यक्रियामयम् ॥९४॥
म्लायद्वक्त्र इवावादीत्ततस्तां मेदिनीपतिः । अदृष्टदोषे किं कुर्मो वयमत्राधिकारिणः ॥९५॥
नान्यस्मिन्नपि दण्डस्य प्रसङ्गोऽनिश्चितागसि । किं पुनर्ब्राह्मणो दण्ड्यो यो दोषेऽपि वधं विना ॥९६॥
उक्त्वेति विरते तस्मिन्द्विजजायाऽब्रवीत्पुनः । चतस्रः क्षणदाः क्षीणा राजन्ननशनस्य मे ॥९७॥
नान्वगां परिणेतारं हन्तुः प्रतिचिकीर्षया । तत्राविहितदण्डेऽस्मिंस्त्यजाम्यनशनैरसून् ॥९८॥
तथा स्थितायां ब्राह्मण्यां कृतप्रायोपवेशनः । स्वयं त्रिभुवनस्वामिपादानुद्दिश्य सोऽभवत् ॥९९॥
त्रिरात्रोपोषितं तत्र राजानं रजनीक्षये । स्वप्नेस्वप्नोत्तमोऽवोचत्सत्योक्ति सत्यवाहनः ॥१००॥
ईदृङ्न युज्यते राजन्सत्यस्यान्वेषणं कलौ । निशीथे कस्य सामर्थ्यं कर्तुं दिवि विकर्तनम् ॥१०१॥

सर्वथा निर्दोष था और उसके लिए सभी दिशायें सद्भावनासे भरी रहती थीं ॥ ८६ ॥ वह द्वेषहीन, अभिमानशून्य, मधुरभाषी, गुणवत्सल, सबसे पहले बोलनेवाला और निर्लोभ था । इसी कारण कोई उससे वैरभाव नहीं रखता था ॥ ८७ ॥ उसकी हत्याके विषयमें मुझे एक व्यक्तिपर सन्देह है । बाल्यकालसे ही एक बुद्धिहीन सहपाठी होनेके कारण वह मेरे पतिदेवसे द्वेषभाव रखा करता था । यह एक मान्त्रिक है और माक्षिक स्वामीके पास रहता है ॥ ८८ ॥ प्रायः गुणहीन एवं क्षुद्र पुरुष सदा कार्यकुशल सज्जनोंसे द्वेष करते हैं । क्योंकि वे उनकी बराबरी करनेमें असमर्थ रहते हैं । अतएव उन्हें नींद नहीं आती और वे बराबर अपनेसे श्रेष्ठ सज्जन पुरुषोंको दुःख देनेका उपक्रम रचते रहते हैं । कभी-कभी तो वे उनके प्राण तक ले लेते हैं ॥ ८९ ॥ संसारमें वेश्यापुत्रके सिवाय दुःशील कौन होगा ? दोषी व्यक्तिके अतिरिक्त दूसरा कौन व्यक्ति सर्वत्र शंकाशील होगा ? बकवादीके सिवाय और कौन झूठ बोलेगा ? कायस्थके सिवाय सदा दुःखी कौन रहेगा ? स्त्रीमें आसक्त पुरुषके सिवाय और कौन हास्यास्पद होगा और वृद्धोंके सिवाय मधुरभाषी और कौन होगा ? ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जारज (यारसे उत्पन्न) पुत्र ही पितृद्रोही होता है, कामी पुरुष ही निर्लज्ज होता है और क्षुद्र विद्वान् पुरुष ही पापी होता है । यह एक अकाट्य सिद्धान्त है' ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणीके वचन सुनकर राजाने उस सन्देहास्पद मांत्रिकको बुलवाकर ब्राह्मणीके द्वारा लगाये गये लांछनका उत्तर माँगा और कहा कि 'इस दिव्य कर्मसे तुम अपनेको निर्दोष साबित करो' ॥९३॥ ब्राह्मणी बोली—'महाराज ! मांत्रिक होनेके कारण यह भलीभाँति दिव्य कर्म कर सकता है' ॥ ९४ ॥ यह सुना तो खिन्नमुख होकर राजाने कहा—'जिसका अपराध न सिद्ध हो सका हो, उसे मैं दण्ड कैसे दे सकता हूँ ॥ ९५ ॥ दोष प्रमाणित हुए बिना किसी साधारण व्यक्तिको भी दण्ड नहीं दिया सकता । फिर यह तो ब्राह्मण है । अतएव अपराध सिद्ध हो जानेपर भी मैं इसे मृत्युदण्ड नहीं दे सकता' ॥ ९६ ॥ यह कहकर राजाके चुप हो जानेपर ब्राह्मणी बोली—'महाराज ! मुझे अनशन करते चार दिन बीत चुके हैं ॥ ९७ ॥ इस हत्याका बदला लेनेके लिए ही मैंने सती होकर अपने प्राण नहीं त्यागे हैं । यदि हत्यारेको दण्ड न मिलेगा तो मैं अपने प्राण दे दूँगी' ॥ ९८ ॥ उस ब्राह्मणीकी यह प्रतिज्ञा सुनकर स्वयं राजाने भी भगवान त्रिभुवनस्वामीके समक्ष अनशन आरम्भ कर दिया ॥ ९९ ॥ राजाने जब तीन दिन उपवास कर लिया, तब चौथे दिन सपनेमें दर्शन देकर विष्णुभगवानने कहा—॥ १०० ॥ 'राजन् ! कलियुगमें इस प्रकार अनशन द्वारा सत्यका अनुसन्धान करना

भवच्छक्त्यनुरोधेन सकृदेतत्प्रवर्त्यते । मत्प्रासादाङ्गणेऽमुष्मिन्शालिचूर्णं विकीर्यताम् ॥१०२॥
प्रदक्षिणं कुर्वतोऽस्य त्रिरत्र यदि दृश्यते । ब्रह्महत्यापादमुद्रा पादमुद्रानुयायिनी ॥१०३॥
तदेष वधको भूत्वा सदृशं दण्डमर्हति । रात्रावेष विधिः कार्यो दिने पापहृदर्यमा ॥१०४॥
अथ तत्कारयित्वा स दृष्टदोषे द्विजन्मनि । दण्डं दण्डधरश्चक्रे द्विजत्वाद्वधवर्जितम् ॥१०५॥
महीमघोना भर्तृघ्ने तस्मिन्विहितशासने । ततो द्विजन्मजाया सा कृताशीरभ्यधादिदम् ॥१०६॥
इयत्यवनिभृत्सर्गे गूढपापानुशासनम् । कार्तवीर्यस्य वा दृष्टं तव वा पृथिवीपते ॥१०७॥
दण्डधारे त्वयि क्ष्माप क्षितिमेतां प्रशासति । को वैरस्नेहयोः पारमनासाद्यावसीदति ॥१०८॥
इत्थं कृतयुगध्येयैर्धर्म्यवृत्तान्तवस्तुभिः । स्वल्पोऽपि राज्यकालोऽस्य पर्याप्तैः पर्यपूर्यत ॥१०९॥
स्रष्टुर्विष्टरपाथोजसंसर्गेण निरर्गलः । निबिडं जडिमा जाने व्यधत्त धियि संनिधिम् ॥११०॥
विभक्तवर्णशोभस्य तस्यासावन्यथा कथम् । माहेन्द्रस्येव धनुषो विदधे दृष्टनष्टताम् ॥१११॥
कारयित्वाऽभिचारं तं निग्रहोग्ररुषं द्विजम् । तं यशःशेषतानीशं तारापीडोऽनुजोऽनयत् ॥११२॥
दुष्कर्मदुर्भगान्भोगान्भोक्तुं पापा गुणोन्नतम् । मृद्नन्ति कण्टकान्प्रासु करभा इव केतकम् ॥११३॥
ततः प्रभृति भूपानां राज्येच्छूनां गुरून्प्रति । दुष्टाः प्रवृत्ता राज्येऽस्मिन्नभिचारादिकाः क्रियाः ॥११४॥
श्रीचन्द्रापीडदेवस्य तत्क्षमित्वमपश्चिमम् । संस्मर्यमाणं कुरुते न कस्योत्पुलकं वपुः ॥११५॥
मुमूर्षुर्यत्स लब्ध्वापि तं कृत्याधायिनं द्विजम् । वराकेऽन्यप्रयुक्तेऽस्मिन्को दोष इति नावधीत् ॥११६॥

उचित नहीं है। रात्रिके समय कोई दिन जैसा उजाला कैसे कर सकता है ? ॥१०१॥ तथापि तुम्हारी भक्तिसे प्रभावित होकर मैं एक चमत्कार दिखा रहा हूँ। अभी इस मन्दिरके आँगनमें तुम चावलका आँटा फैला दो ॥ १०२ ॥ तदनन्तर उसीके ऊपर उस शंकित ब्राह्मणसे तीन चार परिक्रमा कराओ। यदि उसके पैरोंके पीछे-पीछे ब्रह्महत्याके भी चरणचिह्न पड़े दीखे तो उसे अपराधी समझकर उचित दण्ड दो। लेकिन यह काम रातमें ही करना। क्योंकि दिनके समय सूर्यनारायण सब प्रकारके पाप हर लिया करते हैं' ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ उस युक्तिके अनुसार परीक्षण करनेपर राजाने उस मांत्रिकको अपराधी पाया और ब्राह्मण होनेके कारण प्राणदण्ड न देकर उसे अन्य दण्ड दिया ॥ १०५ ॥ राजाके इस प्रकार दण्डकी व्यवस्था करनेपर प्रसन्न होकर उस साध्वी ब्राह्मणीने आशीष देते हुए कहा—॥ १०६ ॥ 'महाराज ! इस धरतीपर बहुतेरे राजे हो गये हैं, उनमें इस प्रकार प्रच्छन्न अपराधका पता लगाकर दण्डदान या तो राजा कार्तवीर्यके शासनकालमें होता था अथवा अब आपके राज्यकालमें हो रहा है ॥ १०७ ॥ हे भूपते ! जबतक आप जैसा दण्डधारी राजा इस धरतीपर शासन कर रहा है, तबतक कोई मनुष्य प्रेम अथवा वैरका उचित फल पाये बिना नहीं रह सकता ॥ १०८ ॥ उस राजा चन्द्रापीडका शासनकाल यद्यपि बहुत अल्पकालीन था, तथापि उसके बहुतेरे धार्मिक कार्योंको देखकर सत्ययुगका स्मरण हो आता था ॥ १०९ ॥ निरन्तर बहुत समयसे कमलके आसनपर बैठे रहनेके कारण मालूम होता है कि ब्रह्माजीकी बुद्धिमें जड़ता आ गयी है ॥ ११० ॥ यदि ऐसा न होता तो सदाचारके द्वारा वर्णोंकी शोभा बढ़ानेवाले इस प्रकार उच्चकोटिके शासक चन्द्रापीडको अनेक रंगोंसे शोभायमान इन्द्रधनुषके समान क्षणभर दिखायी देकर नष्ट हो जानेवाला राजा क्यों बनाता ॥ १११ ॥ उस पुण्यात्मा चन्द्रापीडको उसके छोटे भाई दुष्ट तारापीडने उसी दण्ड पानेसे रुष्ट मान्त्रिक ब्राह्मण द्वारा आभिचारिकी क्रिया कराके मरवा डाला ॥ ११२ ॥ जैसे ऊँट कँटीले वृक्षोंको खाते-खाते केतकीका पेड़ भी खा जाता है, उसी प्रकार पापी लोग अपने दुष्टकर्मोंसे प्राप्त जघन्य भोगोंको भोगनेके लिए उन्नत गुणसम्पन्न लोगोंको भी नष्ट कर दिया करते हैं ॥ ११३ ॥ जब इस प्रकार आभिचारिकी क्रिया द्वारा राजा चन्द्रापीडका वध हुआ, उसी समयसे कश्मीर राज्यमें राज्यलोलुप राजवंशजों द्वारा अपनेसे बड़े राज्यके अधिकारी राजपुत्रोंका अभिचारक्रियाके द्वारा वध होने लगा ॥ ११४ ॥ राजाओंमें रत्नस्वरूप चन्द्रापीडदेवकी क्षमाशीलताका स्मरण होते ही किस सहृदय पुरुषका शरीर पुलकायमान न हो उठेगा ॥ ११५ ॥ क्योंकि

विस्मृतः स कृतःक्ष्माभृत्पंक्तिमध्येऽत्र वेधसा । दत्त्वा काकपदं नूनं न्यस्तः कलिनृपावलौ ॥११७॥
अष्टौ वर्षान्साष्टमासाननुगृह्येति मेदिनीम् । प्रविवेश वशी स्वर्गमनिशं च सतां मनः ॥११८॥
भ्रातृद्रोहास्त्रसुहृदा प्रतापेन भयावहः । उवाह तारापीडः स चण्डः क्ष्मामण्डलं ततः ॥११९॥
पूर्णपात्रप्रतिभटं द्विषां लुण्ठयता यशः । शिशोः प्रतापस्योत्पत्तौ कबन्धा येन नर्तिताः ॥१२०॥
तस्यातिदुष्टचेष्टस्य लक्ष्मीर्दीप्ताऽपि सर्वतः । अभूदुद्वेगजननी श्मशानाग्नेरिव द्युतिः ॥१२१॥

मन्त्रैः प्रभावसांनिध्यं देवानां क्रियते द्विजैः ।
मत्वेति देवद्वेषी स द्विजानां दण्डमत्यजत् ॥१२२॥

मासं षड्भिर्दिनैरूनं चतस्रश्च समा भुवि । स प्राभवद्गुरुद्रोहप्ररोहत्सुकृतात्ययः ॥१२३॥
अथ गूढाभिचारेण विहितायुःक्षयो द्विजैः । स भ्रातुः सदृशीं शान्तिं प्रपेदे न पुनर्गतिम् ॥१२४॥

योऽयं परापकरणाय सृजत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः ।
धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निर्भूत्वाऽम्बुदः स शमयेत्सलिलैस्तमेव ॥१२५॥

राजा श्रीललितादित्यः सार्वभौमस्ततोऽभवत् । प्रादेशिकेश्वरस्रष्टुर्विधेर्बुद्धेरगोचरः ॥१२६॥
प्रतापांशुच्छटाकूटैः पटवाससधर्मभिः । जम्बुद्वीपद्विपेन्द्रस्य येनातन्यत मण्डनम् ॥१२७॥
नयाञ्जलिषु वद्धेषु राजभिर्विजयोद्यमे । पार्थिवः पृथुविक्रान्तिर्युधि क्रोधं मुमोच यः ॥१२८॥
विनिःसरज्जनतया भयाद्गर्भानिवामुचन् । द्विषां वसतयो यस्य निशम्यास्कन्ददुन्दुभिम् ॥१२९॥
विलोलतिलकान्तैर्यः सनेत्राम्भोभिराननैः । निवापाञ्जलिदानानि द्विषां नारीरकारयत् ॥१३०॥

जब वह मरणासन्न था, तभी उसको पता चल गया था कि उस मान्त्रिकने ही यह अभिचारकर्म किया है। फिर भी "औरोंके द्वारा प्रेरित होकर उसने ऐसा किया है" यह सोचकर उसने उसका वध नहीं किया ॥ ११६ ॥ ब्रह्माजी महाराज चन्द्रापीडको सत्ययुगी राजाओं पंक्तिमे रखना भूल गये थे। सो अपनी भूल सुधारनेके लिए ही उन्होंने काकपदचिह्न (+) लगाकर उसे कलियुगी राजाओंकी श्रेणीमे रख दिया था॥ ११७ ॥ इस प्रकार आठ वर्ष आठ मास धरतीपर राज्य करके चन्द्रापीड सदाके लिए सज्जनोंके हृदय और स्वर्गधाममें प्रविष्ट हो गया ॥११८॥ उसके वाद भ्रातृद्रोही, भयानक तथा क्रूर तारापीडको राज्य मिला ॥ ११९ ॥ नवीन राज्य प्राप्त करनेके वाद तारापीडने अपने शत्रुओंका सिर काटते हुए प्रतापरूपी पुत्रजन्मके समय कवन्धो यानी मरे मनुष्योंकी लोथोंका नाच कराया ॥ १२० ॥ अतिशय दूषित चेष्टावाले राजा तारापीडकी देदीप्यमान लक्ष्मी भी श्मशानकी आग जैसी उद्वेगकारिणी लगती थी ॥ १२१ ॥ 'ब्राह्मण लोग मंत्रके प्रभावसे देवताओंको अपने वशीभूत कर लेते हैं' ऐसा सोचकर वह देवताओंसे द्वेष करके ब्राह्मणोंका दण्ड द्वारा दमन करने लगा ॥ १२२ ॥ गुरुद्रोहके कारण पुण्य क्षीण हो जानेसे वह राजा केवल चार मास छव्वीस दिन राज्य कर सका ॥ १२३ ॥ जिसका कारण यह था कि ब्राह्मणोंके गुप्त अभिचारकर्मसे उसकी भी वही गति हुई, जो उसके भ्राताकी हुई थी। किन्तु तारापीडको चन्द्रापीड जैसी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी ॥ १२४ ॥ दूसरोंका विनाश करनेवाले मनुष्य जो उपाय करता है, उसी उपायसे उसका भी विनाश होता है। अग्नि औरोंकी आँखें अन्धी करनेके लिए धुएँकी सृष्टि करता है, किन्तु वही धुआँ बादल वनकर अग्निको ही वुझा देता है ॥ १२५ ॥ तारापीडके वाद उसका छोटा भाई ललितादित्य राजसिंहासनपर बैठा। यद्यपि विधाताने उसे प्रादेशिक राजा ही वनाया था, किन्तु वह उसकी वुद्धिसे अगोचर होकर सार्वभौम राजा वन गया ॥ १२६ ॥ उसने अपने प्रतापकी किरणोंकी कान्तिसे जम्बुद्वीपरूपी गजराजको उसी प्रकार अलंकृत कर दिया था, जैसे पटवास चूर्णसे वस्त्र सुगन्धित किये जाते हैं ॥१२७॥ दिग्विजयके अवसरपर युद्धभूमिमें हाथ जोड़कर प्रणाम करनेवाले राजाओंको देखकर वह विपुल पराक्रमी राजा ललितादित्य क्रोध त्याग देता था ॥ १२८ ॥ उसकी रणदुन्दुभीका भीषण निनाद सुनकर मारे डरके भागती हुई शत्रुकी प्रजा नगरियोंके गर्भपात सरीखी दीखती थीं ॥ १२९ ॥ राजा ललितादित्यने अपने शत्रुओंकी पत्नियोंके नेत्रोंसे वहते हुए आँसुओं

क्षितिं प्रदक्षिणयतो रवेरिव महीपतेः । जिगीषोः प्रायशस्तस्य यात्रास्वेव वयो ययौ ॥१३१॥
करं पूर्वदिशो गृह्णन्प्रतापानलसंनिधौ । अन्तर्वेद्यां महाराजः स्वकीर्त्युष्णीषभृद्बभौ ॥१३२॥
कन्यानां यत्र कुब्जत्वं व्यधाद्गाधिपुरे मरुत् । तत्रैव शंसनीयः स पुंसां चक्रे भयस्पृशाम् ॥१३३॥
यशोवर्माद्रिवाहिन्याः क्षणात्कुर्वन्विशोषणम् । नृपतिर्ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ ॥१३४॥
मतिमान्कान्यकुब्जेन्द्रः प्रत्यभात्कृत्यवेदिनाम् । दीप्तं यल्ललितादित्यं पृष्ठं दत्त्वा न्यषेवत ॥१३५॥
तत्सहायास्ततोऽप्यासन्निकाममभिमानिनः । कुसुमाकरतोऽप्युच्चैः सुरभिश्चन्दनानिलः ॥१३६॥
श्रीयशोवर्मणः संधौ सांधिविग्रहिको न यत् । न यं नियमनालेखे मित्रशर्माऽस्य चक्षमे ॥१३७॥
सोऽभूत्संधिर्यशोवर्मललितादित्ययोरिति । लिखितेनादिनिर्देशादनर्हत्वं विदन्प्रभोः॥ युगलकम् ॥१३८॥
सुदीर्घविग्रहाशान्तैः सेनानीभिरसूयिताम् । औचित्यापेक्षतां तस्य क्षितिभृद्बह्वमन्यत ॥१३९॥
प्रीतः पञ्चमहाशब्दभाजनं तं व्यधत्त सः । यशोवर्मनृपं तं तु समूलमुदपाटयत् ॥१४०॥
अष्टादशानामुपरि प्राक्सिद्धानां तदुद्भवैः । कर्मस्थानैः स्थितिः प्राप्ता ततः प्रभृति पञ्चभिः ॥१४१॥
महाप्रतीहारपीडा स महासंधिविग्रहः । महाश्वशालापि महाभाण्डागारश्च पञ्चमः ॥१४२॥
महासाधनभागश्चेत्येता यैरभिधाः श्रिताः । शाहिमुख्या येष्वभवन्नध्यक्षाः पृथिवीभुजः ॥१४३॥
कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः । जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥१४४॥
किमन्यत्कान्यकुब्जोर्वी यमुनापारतोऽस्य सा । अभूदाकालिकातीरं गृहप्राङ्गणवद्वशे ॥१४५॥

तथा तिलक बहाते हुए पसीने द्वारा अपने पितरोंको तर्पण किया था ॥ १३० ॥ नित्यप्रति पृथिवीकी परिक्रमा करनेवाले भगवान् सूर्यकी तरह उस विजयेच्छुक राजाकी अधिकांश उम्र यात्रामें ही बीती ॥ १३१ ॥ अपने प्रतापरूपी अग्निकी सन्निधिमें पूर्वदिशाके राजाओंसे कर वसूलता हुआ यशरूपी उष्णीष (पगड़ी) से सुशोभित राजा ललितादित्यने गंगा-यमुनाके मध्यवर्ती अन्तर्वेद प्रदेशमें अपने प्रबल प्रतापका आतंक जमा दिया ॥ १३२ ॥ किसी समय वायुदेवने जिस गाधिपुरकी कन्याओंको कुबड़ी बना दिया था, उसी नगरमें उस राजाने बड़े-बड़े वीर योद्धाओंको कुब्ज (कुबड़ा) बना दिया ॥ १३३ ॥ यशोवर्मारूपी पर्वतसे उत्पन्न सेनारूपिणी नदीको अपने प्रतापसे क्षणमात्रमे सुखा देनेके कारण वह ललितादित्य ही प्रतापादित्य (प्रबल तेजस्वी) बन गया ॥ १३४ ॥ कान्यकुब्जदेशके नरेश राजा यशोवर्माने सूर्यसदृश प्रतापवान् महाराज ललितादित्यसे युद्ध-विमुख होकर बड़ी बुद्धिमत्ताका परिचय दिया ॥ १३५ ॥ उस राजा ललितादित्यके सहायक अधिकारी उससे भी बढकर स्वाभिमानी थे । क्योंकि वसन्त ऋतुसे भी अधिक सुगन्धित चन्दनकी वायु होती है ॥ १३६ ॥ अतएव राजा यशोवर्माके लिखे सन्धिपत्रको देखकर राजा ललितादित्यका सन्धि-विग्रह करनेका अधिकारी मंत्री मित्रशर्मा उसके द्वारा किये गये अपमानको क्षमा नहीं कर सका ॥ १३७ ॥ उपर्युक्त सन्धिपत्रमें लिखा था—'यह सन्धिपत्र राजा यशोवर्मा और ललितादित्यकी अनुमतिसे लिखा गया है' इस लेखमे यशोवर्माका नाम पहले और ललितादित्यका नाम बादमे लिखकर उनकी गौणता प्रदर्शित की गयी थी, यही बात मित्रशर्माको अखर गयी ॥ १३८ ॥ यद्यपि युद्धसे थके हुए सेनापतियोंको पुनः युद्ध प्रारम्भ करनेकी बात अच्छी नहीं लगी, तथापि राजा ललितादित्यको अपने मंत्री मित्रशर्माकी दूरदर्शितापर बहुत सन्तोष हुआ ॥ १३९ ॥ इस प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें उसने मित्रशर्माको पंचविरुदों (पाँच पदोंकी पदवी) का अधिकारी घोषित करके राजा यशोवर्माका समूल उच्छेद कर डाला ॥ १४० ॥ उसी समयसे प्राचीन अठारह कार्यस्थानोंपर निम्नलिखित ये पाँच महाविरुद प्रयोगमें आने लगीं ॥ १४१ ॥ जैसे—महाप्रतीहारपीडा, महासन्धिविग्रह, महाअश्वशाला, महाभाण्डागार और महासाधनभाग नामके पाँच विरुदोंका नूतन निर्माण किया गया और इन कामोंकी राजवंशके ही लोग करते थे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ कवि वाक्पतिराज तथा भवभूति आदि महाकवियों द्वारा सेवित कवि यशोवर्मा राजा ललितादित्यके अनुपम गुणोंपर मोहित होकर उसका स्तुतिपाठक बन गया ॥ १४४ ॥ इस प्रकार यमुना नदीके

यशोवर्माणमुल्लङ्घ्य हिमाद्रिमिव जाह्नवी । सुखेन प्राविशत्तस्य वाहिनी पूर्वसागरम् ॥१४६॥
पश्यद्भिर्जन्मवसुधां सेर्ष्याधोरणभर्त्सितैः । तन्मातङ्गैः कलिङ्गेभ्यः कथंचित्प्रस्थितं पथि ॥१४७॥
आकृष्टलक्ष्मीपर्यङ्कदन्तिसख्यादिवागताः । अशिश्रियंस्तं निःशेषा दन्तिनो गौडमण्डलात् ॥१४८॥
कटकेभघटाहस्तकृतवीचिकचग्रहः । अदृश्यताग्रगैस्तस्य गृहीतः पूर्ववारिधिः ॥१४९॥
वनराजिश्यामलेन दिशं वैवस्वताङ्किताम् । स प्रतस्थेऽब्धितीरेण तत्कृपाणेन तु द्विपः ॥१५०॥
तस्योर्ध्वजूटाः कर्णाटाः कृतप्रणतयोऽनयन् । सुवर्णकेतकीस्त्यक्त्वा प्रतापमवतंसताम् ॥१५१॥
तस्मिन्प्रसङ्गे रट्टाख्या कर्णाटी चटुलेक्षणा । आपासन्नृपतिर्भूत्वा पृथुश्रीर्दक्षिणापथम् ॥१५२॥
विन्ध्याद्रिमार्गाः पर्याप्ता निष्पर्यन्तप्रभावया । दुर्गयेव तया देव्या कृता निहतकण्टकाः ॥१५३॥
ललितादित्यपादाब्जनखदर्पणमण्डले । स्वमूर्तिं वीक्ष्य संक्रान्तां प्रणता सापि पिप्रिये ॥१५४॥
तालीतरुतलाचान्तनारिकेलसुरोर्मयः । कावेरीतीरपवनैस्तद्योधाः क्लममत्यजन् ॥१५५॥
चन्दनाद्रेस्तदास्कन्दत्रासस्रस्यदहिच्छलात् । श्रीखण्डद्रुमदोःपण्डान्मण्डलाग्रा इवापतन् ॥१५६॥
उत्तराश्मस्विव पदं क्षिप्त्वा द्वीपेष्वविघ्नतः । स कुल्याया इवाम्भोधेः क्षिप्रं चक्रे गतागतम् ॥१५७॥
ततोऽब्धिवीचिनिर्घोषैरुद्गीतजयमङ्गलः । प्रतस्थे पश्चिमामाशां जिगीषूणामपश्चिमः ॥१५८॥
आक्रम्य क्रमुकान्सप्त कौङ्कणान्सप्त तापयन् । तुरगानिव तिग्मांशोः प्रतापस्तस्य पप्रथे ॥१५९॥

उत्तरी तटसे लेकर कालिकातट तकका सारा कान्यकुब्ज देश राजा ललितादित्यके लिए घरके आँगन जैसा सुगम्य हो गया ॥ १४५ ॥ मार्गमें हिमालय पर्वत सदृश विघ्नस्वरूप राजा यशोवर्माको लाँघकर गंगाकी धारा जैसी विस्तृत राजा ललितादित्यकी सेना पूर्वी समुद्रके तटपर जा पहुँची ॥ १४६ ॥ उसकी सेनाके बहुतेरे हाथियोंने अपनी जन्मभूमिस्वरूप कलिंग देशको देखकर वहाँ ही रह जाना चाहा। किन्तु महावतोंने बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उन्हें आगे बढाया ॥ १४७ ॥ तदनन्तर आकृष्ट लक्ष्मीकी शय्या बनकर रहनेवाले गजराजकी मित्रताके कारण वहाँ आये हुए सभी गौडदेशीय हाथी उस राजाकी सेनामें सम्मिलित हो गये ॥ १४८ ॥ जिस समय उसकी सेनाके अग्रभागमें रहनेवाले हाथियोंका झुण्ड चला, तब ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो वे हाथी अपनी सूँड़ोंसे समुद्रका लहररूपी केश पकड़कर खींच रहे हैं ॥ १४९ ॥ वहाँसे वह समुद्रतटके घने जंगलोंसे भरे मार्गसे होता हुआ दक्षिणदिशाको चला। मार्गमें मिलनेवाले शत्रु भी उसकी तलवारके प्रहारसे मरकर दक्षिण दिशा (यमपुरी) को चले गये ॥ १५० ॥ लम्बी-लम्बी जटायें धारण करनेवाले कर्नाटक देशके निवासी स्वर्णकेतकी सरीखे केशभूषणोंको त्यागकर राजा ललितादित्यके चरणों गिर गये और उन्होंने उसके प्रतापको ही अपना आभूषण बना लिया ॥ १५१ ॥ उन दिनों कर्नाटक देशमें उत्पन्न, चंचल नयनोंवाली एवं महातेजस्विनी रट्टा नामकी रानी दक्षिणापथपर राज्य करती थी। भगवती दुर्गाके समान वीर रट्टा देवीने अपने प्रबल प्रभाव द्वारा विन्ध्यवनसे होकर गुजरनेवाले सभी मार्गोंको निष्कंटक कर दिया था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ राजा ललितादित्यको प्रणाम करते समय उसके चरणनखरूपी दर्पणमें अपनी आकृति प्रतिबिम्बित होती देखकर वह रानी भी बहुत प्रसन्न हुई ॥ १५४ ॥ वहाँ ही ललितादित्यके सैनिकोंने ताड़ वृक्षोंकी छायामें डेरा डाल दिया और नारियलके फलोंका सुस्वादु जल पीकर कावेरी नदीका शीतल पवन सेवन करके अपनी थकावट मिटायी ॥ १५५ ॥ वहाँके चन्दनवृक्षोंकी शाखायें त्यागकर रेंगते हुए काले-काले साँप उस राजाके भयसे मलयपर्वतके चन्दनवृक्षों द्वारा उठायी हुई तलवार सरीखे दीख रहे थे ॥ १५६ ॥ जैसे किसी छोटी नदीके पेटमें पड़े पत्थरोंपर पैर रख-रखकर लाँघते हुए उसे पार किया जाता है, उसी प्रकार अनेक छोटे-छोटे द्वीपोंको लाँघता हुआ वह राजा सभी समुद्री द्वीपोंमें बड़ी आसानीसे यातायात करने लग गया ॥ १५७ ॥ विजयेच्छुकोंमें अग्रणी राजा ललितादित्य समुद्रकी बड़ी-बड़ी लहरोंके गंभीर घोषरूपी जयजयकार एवं मंगलगानसे प्रसन्न होकर वहाँसे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ पड़ा ॥ १५८ ॥ जैसे सूर्यभगवान्का प्रबल तेज उनके रथमें जुते सातों अश्वोंपर पड़नेके बाद सप्त द्वीपोंमें फैल जाता है, वैसे ही राजा ललितादित्यका प्रताप सात क्रमुकदेशों तथा कोंकण आदि सात देशोंमें व्याप्त

पश्चिमाब्धेर्मरुद्धूतस्तवीचेराविर्भवन्त्यभूत् । द्वारका तस्य सैन्यानां प्रवेशौत्सुक्यदायिनी ॥१६०॥
विन्ध्याद्रिस्तद्बलक्षुण्णधातुरेण्वावृताम्बरः । प्रत्यभात्यक्तमर्यादः कोपताम्र इवोन्नमन् ॥१६१॥
विशतां दशनश्रेण्यस्तस्यावन्तिषु दन्तिनाम् । महाकालकिरीटेन्दुज्योत्स्नया खण्डिताः परम् ॥१६२॥
सर्वतादृक्त्वमालोक्य जितप्रायास्ततो नृपान् । स प्राविशत्सुविस्तीर्णमपथेनोत्तरापथम् ॥१६३॥
राजभिस्तस्य तत्रोग्रैः संग्रामोऽभूत्पदे पदे । कुलाद्रिभिरिवेन्द्रस्य पक्षच्छेदोद्यमस्पृशः ॥१६४॥
काम्बोजानां वाजिशाला जायन्ते स्म हयोज्झिताः । ध्वान्तच्छलात्तद्विरुद्धैर्निरुद्धा महिषैरिव ॥१६५॥
तुःखाराः शिखरश्रेणीर्यान्तः संत्यज्य वाजिनः । कुण्ठभावं तदुत्कण्ठां निन्युर्दृष्ट्वा हयाननान् ॥१६६॥
त्रीन्वारान्समरे जित्वा जितं मेने स मुम्मुनिम् । सकृज्जयमरेर्वीरा मन्यन्ते हि घुणाक्षरम् ॥१६७॥
चिन्ता न दृष्टा भौट्टानां वक्त्रे प्रकृतिपाण्डुरे । वनौकसामिव क्रोधः स्वभावकपिले मुखे ॥१६८॥
तस्य प्रतापो दरदां न सेहेऽनारतं मधु । दरीणामोषधिज्योतिः प्रत्यूषार्क इवोदितः ॥१६९॥
कस्तूरीमृगसंस्पर्शो धृतकुङ्कुमकेसरः । सैन्यसीमन्तिनीस्तस्य संचस्कारोत्तरानिलः ॥१७०॥
शून्ये प्राग्ज्योतिषपुरे निर्जिहानं ददर्श सः । धूपधूमं वनप्लुष्टात्कालागुरुवनात्परम् ॥१७१॥
मरीचिकावितीर्णार्णोविभ्रमे वालुकाम्बुधौ । तद्गजेन्द्रा महाग्राहसमूहसमतां ययुः ॥१७२॥
तद्योधान्विगलद्धैर्यान्स्त्रीराज्ये स्त्रीजनोऽकरोत् । तुङ्गौ स्तनौ पुरस्कृत्य न तु कुम्भौ कवाटिनाम् ॥१७३॥
स्त्रीराज्यदेव्यास्तस्याग्रे वीक्ष्य कम्पादिविक्रियाम् । संत्रासमभिलापं वा निश्चिकाय न कश्चन ॥१७४॥

होकर सर्वत्र फैल गया ॥ १५९ ॥ वायुके झोंकेसे जहाँ पश्चिमी समुद्रकी ऊँची-ऊँची तरंगे उछल रही थीं, उन्हींके बीचमे विद्यमान द्वारका नगरीको देखकर वहाँ जानेके लिए उसके सैनिक अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे ॥ १६० ॥ उसकी सेनाके पदाघातसे उड़ी हुई तथा पृथिवी और आकाशको एकमे मिला देनेवाली गेरू आदि धातुओंकी धूल देखकर क्रुद्ध विन्ध्यपर्वत फिर अपनी मर्यादाका उल्लंघन करनेके लिए उद्यत जैसा दिखायी देने लगा ॥ १६१ ॥ अवन्ती अर्थात् उज्जयिनी नगरीमे प्रवेश करते समय राजा ललितादित्यकी सेनाके हाथियोंके दाँत भगवान् महाकालके किरीटमे विराजमान चन्द्रमाकी दीप्तिसे जैसे खण्डित होने लग गये ॥ १६२ ॥ तदनन्तर राजा ललितादित्य सब दिशाओंके राजाओंको परास्तप्राय समझकर पथविहीन उत्तरापथको ओर अग्रसर हुआ ॥ १६३ ॥ उस ओर उग्र प्रकृतिवाले राजाओंके साथ उसे पद-पदपर वैसे ही युद्ध करना पड़ा, जैसे प्राचीनकालमें पंख काटनेके लिए उद्यत इन्द्रके साथ पर्वतोंने घनघोर युद्ध किया था ॥ १६४ ॥ काम्बोज देशके राजाकी अश्वशाला अश्वोंसे खाली पड़ी थी। उनमे व्याप्त अन्धकारसे ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे उनपर भैंसोंने आक्रमण कर दिया हो ॥ १६५ ॥ राजा ललितादित्यके भयसे तुःखारगण अपने-अपने अश्व त्यागकर पहाड़ोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंपर भागे और वहाँ अश्वमुख किन्नरोंको देखकर वे उन्हींकी ओर आकृष्ट हो गये ॥ १६६ ॥ उसने वहाँके मुम्मुनि राजाको तीन वार परास्त करके ही पूर्णरीतिसे पराजित समझा। क्योंकि वीर लोग एक वार किये गये शत्रुके पराजयको घुणाक्षर न्यायसे आकस्मित समझते हैं ॥ १६७ ॥ स्वभावतः श्वेत वर्णवाले भूटानियोंके मुखपर राजा ललितादित्यके आतंकका असर नहीं दीखता था। जैसे स्वाभाविक रूपसे पीले या लाल मुखवाले वन्दरोंके मुखपर आये हुए क्रोधके चिह्नोंको नहीं देखा जा सकता ॥ १६८ ॥ जैसे प्रातःकालके समय उदित सूर्य पर्वतकी कन्दराओंमे चमकनेवाली औषधियोंकी ज्योतिको नहीं सह पाता, उसी प्रकार राजा ललितादित्य दरददेशवासियों द्वारा किया जानेवाला मद्यपान नहीं सह सका ॥ १६९ ॥ तभी कस्तूरी मृगोंकी नाभि तथा केसरके पुष्पोंसे सुगन्धित उत्तम वायु एक चतुर सेवककी तरह उसकी सेनारूपिणी सीमन्तिनी (नारी) का संस्कार करने लगा ॥ १७० ॥ उस राजाने जनशून्य प्राग्ज्योतिषपुरके वनमें जलते हुए कालागुरु (अगर) एवं धूपकी सुगन्धि सूँघी ॥ १७१ ॥ मृगतृष्णारूपी जलसमुद्रका भ्रम उत्पन्न करनेवाले उत्तरापथके वालुकासागरमे उस राजाके हाथी ग्राहोंके समान दिखायी देते थे ॥ १७२ ॥ स्त्रीराज्यमें वहाँकी स्त्रियोंने राजा ललितादित्यके सैनिकोंको अपने ऊँचे स्तनोंसे ही निष्प्रभ कर दिया—मतवाले हाथियोंके मस्तकोंसे नहीं ॥ १७३ ॥ उस

उत्तराः कुरवोऽविक्षंस्तद्भयाज्जन्मपादपान् । उरगान्तकसंत्रासाद्बिलानीव महोरगाः ॥१७५॥
जयार्जितघनः सोऽथ प्रविवेश स्वमण्डलम् । भिन्नेभमौक्तिकापूर्णपाणिः सिंह इवाचलम् ॥१७६॥
जालंधरं लोहरं च मण्डलानीतराणि च । प्रसादीकृत्य विदधे राजत्वं सोऽनुजीविनाम् ॥१७७॥
पराजयव्यञ्जनार्थं नाना लिङ्गानि पार्थिवाः । उग्रेण ग्राहितास्तेन वहन्त्यद्यापि निर्मदाः ॥१७८॥
वन्धमुद्राभिधानाय पश्चाद्बाहू तदाज्ञया । तुरुष्का दधते व्यक्तं मूर्धानं चार्धमुण्डितम् ॥१७९॥
क्षितिभृद्दाक्षिणात्यानां तिर्यक्त्वज्ञापनाय सः । पुच्छं महीतलस्पर्शि चक्रे कौपीनवाससि ॥१८०॥
न तत्पुरं न स ग्रामो न सा सिन्धुर्न सोऽर्णवः । न स द्वीपोऽस्ति यत्रासौ प्रतिष्ठां न विनिर्ममे ॥१८१॥
क्वचिच्चेष्टासमुचितं क्वचिच्च समयानुगम् । वाहुल्येन प्रतिष्ठानां स मानी नाम संदधे ॥१८२॥
सुनिश्चितपुरं चक्रे दिग्जये कृतनिश्चयः । सगर्वो दर्पितपुरं कृतवान्कृतकेशवम् ॥१८३॥
फलं गृह्णन्फलपुरं पर्णोत्सं पर्णमाददत् । क्रीडारामविहारं च क्रीडन्राजा विनिर्ममे ॥१८४॥
एकमूर्ध्वं नयद्रत्नमधः कर्षत्तथापरम् । वद्ध्वा व्यधान्निरालम्बं स्त्रीराज्ये नृहरिं च सः ॥१८५॥
दिगन्तरस्थे भूपाले तस्मिंस्तत्कर्मकृत्किल । पुरं विधाय तन्नाम्ना तत्कोपफलमन्वभूत् ॥१८६॥
ललिताख्ये पुरे तस्मिन्नादित्याय स भूपतिः । सग्रामां कान्यकुब्जोर्वीमभिमानोर्जितो ददौ ॥१८७॥
तेन हुष्कपुरे श्रीमान्मुक्तस्वामी व्यधीयत । बृहद्विहारो भूपेन सस्तूपश्च महात्मना ॥१८८॥

स्त्रीराज्यकी रानी जब कॉपती हुई उस राजाके सम्मुख आयी, तब कोई यह निर्णय नहीं कर सका कि वह भयसे कॉप रही है या कि पुरुषसंगमकी अभिलाषासे ॥ १७४ ॥ जिस प्रकार गरुडके भयसे सर्प विलोंमे घुस जाते हैं, उसी तरह उत्तरी कुरुदेशके राजे विपत्तिकालमे आश्रय देनेवाले वृक्षोंकी झुरमुटमें जा छिपे ॥१७५॥ जैसे सिंह हाथियोंको मारकर अपने पंजेमे चिपकी गजमुक्ताओंके साथ मॉदको लौटता है, उसी प्रकार राजा ललितादित्य विजयोपार्जित पुष्कल धनराशि अपने साथ लेकर कश्मीरमण्डलको लौटा ॥ १७६ ॥ वहॉ पहुँचकर उस राजाने अपने अन्यान्य सेवकोंको पारितोषिक रूपमें जालन्धर तथा लोहर आदि प्रान्त देकर उन्हे वहॉका राजा बना दिया ॥ १७७ ॥ उस क्रोधी राजाने अपनेसे पराजित राजाओंको अनेक पराजयसूचक चिह्न धारण करनेकी आज्ञा दी थी, वे उनको आज भी निरभिमान भावसे धारण करते हैं ॥ १७८ ॥ राजा ललितादित्यकी आज्ञासे तुरुष्क लोग वन्धनमुद्रा सूचित करनेके लिए अपने दोनों हाथ पीठपर रखते और आधा सिर मुँड़ाये रहते हैं ॥ १७९ ॥ दाक्षिणात्योंकी पशुता प्रदर्शित करनेके लिए उसने उन्हे अपनी धोतीका पुछल्ला लटकाये रहनेकी आज्ञा दी, जो बराबर धरतीको छूता रहे ॥ १८० ॥ इस जगतीतलमे कोई भी ऐसा नगर, गॉव, नदी, समुद्र एवं द्वीप नहीं रह गया था कि जिसमे राजा ललितादित्यके द्वारा देवमन्दिरका निर्माण न कराया गया हो ॥ १८१ ॥ उस स्वाभिमानी राजाने कहीं कार्यके और कहीं समयके अनुरूप उन मन्दिरोंकी प्रसिद्धि की ॥ १८२ ॥ उसने दिग्विजयके निश्चयके स्मारक रूपमे सुनिश्चितपुर नामक नगर बसाया और दिग्विजय करके लौटनेपर दर्पितपुर बसाकर उसमे केशवदेवको स्थापित किया ॥ १८३ ॥ इसी तरह विजयके समय जहॉ फल लिया था वहॉ फलपुर और जहॉ पत्ते लिये थे, वहॉ पर्णोत्स नगर बसाया। जहॉ उसने क्रीडा की थी, वहॉंपर क्रीडाराम नामका विहार बनवा दिया ॥ १८४ ॥ स्त्रीराज्यमें उसने नृसिंह भगवान्की ऐसी मूर्ति स्थापित की, जिसमे नीचे तथा ऊपर चुम्बक रहनेके कारण मूर्ति निराधार रुकी रहती थी ॥ १८५ ॥ राजा ललितादित्य जब दिग्विजयके प्रसंगवश बाहर था, तभी उसका काम देखनेवाले अधिकारीने उसके नामपर ललितपुर नामका एक नगर बसा दिया था। जिसके लिए उसे बादमे राजाका कोपभाजन बनना पड़ा ॥ १८६ ॥ तदनन्तर राजाने ललितपुरमें आदित्य भगवान्को स्थापित करके उसकी पूजाका कार्य संचालित करनेके लिए विजय द्वारा प्राप्त कान्यकुब्ज देशके सब गॉव उदारतापूर्वक उस मन्दिरके नाम लगा दिये ॥ १८७ ॥ उसी प्रकार उस महात्मा राजाने हुष्कपुरमे श्रीमुक्तस्वामीकी स्थापना करके एक बहुत बड़े विहार तथा स्तूपका

एकां कोटिं गृहीत्वा स दिग्जयाय विनिर्गतः। भूतेशाय ददौ शुद्ध्यै कोटीरेकादशागतः ॥१८९॥
स तत्र ज्येष्ठरुद्रस्य शिलाप्रासादयोजनम्। भूमिग्रामप्रदानं च विदधे वसुधाधिपः ॥१९०॥
चक्रे चक्रधरे तेन वितस्ताम्भःप्रतारणम्। विनिर्मायारघट्टालीस्तांस्तान्ग्रामान्प्रयच्छता ॥१९१॥
सोऽखण्डिताश्मप्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त च। मार्तण्डस्याद्भुतं दाता द्राक्षास्फीतं च पत्तनम् ॥१९२॥
लोकपुण्ये पुरं कृत्वा नानोपकरणावलीम्। प्रतिपादितवाञ्जिष्णुर्ग्रामैः साकं स विष्णवे ॥१९३॥
ततः परं परीहासशीलो भूलोकवासवः। विहसद्वासवावासं परिहासपुरं व्यधात् ॥१९४॥
विरेजे राजतो देवः श्रीपरीहासकेशवः। लिप्तो रत्नाकरस्वापे मुक्ताज्योतिर्भरैरिव ॥१९५॥
नाभीनलिनकिञ्जल्कपुञ्जेनेवानुरञ्जितः। अचकात्काञ्चनमयः श्रीमुक्ताकेशवो हरिः ॥१९६॥
महावराहः शुशुभे काञ्चनं कवचं दधत्। पाताले तिमिरं हन्तुं वहन्निव रविः प्रभाः ॥१९७॥
गोवर्धनधरो देवो राजतस्तेन कारितः। यो गोकुलपयःपूरैरिव पाण्डुरतां दधे ॥१९८॥
चतुष्पञ्चाशतं हस्तान्रोपयित्वा महाशिलाम्। ध्वजाग्रे दितिजारातेस्तार्क्ष्यस्तेन निवेशितः ॥१९९॥
चक्रे बृहच्चतुःशाला बृहच्चैत्यबृहज्जिनैः। राजा राजविहारं स विरजाः सततोर्जितम् ॥२००॥
तोलकानां सहस्राणि चतुर्भिरधिकानि सः। अशीतिं निदधे हेम्नो मुक्ताकेशवविग्रहे ॥२०१॥
तावन्त्येव सहस्राणि पलानां रजतस्य च। संधाय शुद्धधीश्चक्रे श्रीपरीहासकेशवम् ॥२०२॥
रीतिप्रस्थसहस्रैस्तु तेन तावद्भिरेव सः। व्योमव्यापिवपुः श्रीमान्बृहद्बुद्धो व्यधीयत ॥२०३॥
चतुःशालां च चैत्यं च तावता तावता व्यधात्। घनेनैवेति तस्यासन्पञ्च निर्मितयः समाः ॥२०४॥

निर्माण कराया ॥ १८८ ॥ राजा ललितादित्य केवल एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें लेकर दिग्विजयके लिए निकला था। किन्तु जब वह लौटा, तब ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्रायें शंकर भगवान्‌को अर्पित करके प्रायश्चित्त किया ॥ १८९ ॥ राजा ललितादित्यने वहाँ ज्येष्ठेश्वर रुद्रका पाषाणमन्दिर बनवाया और उसका खर्च चलानेके लिए बहुतेरे गाँव प्रदान किये ॥ १९० ॥ चक्रधर नामक स्थानमें उसने वितस्ता नदीपर रहट लगवाकर गाँवोंमें जल पहुँचानेका प्रबन्ध किया ॥ १९१ ॥ तदनन्तर उसने बड़े-बड़े प्रस्तरखण्डोंसे निर्मित प्राकारके द्वारा आवेष्टित एवं अंगूरकी लताओंसे शोभित एक नगर बसाया और उसमें मार्तण्डभगवान्‌की स्थापना की ॥ १९२ ॥ उस दिग्विजयी राजाने लोकपुण्यमें विष्णुभगवान्‌को स्थापित करके उन्हें अनेक ग्राम एवं बहुतेरे उपकरण अर्पित किये ॥ १९३ ॥ देवराज इन्द्रतुल्य प्रभावशाली उस राजाने अमरावतीपुरीका परिहास करनेवाला परिहासपुर नगर बसाया और उसमे परिहासकेशव नामकी रजतमयी मूर्ति स्थापित की ॥ १९४ ॥ उन भगवान् परिहासकेशवका स्वरूप क्षीरसागरशायी विष्णुके मुक्तामय आभूषणोंकी ज्योतिसे उज्ज्वल शरीरकी तरह चमकीला था ॥ १९५ ॥ उस राजाने मुक्ताकेशव नामक विष्णुभगवान्‌की एक स्वर्णमयी मूर्ति भी स्थापित की थी, जो विष्णुकी नाभिसे जायमान कमलकी केसर सरीखी पीतवर्ण थी ॥ १९६ ॥ उसके द्वारा स्थापित वराहभगवान्‌की स्वर्णकवचधारिणी प्रतिमा पाताललोकमें विद्यमान गहरे अँधेरेको नष्ट करनेके लिए प्रभासम्पन्न सूर्यनारायणके समान देदीप्यमान दीखती थी ॥ १९७ ॥ इसी तरह उसने गोकुलकी गौओंके दुग्धकी भाँति शुभ्र श्रीगोवर्धनदेवकी रजतमयी प्रतिमा स्थापित की थी ॥ १९८ ॥ चौवन हाथ ऊँचा एक पाषाणस्तम्भ बनवाकर उसके सिरेपर सर्पोंके शत्रु गरुड़जीकी स्थापना की ॥ १९९ ॥ उस निरभिमानी राजाने बड़े-बड़े चौमहले भवनों, विस्तृत चैत्यों एवं विशाल जिनमूर्तियों युक्त राजविहारका भी निर्माण कराया ॥ २०० ॥ उसमें उस राजाने चौरासी हजार तोले सोनेका उपयोग किया था ॥२०१॥ उतना ही अर्थात् चौरासी हजार तोले चाँदीका उपयोग करके उस शुद्धबुद्धि राजाने श्रीपरिहासकेशवकी प्रतिमा बनवायी थी ॥ २०२ ॥ भगवान् बुद्धकी आकाशव्यापी विशाल मूर्तिको उसने चौरासी हजार प्रस्थ (सेर) काँसेसे बनवाया था ॥ २०३ ॥ एक समान लागतसे उसने इन मूर्तियोंके लिए उतने ही श्रेष्ठ, उतने ही विशाल और उतने ही सुन्दर चैत्य (मन्दिर) बनवाये थे। इस

राजतान्कापि सौवर्णान्कापि देवान्विनिर्ममे । पार्श्वेषु मुख्यदेवानां पार्षदो धनदोपमः ॥२०५॥
कियन्ति तत्र रत्नानि ग्रामान्परिकरांस्तथा । स प्रादादिति कः शक्तः परिच्छेत्तुमियत्तया ॥२०६॥
अवरोधैरमात्यैश्च सेवकैश्च नरेश्वरैः । तत्र प्रतिष्ठाः शतशो विहिता भुवनाद्भुताः ॥२०७॥
राज्ञी कमलवत्यस्य कमलाहट्टकारिणी । राजतं विपुलाकारं कमलाकेशवं व्यधात् ॥२०८॥
अमात्यो मित्रशर्मापि चक्रे मित्रेश्वरं हरम् । श्रीकय्यस्वामिनं चक्रे लाटः कय्याभिधो नृपः ॥२०९॥
श्रीमान्कय्यविहारोऽपि तेनैव विदधेऽद्भुतः । भिक्षुः सर्वज्ञमित्रोऽभूत्क्रमाद्यत्र जिनोपमः ॥२१०॥
तुःखारश्चङ्कुणश्चक्रे स चङ्कुणविहारकृत् । भूपचित्तोन्नतं स्तूपं जिनान्हेममयांस्तथा ॥२११॥
ईशानदेव्या तत्पत्न्या खातास्बु प्रतिपादितम् । सुधारसमिव स्वच्छमारोग्याधायि रोगिणाम् ॥२१२॥
ललितादित्यभूभर्तुर्वल्लभा चक्रमर्दिका । सहस्राण्योकसां सप्त तत्र चक्रपुरं व्यधात् ॥२१३॥
आचार्यो भप्पटो नाम विदधे भप्पटेश्वरम् । अन्येऽपि रक्कटेशाद्या बहवो बहुभिः कृताः ॥२१४॥
अधिष्ठानान्तरेऽप्यत्र चङ्कुणेनाग्र्यमन्त्रिणा । सचैत्यः सुकृतोदारो विहारो निरमीयत ॥२१५॥
भिषगीशानचन्द्राख्यः स्यालश्चङ्कुणमन्त्रिणः । विहारमकरोल्लब्ध्वा तक्षकानुग्रहाच्छ्रियम् ॥२१६॥
एवं हेममयीमुर्वीं स कुर्वन्नुर्वरापतिः । गुणैरौदार्यशौर्याद्यैर्मघवानमलङ्घयत् ॥२१७॥
हेलयाऽपि विनिर्यान्ती वक्त्राद्वसुमतीपतेः । न कदाचन तस्याज्ञा देवैरप्युदलङ्घ्यत ॥२१८॥
तथाहि पूर्वपाथोधेस्तटे सकटको वसन् । आनीयन्तां कपित्थानीत्यादिदेश स जातुचित् ॥२१९॥

तरह परिहासपुर, मुक्ताकेशव, महावराह तथा बुद्धभगवान् इन पाँचों निर्माणोंकी लागत समान थी ॥ २०४ ॥ कुबेरके सदृश धनाढ्य राजा ललितादित्यने उपर्युक्त प्रत्येक मुख्य देवप्रतिमाके दोनों बगल सुवर्ण तथा चाँदीसे बनी उनके पार्षदोंकी मूर्तियाँ भी स्थापित की थीं ॥ २०५ ॥ उन मन्दिरोंकी सेवा-पूजाके लिए उसने कितने रत्न, कितने गाँव और कितने सेवक प्रदान किये थे, उनकी गिनती भला कौन कर सकता है ? ॥ २०६ ॥ इसी तरह उस राजाकी रानियों, मंत्रियों तथा मांडलिक राजाओंने भी सैकड़ों ऐसे मन्दिर बनवाये थे, जिन्हें समस्त भुवनमण्डलमें अद्भुत कहा जा सकता था ॥ २०७ ॥ उस राजाकी रानी कमलावतीने कमलाहट्ट नामका बाजार बसाया और उसमें कमलाकेशवकी एक विशाल रजतमयी प्रतिमा बनवाकर स्थापित की ॥ २०८ ॥ उसके मुख्यमन्त्री मित्रशर्माने मित्रेश्वर नामकी शिवमूर्ति स्थापित की और लाटदेशके माण्डलिक राजा कय्यने कय्य स्वामीकी स्थापना की ॥ २०९ ॥ उसने एक कय्यविहार भी बनवाया था। जिसमें जिन भगवानके समान तेजस्वी एवं सर्वज्ञ मित्र नामका भिक्षु रहा करता था ॥ २१० ॥ तुखारनिवासी चिंकुण नामके मन्त्रीने चिंकुणविहार बनवाया और उसमें राजा ललितादित्यके चित्ततुल्य उन्नत एक स्तूपका निर्माण कराके जिन भगवानकी अनेक स्वर्णमयी मूर्तियाँ स्थापित कीं ॥ २११ ॥ उसकी पत्नी ईशानदेवीने एक ऐसा उत्तम कुण्ड खोदवाया, जिसमें सदा स्वच्छ और अमृतके समान मीठा जल भरा रहता था और उस जलसे विविध रोगोंवाले रोगी नीरोग हो जाते थे ॥ २१२ ॥ राजा ललितादित्यकी एक अन्य पत्नी चक्रमर्दिका देवीने चक्रपुर नगर बसाया। उस नगरमें सात हजार घर थे ॥ २१३ ॥ आचार्य भप्पटने भप्पटेश्वर शिवकी स्थापना की। इसी प्रकार अन्यान्य सज्जनोंने रक्कटेश आदि देवताओंके मन्दिर बनवाये ॥ २१४ ॥ प्रधानमंत्री चिंकुणने एक अन्य नगरमें भी चैत्य और विहारका निर्माण करके अपनी उदारता दिखायी ॥ २१५ ॥ महामंत्री चिंकुणके साले ईशानचन्द्र वैद्यने तक्षक नागकी कृपासे सम्पत्ति प्राप्त कराके उसीसे एक बहुत ही सुन्दर तथा विशाल विहार बनवाया ॥ २१६ ॥ इस प्रकार सारी पृथिवीको स्वर्णमयी बनाते हुए राजा ललितादित्यने उदारता और वीरता आदि सद्गुणोंसे इन्द्रको भी नीचा दिखा दिया ॥ २१७ ॥ यदि खेलवाड़में भी उसके मुँहसे कोई आज्ञा निकल जाती थी तो देवता तक उसका उल्लंघन नहीं कर पाते थे ॥ २१८ ॥ एक बार वह राजा अपनी सेनाके साथ पूर्वी समुद्रके तटपर टिका हुआ था। सहसा उसने अपने सेवकोंको कैथेके फल ले

किंकर्तव्यतयान्धेषु पुरोगेषु स्थितेष्वथ । उपानयत्कपित्थानि दिव्यः कोऽपि पुमान्पुरः ॥२२०॥
अग्रादुपायनं गृह्णन्कृतसंज्ञो भुवा प्रभोः । कस्य त्वमिति पप्रच्छ प्रतीहारः प्रसृत्य तम् ॥२२१॥
सोऽभ्यधात्तं कपित्थानि दत्त्वा राज्ञः प्रियाण्यहम् । प्रहितोऽद्य महेन्द्रेण नन्दनोद्यानपालकः ॥२२२॥
रहो महेन्द्रसंदिष्टं वक्तव्यं किंचिदस्ति मे । इति श्रुत्वा प्रतीहारः सभां चक्रे स निर्जनाम् ॥२२३॥
ततो दिव्यः पुमानूचे शक्रस्त्वां वक्ति भूपते । क्षन्तव्यं पथ्यमप्येतत्सौजन्यान्निष्ठुरं वचः ॥२२४॥
तुर्ये युगेऽपि भूपाल दिक्पाला अपि ते वयम् । बिभृमो यत्प्रणम्याज्ञां श्रूयतां तत्र कारणम् ॥२२५॥
पुरा ग्रामगृहस्थस्य कस्यचित्पृथुसंपदः । जन्मान्तरे कर्मकरो हालिकोऽभूद्भवान्किल ॥२२६॥
एकदा तस्य ते ग्रीष्मे वाहयित्वा महावृषान् । श्रान्तस्य निर्जलेऽरण्ये क्षीणप्रायमभूदहः ॥२२७॥
ततः स्वामिगृहात्क्षुत्तृट्खिन्नस्य भवतोऽन्तिकम् । वारिकुम्भीमपूपं च गृहीत्वा कश्चिदाययौ ॥२२८॥
निर्धौतपाणिपादस्त्वं भोक्तुं संप्रस्तुतस्ततः । विप्रं कण्ठगतप्राणमपश्यः पुरतोऽतिथिम् ॥२२९॥
स त्वामवोचन्मा भुङ्क्ष्व दुर्भिक्षोपहतस्य मे । कण्ठे यियासवः प्राणा वर्तन्ते भोजनं विना ॥२३०॥
वारितः पार्श्वगेनापि तस्मै त्वं प्रीतिपूर्वकम् । पूपार्धं वारिकुम्भीं च प्रादाः प्रियमुदीरयन् ॥२३१॥
पात्रे प्रसन्नचित्तस्य काले दानेन तेन ते । अखण्डितानामाज्ञानां शतमासीत्त्रिविष्टपे ॥२३२॥
तेन वारिप्रदानेन वाञ्छामात्रेऽपि दर्शिते । प्रादुर्भवन्ति सुस्वादा नद्यो मरुपथेष्वपि ॥२३३॥
सत्क्षेत्रप्रतिपादितः प्रियवचोबद्धालवालावलिर्निर्दर्पेण मनःप्रसादपयसा निष्पन्नसेकक्रियः ।
दातुस्तत्तदभीप्सितं किल फलन्कालेऽतिबालोऽप्यसौ राजन्दानमहीरुहो विजयते कल्पद्रुमादीनपि ॥२३४॥

आनेकी आज्ञा दे दी ॥ २१९ ॥ वह आज्ञा सुनी तो वहाँ उसकी प्राप्ति असम्भव समझकर वे राजसेवक अकचका उठे। उसी समय कैथके फल लिये हुए एक दिव्यपुरुष उस राजाके समक्ष उपस्थित हो गया ॥ २२० ॥ राजा ललितादित्यके इशारेपर एक सेवकने उन फलोंको ले लिया और उस पुरुषसे पूछा—'आप कहाँसे आये हैं और किसके सेवक हैं ? उस पुरुषने उत्तर दिया कि 'मैं नन्दनवनका रक्षक हूँ और देवराज इन्द्रने राजा ललितादित्यके प्रिय कपित्थ फल देनेके लिए यहाँ भेजा है ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ मुझे एकान्तमें देवराजका एक सन्देश आपके महाराजको सुनाना है' । यह सुना तो उस प्रतिहारने तत्काल सब लोगोंको हटाकर राजसभाको एकान्त बना दिया ॥ २२३ ॥ तब उस दिव्य पुरुषने राजासे कहा—'राजन्! देवराज इन्द्रका कहना है कि मैं आपसे आपके हितकी एक बात कहता हूँ। संभव है कि उसमें कुछ निष्ठुरताका पुट हो, फिर भी वह पथ्यकारिणी है। इसलिए क्षमा कर दीजिएगा ॥ २२४ ॥ हे महाराज! इस कलियुगमें भी हम दिक्पाल लोग जो आपकी आज्ञाका पालन करते हैं, उसका कारण सुनिये ॥ २२५ ॥ पूर्वजन्ममें आप एक अत्यन्त धनाढ्य किसानके यहाँ हल चलानेकी नौकरी करते थे ॥ २२६ ॥ एक बार आप एक निर्जन वनमें खेत जोत रहे थे। इस प्रकार दिनभर बैलोंको हाँकते हुए आप बहुत थक गये और तभी शाम हो गयी ॥ २२७ ॥ उसी समय आपके स्वामीका एक सेवक पानीकी कुप्पी तथा कुछ पुए लेकर थके हुए आपके पास पहुँचा ॥ २२८ ॥ हाथ-पैर धोकर जब आप भोजन करनेको उद्यत हुए, उसी समय क्षुधाके कारण मरणासन्न एक ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ उपस्थित हुआ ॥ २२९ ॥ उसने कहा—'महानुभाव! भूखके मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। मैं दुर्भिक्षका मारा हूँ। अतएव आप यह अन्न स्वयं न खाकर मुझे दे दीजिये' ॥ २३० ॥ उस समय अपने पार्श्ववर्तीके रोकनेपर भी आपने मीठी बातें करते हुए अपना आधा भोजन और पानी उस ब्राह्मणको दे दिया ॥ २३१ ॥ उस विपत्तिमें भी आपने प्रसन्नतापूर्वक उस सत्पात्रको जो अन्नदान दिया था, उस पुण्यके प्रभावसे आपकी सौ आज्ञायें अखण्डितरूपमें माननेका हम स्वर्गवासी देवताओंने निश्चय किया था ॥ २३२ ॥ उसको आपने जो जल दिया था, उस पुण्यके प्रभावसे मरुभूमिमें भी आपके इच्छानुसार सुस्वादु जलसे भरी नदियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ॥ २३३ ॥ सुपात्ररूपी उत्तम क्षेत्रमें रोपा गया, मधुर भाषणरूपी थालेसे वेष्टित एवं निर्मल अन्तःकरण-

अल्पावशेषास्तास्त्वद्य सन्त्याज्ञास्तव भूपते । वचोऽलङ्घ्यं क्षपयतो तत्र तत्राविचारतः ॥२३५॥
अपि चेतरभूपालसुलभं महतः सतः । कस्माद्विचारशून्यत्वं तवापि हृदि रोहति ॥२३६॥
दिनानि कतिचिद्यानि कर्मारेषु घनागमे । जायन्ते तानि पूर्वाब्धौ फलानि शिशिरे कुतः ॥२३७॥
विगाहसे दिशं यां यां तत्र तत्रैव तत्पतेः । त्वदाज्ञाग्रहणे यत्नः पूर्वदानप्रभावतः ॥२३८॥
आशां श्रितस्य माहेन्द्रीमाज्ञा स्वल्पापि तेऽधुना । गृहीता कथमप्येषा शक्रेणाभग्नशक्तिना ॥२३९॥
विना प्रयोजनं मुख्यं तस्मादाज्ञा त्वया क्वचित् । नैवमेव पुनर्देया विरलाः सन्ति ता यतः ॥२४०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन्भूपालो विपुलाशयः । चिन्तयन्दानमाहात्म्यं परं विस्मयमाययौ ॥२४१॥
ततः प्रभृति तादृक्षयोग्यार्थप्राप्तिलालसः । परिहासपुरे चक्रे स्थिरां गुर्वीं स पर्विणीम् ॥२४२॥
सहस्रभक्तमित्येवं प्रख्यातायां सदक्षिणम् । लक्षमेकोत्तरं भक्तपात्राणां यत्र दीयते ॥२४३॥
अभिप्रायेण तेनैव पत्तनान्यूषरेषु सः । चक्रे यत्रेषु तृष्णार्तः कश्चिज्जातु पिबेदपः ॥२४४॥
संजग्राह स देशेभ्यस्तांस्तानन्तरविन्नरान् । विकचान्सुमनःस्तोमान्पादपेभ्य इवानिलः ॥२४५॥
तेन कङ्कणवर्षस्य रससिद्धस्य सोदरः । चङ्कुणो नाम भुःखारदेशान्नीतो गुणोन्नतः ॥२४६॥
स रसेन समानन्त्वन्कोशे बहुसुवर्णताम् । पद्माकर इवाब्जस्य भूभृतोऽभूच्छुभावहः ॥२४७॥
रुद्धः पञ्चनदे जातु दुस्तरैः सिन्धुसंगमैः । तटे स्तम्भितसैन्योऽभूद्राजा चिन्तापरः क्षणम् ॥२४८॥
ततोऽम्बुतरणोपायं तस्मिन्पृच्छति मन्त्रिणः । अगाधेऽम्भसि रोधःस्थश्चङ्कुणो मणिमक्षिपत् ॥२४९॥

की प्रसन्नतारूपी जलसे सिंचित एक छोटा-सा दानरूपी वृक्ष समय आनेपर दाताको अभिलषित फल देकर कल्पवृक्ष आदि बड़े-बड़े दानियोंको भी तुच्छ बना देता है ॥ २३४ ॥ अतएव हे राजन् ! आपकी आज्ञायें अलंघ्य होती हुई भी परिमित हैं। अबतक आपने अविचारपूर्वक उन आज्ञाओंका उपयोग किया है। अतएव अब उनकी संख्या बहुत थोड़ी रह गयी है ॥ २३५ ॥ आप जैसे विचारसम्पन्न राजाके मनमें साधारण राजाओंके समान विवेकहीन भावनायें क्यों उत्पन्न होती हैं ? ॥ २३६ ॥ हे महाराज ! जिन्हें आपने माँगा है, वे कपित्थफल कर्मारोंमें भी वर्षाऋतुमें कुछ ही समय मिलते हैं, तब इस शिशिरऋतुमें समुद्रतटपर ये फल कैसे मिलेंगे ॥ २३७ ॥ पूर्वकालमें किये हुए उस दानके प्रभावसे आप जिस किसी भी दिशामें जायेंगे, उस दिशाके दिक्पालको आपकी आज्ञाका पालन करना पड़ेगा ॥ २३८ ॥ इस समय पूर्व दिशामें आये हुए आपकी इस तुच्छ आज्ञाका पालन सर्वशक्तिमान देवेन्द्रने स्वयं किया है ॥ २३९ ॥ अतएव अब आप विना किसी विशेष प्रयोजनके अपनी आज्ञाका दुरुपयोग न करियेगा। क्योंकि वे अब बहुत थोड़ी रह गयी हैं ॥ २४० ॥ इतना कहकर जब वह पुरुष अन्तर्धान हो गया, तब उस उदारहृदय राजा ललितादित्यको दानका माहात्म्य जानकर बहुत विस्मय हुआ ॥ २४१ ॥ तदनन्तर दानके द्वारा अनन्त पुण्य संचित करनेके लिए उसने उसी दिनसे परिहासपुरमें पर्वमस्त्री एक बहुत बड़ा उत्सव आरम्भ कर दिया ॥ २४२ ॥ उस उत्सवमें ब्राह्मणोंको प्रतिदिन चावलभरे तथा दक्षिणायुक्त एक लाख एक पात्र दान दिये जाते थे। उस उत्सवका नाम था—सहस्रभक्त ॥ २४३ ॥ इसी अभिप्रायसे उसने ऊसर प्रदेशोंमें भी नगर बसा दिया कि यदि वहाँ कोई प्यासा प्राणी पहुँचे तो उसे पीनेके लिए पानी मिल जाय ॥ २४४ ॥ जस वायु विभिन्न वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंका संग्रह करता है, उसी प्रकार उस गुणग्राही राजाने कई देशोंके विद्वानोंका संग्रह कर रक्खा था ॥ २४५ ॥ भुःखार देशसे महान् रसशास्त्रीके सोदर्य गुणवान सहोदर भ्राता चंकुणको उसने बुलवाकर अपने यहाँ रक्खा था ॥ २४६ ॥ वह रसशास्त्री रासायनिक प्रयोगोंके द्वारा सुवर्ण बनाकर राजकोषको सदा स्वर्णसम्पन्न बनाये रखता था। वह कमलके लिए सरोवरके सदृश उस राजाके लिए बहुत उपयोगी था ॥ २४७ ॥ एक बार अपनी सेना समेत वह राजा पंजाबकी दुस्तर नदियोंके संगमपर रुक जानेके लिए विवश होकर बहुत चिन्तित हुआ ॥ २४८ ॥ वह राजा अपने मंत्रियोंसे पार जानेका कोई उपाय पूछ रहा था। उसी समय चंकुणने नदीके अगाध जलमें एक मणि

तत्प्रभावाद्द्विधाभूतं सरिन्नीरं ससैनिकः। उत्तीर्णो नृपतिस्तूर्णं परं पारं समासदत् ॥२५०॥
मणिमन्येन मणिना चङ्कुणोऽप्याचकर्ष तम्। सलिलं प्रागवस्थं च क्षणेन सरितामभूत् ॥२५१॥
परिभाव्याद्भुतं तत्स प्रशंसामुखराननः। प्रणयाच्चङ्कुणं राजा मणियुग्ममयाचत ॥२५२॥
स तमाह स्म विहसन्कर्मैमौ कुरुतो मणी। योग्यौ मत्पाणिगावेव किं स्यात्स्वीकरणेन वः ॥२५३॥
सामान्येष्वेव लभते सोत्कर्षं वस्तु संप्रथाम्। महत्सु तस्य का शोभा विविधोत्कृष्टवस्तुषु ॥२५४॥

प्रस्यन्दनं शशिमणेर्गणयन्ति तावद्यावत्स्थितो जलनिधेः पुलिनैकदेशे।
स स्वीक्रियेत यदि तेन यतस्तदास्य स्यन्दः स्फुरन्नपि न तत्सलिले विभाव्यः ॥२५५॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्राजा सस्मितमब्रवीत्। संभावयसि किं रत्नाभ्यामभ्यधिकं मम ॥२५६॥
अतोऽधिकतरं यद्वा किंचिद्रत्नं मम पश्यसि। तदादाय प्रयच्छेदं निष्क्रयेण मणिद्वयम् ॥२५७॥

ततो महान्प्रसादोऽयमित्युक्त्वा चङ्कुणोऽब्रवीत्।
स्वायत्ते स्वामिनो रत्ने मह्यमिष्टं तु दीयताम् ॥२५८॥

गजस्कन्धेऽधिरोप्यैतन्मागधेभ्यो यदाहृतम्। दत्त्वा सुगतबिम्बं तज्जनोऽयमनुगृह्यताम् ॥२५९॥
सलिलोत्तरणोपायो मणिर्देवेन गृह्यताम्। संसारोत्तरणोपायः सुगतो मह्यमर्प्यताम् ॥२६०॥
इति तेनार्थितो युक्त्या जिनबिम्बं ददौ नृपः। वाग्मिनां कस्य सामर्थ्यं परिपन्थयितुं वचः ॥२६१॥
स्वविहारेऽथ भगवान्स तेन विनिवेशितः। कपिशाभिः सकाषाय इव यो भाति कान्तिभिः ॥२६२॥
दृश्यतेऽद्यापि कटकैरायसैः परिवेष्टितः। गजस्कन्धनिबद्धस्य सूचको यस्य विष्टरः ॥२६३॥
अभिप्रायानुसारेण प्रकटीकुरुते श्रियम्। अहो महाप्रभावाणां भूपतीनां वसुंधरा ॥२६४॥

डाल दिया ॥ २४९ ॥ उस मणिके प्रभावसे नदीका जल दो भागोंमें विभक्त हो गया, जिससे सेना समेत राजा ललितादित्य शीघ्र ही नदी पार कर गया ॥ २५० ॥ तदनन्तर चंकुणने एक दूसरे मणिके सहारे वह मणि भी पानीमेंसे निकाल लिया। मणि निकलते ही नदीका जल फिर पहलेकी तरह हो गया ॥ २५१ ॥ उन दोनों मणियोंकी अद्भुत महिमा देखकर राजाने उनकी प्रशंसा की और वह चंकुणसे उन्हें माँगने लगा ॥ २५२ ॥ तब चंकुणने हँसकर कहा—'राजन्! मेरे हाथमें रहनेपर ही ये मणि काम करते हैं। तब आप इनको लेकर क्या करिएगा ॥ २५३ ॥ किसी उत्तम वस्तुकी विशिष्ट योग्यता उसी समय तक प्राप्त होती है, जब तक वह साधारण वस्तुओंमें रहती है। इसके विपरीत जहाँ अगणित उत्तम वस्तुयें विद्यमान हों, वहाँ उसका क्या महत्त्व होगा? ॥ २५४ ॥ क्योंकि चन्द्रकान्त मणि जबतक समुद्रसे दूर रहता है, तभी तक उसके झरनेका महत्त्व होता है। वह समुद्रमें झरे तो उसकी क्या विशेषता रह जायगी?' ॥ २५५ ॥ इतना कहकर जब चंकुण चुप हो गया, तब मुस्कुराते हुए राजाने कहा—'तो क्या आप समझते हैं कि मेरे पास इससे भी उत्कृष्ट वस्तुयें हैं? ॥ २५६ ॥ यदि आप इससे भी उत्तम कोई वस्तु मेरे पास देखते हों तो उसे लेकर इन दोनों मणियोंको उसके बदलेमें मुझे दे दीजिए' ॥ २५७ ॥ यह सुनकर चंकुणने कहा—'महाराज! तब तो मेरे ऊपर श्रीमान्‌की महती कृपा है। ये दोनों मणि मैं आपको सादर समर्पित कर रहा हूँ। अब इनके बदलेमें मेरी अभीष्ट वस्तु आप मुझे देनेकी कृपा करिए ॥ २५८ ॥ हे प्रभो! आपके पास मगधदेशसे हाथीपर रखकर बुद्ध भगवान्‌की जो मूर्ति आयी हुई है, उसे आप मुझको दे दीजिए ॥ २५९ ॥ इस प्रकार जलसंतरणके साधनस्वरूप इन मणियोंको लेकर संसारसागरको पार करनेका साधन वह बुद्धमूर्ति मुझे प्रदान करिए' ॥ २६० ॥ चंकुणकी युक्तिसंगत प्रार्थनासे प्रसन्न होकर राजाने उसे वह बुद्धप्रतिमा दे दी। क्योंकि कुशल वक्ताकी प्रार्थनाको टालनेकी सामर्थ्य भला किसमें है? ॥ २६१ ॥ भिक्षुओंके कौपीन सदृश गेरुए रंगकी वह चमकीली बुद्धप्रतिमा लेकर चंकुणने अपने विहारमें स्थापित की ॥ २६२ ॥ लोहेके कटकोंसे आवेष्टित उस प्रतिमाका सिंहासन आज भी हाथीके कन्धे पर बाँधे जानेकी सूचना दे रहा है ॥२६३॥ भगवती वसुन्धरा प्रभावशाली राजर्षियोंके इच्छानुसार कार्य करनेके

अशिक्षितं कदाचित्स स्वयं दमयितुं हयम् । निनायारण्यमेकाकी हयविद्याविशारदः ॥२६५॥
दूरान्निर्मानुपे तत्र ललनां ललिताकृतिम् । एकां ददर्श गायन्तीं नृत्यन्तीमपरामपि ॥२६६॥
क्षणाच्च ते समापय्य गीतनृत्ते मृगीदृशौ । प्रणम्य किंचिदुच्छन्त्यावपश्यद्दमयन्हयम् ॥२६७॥
तुरगं तं समारुह्य तत्रागच्छद्दिने दिने । दृष्ट्वा तथैव ते कान्ते गत्वाऽपृच्छत्सविस्मयः ॥२६८॥
तमूचतुस्ते नर्तक्यावावां देवगृहाश्रिते । यः शूरवर्धमानोऽयं ग्रामस्तत्रावयोर्गृहम् ॥२६९॥
इहत्यजीवनभुजां मातॄणामुपदेशतः । अस्मत्कुलेन नियतं नृत्तमत्र विधीयते ॥२७०॥
रूढिः परंपरायाता सेयमस्मद्गृहे स्थिता । आवामन्योऽपि वा नात्र निमित्तं ज्ञातुमीश्वरः ॥२७१॥

एवं वचस्तयोः श्रुत्वा नृपोऽन्येद्युः सविस्मयः ।
तदुक्त्या मेदिनीं कृत्स्नां कारुभिर्निरदारयत् ॥२७२॥

दूरं निर्हृतमृद्भिस्तैरथाद्राक्षीन्निवेदितम् । नृपतिः पिहितद्वारं जीर्णं देवगृहद्वयम् ॥२७३॥
उद्घाटितारर्विर्णैः पीठोत्कर्णैर्निवेदितौ । अपश्यत्केशवौ तत्र रामलक्ष्मणनिर्मितौ ॥२७४॥
परिहासहरेः पार्श्वे पृथक्कृत्वा शिलागृहम् । स रामस्वामिनः श्रीमान्प्रतिष्ठाकर्म निर्ममे ॥२७५॥
देवोऽपि लक्ष्मणस्वामी तथैवाभ्यर्थ्य पार्थिवम् । चक्रमर्दिकया चक्रेश्वरपार्श्वे निवेशितः ॥२७६॥
दिग्जये पुरुषः कश्चिद्दृत्तप्रत्यग्रनिग्रहः । अग्रे न्यक्षिपदात्मानं गजारूढस्य भूभुजः ॥२७७॥
तं कृत्तपाणिघ्राणादिव्रणैः शोणितवर्षिणम् । त्राणार्थिनं कारुणिकः स्वोदन्तं पृष्टवान्नृपः ॥२७८॥
स तस्मै सिकतासिन्धुसविधस्थस्य भूपतेः । प्रख्यातमूचे सचिवमात्मानं हितकारिणम् ॥२७९॥

लिए सदा सन्नद्ध रहती है ॥ २६४ ॥ अश्वशास्त्रमें निपुण राजा ललितादित्य एक अशिक्षित घोड़ेको सिखानेके लिए एक दिन वनमें अकेला ही चला गया ॥२६५॥ उस निर्जन वनमें उसने दूरसे एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको गाते तथा दूसरीको नाचते देखा ॥ २६६ ॥ वहाँ ही राजा अपना घोड़ा दौड़ा रहा था। कुछ देर बाद वे महिलायें नृत्य-गीत समाप्त करनेके पश्चात् उस स्थानको प्रणाम करके चली गयीं ॥ २६७ ॥ यह देखकर राजाका कौतूहल बढ़ा और वह नित्य घोड़ेपर सवार होकर वहाँ जाने तथा उन सुन्दरियोंको देखने लगा। अन्तमें एक दिन घोड़ेसे उतरकर राजाने उन दोनोंका परिचय पूछा ॥ २६८ ॥ तब उन दोनों सुन्दरियोंने कहा—'यहाँकी ही जीविका-पर जीवन निर्वाह करनेवाली अपनी माताओंके आदेशानुसार हमारे कुलकी नर्तकियाँ यहाँ नित्य नाचती हैं। हम देवदासियाँ हैं और यहाँसे कुछ ही दूर शूरवर्धन ग्राममें रहती हैं ॥ २६९ ॥ २७० ॥ 'हमारे घरानेमें यह प्रथा परम्परासे चली आ रही है। ऐसा क्यों होता है, इसका कारण हमें अथवा यों कह लीजिए कि किसीको नहीं मालूम है' ॥ २७१ ॥ उनकी बात सुनकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ और दूसरे ही दिन उसने मजदूरों द्वारा वह भूमि खोदवा डाली, जिसे उन नर्तकियोंने दिखाया था ॥ २७२ ॥ नीचे बहुत दूर तक खोदकर जब मिट्टी हटायी गयी तो उसके भीतरसे अत्यन्त जीर्ण दो मन्दिर निकले। उन दोनोंका द्वार बन्द था ॥ २७३ ॥ उनका द्वार खोलकर राजा भीतर गया तो वहाँ उसने केशव स्वामीकी दो मूर्तियाँ देखीं। उनके सिंहासनपर उत्कीर्ण अक्षरोंसे ज्ञात हुआ कि राम-लक्ष्मणने उन्हें स्थापित किया था ॥ २७४ ॥ तदनन्तर राजा ललितादित्यने परिहास-पुरमें हरिमन्दिरके पास एक प्रस्तरमय देवालय बनवाकर उसमें रामस्वामीकी प्रतिष्ठा की ॥ २७५ ॥ इसी तरह उस राजाकी पत्नी चक्रमर्दिका देवीने राजासे प्रार्थना करके लक्ष्मण स्वामीकी मूर्ति प्राप्त की और चक्रेश्वरके पास एक नवीन मन्दिर बनवाकर उस मूर्तिकी स्थापना की ॥ २७६ ॥ एक समय जब वह राजा हाथीपर सवार होकर दिग्विजयके लिए जा रहा था, तभी एक पुरुष राजाके आगे आ गिरा। उसे देखनेसे ज्ञात होता था कि वह कोई दण्डित व्यक्ति है ॥ २७७ ॥ उसके कटे हुए हाथों तथा नासिकादि अंगोंसे रुधिर बह रहा था और वह रक्षाके लिए बारम्बार प्रार्थना करता था। उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर दयालु राजाने उसका वृत्तान्त पूछा ॥ २७८ ॥ तब उसने अपने आपको सिकतासिन्धुके निकट निवासी एक राजाका हितकारी एवं विश्वस्त

प्रणतिर्ललितादित्यनृपतेः क्रियतामिति । हितं कथयतः स्वस्य निग्रहं च ततो नृपात् ॥ युग्मम् ॥२८०॥
प्रतिजज्ञे च भूपेन ततस्तत्स्वामिनिग्रहः । रूढव्रणोऽगदंकारैः स चाकार्यत सत्कृतः ॥२८१॥
ततो विहितयात्रं तं स मन्त्री कृतसत्क्रियः । कदाचिदेवमवदद्विजने जगतीभुजम् ॥२८२॥
एवंविधस्य कायस्य राजन्यत्परिरक्षणम् । तत्र वैरविशुद्ध्याशा विडम्बयति मामियम् ॥२८३॥
वाष्पैर्जलाञ्जलिं दत्त्वा दुःखाय च सुखाय च । कृतकृत्यो ध्रुवं जह्यामवमानहतानसून् ॥२८४॥
अपकृत्याधिकं शत्रोरपकारं जयेन्मितम् । गम्भीरं प्रतिनदेव निनादं नदतो गिरिः ॥२८५॥
इतो मासैस्त्रिभिर्गम्या भूः प्राप्या त्वरितं कथम् । यदा वा प्राप्यते वैरी तदा तत्रैव किं वसेत् ॥२८६॥
मासार्धलङ्घ्यं पन्थानं तस्मादुपदिशामि ते । गृहीत्वा स जलं गम्यश्चमूनां किं तु निर्जलः ॥२८७॥
तद्भूमिजा बन्धवो मे न वक्ष्यन्ति त्वदागमम् । सामात्यान्तःपुरो राजा छद्मनानेन गृह्यते ॥२८८॥
इत्युक्त्वा सोऽकरोत्तस्य प्रवेशं वालुकार्णवे । पक्षे क्षीणे च कटको निस्तोयः समपद्यत ॥२८९॥
तत्राप्यहानि द्वित्राणि वहन्नेवाभवन्नृपः । तृष्णार्तं वीक्ष्य सैन्यं च मन्त्रिणं तमभाषत ॥२९०॥
उक्तकालाधिका यावद्वासरा गमिताः पथि । मुमूर्षु तृष्णया सैन्यं तदध्वा शिष्यते कियान् ॥२९१॥
ततो विहस्य सोऽवादीज्जिगीषो शेषमध्वनः । किं पृच्छत्यरिराष्ट्रस्य यमराष्ट्रस्य वा भवान् ॥२९२॥
त्वं हि स्वामिहितायैव समुपेक्ष्य स्वजीवितम् । मृत्युवक्त्रं सकटको मया युक्त्या प्रवेशितः ॥२९३॥
नेदं मरुर्महामात्रं भीमोऽयं वालुकार्णवः । नाम्भोऽत्र लभ्यते क्वापि कस्त्राता तेऽद्य भूपते ॥२९४॥

मंत्री बनाया ॥ २७९ ॥ साथ ही यह भी कहा—'महाराज ! मैंने अपने राजासे कहा था कि 'आप राजा ललितादित्यके शरणागत हो जाइए' मेरे यह कल्याणकारी वचन कहनेपर उसने नाक-कान आदि अंग काटकर मुझे इस प्रकार दण्डित किया है' ॥ २८० ॥ यह सुनकर राजा ललितादित्यने उसके स्वामीको दण्ड देनेकी प्रतिज्ञा की और अपने वैद्यों द्वारा चिकित्सा कराके थोड़े ही समयमें उसे चंगा करा दिया ॥ २८१ ॥ तदनन्तर उसको साथ लेकर वह राजा अपनी सेना सहित जब आगे बढ़ा, तब एक दिन एकान्तमें उस सचिवने कहा—॥ २८२ ॥ 'राजन् ! उस दुष्ट राजासे बदला लेनेके लिए ही मैंने अपने इस अधम शरीरको जीवित रक्खा है। अब उस कार्यमें विलम्ब होनेसे मेरी आत्मा अधीर हो रही है ॥ २८३ ॥ इस कार्यके पूर्ण होते ही मैं सुख तथा दुःख दोनोंको आँसुओंकी जलांजलि देकर अपनी यह अपमानित देह त्याग दूँगा ॥ २८४ ॥ जैसे पर्वतपर खड़े होकर चिल्लानेवाले व्यक्तिको पर्वत प्रतिध्वनिके रूपमें उस चिल्लाहटका उत्तर देता है, उसी प्रकार शत्रुके द्वारा किये छोटेसे अपकारका बदला बहुत बड़ी हानि पहुँचाकर लेना चाहिए ॥ २८५ ॥ महाराज ! मेरे शत्रुके राज्यमें पहुँचनेके लिए यहाँसे तीन महीनेका रास्ता है, तब हम वहाँ शीघ्र कैसे पहुँच सकते हैं ? इतने दिनोंमें पहुँचेंगे भी तो वह उस स्थानसे हट जायगा ॥ २८६ ॥ अतएव मैं पन्द्रह दिनका मार्ग बता रहा हूँ। किन्तु उस रास्तेपर जल नहीं मिलता । अतएव जल साथ लेकर ही उस मार्गपर चलना ठीक होगा ॥ २८७ ॥ उस मार्गपर मेरे आप्तजन रहते हैं। वे आपके आगमनका समाचार उसे नहीं मालूम होने देंगे। इससे आप आकस्मिक आक्रमण करके मन्त्रियों, रानियों तथा कोश आदिके साथ उस राजाको अनायास गिरफ्तार कर लेंगे' ॥ २८८ ॥ ऐसा कहकर वह सचिव सेना समेत राजा ललितादित्यको सिकता-सिन्धुके मार्गसे लेकर चला। एक पखवारा पूरा होते-होते सेनाके पासका जल चुक गया ॥ २८९ ॥ फिर भी राजा बिना जलके ही दो-तीन दिन बराबर चलता रहा। तदनन्तर सेनाको प्याससे दुखी देखकर राजाने उस सचिवसे कहा—॥२९०॥ 'महानुभाव ! आपने जितना समय बताया था, हम लोग उससे बहुत ज्यादा दिन चल चुके। हमारे सैनिक प्याससे तड़प रहे हैं। अब कितना रास्ता बाकी है ?' ॥ २९१ ॥ तब उस सचिवने हँसकर कहा—हे विजयेच्छुक राजन् ! आप शत्रुनगरके मार्गकी दूरी पूछ रहे हैं या यमलोककी ? ॥ २९२ ॥ अपने स्वामीका कल्याण करनेके लिए निजी प्राणोंकी भी कुछ चिन्ता न करके युक्तिपूर्वक मैंने सेना सहित आपको कालके गालमें पहुँचा दिया है ॥ २९३ ॥ हे राजन् ! यह केवल मरुभूमि ही नहीं है, बल्कि बड़ा भीषण वालुकासमुद्र है।

श्रुत्वेति पृतना कृत्स्ना समभृद्वीतमौष्ठ्वा । करकाभ्रंशितफला स्तम्भशेषेव शालिभूः ॥२९५॥
संत्यक्तजीविताशानां भीरूणां क्रन्दितध्वनिम् । भुजमुद्यम्य शमयंस्ततो नृपतिरब्रवीत् ॥२९६॥
अमात्य तव कृत्येन प्रीताः स्वामिहितैषिणः । मरावप्यत्र शीतार्ता इव रोमाञ्चिता वयम् ॥२९७॥
अभेद्यसारे मयि तु व्यक्तमेवंविधोऽपि ते । प्रयासः कुण्ठतां यातो लोहं वज्रमणाविव ॥२९८॥
मणिभ्रमाद्वह्निकणं गृह्णन्दग्धा इवाङ्गुलीः । त्वं मिथ्यावयवांल्लूनानद्य शोचिष्यसि ध्रुवम् ॥२९९॥
निदेशेनैव मे पश्य पयः सूतेऽत्र मेदिनी । रसितेनाम्बुवाहस्य रत्नं वैडूर्यभूरिव ॥३००॥
इत्युक्त्वा सोऽम्बु निष्क्रष्टुं कुन्तेनोर्वी व्यदारयत् । उज्जिहीर्षुर्वितस्ताम्भः शूलेनेव त्रिलोचनः ॥३०१॥
अथोज्जगाम पातालक्ष्मीलीलास्मितच्छविः । रसातलात्सरित्साकं सैन्यानां जीविताशया ॥३०२॥
तस्य सेनाचराणां सा क्रमं चिच्छेद वाहिनी । वृथाव्ययीकृताङ्गस्य मन्त्रिणस्तस्य चेप्सितम् ॥३०३॥
लूनाङ्गोऽमङ्गलाशंसी स मन्त्री विफलश्रमः । स्वस्य भर्तुर्विवेशादौ नगरीमन्तकस्ततः ॥३०४॥
राज्ञापि कुटिलाचारी निगृह्य स महीपतिः । निजस्य मन्त्रिणस्तस्य तुल्यावस्था व्यधीयत ॥३०५॥
यथोपयोगं तेनैव स्थाने स्थाने प्रवर्तिताः । अद्यापि कुन्तवाहिन्यः प्रवहन्त्युत्तरापथे ॥३०६॥
सहस्रशः संभवन्तोऽप्यपरे भुवनाद्भुताः । अतिप्रसङ्गभङ्गेन तद्वृत्तान्ता न दर्शिताः ॥३०७॥
यन्निःशब्दजला वनाश्मपरुषे देशेतिघोरारवा यच्चाच्छाः समये पयोदमलिने कालुष्यसंदूषिताः ।
दृश्यन्ते कुलनिम्नगा अपि परं दिग्देशकालाविमौ तत्सत्यं महतामपि स्वसदृशाचारप्रवृत्तिप्रदौ ॥३०८॥

यहाँ जलके एक कणका भी मिलना असम्भव है। अब मृत्युसे आपको कौन बचायेगा ?' ॥ २९४ ॥ यह कर्णकटु वचन सुनकर सारी सेना उसी प्रकार म्लान हो गयी, जैसे ओले गिरनेसे धानके पौधोंका सारा दाना झर जाय और केवल पुआलके डंठल खड़े रह जायँ ॥ २९५ ॥ तदनन्तर जीवनसे निराश सैनिकोका करुण क्रन्दन सुनकर राजा ललितादित्यने भुजा उठाकर सेनाको सान्त्वना देते हुए कहा—॥ २९६ ॥ 'महाशय ! स्वामिभक्तिसे प्रेरित होकर आपने यह कार्य किया है। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और हर्षके कारण इस मरुभूमिमें भी शीतसे आर्त होनेके समान मुझे रोमाच हो आया है ॥ २९७ ॥ किन्तु मुझ जैसे अभेद्यसार पुरुषपर प्रयुक्त आपका प्रयास उसी प्रकार व्यर्थ हो गया, जैसे वज्रपर किया हुआ लौहप्रहार निष्फल हो जाता है ॥ २९८ ॥ मणिके भ्रमसे आगका कण उठा लेनेवाले मूर्ख मनुष्यको उँगलियाँ जब जल जाती है, तब उसे अपनी करनीपर पछतावा होता है। उसी तरह अब आपको भी व्यर्थ अपने अंग कटाकर पछताना पड़ेगा ॥ २९९ ॥ जैसे मेघके गरजते ही वैडूर्य-भूमिमें रत्न उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरी आज्ञासे अभी इस मरुभूमिमें भी जल निकलता हुआ आप देखेंगे' ॥ ३०० ॥ ऐसा कहकर उस राजाने जल निकालनेके लिए अपने भालेसे उसी प्रकार पृथिवीपर आघात किया, जैसे वितस्ता नदीसे जल निकालनेके लिए शंकरजीने अपने त्रिशूलसे प्रहार किया था ॥ ३०१ ॥ उसके ऐसा करनेपर सैनिकोंके जीवनकी आशाके साथ रसातलसे पातालक्ष्मीकी मुसकानके समान स्वच्छ जलसे लबालब भरी एक नदी बहने लगी ॥ ३०२ ॥ उस नदीने उस राजाकी सेनाके दैन्यके साथ ही उस नाक-कान कटवानेवाले धूर्त सचिवकी अभिलाषाओंका भी मूलोच्छेद कर डाला ॥ ३०३ ॥ इस प्रकार अपना प्रयास निष्फल होता देखकर वह सचिव अपने राजाके पास भाग गया। वहाँ अपशकुनके मूर्तरूप उस नकटे मंत्रीके पहुँचते ही ललितादित्यरूपधारी यमराज भी उस नगरीमें प्रविष्ट हो गया ॥ ३०४ ॥ वहाँ पहुँचकर राजा ललितादित्यने उस कपटी राजाको पकड लिया और उसकी भी वैसी ही दुर्दशा की, जैसी उस मिथ्यावादी मन्त्रीकी हुई थी। अर्थात उसके भी नाक-कान काट लिये गये ॥ ३०५ ॥ महाराज ललितादित्यने अपने उपयोगके लिए मार्गमें जिन-जिन नदियोंको उत्पन्न किया था, उत्तरापथमें विद्यमान वे नदियाँ कुन्तवाहिनी कहलाती हैं ॥ ३०६ ॥ उस राजाके ऐसे-ऐसे हजारों अद्भुत चरित्र विख्यात है। किन्तु कथाप्रसंग बढ जानेके भयसे उनको यहाँ नहीं लिखा जा रहा है ॥ ३०७ ॥ शान्तरूपसे बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ भी पत्थरोंकी चट्टानोपर

कलेर्वाऽयं प्रभावः स्यान्नरनाथासनस्य वा । यत्सोपि भीमकलुषाः प्रवृत्तीः रामदर्शयत् ॥ युग्मम् ॥३०९॥
अवरोधसखो राजा परिहासपुरे स्थितः । स जातु मदिराक्षीवः सचिवानेवमन्वशात् ॥३१०॥
कृतं प्रवरसेनेन यदेतत्प्रवरं पुरम् । तन्निर्दहथ मन्यध्वे मत्पुरस्येव चेच्छ्रियम् ॥३११॥
योगमलङ्घितान्जस्य श्रुत्वेत्याज्ञां महीपतेः । गत्वाश्वघासकूटानि तेऽदहन्वातुलानके ॥३१२॥
हर्म्याग्राद्वीक्षमाणस्तद्वह्निज्वालोज्ज्वलाननः । उल्कामुख इवाभूत्स हर्षाट्टहसितोत्कटः ॥३१३॥

द्वेषादिवैकृतवतः प्रतिभासतेऽन्यो मिथ्यैव चित्रमधिको विशदात्मनोऽपि ।
चन्द्रादि पश्यति पुरो द्विगुणं प्रकृत्या तेजोमयं तिमिरदोपहतं हि चक्षुः ॥३१४॥

नैवं चेदेकमपि तत्पुरं प्रवरभूपतेः । असंख्यपुरनिर्माता स विवेदाधिकं कुतः ॥ युग्मम् ॥३१५॥
क्षीणक्षैव्योथ निध्यार्य नगरप्लोषकिल्बिषम् । उष्णनिःश्वाससुहृदा पस्पर्शेऽनुशयाग्निना ॥३१६॥
तत्कुर्वतेऽन्तःसुषिरं गूढं येनातनुक्षयम् । दह्यन्ते जीर्णतरवः कोटरस्थानला इव ॥३१७॥
प्रातस्तमथ शोचन्तं सदुःखं वीक्ष्य मन्त्रिणः । चिन्तानिवर्तनायोचुः पुरप्लोषं मृषैव तत् ॥३१८॥
श्रुतेऽप्रनष्टे नगरे निःशोकोऽभून्महीपतिः । स्वप्नान्तर्हारिते पुत्रे प्रबुद्धोऽग्र इव स्थिते ॥३१९॥
कार्यं न जातु तद्वाक्यं यत्क्षीवेन मयोच्यते । तान्युक्तकारिणोऽमात्यान्प्रशंसन्निति सोऽब्रवीत् ॥३२०॥

प्रियमनुचितं क्ष्मापण्यस्त्रीक्षणप्रभुरीश्वरो रमयति यतो धिक्तान्भृत्यान्स्ववृत्तिसुखार्थिनः ।
नृपमपथगं पान्ति प्राणानुपेक्ष्य निजानपि प्रसभमिह ये तैः पूतेयं महात्मभिरुर्वरी ॥३२१॥

गिरकर हाहाकार करने लगती है और स्वच्छसलिला होती हुई भी वे बरसातसे कलुषितजला बन जाती है। इसी प्रकार उच्चकुलमें उत्पन्न बड़े-बड़े लोग भी दिशा तथा देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार अपने आचार-व्यवहारमें परिवर्तन करनेके लिए विवश हो जाते हैं ॥ ३०८ ॥ इसे कलिका प्रभाव कहा जाय या कि राजसिंहासनका, जिससे कारण राजा ललितादित्य जैसा सुयोग्य राजा भी कभी-कभी बड़े भयंकर एवं निन्दनीय कार्य कर गुजरता था ॥ ३०९ ॥ एक दिन परिहासपुरमें अपनी रानियोंके साथ मदिरा पी तथा उन्मत्त होकर उस राजाने अपने मंत्रियोंसे कहा—॥ ३१० ॥ 'उस प्रवरसेनका बसाया हुआ नगर यदि मेरे परिहासपुरके समान सुन्दर हो तो आग लगाकर उसे जला डाला जाय ॥ ३११ ॥ वे मंत्री राजाकी उस भीषण आज्ञाका भी उल्लंघन नहीं कर सकते थे। अतएव वातुलानक स्थानपर जाकर उन्होंने घोड़ोंके चारेके लिए एकत्रित घासके ढेरमें आग लगा दी ॥ ३१२ ॥ अपने राजमहलकी छतसे उस दृश्यको देखकर राजा अट्टहास करता हुआ हँसने लगा। अग्निकी उन भयानक लपटोंके प्रकाशमें उसका मुख उज्ज्वल उल्का जैसा दीख रहा था ॥ ३१३ ॥ जैसे तिमिरदोषसे दूषित नेत्र चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थोंको द्विगुणित देखते हैं, उसी प्रकार राग-द्वेषके वशीभूत होकर भले लोग भी मानवमात्रको विपरीत दृष्टिसे देखने लगते है ॥ ३१४ ॥ यदि ऐसा न होता तो अनेकानेक नगर बसानेवाला राजा ललितादित्य राजा प्रवरसेनके उस एकमात्र नगरको अधिक अच्छा क्यों मान लेता ? ॥ ३१५ ॥ बादमें जब मदिराका नशा उतर गया, तब वह राजा अपने आदेशसे नगरदाहजनित महान् अपराधको सोचकर बहुत दुखी हुआ। तीव्र पश्चात्तापके कारण उसके दीर्घ एवं उष्ण निःश्वास निकलने लगे ॥ ३१६ ॥ जैसे पुराने वृक्षके कोटरमें उत्पन्न अग्नि सारे वृक्षको जला डालती है, वैसे ही अन्तःकरणमें उत्पन्न गुप्त क्लेश मनुष्यको क्षीण कर देता है ॥ ३१७ ॥ प्रातःकाल होनेपर जब मंत्रियोंने राजाकी यह शोचनीय स्थिति देखी, तब उसको रातका सच्चा वृत्तान्त बताकर शान्त किया ॥ ३१८ ॥ जब उसे यह पता लगा कि प्रवरपुर जलकर नष्ट नहीं हुआ है, तब वह उसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्न हुआ, जैसे स्वप्नमें किसीका पुत्र खो जाय और इससे वह दुखी हो, किन्तु जागनेपर उसका बेटा सामने खडा दिखायी दे जिससे वह आनन्दित हो उठे ॥ ३१९ ॥ उसी समय उसने मंत्रियोंके कार्यकी सराहना करनेके बाद यह आज्ञा दी कि 'मदिराके नशेमें यदि मैं कोई अनुचित आज्ञा दे दूँ तो उसका पालन कदापि न किया जाय' ॥ ३२० ॥ बहुतेरे राजसेवक अपना स्वार्थ साधन करने तथा सुख-प्राप्तिके लिए इस पृथिवीरूपिणी वेश्याका थोड़े समय उपभोग करनेवाले स्वामीको अनुचित व्यसनमें फँसाकर

अतीन्द्रमपि माहात्म्यं राज्ञस्तस्याधितिष्ठतः । अयमन्योऽपि दोषोऽभूदितरक्षितिपोचितः ॥३२२॥
दत्त्वापि यत्स मध्यस्थं श्रीपरीहासकेशवम् । जघान तीक्ष्णपुरुषैस्त्रिग्राम्यां गौडपार्थिवम् ॥३२३॥
गौडोपजीविनामासीत्सत्त्वमत्यद्भुतं तदा । जहुर्ये जीवितं धीराः परोक्षस्य प्रभोः कृते ॥३२४॥
शारदादर्शनमिषात्कश्मीरान्संप्रविश्य ते । मध्यस्थदेवावसथं संहताः समवेष्टयन् ॥३२५॥
दिगन्तरस्थे भूपाले प्रविविक्षूनवेक्ष्य तान् । परिहासहरिं चक्रुः पूजकाः पिहितारारिम् ॥३२६॥
ते रामस्वामिनं प्राप्य राजतं विक्रमोर्जिताः । परिहासहरिभ्रान्त्या चक्रुरुत्पाद्य रेणुशः ॥३२७॥
तिलं तिलं तं कृत्वा च चिक्षिपुर्दिक्षु सर्वतः । नगरान्निर्गतैः सैन्यैर्हन्यमानाः पदे पदे ॥३२८॥
श्यामला रक्तसंसिक्तास्तेऽपतन्निहता भुवि । अञ्जनाद्रिदृषत्खण्डा धातुस्यन्दोज्ज्वला इव ॥३२९॥
तदीयरुधिरासारैः समभूदुज्ज्वलीकृता । स्वामिभक्तिरसामान्या धन्या चेयं वसुंधरा ॥३३०॥

वज्राद्वज्रकृतं भयं विरमति श्रीः पद्मरागाद्भवेन्नानाकारमपि प्रशाम्यति विषं गारुत्मतादश्मनः ।
एकैकं क्रियते प्रभावनियमात्कर्मेति रत्नैः परं पुंरत्नैः पुनरप्रमेयमहिमोन्नद्धैर्न किं साध्यते ॥३३१॥

क्व दीर्घकाललङ्घ्योऽध्वा शान्ते भक्तिः क्व च प्रभौ । विधातुरप्यसाध्यं तद्यद्गौडैर्विहितं तदा ॥३३२॥
लोकोत्तरस्वामिभक्तिप्रभावाणि पदे पदे । तादृशानि तदाऽभूवन्भृत्यरत्नानि भूभृताम् ॥३३३॥
राज्ञः प्रियो रक्षितोऽभूद्गौडराक्षसविप्लवे । रामस्वाम्युपहारेण श्रीपरीहासकेशवः ॥३३४॥

उसे पतित बना देते हैं। ऐसे नीच पुरुषोंको धिक्कार है। इसके विपरीत जो अपने जीवनकी भी उपेक्षा करके स्वामीको कुमार्गसे रोकता है, ऐसे ही विवेकवान् भृत्यके पुण्यसे यह पृथिवी पुनीत मानी जाती है ॥ ३२१ ॥ देवराज इन्द्रसे भी अधिक प्रभावशाली राजा ललितादित्यके द्वारा एक और भी ऐसा अनुचित कार्य हो गया था, जिसे करके कोई क्षुद्रप्रकृतिका राजा भी लज्जित ही होता ॥ ३२२ ॥ एक बार उसने भगवान् परिहासकेशवको मध्यस्थ बनाकर गौड़देशके नरेशको अभयदान दिया, किन्तु बादमें उसने तीक्ष्ण नामके गुप्तचरों द्वारा उसका वध करा दिया ॥ ३२३ ॥ उस समय उस राजाके सेवकोंने मरे हुए राजाके लिये बड़े धैर्य साथ युद्ध करके अपने प्राण दे दिये। ऐसा करके उन्होंने सबको चकित कर दिया ॥ ३२४ ॥ शारदा देवीका दर्शन करनेके बहाने कश्मीरमें घुसकर उस गौडनरेशके सेवकोंने नगरके मध्यमें स्थित परिहासकेशवके मन्दिरको चारो ओरसे घेर लिया ॥ ३२५ ॥ उस समय राजा ललितादित्य विदेशमें था। अतएव उपद्रव करनेके लिए घुसते हुए गौड-राजसेवकोंको देखकर पुजारियोंने द्वार बन्द करके भगवान् परिहासकेशवकी रक्षा की ॥ ३२६ ॥ तब वे पराक्रमी सेवक परिहासकेशवके भ्रममें रामस्वामीके मन्दिरपर चढ गये और वहाँकी रजतमयी प्रतिमाको तोड़-फोडकर नष्ट कर दिया ॥ ३२७ ॥ उस मूर्तिको तिल-तिल करके उन्होंने चारो ओर छितरा दिया। उनके इस महान् अपराधसे क्रुपित होकर राज्यके सैनिक उनका वध करने लगे ॥ ३२८ ॥ उस समय रक्तसे नहाये हुए वे काले-काले गौडेन्द्रसेवक गेरूसे रंगे हुए अंजनपर्वतके शिलाखण्डों सरीखे दीख रहे थे ॥ ३२९ ॥ उन वीरोंके रुधिरप्रवाहसे धरती तथा उनकी अनुपम स्वामिभक्ति दोनों ही का मुख उज्ज्वल हो गया और वे दोनो धन्य हो गयीं ॥ ३३० ॥ हीरेसे वज्रपात (बिजली गिरने) का भय दूर हो जाता है, पद्मरागमणिसे लक्ष्मीकी वृद्धि होती है और गारुत्मत रत्नसे विषकी बाधा नहीं रह जाती। इस प्रकार ये सभी रत्न नियमित प्रभावके अनुसार एक-एक प्रकारका लाभ पहुँचाते हैं, किन्तु अपरिमित महिमावान् पुरुषरूपी रत्न अपने प्रभावसे कौन-कौन सा काम नहीं कर गुजरते ॥ ३३१ ॥ उन गौडसेवकोंका राजा मारा जा चुका था और देश लौटनेके लिए बहुत लम्बा रास्ता तै करना था, ऐसी भीषण विपत्तिमें भी उन्होंने स्वामिभक्तिका जो अनूठा आदर्श उपस्थित किया था, ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना विधाताके लिए भी असाध्य ही होगा ॥ ३३२ ॥ उन दिनों राजाओंके यहाँ इसी प्रकारकी लोकोत्तर स्वामिभक्ति प्रदर्शित करनेवाले सेवक रहा करते थे ॥ ३३३ ॥ इस प्रकार उन गौडसेवक-रूपी राक्षसोंके उपद्रवसे रामस्वामीके पुनीत बलिदानसे राजाके परम प्रिय भगवान् परिहासकेशवकी रक्षा

वस्त्रं स्त्रियः कुथा भोज्यमलंकारा हया गृहाः । आसाद्यन्ते यदा जातु ग्रामीणैर्नगरोचिताः ॥३४९॥
मदाद्दुर्गाण्युपेक्ष्यन्ते संरक्ष्याणि यदा नृपैः । यदा चानन्तरज्ञत्वं तेषां भृत्येषु दृश्यते ॥३५०॥
प्रदेशादेकतो रूढा यदा वृत्तिश्च शस्त्रिणाम् । अन्योन्योद्वाहसंबन्धैः कायस्थाः संहता यदि ॥३५१॥
कर्मस्थानानि वीक्षन्ते क्ष्मापाः कायस्थवद्यदा । तदा निःसंशयं ज्ञेयः प्रजाभाग्यविपर्ययः ॥३५२॥
चेष्टानुसारेणोन्नीय गूढमाशयसंविदम् । मयोक्तं हृदये कार्यमन्तरं राजबीजिनाम् ॥३५३॥

प्रत्यासत्तिं मदकरटिनो दानगन्धेन वायुर्गर्जोद्भूतिं प्रकटितरुचिश्चञ्चलैवाम्बुदस्य ।
चेष्टा स्पष्टं वदति मतिमन्नैपुणोन्नेयतत्त्वा जन्तोर्जन्मान्तरपरिचितां निश्चलां चित्तवृत्तिम् ॥३५४॥

पुत्रः कुवलयादित्यो वज्रादित्यश्च मे समौ । भिन्नशीला तयोर्भ्रात्रोर्वीर्द्वैमातुरयोः पुनः ॥३५५॥
ज्यायान्राज्येऽभिषेक्तव्यः स च स्याद्बलवान्यदा । तस्याज्ञातिक्रमः कार्यो भवद्भिर्नियमात्तदा ॥३५६॥
उत्सृजज्जीवितं वापि राज्यं वापि स पार्थिवः । शोचनीयो न केनापि स्मरतेदं वचो मम ॥३५७॥
कार्यः कनीयान्न नृपः प्रमादात्क्रियते यदि । नोल्लङ्घनीया तस्याज्ञा रक्ष्यश्च विषमोऽपि सः ॥३५८॥
पौत्रेषु मे कनीयान्यो जयापीडोऽस्ति दारकः । पितामहसमो भूया इति वाच्यः स सर्वदा ॥३५९॥
भर्तुर्गृहीतनैराश्याः साभिप्रायां प्रणम्य ताम् । आनर्चुः पश्चिमामाज्ञां ते बाष्पार्वकणत्यजः ॥३६०॥
उवाच चङ्कुणो जातु संनिपत्याखिलाः प्रजाः । बाष्पैः पतिवियोगाग्नितप्तां सिञ्चन्वसुन्धराम् ॥३६१॥
राज्ये कुवलयापीडो राजपुत्रोऽभिषिच्यताम् । सुगृहीताभिधो राजा गतः स सुकृती दिवम् ॥३६२॥

डामर, हठी तथा दुखदायी हो जायँगे और राजाज्ञाकी अवहेलना करने लगेंगे ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ यदि किसानों-को नागरिकोंकी तरह अच्छे वस्त्र, मिठाई, सुन्दरी स्त्रियाँ, घोड़े आदिकी सवारी और अच्छे घर मिलने लगें, राजे अत्यन्त रक्षणीय दुर्गोंकी रक्षा न करें, राजसेवक विवेकभ्रष्ट हो जायँ, घुड़सवार तथा पैदल सेनाके सैनिक एक ही प्रान्तके हों, कायस्थ अधिकारीगण विवाहादि सम्बन्ध करके ऐक्यबद्ध हो जायँ और राजे भी कायस्थोंके समान लोभी और प्रजापीडक बनकर अन्याय करने लगें, तब यह समझ ले कि वह प्रजाके दुर्भाग्यका उदय-काल है ॥ ३४९—३५२ ॥ अब मैं अपने वंशजोंके विषयमें कुछ कहूँगा, उन्हें ध्यान देकर सुनिए। जो बातें मैं बताता हूँ, उनका सही पता लगाकर उनके गूढ हार्दिक भाव जान ले ॥ ३५३ ॥ बहनेवाली वायु द्वारा मदके गन्धसे युक्त गजराजके समीप होनेकी सूचना मिलती है और गर्जन तथा बिजलीकी चमकसे मेघका पता लगता है, वैसे ही विचारवान् तथा सूक्ष्मदर्शियोंको मानवका आचरण देखकर ही उसके पूर्वजन्मके संस्कारजनित स्वभाव तथा उसके सच्चे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है ॥ ३५४ ॥ कुवलयादित्य तथा वज्रादित्य दोनों मेरे पुत्र हैं, किन्तु मातृभेदके कारण उन दोनोंका स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकारका है ॥ ३५५ ॥ मेरे ज्येष्ठ पुत्रको ही राज्यका अधिकारी बनाया जाय। किन्तु यदि उसमें राजोचित गुण न हों तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करके उसे राज्य-च्युत कर दें ॥ ३५६ ॥ ऐसा करनेसे यदि वह दुखी होकर राज्यसे बाहर चला जाय या प्राण दे दे तो उसके लिए कोई किसी प्रकारका शोक न करे। मेरी इस बातको सदा स्मरण रखिए ॥ ३५७ ॥ मेरे छोटे पुत्र वज्रा-दित्यको कदापि राज्य न दिया जाय। यदि प्रमादवश उसको राजा बना ही दिया जाय तो फिर उसकी आज्ञाका सदा पालन करना चाहिए और दुष्ट होनेपर उसके प्राणोंकी रक्षाकी जाय ॥ ३५८ ॥ मेरे पौत्रोंमें जो सबसे छोटा पौत्र जयापीड है, उसको आप लोग सदा यही उपदेश देते रहें कि 'तुम अपने पितामहके समान वीर बनो' ॥ ३५९ ॥ अपने स्वामीका अर्थगाम्भीर्यसे परिपूर्ण सन्देश सुनकर उन मंत्रियोंको बड़ी निराशा हुई और उन्होंने मन ही मन उसे प्रणाम किया। अन्तमें आँसू बरसाते हुए उन मंत्रियोंने बड़े ही विनम्रभावसे उनकी अन्तिम आज्ञाका अभिनन्दन किया ॥ ३६० ॥ तदनन्तर मुख्य मंत्री चंकुणने ,समस्त प्रजाजनोंको एकत्र करके अपने प्रभुके वियोगरूपी अग्निसे सन्तप्त धरतीको आँसुओंसे सींचते हुए उसने कहा—॥ ३६१ ॥ 'अब राजसिंहासनपर राजपुत्र कुवलयापीडका अभिषेक किया जाना चाहिए। क्योंकि दूतकी बातोंसे मालूम

भमुजे यस्य कृतिनो दैवतैः कोशवृद्धये । रसमिद्धिः कस्मात्से यस्मात्साऽस्तमुपागता ॥३६३॥
दूरस्थोऽपि हि भूभृत्स भाग्यशक्त्या कयाचन । कार्याणि घटयन्नासीद्दुर्घटान्यपि हेलया ॥३६४॥

अम्भोजानि घनाघनव्यवहितोऽप्युल्लाघयत्यंशुमान्
दूरस्थोऽपि पयोधरोऽतिशिशिरस्पर्शं करोत्यातपम् ।
शक्तिः काप्यपरीक्षिताऽस्ति महतां स्वैरं दविष्ठान्यहो
यन्माहात्म्यवशेन यान्ति घटनां कार्याणि निर्यन्त्रणाम् ॥३६५॥

सैकादशदिनान्सप्त मासान्षट्त्रिंशतं समाः । एवमाह्लाद्य स महीं प्रजाचन्द्रोऽस्तमाययौ ॥३६६॥
तुषारवर्षैर्नहलैस्तस्मकाण्डनिपातिभिः । आर्याणकाभिधे देशे विपन्नं केचिदूचिरे ॥३६७॥
राजप्रष्ठां प्रतिष्ठां स रक्षितुं चिरसंचिताम् । संकटे क्वापि दहनं प्राविक्षदिति केचन ॥३६८॥
केषांचित्तु मते भूभृद्वीयस्युत्तरापथे । सोऽमर्त्यसुलभां भूमिं प्रविष्टः कटकान्वितः ॥३६९॥
अत्यद्भुतानि कृत्यानि श्रुतान्यस्य यथा किल । विपत्तिरपि भूभृतस्तथैवात्यद्भुता श्रुता ॥३७०॥
यातोऽस्तं द्युमणिः पयोधिसलिलं कैश्चित्प्रविष्टोऽपरैः संप्राप्तो दहनं गतः किल परैर्लोकान्तरं कीर्त्यते ।
जायन्ते महतामहो निरुपमप्रस्थानहेवाकिनां निःसामान्यमहत्त्वयोगपिशुना वार्ता विपत्तावपि ॥३७१॥

ततः कुवलयापीडो भेजे कुवलयेशताम् ।
जातः कमलदेव्या यःश्रीमाञ्शक्र इवादितेः ॥३७२॥

त्यागेन चक्रे विशदां योऽनुरक्तां नृपश्रियम् । महोरगस्त्वचमिव स्वभावमलिनामपि ॥३७३॥
भ्रात्रा तुल्यप्रभावेण कंचित्कालं हतप्रभः । स हुताशोष्मणाक्रान्तः प्रदीप इव नारुचत् ॥३७४॥

हो रहा है कि अब सुगृहीतनामा और पुण्यात्मा महाराज ललितादित्य स्वर्गवासी हो चुके हैं ॥ ३६२ ॥ जिस धर्मात्माकी कोशवृद्धिके लिए देवताओंने मुझे रससिद्धि प्रदानकी थी, वह आज अकस्मात् नष्ट हो गयी ॥ ३६३ ॥ राज्यसे दूर रहता हुआ भी वह महापुरुष अपनी किसी अलौकिक भाग्यशक्तिसे दुष्कर कार्योंको भी अनायास सम्पन्न कर देता था ॥ ३६४ ॥ जैसे सूर्यनारायण बादलोंसे ढँक जानेपर भी कमलोंको विकसित कर देते हैं और दूर रहता हुआ भी बादल आतपको शीतल बना देता है, उसी प्रकार महापुरुषोंमें कोई ऐसी अद्भुत शक्ति विद्यमान रहती है, जिससे दूर स्थित तथा कठिन कार्य भी बिना किसी बाधाके पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३६५ ॥ इस प्रकार वह राजा ललितादित्यरूपी चन्द्रमा छत्तीस वर्ष सात महीना ग्यारह दिन जगतीतलको आनन्दित करके अस्त हो गया ॥ ३६६ ॥ कुछ इतिहासकारोंका मन्तव्य यह है कि आर्याणक देशमें सहसा अत्यधिक हिमपात होनेके कारण वह राजा उसीमें दबकर मर गया ॥ ३६७ ॥ कुछ इतिहासज्ञ कहते हैं कि बहुत दिनोंमें संचित अपनी कीर्तिकी रक्षा करनेके लिए भविष्यमें आनेवाली किसी अपरिहार्य विपत्तिके भयसे वह आगमें कूद-कर जल मरा ॥ ३६८ ॥ कुछ ऐतिहासिकोंका कथन है कि मनुष्योंके लिए दुर्लभ तथा केवल देवताओंके लिए सुलभ उत्तरापथमें अपनी सेना समेत वह राजा पृथिवीमें समा गया ॥ ३६९ ॥ जिस तरह उस राजाके विचित्र कार्योंकी गाथा गायी जाती है, उसी प्रकार उसके मरणकी भी बहुतेरी अद्भुत कथायें कही जाती हैं ॥ ३७० ॥ जैसे सायंकालको होनेवाले सूर्यास्तके विषयमें कोई कहता है—'सूर्य अस्त हो गया'। कोई कहता है—'सूर्य अस्ताचलको चला गया'। कोई कहता है—'सूर्य समुद्रमें डूब गया'। कोई कहता है—'सूर्यने अग्निमें प्रवेश किया' और बहुतेरे कहते हैं कि 'सूर्य लोकान्तरको चला गया'। इसी प्रकार महापुरुषोंका अन्तकाल होता है, तब उनके विषयमें नाना प्रकारकी विचित्र कथायें प्रचलित हो जाती हैं ॥ ३७१ ॥ तदनन्तर अदितिसे जाय-मान इन्द्रके समान तेजस्वी कमलदेवीके पुत्र कुवलयापीडने कुवलेशयेशता (पृथिवीकी प्रभुता) पायी ॥ ३७२ ॥ जैसे सर्पगण अपना केंचुल त्यागकर तेजस्वी हो जाते हैं, उसी प्रकार उस राजाने अपने त्याग द्वारा स्वभावतः मलिन लक्ष्मीकी मलीनता दूर करके उसे निर्मल बना दिया ॥ ३७३ ॥ कुछ समय तक तो अपने सदृश तेजस्वी भ्राताके

भृङ्गैरिवानुगैर्दानलोभात्पर्यायवृत्तिभिः । श्रीर्दुःस्थाऽभूत्तयोरन्तर्मत्तेभकटयोरिव ॥३७५॥
अथोभयधनादायिभृत्यचक्रिकया समम् । राजा कुवलयापीडो बभञ्जानुजमञ्जसा ॥३७६॥
राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा ततः प्राप्तबलो नृपः । दिग्जयायोर्जितक्रान्तिः सोऽभूत्संभृतसाधनः ॥३७७॥
एकस्तस्मिन्क्षणे मन्त्री तस्याज्ञामुदलङ्घयत् । स्मरन्वा तत्पितुर्वाचं भजन्वा दर्पविक्रियाम् ॥३७८॥
प्राप्तायामथ यामिन्यां तल्पे कोपाकुलो नृपः । तमाज्ञातिक्रमं ध्यायन्न निद्रां क्षणमप्यगात् ॥३७९॥
एवं कृतागमं हन्तुं सस्पृहस्य तदाश्रयात् । बहवः प्रत्यभासन्त वध्यास्तस्योद्यतक्रुधः ॥३८०॥
विचारशैलमथिता तस्य चित्तमहोदधेः । प्रकोपकालकूटस्य पश्चाच्छमसुधोदगात् ॥३८१॥
दध्यौ सोऽथ गतक्रोधः प्रवृद्धः प्राणिसंक्षयः । एतावान्कस्य नु कृते कर्तव्यः प्रत्यभान्मम ॥३८२॥
अकार्याण्यपि पर्याप्य कृत्वापि वृजिनार्जनम् । विधीयते हितं यस्य स देहः कस्य सुस्थिरः ॥३८३॥
कृतघ्नस्यास्य कायस्य हेतोरगलितस्ततः । हन्तव्यः कस्य पन्थानः प्रतिभान्त्यनपायिनः ॥३८४॥
विदन्ति जन्तवो हन्त पच्यमानस्य नात्मनः । अवस्थां कालसूदेन कृतां तां तां क्षणे क्षणे ॥३८५॥

ह्यः पश्यद्भिरकारणस्मितमितं पाथोजकोशाकृति श्मश्रूद्भेदकठोरमद्य रभसादुत्तप्ततास्रप्रभम् ।
प्रातर्जीर्णवलक्षकेशविकृतं वृद्धाजगीपोपमं वक्त्रं नः परिहस्यते ध्रुवमिदं भूतैश्चिरस्थायुभिः ॥३८६॥

इत्याद्यनित्यताचिन्तादत्तशान्तिसुखादरः । राज्यं संत्यज्य स वनं प्लक्षप्रस्रवणं ययौ ॥३८७॥

प्रभावसे धधकती हुई अग्निके समक्ष दीपककी तरह उसका तेज लुप्तप्राय दशामें था ॥ ३७४ ॥ पहले तो उन दोनों भ्राताओंसे अलग-अलग इनाम पानेकी लालसावश कितने धूर्त दरबारियोंने उन दोनोंमें पारस्परिक ईर्ष्याको बढ़ावा देकर उन्हें ऐसी स्थितिमें पहुँचा दिया, जो भ्रमरोंके अत्यधिक मद्यपान करनेपर मदशून्य गजराजके शुष्क गण्डस्थलकी होती है ॥ ३७५ ॥ लेकिन कुछ ही समय बाद चतुर राजा कुवलयापीडने उन लोभी मुसाहबोंके दोनों ओरसे धनोपार्जन करनेका हाल जानकर उनके द्वारा रचित चक्र तथा अपने भ्राताके प्रभावको समूल नष्ट कर दिया ॥ ३७६ ॥ इस तरह अपने पराक्रमसे राज्यको निष्कण्टक करनेके बाद उसने दिग्विजयकी यात्राके लिए सेना सुसज्जित की ॥ ३७७ ॥ उसी समय एक मंत्रीने उसके पिताकी आज्ञाका स्मरण करके अथवा अपने अक्खड़पनके कारण राजा कुवलयापीडकी आज्ञा नहीं मानी ॥ ३७८ ॥ इस अपमानसे कुपित राजा रातको शय्यापर सोया तो उसे पूरी रात नींद नहीं आयी। क्योंकि उसके मस्तिष्कमें बराबर वह अपमानवाली बात ही चक्कर काटती रही ॥ ३७९ ॥ उसी क्रोधके आवेशमें उसने उस मंत्रीका वध कर डालनेका विचार किया। किन्तु फिर ध्यानमें यह बात आयी कि केवल उसीके वधसे काम न चलेगा, बल्कि उसके सब आप्तजनोंको भी मारना पड़ेगा ॥ ३८० ॥ इस तरह उसके हृदयरूपी सागरमें विचाररूपी मन्दराचलसे मंथन करनेपर पहले हिंसामय क्रोधरूपी कालकूट विष निकला और उसके बाद शान्तिरूपी अमृतका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ३८१ ॥ क्रोध शान्त हो जानेपर राजा कुवलयापीडने सोचा कि इतनी भीषण हिंसाकी भावना मेरे मनमें क्यों उपजी ? ॥ ३८२ ॥ जिसके लिए नाना प्रकारके कुत्सित कार्य करके बड़े-बड़े भयानक पातकोंका संग्रह किया जाता है, वह शरीर भी किसका सदाके लिए स्थिर रहा है ? ॥ ३८३ ॥ ऐसी स्थितिमें इस कृतघ्न तथा नाशवान् शरीरके लिए कौन विवेकसम्पन्न पुरुष अविनाशी पुण्यमार्गका विनाश करेगा ॥ ३८४ ॥ कालरूपी सूद (रसोईदार) इस शरीरकी क्षण-क्षणमें किन-किन अवस्थाओंका निर्माण करता रहता है, इस बातको लोग नहीं जानते ॥ ३८५ ॥ अभी कल जिस सुकुमार बालकका कमलकोशके समान मुस्कराता मुखमण्डल दिखायी दे रहा था उसीपर सहसा आज नम्र ताम्र जैसी दाढ़ी-मूछ उगी दिखायी देती है। कल उसी युवकके मुखपर वृद्धावस्थाके कारण बकरे जैसी दुर्दर्शनीय सफेद दाढ़ी-मूछकी झाड़ी देखकर दीर्घायु विद्वान इस कायाकी अनित्यतापर हँसा करते हैं ॥ ३८६ ॥ ऐसे-ऐसे सद्विचारों द्वारा संसारकी अनित्यता समझमें आ जानेपर उसने शान्तिका आदर करके राज्य त्याग दिया और वहाँसे चलकर प्लक्षप्रस्रवण (नैमिषारण्य) तीर्थमें जा पहुँचा

गच्छ भद्र वनायैव तपस्यार्थायतां मनः । मायायाः क्षणभङ्गिन्य एवंप्राया विभूतयः ॥३८८॥
तेन संन्यस्यता राज्यं लिखितेन निजासने । वैराग्यवासनोत्सेकः श्लोकेनानेन सूचितः ॥३८९॥
अभग्नशमसंवेगलब्धसिद्धिर्नराधिपः । श्रीपर्वतादावद्यापि भव्यानामेति दृक्पथम् ॥३९०॥
तथा याते प्रभोः पुत्रे मित्रशर्मा शुचान्वितः । वितस्तासिन्धुसंभेदे सभार्यो जीवितं जहौ ॥३९१॥
राज्यं समां समासार्धां कृत्वा स वसुधाधिपः ।
निःश्रेयसाप्तिनिःश्रेणीं सुधीः सिद्धिं समासदत् ॥३९२॥
वज्रादित्यो वप्पियको ललितादित्य इत्यपि । ख्यातोऽथ भूभृदभवज्जन्माता चक्रमर्दिका ॥३९३॥
स क्रूरचरितो भ्रातुः प्रजाह्लादविधायिनः । सुधांशोरिव दुर्वासा नूनं विसदृशोऽभवत् ॥३९४॥
परिहासपुरात्पित्र्यां नानोपकरणावलीम् । स जहार दुराचारो भूभृल्लोभवशंवदः ॥३९५॥
रागिणो भूमिपालस्य भूयस्योऽन्तःपुरस्त्रियः । वाजाश्वस्येव वडवास्तास्ताः समभवन्प्रियाः ॥३९६॥
विक्रयेण प्रयच्छन्स म्लेच्छेभ्यः पुरुषान्बहून् । म्लेच्छोचितां व्यवहृतिं प्रावर्तयत मण्डले ॥३९७॥
सप्ताब्दान्वसुधां भुक्त्वा सोऽतिसंभोगजन्मना । जगाम संक्षयं क्ष्माभृत्क्षयरोगेण किल्विषी ॥३९८॥
तस्मान्मञ्जरिकादेव्यां जातो राजा प्रजान्तकः । ततः पृथिव्यापीडोऽभूत्समासार्धाश्चतुरः समाः ॥३९९॥
जातो मम्माभिधानायां वप्पियात्सप्त वासरान् । संग्रामापीडनामाऽथ तमुत्पाट्याभवन्नृपः ॥४००॥
भ्रातरौ तौ समासाद्य राज्यं नैव व्यराजत । हेमन्तशिशिरावाप्य चण्डांशोरिव मण्डलम् ॥४०१॥
शान्तेऽथ संग्रामापीडे कनीयान्वप्पियात्मजः । राजा श्रीमाञ्जयापीडः प्राप राज्यं ततः क्रमात् ॥४०२॥

॥ ३८७ ॥ राज्य त्यागकर चलते समय कुवलयापीडने अपने सिंहासनपर निम्नलिखित श्लोक लिख दिया— हे भद्र ! तुम वनको चल दो और वहाँ पहुँचकर तपस्यामें मन लगाओ। क्योंकि संसारकी सभी विभूतियाँ विनाशशील तथा क्षणभंगुर हैं ॥ ३८८ ॥ राज्य त्यागकर अपने सिंहासनपर लिखित इस श्लोकसे राजा कुवलयापीडने अपने दृढ़तर वैराग्यको सूचित किया था ॥ ३८९ ॥ उस तीर्थमें शान्तिपूर्वक प्रबल तपस्या करके उसने असाधारण सिद्धि प्राप्त की। आज भी वह श्रीपर्वत आदि तीर्थस्थानोंमें पुण्यात्मा पुरुषोंको कभी-कभी दिखायी दे जाता है ॥ ३९० ॥ इस प्रकार राज्य त्यागकर अपने प्रभुपुत्रके चले जानेपर मुख्यमंत्री मित्रशर्माको अपार दुःख हुआ और अपनी स्त्रीके साथ वितस्ता तथा सिन्धुनदके संगमपर जाकर उसने शरीर त्याग दिया ॥ ३९१ ॥ इस तरह राजा कुवलयादित्यने कुल एक वर्ष पन्द्रह दिन राज्य करनेके बाद मुक्तिमार्गका आश्रय लेकर अपना जीवन सार्थक कर लिया ॥ ३९२ ॥ तदनन्तर वज्रादित्य, वाप्पियक एवं ललितादित्य नामधारी तथा राजा कुवलयापीडका सौतेला भाई एवं रानी चक्रमर्दिकाका पुत्र गद्दीपर बैठा ॥ ३९३ ॥ वज्रापीड अत्यन्त क्रूर चरित्र एवं प्रजाके आनन्ददाता कुवलयापीडके उसी तरह एकदम विपरीत स्वभावका था, जैसे चन्द्रमाके भाई दुर्वासा थे ॥ ३९४ ॥ उस दुराचारी राजाने लोभके वशीभूत होकर अपने पिता द्वारा अर्पित परिहासपुरकी समस्त धार्मिक सम्पदा बरबस छीन ली ॥ ३९५ ॥ उस लम्पट राजाने अपने अन्तःपुरमें बहुतेरी स्त्रियाँ रख छोड़ी थीं और वह साँड़ घोड़ेके समान उनके साथ निरन्तर रमण किया करता था ॥ ३९६ ॥ उसने बहुतसे लोगोंको पकड़कर म्लेच्छोंके हाथ बेच डाला और समस्त कश्मीरमण्डलमें म्लेच्छोंके समान दुराचार फैला दिया ॥ ३९७ ॥ इस प्रकार केवल सात वर्ष वसुधाका भोग करनेके बाद अत्यधिक भोग करनेके कारण उत्पन्न क्षयरोगसे ग्रस्त होकर वह मर गया ॥ ३९८ ॥ उसके बाद मंजरिका देवीका पुत्र पृथ्व्यापीड राजा बना। वह प्रजाके लिए यमराजके समान त्रासदायक था। उसने चार वर्ष एक महीना राज्य किया ॥ ३९९ ॥ उसको राज्यच्युत करके मम्मादेवीसे उत्पन्न तथा वाप्पियका पुत्र प्रथम संग्रामापीड केवल सात दिनके लिए कश्मीरमण्डलका राजा बना ॥ ४०० ॥ जैसे सूर्यमण्डल हेमन्त और शिशिर ऋतुमें नहीं शोभित होता, उसी प्रकार वे दोनों भाई (वज्रापीड तथा संग्रामापीड) से वह राज्य नहीं शोभित हुआ ॥ ४०१ ॥ संग्रामापीडके

पितामहसमो भूयादित्यमात्यवचः स्मरन् । जिगीषुः संभृतबलो दिग्जयाय स निर्ययौ ॥४०३॥
स्वदेशादेव नयविद्वशं नीतैः समं नृपः । वृद्धानप्रच्छ निर्गच्छन्कश्मीरद्वारगोचरान् ॥४०४॥
पितामहस्य नः सैन्यं कियन्निर्गच्छतोऽभवत् । इति ब्रूताद्य यात्रासु यूयं संख्यातसैनिकाः ॥४०५॥
कृतस्मितास्तमूचुस्ते किं प्रश्नेनामुना प्रभो । वस्तु कश्चिदतिक्रान्तं नानुकर्तुं क्षमोऽधुना ॥४०६॥
कर्णीरथानां तस्यासीत्सपादं लक्षमीशितुः । अशीतिस्तु सहस्राणि देवस्याद्य जयोद्यमे ॥४०७॥
तदाकर्ण्य जयापीडो बहु मेने न निर्जयम् । क्षिप्रं क्षितेः संकुचन्त्याः कालस्य बलवत्तया ॥४०८॥
जिगीषोः क्ष्माभुजस्तस्य भावमालोक्य तादृशम् । दध्युर्भावज्ञतां वृद्धा ललितादित्यभूपतेः ॥४०९॥
तस्य दूरप्रयातस्य स्यालो जज्जाभिधो बलात् । द्रोहेणाक्रम्य कश्मीरान्स्वयं भेजे नृपासनम् ॥४१०॥
दिने दिने गजसैन्यात्स्वदेशस्मारिणस्ततः । सैनिकाः संन्यवर्तन्त स्वामिभक्तिपराङ्मुखाः ॥४११॥
प्रख्यापयिष्यन्स्वामेव शक्तिं परिकरं विना । निश्चिकाय जयापीडो युक्त्यां कांचित्तु संविदम् ॥४१२॥
अभङ्गुरास्तेभिमानास्तस्यैवासन्मनस्विनः । अत्यवर्तत यैरेष वैधात्रीरपि वामताः ॥४१३॥
स विसृज्य भुवं स्वां स्वां भूपतीननुयात्रिकान् । प्रयागमगमत्सैन्यैः परिमेयैर्निजैः समम् ॥४१४॥
तत्रावशिष्टानुच्चित्य वाजिनः स मनोजवान् । द्विजेभ्यो लक्षमेकोनं प्रददौ भूरिदक्षिणम् ॥४१५॥
संपूर्णमन्यो लक्षं यः प्रदद्यादत्र वाजिनाम् । तन्मुद्रयेयं मन्मुद्रा विनिवार्येत्युदीर्य च ॥४१६॥
श्रीजयापीडदेवस्येत्यक्षरैरुपलक्षिताम् । दिग्देशगामिनो मुद्रां गाङ्गस्य पयसो ददौ ॥४१७॥

बाद वप्पियका छोटा पुत्र जयापीड सिंहासनासीन हुआ ॥ ४०२ ॥ बचपनसे ही मंत्रियोंने उसे उपदेश दिया कि 'अपने पितामहके समान वीर बनो'। इस बातका स्मरण करके उसने विशाल वाहिनी एकत्र की और दिग्विजयके लिए चल पड़ा ॥ ४०३ ॥ नीतिज्ञ जयापीडने विजययात्रा करते समय बहुतसे माण्डलिक राजाओंको साथ ले लिया था। अपने राज्य कश्मीरकी सीमापर विद्यमान वृद्धोंसे उसने पूछा—॥ ४०४ ॥ 'मेरे पितामह राजा ललितादित्य जब दिग्विजयको निकले थे, तब उनके साथ कितनी सेना थी? कृपया मुझे यह बताइए। आप लोग वृद्ध हैं, अतएव आपको उनकी सेनाकी संख्याका पता अवश्य होगा' ॥ ४०५ ॥ यह प्रश्न सुना तो उन वृद्धोंने मुसकाकर कहा—'प्रभो! इस प्रश्नसे क्या लाभ? क्योंकि जो समय बीत चुका, उसकी बराबरी अब कौन कर सकता है? ॥ ४०६ ॥ उनकी सेनामें तो सवा लाख पालकियाँ ही चलती थीं और आपके साथ यात्रा करनेवाली इस सेनामें कुल अस्सी हजार सैनिक हैं' ॥ ४०७ ॥ उनकी इस बातसे राजा जयापीडको तनिक भी खेद नहीं हुआ। क्योंकि कालकी बलवत्ताके कारण पृथिवीकी सभी वस्तुयें संकुचित होती जा रही थीं ॥ ४०८ ॥ उस विजिगीषु राजाका ऐसा विवेकपूर्ण मनोभाव देखकर उन वृद्धोंको दिवंगत महाराज ललितादित्यके स्वभावका स्मरण हो आया ॥ ४०९ ॥ इस प्रकार दिग्विजयके प्रसंगमें जब राजा जयापीड बहुत दूर चला गया, तब उसके साले जज्जने विद्रोह करके आक्रमण कर दिया और जबर्दस्ती कश्मीरपर अधिकार करके वहाँका शासक बन बैठा ॥ ४१० ॥ यह समाचार सुनकर राजा जयापीडके साथवाले सैनिक भी स्वामिभक्तिसे मुँह मोड़कर कश्मीर लौट पड़े ॥ ४११ ॥ किन्तु उन सैनिकोंके इस व्यवहारसे उस राजाको कुछ विस्मय नहीं हुआ और उसने बिना किसी साधनके केवल अपनी शक्तिके भरोसे अपना अभीष्ट कार्य साधन करनेका निश्चय कर लिया ॥ ४१२ ॥ उसने विपरीत दैवको कुछ भी महत्त्व नहीं दिया। क्योंकि उस मनस्वीका स्वाभिमान अखण्डित था ॥ ४१३ ॥ तदनन्तर उसने अपने साथी राजाओंको अपनी-अपनी राजधानीको लौटा दिया और अपने साथ थोड़ी-सी सेना लेकर प्रयागक्षेत्रको चल पड़ा ॥ ४१४ ॥ वहाँपर उसने अपने अश्वोंको एकत्र करके एक कम एक लाख घोड़े दान करके ब्राह्मणोंको दिये और साथमें दक्षिणा भी दी ॥ ४१५ ॥ तदनन्तर उसने उन ब्राह्मणोंको यह आदेश दिया कि 'जो राजा पूरे एक लाख घोड़ोंका दान करे, वह इस मुद्राको हटाकर अपने नामकी मुद्रा प्रचलित कर सकता है'। इस शर्तके साथ 'श्रीजयापीडदेवस्य' खुदी हुई मुहर

तन्मुद्राङ्कं पयः पीत्वा गाङ्गमद्यापि निर्मलम् । चित्ते प्रवर्धते तापो भूपानामभिमानिनाम् ॥४१८॥
स्वदेशगमनानुज्ञां सैन्यस्याप्तमुखेन सः । दत्त्वा निशायामेकाकी निर्ययौ कटकान्तरात् ॥४१९॥
मण्डलेषु नरेन्द्राणां पयोदानामिवार्यमा । गौडराजाश्रयं गुप्तं जयन्ताख्येन भूभुजा ॥४२०॥
प्रविवेश क्रमेणाथ नगरं पौण्ड्रवर्धनम् । यस्मिन्सौराज्यरम्याभिः प्रीतः पौरविभूतिभिः ॥४२१॥
लास्यं स द्रष्टुमविशत्कार्तिकेयनिकेतनम् । भरतानुगमालक्ष्यनृत्तगीतादिशास्त्रवित् ॥४२२॥

ततो देवगृहद्वारशिलामध्यास्त स क्षणम् ।
पश्यंस्तत्र सुखाख्यं नृत्यं वाराङ्गनाकृतम् ॥४२३॥

तेजोविशेषचकितैर्जनैः परिहृतान्तिकम् । नर्तकी कमला नाम कान्तिमन्तं ददर्श तम् ॥४२४॥
असामान्याकृतेः पुंसः सा ददर्श सविस्मया । अंसपृष्ठेन धावन्तं करं तस्यान्तरान्तरा ॥४२५॥
अचिन्तयत्ततो गूढं चरत्येष भवेद्ध्रुवम् । राजा वा राजपुत्रो वा लोकोत्तरकुलोद्भवः ॥४२६॥
एवं ग्रहीतुमभ्यासः पृष्ठस्थाः पर्णवीटिकाः । अंसपृष्ठेन येनायं लसत्पाणिः प्रतिक्षणम् ॥४२७॥
लोलश्रोत्रपुटो मदे कमधुपापातात्ययेऽपि द्विपः सिंहोसत्यपि पृष्ठतः करिकुले व्यावृत्य विप्रेक्षिता ।
मेघोन्मुक्त्यसमेप्यशान्तवदनोद्दीर्णस्वरो बर्हिणश्चेष्टानां विरमेऽत्र हेतुविरमेप्यभ्यासदीर्घा स्थितिः ॥४२८॥
इत्यन्तश्चिन्तयन्ती सा कृत्वा संक्रान्तसंविदम् । सखीमभिन्नहृदयां विससर्ज तदन्तिकम् ॥४२९॥
प्राग्वत्पृष्ठं गते पाणौ पूगखण्डांस्तयार्पितान् । वक्त्रेऽक्षिपज्जयापीडः परिवृत्य ददर्श ताम् ॥४३०॥
भ्रूसंज्ञयाऽसि कस्य त्वं पृष्टाया इति सुभ्रुवः । ददत्या वीटिकास्तस्या वृत्तान्तमुपलब्धवान् ॥४३१॥

विदेश जानेवाले गंगाजलके कलशोंपर लगानेकी आज्ञा दी ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥ आज भी उस मुद्रासे अंकित निर्मल गंगाजल पीनेवाले अभिमानी राजाओंके हृदयमें सन्तापकी ज्वाला भड़क उठती है ॥ ४१८ ॥ वहाँसे बाकी बचे सैनिकोंको भी विश्वस्त पुरुषोंके साथ स्वदेश लौट जानेकी अनुमति देकर राजा जयापीड रात्रिके समय अकेला ही अपने सेनाशिविरसे न जाने कहाँ चला गया ॥ ४१९ ॥ तदनन्तर बादलोंमें छिपे सूर्यके समान विभिन्न राजाओंके राज्योंमें भ्रमण करता हुआ वह राजा गौडदेशाधिपति राजा जयन्तके द्वारा रक्षित पौण्ड्रवर्धन नगरमें जा पहुँचा । वहाँकी शासनपद्धतिमें प्रजाको धन तथा सुखसे सम्पन्न देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ ॥४२०॥४२१॥ भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्रका अध्ययन करनेके कारण नृत्य-गीत आदि कलाओंका मर्मज्ञ राजा जयापीड कार्तिकेयके मन्दिरमें संगीत सुननेके लिए चला गया ॥ ४२२ ॥ वहाँ भगवान् कार्तिकेयका दर्शन करके क्षणभरके लिए द्वारकी एक शिलापर बैठ गया और नर्तकियोंका नृत्य देखने लगा ॥ ४२३ ॥ उसका अद्भुत तेज देखकर वहाँके सभी लोग चकपकाये और उसे बैठनेकी जगह देनेके लिए कुछ खिसक गये । उसी समय कमला नामकी एक नर्तकीने उस सुन्दर राजाको देखा ॥ ४२४ ॥ असाधारण आकृतिवाले उस पुरुषको बारम्बार कन्धेपर हाथ ले जाते देखकर कमला बहुत विस्मित हुई ॥ ४२५ ॥ बादमें उसने सोचा कि यह महापुरुष किसी बहुत ऊँचे कुलमें उत्पन्न राजा या राजपुत्र है और किसी कारणवश प्रच्छन्न भावसे घूम रहा है ॥ ४२६ ॥ ज्ञात होता है कि इसे स्कन्धपृष्ठसे पर्णवीटिका (पानका बीड़ा) लेनेकी आदत पड़ी हुई है । इसीसे बारम्बार उधर हाथ ले जाता है ॥ ४२७ ॥ क्योंकि मदलोभी भौरोंका त्रास मिट जानेपर भी गजराज अपना कान हिलाता ही रहता है, हाथियोंका झुण्ड पीछे न रहनेपर भी सिंह मुड़-मुड़कर पीछेकी ओर देखा करता है और मेघोंके द्वारा तृष्णा-शान्तिकी आशा न रहनेपर भी मयूर कूँका करते हैं । क्योंकि दीर्घकालके अभ्यास वश जो आदत पड़ जाती है, वह नहीं छूटने आती ॥ ४२८ ॥ यह सोचकर कमला नर्तकीने सलाह करके अपनी एक विश्वस्त दासीको उसके पास भेजा । वह अपने साथ पानका बीड़ा भी लेती गयी थी । उसके पास जाकर धीरेसे उसने वह पान उसको दिया और सुपाड़ीके कुछ टुकड़े भी दे दिये । जयापीडने भी उसे मुखमें रख लिया और मुड़कर कमलाकी ओर निहारा ॥ ४२९ ॥ ४३० ॥ उस दासीने पान देते समय भौंहोंके संकेतसे ही पूछ लिया कि आप

तया जनितदाक्षिण्यस्तैस्तैर्मधुरभाषितैः । सख्याः समाप्तनृत्ताया निन्ये स वसतिं शनैः ॥४३२॥
अग्राम्यपेशलालापा तथा तं सा विलासिनी । उपाचरत्परार्ध्यश्रीः सोप्यभूद्विस्मितो यथा ॥४३३॥
ततः शशाङ्कधवले संजाते रजनीमुखे । पाणिनालम्ब्य भूपालं शय्यावेश्म विवेश सा ॥४३४॥
ततः काञ्चनपर्यङ्कशायी मैरेयमत्तया । तयार्थितोऽपि शिथिलं विदधे नाधरांशुकम् ॥४३५॥
प्रवेशयन्निव वृहद्वक्षस्तां सत्रपां ततः । दीर्घबाहुः समाश्लिष्य स शनैरिदमब्रवीत् ॥४३६॥
न त्वं पद्मपलाशाक्षि न मे हृदयहारिणी । किं तु कालानुरोधोऽयं सापराधं करोति माम् ॥४३७॥

दासस्तवायं कल्याणि गुणैः क्रीतोऽस्म्यकृत्रिमैः ।
अचिराज्ज्ञातवृत्तान्ता ध्रुवं दाक्षिण्यमेष्यसि ॥४३८॥

कार्यशेषमनिष्पाद्य सज्जं मानिनि कंचन । अभोगे कृतसंकल्पं सुखानां त्वमवेहि माम् ॥४३९॥
तामेवमुक्त्वा पर्यङ्कं साङ्गुलीयेन पाणिना । वादयन्निव निःश्वस्य श्लोकमेतं पपाठ सः ॥४४०॥
असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः । अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो संध्यां भजते रविः ॥४४१॥
श्लोकेनात्मगतं तेन पठितेन महीभुजा । सा कलाकुशलाऽज्ञासीन्महान्तं कंचिदेव तम् ॥४४२॥
गन्तुकामं च तं प्रातर्नृपं प्रणयिनी बलात् । अर्थयित्वा चिरं कालमप्रस्थानमयाचत ॥४४३॥
एकदा वन्दितुं संध्यां प्रयातः सरितस्तटम् । चिरायातो गृहं तस्या ददर्श भृशविह्वलम् ॥४४४॥
किमेतदिति पृष्टाऽथ तमूचे सा शुचिस्मिता । सिंहोऽत्र सुमहान्रात्रौ निपत्याहन्ति देहिनः ॥४४५॥

कौन है और कहाँके हैं ? इस प्रकार उसने उसका वृत्तान्त जान लिया ॥ ४३१ ॥ कमलाके इस प्रकार उदारता प्रदर्शित करने तथा उसकी दासीके मधुर वचनोंसे जयापीडके हृदयमें प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न हो गया। नृत्यका कार्यक्रम समाप्त होनेपर वह दासी उसे अपनी सखीके घर ले गयी ॥ ४३२ ॥ वहाँपर उस विलासिनीने मधुर एवं उच्च कोटिके संभाषण तथा निष्कपट सेवासे बड़े आदरके साथ उसका आतिथ्य-सत्कार किया। उसके उत्कृष्ट आतिथ्यसे जयापीडको बहुत आश्चर्य हुआ ॥ ४३३ ॥ तदनन्तर जब चन्द्रमाके उदित हो जानेपर निशा-सुन्दरीका मुख धवलवर्ण हो गया, तब हाथ पकड़कर वह उसे अपने शयनागारमें ले गयी ॥ ४३४ ॥ वहाँ उसे सुनहले पलंग बिठाकर उसने मादक मदिरा पिलायी और कुछ क्षणों बाद सम्भोगकी अभिलाषा प्रकट की, किन्तु राजाने अपना अधोवस्त्र शिथिल नहीं किया ॥४३५॥ तदनन्तर वह उस लजीली सुन्दरीको हृदयसे लगा तथा बाहुपाशमें जकड़कर धीरे-धीरे बोला—'कमलनयनी ! भ्रमवश ऐसा न सोच लेना कि तुमने मेरा हृदय नहीं हर लिया है। क्या करूँ, समयका अनुरोध मुझे तुम्हारे समक्ष अपराधी बना रहा है॥४३६॥४३७॥ हे कल्याणी ! तुमने अपने स्वाभाविक गुणोंसे मुझे खरीदकर अपना दास बना लिया है। अभी ही मेरा वृत्तान्त सुनकर तुम्हें और भी अधिक हर्ष होगा ॥ ४३८ ॥ हे मानिनि ! मैं किसी एक विशेष कार्यको पूरा करने का व्रत ले चुका हूँ। वह जबतक पूर्ण नहीं हो जाता, तबतक मैं किसी प्रकारका सुखोपभोग नहीं कर सकता' ॥ ४३९ ॥ उससे ऐसा कहकर जयापीड अपने मुद्रिकाविभूषित हाथसे जैसे शय्याको बजाता हुआ यह श्लोक गाने लगा—॥४४०॥ 'जब तक विजयकी अभिलाषा पूरी न हो जाय, तबतक एक मनस्वी पुरुष स्त्रीकी कामना कैसे कर सकता है। क्योंकि सूर्यनारायण भी समस्त विश्वकी परिक्रमा किये बिना सन्ध्यासुन्दरीके पास नहीं जाते' ॥ ४४१ ॥ इस श्लोकके द्वारा उसे अपनी आपबीती सुनाते देखकर उस कलाकुशल नर्तकीने समझ लिया कि यह कोई महापुरुष है ॥ ४४२ ॥ सबेरा होनेपर जब वह वहाँसे जाने लगा, तब उस प्रणयिनीने बलात् उसे जानेसे रोका और विनय-पूर्वक बड़ी देरतक प्रार्थना करके उसे अपने यहाँ रहनेके लिए राजी कर लिया ॥ ४४३ ॥ एक दिन जयापीड सायंसन्ध्या करनेके लिए नदीतटपर गया। वहाँसे लौटनेमें कुछ विलम्ब हो गया, इससे स्वयं कमला और उसके परिजन बहुत चिन्तित हो उठे। जब वह लौटा तो घरके सब लोगोंको चिन्तित देखकर उस चिन्ताका कारण पूछा। तब कमलाने मुसकाकर कहा—'महाराज ! इधर एक भयंकर सिंह रहता है, जो रात्रिके समय

नरनागाश्वसंहारः कृतस्तेन दिने दिने । त्वय्यभूवं चिरायाते तद्भयेन समाकुला ॥४४६॥
राजानो राजपुत्रा वा तद्भयेन विसूत्रिताः । गृहेभ्यो नात्र निर्यान्ति प्रवृत्ते क्षणदाक्षणे ॥४४७॥
तामिति ब्रुवतीं मुग्धां निषिध्य च विहस्य च । सव्रीड इव तां रात्रिं जयापीडोऽत्यवाहयत् ॥४४८॥
अपरेद्युर्दिनापाये निर्गतो नगरान्तरात् । सिंहागमप्रतीक्षोऽभून्महावटतरोरधः ॥४४९॥
अदृश्यत ततो दूराद्दुत्फुल्लबकुलच्छविः । अट्टहासः कृतान्तस्य संचारीव मृगाधिपः ॥४५०॥
अध्वनाऽन्येन यान्तं तमथ मन्थरगामिनम् । राजसिंहो नदन्सिंहं समाह्वयत हेलया ॥४५१॥
स्तब्धश्रोत्रो व्यात्तवक्त्रः कम्पकूर्चः प्रदीप्तदृक् । उदस्तपूर्वकायस्तं सगर्जः समुपाद्रवत् ॥४५२॥
तस्य न्यस्याननबिले कफोणिं पततः क्रुधा । क्षिप्रकारी जयापीडो वक्षः क्षुरिकयाऽभिनत् ॥४५३॥
शोणितं जग्धगन्धेभसिन्दूराभं विमुञ्चता । एकप्रहारभिन्नेन तेनात्यज्यत जीवितम् ॥४५४॥
आमुक्तव्रणपट्टः स कफोणिमथ गोपयन् । प्रविश्य नर्तकीवेश्म निशि सुष्वाप पूर्ववत् ॥४५५॥
प्रभातायां विभावर्यां श्रुत्वा सिंहं हतं नृपः । प्रहृष्टः कौतुकाद्द्रष्टुं जयन्तो निर्ययौ स्वयम् ॥४५६॥
स दृष्ट्वा तं महाकायमेकप्रहृतिसंहतम् । साश्चर्यो निश्चयान्मेने प्रहर्तारममानुषम् ॥४५७॥
तस्य दन्तान्तराल्लब्धं केयूरं पार्श्वगार्पितम् । श्रीजयापीडनामाङ्कं ददर्शाथ सविस्मयः ॥४५८॥
स्यात्कुतोऽत्र स भूपाल इति ब्रुवति पार्थिवे । जयापीडागमाशङ्कि पुरमासीद्भयाकुलम् ॥४५९॥
ततः पौरान्विमृश्यैवं जयन्तः क्षितिपोऽब्रवीत् । प्रहर्षावसरे मूढाः कस्माद्वो भयसंभवः ॥४६०॥
श्रूयते हि जयापीडो राजा भुजबलोर्जितः । केनापि हेतुना भ्राम्यन्नेकाक्येव दिगन्तरे ॥४६१॥

आक्रमण करके लोगोंको मार डालता है ॥ ४४४ ॥ ४४५ ॥ वह अवतक न जाने कितने मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंको मार चुका है । आपके आनेमें विलम्ब होनेपर हमें उसीके आक्रमणकी आशंका होने लगी थी ॥ ४४६ ॥ उससे डरकर यहाँके राजे और राजपुत्र रात्रिके समय घरसे बाहर नहीं निकलते' ॥ ४४७ ॥ जब कमला ऐसा कह रही थी, तब जयापीडने हँसकर उसे ढाढस बँधाया और लज्जित जैसा होकर उसने वह रात बितायी ॥ ४४८ ॥ दूसरे दिन सायंकालके समय वह नगरसे बाहर निकला और एक विशाल वटवृक्षके नीचे बैठकर सिंहके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ४४९ ॥ थोड़ी ही देर बाद जयापीडने प्रफुल्लित बकुलवृक्ष सदृश कान्तिमान् तथा यमराजके संचरणशील अट्टहासके समान भीषण सिंहको उसने दूरसे देखा ॥ ४५० ॥ उस समय सिंह धीरे-धीरे दूसरे मार्गसे जा रहा था, किन्तु उस राजारूपी सिंह जायपीडने जोरसे गर्जन करके उसे युद्धके लिए ललकारा ॥ ४५१ ॥ गर्जन सुनकर सिंह अपने शरीरका पिछला भाग संकुचित करके गर्जन करता हुआ उछलकर राजापर झपटा । उस समय उसका मुख खुला हुआ था, कान खड़े थे और अयाल हिल रहे थे ॥४५२॥ उसके आक्रमण करते ही जयापीडने बड़ी फुर्तीसे अपना बायाँ हाथ उसके मुखमें डाल दिया और दाहिने हाथमें विद्यमान छुरेसे उसकी छाती फाड़ डाली ॥४५३॥ भक्षित और मतवाले गजराजके समान सिन्दूर सरीखा रक्त बहाता हुआ वह सिंह राजाके उस एक ही प्रहारसे विदीर्ण होकर मर गया ॥ ४५४ ॥ इधर जयापीडने अपने घायल बायें हाथमें पट्टी बाँध ली और उसे छिपाये ही हुए कमलाके घर जाकर पूर्ववत् सो गया ॥ ४५५ ॥ दूसरे दिन सवेरे सिंहके मरणका वृत्तान्त सुनकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उस नगरका राजा जयन्त स्वयं उसे देखने गया ॥४५६॥ उस महाकाय सिंहको एक ही प्रहारसे मरा देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसको यह विश्वास हो गया कि इस सिंहको मारनेवाला व्यक्ति कोई दिव्य पुरुष होगा ॥ ४५७ ॥ तदनन्तर एक पार्श्ववर्तीने सिंहके जबड़ेसे एक केयूर निकालकर राजाको दिया । उसमें जयापीडका नाम खुदा हुआ देखकर राजा जयन्तको और भी आश्चर्य हुआ ॥ ४५८ ॥ 'राजा जयापीड यहाँ कैसे आये ?' राजाके मुखसे यह वचन सुनकर जयापीडके आगमनकी आशंकासे वहाँके सभी नागरिक भयभीत हो उठे ॥ ४५९ ॥ उन भयभीत नागरिकोंको देखकर राजा जयन्तने कहा—'तुम लोग बड़े मूर्ख हो, जो इस हर्षके अवसरपर डर रहे हो ॥ ४६० ॥ मैंने सुना है कि महान्

राजपुत्रः कल्लट इत्युक्ता कल्याणदेव्यसौ । तस्मै नियमिता दातुं निष्पुत्रेण सता मया ॥४६२॥
सोऽन्वेष्यश्चेत्स्वयं प्राप्तस्तद्रत्नाहरणेच्छया । रत्नद्वीपं प्रतिष्ठासोर्निधानासादनं गृहात् ॥४६३॥
अस्मिन्नेव पुरे तेन भाव्यं भुवनशासिना । ब्रूयादेनं समान्वेष्य योऽस्मै दद्यामभीप्सितम् ॥४६४॥
वाचि सप्रत्ययाः पौरा भूपतेः सत्यवादिनः । अन्विष्य कमलावासवर्तिनं तं न्यवेदयन् ॥४६५॥
सामात्यान्तःपुरोऽभ्येत्य प्रयत्नेन प्रसाद्य तम् । ततः स्ववेश्म नृपतिर्निनाय विहितोत्सवः ॥४६६॥

कल्याणदेव्यास्तेनाऽथ कल्याणाभिनिवेशिना ।
राजलक्ष्म्या व्यपास्ताया इव सोऽजिग्रहत्करम् ॥४६७॥

व्यधाद्विनापि सामग्रीं तत्र शक्तिं प्रकाशयन् । पञ्च गौडाधिपाञ्जित्वा श्वशुरं तदधीश्वरम् ॥४६८॥
गतशेषं प्रभुत्यक्तं सैन्यं संवाहयन्स्थितः । मित्रशर्मात्मजो देवशर्माभ्यस्तमाययौ ॥४६९॥
निजदेशं प्रति ततः स प्रतस्थे तदर्थितः । अग्रे जयश्रियं कुर्वन्पश्चात्तेऽथ सुलोचने ॥४७०॥
सिंहासनं जितादाजौ कान्यकुब्जमहीभुजः । स राज्यककुदं राजा जहारोदारपौरुषः ॥४७१॥
तस्मिन्प्रविष्टे स्वभुवं स्फूर्जदूर्जितविक्रमे । सैन्यैः समं समित्सज्जैर्जज्जो योद्धुं विनिर्ययौ ॥४७२॥
शुष्कलेत्राभिधे ग्रामे तेन सार्धं सुदारुणः । जयापीडस्य संग्रामः सुबहूनि दिनान्यभूत् ॥४७३॥
अनुरक्तप्रजो राजा जज्जराज्यासहिष्णुभिः । युधि सोऽन्वीयमानोऽभूद्ग्राम्याटविकमण्डलैः ॥४७४॥
श्रीदेवो ग्रामचण्डालः प्राप्तो ग्राम्यैः समं युधि । कोऽत्र जज्ज इति भ्राम्यन्योधान्पप्रच्छ सर्वतः ॥४७५॥

पराक्रमी राजा जयापीड इन दिनों किसी अज्ञात कारणवश अकेले ही भ्रमण कर रहे हैं ॥ ४६१ ॥ वे अपना नाम राजकुमार कल्लट बताते हैं। मेरे कोई पुत्र नहीं है। अतएव मैंने अपनी पुत्री कल्याण देवीका विवाह उन्हींके साथ करनेका निश्चय किया है ॥ ४६२ ॥ हमे जिसकी खोज करनी थी, वह यदि मुझे घर बैठे मिल गया है तो हमे उसी तरह खुशी मनानी चाहिए, जैसे रत्नद्वीपकी यात्राको उद्यत किसी रत्नखोजीको अपने घरके कोनेमे ही रत्न प्राप्त हो जाय ॥ ४६३ ॥ समस्त भुवनके राजा जयापीड यहीं कहीं होंगे । जो व्यक्ति उन्हें खोज कर बतायेगा, उसे मेरी ओरसे मनचाहा पुरस्कार प्राप्त होगा ॥ ४६४ ॥ उस सत्यवादी राजाकी बातपर विश्वास करके नागरिकोंने पता लगाकर राजाको सूचित किया कि 'महाराज जयापीड कमला नर्तकीके घर ठहरे हुए हैं' ॥ ४६५ ॥ यह सुनकर राजा जयन्त अपने मन्त्रियों तथा अन्तःपुरकी महिलाओंके साथ कमलाके घर गया और बहुत अनुनय-विनय करके जयापीडको अपने यहाँ ले आया । इस आगमनके उपलक्ष्यमे उसने बहुत बड़ा उत्सव मनाया ॥ ४६६ ॥ तदनन्तर राजा जयन्तने अपनी पुत्री कल्याण देवीको परम भाग्यवान् जयापीडके हाथो सौंप दिया और उसने भी त्यक्त राज्यश्रीकी पुनः प्राप्तिके समान उस कन्याका पाणिग्रहण कर लिया ॥ ४६७ ॥ तब राजा जयापीडने भी अपनी शक्तिका परिचय देते हुए बिना किसी सहायक तथा सामग्रीके गौड़देशके पाँच राजाओंको पराजित करके अपने ससुर राजा जयन्तके अधीन कर दिया ॥ ४६८ ॥ कुछ दिनों बाद राजा जयापीडका मन्त्री एव मित्रशर्माका पुत्र देवशर्मा उसके पास आया। उस बुद्धिमान् मंत्रीने उसकी नायकविहीन सेनाको अबतक अपने नियंत्रणमे रक्खा था ॥ ४६९ ॥ उस मंत्रीके प्रार्थना करनेपर राजा जयापीड आगे विजयश्री और उसके पीछे कल्याणदेवी तथा कमलाको साथ लेकर अपने देशको चला ॥ ४७० ॥ मार्गमे उस उदार पुरुष जयापीडने कान्यकुब्जदेशके शासकको परास्त करके उसका राजचिह्नस्वरूप सिंहासन छीन लिया ॥ ४७१ ॥ चलते-चलते जब वह वीर अपने राज्य कश्मीरकी सीमापर पहुँचा, तब विशाल वाहिनी लेकर वहाँका तत्कालीन शासक जज्ज युद्धके लिए आया ॥ ४७२ ॥ जिससे शुष्कक्षेत्र ग्रामके पास जज्ज और जयापीडमे कई दिनोतक बड़ा भीषण संग्राम हुआ ॥ ४७३ ॥ वहाँकी प्रजा जयापीडको चाहती थी । अतएव युद्धकालमे जज्जके अत्याचारोंसे पीडित बहुतेरे ग्रामीण तथा आटविक (भील) के समुदाय जयापीडकी ओर आ मिले ॥४७४॥ ग्रामीणोंकी सेनाके साथ श्रीदेव नामका एक ग्रामचण्डाल भी युद्धमे आया था । वह

तृष्णार्तं स्वर्णभृङ्गारात्पिबन्तं वारि तस्य ते। जनमध्ये हयारूढं तं दूरात्समदर्शयन् ॥४७६॥
भ्रमयन्क्षेपणीयं स क्षिप्त्वाश्मानं तदानने। सोऽयं हतो मया जज्ज इत्यमोघक्रियोऽनदत् ॥४७७॥
साहायकाय राज्ञोऽहं यामीत्युक्त्वार्थिताशनः। मातुर्हसन्त्या जज्जस्य प्रतिज्ञायाययौ वधम् ॥४७८॥
अश्मसंरुग्णभीमास्यं मुमूर्षुं पतितं हयात्। विवेष्टमानं मेदिन्यां जज्जं त्यक्त्वा ययुर्निजाः ॥४७९॥
स समर्थाहितापातचिन्तासततदुःस्थितः। द्रोहार्जितेन राज्येन त्रिभिर्वर्षैर्व्ययुज्यत ॥४८०॥
न्यासापहाराद्वणिजां वेश्यानां कामिवञ्चनात्। द्रोहाच्चोपनता राज्ञामस्थिरा एव संपदः ॥४८१॥
हते जज्जे जयापीडः प्रत्यावृत्य निजां श्रियम्। जग्राह दोष्णा भूभारं कृत्येन च सतां मनः ॥४८२॥
प्रपेदे यत्र कल्याणं स विरोधिवधान्नृपः। देशे कल्याणपुरकृत्तत्र कल्याणदेव्यभूत् ॥४८३॥
राजा मल्हाणपुरकृच्चक्रे विपुलकेशवम्। कमला सा स्वनाम्नापि कमलाख्यं पुरं व्यधात् ॥४८४॥
महाप्रतीहारपीठाधिकारं प्रतिपद्य सः। कल्याणदेवीदाक्षिण्यादकरोदधिकोन्नतिम् ॥४८५॥
उत्पत्तिभूमौ देशेऽस्मिन्दूरदूरतिरोहिता। कश्यपेन वितस्तेव तेन विद्यावतारिता ॥४८६॥
वचोमूर्खोऽयमित्येव कस्मैचिद्वदते स्फुटम्। सर्वज्ञानान्ददच्चक्रे सर्वान्विद्याभियोगिनः ॥४८७॥
देशान्तरादागमय्य व्याचक्षाणान्क्षमापतिः। प्रावर्तयत विच्छिन्नं महाभाष्यं स्वमण्डले ॥४८८॥
क्षीराभिधाच्छब्दविद्योपाध्यायात्संभृतश्रुतः। बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥४८९॥

घूम-घूमकर लोगोंसे यही पूछता फिरता था कि 'जज्ज कौन है और कहाँ है?'॥ ४७५॥ तब लोगोंने दूरसे उसे दिखा दिया। उस समय घोड़ेपर सवार और प्यासा जज्ज सोनेकी झारीसे जल उँड़ेलकर पी रहा था॥ ४७६॥ तत्काल उस चण्डालने अपने क्षेपणीय (ग्वनवास) पर एक पत्थर रक्खा और घुमाकर जज्जके मुखपर मारा। उस पत्थरके आघातसे घायल होकर जज्जको घोड़ेसे गिरते देख वह चण्डाल 'मैंने जज्जको मार डाला' ऐसा कहता हुआ अपनेको कृतार्थ मानने लगा॥ ४७७॥ युद्धभूमिमें आनेके समय उसने 'मैं राजा जयापीडकी सहायताके लिए युद्धमें जा रहा हूँ, तू मुझे जल्दीसे भोजन परोस दे' इस तरह अपनी हँसती हुई माताके समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरा कर दिया॥ ४७८॥ उस पत्थरकी करारी चोटसे जज्जका मुख विकृत तथा भयानक हो गया और वेदनाके कारण मरणासन्न होकर वह बुरी तरह छटपटा रहा था। ऐसी परिस्थितिमें छोड़कर उसके साथी भी भाग गये॥ ४७९॥ इस प्रकार वह जज्ज जयापीड जैसे समर्थ पुरुषके साथ वैर करके सदा विनाशकी आशंकासे व्याकुल रहता हुआ स्वामिद्रोह द्वारा अर्जित राज्यसे तीन वर्षमें ही अलग हो गया॥ ४८०॥ दूसरोंकी धरोहर हड़पनेवाले वैश्यका धन, कामी पुरुषोंको फुसलाकर प्राप्त वेश्याओंकी सम्पत्ति एवं स्वामिद्रोह करके प्राप्त राज्य ये तीनों सम्पदायें अस्थायी होती हैं॥ ४८१॥ जज्जके मारे जानेपर राजा जयापीडने अपना राज्य पुनः प्राप्त करके अपने भुजबलसे पृथिवीपर तथा उत्तम कार्यसे सज्जनोंके मनपर अधिकार कर लिया॥ ४८२॥ जिस स्थानपर विरोधी राजा जज्जके मर जानेपर जयापीडका कल्याण हुआ था, वहाँ उसकी पत्नी कल्याणदेवीने कल्याणपुर नगर बसाया॥ ४८३॥ महाराज जयापीडने भी मल्हणपुर नगर बसाकर विपुलकेशव भगवान्की स्थापना की। उसकी प्रेमिका कमला नर्तकीने कमलापुर नगर बसाया॥ ४८४॥ राजा जयापीडने कल्याणदेवीकी उदारतासे प्रसन्न होकर उसका सम्मान करते हुए उसे महाप्रतीहारपीडाका अधिकार दिया॥ ४८५॥ जिस तरह पूर्वकालमें लुप्त वितस्ता नदीको महर्षि कश्यपने कश्मीरमें पुनः प्रकट किया था, उसी प्रकार राजा जयापीडने सभी विद्याओंके उद्गमस्थान कश्मीरमें सब लुप्तप्राय विद्याओंको पुनरुज्जीवित किया॥ ४८६॥ कुछ समय पहले कश्मीरमें जो लोग अपनेको मूर्ख कहा करते थे, उन अज्ञजनोंको सुशिक्षित बनानेके लिए उसने बड़े-बड़े विद्वानोंको नियुक्त कर दिया॥ ४८७॥ उस नरेशने अपने देशमें लुप्त व्याकरणके महाभाष्यका पुनः प्रचार करनेके लिए विदेशोंसे धुरन्धर विद्वानोंको बुलाकर फिरसे उसके पठन-पाठनकी ओर लोगोंमें उत्सुकता जागृत की॥ ४८८॥ क्षीरस्वामी नामके एक बहुत बड़े वैयाकरणको बुलवाकर उसने स्वयं उससे व्याकरण पढ़ा और विधिवत् महाभाष्यका अध्ययन किया। अपनी राजसभामें उच्चकोटिके विद्वानोंको जुटा-

भूपतेरात्मना स्पर्धां चक्रमे न स कस्यचित् । आत्मनस्तु बुधैः स्पर्धां शुद्धधीर्बह्वमन्यत ॥४९०॥
तावत्पण्डितशब्दोऽभूद्राजशब्दादपि प्रथा । तैस्तैर्दोषैर्न तु म्लानिं कालान्तरवशाद्ययौ ॥४९१॥
नृपतौ विद्वदायत्ते राजसांमुख्यकांक्षिभिः । गृहा बभूवुर्विदुषां व्याप्ताः सेवागतैर्नृपैः ॥४९२॥
समग्रहीत्तथा राजा सोऽन्विष्य निखिलान्बुधान् । विद्वद्दुर्भिक्षमभवद्यथाऽन्यनृपमण्डले ॥४९३॥
अध्यक्षो भक्तशालायां शुक्रदन्तस्य मन्त्रिणः । विद्वत्तया थक्कियाख्यस्तेन स्वीकृत्य वर्धितः ॥४९४॥
विद्वान्दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः । भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ॥४९५॥
स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम् । कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात् ॥४९६॥
मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः संधिमांस्तथा । बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥४९७॥
स स्वप्ने पश्चिमाशायां लक्षयन्नुदयं रवेः । देशे धर्मोत्तराचार्यं प्रविष्टं साध्वमन्यत ॥४९८॥
सचेताः संस्तवव्यक्तविवक्तृत्वो बभूव सः । भावानां भुज्यमानानामास्वादान्तरविन्नृपः ॥४९९॥
अपश्यद्भिर्महास्वादान्भावान्स्वादुविवेकिभिः । किं ज्ञेयमगनादन्यत्क्ष्मापैरन्यैरिवोक्षभिः ॥५००॥

आरूढस्य चितां कृतानुमरणोद्योगप्रियालिङ्गनं पुण्ड्रेक्षुद्रवपानमुल्बणमहामोहस्य लुप्तस्मृतेः ।
वीतामोदवतंसमाल्यवलयामोदश्च यादृग्भवेद्भावानां सुभगः स्वभावमहिमा निश्चेतनस्तादृशः ॥५०१॥

मन्त्रविक्रमयोस्तस्य द्वयोर्दर्पणयोरिव । एकैव बिम्बिता मूर्तिः सहस्रगुणतां ययौ ॥५०२॥
आंडुवन्त्रिगुणामाज्ञां लङ्केन्द्रात्पत्र राक्षसान् । तेनानयेति जगदे दूतो जातु पुरः स्थितः ॥५०३॥

कर उसे अत्यन्त भव्य बना दिया ॥ ४८९ ॥ वह किसी राजाको अपने साथ स्पर्धा नहीं करने देता था। किन्तु स्वयं विद्वानोंके साथ स्पर्धा करके वह गौरव तथा उत्साहका अनुभव करता था ॥ ४९० ॥ इस समय कश्मीर राज्यमें राजाके पदकी अपेक्षा पण्डितपद अधिक लोकप्रिय था और इस पदकी विशेष ख्याति थी। समयकी मलिनतासे यद्यपि पण्डितोंमें बहुतेरे अवगुण आ गये थे। तथापि पण्डितपदकी प्रसिद्धिमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं आयी ॥ ४९१ ॥ राजा जयापीड सर्वथा विद्वानोंके अधीन हो गया था। अतएव विद्वानोंके घर उसके दर्शनाभिलाषी सामन्त राजाओंकी भीड़ लगी रहती थी ॥ ४९२ ॥ उसने खोज-खोजकर संसार भरके उत्तम विद्वानोंको अपने यहाँ रख लिया। इसलिए अन्य राज्योंमें विद्वानोंका अकाल-सा पड़ गया ॥ ४९३ ॥ उसके मुख्यमंत्री शुक्रदन्तके पास अन्नक्षेत्रका अध्यक्ष थक्किय नामका एक महान् पण्डित रहता था। उसकी विद्वत्तासे प्रसन्न होकर राजाने उसको अपने यहाँ रख लिया ॥ ४९४ ॥ प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन पानेवाला भट्टोद्भट नामका महापण्डित उसके यहाँ सभापति पदपर था ॥ ४९५ ॥ 'कुट्टनीमत' नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थका रचयिता दामोदरगुप्त राजा बलिके यहाँ शुक्राचार्यके समान सम्मानित होकर मुख्यमंत्रीका कार्य करता था ॥ ४९६ ॥ इसी तरह मनोरथ, शंखदत्त, चटक तथा सन्धिमान् आदि कवि और वामन आदि मंत्री थे ॥ ४९७ ॥ एक रोज जयापीडने रातमें यह स्वप्न देखा कि सूर्य पश्चिम दिशामें उदित हुआ है। इसका मतलब उसने यह लगाया कि मेरे राज्यमें किसी श्रेष्ठ धर्माचार्यका अवतार हुआ है और इस घटनाका अभिनन्दन किया ॥ ४९८ ॥ अतिशय बुद्धिमान् राजा जयापीड सभी पदार्थोंके मूलतत्त्वसे परिचित होनेके कारण सब बातोंको भली भाँति समझता था ॥ ४९९ ॥ केवल भोज्य पदार्थोंका स्वाद जाननेवाले एवं ललितकलासम्बन्धी चित्ताकर्षक वस्तुओं तथा सुभाषित आदिके सरस भावोंके स्वादसे अनभिज्ञ राजे बैलोंके समान अज्ञानान्ध होते हैं, उन्हें उत्तम ज्ञान भला कैसे प्राप्त हो सकता है? ॥ ५०० ॥ जैसे चितापर रक्खे हुए मुर्देको सती होती हुई प्रियतमाके आलिंगन, मूर्च्छित व्यक्तिको ऊखके रसपानका आनन्ददायी स्वाद, मृत व्यक्तिको पुष्पमालाकी सुगन्धि एवं आभूषण-धारणके आनन्दका अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार असहृदय तथा शुष्क स्वभाववाले मनुष्यके समक्ष ललितकलामय पदार्थोंके सौन्दर्यका कोई महत्त्व नहीं होता ॥ ५०१ ॥ मंत्र तथा पराक्रमरूपी दो दर्पणोंमें प्रतिबिम्बित राजा जयापीडका एक ही स्वरूप हजारों रूपोंमें विभक्त दिखायी देता था ॥ ५०२ ॥ एक बार अपने समक्ष

सांधिविग्रहिकः सोऽथ गच्छन्पोताच्च्युतोऽम्बुधौ । प्राप पारं तिमिग्रासं तिमिमुत्पाट्य निर्गतः ॥५०४॥
प्रियम यों राममभक्त्या नृपाज्ञालेखदायिनम् । स्वदेशमनयद्दत्तैं रक्षोभिस्तं विभीपणः ॥५०५॥
दूतं वित्तैः पूरयित्वा सरोऽगाधं च राक्षसैः । चक्रे जयपुरं कोट्टं त्रिविष्टपसमं नृपः ॥५०६॥
बुद्धत्रयं महाकारं विहारं च विधाय सः । नगरान्तर्जयादेवीं पुण्यकर्मा स निर्ममे ॥५०७॥
तत्पुरे चतुरात्मा च शेषशायी च केशवः । विष्णुलोकस्थितिं त्यक्त्वा ध्रुवं बध्नाति संनिधिम्॥५०८॥
अन्यत्कर्मान्तरं किंचित्कारयित्वा स राक्षसान् । व्यधात्कारुभिरेवाम्भ इति शंसन्ति केचन ॥५०९॥
स हि स्वप्ने जलान्तर्मे कुरु द्वारवतीमिति । उक्तः कंसारिणा चक्रे विनिर्माणं तथाविधम् ॥५१०॥
श्रीद्वारवत्यधिष्ठानं वाह्यं कोट्टं तथा ह्यसौ । अभ्यंतरं जयपुरं ब्रूतेऽद्याप्यखिलो जनः ॥५११॥
मन्त्री पञ्चमहाशब्दभाजनं जगतीभुजः । तस्मिञ्जयपुरे कोट्टे जयदत्तो व्यधान्मठम् ॥५१२॥
राजक्षत्तुः प्रमोदस्य जामाता मथुरापतेः । आचाभिधो व्यरचयच्छुचिराचेश्वरं हरम् ॥५१३॥
पुनः संभृतसामग्र्यो दिग्जयाय विनिर्ययौ । वलैर्जलधिवेलाद्रीन्द्रावयन्नलघुद्विपैः ॥५१४॥
संप्रविष्टापि पूर्वाब्धिमविच्छिन्ना हिमाचले । भगीरथस्य गङ्गेव रेजे तस्यानुगा चमूः ॥५१५॥
सार्धं प्रचण्डैश्चण्डालैरटन्तः कटकाद्बहिः । तस्यासन्यामिका रात्रौ मुम्मुनिप्रमुखा नृपाः ॥५१६॥
नामान्यद्विनयादित्य इति प्रख्यापयन्नृपः । पूर्वाशां विनयादित्यपुरेणालंकृतां व्यधात् ॥५१७॥
अत्युत्सेकेन महसा साहसाध्यवसायिनाम् । श्रीरारोहति संदेहं महतामपि भूभृताम् ॥५१८॥

खड़े दूतको उसने यह बड़ी विचित्र आज्ञा दे दी कि 'तुम लंकेश्वरके पास जाकर उनसे पाँच राक्षसोंको माँग लाओ' ॥ ५०३ ॥ उसके आज्ञानुसार वह चतुर दूत जलपोत द्वारा तुरन्त चल पड़ा और कुछ ही दूर आगे जाकर समुद्रमें गिर गया। गिरते ही उसे तिमि महामत्स्यने लील लिया। वह महामत्स्य उसे लिये हुए लंकातटपर पहुँचा, तब दूत उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आया। इस प्रकार वह लंकामें जा पहुँचा ॥ ५०४ ॥ राजभक्त होनेके कारण लंकेश विभीपण मनुष्यमात्रसे अन्यन्त प्रेम रखते थे। अतएव राजा जयापीडका आज्ञापत्र लानेवाले दूतके साथ पाँच राक्षसोंको उन्होंने भेज दिया ॥ ५०५ ॥ उस दूतको पुष्कल धन देकर उस राजाने सन्तुष्ट किया और उन राक्षसों द्वारा एक अगाध सरोवर पटवाकर उस स्थानपर स्वर्गके समान सुन्दर जयपुर नामका नगर बसाया ॥ ५०६ ॥ वहाँ ही एक बहुत बड़ा विहार बनवाकर उसमें तीन बुद्धमूर्तियाँ स्थापित कीं और उस पुण्यात्माने उस नगरमें जयादेवीका भी मन्दिर बनवाया ॥ ५०७ ॥ चतुरात्मा शेपशायी विष्णुभगवान्ने तो जैसे अपना विष्णुलोक त्यागकर सदाके लिए उसी नगरमें निवास करनेका निश्चय कर लिया था ॥५०८॥ यहाँ कुछ इतिहासकारोंका मत यह है कि राजा जयापीडने लंकेशके भेजे हुए राक्षसोंसे कोई और ही काम लिया था। सरोवर पाटनेका काम तो मजदूरोंने ही कर डाला था ॥ ४०९ ॥ राजा जयापीडको कंसनिपूदन भगवान्ने स्वप्नमें आज्ञा दी थी कि 'जलके भीतर मेरे लिए एक दूसरी द्वारकाका निर्माण करा दो'। तदनुसार उसने जलके भीतर अन्य द्वारकापुरी निर्मित करायी ॥ ५१० ॥ इसी कारण लोग आज भी प्रतिद्वारकाको वाह्यकोट तथा जयपुरको अभ्यन्तर कोट कहते है ॥ ५११ ॥ पाँच शब्दोंकी विरुदावलीसे विभूपित उस राजाके महामन्त्री जयदत्तने जयपुरमें एक मठका निर्माण कराया ॥ ५१२ ॥ राजा जयापीडके प्रतीहार एवं मथुरापति श्रीप्रमोदके जामाता आचने वहाँ आचेश्वर शिवकी स्थापना की ॥ ५१३ ॥ तदनन्तर उस राजाने समस्त साधनसामग्रियोंसे सुसज्जित होकर फिरसे दिग्विजयके लिए प्रस्थान कर दिया। उसकी सेनाके पर्वताकार हाथियोंसे समुद्रतट बढ़ा हुआ-सा दीखने लगा ॥५१४॥ उसकी विशाल वाहिनी हिमालयसे चलकर पूर्वी समुद्रतटतक जा पहुँची और वहाँसे फिर लौटती हुई भागीरथी गंगाजीके समान शोभित हुई ॥'५१५ ॥ उस समय मुम्मुनि आदि सामन्त राजे चण्डालोंके साथ चिल्ला-चिल्लाकर सेनाशिविरके चारो ओर घूमते हुए पहरा देते थे ॥ ५१६ ॥ राजा जयापीडने अपना 'विनयादित्य' यह मधुर नाम रख तथा उस नामके अनुरूप विनयपुर नगर बसाकर पूर्वी प्रदेशको अलंकृत किया ॥५१७॥ जब लोग मर्यादाका उल्लंघन करके शौर्यके अभिमानवश अपने विलक्षण साहसका प्रदर्शन

भीमसेनाभिधानस्य स दुर्गं पूर्वदिक्पतेः । निःशब्दो व्रतिभिः सार्धं व्रतिलिङ्गी विवेश यत् ॥५१९॥
तं रन्ध्रान्वेषिणं तत्र परिज्ञाय चिरस्थितः । भ्राता जज्जस्य सिद्धाख्यो गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥५२०॥
भूपतिं भीमसेनोऽथ राजाऽकस्माद्बबन्ध तम् । नहुषाजगरो भीममिव भीमपराक्रमम् ॥५२१॥
तस्मिन्वीरे तथा बद्धे धुर्ये पुरुषकारिणाम् । पौरुषद्वेषिणा जाने दैवेनोन्नमितं शिरः ॥५२२॥
जयापीडस्त्वसंमूढो व्यसनेऽप्यतिदारुणे । तांस्तान्संचिन्तयन्नार्गादुपायानुदयोन्मुखः ॥५२३॥
अत्रान्तरे नरपतेः पौराणामतिदुस्तरा । लूतामयकृता व्यापदुदपद्यत मण्डले ॥५२४॥
आमयः स्पर्शसंचारी तत्र व्यापादकश्च सः । देशदोषादतो जन्तुर्लूताव्याप्तो विवर्ज्यते ॥५२५॥
तदाकर्ण्य जयापीडो जातोपायप्रयुक्तधीः । स्वभृत्येनोपयुक्तानि द्रव्याण्यानीतवान्रहः ॥५२६॥
तैः पित्तोद्रेचकैर्भुक्तैर्ज्वलत्पित्तोऽवहज्ज्वरम् । वज्रवृक्षपयश्चाङ्गे क्षिप्त्वा सपिटकोऽभवत् ॥५२७॥
तं लूताव्याप्तमाकर्ण्य विपक्षो रक्षिणां मुखात् । विपत्स्यते ध्रुवमिति ध्यात्वा देशाद्बहिर्व्यधात् ॥५२८॥
एवं स्वमतिमाहात्म्यात्संतीर्णो विपदर्णवात् । व्याप्तव्योमाग्रहीद्दुर्गं यशश्च परिपन्थिनः ॥५२९॥

य: सर्वकालमबुधैः परिहस्यमानो मूलाङ्कुराद्यपि न जातु पुरस्करोति ।
व्यापत्सु शास्त्रविटपी स फलं प्रसूय पुंसः किलैकपद एव लुनात्यलक्ष्मीम् ॥५३०॥

तमैच्छदभिसंधातुं विद्याविक्रमसंयुतः । मायाव्यरमुडिर्नाम राजा नेपालपालकः ॥५३१॥
अकृतप्रणतिस्तस्य प्रविष्टस्य स्वमण्डलम् । अग्रात्सुदूरमध्वानं ससैन्योऽपससार सः ॥५३२॥

करने लगते हैं, तब बड़े-बड़े प्रतापशाली राजाओंकी भी राज्यश्री सन्देहरूपी हिंडोलेपर झूला झूलने लगती है ॥ ५१८ ॥ एक बार पूर्वदेशके एक राजा भीमसेनके किलेमें राजा जयापीड अपने कतिपय मित्रोंके साथ ब्रह्मचारीके वेषमें घुस गया ॥ ५१९ ॥ वहाँपर बहुत समयसे रहनेवाले जज्जके भ्राता सिद्धने छिद्रान्वेषण करते हुए जयापीडको पहचान लिया और इस बातकी सूचना राजा भीमसेनको दे दी ॥ ५२० ॥ तब पूर्वकालमें अजगररूपधारी राजा नहुषने जैसे भीमको पकड़कर जेलमें डाल दिया था, इसी प्रकार भीमसेनने भी राजा विनयादित्यको पकड़कर बाँध लिया ॥ ५२१ ॥ पुरुषार्थियोंमें श्रेष्ठ राजा विनयादित्यके इस प्रकार बन्धनमें पड जानेपर हो सकता है कि उस पौरुषद्वेषी दैत्यने अवश्य गर्वसे अपना मस्तक ऊँचा कर लिया होगा ॥ ५२२ ॥ किन्तु उदयोन्मुख राजा जयापीड इस भीषण विपत्तिमें भी धैर्य छोड़े बिना ही उस संकटसे छुटकारा पानेके लिए विभिन्न उपाय सोचता रहा ॥ ५२३ ॥ इसी समय राजा भीमसेनके राज्यमें अतिशय कष्टदायी तथा संक्रामक लूतारोग फैल गया ॥ ५२४ ॥ वह रोग स्पर्श होते ही एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको लग जाता था और प्राण ले लेता था। अतएव उस रोगके रोगीको जनसाधारणकी रक्षाके लिए देशसे बाहर निकाल दिया जाता था ॥ ५२५ ॥ कारावद्ध राजा जयापीडको जब यह वृत्तान्त विदित हुआ, तब इस रोगको ही अपने छुटकारेका साधन बनानेका निश्चय करके उसने अपने सेवकोंके द्वारा चुपकेसे कुछ विशेष प्रकारकी वस्तुये बाजारसे मँगवायीं ॥ ५२६ ॥ उन पित्त-प्रकोपक वस्तुओंको खानेसे उसे बड़े वेगसे पित्तज्वर आ गया। तदनन्तर उसने सारे शरीरमें सेहुड़का दूध लगा लिया, जिससे बड़े-बड़े फफोले निकल आये ॥ ५२७ ॥ कारागारके रक्षकोंसे उसके व्याधिग्रस्त होनेका हाल सुनकर राजा भीमसेनने सोचा कि 'इस लूतारोगसे अब वह अवश्य मर जायगा'। ऐसा विचार करके उसने बन्दी राजा जयापीडको अपने देशसे निकालकर बाहर कर दिया ॥ ५२८ ॥ इस प्रकार अपने बुद्धिकौशलसे वह महासंकटरूपी समुद्र पार करके राजा जयापीडने अपने उस शत्रुके गगनचुम्बी किले तथा उसके यश इन दोनोंको एक साथ धूलमें मिला दिया ॥ ५२९ ॥ शास्त्ररूपी सुवृक्षकी मूर्ख लोग मखौल उड़ाया करते हैं। क्योंकि उसके मूल, अंकुर, पुष्प तथा फल प्रत्यक्ष नहीं दिखायी देते। किन्तु वही सद्वृक्ष संकटकालमें फलीभूत होकर मनुष्यका दारिद्र्य तत्काल दूर कर देता है ॥ ५३० ॥ इसी तरह अत्यन्त चतुर, विद्वान् एवं पराक्रमी नेपालदेशका राजा अरमुडी भी अपने चातुर्यसे जयापीडको फाँसनेका उपाय सोचता रहता था ॥ ५३१ ॥ एक बार राजा जया-

जिगीषोस्तस्य तु तथा तत्तत्पार्थिवनिर्जयः । पृथक्कृत्यननिर्वर्त्यो नाभूत्तदनुसारिणः ॥५३३॥
सत्रं क्वापि क्वचिद्दृश्यं प्रतिदुर्गं स वैरिणम् । श्येनः कपोतं कक्ष्यान्तरिवान्विष्यञ्जगाम सः ॥५३४॥
ततो निःशेषितोपाये तस्मिन्कुर्वन्स दिग्जयम् । आससादाब्धेस्तटे सिन्धोः समुपावेशयद्बलम् ॥५३५॥
तत्रस्थं दिवसैर्द्वित्रैरथ पूर्वार्णवोन्मुखः । कर्षन्वेलानिलस्पर्शोत्सृष्टध्वजपटाश्चमूः ॥५३६॥
ततस्तस्मिन्सरित्पारे दक्षिणस्मिन्क्ष्मापतेः । तस्थावरमुडिः सैन्यं स्वच्छत्राङ्कं प्रकाशयन् ॥५३७॥
भूरिभेरीरवोद्गारि प्रबलं वीक्ष्य तद्बलम् । प्रजज्वाल जयापीडः पीतसर्पिरिवानलः ॥५३८॥
स जानुदघ्नं निर्विघ्नं पश्यन्नग्रे सरिज्जलम् । अपूर्वत्वादभूमिज्ञः क्रुद्धस्तत्तु व्यगाहत ॥५३९॥
मध्यं प्राप्ते नृपे पूर्णा वेलया वर्धमानया । अकालेऽभूदगाधाम्भा सार्णवाभ्यर्णगा सरित् ॥५४०॥
नरनागाश्वबहुलं तथा सैन्यं महीपतेः । प्रवृद्धया प्लाव्यमानं क्षणात्संक्षयमाययौ ॥५४१॥
नृपतिर्वीचिसंमर्दभ्रंशिताभरणांशुकः । बाहुभ्यां लहरीश्छिन्दञ्जलैर्दूरमनीयत ॥५४२॥
एकस्य करुणाक्रन्दैः सैन्यस्यान्यस्य गर्जितैः । सरित्तरङ्गघोषैश्च बभूवुस्तुमुला दिशः ॥५४३॥
क्षिप्रकार्गे महानिभिः संनद्धैः सरितोऽन्तरात् । स चाकृष्य जयापीडं बबन्ध विहितोत्सवः ॥५४४॥
दैवस्याम्बुमुचश्च नास्ति नियमः कोऽप्यानुकूल्यं प्रति व्यञ्जन्यः प्रियमुत्कटं घटयते जन्तोः क्षणादप्रियम् ।
क्षिप्रं दीर्घनिदाघस्मरविपत्संतापनिर्वापणं प्रादुष्कृत्य वनस्पतेः प्रकुरुते विद्युद्विसर्गं च यः ॥५४५॥

पीड आक्रमण करके उसके राज्यमें घुस गया। तब अरमुडी उसकी शरणमें न जाकर सेनाके साथ अपने राज्यके दूरवर्ती दुर्गम प्रदेशोंमें चक्कर काटने लगा ॥ ५३२ ॥ जयापीड किसी भी तरह उसे परास्त करनेका दृढ़ निश्चय करके उसका पीछा करने लगा और उसी प्रसंगमें रास्तेके बहुतेरे राजाओंको जीत लिया ॥ ५३३ ॥ किन्तु नेपालनरेश अरमुडी कभी दिखायी देता और कभी अदृश्य हो जाता था। इधर जयापीड भी कबूतरका पीछा करनेवाले बाजकी तरह हर जगह उसे खोजता रहता था ॥ ५३४ ॥ अन्तमें बचनेके सब उपाय व्यर्थ हो जानेपर अरमुडीने एक समुद्रगामिनी नदीके तटपर सेनाकी छावनी डाली। उसी समय जयापीड भी दिग्विजय करता हुआ उस महानदी तथा समुद्रके संगमपर पहुँचा और वहाँ ही पड़ाव डाल दिया ॥ ५३५ ॥ दो-तीन दिन वहाँ ठहरनेके बाद वह समुद्री वायुसे फहराती पताकाओंवाली सेना लेकर पूर्वी समुद्रकी ओर चला ॥ ५३६ ॥ महानदीके दक्षिण उस पार राजा अरमुडीका पड़ाव था, जिसमें दूरसे ही उसका श्वेत छत्र चमकता दीख रहा था ॥ ५३७ ॥ भेरी आदि वीरवाद्य युक्त उसकी विशाल सेनाको देखकर राजा जयापीडकी क्रोधाग्नि उसी तरह भभक उठी, जैसे घृतकी आहुति पाकर आग भभक उठती है ॥ ५३८ ॥ उस स्थानपर नदीमें केवल घुटने भर जल देखकर उसने सोचा कि बड़ी आसानीसे मेरी सेना पार हो जायगी। बस, इसी क्रोधके आवेशमें सेनाके साथ वह उस अपरिचित नदीमें घुस पड़ा ॥ ५३९ ॥ प्रवाहमें चलता हुआ वह नदीके बीचोबीच पहुँचा वैसे ही समुद्रके ज्वारकी तरंगोंसे वहाँ अथाह जल भर गया ॥ ५४० ॥ इस प्रकार नदी पार करते हुए राजा जयापीडके सभी हाथी-घोड़े तथा सैनिक उस प्रवाहमें तत्क्षण डूब मरे ॥ ५४१ ॥ तरंगोंकी चपेटमें उस राजाके सभी वस्त्र तथा अलंकार बह गये। किन्तु वह अपनी सशक्त भुजाओंके सहारे तरंगोंको चीरता हुआ तैरता रहा, परन्तु जलके प्रबल बहावमें बहुत दूरतक बह गया ॥ ५४२ ॥ उस समय जयापीडकी सेनाके करुण क्रन्दन, अरमुडीकी सेनाके जयघोष और नदीकी तरंगोंके भीषण हाहाकारसे दसों दिशायें भर गयीं ॥ ५४३ ॥ उधर राजा अरमुडीके सैनिक फूली हुई मशकें लिये नदीके तटपर तैयार खड़े थे। उस फुर्तीले अरमुडीने उन्हें नदीमें उतारकर जयापीडको पकड़वाया और तटपर लाकर बाँध लिया। इस विजयके उपलक्ष्यमें उसने बहुत बड़ा उत्सव मनाया ॥ ५४४ ॥ दैव और मेघ ये दोनों सदा अनुकूल नहीं रहते। क्योंकि दैव पहले थोड़ीसी अनुकूलता दिखाकर बादमें प्राणीके ऊपर भयानक तथा असह्य विपत्तियाँ डाल देता है। इसी प्रकार मेघ भी ग्रीष्मके सन्तापदायक एवं लम्बे दिनोंके तापसे झुलसे वृक्षको कुछ शीतल बूँदोंसे तापशान्ति-

स कालगण्डिकातीराश्रयात्युच्चाश्मवेश्मनि । निचिक्षेप जयापीडमाप्तानां रक्षिणां करे ॥५४६॥
तथा काश्मीरिको राजा निमग्नो व्यसने पुनः । स किंकर्तव्यतामूढः शुचा गूढमदह्यत ॥५४७॥
कलावत्सु शशाङ्कोऽपि तेजस्विष्वर्यमापि तम् । न ददर्श यथा धीमान्स ररक्ष तथा नृपः ॥५४८॥
अपश्यन्निर्गतः किंचिदालोकन्यस्तलोचनः । आसन्नां तटिनीमासीदुपायांश्च स चिन्तयन् ॥५४९॥
अवस्थावेदकास्तत्र ग्रथिताः पृथिवीभुजा । आर्द्रान्तःकरणैः श्लोकाः स्मर्यन्तेद्यापि सूरिभिः ॥५५०॥
तथा तस्मिन्स्थिते मानी देवशर्मैव मन्त्रिषु । चिन्तयन्स्वामिसम्मानमनिशं पर्यतप्यत ॥५५१॥
भर्तुः स्वदेहत्यागेन स हितं कर्तुमुद्यतः । दूतैररमुडेश्चक्रे प्रियवाग्भिः प्रलोभनम् ॥५५२॥

जयापीडश्रिया साकं राज्यं कश्मीरमण्डले ।
दास्यामि तुभ्यमित्यस्य दूतैः स श्रावितोऽभवत् ॥५५३॥

प्राप्तेषु प्रतिदूतेषु पूर्णायामथ संविदि । गृहीतकटको मन्त्री नेपालविषयं ययौ ॥५५४॥
स कालगण्डिकासिन्धोरर्वाचि कटकं तटे । स्थापयित्वा परं पारं ययौ मितपरिच्छदः ॥५५५॥
सामन्तैरग्रमायातैस्तां सभां संप्रवेशितम् । सत्कृत्यारमुडिः प्रह्वं न्यवेशयत विष्टरे ॥५५६॥
अध्वश्रान्त इति क्षिप्रं प्रतिमुक्तः क्षमाभुजाः । तद्विसृष्टोपचारस्तन्निनायावसथे दिनम् ॥५५७॥
स चारमुडिभूभृच्च पीतकोशौ परस्परम् । आसतां निर्जनेऽन्येद्युः कर्तव्यकृतनिश्चयौ ॥५५८॥
नृपमूचेऽथ सचिवो जयापीडार्जितं धनम् । अस्ति सैन्ये तदाप्तानां तस्य वा विदितं च तत् ॥५५९॥

की आशा दिलाकर तुरन्त विद्युत्पातके द्वारा नष्ट कर देता है ॥ ५४५ ॥ अरमुडीने राजा जयापीडको बाँधकर कालगंडिका नदीके तटवर्ती एक पाषाणनिर्मित तथा बहुत ऊँचे किलेमें कैद कर दिया। देख-रेखके लिए उसने वहाँ विश्वस्त रक्षक नियुक्त कर दिये ॥ ५४६ ॥ इस प्रकार पुनः संकटमें पड़ा हुआ वह कश्मीरनरेश किंकर्तव्यविमूढ होकर शोकरूपी अग्निमें निरन्तर जलने लगा ॥ ५४७ ॥ उस नेपालके राजाने ऐसी प्रबल व्यवस्था की थी कि जिससे जयापीडको तेजस्वियोंमें सूर्य एवं कलावन्तोंमें चन्द्रमाका भी दर्शन नहीं मिलता था ॥ ५४८ ॥ बड़ी देर बाद जयापीडने एक झरोखेके पास जाकर देखा तो उसे वहाँसे नदीका प्रवाह दिखायी पड़ा, उसके बाद वह उस साँसतसे छुटकारेका उपाय सोचने लगा ॥ ५४९ ॥ कारागारमें बन्द राजा जयापीडने आर्द्र हृदयसे उस समयकी अवस्थाका वर्णन करते हुए कुछ श्लोक रचे थे, जिनका स्मरण आज भी बहुतेरे विद्वान् करते हैं ॥ ५५० ॥ अपने स्वामीको कारागारकी यातना भोगते सुनकर उसके स्वाभिमानी तथा चतुर मंत्री देवशर्माको अपने प्रभुके सम्मानका स्मरण करके अपार दुःख हुआ ॥ ५५१ ॥ अन्तमें उस मनस्वीने प्राण देकर भी अपने प्रभुका भला करनेका निश्चय करके चतुर तथा मधुरभाषी दूतोंको भेजकर राजा अरमुडीको प्रलोभन देना आरम्भ कर दिया ॥ ५५२ ॥ तदनुसार उसने दूतोंसे कहलाया कि 'मैं जयापीडकी सारी सम्पदा और कश्मीर राज्य आपको सौंप देना चाहता हूँ' ॥ ५५३ ॥ यह प्रस्ताव सुनकर अरमुडीने भी अपने दूत द्वारा उसकी स्वीकृतिका सन्देश भेज दिया। इस प्रकार परस्पर विचारोंका आदान-प्रदान हो जानेपर मंत्री देवशर्मा अपनी सेना साथ लेकर नेपाल गया ॥ ५५४ ॥ वहाँ वह सारी सेना कालगंडिका नदीके इस पार छोड़कर कतिपय सेवकोंके साथ उस पार अरमुडीके पास गया ॥ ५५५ ॥ उसके सामन्तोंने आगे आकर देवशर्माका स्वागत किया और यथोचित सत्कार करके उसे राजा अरमुडीके पास ले गये। देवशर्माने विनम्रभावसे उसको प्रणाम किया। उसने भी उसका सादर स्वागत करके आसनपर बिठाला ॥ ५५६ ॥ देवशर्मा लम्बा रास्ता तै करनेके कारण थका हुआ था। इसलिए बहुत थोडी बात करके राजा अरमुडीने उसे शीघ्र छुट्टी दे दी। देवशर्मा भी नेपालनरेशके द्वारा अर्पित उपहारोंको लेकर अपने स्थानपर लौट आया और वह दिन उसने वहाँ ही व्यतीत किया ॥ ५५७ ॥ दूसरे दिन कोशपानपूर्वक एकान्तमें वार्तालाप करते हुए उन दोनोंने भावी कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ५५८ ॥ तदनन्तर देवशर्माने कहा—'जयापीड द्वारा अर्जित सारा धन सेनाके पास है, किन्तु

दानेन भविता मोक्षस्तवेत्युक्त्वा विमोहयन् । तस्मात्तं प्रष्टुमिच्छामि क्व वसु न्यस्तमित्यहम् ॥५६०॥
अत एव मया सैन्यं संहृतं न प्रवेशितम् । यदेतन्मध्यगाः शक्या न बद्धुं न्यासधारिणः ॥५६१॥
तस्मादेकैकमाहूय तेषु बद्धेषु सैनिकाः । कोपमज्ञातहृदया न यास्यन्ति विचक्षणः ॥५६२॥
एवं विमोहितात्तस्मात्प्राज्ञोऽनुज्ञां स लब्धवान् । बद्धस्य प्रययौ पार्श्वं जयापीडमहीभुजः ॥५६३॥
तदालोकनजं शोकं गोपयन्धैर्यसागरः । गृहं तन्निर्जनं कृत्वा क्षिप्रं पप्रच्छ तं नृपम् ॥५६४॥
अपि त्वया निजं तेजो भित्तिभूतं न हारितम् । तस्मिन्हि सति सिध्यन्ति साहसालेख्यकल्पनाः ॥५६५॥
स तं बभाषे निःशस्त्रो मन्त्रिन्नेवं व्यवस्थितः । अद्भुतं कर्म किं कुर्यां म्रियमाणेन तेजसा ॥५६६॥
मन्त्री तमूचे तेजश्चेद्राजन्न निःसृतं तव । जानीहि तत्क्षणेनैव लङ्घितं विपदर्णवम् ॥५६७॥
अपि वातायनादस्मात्पतित्वा निम्नगाम्भसि । पारं गन्तुं समर्थोऽसि सैन्यं ह्यत्र निजं तव ॥५६८॥
राजा जगाद तं नास्मान्पतितोऽर्थोऽयतेऽम्भसः । विना दृतिं दृतिश्चात्र दूरपाताद्विदीर्यते ॥५६९॥
तस्मान्नायमुपायोऽत्र न च नाम विमानितः । बहु मन्ये तनुत्यागमनिर्मथ्यापकारिणम् ॥५७०॥
ततो निश्चित्य सोऽमात्यस्तमवादीन्महीपते । बहिः केनाप्युपायेन बहेस्त्वं नालिकाद्वयम् ॥५७१॥
प्रविश्यैकाकिनैवाथ द्रष्टव्यः संभृतो मया । सरिदुत्तरणोपायः सोऽनुष्ठेयोऽप्यशङ्कितम् ॥५७२॥
श्रुत्वेति निर्गतो राजा पायुक्षालनवेश्म सः । सविलम्बं बहिर्वेलां तदुक्तामत्यवाहयत् ॥५७३॥
एकाकी संप्रविष्टोऽथ तं ददर्श च्युतं क्षितौ । विपन्नं गलमुद्बध्य दृढया चेलचीरया ॥५७४॥

उसके रखनेका स्थान जयापीड और उसके कुछ विश्वस्तजन ही जानते हैं ॥ ५५९ ॥ इसके लिए मेरी इच्छा यह है कि मैं जयापीडसे मिलकर कहूँ कि 'यदि आप अपना संचित धन दे दें तो कारावाससे छुटकारा मिल सकता है' ऐसा कहकर उससे धनका स्थान पूछ लिया जाय ॥ ५६० ॥ यही कारण है कि मैंने अपनी सेना दूर रक्खी है। क्योंकि उस धनका पता जाननेवाले सैनिकोंको सेनामें रहते समय पकड़ना असम्भव था ॥ ५६१ ॥ इसलिए उनमेंसे एक-एक सैनिकको बुलाकर यदि बन्दी बनाया जाय तो दूसरे सैनिक हमारा अभिप्राय न समझ सकेंगे और वे कुपित न होकर हमारे प्रश्नोंका सही-सही उत्तर देंगे' ॥ ५६२ ॥ इस प्रकारकी मोहक बातें करके देवशर्माने क्रमुर्डीसे अनुमति प्राप्त कर ली और कारागारमें पड़े हुए जयापीडके पास शीघ्र जा पहुँचा ॥ ५६३ ॥ वहाँ उसकी दुर्दशा देखकर देवशर्माको बहुत दुःख हुआ, किन्तु अपने दृढ निश्चय तथा धैर्यसे उस व्यथाको दबाते हुए वहाँसे अन्य लोगोंको हटाकर एकान्तमें उसने राजासे पूछा—'महाराज ! आपने साहसके मूलाधारस्वरूप अपने तेजको तो नहीं खो दिया है ? क्योंकि उसीके ऊपर साहसिक कार्यरूपी चित्रको अंकित करनेकी कल्पना की जा सकती है' ॥ ५६४ ॥ ५६५ ॥ यह प्रश्न सुनकर राजा जयापीडने कहा—'मंत्रिन् ! तेज रहते हुए भी मैं ऐसी निरस्त्र दशामें कौन-सा अद्भुत कार्य कर सकता हूँ ?' ॥ ५६६ ॥ मंत्री बोला—'महाराज ! यदि आपका तेज न लुप्त हुआ होगा तो यह निश्चित समझिए कि इस विपत्तिरूपी समुद्रको आप शीघ्र पार कर जायँगे ॥ ५६७ ॥ यदि आप इस झरोखेसे नीचे बहनेवाली नदीके जलमें कूदकर उसे पार कर जायँ तो वहाँ आपको आपकी सेना तैयार मिल जायगी' ॥ ५६८ ॥ राजाने कहा—'यहाँसे नदीके जलमें बिना मशकके सहारे कूदनेपर डूब जानेका भय रहेगा और ऊँचाई विशेष होनेके कारण हो सकता है कि मशक भी वहाँ पहुँचकर फट जाय ॥ ५६९ ॥ अतएव इस उपायसे छुटकारा असम्भव है। और फिर इतना अपमानित हो करके भी अपकारीको दण्ड दिये बिना ही मर जाना भी उचित नहीं है' ॥ ५७० ॥ तदनन्तर मन ही मन कुछ निश्चय करके मंत्रीने राजासे कहा—'राजन् ! आप किसी बहाने दो घड़ीके लिए यहाँसे बाहर चले जाइए ॥ ५७१ ॥ उसके बाद लौटनेपर आप देखेंगे कि मैंने नदी पार करनेके लिए सब प्रबन्ध कर दिया है। उस उपायको आप निःशंकभावसे उपयोगमें ला सकेंगे' ॥ ५७२ ॥ मंत्रीकी बात सुनकर राजा बाहरके शौचालयमें चला गया और उसके द्वारा निर्धारित समयतक वहाँ ही रहा ॥ ५७३ ॥ फिर जब राजा एकाकी लौटकर उस स्थानपर आया तो देखा कि

सद्यो व्यापादिततनुः श्वासापूरितविग्रहः । अमेद्योऽहं तव दृतिर्मामारुह्य तरापगाम् ॥५७५॥
आरोढुरुरुबन्धाय स्वोर्वोरुष्णीषपट्टिका । बद्धा मया तां प्रविश्य क्षिप्रमेव पताम्भसि ॥५७६॥
नखनिर्भिन्नगात्रास्रलिखितामिति संविदम् । दृष्ट्वा चावाचयत्कण्ठनिबद्धांशुकपल्लवे ॥ तिलकम् ॥५७७॥
विस्मयस्नेहयोः पश्चात्पूर्वं स सरितस्ततः । प्रवाहे पतितो राजा परं पारं समासदत् ॥५७८॥
प्राप्तसैन्यः प्रविश्याथ क्षणेनैव निनाय सः । तमशेषं सभूपालं नेपालविषयं क्षयम् ॥५७९॥
रक्षिणोऽपि न यावत्तमजानन्बन्धनाच्च्युतम् । तावदेव कथाशेषं विषयं तं चकार सः ॥५८०॥
नृत्यत्कबन्धः स्वर्गस्त्रीमुक्तस्रक्तूर्यघोषवान् । भूपतेर्बन्धनान्मोक्षे बभूव समरोत्सवः ॥५८१॥

दावानलोल्वणभुवो गिरयो निदाघे यत्रैव दूरमितरे परिवर्जनीयाः ।
तत्रैव संभवति सान्द्रहिमद्रवार्द्रश्चित्रं तुषारशिखरी नितरां निषेव्यः ॥५८२॥

जज्जादीनां क्षणे यत्र जन्म स्वामिद्रुहामभूत् । तत्रैव मन्त्रिणश्चित्रं कृतिनो देवशर्मणः ॥५८३॥
नाभूद्धि सदृशः सूनुः स पितुर्मित्रशर्मणः । तमोमयो भासुरस्य भानोरिव शनैश्चरः ॥५८४॥
रक्षारत्नोपमे तस्मिन्सचिवेऽस्तमुपागते । प्राप्तामपि श्रियं मेने नृपतिर्हारितामिव ॥५८५॥
तस्य दिग्विजयस्यान्ते मानम्लानिर्विनिर्ययौ । मानसात्पृथिवीभर्तुर्नामात्योपक्रिया पुनः ॥५८६॥
चित्रं जितवतस्तस्य स्त्रीराज्ये मण्डलं महत् । इन्द्रियग्रामविजयं बह्वमन्यन्त भूभुजः ॥५८७॥
कर्णश्रीपटमाबध्य स्त्रीराज्यान्निर्जिताद्धृतम् । धर्माधिकरणाख्यं च कर्मस्थानं विनिर्ममे ॥५८८॥
द्वितीयं चलगञ्जाख्यं कर्मस्थानमपि व्यधात् । उपयुक्तं प्रयाणेषु गञ्जे दूरस्थिते निजे ॥५८९॥

मजबूत वस्त्रखण्डसे फाँसी लगाकर मंत्री मरा पड़ा है ॥ ५७४ ॥ उसने मरनेसे पहले वक्षपर नाखून द्वारा रक्तसे यह वाक्य लिख दिया था—'राजन् ! मैं अभी मरकर आपके लिए फूली हुई हो करके भी न फूटनेवाली मशक बन गया हूँ। अब मेरे ऊपर चढ़कर आप नदी पार कर जाइए ॥ ५७५ ॥ आपकी जाँघोंको सहारा देनेके लिए मैंने अपनी पगड़ीका पट्टा बनाकर कमरमें बाँध दिया है। उसपर पैर रखकर आप तुरन्त नदीमें कूद जाइए राजाको यह सन्देश पढ़नेमें देर नहीं लगी ॥ ५७६ ॥ ५७७ ॥ इस घटनासे आश्चर्यचकित हो तथा मंत्री देवशर्माके पवित्र स्नेहका स्मरण करके राजा मृत शरीरके सहारे नदीमें कूद पड़ा और तैरकर उस पार पहुँच गया ॥ ५७८ ॥ वहाँ अपनी तैयार सेनासे मिलकर उसने तुरन्त आक्रमण कर दिया और राजाके समेत समस्त नेपाल देशको नष्ट कर डाला ॥ ५७९ ॥ कारागारके रक्षकोंको उसके निकल भागनेका पता चलनेके पहले ही वह देश एकदम नष्ट हो गया ॥ ५८० ॥ राजा जयापीडके बन्धनमुक्त होनेकी खुशियालीमें एक महान् उत्सव मनाया गया। जिसमें कबन्धोंका नृत्य हुआ, स्वर्गीय अप्सराओंने पुष्पमालाओंकी वर्षा की और तुरहियाँ बजीं ॥ ५८१ ॥ ग्रीष्म ऋतुमें जब अन्य पर्वतोंको दावानलसे सन्तप्त होनेके कारण त्यागना पड़ता है, उसी समय हिमजलसे अतिशय शीतल हिमालयपर्वत सबका सेव्य बन जाता है। यह कितने आश्चर्यकी बात है ॥ ५८२ ॥ जिस समय जज्ज जैसे स्वामिद्रोहियोंका जन्म हुआ था, उन्हीं दिनों देवशर्मा जैसे सच्चे स्वामिभक्तका जन्म होना क्या आश्चर्यकी बात नहीं है ? ॥ ५८३ ॥ मित्रशर्माका सुयोग्य पुत्र देवशर्मा तेजस्वी सूर्यके पुत्र तमोमय शनैश्चरके सदृश पिताके विरुद्ध स्वभावका नहीं हुआ ॥ ५८४ ॥ रक्षारत्नके समान हितकारी उस मंत्रीके दिवंगत हो जानेसे लक्ष्मी-को भी राजा जयापीडने अप्राप्त ही समझा ॥ ५८५ ॥ इस प्रकार दिग्विजय करनेके बाद राजाके हृदयसे अरमुडी द्वारा अपमानित होनेकी ग्लानि दूर हो गयी, किन्तु मंत्री देवशर्माका उपकार उसके हृदयमें सदाके लिए घर कर गया ॥ ५८६ ॥ तदनन्तर राजा जयापीडने विशाल स्त्रीराज्यपर आक्रमण करके उसे जीत लिया। किन्तु उसकी इस विजयकी अपेक्षा उसके द्वारा किये हुए इन्द्रियसंयमको ही अन्यान्य राजे महत्त्वपूर्ण एवं आश्चर्यजनक समझते थे ॥ ५८७ ॥ उस विजित स्त्रीराज्यसे उसने कर्णश्रीपटका अपहरण करनेके बाद उसे बाँधकर एक नये धर्माधिकरण नामके न्यायालयकी स्थापना की ॥ ५८८ ॥ इसी तरह यात्राके समय अपने

किमन्यत्तद्भुजावासनिवासिन्या जयश्रियः । चत्वारोऽम्बुधयोऽभूवन्विलासमणिदर्पणाः ॥५९०॥
पुनः प्रविश्य कश्मीरान्स भूपैः परिवारितः । चिराय बुभुजे राजा विजयोपार्जितां श्रियम् ॥५९१॥
तं कदाचिन्नृपं स्वप्ने सर्वाशाविजयोर्जितम् । पुमान्दिव्याकृतिः कोपि व्याजहार कृताञ्जलिः ॥५९२॥
सुखं त्वद्विषये राजन्वसन्नस्मि सबान्धवः । नागेन्द्रोऽहं महापद्मनामा त्वां शरणं श्रितः ॥५९३॥
द्राविडो मान्त्रिकः कश्चिन्मामितो नेतुमुद्यतः । जलाकांक्षिणि वित्तेन विक्रेतुं मरुमण्डले ॥५९४॥
तस्माच्चेत्पासि मां तत्ते स्वर्णधातुसुवं गिरिम् । स्वदेशे दर्शयिष्यामि स्फीतोपकृतिकारिणः ॥५९५॥
राजा स्वप्ने निशम्येति दिक्षु संप्रेरितैश्चरैः । कुतोऽपि प्राप्तमानीय तं पप्रच्छ चिकीर्षितम् ॥५९६॥

दत्ताभयः स नागोक्तं यथावत्सर्वमुक्तवान् ।
सविस्मयेन भूभर्त्रा स्वयं भूयोऽप्यपृच्छयत ॥५९७॥

भूरियोजनविस्तीर्णात्सरसोऽभ्यन्तरात्त्वया । नागः प्रभावोत्कृष्टः स निष्क्रष्टुं शक्यते कथम् ॥५९८॥
स तं व्यजिज्ञपद्राजन्नचिन्त्या मन्त्रशक्तयः । ताश्चेद्दिदृक्षसे क्षिप्रमेत्याश्चर्यं विलोक्यताम् ॥५९९॥
अथानुगम्यमानः स राज्ञा प्राप्तः सरोऽन्तिकम् । अभिमन्त्र्योज्झितैर्बाणैर्बद्धाशोऽशोषयज्जलम् ॥६००॥
राजाऽपश्यत्ततः पङ्के लुठन्तं मानुषाननम् । वितस्तिदैर्घ्यमुरगं भूरिह्रस्वोरगान्वितम् ॥६०१॥
मन्त्रसंकोचितं राजन्गृह्णाम्यमुमिति ब्रुवन् । मा ग्रहीरिति भूपेन सोऽभिधाय न्यषिध्यत ॥६०२॥
तूर्णं राजाज्ञया तेन मन्त्रवीर्येऽथ संहृते । सरोऽभूत्प्रागवस्थं तत्पुनर्व्याप्तदिगन्तरम् ॥६०३॥

स्थायी कोशको अपनेसे दूर रहनेके कारण विशेष उपयोगी न समझकर उसने चलगंज नामका विभाग स्थापित किया। इस योजनाके अनुसार हाथियोंपर आवश्यक धन लादकर निश्चित स्थानपर पहुँचा दिया जाया करता था ॥ ५८९ ॥ उस विश्वविजयी राजा जयापीडके विषयमें अब विशेष न कहकर इतना ही कहूँगा कि उसकी विशाल भुजाओंमें विद्यमान विजयश्रीके लिए चारों समुद्र विलासमणिके दर्पण सरीखे हो गये थे ॥ ५९० ॥ तदनन्तर वह अपने सामन्तोंके साथ कश्मीर चला गया और अपने पराक्रमसे उपार्जित राजलक्ष्मीका सानन्द उपभोग करने लगा ॥ ५९१ ॥ एक रोज स्वप्नमें एक दिव्य आकारके पुरुषने उस दिग्विजयी तथा परम तेजस्वी राजाको प्रणाम करके कहा—॥ ५९२ ॥ 'महाराज ! मैं महापद्म नामका नागराज हूँ। आजतक आपके राज्यमें मैं अपने बान्धवोंके साथ बड़े आनन्दसे रहा करता था। किन्तु आज आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ५९३ ॥ क्योंकि एक द्राविड़ मांत्रिक मुझको यहाँसे ले जाकर जलाभिलाषी मरुप्रदेशमें बेच करके धन कमाना चाहता है ॥ ५९४ ॥ यदि आप उस मांत्रिकसे मेरी रक्षा करें तो इस उपकारके बदले मैं आपको इसी देशमें एक सोना देनेवाला पर्वत बता दूँगा' ॥ ५९५ ॥ इस स्वप्नपर विश्वास करके राजाने सवेरे चारों ओर अनेक गुप्तचर भेजकर उनके द्वारा उस मांत्रिकको खोजवाया और उसे बुलवाकर उसके कार्यका अभिप्राय पूछा ॥ ५९६ ॥ तब राजासे अभयदान माँगकर मांत्रिकने सही-सही सारा वृत्तान्त बता दिया। इसपर विस्मित भावसे राजाने फिर पूछा—॥ ५९७ ॥ 'अनेक योजन विशाल उस सरोवरके भीतरसे तुम उस उत्कृष्ट नागको अपने प्रभावसे कैसे आकृष्ट कर सकोगे ?' ॥ ५९८ ॥ मांत्रिकने कहा—'मंत्रमें अचिन्त्य शक्तियाँ विद्यमान रहा करती है। अतएव यदि मंत्रकी महिमा देखना चाहते हों तो शीघ्र मेरे साथ चलकर देख लीजिए' ॥ ५९९ ॥ तदनन्तर राजा जयापीड मांत्रिकके साथ उस सरोवरपर जा पहुँचा। वहाँ उस मांत्रिकने मन्त्र पढ-पढकर बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया, ऐसा करके उन बाणोंके द्वारा उसने वह सरोवर सुखा डाला ॥ ६०० ॥ उसके बाद राजाने उसमे बालिश्त भरका एक मानवाकार नाग देखा। उसके साथ उसी आकार-प्रकारके और भी बहुतसे छोटे-छोटे नाग थे ॥ ६०१ ॥ अब उस द्राविड़ मांत्रिकने कहा—'अपनी मंत्रशक्तिसे मैंने इस नागको अपने वशमें कर लिया है। अब इसे पकड़कर लिये जा रहा हूँ'। तब राजाने कहा—'इसे मत पकड़ो'। यह कहकर उसे पकड़नेसे रोक दिया ॥ ६०२ ॥ तदनन्तर राजाके कथनानुसार उसने मंत्रशक्ति हटा ली। जिससे वह सरोवर फिर जलसे

द्राविडं द्रविणं दत्त्वा विसृज्याचिन्तयन्नृपः । दद्यान्नाद्याप्यसौ नागः कथं स्वर्णाकरं गिरिम् ॥६०४॥
ध्यायन्तमेव तं स्वप्ने ततः प्रोवाच पन्नगः । केनोपकारेण गिरिः स्वर्णभूस्तव दर्श्यते ॥६०५॥
स्वदेशोऽयं विदेशोऽयमिति बुद्धेः प्रवर्तकः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्थित्यभ्यासः शरीरिणाम् ॥६०६॥
शरणं त्वामहमगामवमानभयात्पुनः । शरण्येन सता तत्तु भवतैव प्रदर्शितम् ॥६०७॥
उदन्वानिव योऽक्षोभ्यो ज्ञायते संश्रितैः प्रभुः । का ह्रीस्ततोऽन्या सोऽन्यैर्यत्तेषामग्रेऽभिभूयते ॥६०८॥
याभिरन्याभिभूताभिरीक्षितस्त्रातुमक्षमः । तासां केनाभिमानेन स्त्रीणां द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥६०९॥
येऽकारणसधर्माणो व्यामूढस्य भवाम ते । विडम्ब्यमानाः क्रीडार्थं ते वयं प्राकृता इव ॥६१०॥
अथ वा श्रीमदान्धानामप्रेक्षापूर्वकारिणाम् । यत्किंचनविधायित्वं पार्थिवानां किमद्भुतम् ॥६११॥

मन्यन्ते क्ष्माभुजः क्रीडामुन्नतानां विमाननाम् ।
यावज्जीवं तु सश्वासं मरणं तां विदन्ति ते ॥६१२॥

उपेक्ष्यपक्षे भूपानां मानः स्वार्थस्य सिद्धये । स तु प्राणानपेक्ष्यापि ग्राह्यपक्षे मनस्विनाम् ॥६१३॥
महतो येऽवमन्यन्ते घटन्ते च विमानितैः । मनःस्वरूपाभिज्ञत्वं तेषां केनानुमीयते ॥६१४॥
भवन्त इव तत्रापि न वयं व्यर्थदर्शनाः । ताम्रधातुरसस्यन्दी दर्श्यते तद्गिरिस्तव ॥६१५॥
इत्युक्त्वा संविदं तस्मै स्वप्न एव स तां ददौ । यथा प्रबुद्धः प्रत्यूषे प्राप ताम्राकरं गिरिम् ॥६१६॥
स तस्मात्क्रमराज्यस्थात्ताम्रमाकृष्य निर्ममे । शतं दीनारकोटीनामेकोनं स्वाभिधाङ्कितम् ॥६१७॥
पूर्णं कोटिशतं कुर्याद्यः स मां निर्जयेदिति । दर्पभङ्गाय भूपानां समयं स्थापयन्नृपः ॥६१८॥

पूर्ण हो गया ॥ ६०३ ॥ बादमें राजाने उस मांत्रिकको प्रचुर धन देकर विदा किया और अपने मनमें सोचा कि 'क्या अब भी वह नाग मुझे सोनेकी खानवाला पर्वत न बतायेगा ?' ॥ ६०४ ॥ राजा जब ऐसा सोच रहा था, तभी स्वप्नमें उस नागने आकर कहा—'तुमने मेरा कौन-सा उपकार किया है कि जिसके बदले मैं तुम्हें सुवर्णपर्वत दिखाऊँ ॥ ६०५ ॥ प्रत्येक प्राणीके मनमें 'मेरा यह स्वदेश है और यह विदेश है' ऐसी भावनाका उत्पादक अधिक या कम परिचय ही होता है ॥ ६०६ ॥ मैं अपमानसे बचनेके लिए ही तुम्हारे पास आया था। किन्तु रक्षक होते हुए भी तुमने मेरा अपमान होनेमें सहयोग दिया और वह मुझे सहना पड़ा ॥ ६०७ ॥ 'हमारा स्वामी समुद्रकी भाँति अलंघ्य है' ऐसा सद्भाव रखनेवाले आश्रित जनके समक्ष यदि उस स्वामीकी दुर्दशा हो तो इससे बढ़कर लज्जाजनक अपमानकी बात भला और कौन-सी होगी ? ॥ ६०८ ॥ दूसरेके द्वारा अपमानित मेरी पत्नियोंने मुझे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ पाया तो अब मैं उन्हें कैसे अपना मुँह दिखाऊँ ? ॥ ६०९ ॥ इस प्रकार हमको दीन तथा अशक्त समझकर दयापूर्ण दृष्टिसे देखनेकी बजाय तुमने हमें तुच्छ तथा उपहास्य बनानेकी ही विशेष चेष्टा की है ॥ ६१० ॥ अथवा सम्पत्तिसे मदान्ध एवं अविचारपूर्ण काम करनेवाले राजे यदि ऐसा करें तो आश्चर्य ही क्या है ॥ ६११ ॥ राजे उन्नत पुरुषोंका अपमान खेल समझते हैं, वे यह नहीं समझते कि स्वाभिमानी पुरुषके लिए वह अपमान जीवित दशामें ही मरणके सदृश दुखदायी होता है ॥ ६१२ ॥ वे राजे स्वार्थके लिए स्वाभिमानकी उपेक्षा कर देना अनुचित नहीं समझते। किन्तु स्वाभिमानी पुरुष प्राणोंको भी तुच्छ समझकर अपने स्वाभिमानकी रक्षाके लिए सदा सजग रहते हैं ॥ ६१३ ॥ जो लोग महापुरुषोंका अपमान करते हैं और जो अपमानित पुरुषोंका साथ देते हैं, उनके मनकी स्थितिका ज्ञान भला किसे हो सकता है ॥ ६१४ ॥ तथापि तुम लोगोंके समान मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। इसलिए मैं तुम्हें तामेकी खानका पर्वत बता रहा हूँ' ॥ ६१५ ॥ ऐसा कहकर वह नाग ताम्रपर्वतको विशेष पहचान बतानेके बाद अन्तर्धान हो गया। सवेरे उठकर राजाने उस ताम्रगिरिका पता पा लिया ॥ ६१६ ॥ वह पर्वत अपने ही राज्यमें था। अतएव उसमेंसे राजा जयापीडने बहुतेरा तामा निकलवाकर उससे निजनामांकित एक कम सौ करोड़ दीनार नामके सिक्के ढलवाये ॥ ६१७ ॥ साथ ही भविष्यमें होनेवाले राजाओंके मदमर्दनके लिये उसने यह शर्त

समस्या इव स क्ष्माभृत्सावशेषैर्विचेष्टितैः । चिक्षेप तुल्यनिर्माणकुण्ठतायेति भूभृताम् ॥६१९॥
अथाकस्मान्महीपालः प्रजाभाग्यविपर्ययैः । त्यक्त्वा पैतामहं मार्गं ययौ पित्र्येण सोऽध्वना ॥६२०॥
किं दिग्जयादिभिः क्लेशैः स्वदेशादर्ज्यतां धनम् । इत्यर्थ्यमानः कायस्थैः स्वमण्डलमदण्डयत् ॥६२१॥
शिवदासादिभिर्लुब्धैर्धनस्थानाधिकारिभिः । प्रविवर्धितवित्तेच्छः सोऽभूल्लोभवशंवदः ॥६२२॥
काश्मीरिकाणामुत्पन्नं निजाज्ञाव्यवधायकम् । कायस्थवक्त्रप्रेक्षित्वं ततः प्रभृति भूभृताम् ॥६२३॥
मन्त्रस्तस्य महीभर्तुर्योऽभूत्तन्नृपग्रहे । वास्तव्यबन्धचिन्तायां स एव स्थैर्यमाययौ ॥६२४॥
यत्सतां प्रशमाधायि पापस्योपदिदेश तत् । जयापीडस्य पाण्डित्यं प्रजापीडनशौण्डताम् ॥६२५॥
स सौदास इवानेकलोकप्राणापहारकृत् । अस्तुत्यकृत्यसौहित्यं स्वप्नेऽपि न समाययौ ॥६२६॥

कुर्मः किञ्चिदपमेतदेव हृदये कृत्वेति कौतूहलात्
स्वैरिण्यः क्षितिपाश्च विक्वचपलतां क्रौर्यं च कुर्युः सकृत् ।
पापाक्रान्तधियो भवन्त्यथ तथा नान्यान्स्पृशन्त्योऽपि ता
दूयन्ते न च ते यथा स्वपितरं घ्नन्तोऽपि शान्तत्रपाः ॥६२७॥

लोभाभ्यासात्तथा क्रौर्यं स ययौ वत्सरत्रयम् । सह कार्षकभागेन यथाहार्षीच्छस्यफलम् ॥६२८॥
लुब्धत्वध्वस्तधीर्भूभृत्स्वल्पवित्तलवप्रदान् । सर्वस्वहारिणो मेने कायस्थान्हितकारिणः ॥६२९॥
सामुद्रास्तिमयो नृपाश्च सदृशा एके हृतादम्भसः स्वस्मादेव कणान्धनस्य जहतो जानन्ति ये दातृताम् ।
सर्वस्मात्स्फुटलुण्ठनाद्विनश्यतो लेशान्किलान्येऽपि ये दुष्कायस्थकुलस्य हन्त कलयन्त्यन्तर्हिताधायिताम् ॥६३०॥

लगा दी कि 'जो राजा पूरे सौ करोड़ दीनार ढलवायेगा, वही मुझे जीत सकेगा' ॥ ६१८ ॥ इस तरह अपने अधूरे कामके द्वारा उस राजाने अपनी बराबरी करनेवाले भावी राजाओंका गर्व खर्व करनेके लिए उनके समक्ष एक विकट समस्या खड़ी कर दी ॥ ६१९ ॥ कालान्तरमें प्रजाके दुर्भाग्यवश उस राजाने अपने पितामहका मार्ग त्यागकर पिताके पथपर चलना आरम्भ कर दिया ॥ ६२० ॥ परम धूर्त कायस्थोंकी इस प्रार्थनापर कि 'दिग्विजय आदिकी झंझटें झेलनेकी क्या आवश्यकता है ? आप जितना धन चाहें, उतना अपने राज्यमें ही प्राप्त हो सकता है' उसने अपनी प्रजाको आर्थिक दण्ड देना प्रारम्भ किया ॥ ६२१ ॥ लोभी शिवदास आदि खजानेके अधिकारियोंने उसकी धनविषयक तृष्णाको और भी बढ़ावा दिया। जिससे वह राजा परम लोभी बन गया ॥ ६२२ ॥ इसी समयसे कश्मीरी राजाओंमें यह प्रथा चल पड़ी। भविष्यके सभी राजे स्वतंत्र रूपसे अपनी आज्ञाका प्रसार न करके वे कायस्थ कर्मचारियोंके मुखापेक्षी बन गये ॥ ६२३ ॥ जहाँ पहले राजा जयापीडकी राज्यसभामें बड़े-बड़े विरोधी राजाओंको पकड़नेके लिए मंत्रणायें चलती थीं, वहाँ अब नागरिकोंको बाँधनेके संसूबे बाँधे जाने लगे ॥ ६२४ ॥ पहले जयापीडके जिस पाडित्यसे लोगोंको शान्ति प्राप्त होती थी, उसी पाण्डित्यने अब उसे प्रजापीडनमें दक्ष बना दिया ॥ ६२५ ॥ पूर्ववर्ती राजा सौदासके समान वह बहुतोंके प्राण लेने लगा। उसे अब दुष्कर्मोंको करनेमें स्वप्नमें भी सन्तोष या तृप्ति नहीं प्राप्त होती थी ॥ ६२६ ॥ कोई व्यभिचारिणी स्त्री अथवा राजा जब एक बार दुष्कर्म करना प्रारम्भ कर देता है तो बादमें वह उस ओरसे मुँह मोड़नेका कितना ही प्रयास क्यों न करे, वैसा नहीं कर सकता। क्योंकि अधिक अभ्यासवश वह व्यभिचारिणी नीचसे भी नीच पुरुषके साथ दुराचार करनेमें और राजाको अपने पिताकी भी हत्या करनेमें खेद नहीं होता ॥ ६२७ ॥ इस तरह लोभके वशीभूत होकर उस राजाने निरन्तर तीन वर्षतक इतना क्रूरतापूर्ण अत्याचार किया कि किसानोंकी सारी कमाई राज्यके द्वारा छिन गयी ॥ ६२८ ॥ लोभके कारण नष्टबुद्धि उस राजाको लूटमें प्राप्त धनका स्वल्प भाग राज्यकोषमें देकर बाकी सर्वस्व स्वयं हड़प लेनेवाले कायस्थ अधिकारी हितचिन्तक दीखने लगे ॥ ६२९ ॥ समुद्रके तिमि मत्स्य और राजाओंका स्वभाव एक ही जैसा होता है ? क्योंकि समुद्रसे अपरिमित जलराशि सोखकर बरसातमें जलकी कुछ बूँदें समुद्रमें भी गिरा देनेवाले बादलोंको तिमिमत्स्य बड़ा

सर्वकालं ब्राह्मणानामहो धैर्यमकुण्ठितम्। निस्त्रिंशस्य बभूवुर्ये तस्यापि परिपन्थिनः ॥६३१॥
देशान्तरं प्रयातेभ्यो ये शेषास्ते व्यरंसिपुः। विक्रोशन्तो न मरणाद्धरणान्नापि पार्थिवः ॥६३२॥
विप्राणां शतमेकोनमेकाहेन विपद्यते। निवेद्यमेतदित्यूचे क्रौर्याक्रान्तोऽथ पार्थिवः ॥६३३॥
विपर्यस्तचरित्रस्य तस्य क्रूरस्य भूपतेः। एवं स्तुतिविपर्यासः काव्येष्वपि बुधैः कृतः ॥६३४॥
नितान्तं कृतकृत्यस्य गुणवृद्धिविधायिनः। श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥६३५॥

भाष्यव्याख्याक्षणे श्लोकैर्वैचक्षण्यहृतैः कृतः।
सोऽयं तस्य विपर्यासो बुधैरेवं प्रवर्तितः ॥६३६॥

कृतविप्रोपसर्गस्य भूतनिष्ठाविधायिनः। श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥६३७॥
तूलमूल्यापहर्ता च चन्द्रभागातटे स्थितः। विप्राणां शतमेकोनमशृणोत्तज्जले मृतम् ॥६३८॥
ततोऽग्रहारहरणादेव प्रविरतोऽभवत्। वास्तव्यानां हृतां भूमिं न तु निःशेषतो जहौ ॥६३९॥
अथ विज्ञप्तिसमये तूलमूल्यौकसो द्विजाः। चुक्रुशुर्जातु तस्याग्रे प्रतीहारकराहताः ॥६४०॥
मनुमान्धातृरामाद्या बभूवुः प्रवरा नृपाः। अन्वभावि तदग्रेऽपि ब्राह्मणैर्न विमानना ॥६४१॥
सेन्द्रं स्वर्गं सशैलां क्ष्मां सनागेन्द्रं रसातलम्। निर्दग्धुं हि क्षणेनैव विप्राः शक्ताः प्रकोपिताः ॥६४२॥
तदाकर्ण्यास्त सामन्तत्यक्तपृष्ठः क्षमापतिः। उल्लासितैकभ्रूलेखो दर्पाद्वचनमब्रवीत् ॥६४३॥
भिक्षाकणभुजां कोऽयं शठानां वो मदज्वरः। येनर्षय इव ब्रूथ प्रभावख्यापकं वचः ॥६४४॥

उपकारी समझता है। उसी प्रकार प्रजाको लूटकर थोडा-सा द्रव्य राज्यकोषमे जमा कर देनेके बाद सारा धन स्वयं पचा लेनेवाले कायस्थ कर्मचारी राजाको हितैषीके रूपमें दिखायी देते हैं ॥ ६३० ॥ अहो ! ब्राह्मणोंका धैर्य सदासे अकुण्ठित रहता आया है। उसीके प्रभावसे उस क्रूर राजाकी तलवारका आतंक भी उनको धैर्यसे विचलित नहीं कर सका ॥ ६३१ ॥ अतएव बहुतेरे ब्राह्मण उससे त्रस्त होकर परदेश चले गये और बहुतसे उसके अत्याचारसे व्याकुल होकर हाहाकार करते हुए मर मिटे। तब भी वह राजा लूट-मारके कामसे विरत नहीं हुआ ॥६३२॥ उस क्रूर राजाने अपने कर्मचारियोंको यह आज्ञा दे रक्खी थी कि 'यदि निन्नानवे ब्राह्मण एक दिनमें मर जायँ, तब मुझे इस बातकी सूचना दी जाय' ॥ ६३३ ॥ उस राजाके चरित्रमे परिवर्तन देखकर उस समयके कवियोंने उसके विषयमें पहलेवाले स्तुतिपरक श्लोकोंमें परिवर्तन कर दिया ॥ ६३४ ॥ जहाँ पहले राजाकी प्रशंसामें उन्होंने यह श्लोक लिखा था—'नितान्त कृतकृत्य तथा सद्गुणवर्धक महाराज जयापीड और कृत्य प्रत्ययोंके रचयिता आचार्य पाणिनिमे क्या अन्तर है ?' ॥ ६३५ ॥ पूर्वकालमे जब राजा व्याकरण-महाभाष्यकी व्याख्या करता था, तब उसकी विद्वत्तापर मुग्ध होकर कविने इस प्रशंसात्मक श्लोककी रचना की थी। अब उसी श्लोकमें यह परिवर्तन कर दिया गया—॥ ६३६ ॥ 'ब्राह्मणोंको दुःख देने और प्राणियोंकी हत्यामें संलग्न इस राजा तथा भूतकालमे निष्ठाप्रत्ययके विधायक आचार्य पाणिनिमे कितना अन्तर है ?' ॥ ६३७ ॥ तूलमूल्य ग्रामका अपहरण करके जब वह राजा चन्द्रभागा नदीके तटपर विद्यमान था, तब उसे यह समाचार मिला कि 'निन्नानवे ब्राह्मण नदीमें डूबकर मर गये' ॥ ६३८ ॥ उसी समयसे उसने ब्राह्मणोंको प्राप्त अग्रहारका अपहरण बन्द कर दिया, किन्तु फिर भी कितने ही ब्राह्मणोंकी छीनी हुई जमीन उसने नहीं लौटायी ॥ ६३९ ॥ तूलमूल्यके ब्राह्मण जब प्रार्थना करनेके लिए उसके यहाँ गये, तब राजसेवकोंने उन्हे थप्पड़ोंसे मारा। तब उन्होंने राजासे कहा—॥ ६४० ॥ 'राजन् ! इस पृथिवीपर मनु, मान्धाता तथा राम आदि बहुतेरे बडे-बडे राजे हो चुके हैं। उनके शासनकालमें ब्राह्मणोंका कभी भी अपमान नहीं हुआ ॥६४१॥ यह समझ लीजिए कि क्रुद्ध ब्राह्मण इन्द्रसहित स्वर्गको, पर्वतों समेत पृथिवीको एवं शेषनाग सहित पातालको क्षण भरमें भस्म कर सकते हैं ॥ ६४२ ॥ उनके वचन सुनकर सामन्तों द्वारा परित्यक्त जयापीडने भृकुटी टेढी करके बड़े गर्वके साथ कहा—॥ ६४३ ॥ 'भिक्षाके अन्नसे पेट पालनेवाले तुम जैसे शठोंको इतना घमण्ड कैसे हो

भीमभ्रूभङ्गभीतेषु तेषु तूष्णीं स्थितेष्वथ। इट्टिलाख्यस्तमाह स्म ब्रह्मतेजोनिधिर्द्विजः ॥६४५॥
राजन्युगानुरूप्येण भावाभावानुवर्तिनः। शासितुस्तेऽनुसारेण न कस्मादृषयो वयम् ॥६४६॥
आह स्म विश्वामित्रो वा वसिष्ठो वा तपोनिधिः। त्वमगस्त्योऽथवा किं स्या इति दर्पेण तं नृपः ॥६४७॥
ज्वलन्निव ततः स्फूर्जत्तेजोदुष्प्रेक्ष्यविग्रहः। स फणीवोत्फणस्ताम्यन्कोपान्नृपतिमब्रवीत् ॥६४८॥
भवान्यत्र हरिश्चन्द्रस्त्रिशङ्कुर्नहुषोऽपि वा। विश्वामित्रमुखेभ्योऽहं तत्रैको भवितुं क्षमः ॥६४९॥
विहस्योवाच तं राजा विश्वामित्रादिकोपतः। हरिश्चन्द्रादयो नष्टास्त्वयि क्रुद्धे तु किं भवेत् ॥६५०॥
पाणिना ताडयन्नुर्वी ततः क्रुद्धोऽभ्यधाद्द्विजः। मयि क्रुद्धे क्षणादेव ब्रह्मदण्डः पतेन्न किम् ॥६५१॥
तच्छ्रुत्वा विहसन्राजा कोपाद्ब्राह्मणमब्रवीत्। पततु ब्रह्मदण्डोऽसौ किमद्यापि विलम्बते ॥६५२॥
नन्वयं पतितो जाल्मेत्यथ विप्रेण भाषिते। राज्ञः कनकदण्डोऽङ्गे वितानस्खलितोऽपतत् ॥६५३॥
कृतव्रणः स तेनाङ्गे विमर्दक्लिन्नविग्रहः। कीर्यमाणक्रिमिकुलः क्रकचैश्चारितैरभूत् ॥६५४॥
अनुभाव्य व्यथां भाविनिरयक्लेशवर्णिकाम्। गणरात्रेण तं प्राणाः कांक्षितापगमा जहुः ॥६५५॥
ब्रह्मदण्डकृतं दण्डं भुक्त्वा दण्डधराधिपः। अकाण्डदण्डस्रष्टाऽथ ययौ दण्डधरान्तिकम् ॥६५६॥
तस्यानियतचित्तस्य त्रिंशतं परिवत्सरान्। एवं प्रतापिनः सैकान्भूभोगो भूपतेरभूत् ॥६५७॥

तथा भूभृन्मत्स्या द्रविणकलुषाम्भःकृततृषः स्थितिं स्वामुज्झन्तो विदधति कुमार्गानुसरणम्।
क्रियन्ते कार्तान्तानुगविकृतकैवर्तनिवहैर्यथा ह्येतेऽकस्मात्स्थिरनिरयजालप्रणयिनः ॥६५८॥

कृतपापं तमुद्दिश्य विपन्नममृतप्रभा। मृतोद्धाराय तन्माता व्यधत्तामृतकेशवम् ॥६५९॥

गया, जो अपनी बड़ाई बखानते हुए महर्षियोंकी बराबरी करने लगे हों' ॥ ६४४ ॥ राजाका यह वाक्य सुनकर तथा उसकी भयंकर भ्रुकुटीसे भयभीत होकर कितने ही ब्राह्मण तो चुप रह गये। किन्तु इट्टिल नामके महान् तेजस्वी ब्राह्मणने कहा—॥ ६४५ ॥ 'राजन्! युगधर्मके अनुसार जैसे आप सरीखे लोग राजा हैं, उसी प्रकार हम ऋषि भी हैं' ॥ ६४६ ॥ तब बड़े तपाकसे राजाने कहा—'क्या तुम तपोनिधि विश्वामित्र, वसिष्ठ अथवा अगस्त्य हो सकते हो?' ॥ ६४७ ॥ राजाके इस उद्धत वचनको सुनकर इट्टिल मारे क्रोधके काँपने लगा। उस समय उसके चेहरेपर ऐसा तेज आ गया था कि कोई उसकी ओर ताक भी नहीं सकता था। फुफकारते हुए सर्पके समान उष्ण निःश्वास छोड़ते हुए उस ब्राह्मणने कहा—॥ ६४८ ॥'यदि तुम हरिश्चन्द्र, नहुष या त्रिशंकु हो सकते होओ तो मैं भी विश्वामित्र, अगस्त्य तथा वसिष्ठ इनमेंसे कोई एक ऋषि हो सकता हूँ' ॥ ६४९ ॥ तब राजा जयापीडने हँसकर कहा—'विश्वामित्रके कोपसे हरिश्चन्द्रकी दुर्दशा हुई थी, अगस्त्यके कोपसे नहुषको अजगर बनना पड़ा था और वसिष्ठके कोपसे त्रिशंकुको स्वर्गसे च्युत होना पड़ा था, किन्तु तुम्हारे क्रोधसे क्या होगा?' ॥ ६५० ॥ तब हाथको जमीनपर पटककर उस क्रुद्ध ब्राह्मणने कहा—'मेरे क्रोधसे क्षण भरमें क्या तेरे ऊपर ब्रह्मदण्ड नहीं गिर सकता?' ॥ ६५१ ॥ यह सुना तो क्रोधसे हँसकर राजा बोला—'यदि ऐसा है तो अब विलम्ब किस बात का है, गिरा दो ब्रह्मदण्ड' ॥ ६५२ ॥ 'देख दुष्ट! अभी गिरता है' उस ब्राह्मणके ऐसा कहते ही उस वितानकी छतसे एक स्वर्णदण्ड राजाके ऊपर आ गिरा ॥ ६५३ ॥ उसके आघातसे राजाके सिरमें गहरा घाव हो गया और घाव सड़नेसे उसमें कीड़े पड़ गये। अन्तमें आरीसे काटकर घाववाला अंश निकाल देना पड़ा ॥ ६५४ ॥ उसके बाद कुछ दिन भावी नरकके क्लेशका अनुभव कराके उसके प्रयाणोत्सुक प्राण उस शरीरसे निकल गये ॥ ६५५ ॥ इस प्रकार ब्रह्मदण्डका दण्ड भोगकर वह दण्डधारी राजा अकाण्ड दण्ड सृजन करनेवाले दण्डधर यमराजके पास पहुँच गया ॥ ६५६ ॥ उस प्रतापी तथा चंचलचित्त राजा जयापीडने एकतीस वर्षतक शासनकार्य किया ॥ ६५७॥ राजे और मत्स्य धन एवं मलिन जलकी आकांक्षावश अपनी मर्यादा त्यागकर कुमार्गपर चल पड़ते हैं। जिससे उन्हें क्रमशः यमदूतों तथा धीवरोंके अधीन होकर नरक अथवा जालबन्धनकी यातना प्राप्त होती है ॥ ६५८ ॥ राजा जयापीडकी इस प्रकार पापमृत्यु देखकर उसकी माता अमृतप्रभा

ललितापीडनामाऽभूत्ततो वसुमतीपतिः । देव्यां दुर्गाभिधायां यो जयापीडादजायत ॥६६०॥
बभूव गणिणो राज्ये राज्यकार्याण्यपश्यतः । यस्य वाराङ्गनाभोग्यं राज्यं दुर्नयदूषितम् ॥६६१॥
दुष्कृतेनार्जितं वित्तं पित्रा निरयभागिना । यश्चारणादिषु न्यस्यन्ननुरूपं व्ययं व्यधात् ॥६६२॥
बन्धकीबन्धुभावेन प्राप्तराजगृहाश्रयाः । तं पौंश्चलीयविद्यानामन्तरज्ञं व्यधुर्विटाः ॥६६३॥
केशान्स्त्रीदशनच्छिन्नान्वक्षस्तन्नखलाञ्छितम् । वपुषो मण्डनं मेने किरीटकटकोज्झितः ॥६६४॥
यो यो वेश्याकथाभिज्ञो यो यो नर्मविचक्षणः ।
स स तत्प्रियतां लेभे न शूरो न च पण्डितः ॥६६५॥
अतृप्तः स्त्रीभिरल्पाभिरुग्ररागः स पार्थिवः । जडं मेने जयापीडं स्त्रीराज्यान्निर्गतं जितात् ॥६६६॥
दिङ्निर्जयव्यसनिनः पूर्वभूपाञ्जहास सः । गणिकाभोगसुखितः स्वसामयिकमध्यगः ॥६६७॥
संकोचकारिणो वृद्धान्नर्मोक्तिन्योद्वेज्य वारयन् । तस्माद्विटजनो लेभे संप्रीतात्पारितोषिकम् ॥६६८॥
अट्टचेट इव स्पष्टपरिहासविचक्षणः । सोऽलज्जयन्मन्त्रिवृद्धानास्थाने गणिकासखः ॥६६९॥
बन्धकीपादमुद्राङ्कं चारु प्रावरणादि सः । गौरवार्हान्दुराचारः सचिवान्पर्यधापयत् ॥६७०॥
मानी मनोरथो मन्त्री परं परिजहार तम् । अशक्नुवन्नयमयितुं मव्यपातपराङ्मुखः ॥६७१॥
कुकृत्यं योगगर्हित्यं वैधुर्यं द्रोहवृत्तिता । दुर्वृत्तस्य प्रभोरन्यत्परिहारान्न भेषजम् ॥६७२॥
सुवर्णपार्श्वं विप्रेभ्यो दधत्फलपुरं तथा । भूभृत्स लोचनोत्सं च द्वादशाब्दानभूद्भुवि ॥६७३॥
कल्याणदेव्यां संजातो जयापीडमहीभुजः । संग्रामापीडनामाऽथ बभूव भुवनेश्वरः ॥६७४॥

देवीने उसके उद्धारार्थ अमृतकेशव भगवानका मन्दिर बनवाया ॥ ६५९ ॥ तदनन्तर दुर्गा देवी नामकी रानीसे उत्पन्न जयापीडका पुत्र ललितापीड पृथिवीका शासक हुआ ॥ ६६० ॥ राजकार्यपर दृष्टि न रखनेवाले उस विषय-लम्पट राजाकी दुर्नीतिसे दूषित राज्य शीघ्र वेश्याओंकी सम्पत्ति बन गया ॥ ६६१ ॥ नरकगामी पिताके द्वारा अन्यायसे उपार्जित धनको राजा ललितापीड नटों, वेश्याओं और भाँडोंमें लुटाने लगा ॥ ६६२ ॥ उस समय कुलटाओंके सगे-सम्बन्धी आदि धूर्तोंको राजभवनमें आश्रय मिल गया और वे राजाको पुंश्चलीविद्याका मर्म समझाने लगे ॥ ६६३ ॥ कटक-कुण्डल आदि आभूषणोंको त्यागकर स्त्रियोंके दाँतोंसे अस्त-व्यस्त केश और उनके नखोंसे अंकित वक्षःस्थलको ही वह अलंकार समझने लगा ॥ ६६४ ॥ जो लोग वेश्यासम्बन्धी बातें करनेमें निपुण होते थे और जिन्हें भाँडा मजाक करना आता था, वे ही उसे प्रिय लगते थे । वीरों और विद्वानोंसे उसका लगाव ही नहीं था ॥ ६६५ ॥ थोड़ी स्त्रियोंसे तृप्त न होनेवाला वह परम कामी राजा विजित स्त्रीराज्य छोड़कर आनेवाले अपने पिता जयापीडको मूर्ख समझता था ॥ ६६६ ॥ गणिकाओंके साथ भोग करनेमें ही उसे सुख मिलता था और वेश्याप्रेमियों का साथ ही उसे पसन्द था । वह दिग्विजयव्यसनी पुराने राजाओंकी हँसी उड़ाया करता था ॥ ६६७ ॥ धूर्त लोग मर्यादाप्रिय वृद्धजनोंको अपमानजनक बातोंसे उद्विग्न करके राजाके पाससे हटा दिया करते थे और इस कार्यसे प्रसन्न होकर वह उन्हें इनाम देता था ॥ ६६८ ॥ गणिकाओंका मित्र वह राजा निम्नकोटिके परिहासमें बहुत प्रवीण था । अतएव गँवारू मजाक करके वह वृद्ध मंत्रियोंको भी लज्जित कर देता था ॥ ६६९ ॥ वह दुराचारी सम्मानके योग्य मंत्रियोंको कुलटाओंकी चरणमुद्राओंसे चिह्नित दुशाले आदि वस्त्र पहननेको देता था ॥ ६७० ॥ इस प्रकारके कुमार्गगामी राजाको कुपथपर चलनेसे रोकना असम्भव समझकर उसके स्वाभिमानी मंत्री मनोरथने उसके कार्यमें हस्तक्षेप करना छोड़कर उससे सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कर लिया ॥ ६७१ ॥ दुष्कर्म, एकाग्रचित्तताका अभाव, नैराश्य और द्रोह करनेका अभ्यास आदि दुर्गुणों युक्त राजाको त्याग देनेके सिवाय और कोई उपाय ही नहीं है ॥ ६७२ ॥ आगे चलकर उस राजाने सुवर्णपार्श्व, फलपुर तथा लोचनोत्स नामके ग्राम अग्रहाररूपमें दान करके ब्राह्मणों को दिये । इस प्रकार राजा ललितापीड कुल बारह वर्ष राज्य करके मर गया ॥ ६७३ ॥ उसके बाद कल्याण देवीसे उत्पन्न जयापीडका

पृथिव्यापीड इत्यन्यन्नाम बिभ्रत्स भूपतिः । समाप्तिं सप्तभिर्वर्षैः साम्राज्यस्य समासदत् ॥६७५॥
श्रीचिप्पटजयापीडो बृहस्पत्यपराभिधः । ललितापीडजो राजा शिशुदेश्यस्ततोऽभवत् ॥६७६॥
रागग्रहगृहीतस्य ललितापीडभूपतेः । वेश्यायां कल्यपाल्यां यो जयादेव्यामजायत ॥६७७॥
उप्पाख्यस्याखुवग्रामकल्यपालस्य तां सुताम् ।
रूपलुब्धोऽवरुद्धात्वमनैपीत्स हि भूपतिः ॥६७८॥
पद्मोत्पलककल्याणमम्मधर्मैः स मातुलैः । बालकैः पाल्यमानोऽभूत्पृथिवीभोगभागिभिः ॥६७९॥
तस्य पञ्च महाशब्दाञ्ज्यायानुत्पलकोऽग्रहीत् ।
अन्ये जगृहुरन्यानि कर्मस्थानानि मातुलाः ॥६८०॥
आयत्तीकृतसाम्राज्यैर्भ्रातृभिर्वन्दिताज्ञया । भूभृज्जनन्या विदधे जयादेव्या जयेश्वरः ॥६८१॥
राज्ञां कृपणवित्तैर्यत्प्रविष्टैर्दूष्यते धनम् । अचिरान्नीयते शान्तिमपूर्वैः कैश्चिदेव तत् ॥६८२॥
जयापीडस्य यत्किंचित्सूनुना हि व्ययीकृतम् ।
सूनुस्यालैरशेपं तत्तैः क्रमेण हृतं वसु ॥६८३॥
भगिनीभगसौभाग्यसंभवैर्विभवैः कृताः । तेऽभङ्गुराणां भोगानां भोक्तारो भाग्यभागिनः ॥६८४॥
निरङ्कुशं चेष्टमानाः शनकैस्त्यक्तशैशवात् । ते स्वस्रीयान्नृपान्नाशमकुलीनाः शशङ्किरे ॥६८५॥
अथाभिचारक्रियया मिथः संमन्त्र्य पापिभिः ।
राज्येच्छया तैः स्वस्रीयः स्वामी च स नृपो हतः ॥६८६॥
भुक्तक्षितौ द्वादशाब्दांस्तस्मिन्व्यापादिते तथा । नैच्छन्नेकस्य ते राज्यं परस्परमहंकृताः ॥६८७॥

पुत्र संग्रामापीड गद्दीपर बैठा ॥ ६७४ ॥ उसने अपना दूसरा नाम पृथिव्यापीड रक्खा था। वह केवल सात वर्ष साम्राज्यका सुख भोग सका ॥ ६७५ ॥ इसके बाद राजा ललितापीडका शिशुपुत्र चिप्पटजयापीड अथवा बृहस्पति वहाँका राजा हुआ ॥ ६७६ ॥ प्रबल रागरूपी ग्रहसे गृहीत राजा ललितादित्यकी रखैल और कल्यपाल (कलवार) जातिकी वेश्या जयादेवीसे उस चिप्पट जयापीडका जन्म हुआ था ॥ ६७७ ॥ बात यह हुई कि आखुव ग्राम-निवासी उप्प नामक कलवारकी पुत्री जया देवी अतिशय सुन्दरी स्त्री थी। उसके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर राजा ललितादित्यने उसे अपने अन्तःपुरमे रख लिया था ॥६७८॥ शैशवकालमें जब चिप्पट जयापीड गद्दीपर बैठा, तब पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म और धर्म ये पॉच मामा उस राजाका पालन करने लगे ॥६७९॥ उनमे ज्येष्ठ उत्पलक-ने राज्यके पॉच महान् अधिकार अपने पास रक्खे थे, शेप अधिकार अपने भाइयोंको सौंप दिया था ॥ ६८० ॥ जबतक राज्यका अधिकार भाइयोंके हाथमे था, तबतक पॉचो भाई अपनी बहिनके आज्ञाकारी बने रहे। उन्हीं दिनों राजमाता जया देवीने जयेश्वरका मन्दिर बनवाया ॥ ६८१ ॥ यह प्राकृतिक नियम है कि जो कृपण राजे अन्यायसे धन जुटाते है तो उनके उत्तराधिकारी वह धन शीघ्र उड़ा देते है ॥ ६८२ ॥ इसी नियमके अनुसार राजा जयापीडके धनको उसके पुत्र ललितादित्यने खूब उड़ाया और उससे जो बाकी बचा था, उसे ललितादित्यके पॉचों सालोंने खर्च कर दिया ॥ ६८३ ॥ सच तो यह है कि उन भाग्यवान् पुरुषोंको अपनी बहिनके सौन्दर्य-जनित सौभाग्यसे ही वह स्थायी सुख एवं वैभव भोगनेका सुयोग मिला था ॥ ६८४ ॥ वे पॉचों नीच कुलमें उत्पन्न हुए थे। अतएव उनका व्यवहार अपने कुलके अनुरूप नीचतापूर्ण एवं निरंकुश था। वे सोचते थे कि जब हमारा भांजा युवा होकर शासनसूत्र अपने हाथमें ले लेगा, तब हमारे हाथसे सब अधिकार छिन जायँगे ॥ ६८५ ॥ इस प्रकार राज्यके लोभवश उन पॉचों पापियोंने परस्पर मंत्रणा करके अभिचार क्रियाके द्वारा अपने भाँजे अर्थात् कश्मीरके राजाका वध करा दिया ॥ ६८६ ॥ इस तरह केवल बारह वर्ष राज्य करके चिप्पटजयापीडके मर जानेपर पद्मक आदि भाइयोंने आपसी द्वेष तथा अहंकारके कारण किसी एकको राजा नहीं बनने दिया।

तेषामाक्रान्तदेशानां नाममात्रमहीपतीन् । तांस्तान्कर्तुमसामान्यान्विरोधोऽन्योन्यमुद्ययौ ॥६८८॥
अथ मेघावलीदेव्यां जातो बप्पियभूपतेः । ज्येष्ठोऽप्यचाक्रिकतया योऽभूद्राज्यविवर्जितः ॥६८९॥
सोऽयं त्रिभुवनापीडो जयादेव्यामजीजनत् ।
राजानमजितापीडं तं बलादुत्पलो व्यधात् ॥ युग्मम् ॥६९०॥
देडादिगणनास्थाननिष्यन्दोत्थान्नृपाय ते । पञ्चमाद्गणनास्थानादशनाच्छादने ददुः ॥६९१॥
एकसंभाषणात्खेदं यात्स्वन्येषु दिने दिने । पञ्च तुल्यमुखान्नैच्छद्दुःस्थो राजा तदाश्रितः ॥६९२॥
ते राजन्यजितापीडे राज्योत्पत्त्यपहारिणः । पुरदेवगृहादीनां प्रतिष्ठाकर्म चक्रिरे ॥६९३॥
सापत्यास्ते बुभुजिरे राज्यं स्वामिविवर्जितम् । निर्जने महिषं शान्तं मिथः सेर्ष्या वृका इव ॥६९४॥
उत्पलेनोत्पलस्वामी तथोत्पलपुरं कृतम् । पद्मस्य पद्मस्वाम्यास्ते कृतिः पद्मपुरं तथा ॥६९५॥
वधूर्व्यधत्त पद्मस्य गुणादेवी गुणोज्ज्वला ।
मठमेकमधिष्ठाने द्वितीयं विजयेश्वरे ॥६९६॥
धर्मो धर्मोद्यमी हेतुर्धर्मस्वामिविनिर्मितेः । कल्याणवर्मा सत्कर्मा कल्याणस्वामिकेशवे ॥६९७॥
दीन्नाराणां सहस्राणि पञ्चोपकरणं कृती । एकैकस्याः सुधीर्धेनोः कृत्वा मम्मो महाधनः ॥६९८॥
पञ्चाशीतिसहस्राणि गवां दत्त्वा प्रकल्पयन् । कुम्भप्रतिष्ठासंभारं यो मम्मस्वामिनं व्यधात् ॥६९९॥
तस्यैकस्यैव सामग्र्यां कः संख्यां कर्तुमर्हति । भ्रातॄणां किं पुनस्तेषां सर्वेषां भूरिसंपदाम् ॥७००॥
द्रोहार्जिताऽस्तु वा लक्ष्मीः सुकृतोपार्जिताऽथ वा ।
सर्वेषां स्पृहणीयेव तेषां दातृतया तया ॥७०१॥

॥ ६८७ ॥ स्वयं प्रमुख बने रहनेकी लालसावश किसी राजकुलोत्पन्न पुरुषको नाममात्रका राजा बनाकर आपसमें झगड़ते हुए वे राज्यकार्यके विभागोंपर अपना अधिकार जमाये रहते थे ॥ ६८८ ॥ मेघावली देवीसे जायमान बप्पिय वज्रादित्यका पुत्र त्रिभुवनापीड जेष्ठ होता हुआ भी राज्यकार्यसे उदासीन होनेके कारण राज्यसिंहासनसे वंचित रहा। किन्तु जया देवीसे उत्पन्न उसीके पुत्र अजितापीडको उत्पलने बरबस राजगद्दीपर बिठा दिया ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥ देड आदि गणनास्थानसे अवशिष्ट पंचम गणनास्थानकी आमदनीसे उस राजाके स्वतन्त्र व्ययकी व्यवस्था कर दी गयी ॥ ६९१ ॥ उन पाँचों भाइयोंके अधीन रहनेके कारण उस राजाको अतिशय शोचनीय दशाका अनुभव करना पड़ता था। क्योंकि वह उन पाँचोंको समानरूपसे नहीं चाहता था। अतएव वह यदि उनमेंसे किसी एकके साथ प्रेमसे संभाषण करता था तो दूसरा भाई मुँह फुला लेता था ॥ ६९२ ॥ इस प्रकार उस नाममात्रके राजा अजितापीडके राज्यकी सारी आमदनी खींच-खींचकर वे पाँचों भाई नये-नये महल, मन्दिर और नगर बनवाने लगे ॥ ६९३ ॥ जैसे जंगलमें मरे हुए महिष-पर आपसमें लड़ते हुए गीदड़ छीना-झपटी करते हैं, उसी तरह वे पाँचों भाई उस अराजक राज्यका धन आत्मसात् करने लगे ॥ ६९४ ॥ उत्पलने उत्पलनगर बसाकर उत्पलस्वामीको स्थापित किया और पद्मने पद्मपुर नगर बसाकर पद्मस्वामीकी स्थापना की ॥ ६९५ ॥ पद्मकी गुणोज्ज्वला पत्नी श्रीगुणादेवीने राजधानी तथा विजयेश्वरमें एक-एक मठ बनवाया ॥ ६९६ ॥ धर्मने धर्मसे प्रेरित होकर धर्मस्वामीको स्थापित किया और सदाचारी कल्याणवर्मीने भगवन् कल्याणस्वामीका मन्दिर निर्मित कराया ॥ ६९७ ॥ परम धनाढ्य तथा बुद्धिमान् मम्मने मम्मस्वामीकी स्थापना करके मन्दिरकी कलशप्रतिष्ठाके अवसरपर पचासी हजार गौओंका दान किया और प्रत्येक गोदानके साथ पाँच-पाँच हजार दीनार ब्राह्मणोंको दिया ॥ ६९८ ॥ ६९९ ॥ उस अवसरपर उस एक भाईने जो धन खर्च किया था, उसकी गणना करना कठिन है। तब उन पाँचों भाइयोंके असंख्य धनके व्ययका ब्यौरा कैसे बताया जा सकता है ॥ ७०० ॥ हाँ, इतना अवश्य था कि उन्हें सम्पत्ति सुकर्मसे, दुष्कर्मसे

कृता देवगृहास्तैर्ये तत्पार्श्वेऽन्यसुरास्पदैः । दिङ्मातङ्गसमीपस्थकलभौपम्यमाश्रितम् ॥७०२॥
एकोननवते वर्षे स्वस्रीये शान्तिमागते । निर्विघ्नभोगास्तेऽभूवन्षड्विंशाब्दात्ययावधि ॥७०३॥
अथ मम्मोत्पलकयोरुदभूद्दारुणो रणः । रुद्धप्रवाहा यत्रासीद्वितस्ता सुभटैर्हतैः ॥७०४॥
कविर्बुधमनःसिन्धुशशाङ्कः शङ्ककाभिधः ।
यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ॥७०५॥
मम्मसूनुर्यशोवर्मा संग्रामाग्रे व्यपाहरत् । स यत्र तेजः शूराणां नक्षत्राणामिवार्यमा ॥७०६॥
अथोत्पाट्याजितापीडं संग्रामापीडसंभवः । अनङ्गापीडनामाऽभूत्कृतो मम्मादिभिर्नृपः ॥७०७॥
मम्मोत्साहासहिष्णुत्वात्संभृतामर्षवैकृतः ।
तस्य राज्यं द्विषन्नासीत्सुखवर्मोत्पलात्मजः ॥७०८॥
वर्षत्रयेणोत्पलके ततः प्रशममागते । स चकारोत्पलापीडमजितापीडजं नृपम् ॥७०९॥
तेषामाश्वयुजीराजसदृशानां महीभुजाम् । भूत्वापि भृत्याः कृतिनो विभूतिं केऽपि लेभिरे ॥७१०॥
सांधिविग्रहिकस्तस्य रत्नो नाम विभूतिभाक् ।
तस्मिन्कालेऽपि यश्चक्रे रत्नस्वामिसुरास्पदम् ॥७११॥
भेजुर्दार्वाभिसारादीन्देशानुत्तम्य भूपताम् । विमलाश्वा ग्रामभुजो नराद्या व्यवहारिणः ॥७१२॥
राज्ञां कार्कोटवंश्यानां क्षीणप्रायमभूत्कुलम् । वंशस्तूत्पलकुल्यानां भुवि वैपुल्यमाययौ ॥७१३॥
सामर्थ्योपनतप्रायपार्थिवत्वो व्यपद्यत । विद्वेषात्सुखवर्माथ शुष्काख्येन स्वबन्धुना ॥७१४॥
ततः शूराभिधो मन्त्री सुखवर्मात्मजेऽकरोत् । राज्ययोग्योऽयमित्यास्थां सगुणेऽवन्तिवर्मणि ॥७१५॥

या किसी भी तरह क्यों न मिली हो, किन्तु उनकी उदारतासे सबको सुख मिलता था ॥ ७०१ ॥ उन पाँचों भाइयोंने जो मन्दिर बनवाये थे, उनकी विशालताके समक्ष नगरके छोटे-छोटे मन्दिर दिग्गजोंके आगे हाथीके नन्हें-नन्हें बच्चों सरीखे दीखते थे ॥ ७०२ ॥ उनका भागिनेय (भांजा) सप्तर्षिक संवत्के अनुसार ३८८९ वे वर्षमें मरा था। तबसे लेकर निरन्तर छब्बीस वर्षतक उन्होंने निर्विघ्न रूपसे राज्यका उपभोग किया ॥ ७०३ ॥ उसके बाद मम्म और उत्पलक इन दोनों भाइयोंमें भयंकर युद्ध हुआ। उस संग्राममें मरे वीरोंके शवोंसे वितस्ता नदीका प्रवाह अवरुद्ध हो गया था ॥ ७०४ ॥ उस महायुद्धका वृत्तान्त वर्णन करनेके लिए विद्वन्मानस-सिन्धु-शशाङ्क महाकवि शंकुकने 'भुवनाभ्युदय' नामक महाकाव्यकी रचना की थी ॥ ७०५ ॥ मम्मके पुत्र यशोवर्माने उस युद्धमें सब वीरोंका तेज उसी प्रकार मन्द कर दिया था, जैसे सूर्य नक्षत्रोंका तेज क्षीण कर देता है ॥ ७०६ ॥ तदनन्तर मम्म तथा उसके पक्षपातियोंने अजितापीडको राजगद्दीसे उतारकर द्वितीय संग्राम-पीडके पुत्र अनंगापीडको सिंहासनासीन कर दिया ॥ ७०७ ॥ अपने चाचा मम्मका उत्कर्ष देखकर उत्पलकके पुत्र सुखवर्माको बड़ी डाह होती थी। इसलिए वह बराबर उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचता रहता था ॥ ७०८ ॥ तीन वर्ष बाद उत्पलकके मर जानेपर सुखवर्माने अजितापीडके पुत्र उत्पलापीडको शासकपदपर बैठाया ॥ ७०९ ॥ यद्यपि वे राजे आश्विनमासकी पूर्णिमाको अभिषिक्त होनेवाले राजाओंके समान अस्थायी होते थे, फिर भी उनके राज्यकालमें कुछ कार्य-कुशल मन्त्री अपनी चतुराईसे शासनकार्य चलाते हुए ऐश्वर्यका आनन्द लेते थे ॥ ७१० ॥ उस उत्पलापीड राजाके सान्धिविग्रहिक मंत्री रत्नने रत्नस्वामीका मन्दिर बनवाया ॥ ७११ ॥ उन दिनों नर आदि व्यापारी दार्वाभिसार प्रान्तके बहुतेरे गाँवोंको अपने अधिकारमें करके वहाँका शासनकार्य चलाते थे। उन लोगोंके पास बड़े अच्छे-अच्छे घोड़े रहते थे ॥ ७१२ ॥ उस समय कर्कोटकवंशी राजाओंका कुल नष्टप्राय हो गया था और उत्पलवंश उन्नतिपर था ॥ ७१३ ॥ उत्पलका पुत्र सुखवर्मा अपनी शक्तिके बलपर एक प्रकारसे राजा ही था, किन्तु शुष्क नामक उसके भाईने द्वेषवश उसे मार डाला ॥ ७१४ ॥ तदनन्तर शूर नामका एक मंत्री

एकत्रिंशे स वर्षेऽथ प्रजाविप्लवशान्तये। विनिवार्योत्पलापीडं तमेव नृपतिं व्यधात् ॥७१६॥
यत्कृते विफलक्लेशा आसन्पितृपितामहाः। पौत्रेण हेलया प्राप्ता सा सिद्धिः पुण्यकर्मणा ॥७१७॥

कुम्भाः पयोनिधिपयोहरणप्रवृत्ता नित्यं वहन्ति किल ये विफलश्रमत्वम्।
चित्रं क्षणादिह तदेकसमुद्भवेन संदर्शिता निखिलवारिधिपानलीला ॥७१८॥

अभूत तदनु मूर्ध्नि राजलक्ष्मीघटितकटाक्षकृतादिपट्टबन्धे।
कनकघटमुखान्नवाभिषेकं झटिति पतन्तमवन्तिवर्मदेवः ॥७१९॥

संप्राप्तावुपदेष्टुमिन्दुतपनावुक्तं स्ववंशोद्भवैर्भूपालैर्नवराज्यतन्त्रमिव स श्रोत्रद्वये धारयन्।
राजा मण्डनकुण्डलद्वयमिपात्स्वच्छातपत्रच्छलाल्लक्ष्मीविष्टरपुण्डरीकघटितच्छायोदयो दिद्युते ॥७२०॥

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां चतुर्थस्तरङ्गः॥ ४ ॥

समाशतद्वये षष्ट्युते मासेषु षट्सु च। निर्दशाहेषु कार्कोटवंशे सप्तदशाभवन्॥



सुखवर्माके गुणवान् पुत्र अवन्तिवर्माको राजा बननेके योग्य समझकर उसीके पक्षका समर्थन करने लगा ॥ ७१५ ॥ अन्तमें इकतीसवें वर्ष प्रजामें होनेवाले विप्लवको शान्त करनेके लिए उत्पलापीडको पदच्युत करके शूरने अवन्तिवर्माको राजगद्दीपर बिठा दिया ॥ ७१६ ॥ जिस राज्यको पानेके लिए उसके पिता और पितामह अनेक क्लेश सहकर भी असफल रहे, वही सिद्धि (राज्यश्री) पूर्वजन्मके पुण्यसे पौत्रको अनायास प्राप्त हो गयी ॥ ७१७ ॥ अगणित कुम्भ (घड़े) समुद्रके जलको उलीच देनेके लिए नित्य व्यर्थ परिश्रम करते हैं। क्योंकि उनके इस प्रयत्नसे समुद्र सूख नहीं सकता। किन्तु यह कितने आश्चर्यकी बात है कि उन्हीं कुम्भोंमेंसे एक कुम्भके पुत्र (कुम्भज–अगस्त्य) ने सारा समुद्र क्षणभरमें पीकर संसारको चकित कर दिया ॥ ७१८ ॥ इसी प्रकार अवन्तिवर्माने राजलक्ष्मीके कृपाकटाक्षरूपी पट्टवस्त्र धारण किये हुए मस्तकपर स्वर्णकलशके मुखसे गिरे राज्याभिषेकके जलको धारण किया ॥ ७१९ ॥ अपने वंशमें उत्पन्न राजाओंके द्वारा उपदिष्ट नये राजतंत्रका उपदेश देनेके लिए दो कुण्डलोंके रूपमें आये हुए सूर्य और चन्द्रमाको दोनों कानोंमें धारण करके निर्मल छत्रके बहाने भगवती लक्ष्मीके निवासस्थान कमलकी छायामें बैठा हुआ अवन्तिवर्मा बहुत ही भव्य दीख रहा था ॥ ७२० ॥

काश्मीरिक महामात्य चम्पक प्रभुके पुत्र कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणीका चतुर्थ तरंग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥
इस तरंगमें दो सौ साठ वर्ष छः मास दस दिनतक राज्य करनेवाले सत्रह राजाओंका इतिहास वर्णित है।



अथ पञ्चमस्तरङ्गः।

काम्येनेषु रुचिः कचेषु फणिनां पुंस्कोकिलस्येव ते गोभिः कण्ठतटस्य हृष्यति पुरो दृक्पस्य चक्षुःश्रुतेः।
संधानेऽभिनवे मिथो भगवतोर्जिह्वा पृथक्स्पन्दिनी भिन्नार्था मदृशाक्षरमपि वदन्त्येवं गिरं पातु वः ॥१॥
अवन्तिवर्मा साम्राज्यं प्राप्य पाटितकण्टकः। चकार चरितैश्चित्रं सतां कण्टकितं वपुः ॥२॥
आसतां क्षितिपामात्यौ तौ द्वावपि परस्परम्। आज्ञादाने परिवृढौ भृत्यावाज्ञापरिग्रहे ॥३॥
कृतज्ञः क्षान्तिमान्स्वामी भृत्यो मन्त्री भक्तः स्मयोज्झितः। अभङ्गुरोऽयं संयोगः सुकृतैर्जातु दृश्यते ॥४॥
विवेक्ता प्राग्रगण्यः स क्ष्माभृल्लब्ध्वास्य नृपश्रियम्। अविलुप्तस्मृतिर्धीमानन्तरेवमचिन्तयत ॥५॥
गोभुजां वल्लभा लक्ष्मीर्मातङ्गोत्सङ्गलालिता। नेयं स्पृष्टा सन्दूष्याद्य दूषयत्युन्नतात्मनः ॥६॥
स नास्ति कश्चिन्प्रथमं यः प्रदर्श्यानुकूलताम्। संताप्यते न चरमं नीचप्रीत्येव नानया ॥७॥
चपलाभिः प्रवृत्तेयं स्वर्वेश्याभिः सहाम्बुधौ। तदेकचारिणीवृत्तमनया शिक्षितं कुतः ॥८॥
निःस्नेहा नान्वगात्कांश्चित्सुचिरं संस्तुताऽप्यसौ। परलोकाध्वगान्भूपानपाथेयानबान्धवान् ॥९॥
हेमभोजनभाण्डादि भाण्डागारे यदर्जितम्। कस्मादस्य न नाथास्ते लोकान्तरगता नृपाः ॥१०॥
अन्योच्छिष्टेषु पात्रेषु भुक्त्वैतेषु महीभुजः। कस्मान्न लज्जामवहन्शौचचिन्तां न वा दधुः ॥११॥
स्थूलेषु गजतस्थालकपालेष्ववलोकितैः। प्रेतभूपालनामाङ्कैः शङ्का कस्य न जायते ॥१२॥

आपके केशोंकी अद्भुत छटा काले-काले साँपोंके समान सौन्दर्य प्रदर्शित कर रही है, आपके गलेसे निकले कोकिलके शब्दकी तरह मीठे वचनोंसे चक्षुःश्रवा (सर्प) के नेत्र आनन्दित हो रहे हैं. आपका इन सर्पोंपर विचित्र प्रेम है. देखिए—आपके कण्ठतटकी किरणें देखकर इस सर्पकी आँखें प्रसन्न हैं। इस प्रकार नवीन सन्धानके अवसरपर पृथक्-पृथक् हिलती हुई एवं एक जैसा शब्द होनेपर भिन्न-भिन्न अर्थकी सूचिका शिव-पार्वतीकी जिह्वा आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ १ ॥ साम्राज्य प्राप्त करनेके बाद अवन्तिवर्माने शत्रुओंको नष्ट करके अपने उत्कृष्ट कार्यों द्वारा सज्जनोंका शरीर आनन्दसे पुलकित कर दिया ॥ २ ॥ राजा तथा उनका मन्त्री शूर ये दोनों आज्ञा देने और उसका पालन करनेके समय क्रमशः परस्पर स्वामी और सेवक बन जाते थे ॥ ३ ॥ कृतज्ञ तथा क्षमावान् राजा और अनुरक्त तथा विनयी सेवक इन दोनोंका अविनाशी संयोग बड़े पुण्यसे कभी ही कभी हो पाता है ॥ ४ ॥ उस विवेकशील राजाने राज्य प्राप्त करनेके पश्चात् राजलक्ष्मीकी ओर निहारकर अपनी प्राचीन साधारण स्थितिका स्मरण करते हुए मन ही मन सोचा—॥ ५ ॥ 'गोभुजों अर्थात् गोभक्षकों अथवा पृथिवी-रक्षकोंकी प्रिया तथा मातंगोत्संगलालिता अर्थात् चाण्डालोंकी गोदमें खेली अथवा हाथियोंकी पीठपर विलास करनेवाली यह राजलक्ष्मी बड़े-बड़े महात्माओंका मन भी विकृत कर देती है ॥ ६ ॥ नीच पुरुषोंकी प्रीतिके समान चंचला लक्ष्मीने पहले अनुकूलता प्रदर्शित करके बादमें जिसे संतप्त न किया हो, ऐसा कोई भी पुरुष इस संसारमें नहीं है ॥ ७ ॥ अपने पिता समुद्रके घर चंचल प्रकृतिवाली स्वर्गीय अप्सराओंके साथ यह पली है, इसलिए इसका भी चंचल होना स्वाभाविक है। किन्तु अकेले भ्रमण करनेकी कला इसने किससे सीखी, यह नहीं मालूम होता ॥ ८ ॥ चिरकालतक इसकी स्तुति करनेवाले राजे पाथेयहीन तथा बान्धवविहीन होकर परलोक चले गये, किन्तु यह निठुर उनमेंसे किसीके भी साथ नहीं गयी ॥ ९ ॥ राज्यके भाण्डागारमें जो स्वर्णनिर्मित भोजनपात्र आदि सामान एकत्र करके रक्खे हुए हैं, उनपर अब परलोकगामी राजाओंकी प्रभुता क्यों नहीं है ? ॥ १० ॥ इन दूसरोंके जूठे बर्तनोंमें भोजन करते हुए राजाओंको लज्जाका अनुभव क्यों नहीं हुआ और उन्होंने पवित्रताका विचार क्यों नहीं किया ? ॥ ११ ॥ मनुष्यकी खोपड़ी जैसे बड़े-बड़े चाँदीके पात्रोंमें लिखित

कृष्टाः प्रविष्टे ये कालपाशे कण्ठान्मुमूर्षताम् । अशस्ता अपवित्राश्च ते हाराः कस्य हारिणः ॥१३॥
संदूष्य बाष्पैर्दुःखोष्णैस्त्यक्तान्पूर्वैर्मुमूर्षुभिः । स्पृशन्नेतानलंकारान्न कः संकोचमाप्नुयात् ॥१४॥

या वारिराशिसलिलान्तरसंनिधानसंसेवयाऽपि सततं मलिनैव लक्ष्मीः ।
पात्रेषु रोरशिखिभागिषु सा विमुक्ता वैमल्यमेति हरिणीव हुताशशौचा ॥१५॥

इति निर्ध्याय नृपतिर्नीत्वा स्वर्णादि चूर्णताम् । निजैरञ्जलिभिः प्रादाद्द्विजन्मभ्यः करम्भकम् ॥१६॥
साधु भूपेति वक्तव्ये हर्षान्निर्गौरवं द्विजः । साध्ववन्तिन्निति वदन्नेकः प्रापाञ्जलीन्बहून् ॥१७॥
लक्ष्मीं कृत्वार्थिसात्कृत्स्नां कृतिनाऽवन्तिवर्मणा । विभूतिश्चामरच्छत्रमात्रशेषा व्यधीयत ॥१८॥
अनन्तसंपत्संपन्नभूरिगोत्रजविप्लवे । राजश्रीर्दुर्जरा तस्य नवत्वे भूभुजोऽभवत् ॥१९॥

विप्लुतान्समरे भ्रातॄन्भ्रातृव्यांश्च विजित्य सः ।
चकार भूरिभिर्वारैं राज्यं विगतकण्टकम् ॥२०॥

राज्यं निष्पाद्य निर्विघ्नमथ वात्सल्यपेशलः । विभज्य बन्धुभृत्येषु बुभुजे पार्थिवः श्रियम् ॥२१॥
भ्राता द्वैमातुरस्तेन शूरवर्माभिधः सुधीः । ज्ञातिप्रियेण वितते यौवराज्येऽभ्यषिच्यत ॥२२॥
खाधूयाहस्तिकर्णाख्यावग्रहारौ प्रदाय यः । शूरवर्मस्वामिनं च गोकुलं च विनिर्ममे ॥२३॥
संपूर्णः पूर्णमहिमामर्त्यमाहात्म्यमन्दिरम् । पञ्चहस्ताप्रदश्चक्रे मठं सुकृतकर्मठः ॥२४॥
भ्राता व्यधत्त नृपतेरपरः समराभिधः । केशवं चतुरात्मानं समरस्वामिनं तथा ॥२५॥
द्वौ शूरावरजौ धीरविपन्नाख्यौ निजाख्यया । व्यधत्तां विबुधावासौ द्वावन्यौ गणनापती ॥२६॥

मृत राजाओंके नाम देखकर किसके मनमें शंका न उपजेगी ? ॥ १२ ॥ कालपाशमें आवद्ध एवं मरणासन्न व्यक्तियोंके गलेसे खींचकर उतारे हुए अपवित्र हार भला किसको भले लगेंगे ? ॥ १३ ॥ दुःखसे सन्तप्त मरनेवालोंके आँसुओंसे भींगे और उनके त्यागे हुए अलंकारोंका स्पर्श करनेमें कौन मनुष्य संकोच न करेगा ? ॥ १४ ॥ निरन्तर बहुत समयतक समुद्रके अथाह जलमें रहनेपर भी लक्ष्मी सदा मलीन ही रहती है। किन्तु यदि उसे दारिद्र्यरूपी अग्निसे भरे पात्रोंमें डाल दिया जाय अर्थात् वह गरीबोंको दे दी जाय तो अग्नि-शौच हरिणीके समान पवित्र हो जाती है। जैसे आग दिखानेसे वस्त्र पवित्र हो जाते हैं, उसी तरह मृगचर्मको भी आग दिखा देनेसे उसके रोयें शुद्ध हो जाते हैं ॥ १५ ॥ ऐसा सोचकर राजा अवन्तिवर्मा सुवर्णपात्रों तथा आभूषणोंको टुकड़े-टुकड़े करा तथा उनमें चाँदी और रत्न आदि मिलाकर खिचड़ीके समान अँजूरी भर-भरके ब्राह्मणोंको दान देने लगा ॥१६॥ एक ब्राह्मण हर्षके आवेशमें 'धन्य राजन्'की जगह 'धन्य अवन्तिन्' यह गौरवहीन वचन बोल गया। इससे प्रसन्न होकर राजाने उसे कई अँजूरी सोना अधिक दे दिया ॥१७॥ इस प्रकार उस पुण्यात्मा राजा अवन्तिवर्माने धन याचकोंके अधीन करके अपने लिए केवल छत्र-चमरमात्रकी सम्पदा शेष रक्खी ॥ १८ ॥ पहले जब वह नया-नया राजा बना था, तब असीम सम्पत्तिशाली बान्धवोंके उपद्रवके कारण उसे कुछ समयतक राजश्रीके उपभोगमें कुछ असुविधाका सामना करना पड़ा था ॥ १९ ॥ तदनन्तर रणभूमिमें कई बार अपने भाई-भतीजोंको परास्त करके उसने राज्यको निष्कण्टक बना दिया ॥ २० ॥ इस तरह उस वात्सल्यशील राजाने राज्यको अकण्टक करके अपने बान्धवों तथा सेवकोंको भी भागीदार बनाकर उसका उपभोग करना आरम्भ किया ॥ २१ ॥ उस बन्धुप्रिय राजाने अपने विद्वान् सौतेले भाई शूरवर्माको युवराजपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ २२ ॥ उसी शूरवर्माने खाधूय तथा हस्तिकर्ण नामके दो अग्रहार ब्राह्मणोंको दिये। साथ ही शूरस्वामीको स्थापित करके एक गोकुलका भी निर्माण कराया ॥ २३ ॥ परम महिमामय, प्रभावशाली, सर्वाधिकारसम्पन्न एवं सुकृतकर्मठ शूरवर्माने पंचहस्ता नामका अग्रहार देकर एक मठ भी बनवाया ॥ २४ ॥ राजा अवन्तिवर्माके दूसरे भाई समरने समरस्वामी नामके चतुरात्मा विष्णुभगवान्की स्थापना की ॥ २५ ॥ शूरके छोटे भाईके पुत्र एवं कोशाध्यक्ष धीर और विपन्न नामके दो भ्राताओंने अपने नामसे दो देवमन्दिरोंका निर्माण कराया

भूत्वा वातूलताच्छन्नप्रभावानुभवौ भुवि । गतौ सविग्रहावेव हरावासाग्र्यसभ्यताम् ॥ युग्मम् ॥२७॥
राजदौवारिकः श्रीमाञ्शूरस्यासीन्महोदयः । महोदयस्वामिनो यः प्रतिष्ठां समपादयत् ॥२८॥
रामटाख्यमुपाध्यायं ख्यातव्याकरणश्रमम् । व्याख्यातृपदकं चक्रे स तस्मिन्सुरमन्दिरे ॥२९॥
अमात्येन महीभर्तुः श्रीप्रभाकरवर्मणा । कृतं प्रभाकरस्वामिनाम्नो विष्णोर्निकेतनम् ॥३०॥
आयातेन शुकैः सार्धं दत्ता गृहशुकेन यः । मुक्ताः प्राप्य प्रतिष्ठायां चक्रे ख्यातां शुकावलीम् ॥३१॥
विच्छिन्नप्रसरा विद्या भूयः शूरेण मन्त्रिणा । सत्कृत्य विदुषः सभ्यान्देशेऽस्मिन्नवतारिता ॥३२॥
युग्यैः क्षितिभुजां योग्यैरुह्यमाना महर्द्धयः । बुधाः प्रवृद्धसत्कारा विविशुर्भूपतेः सभाम् ॥३३॥
मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः । प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥३४॥
आस्थाने कृतमन्दारो वन्दी शूरस्य मन्त्रिणः । संकल्पस्मृतिमाधातुमिमामार्यां सदाऽपठत् ॥३५॥

अयमवसर उपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम् ।
विपदि सदाभ्युदयिन्यां पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ॥३६॥

कृतः सुरेश्वरीक्षेत्रे बहुगेहविधायिना । शिवयोर्मिश्रयोस्तेन प्रासादः सोऽव्ययस्थितिः ॥३७॥
शूरेश्वरं प्रतिष्ठाप्य स्ववेश्मेव समुन्नतम् । चक्रे शूरमठं धीमान्स भोगाय तपस्विनाम् ॥३८॥
स्वकृते पत्तनवरे तेन शूरपुराभिधे । क्रमवर्तप्रदेशस्थो ढक्कोऽभूद्विनिवेशितः ॥३९॥
सुरेश्वरीप्राङ्गणतश्चक्रे भूतेश्वरं हरम् । मठं शूरमठान्तश्च शूरजो रत्नवर्धनः ॥४०॥
काव्यदेव्यभिधा शूरवधूः शुद्धान्वया व्यधात् । सदाशिवं सुरेश्वर्यां काव्यदेवीश्वराभिधम् ॥४१॥
निर्मत्सरोऽवन्तिवर्मा सोदरेभ्योऽनपायिनीम् । शूराय च सपुत्राय नृपतिप्रक्रियां ददौ ॥४२॥

॥ २६ ॥ यद्यपि कुछ-कुछ पागलपनके कारण उन दोनों भाइयोंकी वास्तविक योग्यताका पता नहीं लगता था, किन्तु अन्तमें वे सदेह कैलासगामी हुए ॥ २७ ॥ शूरके मुख्य द्वारपाल महोदयने महोदयस्वामीकी स्थापना की ॥ २८ ॥ उसी देवमन्दिरमें उसने महान् वैयाकरण रामट उपाध्यायको व्याख्याताके पदपर बिठाया ॥ २९ ॥ इसी तरह राजा अवन्तिवर्माके मंत्री श्रीप्रभाकरने प्रभाकर स्वामी नामके एक विष्णुमन्दिरका निर्माण कराया ॥ ३० ॥ उस मन्दिरकी प्रतिष्ठाके अवसरपर बाहरी शुकोंके साथ आये हुए घरेलू शुकोंने जो मोती अर्पित किये थे, उनके द्वारा उस मंत्रीने विख्यात शुकावलीका निर्माण कराया ॥ ३१ ॥ उस राजमन्त्री शूरने बड़े आदरपूर्वक संसारके बड़े-बडे विद्वानोंको बुलवाकर उनके द्वारा कश्मीरमें नष्टप्राय विद्याको फिरसे जीवित किया ॥ ३२ ॥ वे विद्वान् बड़े-बड़े धनाढ्य बनकर राजाओंके योग्य वाहनोंपर बैठकर राजसभामें जाया करते थे ॥ ३३ ॥ सम्राट् अवन्तिवर्माके साम्राज्यमें मुक्ताकण, शिवस्वामी, ध्वन्यालोक ग्रन्थके रचयिता कवि आनन्दवर्धन और हरिविजय ग्रन्थके निर्माता कवि राजानक ये चार विद्वान् बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए ॥ ३४॥ राजमन्त्री शूरका आश्रित वन्दी (स्तुतिपाठक भाँट) कृतमन्दार सभासदोंको सत्संकल्पका स्मरण करानेके लिए नित्य सभामें इस आर्याका पाठ किया करता था—॥ ३५ ॥ 'यह स्वभावतः चंचला सम्पत्ति जबतक हमारे पास है, तभीतकके लिए हमें परोपकारका सुअवसर प्राप्त हुआ है। आगे चलकर जब चिरस्थायिनी सम्पत्ति प्राप्त हो जायगी, तब परोपकार करनेकी फुरसत कहाँ मिलेगी' ॥ ३६ ॥ बहुतेरे भवनोंका निर्माण करानेवाले मन्त्रिवर शूरने शूरेश्वरी क्षेत्रमें अर्धनारीनटेश्वरका एक बड़ा मजबूत प्रासाद बनवाया ॥ ३७ ॥ उस बुद्धिमान् मन्त्रीने शूरेश्वर भगवान्की स्थापना करके तपस्वियोंको रहनेके लिए अपने भवनके सदृश विशाल शूरमठका निर्माण कराया ॥ ३८ ॥ क्रमवर्त प्रदेशके ढक्क अर्थात् सरहदको हटाकर अपने बसाये सुन्दर शहर शूरपुरमें उसकी स्थापना की ॥ ३९ ॥ राजमन्त्री शूरके पुत्र रत्नवर्धनने शूरेश्वरीके प्रांगणमें भूतेश्वर शिवको स्थापित किया और शूरमठके भीतर ही एक अन्य मठका निर्माण कराया ॥ ४० ॥ उच्च कुलमें उत्पन्न शूरकी पत्नी काव्यदेवीने शूरेश्वरी क्षेत्रमें काव्यदेवीश्वर नामके शिवकी प्रतिष्ठा की ॥ ४१ ॥ मत्सरहीन और उदार राजा अवन्तिवर्माने अपने भाई शूर तथा

छन्दानुवर्ती भूपालो दैवतस्येव मन्त्रिणः । आ बाल्याद्वैष्णवोऽप्यासीच्छैवतामुपदर्शयन् ॥४३॥
क्षेत्रे विश्वैकसाराख्ये मृतानामपवर्गदे । भूरिभोगास्पदं राज्ञा तेनावन्तिपुरं कृतम् ॥४४॥
अवन्तिस्वामिनं तत्र प्राग्राज्याधिगमात्कृती । विधाय प्राप्तसाम्राज्यश्चक्रेऽवन्तीश्वरं तदा ॥४५॥
त्रिपुरेश्वरभूतेशविजयेशेषु भूभृता । स्नानद्रोण्या रुप्यमय्या तेन पीठत्रयं कृतम् ॥४६॥
शूरस्यापि नरेन्द्रं तं ध्यायतः स्वाधिदैवतम् । तत्प्रियार्थमुपेक्ष्योऽभूद्धर्मः प्राणाः सुतोऽपि वा ॥४७॥
तया चार्चयितुं जातु यातो भूतेश्वरं नृपः । विभवानुगुणे स्वस्मिन्पूजोपकरणेऽर्पिते ॥४८॥
ददर्श पीठे देवस्य पूजकैरुपपादितम् । वन्यमुत्पलशाकाख्यं तिक्तशाकमवस्थितम् ॥४९॥
तत्रस्थाः क्ष्माभुजा पृष्टास्तन्निवेदनकारणम् । व्यजिज्ञपन्क्षितिन्यस्तजानुप्राञ्जलयस्ततः ॥५०॥

डामरो धन्वनामास्ति लहरे विषये वली ।
शूरस्य मन्त्रिणो देवसेवको यः सुतोपमः ॥५१॥

हृतेषु तेन ग्रामेषु निरवग्रहशक्तिना । निवेद्यमेतदेवास्मै भूतेशाय निवेद्यते ॥५२॥
अकाण्डशूलजनितां पार्थिवः कथयन्व्यथाम् । श्रुतमश्रुतवत्कृत्वा त्यक्तपूजोऽथ निर्ययौ ॥५३॥
पूजां संत्यज्य गमनं शूलं चाकस्मिकं प्रभोः । सहेतुकं विदन्शूरो वृत्तान्तान्वेषकोऽभवत् ॥५४॥
ज्ञाततत्त्वस्ततस्तूर्णं भूतेशाभ्यर्णवर्तिनः । क्रुद्धः समातृचक्रस्य भैरवस्याविशद्गृहम् ॥५५॥
निषिद्धजनबाहुल्याद्भूत्वा विरलपार्श्वगः । प्राहिणोद्धन्वमानेतुं ततो दूतान्पुनः पुनः ॥५६॥
स क्षितिं पत्तिपृतनासंमर्दैन प्रकम्पयन् । अप्रकम्पतनुः प्राप क्रूरः शूरान्तिकं शनैः ॥५७॥

उसके पुत्रोंको सदाके लिए राजाकी तरह सब अधिकार प्रदान कर दिये थे ॥ ४२ ॥ राजा अवन्तिवर्मा देवता-सदृश शान्त स्वभाववाले अपने भाई शूरको प्रसन्न करनेके निमित्त जन्मसे वैष्णव होते हुए भी ऊपरसे अपनेको शैव कहा करता था ॥ ४३ ॥ उस राजाने मोक्षदायक विश्वैकसार क्षेत्रमें सब प्रकारकी उपभोग्य वस्तुओंसे परिपूर्ण अवन्तिपुर नामका नगर बसाया ॥ ४४ ॥ राज्य प्राप्त होनेके पहले उसी क्षेत्रमें उसने अवन्तिस्वामीकी प्रतिष्ठा की थी और राज्य मिलनेके बाद वहाँ अवन्तीश्वर शिवका मन्दिर बनवाया ॥ ४५ ॥ इसके अतिरिक्त त्रिपुरेश्वर, विजयेश एवं भूतेशके मन्दिरोंमें चाँदीकी स्नानद्रोणी तथा तीन सिंहासन भी बनवाये ॥ ४६ ॥ उसका मन्त्री शूर उस राजाको अपने इष्टदेवके समान पूज्य मानता था । उसे प्रसन्न रखनेके लिए वह धर्म, प्राण एवं पुत्रको भी त्याग सकता था ॥ ४७ ॥ एक समयकी बात है, वह राजा भगवान् भूतेश्वरकी पूजा करनेको गया हुआ था । अपने ऐश्वर्यके अनुसार उसने वहाँ पूजनसामग्रियाँ अर्पित कीं ॥ ४८ ॥ सहसा उसकी दृष्टि सामनेके पीठपर पुजारियों द्वारा एकत्रित करके रक्खे हुए जंगली और कड़ुए उत्पल शाकपर पड़ी । उसे देखकर राजाने उसको वहाँ रखनेका कारण पूछा । प्रश्न सुनकर वहाँवालोंने घुटने टेक तथा हाथ जोड़कर कहा—॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ 'महाराज ! लोहरप्रान्तमें राजमन्त्री शूरके पुत्रका सेवक धन्व नामका डामर रहता है । वह उस मन्त्रिपुत्रका पुत्रके समान प्यारा सेवक है ॥ ५१ ॥ अपने अप्रतिहत पराक्रमसे उसने राज्यकी ओरसे मन्दिरके नाम लगे हुए सब गाँव बरबस छीन लिये हैं । अतएव धनाभावके कारण भूतेश भगवान्को इसी शाकका भोग लगता है ॥ ५२ ॥ यह सुना तो बातको अनसुनी-सी करके एकाएक पेटमें शूल उठनेका बहाना करके वह पूजासे उठ गया ॥ ५३ ॥ उसी समय राजमन्त्री शूर भी महाराजके आकस्मिक शूल एवं पूजापीठके त्यागको रहस्यमय समझकर गुप्तरूपसे पुजारियों द्वारा कथित वृत्तान्तका पता लगाने लगा ॥ ५४ ॥ उसे जब इस बातका सही-सही पता लग गया, तब कुपित होकर वह मन्त्री पास ही मातृचक्रसे अलंकृत भैरवके मन्दिरमें जा पहुँचा ॥ ५५ ॥ वहाँपर उपस्थित जनसमुदायको हटवाकर जब वह केवल कुछ विश्वस्तजनोंके साथ रह गया, तब उसने धन्व डामरको बुलानेके लिए बारी-बारी कई दूत भेजे ॥ ५६ ॥ तब वह क्रूर धन्व डामर शस्त्र धारण करके अपनी पैदल सेनाके पाद-प्रहारसे धरतीको कँपाता हुआ निर्भीक भावसे राजमन्त्रीके समक्ष जा पहुँचा ॥ ५७ ॥

तस्य प्रविष्टमात्रस्य शस्त्रिणः शूरचोदिताः। मुण्डं सजीवितस्यैव चिच्छिदुर्भैरवाग्रतः ॥५८॥
आसन्ने सरसि क्षिप्त्वा रुधिरोद्गारि तद्वपुः। क्ष्मापतेः क्षालितामर्षो धीरः शूरो विनिर्ययौ ॥५९॥
तस्य श्रुत्वा शिरश्छिन्नं स्वपुत्रस्येव मन्त्रिणा। क्षीणमन्युः क्षितिपतिः सवैलक्ष्य इवाभवत् ॥६०॥
शूरोऽथ पृष्टकुशलो निर्व्यथोऽस्मीति भाषिणम्। उत्थाप्य तल्पात्तं देवं पूजाशेषमकारयत् ॥६१॥
इत्थं समस्तकृत्येषु भावज्ञः स महीपतेः। अनुक्त्वैव हितं तत्तत्प्राणांस्त्यक्त्वाऽप्यसाधयत् ॥६२॥
परस्परमनुत्पन्नमन्युकालुष्यदूषणौ। न दृष्टौ न श्रुतौ वान्यौ तादृशौ राजमन्त्रिणौ ॥६३॥
श्रीमेघवाहनस्येव साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः। अशेषप्राणिनामासीदमारो दश वत्सरान् ॥६४॥
जलं जहद्भिः शिशिरं तटानेत्याकुतोभयैः। तत्कालं सेवितः पृष्ठे पाठीनैः शरदातपः ॥६५॥
अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः। अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन् ॥६६॥
चरित्रे बहुवक्तव्ये येषामेकस्य पावनः। अयं प्रासङ्गिकः कश्चिद्वृत्तान्तो वर्णयिष्यते ॥६७॥
देशः प्रबलतोयोऽयं महापद्मसरोजलैः। कुलिनीभिश्च शबलः स्वल्पोत्पत्तिः सदाऽभवत् ॥६८॥
ललितादित्यभूभर्तुरुद्योगेन बलीयसा। किंचिदाकृष्टसलिलः प्रापोत्पत्तिं मनाक्ततः ॥६९॥
जयापीडे क्रमाद्याते स्वल्पवीर्येषु राजसु। सलिलोपप्लवैरासीत्पुनरेवावृता क्षितिः ॥७०॥
दीन्नाराणां दशशती पञ्चाशत्यधिकाऽभवत्। धान्यखारीक्रये हेतुदेशे दुर्भिक्षविक्षते ॥७१॥
अवन्तिवर्मणः पुण्यैर्जन्तूञ्जीवयितुं ततः। स्वयमन्नपतिः श्रीमान्सुय्यः क्षितिमवातरत् ॥७२॥
यस्याविज्ञातसंभूतेस्तुर्ये कालेऽपि निश्चितम्। अयोनिजत्वं कृतिनश्चरितैर्भुवनाद्भुतैः ॥७३॥

उसके वहाँ पहुँचते ही मन्त्रीकी आज्ञासे राजसैनिकोंने भैरवके समक्ष उस डामरका सिर काट लिया ॥ ५८ ॥ और फिर उसके रुधिरसे सने शरीरको पासवाले सरोवरमें फेंकवाकर राजाके कोपका प्रतीकार करके राजमन्त्री शूर वहाँसे चल पड़ा ॥ ५९ ॥ इस प्रकार मन्त्रीके द्वारा पुत्रतुल्य प्रिय धन्व डामरके शिरश्छेदका समाचार सुनकर राजाका कोप तो शान्त हो गया, किन्तु इस घटनासे उसकी विचित्र मनःस्थिति हो गयी ॥ ६० ॥ मन्त्री शूरने आकर जब राजाके स्वास्थ्यका हाल पूछा, तब उसने बताया कि अब उदरशूल नहीं रहा। इसके बाद मन्त्रीने आग्रहपूर्वक राजाको शय्यासे उठाया और भूतेशमन्दिरमें लेजाकर अवशिष्ट पूजा पूर्ण करायी ॥ ६१ ॥ इस प्रकार राजाके मनोभावका ज्ञाता वह मन्त्री उसका प्रत्येक कार्य बिना कुछ कहे प्राणपणसे पूर्ण कर दिया करता था ॥ ६२ ॥ जिनके मनमें कभी पारस्परिक क्रोध एवं मनोमालिन्य न उत्पन्न हुआ हो, ऐसे राजे और ऐसे मन्त्री संसारमें न कभी देखे और न सुने ही गये थे ॥ ६३ ॥ पूर्वकालमें राजा श्रीमेघवाहनके शासनकालके समान ही महाराज अवन्तिवर्माके राज्यकालमें भी दस वर्षतक प्राणिहिंसा सर्वथा बन्द थी ॥ ६४ ॥ एक समय भीषण जलप्रलयकी स्थिति आयी हुई थी। अतएव नदीके अत्यन्त शीतल जलसे उद्विग्न पवित्र पाठीन मत्स्य निर्भीकभावसे नदीकी रेतीमें पड़े-पड़े धूप खाते थे ॥ ६५ ॥ राजा अवन्तिवर्माके शासनकालमें लोकानुग्रहके लिए श्रीभट्ट-कल्लट आदि सिद्ध पुरुष जगतीतलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ६६ ॥ यदि उनके सब चरित्रोंका वर्णन किया जाय तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा। अतएव प्रसंगानुसार उनमेंसे केवल एक चरित्रका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ॥ ६७ ॥ महापद्म सरोवरके कारण पूरा कश्मीर देश प्रायः जलमय है और उसके अतिरिक्त अनेक नदियाँ भी हैं। इस कारण यहाँ अन्नका उत्पादन बहुत कम होता है ॥ ६८ ॥ राजा ललितादित्यके प्रबल प्रयत्नसे उस सरोवरका कुछ जल बाहर निकाल दिया गया, जिससे खेती कुछ बढ़ी और उसी अनुपातसे अन्नोत्पादन भी कुछ बढ़ा ॥ ६९ ॥ किन्तु राजा जयापीडके बादवाले राजे निर्बल थे। अतएव जलके उपद्रवोंसे वह भूमि फिर जलसे ढँक गयी ॥ ७० ॥ एक बार उस दुर्भिक्षग्रस्त देशमें ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो गयी कि एक खारी अन्नका दाम एक हजार दीनार लगने लगा ॥ ७१ ॥ उस समय राजा अवन्तिवर्माके पुण्यप्रतापसे प्राणियोंकी प्राणरक्षाके लिए स्वयं अन्नपति सुय्यका रूप धारण करके धरतीपर अवतरे ॥ ७२ ॥ महात्मा सुय्यका किस कुलमें और

पुरा रथ्यारजःपुञ्जं संमार्जन्ती पिधानवत् । सुय्याभिधाना चण्डाली मृद्भाण्डं प्राप नूतनम् ॥७४॥
तस्मिन्पिधानमुद्धृत्य साऽपश्यन्मध्यशायिनम् । बालं कमलपत्राक्षं धयन्तं स्वकराङ्गुलीः ॥७५॥
मात्रा कयापि त्यक्तोऽसौ सुन्दरो मन्दभाग्यया । अथेति चिन्तयन्त्यासीत्सा स्नेहात्प्रस्नुतस्तनी ॥७६॥
अदूपयन्त्या स्पर्शेन धात्र्याः शूद्रस्त्रियो गृहे । तया विहितवृत्तिः स शिशुर्वृद्धिमनीयत ॥७७॥
स सुय्यनामा मतिमान्प्रवृद्धः शिक्षिताक्षरः । कस्याप्यासीद्गृहपतेरर्भकाध्यापको गृहे ॥७८॥
व्रतस्नानादिनियमैस्तं सतां हृदयंगमम् । गोष्ठीषु विशदप्रज्ञं विदग्धाः पर्यवारयन् ॥७९॥
तेषां कथाव्यवस्थासु निन्दतां जलविप्लवम् । धीरस्ति मे निरर्थस्तु किं कुर्यामिति सोऽब्रवीत् ॥८०॥
उन्मत्तस्येव वदतस्तस्य तन्नियमाद्वचः । निशम्य भूभृच्चारेभ्यश्चिरमासीत्सविस्मयः ॥८१॥
ततस्तमानीय नृपः किं ब्रूष इति पृष्टवान् । धीरस्तीत्यादि राजाग्रेऽप्यवोचत्सोप्यसंभ्रमः ॥८२॥
वातूलोऽसाविति निजैरुक्तोप्यथ महीपतिः । धियं दिदृक्षुर्विदधे तस्यायत्तं निजं धनम् ॥८३॥
कोशाद्दीनारभाण्डानि बहून्यादाय हेलया । ययौ मडवराज्यं स नावमारुह्य रंहसा ॥८४॥
ग्रामे तत्र प्रवृद्धाम्बुनिमग्ने नन्दकाभिधे । एकं निक्षिप्य दीनारभाण्डं न्यावर्तत द्रुतम् ॥८५॥
सत्यं वातूल एवासौ सभ्येष्वपि वदत्स्वपि । वार्तां निशम्य तां राजा तन्निष्ठान्वेषकोऽभवत् ॥८६॥
क्रमराज्यं स संप्राप्य देशे यक्षदराभिधे । अञ्जलिभ्यां निचिक्षेप दीनारान्सलिलान्तरे ॥८७॥
यत्र तीरद्वयालम्बिशैलनिर्लुठिताः शिलाः । चक्रुर्वितस्तां निष्पीड्य पयः प्रतिपथोन्मुखम् ॥८८॥

किस कालमें जन्म हुआ था, इस बातका सही-सही पता नहीं लगता। किन्तु उसके विश्वविस्मयकारी चरित्रोंसे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इस चतुर्थ युगमें उत्पन्न होनेवाला वह एक अयोनिज पुरुष था ॥७३॥ पुरातन कालमें सुय्या नामकी चण्डाली सड़क बुहार रही थी। एकाएक उसे ढँका हुआ मिट्टीका एक नया घड़ा मिला ॥७४॥ उसने जब घड़ेका ढकन खोलकर देखा तो उसमें अपनी उँगली चूसता हुआ एक कमल सरीखे नयनोंवाला प्रसन्नमुख बालक दीखा ॥७५॥ उसको देखकर चण्डालीने सोचा कि किसी अभागिन माताने यह सुन्दर बालक त्याग दिया है। ऐसा सोचनेपर स्नेह-वश उसके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी ॥७६॥ उसने अपने स्पर्शसे उस बालकको दूषित न करके किसी शूद्रजातिकी स्त्रीके पास रखकर वहाँ ही उसके पालन-पोषणका प्रबन्ध कर दिया ॥७७॥ उस बालकका सुय्य नाम रक्खा गया। सुय्य बड़ा और साक्षर होनेपर एक अच्छे धनिकके बालकका शिक्षक बन गया ॥७८॥ व्रत-स्नान आदि पवित्र नियमोंका पालन करनेके कारण सज्जनोंका हृदय आकृष्ट करते हुए सुय्यकी वाक्पटुतापर मुग्ध होकर देशके बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग उसके पास एकत्र होने लगे ॥७९॥ एक बार उसके पास बैठे कुछ लोग बाढकी चर्चा करते हुए राज्यके प्रबन्धकी आलोचना कर रहे थे। तब सुय्यने कहा—'मुझमे यह उपद्रव शान्त करनेकी शक्ति तो है, किन्तु धन नहीं है और धनके अभावमे मै कर ही क्या सकता हूँ' ॥८०॥ 'एक पागलके समान सुय्य सदा इस प्रकार प्रलाप करता रहता है' यह बात गुप्तचरों के मुखसे सुनकर राजा अवन्तिवर्माको बहुत आश्चर्य हुआ ॥८१॥ तदनन्तर राजाने सुय्यको बुलवाकर पूछा कि 'तुम क्या कहना चाहते हो?' वहाँ भी सुय्यने निर्भय होकर वही बात कही—'मुझमे बुद्धि तो है, किन्तु धनके अभावमे मैं कर ही क्या सकता हूँ?' ॥८२॥ उसका कथन सुनकर सब दरबारी कहने लगे 'यह पागल है।' फिर भी राजाने उसकी बुद्धिकी परीक्षा लेनेके लिए उसे यथेष्ट धन देनेकी आज्ञा दे दी ॥८३॥ तदनुसार दीनारोंसे भरे बहुतेरे कलश लेकर सुय्य मडव देशकी ओर चल पड़ा ॥८४॥ वहाँ बाढके जलमे डूबे मण्डव ग्राममें दीनारोंसे भरा एक कलश डालकर तुरन्त लौट आया ॥८५॥ यह वृत्तान्त सुनकर सब सभ्य फिर वही बात कहने लगे कि 'सुय्य पागल है'। किन्तु राजा अवन्तिवर्माने उसके कार्यका परिणाम देखनेका निर्णय किया ॥८६॥ तदनन्तर सुय्य क्रमराज्यके अन्तर्गत यक्षदर ग्राममे जा पहुँचा और वहाँ वह अँजुरी भर-भरकर दीनार पानीमें डालने लगा ॥८७॥ उस गाँवके

दुर्भिक्षोपहता ग्राम्या दीन्नारान्वेषिणस्तदा । शिलाः प्रवाहादुद्धृत्य वितस्तां समशोधयन् ॥८९॥
एवं दिनानि द्वित्राणि पयो युक्त्या विकृष्य तत् । वितस्तामेकतः स्थानात्कर्मकृद्भिरबन्धयत् ॥९०॥
पाषाणसेतुबन्धेन सुय्येनाद्भुतकर्मणा । सप्ताहमभवद्बद्धा निखिला नीलजा सरित् ॥९१॥
अधः प्रवाहं संशोध्य लुठदश्मप्रतिक्रियाम् । कृत्वा बद्धैः शिलाबन्धैः सेतुबन्धमपाटयत् ॥९२॥
चिरकालनिरोधेन सोत्कण्ठेवाम्बुधिं प्रति । ततः प्रावर्तत जवाद्गन्तुं सागरगामिनी ॥९३॥
जम्बालाङ्का स्फुरन्मीना भूर्बभौ सलिलोज्झिता । व्यक्तकार्ष्ण्या सनक्षत्रा निर्मेघेव नभःस्थली ॥९४॥
यत्र यत्र विवेदौघवेघं सलिलविप्लवे । तत्र तत्र वितस्तायाः प्रवाहान्नूतनान्व्यधात् ॥९५॥
मूलस्रोतोऽयनिष्ठ्यूतभूरिस्रोता बभौ सरित् । एकभोगाश्रयानेकफणेवासितपन्नगी ॥९६॥

वामेन सिन्धुस्त्रिग्राम्या वितस्ता दक्षिणेन तु ।
यान्त्यौ ये समगंसातां प्राग्वैन्यस्वामिनोऽन्तिके ॥९७॥

वर्ततेऽद्य महानद्योः कल्पापायेप्यनत्ययः । संगमो नगरोपान्ते स सुय्योपक्रमस्तयोः ॥९८॥
अद्याप्यास्तां फलपुरपरिहासपुरस्थितौ । विष्णुस्वामी संगमस्य वैन्यस्वामी च तीरयोः ॥९९॥
सुन्दरीभवनाभ्यर्णप्राप्तस्याद्यतनस्य तु । योगशायी हृषीकेशः सुय्यस्याभ्यर्चितस्तटे ॥१००॥
दृश्यन्तेऽद्यापि सरितां पूर्वस्रोतस्तटोद्भवाः । निषादाकृष्टनौरज्जुरेखाङ्का जीर्णपादपाः ॥१०१॥
स्फुरत्तरङ्गजिह्वाः स नदीर्मार्गमजिग्रहत् । तास्ताः स्वेच्छानुसारेण मान्त्रिकः पन्नगीरिव ॥१०२॥
बद्ध्वा शैलमयान्सेतून्वितस्तां सप्तयोजनीम् । महापद्मसरोवारि स चकार नियन्त्रितम् ॥१०३॥

पास बहनेवाली वितस्ता नदीमें दोनों तटोंके पहाड़ोंकी चट्टानें लुढक-लुढककर आनेसे प्रवाह रुककर उलटा बहने लगा था ॥ ८८ ॥ अब दीनारप्राप्तिके लोभवश गाँवके दुर्भिक्षपीडित ग्रामीणोंने जलप्रवाहसे उन चट्टानोंको निकालकर वितस्तानदीको साफ कर डाला ॥ ८९ ॥ ऐसा करनेसे जल-प्रवाहको अपना पुराना मार्ग मिला और बहुत-सा फालतू जल बह गया। इसके बाद सुय्यने मजदूरोंके द्वारा वितस्ताके एक ओर बाँध बनवा दिया ॥ ९० ॥ इस प्रकार उस अद्भुत कार्य करनेवाले महापुरुषने एक सप्ताहमे पाषाणसेतु बनवाकर नीलनाग तीर्थसे निकलनेवाली पूरी वितस्ता नदीको बाँध दिया ॥ ९१ ॥ उसके बाद नदीके भीतर पड़े हुए सब पत्थरोंको निकलवाकर नदी साफ करा दी और पत्थरके बाँध बनवाकर पहलेवाला सेतु तोड़ दिया ॥ ९२ ॥ उसके ऐसा करनेपर बहुत समयके अवरोधसे अत्यन्त उत्सुक जैसी वह वितस्ता बड़े वेगके साथ समुद्रसे मिलनेके लिए बह चली ॥ ९३ ॥ अब हरित जम्बाल (सेवार) से अलंकृत तथा जलाभावसे छटपटाती हुई मछलियोंसे युक्त वह जलमुक्त भूमि काले बादलोंसे रहित तथा चमकते हुए तारोंसे सुशोभित आकाशके सदृश दिखायी देने लगी ॥ ९४ ॥ तदनन्तर उसने जहाँ-जहाँ बाढके दिनोंमे हानि होनेकी सम्भावना देखी, वहाँ-वहाँ नये प्रवाहमार्ग बनवा दिये ॥ ९५ ॥ उन अनेक प्रवाहमार्गोंसे स्वच्छ जलसम्पन्न वह नदी एक ही शरीरपर विद्यमान अनेक फणोंसे युक्त नागिन सरीखी दीखने लगी ॥९६॥ त्रिग्रामीकी बायीं ओरसे सिन्धु और दाहिनी ओरसे आनेवाली वितस्ता ये दोनों नदियाँ पहले वैन्यस्वामीके मन्दिरके पास मिलती थीं ॥ ९७ ॥ अब वे दोनों नदियाँ सुय्यके द्वारा निर्मित कल्पान्त पर्यन्त स्थायी श्रीनगरके समीप नये संगमस्थलपर मिलती हैं ॥ ९८ ॥ इस समय उस प्राचीन संगमके दक्षिण-उत्तर दोनों तटोंपर फलपुर एवं परिहासपुरमे विष्णुस्वामी तथा वैन्यस्वामीके मन्दिर विद्यमान है ॥ ९९ ॥ अब सुन्दरीभवनके समीप स्थित नवीन संगमस्थलपर महात्मा सुय्य द्वारा पूजित योगशायी हृषीकेश भगवान्‌का मन्दिर सुशोभित हो रहा है ॥ १०० ॥ आज भी वितस्ता नदीके प्राचीन प्रवाहोंके तटवर्ती पुराने वृक्षोंमे निषादों द्वारा बाँधी जानेवाली नावोंकी रस्सीकी रगड़के चिह्न देखे जा सकते है ॥ १०१ ॥ जैसे मांत्रिक मन्त्रबलसे नागिनको अपने वशमें कर लेता है, उसी प्रकार उस बुद्धिमान् सुय्यने लपलपाती तरंगरूपिणी जिह्वाओंसे युक्त नागिनस्वरूपा नदियोंको वशमे करके अपने इच्छानुसार अनेक मार्गोंमें विभाजित कर दिया ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

महापद्मसरःकुण्डाद्वितस्ता येन योजिता। जवान्निर्याति कोदण्डयन्त्रादिषुरिवाध्वना ॥१०४॥
उद्धृत्य सलिलादुर्वीमेवमादिवराहवत्। अनेकजनसंकीर्णान्ग्रामान्नानाविधान्व्यधात् ॥१०५॥
पालीभिरम्भः संरोध्य यान्कुण्डसदृशान्व्यधात्। कुण्डलानीति सर्वान्नसमृद्धान्ब्रुवते जनाः ॥१०६॥
उत्खातकीलनिवहान्नद्योऽद्यापि शरत्कृशाः। व्यञ्जन्ति जलगन्धेभवन्धनस्तम्भसंनिभान् ॥१०७॥
दीन्नारभाण्डानौज्झीत्स यदगाधजलान्तरे। नन्दके निर्गतजले स्थलान्तात्तदलभ्यत ॥१०८॥
अदेवमातृकान्ग्रामान्परीक्ष्य विविधाः क्षितीः। संविभेजे विभक्तेन नादेयेन स वारिणा ॥१०९॥
असिञ्चच्च जलैर्ग्रामान्ग्रामान्मृदमुपाहृताम्। या यावता क्षणेनागाच्छोषं तां तावता हृदि ॥११०॥
कालेन मत्वा सेकार्हां प्रतिग्रामं जलस्रुतेः। परिमाणं विभागं च परिकल्प्य निरत्ययम् ॥१११॥

चकार चानूलाद्याभिः सिन्धुभिः सर्वतो दिशः।
सत्फलोदारकेदारसंपत्संपन्नविभ्रमाः ॥ तिलकम् ॥११२॥

न कश्यपेनोपकृतं न यत्संकर्पणेन वा। हेलया मण्डलेऽमुष्मिंस्तत्सुय्येन सुकर्मणा ॥११३॥
भूमेर्जलादुद्धरणं द्विजक्षेत्रे तथार्पणम्। सेतुबन्धोऽश्मभिस्तोये यमनं कालियस्य च ॥११४॥
चतुर्षु सिद्धमिति यद्विष्णोः सत्कर्मजन्मसु। सुय्यस्य तत्पुण्यराशेरेकस्मिन्नेव जन्मनि ॥युग्मम्॥११५॥
यस्मिन्महासुभिक्षेषु दीन्नाराणां शतद्वयी। धान्यखारेः प्राप्तिहेतुरासर्गादभवत्पुरा ॥११६॥
ततः प्रभृति तत्रैव चित्रं कश्मीरमण्डले। षट्त्रिंशता धान्यखारेर्दीन्नारैरुदितः क्रयः ॥११७॥
निर्गताया महापद्मसलिलात्स्वर्गसंनिभम्। वितस्तायास्तटे चक्रे स्वनामाङ्कं स पत्तनम् ॥११८॥

वितस्ता नदीके दोनों तटोंपर सात योजन लम्बा पाषाणसेतु बन जानेके कारण महापद्म सरोवरका जल नियंत्रित हो गया ॥ १०४ ॥ उस सरोवरका जल वितस्तामें मिलकर इतने वेगमें बहता है, जैसे धनुषसे छूटा हुआ तीर भागता है ॥ १०५ ॥ आदिवराह भगवान्‌की तरह पृथिवीका जलसे उद्धार करके वहाँ नाना-प्रकारके जनसंकुल ग्राम बसाये गये ॥ १०६ ॥ दीवारोंसे पानी रोककर कुण्डकी भाँति जो गोलाकार बाँध बने थे, अब सब प्रकारके अन्नोंसे परिपूर्ण उन स्थानोंको कुण्डलानी कहते हैं ॥ १०७ ॥ शरद् ऋतुमें जब नदियोंका जल कम हो जाता है, तब नदियोंके बीच खड़े खम्भे जलहस्तियोंको बाँधनेके लिए निर्मित खूँटोंके समान दिखायी देते हैं ॥ १०८ ॥ पहले सुय्यने जिस स्थानपर वह दीनारोंसे भरा कलश डाला था, वहाँका पानी हट जानेपर वह कलश सूखी जमीनपर पड़ा हुआ मिला ॥ १०९ ॥ उसने जिन गाँवोंको पानी देनेकी आवश्यकता समझी, वहाँ नदीसे नहरें निकालकर पानी पहुँचाया ॥ ११० ॥ इसके बाद उसने प्रत्येक गाँवसे मिट्टी मँगवायी और अलग-अलग उन मिट्टियोंको जलसे सींचकर देखा। जो मिट्टी जितनी देरमें सूखी, उतनी ही देरीमें उसको फिरसे सींचनेका सिद्धान्त निर्धारित करके उसने नहरोंसे पानी पहुँचानेकी व्यवस्था की। इस प्रकार अन्न पकनेका ठीक समय जान लेनेके बाद प्रत्येक ग्राममें योजनाबद्ध कार्यक्रमके अनुसार आनूला आदि विभिन्न नदियोंका जल उपयोगमें लाकर उसने वहाँकी चारों नदियोंके प्रभावसे कश्मीर देशको हरे-भरे खेतोंसे परिपूर्ण कर दिया ॥ १११ ॥ ११२ ॥ इस देशका जो उपकार महर्षि कश्यप और बलराम भी नहीं कर सके थे, उसे सुय्यने अपने कर्मकौशलके प्रभावसे कर दिखाया ॥ ११३ ॥ भूमिका जलसे उद्धार, द्विज-क्षेत्रमें अर्पण, जलमें पाषाणसेतुका निर्माण और कालियनागका दमन, इन चार कामोंको पूर्ण करनेके लिए विष्णु भगवान्‌को वराह, परशुराम, राम और कृष्ण ये चार अवतार लेने पड़े थे। परन्तु उस महान् पुण्यात्मा सुय्यने एक ही जन्ममें ये चारों काम सम्पन्न कर डाले ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ सृष्टिके आरम्भसे लेकर और उत्तम सुभिक्षके समय भी जिस कश्मीर देशमें एक खारी चावलका दाम दो सौ दीनारसे कम नहीं होता था ॥ ११६ ॥ किन्तु सुय्यके प्रतापसे उसी समय वहाँ एक खारी चावलका दाम छत्तीस दीनार हो गया ॥ ११७ ॥ महापद्म-सरोवरसे निकली हुई जमीन एवं वितस्ता नदीके तटपर सुय्यने सुय्यपुर नामका एक नगर बसाया ॥ ११८ ॥

स्वकृता स्थापिता तेन सरसि व्याप्तदिक्तटे । आसंसारं स्थिताऽमारमर्यादा झषपक्षिणाम् ॥११९॥
सुय्याकुण्डलनामानं ग्रामं कृत्वा द्विजानिसात् । सुय्यामुद्दिश्य तन्नाम्ना सुय्यासेतुं स निर्ममे ॥१२०॥
तेनोद्धृतासु सलिलाद्भूषु ग्रामाः सहस्रशः । अवन्तिवर्मप्रमुखैर्जयस्थलमुखाः कृताः ॥१२१॥
ईदृशैर्धर्म्यवृत्तान्तैः प्रवर्तितकृतोदयः । अवन्तिदेवः पातिस्म मान्धातेव वसुंधराम् ॥१२२॥
प्राणप्रयाणसोद्योगरोगग्रस्तस्ततो ययौ । क्षेत्रं स त्रिपुरेशाद्रिनिष्ठज्येष्ठेश्वराश्रितम् ॥१२३॥
आत्मनस्तत्र निश्चित्य विपत्तिं चिरगोपिताम् । प्राणान्ते प्राञ्जलिः शूरो वैष्णवत्वमदर्शयत् ॥१२४॥

तेनान्ते भगवद्गीताः शृण्वता भावितात्मना ।
ध्यायता वैष्णवं धाम निरमुच्यत जीवितम् ॥१२५॥

आषाढशुक्लपक्षस्य तृतीयस्यां क्ष्मापतिः । वर्षे एकोनषष्टे स च्माभृपोऽस्तमुपाययौ ॥१२६॥
तस्मिन्प्रशान्ते प्रत्येकं विभवोत्सिक्तचेतसाम् । तुल्यमुत्पलवंश्यानां राज्येच्छा भूयसामभूत् ॥१२७॥
ततश्चक्रे प्रतीहारः प्रयत्नाद्रत्नवर्धनः । नृपं शंकरवर्माणमवन्तिनृपतेः सुतम् ॥१२८॥
कर्णपो विन्नपामात्यस्तनूजं शूरवर्मणः । तद्द्वेषात्सुखवर्माख्यं यौवराज्येप्ययोजयत् ॥१२९॥
अतस्तयोरभूद्वैरं क्षितीशयुवराजयोः । यस्मिन्क्षणे क्षणे राज्यमासीद्दोलामिवाश्रयत् ॥१३०॥
शिवशक्त्यादयो वीराः स्वामिकार्योज्झितासवः । यत्राभूवन्स्वसत्त्वस्य परीक्षाक्षणलाभिनः ॥१३१॥
कुर्वतां स्वामिशत्रूणां दानमानप्रतिश्रवम् । सत्त्वैकाग्रयान्न ते यस्मादानुकूल्यमशिश्रयन् ॥१३२॥
पिण्डस्पृहां परित्यज्याहंकृताः शिक्षिताः क्वचित् । तावन्न वीततमसः श्ववृत्तिमनुजीविनः ॥१३३॥
कथंचिदथ निर्जित्य युवराजं महौजसम् । प्राज्यः स्वविजयोंकारश्चक्रे शंकरवर्मणा ॥१३४॥
सम्राट्समरवर्माद्यैर्वितीर्णसमरोऽसकृत् । कीर्तिं श्रिया प्रणयिनीं लब्धयाऽधिविवेद सः ॥१३५॥

उस दिगन्तव्यापी सरोवरके तटपर उसने सदाके लिए मछलियों तथा पक्षियोंकी हिंसा निषिद्ध कर दी ॥ ११९ ॥ उसने सुय्याकुण्डल नामका ग्राम दान करके ब्राह्मणोंको दे दिया और उसी गाँवके नामपर सुय्यसेतुका निर्माण कराया ॥ १२० ॥ बादमें सुय्य द्वारा जलसे उबारी हुई जमीनपर अवन्तिवर्मा आदि राजाओंने जयस्थल आदि बहुतेरे ग्राम बसाये ॥ १२१ ॥ इस तरह अनेक धर्मानुकूल काम करके राजा अवन्तिवर्माने कलियुगमें भी सत्ययुगकी झाँकी दिखाते हुए महाराज मान्धताके समान प्रजाका पालन किया ॥ १२२ ॥ तदनन्तर प्राणान्तक रोगसे ग्रस्त होकर वह त्रिपुरेश पर्वतपर विद्यमान ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमे जाकर रहने लगा ॥ १२३ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने बहुत समयसे छिपाये हुए वैष्णवत्वको अपने राजमन्त्री शूरके समक्ष प्रकट कर दिया ॥ १२४ ॥ अन्तमे बड़ी श्रद्धाके साथ भगवद्गीता सुनते तथा वैष्णवधामका स्मरण करते-करते उसने तन त्यागा ॥ १२५ ॥ इस प्रकार आषाढ़ शुक्ल तृतीया लौकिक शक ३९५९ को वह नरेशश्रेष्ठ अस्त हो गया ॥ १२६ ॥ उसके दिवंगत हो जानेपर वैभवके गर्वसे फूले हुए अनेक उत्पलवंशी राजे राज्य प्राप्त करनेका उद्योग करने लगे ॥ १२७ ॥ किन्तु रत्नवर्धन नामक प्रतीहारने विविध प्रयत्नों और अनेक युक्तियोंसे शूरवर्माके पुत्र शंकरवर्माको कश्मीर राज्यका राजा बनाया ॥ १२८ ॥ उधर उसके प्रतिद्वन्द्वी विन्नपके मन्त्री कर्णपने शूरवर्माके दूसरे पुत्र सुखवर्माको युवराजके पदपर बिठाल दिया ॥१२९॥ इस कारण जब राजा और युवराजमे वैर ठन गया तो उसी समयसे राज्यकी स्थिति डगमगाने लगी ॥ १३० ॥ ऐसी परिस्थितिमे शिवशक्ति आदि राजभक्तोंने अपने स्वामीके लिए प्राण देकर स्वामिभक्तिकी परीक्षामे उत्तीर्ण होनेका सुयोग पाया ॥ १३१ ॥ यद्यपि स्वामीके शत्रुओंने उन्हें दान-मानका प्रलोभन देकर फुसलाना चाहा था, किन्तु उन्होंने वह प्रस्ताव ठुकराकर अपनी सत्यप्रियताका परिचय दिया ॥ १३२ ॥ उस समयके राजसेवक स्वाभिमानी हुआ करते थे, वे केवल पेट पालनेके लिए कुत्तोंकी तरह दुम नहीं हिलाते रहते थे ॥ १३३ ॥ अन्तमें किसी तरह उस महातेजस्वी युवराजको परास्त करके सम्राट् शंकरवर्माने अपनी विजयके महान् ओंकारका श्रीगणेश किया ॥ १३४ ॥ राजा शंकरवर्माने समरवर्मा आदि वीरोंके साथ

अथ निर्जित्य दायादाँल्लब्ध्वा लक्ष्मीं क्षितीश्वरः। जिष्णुर्दिग्विजयं कर्तुं श्रीमानासीन्महोद्यमः ॥१३६॥
तस्य कालवलाद्देशे प्रक्षीणजनसंपदि। लक्षाणि नव पत्तीनां द्वारान्निष्क्रामतोऽभवन् ॥१३७॥
स्वपुरस्योपकण्ठेऽपि योऽभूत्कुण्ठितशासनः। स एव रत्नोत्तंसेषु राज्ञामाज्ञां न्यवेशयत् ॥१३८॥
गच्छन्नाम्नायविच्छेदसंप्रदायः ककुब्जये। स्वप्रज्ञया समुन्नीतो राज्ञा शंकरवर्मणा ॥१३९॥
तत्सेना नरनाथानां पृतनाभिः पदे पदे। कुलापगेव कुल्याभिर्विशन्तीभिरवर्ध्यत ॥१४०॥
दार्वाभिसारराजेन त्रस्यता समुपाश्रिताः। अद्रिद्रोण्यो न वाहिन्यस्तत्सेनानादमादधुः ॥१४१॥
जनोल्वणैर्हरिगणैर्गृह्णन्हरिगणं क्षणात्। अनासादितदुर्गं स चक्रे दुर्गान्तरातिथिम् ॥१४२॥
लक्षाणि नव पत्तीनां वारणानां शतत्रयी। लक्षं च वाजिनामासीद्यस्य सेनापुरःसरम् ॥१४३॥
स गुर्जरजयव्यग्रः स्वपराभवशङ्किनम्। त्रैगर्तं पृथिवीचन्द्रं निन्ये तमसि हास्यताम् ॥१४४॥
पुत्रं भुवनचन्द्राख्यं नीविं प्रागेव दत्तवान्।
स क्ष्मभृत्प्रणतिं कर्तुं तस्याभ्यर्णमुपागतः ॥१४५॥
अथ तत्कटकं भ्राम्यद्भूरिमण्डलनायकम्। वीक्ष्य संमुखमायान्तं महार्णवमिवोल्बणम् ॥१४६॥
समागमक्षणे यस्माच्छङ्कमानः स्वबन्धनम्। पलाय्य प्रययौ दूरं निर्वाणौजोविजृम्भितः ॥१४७॥
यमप्रतिमसौन्दर्यमप्याहुः पुराविदः। तमेवाद्राक्षुरुत्त्रस्ता नृपाः कालमिवोल्बणम् ॥१४८॥
उच्चखानालखानस्य संख्ये गुर्जरभूभुजः। बद्धमूलां क्षणाल्लक्ष्मीं शुचं दीर्घामरोपयत् ॥१४९॥

अनेकश युद्ध करके प्राप्त धनकी अपेक्षा विशेष प्रिय कीर्तिका अर्जन किया ॥ १३५ ॥ इस प्रकार अपने दायादोंको परास्त करने और लक्ष्मीको पानेके बाद जयेच्छुक राजा शंकरवर्माने दिग्विजयकी तैयारी आरम्भ कर दी ॥ १३६ ॥ समयके फेरसे उन दिनों देशमें धन तथा जन दोनोंकी कमी थी। तथापि अपने नगरके मुख्य द्वारसे बाहर आते समय उसके साथ नौ लाख सैनिकोंकी पैदल सेना थी ॥ १३७ ॥ कोई ऐसा भी समय था, जब राजा शंकरवर्माकी आज्ञाको राजधानीके द्वारके बाहर कोई नहीं मानता था, किन्तु आज उसकी आज्ञाको बड़े-बड़े राजे भी अपने रत्नजटित मुकुटोंपर सादर धारण कर रहे थे ॥ १३८ ॥ बीचके समयमें कवियों द्वारा दिग्विजय-वर्णनकी परम्परा टूट चुकी थी, किन्तु अपने बौद्धिक कौशलसे राजा शंकरवर्माने वह प्रथा फिरसे चालू करा दी ॥ १३९ ॥ कुछ आगे बढ़नेपर महानदीके समान विशाल उस राजाकी सेनामें छोटी-छोटी नदियोंकी भाँति अन्य राजाओंकी सेनायें आ-आकर मिलने लगीं ॥ १४० ॥ उसकी सेनाके जयघोषकी प्रतिध्वनि भयभीत भावसे छिपे हुए दार्वाभिसार देशके राजा द्वारा आश्रित पर्वतकन्दराओंमें जाकर टकराती थी—शत्रु सेनामें वह नहीं सुनायी देती थी ॥ १४१ ॥ बहुसंख्यक सेना युक्त हरिगणोंके नरेशके भयभीत भावसे भागकर अपने किलेमें घुस जानेके पहले ही राजा शंकरवर्माने पकड़कर दूसरे किले अर्थात् कारागारमें भेज दिया ॥ १४२ ॥ जब वह नौ लाख पैदल सेना, एक लाख घोड़े और तीन सौ हाथियोंकी विशाल वाहिनी साथ लेकर गुर्जर प्रान्तको जीतनेके लिए चला, उस समय अज्ञानवश अपने पराभवकी आशंकासे भयभीत त्रिगर्त देशको राजा पृथ्वीचन्द्रको उपहासास्पद बनना पड़ा ॥१४३॥१४४॥ बात यह हुई कि पृथ्वीचन्द्रने अपने पुत्र भुवनचन्द्रको राजा शंकरवर्माके पास नीवी (जमानत) के रूपमें रख दिया था और इसी समय वह राजा शंकरवर्माको प्रणाम करनेके लिए उसके पास जा रहा था ॥ १४५ ॥ किन्तु अचानक अनेक माण्डलिक राजाओंके साथ भीषण समुद्रके समान गर्जन करती हुई राजा शंकरवर्माकी सेनाको अपनी ओर आती देखकर राजा पृथ्वीचन्द्रने सोचा कि 'यदि इस समय भेंट हुई तो शंकरवर्मा मुझे पकड़कर कारागार भेज देगा'। इस भयसे वह लौटकर भाग खड़ा हुआ और इसीसे उसकी जगहँसाई हुई ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ यद्यपि पुराने लोगोंकी धारणा थी कि शंकरवर्मा सर्वाधिक सुन्दर राजा है। किन्तु उससे डरे हुए राजे उसे यमराजके समान भयंकर मानते थे ॥ १४८ ॥ गुर्जर देशके अधिपति राजा अलखानके साथ युद्ध करके उसकी बद्धमूल राजलक्ष्मीको क्षणभरमें

तस्मै दत्त्वा टक्कदेशं विनयादङ्गुलीमिव । स्वशरीरमिवापासीन्मण्डलं गुर्जराधिपः ॥१५०॥
हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत् । प्रतीहारतया भृत्यीभूते थक्कियकान्वये ॥१५१॥
दरत्तुरुष्काधिपयोर्यः केसरिवराहयोः । हिमवद्विन्ध्ययोरासीदार्यावर्त इवान्तरे ॥१५२॥
उदभाण्डपुरे तस्थुर्यदीये निर्भया नृपाः । पक्षच्छेदव्यथात्रस्ता महार्णव इवाद्रयः ॥१५३॥
नक्षत्रेष्विव भूपेषु नभसीवोत्तरापथे । यस्यैव विपुला ख्यातिर्मार्तण्डस्येव मण्डलम् ॥१५४॥
स श्रीमाँल्लल्लियः शाहिरलखानाश्रयः क्रुधा । निराकरिष्णोः साम्राज्यात्तस्य सेवां न लब्धवान् ॥१५५॥
एवं दिग्विजयं कृत्वा प्राप्तः स निजमण्डलम् । प्रदेशे पञ्चसत्राख्ये स्वनाम्ना विदधे पुरम् ॥१५६॥
तस्य श्रीस्वामिराजस्य तनयोदक्पथप्रभोः । पूर्णिमेव क्षपाबन्धोः सुगन्धाख्याऽभवत्प्रिया ॥१५७॥
तया समं पुरवरे सुरराजोपमो नृपः । तस्मिञ्शंकरगौरीशसुगन्धेशौ विनिर्ममे ॥१५८॥
द्विजस्तयोर्नायकाख्यो गौरीशसुरसद्मनोः । चातुर्विद्यः कृतस्तेन वाग्देवीकुलमन्दिरम् ॥१५९॥
परकाव्येन कवयः परद्रव्येण चेश्वराः । निर्लोठितेन स्वकृतिं पुष्णन्त्यद्यतने क्षणे ॥१६०॥
स्वल्पसत्त्वो नरपतिः स्वपुरख्यापनाय सः । सारापहारमकरोत्परिहासपुरस्य यत् ॥१६१॥
ख्यातिहेतुः पट्टवानं पशूनां क्रयविक्रयौ । इत्यादि यत्पत्तनेऽस्ति तत्तस्मिन्हि पुरेऽभवत् ॥१६२॥
राज्यप्रदेन नृपते रत्नवर्धनमन्त्रिणा । श्रीरत्नवर्धनेशाख्यो व्यधीयत सदाशिवः ॥१६३॥
चित्रं नृपद्विपाः पूतमूर्तयः कीर्तिनिर्झरैः । भवन्ति व्यसनासक्तिपांसुस्नानमलीमसाः ॥१६४॥

उखाड़कर उसे सदाके लिए शोकाकुल कर दिया ॥ १४९ ॥ तदनन्तर गुर्जराधिप अलखानने शंकरवर्माको भेटस्वरूप टक्कप्रदेश देकर अंगुलीदान द्वारा समस्त शरीरकी रक्षा कर लेनेके समान अपने देशको वचा लिया ॥ १५० ॥ थक्कियवंशमें उत्पन्न एक राजकुमार राजा शंकरवर्माके यहाँ प्रतीहारका कार्य करता था। अतएव उसने अधिराज भोजके द्वारा छीना हुआ उसका राज्य भोजसे उस राजकुमारको दिला दिया ॥ १५१ ॥ हिमवान् एवं विन्ध्यपर्वतके मध्यवर्ती आर्यावर्तकी भाँति अलखानका संरक्षक राजा लल्लियशाही वन्य शूकर तथा सिंहके सदृश दरद और तुरुष्क देशके बीचमे फँस गया था। इधर-उधरके परास्त राजे उसकी राजधानी उद्भाण्डपुरमें ही आकर रहा करते थे। जैसे पूर्वकालमे इन्द्र द्वारा पंख कटनेके भयसे भागे हुए पर्वत समुद्रमें जाकर निर्भय हो जाते थे, उसी प्रकार उसकी राजधानीमे पहुँचकर परास्त राजे निःशंक हो जाया करते थे। नभमण्डलमे चमकनेवाले नक्षत्रोंमे सूर्यकी भाँति उत्तरापथके राजाओंमे राजा लल्लियकी प्रचुर ख्याति थी ॥ १५२ ॥ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ वह राजा शंकरवर्माका आश्रय पाना चाहता था। किन्तु शंकरवर्मा उसका सारा साम्राज्य हस्तगत कर लेनेका इच्छुक चाहता था। इसी कारण उसने लल्लियकी सेवा नही स्वीकार की ॥१५५॥ कालान्तरमें दिग्विजयसे अपने देश लौटकर राजा शंकरवर्माने पंचसत्रप्रदेशमे अपने नामसे शंकरपुर नगर वसाया ॥ १५६ ॥ जैसे चन्द्रमाकी प्रिय पत्नी राका है, उसी प्रकार उत्तरापथके राजा स्वामिराजकी पुत्री सुगन्धा देवी शंकरवर्माकी प्रिय पत्नी थी ॥ १५७ ॥ देवराज इन्द्रके समान रहते हुए राजा शंकरवर्माने उस नगरमें अपने नामसे शंकरगौरीश एवं पत्नीके नामसे सुगन्धेश शिवकी प्रतिष्ठा की ॥ १५८ ॥ उस मन्दिरमें उसने सरस्वतीके निवासस्थानस्वरूप तथा चतुर्विद्याविशारद नायक नामके एक विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करके वहाँका व्यवस्थापक वना दिया ॥ १५९ ॥ आजकल कवि तथा राजे पराये काव्य और पराये द्रव्यकी चोरी करके उसीसे अपनी कृति (नगर अथवा काव्य) को सजाते हैं ॥ १६० ॥ सो उस अल्पवली राजाने अपने शंकरपुरकी प्रसिद्धिके लिए परिहासपुरकी सभी उत्तम श्रेणीकी वस्तुये उड़वाकर वहाँ रखवा दी ॥ १६१ ॥ परिहासपुरकी ख्यातिके मूल कारण दो व्यवसाय थे—कपड़े वुननेका कारखाना और पशुओंके क्रय-विक्रयकी हाट। सो इन दोनों कामोंको उसने शंकरपुरमे चालू कर दिया ॥ १६२ ॥ शंकरवर्माको राज्य दिलानेवाले मंत्री रत्नवर्धनने रत्नवर्धनेश्वर नामके सदाशिवकी स्थापना की ॥ १६३ ॥ यह वड़े आश्चर्यकी वात है कि राजेरूपी गजराज अपने

अथ क्रमेण नृपतिर्लोभाभ्यासेन भूयसा । आधीयमानचित्तोऽभूत्प्रजापीडनपण्डितः ॥१६५॥
आरब्धैर्व्यसनैर्भूम्ना क्षीणकोशः क्षणे क्षणे । देवादीनां स सर्वस्वं जहारायासयुक्तिभिः ॥१६६॥
कर्मस्थाने पुरगृहग्रामादिधनहारिणा । तेनाट्टपतिभागाख्यगृहकृत्याभिधे कृते ॥१६७॥
धूपचन्दनतैलादिविक्रयोत्थं समाददे । द्रविणं देववेश्मभ्यः क्रयमूल्यकलाच्छलात् ॥१६८॥
प्रत्यवेक्षां मुखे दत्त्वा विभक्तैरधिकारिभिः । चतुःषष्टिं सुरगृहान्मुमोपेतवदञ्जसा ॥१६९॥
ग्रामान्देवगृहग्राह्यान्राजा प्रतिकरेण सः । स्वयं स्वीकृत्य चोत्पत्तिं क्ष्मां कर्षक इव व्यधात् ॥१७०॥
तुलां कृत्वा त्रिभागोनां वर्षदेयां स पर्षदे । भुक्तिकम्बलमूल्यादिदम्भादभ्यधिकं ददौ ॥१७१॥
दिगन्तरस्थो ग्रामीणानूढभारानना‍गतान् । तद्देशार्घैर्भारमूल्यं वर्षमेकदण्डयत् ॥१७२॥
वर्षेऽपरस्मिन्निखिलान्भारमूल्यं निरागसः । तथैव संख्यया ग्राम्यान्प्रतिग्राममदण्डयत् ॥१७३॥
इत्येषा रूढभारोढिः प्रथमं तेन पातिता । दारिद्र्यदूती ग्रामाणां या त्रयोदशधा स्थिता ॥१७४॥
स्कन्दकग्रामकायस्थमासवृत्त्यादिसंग्रहैः । अन्यैश्च विविधायासव्यधाद्ग्रामान्स निधनान् ॥१७५॥
तुलापहारोपचयग्रामदण्डादिसंग्रहैः । इत्येष तेन संवाहो गृहकृत्ये प्रवर्तितः ॥१७६॥
व्यधत्त पञ्च दिविरान्स तस्मिन्भिन्नकर्मणि । षष्ठं तथा गञ्जवरं शकचं लवटाभिधम् ॥१७७॥
आत्मनो निरयं मूढः सोऽङ्गीकृत्येत्युपक्रियाम् । भाविनामकरोद्राज्ञां पापी यद्वा नियोगिनाम् ॥१७८॥
निमित्तं मण्डलेऽमुष्मिन्सविद्यानामनादरे । राज्ञां प्रतापहानौ च नान्यः शंकरवर्मणः ॥१७९॥

यशरूपी झरनेमें नहाकर निर्मलदेह होनेपर भी व्यसनासक्तिरूपी धूल ओढकर फिर गन्दे हो जाते हैं ॥१६४॥ आगे चलकर वह राजा विशेष लोभके वशीभूत होकर प्रजाको सतानेमें पूर्ण निपुण हो गया ॥ १६५ ॥ अब बहुतेरे व्यसनोंमें फँसकर उसने बहुत थोड़े ही समयमें सारा राज्यकोष खर्च डाला और अनेक क्रूरतापूर्ण उपायोंसे देवमन्दिरों आदि धार्मिक संस्थाओंकी सम्पदाका अपहरण करने लगा ॥ १६६ ॥ तदनुसार उसने नगर, ग्राम एवं गृह आदिका कर वसूलनेके लिए अट्टपतिभाग तथा गृहकृत्यभाग नामके दो नये विभाग स्थापित कर दिये ॥ १६७ ॥ इसी प्रकार देवपूजनके उपकरण धूप, चन्दन, तेल आदिपर बहुत बड़ा कर लगा दिया और उनकी बिक्रीकी आयको छलपूर्वक स्वयं लेने लगा ॥ १६८ ॥ उसने नये-नये अधिकारियोंको नियुक्त करके चौसठ देवमन्दिरोंको हस्तगत कर लिया । उनके गाँव छीन लिये और नाममात्रका गुजारा देकर उनकी सारी आमदनी स्वयं लेने लग गया ॥ १६९ ॥ १७० ॥ इसी प्रकार राज्यकर्मचारियोंके वार्षिक वेतनका तृतीयांश तौल-मापमें कमी करके अत्यधिक मूल्यमें अन्न-कम्बल आदिके रूपमें देने लगा ॥ १७१ ॥ एक समयकी बात है कि राजा शंकरवर्मा अपने राज्यके किसी प्रान्तमें दौरेपर गया हुआ था । वहाँके ग्रामीण उस वर्ष बेगार प्रथाके अनुसार राजाका बोझा ढोने नहीं आये । तब उस देशके बाजारभावके अनुसार उन ग्रामीणोंसे भारवहनका मूल्य दण्डरूपमें वसूला गया ॥ १७२ ॥ इसी प्रकार दूसरे वर्ष भी सारे राज्यकी प्रजासे वह कर लिया गया । फिर आगे चलकर तो बेगारके स्थानपर कर लेनेकी प्रथा-सी चल पड़ी ॥ १७३ ॥ इस तरह बेगारके बदले नगद कर लेनेकी परम्परा कश्मीरमें तभीसे चालू हुई । राजा शंकरवर्माके द्वारा चलायी हुई इस दारिद्र्यकी दूतीस्वरूपा रूढभारोढि नामकी प्रथाके कुल तेरह प्रकार थे ॥ १७४ ॥ इसके अतिरिक्त ग्रामस्कन्दक (जमींदार) और ग्राम-कायस्थ (पटवारी) आदि कर्मचारियोंके मासिक वेतनपर विविध दुःखदायी करोंका भार लादकर उसने गाँवोंकी जनताको अतिशय कंगाल बना दिया ॥ १७५ ॥ फिर उसने तौल-नापमें कमी-बेशी करके ग्रामदण्ड आदि नये-नये करोंके द्वारा गृहविभागके खर्चके लिए धनसंचय करना आरम्भ कर दिया ॥ १७६ ॥ इस विभागमें पाँच दिविर (कायस्थ) नियुक्त हुए और छठाँ शकच या लवट नामका गंजवर (खचानची) नियुक्त हुआ ॥ १७७ ॥ उस मूर्ख राजा शंकरवर्माने भविष्यमें होनेवाले राजाओं एवं कर्मचारियोंके लिए इस तरह धनसंग्रहका मार्ग खोलकर अपने लिए नरकप्राप्तिका सारा सरंजाम जुटा लिया ॥ १७८ ॥ इस कश्मीरमण्डलमें विद्वानोंके

मुख्येन गुणिनां राज्ञा धनहान्या प्रथापहाः । मूर्खेण येन कायस्था दास्याः पुत्राः प्रवर्तिताः ॥१८०॥
तथा कायस्थभोज्या भूर्जाता तत्प्रत्यवेक्षया । यथा संजायतेवर्णं हरणादिव भूभुजाम् ॥१८१॥
तस्मिन्घोरे प्रजादुःखे कृपार्द्रः पृथिवीपतिम् । पुत्रो गोपालवर्माख्यः कदाचिदिदमब्रवीत् ॥१८२॥
प्रदातुस्तात भवतः पूर्वं न्यासीकृतः स्थितः । वरो यः सत्यसंधस्य सोऽधुना प्रार्थ्यते मया ॥१८३॥
कायस्थप्रेरणादेतैर्देवेनाद्य प्रवर्तितैः । आयासैः श्वासशेषैव प्राणवृत्तिः शरीरिणाम् ॥१८४॥
न च नामास्ति तातस्य काचिल्लोकद्वयोचिता । मनागपि हितप्राप्तिरेतया जनपीडया ॥१८५॥
अदृष्टविषयां वार्तां गहनां विवृणोति कः । दृष्टेऽप्यनिष्टादन्यन्न कर्मणानेन दृश्यते ॥१८६॥
एकतो व्याधिदुर्भिक्षप्रमुखा विपदोऽखिलाः । प्रजानामेकतस्त्वेका लुब्धता वसुधापतेः ॥१८७॥
भूभुजोऽभ्यस्तलोभस्य श्रीः कैश्चिन्नाभिनन्द्यते । अकालकुसुमस्येव फलसंभावनोज्झिता ॥१८८॥
दानं च सूनृता सूक्तिर्विश्वसंवननं प्रभोः । लोभः पूर्वं तयोरेव विनाशाय महोद्यमः ॥१८९॥
प्रतापमायतिं शोभां हेमन्ताहस्य वारिदः । स्मृतिशेषां करोत्येव लोभश्च पृथिवीभुजाम् ॥१९०॥
दायादा व्ययभीरुतापरिहृतारब्धैर्भवन्त्युन्नता भृत्याः प्रत्युपकारकातरमतेः कुर्युर्न केऽपि प्रियम् ।
राशीभूतधनस्य जीवितहृतौ शश्वद्यतेरन्निजा भूभर्तुः क्रियते द्विषेव रभसाल्लोभेन किं नाप्रियम् ॥१९१॥
राजसंवाहनामायं नवायासो जनासुहृत् । तदेष लोभप्रभवः प्रजानाथ निवार्यताम् ॥१९२॥

अनादर और राजाओंके प्रभावकी हानिका कारण एकमात्र वह शंकरवर्मा ही था ॥ १७९ ॥ गुणीजनोंकी आर्थिक क्षति एवं राजाओंकी कीर्ति नष्ट होनेके मूल कारण इन दुष्ट दासीपुत्र कायस्थोंका प्रभाव उस मूर्ख राजाके ही समयसे बढा ॥ १८० ॥ उस राजाकी अनवधानतासे सारा कश्मीरराज्य कायस्थोंका उपभोग्य पदार्थ बन गया। जिससे 'राजा ही प्रजाको चूस रहा है' यह अपकीर्ति चारों ओर फैलने लगी ॥ १८१ ॥ इस तरह भीषण प्रजा-पीडन होते देखकर अतिशय दयालुहृदय राजपुत्र गोपालवर्माने एक दिन एकान्तमें अपने पितासे कहा— ॥ १८२ ॥ 'महाराज ! एक बार आपने मुझे एक वरदान देनेकी अभिलाषा प्रकट की था, किन्तु उस समय मैंने उसे धरोहरके रूपमें आपके ही पास रख दिया था। आप सत्यप्रतिज्ञ है। अतएव वह वरदान इस समय मैं आपसे माँग रहा हूँ ॥ १८३ ॥ इन कायस्थोंकी प्रेरणासे आपने जो अनेक कष्टप्रद कर लगा रक्खे हैं, उनसे पीडित होकर प्रजा अन्तिम साँस ले रही है ॥ १८४ ॥ इस प्रकार जनताको सतानेसे आपको इहलोक अथवा परलोक कहीं भी सुख-शान्ति न प्राप्त हो सकेगी ॥ १८५ ॥ भावी जन्म तथा परलोककी बाते अप्रत्यक्ष है, अतएव उनका कोई सुस्पष्ट विवरण नहीं दिया जा सकता। किन्तु यदि केवल ऐहलौकिक दृष्टिसे देखा जाय तो भी इस कुकृत्यसे अनिष्टके सिवाय कोई अच्छा परिणाम निकलने-की आशा नहीं है ॥ १८६ ॥ एक ओर तो व्याधि-दुर्भिक्ष आदि विपदाये प्रजाको त्रस्त किये हुए है, दूसरी तरफ राजाका अर्थलोभ उसे बुरी तरह दुःख दे रहा है ॥ १८७ ॥ जैसे फलकी सभावनासे हीन असमय खिले हुए पुष्पकी कोई शोभा नहीं होती, उसी प्रकार अर्थ लोलुप राजाकी सम्पदा किसीके लिए भी आनन्दप्रद नहीं होती ॥ १८८ ॥ दान तथा मधुर एवं सत्य भाषण राजाके लिए ये ही दोनो बाते संसारको प्रसन्न करनेके लिए अचूक उपाय हैं। किन्तु लोभ उन दोनोंका महत्त्व नष्ट कर देता है ॥ १८९ ॥ जैसे हेमन्त ऋतुमें उमड़नेवाले बादल दिनकी शोभा, प्रताप तथा भविष्यको नष्ट कर देते है। उसी प्रकार लोभ भी राजाके प्रताप, भविष्य एवं शोभाको ध्वस्त कर देता है ॥ १९० ॥ व्ययके भयसे साहसिक कार्य न आरम्भ करनेवाले राजाके दायाद प्रबल पड़कर यत्र-तत्र विद्रोह कर देते है, राज्यके कर्मचारी भी समुचित सेवा करनेपर उसके बदले किसी पारितोषिक-प्राप्तिकी आशा न रहनेके कारण कोई अच्छा काम नहीं करते और केवल धनसंचयमें संलग्न राजाके स्वजन भी द्रव्यके लोभसे उसके प्राणतक लेनेको उद्यत हो जाते है। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस लोभरूपी शत्रुसे राजाको क्या-क्या हानि नहीं उठानी पड़ती ? ॥ १९१ ॥ हे प्रजानाथ ! आपने अभी हालमे जो राजसंवाह कर लगाया है,

श्रुत्वेति राजपुत्रस्य सौजन्येनोज्ज्वलं वचः । स्मितधौताधरो राजा शनैर्वचनमब्रवीत् ॥१९३॥
तवाकृत्यविसंवादि वचः सौजन्यपेशलम् । स्मारयत्यद्य मामेतच्चित्तवृत्तिं पुरातनीम् ॥१९४॥
कुमारभावे पूर्वं मे तवेवार्द्रान्तरात्मनः । प्रजावत्सलता वत्स पर्याप्ता पर्यवर्धत ॥१९५॥
सोहं घर्मे महद्वर्म शीते दत्त्वाच्छमंशुकम् । पदातिरपपादत्रः पित्रा संचारितोऽभवम् ॥१९६॥
मृगव्यादौ हयैः सार्धमटन्तं कण्टकक्षतम् । अन्तर्बाष्पं मां विलोक्य तमसूयिपुरग्रगाः ॥१९७॥

स तानुवाच सामान्यो भूत्वाहं राज्यमाप्तवान् ।
काले काले सेवकानां जाने सेवापरिश्रमम् ॥१९८॥

ईदृग्दुःखमयं भुक्त्वा ज्ञास्यत्यन्यव्यथां ध्रुवम् । प्राप्तैश्वर्यो भवेन्मूढो गर्भेश्वरतयान्यथा ॥१९९॥
उपायैरीदृशैर्योऽहं कृतः पित्रा सुशिक्षितः । तेनापि प्राप्तराज्येन मयैवं पीडिताः प्रजाः ॥२००॥
गर्भवासव्यथां जातः शरीरी विस्मरेद्यथा । प्राप्तराज्यस्तथा राजा नियतं पूर्वचिन्तितम् ॥२०१॥
त्वयैव तस्मादेकोऽद्य वरो मह्यं प्रदीयताम् । प्राप्तराज्यः प्रजापीडां मा कार्षीस्त्वमतोऽधिकाम् ॥२०२॥
मास्त्वयमिति तेनोक्तः कृतान्योन्यस्मितैर्विटैः । राजाप्तैर्वीक्षितश्चासीत्कुमारो हीनताननः ॥२०३॥
त्यागभीरुतया तस्मिन्गुणिसङ्गपराङ्मुखे । आसेवन्तावरा वृत्तीः कवयो भल्लटादयः ॥२०४॥
निर्वेतनाः सुकवयो भारिको लवटस्त्वभूत् । प्रसादात्तस्य दीन्नारसहस्रद्वयवेतनः ॥२०५॥
कल्यपालकुले जन्म तत्तेनैव प्रमाणितम् । क्षीबोचितापभ्रंशोक्तेर्दैवी वाग्यस्य नाभवत् ॥२०६॥

वह प्रजाके लिए प्राणघातक सिद्ध हो रहा है। अतएव आपसे मेरी यही विनती है कि इस करको तुरन्त बन्द कर दें' ॥ १९२ ॥ राजपुत्रका वह सौजन्यसे भरा वचन सुनकर अपनी मुस्कानसे अधरोंको धवलित करता हुआ शंकरवर्मा धीरेसे बोला—॥ १९३ ॥ 'वत्स ! तुम्हारी सुन्दर आकृतिके अनुरूप और सौजन्यसे ओतप्रोत भाषण सुनकर मुझे अपनी पुरानी मनोवृत्तिका स्मरण आ रहा है ॥ १९४ ॥ तुम्हारी ही तरह बाल्यकालमें मेरा भी हृदय बहुत कोमल और दयार्द्र था। उन दिनों मेरे अन्तःकरणमें प्रजावत्सलता भी पर्याप्त बढ़ी हुई थी ॥ १९५ ॥ उस समय मेरे पिताजी मुझे ग्रीष्मकालमें मोटे तथा शीतकालमें महीन कपड़े पहनाते थे और बिना जूते पहनाये नंगेपाँव पैदल घुमाया करते थे ॥ १९६ ॥ शिकार आदिके समय घोड़ेके साथ दौड़ते-दौड़ते जब मेरे पैर काँटोंसे छलनी हो जाते थे और मैं रोने लगता था, तब मेरे साथी पिताजीसे चुगली खाते थे ॥१९७॥ तब उस समय पिताजी उन सेवकोंसे कहते थे कि 'मैं सामान्य स्थितिका अनुभव करके राजा हुआ हूँ। इस कारण मुझे सेवकोंकी सेवाके परिश्रमका भलीभाँति पता है ॥ १९८ ॥ इसी प्रकारके क्लेशोंका अनुभव करके यह भी औरोंके दुःख समझ सकेगा, नहीं तो गर्भसे ही राजा होनेके कारण ऐश्वर्य पाकर उन्मत्त हो जायगा ॥ १९९ ॥ मेरे पिताजीने मुझे इस प्रकारके उपायों द्वारा कठोर शिक्षा दी थी, फिर भी राज्य पानेके बाद मैंने इस तरह प्रजाको कष्ट दिये हैं ॥ २०० ॥ जैसे प्राणी जन्म लेते ही गर्भवासकी व्यथाको भूल जाता है, उसी प्रकार राज्य पाते ही राजा अपनी प्राचीन धारणाओंको भूल जाता है ॥ २०१ ॥ अतएव हे पुत्र ! आज तुम्हीं मुझे एक वरदान दो, वह यह कि जब राज्य तुम्हारे हाथमें जाय, तब तुम इससे अधिक प्रजाको न सताना, जितना कि मैंने सताया है'। राजाके इन तिरस्कार भरे वचनोंको सुनकर युवराजने लज्जासे मस्तक झुका लिया। राजाके आप्तजन यह दृश्य देख रहे थे और उसके खुशामदी मुसाहब ये बातें सुनकर मुस्करा रहे थे ॥२०२॥२०३॥ राजा शंकरवर्माने खर्चके डरसे गुणी जनोंका समागम त्याग दिया था। जिससे भल्लट आदि महाकवियोंको किसी अन्य छोटे-मोटे धन्धेसे अपनी जीविका चलानी पड़ती थी ॥ २०४ ॥ उस राजाके राज्यमें अच्छे-अच्छे कवियोंको कुछ भी वेतन नहीं मिलता था, किन्तु बोझा ढोनेवाले लवटको राजाकी कृपासे दो हजार दीनार प्रतिदिनके हिसाबसे वेतन दिया जाता था ॥ २०५ ॥ वह राजा देववाणी (संस्कृत) नहीं बोल पाता था, किन्तु शराबियोंके साथ अपभ्रंश भाषामें बात कर लेता था। ऐसा करके वह अपनेको कलवारके वंशज होनेका प्रमाण उपस्थित कर देता था

वेष्टितश्मश्रुरुष्णीपो घ्राणस्याग्रे प्रदेशिनी । ध्यानैकाग्रा दृगित्यासीत्सुखराजस्य मन्त्रिणः ॥२०७॥
योऽयमार्यो चितोवेपो दुर्नयासेविनः प्रभोः । छन्दानुवृत्त्या स प्राप नटस्येव विडम्बनाम् ॥ युग्मम् ॥२०८॥
सोऽनुगैः सह निर्द्रोहं जघान द्रोहशङ्कया । शूरं दार्वाभिसारेशं शर्वर्यां नरवाहनम् ॥२०९॥
प्रजाभिशापे पतिते नृपस्योन्मार्गवर्तिनः । त्रिंशद्विंशाः सुतास्तस्य व्यपद्यन्तामयं विना ॥२१०॥
वंशः श्रीर्जीवितं दारा नामापि पृथिवीभुजाम् । क्षणादेव क्षयं याति प्रजाविप्रियकारिणाम् ॥२११॥
इत्युक्तं वक्ष्यते चाग्रे व्यक्तमेतत्तु चिन्त्यताम् । प्रनष्टं तस्य नामापि यथा क्रूरेण कर्मणा ॥२१२॥
नाम्ना पत्तनमित्येव प्रख्यातं स्वपुरं कृतम् । कस्यान्यस्याभिधाध्वंसि यथा शंकरवर्मणः ॥२१३॥
स्वस्रीयः सुखराजस्य तेन द्वाराधिपः कृतः । वीरानकाभिधे स्थाने प्रमादादासदद्वधम् ॥२१४॥
तत्कोपात्स स्वयं राजा दत्तयात्रो मदोर्जितः । वीरानकं समुन्मूल्य प्रविवेशोत्तरापथम् ॥२१५॥
सिन्धुकूलाश्रयान्देशाञ्जित्वा भूरीन्भयातुरैः । कृतानतिर्महीपालैः प्रत्यावृत्तोऽभवत्ततः ॥२१६॥
उरशां विशतस्तस्य वास्तव्यैरौरशैः समम् । निकेतहेतोः सैन्यानामकस्मादुदभूत्कलिः ॥२१७॥
गिरिशृङ्गाधिरूढेन श्वपाकेन निपातितः । वेगवाही शरस्तस्य प्रमादादविशद्गलम् ॥२१८॥
मुमूर्षुरासान्कटकं संरक्ष्य नयतेति सः । उक्त्वा कर्णीरथारूढः स्थानात्तस्माद्विनिर्ययौ ॥२१९॥
हीनदर्शनसामर्थ्यः परिज्ञाय शनैर्गिरा । क्रन्दन्त्या वपुरालिङ्ग्य स्थितायाः क्षामभाषितः॥२२०॥
पुत्रं गोपालवर्माख्यं न्यासीकृत्य च रक्षितुम् । शिशुदेश्यं महादेव्याः सुगन्धाया अबान्धवम् ॥२२१॥

फाल्गुने कृष्णसप्तम्यां वत्सरे सप्तसप्ततौ ।
उत्खायमानविशिखो मार्ग एव व्यपद्यत ॥ तिलकम् ॥२२२॥

॥ २०६ ॥ दाढी-मूछपर वस्त्र बाँधे, नासिकापर उँगली रक्खे और ध्यानपूर्वक दृष्टि एकाग्र किये आर्यवेषधारी उसका मंत्री सुखराज राजाके मनका अनुसरण करता हुआ एक अभिनेता जैसा दीखता था ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ राजा शङ्करवर्माने विद्रोहकी आशंकावश दार्वाभिसारके सीधे-सादे राजा और उसके सेवकोंको रात्रिके समय धोखा देकर मार डाला ॥ २०९ ॥ गरीब प्रजाके अभिशापसे उस उच्छृंखल राजाके बीस-तीस लड़के विना किसी बीमारीके एकाएक मर गये ॥ २१० ॥ 'प्रजाको सतानेवाले राजाका कुल, सम्पत्ति, जीवन, पत्नी तथा जीवन क्षणभरमें नष्ट हो जाता है' ॥ २११ ॥ यह प्रवाद प्राचीनकालसे प्रचलित है और वह सच्चा प्रमाणित होता आया है। सो निम्नलिखित कुकृत्योंसे उस दुष्ट राजा शङ्करवर्माका भी नाम संसारसे उठ गया ॥ २१२ ॥ बात यह हुई कि उसने अपने नामसे जो शङ्करपुर नगर बसाया था, उसका नाम लुप्त हो गया और उसको लोग पट्टण कहने लगे। शङ्करवर्माके सिवाय भला इस तरह और किस राजाका नाम मिटा है ? ॥ २१३ ॥ उसने अपने मंत्री सुखराजके भांजेको द्वारपाल बनाया था। वह अपने ही प्रमादसे वीरानक नामके स्थानपर मार डाला गया ॥२१४॥ इस समाचारसे क्रुद्ध होकर उस मदोद्धत राजाने वीरानकपर आक्रमण करके उस स्थानको समूल नष्टकर दिया और वहाँसे सीधे उत्तरापथकी ओर चल पड़ा ॥२१५॥ सिन्धुतटवर्ती अनेक प्रदेशोंके राजाओंको उसने जीत लिया और वहाँके राजे भयभीत होकर उसके शरणागत हो गये। इसके बाद वह वहाँसे लौट पड़ा ॥ २१६ ॥ रास्तेके उरशा ग्राममें उसके सैनिकोंके पड़ाव डालनेकी समस्याको लेकर ग्रामवासियोंसे अकस्मात् मार-पीट हो गयी ॥ २१७ ॥ उस समय राजा शङ्करवर्मा एक पर्वतशिखरपर खड़ा था। तभी किसी चाण्डालके द्वारा छोड़ा गया एक बाण आकर उसकी गर्दनमें घुस गया ॥ २१८ ॥ उसके आघातसे राजाकी मरणासन्न दशा हो गयी। तब वह अपने सेनापतियोंको रक्षाका भार सौंप तथा पालकीमें बैठकर वहाँसे चल पड़ा ॥ २१९ ॥ उस समय उसको कुछ भी नहीं दिखायी देता था। रोती हुई रानी सुगन्धा उसे सम्हालकर बैठी हुई थी और उसकी आवाज मन्द पड़ गयी थी ॥ २२० ॥ उस राजाने अपने अनाथ पुत्र गोपालवर्माकी रक्षाके लिए धरोहररूपमें रानी सुगन्धाको सौंपा ॥ २२१ ॥ इस तरह लौकिक संवत् ३९७७ की फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको गर्दनसे बाण निकालते समय

सुखराजादयः सैन्यं रक्षन्तः परभूमिषु । वृत्तान्तैर्गोपयन्तस्तं यान्त एवाभवन्पथि ॥२२३॥
तं यन्त्रसूत्रैस्ते मूर्ध्नो नम्रतोन्नम्रतावहैः । प्रतिप्रणामं प्राप्तानां सामन्तानामकारयन् ॥२२४॥
षड्भिर्दिनैर्निजे स्थाने प्राप्ते बोल्यासकाभिधे । चक्रिरे गतसंत्रासास्ततस्तस्यान्तसत्क्रियाम् ॥२२५॥
तिस्रः सुरेन्द्रवत्याद्या राज्यो राजानमन्वयुः । वेलावित्तः कृतज्ञश्च जयसिंहाह्वयः कृती ॥२२६॥
द्वौ लाडो वज्रसारश्च तं भृत्यावनुजग्मतुः । इति षड्भिश्चितारूढैः सहसाक्रियताग्निसात् ॥२२७॥
ततो जुगोप गोपालवर्मा धार्मिकतोज्ज्वलः । सुगन्धया पाल्यमानः सत्यसंधो वसुंधराम् ॥२२८॥
मध्ये ललितकादीनां दुर्वृत्तानां वसन्नपि ।
अनतिक्रान्तबाल्योऽपि दुःसंस्कारान्न सोऽग्रहीत् ॥२२९॥
भूपालजननी भोगैर्वैधव्येऽधिकमुन्मदा । सा प्रभाकरदेवाख्यमचीकमत मन्त्रिणम् ॥२३०॥
तया निर्भरसंभोगप्रीतया स व्यधीयत । सौभाग्यदर्पशृङ्गारमौलिचक्रत्रयाङ्कितः ॥२३१॥
कोशाध्यक्षेण रागिण्यास्तस्या लुण्ठितसंपदा । उदभाण्डपुरे तेन शाहिराज्यं व्यजीयत ॥२३२॥
आज्ञातिक्रमिणः शाहेः कृत्वा कमलुकाभिधाम् । तोरमाणाय स प्रादाद्राज्यं लल्लियसूनवे ॥२३३॥
प्रत्यावृत्तोऽथ नगरं विवेश विजयोर्जितः । शौर्यशृङ्गारवसतौ साभिमानः स्वविग्रहे ॥२३४॥
स राजजननीजारः साहंकारो जयार्जनात् । मानक्षतिमधिक्षेपैर्वीराणां व्यधितान्वहम् ॥२३५॥
क्षुद्रेण कामिना वेश्यावेश्मनीव नृपास्पदे । तेनावृते संप्रवेशो नाभूदन्यस्य कस्यचित् ॥२३६॥
शनैर्विज्ञातवार्तस्य धनमानापहारकृत् । सोऽभूदक्षिगतोऽत्यर्थं राज्ञो गोपालवर्मणः ॥२३७॥

मार्गमें ही राजा शङ्करवर्माका देहान्त हो गया ॥ २२२ ॥ तब उनके सुखराज आदि मंत्रियोंने उस विदेशमें अपनी सेना सम्हालकर आगे चलनेका प्रबन्ध किया, किन्तु मार्गमें राजाके मरणका वृत्तान्त गुप्त ही रक्खा ॥ २२३ ॥ राह्में जगह्-जगह् राजाको प्रणाम करनेके लिए बहुतेरे माण्डलिक राजे आते थे, उनको राजाका निर्जीव मस्तक सूत्रमें बाँध कभी-कभी उनके प्रणामका उत्तर देनेके लिए झुका-उठा दिया जाता था ॥ २२४ ॥ इस तरह् निरन्तर छ दिन तक चलनेके बाद वाराहमूलके पास बोल्यासक नामक अपने राज्यकी सीमापर पहुँचकर निःशङ्कभावसे उन्होंने उसका दाहसंस्कार किया ॥ २२५ ॥ उस समय सुरेन्द्रवती आदि तीन रानियाँ उसके साथ सती हो गयीं और कृतज्ञ वेलावित्त जयसिंह् भी चितामें कूदकर मर गया ॥ २२६ ॥ उसके साथ ही राजसेवक लाड तथा वज्रसारने भी प्राण त्याग दिया। इस प्रकार छ प्राणियोंने चितापर चढकर अपने-अपने शरीरको जला डाला ॥ २२७ ॥ तदनन्तर सुगन्धादेवी द्वारा संरक्षित परम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ गोपालवर्मा शासनकार्यका संचालन करने लगा ॥ २२८ ॥ उस बाल्यकालमें ललित आदि दुश्चरित्र राजसेवकोंके बीच रहते हुए भी उस नये राजा गोपालवर्माने उनके दूषित संस्कारोंको नहीं अपनाया ॥ २२९ ॥ किन्तु राजमाता सुगन्धा उस वैधव्यकी स्थितिमें भी उन्मत्त होकर प्रभाकरदेव नामक मंत्रीसे फँस गयी ॥ २३० ॥ यथेच्छ संभोगसे प्रसन्न होकर रानी सुगन्धाने उस मंत्रीको अपना प्रेम, सौभाग्य तथा अत्यधिक सम्मानस्वरूप तीन मुकुटचन्द्रकोंसे अलंकृत कर दिया ॥ २३१ ॥ अतएव कोशाध्यक्ष प्रभाकरवर्माने अनुरागवती राजमाताकी सम्पदा लूटकर उद्भाण्डपुरके शाहिराज्यको जीत लिया ॥ २३२ ॥ राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले शाहीसे राज्य लेकर उसने लल्लियके पुत्र तोरमाणको दे डाला और उसका नाम बदलकर कमलुक कर दिया ॥ २३३ ॥ इस तरह शौर्य तथा शृंगारके निवासस्वरूप अपने शरीरपर अभिमान करता हुआ मंत्री प्रभाकरवर्मा विजयोर्जित होकर राजधानी लौटा ॥२३४॥ उस विजयप्राप्तिसे उन्मत्त एवं राजमाताके उपपति प्रभाकरवर्माने नित्य तिरस्कारभरे वचनोंसे बडे अहंकारके साथ वीरोंको अपमानित करना आरम्भ कर दिया ॥ २३५ ॥ उस क्षुद्रके द्वारा आक्रान्त राजमन्दिर वेश्यालय बन गया। उसमें अब किसी भी अन्य पुरुषका प्रवेश नहीं हो पाता था ॥ २३६ ॥ धीरे-धीरे यह बात राजा गोपालवर्माको भी मालूम हो गयी। तभीसे लोगोंके धन तथा मानका अपहरण करनेवाला प्रभाकरवर्मा

विद्यते यन्न गञ्जेऽस्मिंस्तत्सर्वं शाहिविग्रहे । गतमित्यब्रवीद्भूपं स कोशगणनोद्यतम् ॥२३८॥
अथ गञ्जाधिपो राजभीतः खाखोंदवेदिनम् । रामदेवाह्वयं बन्धुमभिचारमकारयत् ॥२३९॥
तयाऽभिचारक्रियया भुक्तभूर्वत्सरद्वयम् । गोपालवर्मनृपतिर्जातदाहो व्यपद्यत ॥२४०॥
व्यक्तीभूतकुकर्मा स राजदण्डभयाकुलः । रामदेवोऽग्रवीत्पापः स्वयमेव स्वविग्रहम् ॥२४१॥
रथ्यागृहीतो गोपालवर्मभ्राताऽथ संकटः । बभूव प्राप्तराज्यः स दशभिर्दिवसैर्व्यसुः ॥२४२॥
अथ वंशक्षये वृत्ते राज्ञः शंकरवर्मणः । प्रजाप्रार्थनया राज्यं सुगन्धा विदधे स्वयम् ॥२४३॥
गोपालपुरगोपालपटगोपालकेशवात् । सा पुरं च स्वनामाङ्कं विदधे धर्मवृद्धये ॥२४४॥
गोपालवर्मणो जाया नन्दाऽनिन्द्यान्वयोद्भवा । शिशुरप्यभवन्नन्दामठकेशवधारिणी ॥२४५॥
अन्तर्वत्न्याः क्षणे तस्मिन्पत्न्या गोपालवर्मणः । जयलक्ष्म्यां बबन्धास्थां श्वश्रूः संतानकांक्षिणी ॥२४६॥
तस्यां विपन्नापत्यायां प्रसवान्तेऽतिदुःखिता । साभूदन्वयिने राज्यं कस्मैचिद्दातुमुद्यता ॥२४७॥
तस्मिन्काले महीपालनिग्रहानुग्रहक्षमम् । तत्र तन्त्रिपदातीनां कृतसंहत्यभूत्कुलम् ॥२४८॥
ततः समाश्रितैकाङ्गा स्वयं संवत्सरद्वयम् । सुगन्धा विदधे राज्यं सा मित्रत्वेन तन्त्रिणाम् ॥२४९॥
योग्याय दातुं साम्राज्यं कस्मैचित्सा किलैकदा । मन्त्राय मन्त्रिसामन्तांस्तन्त्र्यैकाङ्गानढौकयत् ॥२५०॥
अवन्तिवर्मवंशान्ते नप्तारं शूरवर्मणः । गग्गायाः स्वकुटुम्बिन्याः संजातं सुखवर्मणा ॥२५१॥
अनुव्रतो मे संबन्धिस्नेहादेवं भवेदिति । राज्ये निर्जितवर्माख्यं कर्तुं तस्या मनोऽभवत् ॥ युग्मम् ॥२५२॥
तया तदुक्तं विषयव्यसनित्वेन जागरात् । रात्रौ दिवाशयतया योऽप्यनुत्थानदूषितः ॥२५३॥

उसकी निगाहपर चढ गया ॥ २३७ ॥ एकाएक राजाने कोशकी जाँच की और उसमें जो रकम नहीं मिली, उसका खर्च कोशाध्यक्षने शाहिके युद्धमें दिखा दिया ॥ २३८ ॥ तदनन्तर उस भयभीत कोषाध्यक्षने खाखोंदवासी रामदेव नामके अपने बान्धव द्वारा राजापर अभिचार (मारण) क्रिया करायी ॥ २३९ ॥ उस क्रियाके परिणामस्वरूप वह अल्पवयस्क राजा गोपालवर्मा दाहरोगसे पीड़ित होकर मर गया । वह बेचारा केवल दो ही वर्ष राज्य कर सका था ॥ २४० ॥ उधर रामदेवने भी अपने कुकर्मका पता लगते ही राजदण्ड मिलनेके भयसे आत्महत्या कर ली ॥ २४१ ॥ तदनन्तर गोपालवर्माके भाई संकटवर्माको रास्तेसे पकड़कर गद्दीपर बैठाया गया, किन्तु वह केवल दस दिन राज्य करके मर गया ॥ २४२ ॥ इस प्रकार राजा शंकरवर्माके वंशका अन्त हो जानेपर प्रजाजनोंकी प्रार्थना स्वीकार करके रानी सुगन्धा स्वयं राज्यकार्यका संचालन करने लगी ॥ २४३ ॥ उसने धर्मकी बढ़तीके लिए गोपालपुर, गोपालमठ तथा गोपालकेशवमन्दिरका निर्माण कराके अपने नामसे सुगन्धापुर नामका नगर बसाया ॥ २४४ ॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न गोपालवर्माकी पत्नी नन्दादेवीने उस बाल्यावस्थामें ही नन्दाकेशव तथा नन्दामठकी प्रतिष्ठा की ॥ २४५ ॥ उस समय गोपालवर्माकी दूसरी स्त्री गर्भवती थी । यह देखकर उसकी सास सुगन्धा देवीको कुछ आशा बँधी थी, किन्तु प्रसव होनेके बाद ही सन्ततिके मर जानेसे उसे अपार दुःख हुआ । अब वह अपने वंशके किसी भी पुरुषको राज्य देनेके लिए सन्नद्ध हो गयी ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ उन दिनों राजाको भी अपने वशमें रखने तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ तंत्रियों तथा पदातियोंका ऐक्यबद्ध एक बहुत बड़ा मण्डल था ॥ २४८ ॥ अतएव सुगन्धादेवीने उस मण्डलके साथ मैत्री करके उसकी सहायतासे दो वर्षतक राज्यकार्य चलाया ॥ २४९ ॥ तदनन्तर किसी योग्य व्यक्तिको साम्राज्य देनेकी अभिलाषासे उसने एक दिन अपने सभी मंत्रियों, सामन्तों, तंत्रियों एवं एकांगोंकी एक सभा बुलायी ॥ २५० ॥ उस समय अवन्तिवर्माका वंश नष्ट हो चुका था । अतएव अपने कुटुम्बी शूरवर्माके नाती एवं सुखवर्माकी पत्नी गग्गादेवीके पुत्र निर्जितवर्माको सजातीय होनेके कारण सुगन्धादेवीने राज्याधिकारी बनानेका विचार व्यक्त किया । उसे उससे यह भी आशा थी कि वह रानीके इच्छानुसार चलेगा ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ उसके वक्तव्यका कुछ मन्त्रियोंने यह कहकर विरोध किया कि 'वह बड़ा विषयी होनेके

नाम पङ्गुरिति प्राप राज्ये का तस्य योग्यता । इत्युदीर्यभिवन्मन्त्रो यावत्केचन मन्त्रिणः ॥२५४॥
संहतैर्भेदनिर्यातैस्तावन्निर्जितवर्मजः । दशवर्षः कृतो राजा पार्थस्तन्त्रिपदातिभिः ॥ तिलकम् ॥२५५॥
ते गङ्गाधिपवाक्यानां सुगन्धोत्पाटनात्कृतम् । प्रायश्चित्तममन्यन्त मानक्षतिविधायिनाम् ॥२५६॥
सा राजधान्याः साम्राज्यपरिभ्रष्टा विनिर्ययौ । कृताधिकारा हारस्य पतितैर्बाष्पबिन्दुभिः ॥२५७॥
शरणं प्रत्यभाद्भृत्यो यो यस्तस्याः क्रमागतः । तं तमैक्षिष्ट निर्यान्ती विपक्षैः सह संगतम् ॥२५८॥
वर्षे एकान्ननवते संभूयैकाङ्गसैनिकाः । गत्वा सुगन्धामानिन्युः पुनर्हुष्कपुरस्थिताम् ॥२५९॥
तामापतन्तीमाकर्ण्य पार्थानुग्रहका मदात् । चैत्रान्ते तन्त्रिणः सर्वे निर्ययुः समरोन्मुखाः ॥२६०॥
ते जित्वा नवते वर्षे वैशाखे भिन्नसंहतीन् । एकाङ्गान्व्यूढसंघातान्ववन्धुस्तां पलायिताम् ॥२६१॥
निष्पालकविहारान्तस्तैर्बद्धा सा व्यपद्यत । अनित्यपतनोच्छ्राया विचित्रा भाग्यवृत्तयः ॥२६२॥
अस्मिन्धनजनक्षैण्यनिमित्तं मण्डलोत्तमे । सर्वतोदिक्प्रवृत्तस्थावथानर्थपरंपरा ॥२६३॥
जनकः पालको भूत्वा पङ्गुर्बालस्य भूपतेः । सामात्योऽपीडयल्लोकमुत्कोचग्रहतत्परः ॥२६४॥
भूभुजो ग्रामकायस्था इवान्योन्यविपाटनम् । दत्ताधिकाधिकोत्कोचा विदधुस्तन्त्रिसेवया ॥२६५॥
यद्राजैः कान्यकुब्जाद्या विलब्धास्तत्र मण्डले । तन्त्रिणां हुण्डिकादानाद्भुजां जीविकाऽभवत् ॥२६६॥
विष्णुः पुराणाधिष्ठाने मेरुवर्धनमन्त्रिणा । श्रीमेरुवर्धनस्वामिनामा येन व्यधीयत ॥२६७॥
तदात्मजाः क्षणे तस्मिन्गहनद्रोहचाक्रिकाः । चक्रुर्निगूढराज्येच्छाः प्रजायासैर्धनार्जनम् ॥ युग्मम् ॥२६८॥
सार्धं सुगन्धादित्येन गूढं शंकरवर्धनः । तेषां ज्येष्ठो वद्धसख्यो मुमोप नृपमन्दिरम् ॥२६९॥

कारण रातभर जागता रहता है और दिनभर सोता है। दूसरे वह पंगु भी है। ऐसी स्थितिमें वह राज्यकार्य कैसे कर सकता है ?' वे मंत्री ऐसा विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि इतनेमें तंत्रियों तथा पदातियोंने मिलकर निर्जितवर्माके दशवर्षीय पुत्र पार्थको राजगद्दीपर बैठा दिया ॥२५३–२५५॥ इस तरहकी कार्यवाहीसे सुगन्धादेवीको राज्यच्युत करके उन लोगोंने कोषाध्यक्ष प्रभाकरवर्मा द्वारा कहे गये कटु वचनोंका वदला चुकालिया ॥ २५६ ॥ तव साम्राज्यसे भ्रष्ट सुगन्धा हृदयपर आँसुओंकी बूँदोंका हार पहनकर राजधानीसे वाहर चली गयी ॥ २५७ ॥ उस समय उसने अपने पुराने पक्षपाती सेवकोंको भी विपक्षियोंके गुटमें सम्मिलत देखा ॥ २५८ ॥ तदनन्तर लौकिक वर्ष ३९८९ मे एकांगके सैनिक एकत्र होकर हुष्कपुर गये और सुगन्धादेवीको फिर राजधानीमे ले आये ॥ २५९ ॥ उस समय चैत्रमास समाप्तोन्मुख था। सो पार्थके पक्षपाती तंत्रियोंने सुगन्धादेवीके पुनरागमनका वृत्तान्त सुनकर राज्यपर चढाई कर दी ॥ २६० ॥ अपनी पारस्परिक एकताको सुरक्षित रखते हुए उन तंत्रियोंने वहुत सुन्दर ढंगसे युद्धका संचालन किया। जिससे उन्होंने आपसी फूटके कारण छितराये हुए एकांगोंको पराजित करके सुगन्धा देवीको कैद कर लिया। उस समय लौकिक संवत् ३९९० का वैशाख मास था ॥ २६१ ॥ उनके द्वारा कैद की हुई सुगन्धादेवीका निष्पालकविहारमें देहान्त हो गया। भाग्यका कार्यकलाप वड़ा चिचित्र होता है। इसमें उत्थान और पतनकी कार्यवाही सदा होती ही रहती है ॥ २६२ ॥ वस, उसके वाद ही इस सुन्दर देशमें धन-जनको क्षीण करनेवाले अनर्थोंकी परम्परा आरम्भ हो गयी ॥२६३॥ उस नन्हेसे राजा पार्थका पिता पंगु निर्जितवर्मा उसका संरक्षक वनकर मन्त्रियोंसे मिल गया और घूस ले-लेकर प्रजाको वुरी तरह सताने लगा ॥ २६४ ॥ अव ग्रामकायस्थोंकी तरह राज्यके अधिकारी भी तंत्रियोंको पुष्कल घूस दे-देकर लोगोंको परस्पर लडाने लगे ॥ २६५ ॥ जिस देशके वीर राजाओंने कान्यकुब्ज आदि देशोंपर विजय प्राप्त की थी। उसी देशके राजे अव तंत्रियोंसे हुण्डी ले-लेकर अपना उदरपोषण करने लगे ॥ २६६ ॥ मेरुवर्धन नामके मन्त्रीने पुराणाधिष्ठानमें मेरुवर्धन स्वामी नामक विष्णुभगवान्की प्रतिष्ठा की ॥ २६७ ॥ उसके पुत्रोंने प्रजाको सता-सताकर खूव धन कमाया था। अतएव उनके मनमें राज्यप्राप्तिका लोभ प्रच्छन्नरूपसे विद्यमान था और वे गुप्तरूपसे भयंकर षड्यन्त्र रच रहे थे ॥ २६८ ॥ उनमें सवसे वड़े भाई शंकरवर्धनने सुगन्धादित्यके साथ गुप्त

क्षीणप्रज्ञे क्षणे तस्मिन्क्षारपात इव क्षते । उदीपः प्लाविताशेषशरच्छालिरजृम्भत ॥२७०॥
खार्यां सहस्रक्रेयायां दुर्लभे भोजनेऽभवत् । वर्षे त्रिनवते घोरे दुर्भिक्षेण जनक्षयः ॥२७१॥
शवैश्चिरप्रविष्टाम्बुमांसैकोच्छूनविग्रहैः । वितस्ता सर्वतश्छन्ना दुर्लक्ष्यसलिलाऽभवत् ॥२७२॥
विश्वतोऽस्थिमये जाते नैविड्यात्क्षितिमण्डले । सर्वभूतभयादायि श्मशानैक्यमजायत ॥२७३॥
महार्घधान्यसंभारविक्रयप्राप्तसंपदः । मन्त्रिणः क्ष्मापतेः प्रापुस्तान्त्रिणश्च धनाढ्यताम् ॥२७४॥
आधेयः क्ष्माभुजः सोऽभून्मन्त्री यस्तादृशीः प्रजाः । विक्रीय ग्राहयन्नासीत्तन्त्रिणां हुण्डिकाधनम् ॥२७५॥
अटव्यां वृष्टिसंपाते वातवर्षैरुपद्रुतम् । बहिः सर्वं जनं पश्यन्कश्चित्प्राप्तोष्णमन्दिरः ॥२७६॥
यथा तथा जनं दुःस्थं वीक्ष्य कापुरुषश्चिरम् । राजधानीस्थितः पङ्गुः स्वसुखं बह्वमन्यत ॥ युग्मम् ॥२७७॥
तुञ्जीनचन्द्रापीडादिप्रजापालप्रियाः प्रजाः । एवं तस्मिन्क्षणे नीताः संक्षयं राजराक्षसैः ॥२७८॥
प्रापुश्चिरमवस्थानं पार्थिवा न तदा क्वचित् । धारासंपातसंभूता बुद्बुदा इव दुर्दिने ॥२७९॥
पार्थः पितरमुत्पाट्य कदाचित्प्राभवत्स्वयम् । कदाचित्स तमुत्पाट्य तन्त्रिचक्रिकयाऽप्यभूत् ॥२८०॥
अप्रीणयत्पङ्गुनृपवडवामण्डलं युवा । सुगन्धादित्यबीजाश्वो व्यवायविधिसेवया ॥२८१॥
राज्ञ्या वप्पटदेव्याः स निर्दयैः सुरतोत्सवैः । खण्डयामास कण्डूतिं साप्यस्यार्थार्पणां घनैः ॥२८२॥
भगिनीभगसौभाग्यबद्धराज्याः स्वयं ददुः । यां पङ्गवे मनोज्ञाङ्गीं मेरुवर्धनसूनवः ॥२८३॥
सुगन्धादित्यमौत्सुक्यात्साऽपि देवी मृगावती । स्वयं संबुभुजेभ्यऽर्थ्य कान्ता कामितकामिनी ॥२८४॥

से मैत्री कर ली थी और राजभवनसे यथेष्ट धन लूटनेका क्रम अबाध रीतिसे चल रहा था ॥ २६९ ॥ इस तरहके भीषण अत्याचारोंको सहती हुई प्रजाके घावपर नमकके समान वर्षा ऋतुमें बड़े जोरोंकी बाढ आयी, जिससे अगहनी धानकी पूरी फसल ही वह गयी ॥ २७० ॥ अतएव लौकिक संवत् ३९९२ में बड़ा भयानक अकाल पड़ा और एक खारी चावल एक हजार दीनारमें बिकने लगा । इसलिए बहुसंख्यक लोग भूखसे मरने लगे ॥ २७१ ॥ उस समय सड़ी और फूली हुई लाशोंसे वितस्ता नदीका प्रवाह इस तरह रुक गया कि उसमें पानीका दर्शन भी दुर्लभ था ॥ २७२ ॥ इस प्रकार चारों ओर अस्थिकंकाल बिखरे रहनेके कारण सारा कश्मीर देश श्मशानके समान भयंकर दिखायी देने लगा ॥ २७३ ॥ उस समय मन्त्रियों और तंत्रियोंने अपने पासका बचा अन्न बहुत अधिक मँहगे भावपर बेचकर खूब धन कमाया और वे धनमदसे उन्मत्त हो गये ॥ २७४ ॥ उन दिनों तंत्रियोंके नामसे दी हुई हुण्डियोंको उस विपन्नावस्थामें पड़ी प्रजाको देकर जो व्यक्ति ज्यादासे ज्यादा धन वसूल करता था, वही राज्यके मन्त्रिपदपर रह सकता था ॥ २७५ ॥ भीषण वनमें अकस्मात् आँधी-पानी तथा ओलोंसे त्रस्त लोगोंको देखकर जैसे गरम घरमें बैठा हुआ मनुष्य स्वयंको सुखी समझकर अपने भाग्यकी सराहना करता है ॥ २७६ ॥ उसी तरह समस्त प्रजाको अकालके दुःखसे हाहाकार करते देख करके भी वह कायर तथा पंगु राजा अपने सुखकी प्रशंसा कर रहा था ॥ २७७ ॥ महाराज तुंजीन और चन्द्रापीड आदि प्रजारक्षक शासकोंकी प्रिय प्रजाको उस समयके राजारूपी राक्षसोंने नष्ट कर दिया ॥ २७८ ॥ उस समयके राजे बरसातके जलमें उत्पन्न होनेवाले बुलबुलोंके समान क्षणभंगुर हुआ करते थे ॥ २७९ ॥ किसी समय पार्थ अपने बापको राज्यच्युत करके तंत्रियोंकी कृपासे राजा बनता था और कभी पंगु उन तंत्रियोंकी कृपा प्राप्त करके राजगद्दीपर जा बैठता था ॥ २८० ॥ उन दिनों युवक सुगन्धादित्यरूपी बीजाश्व (घोड़ियोंको गर्भाधान करानेवाला साँड़ घोड़ा) राजा पंगुकी पत्नीरूपिणी घोड़ियोंके साथ संभोग करके उन्हें प्रसन्न रखता था ॥ २८१ ॥ वप्पट देवी नामकी राजरानीकी रतिसम्बन्धी खुजलीको सुगन्धादित्य निर्दय संभोग करके मिटाया करता था । इसके बदले वह उसकी धनसम्बन्धी आकांक्षायें पूर्ण किया करती थी ॥ २८२ ॥ अपनी बहिनके सौभाग्यसे राज्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके निमित्त मेरुवर्धनके जिन पुत्रोंने मृगावतीको राजा पंगुकी स्त्री बनाया था ॥ २८३ ॥ वह भी बड़ी उत्सुकताके साथ स्वयं प्रार्थना करके सुगन्धादित्यकी मनभावनी कामिनी बनकर उसके साथ भरपूर

पर्यायेणाभवद्भृत्यः स तयोर्भोगवृद्धये । दरिद्रयोपितोरेकं भुक्तिपात्रमिवान्वहम् ॥२८५॥
पुत्रयो राज्यलाभाय स्पर्धयाऽऽभ्यां स्वमन्त्रिणे । दत्ता निधुवनश्रद्धा धनदानैः सदक्षिणा ॥२८६॥
अथ पार्थं समुत्पाद्य तत्पिता पङ्गुराश्रितः । तन्त्रिभिः सप्तनवते वर्षे पौपेभिपेचितः ॥२८७॥
माघेऽष्टानवते वर्षे सोऽभिपिच्य शिशुं सुतम् । चक्रवर्माभिधं राज्ये क्षीणपुण्यो व्यपद्यत ॥२८८॥
पैतृकं वाञ्छतो राज्यं पार्थस्यानुचरा व्यधुः । एकाङ्गैः सह संग्रामं तत्र तन्त्रिपदातयः ॥२८९॥
मातुर्वप्पटदेव्याः स कंचित्कालं शिशुर्नृपः । मातामह्याः क्षिल्लिकायाः पाल्यस्त्वासीत्समा दश ॥२९०॥
वाल्याद्व्यक्तदौःशील्ये तस्मिंस्तत्पालनं तयोः । निर्दोषमासीदण्डस्थफणिलालनसंनिभम् ॥२९१॥
जातः पङ्गोर्मृगावत्यां नवमेऽब्देथ तन्त्रिभिः । चक्रवर्माणमुत्पाट्य शूरवर्मा नृपः कृतः ॥२९२॥
निःस्नेहा मातुलामात्याः प्रययुः स्वार्थतत्पराः । अदत्त्वा तन्त्रिणां देयं तस्योत्पाटनहेतुताम् ॥२९३॥
अदुर्वृत्तोऽपि स क्ष्माभृद्विना भूरिधनार्पणम् । गुणवानिव वेश्यानां तन्त्रिणां नाभवत्प्रियः ॥२९४॥
वर्षे गते तमुत्पाद्य दृष्टोत्पत्तितया नृपम् । वह्वर्थदं पुनः पार्थं व्यधुतन्त्रिपदातयः ॥२९५॥
अभूत्साम्ववती वेश्या साम्वेश्वरविधायिनी । पार्थप्रिया तन्त्रिचक्रसंग्रहे ज्ञातचक्रिका ॥२९६॥
कालापेक्षी चक्रवर्मा ततोप्यैच्छद्धनं वहु । एकादशाव्दस्यापाढे कृतो भूयोपि तन्त्रिभिः ॥२९७॥
पार्थादीन्यैः समुत्पाट्य भुक्तं चक्रिकया पुरा । तैस्तैः स्थानैश्च ये तेभ्यो जीवनाद्युपलेभिरे ॥२९८॥
पिता भ्राता च यैरस्य राज्यादुत्पाटितोऽभवत् । संवन्धिभ्योपि यैर्दुर्ग्घं कन्यां दत्त्वेतरेतरम् ॥२९९॥

रति करती थी ॥ २८४ ॥ जैसे किसी दरिद्र पुरुपकी दो स्त्रियाँ एक ही थालीमें भोजन करती हों, उसी प्रकार सुगन्धादित्य वारी-वारीसे उन दोनोंकी भोगलालसा पूर्ण करता था ॥ २८५ ॥ उन दोनों ही राजरानियोंने अपने भावी पुत्रको राज्याधिकार प्राप्त करानेकी इच्छासे सुगन्धादित्यको सम्भोगके वदले स्पर्धापूर्वक धन देना आरम्भ कर दिया ॥ २८६ ॥ तदनन्तर ३९९७ लौकिक वर्पके पौपमासमें तंत्रियोंने पार्थको राज्यच्युत करके अपने आश्रित पंगुको गद्दी दे दी ॥ २८७ ॥ उसके अगले ही वर्प अर्थात् ३९९८ लौकिक संवत्के माघमासमें अपने शिशुपुत्र चक्रवर्माका राज्याभिपेक करके वह क्षीणपुण्य पंगु यमलोक सिधार गया ॥ २८८ ॥ उसी समय अपना पैतृक राज्य प्राप्त करनेके इच्छुक राजा पार्थके समर्थक तंत्रियों-पदातियोंके साथ एकांगोंका भीपण संग्राम आरम्भ हो गया ॥ २८९ ॥ पंगुका पुत्रशिशु राजा चक्रवर्मा कुछ समय तक तो रानी वप्पट देवीके संरक्षणमें पला। उसके वाद वह दस वर्पतक क्षिल्लिका नामकी अपनी नानीकी देख-रेखमें रहा ॥ २९० ॥ वाल्यकालमें उसका दुष्ट स्वभाव प्रकट नहीं हुआ था, इसलिए अण्डेमें वैठे साँपके वच्चेकी तरह वप्पटदेवी तथा उसकी नानी द्वारा किया गया उसका पालन-पोषण विल्कुल निर्दोप था ॥ २९१ ॥ तदनन्तर लौकिक संवत् ४००९ में तंत्रियोंने चक्रवर्माको गद्दीसे उतारकर रानी मृगावतीसे उत्पन्न पंगुके दूसरे पुत्र शूरवर्माको राजा वना दिया ॥२९२॥ चक्रवर्माके मामा और मंत्रियोंने स्वार्थपरायण होकर उसके साथ स्नेह तथा सद्भाव त्याग दिया था। अतएव उन्होंने तंत्रियोंको देय धन नहीं दिया और इसी कारण चक्रवर्माको राज्यच्युत होना पड़ा ॥२९३॥ जिस तरह सभी सद्गुणोंसे पूर्ण भी दरिद्र पुरुप वेश्याओंको नहीं भाता, उसी प्रकार अतिशय सच्चरित्र होनेपर भी शूरवर्मा पुष्कल धन न दे सकनेके कारण तंत्रियोंका कृपापात्र नहीं वन सका ॥ २९४ ॥ अतएव अधिक द्रव्यलाभके लोभवश उन्होंने शूरवर्माको राज्यभ्रष्ट करके उदार स्वभाववाले पार्थको फिर राज्यासनपर वैठा दिया ॥२९५॥ तन्त्रियोंको अपने वशीभूत करनेमें पूर्ण निपुण और राजा पार्थकी वेश्या साम्ववतीने साम्वेश्वर शिवकी स्थापना की ॥२९६॥ दूसरी ओर चक्रवर्मा अपने लिए अनुकूल समयकी प्रतीक्षा कर रहा था। समय आनेपर उसने पार्थसे भी ज्यादा धन देनेका वादा करके तंत्रियोंकी कृपा प्राप्त कर ली और ४०११ लौकिक वर्पके आपाढ मासमें फिर राज्यसिंहासनपर जा वैठा ॥ २९७ ॥ मेरुवर्धनके धूर्त पुत्रोंने पार्थ आदि जिन राजाओंकी कृपासे उच्चपद तथा जीविका पायी थी, उन्हीं राजाओंको विविध पड्यंत्र रच-रचकर उन्होंने अनेकों वार राजच्युत किया था ॥ २९८ ॥ इसके अतिरिक्त

अकरोद्दृष्टदोषाणां तेषामेव स नष्टधीः । मेरुवर्धनपुत्राणामधिकारसमर्पणम् ॥ तिलकम् ॥३००॥
कृतोऽक्षपटलाधीशस्तेन शंकरवर्धनः । गृहकृत्येऽप्यसत्कृत्यो दाम्भिकः शंभुवर्धनः ॥३०१॥
पापे तस्यैव वर्षस्य धनाभावात्स तन्त्रिणाम् । अदत्तहुण्डिकादेयः पलायिष्ट भयाकुलः ॥३०२॥
स्थिते मडवराज्यान्तस्तस्मिञ्शंकरवर्धनः । राज्यार्थी तन्त्रिणां दूतं प्राहिणोच्छंभुवर्धनम् ॥३०३॥
आवर्जितैः स निखिलैरधिकोत्कोचचर्चया । वञ्चयित्वाग्रजं राज्ये तैः स्वमेवाभ्यषेचयत् ॥३०४॥

तीर्थस्थितः स्वकुलजांस्तिमिरत्ति भुङ्क्ते मौनी बकस्तिमिमुपेत्य वनान्तवासी ।
व्याधो निहन्ति तु बकं प्रभवन्ति ते ते पात्राण्युपर्युपरि वञ्चनचञ्चुतायाः ॥३०५॥

भ्रष्टश्रीश्चक्रवर्माऽथ निशि श्रीढक्कवासिनः । एकदा डामरास्यस्य संग्रामस्याविशद्गृहम् ॥३०६॥
ज्ञात्वा कान्तिविशेषेण राजानं स कृताञ्जलिः । प्रणम्य ग्राहयामास संभ्रमान्निजमासनम् ॥३०७॥
राज्यभ्रंशादिवृत्तान्तमुक्त्वा साहायकार्थिनम् । तं विपत्पेशलं प्रह्वो विचिन्त्योवाच डामरः ॥३०८॥
तन्त्रिणां वा तृणानां वा राजन्का गणना रणे । त्वत्सेवनार्थं सामर्थ्यं कस्मिन्न मम कर्मणि ॥३०९॥
प्राप्तोत्साहः पुनर्नूनमस्मानेव हनिष्यसि । विस्मरन्त्युपकारं हि कृतकार्या महीभुजः ॥३१०॥
ऊर्ध्वारोहे य आलम्बहेतुर्भूभृच्छिनत्ति तम् । कुठारिकस्तरुस्कन्धमिवाधोगमनोन्मुखः ॥३११॥
धीधैर्यादिप्रकर्षेण येनोपक्रियते नृपः । प्राप्तोदयः स तेनैव शङ्कते वेत्त्युपकारिणम् ॥३१२॥
अस्मिन्स्थिते विपदभूदिति संचिन्त्य वर्ज्यते । मूढैः परिवृढैरापत्सेवको मङ्गलेच्छुभिः ॥३१३॥

जिन धूर्तोंने उसके पिता और भाईको राज्यच्युत किया था और एकके लिए निश्चित कन्या दूसरेको देकर जिन्होंने सम्बन्धियोंमें पारस्परिक द्रोहभाव भड़काया था ॥ २९९ ॥ इन दोषोंको प्रत्यक्ष देख करके भी उस मन्दमति राजा चक्रवर्माने उन्हीं मेरुवर्धनके पुत्रोंको राज्यमें अच्छासे अच्छा अधिकार प्रदान किया ॥ ३०० ॥ उसने शंकरवर्धनको गणनाधिकारी और धूर्त तथा झूठे शम्भुवर्धनको घरेलू कामोंका अफसर बना दिया ॥ ३०१ ॥ यह सब करते हुए भी वह राजा उस साल द्रव्याभाववश तंत्रियोंकी हुंडियोंका मूल्य न दे सकनेसे भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ ॥ ३०२ ॥ जब वह मडव राज्यमें था, तभी राज्यके अभिलाषी शंकरवर्धनने अपने छोटे भाई शम्भुवर्धनको दूत बनाकर तंत्रियोंके पास भेजा ॥ ३०३ ॥ धूर्त शम्भुवर्धन वहाँ गया, तब तंत्रियोंको अधिक घूस देनेका वादा करके अपने माफिक कर लिया और बड़े भाई शंकरवर्धनको राज्यप्राप्तिसे वंचित करके स्वयं राजा बन बैठा ॥ ३०४ ॥ नदी या जलाशयमें रहनेवाला तिमि मत्स्य अपने ही वंशज मछलियोंको खा जाता है, उस तिमिको वनवासी एवं मौनी बगुला भक्षण कर जाता है और बहेलिये बगुलेको खा लेते हैं। इस तरह संसारमें वंचनाकार्य करनेमें निपुण व्यक्तिको एकसे बढ़कर एक धूर्त मिल ही जाया करते हैं ॥ ३०५ ॥ राज्यभ्रष्ट चक्रवर्मा एक रोज रातके समय श्रीढक्कनिवासी संग्राम नामक डामरके घर गया ॥ ३०६ ॥ उसका विशेष तेज देखकर डामरने उसे राजा समझ लिया। अतएव उठकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बड़े विनीत भावसे उसे अपने आसनपर बिठाला ॥ ३०७ ॥ तब चक्रवर्माने अपने राज्यच्युत होनेका सारा वृत्तान्त बताया और उससे सहायता माँगी। सो सब हाल सुनकर डामरने अपने मनमें सोचा कि 'विपत्तिमें पड़कर यह इतना मृदु और कोमल बन गया है'। फिर विनम्र होकर बोला—॥ ३०८ ॥ 'राजन्! रणभूमिमें तंत्रियोंको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ। आपकी सेवाके लिए मैं क्या नहीं कर सकता? ॥३०९॥ लेकिन मेरी सहायतासे राजा बनकर आप मेरा ही विनाश करने लग जायँगे। क्योंकि काम निकल जानेपर लोग उपकारको भूल जाते हैं ॥ ३१० ॥ वृक्षपर चढ़ते समय सीढ़ियोंका काम करनेवाली डालियोंको लकड़हारा जब नीचे उतरने लगता है, तब अपनी कुल्हाड़ीसे काटता हुआ उतरता है। उसी प्रकार राजे राज्य पाकर अपने सहायकको ही समाप्त कर देते हैं ॥ ३११ ॥ इन राजाओंके उत्कर्षमें जिन लोगोंकी बुद्धि एवं धैर्य आदि गुण उपकारक होते हैं, उन्हींके गुणोंपर समृद्ध राजे शंका करने लग जाते हैं ॥ ३१२ ॥ ये मूढ राजे उन्नत दशामें पहुँच जानेके बाद विपत्तिमें

संपद्यापत्सहायस्य विस्मृतोपक्रिया नृपाः । मध्ये प्रमादस्खलितमुत्पन्नं हृदि कुर्वते ॥३१४॥
आमयार्तिरिपुत्रासक्षुदादौ दृष्टवैकृतान् । लब्धोदया ह्रीभयेन क्ष्मापा घ्नन्त्यनुयायिनः ॥३१५॥
राज्ञः सतोपि नाश्वासो यस्येभस्येव कर्णयोः । अविशुद्धप्रकृतयो ध्वनन्ति मधुपा इव ॥३१६॥
दिवसे संनिधानेन पिशुनप्रेरणा प्रभोः । ईर्ष्यालुना स्वैरिणीव रक्षितुं यदि पार्यते ॥३१७॥
राजत्रजन्युपाध्यायो देवी यच्छिक्षयेद्रहः । तत्र प्रजागरः कर्तुमसर्वज्ञैर्न शक्यते ॥३१८॥
कथंचिदह्नि हृदये कुशलैर्विनिवेशिता । शिक्षा गौरखरेणेव राज्ञा विस्मार्यते निशि ॥३१९॥
न के लोभं समुत्पाद्य जिह्वया स्निग्धदीर्घया । पिपीलका इव ग्रस्ताः क्ष्मापालैः शल्यकैरिव ॥३२०॥
जानाति हन्तुं हन्तव्यमासन्नं न तु दूरगम् । एको बकः परः सत्यं द्रोहवृत्तिर्महीपतिः ॥३२१॥
न नाम कण्टकाकीर्णः कौटिल्यं लक्ष्यतां नयेत् । कालापेक्षी क्षितिपतिः शरीरमिव जाहकः ॥३२२॥
नमन्नपि हरिर्हन्यादाश्लिष्यन्नपि पन्नगः । विहसन्नपि वेतालः स्तुवन्नपि महीपतिः ॥३२३॥
अद्रोहवृत्त्या तस्मात्त्वं द्रक्ष्यस्यस्मान्सदा यदि । ससैन्यस्ते तदेषोऽहं प्रातरेव पुरः सरः ॥३२४॥
तदाकर्ण्याब्रवीद्राजा लज्जास्मितसिताधरः । स्वात्मेव यूयं संरक्ष्या मम पूर्वोपकारिणः ॥३२५॥
ततो निक्षिप्य चरणं रक्ताक्ते मेषचर्मणि । कोशं चक्रतुरन्योन्यं सखड्गौ नृपडामरौ ॥३२६॥
अथ संघटितासंख्यचण्डडामरमण्डलः । चक्रवर्माऽकरोद्यात्रां प्रत्यूषे नगरोन्मुखः ॥३२७॥

साथ देनेवाले अच्छे सेवकोंको यह कहकर त्याग देते हैं कि 'इसी दुष्टके कारण मुझे विपत्ति भोगनी पड़ी थी' ॥ ३१३ ॥ विपत्तिके समय अपने उपकारी सेवकोंके उपकारको तो अभ्युदयकालमें ये राजे भूल जाते हैं, किन्तु उपकार करते समय सेवकसे प्रमादवश कोई गलती हो गयी हो तो उसे जन्मभर याद रखते हैं ॥ ३१४ ॥ अभ्युदयको प्राप्त राजे अपने रोगजनित कष्ट, शत्रुभय, भूख और प्यास आदिसे उत्पन्न कष्टोंके प्रत्यक्षदर्शी सेवकोंको देखकर लज्जा तथा भयका अनुभव करते हैं और इसी कारण वे उन्हें त्याग देते हैं ॥ ३१५ ॥ अच्छे-अच्छे राजाओंको भी प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओंकी अपेक्षा सुनी हुई बातपर जल्दी विश्वास हो जाता है। इसका कारण यह है कि जैसे काले भौंरे मदमत्त हाथियोंके कानोंपर गुनगुनाते हैं, उसी प्रकार मलिन बुद्धिवाले और झूठे धूर्त नित्य राजाओंके कान भरा करते हैं ॥ ३१६ ॥ रातके समय व्यभिचारिणी स्त्रीकी तरह दिनमें चुगलखोरोंकी प्रेरणा समीप रहनेके कारण सदा सताती रहती है। अतएव प्रत्येक ईर्ष्यालु एवं विवेकवान् पुरुषको उससे सदा सावधान रहना चाहिए ॥ ३१७ ॥ हे राजन्! रात्रिके समयकी गुरु अर्थात् पत्नी एकान्तमें जो उपदेश देती है, उससे सर्वज्ञ पुरुषोंके सिवाय और कोई भी पुरुष सावधान नहीं रह सकता ॥ ३१८ ॥ कार्य-कुशल मंत्रीगण दिनमें किसी तरह राजाके हृदयमें उपदेशकी जो बात बैठाते हैं, उसे राजा लोग नीलगायके समान कामुक बनकर रातको भुला दिया करते हैं ॥ ३१९ ॥ जैसे शल्यक (साही) पिपीलकाओं (चींटियों) को खा जाते हैं, उसी तरह इन राजाओंने अपनी चिकनी और लम्बी जीभसे किसको चाटकर समाप्त नहीं कर दिया ? ॥ ३२० ॥ बगुला अपने आस-पासकी मछलियोंको ही खाता है, दूर स्थित मछलियोंको नहीं। किन्तु ये विद्रोही राजे तो समीप तथा दूर रहनेवाले दोनों प्रकारके लोगोंको खा डालते हैं ॥ ३२१ ॥ अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करनेवाला कण्टकाकीर्ण राजा काँटोंसे भरे शरीरको साहीके समान सह लेता है ॥ ३२२ ॥ सिंह विनम्र होकर, सर्प आलिंगन करके, पिशाच हँसकर और राजा प्रशंसा करके अपने शिकारको मारता है ॥ ३२३ ॥ अतएव यदि आप कभी भी मेरे साथ द्रोह न करनेका वचन दें तो मैं कल सवेरे ही अपनी सेना लेकर आपके साथ चलनेको उद्यत हूँ' ॥ ३२४ ॥ संग्राम डामरकी बातें सुनकर चक्रवर्मा लज्जित-सा हो गया और कुछ देरके लिए जैसे उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी। किन्तु तुरन्त वह हँसकर कहने लगा—'सबसे पहले उपकार करनेके नाते मैं अपने प्राणोंके समान आपकी रक्षा करूँगा' ॥ ३२५ ॥ तदनन्तर रक्ताक्त मेषके चर्मपर खड़े हो और हाथमें तलवार लेकर कोशपानपूर्वक उन दोनोंने शपथ ली ॥ ३२६ ॥ उसके बाद सवेरे ही विशाल तथा भीषण

तस्मिन्क्षणे पुरस्कृत्य योद्धुं शंकरवर्धनम् । विनिर्ययुः सिताष्टम्यां चैत्रे तन्त्रिपदातयः ॥३२८॥
कालानुवृत्तिप्रच्छन्नं तेषां संभावनोज्झितम् । स तत्वरे पुरस्कर्तुं चक्रवर्मा स्वविक्रमम् ॥३२९॥
अथ प्रवृत्ते संग्रामे घोरे पद्मपुराद्बहिः । जघान प्रेरितहयः पूर्वं शंकरवर्धनम् ॥३३०॥
हते सेनाधिपे तत्र शतधा तन्त्रिवाहिनी । प्रययौ पवनाघातप्रेरिता नौरिवार्णवे ॥३३१॥
पृष्ठानुसरणोद्युक्तो नृपस्तेषामपाहरत् । गतिं तुरगवेगेन शिरःश्रेणिं तथासिना ॥३३२॥
भ्रमतः समरे वभ्रुर्वीरपट्टाञ्चलच्छटाः । चक्रवर्ममृगेन्द्रस्य सटापटलविभ्रमम् ॥३३३॥
किमन्यत्पञ्चषाण्यासन्सहस्राणि रणाङ्गने । पतितानि क्षणादेव हतानां तत्र तन्त्रिणाम् ॥३३४॥
तन्त्रिणो रणसंरम्भपरिश्रान्ताः क्षमातले । गृध्रपक्षकृतच्छाये शायिताश्चक्रवर्मणा ॥३३५॥
विशुद्धवंश्यैर्गुणिभिर्निहतैः संश्रितैः समम् । अभूषयद्वीरशय्यां शूरः शंकरवर्धनः ॥३३६॥
उदयं संहता एव संहता एव च क्षयम् । प्रयान्तः स्पृहणीयत्वं तन्त्रिणः कस्य नागमन् ॥३३७॥
माननीयानधृष्यांश्च महावंश्यान्महीपतीन् । अहीनिव खिलीकृत्य भिक्षयन्तः क्षणे क्षणे ॥३३८॥
अनयन्क्रीडया व्रीडां माद्यन्तो जीविकाकृते । प्रागाहितुण्डिकाः क्रूरा इव ये गर्ह्यवृत्तयः ॥३३९॥
ते तन्त्रिणः क्षणादग्धा गूढवैरविषाग्निना । विमाननाविविग्नेन चक्रवर्ममहाहिना ॥ तिलकम् ॥३४०॥
अथ द्वितीये दिवसे भग्नानामपि तन्त्रिणाम् । वीरः संघटनां यावदकरोच्छंभुवर्धनः ॥३४१॥
तावन्मिलितसामन्तसचिवैः काङ्क्षलालितः । सैन्यैर्नानापथायातैर्नदद्भिर्व्याप्तदिक्पथः ॥३४२॥

डामरसेना साथ लेकर चक्रवर्मा तथा संग्राम डामर ये दोनों बड़े वेगसे नगरकी ओर चले ॥ ३२७ ॥ उस डामर-सेनासे टक्कर लेनेके लिए शङ्करवर्धनके नेतृत्वमें चैत्र शुक्ल अष्टमीको तंत्री एवं पदातिगण भी नगरसे वाहर आये ॥ ३२८ ॥ पहले अनुकूल समय न मिलनेके कारण चक्रवर्माका पराक्रम छिपा हुआ था। अतएव लोग उसे साधारण मनुष्य समझते थे। किन्तु अब उसने भलीभाँति अपना शौर्य प्रदर्शित किया ॥ ३२९ ॥ उस समय पद्मपुरके समीप बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। उस अवसरपर चक्रवर्माने अपना घोड़ा आगे बढाकर सबसे पहले शङ्कर-वर्धनको मार डाला ॥ ३३० ॥ सेनापतिके मर जानेपर तंत्रियोंकी सेना समुद्रके जलमें तूफानी हवासे डगमगाती हुई नावकी भाँति छितराकर भाग चली ॥ ३३१ ॥ उन भागनेवालोंका पीछा करते हुए चक्रवर्माने अपने घोड़ोंके वेगसे उनकी गति अवरुद्ध कर दी। तात्पर्य यह कि उसने घोड़सवार सैनिकोंके द्वारा मार्गमें ही रोककर तलवारोंसे उनके सिर काट लिये ॥ ३३२ ॥ उस समय युद्धभूमिमें चक्कर काटते हुए चक्रवर्माके माथेपर बँधे वीरपट्टकी छोर उसकी गर्दनपर लहराती हुई ऐसी सुन्दर लग रही थी, जैसे सिंहकी ग्रीवापर बिखरे अयाल सुन्दर लगते हैं ॥ ३३३ ॥ उसकी वीरताका वर्णन और कहाँ तक किया जाय, उस सग्रामभूमिमें क्षणभरके भीतर उसने तंत्रियोंके पाँच-छः हजार सैनिक मारकर गिर गये ॥ ३३४ ॥ युद्धकी धक्कामुक्कीसे थके तंत्रियोंको वीर चक्रवर्माने रणभूमिमें गिद्धोंके पंखकी छायामें सुस्तानेका मौका दे दिया ॥ ३३५ ॥ दूसरी तरफ वीर शंकरवर्धन अपने ही सदृश उच्चकुलमें उत्पन्न तथा गुणी आश्रितोंके साथ मरकर वीरशय्याको सुशोभित कर रहा था ॥ ३३६ ॥ इस प्रकार तन्त्रि-पदातियोंके सामूहिक उदय और उसी तरहके अस्तको देखकर किसके मनमें आनन्द एवं विस्मय की भावना न जागी होगी ॥ ३३७ ॥ जैसे काले साँपोंके साथ खेलकर पेट पालनेके लिए सँपेरे गली-गली भीख माँगते फिरते हैं, उन्हींके समान दुष्ट तंत्रियोंने माननीय, अधृष्य तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न भूपतिरूपी सर्पोंको अपने वशमें करके सदा उनके समक्ष नयी-नयी माँगें रखते हुए उन्हें खिलौना बनाकर लज्जावनत कर दिया था। उन दुष्टोंके ऐसे अपमानजनक व्यवहारसे क्षुब्ध होकर भीषण विषरूपी अग्निसे युक्त उस चक्रवर्मारूपी महान् काले नागने उनको क्षणभरमें भस्म कर दिया ॥ ३३८—३४० ॥ उसके दूसरे दिन शंकरवर्धनका छोटा भाई शम्भुवर्धन परास्त होकर जब भागे हुए तंत्रियोंको फिरसे संगठित कर रहा था ॥३४१॥ उसी समय सप्रेम मिलते हुए सामन्तों, मंत्रियों तथा सैनिकोंके साथ विजयसे उल्लसित चक्रवर्मा पद्मपुरमें प्रविष्ट हुआ। उस अवसरपर क्षितिज तक

वलान्मध्येऽश्ववाराणां नृत्यत्येवाग्र्यवाजिना । वल्गाङ्केनोद्वहॅल्लम्बं शिरस्त्रं वामपाणिना ॥३४३॥
सस्वेदेतरहस्ताग्रवेष्टनोल्लासनस्पृशः । खड्गस्य बिम्बितार्कस्य भाभिर्द्योतितकुण्डलः ॥३४४॥
कवचोत्सेधसंरुद्धकण्ठायासेन ताम्यता । बद्धभ्रुकुटिबन्धेन वदनेन भयावहः ॥३४५॥
तर्जयन्कृतहुंकाराँल्लुण्ठकॉल्लुण्ठितापणान् । शिरोऽक्षिसंज्ञया त्रस्तवास्तव्यकृतसान्त्वनः ॥३४६॥
भेरीरवैः श्रुतिं भिन्दन्पौराशीर्घोषरोधिभिः ।
संग्रामजयशोभाङ्कश्चक्रवर्माऽविशत्पुरम् ॥ कुलकम् ॥३४७॥
तस्मिन्सिंहासनं प्राज्यमाक्रामति जयोर्जिते । बद्ध्वा कुतश्चिदानिन्ये भूभटः शंभुवर्धनम् ॥३४८॥
राज्ञः पुरस्तात्तं शस्त्रपातभीमीलितेक्षणम् । भक्तिं प्रदर्शयन्पापश्चण्डाल इव सोऽवधीत् ॥३४९॥
उज्झतां धर्ममर्यादां भृत्यानां जनकोपमान् । हन्तुं नरेन्द्रान्द्रोहेण प्रारंभः शंभुवर्धनः ॥३५०॥
प्राप्य निष्कण्टकं राज्यं चक्रवर्मनृपः क्रमात् । अजायत धृतोत्सेको नृशंसविषमक्रियः ॥३५१॥
स्वविक्रमकथास्तोत्ररोमन्थप्रियताहृतः । सोऽभवद्विटवन्द्यादिचाटुकारविधेयधीः ॥३५२॥
आत्मानं दैवतमिव स्तुतिमोहितचेतसः । जानतः प्राभवंस्तस्य विवेकविगुणाः क्रियाः ॥३५३॥
तस्मिन्प्रसङ्गे रंगाख्यः प्रख्यातो डोम्बगायनः । वैदेशिकोऽभवद्राज्ञा वितीर्णावसरो बहिः ॥३५४॥
प्राप्तान्सचिवसामन्तान्विन्यस्यन्तो यथाक्रमम् । प्रतीहारा नृपस्याग्रमनयन्त विविक्तताम् ॥३५५॥
विरमौ धवलोष्णीषा सभा दीपप्रभोज्ज्वला । शेषशय्येव मणिभिः कृतालोका फणोद्भवैः ॥३५६॥

पीछे उनके सैनिक गर्जन करते हुए भिन्न-भिन्न मार्गोंसे चल रहे थे। घोड़सवारोंसे घिरा हुआ चक्रवर्मा एक उच्चकोटिके घोड़ेपर सवार था। वह घोड़ा अपनी स्वाभाविक चपलतावश टाप पटक-पटककर नाच रहा था। दाहिने हाथमें लगाम थाम्हे हुए वह बायें हाथसे टेढ़ी पगड़ी तनिक ऊपर उठाकर दुरुस्त कर रहा था। पसीने युक्त दाहिने हाथमें मजबूतीसे पकड़ी हुई लपलपाती तलवारकी किरणें पड़नेके कारण उसके कुण्डल चमक रहे थे। उसने अपने शरीरपर कीमती तथा सुदृढ़ कवच धारण कर रक्खा। वह कवच उसकी गर्दनको कष्ट देता था। उस समय उसका मुख बड़ा तेजस्वी तथा उग्र दीख रहा था। उसकी भौंहें टेढ़ी थीं और ललाटकी तरफ उठी हुई थीं। रहरहकर वह बाजारमें लूट-खसोट करनेवाले लोगोंको डॉट-फटकार रहा था। साथ ही अपने मस्तक तथा नेत्रोंके मीठे संकेतसे भयभीत शहरियोंकी ढाढ़स बँधा रहा था। उसकी भेरीके घनघोर घोष नागरिकोंके आशीष एवं जयजयकारके निनादसे दबे जाते थे और दर्शकोंके कान फटे जा रहे थे॥ ३४३–३४७॥ इस प्रकार नगरमें पहुँच जानेके बाद जब विजयी चक्रवर्माका राज्याभिषेक हो गया, तब भूभटने कहींपर शम्भुवर्धनको पकड़ा और उसके पैरोंमें बेड़ियाँ डालकर राजा चक्रवर्माके सम्मुख उपस्थित किया॥ ३४८॥ इस प्रकार राजाके समक्ष अपने ऊपर होनेवाले शस्त्रप्रहारसे भयभीत और आँखें मूँदकर खड़े शम्भुवर्धनको अपनी स्वामिभक्ति दिखाते हुए उस पापी और चण्डाल भूभट-ने मार डाला॥ ३४९॥ उस शम्भुवर्धनका वध होनेके समय ही धर्ममर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भृत्योंके द्वारा पिता सदृश पूज्य राजाओंका विश्वासघातपूर्वक हत्या करनेकी प्रथा जैसी चल पड़ी॥ ३५०॥ निष्कण्टक राज्य प्राप्त करके राजा चक्रवर्मा मदमत्त होकर क्रूरतापूर्ण कुकृत्य करने लगा॥ ३५१॥ अब वह लोगोंके मुखसे बारम्बार अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता और धूर्तों, वन्दीजनों तथा खुशामदी मुसाहबोंकी बातोंपर विशेष श्रद्धा करता था॥ ३५२॥ उनकी स्तुतिसे मुग्ध होकर वह अपनेको देवता समझता हुआ विवेक के विपरीत काम करने लगा॥ ३५३॥ उन्हीं दिनों नगरमें डोमजातिका रंगनामक एक विदेशी गायक आया हुआ था। हीनजातिका होनेके कारण उसके लिए राजाकी ओरसे बाहरी मैदानमें गायनका प्रबन्ध किया गया॥ ३५४॥ उनका गायन सुननेको आये हुए सामन्तों-मन्त्रियों आदि सम्मानित पुरुषोंको प्रतिहारोंने यथायोग्य स्थानोंपर बिठाकर राजाके समक्षवाली बहुतेरी जगह खाली ही छोड़ दी थी॥ ३५५॥ उस समय सभाभवनमें जगमगाने-वाले अगणित दीपकोंकी दीप्ति एवं सभासदोंकी साफ-सुथरी पगड़ियोंसे वह राजसभा फणामण्डलपर चमकते

क्रतावरोधधम्मिल्लमाला दोलनकेलिभिः । प्रदोपपवनैश्चक्रे शिशिरैर्घ्राणतर्पणम् ॥३५७॥
जातगीतदिदृक्षाणां गवाक्षावलयो बभुः । आसवामोदिभिर्वक्त्रैरवरोधमृगीदृशाम् ॥३५८॥
हारकङ्कणकेयूरपारिहार्यादिशोभिना । स्ववृन्देनानुयातोऽथ प्राविशद्गोम्बगायनः ॥३५९॥
हंसी नागलता चास्य सुते ललितलोचने । चक्रतुः कौतुकोद्ग्रीवां सभां चित्रार्पितामिव ॥३६०॥
तयोर्विलासवलितैश्चलितापाङ्गविभ्रमैः । द्वितीयपुष्पप्रकरो व्यकीर्यत सभांतरे ॥३६१॥
गायनैर्जय जीवेति कृतकोलाहलैरभूत् । सदः सशब्दं कुर्वद्भिस्तत्तन्नृपगुणग्रहम् ॥३६२॥
भुक्तोत्तरोचितोदञ्च पञ्चमस्थानचारिणः । वंशे रागविशेषस्य दत्ते स्थाने ततः शनैः ॥३६३॥
अविक्रियशिरःकम्पभ्रूनेत्रभ्रमशोभितः । अभिन्न इव गायन्त्योर्गीतध्वनिरजृम्भत ॥३६४॥
अथ ताम्बूलरोमंथत्यागनिश्चलमूर्तिना । जातं राजकुरङ्गेण प्रमोदास्पन्ददृष्टिना ॥३६५॥
गायन्त्यौ भावमालक्ष्य तस्य स्निग्धमगायताम् । अधिकोद्रेचिताभिख्यं विलासस्मितविभ्रमैः ॥३६६॥
राज्ञस्तयोश्च संसक्तचित्तयोरितरेतरम् । दृग्व्यापारैः स्वसंवेद्यैः संलाप इव पप्रथे ॥३६७॥
नृपं हारितचित्तं तं विज्ञायैकः प्रियो विटः । ततः प्रसङ्गे प्रोवाच प्रीतिवृद्धिकरं वचः ॥३६८॥
देव गीतमिदं यातं संप्राप्यैते मनोरमे । कर्पूरपारीपतितं मैरेयमिव हारिताम् ॥३६९॥
गायन्त्योर्मार्जितामेतां रागादन्तचतुष्किकाम् । अनयोः प्रतिमाव्याजाच्चुम्बतीव निशाकरः ॥३७०॥
करन्यस्तकपोलान्तमुद्गायन्त्याविमे ध्रुवम् । कटाक्षैः कुरुतो व्योम्नि वैमानिकविमोहनम् ॥३७१॥

हुए मणियोंसे शोभायमान शेषशय्या सरीखी दीख रही थी ॥ ३५६ ॥ राजरानियोंके केशपाशमें गुँथी पुष्पमालाओंके साथ खेलकर आयी हुई सायंकालीन शीतल एवं मन्द-मन्द बहनेवाली वायु श्रोताओंकी नासिकाको तृप्ति प्रदान कर रही थी ॥३५७॥ वह संगीतसमारोह देखनेके लिए लालायित अन्तःपुरकी ललनाओंके आसवसुवासित मुखारविन्दोंसे महलके सभी झरोखे खिल उठे थे ॥ ३५८ ॥ उसी समय हार, कंकण, केयूर, कटक आदि आभूषित वह गायक अपने परिकरोंके साथ सभाभवनमें प्रविष्ट हुआ ॥ ३५९ ॥ उसके साथ आयी हुई हंसी और नागलता नामकी दो सुनयनी बालिकाओंने अपने अनुपम सौन्दर्यकी कुछ ऐसी मोहिनी डाल दी कि जिससे उस राजसभाके सभी श्रोता गर्दन उठाकर उसे देखते हुए चित्रलिखित सरीखे बन गये ॥ २६० ॥ उन दोनों बालिकाओंके हाव-भावपूर्ण एवं चंचल कटाक्षोंसे उस सभामें जैसे पुष्पसमूह विकसित हो उठा था ॥ ३६१ ॥ उनका गायन राजा चक्रवर्माके गुणगानसे परिपूर्ण था और उस समय सभामे जय-जीव आदिसे आशीर्वादात्मक शब्दावलियाँ मुखरित हो रही थीं ॥ ३६२ ॥ वे बालिकाये रागविशेषका गायन गाती हुई पंचम स्वरमें आलाप ले रही थीं और वंशीका स्वर उनकी संगत कर रहा था ॥ ३६३ ॥ उन गायिकाओंके हाव-भाव-प्रदर्शन, शिरश्चालन, भ्रूविलास तथा कटाक्षविक्षेप आदिके द्वारा उस गायनकी ध्वनि समानरूपसे छायी हुई थी ॥ ३६४ ॥ उस गायनको सुननेमें वह राजा ऐसा तन्मय हो गया कि उसने पान खानातक छोड़ दिया। जैसे कोई मृग रोमन्थ (जुगाली करना) त्यागकर बहेलियेके संगीतको सुननेमें तन्मय हो ॥ ३६५ ॥ राजाकी तन्मयता देखकर उन बालिकाओंने विशेष विलास, मुसकान और भावप्रदर्शन युक्त मधुर तथा मनोमोहक संगीतका कार्यक्रम उपस्थित किया ॥ ३६६ ॥ इस प्रकार राजा और बालिकाओं एक दूसरेपर अत्यन्त अनुरक्त हृदय हो जानेसे उन दोनोंके स्वसंवेद्य दृष्टि व्यापारोंसे जैसे परस्पर वार्तालाप-सा होने लग गया ॥३६७॥ उन सुन्दरी बालिकाओं द्वारा राजाका हृदय हरा गया समझकर राजाका प्रिय एक खुशामदी धूर्त प्रसंगानुकूल एवं प्रेमवर्धक वचन बोला ॥ ३६८ ॥ उसने कहा—'महाराज ! इन दो मनोहारिणी बालिकाओंको पाकर यह संगीत कपूरकी थालीमे रक्खे हुए मैरेय (मदिरा) की तरह हृदयहारी हो उठा है ॥ ३६९ ॥ इन दोनों गायिकाओंकी स्वच्छ और धवल दन्तपंक्तियोंपर प्रतिबिम्बित चन्द्रमा जैसे प्रतिबिम्बके बहाने इनके अधरोंका चुम्बन कर रहा है ॥ ३७० ॥ अपनी हथेलियोंपर कपोल रखकर गाती हुई इन बालिकाओंको देखकर ऐसा लगता है कि मानो ये

जानत्या स्वाश्रयां चर्चामनयोरेकमावयोः। अभ्रूयास्मितगर्भोऽयं कटाक्षः पश्य पातितः ॥३७२॥
गायन्त्येकानतमुखी , कर्णव्यालोलकुण्डला। विपरीतरतोद्रेककृतारम्भेव शोभते ॥३७३॥

सफलं तस्य तारुण्यमीदृश्यो निर्जने स्त्रियः।
औत्सुक्याद्विरहे यस्य गायन्त्येवंविधैः स्वरैः ॥३७४॥

उपपत्तिपरित्यक्तशास्त्रानुष्ठानमोहितैः। एकसार्थप्रयातेभ्यः कथमेको विवर्ज्यते ॥३७५॥
नेत्रस्य रूपं श्रोत्रस्य ध्वनिं संस्पृशतो न चेत्। तदङ्गस्यान्यकान्ताङ्गं स्पृशतो दुष्कृतं कुतः ॥३७६॥
अभिलाषाङ्कुरः सिक्त इव तैर्विटभाषितैः। राज्ञः स्वभावलोलस्य शतशाखत्वमाययौ ॥३७७॥
ये विस्तारितवर्णसंकररुचः संदर्श्य गोत्रान्तकृद्धद्धावस्थितिचापलङ्घनमलं पार्श्वे ध्वनन्त्युद्धताः।
नोयन्ते विपथावपातपरतां लब्धोदयैस्तैः क्षणात्सिंहा वारिधरैरमी च रभसाद्भूपालसिंहा विटैः ॥३७८॥

वस्तु क्षणादनुपपन्त्युपपत्तियुक्तं कृत्वा जडान्यदि विमोहयितुं समर्थाः।
न स्युर्विटा अथ कुतर्कपथस्थिताश्च नि:योद्वसेषु निरयेषु मृगाश्चरेयुः ॥३७९॥

मंतोष्य हारकेयूरकुण्डलैर्डोम्बमण्डलम्। अमार्गत्यागराधेयः शुद्धान्तमगमन्नृपः ॥३८०॥

क्रान्तोऽस्याः क्षितिवल्लभोऽयमभिधेत्युर्वीपतेरेकतो
ब्रूतेऽसावतिचण्डताण्डवयुतं डोम्बः स्वनामान्यतः।
मध्ये यत्किमपीति गीतरचना काव्यं यदेतद्विदो
यल्लक्ष्मीं क्षपयन्ति तान्धिगवुधान्कीर्त्यर्थिनः पार्थिवान् ॥३८१॥

अपने कटाक्षोंसे विमानपर बैठे हुए देवताओंको मोह रही हैं ॥ ३७१ ॥ देखिए, हमलोगोंको अपने विषयमें चर्चा करते देखकर उन दोनोंमेंसे एक सुन्दरी किस तरह कुछ गुस्सेके साथ मुसकाती हुई अपने कटाक्षवाण फेंक रही है ॥ ३७२ ॥ चंचल कर्णकुण्डलोंवाली वह दूसरी वालिका अपना मुँह नीचे करके गाती हुई जैसे विपरीत रतिके उद्रेकका आरम्भ कर रही है ॥ ३७३ ॥ संसारमें उसी पुरुषकी तरुणाई सफल कही जायगी, जिसके वियोगमें ऐसी सुनयनी सुन्दरियाँ उत्सुक होकर एकान्तमें ऐसे ही सुमधुर स्वरोंमें गाती हों ॥ ३७४ ॥ बुद्धिहीन एवं शुष्क शास्त्रोंका अनुसरण करनेके कारण अज्ञानमें पड़े हुए मनुष्य एक साथ चलती हुई दो बातोंमेंसे केवल एकको क्यों त्यागते हैं ? ॥ ३७५ ॥ यदि रूपका स्पर्श करनेवाले नेत्रों और मधुर ध्वनि सुननेवाले कानोंको कोई पाप नहीं लगता तो सुन्दर अंगोंका स्पर्श करनेवाले किसी अन्य अङ्गको क्यों पाप लगता है ?' ॥ ३७६ ॥ उस धूर्तके इन उत्तेजक वचनोंसे उस चंचल स्वभाववाले राजाके हृदयका अभिलाषारूपी अंकुर सिंचकर सैकड़ों शाखाओंसे सम्पन्न हो गया ॥ ३७७ ॥ उमड़े हुए मेघ सिंहको और धूर्त लोग राजाओंको विपथगामी बनाकर उनके हृदयमें वर्णसंकरताकी रुचि उत्पन्न कर देते हैं। जिससे सिंह मेघगर्जन सुनकर क्रुद्ध हो जाता है और उसके नेत्र इन्द्रधनुषके विविध रंगोंको देखकर चमक उठते हैं। ऐसी स्थितिमें वह मेघगर्जनको किसी अन्य सिंहका दहाड़ समझकर दौड़ने लगता है और दौड़ते-दौड़ते गिरकर मर जाता है। वैसे ही कुल और गोत्रका विचार त्याग मीठी-मीठी बातोंसे धूर्त लोग राजाओंका मन मोह लेते और उसे कुपथगामी बनाकर नष्ट कर देते हैं ॥ ३७८ ॥ युक्तिहीन वस्तुको क्षणभरमें सयुक्तिक बनाकर मूर्खोंको मोहग्रस्त करनेमें समर्थ एवं कुतर्कपथके पथिक धूर्त लोग संसारमें न होते तो नरकोंमें मृग चरने लग जाते। अर्थात् वहाँ जानेवाला कोई रहता ही नहीं और वह सूना हो जाता ॥ ६७९ ॥ तदनन्तर राजा कर्णके समान दानी होता हुआ भी असत्पात्रको दान देनेवाला वह राजा उस डोमको हार, केयूर, कुण्डल आदि आभूषणोंका उपहार देकर अपने अन्तःपुरमें चला गया ॥ ३८० ॥ जब रंग डोमको यह विश्वास हो गया कि 'राजा चक्रवर्मा इन दोनों वालिकाओंमेंसे किसी एकपर आसक्त हो गया है' तब सानन्द नृत्य करके वह कुछ उत्तेजक पद्य कहने लगा। राजाओंको प्रसन्न करनेके लिए ऐसे ग्राम्य विषयकी प्रशंसा करते हुए कुछ खुशामदी कवियोंने कविताओंकी रचना की है। मेरी दृष्टिमें

वेश्यानुरागस्य महेन्द्रचापधाम्नो हरिद्रारसरञ्जनस्य ।
उपाङ्गगीतस्य च हारिणोऽपि सौन्दर्यमस्थैर्यहतप्रकर्षम् ॥३८२॥

दर्शनाभ्याससंवृद्धचक्षूरागः क्ष्मापतिः । विना श्वपाककन्ये ते न पुनः प्राप निर्वृतिम् ॥३८३॥
गायन्त्यौ शयनोपान्ते शनैर्विहितचुम्बनम् । नृपं रतिसुखाभिज्ञं तं हठात्ते प्रचक्रतुः ॥३८४॥
समागमेन नव्येन द्वयोर्वैयात्यशोभिना । चक्रे क्षपितसामर्थ्यः स लज्जोद्वहनाक्षमः ॥३८५॥
रत्यन्तसुलभोद्भेदैर्निःसृतैः स्वेदबिन्दुभिः । भाग्योष्मसंक्षयजडं वपुस्तस्य व्यधीयत ॥३८६॥
रागान्धेन कृता हंसी महादेवी महीभुजा । भेजे राजवधूमध्ये वालव्यजनवीजनम् ॥३८७॥
तस्या यैर्भुक्तमुच्छिष्टं ते यथा चक्रवर्मणः । नृपान्तराणामन्येषामप्यभूवन्सभासदः ॥३८८॥
मन्त्रिणामक्षपटलप्रख्यमुख्याधिकारदा । प्रवृद्धिहेतुतां प्राप डोम्बसेवनचक्रिका ॥३८९॥
मौर्ख्यात्सचिवतां केचिच्छ्वपाका न व्यधुः स्वयम् । केचित्त्वकुर्वन्नीतिज्ञा राजकार्याणि मन्त्रिवत् ॥३९०॥
मन्त्रिणस्तस्करा राज्ञी श्वपाकी श्वपचाः प्रियाः । किं न लोकोत्तरमभूद्भूपतेश्चक्रवर्मणः ॥३९१॥
ऋतुस्नातार्तवाङ्कानि श्वपाकी स्वांशुकान्यदात् । तदाच्छादनदृप्तेच्छा मन्त्रिणः प्राविशन्सभाम् ॥३९२॥
कैश्चित्क्षितिभुजा वैरमङ्गीकृत्यापि तत्क्षणम् । यैर्नाशि श्वपचोच्छिष्टं तेऽभूवन्सोमपैः समाः ॥३९३॥
मण्डलेऽस्मिन्प्रभावोग्रा न देवा न्यवसन्ध्रुवम् । तद्वेश्मानि तदा नो चेच्छ्वपाकी प्राविशेत्कथम् ॥३९४॥
तां रणस्वामिनं द्रष्टुं तिलद्वादश्यहे गताम् । सामन्तेभ्यः साभिमाना नान्वयुर्डामराः परम् ॥३९५॥
राजकौटुम्ब्यदृप्तानां डोम्बानां निर्गता मुखात् । राज्ञामिवाज्ञा दुर्लङ्घ्या न केनाप्युदलङ्घ्यत ॥३९६॥

तो ऐसे मूर्ख कवि धिक्कारके पात्र हैं ॥ ३८१ ॥ वेश्याका प्रेम, इन्द्रधनुषकी शोभा, हल्दीका रंग, मनोहर उपांग और गीतकी मिठास ये सभी वस्तुयें क्षणिक हुआ करती हैं ॥ ३८२ ॥ उन डोमकन्याओंको देखकर राजा चक्रवर्माका चक्षुराग इतना बढ गया कि वह उन्हें देखे विना व्याकुल हो उठता था ॥ ३८३ ॥ राजाकी शय्याके पास बैठकर गाती हुई उन दोनों बालिकाओंने पहले उसे चुम्बनका अभ्यास कराया। फिर धीरे-धीरे रतिसुखका भी अभिज्ञ बना दिया ॥ ३८४ ॥ अब वह उस ढिठाईभरे नवीन समागमसे असमर्थ होकर लज्जाका भार भी नहीं वहन कर सका और पूरे तौरसे निर्लज्ज बन गया ॥ ३८५ ॥ भोग करनेके बाद स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न होनेवाले पसीनेकी बूँदोंसे उसका शरीर भाग्यकी ऊष्मा (ताप) से शून्य होकर जड़ बन गया ॥ ३८६ ॥ अब उस रागान्ध राजाने हंसी नामकी डोमबालिकाको महारानी बना दिया। अतएव राजरानियोंके बीच उसके ऊपर चमर ढुलने लगे ॥ ३८७ ॥ जिन लोगोंने उस डोमकन्याका जूठा खाया, वे राजा चक्रवर्मा तथा उसके बाद होनेवाले राजाओंके सभासद बन गये ॥ ३८८ ॥ डोमोंकी खुशामद करनेवाले मन्त्रियोंका अभ्युदय होने लगा और उन्हें अक्षपटल (रुपये-पैसेकी सम्हाल) के अधिकार प्राप्त हो गये ॥ ३८९ ॥ कुछ मूर्ख डोम स्वयं मंत्री नहीं बने। किन्तु जो बुद्धिमान् थे, वे मन्त्रियोंके समान राजकार्य करने लग गये ॥ ३९० ॥ मंत्री चोर, रानी चंडाली और डोम प्रियजन ऐसे राजा चक्रवर्माके लिए अब कौन-सा लोकोत्तर काम करना बाकी रह गया था ॥ ३९१ ॥ वह डोमिन रानी ऋतुस्नानके बाद आर्तव (ऋतुमती स्त्रीकी योनिसे निकलनेवाले रुधिर) के दाग लगे हुए वस्त्र अपने कृपापात्रोंको परितोषिकके रूपमें दिया करती थी। उन वस्त्रोंको पहनकर बहुतेरे मन्त्री बड़े अभिमानके साथ राजसभामें जाया करते थे ॥ ३९२ ॥ जिन थोड़ेसे राजकर्मचारियोंने राजकोपकी भी चिन्ता न करके उस श्वपाकीका जूठा नहीं खाया था, उन्हें यज्ञमें सोमपान करनेवाले ऋत्विजोंसे कम श्रेष्ट नहीं माना जा सकता ॥ ३९३ ॥ उस समय कश्मीरमण्डलमें कोई विशेष प्रभावशाली देवता नहीं था। यदि होता तो वह श्वपाकी उनके मन्दिरोंमें गये विना कैसे रहती ॥३९४॥ तिलद्वादशीके दिन हंसी रानीके साथ जानेवाले सामन्तोंसे अधिक स्वाभिमानी तो वे डोम ही थे, जो उस समय उसके साथ मन्दिरमें नहीं गये ॥ ३९५ ॥ राजकुटुम्बी होनेके कारण घमण्डी डोमोंके मुखसे निकली आज्ञा राजाकी आज्ञाके समान अकाट्य मानी जाती थी ॥ ३९६ ॥

राज्ञा प्रदत्ते रङ्गाय हेलुग्रामेऽग्रहारवत् । लिलेख पट्टोपाध्यायो न यदा दानपट्टकम् ॥३९७॥
तदाक्षपटलं गत्वा रङ्गः कोपात्तमब्रवीत् । रङ्गस्स हेलु दिण्णेति दासीसुत न लिख्यते ॥३९८॥
लिलेख सोऽथ संत्रासाद्रङ्गभ्रूभङ्गतर्जितः । को न राजनि दुर्वृत्ते भवेज्जातिव्यतिक्रमः ॥३९९॥
अन्त्यागमनपापस्य पापः पृच्छन्स निष्कृतिम् । विटैर्हास्यावहान्येव प्रायश्चित्तानि कारितः ॥४००॥
हिमेनैव हिमं शाम्येद्दुष्कृतेनैव दुष्कृतम् । सोऽनुशिष्टो विटैरेवं दधन्पामरसारताम् ॥४०१॥
पवित्रास्पर्शनोऽस्पृश्यास्पर्शपापं जिहासुना । तेनादूष्यत विप्रस्य योषिन्मासोपवासिनः ॥४०२॥
ततोऽपि पापिनोऽभूवन्केऽपि तस्मिन्क्षणे द्विजाः । तस्मादप्यग्रहारान्ये जगृहुर्गृहभोजिनः ॥४०३॥
चक्रे चक्रमठं सोऽपि पापः पाशुपताश्रयम् । तस्मिन्हतेऽर्धनिष्पन्नं तद्वधूर्यमयोजयत् ॥४०४॥
पूर्वोपकारान्विस्मृत्य डामरान्स निरागसः । नृपतिः श्वपचाकामी विश्वस्तांश्छद्मनाऽवधीत् ॥४०५॥
हन्तुं व्याजेन विश्वस्ताः केचिड्डामरतस्कराः । तस्थुस्तस्यान्तिके द्रोहच्छिद्रानेहःप्रतीक्षिणः ॥४०६॥
श्वपाकीशयनायामासन्नावस्करमन्दिरे । शौचस्थितं तं निःशस्त्रं ते रात्रौ प्रापुरेकदा ॥४०७॥
अथ तैः प्राप्तसमयैरकस्मात्तस्य सर्वतः । क्षिप्रं न्यपात्यताशेषघातशस्त्रपरंपरा ॥४०८॥
सुप्तस्तटाद्ध्रदे भ्रष्ट इव निद्रालसेक्षणः । प्रबुद्धः शस्त्रपातैः स व्यमुचद्भैरवारवान् ॥४०९॥
निःशस्त्रः शस्त्रमन्विष्यन्क्षरत्क्षतजनिर्झरः । अनुद्रुतोऽरिभिर्धावञ्छ्वपावेश्म विवेश तत् ॥४१०॥
अमात्तेहीति क्रन्दन्त्या श्वपाक्यालिङ्गिताङ्गकम् । तत्कुचोत्सङ्गलग्नाङ्गं जघ्नुस्तेऽनुप्रविश्य तम् ॥४११॥

स्वैरेव प्रेरिता दारैस्ते तस्य नृपतेः किल । मुमूर्षोर्जानुनी स्वैरं शिलया समचूर्णयन् ॥४१२॥
त्रयोदशाब्दे ज्येष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां क्षपाक्षणे । श्वपाकभोग्यः स श्वेवावस्करे तस्करैर्हतः ॥४१३॥
उन्मत्तावन्तिनामाथ पार्थसूनुर्दुराशयः । अभ्यपिच्यत वैधेयैः सचिवैः शर्वटादिभिः ॥४१४॥
श्वपाकीकामुके पापे निहते निशि तस्करैः ।
प्रजानां पाप्मना सोऽभूत्पापात्पापतरो नृपः ॥४१५॥
स्थगिता तत्कथापापस्पर्शभीत्या सरस्वती । कथंचित्प्रक्षुरस्वेव सेयं प्रस्थाप्यते मया ॥४१६॥
आसीत्पितृकुलं तस्य भक्ष्यं दुर्नृपरक्षसः । और्वाभिधस्य हव्याशविशेषस्येव जीवनम् ॥४१७॥
तस्यासंक्षगवातसटांकारकरोटिकाः । प्राणस्कन्दादिवाग्रज्ञाः सभायां मुख्यमन्त्रिणः ॥४१८॥
तेऽमात्याश्चारणत्वेन निर्लज्जास्तमरञ्जयन् । कालान्तरेण यैरेव भूमिपालैर्भविष्यते ॥४१९॥
पर्वगुप्तोऽभवत्तस्य सर्वेभ्योऽप्यधिकं प्रियः । आस्थाने नर्तनं कुर्वन्नपाकृतकटीपटः ॥४२०॥
आ तन्त्रिविप्लवाद्दृष्ट्वा कीटप्रायान्महीपतीन् । पर्वगुप्तः सर्वदाऽभूद्राज्यावाप्तिकृतोद्यमः ॥४२१॥
तदा निगूढराज्येच्छः सख्यं मुख्यैः स मन्त्रिभिः । पीतकोशैः प्रविदधे पञ्चभिर्भूभटादिभिः ॥४२२॥
भूभटः शर्वटश्छोजः कुमुदः सोऽमृताकरः । पर्वगुप्तेन संबन्धं चक्रिरे कोशपायिनः ॥४२३॥
गवाक्षसरसि प्राप्तश्रीजलौवागलद्‌द्विजः । संग्रामडामरगृहे यो रक्कः ख्यातपौरुषः ॥४२४॥
पदातिमात्रो भूपेन दृष्टशौर्यः स संयुगे । महोदरो महाकायः प्रापितो मुख्यमन्त्रिताम् ॥४२५॥
यादृशी तेन ददृशे देवी श्रीः सरसोऽन्तरे । तादृग्रक्कजयादेवीत्यभिधानेन निर्ममे ॥४२६॥

उस मरते हुए राजाकी वास्तविक रानियों द्वारा प्रोत्साहित डामरोंने राजाके घुटनोंको पत्थरोंसे कूँचकर चूर-चूर कर दिया ॥ ४१२ ॥ इस तरह ४०१३ लौकिक वर्षके ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमीको रात्रिके समय श्वपाकीके द्वारा उपभुक्त पापी राजा चक्रवर्मा शौचालयमें तस्करोंके द्वारा कुत्तेकी मौत मार डाला गया ॥ ४१३ ॥ तदनन्तर शर्वट आदि कतिपय मूर्ख मंत्रियोंने भूतपूर्व राजा पार्थके दुष्ट पुत्र उन्मत्त अवन्तिवर्माको सिंहासनासीन कर दिया ॥ ४१४ ॥ रात्रिके समय उस श्वपाकीकामुक पापी चक्रवर्माके चोरों द्वारा मारे जानेके पश्चात् प्रजाके परम दुर्भाग्यसे उस पापीसे भी बढ़कर महापापी कश्मीरका राजा बना ॥ ४१५ ॥ उस दुष्टकी पापमयी कथाके संस्पर्शसे भयभीत होकर मेरी कवितारूपिणी सरस्वती स्थगित-सी हो रही है, किन्तु मैं उसे डरी हुई घोड़ीकी भाँति किसी-किसी तरह आगे बढ़ा रहा हूँ ॥ ४१६ ॥ जैसे जलसे जायमान बडवानल जलको ही खाता है, वैसे ही उस दुष्ट राजारूपी राक्षसने अपने पिताके कुलका ही अपना आहार बनाया था ॥ ४१७ ॥ चुटकी बजाकर और नाकसे, कन्धोंसे, काँखसे तथा मस्तकपर आघात करके विभिन्न प्रकारके शब्द निकालनेवाले प्रमुख मंत्री उसकी सभामें विद्यमान थे ॥ ४१८ ॥ कालान्तरमें राजा बननेवाले उसके निर्लज्ज मंत्री भाँट बनकर उसका मनोरंजन करने लगे ॥ ४१९ ॥ राजसभामें एकदम नंगा होकर नाचनेवाला पर्वगुप्त उस राजाको सबसे अधिक प्रिय लगता था ॥ ४२० ॥ एक बार उस धूर्त पर्वगुप्तने तंत्रि-पदातियोंके विप्लवके बादवाले राजाओंको कीड़ोंकी तरह सत्त्वहीन देखकर स्वयं राजा बननेका उद्योग किया ॥ ४२१ ॥ किन्तु राज्य प्राप्त करनेकी कामना मनमें ही छिपाकर उसने उन शर्वट आदि तत्कालीन मंत्रियोंके साथ कोशपानपूर्वक मित्रता की ॥ ४२२ ॥ उसी समय भूभट, शर्वट, छोज, कुमुद और अमृताकार इन पाँचों मंत्रियोंने कोशपानपूर्वक उससे सन्धि भी की ॥ ४२३ ॥ उन्हीं दिनों संग्राम डामरके यहाँ गवाक्ष सरोवरमें साक्षात् श्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन करनेवाला एवं विख्यात वीर रक्क नामका एक ब्राह्मण रहता था ॥ ४२४ ॥ अकेले तथा पैदल होते हुए भी युद्धमें उसने राजाके समक्ष अपने उत्कृष्ट पौरुषका प्रदर्शन किया था। उसका उदर बड़ा था और देह भी लम्बी-चौड़ी थी। अतएव उसको राजाने प्रधान मंत्रीके पदपर बिठाया था ॥ ४२५ ॥ उस रक्क ब्राह्मणने गवाक्षसरोवरमें श्रीदेवीके जैसे स्वरूपका दर्शन किया था, हूबहू वैसी ही मूर्ति तथा रक्का

राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा धूर्तेनापजिहीर्षुणा । प्रेरितः पर्वगुप्तेन भूभृच्चक्रे कुलक्षयम् ॥४२७॥
तेन लुण्ठितसर्वस्वः पार्थस्तस्थौ कलत्रवान् । श्रीजयेन्द्रविहारान्तः श्रमणैर्दत्तभोजनः ॥४२८॥
शिशूञ्शंकरवर्मादीन्भ्रातॄन्द्वारान्निरोध्य सः । तत्र स्थितानानशनैरुत्क्रान्तासूनकारयत् ॥४२९॥
उद्यतः पितरं हन्तुं मन्त्रिणोऽनुमतप्रदान् । वद्धपट्टान्व्यधाद्बद्धनिगडानितरान्पुनः ॥४३०॥
एकदा मन्त्रिसामन्ततन्त्रिकायस्थसैनिकाः । पार्थं तदाज्ञामासाद्य निशायां पर्यवेष्टयन् ॥४३१॥
म्लानक्षीणाम्वरां पत्नीं रुद्धद्वारां निपात्य ते । आलिङ्ग्यमानां क्रन्दद्भिस्तर्णकैरिव दारकैः ॥४३२॥
केशानालम्ब्य कर्षन्तः शर्करोत्पाटिताङ्गकम् । विपन्नं गोकुलाद्दान्तमिव निर्हृत्य तं गृहात् ॥४३३॥
क्षुत्क्षामरूक्षं क्रन्दन्तं निजघ्नुर्नग्नविग्रहम् । चण्डाला इव निःशङ्कं कुमुदाद्या नृपप्रियाः ॥४३४॥

पितरं निहतं श्रुत्वा राजा संजातकौतुकः ।
प्रातः स्वसचिवैः सार्धं गत्वा हृष्टोऽथ दृष्टवान् ॥४३५॥

अत्राङ्गेऽस्य प्रहारोऽयं मदत्त इति वादिनः । तस्याग्रे राजपुरुषाः शशंसुर्निजविक्रमम् ॥४३६॥
न्यक्कृत्य स्वीकृतो राज्ञा तदा तद्रञ्जनोद्यतः । अचूचुदत्पर्वगुप्तो देवगुप्ताभिधं सुतम् ॥४३७॥
पार्थस्य निहतस्याङ्गे सोऽक्षिपत्क्षुरिकां ततः । रञ्जितो येन भूपालो जातहासोऽभवच्चिरम् ॥४३८॥
डामरैर्लुण्ठितो देशः प्रणाशे चक्रवर्मणः । उत्थाप्य पापान्कायस्थांस्तेन भूयोपि दण्डितः ॥४३९॥
संप्रेरितः कुसचिवैः शस्त्राभ्यासं चकार सः । पाटयन्क्षुरिकाघातैः कोटवीस्तनकोटरम् ॥४४०॥

देवीका मन्दिर वनवाकर उसमें उस मूर्तिको स्थापना की ॥ ४२६ ॥ इधर धूर्त पर्वगुप्तने अकण्टक राज्य प्राप्त करनेकी अभिलापासे उस नये राजाका प्रेरित करके राजकुलके सभी मनुष्योंको मरवा डाला ॥ ४२७ ॥ उस राजा उन्मत्त अवन्तिवमाने अपने पिता पार्थका सर्वस्व छीन लिया। जिससे वह जयेन्द्र विहारमें जाकर रहने लगा। वहाँकि श्रमण (साधु) लोग उसे भोजन देते थे ॥ ४२८ ॥ उस दुष्टने अपने छोटे भाई शंकरवर्मा आदि नन्हे-नन्हे वच्चोंको कारागारमें भूखे रखकर मार डाला ॥ ४२९ ॥ वह अपने पिता पार्थको भी मार डालना चाहता था। इस कार्यमें जो मत्री सहमत हो जाते थे, उन्हें वह रेशमी वस्त्र पहनाता था और जो विरोध करते थे, उनके पैरोंमें बेड़ियाँ डाल दी जाती थीं ॥ ४३० ॥ तदनन्तर एक रातमें उसकी आज्ञासे अनेक मन्त्रियों, सामन्तों, तन्त्रियों तथा कायस्थोंने जाकर पार्थके निवासस्थान जयेन्द्रविहारको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४३१ ॥ तव मलिन, दुर्वल तथा फटे वस्त्र धारण किये पार्थकी पत्नी द्वारपर आकर रोने लगी। उसे उन दुष्टोंने धक्के देकर अलग कर दिया। उसके भयभीत वालक गायके वछड़ोंकी तरह रोते हुए माताके शरीरसे चिपके हुए थे ॥ ४३२ ॥ उसी समय कुमुद आदि राजाके प्रिय पुरुष उन सवको हटाकर घरके भीतर घुस गये और गोशालाके पशुकी तरह पार्थको केश पकड़कर वाहर घसीट ले आये। कंकड़ोंकी रगड़से उसका सारा शरीर छिल गया था। भूखके कारण वह वहुत ही दुर्वल हो गया था। ऐसी विपन्न अवस्थामें उस नंगे और चिल्लाते हुए राजाके पिताको चण्डालोंके समान उन आततायियोंने मार डाला ॥ ४३३ ॥ ४३४ ॥ पिताकी मृत्युका समाचार सुनकर राजाको बड़ा कौतूहल हुआ और दूसरे दिन सवेरे मंत्रियोंके साथ वहाँ जाकर वड़ी प्रसन्नताके साथ उसने मृत पिताके शवको पड़ा देखा ॥ ४३५ ॥ उस समय राजाके समक्ष जाकर वे राजपुरुष 'मैंने इसके इस अंगपर प्रहार किया था' और 'मैंने इसपर' ऐसा कहते हुए वे अपने अपने-अपने पराक्रमकी सराहना करने लगे ॥ ४३६ ॥ उस समय राजाके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः अनुगृहीत पर्वगुप्तने राजाको प्रसन्न करनेके लिए देववदत्त नामके अपने पुत्रको प्रेरित किया ॥ ४३७ ॥ उसके पुत्रने पार्थके मृत शरीरमें छुरा भोंक दिया। उसके इस कार्यसे प्रसन्न होकर राजा उन्मत्त अवन्तिवर्मा वडी देर तक हँसता रहा ॥ ४३८ ॥ चक्रवर्माके मरणोपरान्त डामरोंने उस देशको लूट लिया था, किन्तु इस नये राजाने पापी कायस्थोंको सारा अधिकार देकर उस देशको पहलेसे भी अधिक दुखी वना दिया ॥ ४३९ ॥ अपने दुष्ट मंत्रियोंकी सलाहपर शस्त्रविद्याका अभ्यास करते हुए उसने नंगी स्त्रियोंके

गर्भिणीनां च जठरं गर्भान्द्रष्टुमपाटयत् । काठिन्यस्य परीक्षार्थमङ्गं कर्मकृतामपि ॥४४१॥
प्रतिग्रहाग्रहाद्धोराद्वा वधभयाद्द्विजाः । प्रत्यगृह्णन्नग्रहारांस्तस्मादपि नृपाधमात् ॥४४२॥
क्रूरपापानुरूपेण क्षयरोगेण पार्थिवः । ततोऽनुबाध्यमानोऽभूदपर्यन्तव्यथातुरः ॥४४३॥
व्यथया तस्य तादृश्या प्रजा एव न केवलम् । तुतुषुर्निजशुद्धान्तमहिष्योऽपि चतुर्दश ॥४४४॥
अथान्तःपुरदासीभिर्यः कुतश्चिदुपाहृतः । क्षितिपालात्प्रजातोऽयमिति प्रख्यापितो मृषा ॥४४५॥

तं शिशुं शूरवर्माख्यं विनिवेश्य नृपासने ।
हस्ते निक्षिप्य सामन्तसचिवैकाङ्गतन्त्रिणाम् ॥४४६॥

कम्पनाधिपतेर्बद्धद्वेपः कमलवर्धनात् । बिभ्यन्मडवराज्यस्थाड्डामरोत्पाटनक्षमात् ॥४४७॥

आसन्ननिरयप्राप्तिः पितृहा पार्थिवाधमः ।
शुचौ पञ्चदशाब्दस्य प्रजापुण्यैः क्षयं ययौ ॥ चक्कलकम् ॥४४८॥

पितृघातिसुतो राजा जयस्वामिविरोचनम् । आषाढशुक्लसप्तम्यां शिशुर्द्रष्टुं विनिर्ययौ ॥४४९॥
नवा विरेजे राजश्रीर्बालस्य पृथिवीपतेः । कृपाणवेणिललिता छत्रचामरहासिनी ॥४५०॥
अत्रान्तरे जवायातैश्चारैरावेदितश्रुतः । सामन्तैर्नगरोपान्तं प्राप्तः कमलवर्धनः ॥४५१॥
एकाङ्गतन्त्रिसामन्तस्यालहारकसादिभिः । नगरं प्रविशञ्श्रान्तः समं सैन्यैररुध्यत ॥४५२॥
विरुद्धडामरानीकान्युद्ध्वा मार्गेषु निर्गतः । श्रान्तोऽप्यसौ वैरिसेनामजयद्विक्रमोर्जितः ॥४५३॥
सहस्रमश्ववाराणां विद्राव्य तुरगैर्मितैः । राजधानीमसंरुद्धः प्रविवेश ततः क्षणात् ॥४५४॥

तं लब्धजयमाकर्ण्य सैन्यैस्त्यक्तं पलायितैः ।
एकाकिनं क्वाप्यनयज्जननी शिशुभूपतिम् ॥४५५॥

स्तनोंका मध्यभाग छुरेसे चीर देता था ॥ ४४० ॥ वह राजा गर्भ देखनेके लिए गर्भिणी स्त्रियोंके गर्भाशय चीर डालता था और श्रमिकाकी सहनशक्तिकी परीक्षा लेनेके लिए वह उनके अङ्ग कटवा दिया करता था ॥ ४४१ ॥ धनप्राप्तिके लोभसे अथवा मृत्युदण्डके भयसे उस अधमने भी ब्राह्मणोंको अग्रहार दिये थे ॥ ४४२ ॥ बादमें अपने क्रूर पापोंके परिणामसे उसको क्षयरोग हो गया, जिससे उसे अपार कष्ट होने लगा ॥ ४४३ ॥ उसका यह कष्ट देखकर केवल प्रजाको ही नहीं, बल्कि उसके अन्तःपुरकी चौदहों रानियोंको भी सन्तोष हुआ ॥ ४४४ ॥ तत्पश्चात् अन्तःपुरकी दासियों द्वारा कहींसे उड़ाकर लाये हुए एवं 'यह राजपुत्र है' इस प्रकारकी मिथ्या प्रसिद्धि करके शूरशर्मा नामका बालक राजा बना दिया गया। राजाने उसे सामन्तों, सचिवों, एकांगों तथा तंत्रियोंको सौंप दिया और स्वय मडवराज्यमें रहकर डामरोंका दमन करनेवाले कम्पनाधिपति कमलवर्धनसे डरता हुआ वह पितृघाती तथा नरकगामी अधम राजा उन्मत्त अवन्तिवर्मा प्रजाके पुण्यसे ४०१५ लौकिक वर्षके वैशाखमासमें मर गया ॥ ४४५–४४८ ॥ उस पितृघातीका पुत्र वह बालक राजा शूरशर्मा आषाढ शुक्ल सप्तमीको जयस्वामी नामक सूर्यनारायणका दर्शन करनेके निमित्त राजभवनसे बाहर निकला ॥ ४४९ ॥ उस समय उस राजाकी कृपाणरूपी वेणीसे मनोहर एवं छत्र-चमररूपी हास्यसे अलंकृत राज्यलक्ष्मी बहुत ही सुन्दर लग रही थी ॥ ४५० ॥ इसी बीच शीघ्रतापूर्वक दौड़कर आये हुए गुप्तचरोंकी सूचनापर अपने सामन्तोंके साथ कमलवर्धन नगरके पास आ धमका ॥ ४५१ ॥ थके होनेपर भी एकांगों, तन्त्रियों, सामन्तों तथा स्यालहारक घोड़सवारोंने नगरमें प्रविष्ट होते हुए कमलवर्धनको रोका ॥ ४५२ ॥ यद्यपि रास्तेमें जगह-जगह विरोधी डामरोंसे लड़ते-लड़ते वह थक गया था, फिर भी उस पराक्रमी वीरने सारी शत्रुसेना जीत ली ॥ ४५३ ॥ अपने थोड़ेसे घोड़सवारों द्वारा शत्रुके एक हजार अश्वारोहियोंको परास्त करके कमलवर्धन क्षणभरमें राजधानीमें घुस गया ॥ ४५४ ॥ यह समाचार सुना तो उस बालक राजा शूरशर्माके सैनिक राजाको छोड़कर

प्राक्कर्मभिर्मोहितो वा प्रेरितो वा कुमन्त्रिभिः । नाभूत्सिंहासनारूढो मूढः कमलवर्धनः ॥४५६॥
तदानीं स्वगृहान्यातो राज्यकामोऽन्यवासरे । संघट्टयन्द्विजान्सर्वानचूचुददनीतिवित् ॥४५७॥
प्रौढं शक्तं च कुरुत क्ष्मापं कंचित्स्वदेशजम् ।
मामेव कुर्युः सामर्थ्यादिति मूढः स चिन्तयन् ॥४५८॥
एकाकिनीं रहः क्षीवां लब्ध्वा दुर्लभयोषितम् । अप्रौढोऽनुपभुज्यान्यदिने दूत्यार्थयेत यः ॥४५९॥
विभूतिं रभसावाप्तां यश्च संत्यज्य तत्क्षणम् ।
नीत्या कामयतेऽन्येद्युः शोच्यस्ताभ्यां परोऽस्ति कः ॥ युग्मम् ॥४६०॥
अथोत्पलकुले छिन्ने स्थूलकम्बलवाहिनः । अनृङ्गोक्षनिभा विप्राः समगंसत गोकुले ॥४६१॥
धूमनिर्दग्धकूर्चानां राज्ञस्तांस्तांश्चिकीर्षताम् । राज्यव्यवस्थोपन्यासस्तेषां चिरमवर्धत ॥४६२॥
वैमत्येन मिथस्तेषां नान्यः कोऽप्यभ्यषिच्यत ।
कूर्चा भाषणनिष्ठ्यूतैः स्वकूर्चष्ठीवनैः परम् ॥४६३॥
राज्यार्हान्वेषिभिर्विप्रैः प्राप्तः स्वस्मृतिक्लृप्तये । अवार्यतेष्टकाघातैर्मुग्धः कमलवर्धनः ॥४६४॥
पञ्चषाणि दिनान्येव यावत्तस्थुर्द्विजातयः । काहलाकांस्यतालादिवाद्यकोलाहलाकुलम् ॥४६५॥
उत्पताकध्वजच्छत्रशोभि युग्यार्पितासनम् ।
अशेषं पारिषद्यानां तावत्तत्रामिलद्बलम् ॥ युग्मम् ॥४६६॥
स्वपत्नीं बन्धकीभूतामिवान्यवशवर्तिनीम् । वीक्ष्य राजश्रियं शोचन्नासीत्कमलवर्धनः ॥४६७॥
पितृव्यातिवधूश्छन्नपुरराज्यार्थिनी ततः । प्राहिणोद्राजपुरुषान्पार्श्वं प्रायोपवेशिनाम् ॥४६८॥

भाग गये और उसकी माता वालक राजाको लेकर किसी अज्ञात स्थानको चली गयी ॥ ४५५ ॥ अपने मूर्ख मन्त्रियोंके परामर्श अथवा किसी जन्मान्तरीण कर्मके मोहवश कमलवर्धन राजगद्दीपर नहीं बैठा ॥ ४५६ ॥ उस दिन वह अपने घर चला गया। दूसरे दिन उस नीतिज्ञानहीन कमलवर्धनने सोचा कि 'प्रौढ़ तथा सामर्थ्यशाली समझकर लोग मुझे ही राजा बनायेंगे'। ऐसा सोचकर उसने ब्राह्मणोंको एकत्र किया और कहा—'अपने देशमें उत्पन्न किसी प्रौढ़ एवं पराक्रमी पुरुषको आप लोग राजा बनाइए' ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ स्त्रीको एकान्तमें मदिरासे मत्तावस्थामें पा करके भी संकोचवश उस समय उसके साथ भोग न करके दूसरे दिन दूती भेजकर संभोगकी अभिलाषा प्रकट करता है। उसी प्रकार जो मनुष्य बरबस पास आयी हुई विभूतिको उस समय त्यागकर दूसरे दिन नीतिसे प्राप्त करना चाहता है, इन दोनों प्रकारके पुरुषोंसे अधिक शोचनीय भला और कौन हो सकता है ? ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥ इस तरह उत्पलकुलका नाश हो जानेपर मोटे-मोटे कम्बल ओढ़े तथा शृंगहीन बैलोंके समान ब्राह्मणगण गोकुलनामके एक बहुत बड़े मन्दिरमें एकत्र हुए ॥ ४६१ ॥ वहाँ राजा बनाने योग्य किसी व्यक्तिका अन्वेषण करते हुए उन धूमदग्धकूर्च (धुएँसे जली दाढ़ीवाले) ब्राह्मणोंमें बड़ी देरतक विचार-विमर्श चलता रहा ॥ ४६२ ॥ पारस्परिक मतभेदके कारण उस समय किसीके भी मस्तकपर राज्याभिषेकका जल नहीं गिर सका। हाँ, उनके भाषणके समय उड़नेवाले थूकसे उनकी दाढ़ियोंका अभिषेक अवश्य हो गया ॥ ४६३ ॥ जब वे विप्रगण राजा बनाने योग्य व्यक्तिका अन्वेषण कर रहे थे, उस समय अपनी याद दिलानेके लिए कमलवर्धन वहाँ गया था। किन्तु उसे उन लोगोंने ईंटों और पत्थरोंसे मार-मारकर भगा दिया ॥ ४६४ ॥ इस तरह पाँच छः दिन तक उनका इस विषयपर वाद-विवाद चलता रहा। इतनेमें चमर, छत्र, पताका आदि लिये काहला-कांस्यताल आदि वाद्योंकी ध्वनिका तुमुल कोलाहल मचाते और नाना प्रकारके वाहनोंपर अपने-अपने देवताओंको बैठाये हुए विभिन्न स्थानोंकी ब्राह्मणपरिषदोंके बहुतेरे जत्थे वहाँ जा पहुँचे ॥ ४६५ ॥ ४६६ ॥ उस समय बेचारा कमलवर्धन पराये घर बन्धक रक्खी हुई अपनी पत्नीके समान पराधीन राज्यलक्ष्मीको देखकर शोकमग्न हो रहा था ॥ ४६७ ॥ उधर पितृ-

पिशाचकपुरग्रामे वीरदेवाभिधस्य यः । कुटुम्बिनः कामदेवनामा सूनुरजायत ॥४६९॥
स शिक्षिताक्षरो लब्ध्वा मेरुवर्धनमन्दिरे । बालाध्यापकतां स्नानशीलादिगुणभूषितः ॥४७०॥
क्रमाद्गञ्जाधिकार्यासीदथ तस्यात्मजः शनैः । लेभे गञ्जाधिकारित्वं राज्ञः शंकरवर्मणः ॥४७१॥

यः प्रभाकरदेवोऽपि सुगन्धाच्छन्नकामुकः ।
लक्ष्म्या सरस्वतीद्वेषाद्देशविप्लवतोऽथ वा ॥४७२॥

विद्वान्यशस्करो नाम तत्पुत्रोऽन्यन्तदुर्गतः । सख्या फल्गुणकाख्येन समं देशान्तरं गतः ॥४७३॥
सुस्वप्नदर्शनैः पीठदेव्याशीर्भिश्च हर्षुलः । तस्मिन्प्रसङ्गे सोत्साहः प्रत्यावृत्तो निजां भुवम् ॥४७४॥

पितृघातिवधूदूतैर्यातैर्बोधयितुं द्विजान् ।
मध्ये गृहीतो वाग्मित्वात्प्रविवेश तदन्तिकम् ॥ कुलकम् ॥४७५॥

दृष्ट्वैव तं दैववशादेकमत्यस्पृशो द्विजाः । ध्वनिं राजाऽयमेवास्त्विरत्युच्चकैरुदचारयन् ॥४७६॥
अथाभ्यषिच्यत क्षिप्रं विप्रैरेत्य यशस्करः । क्ष्माभृतिप्रौढसामर्थ्यैः सानुमानिव तोयदैः ॥४७७॥

दग्धं वेणुवनं परस्परमहासंघर्षजेनाग्निना
तन्मूलोद्भृतिरम्भसा क्षणधृतोद्रेकेण संपादिता ।
वात्यावेगविपाटितं विटपिनं प्राप्तं कुतश्चिद्दृढां
रूढिं नेतुमहो महाद्रिकुहरे धात्रा न किं सूत्रितम् ॥४७८॥

भृत्यप्रेरणया वंशं पार्थजः स्वं न चेद्दहेत् । तत्पुत्रोत्पाटनं कुर्यान्न चेत्कमलवर्धनः ॥४७९॥

अनुच्चकुलजातस्य दरिद्रस्याटतः क्षितिम् ।
तद्यशस्करदेवस्य राज्यप्राप्तिः कथं भवेत् ॥४८०॥

धार्ती उन्मत्त अवन्तिवर्माकी स्त्रीने भी अपने पुत्रको राज्य प्राप्त करानेके अभिप्रायसे उन अनशनकारी ब्राह्मणोंके पास गुप्तरूपसे अपने राजपुरुषोंको भेजा था ॥ ४६८ ॥ पिशाचपुर ग्राममें एक अच्छे गृहस्थ वीरदेवका पुत्र कामदेव रहता था ॥ ४६९ ॥ वह विद्वान् तथा स्नान-सन्ध्या आदि सदाचारसे सम्पन्न था । इसीलिए वह मेरुवर्धन नामक मंत्रीके यहाँ बालकोंका अध्यापक हो गया था ॥ ४७० ॥ तदनन्तर वह गंजाधिकारी (खजांची) हो गया। मेरुवर्धनका पुत्र प्रभाकरदेव राजा शंकरवर्माकी कृपासे राज्यका गंजाधिकारी बन गया था ॥ ४७१ ॥ वह गुप्तरूपसे राजरानी सुगन्धाका उपपति (यार) भी बन चुका था। कामदेवका पुत्र यशस्कर लक्ष्मी तथा सरस्वतीके आपसी द्वेष अथवा देशविप्लवके कारण वह विद्वान् होता हुआ भी अतिशय दरिद्र था। अतएव वह फल्गुणक नामक अपने मित्रके साथ परदेश चला गया ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥ वहाँ अच्छे स्वप्न देख तथा पीठदेवियों द्वारा दिये गये आशीर्वादसे हर्षित यशस्कर उसी समय अपनी जन्मभूमि वापस लौटा था ॥ ४७४ ॥ तभी उन ब्राह्मणोंको समझानेके लिए चले हुए पितृघाती उन्मत्त अवन्तिवर्माकी पत्नीके दूतोंने अत्यन्त चतुर वक्ता समझकर यशस्करको भी अपने साथ ले लिया ॥ ४७५ ॥ वहाँ पहुँचनेपर भाग्यवश यशस्करको देखते ही सब ब्राह्मणोंने एकमतसे चिल्ला करके कहा—'यही कश्मीरका राजा होगा' ॥ ४७६ ॥ बस, धरतीको धारण करनेकी प्रौढ़ शक्ति रखनेवाले यशस्करका पर्वतपर जल बरसाते हुए बादलोंके समान उन ब्राह्मणोंने राज्याभिषेक कर दिया ॥ ४७७ ॥ जैसे परस्परके महासंघर्षसे उत्पन्न दावानल द्वारा सारा वेणुवन जल जाता है और प्रबल वर्षासे उन बाँसोंकी जड़तक उखड़कर बह जाती है। इसी तरह आँधीके वेगसे उड़कर आये हुए किसी वृक्षकी जड़को पर्वतकी कन्दराओंमें या अन्यत्र कहीं फिरसे दृढमूल करनेके लिए विधाता कौन-कौनसे उपाय नहीं करता ॥ ४७८ ॥ यदि दुष्टोंकी प्रेरणासे पार्थका पुत्र अपना कुल न नष्ट करता और उसके बाद कमल-वर्धन उसके बालकको राज्यच्युत न कर देता तो एक साधारण वंशमें उत्पन्न तथा दरिद्रदशामें पृथिवीपर मारे-

पद्भ्यां व्रजन्निरनुगो ददृशे जनेन यस्तत्क्षणं निखिललोकसमानमूर्तिः ।
साम्राज्यरम्यममुमीक्षितुमास्त नारीदृङ्नीरजस्तबकितो नरनाथमार्गः ॥४८१॥
नृपतिवसतिं प्रत्यागच्छन्यशस्करभूपतिः पुरमृगदृशामाशीर्मध्ये वचोऽपि विवक्षितम् ।
स्तिमितवलितापाङ्गं शृण्वन्निमीलदहंकृतिः कृतपरिकरस्तज्ज्ञैर्यज्ञे प्रजापरिपालने ॥४८२॥
प्रतिमितरविदीपोद्भासिशुभ्रातपत्रप्रचयरजतपात्राह्वत्रितारात्रिकाश्रीः ।
अथ मुखरितमार्गोमङ्गलैरङ्गनानामवनिहरिणधामा राजधाम प्रपेदे ॥४८३॥

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनो कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

त्र्यधिकायां समाशीतौ मासेषु च चतुर्ष्वगात् । कल्यपालाष्टकं रथ्याहृतस्त्रीसचिवा अपि ॥



मारे फिरनेवाले यशस्करदेवको राज्य कैसे प्राप्त होता ? ॥ ४७९ ॥ ४८० ॥ कुछ ही देर पहले लोगोंने जिसको सामान्य मनुष्योंकी तरह अकेले पैदल चलते देखा था, उसी यशस्करदेवको जब राज्यपद प्राप्त हो गया और जब वह सेनाके साथ समारोहपूर्वक राजमार्गपर चला तो उसे देखनेके लिए एकत्र नगरवधूटियोंके नेत्र-रूपी कमलोंसे सारा राजमार्ग पुष्पित हो उठा ॥ ४८१ ॥ इस राजपथपर चलकर राजभवन जाते समय मार्गमें एकत्रित मृगनयनी ललनाओं द्वारा उच्चरित आशीष तथा जयजयकारके घोष सुनकर निरहंकारभावसे प्रेमभरी मुसकानके साथ नयनोंके संकेत द्वारा 'मैंने सुचारुरूपसे प्रजाके संरक्षणका निश्चय कर रक्खा है' इस प्रकारके हार्दिक भाव प्रकट करते हुए राजा यशस्करके अभिप्रायको वहाँके विज्ञजनोंने भलीभाँति समझ लिया ॥ ४८२ ॥ प्रतिबिम्बायमान सूर्यरूपी दीपकसे अलंकृत एवं चाँदीके पात्र सरीखे श्वेत छत्र द्वारा आरतीकी शोभाको धारण करता हुआ वह धरतीका चन्द्रमा नगरवासियोंके आशीर्वाद तथा जयजयकारके घोषसे मुखरित राजभवनके भीतर गया ॥ ४८३ ॥

इस तरह कश्मीरके महामात्य चम्पकप्रभुपुत्र महाकवि कल्हणकृत राजतरंगिणीमें पंचमतरंग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

इस तरंगमें ८३ वर्ष ४ मासमें ८ कल्यपाल (कलवार) तथा मार्गसे पकड़कर राजा बनाये हुए संकट-वर्मा, सुगन्धादेवी और एक मंत्री शंकरवर्धनके राज्यकालका वर्णन किया गया है ।



अथ षष्ठस्तरङ्गः ।

नेदं पर्णसमीरणाशनतपोमाहात्म्यमुक्षोरगौ पश्यैतावत एव संप्रति कृतौ तन्मात्रवृत्ती बहिः ।
प्रेम्णैवार्धमिदं चराचरगुरोः प्रापेयमात्मस्तुतीरेवं देववधूमुखाच्छ्रुतिसुखाः शृण्वन्त्यपर्णावतात् ॥ १ ॥
इच्छन्नलङ्घनीयत्वमथ कक्ष्यां विलङ्घयन् । प्रतीहारान्द्विजा दूरं वार्यन्तामिति सोऽन्वशात् ॥२॥
वेत्रिवित्रास्यमानांस्तु तान्कृताञ्जलिरब्रवीत् । राज्यप्रदाश्च पूज्याश्च यूयं नो दैवतैः समाः ॥३॥
राज्यदानाभिमानेन वर्तिष्यत मदोद्धताः । यत्कार्यकालादन्यत्र नागन्तव्यं मदन्तिकम् ॥४॥
तदाकर्ण्याखिलो लोकस्तमधृष्यममन्यत । व्यस्मरत्सहसंवाससंभृतमपि लाघवम् ॥५॥
खिलीभूताः पूर्वराजव्यवस्थाः प्रतिभाबलात् । उन्नीतवान्स सुकविः प्राक्कविप्रक्रिया इव ॥६॥
अचौराऽभूत्तथा भूमिर्यथा रात्रौ वणिक्पथाः । अतिष्ठन्विवृतद्वारा मार्गाश्चाविघ्निताध्वगाः ॥७॥
प्रत्यवेक्षापरे तस्मिन्नासीत्सर्वापहारिणाम् । कृष्यध्यक्षत्वमुत्सृज्य कृत्यं नान्यन्नियोगिनाम् ॥८॥
ग्राम्याः कृषिपराधीना नापश्यन्राजमन्दिरम् । विप्राः स्वाध्यायसंसक्ता नाकुर्वञ्शस्त्रधारणम् ॥९॥
न विप्रगुरवः साम गायन्तो मदिरां पपुः । न तापसाः पुत्रदारपशुधान्यान्यढौकयन् ॥१०॥
न मूर्खगुरवो मत्स्यापूपयागविधायिनः । चक्रिरे स्वकृतैर्ग्रन्थैस्तर्कागमपरीक्षणम् ॥११॥
नादृश्यन्त च गेहिन्यो गुरुदीक्षोत्थदेवताः । कुर्वाणा भर्तृशीलश्रीनिषेधं मूर्धधूननैः ॥१२॥

'हे भगवती ! यह पत्ते तथा वायुके भक्षणकी महिमा नहीं है कि जो आपने अखिल चराचरगुरु भगवान् शंकरके शरीरका अर्धभाग प्राप्त किया है, बल्कि आपको अपने प्रेमके प्रभावसे यह सुयोग प्राप्त हुआ है। यदि ऐसा न होता तो शंकरजीका नन्दी नित्य पत्ते खाता है और उनका साँप सदा वायु पीता है, फिर भी ये दोनों सदा शंकरजीके शरीरसे बाहर ही रहा करते हैं'। इस प्रकार देवाङ्गनाओंके मुखसे इन श्रुतिमधुर एवं प्रशंसा भरे वचन सुनती हुई अपर्णा (पार्वतीदेवी) हम सबकी रक्षा करे ॥ १ ॥ राजमहलकी कक्ष्याको लाँघते हुए राजा यशस्करने अलंघनीय बननेकी अभिलाषावश पीछे-पीछे आनेवाले ब्राह्मणोंको रोक देनेके लिए अपने द्वारपालोंको आज्ञा दी ॥ २ ॥ उन वेत्रधारी प्रतिहारों द्वारा रोके जानेपर दुखी ब्राह्मणोंसे राजाने हाथ जोड़कर कहा—'हे विप्रो ! आप ही लोगोने मुझे राजा बनाया है। अतएव आप मेरे लिए देवता सदृश पूज्य हैं ॥ ३ ॥ किन्तु मुझको यह आशंका है कि मुझे राज देनेके अभिमानसे मदोन्मत्त होकर आपलोग उच्छृङ्खल व्यवहार करेंगे। अतएव बिना किसी कामके आपलोग मेरे पास न आइएगा' ॥ ४ ॥ राजाके वचन सुनकर ब्राह्मणोंने उसे अधृष्य समझ लिया और पूर्वकालीन सहवाससे उत्पन्न लघुताको वे एकदम भूल गये ॥ ५ ॥ जैसे कोई सुकवि अपनी प्रतिभाके बलसे प्राचीन कविसंप्रदायकी परिपाटीको पुनरुज्जीवित करता है, उसी तरह राजा यशस्करने अपनी प्रतिभाके चमत्कारसे प्राचीन राजाओंकी विशृंखलित राज्यव्यवस्थाको फिरसे जीवित किया ॥ ६ ॥ उसके राज्यसे चोरोंका इस प्रकार अभाव हो गया था कि सारी रात दूकानदारोंकी दूकाने खुली पड़ी रहती थी और रास्तेमें यात्रियोंको लुटेरोंका भय नहीं रह गया था ॥ ७ ॥ उस राजाकी दृष्टि सर्वत्र रहती थी, इसलिए सर्वस्व डकार जानेवाले राजकर्मचारियोंको खेती-बारीकी देखभाल करनेके सिवाय और कोई काम ही नहीं रह गया था ॥ ८ ॥ उस समय ग्रामीणगण कृषिकार्यमें लग गये। उन्हें कभी राजद्वार देखनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। ब्राह्मण लोग शस्त्र त्यागकर विद्याध्ययनमें लग गये थे ॥ ९ ॥ सामगान करनेवाले ब्राह्मण मदिरा नहीं पीते थे और तपस्वियोंने पुत्र, स्त्री, घर, पशु तथा धान्योंका संग्रह सर्वथा त्याग दिया था ॥ १० ॥ मत्स्ययज्ञ तथा अनूपयज्ञका उपदेश देनेवाले मूर्ख गुरु स्वनिर्मित एवं कपोलकल्पित ग्रन्थों द्वारा अपने परम्परागत आगमग्रन्थोंका संशोधन नहीं करते थे ॥ ११ ॥ गृहस्थोंकी गृहिणियाँ उन गुरुओंसे दीक्षा लेकर

कार्तान्तिको भिषक्सभ्यो गुरुर्मन्त्री पुरोहितः। दूतः स्थेयो लेखको वा न तदाऽभूदपण्डितः ॥१३॥
प्रायोपवेशाधिकृतैर्बोधितेन महीभृता। प्रायोपविष्टो निकटं प्रापितः कश्चिदब्रवीत् ॥१४॥
अहमाढ्योऽभवं पूर्वं वास्तव्योऽत्र महीपते। निष्किंचनत्वं शनकैरगच्छं दैवयोगतः ॥१५॥
उत्तमर्णैः पीडितस्य प्रवृद्धर्णस्य तस्य मे। निश्चयोऽभूदृणं छित्वा परिभ्रान्तुं दिगंतरे ॥१६॥
अथ विक्रीय सर्वस्वमृणं शोधयता मया। महाधनाय वणिजे विक्रीतं निजमंदिरम् ॥१७॥
भार्यामुद्दिश्य भर्तव्यामेक एव तु वर्जितः। सोपानकूपो विक्रीतान्महतो वेश्मनस्ततः ॥१८॥
निदाघे पुष्पताम्बूलीपर्णाद्यत्रातिशीतले। न्यस्यद्भिर्मौलिकैर्दत्तात्सा जीवेद्भाटकादिति ॥१९॥
ततो दिगन्तराद्भ्रान्त्वा विंशत्या वत्सरैरहम्। लब्धाल्पवित्तः संप्राप्तो जन्मभूमिमिमां पुनः ॥२०॥
अन्विष्यता मया साध्वी स्ववधूर्ददृशेऽथ सा। विवर्णदेहा जीवंती प्रेष्यात्वेनान्यवेश्मसु ॥२१॥
किं दत्तजीविकाऽपि त्वमीदृशीं वृत्तिमाश्रिता। मयेति सा सदुःखेन पृष्टा स्वोदन्तमब्रवीत् ॥२२॥
सोपानकूपं संप्राप्ता त्वयि याते दिगन्तरम्। लगुडैस्ताडयित्वाऽहं वणिजा तेन वारिता ॥२३॥
तदन्या कास्त मे वृत्तिरित्युक्त्वा विरराम सा। तदाकर्ण्य निमग्नोऽहमन्तरे शोककोपयोः ॥२४॥
कृतप्रायोपवेशोऽथ स्थेयैस्तैस्तैः पदे पदे। प्रत्यर्थिनो दत्तजयैः किमप्यस्मि पराजितः ॥२५॥
जडत्वाद्वेद्मि न न्यायं न विक्रीतो मया पुनः। सोपानकूप इत्यस्मिन्नर्थे प्राणा इमे पणाः ॥२६॥
सोऽहं विपद्ये क्षीणार्थो द्वारि शास्तुस्तव ध्रुवम्। वृजिनादस्ति चेद्भीतिर्वस्तु निर्णीयतां स्वयम् ॥२७॥

अपनेमें देवत्वकी कल्पना करके मस्तक हिलाती (अभुवाती) हुई अपने पतिके पवित्र शीलका निषेध नहीं करती थीं ॥ १२ ॥ उसके शासनकालमें कोई भी ज्योतिषी, वैद्य, गुरु, अमात्य, पुरोहित, वकील, हाकिम एवं लेखक अपंडित नहीं था ॥ १३ ॥ एक दिन प्रायोपवेशन (अनशन) सम्बन्धी अधिकारियोंने राजाको सूचना दी कि राजद्वारपर एक मनुष्य अनशन कर रहा है। यह सुनकर राजाने उसे बुलवाकर अनशनका कारण पूछा। तब उस मनुष्यने कहा—'राजन्! पहले मैं इसी नगरका निवासी एक धनी व्यापारी था, पर भाग्य वश कुछ दिन बाद मैं कंगाल हो गया ॥ १४ ॥ १५ ॥ इससे मेरे ऊपर बहुत कर्ज चढ़ गया और पावनेदार अपने धनका तगादा करने लगे। तब अपनी सब सम्पत्ति बेचकर ऋण चुका देनेके बाद मैंने विदेशभ्रमण करनेका संकल्प किया ॥ १६ ॥ तदनुसार अपना सर्वस्व बेचकर ऋण चुकानेके लिए मैंने एक बड़े धनाढ्यके हाथ अपना मकान बेचा ॥ १७ ॥ उसी मकानकी सीढ़ियाके पास एक कुआँ था, जिसे अपनी पत्नीका भरण-पोषण करनेके लिए मैंने नहीं बेचा था ॥ १८ ॥ क्योंकि उस जगह ठंढक रहनेके कारण गर्मीके दिनोंमें पान-फूल आदि बेचनेवाले दूकानदार वहाँ बैठते थे और उनके द्वारा प्राप्त भाड़ेसे मेरी पत्नीका भली भाँति भरण-पोषण हो सकता था ॥ १९ ॥ तदनन्तर बीस वर्ष विदेशोंमें भ्रमण करता हुआ कुछ धन प्राप्त करके मैं फिर मैं अपनी जन्मभूमिको लौटा ॥ २० ॥ यहाँ आकर मैंने अपनी पत्नीको खोजा, तब दूसरोंके घर मजूरी करके पेट पालती हुई उस साध्वीको मैंने देखा। उस बेचारीका चेहरा उतरा हुआ था ॥ २१ ॥ मैंने बड़े दुःखके साथ उससे कहा—'जब जाते समय मैं जीविकाका प्रबन्ध कर गया था, तब तुम्हारी यह दशा क्यों हुई ?' मेरे पूछनेपर उस दुखियाने अपना वृत्तान्त बताते हुए कहा—॥ २२ ॥ 'जाते समय आपने मेरी जीविकाके लिए जो सोपानकूप दिया था, उसे प्राप्त करनेके लिए जब मैं वहाँ गयी, तब उस बनियेने मुझे डंडोंसे मार-मारकर वहाँसे भगा दिया ॥ २३ ॥ ऐसी स्थितिमें औरोंकी मजूरीके सिवाय और मैं क्या कर सकती थी'। यह कहकर वह चुप हो गयी। उसका हाल सुनकर मैं शोक और क्रोधमें निमग्न हो गया ॥ २४ ॥ इसके लिए मैंने न्यायालयकी शरण ली, किन्तु प्रत्येक न्यायाधीशके समक्ष मेरे प्रतिवादी उस साहूकारकी ही विजय हुई और मैं हार गया। सर्वथा निरुपाय होकर मैंने इस अनशनका सहारा लिया है ॥ २५ ॥ अज्ञ होनेके कारण मैं कानूनकी सूक्ष्म बातें नहीं समझ सकता, किन्तु मैंने अपने घरकी सीढ़ीके पासवाला कूप नहीं बेचा है। इस बातकी सचाईको साबित करनेके लिए मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगा सकता हूँ ॥ २६ ॥ मेरा सब धन नष्ट हो चुका

राजेति तेन विज्ञप्तो दत्त्वा धर्मासनं स्वयम्। संघट्य्याखिलान्स्थेयार्नासीत्तत्त्वं विचारयन् ॥२८॥
स्थेयास्तमूचुर्बहुशो विचार्यायं पराजितः। शाठ्यादगणयन्न्यायं दण्ड्यो लिखितदूषकः ॥२९॥
सोपानकूपसहितं विक्रीतं गृहमित्यथ। राजा विक्रयपत्रस्थान्स्वयं वर्णानवाचयत् ॥३०॥
ततोऽधिगतमित्येव सभ्येषु निगदत्स्वपि। अन्तरात्मा जगादेव नृपतेरर्थिनो जयम् ॥३१॥
मुहूर्तमिव संचिन्त्य राजाऽन्याभिरभूच्चिरम्। कथाभिरतिचित्राभिर्मोहयन्सभ्यमण्डलम् ॥३२॥
कथान्तराले सर्वेभ्यो गृह्णन्रत्नानि वीक्षितुम्। हसन्प्रत्यर्थिनो हस्तादुपादत्ताङ्गुलीयकम् ॥३३॥
क्षणादेवाखिलैः स्थेयमित्थमेवेति सस्मितम्। वचो ब्रुवाणः प्रययौ पादक्षालनकैतवात् ॥३४॥
अभिज्ञानाय तत्रस्थः स वितीर्याङ्गुलीयकम्। भृत्यमेकं वणिग्वेश्म प्राहिणोद्दत्तवाचिकम् ॥३५॥
स वणिग्गणनाध्यक्षं ययाचे साङ्गुलीयकः। यत्राब्दे पत्रमुत्पन्नं गणनापत्रिकां ततः ॥३६॥
निर्णयेऽत्र तया कृत्यमस्ति भाण्डपतेरिति। श्रुत्वाददाद्गणनाध्यक्षस्तां गृहीताङ्गुलीयकः ॥३७॥
दीनाराणां दशशती तस्यां भूभृदवाचयत्। व्ययमध्येऽधिकरणलेखकाय समर्पिताम् ॥३८॥
तस्मै मितधनार्हाय बहुमूल्यार्पणान्नृपः। रेफे सकारं वणिजा कारितं निश्चिकाय सः ॥३९॥
सभायां तत्प्रदर्श्याथ पृष्ट्वा दत्त्वाऽभयं च तम्।
आनीय लेखकं सभ्यान्संजातप्रत्ययान्व्यधात् ॥४०॥
सभ्यैरभ्यर्च्यमानेन राज्ञा सार्धं वणिग्गृहम्। वितीर्णमर्थिने देशात्प्रत्यर्थी च प्रवासितः ॥४१॥

हैं। अतएव आप जैसे शासकके द्वारपर अनशन करके मैं प्राण दे दूँगा। यदि आप इस पापसे डरते हों तो मेरे मामलेका निपटारा स्वयं करिए' ॥ २७ ॥ उसकी बात सुनकर वह राजा धर्मासनपर जा बैठा और सभी न्यायाधीशोंको जुटाकर तथ्यको खोजनेका प्रयत्न करने लगा ॥ २८ ॥ उसी समय न्यायाधीश लोगोंने कहा—'हमने भली भाँति सोच-समझकर इसे परास्त किया है। परन्तु शठताके कारण यह हमारे न्यायको नहीं मानता। अतएव अपने लिखे दस्तावेजको अस्वीकृत करनेका भी दण्ड इसको मिलना चाहिए' ॥ २९ ॥ तब राजाने भी उसका विक्रयपत्र (बैनामा) माँगकर देखा तो उसमें साफ लिखा था कि 'मैंने सोपानकूप सहित घर बेचा है' ॥ ३० ॥ इसपर उस सभाके सभ्योंने भी कहा—'न्यायाधीशने न्याय ठीक किया है'। तथापि राजाकी अन्तरात्मा वादीकी ही विजय स्वीकार कर रही थी ॥३१॥ तनिक देर सोचकर राजा सभासदोंके साथ अन्यान्य विषयोंकी बातें करता हुआ उन्हें भुलावा देता रहा ॥ ३२ ॥ बातचीतके सिलसिलेमें रत्न देखनेके बहाने हँसते हुए राजाने सब लोगोंकी अंगूठी ले ली। उन्हींमें उस साहूकारकी भी अंगूठी थी ॥ ३३ ॥ थोड़ी देर बाद पैर धोनेके बहाने 'आप लोग कुछ देर यहीं ठहरें'। यह कहकर हँसता हुआ राजा वहाँसे बाहर चला गया ॥३४॥ अन्यत्र जाकर राजाने निशानीके लिये साहूकारकी अंगूठी एक सेवकको देकर साहूकारके घर सन्देश भेजा ॥ ३५ ॥ तदनुसार राजाका सिपाही साहूकारके घर गया और उसके मुनीमको अंगूठी देकर कहा कि 'जिस वर्ष उस मकानका बैनामा लिखा गया था, उस वर्षका बही-खाता दे दीजिये। क्योंकि आज मामलेको निपटानेके लिए उसकी नितान्त आवश्यकता आ पड़ी है'। यह सुनकर मुनीमने अंगूठी ले ली और बही-खाता सिपाहीको दे दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस बहीको पढ़ते समय राजाने एक स्थानपर खर्चखातेमें लिखा देखा कि 'बैनामा लिखनेके उपलक्ष्यमें राजकीय अधिकरण-लेखकको एक हजार दीनार दिया गया' ॥ ३८ ॥ राजाको विश्वास हो गया कि एक साधारण कार्यमें निश्चित रकमके स्थानपर इतना अधिक धन देकर साहूकारने कागजमें अधिकारीसे 'र' (कूपरहित) के स्थानपर 'स' (सहित) लिखवा लिया है' ॥ ३९ ॥ राजाने सभासदोंको भी यह रहस्य समझाया। तदनन्तर उसने लेखकको बुलवाया और अभयदान देकर उसके द्वारा उस वृत्तान्तका स्पष्टीकरण कराते हुए सभासदोंके भी हृदयमें विश्वास जमा दिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर सभासदोंकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने उस साहूकारका सारा धन और मकान उससे छीनकर वादीको दे दिया और उसे सदाके

यथोत्तरं संश्रितार्थैरन्योन्यं पृष्ठपातिभिः । नगराधिकृतैश्चक्रे चतुर्भिः सोऽर्थसंग्रहम् ॥७०॥
लेभिरे निधनं तस्मात्सत्यंकारात्पदातयः । श्रीरणेश्वरपीठाग्रन्यस्तखड्गादपि प्रभोः ॥७१॥
स ज्येष्ठे भ्रातरि मृते तथाऽभून्मुदितश्चिरम् । तदुपज्ञं यथा प्राज्ञैस्तत्रोत्प्रेक्षि रसार्पणम् ॥७२॥
नीतस्य मण्डलेशत्वं वेलावित्तस्य भूभुजा । देवीः कामयमानस्य चक्रे गजनिमीलिका ॥७३॥
रागाच्छुद्धान्तकान्तानां मूर्धानमधिरोपिता । लल्ला नामाभवत्तस्य वेश्या वैवश्यकारिणी ॥७४॥
अवकाशः सुवृत्तानां हृदयान्तर्न योषिताम् । इतीव विहितो धात्रा सुवृत्तौ तद्बहिः कुचौ ॥७५॥
उत्तमाधमसंसक्तौ जानन्मदशशृत्तिताम् । नारीणां शुचिबाह्यानामङ्गनात्वं व्यधाद्विधिः ॥७६॥

सा लालिताऽपि राज्ञा यल्लल्ला ललितलोचना ।
चण्डालयामिकेनागाद्यामिनीषु समागमम् ॥ युग्मम् ॥७७॥

सुभगंकरणं किंचिच्चण्डालतरुणेऽभवत् । तं यत्प्रभावविवशा भेजे राजवधूरपि ॥७८॥
सा वा चण्डालकुलजा स वा कार्मणकर्मवित् । अन्यथा संगमः किं स्यादसंभाव्यस्तथाविधः ॥७९॥
सोऽभूत्केन प्रकारेण तया सह समागतः । इत्येष लेभे वृत्तान्तः प्रतिभेदं न कुत्रचित् ॥८०॥
केवलं प्रत्यभात्ताद्दक्पापिनोः प्रेम तत्तयोः । दृग्व्यापारेक्षणात्क्षिप्रं हाडिनाम्नोऽधिकारिणः ॥८१॥
तमर्थमथ तथ्येन वीक्ष्य प्रणिधिभिर्नृपः । प्रायश्चित्तानुचरणक्षामः कृष्णाजिनं दधौ ॥८२॥
कुपितोऽपि स यन्नैनां न्यवधीद्रागमोहितः । तेनैवागात्पुरोभागिवितर्कातङ्कपात्रताम् ॥८३॥

सेवकोंको अपने पाससे नहीं हटाया ॥ ६९ ॥ अब उसने एक नगराधिकारीके स्थानपर चार नगराधिकारी नियुक्त कर दिये और उनके द्वारा प्रजासे धन दोहन करने लगा । परस्परके स्पर्धावश वे चारों धनसंग्रहके कार्यमें एक दूसरेसे आगे बढनेका यत्न करते रहते थे ॥ ७० ॥ उस राजाने अपनी तलवार श्रीरणेश्वर शिवके पीठके आगे रख दी थी और वह अपनी बातको सत्य कर दिखाता था । उसके ऐसा करनेसे पदाति लोग अनायास मर गये ॥७१॥ अपने बड़े भाईके मरनेपर वह बहुत प्रसन्न हुआ, जिससे विवेकवान् लोगोंके मनमें अनायास यह भावना भर गयी कि 'इस राजाने ही विष देकर उसे मार डाला है' ॥ ७२ ॥ एक वेलावित्त (सेवक) उसकी रानियोंसे प्रेम करने लगा था, किन्तु उसकी ओरसे आँखें मूँदकर राजाने उसको मण्डलेश (गवर्नर) बना दिया ॥ ७३ ॥ इसी प्रकार राजा यशस्करने लल्ला नामकी एक वेश्यापर आसक्त होकर उसे अपने अन्तःपुरकी रानियोंमें प्रधान बना दिया और नित्य उसीके अधीन रहने लगा ॥ ७४ ॥ 'स्त्रियोंके हृदयमें सुवृत्तता अर्थात् सच्चरित्रताके लिये कोई स्थान नहीं रहता' यह सोचकर ही मानो विधाताने उनके सुवृत्त अर्थात् गोल और वर्तुलाकार स्तनोंको हृदयसे बाहर ही रक्खा है ॥ ७५ ॥ स्त्रियाँ उत्तम तथा अधम पुरुषोंपर समानरूपसे आसक्त हो जाती हैं और उनकी पवित्रता ऊपर ही ऊपर रहती है । अतएव उनके इस स्वाभाविक रूपको देखकर ही विधाताने उनको अंगना बनाया है ॥ ७६ ॥ क्योंकि वह सुन्दर नयनोंवाली लल्ला राजाकी परम प्यारी होती हुई भी रातके समय पहरा देनेवाले एक नौजवान चण्डालपर आसक्त होकर उससे प्रेम करने लगी थी ॥ ७७ ॥ उस नवयुवकमें अवश्य कोई आकर्षणशक्ति रही होगी । तभी तो राजरानी होती हुई भी लल्ला उससे प्रेम करनेके लिए विवश हो गयी थी ॥ ७८ ॥ इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि या तो लल्लाका जन्म चण्डालके वंशमें हुआ होगा अथवा वह तरुण चण्डाल कोई जादू जानता होगा । यदि ऐसी स्थिति न होती तो उन दोनोंका ऐसा असम्भव समागम कैसे होता ? ॥ ७९ ॥ वह तरुण चण्डाल उससे कैसे मिला, इस बातका रहस्य कभी किसीको नहीं ज्ञात हो सका ॥ ८० ॥ इन दोनों पापी प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेम और नेत्रों द्वारा कटाक्षविक्षेपके व्यापारको एक मात्र हाडी नामके अधिकारीने देखा था ॥ ८१ ॥ बादमें राजाने गुप्तचरोंके द्वारा सही-सही रूपमें उस वृत्तान्तका पता लगा लिया और उस पापका प्रायश्चित्त करते-करते वह बहुत दुर्बल हो गया और अन्तमें उसने कृष्ण मृगचर्म धारण कर लिया ॥ ८२ ॥ यद्यपि उसके दुराचारका पता लगनेपर राजाको लल्लापर

डोम्बोच्छिष्टानुगामङ्गाढशुचित्वं यशस्करे । संक्रान्तं कुष्ठिसंस्पर्शात्कुष्ठं दुःखमिवाभवत् ॥८४॥
सामान्येन मता कैश्चित्सदृशैः शुभकर्मभिः । जन्मान्तरीयैः साम्राज्यं मया प्रापीति चिन्तयन् ॥८५॥
साम्राज्यकामो नृपतिर्भाविष्वपि स जन्मसु । युक्त्या प्रादान्निरातङ्कां राज्यलक्ष्मीं द्विजन्मने ॥८६॥
भूभुजा दानशौण्डेन पैतृके स्थण्डिले कृतः । छात्राणामार्यदेश्यानां तेन विद्यार्थिनां मठः ॥८७॥
मठाधिपतये तत्र छत्रचामरहासिनीम् । स नरेन्द्रश्रियं प्रादाट्टङ्कान्तःपुरवर्जिताम् ॥८८॥
वितस्तापुलिने राजा नानोपकरणान्वितान् । ब्राह्मणेभ्यः सोऽग्रहारान्पञ्चपञ्चाशतं ददौ ॥८९॥
अथ जातोदरव्याधिर्मज्जातो नायमित्यसौ । जानन्संग्रामदेवाख्यं परिवर्ज्य निजात्मजम् ॥९०॥
समर्प्य सचिवैकांगसामन्तानभ्यषेचयत् । रामदेवात्मजं राज्ये वर्णटं प्रपितृव्यजम् ॥९१॥
शक्ये राज्यादपाकर्तुं शिशावनभिषेचिते । निराशाः समपद्यन्त तदा राज्यजिहीर्षवः ॥९२॥
स पर्वगुप्तकौटिल्यप्रयुक्तेरुदयोन्मुखः । विपाककालस्तत्राहि भंगोन्मुख इवाभवत् ॥९३॥
राजधानीस्थितस्यापि वर्णटो राज्यदायिनः । आरोग्यवार्तयाप्यासीन्मुमूर्षोरनिरीक्षकः ॥९४॥
ततः सानुशयो राजा तास्यन्प्रैर्यत मन्त्रिभिः । राज्यं संग्रामदेवाय दातुमाश्वासकारिभिः ॥९५॥
राजाज्ञया निशामेकां बद्धोऽष्टस्तम्भमण्डपात् । बहिर्दत्तार्गलात्प्रातर्वर्णटो निरवास्यत ॥९६॥
भयात्प्रजागराद्वापि तद्भृत्यानां विवेकिनाम् । आस्थानमण्डपं प्राप पायुक्षालनभूमिताम् ॥९७॥
एकाहराजपुत्रस्तदासिं विजयेश्वरे । व्रीडादेवप्रसादाख्यो राजबीजी समर्पयत् ॥९८॥
अथाभिषिच्य संग्रामदेवं तीव्रीभवद्व्यथः । स राजधान्या निर्गत्य मर्तुं निजमठं ययौ ॥९९॥

बहुत क्रोध आया था, किन्तु प्रेमान्ध होनेके कारण उसने उसका वध नहीं किया। जिससे उसे पुरोभागी (एकमात्र दोष देखनेवाले) लोगोंकी निन्दाका पात्र बनना पड़ा ॥ ८३ ॥ जैसे कोढीके सम्पर्कसे कोढरोग हो जाता है, वैसे ही डोमोंका जूठा खानेवाले सेवकोंके संसर्गसे राजा यशस्करको भी यह संसर्गज दोष लग गया था ॥ ८४ ॥ बादमें उस राजाने सोचा कि 'मेरे जैसे एक साधारण मनुष्यको पूर्वजन्मके किसी प्रबल पुण्यके प्रभावसे ही साम्राज्य प्राप्त हुआ है' । मनमें ऐसी धारणा होनेपर उस राजाने अगले जन्ममें भी साम्राज्य पानेकी लालसावश बड़ी युक्ति और निर्विघ्न भावसे अपनी समस्त राजलक्ष्मी दान करके ब्राह्मणोंको दे देना चाहा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ तदनुसार उस दानवीर राजाने अपनी पितृभूमिमें आर्यदेशीय विद्यार्थियोंको रहनेके लिए एक मठ बनवाया ॥ ८७ ॥ वहाँके मठाधीशको उसने अपना छत्र-चमर आदि सारे राजचिह्न दे दिये, केवल टंक अर्थात् सिक्के ढालनेका अधिकार और अन्तःपुर (रनिवास) उसे नहीं दिया ॥ ८८ ॥ उस राजाने वितस्ता नदीके तटपर विविध उपकरणों समेत पचपन अग्रहार ब्राह्मणोंको दिये ॥८९॥ तदनन्तर उदररोगसे ग्रस्त होकर उस राजाने अपने पुत्र संग्रामदेवको अपने वीर्यसे उत्पन्न सन्तति न समझकर सामन्तों, मंत्रियों तथा एकांगों की सलाहसे अपने प्रपितृव्य रामदेवके तनय वर्णटका राज्यपदपर अभिषेक कर दिया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ इस प्रकार आसानीसे राज्यच्युत करने योग्य अपने पुत्रका अभिषेक न करनेसे राज्य हस्तगत करनेके इच्छुक लोग सर्वथा निराश हो गये ॥ ९२ ॥ पर्वगुप्त द्वारा कुटिलतापूर्वक रचित चक्र जब कि सफलताकी कगारपर पहुँच चुका था, तब वह सहसा भग्न हो गया ॥ ९३ ॥ जब राजा यशस्करकी बीमारी उग्र हुई, उस समय राजधानीमें रहता हुआ भी वर्णट आरोग्यका हालचाल पूछनेके लिए अपनेको राज्य प्रदान करनेवाले राजाके पास नहीं गया ॥ ९४ ॥ उसके इस व्यवहारसे दुखी राजाको समझाकर मन्त्रियोंने संग्रामदेवको ही राज्य देनेके लिए पुनः प्रेरित किया ॥ ९५ ॥ तदनुसार अधिकारियोंने राजाकी आज्ञासे वर्णटको कैद करके रातभर आठ खम्भोंवाले मण्डपमें रक्खा और दूसरे दिन सबेरे ही उसको राज्यसे बाहर निकाल दिया। वह अष्टमण्डप शौचालयके समान गन्दा हो चुका था ॥९६॥९७॥ केवल दिनभरके लिए राजा बननेवाले वर्णटके देवप्रसाद नामक राजपूत सेवकने लज्जावश अपनी तलवार विजयेश्वरको अर्पित कर दी ॥ ९८ ॥ तदनन्तर राज्यसिंहासन-

धीः केशश्मश्रुवपने गिरःशाटकवर्जनम् । काषायग्रहगोद्वेगः शस्त्रत्यागग्रहश्च यः ॥१००॥
राजभृत्यैः प्रतिज्ञातः स तस्मिन्निश्चितक्षये । जीवत्येव कृतज्ञत्वव्यञ्जकैः परिवर्जितः ॥युग्मम्॥१०१॥
द्वे सहस्रे सुवर्णस्य सार्धे बद्ध्वा पटाञ्चले । यो निर्जगाम राजाऽसौ मुमूर्षुर्निजमन्दिरात् ॥१०२॥

पञ्चभिः पर्वगुप्ताद्यैर्यौतुकं तस्य मन्त्रिभिः ।
हृतं सजीवितस्यैव विभक्तवान्योन्यमग्रतः ॥ युग्मम् ॥१०३॥

विवेष्टमानः शय्यायां व्याधिदग्धान्तरो नृपः । तिष्ठन्मठाङ्गनकुटीगर्भे ध्वान्तान्धकारिते ॥१०४॥
अजातसंविद्भ्रंशोऽग्रे पश्यन्द्रोहपरान्निजान् । प्राणैरहानि द्वित्राणि न यदा निरमुच्यत ॥१०५॥
तदा सुहृद्बन्धुभृत्यवेलावित्तैः कृतत्वरैः । जिहीर्षुभिश्च साम्राज्यं विषं दत्त्वा विपादितः ॥१०६॥
अवरोधवधूमध्यात्सती तं पतिमन्वगात् । एका त्रैलोक्यदेव्येव स्वप्रभेव विरोचनम् ॥१०७॥
वर्णाश्रमप्रत्यवेक्षाबद्धकक्ष्यः क्षितीश्वरः । चक्रभान्वभिधं चक्रमेलके द्विजतापसम् ॥१०८॥
कृतात्याचारमालोक्य राजा धर्मवशंवदः । निजग्राह श्वपादेन ललाटतटमङ्कयन् ॥१०९॥
तन्मातुलेन तद्रोषाद्वीरनाथेन योगिना । सांधिविग्रहिकेणाथ स स्वेनैव न्यगृह्यत ॥११०॥
पूर्वाचार्यप्रभावेण स्वमाहात्म्याधिरोपणम् । प्रख्यापयद्भिर्गुरुभिः श्रद्धयेति यदुच्यते ॥१११॥
तत्ख्यापितैव सप्ताहात्स विपन्न इति श्रुतिः । दीर्घव्याधिहते तस्मिन्नुपपत्तिः कथं भवेत् ॥११२॥
अथामयान्तरेवाभूत्सा वार्तेत्युच्यते यदि । वर्णटाद्यभिशापोऽपि तदायात्वत्र हेतुताम् ॥११३॥

पर संग्रामदेवको अभिषिक्त करके रोगजनित पीड़ा बढ़ जानेके कारण राजा यशस्कर प्राण त्यागनेके लिए राजमहलसे अपने बनवाये मठमें चला गया ॥ ९९ ॥ पहले उसके कुछ अनुचरोंने उसके समक्ष कृतज्ञता प्रकट करनेके निमित्त बाल तथा दाढ़ी-मूछ मुड़ाने, साफा न बाँधने, गेरुए वस्त्र धारण करने और शस्त्र त्याग देनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु जब उसकी मृत्यु निश्चित हो गयी तो उसकी जीवितावस्थामें ही उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी ॥ १०० ॥ १०१ ॥ उस मरणोन्मुख राजाने राजमहलसे चलते समय ढाई हजार स्वर्णमुद्रायें वस्त्रके छोर बाँधकर अपने साथ ले ली थीं ॥ १०२ ॥ उन्हें राजाकी जीवितदशामें ही पर्वगुप्त आदि उसके पाँच मन्त्रियोंने बराबर-बराबर हिस्सा लगाकर आपसमें बाँट लिया था ॥ १०३ ॥ उस समय रोगी राजा यशस्कर मठके आँगनमें निर्मित एक अन्धकारपूर्ण कुटीमें मृत्युशय्यापर पड़ा छटपटा रहा था ॥ १०४ ॥ वहाँ पड़ा हुआ राजा अब भी होशमें था और अपने विद्रोही सेवकोंकी कुटिल चालोंको भली भाँति देख रहा था। मठमें दो-तीन दिन बीत जानेपर भी जब उसके प्राण नहीं निकले ॥ १०५ ॥ तब शीघ्रातिशीघ्र साम्राज्य हड़पनेकी जल्दबाजीमें उसके सगे-सम्बन्धियों, मित्रों तथा सेवकोंने विष देकर उसको मार डाला ॥ १०६ ॥ यद्यपि उसके अन्तःपुरमें बहुतेरी रानियाँ थीं, किन्तु उनमेंसे पतिव्रता त्रैलोक्य देवी ही उसके साथ उसी प्रकार सती हुई, जैसे सूर्यके साथ सूर्यकी प्रभा भी चली जाती है ॥ १०७ ॥ राजा यशस्कर अपनी प्रजासे वर्णाश्रमधर्मका पालन करानेके लिए सदा तत्पर रहा करता था। अतएव चक्रमेलक ग्राममें रहनेवाले चक्रभानु नामक एक तपस्वी ब्राह्मणको किसी भीषण अपराधके लिए धर्मशास्त्रोक्त विधिके अनुसार दण्ड देनेके निमित्त उसके माथेपर कुत्तेका चिह्न अंकित कराया था। इस बातसे कुपित चक्रभानुके मामा तथा राजा यशस्करके सान्धिविग्रहिक मंत्री योगी वीरनाथने इस समय आभिचारिकी क्रियाके द्वारा उसका बदला चुकानेके लिए राजाको ऐसी दुर्गतिसे मारा ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ बहुतेरे गुरुजन प्राचीन कालके महर्षियोंके प्रभावसे अपना महत्त्व प्रख्यापित करनेके लिए अथवा श्रद्धातिरेकके कारण ऐसा कहते हैं और यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि वह राजा वीरनाथके अभिचारसे सात ही दिनों मर गया था। किन्तु जब वह राजा बहुत समय तक अत्यधिक कष्ट झेलकर मरा, तब उसके विषयमें कही गयी उपर्युक्त बातें कैसे युक्तिसंगत मानी जा सकती हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥ यदि यह कहा जाय कि उसकी रुग्णावस्थामें ही ये घटनायें

भुक्तैश्वर्यो नव समाश्चतुर्विंशे स हायने । मासि भाद्रपदे कृष्णतृतीयस्यां व्यपद्यत ॥११४॥
पितामहीं शिशोर्गोप्त्रीं विनिवेश्य नृपासने । भूभटाद्यैः समं प्राभृत्पर्वगुप्तोऽथ पञ्चभिः ॥११५॥
क्रमात्समं पितामह्या तान्व्यापाद्येतरान्बली । एकः स एवमाक्रान्तः प्रबभूव नृपास्पदे ॥११६॥
स पार्थिवत्वमन्त्रित्वमिश्रया चेष्टया स्फुरन् । राजा राजानकश्चेति मिश्रामेवं धियं व्यधात् ॥११७॥
सेवमानः स्वयं बालभूपं भोज्यार्पणादिभिः । ऋजूनां प्रत्यभात्पर्वगुप्तो द्रोहबहिष्कृतः ॥११८॥
यान्द्रोहभीरून्संभाव्य संविभेजे यशस्करः । तस्य तत्तनयोच्छेदे त एवासन्प्रयोजकाः ॥११९॥
करभाङ्गरुहापिङ्गे श्मश्रुणि क्षितिपालवत् । स ददौ कुङ्कुमालेपं वर्चः शाद्वलविस्तृते ॥१२०॥
बिभ्यदेकाङ्गसंघातात्प्रकटोत्पाटनाक्षमः । प्रमापणाय प्रायुङ्क्त शिशोः कर्माभिचारिकम् ॥१२१॥
न्याय्यं ते सान्वयस्यास्ति राज्यं चैत्रादिवासरे । अन्यथाचरतो नाशः क्षिप्रं वंशायुषोर्भवेत् ॥१२२॥
इतीमामपि यामिन्यां श्रुतवान्भूतभारतीम् । अभिचारस्य वन्ध्यत्वं निर्ध्यायाधिकशङ्कितः ॥१२३॥
एकांगेभ्यो विभिन्नेभ्यो बिभ्यदुद्भिन्नसंभ्रमः । उदताम्यत्तथा चिन्तालुप्तसंविद्दिवानिशम् ॥१२४॥
यथा महाहिमापातनिःसंचारजने दिने । अकस्मात्संभृतबलो राजधानीं निरुद्धवान् ॥१२५॥
विरोधकारिणं बुद्धाभिधेन सह सूनुना । निर्द्रोहमाहवे हत्वा मन्त्रिणं रामवर्धनम् ॥१२६॥
पित्र्येण वेलावित्तेन प्राभृतार्थमुपाहृताम् । गले पुष्पस्रजं बद्ध्वा पातितं पार्थिवासनात् ॥१२७॥
स तं वक्राङ्घ्रिसंग्रामं हतमन्यत्र मन्दिरे । पातयित्वा वितस्तान्तः कण्ठबद्धशिलं निशि ॥१२८॥

घटित हुई थीं, तब राजाके व्यवहारसे दुखी वर्णट आदिका अभिशाप भी तो उन घटनाओंका कारण हो सकता है ॥ ११३ ॥ इस प्रकार राजा यशस्कर कुल नौ वर्ष राज्य करके लौकिक संवत् ४०२४ भाद्रपद कृष्णपक्षकी तृतीया तिथिको दिवंगत हुआ ॥ ११४ ॥ तदनन्तर शिशु राजा संग्रामदेवकी संरक्षिका पितामहीको राजगद्दीपर बिठा तथा भूधर आदि पाँच सचिवोंको अपने साथ लेकर पर्वगुप्त राज्यका मुख्य मंत्री बना ॥ ११५ ॥ उसके बाद धीरे-धीरे वह प्रबल प्रधानमन्त्री शिशु राजाकी पितामहीके साथ-साथ उन पाँचों सचिवोंको भी यमपुरी भेज तथा सारे राज्यपर कब्जा करके स्वयं राजा बन गया ॥ ११६ ॥ अब वह राजा तथा मन्त्री दोनोंके चिह्न धारण कर चुका था। अतएव उसके मिश्रित वेष देखकर लोग सन्देह करने लगते थे कि यह राजा है या मन्त्री ? ॥ ११७ ॥ उस शिशु राजा संग्रामदेवको खान-पानके पदार्थ स्वयं मँगाकर देता था। अतएव उसका राजाके प्रति इस प्रकारका सेवाभाव देखकर सरल स्वभाववाले लोग उसे द्रोहहीन समझते थे ॥ ११८ ॥ किन्तु पुराने राजा यशस्करने जिन लोगोंको द्रोहभीरु समझकर अपना पुत्र सौंपा था, वे ही लोग उस पुत्रको उच्छिन्न कर देनेका चक्र रचने लगे ॥ ११९ ॥ अब पर्वगुप्त ऊँटके बाल जैसी पीली और घास-फूसकी तरह विस्तृत अपनी दाढ़ीमें राजाके समान केसरका लेप लगाने लगा ॥ १२० ॥ वह एकांगोंके संघर्षसे डरकर शिशुराजा संग्रामदेवको राज्यच्युत नहीं कर पा रहा था। अतएव उसे मारनेके लिए उसने उस बालकपर अभिचारक्रिया करायी ॥ १२१ ॥ उसी समय उसे एक भूतवाणी सुनायी पड़ी। जिसमें कहा गया था कि 'यदि तू सही रास्तेसे चलेगा तो आगामी चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको तुझे और तेरी सन्तानको न्यायसंगत रीतिसे यह राज्य स्वतः प्राप्त हो जायगा। इसके विपरीत कोई काम करनेपर तत्काल तू और तेरा वंश दोनों समाप्त हो जायँगे।' रात्रिके समय सन्नाटेमें यह भूतभारती सुनी तो आभिचारिकी क्रियाकी व्यर्थताको सोचकर वह अत्यधिक सशंक हो उठा ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ अब वह अपने शत्रु एकांगोंके भय तथा उनसे होनेवाली संभावनाओंके चिन्तनसे अधीर होकर छटपटाने लगा ॥ १२४ ॥ एक रोज कश्मीरमें भीषण हिमपातसे लोग घरोंमें घुसे बैठे थे और मार्ग एकदम सूना पड़ा हुआ था। उसी समय अपनी सेना सुसज्ज करके उसने राजधानीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १२५ ॥ जब राजभक्त रामवर्धन तथा उसके पुत्र बुद्धने डटकर उसका सामना किया' तब रणांगणमें पर्वगुप्तने उन दोनोंको मार डाला ॥ १२६ ॥ तदनन्तर पर्वगुप्त तथा राजा यशस्करके वेलावित्त (सेवक) ने उपहारके बहाने फूलोंकी मालासे बनी रस्सी उस वक्रांघ्रि (टेढ़े पैरवाले) शिशु संग्रामदेवके गलेमें डालकर सिंहासनसे नीचे घसीट लिया

चतुर्विंशस्य वर्षस्य दशम्यां कृष्णफाल्गुने ।
पापः सखड्गकवचो न्यविक्षत नृपासने ॥ चक्कलकम् ॥१२९॥

पारेविशोकं दिविराज्जातस्याभिनवाभिधात् । सूनुः संग्रामगुप्तस्य स तदा पार्थिवोऽभवत् ॥१३०॥
केचित्तं प्रत्यवस्थानं ते पुरा प्रतिजज्ञिरे । ते सर्व एव तद्भीताः प्रातरेव प्रणेमिरे ॥१३१॥
पार्थिवैकांगसामन्तमन्त्रिकायस्थतन्त्रिणाम् । तद्भीत्या द्रोहवृत्तीनां द्रोहाद्वैतमदृश्यत ॥१३२॥
एकांगस्य तदास्थाने सुय्याभिजनजन्मनः । प्रमादान्मदनादित्यनाम्नो ढक्का व्यदीर्यत ॥१३३॥
हृतांशुकेन भूभर्त्रा कुपितेन खलीकृतः । स निकृत्तकचश्मश्रुस्तपस्वी समपद्यत ॥१३४॥

तादृशस्य पुनस्तस्य सस्त्रीपुत्रत्वमीयुषः ।
अद्याप्यभिजने जाता वसन्ति त्रिपुरेश्वरे ॥१३५॥

कुर्वता पर्वगुप्तेन भूभृता द्रविणार्जनम् । प्रापिताः पुनरुत्साहं प्रजारोगा नियोगिनः ॥१३६॥
व्यधत्त स्कन्दभवनविहारवसुधान्तिके । पर्वगुप्तेश्वरं सोऽपि वृजिनार्जितया श्रिया ॥१३७॥
श्रीयशस्करभूभर्तृशुद्धान्तस्य विशुद्धधीः । कौलीनमलुनादेका गौरीव नृपसुन्दरी ॥१३८॥
सुचिराङ्कुरितप्रीतेः पर्वगुप्तस्य याऽकरोत् । समागमार्थिनो युक्त्या वञ्चनामुचितां सती ॥१३९॥
इदं यशस्करस्वामिसुरवेश्मार्धनिर्मितम् । त्यक्त्वा पत्युर्विपन्नस्य कृत्वा निर्माणपूरणम् ॥१४०॥
अमोघमस्मि नियमाद्विधास्यामि त्वदीप्सितम् । स ह्युपच्छन्दयन्नेवं सुभ्रुवाभिहितस्तया ॥१४१॥
अथ प्रवृद्धगर्वेण तत्स्वल्पैरेव वासरैः । संपूर्णतां सुरगृहं गमितं तेन भूभुजा ॥१४२॥

और दूसरे कमरेमें लेजाकर वहाँ उसे मार डाला। तत्पश्चात् रात्रिके समय उस मृत शरीरके गलेमें पत्थर बाँधकर उसे वितस्ता नदीमें डुबो दिया ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ तब लौकिक संवत् ४०२४ की फाल्गुन कृष्ण दशमीको वह पापी पर्वगुप्त खड्ग-कवच धारण करके राज्यसिंहासनपर बैठा ॥ १२९ ॥ वस्तुतः उसी समय विशोका नदीके उस पार रहनेवाले अभिनवगुप्त कायस्थके पुत्र संग्रामगुप्तका बेटा पर्वगुप्तने कश्मीरमण्डलका राजा बना ॥ १३० ॥ पहले कुछ लोगोंने उसका विरोध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, किन्तु अब उससे डरकर उन सभी लोगोंने प्रतिज्ञा तोड़ दी और दूसरे दिन सवेरे ही जाकर उसको प्रणाम किया ॥ १३१ ॥ माण्डलिक राजे, एकाङ्ग, सामन्त, मन्त्री, कायस्थ और तंत्री ये सभी लोग उससे भयभीत थे, फिर भी पर्वगुप्त उनसे द्रोह किया ॥ १३२ ॥ बात यह हुई कि उस दिन राजदरबारमे सुय्याके वंशज मदनादित्य नामक एकांगके हाथसे प्रमादवश वहाँका एक नगाड़ा फूट गया ॥ १३३ ॥ इससे कुपित होकर पर्वगुप्तने उसको नंगा करके बहुत असभ्य ढङ्गसे अपमानित किया। इस दुर्व्यवहारसे दुःखित मदनादित्यने केश तथा दाढ़ी-मूछ मुड़वाकर संन्यास ले लिया ॥ १३४ ॥ उस समय उसकी स्त्री तथा बालक विद्यमान थे। त्रिपुरेश्वरमे आज भी उसके वंशज रह रहे हैं ॥ १३५ ॥ उस राजा पर्वगुप्तने एकमात्र द्रव्योपार्जनको अपना ध्येय बनाकर प्रजाको रोगके समान सतानेवाले अधिकारियोंको फिरसे बढावा दिया ॥ १३६ ॥ इस तरह पापोपार्जित धनसे मन्दिर बनवाकर उसने स्कन्दभवन-विहारके पास पर्वगुप्तेश्वर शिवकी स्थापना की ॥ १३७ ॥ दिवंगत राजा यशस्करकी एक पतिव्रता रानी थी। उसका नाम नृपसुन्दरी था। वह भगवती पार्वतीके समान पवित्र और बुद्धिमती थी। उसने अपने उच्चकोटिके चरित्रपर कभी लोकनिन्दाका लांछन नहीं लगने दिया था ॥ १३८ ॥ कामुक पर्वगुप्तके हृदयमें उसके प्रति चिरकालसे प्रेमका अंकुर फूट चुका था। उसे अपने कब्जेमें करनेके लिए वह सदा प्रयत्नशील रहा। परन्तु वह साध्वी अनेक युक्तियोंसे उसे सदा अपनेसे दूर रखती आ रही थी ॥ १३९ ॥ अब राजा हो जानेपर जब वह फिर उसके पीछे पड़ा, तब सुन्दर भौहोंवाली रानीने उससे कहा—'इस यशस्कर स्वामीके मन्दिरका निर्माणकार्य मेरे पतिदेवने आरम्भ किया था, परन्तु इसके पूर्ण होनेसे पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया। अब आप इसे यदि पूर्ण करा दें तो मैं भी आपकी इच्छा पूर्ण कर दूँगी' ॥ १४० ॥ १४१ ॥ उसके कथनानुसार बड़े गर्वके साथ पर्वगुप्तने बहुत

सा यागज्वलने राजललना पीतसर्पिषि। पूर्णाहुत्या समं साध्वी जुहाव सहसा तनुम् ॥१४३॥
उपर्यस्या निरस्तासोः पुष्टाः कुसुमवृष्टयः। तत्कांक्षिणस्तु न्यपतन्नवर्णमुखरा गिरः ॥१४४॥
सुदीर्घसाहसारम्भचिन्तासंरम्भशोषितः। पर्वगुप्तो बभूवाथ तृष्णामयपथातिथिः ॥१४५॥

व्याध्याविग्रहमायासैर्ज्ञात्वाप्यस्थायिनीं स्थितिम्।
मूढाः प्ररूढिं नोज्झन्ति द्रोहश्रीलोभमोहिताः ॥१४६॥

आशङ्क्य तादृङ्निष्ठोपि सोऽकुण्ठैः प्राक्तनैः शुभैः। कैश्चित्सुरेश्वरीक्षेत्रे परासुः समपद्यत ॥१४७॥
षड्विंशवत्सराषाढबहुलेऽह्नि त्रयोदशे। द्रोहार्जितेन नृपतिः स राज्येन व्ययुज्यत ॥१४८॥

अतीन्द्रियायां परलोकवृत्ताविहैव तीव्राशुभपाकशंसी।
दृश्येत नाशो यदि नाम नाशु न कः कुकृत्येन यतेत भूत्यै ॥१४९॥

क्षेमगुप्ताभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः। आसवासेवनोत्सिक्तवित्ततारुण्यसंज्वरः ॥१५०॥
सोऽभूत्स्वभावदुर्वृत्तो नितरां दुर्जनाश्रयात्। कृष्णक्षपाक्षणो घोरमेघान्ध इव भीतिकृत् ॥१५१॥
स्वतुल्यवेषालंकाराः शतं ललितका नृपम्। तं फल्गुणप्रभृतयो दुराचाराः सिषेविरे ॥१५२॥
द्यूतासवांगनासेवाव्यसनेऽपि स पार्थिवः। विटनिर्लुण्ठ्यमानोऽपि नाभूल्लक्ष्मीबहिष्कृतः ॥१५३॥

रागी मधुप्रणयवान्विहिताक्षसक्तिर्यः सख्यमेति मधुपैर्हृतकोशसारैः।
पद्मे प्रयाति दिनमात्रमपि प्रसक्तिं श्रीस्तत्र चेत्किमिव तन्न कुतूहलाय ॥१५४॥

विटाः प्रविष्टा हृदयं जिष्णुजा वामनादयः। पिशाचस्येव रुचितामशुचिं तस्य चक्रिरे ॥१५५॥

थोड़े दिनमें वह मन्दिर बनवाकर तैयार करा दिया ॥ १४२ ॥ उस मन्दिरमें यशस्कर स्वामीकी स्थापनाके समय घृतकी आहुति पाकर प्रज्वलित होमाग्निमें पूर्णाहुतिके साथ ही सती नृपसुन्दरीने अपने शरीरकी भी आहुति दे दी ॥ १४३ ॥ इस प्रकार अपना तन त्यागनेवाली नृपसुन्दरीपर लोगोंने प्रचुर पुष्पवर्षा की और उसके साथ दुराचार करनेके इच्छुक पर्वगुप्तपर लोग निन्दाभरी गालियोंकी बौछार करने लगे ॥ १४४ ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े साहसके कार्योंकी चिन्ता करते-करते उस पर्वगुप्तका शरीर सूखने लगा और शीघ्र ही उसे तृष्णारोगने धर दबोचा ॥ १४५ ॥ संसारके मूढ़ लोग आधि-व्याधिको शान्त करनेके उपायोंकी व्यर्थता तथा शरीरको नश्वर समझ करके भी द्रोहसे उपार्जित धनके लोभसे मोहित होकर उसे स्थायी बनानेका प्रयत्न करते ही रहते हैं ॥ १४६ ॥ अतएव ऐसे संकटमें पड़कर भी वह शंकितचित्त पर्वगुप्त पूर्वजन्ममें संचित शुभ कर्मोंके प्रभावसे सुरेश्वरी क्षेत्रमें जाकर मरा ॥ १४७ ॥ इस तरह ४०२६ लौकिक वर्षकी आषाढ शुक्ला त्रयोदशीको पर्वगुप्त अपने स्वामीसे द्रोह करके प्राप्त राज्यसे बिछुड़ा ॥ १४८ ॥ यदि विधाता इसी जन्ममें उत्कट पापका फल भीषण रोग तथा मृत्युके रूपमें परिणत करके परलोकमें प्राप्त होनेवाले भयानक कष्टोंका अनुमान न कराता तो कुत्सित कर्मोंसे सम्पदा प्राप्त करनेका प्रयत्न कौन न करता? सभी वही करने लग जाते ॥ १४९ ॥ उसके बाद बहुत ज्यादा मद्यसेवन तथा जवानीके जोशसे पागल पर्वगुप्तका पुत्र क्षेमगुप्त राजा बना ॥ १५० ॥ स्वभावतः दुराचारी क्षेमगुप्त दुर्जनोंकी संगतिसे उसी प्रकार और भी भयावना हो गया, जैसे कृष्णपक्षकी रात्रि काले-काले बादलोंके घिर जानेसे और भी डरावनी हो जाती है ॥ १५१ ॥ उसीके समान वेष-भूषासे सम्पन्न फाल्गुण आदि सौ दुराचारी और प्रेमी मित्र सदा राजा क्षेमगुप्तकी सेवामें उपस्थित रहा करते थे ॥ १५२ ॥ वह नित्य द्यूत, मद्य एवं स्त्रियोंका सेवन करता था और धूर्तलोग उसे बारबार लूटते रहते थे। फिर भी वह लक्ष्मीसे बहिष्कृत अर्थात् कंगाल नहीं हुआ ॥ १५३ ॥ कामुक, मद्यप्रेमी, जुआड़ी एवं खजानेका धन हड़पनेवाले मधुप (मदिरा पीनेवाले) लोग जिस राजाकी सेवा करते हैं, उसको रागी (लाल रंगके), मधुप्रणयवान् (आसवप्रेमी) तथा विहिताक्षसक्ति (बीजसम्पन्न) एवं कोशका सार हरनेवाले भौरोंसे सेवित कमलपर निवास करनेवाली लक्ष्मी नहीं त्यागती तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ॥ १५४ ॥ जिष्णुपुत्र वामन आदि बहुतेरे विटों (धूर्तों) ने उसके

परोपहासकुशलः परनारीरतिप्रियः । परायत्ताशयस्तस्थौ पार्थिवोऽनर्थतत्परः ॥१५६॥
ष्ठीवनं श्मश्रुमालासु गालयः श्रोत्रपालिषु । तेन क्षिप्ताः प्रतीक्ष्याणां करोटीषु च टक्कराः ॥१५७॥
कटिसंघटनैर्नार्यो मृगव्यज्ञा वनाटनैः । विटाश्चाश्लीलरटनैर्वाल्लभ्यं तस्य लेभिरे ॥१५८॥
पुंश्चलीजाल्मवैधेयबालकद्रोग्धृनिर्भरा । समभूदप्रवेशार्हा राजपर्षन्मनस्विनाम् ॥१५९॥
जिष्णुपुत्रैः क्षेमगुप्तक्ष्माभृद्यन्त्रपुत्रकः । चारणत्वगुणाकृष्टः किं न धूर्तैरनर्त्यत ॥१६०॥
तस्य कङ्कणवर्षोऽसीत्यभिधानं विधाय ते । तोषिताश्चासकृच्चक्रुर्दोष्णोः कङ्कणवर्पिताम् ॥१६१॥
निर्दोषदीषाविष्कारे नववस्तुप्रदर्शने । अधृष्यटक्काराधाने प्रसादः प्रापि तैर्नृपात् ॥१६२॥

संलक्ष्यकुचकक्ष्यान्ताः कृत्वा निजवधूः पुरः ।
रागी राजा गृहान्नीतो द्यूते तैर्निर्धनः कृतः ॥१६३॥

संभोगाभग्नसौभाग्यकृतस्पर्धैः परस्परम् । संभुज्यतां भवान्वक्तु विशेषमिति चोदितः ॥१६४॥
उपभोगं स्वभार्याणां निर्लज्जैस्तैः स कारितः । का हृद्येति च रत्यन्ते पृष्टोऽभीष्टधनप्रदः ॥१६५॥
तस्य लालितकेष्वास्तां मूढौ संभोगढौकने । मात्रोश्चारित्ररक्षित्वाद्भिक्षाकौ हरिधूर्जटी ॥१६६॥

नीत्वा नर्मकथाङ्गतां निजवपुर्मुष्णन्ति मानोन्नतिं
संदूष्य स्वयमङ्गनाः शुचितया त्यक्तं कुलं कुर्वते ।
सौख्यं घ्नन्ति सुदीर्घसेवनसमासक्त्या यदर्थं श्रमः
प्रत्याख्याय तदेव वेद्मि न विटैः किं प्रार्थ्यते सेवया ॥१६७॥

हृदयमें पैठकर उसके मनमें पिशाचके समान अपवित्र रुचि उत्पन्न कर दी थी ॥१५५॥ इससे राजा क्षेमगुप्त परोपहासकुशल, परनारियोंके साथ रति करनेवाला एवं पराधीनहृदय होकर नाना प्रकारके अनर्थ करने लगा ॥ १५६ ॥ वह अपने आस-पासवाले वृद्धोंकी दाढियोंपर थूकता था। उनके कानोंमें गालियें बकता था और उनके कपालपर चपत मारता था ॥१५७॥ स्त्रियाँ कमरमें कमर सटाकर, शिकारी लोग उसके साथ जंगलोंमें घूमकर और धूर्तलोग अश्लील मजाक करके उसके प्रेमपात्र बने हुए थे ॥ १५८ ॥ कुलटा स्त्रियाँ, नीच, मूर्ख तथा सुकुमार बालकोंको खराब करनेवाले दुराचारी पापियोंसे भरी उसकी राजपरिषद् मनस्वी लोगोंके प्रविष्ट होनेके योग्य नहीं रह गयी थी ॥ १५९ ॥ प्रबल धूर्त जिष्णुपुत्रोंने चापलूसी कर-करके उस राजाको इस तरह अपने चंगुलमें फाँस लिया था कि जिससे वह कठपुतलीकी भाँति उनके इशारोंपर नाचता था ॥ १६० ॥ बहुत बार उन्होंने उस राजासे कहा कि 'आप कंकणवर्षी हैं' और उनकी बातोंसे प्रसन्न होकर उसने सचमुच अपने हाथोंमें पहने हुए कंकणोंकी वर्षा कर दी और उन्हें उन धूर्तोंने लूट लिया ॥ १६१ ॥ वे निर्दोष एवं सभ्य पुरुषोंके दोष बताकर, नयी-नयी चीजें दिखाकर तथा सम्माननीय पुरुषोंके सिरपर चपत लगाकर उस राजाकी कृपा प्राप्त करते थे ॥ १६२ ॥ वे धूर्त उसे अपने घर ले जाते और वहाँ जुआ खेलाते-खेलाते अपनी स्त्रियोंके नंगे कुच तथा नंगी कमरके सौन्दर्यकी ओर उसकी दृष्टि फेरकर उसका सारा धन लूट लेते थे ॥ १६३ ॥ वे उस राजाको स्त्री-संभोगका अनवरत सुख प्रदान करनेमें परस्पर होड़ लगाते हुए अपनी-अपनी स्त्रियाँ उसको अर्पित करके कहते थे कि 'आप इसके साथ भोग करके इसकी विशेषता बताइएगा'। संभोगके बाद वे उससे पूछते थे कि 'किससे आपको अधिक आनन्द मिला ?' इस तरह उसको प्रसन्न करके वे उससे प्रचुर धन प्राप्त कर लिया करते थे ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ राजा क्षेमगुप्तके प्रिय सेवकोंमेंसे हरि और धूर्जटि ये दो सेवक अपनी माँ-बहनोंकी इज्जत लुटानेको तैयार नहीं थे। अतएव वे राजाके लिए संभोगसामग्री जुटानेमें मूर्ख तथा भिक्षुक माने जाते थे ॥ १६६ ॥ मूर्ख विट लोग अपना शरीर उपहास्य बनाकर स्वाभिमान गँवा बैठते हैं, अपने घरकी स्त्रियोंको दूषित कराके कुलको अपवित्र कर देते हैं और चिरकालतक रात-दिन परसेवामें लगे रहनेके कारण अपना दैहिक सुख नष्ट कर डालते हैं। ऐसी परिस्थितिमें आप ही कहें कि जो वस्तु पानेके लिए मेहनत की जाती

यशस्करस्य भूत्वाऽपि सचिवो भट्टफल्गुणः । तस्याभूदनुजीव्यन्ते धिग्भोगाभ्यासवासनाम् ॥१६८॥
फल्गुणस्वामिमुख्यानां प्रतिष्ठानां विधायिनः । तस्योपदेशो भूभर्त्रा पर्यहास्यसकृद्रहः ॥१६९॥
गृह्णन्विद्वेषितां हन्तुं टक्कारादि बलात्ततः । वृद्धो रक्कः कम्पनेशो दुर्गोष्ठीमध्यगोऽभवत् ॥१७०॥
तीक्ष्णाक्षेपे संप्रविष्टं हन्तुं संग्रामडामरम् । श्रीजयेन्द्रविहारं स निर्घृणो निरदाहयत् ॥१७१॥
सुगतप्रतिमारीतिं हृत्वा दग्धात्ततोऽखिलात् । जरद्देवगृहेभ्यश्च संगृह्य ग्रावसंचयम् ॥१७२॥
सुरप्रतिष्ठया दार्ढ्यं मूढः स्वयशसो विदन् । नगरापणवीथ्यन्तः क्षेमगौरीश्वरं व्यधात् ॥१७३॥

एकः प्रयात्युपरमं द्रविणं तदीयं हृत्वाऽपरः प्रसभमुद्वहति प्रमोदम् ।
नो वेत्ति तत्स्वनिधने परकोशगामि धिग्वासनासममोहकृतान्धकाराम् ॥१७४॥

त्यागिना क्षेमगुप्तेन भुक्त्यर्थं खशभूभुजे । हृत्वा विहाराान्निर्दग्धान्ग्रामाः षट्त्रिंशदर्पिताः ॥१७५॥
दुर्गाणां लोहरादीनां शास्ता शतमखोपमः । नृपतिः सिंहराजाख्यस्तस्मै स्वां तनयां ददौ ॥१७६॥
स तस्यां शाहिदौहित्र्यां दिद्दायां रक्तमानसः । दिद्दाक्षेम इति ख्यातिं ययौ लज्जावहां नृपः ॥१७७॥
मातामहेन भूभर्तृवध्वास्तस्या व्यधीयत । श्रीभीमशाहिनोदात्तप्रासादो भीमकेशवः ॥१७८॥
चन्द्रलेखाभिधां कन्यां राज्ञे दत्तवताऽभवत् । फल्गुणद्वारपतिना समं दिद्दा समत्सरा ॥१७९॥
गुरूपदेशः सुमहान्कुन्तविद्याश्रमस्तथा । तस्य निर्वहणाद्गर्ह्याद्भूभुजो हास्यतां ययौ ॥१८०॥
अमोघपततान्प्रासान्योग्यान्संग्रामकर्मसु । सृगालमृगयासक्त्या स हि श्लाघ्यानमन्यत ॥१८१॥

है, उसे ही खोकर वे क्या पाते है ॥ १६७ ॥ एक समय भट्ट फल्गुण यशस्कर जैसे उच्चकोटिके राजाका मंत्री था, किन्तु अब वह राजा क्षेमगुप्तका सेवक वन गया था। ऐसे सुखोपभोगके अभ्यासकी वासनाको धिक्कार है ॥ १६८ ॥ उसने फल्गुण स्वामी आदि अनेकानेक देव मंदिर वनवाकर उनकी प्रतिष्ठा की थी। किन्तु उसकी अनुपस्थितिमे राजा उसके उपदेशोंका उपहास किया करता था ॥ १६९ ॥ सेनापति वृद्ध रक्क अपने ऊपरसे द्वेषभाव दूर करानेके लिए वरवस राजाके द्वारा अपने सिरपर चपत लगवाता था। ऐसा करके वह भी उन दुराचारियोंका मण्डलीमे सम्मिलित हो गया था ॥ १७० ॥ एक वार राजा क्षेमगुप्तने संग्राम डामरकी हत्या करनेके लिए कुछ घातक (जल्लाद) भेजे। उनके डरसे भागकर संग्राम डामर श्रीजयेन्द्रविहारमें छिप गया। तव उस निर्दयी राजाने विहारमें ही आग लगवा दी ॥ १७१ ॥ जिससे वह सारा विहार जलकर राख हो गया। वादमे उसमेसे उसने कांस्यमयी बुद्धमूर्ति तथा जले हुए मन्दिरके पत्थर भी निकलवा लिये। उन्हीं पत्थरोंसे उसने नगरके वाजारमे राजमार्गपर एक मन्दिर वनवाया और अपनी कीर्ति चिरस्थायिनी करनेके विचारसे उस मन्दिरमे क्षेमगौरीश्वरकी स्थापना की ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ एक मनुष्य जव संसारको छोड़कर चला जाता है, तव दूसरा मनुष्य उसका धन पाकर वहुत प्रसन्न होता है। किन्तु उसको यह नहीं मालूम होता कि वह धन अपने भी हाथसे निकलकर दूसरेके अधीन हो जानेवाला है। इस भीषण अन्धकारमयी मोहस्वरूपा वासनाको धिक्कार है ॥ १७४ ॥ वादमे उस त्यागी क्षेमगुप्तने जले हुए विहारके छत्तीस गावँ लेकर खशनरेश सिंहराजको दे डाला ॥ १७५ ॥ तव इन्द्रसदृश पराक्रमी तथा लोहर आदि अनेक दुर्गोंके शासक सिंहराजने अपनी कन्या दिद्दाका विवाह क्षेमगुप्तके साथ कर दिया ॥ १७६ ॥ शाहीकी दौहित्री दिद्दापर राजा क्षेमगुप्त इतना आसक्त हो गया कि जिससे जनसाधारणमें वह 'दिद्दाक्षेम' इस लज्जाजनक नामसे विख्यात हो गया ॥ १७७ ॥ वादमें दिद्दाके नाना भीमशाहीने एक भव्य तथा उन्नत मन्दिरका निर्माण कराया और उसमे भीमकेशव-भगवान्की स्थापना की ॥ १७८ ॥ इसी प्रकार द्वारपति (सीमापाल) फल्गुणने भी अपनी कन्या चन्द्रलेखाका विवाह क्षेमगुप्तके साथ किया था। उससे दिद्दा वहुत डाह करती थी ॥ १७९ ॥ एक उत्तम गुरुसे राजा क्षेमगुप्तने भालेकी लक्ष्यवेधविद्या सीखी थी। उस विद्यामें नैपुण्य प्राप्त करनेके लिए उसने वहुत परिश्रम किया था। किन्तु उस विद्याका उसने ऐसे कार्यमे उपयोग किया कि जिससे उसकी वड़ी जगहँसाई हुई ॥ १८० ॥ वात यह हुई कि उसने अपने अमोघ लक्ष्यवेधके

तं वृतं वागुरावाहिडोम्बाटविकपेटकैः । पर्यन्तं श्वभिः सार्धमपश्यन्सततं जनाः ॥१८२॥
तस्य दामोदरारण्यलल्यानशिमिकादिषु । स्थानेषु क्रोष्टुमृगयारसिकस्य वयोऽगमत् ॥१८३॥
अथ कृष्णचतुर्दश्यां स कुर्वन्मृगयां नृपः । ज्वालामपश्यत्क्रोशन्त्याः सृगाल्या निर्गतां मुखात् ॥१८४॥
तदालोकनसंजातसंत्रासाकम्पितस्ततः । लूतामयज्वरेणाभूत्परीतो मृत्युहेतुना ॥१८५॥
मर्तुं ययौ च वाराहक्षेत्रं यत्र विधायकः । श्रीकण्ठक्षेममठयोरासीद्दुष्कपुरान्तिके ॥१८६॥
मसूरविदलाकारलूताक्लिन्नकलेवरः । पौषे चाब्दे चतुस्त्रिंशे नवमेऽह्नि सिते मृतः ॥१८७॥
क्षेमगुप्तात्मजः क्ष्माभृदभिमन्युरभूत्ततः । शिशुर्निस्त्रिंशधर्मिण्या दिद्दादेव्यानुपालितः ॥१८८॥
संधिविग्रहशुद्धान्तमुख्यकर्माधिकारिणः । निःसाध्वसं राजवधूमवन्ध्यशयनां व्यधुः ॥१८९॥
अभिमन्यौ क्षितिं रक्षत्यकस्मादेव दारुणः । तुङ्गेश्वरापणोपान्तादुज्जगाम हुताशनः ॥१९०॥
वर्धनस्वामिपार्श्वस्थभिक्षुकीपारकावधिः । वेतालसूत्रपातस्थान्स ददाह महागृहान् ॥१९१॥
डोम्बचण्डालसंस्पृष्टभूपसंपर्कदूषितान् । दग्ध्वा महागृहान्वह्निर्भुवः शुद्धिमिवाकरोत् ॥१९२॥
रक्षित्री क्ष्मापतेर्माता स्त्रीस्वभावाद्विमूढधीः । सारासारविचारेण लोलकर्णी न पस्पृशे ॥१९३॥
राज्ञः सुतार्पणाद्बद्धवैरा तस्थौ पुरा यतः । पतिवत्न्येव सा सार्धं फल्गुणेनाग्र्यमन्त्रिणा ॥१९४॥
पत्यौ मृते सपत्नीनां दृष्ट्वाऽनुमरणं ततः । दम्भेनानुमुमूर्षन्तीमनुमेने स तां द्रुतम् ॥१९५॥
निषिषेधानुबन्धात्तु सानुतापां चितान्तिके । कृपालुर्मरणादेताममात्यो नरवाहनः ॥१९६॥

कौशलको युद्धकालमे उपयुक्त करनेकी अपेक्षा सियारोंके शिकारमे उपयुक्त करना उचित समझा ॥ १८१ ॥ तदनुसार कुत्तोंके झुण्ड तथा बड़े-बड़े जाल साथ लिये हुए डोम-पारधी आदि निम्न श्रेणीके लोगोंसे घिरे और उन्हींके साथ वन-वन भटकते हुए उस राजाको लोग देखा करते थे ॥ १८२ ॥ अब उसका सारा समय दामोदरारण्य, लल्यान एवं शिमिका आदि भीषण वनोंमे सियारोंका शिकार करनेमें बीता करता था ॥ १८३ ॥ एक बार वह कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिकार खेल रहा था। उसी समय एक चिल्लाती हुई श्रृगालीके मुखसे उसने आगकी लपट निकलती देखी ॥ १८४ ॥ उसको देखकर राजा इतना डर गया कि उसका समस्त शरीर भयसे कॉपने लगा। उसीके कारण उसे लूतारोग हो गया, जो उन दिनों मृत्युका कारण समझा जाता था ॥ १८५ ॥ तदनन्तर मरनेके लिए वह वराहक्षेत्र चला गया। वहाँ हुष्कपुरके पास उसने श्रीकण्ठ तथा हेम नामके दो मठ बनवाये ॥ १८६ ॥ उस समय राजा क्षेमगुप्तके शरीर भरमे दाल बराबर विस्फोटक (फफोले) निकल आये थे। उसी रोगके कारण ४०३४ लौकिक वर्षकी पौष शुक्ल नवमीको उसका देहान्त हो गया ॥ १८७ ॥ उसके बाद तलवारके समान तीखे स्वभाववाली दिद्दारानीके द्वारा पालित क्षेमगुप्तका पुत्र अभिमन्यु कश्मीर मण्डलका राजा बना ॥ १८८ ॥ दिद्दारानीके शयनकक्षमे सन्धि, विग्रह, रनिवास तथा मुख्य कर्म आदि अधिकारके पदोंपर अधिष्ठित रहनेवाले सभी अधिकारियोंकी पहुँच थी ॥ १८९ ॥ एक दिन राजा अभिमन्युके शासनकालमें तुंगेश्वर बाजारके पास सहसा आगकी ज्वाला भभक उठी ॥ १९० ॥ वह आग बढती-बढती वर्धन स्वामीके समीपवर्ती भिक्षुकीपारक तक जा पहुँची और उससे वेतालसूत्रपातके अनुसार निर्मित बड़े-बड़े प्रासाद जलकर भस्म हो गये ॥ १९१ ॥ उस प्रचण्ड अग्निने डोमों तथा चण्डालोंके सम्पर्कसे दूषित राजाओंके बड़े-बड़े महलोंको भस्म करके उस नगर एवं उस मण्डलको पवित्र कर दिया ॥ १९२ ॥ राजा अभिमन्युकी संरक्षिका राजमाता दिद्दा स्त्रीस्वभावके कारण मूढमति एवं लोलकर्णी अर्थात् चंचल कानोंवाली थी और प्रत्येक सुनी-सुनायी बातपर विश्वास कर लेती थी। उसमें सार और असार वस्तुको समझनेकी तनिक भी क्षमता नहीं थी ॥१९३॥ वह पतिके जीवनकालमें ही अपनी सौत चन्द्रलेखा, अपने पति राजा क्षेमगुप्त तथा उसके ससुर फल्गुणसे भी द्वेष रखती थी ॥ १९४ ॥ पतिका मरण हो जानेके बाद अपनी अन्यान्य सौतोंको सती होते देखकर वह भी सती हो जानेका पाखण्ड करने लगी थी। यह देखकर चन्द्रलेखाके पिता और मुख्य मंत्रीने उसका समर्थन किया ॥ १९५ ॥ किन्तु जब वह चिताके पास पहुँची, तब उसे पछतावा होने लगा। ऐसी स्थितिमे दयालु मंत्री नर-

अतो निसर्गपिशुनो रक्कस्तां मन्युदूषिताम्। फल्गुणाद्राज्यहरणाशङ्कां राज्ञीमजिग्रहत् ॥१९७॥
विरागशंसिभिर्लिङ्गैस्तां ज्ञात्वा विषमाशयाम्। समन्युं साखिलामात्यां फल्गुणोऽप्यास्त शङ्कितः ॥१९८॥
स हि सर्वाधिकारस्थः सर्वस्याक्षिगतोऽभवत्। दीप्यमानोऽधिकं मन्त्रशौर्योत्साहादिभिर्गुणैः ॥१९९॥
अस्थीनि क्षेमगुप्तस्य गृहीत्वा जाह्नवीं गते। पुत्रे कर्दमराजाख्ये प्रबलैरन्वितो बलैः ॥२००॥
तत्प्रत्यागमपर्यन्तं पर्णोत्से स्थातुमुद्यतः। अविश्वसन्नृपगृहे फल्गुणो वैरिशङ्कितः ॥२०१॥
निर्गत्य नगराद्यावत्सभाण्डागारिसैनिकः। काष्ठवाटान्तिकं प्राप तावद्रक्कादिचोदिता ॥२०२॥
आकलय्य द्रुतं दिद्दा संत्यज्य प्रार्थनादिकम्। पृष्ठे प्रत्युत याष्टीकांस्तस्य हन्तुं व्यसर्जयत् ॥२०३॥
नवावमानखिन्नः स मिलितानन्तसैनिकः। प्रत्यावृत्त्य ततो मानी वाराहं क्षेत्रमाययौ ॥२०४॥
श्रुत्वा समेतसैन्यं तं प्रत्यायातं प्रतापिनम्। आस्कन्दशङ्किनी दिद्दा सामात्या समकम्पत ॥२०५॥
तस्मिन्क्षेत्रे गतं शान्तं विलप्य स्वामिनं चिरम्। वराहपादसविधे तेन शस्त्रं समर्पितम् ॥२०६॥
द्रोहसंभावनापापं शस्त्रत्यागेन मन्त्रिणा। स्वस्य संमार्जितं तेन राजमातुश्च साध्वसम् ॥२०७॥
युक्तायुक्तविचारबाह्यमनसः सेवा महद्वैशसं क्रुद्धेऽस्मिन्प्रतिकारकर्म गहनद्रोहापवादावहम्।
येन न्यूनगुणेद्धोपकरणीभावोऽपि तस्मै परं कोपः कोऽपि विवेकिनः समुचितः शास्त्राय शस्त्राय वा ॥२०८॥
पर्णोत्समेव शनकैः ससैन्ये फल्गुणे गते। विगताध्यापका बाला इवामोदन्त मन्त्रिणः ॥२०९॥
योगक्षेमौ चिन्तयन्ती क्षेमगुप्तवधूरपि। अनिशं प्रजजागार स्वयं कण्टकपाटने ॥२१०॥

वाहनने उसे सती होनेसे रोक दिया॥ १९६॥ तदनन्तर स्वभावतः चुगलखोर रक्कने पहले ही कुपित दिद्दारानीके मनमें मुख्यमंत्री फल्गुण द्वारा राज्य छिन जानेका भय उत्पन्न कर दिया ॥ १९७॥ उधर फल्गुण भी अपने साथ होनेवाले विरागसूचक व्यवहारसे मंत्रिमण्डल सहित दिद्दारानीको अपनेपर क्रुद्ध समझकर सशंक हो गया था॥ १९८॥ फल्गुण राज्यके सभी विभागोंका निरीक्षक था। उसके मंत्र, शौर्य, उत्साह आदि गुणोंको देखकर सब लोग उससे जलते थे और वह सबकी आँखपर चढ़ गया था ॥ १९९॥ फल्गुणका पुत्र कर्दमराज एक बड़ी सेनाके साथ दिवंगत राजा क्षेमगुप्तकी अस्थियोंको लेकर गंगाजीमें प्रवाहित करनेके निमित्त गया हुआ था॥ २००॥ उसके लौटनेके समयतक वैरियोंसे शंकित फल्गुणने राजभवनमें रहना ठीक न समझकर पर्णोत्समें निवास करने निश्चय किया। तदनुसार वह अपना सामान, सेवकवर्ग तथा बहुतेरे सैनिकोंको साथ लेकर नगरसे बाहर निकला। वहाँसे चलकर उसने काष्ठवाट ग्रामके पास डेरा डाला। इधर रक्का आदि कुटिल मुसाहबोंके बहकावेमें आकर दिद्दा रानीने प्रार्थनायुक्त शिष्टाचारकी बात त्यागकर उसे मारनेके लिए कुछ लठैतोंको भेज दिया ॥ २०१–२०३॥ इस नूतन अपमानसे खिन्न होकर फल्गुण वहाँसे लौट पड़ा और अपने सैनिकोंके साथ चलकर वह वराहक्षेत्रमें जा पहुँचा॥ २०४॥ जब उस प्रतापी प्रधान मंत्रीको सेनासहित लौटा हुआ सुना तो उसके द्वारा आक्रमणकी आशंकासे अपने मंत्रियों समेत दिद्दा रानी काँपने लगी॥ २०५॥ इधर प्रधान मंत्री फल्गुण वराहक्षेत्रमें आकर बहुत देर तक अपने दिवंगत प्रभुकी याद करके रोता रहा। तदनन्तर उसने अपना शस्त्र वराहभगवान्‌के श्रीचरणोंमें रख दिया ॥ २०६॥ इस प्रकार शस्त्र त्यागकर उस मुख्य मंत्रीने अपने द्वारा होनेवाले राजद्रोहकी संभावनाके पाप एवं राजमाताके हृदयमें बैठे हुए आक्रमणके भयको धो दिया ॥ २०७॥ उचित और अनुचितके विचारसे हीन हृदयवाले मनुष्यके द्वारा उपयोगमें लाया हुआ शास्त्र तथा शस्त्र बड़ा खतरनाक होता है। वह मनुष्य जब उसे अमय समझकर व्यवहारमें लाता है, तब उसपर गुप्त रीतिसे राजद्रोह करनेका दोष मढ़ा जाता है। अतएव अपूर्ण शास्त्र एवं शस्त्रज्ञानका आग्रहपूर्वक उपयोग विवेकशील मनुष्यको ही करना चाहिए—नौसिखुये कदापि ऐसा न करें॥ २०८॥ जब सेनासमेत मुख्यमंत्री फल्गुण पर्णोत्स चला गया तो अन्यान्य मंत्री उसी तरह प्रसन्न हुए, जैसे गुरुके चले जानेपर बालकगण प्रसन्न होते हैं॥ २०९॥ अब दिद्दारानी भी

राज्यप्रार्थी पर्वगुप्तो मन्त्रिणौ कोशपायिनौ । अजिग्रहत्कन्ये पूर्वं पुत्र्योर्यौ छोजभूभटौ ॥२११॥
तयोः प्रजातौ तनयौ ख्यातौ महिमपाटलौ । अवर्धिषातां यौ राजमन्दिरे राजपुत्रवत् ॥२१२॥
तौ तत्रावस्थितावेव तत्कालं राज्यलालसौ । संमन्त्र्य समगंसातामुद्दामैर्हिम्मकादिभिः ॥२१३॥
बलिनौ तावबलया राज्यापास्तौ नृपास्पदात् । समन्यू स्वगृहादास्तां यावत्कृतगतागतौ ॥२१४॥
एकतः पृष्ठतः प्रागान्महिम्नो निर्गतस्य सा । निर्वासनाय याष्टीकांस्तावत्प्रकटवैकृता ॥२१५॥
शक्तिसेनाभिधानस्य श्वशुरस्य निवेशनम् । प्रविवेश स तज्ज्ञात्वा तं ते तत्रापि दुद्रुवुः ॥२१६॥
शक्तिसेनेन याष्टीकाः सान्त्विता नाचलन्यदा । तदा भीतस्य जामातुर्व्यक्तं प्रादात्स संश्रयम् ॥२१७॥
तं लब्धसंश्रयं प्राप हिम्मको मुकुलस्तथा । एरमन्तकनामा च परिहासपुराश्रयः ॥२१८॥
श्रीमानुदयगुप्ताख्योऽप्यमृताकरनन्दनः । ललितादित्यपुरजा यशोधरमुखा अपि ॥२१९॥
एकैकं ते मिथः सैन्यैर्भुवनक्षोभकारिणः । संभूय चक्रुर्द्वैराज्यं महिम्नः पक्षमाश्रिताः ॥२२०॥
तस्मिन्महाभये दिद्दापक्षं मन्त्री सबान्धवः । एक एव तु तत्याज नाद्रोहो नरवाहनः ॥२२१॥
प्रवर्धमानपृतना योद्धुं वल्गोद्यमास्ततः । पद्मस्वाम्यन्तिकं प्रापुर्दीप्यमानायुधा द्विषः ॥२२२॥
अथ शूरमठे दिद्दा विसृज्यात्मजमाकुला । आपच्छान्तिक्षमांस्तांस्तानुपायान्समचिन्तयत् ॥२२३॥
ललितादित्यपुरजान्द्विजान्स्वर्णेन भूरिणा । तूर्णं स्वीकृत्य विदधे रिपूणां संघभेदनम् ॥२२४॥
एकाक्षेपेऽखिलैः कोपो विधेय इति वादिभिः । महिम्नः पीतकोशैस्तैः संधिर्दिद्द्या समं कृतः ॥२२५॥

अपने योगक्षेमका भली भाँति चिन्तन करती हुई राज्यके कंटकोंको दूर करनेके लिए सदा सावधानी बरतने लगी ॥ २१० ॥ पूर्वकालमें राज्यके अपहरणकी आकांक्षा करके पर्वगुप्तने छोज तथा भूभट नामक दो मंत्रियोंके साथ अपनी दो कन्याओंका विवाह कर दिया था और उन दोनोंने भी कोशपानके साथ शपथ ली थी ॥ २११ ॥ उन दोनों (छोज और भूभट) के विख्यात दोनों पुत्र महिमा एवं पाटल राजमहलमें राजकुमारोंके समान पाले गये थे ॥ २१२ ॥ सयाने होनेके बाद भी वे दोनों राजमहलमें ही रहते थे। कालान्तरमें उन दोनोंने राज्य हस्तगत करनेकी लालसावश हिम्मक आदि कुछ उच्छृंखल लोगोंके साथ मिलकर विद्रोह करनेकी सलाह की ॥ २१३ ॥ इस बातका पता लगनेपर दिद्दारानीने उन्हें महलसे बाहर निकाल दिया। इससे कुपित होकर वे दोनों अपने घर चले गये और वहाँसे ही लोगोंके घर आने-जाने लगे ॥ २१४ ॥ तब दिद्दारानीने प्रत्यक्षरूपसे विरोध करके महिमाको अपने राज्यकी सीमासे बाहर कर देनेके लिए याष्टिकों (लठैतों) को भेजा ॥ २१५ ॥ उस समय महिमा अपने ससुर शक्तिसेनके घर गया हुआ था। यह जानकर वे लठैत वहाँ भी जा धमके ॥ २१६ ॥ तब शक्तिसेनने उन याष्टिकोंको शान्तिके साथ समझा-बुझाकर वापस लौटानेकी चेष्टा की, किन्तु वे वहाँसे नहीं लौटे। तब शक्तिसेनने प्रत्यक्षरूपसे उसे आश्रय देकर अपने जामाताका भय दूर किया ॥ २१७ ॥ महिमाके आश्रय पा जानेपर हिम्मक, मुकुल, परिहासपुरनिवासी एरमन्तक, अमृताकरका पुत्र श्रीमान् उदयगुप्त एवं ललितादित्यपुरका निवासी यशोधर आदि भी उसके पास पहुँच गये ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ तदनन्तर एक साथ उन लोगोंने महिमन का पक्ष लेकर अपनी-अपनी सेनासे धरतीको कँपाते हुए विद्रोह कर दिया ॥ २२० ॥ उस महान् भयदायक समयपर केवल सपरिवार राजभक्त मन्त्री नरवाहनने दिद्दारानीका साथ नहीं छोड़ा ॥ २२१ ॥ तदनन्तर अपनी विशाल वाहिनी साथ लिये और अपने शस्त्रास्त्रोंको चमकाते हुए शत्रुगण युद्ध करनेके लिए पद्मस्वामीके मन्दिरके निकट आ गये ॥ २२२ ॥ इस समाचारसे व्याकुल होकर दिद्दाने अपने पुत्र अभिमन्युको शूरमठ भेज दिया और उसके बाद उस विपत्तिको शान्त करनेका उपाय सोचने लगी ॥ २२३ ॥ तत्काल उसे एक उपाय सूझा। तदनुसार अति शीघ्र उसने ललितादित्यपुरनिवासी ब्राह्मणोंको बहुत-सा सोना देकर अपनी ओर मिला लिया और बादमें उन्हींके द्वारा शत्रुओंके संघमें फूट डाल दी ॥ २२४ ॥ अतएव जिन लोगोंने यह कहकर महिमाके साथ कोशपानपूर्वक शपथ ली थी कि 'हममेंसे किसी एकके ऊपर संकट आनेपर हम सब एक साथ मिलकर उसका प्रतीकार करेंगे'। वे ही लोग परस्पर फूटकर दिद्दारानी-

गोष्पदोल्लङ्घने यस्याः शक्तिर्नाज्ञायि केनचित् । वायुपुत्रायितं पत्न्या तया संख्याब्धिलङ्घने ॥२२६॥
यत्संग्रहो रत्नमहौषधीनां करोति सर्वव्यसनावसानम् ।
त्यागेन तद्वस्य भवेन्नमोऽस्तु चित्रप्रभावाय धनाय तस्मै ॥२२७॥
उत्कोचकाञ्चनादानेऽप्युच्चां ख्यायन्त्युपक्रियाम् । दिद्दा यशोधरादिभ्यः कम्पनादि समार्पयत् ॥२२८॥
अभिचारं महिम्नश्च कृतवत्या मितैर्दिनैः । मण्डलेऽखण्डिताज्ञत्वं रण्डायाः समजृम्भत ॥२२९॥
कदाचित्थक्कनाख्यस्य शाहीशस्योपरि क्रुधा । सत्रा स्ववंशजैर्यात्रां कम्पनाधिपतिर्ददौ ॥२३०॥
यद्देशं निम्नगाशैलदुर्गं प्रविशता जवात् ।
अखण्डशक्तिना तेन बलाद्ग्राहि थक्कनः ॥२३१॥
स कृतप्रणतेस्तस्य करमादाय भूपतेः । अभिषेकाम्बुभिश्चक्रे श्रीलताप्यायनं पुनः ॥२३२॥
लब्धप्रवेशैः समये तस्मिन्नक्कादिभिः खलैः । कम्पनाधिपतौ राज्या विद्वेषोऽग्राहि मूढया ॥२३३॥
उर्वीपतेश्च स्फटिकाश्मनश्च शैलोज्झितस्त्रीहृदयस्य चान्तः ।
असंनिधानात्सततस्थितीनामन्योपरागः कुरुते प्रवेशम् ॥२३४॥
स्वचित्तसंवादि वचो वदन्तो धूर्ता वितन्वन्ति मनःप्रवेशम् ।
पृथग्जनानां गणिकावधूनां विटाः प्रभूणामपि गर्भचेटाः ॥२३५॥
द्रोग्धायं थक्कनं रक्षन्धनादायेति पैशुनम् । तथ्यमेव तदीयं सा स्वयंवादादमन्यत ॥२३६॥
अथ स्ववसतिं प्राप्ते कम्पनेशे जयोर्जिते । याष्टीकान्व्यसृजद्दिद्दा स्फुटं निर्वासनोद्यता ॥२३७॥

की ओर आ मिले ॥ २२५ ॥ गौके खुर डूबने भर जलको भी लाँघनेमें जो असमर्थ थी, उसी दिद्दारानीने इस समय शत्रुओंमें फूट डालकर शत्रुसागरको लाँघनेवाले हनुमानका काम कर दिखाया ॥ २२६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि रत्नों और महौषधियोंका संग्रह करनेसे सब प्रकारकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, किन्तु इसके विपरीत जिसका त्याग करनेपर मनुष्य सब विपदाओंसे मुक्त हो जाता है, उस धन देवताको हमारा प्रणाम है ॥ २२७ ॥ उत्कोच (घूस) रूपमें धनदानकी अपेक्षा उपकार प्रशस्त माना जाता है। इस बातको ध्यानमें रखकर दिद्दारानीने यशोधर आदि विरोधियोंको कम्पनादि पदवियें समर्पित करके उनका मान बढ़ाया ॥ २२८ ॥ तदनन्तर थोड़े ही दिनों बाद दिद्दारानीने अभिचार कर्म कराके महिमनको मरवा डाला। अब उस राँड़ दिद्दाका कश्मीरपर अकण्टक शासन स्थापित हो गया ॥ २२९ ॥ एक बार शाही राजा थक्कनका गर्व खर्व करनेके लिए क्रुद्ध कम्पनेश (सेनापति) यशोधरने अपने वंशजोंके साथ उसपर चढ़ाई कर दी ॥ २३० ॥ यद्यपि नदियों और पर्वतोंके कारण वह प्रदेश दुर्गम था। तथापि अखण्ड शक्तिशाली कम्पनेश बड़े वेगसे उस देशमें घुसा और उसने बरबस थक्कनको कैद कर लिया ॥ २३१ ॥ बादमें जब थक्कन उसके शरणागत हो गया, तब यशोधरने उससे कर लेकर फिर उसका राज्याभिषेक किया और उसकी कुम्हलायी राज्यश्री-रूपिणी लता पुनः हरी-भरी कर दी ॥ २३२ ॥ उसी समय दिद्दारानीके पास जिन लोगोंकी बेरोक-टोक पहुँच थी, उन नक्क आदि दुष्टोंने उस मूर्ख रानीके हृदयमें कम्पनेश यशोधरके प्रति द्वेषकी भावना भर दी ॥ २३३ ॥ राजा, स्फटिक पत्थर तथा दुःशीला स्त्री इनके पास सदा रहनेवाले लोग यदि किसी कारण दूर हो जाते हैं तो उनपर समीप रहनेवाले अन्य लोगोंका रंग चढ़ जाता है ॥ २३४ ॥ मूर्खों तथा वेश्याओंके पास झूठ और खुशामदकी बातें करके जैसे धूर्त लोग उनके हृदयमें घर कर लेते हैं, उसी तरह गर्भदास लोग भी राजाओंकी चापलूसी करके उन्हें अपनी मुट्ठीमें कर लिया करते हैं ॥ २३५ ॥ अतएव 'कम्पनेश यशोधरने थक्कन-से धन लेकर उसकी रक्षा की और ऐसा करके उसने राजद्रोह किया है'। इस प्रकारका संशय अनायास रक्कने दिद्दारानीके मनमें उत्पन्न कर दिया ॥ २३६ ॥ जिसका परिणाम यह हुआ कि विजयप्राप्तिसे प्रसन्न यशोधर जैसे ही अपने घर पहुँचा, उसी समय दिद्दारानीने यशोधरको देशसे निर्वासित करनेके लिए अपने चोबदारोंको

तदाक्षेपं समाकर्ण्य स्मरन्तः कोशसंविदम् । ते हिम्मकैरमन्ताद्याः पूर्ववद्विक्रियां ययुः ॥२३८॥
नरवाहनमुख्यास्तु राज्ञीपक्षं न तत्यजुः । विभेदं पूर्ववत्प्रापदेवं निजबलं पुनः ॥२३९॥
प्रविष्टेषु ततः कोपात्पुरं शुभधरादिषु । भट्टारकामठे दिद्दा भृयः पुत्रं व्यसर्जयत् ॥२४०॥
दत्तार्गले नृपगृहे स्थितां तां दैवमोहिताः । ते तदैव विना पुत्रं विमूढा नोदपाटयन् ॥२४१॥
राज्याः संजघटे लोकः परस्मिन्नेव वासरे । यद्बलेन तदा स्थैर्यं सा किंचित्समदर्शयत् ॥२४२॥
जयाभट्टारिकापार्श्वाद्यावच्छूरमठान्तिकम् । व्याप्य स्थितैर्द्विपत्मन्यैरथ प्रववृते रणः ॥ २४३॥
राजधानीं राजसैन्ये प्रविष्टे त्रासविद्रुते । सिंहद्वारे घटाबन्धमेकाङ्गाः समदर्शयन् ॥२४४॥
शरीरनिरपेक्षास्ते भीतं संस्तम्य तद्बलम् । अथावन्विद्विषां सैन्यं चेलुः केचिच्च शत्रवः ॥२४५॥
तस्मिन्नवसरे राजकुलभट्टः समाययौ । तूर्यघोषैर्द्विषां सैन्यं भिन्दन्नानन्दयन्निजम् ॥२४६॥
तस्मिन्प्राप्ते द्विषां सैन्यं विननाश विनश्वरम् । न द्रोहाविनयं जातु सहन्ते शस्त्रदेवताः ॥२४७॥
त्रोटयत्यायसान्बन्धान्स्फोटयत्युपलानिति । यः ख्यातिमवहत्तथ्यां हिम्मको भीमविक्रमः ॥२४८॥
तस्यासिना राजकुलभट्टदेहार्धपातिना । चर्ममात्रं न तुत्रोट कङ्कटस्यातिसंकटे ॥२४९॥
विलोक्य तदसंभाव्यं सैन्ये दैन्यं समाश्रिते । अघानि हिम्मको योधैर्बद्धाऽम्भि यशोधरः ॥२५०॥
तथाप्यासीत्स्फुरन्संख्ये य एरमन्तकः क्षणम् । स भग्नासिच्युतो वाहाज्जीवग्राहमगृह्यत ॥२५१॥
नाजौ तैरप्यताघातुं यः श्रीमान्राजबान्धवः । जगामोदयगुप्तः स क्वापि त्यक्त्वा महाहवम् ॥२५२॥

उसके घर भेज दिया ॥ २३७ ॥ उसके इस निन्दनीय व्यवहारसे क्षुब्ध होकर हिम्मक-एरमन्तक आदि लोगोंने कोशपानपूर्वक शपथ ली और पहलेके समान फिर विद्रोह कर दिया ॥ २३८ ॥ इस समय रानीकी ओरके भी कुछ लोग उस विद्रोहमें सम्मिलित हो गये. किन्तु नरवाहन आदि राजभक्त मन्त्रियोंने दिद्दारानीका साथ नहीं छोड़ा ॥ २३९ ॥ जब रानीने क्षुब्ध शुभधर आदि विद्रोहियोंको नगरमें प्रविष्ट होते देखा, तब अपने पुत्र अभिमन्युको भट्टारक मठमें भेज दिया ॥ २४० ॥ अब जब कि दिद्दारानी राजमहलका फाटक बन्द करके अकेली उसके भीतर बैठी थी, वैसा अनुकूल अवसर पा करके भी उन दुर्भाग्यमोहित विद्रोहियोंने उसको पराजित नहीं किया ॥ २४१ ॥ उसके दूसरे ही दिन रानीके समर्थकोंकी सेना वहाँ आ पहुँची, उसके बलपर रानीको कुछ सान्त्वना मिली ॥ २४२ ॥ अब जयभट्टारिका मठसे लेकर शूरमठ पर्यन्तके प्रदेशोंमें जगह-जगह विद्रोहियों और रानीके सैनिकोंमें टक्कर होने लगी ॥ २४३ ॥ उस संघर्षमें रानीकी सेनाके पैर उखड़ गयी और उसे भागकर राजमहलमें शरण लेनी पड़ी । उस समय एकांगोंने संगठित होकर सिंह-द्वारपर विद्रोहियोंका सामना किया ॥ २४४ ॥ अपने शरीरकी भी चिन्ता न करके उन भयभीत सैनिकोंको धैर्य बँधाकर एकांगोंने शत्रुसेनापर आक्रमण कर दिया और उनके प्रबल प्रहारसे शत्रुओंको कुछ पीछे हटना पड़ गया ॥ २४५ ॥ उसी समय अपने रणवाद्योंकी ध्वनिसे शत्रुसेनाको आतंकित एवं राज्यकी सेनाको आनन्दित करता हुआ राजकुलभट्ट वहाँ आ पहुँचा ॥ २४६ ॥ उसको आते देखते ही शत्रुगण हताश हो गये और उनके सैनिक इधर-उधर भागने लगे । क्योंकि शस्त्रदेवता विद्रोह जैसी उच्छृंखलताको नहीं सहन कर सकते ॥ २४७ ॥ 'भीषण पराक्रमी हिम्मक लोहेके सिक्कड़ तोड़ देता है और बड़ी-बड़ी चट्टानोंको फोड़ डालता है' इस बातकी सर्वत्र ख्याति थी और वह ख्याति यथार्थ थी ॥ २४८ ॥ लेकिन उस युद्धमें वीर हिम्मकने अपनी तलवारसे राजकुलभट्टकी कमरपर कठोर प्रहार किया, किन्तु उससे उसके कवचका चमड़ा तक नहीं कट सका ॥ २४९ ॥ यह असम्भव घटना घटित होते देखकर विद्रोही सैनिक हताश हो गये, हिम्मक मार डाला गया और यशोधरको रानीके सैनिकोंने कैद कर लिया ॥ २५० ॥ यह सब होते हुए भी एरमन्तक कुछ देर तक लड़ता ही रहा । किन्तु एकाएक उसकी तलवार टूट गयी और वह घोड़ेसे गिर पड़ा । तदनन्तर जीवितावस्थामें ही वह पकड़ लिया गया ॥ २५१ ॥ किन्तु उस युद्धमें विद्यमान श्रीमान् उदयगुप्तको राज-

इत्थं लब्धजया राज्ञी तत्क्षणान्न्यग्रहीद्रुषा । यशोधरं शुभधरं मुकुलं च सबान्धवम् ॥२५३॥
काश्मीरिकाणां यः श्राद्धशुल्कोच्छेत्ता गयान्तरे । सोऽप्येरसन्तकः शूरः परिहासपुराश्रयः ॥२५४॥
बद्ध्वा महाशिलां कण्ठे वितस्ताम्भसि पातितः । स्वदुर्नयफलं देव्याः प्रकोपेनानुभावितः ॥२५५॥
ये सप्तसप्तताद्वर्षादागोपालनृपात्पुरा । अभिमन्युं यावदासन्षोडशानां महीभुजाम् ॥२५६॥
वर्षषष्टिं प्रतापायुःश्रीहरा द्रोहवृत्तयः । ते क्षिप्रं मन्त्रिणः सर्वे सान्वयाः सहानुगाः ॥२५७॥
भीमभ्रूभङ्गमात्रेण दिद्दादेव्या सकोपया । आसन्निःशेषतां नीता दुर्गयेव महासुराः ॥ तिलकम् ॥२५८॥
अभवन्विहिता राज्या तानुत्पाद्य मदोद्धतान् । रक्कादयः कम्पनादिकर्मस्थानाधिकारिणः ॥२५९॥
इत्थं मन्त्रिप्रकाण्डः स रण्डामाखण्डलोपमाम् । अखण्डमण्डलां चक्रे निर्द्रोहो नरवाहनः ॥२६०॥
राज्ञी कृतज्ञभावेन साऽपि मन्त्रिसभान्तरे । तमाजुहाव निर्द्रोहं स्वयं राजानकाख्यया ॥२६१॥
सुप्ते सुष्वाप निष्पन्नभोजनेऽस्मिन्नभुङ्क्त सा । हृष्टे जहर्ष निर्विण्णे निर्विवेदानुकूल्यतः ॥२६२॥
आरोग्यान्वेषणं शिक्षाप्रार्थनां गृहवर्तिनः । सात्मवस्तुविसर्गं च नाकृत्वा तस्य पिप्रिये ॥२६३॥
अभूतां युग्यवाहस्य कुय्यनाम्नः सुतौ पुरा । यौ सिन्धुभुय्यौ तज्ज्यायान्सिन्धुर्लीलितकः किल ॥२६४॥
पर्वगुप्तगृहे भूत्वा गञ्जाध्यक्षे स्थिते क्रमात् । लब्ध्वा गञ्जाधिकारित्वं तस्या राज्याः शनैरभूत् ॥२६५॥
रूढ्या तयैव गञ्जेशो नवायासविधायकः । कर्मस्थानस्य निर्माता सिन्धुगञ्जाभिधस्य यः ॥२६६॥
प्रायशो हृतराज्यस्ते वर्तते नरवाहनः । इति नेयधियं राज्ञीं सोऽभ्यधत्त दुराशयः ॥२६७॥

वंशज होनेके कारण उन्होंने नहीं कैद किया और वह स्वयं भी लोगोंकी आँख बचाकर कहीं भाग गया ॥२५२॥ इस तरह विजय लाभ होते ही दिद्दारानीने क्रोधके वशीभूत होकर यशोधर, शुभधर एवं सपरिवार मुकुलको पकड़वाकर जेल भेज दिया ॥ २५३ ॥ परिहासपुरनिवासी एरसन्तकके गलेमें पत्थर बाँधकर उसको वितस्ता नदीमें डुबा दिया गया। किसी समय उसने गयातीर्थमें कश्मीरियों द्वारा श्राद्धके अवसरपर दिया जानेवाला शुल्क बन्द करा दिया था। उसे अपने इस अन्यायका फल देवी दिद्दाका कोपभाजन होकर भुगतना पड़ा ॥ २५४ ॥ २५५ ॥ इस प्रकार ३९७७ लौकिक वर्षमें होनेवाले राजा गोपालवर्मासे लेकर शिशु राजा अभिमन्यु तक साठ वर्षमें कुल मिलाकर सोलह राजे हो गये। उन राजाओंके प्रताप, आयु तथा लक्ष्मी-का अपहरण करनेवाले सभी राजद्रोही, मन्त्री, उनके वंशज, आप्तजन तथा सेवकोंको उस प्रकुपित राजरानी दिद्दाने अपने भ्रूभंगसे उसी तरह समूल नष्ट कर दिया, जैसे पुरातनकालमें भगवती दुर्गादेवीने असुरोंका संहार किया था ॥ २५६—२५८ ॥ इस रीतिसे उन मदोद्धत मन्त्रियोंको नष्ट करके दिद्दारानीने अपने कृपापात्र रक्क आदि कर्मचारियोंको कम्पनेश आदि पद प्रदान किया ॥ २५९ ॥ मन्त्रिश्रेष्ठ एवं द्रोहभावनाविहीन महा-मन्त्री नरवाहनने अपने बुद्धिकौशलसे उस विधवा दिद्दारानीको इन्द्रसदृश अखण्डमण्डलेश्वरी बना दिया ॥२६० ॥ इसके पुरस्कारस्वरूप उस रानीने मुख्यमन्त्री नरवाहनको भरी सभामें 'राजानक' की पदवी प्रदान की ॥ २६१ ॥ आगे चलकर रानीका उसपर इतना स्नेह हो गया कि जब वह सोता था, तब वह भी सोती थी। जब वह खाता था, तब वह स्वयं भी खाती थी। जब वह हर्षित होता था, तब वह भी प्रसन्न होती थी और जब वह दुःखी होता था, तब वह भी विषण्ण हो जाती थी ॥ २६२ ॥ जब वह घरपर रहता था, तब उसके स्वास्थ्यका समाचार सुने बिना, हर एक काममें सलाह लिये बिना एवं अपनेको रुचनेवाली वस्तु-को दिये बिना दिद्दारानीको चैन नहीं मिलती थी ॥ २६३ ॥ लोगोंकी पालकी उठानेवाले कुय्यनामक एक एक कहाँरके दो लड़के थे—जिनका नाम था सिन्धु और भुय्य । उन दोनोंमें बड़ा पुत्र सिन्धु राजा पर्वगुप्तका प्रिय सेवक था । धीरे-धीरे वह उसका गंजाध्यक्ष (खजानची) बन गया। कुछ समय बाद दिद्दारानीने उसे अपने यहाँ गंजाधिकारीके पदपर नियुक्त कर दिया। बहुत समयसे यह कार्य करनेके कारण वह खजानेके काममें बहुत निपुण हो गया था। इस कारण वह थोड़े ही दिनोंमें अपने विभागका अध्यक्ष बन गया।

सा तथेत्यब्रवीद्यावत्तावत्प्रेम्णा स जातुचित् । मन्त्री तां प्रार्थयामास भोक्तुं निजगृहागमम् ॥२६८॥
सा सानुगां तत्र यातां ध्रुवं त्वामेव भन्त्स्यति । इत्युक्ता सिन्धुनाऽपृच्छत्तत्कर्तव्यं भयाकुला ॥२६९॥
अनुक्त्वैव प्रचलिता राजधानीमलक्षिता । स्त्रीधर्मिण्यस्मि जातेति पश्चाद्वार्तां व्यसर्जयत् ॥२७०॥
संप्रवृत्तोपचारायां गतायां तत्पथात्तथा । राज्ञ्यां नाशममात्यस्य प्रीतिः संविच्च सा ययौ ॥२७१॥
तयोस्ततः प्रभृत्येव निष्कृष्टस्नेहयोः कृतम् । चाक्रिकैरतिरूक्षत्वं तिलपिण्याकयोरिव ॥२७२॥
कुलिशं सर्वलोहानामम्भसां शैलसेतवः । अभेद्याः प्रतिभाव्यन्ते न किंचिदसतां पुनः ॥२७३॥
ये बालादपि संमूढाः प्राज्ञाः सुरगुरोरपि । तेषां न विद्मः के तावन्निर्माणपरमाणवः ॥२७४॥

विश्वासोज्झितधीः शिशून्कलयते काकोऽन्यदीयान्निजात्
हंसः क्षीरपयोविभागकुशलस्त्रस्यत्यसाराद्धनात् ।
लोकावेक्षणतीक्ष्णधीः खलगिरं जानाति सत्यां नृपो
धिग्वैदग्ध्यविमुग्धताव्यतिकरस्पृष्टं विधानं विधेः ॥२७५॥

मूढा चरणहीना सा श्रुतिबाह्यतया तया । वैधेयविप्रप्रकृतिरिव प्रायाद्विगर्ह्यताम् ॥२७६॥
उद्वेजितस्तया शश्वत्तथा स नरवाहनः । यथा विमाननोत्तप्तः स्वयं तत्याज जीवितम् ॥२७७॥
प्रकुप्यत्यप्रतीकार्ये स्वतेजस्तप्तचेतसाम् । शरणं मरणं त्यक्त्वा किमिवान्यद्यशोर्थिनाम् ॥२७८॥

राज्यकी आमदनी बढानेके लिए उसने बहुत-सी नयी-नयी युक्तियाँ निकालीं और सिन्धुगंज नामका एक नया महाकमा ही खोल दिया था। उसी दुष्टने परतंत्र बुद्धिवाली दिद्दारानीसे कह दिया कि 'मुख्यमन्त्री नरवाहनने प्रायः आपका सारा राज्य अपनी मुट्ठीमें कर लिया है' ॥२६४—२६७॥ इस बातका प्रत्युत्तर देती हुई रानीने कहा—'हाँ, यही बात है'। उसी समय बड़े प्रेमके साथ मन्त्री नरवाहनने रानीको भोजनके लिए अपने यहाँ आमन्त्रित किया ॥२६८॥ जब रानी अपने सेवकोंके साथ उसके घर जानेको उद्यत हुई, तब सिन्धुने कहा—'यदि वहाँ जाइएगा तो वह सेवकों समेत आपको कैद कर लेगा'। यह सुनकर भयभीत रानीने उससे अपने बचावकी युक्ति पूछी॥२६९॥ तदनुसार वह मन्त्रीके घर तक जाकर उसे बताये बिना अपने घर लौट आयी। बादमें उसके पास यह सन्देश भेज दिया कि 'एकाएक मासिक धर्म हो जानेके कारण मैं नहीं आ सकती' ॥२७०॥ रानीके इस व्यवहारसे मुख्यमन्त्री नरवाहनको बहुत दुःख हुआ और उसने सोचा कि 'मैं उनका इतना प्रबल भक्त हूँ, फिर भी महारानी मेरे साथ ऐसा शुष्क व्यवहार क्यों करती हैं?' बस, उसी समयसे उसका रानीपरसे प्रेम तथा भक्ति घटने लग गयी ॥२७१॥ रानी और मन्त्रीमें इस प्रकार मनमोटाव देखकर षड्यंत्रकारी धूर्तोंने तिलपिण्याक (तिलकी खली) के समान उनके मनमें निःस्नेहता उत्पन्न कर दी ॥२७२॥ वज्र अर्थात् हीरा सब प्रकारके लौहोंसे और पत्थरका बना बाँध जलसमूहसे अभेद्य होता है, किन्तु दुष्ट मनुष्योंके आगे कोई भी वस्तु अभेद्य नहीं रह जाती॥२७३॥ जो धूर्त बालकसे भी अधिक अबोध और बृहस्पतिसे भी ज्यादा बुद्धिमान् होते हैं, मैं नहीं जानता कि वे किन परमाणुओंके मिश्रणसे बनाये जाते हैं॥२७४॥ संसार भरमें किसीके भी ऊपर विश्वास न करनेवाला चालाक कौआ दूसरे पक्षी अर्थात् कोयलकी सन्तानको अपनी सन्तति मानकर पालता है, नीर-क्षीरका बिलगाव करनेमें निपुण हंस निःसार मेघको देखकर डर जाता है और रात-दिन विभिन्न स्वभावके मनुष्योंपर शासन करनेके कारण तीक्ष्णबुद्धि राजा खल पुरुषोंकी बातको सत्य मान लेता है। इस तरह चातुर्य एवं मूर्खतासे मिश्रित विधाताको धिक्कार है॥२७५॥ इस प्रकार श्रुतिबाह्यता अर्थात् सुनी हुई बातपर विश्वास करनेके कारण वह पंगु एवं मूर्ख दिद्दारानी श्रुतिबाह्य (वेदविहीन) ब्राह्मणकी प्रकृतिके समान जनसाधारणमें निन्दाका पात्र बन गयी ॥२७६॥ आगे चलकर तो उसने मुख्यमंत्री नरवाहनको बार-बार इतना अपमानित किया कि जिसके सन्तापसे सन्तप्त होकर उसने आत्महत्या कर ली ॥२७७॥ जिसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता, ऐसे व्यक्तिके कुपित होनेपर अपने ही तेजसे संतप्तहृदय

शशिहीनेव रजनी सत्यत्यक्तेव भारती। विरराज न राजश्रीर्नरवाहनवर्जिता ॥२७९॥
सा क्रौर्याभ्यासविषमा हन्तुं विततविक्रमान्। संग्रामडामरसुतान्समीपस्थानचिन्तयत् ॥२८०॥
निजमुत्तरघोषं ते तद्भयेन विनिर्गताः। कय्यकद्वारपत्यादीन्कृतारब्धीन्व्यपादयन् ॥२८१॥
उत्पिञ्जभीतया राज्ञ्या त्यक्त्वा परिभवत्रपाम्। ते यत्नात्समपद्यन्त मानः स्वार्थार्थिनां कुतः ॥२८२॥
स्थानेश्वरादिभिर्मुख्यैर्डामरैरितरैः समम्। ते भीताः पुरतस्तस्याः पुनरेत्य जजृम्भिरे ॥२८३॥
अथ तद्भीतया राज्ञ्या स्वके प्रमयमागते। आनीतः फल्गुणो भूयो वीरार्थिन्या निजान्तिकम् ॥२८४॥
राजकार्याणि कुर्वाणः स भूयः शस्त्रमग्रहीत्। न्यस्तशस्त्रोऽपि यत्सत्यं दुस्त्यजा भोगवासना ॥२८५॥
महिमा राजपुर्यादिजयिनस्तस्य पश्चिमः। अद्भुतो वृद्धबन्धक्या अवरुद्ध इवाभवत् ॥२८६॥
अभूदुदयराजस्य देवीभ्रातुरतिप्रियः। यः सहायोऽक्षपटले जयगुप्ताभिधः कुधीः ॥२८७॥
अन्येऽधिकारिणस्तेन सहिताः क्रूरवृत्तयः। कश्मीरेषु व्यधुर्लुण्ठिं दुष्कृतैस्तदुपार्जितैः ॥२८८॥
दौःशील्यभाजो मातुश्च पाप्मभिर्विधुरीकृतः। अभिमन्युः क्षणे तस्मिन्क्षयरोगेण पस्पृशे ॥२८९॥
पण्डितः पुण्डरीकाक्षो विद्वत्पुत्रैरुपस्कृतः। कृतश्रुतः स वैदुष्यतारुण्याभ्यां विदिद्युते ॥२९०॥
तथा विशुद्धप्रकृतेस्तस्य दुष्कृतसंगमः। शोषायायी शिरीषस्य रविताप इवाभवत् ॥२९१॥
अर्धमानः प्रजाचन्द्रस्तृतीयस्यां स कार्तिके। शुक्लेऽष्टचत्वारिंशाब्दे ग्रस्तो नियतिराहुणा ॥२९२॥
तत्पुत्रो नन्दिगुप्तस्तु बालश्चक्रे निजासने। वृद्धस्तनयशोकस्तु दिद्दाया हृदये पदम् ॥२९३॥

एवं यशके इच्छुक पुरुषको मृत्युके सिवाय अन्यत्र कहाँ शरण मिल सकती है॥ २७८ ॥ जैसे चन्द्रमाविहीन रात्रि और सत्यसे रहित वाणी नहीं शोभित होती, उसी प्रकार प्रधान मंत्री नरवाहनके अभावमें दिद्दारानीकी राज्य-लक्ष्मी भी नहीं सुन्दर लग रही थी ॥ २७९ ॥ नित्य क्रूरताके अभ्याससे अत्यन्त निर्दय स्वभाववाली वह रानी अब अपने पार्श्ववर्ती एवं परम पराक्रमी संग्राम डामरके पुत्रोंको मरवा डालनेका विचार करने लगी ॥ २८० ॥ उन्हें रानीके विचारका पता लग गया। अतएव वे उसके भयसे व्यग्र होकर अपने उत्तरघोष गाँवको चले गये और राज्यपर आक्रमण करनेके लिए सन्नद्ध द्वाराधिपति कैय्यक आदिको उन्होंने मार डाला ॥ २८१ ॥ उत्पिंजोंसे भयभीत दिद्दारानीने जब कैय्यक आदिके वधका समाचार सुना, तब उसने अपमानजनित लज्जाको त्यागकर प्रयत्नपूर्वक उन संग्राम डामरके पुत्रोंके साथ सन्धि कर ली। क्योंकि स्वार्थ साधनेमें तत्पर प्राणियोंके हृदयमें स्वाभिमान होता ही कहाँ है ?॥ २८२ ॥ किन्तु वहाँ वापस आनेसे पहले ही उस रानीसे भयभीत होकर उन्होंने स्थानेश्वर आदिके मुख्य डामरोंसे सन्धि कर ली और कुछ निर्भय हो गये। तदनन्तर वहाँ एकत्र होकर वे और भी प्रबल पड़ गये ॥ २८३ ॥ एक मन्त्रीकी मृत्यु हो जानेसे दिद्दारानीको डामरोंसे सदा भय बना रहता था। अतएव उसने फल्गुणको फिरसे वापस बुलवा लिया ॥ २८४ ॥ फल्गुणने यद्यपि बहुत पहले ही शस्त्र त्याग दिया था, फिर भी राज्यकार्य करनेके लिए उसने फिरसे शस्त्र ग्रहण कर लिया। क्योंकि भोग-वासनाको त्यागना बड़ा टेढ़ा काम होता है ॥ २८५ ॥ राजपुरी आदि स्थानोंको जीतनेवाले महामंत्री फल्गुणका प्राचीन तथा आश्चर्य-जनक महत्त्व उस वृद्ध बन्धकीके द्वारा अवरुद्ध जैसा हो गया था ॥ २८६ ॥ तभी दिद्दारानीके भाई उदयराजका अतिशय प्रिय सहायक एवं अक्षपटल (सरकारी दफ्तर) का अधिकारी दुर्बुद्धि जयगुप्त तथा उसीकी भाँति क्रूर प्रकृतिके अन्य अधिकारियोंने आपसमें मिलकर प्रजाके पापसे दूषित समस्त कश्मीर देशमें लूट-पाट मचा दी ॥ २८७ ॥ २८८ ॥ उन्हीं दिनों अपनी माताकी क्रूरताजनित पापसे दुःखित अभिमन्युको क्षयरोगने धर दबोचा ॥ २८९ ॥ उस बालकके नेत्र कमल सरीखे सुन्दर थे। वह स्वयं पण्डित था, इससे पण्डितोंके पुत्र उसे अपना अग्रणी मानते थे। विद्या तथा तरुणाईके मेलसे वह बहुत ही सुन्दर लग रहा था॥ २९० ॥ लेकिन उस शुद्ध स्वभाववाले अभिमन्युके लिए दुष्टोंका सम्पर्क सुकुमार शिरीष पुष्पपर पड़नेवाले सूर्यताप जैसा शोषक बन गया था ॥ २९१ ॥ अन्तमें प्रजाको चन्द्रमाके सदृश आनन्ददायक अभिमन्यु ४०४८ लौकिक वर्षकी कार्तिक शुक्ल तृतीया तिथिको आधी कला प्राप्त करनेके पहले दुर्दैवरूपी राहु द्वारा ग्रस लिया गया ॥ २९२ ॥ तदनन्तर उसके

सा शोकपिहितक्रौर्या तस्थौ प्रशमशीतला । रविरत्नशलाकेव ध्वान्तच्छन्नोष्मवैकृता ॥२९४॥
ततः प्रभृत्यद्भुताभिस्तस्या धर्मप्रवृत्तिभिः । कुकर्मभिरुपोढाऽपि लक्ष्मीः प्रापा पवित्रताम् ॥२९५॥
नगराधिपतिर्भुय्यः सिन्धुभ्राता शुभाशयः । तदीयधर्मचर्यायां बभूव परिपोषकः ॥२९६॥
सा तेनोत्पादितानर्घजनरागा गतैनसा । ततः प्रभृत्यभूद्देवी सर्वलोकस्य संमता ॥२९७॥
राज्ञः स सचिवः सत्यं दुष्प्रापो लुप्तचण्डिमा । कुर्याद्यः सुखसेव्यत्वं हेमन्त इव भास्वतः ॥२९८॥
सा निर्मात्री विपन्नस्य सूनोः सुकृतवृद्धये । अभिमन्युस्वामिनोऽभूदभिमन्युपुरस्य च ॥२९९॥
अथ दिद्दापुरोपेतो दिद्दास्वामी तया कृतः । मठश्च मध्यदेशीयलाटसौडोत्रसंश्रयः ॥३००॥
भर्तुः कङ्कणवर्षस्य पुण्योत्कर्षाभिवृद्धये । चकार कङ्कणपुरं रमणी स्वर्णवर्षिणी ॥३०१॥
श्वेतशैलमयं चान्यं सा दिद्दास्वामिनं व्यधात् । धवलं चरणोद्भूतगङ्गाम्भःप्लवनैरिव ॥३०२॥
चक्रे काश्मीरिकाणां च दैशिकानां समाश्रयः । तयात्युच्चचतुःशालो विहारश्चारुसंपदा ॥३०३॥
श्रीसिंहस्वामिनं नाम्ना सिंहराजस्य सा पितुः । मठं च विदधे स्थित्यै दैशिकानां द्विजन्मनाम् ॥३०४॥
मठप्रतिष्ठावैकुण्ठनिर्माणाद्यैः स्वकर्मभिः । तयातिपावनश्चक्रे वितस्तासिन्धुसंगमः ॥३०५॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु किमुक्तैर्भूरिभिः शुभैः । सा प्रतिष्ठा व्यरचयच्चतुःषष्टिमिति श्रुतिः ॥३०६॥
जीर्णोद्धारकृता देव्या प्लुष्टप्राकारमण्डलाः । प्रायः सुरगृहाः सर्वे शिलावप्रावृताः कृताः ॥३०७॥
क्रीडाचङ्क्रमणे राज्याः पङ्ग्वा विग्रहवाहिनी । वल्गाभिधा वैवधिकी वल्गामठमकारयत् ॥३०८॥

अल्पवयस्क पुत्र नन्दगुप्तको दिद्दारानीने राजगद्दीपर बैठाया। किन्तु प्रबलतम पुत्रशोकने उसके हृदयमें घर कर लिया ॥ २९३ ॥ उस महान् शोकके आक्रमणसे उसकी क्रूरता उसी प्रकार ढँक गयी थी, जैसे अन्धकारसे आच्छादित हो जानेके कारण सूर्यकान्त मणिकी उष्णता नष्ट हो जाती है। अब उसका स्वभाव कुछ शान्त तथा शीतल हो गया ॥२९४॥ उसी दिनसे उसकी धार्मिक कार्योंमें प्रवृत्ति हो जानेपर कुमार्गसे अर्जित सम्पदा भी पवित्र हो गयी ॥२९५॥ नगरका अधिपति तथा सिन्धुका भ्राता भुय्य बड़ा सदाचारी पुरुष था। अतएव वह दिद्दारानीकी धार्मिक प्रवृत्तिको बराबर प्रोत्साहित करता रहता था ॥२९६॥ भुय्यने रानीके हृदयमें प्रजाका प्रेम जागृत किया और उसके सभी पाप नष्ट कर दिये। इसीसे अब दिद्दा देवी समस्त प्रजाको अत्यन्त प्रिय हो गयीं ॥ २९७ ॥ राजाकी क्रूरताको नष्ट कर देनेवाला सज्जन एवं चतुर मन्त्री वास्तवमें अतिशय दुर्लभ होता है। क्योंकि वह सूर्यको सुखसेव्य बना देनेवाली हेमन्त ऋतुकी भाँति राजाको सारी प्रजाके लिए सुसेव्य कर देता है ॥ २९८ ॥ अब दिद्दा रानीने अपने दिवङ्गत पुत्रकी पुण्यवृद्धिके निमित्त अभिमन्युस्वामीका मन्दिर बनवाकर अभिमन्युपुर नामका नगर भी बसाया ॥ २९९ ॥ उसके बाद अपने नामसे दिद्दापुर नगर बसाकर दिद्दा स्वामीका मन्दिर बनवाया। उसने मध्यदेश, लाटदेश तथा सौडोत्र देशके निवासियोंको रहनेके लिए मठका भी निर्माण कराया ॥ ३०० ॥ उसके साथ ही, अपने कंकणवर्षी पतिकी पुण्यवृद्धिके लिए उस सुवर्णवर्षिणी नारीने कंकणपुर नामका नगर बसाया ॥ ३०१ ॥ तदनन्तर श्वेतवर्णके पत्थरों (संगमर्मर) से उसने दिद्दास्वामीका एक दूसरा मन्दिर बनवाया। वह मन्दिर विष्णुभगवान्के चरणसे निकली गंगाजीके जलसे धुले हुएके समान स्वच्छ दीखता था ॥ ३०२ ॥ कश्मीरियों तथा विदेशियोंके निवासार्थ उसने एक बहुत ऊँचा चौमहला मठ बनवाया ॥ ३०३ ॥ अपने पिता सिंहराजके नामसे उसने सिंहस्वामीका मन्दिर एवं विदेशी ब्राह्मणोंको रहनेके लिए एक मठका निर्माण कराया ॥ ३०४ ॥ इस प्रकार मठनिर्माण, देवमन्दिरोंकी स्थापना तथा वैकुण्ठनिर्माण आदि अपने शुभ कार्योंसे दिद्दा रानीने वितस्ता तथा सिन्धुनदके संगमको अतिशय पवित्र कर दिया ॥ ३०५ ॥ उन विभिन्न प्रदेशोंमें उसके द्वारा किये गये शुभ कार्योंकी गणना करना व्यर्थ है। ऐसा सुना जाता है कि उसने चौसठ मन्दिर बनवाये थे और उसमें देवताओंकी स्थापना की थी ॥ ३०६ ॥ जीर्ण देवमन्दिरोंका उद्धार कराते समय उस देवीने अग्निकाण्डमें जले हुए मन्दिरोंको प्रायः पत्थरसे ही बनवाया था ॥ ३०७ ॥ दौड़-धूपके खेलमें पंगु दिद्दारानीका

तीर्थसेवनमौनभागपि तिमिः सक्तः स्वकुल्याशने
वाताशान्ग्रसते शिखी घनपयोमात्राशनोऽप्यन्वहम्।
विश्वस्ताञ्जलचारिणः प्रकटितध्यानोऽपि भुङ्क्ते वकः
सत्कर्माचरणेऽपि दोषविकृतौ न प्रत्ययः पापिनाम् ॥३०९॥

चर्पणी वर्षमात्रेण शान्तशोका बभूव सा। भोगोत्सुकाऽर्भके तस्मिन्नसरि व्यभिचारकृत् ॥३१०॥
वर्ष एकान्नपञ्चाशे नीतः पक्षे सिते क्षयम्। स मार्गशीर्षद्वादश्याममार्गव्यग्रया तया ॥३११॥
पौत्रस्त्रिभुवनो नाम मार्गशीर्षे सितेऽहनि। पञ्चमेऽप्येकपञ्चाशे वर्षे तद्वत्तया हतः ॥३१२॥
अथ मृत्युपथे राज्यनाम्नि स्वैरं निवेशितः। क्रूरया चरमः पौत्रो भीमगुप्ताभिधस्तया ॥३१३॥
तस्मिन्नवसरे वृद्धः फल्गुणोऽपि व्यपद्यत। निगूढक्रौर्यदौःशील्या दिद्दा यद्गौरवादभूत् ॥३१४॥
बभूव साऽथ सुस्पष्टदुष्टचेष्टाशतोत्कटा। भ्रष्टवक्त्रपटा मत्तदन्तिमूर्तिरिवोत्कटा ॥३१५॥
महाभिजनजातानामपि हा विड्निसर्गतः। सरितामिव नारीणां वृत्तिर्निम्नानुसारिणी ॥३१६॥

स्रोतोधिराज्यमधिगम्य विराजमानात्सिन्धोः प्रसूय कमलाल्पपयोनिकेते।
जाते सरस्यविरतं जलजे प्रसक्ता नार्यो महाभिजनजा अपि नीचभोग्याः ॥३१७॥

खशस्य वद्दिवासाख्यपर्णोत्सग्रामजन्मनः। बाणस्य सूनुस्तुङ्गाख्योऽविशन्महिषपालकः ॥३१८॥
प्रविष्टो जातु कश्मीरॉल्लेखहारककर्मणा। सुगन्धिसीहप्रकटनागाट्टयिकषण्मुखैः ॥३१९॥
पञ्चभिर्भ्रातृभिः सार्धं सांधिविग्रहिकान्तिके।
देव्या दृग्गोचरं यातो हृदयावर्जकोऽभवत् ॥ तिलकम् ॥३२०॥

पीठपर लादकर दौड़नेवाली वल्गा नामकी दासीने भी अपने नामसे वल्गा मठ बनवाया ॥ ३०८ ॥ नित्य तीर्थ-सेवन तथा मौन धारण किये रहनेवाला तिमि मत्स्य अपने वंशजोंको ही खानेके लिए उद्यत रहता है, केवल वर्षाका जल पीनेवाला मयूर सदा सर्पोंका भक्षण करता रहता है और निरन्तर ध्यानमग्न रहनेवाला बगुला विश्वस्त मछलियोंको निगला करता है। अतएव पापियोंके सत्कर्म करनेपर भी यह निश्चय नहीं रहता कि, कब उनकी प्रवृत्ति कैसी हो जाय ॥ ३०९ ॥ इस प्रकार एक वर्ष बीतते ही उस जारिणीका शोक शान्त हो गया और वह फिर भोग-विलास करनेके लिए उत्सुक हो उठी। उस कार्यमें बाधक समझकर उसने अपने पौत्र नन्दिगुप्तपर अभिचार कर्म कराया ॥ ३१० ॥ ऐसा करके उस उस कुलटाने ४०४९ लौकिक वर्षकी मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीको अपने अल्पवयस्क पौत्रकी जीवनलीला समाप्त कर दी ॥ ३११ ॥ उसी प्रकार ४०५१ लौकिक वर्षकी मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी तिथिको उसने अपने दूसरे पौत्र त्रिभुवनको भी अभिचारकर्म द्वारा मरवा डाला ॥ ३१२ ॥ तद-नन्तर उस क्रूर प्रकृतिकी रानीने अपने तृतीय पौत्र भीमगुप्तको स्वेच्छासे राज्यसिंहासनरूपी मृत्युके पथपर बैठाया ॥ ३१३ ॥ उसी समय उसका वह वृद्ध मन्त्री फल्गुण मर गया। जिसके भय अथवा गौरववश दिद्दारानीने अपनी दुश्चरित्रता तथा क्रूरताको दबा दिया था ॥ ३१४ ॥ उस मन्त्रीके मर जानेपर वह रानी एकदम उद्धत हो गयी। अब वह निर्भयभावसे प्रगटरूपमें सैंकड़ों प्रकारके कुकर्म करती हुई निरंकुश तथा मदोन्मत्त हथिनीकी तरह मुखपरसे आवरण हटाकर स्वच्छन्द विचरने लगी ॥ ३१५ ॥ यह बड़े ही खेदकी बात है कि महान् कुलमें उत्पन्न होनेवाली भी नारियोंकी प्रवृत्ति पर्वत जैसे ऊँचे स्थानसे पतित होनेवाली नदियोंके समान स्वभा-वतः अधोगामिनी हो जाया करती हैं ॥ ३१६ ॥ जैसे समस्त संसारके जलाशयोंके प्रभु समुद्रसे उत्पन्न होनेवाली लक्ष्मी अल्पजलयुक्त सरोवरमें उत्पन्न होनेवाले कमलोंपर रीझ जाती है। उसी प्रकार प्रसिद्ध तथा उच्चकुलमें उत्पन्न होनेवाली भी नारियाँ नीच पुरुषोंसे भोग कराने लग जाती हैं ॥ ३१७ ॥ पर्णोत्स प्रान्तके वद्दिवास गाँवके निवासी खशजातिक बाण नामक एक ग्रामीणका पुत्र तुंग भैंसे पालता था। कुछ समय बाद वह सुगन्ध-सीह, प्रकट, नाग, अट्टयिक तथा षण्मुख, इन पाँच भाइयोंके साथ कश्मीर चला आया और वहाँ पत्रवाहक-

रहःप्रवेशितो दूत्या स भाग्यर्थबलाश्रुवा। संभुक्तभूरिजाराया अपि तस्याः प्रियोऽभवत् ॥३२१॥
तुङ्गानुरागिणी राज्ञी पापा लज्जोज्झिता ततः। रसदानेन वैमुख्यभाजं भुय्यमघातयत् ॥३२२॥
धिङ्निर्विचारान्कुपतीन्येषां विषमचेतसाम्। फलशून्या स्तुतिस्तोषे दोषे प्राणधनक्षयः ॥३२३॥
रक्कजो देवकलशो वेलावित्तः कृतस्तया। भुय्याधिकारे कौट्टन्यमाचरन्निस्त्रपो विटः ॥३२४॥
येऽपि कर्दमराजाद्या वीरा द्वारादिनायकाः। तेऽपि कौट्टन्यमभजन्नन्येषां गणनैव का ॥३२५॥
चतुष्पञ्चानि वर्षाणि तिष्ठन्नृपगृहे शिशुः। भीमगुप्तोऽभवद्यावत्किंचित्प्रौढीभवन्मतिः ॥३२६॥

राज्यव्यवस्था यावच्च पितामह्याश्च वृत्तयः।
दुःस्थिताः प्रत्यभासन्त संस्थाप्यास्तस्य चेतसि ॥३२७॥

अङ्गशीलविहीनाया निर्घृणाया निसर्गतः। तावन्नेयधियस्तस्याः स चिन्त्यः समपद्यत ॥३२८॥
अभिमन्युवधूस्तं हि चक्रे गूढप्रवेशितम्। महाभिजनजं पुत्रं तस्मात्सोऽभूत्तथाविधः ॥३२९॥
सा देवकलशेनाथ दत्तमन्त्रा विशङ्किता। त्रपोज्झिता स्पष्टमेव भीमगुप्तमबन्धयत् ॥३३०॥
निगूढे नन्दिगुप्तादिद्रोहे लोकस्य योऽभवत्। संदेहः स तया तेन व्यक्तकृत्येन वारितः ॥३३१॥
ताभिस्ताभिर्यातनाभिर्भीमगुप्तं निपात्य सा। षट्पञ्चाशेऽभवद्वर्षे स्वयं क्रान्तनृपासना ॥३३२॥
प्रवृद्धरागया राज्या दत्तोद्रेको दिने दिने। सर्वाधिकारी तुङ्गोऽथ बभूवाधरिताखिलः ॥३३३॥
सभ्रातृकेन तुङ्गेन मीलिताः पूर्वमन्त्रिणः। राज्यविप्लवमाधातुमयतन्त विरागिणः ॥३३४॥

का काम करने लगा। एक बार अपने सान्धिविग्रहिक मन्त्रीके यहाँ बैठे हुए तुंगको दिद्दारानीने देख लिया और देखते ही वह उसपर मोहित हो गयी ॥ ३१८—३२० ॥ तदनन्तर उसने अपनी एक दासीको भेजकर उसे बुलवाया। वह रानी अबतक बहुतेरे यारोंसे भोग करा चुकी थी, तथापि होनहारके माहात्म्यसे वह युवक उसे विशेष प्रिय लगा ॥ ३२१ ॥ तदनन्तर तुङ्गसे प्रेम करनेवाली उस पापिनीने अपने आनन्दमें बाधा डालनेवाले पुनीतात्मा भुय्युको विष देकर मरवा डाला ॥ ३२२ ॥ ऐसे विचारशून्य तथा दुष्टहृदय स्वामियोंको धिक्कार है, जिनके प्रसन्न होनेपर केवल सूखी प्रशंसा मिलती है और रुष्ट हो जानेपर अपने बहुमूल्य प्राणोंसे हाथ धोना पड़ जाता है ॥ ३२३ ॥ दिवङ्गत मन्त्रीका पुत्र वेलावित्त देवकलश निर्लज्ज बनकर उस रानीके कौट्टिन्य (उसके मनपसन्द युवकोंको जुटाने) का काम किया करता था। इससे प्रसन्न होकर रानीने उसे भुय्युके पदपर बैठा दिया ॥ ३२४ ॥ कुछ समय पहले जब कि कर्दमराज आदि द्वाराधिपति (सीमापाल) तथा मुख्य मन्त्री तक उसके कौट्टिन्यका काम करते थे, तब और लोगोंकी गिनती ही क्या है ? ॥ ३२५ ॥ तबतक शिशु भीमगुप्त भी चार-पाँच वर्ष राजमहलमें रहते-रहते कुछ सयाना हो गया था ॥ ३२६ ॥ राज्यशासनकी दुर्व्यवस्था तथा अपनी पितामहीका दुराचार वह भली भाँति जान चुका था और उसमें सुधार करनेकी उसकी आकांक्षा थी ॥ ३२७ ॥ इसी बीच भीमगुप्तका रंग-ढंग देखकर चपलचित्त, अंगहीन (पंगु), शीलहीन (व्यभिचारिणी) और स्वभावतः क्रूर दिद्दारानीके मनमें संशय एवं अविश्वासकी भावना व्याप्त होने लगी ॥ ३२८ ॥ भीमगुप्त उच्च वंशमें उत्पन्न हुआ था और उसे अभिमन्युकी भार्याने गुप्तरीतिसे अपने पुत्रके बदलेमें पाया था। इसीसे वह इतनी अच्छी प्रकृतिका बालक था ॥ ३२९ ॥ अतएव देवकलशकी सलाहसे दिद्दारानीने उसे पकड़वाकर प्रत्यक्षरूपसे जेलमें बन्द करा दिया ॥ ३३० ॥ पहले जनसाधारणके मनमें जो यह सन्देह था कि गुप्तरूपसे दिद्दाने नन्दिगुप्त आदिके विषयमें द्रोहकार्य किया है। अब उस रानीने प्रत्यक्षरूपमें जब भीमगुप्तको बन्द करा दिया, तब लोगोंका सन्देह दूर हो गया ॥ ३३१ ॥ कारागारमें उसने भीमगुप्तको विभिन्न प्रकारकी बड़ी कठोर यंत्रणायें दीं। इस तरह नाना प्रकारके कष्टों द्वारा उसे मार डालनेके बाद ४०५६ लौकिक वर्षमें उस रानीने स्वयं राजगद्दीपर कब्जा कर लिया ॥ ३३२ ॥ दिद्दारानीका तुङ्गपर प्रगाढ़ प्रेम था। अतएव उसने उसे सिंहासन सब अधिकार सौंप दिया और अपने प्रभावसे सब मन्त्रियोंको दबाकर वह शीर्षस्थानपर जा बैठा ॥ ३३३ ॥ इस प्रकार तुङ्ग और उसके भाइयोंके सब अधिकारके पदोंपर बैठ जानेके बाद वे अधिकारच्युत

तेऽथ संमन्त्र्य कश्मीरानानिन्युः क्रूरपौरुषम् । उग्रं विग्रहराजाख्यं दिद्दाभ्रातुः सुतं नृपम् ॥३३५॥
मुख्याग्रहारान्स प्राप्तो विधातुं राज्यविप्लवम् । धीमान्प्रायोपवेशाय द्रुतं प्रावेशयद्द्विजान् ॥३३६॥
विहितैक्येषु विप्रेषु लोकः सर्वोऽपि विप्लुतः । अन्विषेपान्वहं तुङ्गं तत्र तत्र जिघांसया ॥३३७॥
कस्मिंश्चित्पिहितद्वारे तुङ्गं प्रच्छाद्य वेश्मनि । दिनानि कतिचिद्दिद्दा तस्थावास्कन्दशङ्किनी ॥३३८॥
तया स्वर्णप्रदानेन सुमनोमन्तकादयः । ब्राह्मणाः समगृह्यन्त ततः प्रायो न्यवर्तत ॥३३९॥
एवं तस्मिन्महाक्षेपे तया दानेन वारिते । ययौ विग्रहराजः स भग्नशक्तिर्यथागतम् ॥३४०॥
अथ दार्ढ्यं समासाद्य तुङ्गाद्याः प्रभविष्णवः । शनैः कर्दमराजादीञ्जघ्नुर्विहितविप्लवान् ॥३४१॥
सुलक्कनो रक्कसूनुस्तथाऽन्ये मुख्यमन्त्रिणः । रुष्टैर्निर्वासिता देशात्तुष्टैस्तैः संप्रवेशिताः ॥३४२॥
प्रवर्धमानवैरेण गूढदूतैर्विसर्जितैः । प्रायं विग्रहराजेन ब्राह्मणाः कारिताः पुनः ॥३४३॥

उत्कोचादित्सया विप्रा भूयः प्रायविधायिनः ।
लब्धस्थैर्येण तुंगेन संनिपत्यापहस्तिताः ॥३४४॥

तेषां मध्ये वसन्गूढमादित्याख्यः पलायितः । हतो विग्रहराजस्य प्रियः कटकवारिकः ॥३४५॥
शस्त्रक्षतः प्रतीहारो वत्सराजाभिधः पुनः । न्यङ्कोतकादिभिर्बाधजीवग्राहमगृह्यत ॥३४६॥
ते स्वर्णग्राहिणो विप्राः सुमनोमन्तकादयः । सर्वेऽपि बद्धास्तुङ्गेन कारागारं प्रवेशिताः ॥३४७॥
अथ फल्गुणनाशेन हते राजपुरीपतौ । तां प्रत्यारब्धिरभवत्क्रुध्यतां सर्वमन्त्रिणाम् ॥३४८॥
निपत्य संकटे वीरः पृथ्वीपालाभिधस्ततः । चक्रे राजपुरीराजः कार्श्मीरिकबलक्षयम् ॥३४९॥

मन्त्रीगण रोषपूर्वक परस्पर संगठन करके राज्यमें विप्लव मचा देनेका विचार करने लगे ॥ ३३४ ॥ तदनुसार उन्होंने दिद्दारानीके भाईके पुत्र कठोरप्रकृति और महान् पराक्रमी विग्रहराजको कश्मीर बुलवाया ॥ ३३५ ॥ उस बुद्धिमान् युवकने वहाँ पहुँचकर कश्मीरराज्यमें विप्लवका सूत्रपात करनेके लिए पहले अग्रहार ग्राम ब्राह्मणोंसे अनशन आरम्भ कराया ॥ ३३६ ॥ इस प्रकार विप्रोंको एकमतसे अनशन करते देखकर राज्यके नागरिक क्षुब्ध हो उठे और वे लोग तुङ्गको मार डालनेके लिए यत्र-तत्र खोजने लगे ॥ ३३७ ॥ उस विप्लवके भयसे व्याकुल होकर दिद्दारानीने तुङ्गको कुछ समयके लिए किसी बन्द तथा सुरक्षित भवनमें छिपा दिया ॥ ३३८ ॥ तदनन्तर तोड़-जोड़में निपुण उस रानीने सुमनोन्तक आदि विप्रोंको पुष्कल सोना देकर अपनी ओर मिला लिया । जिससे उन ब्राह्मणोंका अनशन स्वतः बन्द हो गया ॥ ३३९ ॥ इस तरह उस भीषण उपद्रवको दिद्दारानीने स्वर्णदानसे दबा दिया । इससे निरुत्साहित एवं भग्नशक्ति होकर विग्रहराज जैसे आया था, वैसे ही लौट गया ॥ ३४० ॥ तदनन्तर शक्तिमान् तुङ्ग आदि अधिकारियोंने स्थिरता प्राप्त करके विप्लवकारी कर्दमराज आदि विद्रोहियोंको मार डाला ॥ ३४१ ॥ उसी क्रोधके आवेशमें उन्होंने रक्कके पुत्र सुलक्कन तथा कई अन्य मन्त्रियोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया और कुछ दिन बाद प्रसन्न होकर उन्हें फिर बुला लिया ॥ ३४२ ॥ अब वैर बहुत अधिक बढ़ गया था । अतएव विग्रहराजने गुप्तरूपसे दूत भेजकर ब्राह्मणो द्वारा फिर अनशन आरम्भ करा दिया ॥ ३४३ ॥ किन्तु उत्कोच (घूस) पानेकी इच्छासे अनशन करनेवाले ब्राह्मणोंको अधिकार स्थिर किये हुए तुङ्गने घूस देकर अपने वशमें कर लिया ॥ ३४४ ॥ उन अनशनकारी ब्राह्मणोंमे विग्रहराजका कृपापात्र एवं उसके द्वारा नियुक्त आदित्य नामका कटकवारिक छिपकर रहा करता था । जब वह वहाँसे भागने लगा, तब मार डाला गया ॥ ३४५ ॥ इसी तरह वत्सराज प्रतिहार भी भागते समय शस्त्रसे आहत होकर न्यंकोतक आदिके द्वारा जीवित अवस्थामें ही पकड़ लिया गया ॥ ३४६ ॥ तदनन्तर तुङ्गने सुवर्णका घूस लेनेवाले सुमनोन्तक आदि ब्राह्मणोंको भी पकड़कर जेल भेज दिया ॥ ३४७ ॥ उधर फल्गुण मन्त्रीके मर जानेपर राजपुरीके शासक पृथ्वीपालने फिर उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया । इससे कुपित होकर तुंगके सब मंत्रियोंने उसपर चढ़ाई कर दी ॥ ३४८ ॥ किन्तु इस भीषण संकटकालमें भी राजपुरीके राजा पृथ्वीपालने कश्मीरकी

शिपाटको हंसराजो विपन्नौ तत्र मन्त्रिणौ । चन्द्राद्यैर्दुर्गतिर्दृष्टा मरणं यत्र भेषजम् ॥३५०॥
अथान्येन पथाऽकस्मात्तुङ्गः सार्धं सहोदरैः । कृत्स्नां राजपुरीं वीरः प्रविश्य सहसाऽदहत् ॥३५१॥

ननाश तेनोपायेन पृथ्वीपालः स पार्थिवः ।
शेषाणां मन्त्रिणां सैन्यं प्राप मुक्तिं च संकटात् ॥३५२॥

अबलः सन्स भूपालस्तुङ्गाय प्रददौ करम् । एवं कृतं तदा तेन नष्टस्यार्थस्य 'योजनम् ॥३५३॥
प्रविशन्नगरं तुङ्गस्ततः स्वीकृतकम्पनः । चकार डामरग्रामसंहारं सिंहविक्रमः ॥३५४॥
दिद्दाऽप्युदयराजस्य भ्रातुः पुत्रं परीक्षितम् । चक्रे संग्रामराजाख्यं युवराजमशङ्किता ॥३५५॥

सा हि सर्वाञ्शिशुप्रायान्पुरो भ्रातृसुतान्स्थितान् ।
परीक्षितुं मुमोचाग्रे पालेवतफलावलिम् ॥३५६॥

शक्तः कियन्ति कः प्राप्तुं फलान्यत्रेतिवादिनी । साऽभवद्राजपुत्राणां तेषां कलहकारणम् ॥३५७॥
गृहीताल्पफलॉल्लग्नप्रहारॉस्तान्ददर्श च । संग्रामराजं त्वस्वल्पफलभाजमविक्षतम् ॥३५८॥
अनन्तफलसंप्राप्तावक्षतत्वे च कारणम् । सविस्मयं तया पृष्टः स तामेवं तदाऽब्रवीत् ॥३५९॥
अन्योन्यकलहव्यग्रानेतान्कृत्वा पृथग्वसन् । समवापं फलान्यस्मिन्न चाभूवं परिक्षतः ॥३६०॥

व्यसनं संप्रवेश्यान्यान्स्थितानामप्रमादिनाम् ।
न काः क्लेशविहीनानां घटन्ते स्वार्थसिद्धयः ॥३६१॥

श्रुत्वेति तस्य सा वाचमप्रमत्तत्वदूतिकाम् । भीरुर्नारीस्वभावेन राज्येऽमन्यत योग्यताम् ॥३६२॥
शूरस्य लभ्यं शौर्येण भीरोर्भीरुतया यथा । कार्यं हि प्रतिभात्यन्तर्न भवेच्च तदन्यथा ॥३६३॥

सारी सेना नष्ट कर दी ॥ ३४९ ॥ उस युद्धमें शिपाटक तथा हंसराज ये दो मन्त्री मार डाले गये और चन्द्र आदि मन्त्रियोंकी तो ऐसी दुर्दशा हुई कि उसकी अपेक्षा उनका मर जाना कहीं अच्छा होता ॥ ३५० ॥ उसी समय अपने भाइयोंके साथ साहसी तुङ्गने दूसरे मार्गसे राजपुरीमें प्रविष्ट होकर नगरमें आग लगा दी। जिससे वह जलकर भस्म हो गया ॥ ३५१ ॥ यह उपाय करनेसे राजा पृथ्वीपाल परास्त हो गया और शेष मन्त्री तथा उसके सैनिक उस संकटसे छुटकारा पागये ॥ ३५२ ॥ ऐसी स्थितिमें विवश होकर राजा पृथ्वीपालने तुङ्गको कर दिया। इस प्रकार उस समय तुङ्गने बिगड़े कामको बना लिया ॥ ३५३ ॥ तदनन्तर विजयी तुंग जब अपने नगरमें वापस लौटा, तब दिद्दारानीने उसे कम्पनेशकी पदवी प्रदान की और उसने उसे स्वीकार कर लिया। सिंह सदृश पराक्रमी तुंगने इसी प्रकार डामरोंके समुदायको भी समूल नष्ट कर डाला ॥३५४॥ तब निःशंक होकर दिद्दा रानीने अपने भाई उदयराजके पुत्र संग्रामराजकी परीक्षा करके उसका युवराजके पदपर अभिषेक कर दिया ॥ ३५५ ॥ संग्रामराजकी परीक्षाके समय उस रानीने अपने भाईके सभी शैशवावस्थावाले पुत्रोंको एकत्र करके उनके आगे ढेरसे मेवके फल रख दिये ॥ ३५६ ॥ तदनन्तर 'इन फलोंमेंसे कौन कितने फल ले सकता है ?' यह कहकर उसने उन बालकोंको आपसमें लड़ा दिया ॥ ३५७ ॥ उसके बाद उस रानीने देखा कि सब बालक घायल हो हो करके थोड़ा-थोडा फल लिये हुए हैं, किन्तु संग्रामराजके हाथमें सबसे ज्यादा फल हैं और उसे तनिक भी चोट नहीं आयी है ॥ ३५८ ॥ दिद्दारानीने जब विस्मित होकर संग्रामराजसे शरीरमें कहीं भी चोट न खाकर भी ज्यादा फल पानेका कारण पूछा, तब उसने बताया—॥ ३५९ ॥ मैंने इन सब बालकोंको आपसी झगड़ोंमें उलझा दिया और स्वयं झगड़ेसे अलग रहकर सबसे अधिक फल प्राप्त कर लिये और चोट भी नहीं खायी ॥ ३६० ॥ औरोंको विपत्तिमें फँसाकर स्वयं दूरसे तमाशा देखनेवाले चतुर लोग बिना कष्ट झेले अपना कौन-सा स्वार्थ नहीं साध लेते ?' ॥ ३६१ ॥ इस प्रकार उस बालककी चतुराई भरी बात सुनकर नारीस्वभावके कारण स्वभावत. भीरु दिद्दा रानीने उस प्रमादविहीन बालक संग्रामराजको ही राज्य पानेके योग्य माना ॥ ३६२ ॥ वीर पुरुष अपनी वीरतासे कार्य सिद्ध करनेका निश्चय करता है और इसके विपरीत भीरु (डरपोक) को भीरुता अर्थात्

काष्ठं वह्नयुज्झितमपि भवेच्छीतशान्त्यै कपीनां लोम्नां शुद्ध्यै सलिलमनलश्चाग्निशौचैणकानाम् ।
जन्तोर्भावा विदधति यथा भाविनः कार्यसिद्धिं तत्त्वं तेषां क्वचन सहजं वस्तुतो नास्ति किंचित् ॥३६४॥
तस्यामेकान्नशीत्यब्दशुक्लभाद्राष्टमीदिने । देव्यां दिवं प्रयातायां युवराजोऽभवन्नृपः ॥३६५॥
स्त्रीसंबन्धेन भूपालवंश्यानां भुवनाद्भुतः । तृतीयः परिवर्तोऽयं वर्ततेऽमुत्र मण्डले ॥३६६॥

निर्नष्टकण्टककुले वसुसंपदाढ्ये श्रीसातवाहकुलमाप महीतलेऽस्मिन् ।
दावाग्निदग्धकुतरौ जलदाम्बुसिक्ते चूतप्ररोह इव केलिवने प्रवृद्धिम् ॥३६७॥
अथ स मृदुतयान्तर्गूढधैर्यानुभावः सुखमवनिमशेषां दोष्णि संग्रामराजः ।
बिसकुलनिभशोभानिह्नुतप्राणसारः फणकुल उरगाणामीश्वितेव न्यधत्त ॥३६८॥

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

अत्र वर्षचतुःषष्टी मासेष्वष्टौ दिनेषु च । अष्टस्वभूवन्भूपाला दश भूभोगभोगिनः ॥

सावधानीसे काम करनेपर सिद्धिप्राप्तिका भरोसा रहता है। यह बात स्वभावसिद्ध है ॥ ३६३ ॥ क्योंकि अग्निके स्पर्शसे विहीन काष्ठ भी वानरोंका शीतनिवारण करता है और अग्निशौच जातिवाले मृगोंके रोयें शुद्ध करनेके लिए अग्नि ही जलका काम करने लगता है। तात्पर्य यह है कि हर एक प्राणीकी भावना ही उसका काम बनाती है। इसमें किसी वस्तुका कोई स्वाभाविक गुण-धर्म कुछ नहीं करता ॥ ३६४ ॥ तत्पश्चात् ४०७९ लौकिक वर्षकी भाद्रपद शुक्ल अष्टमी तिथिको दिद्दा रानीका देहान्त हो जानेपर संग्रामराज कश्मीरका राजा बना ॥ ३६५ ॥ इस कश्मीरमण्डलके राजाओंकी विभिन्न वंशपरम्परामें स्त्रीसे सम्बद्ध यह तृतीय परिवर्तन देखा गया ॥ ३६६ ॥ कण्टकसमुदायसे रहित एवं समस्त सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण कश्मीरमें दवाग्निसे जले हुए कुवृक्ष तथा नूतन मेघोंके जलसे सिंचित उपवनोंमें आम्रके अंकुर निकलनेके समान श्रीसातवाहनके कुलका उत्थान हुआ ॥ ३६७ ॥ मृदु हृदय होनेके कारण छिपे धैर्यसे सम्पन्न संग्रामराजने कमलनालसे शोभित फणामण्डलमें अपनी शक्ति छिपाये रखनेवाले भगवान् शेषनागके समान अपनी भुजाओंपर समस्त पृथ्वीका भार धारण किया ॥ ३६८ ॥

काश्मीरिक महामात्य चम्पक प्रभुके पुत्र कल्हणमहाकविरचित राजतरंगिणीका छठाँ तरंग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

इस तरंगमें ६४ वर्ष ८ मास १५ दिनमें १० राजाओंके कार्यकालका वर्णन किया गया है।

अथ सप्तमस्तरङ्गः ।

मातुस्तेऽजनि निर्मले पितृकुले श्लाघ्या तनुर्वेधसा त्वं संध्याहितसंनिधिर्मम जपारक्तेऽधरे खेलसि ।
संध्यावन्दनसाभ्यसूयगिरिजास्तुत्येद्दशैर्वाक्छलैर्यः संध्यामपि वन्दते स्म स जगत्प्रीणातु गौरीश्वरः ॥१॥
क्षमां क्षमापतिर्बिभ्रन्मनसा च भुजेन च । गाम्भीर्येण च शक्त्या च सोऽजयद्वाहिनीपतीन् ॥२॥
जज्ञे राज्ञीक्षये भङ्गो यैस्तुङ्गस्य तदाखिलैः । दिनश्रीविगमे संध्याप्रसङ्गस्येव रागिणः ॥३॥
तत्तत्प्रतिभटाटोपप्रोटनात्प्रत्युतास्य तैः । उदयो ददृशे शश्वद्गतिं को वेत्ति वेधसः ॥ युग्मम् ॥४॥
नृपेण जातज्ञातेयः शूरः शक्तिसमन्वितः ।
सर्वाधिकारयोग्योऽगात्तदा चन्द्राकरः क्षयम् ॥५॥
अन्ये भीमतिकाग्रामदिविरस्योरुसंपदः । पुण्याकरस्य तनयाः शूराः शान्तिं प्रपेदिरे ॥६॥
समर्थमन्त्रिविरहादनिच्छन्नपि वेधसा । निन्ये गत्यन्तरत्यक्तस्तुङ्गपक्षं क्षमापतिः ॥७॥
संग्रामराजतुङ्गादीन्देवी कोशमपाययत् । मुमूर्षन्ती पुरा स्थातुमद्रोहेणेतरेतरम् ॥८॥
क्लेशासहो महीपालस्ततः कार्यवशादपि । तुङ्गन्यस्तप्रजाकार्यो भोगाभ्यासालसोऽभवत् ॥९॥
पर्याप्तं तस्य भीरुत्वं कियदन्यत्प्रकाश्यताम् । असमैर्यौनसम्बन्धैश्चक्षमे यशसः क्षतिम् ॥१०॥
साहायकार्थी यस्मादाच्छ्रीशौर्यादिमते सुताम् । दिद्दामठाधिपतये प्रेमनाम्ने स लोठिकाम् ॥११॥
क्व लोकोद्वहनोन्नद्धभूभृद्योग्या नृपात्मजा । प्रतिग्रहजलक्लिन्नपाणिः क्वाल्पमना द्विजः ॥१२॥

'उस चतुर विधाताने तुझ जैसी माताकी देह विमल पितरोंके कुलमें उत्पन्न की है। क्योंकि सन्ध्या-वन्दनके समय मेरे समीप रहकर जपापुष्प जैसे लाल अथवा जपकार्यमें तन्मय मेरे अधरसे खेलवाड़ करती है' इस तरह सन्ध्याकी वन्दनासे मत्सर रखनेवाली गिरिजा देवीकी स्तुतिके बहाने वचनचातुर्यसे सन्ध्याकी भी वन्दना करनेवाले गौरीश्वर समस्त संसारको प्रसन्न करें ॥ १ ॥ वीर संग्रामराजने अपने मनमें क्षमा (माफी तथा धरती) को धारण करके अपने भुजबल, गाम्भीर्य तथा शक्तिसे जगतीतलके सब राजाओंको परास्त कर दिया ॥ २ ॥ पहले लोगोंकी यह धारणा थी कि 'दिद्दारानीके मर जानेपर दिवसश्रीके विछोहसे लालिमायुक्त सन्ध्याके सदृश तुंगकी महिमा समाप्त हो जायगी'। किन्तु अनेकानेक शत्रुओंको तहस-नहस कर देनेके कारण उसकी दिनोदिन उन्नति होने लगी। दैवकी गतिको भला कौन समझ सकता है ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी बीच राजाका एक परम पराक्रमी, सर्वशक्तिसम्पन्न एवं सभी अधिकारोंको प्राप्त करने योग्य सम्बन्धी चन्द्राकर मर गया ॥ ५ ॥ इसी तरह भीमतिका ग्रामके परम धनाढ्य पुण्याकर कायस्थके बहुतेरे वीर पुत्र भी कालके गालमें समा गये ॥ ६ ॥ अतएव भार वहन करने योग्य मन्त्रियोंके अभावमें अनिच्छासे ही उस राजाको विधाताने तुंगका पक्ष ग्रहण करनेके लिए विवश कर दिया ॥ ७ ॥ दिद्दारानी जब मरणासन्न थी, तब उन्होंने संग्रामराज तथा तुंग आदि स्वजनोंको एकत्र करके अपने सामने कोशपान द्वारा शपथ दिलाते हुए परस्पर मिल-जुलकर रहनेका आग्रह किया था ॥ ८ ॥ तदनन्तर अत्यन्त आवश्यक कार्यका भी क्लेश सहनेमें असमर्थ संग्रामराज प्रजाका सारा काम तुंगको सौंपकर स्वयं विविध प्रकारके भोगोंका आनन्द लेने लगा ॥ ९ ॥ उस संग्रामराजकी भीरुताका बखान मैं कहाँतक करूँ, जब कि उसने अन्य जातिवालेके साथ कन्यादानका सम्बन्ध कर लिया और ऐसा करनेसे प्राप्त अपकीर्ति चुपचाप सह ली ॥ १० ॥ भरपूर सहायता प्राप्त होनेकी आशासे उसने अपनी कन्या लोठिकाका विवाह दिद्दामठके अध्यक्ष एवं वीरता तथा सम्पत्तिसे परिपूर्ण प्रेमकके साथ कर दिया ॥ ११ ॥ चाहिए तो यह कि उस कन्याका विवाह किसी प्रजापालनमें समर्थ एवं विजयी राजाके साथ किया जाता। किन्तु उसका विवाह किया गया ऐसे संकुचित चित्त ब्राह्मणके साथ, जिसका हाथ संकल्पका जल लेनेके कारण सदा

अथ तुङ्गादिभङ्गाय प्रायं ब्राह्मणमन्त्रिणः । परिहासपुरे विप्रपारिपद्यानकारयन् ॥१३॥
विप्रमन्त्रिमतैक्येन कृतो राज्ञः स विप्लवः । दुःसहः पवमानाग्निसमागमसमोऽभवत् ॥१४॥
राज्ञोऽप्युत्पाटने सज्जैः कथंचित्प्रार्थितैर्द्विजैः । मतिः क्षान्तिचरुप्राये तुङ्गनिःसारणे कृता ॥१५॥
राज्ञा तुङ्गादिभिश्चैतत्प्रावत्तेभ्यः प्रतिश्रुतम् । अन्यत्प्रार्थयितुं लग्नास्तावत्ते शठबुद्धयः ॥१६॥
तुङ्गास्कन्देन विप्रोऽयं यो मृतस्तद्गृहे वयम् । तं निर्दहाम इत्युक्त्वा शवः कोऽप्यरघट्टतः ॥१७॥
तैरुद्धृत्य यदाऽऽनीतः शठैस्तुङ्गगृहान्प्रति । केशहोमाच्च विहिताद्या कृत्योत्थापिताऽभवत् ॥१८॥
तया प्रतीपपातिन्या निःशौचानां द्विजन्मनाम् । अकस्मान्निरगाच्छस्त्रं विनाशायोत्थिते कलौ ॥१९॥
ततः पलायिता विप्रा यस्तेषां मन्त्रदोऽभवत् । निगूढं राजकलशस्तद्वेश्म प्राविशन्भयात् ॥२०॥
स व्यक्तीभूतकौटिल्यः संग्रामं सुचिरं व्यधात् । अपद्वारैस्तु ते विप्राः पलाय्य स्वगृहान्ययुः ॥२१॥
विजिते राजकलशे समकार्या द्विजातयः । मन्त्रिणः श्रीधरसुताः सप्तागत्य व्यधुर्मृधम् ॥२२॥
ते कृत्वा सुमहत्कर्म समाप्तिं समरे गताः । निर्भिद्य मण्डलं सप्त सप्तसप्तेर्द्रुतं ययुः ॥२३॥
जितः सुगन्धिसीहेन तेषु शान्तेषु संयुगे । बद्ध्वाथ राजकलशस्तुङ्गेनानायितो गृहम् ॥२४॥
नीयमानोऽधिरोप्याशु स्कन्दं मार्गेषु विक्षतः । तुङ्गस्य युग्यवाहैः स नर्तितोपहतायुधः ॥२५॥
अन्योऽपि भूतिकलशो नाम मन्त्री विनिर्जितः । सुतेन राजकाख्येन सह शूरमठं ययौ ॥२६॥
क्रमात्सुगन्धिसीहाद्यैर्मुक्तः करुणया ततः । सपुत्रः सोऽवमानाग्नितप्तो देशान्तरं ययौ ॥२७॥

गीला रहता था ॥ १२ ॥ तदनन्तर तुंग आदि पुराने मंत्रियोंको निकाल वाहर करनेके लिए ब्राह्मणों तथा कुछ मंत्रियोंने परिहासपुरमें ब्राह्मपरिषद्के सदस्यों द्वारा अनशन कराया ॥ १३ ॥ उन ब्राह्मणों तथा मन्त्रियोंके सहयोगसे आरम्भ किया हुआ विद्रोह वायु तथा अग्निके मेलकी तरह राजा संग्रामराजको दुःसह हो उठा ॥१४॥ वे ब्राह्मणगण तो राजा संग्रामराजको भी राज्यसे अपदस्थ करनेकी तैयारी कर रहे थे। किन्तु अनेकशः प्रार्थना करनेपर वड़ी कठिनाईसे उन्होंने क्षान्तिचरुप्राय अर्थात् क्षमारूपी यज्ञके चरु सदृश तुंगको अधिकारच्युत कर देनेकी शर्तपर सहमत हुए ॥ १५ ॥ जव राजा संग्रामराज तथा तुंग आदि मन्त्रियोंने उनकी माँग पूर्ण करनेकी वात मान ली, तव वे शठवुद्धि ब्राह्मण अन्यान्य माँगे उनके समक्ष रखने लगे ॥ १६ ॥ उसी समय उन्होंने किसी कुएँसे एक ब्राह्मणका शव निकालकर कहा—'तुंगके अत्याचारसे ही यह ब्राह्मण मरा है। अतएव हमलोग इसको तुंगके घरमें रखकर उसके घर सहित इसे जलायेंगे' ॥ १७ ॥ इस तरह प्रतिज्ञा करके वे वह शव तुङ्गके घर ले गये। ऐसा करके केशहोमके द्वारा उन्होंने जो कृत्या उत्पन्न की, वह तुङ्गके घरमे जायमान कलहके रूपमें परिणत होकर उन आचारभ्रष्ट एवं अपवित्र ब्राह्मणोंका ही विनाश करनेके लिए सन्नद्ध हो गयी। जिससे एकाएक शस्त्र निकल आये और तुङ्गके शस्त्रधारी सेवकोंने उन दुष्ट ब्राह्मण पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ ऐसी स्थितिमें भयभीत होकर वे ब्राह्मण वहाँसे भागे और अपने मंत्रदाता अर्थात् सलाह देनेवाले राजकलशके घरमें घुस गये ॥ २० ॥ अपनी कुटिलताका भेद खुल जानेपर राजकलश वहुत देरतक तुङ्गके सेवकासे लड़ता रहा, जिससे मौका पाकर वे ब्राह्मण उसके घरके पिछवाड़ेवाले द्वारसे भागकर अपने-अपने घर चले गये ॥ २१ ॥ जव राजकलश परास्त हो गया, तव उसके पक्षपाती श्रीधरके पुत्र सात मन्त्री आकर लड़ने लगे ॥ २२ ॥ रणभूमिमें अपनी वीरता प्रदर्शित करते हुए उन वीर मन्त्रियोंने शत्रुके हाथों मृत्यु प्राप्त करके सूर्यमण्डलका भेदन करते हुए परमधाम प्राप्त किया ॥ २३ ॥ इस तरह उन सातों वीरोंके मर जानेपर सुगन्धसीहने परास्त राजकलशको कैद कर लिया और तुङ्गने उसे तुरंत अपने घर वुलवाया ॥ २४ ॥ उस निःशस्त्र तथा आहत राजकलशको रास्तेमें तुङ्गके सेवकोंने वहुत तंग किया। वे उसके कन्धोंपर चढ़े और उसे नचाया ॥ २५ ॥ दूसरा भूतिकलश नामका मन्त्री पराजित होकर अपने पुत्र राजकके साथ शूरमठ भाग गया ॥ २६ ॥ कालान्तरमें दयाके वशीभूत होकर सुगन्धिसीह आदि मन्त्रियोंने राजकलशको छोड़ दिया। तव

परिहासपुरादेवं जातो यो देशविप्लवः । स दैवयोगात्तुङ्गस्य शुभाय प्रत्युताऽभवत् ॥२८॥
ततः प्रसादिते राज्ञि गुणदेवेन मन्त्रिणा । आययौ भूतिकलशः कृतगङ्गानिमज्जनः ॥२९॥
पुनर्नृपगृहे तस्मिन्किंचिल्लब्धपदे शनैः । तुङ्गं निहन्तुं राज्ञैनं गूढं दूताः प्रयोजिताः ॥३०॥
ज्ञातवार्तेन तुङ्गेन तस्मिन्नर्थे प्रकाशिते । सपुत्रो भूतिकलशो राज्ञा निर्वासितः पुनः ॥३१॥
अवष्टम्भं मनाग्लेभे चन्द्राकरसुतः शनैः । यो मध्यामन्तकः सोऽपि तस्मिन्काले व्यपद्यत ॥३२॥
भूत्वा किंचित्क्षणं भूभृत्कन्यासंभोगभाजनम् । राजोपकारकृच्छ्रीमान्प्रेमाऽपि प्रमयं ययौ ॥३३॥
विपेदिरेऽन्ये गङ्गाद्याः सर्वेऽपि नृपतिप्रियाः । अवाशिष्यत भोगाय तुङ्गः सभ्रातृकः परम् ॥३४॥
इति यो यो हि वृत्तान्तस्तस्य नाशाय शङ्कितः । स स दैवानुकूल्येन प्रत्युतोद्रेचकोऽभवत् ॥३५॥

कालक्रमत्रुटितसंश्रयभूः स्वमूलमात्राश्रयी तटतरुः सरितोऽम्बुपूरैः ।
यैः शङ्क्यते निपततीति वितीर्णमृद्भिस्तैरेव तस्य हि भवेत्स्थितिभूमिदार्ढ्यम् ॥३६॥

नीत्युज्ज्वलं व्यवहरन्प्रजाराधनतत्परः । प्राक्पुण्यसंक्षयात्तुङ्गः शनैस्त्वासीत्स्खलन्मतिः ॥३७॥
यत्स्वभाग्यापहाराय हीनजन्मानमाददे । सहायकाय कायस्थं क्षुद्रं भद्रेश्वराभिधम् ॥३८॥
विड्वाणिज्यं सौनिकत्वं काष्ठविक्रयितादि च । आरामिकस्य यस्यासीत्कृत्यं वंशक्रयोचितम् ॥३९॥
कम्बलोद्घृष्टपृष्ठोऽथ भोजनार्थमवालगत् । भस्त्रामपीभाण्डवाही यश्च पश्चान्नियोगिनाम् ॥४०॥
अनन्तराजकार्यादिचिन्ताश्रान्तो विधाय तम् । तुङ्गः सहायं नाबुद्ध संसर्गाद्भाग्यसंक्षयम् ॥४१॥

अपमानरूपी अग्निमें झुलसता हुआ राजकलश अपने पुत्रके साथ विदेश चला गया ॥ २७ ॥ इस तरह परिहासपुरमें उभड़ा हुआ देशविप्लव (गदर) दैवयोगसे तुङ्गके लिए कल्याणदायक सिद्ध हुआ ॥ २८ ॥ कुछ समय बाद मन्त्री गुणदेव द्वारा राजाको राजी करके गंगास्नान करनेके पश्चात् भूतिकलश पुनः कश्मीर लौट आया ॥ २९ ॥ अब धीरे-धीरे राजदरबारमें पैर जमाकर उसने राजाकी प्रेरणासे तुङ्गकी हत्याके लिए कुछ दूतोंकी नियुक्ति कर दी ॥ ३० ॥ किन्तु यह षड्यंत्र छिप नहीं सका और इस बातका पता लगते ही तुङ्गने राजासे कहकर पुत्र सहित भूतिकलशको फिर कश्मीरसे निर्वासित करा दिया ॥ ३१ ॥ इसके बाद चन्द्राकरके पुत्र मध्यन्तकका राज्यमें कुछ समयतक अच्छा प्रभाव रहा । किन्तु वह भी शीघ्र ही कालकवलित हो गया ॥३२॥ इसी तरह कुछ ही समय राजकन्याके सहवासका सुख भोगकर राजा संग्रामराजका उपकारी दामाद श्रीमान् प्रेम भी स्वर्गवासी हो गया ॥ ३३ ॥ उसके अतिरिक्त राजाके प्रियजन गंग आदि भी मर गये । हाँ, राजकीय सुखका उपभोग करनेके लिए अपने भ्राताओं समेत तुङ्ग अलबत्ते अब भी बाकी बचा रह गया था ॥ ३४ ॥ इस तरह जिन-जिन घटित घटनाओंका वृत्तान्त सुनकर लोग तुङ्गके विनाशकी आशंका करने लगते थे, वे सभी घटनायें दैवकी अनुकूलतासे उसके अभ्युदयका कारण बनती चली गयीं ॥ ३५ ॥ नदीके तटवर्ती जिस वृक्षकी आश्रयभूमि नष्ट हो गयी रहती है, जो केवल अपनी जड़ोंके सहारे खड़ा रहता है और जिसको बाढमें बह जानेकी आशंका की जाने लगती है, वही वृक्ष नदीके प्रवाह द्वारा बहाकर लायी हुई मिट्टीके ढेरसे पुनः बद्धमूल होकर सुरक्षित हो जाता है ॥३६॥ पहले तुङ्गकी नीति बड़ी उज्ज्वल थी और वह सदा प्रजाकी भलाईमें लगा रहता था । किन्तु आगे चलकर पूर्वजन्मका संचित पुण्य क्षीण हो जानेपर धीरे-धीरे उसकी बुद्धि भ्रष्ट होने लगी ॥ ३७ ॥ जिससे उसने स्वयं अपना भला भाग्य नष्ट कर देनेके लिए नीचकुलमें उत्पन्न तथा क्षुद्रप्रकृतिवाले भद्रेश्वर नामक कायस्थको अपने सहायक पदपर नियुक्त कर दिया ॥ ३८ ॥ उस भद्रेश्वरकी वंशपरम्परामें खादके लिए मल-मूत्र एकत्र करने, मालीका काम करने, कसाईका धन्धा एवं काष्ठविक्रयका काम होता आ रहा था ॥ ३९ ॥ तदनन्तर पेट पालनेके लिए वह पीठ छील देनेवाला मोटा कम्बल ओढ़े, दफ्तरके कागजोंका बड़ा-सा गट्ठर सिरपर रक्खे और हाथमें मसीपात्र (दावात) लिये राज्यकर्मचारियोंके पीछे-पीछे दौड़ा करता था ॥ ४० ॥ नाना प्रकारके राजकीय कार्योंका सतत चिन्तनके कारण थके हुए तुङ्गने भद्रेश्वरको अपना सहायक चुना, किन्तु वह

धार्मिकं तेन धर्माङ्गं विनिवार्यार्यचेतसम् । गृहकृत्याधिकारे स दुष्कृती विनिवेशितः ॥४२॥
देवगोब्राह्मणानाथातिथिराजोपजीविनाम् । अकालमृत्युर्विदधे वृत्तिच्छेदं स दुर्मतिः ॥४३॥
शवाजीवोऽपि पुष्णाति क्रूरः कापालिको निजान् । भद्रेश्वरस्तु पापोऽभून्निजानामपि जीवहृत् ॥४४॥
तुङ्गेन चैत्रे सर्वत्र कृते भद्रेश्वरे प्रभौ । सुगन्धिसीहः प्रययावाषाढे मासि संक्षयम् ॥४५॥
परलोकं गते तस्मिन्सर्वभारसहेऽनुजे । तुङ्गश्छिन्नोत्तमाङ्गत्वं सदैन्योऽमन्यतात्मनः ॥४६॥
श्रीत्रिलोचनपालस्य शाहेः साहाय्यकार्थिनः । देशं ततो मार्गशीर्षे मासि तं व्यसृजन्नृपः ॥४७॥
राजपुत्रमहामात्यसामन्तादिनिरन्तरम् । सैन्यं तमन्वगाद्भूरि भुवनक्षोभनक्षमम् ॥४८॥
अभ्यागतेन ससुतः शाहिना कृतसत्क्रियः । पञ्चषाणि दिनान्यासीत्तद्देशे स यदोन्मदः ॥४९॥
प्रजागरचरन्यासशस्त्राभ्यासादिवामनाः । अभियोगोचिताः शाहिरपश्यंस्तं तदाऽब्रवीत् ॥ युग्मम् ॥५०॥
तुरुष्कसमरे यावन्न यूयं कृतबुद्धयः । आलस्यविवशास्तावत्तिष्ठतास्मिन्गिरेस्तटे ॥५१॥
एवं त्रिलोचनेनोक्तं सोऽग्रहीन्न हितं वचः । तस्थौ परं समं सैन्यैरुत्सेकादाहवोत्सुकः ॥५२॥
हम्मीरेण तदा सैन्यं जिज्ञासार्थं विसर्जितम् । तौषीपारे मितप्रायैस्ततस्तीर्त्वाऽवधीद्बलैः ॥५३॥
ततस्तमाहितोत्सेकमपि शाहिः पुनः पुनः । जगादाहवतत्त्वज्ञः पूर्वोक्तामेव संविदम् ॥५४॥
स तस्य नाग्रहीद्वाक्यं रणौत्सुक्यवशंवदः । प्रत्यासन्नविनाशानामुपदेशो निरर्थकः ॥५५॥
प्रातस्ततः स्वयं कोपात्तुरुष्कानीकनायकः । सर्वाभिसारेणागच्छच्छलाहवविशारदः ॥५६॥
अथ तुङ्गस्य कटकः सहसा भङ्गमाययौ । शाहिसैन्यं परं संख्ये ददृशे विचरत्क्षणम् ॥५७॥

शाहिसैन्ये गतेऽप्यासीज्जयसिंहः स्फुरन्नणे । श्रीवर्धनश्च सांग्रामिविभ्रमार्कश्च डामरः ॥५८॥
घोरे तुरंगतुमुले प्रहरद्भिस्त्रिभिर्भटैः । वीरक्षेत्रे निजे देशे रक्षितस्तैर्यशःक्षयः ॥५९॥
कस्त्रिलोचनपालस्य माहात्म्यं वक्तुमीश्वरः । निःसंख्या अपि यं संख्ये न जेतुमशकन्द्विपः ॥६०॥
शुशुभे रुधिरासारवर्षी युद्धे त्रिलोचनः । कल्पान्तदहनज्योतिर्विसारीव त्रिलोचनः ॥६१॥
स योधयित्वा संग्रामे कोटीः कङ्कटवाहनाम् । एकाकी कार्यमर्मज्ञो निर्ययौ रिपुसंकटात् ॥६२॥
गते त्रिलोचने दूरमशेषं क्षितिमण्डलम् । प्रचण्डचण्डालचमूशलभच्छायमानशे ॥६३॥
संप्राप्तविजयोऽप्यासीन्न हम्मीरः समुच्छ्वसन् । श्रीत्रिलोचनपालस्य स्मरञ्शौर्यममानुषम् ॥६४॥
त्रिलोचनोऽपि संश्रित्य हास्तिकं स्वपदाच्च्युतः । सयत्नोऽभून्महोत्साहः प्रत्याहर्तुं जयश्रियम् ॥६५॥
यथा नामापि निर्नष्टं शीघ्रं शाहिश्रियस्तथा । इह प्रासंगिकत्वेन वर्णितं न सविस्तरम् ॥६६॥
स्वप्नेऽपि यदसंभाव्यं यत्र भग्ना मनोरथाः । हेलया तद्विदधतो नासाध्यं विद्यते विधेः ॥६७॥
ईषद्यद्भूमिवैपुल्यं राज्ञः शंकरवर्मणः । वृत्तान्तवर्णने पूर्वममुत्र प्रकटीकृतम् ॥६८॥
स शाहिदेशः सामात्यः सभूभृत्सपरिच्छदः । किमभूत्किमु वा नाभूदिति संचिन्त्यतेऽधुना ॥६९॥
अवतारं तुरुष्काणां दत्त्वाऽशेषे महीतले । प्राप्तभंगस्ततस्तुंगः स्वदेशं प्राविशच्छनैः ॥७०॥
शृगालायेव तुंगाय लब्धभंगाय भूपतिः । न तत्रागसि चुक्रोध स धैर्यसदृशाशयः ॥७१॥
किं तु खेदाय समभूत्तुंगायत्तत्वमीशितुः । परायत्ततया चित्तं पशोरप्युपतप्यते ॥७२॥

तुंगकी सेना परास्त हो गयी। किन्तु शाहीकी सेना उसके बाद भी मार-काट करती हुई रणांगणमे विचर रही थी ॥ ५७ ॥ कुछ देर बाद शाही सेनाके भी पैर उखड़ गये। उसके बाद जयसिंह, श्रीवर्धन और संग्रामडामरका वंशज विभ्रमार्क ये तीनो वीर अपने पराक्रमसे युद्धमे चमकते दीखने लगे ॥ ५८ ॥ उस भीषण अश्वसेनाके भीतर घुसकर प्रहार करते हुए उन तीनों वीरोंने रणभूमिमे देशका यश नष्ट होनेसे बचा लिया ॥ ५९ ॥ उस समय शाही राजा त्रिलोचनपालके द्वारा प्रदर्शित शौर्यका महत्त्व कौन वखान सकता है? उन असंख्य शत्रुओंने भी संख्य (युद्धभूमि) मे उस राजाको नहीं हरा पाया ॥ ६० ॥ उस रणभूमिमें रुधिरकी वर्षा करता हुआ राजा त्रिलोचन प्रलयकालमें भयानक अग्निज्वालाये विखेरनेवाले त्रिलोचन (शंकरजी) के सदृश सुन्दर दीख रहा था ॥ ६१ ॥ इस प्रकार बड़ी देरतक संग्रामभूमिमे करोड़ों कवचधारी वीरोंको लड़ाकर वह वीर उस युद्ध-संकटसे पार हो गया ॥ ६२ ॥ जब सफलमनोरथ होकर राजा त्रिलोचन कुछ दूर चला गया, तब एकाएक चण्डालोंकी प्रचण्ड सेनारूपी टिड्डीदलसे वहाँकी सारी धरती ढँक गयी ॥ ६३ ॥ राजा त्रिलोचनपालका वह मानवोत्तर शौर्य देखकर विजयी होता हुआ भी तुरुष्कसेनापति प्रसन्न नहीं था, वह बार बार लम्बी-लम्बी साँसें ले रहा था ॥ ६४ ॥ उधर राज्यच्युत होनेपर भी राजा त्रिलोचनपाल अपनी गजसेनाके सहारे फिरसे विजयी होनेके लिए प्रयत्नशील था ॥ ६५ ॥ किन्तु भाग्यने उसका साथ नहीं दिया, और कुछ समय बाद संसारमे शाहीराज्यका नामतक अवशिष्ट नहीं रह गया। प्रसंगवश यहाँ संक्षेपमे उस वृत्तान्तका वर्णन किया गया है—विस्तारसे नहीं ॥ ६६ ॥ जो बात स्वप्नमें भी असम्भव होती है और जहाँतक अभिलाषाओंकी पहुँच भी नहीं होती, उन असम्भव तथा अचिन्तनीय कार्योंको कर डालनेवाले विधाताके लिए कोई भी काम असाध्य नहीं है ॥ ६७ ॥ राजा शंकरवर्माके शासनकालमें शाहीराज्यके विपुलवैभवका संक्षिप्त दिग्दर्शन हम पहले भी करा चुके हैं ॥ ६८ ॥ किन्तु अब उस भूभागको देखकर यह सोचना पड़ता है कि वह विशाल शाहीराज्य, वहाँका राजा, मंत्री और परिजन कभी थे भी या नहीं ॥ ६९ ॥ इस प्रकार बुरी तरह पराजित हो तथा तुरुष्कोंके समस्त जगतीतलपर छा जानेका रास्ता देकर तुंग धीरे-धीरे अपने देशको लौटा ॥ ७० ॥ सियारकी तरह हारकर लौटे हुए तुङ्गपर उस पराजयरूपी महान् अपराधके लिए धैर्यशाली राजा संग्रामराज तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुआ ॥ ७१ ॥ किन्तु अब उस राजाको तुङ्गकी अधीनता अवश्य अखरने लगी। क्योंकि पराधीनतासे तो

तुंगात्मजोऽपि कन्दर्पसिंहः श्रीशौर्यगर्वितः । राजोचितं व्यवहरंस्तस्योद्वेगप्रदोऽभवत् ॥७३॥
गूढलेखैः क्षणे तस्मिंश्छिद्रान्वेषी स भूभुजम् । भ्राता विग्रहराजोऽपि प्रैरयत्तुंगमारणे ॥७४॥
कोशादिस्मरणाद्राजा चिरं दोलायमानधीः । अभीक्ष्णप्रेरणोद्विग्नः प्रेरकानब्रवीत्ततः ॥७५॥
एकाक्येव सपुत्रः स गोचरो नः कदाचन । पतेद्यदि क्षणे तस्मिन्पश्यामः किं विदध्महे ॥७६॥
अन्यथा भुजमाक्षिप्तो हन्यादस्मानसौ बलात् । इति कालापहारार्थमुक्त्वाऽभूद्विरतो नृपः ॥७७॥
तावन्मात्रं वचो बीजभूतं हृदि निधाय ते । विधातुं तदवस्थत्वं तुङ्गस्यासन्कृतोद्यमाः ॥७८॥
षण्मासाभ्यन्तरे तुङ्गो भूपेनाकारितो गृहात् ।ससुतो निर्ययौ दृष्टदुःस्वप्नोऽपि विधेर्वशात् ॥७९॥
स प्रविश्य नृपास्थानं स्थित्वा राज्ञोऽग्रतः क्षणम् । पञ्चषैः सहितो भृत्यैः प्राविशन्मन्त्रमण्डपम् ॥८०॥
पश्चात्प्रविष्टास्तत्रैनं पर्वशर्करकादयः । अनुक्त्वाऽपि महीपालं तुङ्गं शस्त्रैरपातयन् ॥८१॥
मन्त्री महारथो नाम योऽभूच्छंकरवर्मणः । तद्वंश्यस्तुङ्गभृत्येषु श्लाघ्यः सिंहरथः परम् ॥८२॥
निःशस्त्रो यः क्षणे तस्मिन्परित्राणविवित्सया । हन्यमानस्य तुङ्गस्य पृष्ठे स्वं वपुरक्षिपत् ॥८३॥
तुङ्गस्य प्रथमाघाते रुद्धः श्वासोऽभवद्भयात् । राजा तस्मिन्निरुच्छ्वासे सोच्छ्वासः समपद्यत ॥८४॥
आस्थानब्राह्मणस्यासीद्धर्मनाम्नः सुतोऽन्तिके । यः पापकारी तुंगस्य पार्थः कङ्कश्च दुर्मतिः ॥८५॥
ताभ्यामाशुविरेकिभ्यां त्राणार्थं स्वाङ्गुलीर्मुखे । क्षिपद्भ्यां पशुवत्तत्र गतं त्रासवशाज्जडे ॥८६॥
अन्तरंगाश्च चंगाद्या येऽभूवंस्तुंगमन्त्रिणः । तैः स्त्रीवदासितं तूष्णीं त्रस्तैः शस्त्रान्वितैरपि ॥८७॥
अज्ञाततुंगमृत्युभ्यस्तुमुले तत्र भूपतिः । तद्भृत्येभ्यः शङ्कमानो बहिर्दानाहवादिकम् ॥८८॥

पशुओंका भी चित्त सन्तप्त हो उठता है ॥ ७२ ॥ तुङ्गका पुत्र कन्दर्पसिंह धन तथा शौर्यके मदसे मत्त होकर राजाके समान व्यवहार करता था। यह देखकर भी राजाको उद्वेग होता था ॥ ७३ ॥ उसी समय उस राजाका भाई छिद्रान्वेषी विग्रहराज भी गुप्त पत्र लिख-लिखकर राजाको तुङ्गका वध कर देनेकी प्रेरणा देने लगा ॥ ७४ ॥ किन्तु पूर्वकालमें कोशपानपूर्वक की गयी शपथका स्मरण करके उसकी बुद्धि कुछ निश्चय नहीं कर पा रही थी। जब उसे बार बार प्रेरणा मिलने लगी, तब उद्विग्न होकर उसने प्रेरकोंसे कहा—॥ ७५ ॥ 'जब कभी तुङ्ग अपने पुत्रके साथ अकेला दिखायी देगा, तब मैं सोचूँगा कि अब क्या करना चाहिए ॥ ७६ ॥ अन्यथा यदि बिना समझे-बूझे उसपर आक्रमण किया गया तो वह अपनी प्रबल शक्तिसे अवश्य हमें मार डालेगा'। इस प्रकार समय टालनेके लिए राजाने उनके आगे बहाना बना दिया ॥ ७७ ॥ किन्तु इतनी ही बातको उन लोगोंने तुंगके वधका बीजस्वरूप आदेश समझकर हृदयमें रख लिया और उसको एकाकी अवस्थामें राजासे मिलानेका चक्र रचने लगे ॥ ७८ ॥ तदनन्तर छ महीनोंके भीतर ही राजाने तुङ्गको बुलवाया। उस समय स्वप्न आदिसे विभिन्न प्रकारके अपशकुन दिखायी देनेपर भी तुङ्ग अपने पुत्रके साथ चल पड़ा ॥ ७९ ॥ राजमहलमें पहुँचकर वह कुछ देर राजाके पास रुका और उसके बाद पाँच-छ सेवकोंके साथ मंत्रणालयमें चला गया ॥ ८० ॥ वहाँ उसके पीछेसे घुसकर पर्व तथा शर्करक आदि राजसेवकोंने राजाको सूचना दिये बिना ही तुंगपर आक्रमण कर दिया ॥ ८१ ॥ राजा शंकरवर्माके राज्यकालके महारथ नामक मंत्रीका पुत्र सिंहरथ निरस्त्र होता हुआ भी तुङ्गको बचाते हुए मर मिटा। अतएव उसे उसके सेवकोंमें प्रशंसनीय स्थान प्राप्त हुआ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ किन्तु उन सेवकोंके प्रथम प्रहारसे ही भयवश तुङ्गके प्राण निकल गये और उधर इस घटनासे भयभीत राजा संग्रामराजका रुका हुआ श्वास फिर चलने लगा ॥ ८४ ॥ उस समय ब्राह्मण धर्मका पुत्र पार्थ तथा दुर्बुद्धि कंक ये दोनों तुङ्गकी हत्याके प्रेरक पापी उस मंत्रणालयमें ही विद्यमान थे ॥ ८५ ॥ इस घटनाको घटित होते देखकर उन दोनोंने मल त्याग कर दिया और हाथके शस्त्र गिर पड़े। तत्पश्चात् आत्मरक्षाके लिए उन्होंने मुखमें उँगली रख ली ॥ ८६ ॥ तुङ्गके अन्तरंग मंत्री चंग आदिने सशस्त्र होते हुए भी औरतोंके समान मौन धारण कर लिया ॥ ८७ ॥ तुङ्गकी मृत्युसे अनभिज्ञ और बाहर खड़े तुङ्गके सैनिकोंके युद्ध छेड़ देने अथवा

आश्वासाय स्वभृत्यानां छित्त्वा खड्गेन सत्वरम् । पातयामास तुंगस्य ससुतस्य शिरो बहिः ॥८९॥
दृष्ट्वा स्वामिशिरश्छिन्नं सैन्ये दैन्यात्पलायिते । भृत्यतामुज्ज्वलीचक्रुः कतिचित्तुंगसेवकाः ॥९०॥
भुजंगनामा सामन्तद्विजापत्यो गृहागतः । संग्रामराजं विदधे गेहाद्गेहं पलायितम् ॥९१॥
द्वारं कनकदण्डेन भञ्जन्नर्गलितं ततः । विंशतिं हतवान्योधान्स राजास्थानमण्डपे ॥९२॥
कोशाधिकारी त्रैलोक्यराजनामा हतो रणे । कव्यामन्तकधात्रेयो वीरोऽप्यभिनवाभिधः ॥९३॥
अंगने त्रिंशदेकांगा वीरास्तुंगोपजीविनः । श्रेणीं बबन्धुर्निहता निःश्रेणीं स्वर्गपद्धतेः ॥९४॥
संग्रामं पद्मराजाख्यः कृत्वाऽपि निःसृतोऽक्षतः । स्वामिमरणभयदुःखाग्नितापं तीर्थाश्रयाज्जहौ ॥९५॥
अन्ये लोकद्वयत्राणमित्रं शस्त्रं रणांगने । संत्यजन्तो व्ययुज्यन्त यशसा जीवितेन च ॥९६॥
चन्द्राख्यः सुभटंमन्यो दैशिकश्चार्जुनाभिधः । हेलाचक्रो डामरश्च त्यक्तशस्त्राः परैर्हताः ॥९७॥
लोठितावसथस्तुंगो लुण्ठितश्रीर्महीभुजा । आपाढशुक्लद्वादश्यां कथाशेपो व्यधीयत ॥९८॥
निद्रोहवृत्तौ भूभर्त्री तुंगे सतनये हते । लब्धोदया व्यजृम्भन्त खलप्राया नृपास्पदे ॥९९॥
राज्ञो मनः कलुपयन्गूढपैशुनकर्मणा । यो भ्रातृभ्रातृसुतयोर्विपत्तौ हेतुतां गतः ॥१००॥
स दुष्प्रवादनिर्दग्धो नागो निजकुलान्तकः । तुंगभ्राता ततो राज्ञा कम्पनाधिपतिः कृतः ॥ युगलकम् ॥१०१॥
भार्या कन्दर्पसिंहस्य क्षेमा परमचर्पणी । नागेन संगमं चक्रे रक्षसेवासितक्षपा ॥१०२॥
प्रशान्ते तुमुले बिम्बा चतुर्भिर्दिवसैः सती । तुंगस्नुपा सुता शाहेः प्रविवेश हुताशनम् ॥१०३॥
मम्मायामवरुद्धायां कन्दर्पो यावजीजनत् । पुत्रं विचित्रसिंहं च मातृसिंहं च विश्रुतौ ॥१०४॥

अग्निकाण्ड आदिके द्वारा विप्लव मचा देनेकी आशंकासे डरकर राजाने उन सेवकोंको आश्वासन तथा धैर्य प्रदान करनेके लिए पुत्र सहित तुङ्गका सिर काटकर बाहर फेकवा दिया ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ अपने स्वामी तुङ्गका सिर कटा देखकर बहुतेरे सैनिक तो मारे डरके भाग गये, किन्तु बाकी सैनिकोंने वहाँ मार-काट मचाकर अपना सेवाधर्म उज्ज्वल कर लिया ॥ ९० ॥ उनमेंसे विप्रपुत्र सामन्त भुजंग बड़ी बुरी तरह राजा संग्रामराजके पीछे पड़ गया। उसके कारण राजाको घर-घर भागना पड़ा ॥ ९१ ॥ राजाके आस्थानमण्डपके बन्द द्वारको उसने अपने कनकदण्डसे तोड़ डाला और उसके भीतर जाकर वहाँके बीस सैनिकोंका वध कर दिया ॥ ९२ ॥ तुङ्गका कोशाधिकारी त्रैलोक्यराज एवं कैय्यामन्तकका सौतेला भाई अभिनव ये दोनों लड़ते-लड़ते राज-सैनिकोंके हाथों मारे गये ॥ ९३ ॥ राजमहलके आँगनमें तुङ्गके अनुजीवी तीस एकांगोंने रणमें मरकर अपने शरीरोंसे जैसे स्वर्गको चढनेके लिए सीढी बना दी ॥ ९४ ॥ उस समय पद्मराजने भी डटकर युद्ध किया, किन्तु वह रणभूमिसे बेदाग बाहर निकल आया और स्वामीके मरणसे जायमान दुःखाग्निके सन्तापको उसने तीर्थ-यात्रासे शान्त किया ॥ ९५ ॥ उनमेंसे कुछ कायर इहलोक एवं परलोक दोनोंके रक्षक शस्त्रोंको समरभूमिमें त्यागकर कीर्ति तथा शरीर दोनोंसे बिछुड गये ॥ ९६ ॥ अपनेको अच्छा योद्धा माननेवाला चन्द, विदेशी अर्जुन एवं हेलाचक्रनामका डामर ये तीनों शस्त्र त्याग देनेपर शत्रुके हाथों मारे गये ॥ ९७ ॥ इस प्रकार आपाढ शुक्ल द्वादशीको तुंगके मर जानेपर राजा संग्रामराजने तुंगका घर और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त करके राज्यमें मिला लिया। जिससे तुंगका नाममात्र शेष रह गया ॥ ९८ ॥ राजाके द्वारा निद्रोहबुद्धि तुंग तथा उसके पुत्रका वध होनेके बाद राजमहलमें खल प्रकृतिवाले लोगोंका बोलबाला हो गया ॥ ९९ ॥ उनमेंसे जो दुष्ट गुप्त एवं कपटपूर्ण उपायोंसे अपने भाई तथा भ्रातृपुत्रके मरणका कारण बना था और जिसे लोग अपने कुलका अन्तक (यमराज) कहकर पुकारते थे, उस तुंगके भाई नागको राजा संग्रामराजने कम्पनेशका पद प्रदान किया ॥ १०० ॥ १०१ ॥ तुंगपुत्र कन्दर्पसिंहकी पत्नी क्षेमा बड़ी व्यभिचारिणी थी। अब वह राक्षसोंके साथ संभोग करनेवाली कृष्णपक्षकी रात्रिके सदृश नागके साथ विहार करने लगी ॥ १०२ ॥ उस भीपण उपद्रवके शान्त होते ही तुंगकी पुत्रवधू और शाहीकी कन्या बिम्बा चार ही दिनके बाद अग्निमें कूदकर सती हो

गृहीत्वा तौ स्नुषां तां च मङ्खना तुंगवल्लभा ।
देशाद्विनिर्गता दीना राजपुर्यां स्थितिं व्यधात् ॥ युग्मम् ॥१०५॥
तुंगस्थाने ततो राज्ञा पापो भद्रेश्वरः कृतः । भूतेश्वरादिदेवानां चक्रे कोशादिलुण्ठनम् ॥१०६॥
कियद्विवेकवैकल्यमस्य राज्ञः प्रकाश्यताम् । तादृशानपि यश्चक्रे पार्थादीनधिकारिणः ॥१०७॥
पार्थः परमदुर्मेधाः ख्यातो भ्रातृकलत्रगः । निर्विचारेण यत्तेन नगराधिकृतः कृतः ॥१०८॥
वधादिपापं पार्थेन सुकृतत्यक्तचेतसा । पवित्रे प्रवरेशस्य रंगपीठे प्रवर्तितम् ॥१०९॥
चक्रे लुब्धस्य भूभर्तुर्मतंगः कृपणाग्रणीः । सिंधोः सुतः कोशवृद्धिं प्रजापीडनपण्डितः ॥११०॥
पुरा देवमुखाख्यस्य दिविरस्य किलाजनि ।
आपूपिकायां वेश्यायां पुत्रश्चन्द्रमुखाभिधः ॥१११॥
यस्तुंगोपाश्रयाल्लब्ध्वा लालितत्वं महीपतेः । वराटकात्प्रभृत्यासीत्कोटीनां कृतसंचयः ॥११२॥
विभूतिमध्ये लुब्धस्य प्राभृतायान्यढौकितैः । अपूपैर्निजभृत्येषु विक्रयोऽभूत्कुलोचितः ॥११३॥
प्रभूताग्निररोगश्च भूत्वा लब्धोदयः पुनः । यो मन्दाग्निः सरोगश्च तिष्ठंल्लोकैर्व्यहस्यत ॥११४॥
एकमेवाभवद्यस्य सुकृतं मरणक्षणे । कोटेस्त्रिभागं यद्दाच्छ्रीरणेश्वरयोजने ॥११५॥
तदात्मजाः कृता नानभागनन्दिमुखास्त्रयः । अधीशाः पृतनांगस्य राज्ञा तुंगोपजीविनः ॥११६॥
हास्यं बभूव भूभर्तुस्तेषां तुङ्गपदार्पणम् । बन्धनं यवकाण्डीनां हेमस्थाने शिशोरिव ॥११७॥
ते तुरुष्काहवे राज्ञा तुङ्गवत्प्रहिताः पुनः । प्रत्यावृत्य ययुर्देशं निजमेव पलायिताः ॥११८॥

गयी ॥ १०३ ॥ तदनन्तर मम्मा वेश्यासे उत्पन्न कन्दर्पसिंहके पुत्र विचित्रसिंह एवं मातृसिंह तथा दूसरी पतोहूको साथ लेकर तुंगकी पत्नी मंखना बड़ी गरीबीके दिन बिताती हुई राजपुरीमें रहने लगी ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ इधर राजा संग्रामराजने तुंगके स्थानपर पुराने पापी भद्रेश्वरको नियुक्त किया। उस पदको पाते ही उसने भूतेश्वर आदि देवमन्दिरोंका कोश एवं अन्यान्य वस्तुयें लूटनी आरम्भ कर दीं ॥ १०६ ॥ उस राजाकी विचार-शून्यता कहाँ तक बतायी जाय, जब कि उसने जाने-माने दुष्ट पार्थ आदिकोंके हाथमें अधिकार सौंप दिये ॥ १०७ ॥ पार्थ बड़ा ही दुर्बुद्धि था और सब लोग जानते थे कि वह अपने भाईकी पत्नीको रक्खे हुए है। फिर भी अविचारके कारण राजाने उसे नगराधिकारी बना दिया ॥ १०८ ॥ पार्थका मन कभी भी सुकृतकी ओर उन्मुख नहीं होता था। इसी कारण उस दुष्टने भगवान् प्रवरेश्वरके रंगपीठपर पशुहिंसा जैसे पापकर्म आरम्भ करा दिये ॥ १०९ ॥ उस लोभी राजाने प्रजाको सतानेमें निपुण एवं परम कृपण सिन्धुपुत्र मतंगको कोशवृद्धिके कामपर नियुक्त कर दिया ॥ ११० ॥ बहुत दिनों पहले देवमुख कायस्थका पुए बेचनेवाली एक वेश्यासे सम्पर्क हो गया था, जिससे चन्द्रमुख नामका पुत्र जनमा ॥ १११ ॥ तुंगकी सहायतासे वह राजा संग्रामराजका प्रियसेवक बन गया था। उसने कौड़ी-कौड़ी जोड़कर करोड़ों दीनार जुटा लिये थे ॥ ११२ ॥ तथापि वह कंजूस उपहारमें आये हुये पुओंको भी पुराने धन्धेके ढंगपर अपने सेवकोंके हाथ बेच दिया करता था ॥ ११३ ॥ पहले उसकी जठराग्नि बड़ी तीव्र थी। उस समय वह सर्वथा नीरोग था। जब उम्र बढ़ी, तब उसे मन्दाग्निरोग हो गया। जिससे वह बीमार रहने लगा और उसे देख-देखकर लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे ॥ ११४ ॥ मरणकालमें उसने एक करोड़ दीनारका तृतीयांश श्रीरणेश्वर मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेके लिए दान दे दिया। जीवनभरमें केवल एक यही पुण्यकार्य उससे हो सका था ॥ ११५ ॥ उसके नान, भाग और नन्दिमुख नामके तीन पुत्र थे और वे तीनों तुंगके अधीन रहते हुए सेनापति-के पदपर काम करते थे। अब राजाने उनको तुंगके पदपर बैठा दिया। जिससे यह नियुक्ति उसी प्रकार हास्यापद मानी गयी, जैसे सुवर्णके स्थानपर जौका डंठल बाँधकर बच्चे परस्पर खेल खेलते हैं ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ शाहीराजके यहाँ तुरुष्कोंके युद्धमें राजाने इनको भी भेजा था और तुंगके समान ये भी वहाँसे हारकर लौटे

इत्थं मन्त्रिष्वयोग्येषु क्षान्तिशीले च भूपतौ । केचिदुद्रेकमभजन्दरद्दिविरडामराः ॥११९॥
सा लोठिकामठं कृत्वा लोठिका नृपतेः सुता । तिलोत्तमाया विदधे मातुर्नाम्नापरं मठम् ॥१२०॥
पापिनामपि हन्तेयं क्वाऽपि सत्कर्मवासना । भद्रेश्वरोऽपि यच्चक्रे विहारं सुकृतोज्ज्वलम् ॥१२१॥
सत्यं विवेक्ता संग्रामराजो योऽन्याय्यतोऽर्जितम् । निजं ब्रुवाणो द्रविणं प्रपामपि न निर्ममे ॥१२२॥
श्रीलेखा पार्थिववधूः श्रीयशोमङ्गलात्मजा । पत्यौ शिथिलसामर्थ्ये स्वैरिणीत्वमसेवत ॥१२३॥
सुतः सुगन्धिसिंहस्य जयलक्ष्म्यां बभूव यः । वल्लभो निर्भरं देव्याः सोऽस्यास्त्रिभुवनोऽभवत् ॥१२४॥
स जयाकरगञ्जादिगञ्जस्रष्टातितीक्ष्णधीः । कोशोपकारकृत्तस्या जारोऽप्यासीज्जयाकरः ॥१२५॥
मयग्रामीणगञ्जादिकर्त्री संचयतत्परा । साऽभूद्भर्तुः प्रसादेन सुभगा भूरिवैभवा ॥१२६॥
स चतुर्थसमापाढप्रारम्भाहे महीपतिः । हरिराजाभिधं पुत्रमभिषिच्यास्तमाययौ ॥१२७॥
सुमनःसेवितः कुर्वन्नशेषाशाप्रकाशनम् । ह्लादावहः स सर्वस्य चैत्रोत्सव इवाभवत् ॥१२८॥
अमोघाज्ञेन तेनेमां निश्चौरां कुर्वता महीम् । पण्यवीथ्यां निशीथिन्यां निषिद्धा द्वारसंवृतिः ॥१२९॥
अचिरस्थायिनी राज्ञस्तस्याज्ञाचिन्तितोन्नतिः । वन्द्या नवेन्दुलेखेव पार्थिवानामजायत ॥१३०॥
द्वाविंशतिमहान्युर्वीं स रक्षित्वा क्षमापतिः । क्षयं ययौ शुचियशाः शुचिशुक्लाष्टमीदिने ॥१३१॥
प्राणिनां द्योतमानानां नक्षत्राणामिव क्षणात् । लक्ष्मीर्ग्रीष्मक्षपेवेयं संगता भङ्गदायिनी ॥१३२॥
समन्योः स्वैरिणीवृत्तिः सुतस्य जननी निजा । अभिचारं चकारास्येत्यविगाना जनश्रुतिः ॥१३३॥

थे ॥ ११८ ॥ इस प्रकार क्षमाशील राजा और अयोग्य मंत्रियोंके कारण राज्यके कुछ दरदों, दिविरों (कायस्थों) और डामरोंने उद्धत होकर उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया ॥ ११९ ॥ राजा संग्रामराजकी कन्या लोठिकाने अपने तथा अपनी माताके नामपर लोठिकामठ एवं तिलोत्तमामठका निर्माण कराया ॥ १२० ॥ यह बड़े ही विस्मयकी बात है कि कभी-कभी पापियोंके भी मनमें अच्छे काम करनेकी भावना जाग जाती है। तभी तो भद्रेश्वर जैसे दुष्टने भी पुण्यसे उज्ज्वल विहारका निर्माण कराया ॥ १२१ ॥ सबसे विवेकशील तो राजा संग्रामराज निकला। जिसने अन्यायोपार्जित धनसे एक प्याऊका भी निर्माण नहीं कराया ॥ १२२ ॥ उस राजाकी रानी और श्रीयशोमंगलकी पुत्री श्रीलेखा पतिके असमर्थ होनेपर दुराचारिणी बन गयी ॥ १२३ ॥ जयलक्ष्मीके उदरसे उत्पन्न एवं सुगन्धिसिंहके पुत्र त्रिभुवनपर श्रीलेखाका अगाढ़ प्रेम हो गया ॥ १२४ ॥ आगे चलकर राजकोषका उपकारक, जयाकरगंज आदि अनेक गंजोंका निर्माता एवं अतिशय तीक्ष्ण बुद्धि जयाकर भी रानी श्रीलेखाका उपपति बन गया ॥ १२५ ॥ द्रव्यसंग्रहपरायणा एवं मयग्रामीणगंज आदि निर्माण करानेवाली श्रीलेखा राजाकी कृपासे बड़ी वैभवसम्पन्न हो गयी ॥ १२६ ॥ तदनन्तर राजा संग्रामराज अपने पुत्र हरिराजका राज्याभिषेक करके ४१०४ लौकिक वर्षकी आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदाको स्वर्ग सिधार गया ॥ १२७ ॥ नवीन राजा हरिराज सुमनःसेवित अर्थात् विद्वानों अथवा पुष्पोंसे सेवित तथा अशेषाशाप्रकाशन अर्थात् सभी दिशाओं अथवा याचकोंकी आशायें पूर्ण करनेवाले चैत्रोत्सवके समान सबके लिए आनन्ददायक सिद्ध हुआ ॥ १२८ ॥ उसकी आज्ञा अमोघ एवं अप्रतिहत थी। इस कारण राज्यमें कहीं भी चोर नहीं रह गये थे और रात्रिके समय बाजारोंकी सभी दूकानें खुली पड़ी रहती थीं। क्योंकि उसके शासनकालमें द्वार बन्द करना निषिद्ध था ॥ १२९ ॥ यद्यपि उसका राज्यकाल अल्पकालीन था, फिर भी विलक्षण वैभवयुक्त नयी चन्द्रकलाके समान वह संसारके सभी राजाओंका वन्दनीय बन गया ॥ १३० ॥ निर्मल यशसे सम्पन्न नवीन राजा हरिराजने केवल बाईस दिन राज्य किया और श्रावण शुक्ल अष्टमीको स्वर्गवासी हो गया ॥ १३१ ॥ चंचला लक्ष्मी ग्रीष्मकालीन रात्रिकी भाँति प्राणियोंको केवल कुछ समय चमकनेवाले नक्षत्रोंके समान बहुत थोड़ेके समयके लिए किसीको अपना कृपापात्र बनाती है ॥ १३२ ॥ वह राजा हरिराज अपनी माताका दुराचार देखकर कुपित हो गया था। अतएव उस दुराचारिणीने अभिचारक्रियाके द्वारा उसे मरवा डाला। यह लोकप्रवाद उस समय चारों ओर फैल गया था और अबतक किसीने इस

राज्योपकरणे सज्जीकृते राज्यार्थिनी स्वयम् । सा राजमाता श्रीलेखा यावत्स्नात्वा समागता ॥१३४॥
मिलितैस्तावदेकाङ्गैर्भ्रात्रा धात्रेयकेण च । सागराख्येन तत्पुत्रो बालोऽनन्तो नृपः कृतः ॥ युग्मम् ॥१३५॥
निधिं जिघृक्षोरन्येन हृते तत्र प्रमापणम् । तद्रक्षिणोऽहेर्लुब्धस्य पापायैव यथा किल ॥१३६॥
राजमातुस्तथा राज्यलुब्धायाः पुत्रनाशनम् । अभूदन्यहृते राज्ये वृजिनायैव केवलम् ॥१३७॥
सा राज्यविप्रलम्भेन तादृशी व्यथिताशया । व्यस्मरत्तनयस्नेहं धिग्भोगाभ्यासवासनाम् ॥१३८॥
अथाजगाम स्थविरः पितृव्यो बालभूपतेः । राज्यं विग्रहराजाख्यो हर्तुं विततविक्रमः ॥१३९॥
स लोहरात्प्रचलितो दग्ध्वा द्वारमतर्कितः । दिनद्वयेन सार्धेन नगरं सत्वरोऽविशत् ॥१४०॥
श्रीलेखाप्रेरिताः सेनाः प्रविष्टं लोठिकामठम् । उद्दीपिताग्रयस्तत्र निजघ्नुस्तं सहानुगम् ॥१४१॥
मठद्वयं ततः कृत्वा स्वस्य भर्तुः सुतस्य च । तस्थौ व्ययवती राज्ञी राज्यद्रोहोद्यतानिशम् ॥१४२॥
ततो नरपतिः किंचिच्छनैः शिथिलशैशवः । अतिव्ययादिव्यसनी गर्भेश्वरतयाऽभवत् ॥१४३॥
तस्यासन्रुद्रपालाद्याः शाहिपुत्राः परं प्रियाः । अनल्पवेतनादानै राज्योत्पत्त्यपहारिणः ॥१४४॥
कृतप्रत्यहनिर्वाहः सार्धलक्षेण भूभुजा । रुद्रपालो दरिद्रत्वं कदाचिदपि नात्यजत् ॥१४५॥
दिद्दापालः क्षमापाललब्धया प्रतिवासरम् । सहस्राणामशीत्यापि शेते स्म न सुखं निशि ॥१४६॥
अनङ्गपालवेतालश्चक्रे क्ष्मापाललालितः । शश्वत्सुवर्णगीर्वाणप्रतिमापाटने मनः ॥१४७॥
रुद्रपालः परित्राता धनप्राणादिहारिणाम् । बभूव चौरचण्डालप्रायाणां वज्रपञ्जरः ॥१४८॥
कायस्था रुद्रपालाप्ताः प्रजानां पीडनं व्यधुः । चकारान्धमठं श्रीमानुत्पलाख्यो यदग्रणीः ॥१४९॥

जनश्रुतिका खण्डन नहीं किया है ॥ १३३ ॥ तदनन्तर श्रीलेखा स्वयं अपना राज्याभिषेक करानेकी तैयारी करके स्नानागारमें स्नान करने चली गयी। वह स्नान करके लौटे, उसके पहले ही दिवङ्गत राजा हरिराजके धात्रेय भ्राता सागर एवं कुछ एकांगोंने मिलकर उसके अल्पवयस्क पुत्र अनन्तदेवका राज्याभिषेक करा दिया ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ जिस तरह किसी अन्य पुरुषके द्वारा निधि (खजाना) अपहृत कर लिये जानेपर बादमें उसके रक्षक सर्पको मारनेसे केवल पाप ही हाथ लगता है, उसी प्रकार वह राज्य अन्य लोगोंके द्वारा अपहृत हो जानेपर राज्यकी लोभिन राजमाताने केवल पाप ही कमाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ जिस भोगवासनाके वशीभूत होकर वह राजमाता पुत्रप्रेम तकको भूल गयी और राज्य हाथसे निकल जानेपर दुःखिनी हुई, ऐसी भोगाभ्यासजनित वासनाको धिक्कार है ॥ १३८ ॥ तदनन्तर उस शिशुराजाका वृद्ध चाचा तथा परम पराक्रमी राजा विग्रहराजने राज्यको हस्तगत करनेके लिए चढ़ाई कर दी ॥ १३९ ॥ वह सहसा लोहर प्रान्तसे चलकर मार्गवर्ती द्वार जलाता हुआ ढाई दिनमें कश्मीर आ पहुँचा ॥ १४० ॥ वहाँ आकर वह अपनी सेनाके साथ लोठिकामठमें ठहरा। उसी समय श्रीलेखाके द्वारा भेजे हुए सैनिकोंने जाकर उस मठमें आग लगा दी, जिससे समस्त सैनिकोंके साथ विग्रहराज उसी मठके भीतर जलकर भस्म हो गया ॥ १४१ ॥ तदनन्तर रानी श्रीलेखाने अपने दिवङ्गत पति तथा पुत्रके नामपर दो मठ बनवाये और पुष्कल धन खर्च करके वह राजद्रोहका सामना करनेके लिए सदा सचेष्ट रहने लगी ॥ १४२ ॥ धीरे-धीरे उस बालक राजाकी शैशवावस्था बीती। गर्भसे ही श्रीमान् होनेके कारण वह बहुत खर्चीला तथा व्यसनी होने लगा ॥ १४३ ॥ शाही राजाके पुत्र रुद्रपाल आदि उस राजाके परम प्रिय मित्र थे। अत्यधिक वेतन लेकर वे राज्यधनका अपहरण करते थे ॥ १४४ ॥ उनमेंसे रुद्रपालको प्रतिदिन डेढ़ लाख दीनार मिलते थे। फिर भी उसकी दरिद्रता नहीं दूर होती थी ॥ १४५ ॥ दिद्दापालको रोज अस्सी हजार दीनार मिलता था। तथापि ऋण तथा व्ययकी चिन्तासे उसे रातभर नींद नहीं आती थी ॥ १४६ ॥ राजा अनन्तदेवका दुलारा साथी अनंगपालरूपी वैताल सदा देवमन्दिरोंको तोड़नेका उपक्रम किया करता था ॥ १४७ ॥ प्रजाजनोंका धन तथा जीवन हरण करनेवाले चोरों तथा चण्डाल सदृश दुष्ट स्वभाववाले लोगोंके लिए रुद्रपाल वज्रपंजरके समान संरक्षक प्राप्त हो गया ॥ १४८ ॥ उस रुद्रपालके आप्त

कियद्रूपालवाल्लभ्यमन्यत्तस्याभिधीयताम् । जालन्धराधिपस्येन्दुचन्द्रस्येन्दुमुखीं सुताम् ॥१५०॥
उपयेमे मनोज्ञत्वाज्ज्येष्ठामासमतिं स्वयम् । यया मठः स्वाभिधया विदधे त्रिपुरेश्वरे ॥१५१॥
तस्याः किंचिद्वयोन्यूनां स्वसारं यो यवीयसीम् । अथ सूर्यमतीं देवीं भूभुजे परिणीतवान् ॥१५२॥
रुद्रेण भूपतिः सख्या स कर्णसुखदायिना । पात्रीकृतो दुर्नयानां कर्णेनेव सुयोधनः ॥१५३॥
कम्पनाधिपतिस्तत्र क्षणे त्रिभुवनो बली । आययौ भूपतेर्हर्तुं राज्यं संभृतडामरः ॥१५४॥
आकृष्टाशेषकटके तस्मिन्योद्धुमुपागते । एकाङ्गाः सहयारोहा राजपक्षं न तत्यजुः ॥१५५॥
असिना लङ्घयन्नासानमोघान्श्लाघ्यविक्रमः । प्रजहारानन्तदेवः स्वयं त्रिभुवनं रणे ॥१५६॥
संनाहरक्षिताङ्गः स दृढप्रहृतिपीडितः । विद्रुतो वदनेनासृक्स्वप्रतापमिवोद्वमन् ॥१५७॥
विनयच्छन्नशौर्यार्यः शिशुप्रायः स भूपतिः । दृष्ट्वा बलमसंभाव्यं तस्मिंस्त्यक्त्वा रणं गते ॥१५८॥
क्षमालडामरं घ्नन्तं ग्रासैरभिनवाभिधम् । शालास्थले व्यधाच्छ्लाघ्यविक्रमो मोघविक्रमम् ॥१५९॥
मांसासृग्वेष्टनायष्टीभूतखड्गो भ्रमन्रणे । भुवनक्षोभकृद्भृङ्गभैरवोऽनन्तभूपतिः ॥१६०॥
पश्यन्प्रहारलूनाङ्गानेकाङ्गान्स पदे पदे । निवेद्यमानानग्रस्थैर्नामग्रहणपूर्वकम् ॥१६१॥
क्षितिभृज्ज्ञानदाक्षिण्यो विलब्धिस्थावरं ततः । चाञ्चल्यमक्षपटलादेकाङ्गानां न्यवारयत् ॥ युग्मम् ॥१६२॥
एवं तत्र कृतज्ञेन भृत्येभ्यः प्रतिपादिता । विलब्धिस्तेन दीनारकोटिपण्णवतेः क्रमात् ॥१६३॥
राज्ञो रणान्निवृत्तस्य दुग्धसेकैः करात्सरुः । स्थिरग्रहदृढः कृच्छ्राच्चिरेणेति जनश्रुतिः ॥१६४॥

पुरन कायस्थ लोग प्रजाको अत्यधिक सता रहे थे । उन सबके अगुआ श्रीमान् उत्पलने अन्यमठका निर्माण कराया ॥ १४९ ॥ उस धूर्त रुद्रपालकी राजप्रियताका कहाँतक वर्णन किया जाय । जालन्धरके नरेश इन्दुचन्द्रकी ज्येष्ठ पुत्री और चन्द्रमाके सदृश सुन्दर मुखवाली आसमतीके साथ उसने अपना विवाह किया था । आगे चलकर उसी आसमतीने त्रिपुरेश्वरमें अपने नामसे एक मठका निर्माण कराया ॥ १५० ॥ १५१ ॥ उसकी छोटी बहिन सूर्यमती देवीके साथ रुद्रपालने राजा अनन्तदेवका विवाह करा दिया । उसकी उम्र आसमतीसे कुछ ही कम थी ॥ १५२ ॥ कानोंको सुखदायी मीठी-मीठी बातें सुनाकर रुद्रपालने राजा अनन्तदेवको उसी तरह कुपथपर उतार दिया, जैसे कर्णने दुर्योधनको बुरी राहपर उतारा था ॥ १५३ ॥ उसी समय कम्पनेश त्रिभुवन डामरोंकी विशाल सेना एकत्र करके राजा अनन्तदेवका राज्य छीनने आया ॥ १५४ ॥ अपनी सारी सेनाके साथ युद्ध करनेके लिए आये हुए त्रिभुवनको देख करके भी घुड़सवारों तथा एकांगोंने राजा अनन्तदेवका साथ नहीं छोड़ा ॥ १५५ ॥ उस युद्धमें प्रशंसनीय पराक्रमी अनन्तदेवने अपनी तलवारसे डामरोंके भालोंको काट करते हुए बड़ा भीषण संग्राम किया और त्रिभुवनपर कई करारे प्रहार किये ॥१५६॥ यद्यपि त्रिभुवन कवच पहने हुए था । तथापि राजा अनन्तदेवके भयानक प्रहारोंसे आहत होकर त्रिभुवन मुखसे अपने प्रतापके समान रुधिर वमन करता हुआ रणभूमिसे भाग गया ॥ १५७ ॥ उस समय राजा अनन्तदेव एक बालक जैसा दीखता था । उसका पराक्रम विनय और शीलसे आच्छादित था । उसका शौर्य पराक्रम देखकर जब त्रिभुवन रणभूमिसे भाग गया, तब राजा अनन्तदेवने शालस्थल ग्राममें जाकर वागयुद्धमें निपुण तथा क्षमालाप्रान्तनिवासी अभिनव डामरको पराजित किया ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ उस समय अनन्तदेव रुधिर तथा मांससे परिवेष्टित होनेसे दण्डके समान दीखती हुई तलवार हाथमें लिये दण्डपाणि भैरवकी भाँति भयंकर दिखायी दे रहा था ॥ १६० ॥ अपने आगे-आगे चलनेवाले सेवकों द्वारा नामनिर्देशपूर्वक बताये हुए तथा प्रहारोंसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले एकांगोंको उसने जगह-जगह घायल होकर पड़े देखा ॥ १६१ ॥ तदनन्तर अपने उन घायल सैनिकोंके लिए उदारता प्रदर्शित करते हुए राजा अनन्तदेवने ऐसी व्यवस्था कर दी कि इन्हें वेतन लेनेके लिए अक्षपटल (दफ्तर) में जानेकी आवश्यकता न पड़े अर्थात् घर बैठे वेतन मिल जाया करे ॥ १६२ ॥ इस प्रकार उस राजाने अपने सैनिकोंको ९६ करोड़ दीनार मुआवजेके रूपमें दिये ॥ १६३ ॥ ऐसी किम्वदन्ती सुनी जाती है कि राजा अनन्तदेव जब रणभूमिसे घर लौटा तो बहुत देरसे मजबूतीके साथ पकड़ी हुई उसकी तलवार मुट्ठीपर बड़ी देरतक दुग्धधारा डालनेके बाद

अहो महत्त्वं भूभर्तुर्दीनो देशान्तरागतः । तादृक्त्रिभुवनो येन संविभेजे विमन्युना ॥१६५॥
ब्रह्मराजाभिधस्तेन बन्धुर्गञ्जाधिपः कृतः । रुद्रपालकृतद्वेषो विरक्तश्चलितो ययौ ॥१६६॥
सप्तभिर्म्लेच्छभूपालैः समं मिलिनडामरः । तेनानीतो दरद्राजो यत्नादचलमङ्गलः ॥१६७॥
क्षीरपृष्ठाभिधं ग्रामं प्राप्तस्य समरोत्सुकः । तस्याग्रं विक्रमोदग्रो रुद्रपालो विनिर्ययौ ॥१६८॥
श्वो व्यवस्थापिते युद्धे सैन्याभ्यां दरदीश्वरः । क्रीडन्पिण्डारकाख्यस्य नागस्य भवनं ययौ ॥१६९॥
दुर्नयाचरणात्तत्र पार्श्वस्थैर्वारितोऽपि सः । प्लवमानस्य मत्स्यस्य गात्रे कुन्तमपातयत् ॥१७०॥
अथोज्जगाम गोमायुवपुः कुण्डाद्भुजंगमः । स च तं मृगयौत्सुक्यादधावद्दरदीश्वरः ॥१७१॥
तमापतन्तमालोक्य व्यवस्थोन्मूलनं विदन् । आस्कन्दाशङ्कि भूभर्तुः सैन्यं युद्धाय निर्ययौ ॥१७२॥
अभूत्ततोऽस्त्रसंघर्षसंजातानलसंहतिः । कृतस्वर्गाङ्गनोद्वाहो वीराणां समरोत्सवः ॥१७३॥
तस्मिन्महाभटाटोपे शिरश्छिन्नं दरत्पतेः । रुद्रस्य रौद्रमहसः संप्ररूढं यशः पुनः ॥१७४॥
समरे वधबन्धादि म्लेच्छराजाः प्रपेदिरे । संप्राप हेमरत्नादि पुनः कश्मीरभूपतिः ॥१७५॥
उत्तंसमुक्ताद्योनाम्भःक्षालितास्त्रझलज्झलम् । रुद्रपालो दरद्राजशिरो भर्तुरुपानयत् ॥१७६॥
भ्रात्रोदयनवत्सेन कृतप्रायैस्तथा द्विजैः । बह्वयश्चैवंविधास्तस्य बभूवुरवदालिकाः ॥१७७॥
रुद्रपाले ततो लूतामयेन प्रमयं गते । अन्येऽपि शाहितनयाः क्षिप्रमेव क्षयं ययुः ॥१७८॥
पालस्नेहान्ध्यविगमे शुद्धाशयवपुरोऽभवत् । देवी सूर्यमती भर्तुर्दर्पणस्येव बिम्बिता ॥१७९॥

लूटी थी ॥ १६४ ॥ अहो ! उस राजा अनन्तदेवकी महत्ताका बखान कहाँतक किया जाय । क्योंकि कुछ समय बाद देशान्तरसे लौटे हुए दीन त्रिभुवनको रोष त्यागकर उसने फिर अपने यहाँ रख लिया था ॥ १६५ ॥ उसने अपने भाई ब्रह्मराजको गंजाधिपतिके पदपर नियुक्त कर दिया था, किन्तु बादमें रुद्रपालसे झगड़ा हो जानेके कारण वह काम छोड़कर चला गया ॥ १६६ ॥ कुछ दिनों बाद वही ब्रह्मराज सात म्लेच्छनरेशों, डामरसमुदाय तथा दरदोंके राजा अचलमंगलको अपने साथ लेकर कश्मीरपर आक्रमण करनेके लिए आया ॥ १६७ ॥ दरदराज अचलमंगल क्षीरपृष्ठ स्थानपर पहुँचा ही था कि इतनेमें वीर रुद्रपाल लड़नेके लिए उसके समक्ष जा पहुँचा ॥ १६८ ॥ उभय पक्षकी सेनाओं द्वारा दूसरे दिन युद्धकी घोषणा हो जानेके बाद दरदेश घूमता-फिरता हुआ पिण्डारक नागके भवनमें पहुँच गया । सेवकोंके रोकनेपर भी उस राजाने वहाँके कुण्डमें तैरते हुए एक मत्स्यकी देहपर अपने भालेसे प्रहार कर दिया ॥ १६९ ॥ १७० ॥ उसी समय उस कुण्डसे शृगाल-रूपधारी एक नाग निकला । उसका शिकार करनेके विचारसे वह राजा उसके पीछे-पीछे दौड़ा ॥ १७१ ॥ उसे दौड़ते देखकर रुद्रके सैनिकोंने समझा कि युद्धके समयमें परिवर्तन कर दिया गया है और शत्रुका आक्रमण हो चुका है, अतएव वे सभी सैनिक युद्धके लिए चल पड़े ॥ १७२ ॥ बस, दोनों ओरके सैनिकोंमें घमासान युद्ध आरम्भ हो गया । शस्त्रोंके पारस्परिक संघर्षसे आगकी लपटें निकलने लगीं और मृत वीरोंका देवांगनाओंके साथ स्वयंवर होने लगा ॥ १७३ ॥ उस भीषण युद्धमें दरदराज अचलमङ्गलका सिर कट गया और रुद्रके समान तेजस्वी रुद्रपालकी कीर्ति बढ़ी ॥ १७४ ॥ उस लड़ाईमें कुछ म्लेच्छ राजे मारे गये, कुछ कैद कर लिये गये और कश्मीरनरेशको प्रचुरमात्रामें सुवर्ण तथा रत्नोंकी प्राप्ति हुई ॥ १७५ ॥ कुछ ही क्षणों बाद रुद्रपालने राजा अनन्तदेवको दरदराजका कटा हुआ सिर उपहारके रूपमें अर्पित किया । वह रुधिरसे लतपथ था । उसके मुकुटमें जटित मोतियोंकी उज्ज्वल कान्तिरूपी जलसे जैसे उस रुधिरप्रवाहका क्षालन हो रहा था ॥ १७६ ॥ तदनन्तर राजा अनन्तदेवको अपने भ्राता उदयनवत्सके द्वारा उत्तेजित ब्राह्मणोंके अनशन आदि उपद्रवोंसे नाना प्रकारके दुःखोंको झेलना पड़ा ॥ १७७ ॥ कुछ ही समय बाद रुद्रपालकी लूतारोगसे मृत्यु हो गयी । उसके अतिरिक्त शाहीके अन्य पुत्र भी थोड़े ही दिनोंके भीतर मर गये ॥ १७८ ॥ इस प्रकार पालबन्धु सम्बन्धी अन्धप्रेमरूपी मलके दूर होते ही स्वच्छ दर्पण सदृश पतिके हृदयपर राजरानी सूर्यमतीका प्रतिबिम्ब

सुभटापरनामा सा गौरीश्वरविधायिनी । पुण्यं वितस्तापुलिने निर्ममे सुभटामठम् ॥१८०॥
गोहेमहयरत्नादिप्रदानैः सुबहून्द्विजान् । सदाशिवप्रतिष्ठायामदरिद्रांश्चकार सा ॥१८१॥
आशाचन्द्रापराख्यस्य कल्लनस्यानुजन्मनः । नाम्ना व्यधायि वात्सल्यात्साग्रहारो मठस्तया ॥१८२॥
सिल्लनाख्यस्य च भ्रातुर्भर्तुश्चाभिधया सती । मठौ चाकारयत्पार्श्वे विजयेशामरेशयोः ॥१८३॥
अष्टोत्तरं चाग्रहारशतं श्रीविजयेश्वरे । ब्राह्मणेभ्यो महापुण्यं विद्वद्भ्यः प्रत्यपादयत् ॥१८४॥
पत्युर्नाम्नाप्यग्रहारान्प्रददावमरेश्वरे । त्रिशूलबाणलिङ्गादिप्रतिष्ठाश्च विनिर्ममे ॥१८५॥
दंपती राजराजाख्ये मृते पुत्रे प्रचक्रतुः । सदाशिवान्तिके राजवेश्म संत्यज्य तौ स्थितिम् ॥१८६॥
ततः प्रभृति संत्यज्य पूर्वराजकुलस्थितिम् । तथैव रूढ्या भूपालास्तत्रैव वसतीर्व्यधुः ॥१८७॥
पार्थिवस्याश्वशालीयाः प्रियवाजितया प्रियाः । प्रसादैर्देशलुण्ट्या च सर्वतः समतां ययुः ॥१८८॥
गर्भेश्वरतया भर्तुर्वल्लभो नर्मकोविदः । अलुण्ठयत्प्रजा नित्यं डल्लको नाम दैशिकः ॥१८९॥
मालवाधिपतिर्भोजः प्रहितैः स्वर्णसंचयैः । अकारयद्येन कुण्डयोजनं कपटेश्वरे ॥१९०॥
प्रतिज्ञा भोजराजेन पापसूदनतीर्थजैः । सततं वदनस्नाने या तोयैर्विहिताऽभवत् ॥१९१॥
अपूरयत्तस्य यस्तां दुस्तरां नियमादितः । प्रहितैः काचकलशीकुलैस्तद्वारिपूरितैः ॥१९२॥

स तस्य पद्मराजाख्यः पर्णप्राप्तिकदैशिकः ।
प्रियताम्बूलशीलस्य त्यागिनो वल्लभोऽभवत् ॥ चक्कलकम् ॥१९३॥

तेन नागरखण्डादिपर्णविक्रयिणा नृपः । देशोत्पत्तिधनं प्रायो निःशेषं दापितस्तदा ॥१९४॥

स्पष्ट रूपसे दीखने लग गया ॥ १७९ ॥ रानी सूर्यमतीका दूसरा नाम सुभटा था। उसने वितस्ता नदीके तटपर गौरीश्वर शिवकी स्थापना की और अपने नामपर सुभटामठका निर्माण कराया ॥ १८० ॥ शिवकी स्थापनाके समय उसने प्रचुरमात्रामें गौ, सुवर्ण, रत्न तथा अश्व आदिका दान देकर बहुतेरे ब्राह्मणोंका दारिद्र्य सदाके लिए दूर कर दिया था ॥ १८१ ॥ अपने छोटे भाई आशाचन्द्र अथवा कल्लनपर विशेष प्रेम होनेके कारण रानी सूर्यमतीने उसके नामसे अग्रहार समेत मठका निर्माण कराया ॥ १८२ ॥ सिल्लन नामक भ्राता तथा पतिके नामसे उसने विजयेश तथा अमरेश मन्दिरके पास दो मठ बनवाये ॥ १८३ ॥ विजयेश्वर मन्दिरके पास उसने एक सौ आठ अग्रहार विद्वान् ब्राह्मणोंको देकर बहुत बड़ा पुण्य किया ॥ १८४ ॥ अपने पतिके नामपर अमरेश्वरके निकट अनेक अग्रहार दिये और जगह-जगह त्रिशूल, बाण तथा शिवलिंग आदि स्थापित किये ॥ १८५ ॥ कुछ समय बाद राजराज नामक पुत्रके मर जानेपर वे पति-पत्नी पुराना आवास त्यागकर सदाशिवमन्दिरके निकट रहने लगे ॥ १८६ ॥ तभीसे यह परम्परा बन गयी और आगे होनेवाले राजे भी अपना पुराना महल त्यागकर वहाँ ही रहने लग गये ॥ १८७ ॥ उस राजाको अपनी अश्वशालाके अश्व बहुत प्रिय थे। अतएव अश्वशालाके साईस राजाकी कृपासे प्राप्त पारितोषिक तथा प्रजाजनोंको लूटकर मिले धनसे बड़े-बड़े रईस बन गये ॥१८८॥ गर्भसे ही श्रीमान् राजा अनन्तदेवका प्रेमपात्र और चापलूस डल्लक नामका विदेशी भी नित्य प्रजाको लूटता था ॥ १८९ ॥ राजा अनन्तदेवको पान खानेका बेहद शौक था। सो पद्मराज नामक एक परदेशी तमोली सदा उसके लिए पान पहुँचाया करता था। नित्यके साक्षात्कारसे पद्मराज राजाका प्रेमपात्र बन गया था। मालवदेशके नरेश महाराज भोजने पुष्फल धन खर्च करके पद्मराजकी ही देख-रेखमें कपटेश्वरमें एक कुण्ड बनवाया था। राजा भोजने पापसूदन तीर्थके पवित्र जलसे मुखमार्जन एवं स्नान करनेकी सदाके लिए प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। उस कठिन प्रतिज्ञाको निभानेके लिए पद्मराज तमोली शीशेके कलशोंमें उस तीर्थका जल भरकर नित्य उसके पास भेजता रहता था ॥ १९०-१९३ ॥ कुछ समय-बाद राजाकी अनुमतिसे तमोली पद्मराजने राज्यकी आयका अधिकांश स्वयं लेना आरम्भ कर दिया ॥ १९४ ॥ पद्मराजने राजा अनन्तदेवको बहुत अधिक ऋण दे रक्खा था। उस ऋणके बदलेमें उसने राजासे पंचचन्द्रकयुक्त

पञ्चचन्द्रकशोभाङ्कमौलिसिंहासने नृपात्। बन्धायादत्त लब्धव्ये धने स धनिकोऽधिके ॥१९५॥
तद्राजचिह्नमास्थानोपयुक्तं तस्य मन्दिरात्। आनीयमानं मासार्धवासरे मासि मास्यभूत् ॥१९६॥
स्वकोशसंचयं दत्त्वा देवी सूर्यमती ततः। पद्मराजोद्भवां देशस्याव्यवस्थां न्यवारयत् ॥१९७॥
शमिते चाश्वशालीयडल्लकादिभये तदा। प्रावर्तन्त पुनर्देशे व्यवस्था निरुपद्रवाः ॥१९८॥
ततः प्रभृति राज्ञ्येव राजकार्योद्यताऽभवत्। तस्थौ शौर्यकथां त्यक्त्वा राजा कार्यकरः पुनः ॥१९९॥
भर्तुर्नारीविधेयत्वं तस्या भर्तृजयस्तथा। निष्कलङ्केन शीलेन नान्योन्यं गर्ह्यतामगात् ॥२००॥
भवभक्तिव्रतस्नानत्यागशीलादिभिर्गुणैः। कृतिनाऽनन्तदेवेन मुनयोऽपि विनिर्जिताः ॥२०१॥
राज्ये तस्य महीभर्तुर्दीर्घे तांस्तानलङ्घयत्। पतिंवरेव राजश्रीर्भृत्यान्नवनवोन्मुखी ॥२०२॥
क्षेमाभिधो राजगञ्जपूरणं वालभञ्जकः। व्यधाद्द्वादशभागादिप्रकारैर्ढौकयन्धनम् ॥२०३॥
मन्त्री ततोऽभवत्साधुस्त्रैगर्तः केशवो द्विजः। सौधश्चन्द्रातपेनेव भूपालो येन भूपितः ॥२०४॥
भ्राम्यन्गतश्रीरेकाकी स एव ददृशे जनैः।
भाग्याम्बुवाहतडितो निविडाः कस्य संपदः॥ युग्मम् ॥२०५॥
भाग्याधीनं धनं ध्यात्वा मुधा मुग्धधियामसौ। कुलविक्रमयोर्दर्पो मिथ्यैव पृथुतां प्रति ॥२०६॥
प्रासादपालवैश्यस्य गौरीशत्रिदशालये। भूतेर्हलधरो वज्रो वराहश्चाभवन्सुताः ॥२०७॥
तेभ्यो हलधरः सूर्यमत्या विहितसेवनः। वृद्धिं दिने दिने गच्छंल्लेभे सर्वाधिकारिताम् ॥२०८॥
विधेयान्बुद्धियुक्तेन कुर्वतः क्षित्यनन्तरान्। सपत्नीकोऽभवत्तस्य मुखप्रेक्षी क्षमापतिः ॥२०९॥

राजमुकुट और राजसिंहासन अपने पास गिरवी रख ली थी ॥१९५॥ वह राजमुकुट तथा राजसिंहासन हर आधे आधे महीनेपर दरबार लगनेके समय केवल एक दिनके लिए उसके यहाँसे राजभवनमें लाया जाता था ॥१९६॥ तदनन्तर सूर्यमती देवीने अपना सारा धन देकर राजकीय मुकुट तथा सिंहासन छुड़ा लिया और उस पद्मराज-के ऋणसे उत्पन्न स्वदेशकी अव्यवस्था दूर कर दी ॥ १९७ ॥ महारानी सूर्यमतीने ही अश्वशालाके कर्मचारी डल्लक आदिका भी भय दूर कर दिया, तबसे उस राज्यमें उपद्रवविहीन व्यवस्था पुनः स्थापित हो गयी ॥ १९८ ॥ उसी समयसे रानी स्वयं सारा राज्यकार्य देखने लगी और युद्ध तथा शिकारके सिवाय अन्य सभी कार्योंको राजा रानीके निर्देशानुसार करने लगा ॥ १९९ ॥ पतिका पत्नीकी सेवकाई करना और पत्नीका पतिपर शासन करना ये दोनों पारस्परिक कार्य रानीके निष्कलप शीलके कारण निन्दनीय नहीं माने गये ॥ २०० ॥ उधर परम पुण्यात्मा राजा अनन्तदेवने शिवभक्ति, व्रत, स्नान, दान, तथा शील आदि गुणोंसे बड़े-बड़े मुनियोंको भी परास्त कर दिया ॥ २०१ ॥ उस राजाके राज्यमें नवनवोन्मुखी (नये-नये राजपुत्रोंके लिए उत्सुक) पतिंवरा (स्वयंवरमें पतिका वरण करनेवाली कन्या) की तरह राजलक्ष्मी नये-नये राजसेवकोंके पास जाती रहती थी ॥ २०२ ॥ उन्हीं दिनों क्षेम नामका एक नाई गंज (वित्तविभाग) का अधिकारी बना और वह द्वादशांश आदि नये-नये कर लगाकर राज्यकोष भरने लगा ॥ २०३ ॥ तभी त्रिगर्तदेशनिवासी केशव नामका एक सुशील ब्राह्मण राज्यका मंत्री बना। उसके सम्पर्कसे राजाकी शोभा वैसी ही निखर उठी, जैसे किसी प्रासादपर चन्द्रमा-की किरणें पड़नेसे उनकी शोभा बढ़ जाती है ॥ २०४ ॥ किन्तु कुछ ही समय बाद लोगोंने राजमंत्री केशवको दरिद्रदशामें राजपथपर एकाकी भटकते देखा। क्योंकि भाग्यरूपी बादलमें चमकनेवाली सम्पत्तिरूपिणी बिजली बहुत समय तक कहाँ टिकती है ? ॥ २०५ ॥ 'धन भाग्यके अधीन होता है' इस बातको जानते हुए भी मूढमति लोग धनका, अधिकारका, कुलका और पराक्रमका व्यर्थ घमण्ड करते हैं ॥ २०६ ॥ भगवान गौरीश्वरके मन्दिर-में भूति नामका एक वैश्य द्वारपाल रहता था। उसके हलधर, वज्र तथा वराह नामके तीन बेटे थे ॥ २०७ ॥ उनमेंसे हलधर रानी सूर्यमतीकी सेवामें रहता था। वह अपनी प्रतिभासे आगे बढ़ता हुआ सर्वाधिकारी बन गया ॥ २०८ ॥ अपनी बुद्धिमत्तासे उसने कितने ही छोटे-छोटे सामन्तोंको अपने वशमें कर लिया। इसी कारण राजा-

क्षेमेण सूत्रितं पूर्वं सपादाग्रमुदग्रधीः । कर्मस्थानं स्फुटीचक्रे सर्वस्थानधुरंधरम् ॥२१०॥
अभूद्वर्णकमूल्यादिलेखनं कनकस्य यत् । राजायत्तं जनस्यार्थसंचयानां प्रकाशकम् ॥२११॥
स तन्निवारयामास भाविनां भूभुजां विदन् । ज्ञानी संचितवित्तस्य दण्डाद्यायासकारिताम् ॥२१२॥
भर्त्सितानश्वशालीयान्धनदारापहारिणः । कांश्चिद्व्यापाद्य स शमं निन्ये लोकस्य विप्लवम् ॥२१३॥
तेनायासहृता नीतः कश्चित्स्वर्णैः सुरास्पदैः । शोभां मठाग्रहारैश्च वितस्तासिन्धुसंगमः ॥२१४॥
भ्रातरश्च सुताश्चास्य लक्ष्मीपरिचयोन्मदाः । द्विरदा इव न क्वापि दानप्रणयितां जहुः ॥२१५॥
तद्भ्रातृपुत्रो विम्वाख्यः श्रीमान्वीरो वराहजः । द्वाराधिकारकार्यासीद्दानप्रलयवारिदः ॥२१६॥
स डामरकुलाकालमृत्युः स्वल्पानुगोऽभवत् । खशाहवे जहौ प्राणानपलायनपराङ्मुखः ॥२१७॥
चम्पायां सालभूपालमुन्मूल्यानन्तभूपतिः । तत्तन्नृपजयी नव्यं घराधवमरोपयत् ॥२१८॥
मन्त्रशून्येन शौर्येण परदेशेषु भूपतिः । हठप्रवेशान्विदधत्सोऽभूत्कृच्छ्रगतोऽसकृत् ॥२१९॥
तुक्कात्मजस्य कलशस्यारब्धो खिन्नसैनिकम् । अमोचयद्धलधरो युक्त्या वल्लापुरादमुम् ॥२२०॥
उरशां च प्रविष्टस्य वैरिरुद्धाध्वनो व्यधात् । कम्पनाधिपतिस्तस्य मार्गान्संशोध्य निर्गमम् ॥२२१॥
कालेऽनन्तमहीभर्तुर्वैरिविग्रहसंकटे । साहसान्युदजृम्भन्त तानि तानि क्षणे क्षणे ॥२२२॥
राजेश्वरो द्वारपतिः श्रीमान्भद्रेश्वरात्मजः । डामरैः क्रमराज्यस्थैरन्येऽपि वहवो हताः ॥२२३॥
वीक्ष्य नीतिदृशा कार्यं भीत्या व्यवहरन्नपि । भृत्यतां निष्परिभवां को भुङ्क्ते नृपमन्दिरे ॥२२४॥

रानी प्रत्येक कार्यके लिए उसके मुखापेक्षी वन गये थे ॥ २०९ ॥ किसी समय क्षेमके द्वारा निर्मित 'पादाग्र' नामक नवीन एवं साधारण पदको हलधरने अपने कौशलसे सर्वश्रेष्ठ मंत्रिपदके रूपमें परिणत कर दिया ॥ २१० ॥ सुवर्णकी परीक्षा, तौल तथा मूल्य आदि लिखने तथा उसपर मुहर लगानेका वहुत पुराना अधिकार राज्यके पास रहा करता था और उसीसे राजाको प्रजाकी सम्पत्तिका पता लगता था ॥ २११ ॥ अव हलधर-ने उस प्रथाको इसलिए वन्द कर दिया कि जिससे भावी राजे प्रजाकी सम्पत्ति न लूटें और न उसे सता सकें ॥ २१२ ॥ इसी तरह उसने प्रजाजनोंका धन एवं स्त्रियोंका अपहरण करनेवाले कर्मचारियोंको खूव फटकारा और ऐसे अपराधपर कितनोंको प्राणदण्ड देकर प्रजाका यह संकट दूर कर दिया ॥ २१३ ॥ जनसाधारणका कष्ट निवारण करनेमें तत्पर हलधरने कितने ही स्वर्णालंकृत मन्दिर, मठ एवं अग्रहार आदिका निर्माण कराके सिन्धु और वितस्ता नदीके संगमको वहुत सुन्दर वना दिया ॥ २१४ ॥ किन्तु लक्ष्मीके परिचयसे उन्मत्त हलधरके भ्राताओं तथा पुत्रोंने मतवाले हाथीके समान दानप्रणयिता (दान देनेका प्रेम अथवा मदकी वर्षा) कभी भी नहीं त्यागी ॥२१५॥ उसके भाई वराहका पुत्र एवं राज्यका द्वाराधिकारी श्रीमान् विम्व प्रलयकालीन मेघके समान सदा वड़ी उदारताके साथ दानरूपी जलकी वर्षा करता रहता था ॥ २१६ ॥ वह श्रीमान् विम्व डामरकुलके लिए अकाल मृत्युकी भाँति भीषण था। एक वार वह वहुत थोड़ी-सी सेना लेकर खशोंसे लड़ने गया। वहाँ भयानक संकटका सामना होनेपर भी वह रणसे भागा नहीं, वल्कि शत्रुसे जूझते हुए उसने अपने प्राण दे दिये ॥ २१७ ॥ तभी राजा अनन्तदेवने अनेक राजाओंको पराजित करनेवाले चम्पाके राजा सालको राज्यच्युत करके उसके स्थान-पर नया राजा वैठाया ॥ २१८ ॥ अपनी मंत्रणाशून्य शौर्यके सहारे हठके साथ प्रवेश करनेके कारण राजा अनन्त-देवको वड़े-वड़े संकटोंमें फँसना पड़ गया था ॥ २१९ ॥ एक समय उसने तुक्क राजाके पुत्र कलशपर आक्रमण किया। उस समय उसके सैनिक थके हुए थे। इस कारण वह वहुत वड़ी विपत्तिमें पड़ गया। तव हलधरने वड़ी वुद्धिमानीसे उसे वल्लापुरसे छुडाया ॥ २२० ॥ एक वार वह उरशा नगरीमें घुस गया, वहाँ शत्रुओंने उसका रास्ता ही अवरुद्ध कर दिया। तव सेनापति हलधरने किसी प्रकार रास्ता साफ करके उसे वहाँसे निकाला ॥ २२१ ॥ युद्धके समय क्षण-क्षणपर राजा अनन्तदेवके राज्यमें प्रायः वड़े-वड़े उपद्रव हो जाया करते थे ॥ २२२ ॥ क्रमराज्यमें रहनेवाले डामरोंने भद्रेश्वरके पुत्र द्वाराधिपति राजेश्वर तथा वहुतेरे वीरोंको मार डाला ॥ २२३ ॥ राजमहलमें रहकर नैतिक दृष्टिसे भली-भाँति देख तथा डरते हुए काम करनेवाला होता हुआ भी कौनसा पुरुष

दुष्प्रवादास्पदीभूतो देव्या निविडसेवनात् । आशाचन्द्रादिभिः क्रुद्धैर्बद्धो हलधरोऽप्यभूत् ॥२२५॥
स राज्ञा हृतसर्वस्वो बन्धनक्लेशमन्वभूत् । भाग्यप्रभावे निःसारे सुखमेकान्ततः कुतः ॥२२६॥
नृपेण बन्धनान्मुक्तं तं श्रीः प्रत्यागता पुनः । आलिलिङ्ग सितच्छत्रलज्जास्मितमितानना ॥२२७॥
स राज्ञ्याः प्रावृष इव प्रणयेन क्षणे क्षणे । कोपप्रसादमेघार्कपर्यायापातमन्वभूत् ॥२२८॥
ततः सरलचित्तस्य क्रमेण समपद्यत । भार्याजितत्वं भूभर्तुर्विपाकार्पणोन्मुखम् ॥२२९॥
अधिकारपरित्यागाद्दोषाननुशयावहान् । वदद्भिर्वार्यमाणोऽपि प्राज्ञैर्हलधरादिभिः ॥२३०॥
पत्न्या संप्रेरितः स्वतनयस्नेहमूढया । पुत्राय कलशायाभूद्राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२३१॥
यास्यस्यनुशयं राजन्नेवंवाद्यपि कारितः । सज्जं तेन रणादित्यनाम्ना क्षत्राभिषेचनम् ॥२३२॥
एकान्नचत्वारिंशस्य वर्षस्य नभसः सिते । षष्ठेऽह्नि बाहुलस्याभूदभिषिक्तो महीभुजा ॥२३३॥
अथास्थाने रणादित्यो राजपुत्रान्निवेदयन् । चिन्तयन्राज्यमाहात्म्यं प्रतिपत्तिषु निष्ठुरः ॥२३४॥
अनन्तो राजपुत्रोऽयं देवेति कथयन्वचः । कृकाटिकान्यस्तहस्तः क्षितिपालं न्यवेदयत् ॥२३५॥
कुपितेन स भूभर्त्रा परिवृत्यावलोकितः । एवं कृतस्मितो व्यक्तं तमूचे नीतिनिष्ठुरः ॥२३६॥
इत्थं यत्र निवेद्यन्ते कान्यकुब्जादिभूभुजः । तत्रैव न्यक्तराज्यस्य काऽन्याऽस्तु प्रक्रिया तव ॥२३७॥
दिने दिने सानुशयो नियतं भविता भवान् । नाभिमानपरित्यागः कर्तुं शक्यो मुनेरपि ॥२३८॥
सुदूरदर्शिनां तत्र मन्त्रिणां हृदयंगमम् । राजा तस्य वचः श्रुत्वा प्रतिवाक्याक्षमोऽभवत् ॥२३९॥

अपमानित हुए बिना सेवाधर्म निभा सकता है ? ॥ २२४ ॥ निरन्तर रानी सूर्यमतीके पास आते-जाते रहनेके कारण झूठी अफवाहोंसे बदनाम हलधरको एक बार आशाचन्द्र आदिने कैद कर लिया ॥ २२५ ॥ उस किम्वदन्तीसे कुपित होकर राजा अनन्तदेवने हलधरका सर्वस्व छीनकर जेलमें डाल दिया । भाग्यका प्रभाव सर्वथा निःसार होता है । अतएव किसीको सदाके लिए सुख नहीं प्राप्त होता ॥ २२६ ॥ कुछ काल बाद राजाने उसे बन्धनमुक्त कर दिया । तभी श्वेत छत्ररूपिणी लज्जासे पूर्ण एवं मुस्कान भरी मुखवाली राज्यश्रीने फिर उसका आलिंगन किया और वह फिर अपने पदपर नियुक्त हो गया ॥ २२७ ॥ बरसातके दिनोंमें क्षणिक आतप एवं मेघच्छायाकी भाँति रानी सूर्यमतीके क्रोध एवं प्रसन्नताका उसे बारम्बार अनुभव करना पड़ा था ॥ २२८ ॥ तदनन्तर उस सरल प्रकृति राजा अनन्तदेवका पूर्णरूपसे पत्नीका आज्ञाकारी बनकर रहना ही सब अनर्थोंका कारण माना जाने लगा ॥ २२९ ॥ अधिकारका परित्याग करनेसे भविष्यमें पछतावा आदि विभिन्न दोषोंको दिखलाते हुए हलधर आदि मंत्रियोंने यद्यपि रोकनेकी भरपूर चेष्टा की । तथापि पुत्रस्नेहवती पत्नीकी प्रेरणासे राजा अनन्तदेव अपने पुत्र कलशको राज्यभार सौंपनेके लिए उत्कण्ठित हो उठा ॥२३०॥२३१॥ तदनुसार राज्याभिषेककी सामग्रियाँ जुटानेका काम मंत्री रणादित्यको सौंपा गया । उसने भी राजासे कहा—'राजन्! ऐसा करके पछताइएगा' । किन्तु इस बातपर ध्यान न देकर उसने सामग्री जुटवायी ॥ २३२ ॥ इस प्रकार ४०३९ लौकिक वर्षकी कार्तिक शुक्ल षष्ठीको राजा अनन्तदेवने अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २३३ ॥ तदनन्तर राजदरबारमें सिंहासनासीन नये राजाके समक्ष अन्य राजकुमारों एवं सामन्तोंका नाम ले-लेकर परिचय कराते हुए नियम पालनमें अत्यन्त कट्टर मन्त्री रणादित्यने नये राजाका महत्त्व ध्यानमें रखते हुए अनन्तदेवके कंधेपर हाथ रखकर कहा—'महाराज! यह राजपुत्र अनन्तदेव भी श्रीमान्‌के समक्ष उपस्थित हैं' ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ इस बातपर जब अनन्तदेवने घूमकर क्रोधपूर्ण दृष्टिसे उसकी ओर निहारा, तब उस नीतिनिष्ठुर मन्त्रीने हँसकर साफ-साफ कहा—॥ २३६ ॥ 'श्रीमान्! राजदरबारमें तो कान्यकुब्ज आदि देशोंके नरेशोंका भी इसी प्रकार परिचय दिया जाता है, तब आप जैसे राज्य त्यागे हुए पुरुषके लिए परिचयका क्या कोई नया ढंग गढ़ा जायगा ? ॥ २३७ ॥ अब तो आपको दिनोंदिन अवश्य पछताना पड़ेगा । क्योंकि बड़े-बड़े मुनि भी अभिमान नहीं त्याग पाते' ॥ २३८ ॥ अतिशय दूरदर्शी मन्त्रियोंके भी मनको भानेवाले ये वचन सुनकर वह राजा निरुत्तर

परिमेयैः परिच्छदैः ॥२४०॥
दृष्ट्वान्येद्युर्नवं भूपं राजचक्रेण सेवितम् । नवेतरं च सहितं परिमेयैः परिच्छदैः ॥२४०॥
धीमान्हलधरो युक्त्या कृतकाभ्रूयया नृपम् । एवं निर्भर्त्सयल्लक्ष्मीं तं अन्याजीहरत्पुनः ॥२४१॥
विधाय निःसुखं सूनुं राज्यभारार्पणाच्छिशुम् । कस्मात्स्वसुखसापेक्षो न जिह्रेष्यत्र वार्द्धके ॥२४२॥
तत्स्वयं राजकार्याणां कार्यमुद्वहनं त्वया । अशून्यो यौवनाभोगैरयमस्तु सुतस्तव ॥२४३॥
इत्युक्त्वा स पुनर्भूपमविकारमजिग्रहत् । चक्रे कलशदेवं च कलया युक्तिवञ्चितम् ॥२४४॥
पित्रोरेवान्तिके कुर्वन्नाहाराद्यपि संततम् । ततो बभूव कलशो नाममात्रमहीपतिः ॥२४५॥
सर्वास्थानास्त्रपूजादिविधाने पार्थिवोचिते । पितुः सहायकल्पः स पौरोहित्यमिवाकरोत् ॥२४६॥
अनिमित्तप्रहृष्टानामनिमित्तानुतापिनाम् । न क्वापि चलचित्तानां स्त्रीणामिह निश्चयः ॥२४७॥
दापयित्वा पतिं राज्यं निर्बन्धेनापि तावता । सूनौ बभूव यद्राज्ञी क्षिप्रमेवानुतापिनी ॥२४८॥
सेर्ष्या स्नुषाणामुत्कर्षं पार्थिवप्रमदोचितम् । वेषालंकरणादौ सा रूक्षचित्ता न चक्षमे ॥२४९॥
दासीकृत्यं तया पुत्रमहिष्यः कारिताः सदा । गृहोपलेपने यावन्न वैमुख्यमदर्शयन् ॥२५०॥
पुत्रो विग्रहराजस्य क्षितिराजाभिधस्ततः । राज्ञः पितृव्यजो भ्राता कदाचित्पार्श्वमाययौ ॥२५१॥
तस्मै न्यवेदयत्खेदं स चित्तस्योपतापकम् । पुत्रे भुवनराजाख्ये राज्यलुब्धेऽतिविप्लुते ॥२५२॥
स हि तस्यात्मजो नीलपुराराज्यं समाश्रितः । तद्बलैः पितुरारब्धि विधातुं सोद्यमोऽभवत् ॥२५३॥
नाम भागवतानां च पूज्यानां स्वपितुर्व्यधात् । दत्तयज्ञोपवीतानां शुनामशुचिमानसः ॥२५४॥
क्षितिराजः स्ववध्वां च विरुद्धायां विशुद्धधीः । मनस्तापापहे चक्रे सर्वत्यागामृते स्पृहाम् ॥२५५॥

हो गया ॥ २३९ ॥ अगले दिन नये राजाको राजमण्डलसे सेवित और पुराने राजाको इने-गिने सेवकोंके साथ देखकर चतुर मन्त्री हलधरने बनावटी क्रोध करके कहा—'इस वृद्धावस्थामें आपने केवल अपने सुखको ओर ध्यान रखकर इस नादान बालकपर राज्यका एक बड़ा भारी बोझ लाद दिया है और उसके सुखको उच्छिन्न कर डाला है। इससे क्या आपको लज नहीं लगती ? ॥ २४०–२४२ ॥ अतएव उचित यही है कि आप राज्यका कार्यभार स्वयं सम्हालें और राजकुमार अपने यौवनके अनुरूप सुखोंका उपभोग करें' ॥ २४३ ॥ ऐसा कहकर हलधरने राजा अनन्तदेवको पुनः राज्यकार्य करनेके लिए विवश करके कलशको राज्यके अधिकारसे अलग कर दिया ॥ २४४ ॥ अब कलश नाममात्रका राजा रह गया और उसके भोजन आदि सब कार्य माता-पिताके साथ ही होने लगे ॥ २४५ ॥ राजदरबार तथा शस्त्रपूजन आदि राजोचित कृत्य सम्पन्न करनेके समय कलश अनन्तदेवका सहायक बनकर पौरोहित्य जैसा सब काम करता था ॥ २४६ ॥ रानी सूर्यमतीने बड़ी युक्तिसे और बहुत अधिक आग्रह करके पतिसे पुत्रको राज्य दिलाया था। यह सब करके भी जब उसके मनवाली बात नहीं हुई, तब उसे बहुत दुःख हुआ और अब उसका पुत्रप्रेम भी कम होने लगा ॥ २४७–२४८ ॥ वह अपनी पतोहुओंको रानियों जैसे वस्त्र तथा अलंकार आदि धारण करके अपना उत्कर्ष प्रकट करते देखकर जलने लगती थी ॥ २४९ ॥ इससे चिढ़कर रानी सूर्यमती उन पुत्रवधुओंसे दासियोंके करने योग्य काम जैसे झाड़ू लगाना—घर लीपना आदि कार्य कराने लगी। तथापि उन पुत्रवधुओंने तनिक भी इसका विरोध नहीं किया ॥ २५० ॥ तदनन्तर किसी समय राजा अनन्तदेवका चचेरा भाई एवं विग्रहराजका पुत्र क्षितिराज उसके पास आया ॥ २५१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने राजा अनन्तदेवके समक्ष अपना असह्य दुःख कह सुनाया। क्योंकि राज्यके लोभसे उसका पुत्र भुवनराज विद्रोह करने लग गया था ॥ २५२ ॥ विद्रोही भुवनराजने नीलपुर राज्यके राजाका आश्रय ले रक्खा था और उन्हींकी सेनाके सहारे वह अपने पिताके राज्यपर आक्रमण करने करनेकी तैयारी कर रहा था ॥ २५३ ॥ उस अपवित्र हृदयवाले भुवनराजने कुत्तोंके गलेमें जनेऊ पहनाकर अपने पिताके पूज्य बड़े-बड़े वैष्णवोंके नाम-पर अपने कुत्तोंके नाम रख लिये थे ॥ २५४ ॥ क्षितिराजकी पत्नी भी उसके विरुद्ध हो गयी थी। ऐसी स्थितिमें विमलमति राजा क्षितिराजने मनस्तापहारी सर्वस्व त्यागरूपी अमृत प्राप्त करनेकी आकांक्षा की ॥ २५५ ॥

राज्यं कलशपुत्राय ज्येष्ठानन्तरजन्मने । रामलेखाभिधानायां राज्ञ्यां जाताय सत्वरम् ॥२५६॥
दत्त्वा स्तनंधयायापि तदोत्कर्षाभिधाय सः । राजर्षिर्विबुधैः सार्धं विदधे तीर्थसेवनम् ॥२५७॥
भुक्त्वा शमसुखं भूरीन्वर्षान्परमवैष्णवः । स चक्रायुधसायुज्यं ययौ चक्रधरे सुधीः ॥२५८॥
स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ । सूरी तस्मिन्क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ ॥२५९॥
पितुः पितृव्यजाद्भ्रातुर्जातस्यानन्तभूभुजा । तन्वङ्गराजस्योत्सङ्गे नप्ता न्यासीकृतः शिशुः ॥२६०॥
तन्वङ्गोऽपि विवृद्धिं तन्नीत्वा राष्ट्रं शिशुं च तम् । पुनः प्रविष्टः कश्मीरानस्तं चक्रधरे ययौ ॥२६१॥
सर्वसाधारणीभूतभोगानां राजबीजिनाम् । तावज्ज्ञातेयमभवन्नेह द्रोहकलङ्कितम् ॥२६२॥
इन्दुराजात्मजात्सिद्धराजो यो बुद्धराजतः । जातो मदनराजाख्यं वीरं पुत्रमजीजनत् ॥२६३॥
अत्युत्सिक्तः सुतस्तस्य दरन्नृपतिमण्डलात् । विधुरे राज्ञि निर्यातः शौर्योद्रेकादखण्डितः ॥२६४॥
तदानीं जिन्दुराजाख्यो डामरोद्रेकखिन्नया । राज्ञ्या स्वयं गृहं नीत्वा साचिव्यं ग्राहितोऽभवत् ॥२६५॥
काणः शोभाभिधस्तेन गाढोद्वेगावहः प्रभोः । देग्रामस्थो डामरोऽथ दत्त्वास्कन्दं निपातितः ॥२६६॥
कम्पनाधिपतां दत्त्वा ततस्तस्य प्रतापिनः । पार्थिवो राजपुर्यादीन्देशांश्चक्रे करप्रदान् ॥२६७॥
अनन्तभूभुजो राज्ये तत्तत्स्खलितसंकटे । आलम्बयष्टिप्रतिमो ययौ हलधरः क्षयम् ॥२६८॥
मुमूर्षुणा चक्रधरे तेन पार्श्वस्थितो नृपः । सजानिरुपदेशार्थी स तदेत्थमकथ्यत ॥२६९॥
मा कार्षीः परराष्ट्रेषु रभसारब्धसाहसम् । युक्त्या वल्लापुरादौ वो व्यपोढं व्यसनं मया ॥२७०॥
विशङ्क्यो जिन्दुराजोऽयं पराध्यां वृद्धिमागतः । भेदं वः सह पुत्रेण जयानन्दो विधास्यति ॥२७१॥

तदनुसार उसने रामलेखा नामकी रानी तथा कलशके द्वारा उत्पन्न हुए द्वितीय पुत्र उत्कर्षको अपने राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया और उसके बाद वह राजर्षि कुछ विद्वान् विप्रोंके साथ तीर्थयात्रा करनेके लिए चल पड़ा ॥ २५६ ॥ ॥२५७॥ इस प्रकार वह परम वैष्णव राजा अनेक वर्षोंतक शान्तिके सुखका अनुभव करके चक्रधरतीर्थमें चक्रायुध विष्णुभगवान्के सायुज्यको प्राप्त हो गया ॥ २५८ ॥ उन दिनों वह राजा क्षितिराज एवं धारा नगरीके नरेश राजा भोज ये दोनों विद्वान् कवियोंके बहुत बड़े बन्धु थे ॥ २५९ ॥ उस समय राजा अनन्तदेवने अपने पौत्र उत्कर्षको अपने पिताके चचेरे भाई तन्वङ्गकी गोदमें धरोहरस्वरूप रख दिया ॥२६०॥ तदनुसार राजा तन्वंगने भी उस शिशु तथा राज्य दोनोंकी भली-भाँति अभिवृद्धि की। उसके बाद वह कश्मीर चला आया और यहाँके चक्रधर तीर्थमें अपना तन त्यागा ॥ २६१ ॥ तबतक समस्त राजोचित उपभोगोंकी साम्यताका अनुभव करनेके कारण राजपुत्रोंको द्रोहरूपी कलंक नहीं लग सका था ॥ २६२ ॥ इन्दुराजके पुत्र बुद्धराजका सिद्धराज नामक पुत्र था। उस सिद्धराजके यहाँ मदनराज नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६३ ॥ उस मदनराजका पुत्र जिन्दुराज बड़ा घमण्डी था। वीरताकी पराकाष्टापर पहुँचा हुआ वह वीर राजा मदनराजको अपने ऊपर कुपित जानकर राज्यसे बाहर चला गया ॥ २६४ ॥ उस समय डामरोंसे त्रस्त तथा व्याकुल रानी सूर्यमतीने जिन्दुराज-को बुलाकर अपने यहाँ मंत्रिपदपर नियुक्त कर दिया ॥ २६५ ॥ उन दिनों देग्रामनिवासी शोभ नामका एक काना डामर राजा अनन्तदेवको बहुत उद्विग्न किये हुए था। जिन्दुराजने शीघ्र ही उसे पकड़कर मार डाला ॥ २६६ ॥ इससे प्रसन्न होकर राजाने उस प्रतापशाली वीरको कम्पनेश (सेनापति) की पदवी प्रदान की और उसीके द्वारा राजपुरी आदि देशोंके राजाओंसे राजकर वसुलवाना आरम्भ कर दिया ॥ २६७ ॥ उसके कुछ ही दिनों बाद राजा अनन्तदेवके शासनकार्यमें आनेवाली विविध विपत्तियोंमें अवलम्बदण्डके समान सहायक महामन्त्री हलधरका स्वर्गवास हो गया ॥ २६८ ॥ वह महापुरुष जब मृत्युशय्यापर पड़ा था, उस समय राजा-रानी दोनों उसके पास गये थे। तब अपने समीप बैठे हुए राजासे उसने कहा—॥ २६९ ॥ 'राजन्! पराये राष्ट्रपर बिना सोचे-समझे एकाएक आक्रमण न कर देना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेपर बल्लापुर आदि अनेक स्थानोंपर बड़ी युक्तिके साथ मैंने आपकी रक्षा की थी ॥ २७० ॥ इसी तरह यह जिन्दुराज

कथितं तेन तत्स्मृत्वा जिन्दुराजं महौजसम् । विज्जेनाबन्धयद्राजा युक्तिमांस्त्याजितायुधम् ॥२७२॥
अथ कालेन कलशक्ष्माभृत्कलुषिताशयः । भृत्यैरसाधुसंसेव्ये प्रसक्तिं ग्राहितोऽध्वनि ॥२७३॥
तस्याभवन्विज्जपित्थराजपाजादयः प्रियाः । उत्सेकदा राजपुत्राश्चत्वारः शाहिवंशजाः ॥२७४॥
पुत्रो गञ्जपतेर्नागनाम्नो निकटसेवकः । सोऽपि तस्य जयानन्दः कौटिल्याध्यापकोऽभवत् ॥२७५॥
द्विजेन्द्रेऽमरकण्ठे तु याते शिवसमानताम् । राजा प्रमदकण्ठस्य ययौ तज्जस्य शिष्यताम् ॥२७६॥
दुःशीलस्य प्रकृत्यैव तस्याकृत्योपदेशकृत् । गम्यागम्यविचारस्य परिहर्ताऽभवद्गुरुः ॥२७७॥
गुरोर्गतविकल्पत्वं तस्यान्यत्किमिवोच्यताम् । त्यक्तशङ्कः प्रववृते स्वसुतासुरतेऽपि यः ॥२७८॥
महासमयसंचारचतुरैर्यैरभीतितः । गण्यते स्वप्रभावोग्रैर्भैरवोऽपि न निर्भयैः ॥२७९॥
ते भट्टपादास्त्रासेन पतिता भग्नजानवः । विडालवणिजा स्वस्थाः शिरोहस्तार्पणैः कृताः ॥२८०॥
पुरा कृष्णविडालाङ्को वणिक्कश्चिदिहाभिधाम् । विडालवणिगित्यात्मनामविस्मारिकां दधे ॥२८१॥
यो व्याजमूर्खो वैद्यत्वगुरुत्वाहंकृतः क्रमात् । पदकृद्रजकादीनां शिल्पिनां गुरुतामगात् ॥२८२॥
स भट्टपादानुल्लाघांश्चक्रे मूर्ध्न्यधिरोपयन् । श्रेष्ठी विडालविष्ठौघहिङ्गुगन्धोत्कटं करम् ॥२८३॥
एवं प्रकृतिनिःसारैरपि गर्जद्भिरन्वहम् । आन्ध्यं स गुरुभिर्निन्ये दिवसोऽम्बुधरैरिव ॥२८४॥
ये दीर्घजागरा रात्रौ भूरिभोजनसेविनः । अजीर्णपिशितोद्गारनित्यदुर्गन्धकन्धराः ॥२८५॥
अवस्करप्रणालाभाः पृष्ठे क्षिप्तमधःपथैः । शौचपाथ इव क्षिप्रमुज्झन्ति मधुनिर्झरम् ॥२८६॥
नक्तमातोद्यवाद्यज्ञैस्तैः सार्धं कृतसेवनः । चारणो वेणुवाद्यज्ञो योषितां धर्षयन्हठात् ॥२८७॥

भी अब बहुत ज्यादा बढ चुका है। अतएव इसपर भी सदा सतर्क दृष्टि रखिएगा। जयानन्द भी अवसर पाते ही आपके पुत्रको आपसे लड़ा देगा' ॥ २७१ ॥ कुछ दिनों बाद हलधरके उपदेशका स्मरण करके राजाने निःशस्त्र-दशामें जिन्दुराजको विज्जके द्वारा कैद करा लिया ॥ २७२ ॥ तदनन्तर मौका पाते ही दुष्ट सेवकोंने राजा कलशका हृदय बहुत ही कलुषित कर दिया। जिससे वह दुर्गुणोंके सेव्य कुपथपर चलने लगा ॥ २७३ ॥ उस राजाकी स्वेच्छाचारितामें सहायता देनेवाले और शाहीवंशमें उत्पन्न विज्ज, पित्थराज, पाज आदि चार पुत्र उसके प्रिय मित्र बन गये थे ॥ २७४ ॥ गंजपति नागका पुत्र जयानन्द पहले ही राजा कलशका प्रिय सेवक एवं कुटिलताका शिक्षक बन चुका था ॥ २७५ ॥ द्विजराज अमरकण्ठके दिवंगत हो जानेपर राजा कलशने उसके पुत्र प्रमदकण्ठको अपना गुरु बना लिया ॥ २७६ ॥ तत्पश्चात् राजा कलशके गुरु प्रमदकण्ठने स्वाभाविक रीतिसे दुराचारी उस राजाको अगणित कुकर्मोंका उपदेश देकर उसके हृदयसे गम्य तथा अगम्यका विचार हटा दिया ॥ २७७ ॥ उस दुष्ट गुरुकी विवेकहीनताका वर्णन कहाँ तक किया जाय, उसने तो निःशंकभावसे अपनी पुत्रीके साथ भी सुरतसुखका अनुभव किया था ॥ २७८ ॥ उन्हीं दिनों समयकी गतिविधि समझनेमें चतुर, उग्रस्वभाव निर्भीक तथा बड़ा ही धूर्त विडालवणिक् नामक तान्त्रिक था। वह भैरवसे भी न डरनेवाले भग्नजानु भट्टपादोंको भी भयभीत होकर अपने चरणोंमें गिरते देखता तो उनके माथेपर अपना वरदायक हाथ रखकर उन्हें चंगा कर दिया करता था ॥ २७९ ॥ २८० ॥ पहले वह एक साधारण वैश्य था। उसने एक बिल्ली पाल रक्खी थी। इसी कारण लोग उसका वास्तविक नाम भूलकर विडालवणिक् कहा करते थे ॥ २८१ ॥ पहले तो वह एकदम मूर्ख था, परन्तु कुछ ही समय बाद वह अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने लगा। तदनन्तर वह वैद्य बना और बादमें धीरे-धीरे वह चमारों-धोबियों जैसे निम्नवर्गके लोगोंका गुरु बन बैठा ॥ २८२ ॥ अब वह बहुतेरे बड़े-बड़े विद्वानों एवं प्रतिष्ठित पुरुषोंके मस्तकपर बिल्लीकी विष्ठा तथा हींगकी गन्धयुक्त अपना गन्दा हाथ रखकर उन्हें स्वस्थ कर देनेका ढोंग रचा करता था ॥ २८३ ॥ इस तरह वास्तवमें निःसार होते हुए भी झूठ-मूठ गर्जनेवाले बादलों सदृश उन धूर्त गुरुओंने राजा कलशको सूझ-बूझविहीन अज्ञानान्ध बना दिया ॥ २८४ ॥ वंशी बजानेमें निपुण चमक नामका एक चारण (भाँट) था। वह बलात् भले घरोंकी स्त्रियोंको चरित्रभ्रष्ट करनेमें दक्ष था। रातमें देर

कनकाख्ये मदोद्दामे क्रुद्धे हलधरात्मजे । स्तम्भे निबध्य तद्भृत्यैश्छिन्ननासो व्यधीयत ॥२८८॥
यो विटश्चमको नाम लूनाङ्गोऽमङ्गलावहः । शनैर्लेभे स वाल्लभ्यं कौट्टन्यान्नवभूपतेः ॥२८९॥
प्रसादवित्तो भूभर्तुरन्तरे मन्त्रिणामपि । लब्धप्रतिष्ठः स प्राप ठक्कुराख्यां नृकुक्कुरः ॥२९०॥
प्रथां प्राप्तस्त्रपाहेतुं स भञ्जन्वंशमञ्जसा । प्रागेव नासावंशस्य भञ्जनं बह्वमन्यत ॥२९१॥
तेनोद्दीपितदौःशील्यः स यच्चक्रे त्रपोज्झितः । अवाच्यमपि वृत्तान्तं मध्यपातात्तदुच्यते ॥२९२॥
कल्लनाख्या स्वसा राज्ञो नागाख्या च तदात्मजा । परदारप्रसक्तेन संभोक्तुं नावशेपिता ॥२९३॥
तमुदन्तं सपत्नीको बुद्धवान्वृद्धभूपतिः । न प्रत्यभैत्सीत्त्रपया तस्थौ तु निभृतव्यथः ॥२९४॥
भिक्षुको धान्यमुष्टीनामोवनाग्रामजो द्विजः । योप्यभूद्ग्रामदैवज्ञो वैधेयो लोष्टकाभिधः ॥२९५॥
स ग्रामक्षेत्रपालस्य प्रसादात्पर्यटन्निशि । वस्तूनां मुष्टिबद्धानां विज्ञानान्मुष्टिलोष्टकः ॥२९६॥
परां प्रसिद्धिं संप्राप्तो नवक्ष्मापस्य रागिणः । आसीद्गुरुत्वकौट्टन्यदैवज्ञत्वे रतिप्रियः ॥ तिलकम् ॥२९७॥
भट्टारकमठाधीशः साधुर्व्योमशिवो जटी । खुर्खुटाख्याविकरणे गृहीतनियतव्रतः ॥२९८॥
अन्धगान्धर्विकान्मम्मनाम्नः स्वार्चनसेवकात् । अवन्तिपुरजं हस्तग्राहकद्विजचेलकम् ॥२९९॥
परिभ्रष्टमुपादत्त लालितत्वेन यः पुरा । स तेन वारितागस्तभङ्गास्त्रमयाम्बरः ॥३००॥
विसृज्यमानः पुष्पाणि ग्राहयित्वा नृपान्तिकम् । प्रसन्नवदनः स्रग्वी स श्रोत्रोपान्तलोचनः ॥३०१॥

तक जागनेवाले, अत्यधिक भोजन करनेवाले पेटू, जिनके कण्ठसे अजीर्ण मांसकी दुर्गन्धित डकारें आती रहती थीं और मोरी या परनालेमें बहनेवाले शौचके गन्दे पानीके समान बदबूदार मदिरा पीनेवाले गायकों और वादकोंके ही साथ वह सदा रहता था॥ २८५-२८७ ॥ एक बार मदिरा पान करनेके कारण उन्मत्त कनक (हलधरके पुत्रने) क्रुद्ध होकर चमकको पकड़ लिया और अपने सेवकों द्वारा खम्भेमें बँधवाकर उसकी नाक काट ली। सो उस अशुभस्वरूप नकटे धूर्तने अपने कुटनेपनके कौशलसे धीरे-धीरे राजा कलशका प्रेम प्राप्त कर लिया ॥२८८॥२८९॥ अब राजाकी कृपासे उस नकटे कुत्तेको मंत्रिमंडलमें स्थान, धन तथा मान मिल गया। उसके साथ ही उसे 'ठक्कुर' की पदवी भी मिली॥ २९० ॥ इस प्रकार ख्याति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके बाद उसने सर्वप्रथम अपनी जातिवालोंको ही लज्जाका कारण समझकर जल्दी ही उन्हें उच्छिन्न कर डाला। अतएव अब उसने अपनी नाक कटनेकी घटनाको भी महत्त्व दे दिया था॥२९१॥ उस पापी चमकसे प्रोत्साहन पाकर राजा कलशका दुराचार बढ गया। उसने निर्लज्ज होकर जो-जो कुकर्म किये, वे कहने योग्य नहीं हैं। फिर भी कथाप्रवाहके अनुरोधवश उन्हें कहना ही पड़ रहा है॥ २९२ ॥ उस परदारासक्त राजाने अपने पिताकी वहिन कल्लना और उसकी पुत्री नागाको भी नहीं छोड़ा॥ २९३ ॥ यह वृत्तान्त वृद्ध राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीको भी मालूम हो गया था, किन्तु लज्जावश उन्होंने यह बात किसीसे नहीं कही और इस हार्दिक दुःखको वे हृदयमें ही छिपाये रह गये॥ २९४॥ ओवनाग्रामनिवासी लोष्टक नामका एक ग्रामदैवज्ञ (गँवार ज्योतिषी) मूर्ख ब्राह्मण मुट्ठी-मुट्ठी अन्न माँगकर पेट पालता था। वह लोगोंका सब काम कर दिया करता था। एक बार वह निशाचरके समान रातके समय घूम रहा था। सहसा ग्रामक्षेत्रपालकी कृपासे उसे मुट्ठीमें रक्खी हुई वस्तुका ज्ञान होगया। अतएव आगे चलकर उसका मुष्टिलोष्टक नाम पड़ा। धीरे-धीरे गुरु, दैवज्ञ और कुट्टन इन विशेषताओंके बूतेपर वह राजा कलशका अत्यन्त प्रिय बन गया॥ २९५-२९७ ॥ भट्टारक मठका मठाधीश व्योमशिव बड़ा धर्मात्मा और कर्मठ भिक्षु था। उसने खुर्खुट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये व्रत ले रक्खा था और कठोर तप किया था। पूजा-पाठके अवसरपर संगीतके लिए मम्म नामके अन्धगायकको उसनेअपने यहाँ रख लिया था। उस अन्धेका हाथ पकड़कर घुमानेके लिये मदन नामका एक अवन्तिपुरनिवासी ब्राह्मण चेला भी रक्खा था। वह ब्राह्मण दुराचारी था, किन्तु व्योमशिवका प्रिय सेवक बन गया था। अतएव व्योमशिव उसके पुराने तथा सनके बने फूहड़ वस्त्र बदलवा एवं नये कपड़े पहनाकर उसे प्रसादके फल-पुष्प देनेके निमित्त राजाके पास भेजा करता था। अब वह हँसमुख मदन गजरा पहनने

मदनो नाम वाचालः प्रपेदेत्यन्तरङ्गताम् । शनैः कौट्टन्यदुर्गोष्ठीमध्यपातं समाश्रयन् ॥चक्कलकम्॥३०२॥
तैश्चान्यैश्च विटैश्चाटुकारैः क्षिप्रविमोहितः । दोषानपि गुणान्मेने कलशः कलुषीकृतः ॥३०३॥
नर्म ह्रेपणकारि वाक्यमुचितं कृत्यं प्रजापीडनं तेजस्वित्वमलज्जता सरसताऽगम्याङ्गनासंगमः ।
सारल्यं खलगालिदानसहनं येषां न तत्संनिधौ किंचित्कर्म कुकर्म दोष इति यद्विज्ञाय संत्यज्यते ॥३०४॥
राजा चौर्यरतौत्सुक्यात्प्रतिगेहं परिभ्रमन् । स्वदारालिङ्गनैः प्रीतिं क्षणदासु न लब्धवान् ॥३०५॥
पारतन्त्र्यकृतापारप्रीतिः परवधूरतिः । अभिलाषानलोत्सेके रागभाजां घृताहुतिः ॥३०६॥
तान्कुट्टनान्पुरस्कृत्य पञ्चषानेकदा नृपः । जिन्दुराजगृहं प्रायात्स रात्रौ चौर्यकामुकः ॥३०७॥
तत्रासीज्जिन्दुराजस्य स्नुषा परमपुंश्चली । स्वगृहे दत्तसंकेता नक्तं कलशभूभुजः ॥३०८॥
प्रविशन्तमधावंस्तं भषद्भिः सूचितं श्वभिः । धृतासयो गृहद्वारं चण्डालाश्चौरशङ्किताः ॥३०९॥
तान्हन्तुमुद्यतान्दृष्ट्वा तं क्षितौ पतितं भयात् । पृष्ठन्यस्तस्ववपुषो ररक्षुरनुयायिनः ॥३१०॥
तेभ्यः स मुष्टिघातादि ददद्भ्यः कथमप्यभृत् । मैवं कलशदेवोऽयमित्युक्त्वा त्याजितो निजैः ॥३११॥
घ्राणहीनं पुरस्कृत्य नारीमभिससार यत् । तदेव कामिनस्तस्य नूनमासीदमङ्गलम् ॥३१२॥
स निर्यातो गृहात्कान्ताकटाक्षविवशीकृतः । पथि कालीकटाक्षाच्च दैवान्न प्रलयं ययौ ॥३१३॥
निजचित्तापराधेन कुर्वन्नीतिव्यतिक्रमम् । अस्पृश्येभ्यः परिभवं भूपालोऽप्युपलब्धवान् ॥३१४॥
इन्द्रियैरिन्द्रचन्द्राद्या ह्रेपिता यैः सुरा अपि । अपरिम्लानमानत्वं तैर्मर्त्यस्याथ वा कथम् ॥३१५॥

लगा। उसके नेत्र कानों तक फैले थे। वह बड़ा वातूनी था । अतएव उस कुट्टनमण्डलीमें मिलकर वह दुष्ट भी धीरे-धीरे उन्हीं लोगोंके सदृश राजा कलशका अन्तरंग तथा घनिष्ट प्रेमभाजन बन गया ॥ २९८–३०२ ॥ इस प्रकार उन विटों (धूर्तों) तथा चाटुकारों (खुशामदियों) की बातोंसे भ्रान्तचित्त होकर वह मलिन-मनवाला राजा कलश अब दोषोंको ही गुण मानने लगा ॥ ३०३ ॥ उसकी समझमें लज्जाजनक मजाककी बातें ही उचित थीं, प्रजाको सताना ही योग्य कर्म था, निर्लज्जता ही तेजस्विता मानी जाती थी, अगम्य स्त्रियोंके साथ समागम ही सरसता समझी जाती थी और दुष्ट पुरुषोंकी गाली-गलौज सह लेना ही सरलता कहलाती थी। ऐसी परिस्थितिमें उसके समक्ष कौन-सा कर्म कुकर्म एवं दोष समझकर त्यागा जा सकता था ? ॥ ३०४ ॥ चोरी-छिपे सुरतकर्मकी उत्कण्ठावश वह राजा रात भर घर-घर घूमता रहता था। अतएव उसे रात्रिके समय अपने रनिवासकी रानियोंका आलिंगन आनन्द नहीं देता था ॥ ३०५ ॥ परतंत्र रहनेके कारण विशेष प्रिय लगनेवाली परदाराओंके साथ दुराचार कामी पुरुषोंकी अभिलाषारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेमें घृतकी आहुतिका काम करना है ॥ ३०६ ॥ एक बार रात्रिके समय राजा कलश पाँच-छः कुटनोंको साथ लेकर चौर्यसुरतकी इच्छासे जिन्दुराजके घरकी ओर चला ॥ ३०७ ॥ क्योंकि वहाँ जिन्दुराजकी महादुराचारिणी पुत्रवधूने उस राजाको रात्रिके समय आनेको कहा था ॥ ३०८ ॥ उस घरमें राजाको घुसते देखकर कुत्ते भूँकने लगे। उनकी आवाज सुनकर चोरकी आशंकासे चाण्डाल चौकीदार हाथ तलवारें ले-लेकर दौड़ पड़े ॥ ३०९ ॥ इससे घबड़ाकर राजा गिर पड़ा। उसी समय उन चाण्डालोंको राजापर प्रहार करनेके लिए तैयार देखकर उसके साथी उसकी पीठपर लेट गये। जिससे किसी तरह राजा बच गया ॥ ३१० ॥ फिर भी साथियोंको लातों और घूसोंसे मार-कर वे चाण्डाल जब फिर राजाकी ओर झपटे, तब 'उसको न मारो, वह राजा कलश है'। यह कहकर साथियों-ने उसकी रक्षा की ॥ ३११ ॥ उस रोज राजा उस नकटे धूर्तको अगुआ बनकर चला था। इसीसे उस कामीको ऐसे अपशकुनका सामना करना पड़ा ॥ ३१२ ॥ कहाँ वह उस कामिनीके कुटिल कटाक्षोंपर रीझकर उसे प्राप्त करने चला था, किन्तु रास्तेमें उसपर कालीका कटाक्षपात हो गया और दैवके कृपाकटाक्षसे किसी तरह उसके प्राण बच गये ॥ ३१३ ॥ अपने मनकी दुष्टतावश उसने नैतिक मार्गका उल्लंघन किया था। अतएव राजा होते हुए भी उसे चाण्डालोंके समक्ष अपमानित होना पड़ा ॥ ३१४ ॥ जिन इन्द्रियोंके कारण इन्द्र और चन्द्रमा

प्रागुन्मीलति दुर्यशः सुविषमं गर्ह्योऽभिलापस्ततो धर्मः पूर्वमुपैति संक्षयमथो श्लाघ्योऽभिमानक्रमः।
संदेहं प्रथमं प्रयात्यभिजनं पश्चात्पुनर्जीवितं किं नास्येति विपर्ययं विगलने शीलस्य चिन्तामणेः ॥३१६॥
राजधानीमवाप्तस्य दुःशीलस्य महीपतेः। क्षपायामेव तां वार्तां पितरावधिजग्मतुः ॥३१७॥
तौ रुदित्वा सुतस्नेहलज्जाशोकान्वितौ चिरम्। निश्चयं बन्धने तस्य सदोषस्य प्रचक्रतुः ॥३१८॥

सर्वविद्यानिधिं ज्येष्ठं नप्तॄणां बप्पिकात्मजम्।
हर्षं राज्ये चिकीर्षू च निन्यतुस्तां निशां थिनीम् ॥३१९॥

आकारितस्ततस्ताभ्यां प्रातः कलशभूपतिः। ऊचे विज्जजयानन्दौ साशङ्को जनकाह्वयम् ॥३२०॥
तन्मतेन जयानन्ददत्तहस्तः कथंचन। अन्वीयमानो विज्जेन न पित्रोः प्राविशद्गृहम् ॥३२१॥
पिता प्रविष्टमात्रं तं वक्त्रे दत्तचपेटकः। अभाग्यभागिञ्जहिहि छुरिकामित्यथाब्रवीत् ॥३२२॥
एवं त्रासविशीर्णाङ्गमंघिमालम्ब्य पाणिना। सावष्टम्भं स्पृशन्खड्गं विज्जो राजानमब्रवीत् ॥३२३॥
राजन्मानवतां धुर्यो भवन्नपि भवान्कथम्। नात्याज्यं मानिनां वेत्ति मानग्रहमहाव्रतम् ॥३२४॥
गृहीतवेतनेनायं राजपुत्रेण शस्त्रिणा। संकटेऽस्मिन्मया स्वामी जीवता त्यज्यते कथम् ॥३२५॥
पिता भवानयं पुत्रः क्षणेऽन्यस्मिन्महीपते। मय्यसंनिहितेऽमुष्य यद्योग्यं तद्विधीयताम् ॥३२६॥
मुग्धं विमोह्य नृपतिं वचोभिः स्निग्धकर्कशैः। विज्जः स्वामिनमादाय निराक्रामत्तदन्तिकात् ॥३२७॥
विज्जस्यापूजयन्धीरास्तद्धैर्यमतिमानुषम्। अनन्तदेवस्याप्यग्रे यदेवं स व्यजृम्भत ॥३२८॥

जैसे देवताओंतकको लज्जित होना पड़ा था, तब इन्द्रियोंके फेरमें पड़े हुए मनुष्योंका मान म्लान हुए विना कैसे रहता ॥ ३१५ ॥ पहले भीषण अपयश उत्पन्न होता है, उसके बाद निन्दनीय कामवासना जागती है। पहले धर्मका नाश होता है, उसके बाद कुलपरम्परागत एवं श्लाघनीय स्वाभिमान लुप्त होता है। पहले अपने कुलकी मर्यादा सन्दिग्ध होती है, उसके बाद जीवन ही सन्देहास्पद हो जाता है। इस तरह सदाचाररूपी चिन्तामणिके नष्ट हो जानेपर किस-किस वस्तुका विनाश नहीं हो जाता ? ॥ ३१६ ॥ जितनी देरमें वह दुराचरी राजा अपने महलमें पहुँचा, रात्रिके उतने ही समयमें यह वृत्तान्त उस राजाके पिता-माताको ज्ञात हो गया ॥ ३१७ ॥ वह हाल सुनकर पुत्रप्रेम, लज्जा एवं शोकके अधीन होते हुए वे दोनों बड़ी देरतक रोते रहे। तदनन्तर उन्होंने उस दुराचारी पुत्रको कैद कर लेनेका निश्चय कर लिया ॥ ३१८ ॥ अन्तमें उन दोनों पति और पत्नीने बप्पिया नामक कलशकी भार्यासे उत्पन्न, समस्त विद्याओंके निधान और सब पौत्रोंमें श्रेष्ठ हर्षको राज्यका अधिकारी बनानेकी कामना करके रात वितायी ॥ ३१९ ॥ सवेरा होते ही उन्होंने राजा कलशको बुलवाया। माता-पिताके इस आमंत्रणसे कलश डर गया और उसने अपने हार्दिक भयकी बात विज्ज एवं जयानन्दको बता दी ॥ ३२० ॥ तदनन्तर जयानन्दका हाथ थाम्हकर वह किसी-किसी तरह अपने पिताके पास गया। विज्ज भी उसके साथ था ॥ ३२१ ॥ कलश जैसे ही भीतर घुसा, उसके पिता अनन्तदेवने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके मुखपर एक करारा थप्पड़ मारा और कहा—'अभागे! अपने हाथकी छूरी फेंक दे' ॥ ३२२ ॥ तब भयसे शिथिलशरीर कलशको एक हाथसे सम्हालते हुए विज्जने अपनी तलवारका स्पर्श करके बड़े अभिमानके साथ राजा अनन्तदेवसे कहा— ॥ ३२३ ॥ 'राजन्! स्वाभिमानियोंमें श्रेष्ठ होते हुए भी आप यह क्यों नहीं समझते कि 'जिन लोगोंके पास मान-धन होता है, वे मानग्रहरूपी महाव्रत नहीं त्याग सकते' ॥ ३२४ ॥ महाराज! मुझे राजा कलशसे वेतन मिलता है, मैं एक राजकुमार हूँ। ऐसी स्थितिमें सशस्त्र तथा जीवित रहते हुए मैं संकटकालमें अपने प्रभुको कैसे छोड़ सकता हूँ ॥ ३२५ ॥ अन्य समयमें आप इनके पिता हैं और ये आपके पुत्र हैं। जब मैं न रहूँ, उस समय आप जो उचित समझें सो कर सकते हैं' ॥ ३२६ ॥ ऐसे मीठे और कठोर वाक्योंसे राजा अनन्तदेवको मुग्ध तथा चकित करता हुआ विज्ज अपने स्वामी राजा कलशको लेकर वहाँसे चल पड़ा ॥ ३२७ ॥ विज्जके उस अति-मानव धैर्यकी वहाँके धैर्यशाली पुरुषोंने सराहना की। क्योंकि महाराज अनन्तदेवके समक्ष भी वह धैर्यच्युत

चण्डी नरपतेः पत्नी भाव्यर्थबलवत्तया । अत्याज्यजपमौनस्था तस्मिन्नवसरेऽभवत् ॥३२९॥
सा चेदास्यिष्यतोद्युक्ता नाभविष्यत्तदेतरत् । नियमात्सर्वनाशाद्वा वन्धनात्कलशस्य वा ॥३३०॥
ततो विज्जेन कलशः सत्वरेण प्रवेशितः । अस्यन्दिल्हाभिधानाया वल्लभाया विवेशनम् ॥३३१॥
शिरोऽर्तिरस्य संजातेत्युक्त्वा भीतं पतिं व्यधात् । सा प्राज्ञा ज्ञातवृत्तान्ता तैलेनाभ्यक्तमस्तकम् ॥३३२॥
व्याजेन तेन सर्वस्य संप्रवेशं निषिध्य सा । पतिं जुगोप विन्यस्य विज्जं द्वारस्य रक्षणे ॥३३३॥
ततः समाधेर्विरता राज्ञी निर्भर्त्स्य भूपतिम् । कुशलान्वेषणामिषात्तनयस्यान्तिकं ययौ ॥३३४॥
वद्धुं वद्धोद्यमो राजा तथैव प्रययौ यदा । दत्तप्रवेशो विज्जेन तदैकाक्येव सोऽभवत् ॥३३५॥
निषेधादनुगन्तॄणां ततः क्रुद्धो धराधवः । रुषित्वा विजयक्षेत्रं गन्तुं प्रावर्ततोद्धतः ॥३३६॥
तं प्रयान्तं सपत्नीकं प्राप्तं पद्मपुरान्तिकम् । अवोचन्नेत्य तत्रस्था विश्शावट्टादयो द्विजाः ॥३३७॥
अधिकारं स्वयं त्यक्त्वा राजन्किमनुतप्यसे । कृतस्यानुशयो युक्तो न सतो नासतोऽपि वा ॥३३८॥
न च ते दुर्मतौ त्यक्ताः प्रजा एता मयेत्यपि । ध्यात्वा सूनोः समुचिता कर्तुं दुष्टस्य वाच्यता ॥३३९॥
न यन्त्रपुत्रकस्येव शक्तिः कापि हि भूभुजः । भवेत्साधुरसाधुर्वा स प्रजानां शुभाशुभैः ॥३४०॥
उज्झन्ति यत्पयोवाहा जलानि तडितोऽथ वा । वनस्पतीनां सदसत्कर्मपाकस्य तत्फलम् ॥३४१॥
यच्चापथस्थितं पुत्रं त्यक्तेच्छस्यासितुं सुखम् । कोशं त्यक्त्वा प्रस्थितस्य घटते तत्कथं तव ॥३४२॥
धाराधिरूढसामर्थ्यः सद्वंशः शुचिमानपि । संस्पृश्यते क्षीणकोशः कृपाण इव कैः पुमान् ॥३४३॥

नहीं हुआ था ॥ ३२८ ॥ यह तो होनहार कुछ ऐसा था कि जिससे चण्डिकास्वरूपिणी रानी सूर्यमती उस समय देवालयमें मौनव्रत धारण करके जप कर रही थीं ॥ ३२९ ॥ अन्यथा यदि वे भी राजाके पास होतीं तो उस समय कलशका वध अथवा वन्धन (कारागारसेवन) हुए विना न रहता ॥ ३३० ॥ तदनन्तर भयभीत तथा म्लान राजा कलशको विज्जने तुरन्त उसकी प्रिय रानी दिल्हाके महलमें पहुँचा दिया ॥ ३३१ ॥ दिल्हा रानी पहले ही सव हाल जान चुकी थी। अतएव वह चतुर रानी 'महाराजके सिरमें दर्द है' यह प्रचार करके उस भयभीत पतिके सिरपर तेल मलने लगी ॥ ३३२ ॥ इसी 'सिरदर्द' के वहाने उसने वहाँ लोगोंका आना-जाना वन्द कर दिया और विज्जको पहरेपर वैठाकर वह उसकी रक्षा करने लगी ॥ ३३३ ॥ जपकार्य समाप्त करके जव रानी सूर्यमती राजा अनन्तदेवके पास गयी तो सव हाल सुनकर उसने राजाको बहुत डाँटा और कुशल पूछनेके वहाने कलशके पास जा पहुँची ॥ ३३४ ॥ उसी प्रकार कलशको कैद करानेके विचारसे राजा अनन्तदेव भी वहाँ पहुँच गया, किन्तु विज्जने अकेले राजाको ही भीतर जाने दिया ॥ ३३५ ॥ इस प्रकार अपने अनुचरोंके रोक दिये जानेपर राजा अनन्तदेव क्रुद्ध हो उठा और तत्काल विजयेश्वर क्षेत्र चले जानेके लिए उद्यत हो गया ॥ ३३६ ॥ उसी समय वह रानी सूर्यमतीको साथ लेकर चल पडा। चलते-चलते जव पद्मपुर पहुँचा तो वहाँके निवासी विश्शावट आदि ब्राह्मण आकर कहने लगे—॥ ३३७ ॥ 'राजन्! स्वतः राज्यका अधिकार त्यागकर अव आप पछताते क्यों हैं? भला या वुरा काम कर गुजरनेके वाद उसके विषयमें पश्चात्ताप करना उचित नहीं होता ॥ ३३८ ॥ 'मैंने अपनी प्रिय प्रजा दुराचारी पुत्रके हाथों सौंप दी है' यह सोच करके अव अपने दुष्ट पुत्रकी वदनामी करना भी ठीक नहीं है ॥ ३३९ ॥ यंत्रके सहारे नाचनेवाली कठपुतलीके समान परतंत्र राजामें भी अपनी कोई शक्ति नहीं रहती। वह तो राज्यकी प्रजाके शुभाशुभ कर्मोंके फलस्वरूप सुजन या दुर्जन हो जाया करता है ॥ ३४० ॥ क्योंकि वनस्पतियोंके भले-वुरे कर्मोंके परिणामस्वरूप मेघ उनपर या तो शीतल जल वरसाते हैं अथवा विजली गिराकर भस्म कर देते हैं ॥ ३४१ ॥ अव आप अपने कुमार्गगामी पुत्रको त्यागकर दूसरी जगह सुखसे रहना चाहते हैं, परन्तु राज्यकोश छोड़कर निर्धन दशामें अन्यत्र जानेपर भला आपको सुख कैसे मिलेगा? ॥ ३४२ ॥ सर्वथा शक्तिसम्पन्न, उच्चकुलमें जायमान तथा पवित्र विचारवाले पुरुषको भी कोष (म्यान अथवा धन) के अभावमें तीक्ष्ण धारवाली, सरल (सीधी) और चमकती हुई नंगी तलवारकी तरह भला कौन छुएगा?' ॥ ३४३ ॥ उन ब्राह्मणोंके वचन सुनकर वह विचारवान् राजा लौटना ही चाहता

श्रुत्वेत्यैच्छन्नृपो यावत्प्रत्यावृत्तिं विचारवान् । तावत्स पुत्रेणाभ्येत्य सभार्येण प्रसादितः ॥३४४॥
अथ प्रविश्य नगरं स प्रासादापवर्जिताम् । अशान्तमन्युरादाय लक्ष्मीं भूयो विनिर्ययौ ॥३४५॥
हयायुधतनुत्रादि स्वयं स्वीकृत्य निर्गतः । देवीं प्रतीक्षमाणोऽस्थात्सरित्पारे ततः क्षणम् ॥३४६॥
नानाप्रकारानारोप्य कोशान्नौषु नृपाङ्गनाः । नायःशङ्कूनपि गृहे निर्यान्त्यः पर्यशेषयन् ॥३४७॥
अज्ञातवार्तः प्राक्तूष्णीं तत्प्रस्थानेऽभवज्जनः । ज्ञातवार्तस्तदा त्वासीदाक्रन्दमुखराननः ॥३४८॥
प्रतिमोक्तुं पुरे ताभ्यां दत्तपुष्पाञ्जलौ जनः । बाष्पबिन्दूनिपादौज्झीदीर्घानर्घकणानिव ॥३४९॥

हा मातर्हा पितः क्वेत्थं गच्छतः परिदेवितात् ।
इत्यस्मादपरः शब्दो मार्गेषु न तदा श्रुतः ॥३५०॥

मार्गेऽन्तरान्तराक्रन्दविरतौ निर्झरध्वनिः । शैलानां शोकनिःश्वासशूत्कार इव शुश्रुवे ॥३५१॥
तयोराक्रन्दितैः शश्वत्पथि संजातसंस्तवौ । कर्णौ शून्येऽप्यशृणुतामाक्रन्दितमिवासकृत् ॥३५२॥
पुत्रागसा तादृशौ तौ दृष्ट्वा मार्गे द्रुमौकसाम् । खगानां शावभरणमपि लोको व्यगर्हत ॥३५३॥
तयोः पुत्रानयोत्तप्तचेतसोर्विजयेश्वरः । मनःप्रसादं संदृष्टः स्निग्धबन्धुरिवाकरोत् ॥३५४॥
तत्तत्र भाण्डागाराश्वभृत्याद्यावसथार्पणैः । संविधानक्रियाभिश्च व्यग्रयोरगमद्दिनम् ॥३५५॥
देशे कोशोपकरणपूर्णगोणीगणावृते । आसन्निन्धनगण्डालीच्छन्नरथ्या इवापणाः ॥३५६॥
तन्वङ्गराजतुङ्गादिज्ञातिपुत्रा नृपात्मजाः । तं सूर्यवर्मचन्द्राद्या डामराश्चानुवव्रजुः ॥३५७॥

था कि इतनेमें पत्नी समेत उसके पुत्र राजा कलशने पहुँचकर उन्हें वापस चलनेके लिए राजी कर लिया ॥३४४॥ इस प्रकार समझाने बुझानेपर राजा अनन्तदेव नगरमें वापस तो आ गया, पर उसका क्रोध नहीं शान्त हुआ था। अतएव केवल राजभवनको छोड़ बाकी सब सम्पत्ति साथ लेकर वह फिर चल पड़ा ॥ ३४५ ॥ इस तरह अपने अश्व, शस्त्र तथा कवच आदिके साथ चलकर वह वितस्ता नदीके उस पार जा पहुँचा। वहाँ कुछ समय रुककर वह अपनी रानियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ३४६ ॥ क्योंकि वे रानियाँ भी विविध भाँतिके सामान तथा धनराशि नौकाओंपर लादकर अपने साथ ले आयी थीं। वहाँसे चलते समय उन्होंने महलमें लोहेकी एक सुई तक नहीं छोड़ी थी॥ ३४७॥ पहले जब राजा अनन्तदेव चला था, तब उसके जानेकी बात किसीको नहीं मालूम हुई थी। इस कारण सब चुप थे। किन्तु इस बार उसके जानेका समाचार सर्वत्र फैल चुका था। अतएव सभी नागरिक अत्यन्त शोकाकुल होकर रोने-चिल्लाने लगे ॥ ३४८ ॥ उस समय राज्यकी जनताने राजा अनन्तदेव तथा सूर्यमतीके चरणोंमें पुष्पांजलि अर्पित की और आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदोंका अर्घ्य प्रदान किया ॥ ३४९ ॥ 'हाय माताजी, हाय पिताजी, आप हमको छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?' चारों ओर इस आर्तनादके सिवाय और कुछ नहीं सुनायी देता था ॥ ३५० ॥ रास्तेमें कहीं-कहीं जब वह रोदनकी ध्वनि शान्त हो जाती थी, तब पहाड़ोंके झरनों एवं पर्वतोंकी शोकमयी शूत्कारध्वनि सुनायी पड़ने लग जाती थी ॥ ३५१ ॥ रास्ते भर अनवरत सुनायी देनेवाला शोकाकुल जनताका करुणक्रन्दन चिरपरिचित होनेके कारण निर्जन स्थानमें भी उन राजा-रानीके कानोंमें गूँजता रहता था॥ ३५२ ॥ पुत्रके अपराधपर राज्य त्यागकर जाते हुए राजा-रानीको देखकर लोग वृक्षोंपर घोंसले बनाकर अपने बच्चोंका पालन करनेवाले पक्षियोंकी भी निन्दा करने लगते थे ॥ ३५३ ॥ पुत्रके अनाचारसे सन्तप्त हृदयवाले राजा-रानीको भगवान् विजयेश्वरने एक स्नेही बन्धुकी भाँति दर्शनमात्रसे गद्गद कर दिया ॥ ३५४ ॥ वहाँ पहुँचनेके बाद भाण्डागार (खजाना), घोड़े, सेवकगण आदिके रहने योग्य स्थानकी तजवीज तथा तत्सम्बन्धी व्यवस्था करते-करते ही सारा दिन व्यतीत हो गया ॥ ३५५ ॥ वहाँ कहीं खजाना, कहीं विभिन्न प्रकारके सामान और कहीं बोरोंमें भर अन्नके ढेर लगे हुए थे। अतएव वह स्थान उस समय ईंधनकी लकड़ियोंसे ढँकी बाजारकी गली सरीखा दीख रहा था ॥ ३५६ ॥ थोड़ी ही देरमें वहाँ तन्वङ्गराज-तुङ्ग आदि ज्ञातिपुत्र, राजकुमार तथा सूर्यवर्मा-चन्द्र आदि डामर राजा अनन्तदेवकी

डामरान्क्षीरभूपादीन्राजा नौनगरादिषु । स्थानेषु स्वेषु निक्षिप्य रक्षित्वे गुप्तिमानभूत् ॥३५८॥
विश्रान्तसर्वचित्तस्य श्रीमतोऽनन्तभूपतेः । प्रावर्तन्तोत्सवैर्गन्तुं दिनानि विजयेश्वरे ॥३५९॥
राजपुत्रहयारोहशस्त्रिडामरमण्डलैः । कृत्स्नैरेव स्थितिर्बद्धा सविधे वृद्धभूभुजः ॥३६०॥
वत्सरे पञ्चपञ्चाशे ज्यैष्ठे मासि विनिर्गतः । आसाद्य विजयक्षेत्रं स स्वर्गसुखमन्वभूत् ॥३६१॥
कलशस्तु गते राज्ञि प्राप वीतवसुं महीम् । रक्षाहौ चलिते यातरत्नां निधिमहीमिव ॥३६२॥
स्वराज्यमुज्ज्वलीकर्तुं रिक्तोऽपि विहितोद्यमः ।
चक्रे संमन्त्र्य बिज्जाद्यैः संमतानधिकारिणः ॥३६३॥
तेन सर्वाधिकारेषु जयानन्दो नियोजितः । द्वारे वराहदेवश्च वितस्तात्रपुरोद्भवः ॥३६४॥
यो ह्यम्बराधिकार्यासीज्जिन्दुराजस्य कम्पने । राज्ञा विजयमित्रः स कम्पनाधिपतिः कृतः ॥३६५॥
यथाधिकारमन्यांश्च विनिधायाधिकारिणः । राजाऽर्थचिन्तामारेभे संरब्धः पितृविग्रहे ॥३६६॥
जयानन्दः पदातीनां चिकीर्षुरथ संग्रहम् । यत्नादनुचितेभ्योऽपि धनिकेभ्योऽग्रहीदृणम् ॥३६७॥
स्वीकृत्य पत्तीन्बिज्जादिराजपुत्रगणान्वितः । अथावन्तिपुरं प्राप योद्धुं वृद्धनराधिपम् ॥३६८॥
अभ्यर्थ्य कारितो वेलां राज्ञा काराविनिर्गतः । शिमिकावर्त्मना योद्धुं जिन्दुराजो विनिर्ययौ ॥३६९॥
तेषामुद्योगमाकर्ण्य क्रुद्धा वृद्धमहीभुजम् । स्वे डामराश्ववाराद्याः संरम्भादुपतस्थिरे ॥३७०॥
अजायत न्यस्तगुडक्रीडत्तुरगमण्डला । शस्त्रैः सत्राटवी कृत्स्ना संकटा विजयेश्वरे ॥३७१॥
ततः सूर्यमती यत्नात्पतिं परमकोपनम् । ययाचे पुत्रवात्सल्यादयुद्धं दिवसद्वयम् ॥३७२॥

सेवामें आ उपस्थित हुए ॥ ३५७ ॥ तब राजाने क्षीरभूप आदि डामरोंको नौका तथा नगर आदिकी रक्षा एवं व्यवस्था आदिके कार्योपर नियुक्त करके उस नये स्थानको सब तरहसे सुरक्षित बना लिया ॥ ३५८ ॥ उस विजयेश्वरक्षेत्रमे सर्वथा निश्चिन्त तथा शान्तमनस्क श्रीमान् राजा अनन्तदेवके दिन बड़े आनन्दके साथ बीतने लगे ॥ ३५९ ॥ कितने ही राजपुत्र, अश्वारोही तथा सशस्त्र सैनिक और राजाओंके समुदाय वहाँ आकर राजा-अनन्तदेवके पास रहने लगे ॥ ३६० ॥ इस प्रकार ४१५५ लौकिक वर्षके ज्येष्ठ मासमे अपनी राजधानी त्यागकर राजा अनन्तदेव विजयेश्वरक्षेत्रमें पहुँचा और वहाँ स्वर्गीय सुखका अनुभव करने लगा ॥ ३६१ ॥ उधर राजा रानीके चले जानेपर राजा कलशको जहाँसे निधि निकल जानेपर निधिरक्षक सर्प भी चला गया हो, ऐसे सम्पत्ति-हीन शून्य स्थलके समान राज्य मिला ॥ ३६२ ॥ किन्तु निर्धन होते हुए भी उस नये राजा कलशने बिज्ज आदि विश्वस्त पुरुषोंकी सम्मतिसे राज्यकी व्यवस्थाको सुन्दर बनानेके लिए योग्य अधिकारियोंकी नियुक्ति की ॥ ३६३ ॥ तदनुसार उसने जयानन्दको सर्वाधिकारीके पदपर नियुक्त करके बितस्तात्रपुरनिवासी वराहदेवको द्वाराधिकारी बनाया ॥ ३६४ ॥ जिन्दुराजकी सेनामे जो वस्त्राधिकारीके पदपर नियुक्त था, उस विजयमित्रको राजा कलशने कम्पनेशका पद प्रदान किया ॥ ३६५ ॥ इसी प्रकार अन्यान्य पदोंपर योग्य व्यक्तियोंको नियुक्त करके राजा कलश अपने पितासे लड़नेके लिए धनसंचय करने लगा ॥ ३६६ ॥ तदनन्तर सर्वाधिकारी जयानन्दने पैदल सैनिकोंका संग्रह करनेके लिए अयोग्य धनिकोंसे भी ऋण लिया ॥ ३६७ ॥ उस संगृहीत धनसे कुछ पैदल सैनिकोंका संग्रह करके जयानन्द-बिज्ज आदि राजपुत्रोंको साथ लेकर राजा कलश वृद्ध राजासे लड़नेके लिए अवन्तिपुर जा पहुँचा ॥ ३६८ ॥ उसी समय जिन्दुराज भी जेलसे छूटा था और राजा कलशने उससे भी इस युद्धमे सहायता करनेकी प्रार्थना की थी। सो वह शिमिकाके रास्ते युद्धके लिए चला ॥ ३६९ ॥ इस तरह कलश तथा उसके अनुयायियों द्वारा किये गये युद्धोद्योगका समाचार सुना तो क्रुद्ध होकर उस वृद्ध राजा अनन्त-देवके अश्वारोही एवं डामर सैनिक भी युद्धके लिए सन्नद्ध हो गये ॥ ३७० ॥ उस समय विजयेश्वरक्षेत्रका समस्त भूभाग सशस्त्र सैनिकोंसे भर गया और जगह-जगह अश्वगण अपने खाद्य गुड़के ढेरोंसे खेलते हुए दिखायी देने लगे ॥ ३७१ ॥ कलशके उस दुर्व्यवहारसे क्षुब्ध राजा अनन्तदेवसे पुत्रवात्सल्यवश रानी सूर्यमतीने दो दिन

अत्यासानथ मल्याादीन्द्विजान्निशि विसृज्य सा । तन्मुखेनातिवात्सल्यादिदमूचे रहः सुतम् ॥३७३॥
विनाशशंस्ययं पुत्र कस्ते मतिविपर्ययः । तीव्रशौर्येण पित्राऽद्य यदेवं योद्धुमिच्छसि ॥३७४॥
यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण दरद्राजादयो हताः । तत्प्रकोपानले कस्मादीहसे शलभायितुम् ॥३७५॥
अस्मिंस्तु वीतिमारूढे वीतिहोत्रसमे नृपे । कस्त्राता स्यात्त्वदीयानां तृणानामिव शत्रिणाम् ॥३७६॥
सेनाङ्गैः कतमैः केन शौर्येण कतमैर्धनैः । भवाञ्शक्तिमतां धुर्यं योद्धुमेनं प्रधावति ॥३७७॥
दैवात्संत्यक्तमेतेन भुङ्क्ष्व राज्यमखण्डितम् । पित्रा तीर्थोपविष्टेन किमिवापकृतं तव ॥३७८॥

द्वैधेच्छुभिः पात्यमानो व्यसनेऽस्मिन्सुदारुणे ।
प्रयास्यसि दिनैरेव रिक्तोऽप्यत्यन्तरिक्तताम् ॥३७९॥

नय सेनाः पितुर्भीतिर्जीवन्त्यां मयि नास्ति ते । ऋजुमेनं नयस्वार्द्रं प्रत्युतानुनयोक्तिभिः ॥३८०॥
इति दूतमुखैर्गूढं पुत्रो मात्रा कृतार्थनः । सर्वाशाभ्योऽनयत्सैन्यं रात्रावेव निजान्तिकम् ॥३८१॥
श्रुतापसारं सैन्यानां दूतैश्चैत्य प्रसादितम् । उपालेभे पतिं प्रातर्धृष्टा प्रत्युत वल्लभा ॥३८२॥
राज्या मिथस्तयोरेवं शमिताक्षेपयोरपि । पिशुनप्रेरणात्प्राप कालुष्यं धीः क्षणे क्षणे ॥३८३॥
वैरस्य रूपमेतद्धि भेदं याति मुहुर्मुहुः । संधीयमानमपि यत्किञ्चनाम्बरमिवाशयम् ॥३८४॥
बाह्याल्यादौ सुतोदन्तं श्रुत्वा तप्तागयो नृपः । गृहं प्रविष्टो धृष्टस्त्रीभाषितैर्जडतां ययौ ॥३८५॥
एवं प्रतिदिनं तप्तस्त्यक्ततापः प्रतिक्षपम् । स्वच्छाशयः शरत्तुच्छतडागौपम्यमाययौ ॥३८६॥

युद्ध स्थगित रखनेका अनुरोध किया ॥ ३७२ ॥ तदनन्तर उस रानीने रात्रिके समय अपने अत्यधिक विश्वस्त सुय्य आदि विप्रोंको कलशके पास भेजकर अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें यह सन्देश कहलाया—'पुत्र! अपने हाथों अपना विनाश सूचित करनेवाला यह बुद्धिविपर्यय तुझमें कैसे आ गया, जो तू अपने महान् पराक्रमी पितासे युद्ध करने चला है? ॥ ३७३ ॥ ३७४ ॥ जिसके भौं टेढी करनेमात्रसे दरदराज जैसे प्रतापी राजे ध्वस्त हो गये, उस वीर राजाके क्रोधरूपी अग्निमें फतिंगा बनकर तू क्यों नष्ट होना चाहता है? ॥ ३७५ ॥ अग्निदेवके समान तेजस्वी तेरा पिता जब घोड़ेपर सवार होकर समरांगणमें पहुँचेगा, तब तिनके जैसे तुच्छ तेरे सैनिकोंको कौन बचायेगा? ॥ ३७६ ॥ तेरे पास हाथी-घोड़े आदि सेनाके कितने अङ्ग हैं? तुझमें कितना पराक्रम और कितना धन है, जिसे लेकर तू इस वीराग्रणीसे लड़ने आया है? ॥ ३७७ ॥ तेरा यह सौभाग्य है कि जो दैवात् इसने स्वयं यह राज्य त्याग दिया है, अतएव अब तू निष्कण्टक होकर उस राज्यका उपभोग कर। और फिर इस तीर्थमें रहकर तेरे पिताने कौनसा अपराध किया है? ॥ ३७८ ॥ पिता-पुत्रमें भेद डालनेवाले धूर्तोंने तुझे इस महान् संकट फँसा दिया है। एक तो तू पहलेसे ही निर्धन था, अब इस बातके कार्यसे तू और भी दरिद्र हो जायगा ॥ ३७९ ॥ अतएव तू तुरन्त अपनी सेना लौटा ले जा। मेरे जीवित रहते तुझे तेरे पिताका कोई भय नहीं रहेगा। मेरी बात मानकर तू अनुनय-विनय करके अपने दयालु पिताको मना ले' ॥ ३८० ॥ इस प्रकार गुप्तरूपसे दूतों द्वारा माताके समझानेपर कलशने रात्रिमें ही चारों ओर बिखरी हुई अपनी सेना वापस बुला ली ॥ ३८१ ॥ दूतों द्वारा रानी सूर्यमतीने सेना हटानेका समाचार पहले ही सुन लिया था। अतएव सवेरे ही उस ढीठ रानीने अपने पति राजा अनन्तदेवको खूब फटकारा ॥ ३८२ ॥ यद्यपि रानी सूर्यमतीने पिता-पुत्रका आपसी झगड़ा समाप्त कर दिया था, किन्तु झगड़ा बढानेवाले पिशुनोंकी कार्यवाहीसे उन दोनोंका हृदय क्षण-क्षणपर कलुषित होता रहता था ॥ ३८३ ॥ जैसे पुराना वस्त्र अनेक बार सीनेपर भी फटता जाता है, उसी प्रकार वैर बार-बार सन्धि करनेपर भी भेद डालता रहता है ॥ ३८४ ॥ बाहरी तथा दरबारी लोगोंसे अपने पुत्र कलशके कुकर्म सुनकर राजा अनन्तदेव क्रोधसे बौखला उठता था, परन्तु अन्तःपुरमें जाते ही अपनी ढीठ रानी सूर्यमतीके उलाहना भरे वचन सुनते ही वह जड़ हो जाता था ॥ ३८५ ॥ जैसे दिनभर धूपसे तपकर तालाब रात्रिके समय ठंढा हो जाता है, उसी प्रकार प्रतिदिन क्रोधकी आगमें झुलसकर वह राजा रातको रानीके

चकार पितृपक्ष्याणां पुत्रो वेश्मादिनाशनम् । पिता तु पुत्रपक्ष्याणां न किंचित्स्त्रीवशीकृतः ॥३८७॥
पुत्रस्नेहान्धया पत्न्या बाधितैश्चानुयायिभिः । रूक्षोक्तिभिस्ताप्यमानस्तस्थौ दुःस्थः सदा नृपः ॥३८८॥
राज्यं जिहीर्षुः पुत्रस्य निःशूरं तद्बलं विदन् । ईप्सन् जिन्दुराजस्य गणनां पौरुषेऽकरोत् ॥३८९॥
पुत्राज्जिहीर्षुणा राज्यं तेन तन्वङ्गनन्दनाः । प्रार्थ्यन्ते स्म तदा राज्यकृतये तत्पराङ्मुखाः ॥३९०॥
संप्रेर्य तं तदा रात्रौ स्वान्वयाशर्मशङ्किनी । हर्षं देवी नृपं कर्तुं दूतैराहूतवत्यभूत् ॥३९१॥
स पितामहयोर्दूतैराहूतः साहसोन्मुखः । बाह्याल्यां निर्गतः सज्जैं रक्ष्यमाणोपि रक्षिभिः ॥३९२॥
दत्तपार्ष्णिकषाघातः क्षणार्धेनोदलङ्घयत् । मनोजवेनाभ्रग्रोजा वाजिना पञ्चयोजनीम् ॥३९३॥
वाजिनं विजिताभ्यासमनुगन्तुं समुद्यताः । अगच्छन्बहवो मार्गे दीनाः सेनाहयाः श्रमम् ॥३९४॥
प्राप्तस्य पादयोस्तस्य पतितस्य पितामहौ । आनन्दाश्रुजलस्यन्दैरभिषेकं प्रचक्रतुः ॥३९५॥
पुत्रे तन्निकटं प्राप्ते कलशः कम्पिताशयः । अप्रियाचरणात्पित्रोः संधित्सुः स न्यवर्तत ॥३९६॥
स तस्य नगरान्पत्रीः पार्श्वं प्राज्ञो व्यसर्जयत् । अकरोद्विसुते राष्ट्रे स्वभेदस्याप्रकाशनम् ॥३९७॥
एवं प्रवर्धमानेऽपि वैरे कलशभूपतिः । कंचित्कालं मते मातुरवर्तिष्ट मनागिव ॥३९८॥
खशालाः कलशादेशाद्यियासोः कम्पनापतेः । तया प्रावर्तितनतेर्मार्गं संत्याजितः पतिः ॥३९९॥
अत्रान्तरे शमयितुं वैरं देशोपघातकृत् । तावुद्दिश्य पितापुत्रौ द्विजाः प्रायं प्रचक्रिरे ॥४००॥

समस्त शीतल हो जाता था ॥ ३८६ ॥ यद्यपि राजा कलशने अपने पिताके पक्षपातियोंका धन-जन नष्ट करना आरम्भ कर दिया था, किन्तु स्त्रीके वशवर्ती वृद्ध राजा अनन्तदेवने कलशके पक्षपातियोंको कोई क्षति नहीं पहुँचायी ॥ ३८७ ॥ पुत्रस्नेहसे अन्धी पत्नीके द्वारा पीड़ित सेवकोंकी रूखी बात सुन-सुनकर राजा अनन्तदेव बहुत दुखी रहा करता था ॥ ३८८ ॥ अपने पुत्र कलशकी सेनाको वीरविहीन समझकर वह वृद्ध राजा कलशको हराकर राज्य छीन लेना चाहता था । उसकी दृष्टिमें एकमात्र जिन्दुराज ही कुछ वीर जँचता था ॥ ३८९ ॥ पुत्रसे राज्य छीननेको उत्सुक राजाने तन्वंगके पुत्रोंको राज्याधिकार देनेकी बात सोची थी, किन्तु वे तन्वंगके पुत्र ही इस विचारसे सहमत नहीं हुए ॥ ३९० ॥ राजाका यह मनोभाव जानकर रानी सूर्यमतीने अपनी वंशपरम्पराके हाथसे राज्यका अधिकार निकल जानेकी आशंकावश कलशके पुत्र हर्षको राज्य देनेके लिए दूत भेजकर रातोरात अपने पास बुलवा लिया ॥ ३९१ ॥ अपने पितामहके दूतों द्वारा बुलाये गये साहसोन्मुख हर्षने बाहर नियुक्त रक्षकोंकी कुछ भी चिन्ता न करते हुए अश्वपर सवार होकर तुरन्त पितामहके पास पहुँचनेके लिए प्रस्थान कर दिया ॥ ३९२ ॥ परम तेजस्वी हर्षका अश्व मनके समान वेगवान् था । उसके पार्श्वभागमें जैसे ही उसने एक चाबुक मारा, वैसे ही वह इतनी तेजीसे भागा कि आधे क्षणमें पाँच योजन रास्ता पार कर गया ॥ ३९३ ॥ उसके घोड़सवार अनुचरोंके घोड़े कमजोर थे । अतएव हर्षवाले अश्वके साथ दौड़नेपर वे शीघ्र ही थक गये ॥ ३९४ ॥ इस प्रकार चलकर विजयेश्वरमें पहुँचते ही उसने सबसे पहले पितामह तथा पितामहीके दर्शन किये । जब वह उनको प्रणाम कर रहा था, तब वे दोनों आनन्दाश्रुओंके जलसे उसका राज्याभिषेक करने लगे ॥ ३९५ ॥ उधर अपने पुत्र हर्षको राजा अनन्तदेवके पास पहुँचा हुआ सुनकर कलश काँप उठा और सम्बन्धोंकी इच्छासे अपने माता-पितासे बिगाड़ करना बन्द कर दिया ॥ ३९६ ॥ उसने तत्काल हर्षके पास सन्धिका प्रस्ताव भेजा और अपने राज्यकी दुर्व्यवस्था तथा प्रजाके विद्रोहकी ओर ध्यान देते हुए प्रत्यक्षरूपमें हर्षसे द्वेष करना त्याग दिया ॥ ३९७ ॥ इस तरह भीतर ही भीतर वैर बहुत बढ़ जानेपर भी कलश कुछ समय तक अपनी माताके मतपर चला ॥ ३९८ ॥ कलशके आदेशसे उसका कम्पनापति (सेनापति) खशाला प्रदेशकी ओर होकर जाना चाहता था, उसे 'वह राजा अनन्तदेवको प्रणाम करनेके बाद जा सकता है' इस शर्तपर रानी सूर्यमतीने जानेकी आज्ञा दिला दी ॥ ३९९ ॥ उसी समय देशके लिए हानिकर पिता-पुत्रका पारस्परिक कलह शान्त करनेके विचारसे उन दोनोंके विरुद्ध राज्यके सब ब्राह्मणोंने अनशन आरम्भ कर दिया ॥ ४०० ॥

संधिबन्धे समुत्पन्ने ततस्तदनुरोधतः । दंपती संप्रविष्टौ तौ सार्धं मासद्वयं पुरम् ॥४०१॥
जयानन्दादिवृद्धयाथ बुद्ध्वा बन्धोद्यतं सुतम् । भूयोऽपि ययतुः खेदान्निर्गत्य विजयेश्वरम् ॥४०२॥
तस्याश्वघासकूटानि पुत्रो रात्रावदाहयत् । व्यापादयत्पदातींश्च विषशस्त्राग्नियुक्तिभिः ॥४०३॥
तथा प्रवर्धमानेऽपि विरोधे सत्यरोधयत् । वात्सल्यविवशा राज्ञी भर्तुः प्रतिचिकीर्षितम् ॥४०४॥
लुड्डाभिधाऽभूत्कैवर्तबन्धकी तद्विधेयधीः । थक्कडामरनामा च तज्जारः खलतिस्तदा ॥४०५॥
स तन्नाम्नैव दुष्टात्मा कथ्यमानौ समीपगैः । शुश्राव पितरौ नित्यं लीलास्मितसितानन: ॥ युग्मम् ॥४०६॥
तौ दंपती पुनर्हेमतुलापुरुषयुग्मदौ । चित्राभिर्धर्मचर्याभिर्मनस्तापममुञ्चताम् ॥४०७॥
यदा पुनस्तयोर्दार्ढ्यमाढ्यत्वान्न व्यहीयत । तदा सेर्ष्यः स दुष्पुत्रो रात्रौ वह्निमदापयत् ॥४०८॥
तेनाग्निनोर्वरीशस्य सर्वोपकरणैः समम् । भस्मावशेषमभवद्विजयेश्वरपत्तनम् ॥४०९॥
सर्वनाशशुचा दीना राज्ञी मर्तुं समुद्यता । तन्वङ्गपुत्रैश्चकृपे कथंचिज्ज्वलतो गृहात् ॥४१०॥
त्यक्त्वांशुकानि शय्याभ्यो निशायां सुप्तमुत्थितम् । निःशेषं राजसैन्यं तदजायत दिगम्बरम् ॥४११॥
तद्राजधानीसौधाग्रात्पश्यन्कलशभूपतिः । तोपादनृत्यज्ज्वालौघैर्गगनालिङ्गिभिः समम् ॥४१२॥
अतरन्नष्टसर्वस्वः स पारं सरितो नृपः । निममज्ज सजानिस्तु दुस्तरे शोकसागरे ॥४१३॥
संप्राप्य प्रातरप्लुष्टं रत्नलिङ्गं नृपाङ्गना । व्यक्रीणाल्लक्षसप्तत्या टाकानां पार्श्वमीयुषाम् ॥४१४॥
क्रीत्वा च प्रददौ पूर्वं भृत्यानां भोजनांशुके । धनेन तेन निर्दग्धान्यपि धामान्यशोधयत् ॥४१५॥

उस अनशनके प्रभावसे उन पिता-पुत्रमें सन्धि हो गयी और वे वृद्धदम्पती फिरसे राजधानीमें आकर ढाई महीने रहे ॥ ४०१ ॥ किन्तु 'जयानन्द आदि दुष्टोंकी सलाहपर कलश हमें कैद कर लेगा' यह अफवाह सुनकर वे दोनों शीघ्र ही विजयेश्वर क्षेत्रको लौट गये ॥ ४०२ ॥ उसके बाद कलशने राजा अनन्तदेवके घोड़ोंके लिए रक्खी हुई घासके अम्बारमें आग लगवा दी और विष, शस्त्र तथा अग्निके द्वारा उसके बहुतेरे पैदल सैनिकोंको मरवा डाला ॥ ४०३ ॥ इस तरह पारस्परिक विरोधके अत्यधिक बढ़ जानेपर भी पुत्रवत्सला रानी सूर्यमतीने महाराज अनन्तदेवको पुत्रके अपकारोंका प्रतीकार नहीं करने दिया ॥ ४०४ ॥ लड्डा नामकी एक धीवरकन्या तथा कुलटा स्त्री थी और थक्क नामका एक खल्वाट (गंजा) उस दुराचारिणीका आज्ञाकारी यार था ॥ ४०५ ॥ कलशके समीपवर्ती चापलूस और मसखरे उन दोनोंको राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमतीका नाम रखकर बुलाते थे और दुष्ट कलश उनकी बातें सुनकर आनन्दसे हँसने लग जाता था ॥ ४०६ ॥ कुछ समय बाद महाराज अनन्तदेव एवं रानी सूर्यमतीने सुवर्णका तुलादान किया । इसी प्रकार अनेक दान-धर्मसम्बन्धी शुभ कर्म करते हुए वे अपना मन स्थिर तथा प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ४०७ ॥ उन दोनोंके पास अपार सम्पदा थी । अतएव वे सब तरहसे निश्चिन्त तथा दैन्यशून्य थे । उनकी यह दृढता देखकर पापी कलशने द्वेषवश उनके विजयेश्वरवाले निवासस्थानमे आग लगवा दी ॥ ४०८ ॥ उस भीषण अग्निकाण्डसे राजा अनन्तदेवके समस्त उपकरण एवं सारा विजयेश्वर-पत्तन जलकर भस्म हो गया ॥ ४०९ ॥ इस भयानक सर्वनाशके आघातसे रानी सूर्यमती अतिशय दीन और निराश होकर मरनेको उद्यत हो गयी थी और उसे तन्वंगके पुत्रोंने जलते हुए घरमेंसे बड़ी कठिनाईसे बाहर निकाला ॥ ४१० ॥ उस समय राजाके सैनिक वस्त्र उतारकर सोये हुए थे । अग्निकाण्डका कोलाहल सुनकर वे एकाएक घबड़ा उठे । उनके वस्त्र आगसे जल चुके थे, इसलिए अब उन्हें दिगम्बरता प्राप्त हो गयी थी ॥ ४११ ॥ उन राजा कलश उस समय अपने महलकी छतपर खड़ा-खड़ा यह भयानक दृश्य देखकर ताली पीटता हुआ गगनस्पर्शी आगकी लपटोंकी भाँति हर्षसे नाच रहा था ॥ ४१२ ॥ इस प्रकार सर्वस्व नष्ट हो जानेपर राजा अनन्तदेव रानी सूर्यमतीको लेकर वितस्ता नदीके उस पार चला गया । किन्तु वहाँ पहुँचकर वह शोकसागरमे डूब गया ॥ ४१३ ॥ दूसरे दिन सवेरे रानी सूर्यमतीको एक ऐसा शिवलिंग मिला, जो अग्निकांडमे जला नहीं था । उसे उसने सत्तर लाख दीनारमे अपने पास आये हुए एक टक्कदेशीय व्यापारीके हाथ बेच दिया ॥ ४१४ ॥ उनमेसे कुछ दीनारों द्वारा सबसे पहले अन्न-वस्त्र खरीदकर उसनेअपने सेवकोंको दिया और बाकी दीनारोंसे जले

भस्मकूलतलात्तावल्लब्धं स्वर्णादि भूभुजा । कथापि यावतो हन्त ग्रथयत्यद्य कौतुकम् ॥४१६॥
राजा शून्याटवीभूते पत्तने तत्र सानुगः । नडत्वग्ग्रथितच्छत्रपटलाच्छादितेऽवसत् ॥४१७॥
तावत्यप्यर्थसामर्थ्ये चिकीर्षोस्तत्पुरं नवम् । विना राजोचितामाज्ञां न सिद्धं वृद्धभूपतेः ॥४१८॥
अदृष्टाभिभवो मातुरानुकूल्यान्नवो नृपः । परितापं पितुस्तैस्तैर्दुःसंदेशैः सदाऽकरोत् ॥४१९॥
निर्बन्धादथ पुत्रेण पर्णोत्सगमनं पिता । निर्वासनोत्सुकेनोक्तः शश्वद्दूतमुखैर्यदा ॥४२०॥
प्रभवन्त्या यदा चासीत्पत्न्या तस्यैव वस्तुनः । निष्पत्तये प्रेर्यमाणः साधिक्षेपं क्षणे क्षणे ॥४२१॥
तदा जातु रहः कुप्यंस्तन्वङ्गे थक्कने स्थिते । उवाचानुक्तपूर्वं तामेवं स परुषं वचः ॥ तिलकम् ॥४२२॥
अभिमानो यशः शौर्यं राज्यमोजो मतिर्धनम् । मया जायाविधेयेन हन्त किं किं न हारितम् ॥४२३॥
मिथ्योपकरणं नारीर्गणयन्ति नृणां जनाः । परिणामे तु नारीणां क्रीडोपकरणं नराः ॥४२४॥
द्वेषोन्मेषात्प्रसक्ताभिर्विरक्ताभिरसूयया । के नाम नात्र कान्ताभिः कृतान्तस्यातिथीकृताः ॥४२५॥
रूपं काश्चिद्बलं काश्चित्प्रज्ञां काश्चिच्च कार्मणैः । पुंस्त्वं काश्चिदसूंन्काश्चिद्भर्तृणां जहुरङ्गनाः ॥४२६॥
हरन्ति ग्रावभिरिव क्ष्मां पुत्रैरन्यगोत्रजैः । मत्ताः पयोधरौन्नत्यात्तरङ्गिण्य इवाङ्गनाः ॥४२७॥
पर्यन्ते वेतनमिमे किं जीर्णैरीदृशैरिति । पोषयन्ति सुतान्भर्तॄञ्शोषयन्ति तु योषितः ॥४२८॥
सर्वकालं विदित्वापि दोषान्योषित्कृतानमून् । प्रतिपत्त्यनुरोधेन मयेयं नावधीरिता ॥४२९॥
प्रभविष्णुर्निहत्येयमैहिकीः सुखसंपदः । परलोकसुखस्याशामपि हन्तुं ममोद्यता ॥४३०॥

हुए मकानोंकी सफाई करायी ॥४१५॥ वहाँ उस राखकी ढेरसे राजाको इतना अधिक सोना आदि द्रव्य मिला कि जिसकी चर्चा भी आज हम लोगोंके मनमें विस्मयजनक कौतूहल उत्पन्न किये विना नहीं रह सकती ॥४१६॥ सूने वनके समान उस जले हुए नगरमें राजा अनन्तदेव अब बाँसके टट्टरोंकी बनी छत्राकार झोपड़ियोंमें रहा करता था ॥ ४१७ ॥ यद्यपि उसके पास धनकी कमी नहीं थी, किन्तु राज्याधिकारके अभावमें कारीगर-मजदूर आदि न मिलनेसे इच्छा रहते हुए भी वह राजा अपने उस जले हुए नगरका पुनर्निर्माण नहीं करा सका ॥ ४१८ ॥ नया राजा कलश अपनी माता सूर्यमतीकी अनुकूलताके कारण सब तरहसे निर्भय होकर भाँति-भाँतिके दूषित सन्देशों द्वारा अपने पिता अनन्तदेवका हृदय जलाया करता था ॥ ४१९ ॥ कुछ समय बाद कलश पिताको अपने देशसे निर्वासित कर देनेके विचारसे दूतोंके द्वारा उसे बार-बार पर्णोत्स प्रान्तमें चले जानेके लिए कहलाने लगा। राजा अनन्तदेवपर अपना पूर्ण प्रभाव रखनेवाली रानी सूर्यमती भी अपने पुत्रका पक्ष लेकर बार-बार ताने मारती हुई उसे वहाँसे चल देनेको प्रेरित करने लगी। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा अनन्तदेवने एक दिन तन्वंगके समक्ष एकान्तमें अपनी पत्नीको ऐसे कठोर वचन कहने आरम्भ किये, जैसे वाक्य जीवनभरमें कभी नहीं कहे थे ॥ ४२०–४२२ ॥ उसने कहा—'स्त्री के अधीन होकर मैंने अपना मान, वीरता, यश, राज्य, तेज, बुद्धि तथा धन, इनमेंसे क्या-क्या वस्तु नहीं खो दी ? ॥ ४२३ ॥ जो लोग स्त्रीजातिको उपभोग्य वस्तु समझते हैं, वे भूल करते हैं। अन्तमें पुरुषको स्त्रीके खेलका उपकरण बनना पड़ता है ॥४२४॥ द्वेषकी उत्पत्तिसे प्रसक्त (अपकारपरायण) तथा मात्सर्यसे विरक्त स्त्रियोंके द्वारा कितने पुरुष कृतान्त (यमराज) के अतिथि नहीं बनते ?॥ ४२५ ॥ इन स्त्रियोंमेसे कुछ महिलाओंने अपने जादूसे पतिका रूप, कुछने बुद्धि, कुछने पौरुष और कुछने तो प्राण तक ले लिये हैं ॥ ४२६ ॥ ये अपने पयोधर (कुच अथवा मेघ) की उन्नतिके प्रभावसे नदियोंकी भाँति उन्मत्त नारियाँ अन्यगोत्रज (दूसरे पर्वतोंपर उत्पन्न) पत्थरोंकी तरह अन्यगोत्रज (दूसरे वंशमें जायमान) पुत्रोंके द्वारा पृथ्वी-का अपहरण करती हैं ॥ ४२७ ॥ ये स्त्रियाँ 'अन्तमें इन्हींसे मेरा निस्तार होगा। अब इस बूढ़े पतिसे क्या लाभ ?' यह सोचकर पुत्रोंका पालन-पोषण तथा पतिका शोषण करती हैं ॥ ४२८ ॥ स्त्रियोंमें नित्य रहनेवाले इन दोषोंको जानते हुए भी मैंने अपनी उदारतावश इसका कभी भी तिरस्कार नहीं किया ॥ ४२९ ॥ किन्तु इसने मेरे ऊपर अपना प्रभुत्व बनाये रखनेके लिए मेरा ऐहलौकिक सुख तो नष्ट कर ही डाला, अब पारलौकिक

वलीपलितयुक्तस्य नेदीयोमरणावधेः। विहाय विजयक्षेत्रं कुत्र गन्तुं ममोचितम् ॥४३१॥
क्षपाकरकलामौलेः किल्बिपक्षपणक्षमा। द्वारोपकण्ठसंसेवोत्कण्ठा कुण्ठीभवेत्कथम् ॥४३२॥
पुत्रो लोकद्वयत्राता कस्यान्यस्येदृशो भवेत्। तीर्थात्प्रस्थापयन्मां यत्कुपथे मृतमिच्छति ॥४३३॥
प्रतिभात्यवगीतोऽयं प्रवादो मेऽद्य चेतसि। अनयाऽन्यकुलोद्भूतो यदयं संप्रवेशितः ॥४३४॥
विसंवादिनमाकाराचारैर्बन्धुविरोधिनम्। पुत्रं पितुरसंस्निग्धं जानीयादन्यरेतसम् ॥४३५॥
सुचिराविष्कृताकूतां त्यक्त्वा प्राणाय यन्त्रणाम्। एवं वदन्पतिस्तस्याश्चक्रे मर्मसु ताडनम् ॥४३६॥
गोत्रजस्य पुरः पुत्रोत्पत्तिगुह्ये प्रकाशिते। आमृष्टविप्रियालापा साऽभूदधिकलज्जिता ॥४३७॥
महत्तमस्य पुत्रो हि प्रशस्ताख्यस्य सोऽभवत्। विपन्नापत्ययोपात्तस्तयेत्यासीज्जनश्रुतिः ॥४३८॥
उत्सिक्तभाषितं भर्तुर्योषितो जितभर्तृकाः। जानन्त्यन्त्यांघ्रिसंवृत्तशिरस्ताडनसंनिभम् ॥४३९॥
अतः सा सुदृढं प्रौढिसंस्कारपरुषं वचः। प्राकृतप्रमदेवोच्चैरित्युवाच रुषा पतिम् ॥४४०॥
गतश्रीस्तापसो मन्दो जातभाग्यविपर्ययः। वृथा वृद्धः क्व किं वाच्यमिति मूढो न वेत्त्ययम् ॥४४१॥
स्नानोत्थितस्य यस्यास्य नाभूत्प्रावरणं पुरा। लोको जानात्ययं किं न तेन मां प्राप्य हारितम् ॥४४२॥
स्वकुलस्त्रीसमुचितं यत्किंचिन्मामभाषथाः। क्रियते किं न कालोऽयं यत्प्रायश्चित्तसेवने ॥४४३॥
अकर्मण्यो गतवया देशात्पुत्रेण वारितः। पत्न्यापि त्यक्त इत्यस्मात्परिवादाद्धि मे भयम् ॥४४४॥

सुखको भी नष्ट कर देनेके लिए तैयार बैठी है॥ ४३० ॥ जिसके सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, केश श्वेत हो गये हैं और मृत्यु समीप आ गयी है, ऐसे मुझ जैसे वृद्धको यह विजयेश्वर सरीखा पुनीत तीर्थ त्यागकर अन्यत्र कहाँ जाना उचित है ?॥ ४३१ ॥ समस्त पापोंको नष्ट कर देनेमें समर्थ भगवान् चन्द्रकलामौलि शिवजीके मन्दिरके द्वारकी उत्कण्ठापूर्वक सेवा करनेकी मेरी कामनाको कोई कैसे कुण्ठित कर सकता है ? ॥ ४३२ ॥ कहा जाता है कि पुत्र ही पिताको इहलोक तथा परलोकमें तारता है। तब इस पवित्र तीर्थसे निर्वासित करके किसी गन्दी गली-कूचीमें मेरी मृत्यु चाहनेवाले पुत्र जैसा पुत्र संसारमें और कहाँ होगा ?॥ ४३३ ॥ यह निंद्य किंवदन्ती आज मुझे सत्य प्रतीत हो रही है कि 'मेरी इस पत्नीने किसी दूसरे कुलमें उत्पन्न पुत्रको गुप्त रीतिसे मँगाकर राजमहलमें रख लिया है' ॥ ४३४ ॥ जिस पुत्रकी आकृति और आचार-व्यवहार पिताके विपरीत हो, जो अपने बन्धुजनोंसे द्वेष रखता हो और अपने पिताके साथ स्नेहविहीन व्यवहार करता हो, ऐसे पुत्रको किसी दूसरे ही मनुष्यसे उत्पन्न समझना चाहिये' ॥ ४३५ ॥ इस तरह अपनी प्राणपीडाको व्यक्त करते हुए उस कटुभाषी पतिने अपने मर्मस्पर्शी भाषण द्वारा चिरसंचित रोष निकालकर उस रानीके हृदयपर निर्मम प्रहार किया ॥ ४३६ ॥ अपने एक सगोत्र बान्धव तन्वंगके समक्ष पुत्रकी उत्पत्तिका रहस्य प्रकट करनेवाले राजाका वह कठोर वचन सुनकर रानी सूर्यमती बहुत लज्जित हुई ॥ ४३७ ॥ 'कलश महामंत्री प्रशस्तका पुत्र था। अपने पुत्रके मर जानेपर रानी सूर्यमतीने उसे ले लिया था'। यह किंवदन्ती उन दिनों सारे देशमें फैली हुई थी ॥ ४३८ ॥ पतिको सदा अपने वशमें रखनेवाली स्त्रियोंके लिए ऐसे कठोर वचन किसी नीच जातिवाले पुरुषके चरणप्रहारके सदृश असह्य होते हैं ॥ ४३९ ॥ अतएव रानी सूर्यमती अत्यन्त कुपित होकर एक साधारण स्त्रीके समान प्रौढ़ संस्कारसे दूषित ये वचन बड़े ऊँचे स्वरमें चिल्लाकर बोली—॥ ४४० ॥ 'निर्धन, भिखारी, अभागे, वृथावृद्ध तथा मूढ़ लोगोंको इस बातका भी ज्ञान नहीं रहता कि कब क्या कहना चाहिये ॥ ४४१ ॥ मेरे मिलनेके पहले इसके पास स्नान करनेके समय पहिननेके लिए वस्त्र तक नहीं था। इस बातको भी सारा संसार जानता है कि मेरे मिलनेसे पहले इसने क्या क्या नहीं खोया था ॥ ४४२ ॥ तुमने अभी मेरे ऊपर जो दोषारोपण किये हैं, वे सब तुम्हारे ही वंशकी स्त्रियोंपर लागू होते हैं। यह समय तुम्हारे प्रायश्चित्त करनेका है, उसे क्यों नहीं करते ?॥ ४४३ ॥ अब तुम अकर्मण्य और वृद्ध हो गये हो, तुम्हें तुम्हारे बेटेने देशसे निकाल दिया है और 'अब पत्नीने भी तुमको त्याग दिया' लोग ऐसा न कहने लगें, इसी बातसे मैं डरती हूँ ॥ ४४४ ॥

कुलदोषादिवृत्तान्तगर्भोपालम्भनिर्भरैः । वचोभिर्व्यथितस्तस्यास्तस्थौ तूष्णीं यदा नृपः ॥४४५॥
तदा तस्यासनप्रान्तानिःसृतः प्रसरन्बहिः । निर्विकाराकृतेर्व्यक्तं ददृशे रक्तनिर्झरः ॥४४६॥
संभ्रान्तायां ततो राज्ञ्यामपश्यत्थक्कनो रुदन् । असिधेनुं गुदे तेन क्रुधा राज्ञा प्रवेशिताम् ॥४४७॥
ततोऽतिधीरो राजैव तं लज्जाचकितोऽन्वशात् । राज्ञो रक्तातिसरणं जातमित्युच्यतां बहिः ॥४४८॥

विधेया नारीणां तनयनिहिताशेषविभवाः कृतम्लानौ भृत्ये पुनरुदितविस्रम्भरभसाः ।
नयन्तो गण्यत्वं प्रसभमभियोगैर्लघुमरिं नयत्यक्ताः क्ष्मापाः प्रलयमुपगच्छन्ति न चिरात् ॥४४९॥

नृपतिर्वाहितहयः शरदातपखेदितः । तृष्यन्निपीय धान्याम्बु च्युतासृग्जात इत्यभूत् ॥४५०॥
गम्भीरैं राजपुरुषैस्तथा वार्ता प्रवर्तिता । यथा नाबुद्ध वृत्तान्तमेतं कोपि बहिर्जनः ॥ युग्मम् ॥४५१॥
वत्सरे सप्तपञ्चाशे पौर्णमास्यां स कार्तिके । विजयेशाग्रतो राजा जीवितेन व्ययुज्यत ॥४५२॥
पत्न्याः पुत्रस्य चोद्वेगैस्त्यक्तो राजा सुखोचितः । प्रसार्य पादौ निद्रातुं प्राप सोऽवसरं चिरात् ॥४५३॥
चुकोपासौ न कस्मैचिच्चुकोपास्मै न कश्चन । चक्रे सुखी विमन्युश्च मरणेन महामनाः ॥४५४॥
संग्रामराजदायादो न कस्यचिदिव प्रियः । अंशुकाच्छादितो भूमावनाथ इव सोऽस्वपत् ॥४५५॥
न प्रियाक्रन्दितैः खिद्यन्न कुप्यन्नप्रियोक्तिभिः । सर्वत्यागी ययौ राजा दीर्घनिद्रारसज्ञताम् ॥४५६॥
दाक्षिण्योल्लङ्घनप्रायश्चित्तायेव त्यजन्नसून् । कृतज्ञया पतिः पत्न्या ततो निन्ये सनाथताम् ॥४५७॥

उस रानीके ऐसे मर्मभेदी तथा घरका भेद खोल देनेवाले वचन सुनकर राजा अतिशय दुःखित होता हुआ भी चुप रह गया ॥ ४४५ ॥ उसी समय सहसा राजाके आसनके आस-पास बहती हुई रक्तधारा दीखी, किन्तु राजाका मुख पहले हीके समान तेजस्वी बना रहा ॥ ४४६ ॥ वह रक्तधारा देखकर रानी घबड़ा गयी और थक्कन रोने लगा । क्योंकि क्रोधके आवेशमें आकर राजाने अपनी गुदामें छुरा भोंक लिया था ॥ ४४७ ॥ तदनन्तर लज्जित होकर अतिशय धैर्यशाली राजाने उन लोगोंसे कहा—'बाहरी लोगोंमें इस बातका प्रचार कर देना कि राजाको रक्तातिसार हो गया था ॥ ४४८ ॥ स्त्रियोंकी आज्ञा शिरोधार्य करनेवाले, अपने पुत्रको राज्यशासनका सब अधिकार दे देनेवाले, एक बार धोखा खा करके भी अपने विश्वासघातक सेवकोंपर विश्वास करनेवाले और साधारण शत्रुको अनावश्यक महत्त्व देते हुए तरह-तरहके लांछन लगाकर बार बार आक्रमण करनेवाले नीतिविहीन राजाओंका शीघ्र नाश हो जाता है ॥ ४४९ ॥ घोड़ेपर सवार होकर राजा भ्रमण करने गया था । वहाँसे लौटते समय वह शरत्कालीन तीक्ष्ण धूपसे बहुत त्रस्त हो गया और उसे बेहद प्यास लगी । इसलिए उसने धनियाका पानी पी लिया । इसीसे उसे रक्तातिसार हो गया और यह घटना घट गयी' ॥ ४५० ॥ कुशल एवं गम्भीर प्रकृतिवाले राजसेवकोंने सर्वसाधारणमें ऐसा ही प्रचार किया । जिससे कोई बाहरी मनुष्य सच्चा वृत्तान्त नहीं जान सका ॥ ४५१ ॥ इस प्रकार ४१५५ लौकिक वर्षकी कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको विजयेश्वर शिवके समक्ष राजा अनन्तदेवने प्राण त्याग किया ॥ ४५२ ॥ ऐसा होनेसे सुखका उपभोग करने योग्य राजाको अपनी पत्नी तथा पुत्र द्वारा दी जानेवाली यातनाओंसे छुटकारा मिल गया और बहुत समय-के बाद उसे आरामसे पैर फैलाकर सोनेका मौका मिला ॥ ४५३ ॥ प्राण त्यागते समय न राजाका किसीपर कोप था और न राजापर ही किसीका कोप था । अतएव मृत्युने उस महामना राजाको क्रोधहीन तथा सुखी बना दिया ॥ ४५४ ॥ उस समय संग्रामराजका उत्तराधिकारी राजा अनन्तदेव जैसे,किसीका प्रिय नहीं रह गया था और अनाथकी तरह एक साधारण चादर ओढकर सोया हुआ था ॥ ४५५ ॥ अब वह सर्वस्वत्यागी राजा न प्रियजनोंके रुदनपर प्रसन्न और न शत्रुकी कटूक्तियोंसे विषण्ण ही हो रहा था । इस समय तो वह सब झंझटोंसे मुक्त होकर दीर्घकालीन निद्राका आनन्द ले रहा था ॥ ४५६ ॥ उस राजाने जीवन भर अपनी पत्नीके साथ उदारताका व्यवहार किया था । किन्तु अन्तमें उस दाक्षिण्यका उल्लंघन करके जो कटु वचन कहे थे, जैसे उसका प्रायश्चित्त करनेके लिए ही उसने प्राण त्याग दिया था । अतएव अब वह अपनी कृतज्ञ पत्नीसे सनाथ

आराजपुत्रचण्डालं देयं प्रत्यहवेतनम् । ददौ स्वस्थैव भृत्येभ्यः सा कर्तुमनृणं पतिम् ॥४५८॥
गृहीतवेतना भृत्याः कोशं सर्वे तया स्वयम् । पुरस्ताद्विजयेशस्य नप्तुः क्षेमाय पायिताः ॥४५९॥
पादन्यस्तशिराः पौत्रो रुदन्नर्पितकोशया । मूर्धन्याघ्राय कथितो मा पितुर्विश्वसीरिति ॥४६०॥
उत्थितैव ततो भूत्वा स्वयमात्तलता सती । प्रातिहार्यं व्यधाद्भर्तुः कारयन्त्यन्तमण्डनाम् ॥४६१॥
सादिनां शतमादिश्य नप्तुस्तत्रैव रक्षणे । सा पुनः शिविकारूढमथ प्रास्थापयत्पतिम् ॥४६२॥
क्षपामेकां दिनार्धं च स्थित्वैवं पतिदेवता । प्रणम्य विजयेशानं युग्यारूढा विनिर्ययौ ॥४६३॥
निर्यान्तौ वीक्ष्य तौ प्रेततूर्यकल्लोलमिश्रितैः । लोकस्याक्रन्दतुमुलैर्भग्ना इव दिशोऽभवन् ॥४६४॥
विमानस्योत्पताकस्य परिष्कारेषु बिम्बिताः । प्रजा राज्ञोऽन्तिके रेजुरनुगन्तुमिवोद्यताः ॥४६५॥
राज्ञां वितीर्णस्कन्दानां मरुल्लोलाः शिरोरुहाः । विमानस्थस्य नृपतेरवहंश्चामरश्रियम् ॥४६६॥
पश्यन्ती पश्चिमां सेवां सैन्यानां नृपतिप्रिया ।
अस्ताभिलाषिणि दिने प्रपेदे पितृकाननम् ॥४६७॥
दुस्त्यजात्सुतवात्सल्याद्यद्वा केनापि हेतुना । सा बभूव क्षणे तस्मिंस्तनयालोकनोत्सुका ॥४६८॥
जानन्ती पवनोद्धूतं रजः सेनासमुत्थितम् । चकितोत्कण्ठिता साऽभूत्कलशागमनाशया ॥४६९॥
तस्मिन्क्षणे जनाः केचिदायाता नगराध्वना । अङ्ग किं कलशः प्राप्त इति पृष्टास्तया स्वयम् ॥४७०॥
स तु पुत्रः क्षणे तस्मिन्यियासुर्मातुरन्तिकम् । दत्त्वा विभीषिकास्तास्ता निरुद्धो द्वैधकारिभिः ॥४७१॥
ततो गृहीतनैराश्या राज्ञी पुत्रावलोकने । सा प्रार्थयित्वा वैतस्तं वारि श्लोकमथापठत् ॥४७२॥

हो गया ॥ ४५७ ॥ तदनन्तर रानी सूर्यमतीने पतिको उऋण करनेके लिए राजपुत्रसे लेकर चण्डालपर्यन्त सब सेवकोंका सारा वेतन चुका दिया ॥ ४५८ ॥ इस प्रकार वेतन देनेके बाद उसने समस्त सेवकोंको अपने पौत्र हर्षके जीवनकी रक्षाके लिए भगवान् विजयेश्वरके समक्ष कोशपानपूर्वक शपथ दिलवायी ॥ ४५९ ॥ इस प्रकार सेवकोंको कोशपान करानेके बाद चरणोंपर गिरकर रोते हुए अपने पौत्र हर्षका माथा सूँघकर रानीने कहा—'तू कभी भी अपने पितापर विश्वास न करना' ॥ ४६० ॥ तदनन्तर वह रानी सतीत्वके आवेशमें खड़ी हो गयी और पतिका अन्तिम शृंगार कराती हुई हाथमें तलवार लेकर प्रतिहारकी तरह पहरा देने लगी ॥ ४६१ ॥ तदनन्तर पौत्र हर्षकी रक्षाके लिए सौ सैनिकोंको नियुक्त करके उसने पतिके शवको पालकीमें रखवाकर वहाँसे विदा किया ॥ ४६२ ॥ इतना काम करनेमें एक रात और आधा दिन लगा। तत्पश्चात् उसने भगवान् विजयेश्वरको प्रणाम किया और पालकीमें बैठकर वहाँसे चल पड़ी ॥ ४६३ ॥ राजा-रानी दोनोंको वहाँसे जाते देखकर वहाँकी शोकाकुल जनता रोने लगी। इस तरह नागरिकोंके रोदन तथा प्रेतवाद्यकी तुमुल ध्वनिमिश्रित भीषण निनादसे जैसे दसों दिशायें विदीर्ण होने लगीं ॥ ४६४ ॥ प्रेतशिविकापर पताकायें फहरा रही थीं और उसमें जटित अलंकारोंपर प्रेतयात्रामें साथ चलनेवाले लोगोंके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे। इससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे सभी लोग दिवंगत राजाका अनुगमन करनेको प्रस्तुत हैं ॥ ४६५ ॥ उस प्रेतशिविकाको राजे अपने कन्धोंपर उठाये हुए थे। उनके नंगे माथेपरके केश पवनके झोंकेसे उड़ रहे थे, जिससे वे प्रेतपर चलनेवाले चमर सरीखे दीखते थे ॥ ४६६ ॥ सैनिकों द्वारा किये गये अन्तिम प्रणामका निरीक्षण करती हुई पतिप्रिया रानी सूर्यमती दिन डूबनेके समय श्मशानपर पहुँची ॥ ४६७ ॥ दुस्त्यज पुत्रस्नेह अथवा अन्य किसी कारणवश वह उस समय अपने पुत्रको देखनेके लिए विकल थी ॥ ४६८ ॥ सहसा सेनाकी भीड़से उड़ती हुई धूलको देखकर उसके मनमें कलशके आगमनकी आशासे आश्चर्य तथा उत्कण्ठाका भाव जागृत हो गया ॥ ४६९ ॥ उसी समय उसने कुछ नागरिकोंकी आया देखकर पूछा—'क्या कलश आ गया ?' ॥ ४७० ॥ रानी सूर्यमतीका पुत्र कलश भी अपनी माताके पास जानेके लिए व्यग्र था, किन्तु परस्पर फूट डालनेवाले धूर्तोंने उसे तरह-तरहकी विभीषिकायें दिखाकर नहीं जाने दिया ॥४७१॥ अन्तमें पुत्रदर्शनसे निराश होकर रानी सूर्यमती वितस्तानदीके जलकी प्रार्थना करती

वैतस्तेन तु तोयेन जठरस्थेन ये मृताः । मोक्षं गच्छन्त्यसंदेहं ते यथा ब्रह्मवादिनः ॥४७३॥
उपनीतं वितस्ताम्बु पीत्वोपस्पृश्य चाथ सा । एवं शशाप पिशुनान्स्नेहसंक्षयकारिणः ॥४७४॥
जनितं प्राणहृद्वैरं यैः पुत्रेण सहावयोः । सान्वयानां क्षयस्तेषां भूयात्परिमितैर्दिनैः ॥४७५॥
तस्यास्तेनोपतप्तायाः शापेनाव्यभिचारिणा । क्षिप्रमेव जयानन्दजिन्दुराजादयो मृताः ॥४७६॥
चक्रे हलधराप्तत्वजातकौलीनशान्तये । परलोकं पणीकृत्य युक्त्या च शपथं सती ॥४७७॥
एवं विशुद्धशीलत्वं संप्रकाश्य शुचिस्मिता । कर्णीरथाददाज्झम्पां ज्वलिते जातवेदसि ॥४७८॥
अजायत नभो वह्निज्वालावलयमालितम् । तदागमोत्सवे दत्तसिन्दूरमिव निर्जरैः ॥४७९॥
साक्रन्दैर्न चटत्कारी दुःखोत्तप्तैर्न चोष्मलः । परमालेख्यलिखित इव जज्ञे शिखी जनैः ॥४८०॥
गङ्गाधरष्टक्किबुद्धो युग्यवाहश्च दण्डकः । तावुद्दा नोनिका वल्गा चेति दास्यस्तदाऽन्वयुः ॥४८१॥
वप्पटोद्भटयोः कुल्यौ सेनटक्षेमटावुभौ । भूपालवल्लभावास्तां वैराग्याद्विजयेश्वरे ॥४८२॥
भावा यत्र निसर्गभङ्गुरतरास्तिष्ठन्ति नैते चिरं चेतः काचघटस्य तस्य घटते दीर्घोऽयमेको गुणः ।
यत्तस्मिन्निहितप्ररूढि न गलत्यायाति न म्लानतां धत्ते नापचयं चमत्कृतिपचो गीर्वाणगङ्गापयः ॥४८३॥
एकषष्टिमतिक्रम्य वर्षान्भूपतिरायुषः । सपत्नीकः पुरारातिगौरीसायुज्यमासदत् ॥४८४॥
अथास्थीनि समादाय चतुर्थे दिवसे तयोः । पुत्रास्तन्वङ्गराजस्य सर्वे गङ्गां प्रतस्थिरे ॥४८५॥
पैतामहेन कोशेन परिवारेण चान्वितः । पित्रा विरोधं जग्राह हर्षस्तु विजयेश्वरे ॥४८६॥

हुई यह श्लोक पढने लगी—॥ ४७२ ॥ 'जो लोग वितस्ता नदीका जल पीकर प्राण त्यागते हैं, उन्हें ब्रह्मवादियों (ज्ञानियों) के समान मोक्ष अवश्य मिलता है' ॥ ४७३ ॥ इस श्लोकका पाठ करनेके बाद उसने वितस्ताके जलसे हाथ-पावँ धोया और नेत्रोंमें उस पुनीत जलका स्पर्श कराके आचमन किया । उसके बाद पिता-पुत्रके स्वाभाविक स्नेहको नष्ट करनेवाले चुगलखोरोंको शाप देते हुए उसने कहा—॥ ४७४ ॥ 'जिन लोगोंने हम दोनोंके साथ हमारे पुत्रका प्राणान्तक वैर कराया है, उनका तथा उनके कुटुम्बियोंका कतिपय दिनोंमें ही नाश हो जायगा' ॥ ४७५ ॥ उस शोकसन्तप्त सतीके अमोघ शापसे जयानन्द-जिन्दुराज आदि शीघ्र ही मर गये ॥ ४७६ ॥ अपने ऊपर हलधरके साथ दुराचारसम्बन्धी अपवादके लिए उसने बड़ी युक्तिके साथ परलोकको दावँपर रखकर कहा—'यदि मैं निर्दोष न होऊँ तो मुझे स्वर्ग न प्राप्त हो' ॥ ४७७ ॥ वह शुचिस्मिता रानी इस प्रकार अपने शीलका परिचय देकर पालकीसे उस धधकती चितामें कूद पड़ी ॥ ४७८ ॥ उस समय उस चितासे ऊपरकी ओर उठती हुई ऊँची-ऊँची लपटोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे उसका स्वागतसमारोह मनाते हुए देवताओंने गगनमण्डलको सिन्दूरसे रंग दिया है ॥ ४७९ ॥ वहाँपर उपस्थित लोगोंकी करुण रोदनध्वनिके कारण जलती हुई चिताकी चटत्कारकी ध्वनि नहीं सुनायी देती थी । वहाँके सभी लोग दुःखरूपी अग्निमें जले जा रहे थे । अतएव उन्हें चिताग्निकी गर्मीका अनुभव ही नहीं हो रहा था और वह चिताकी अग्नि चित्रलिखित-सी प्रतीत होती थी ॥ ४८० ॥ उस समय गंगाधर, टक्किबुद्ध और युग्मवाह (पालकी ढोनेवाला) दण्डक इन तीन सेवकों और उद्दा, नोनिका तथा वल्गा इन तीनों दासियोंने राजा-रानीके साथ अग्निमें प्रवेश किया ॥ ४८१ ॥ तदनन्तर दिवंगत राजा अनन्तदेवके परम प्रेमास्पद वप्पट एवं उद्भटके वंशज सेन तथा क्षेमत ये दोनों वैराग्य धारण करके विजयेश्वर क्षेत्रमें रहने लगे ॥ ४८२ ॥ इस संसारके सभी प्राणी स्वभावतः क्षणभंगुर होनेके कारण अधिक समय तक नहीं टिक पाते, किन्तु मनुष्यके हृदय और काँचकी कुप्पीमें यह बड़ा गुण है कि जिसके भीतर रक्खी हुई अद्भुत बातें तथा गंगाजल कभी भी नहीं विगड़ते और न कभी पुराने ही पड़ते हैं ॥ ४८३ ॥ इस प्रकार एकसठ वर्ष आयु भोगकर अनन्तदेवने अपनी पत्नीके साथ गौरीशंकरका सायुज्य प्राप्त किया ॥ ४८४ ॥ उनकी मृत्युके चौथे दिन तन्वंगराजके पुत्र उन दोनोंकी अस्थियाँ एकत्रित करके गंगामें प्रवाहित करनेको ले गये ॥ ४८५ ॥ तदनन्तर अपने पितामहसे प्राप्त धनराशि तथा परिजनोंके साथ

आद्ये पिता पुरवरे पिता श्रीविजयेश्वरे। तस्मिन्पुत्रस्तु तत्रासीत्पिता तु नगरान्तिके ॥४८७॥
ततोऽतिव्ययिनं पुत्रं दरिद्रो नीतिमान्पिता। अभ्यर्थ्यानर्थभीतश्च संधिं दूतैरयाचत ॥४८८॥
स तैरसकृदायातैर्नतिसिक्तो युक्तिवादिभिः। राजपुत्रः समं पित्रा संधिं निन्ये कथंचन ॥४८९॥
रक्षां पैतामहे कोशे शरीरे चात्मजन्मने। प्रतिशुश्राव जनकः कृतप्रत्यहवेतनः ॥४९०॥
नृपतेः पुत्रमानेतुं विशतो विजयेश्वरम्। दृष्टिः सुष्टैर्गृहैर्दग्धा श्रुतिश्च जनगर्हया ॥४९१॥
स पीतकोशः संगृह्य तनयं प्राविशत्पुरम्। कोशं चास्थापयन्मुद्रां दत्त्वा तदभिधाङ्किताम् ॥४९२॥
अत्रान्तरे तस्य राज्ञो धार्मिकी धीरजायत। दारिद्र्यच्छेदिनी धर्म्या धनवृद्धिश्च सर्वतः ॥४९३॥
तनयो नयनाख्यस्य कल्यः सैल्यपुरौकसः।
कुटुम्बिनो जय्यकाख्यः क्रमाड्डामरतामगात् ॥४९४॥
स्थलोत्पत्तिः स दिग्देशविक्रीतान्नो वणिज्यया। संभृतार्थः शनैर्लुब्धो धनेशस्पर्धितां दधे ॥४९५॥
सार्धं क्रोशं खनित्वा स नित्यं दीनारराशिभिः। पूरितायाः क्षितेः पृष्ठे बहून्व्रीहीनवापयत् ॥४९६॥
दीनारन्यसनं भृत्यैः कारयित्वा प्रतिक्षपम्। बहवो भेदभीतेन तेन गूढं निपातिताः ॥४९७॥
स भाङ्गिलं लब्धुमिच्छन्बलेऽकस्मात्पलायिते। द्राक्षालतानिरुद्धाश्वो हतः केनापि पत्तिना ॥४९८॥
तदीयेनोपलब्धेन धनेन वसुधानलात्। पर्याप्तेनात्यजद्राजा यावदायुर्दरिद्रताम् ॥४९९॥
समूत्सु क्षाल्यमानेषु तद्दीनारेष्वहर्निशम्। कलुषाम्भा बहून्मासान्वितस्ता समपद्यत ॥५००॥

विजयेश्वर क्षेत्रमें रहता हुआ हर्ष अपने पितासे विरोधभाव रखने लगा ॥ ४८६ ॥ पहले तो हर्षका पिता राजधानीमें और उसके पिताका पिता अनन्तदेव विजयेश्वरमें रहता था। अब राजपुत्र हर्ष विजयेश्वरमें और उसका पिता कलश राजधानीमें रहने लगा ॥ ४८७ ॥ कुछ समय व्यतीत होनेके बाद अतिव्ययी अपने पुत्र हर्षसे उसके दरिद्र और नीतिज्ञ पिता कलशने दूतों द्वारा सन्धिका प्रस्ताव किया ॥ ४८८ ॥ उस गर्वीले राजपुत्र हर्षको राजा कलशके दूतोंने बार-बार आकर विनयपूर्वक अनेकानेक युक्तियोंसे समझाया और किसी-किसी तरह उसे अपने पिताके साथ सन्धि करनेको राजी कर लिया ॥४८९॥ उस सन्धिके अनुसार हर्षने प्रतिवर्ष अपने पिताको निश्चित परिमाणमें धन देना स्वीकार किया और राजा कलशने हर्ष तथा उसके पितामहके धन एवं परिजनकी रक्षा करनेका वचन दिया ॥ ४९० ॥ उसके बाद जब राजा कलश विजयेश्वर क्षेत्रकी बस्तीमें प्रविष्ट हुआ, तब वहाँके जले हुए भवनोंको देखकर उसके नेत्र और वहाँवालोंके निन्दावचन सुनकर उसके कान जलने लगे ॥ ४९१ ॥ जब राजा कलशने हाथमें तीर्थजल लेकर कसम खायी, तब हर्ष उसको अपने साथ लेकर नगरमें गया। वहाँपर राजा कलशने हर्षकी समस्त धनराशिपर उसके नामकी सील-मुहर लगवायी और वह धन अलग रखवा दिया ॥ ४९२ ॥ उसके बाद ही राजा कलशके हृदयमें धार्मिक भावना जाग गयी और वह सभी कार्य धर्मके अनुसार करने लग गया। इधर धनसंचयमें दत्तचित्त हो जानेके कारण उसकी आर्थिक स्थिति भी सुधर गयी ॥ ४९३ ॥ उन्हीं दिनों सैल्यपुरवासी नयनका पुत्र जय्यक धीरे-धीरे एक सुसम्पन्न डामर बन गया था ॥ ४९४ ॥ दूर-दूरके प्रदेशोंमें अन्न तथा अन्यान्य पण्य वस्तुएँ बेचकर उसने कुबेरसे स्पर्धा करनेवाली विपुल सम्पदा एकत्र कर ली ॥ ४९५ ॥ उस जय्यकने डेढ़ कोस तककी धरती खोदवाकर उसमें दीनारोंसे भरे ताम्रकलश गड़वा दिये थे और उस जमीनपर धानकी खेती करा रक्खी थी ॥ ४९६ ॥ वह प्रत्येक रात्रिमें सेवकों द्वारा दीनार गड़वाया करता था और उस गुप्त धनका भेद न खुले, इसलिए उनमेंसे कितने ही सेवकोंको उसने मरवा डाला था ॥ ४९७ ॥ एक बार वह अपने सशस्त्र सैनिकोंके साथ भांगिल प्रदेशपर अधिकार करनेके लिये गया हुआ था। वहाँसे उसकी सेना अकस्मात् भाग खड़ी हुई और उसका घोड़ा अंगूरकी लताओंमें फँस गया। उसी समय किसी पैदल सैनिकने उसकी हत्या कर दी ॥४९८॥ इससे उसकी सारी धनराशि राजा कलशको मिल गयी। उस धनके मिलनेसे वह राजा जीवन भरके लिए दारिद्र्यसे मुक्त हो गया ॥ ४९९ ॥ जमीन खोदवाकर निकाले हुए दीनारोंको धोनेसे वितस्ता नदीका जल कई महीने तक

दानोपभोगरहिताः काले क्लेशेन भूयसा । अन्यार्थमर्थान्रक्षन्ति चित्रं लुब्धा महाशयाः ॥५०१॥
प्राणान्धारयते निपीय मरुतः शेते तमोन्धे विले संभोगे परदत्तमिच्छति पटं नग्नत्रपाशान्तये ।
विस्तार्येति कदर्यतामहिरवत्यन्यस्य हेतोर्निधीन्नान्यः कोपि परं परोपकृतिपु प्रौढोस्ति लुब्धं विना ॥५०२॥
अन्यैश्च वहुभिर्मार्गैर्नद्यः सिन्धुमिवाविशन् । नानार्थसंपदस्तास्ता भाग्यभाजं महीभुजम् ॥५०३॥
अर्था भाग्योदये जन्तुं विशन्ति शतशः स्वयम् । दिग्भ्योभ्युपेत्य सर्वाभ्यः सायं तरुमिवाण्डजाः ॥५०४॥
स्रोतांसि प्रवलत्वमेत्य वसुधां मूलेपु पुष्णन्त्यधो व्योम्नोम्भः पतति त्यजन्ति हरितो वारि प्रणालीमुखैः ।
इत्थं शुष्कसरः पयोदसमये संपूर्यते सर्वतो भाग्यानामुदये विशन्ति शतशो द्वारैर्न कैः संपदः ॥५०५॥
जनरक्षणदाक्षिण्ये ततः पितुरिवान्वहम् । कुशला कलशस्यासीत्प्रजापुण्योदयैर्मतिः ॥५०६॥

स्वयं वणिगिवार्थानां गणनाकुशलोऽपि सः ।
विवेक्ता सत्पथत्यागे मुक्तहस्तः सदाऽभवत् ॥५०७॥

उपस्थितौ भाविनौ च पश्यन्नायव्ययौ स्वयम् । अन्तिकान्नात्यजद्भूर्जखटिकादि नियोगिवत् ॥५०८॥
तस्य स्वरूपमूल्येन रत्नादि क्रीणतः स्वयम् । नाशकन्वञ्चनां कर्तुं केऽपि विक्रयकारिणः ॥५०९॥
त्रिवर्गं सेवमानः स विभज्य समयं सुखी । मध्याह्नादूर्ध्वमभवद्दृश्यः सर्वकार्यिणाम् ॥५१०॥
तस्य स्वेपां परेपां च कृत्यमन्विष्यतश्चरैः । अज्ञातः स्वप्नवृत्तान्तः प्रजानामभवद्यदि ॥५११॥
स्ववेश्मेव गृहस्थस्य ध्यायतश्चास्य मण्डलम् । जनो जनपदे जातु न कश्चिद्दैन्यमस्पृशत् ॥५१२॥

कलुषित वना रहा ॥ ५०० ॥ लोभी धनिकगण उचित अवसरपर दान तथा उपभोगसे वंचित रहते हुए अनेकानेक कष्ट सहकर दूसरोंके लिए धनकी रक्षा करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी वात है ॥ ५०१ ॥ लोभी मनुष्य वायु पीकर जीता है, अन्धकाराच्छन्न विलमे सोता है और नग्न होनेपर लाज वचानेके लिए वह औरोंसे कपड़े मॉगकर पहनना चाहता है। इस प्रकार अपनी कृपणताका विस्तार करके वह दूसरोंके लिए धन वचाता है। अतएव लोभी मनुष्यसे वढकर परोपकारपरायण व्यक्ति और कोई नहीं हो सकता ॥ ५०२ ॥ जिस प्रकार अनेक मार्गोंसे आकर नदियॉ समुद्रमे प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार उस भाग्यशाली राजा कलशके पास अनेक मार्गोंसे विविध सम्पदाये आने लगीं ॥ ५०३ ॥ जैसे सन्ध्या समय पक्षिगण विभिन्न दिशाओंसे आकर वृक्षपर पहुँच जाते है, उसी प्रकार भाग्योदयके समय सैकड़ों प्रकारकी सम्पत्तियॉ भाग्यशाली मनुष्यके पास पहुँच जाती हैं ॥ ५०४ ॥ वरसातके समय सूखे सरोवरमे उसके तलेसे अनेक प्रवल सोते फूटकर उसे जलसे भर देते है, आकाशसे मेघ जल वरसाते हैं और चारो ओरके नाले अलग जल लाकर उसमें उड़ेल देते हैं । इस प्रकार वर्षाऋतुमे वह सरोवर पूर्णरूपसे भर जाता है। इसी प्रकार भाग्योदयके समय मनुष्यके पास सैकड़ों द्वारसे सम्पत्तियॉ दौड़ आती है ॥ ५०५ ॥ तदनन्तर प्रजाजनोंके पुण्योदयसे राजा कलशकी सद्‌वुद्धि प्रजापालनके कार्यमें अपने पिताके सदृश उदार तथा निपुण हो चली ॥ ५०६ ॥ यद्यपि वह राजा वैश्योंकी तरह धनकी गणना करनेमे प्रवीण था। तथापि विचारशील होनेके कारण भले मार्गपर धन खर्च करते समय वह मुक्तहस्त हो जाता था ॥ ५०७ ॥ वह वर्तमान तथा भविष्यमे होनेवाले आय-व्ययका वड़ी सावधानीसे देख-रेख करता था। एक साधारण कर्मचारीको भॉति वह भोजपत्र तथा खड़िया सदा अपने पास रखे रहता था ॥ ५०८ ॥ रत्नोंकी खरीदारीके समय वह स्वयं उनका स्वरूप देख तथा भली-भॉति जॉच करनेके वाद ही खरीदता था। अतएव कोई भी जौहरी उसे ठग नहीं सकता था ॥ ५०९ ॥ अपने समयका उचित रीतिसे विभाजन करके त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता हुआ वह राजा दोपहरसे पहले किसी भी कर्मचारीसे नहीं मिलता था ॥ ५१० ॥ स्वकीय तथा परकीय जनोंकी टोह लेनेके लिए नियुक्त गुप्तचरोंके द्वारा उसे प्रजाके स्वप्नसम्वन्धी वृत्तान्तको छोड़कर वाकी सव हाल मालूम हो जाता था ॥ ५११ ॥ जैसे कोई गृहस्थ अपने घरेलू कामकी ओर पूरा ध्यान रखता है, उसी तरह अपने राज्यपर सदा सतर्क दृष्टि

कौलीनचकितो राजा कुर्वन्कण्टकशोधनम् । प्रकटं नात्यजद्दण्डं चौरेभ्योऽपि स जातुचित् ॥५१३॥
न तस्यार्थः कोऽपि नष्टो मन्त्रिणो यमयोजयन् । मन्त्रिणां स पुनश्चक्रे नष्टस्यार्थस्य योजनम् ॥५१४॥
विवाहयज्ञयात्रादिमहोत्सवगताकुलः । नित्यप्रहृष्टो निर्दैन्यस्तद्राज्ये ददृशे जनः ॥५१५॥
तेन नीतिविदाक्रान्ताः क्ष्माभुजः क्षित्यनन्तराः । आहाराचरणेप्यासंस्तदध्यक्षान्विनाक्षमाः ॥५१६॥
तन्वङ्गस्थक्कनादींस्त्रीनायातान्दिगन्तगत् । व्ययितैकानुजान्मल्लप्रमुखान्गुङ्गजानपि ॥५१७॥
अप्रीणयद्बन्धुभृत्यान्स भव्याभिर्विभूतिभिः । कलाभिरमृतार्द्राभिः सोमः सुरपितॄनिव ॥युग्मम्॥५१८॥
अवाप्तपरिपाकोऽपि दौःशील्येन न भूपतिः । कुदैशिकोपदिष्टेन दुष्टाचारेण चोज्झितः ॥५१९॥
टक्केन बुल्लियाख्येन कन्यकाः समुपाहृताः । क्रीतास्तस्य तुरुष्केभ्यो नानादिग्देशसंभवाः ॥५२०॥
स ताभिः परदारैश्च रूपलोभादुपाहृतैः । अवरोधपुरंध्रीणां द्वासप्ततिमढौकयत् ॥५२१॥
बह्वीः कामयमानस्य योषितः प्रतिवासरम् । मत्स्ययूपादिभिर्वृष्यैर्नास्य पुष्टिरहीयत ॥५२२॥
महासमयपूजासु व्यग्रः स गुरुभिः समम् । महाचरूणामाहारं नीतिमुत्सृज्य चाकरोत् ॥५२३॥
एवं शबलकृत्येन पुरं तेन नवीकृतम् । निर्दग्धे विजयक्षेत्रे शिलावेश्म न शूलिनः ॥५२४॥
विजयेशशिलावेश्ममौलावातपवारणम् । नृपोऽम्बरगिरश्चुम्बि जाम्बूनदमयं व्यधात् ॥५२५॥
व्ययस्थितिं चानपायां व्यधत्त त्रिपुरेश्वरे । पिनाकिनश्च प्रासादं स स्वर्णामलसारकम् ॥५२६॥
ततः सत्कर्मकुशलश्चकार कलशेश्वरम् । निःसंख्यहाटकघटीपटलाङ्कशिलागृहम् ॥५२७॥

रखनेवाले उस राजाके राज्यभरमे कोई भी मनुष्य गरीब नहीं दिखायी देता था ॥ ५१२ ॥ बदनामीसे डरनेवाला वह राजा कण्टकशोधन करते समय चोरोंको भी प्रत्यक्ष रूपसे दण्ड नहीं देता था ॥ ५१३ ॥ उससे कभी कोई ऐसी भूल नहीं होती थी कि जिसे सुधारनेके लिए मंत्री नियुक्त करना पड़ता। बल्कि वह तो कभी-कभी मंत्रियोंकी ही भूले सुधार दिया करता था ॥ ५१४ ॥ उसके राज्यकी प्रजा विवाह, यज्ञ, यात्रा आदि सैकड़ों महोत्सवोंमे तन्मय होकर सदा प्रसन्न और दैन्यविहीन जीवन व्यतीत करती थी ॥ ५१५ ॥ उस नीतिकुशल राजाने अपने आस-पासके राजाओंपर इतना प्रबल प्रभाव डाल रक्खा था कि वे उसका दर्शन किये विना भोजन भी नहीं कर सकते थे ॥ ५१६ ॥ जैसे चन्द्रमा अपनी अमृतवर्षिणी किरणोंके द्वारा देवताओं तथा पितरों सन्तुष्ट करता है, उसी प्रकार राजा कलशने अपनी विभूतियोंके द्वारा देशान्तरसे लौटे हुए अपने बान्धव तन्वंगके पुत्र थक्कन आदि तीनों भाइयों एवं अपना छोटा भाई खो देनेवाले गुंगके पुत्र लल्ल आदि सच्चे राज्य-सेवकोंको भरपूर पारितोषिक देकर प्रसन्न किया ॥ ५१७ ॥ ५१८ ॥ यद्यपि दुराचारके कारण होनेवाले कितने ही दुष्परिणामोंका उसे पर्याप्त अनुभव हो चुका था, तथापि दुर्जन ने सिखा-पढ़ाकर जो कुटेव डाल दी थी, उन्हें वह नहीं छोड़ सका ॥ ५१९ ॥ टक्कदेशके निवासी बुल्लिय नामके एक व्यापारीने तुर्कोंके व्यापारियोंसे विभिन्न देशोंसे लायी हुई बहुतेरी सुन्दरी बालिकायें खरीदकर राजा कलशको उपहारके रूपमे दी थीं ॥ ॥५२०॥ राजाने उन सभी सुन्दरियोंको अपने रनिवासमे रख लिया। उनके अतिरिक्त भी रूपके लोभसे बहुतेरी स्त्रियोंको उसने रक्खा था। इस प्रकार कुल मिलाकर बहत्तर स्त्रियाँ उसके अन्तःपुरमे रहती थीं ॥ ५२१ ॥ वह प्रतिदिन अनेक स्त्रियोंके साथ भोग करता था। फिर भी मत्स्ययूप आदि वृष्य अर्थात् पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करनेके कारण उसकी शक्ति नहीं क्षीण होने आती थी ॥ ५२२ ॥ शाक्तमतके नुसार अर्धरात्रिमें की जानेवाली महासमय-पूजापर उसकी बड़ी आस्था थी। उस समय वह नैतिकता त्यागकर अपने शाक्त गुरुओंके साथ खूब मद्यपान करता था ॥ ५२३ ॥ इस प्रकार भले-बुरे सब तरहके कार्य करते हुए भी उस राजाने विजयेश्वर क्षेत्रकी जली हुई बस्तीको नये सिरेसे बसाकर पाषाणका एक नवीन शिवालय बनवाया ॥ ५२४ ॥ विजयेश्वरके प्रस्तरमय मन्दिरके गगनचुम्बी शिखरपर उसने सोनेका छत्र भी लगवाया ॥ ५२५ ॥ विजयेश्वरमें विद्यमान त्रिपुरेश्वरके मन्दिरमे पूजा आदिके लिए उसने खर्चका स्थायी प्रबन्ध कर दिया। उसी क्षेत्रमें एक और शिवालय बनवाकर उसके शिखरपर स्वर्णकलश स्थापित किया ॥ ५२६ ॥ तदनन्तर उस सत्कर्मकुशल राजाने

कलशेशोपरि छत्रं चिकीर्षोः काञ्चनाञ्चितम् । तुरुष्कदेशजः शिल्पी राज्ञोऽभ्यर्णमुपाययौ ॥५२८॥
सहस्रैर्भूरिभिर्हेम्नश्छत्रसिद्धिं वदन्कलाम् । स छादयन्निजां ताम्रे काञ्चनारोपणं विदन् ॥५२९॥
कानिचिद्दिवसान्यासीत्प्राप्नुवन्नृपसत्क्रियाम् । ततोऽतितीक्ष्णप्रज्ञेन नोनकाख्येन मन्त्रिणा ॥५३०॥
अभ्यूह्य शिक्षितकलो विलक्षोऽगाद्यथागतम् । तच्च छत्रं ययौ सिद्धिमत्यल्पैरेव काञ्चनैः ॥५३१॥
अनन्तेशाभिधं वाणलिङ्गमन्याश्च भूपतिः । प्रतिष्ठा विविधाश्चक्रे स शक्राधिकवैभवः ॥५३२॥
नृपे सहजपालाख्ये शान्तिं यातेऽभ्यषिच्यत । ततः संग्रामपालाख्यो राजपुर्यां तदात्मजः ॥५३३॥
राज्यं जिहीर्षुर्वालस्य पितृव्यस्तस्य भूपतेः । भेजे मदनपालाख्यो बलीयानुद्यमं मदात् ॥५३४॥
तद्भयाच्छरणं प्रायान्नृपं साहायकार्थिनी । स्वसा संग्रामपालस्य जस्सराजश्च ठक्कुरः ॥५३५॥
कृतप्रसादो नृपतिः साहायककृते ददौ । तयोः पश्चाज्जयानन्दं शूरैर्विज्जादिभिः समम् ॥५३६॥
तत्र विद्रावितामित्रः स स्फूर्जन्क्रान्तमण्डलः । संग्रामपालामात्यानां कार्यान्ते शङ्क्यतां ययौ ॥५३७॥
कांक्षन्तो गमनं तस्य दत्त्वा तास्ता विभीषिकाः । ते त्रासमैच्छन्नाधातुं स वीरो न त्वकम्पत ॥५३८॥
मतिं राजपुरीयाणामसावेतामदादिति । शङ्कमानेन तेनाथ विज्जे मन्युरुपाहृतः ॥५३९॥
तैस्तत्र दत्तद्रविणैः प्रार्थितोऽथ महामतिः । रक्षापदेशात्स्वं सैन्यं स्थापयित्वा न्यवर्तत ॥५४०॥
एवं राजपुरीं तस्मिन्स्वीकृत्यान्तिकमागते । तुतोष कार्यमर्मज्ञः प्राज्ञः कलशभूपतिः ॥५४१॥
क्रमाद्राजायमानेषु विज्जादिष्वथ पस्पृशे । आमयेन जयानन्दो दैवात्क्षमयहेतुना ॥५४२॥

अपने नामसे कलशेश्वर मन्दिर बनवाया और उसमें अगणित स्वर्णघण्टिकायें बँधवायीं ॥ २५७ ॥ उस कलशेश्वरके मन्दिरपर भी वह स्वर्णछत्र चढाना चाहता था। उन्हीं दिनों उसके पास तुर्कोका एक कारीगर आया ॥ ५२८ ॥ उस शिल्पीने छत्रके लिए कई हजार दीनारके खर्चका अन्दाज बताया। वह तामेके पत्रोंपर सोना चढाना जानता था, किन्तु उसने वह कारीगरी राजासे छिपा रक्खी थी ॥ ५२९ ॥ इस तरह कुछ दिन वह राजाके अतिथिभवनमें रहता हुआ सत्कार प्राप्त करता रहा। किन्तु कुछ ही समय वाद अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धि नोनक नामके राजमंत्रीने अपनी चतुराईसे उसकी कारीगरीका पता लगाकर उस तुर्क शिल्पीको लज्जित कर दिया। जिससे निराश होकर वह वहाँसे चला गया। उसके वाद नोनकने बहुत कम खर्चमें वह छत्र तैयार कराके राजाके सामने रख दिया ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥ इसी तरह इन्द्रसे भी अधिक वैभवशाली उस राजाने अनन्तेशनामक शिवलिंग तथा अनेकानेक देवमूर्तियोंकी स्थापना की ॥ ५३२ ॥ राजपुरीके राजा सहजपालका देहान्त हो जानेपर उसके अल्पवयस्क पुत्र संग्रामपालका राज्याभिषेक किया गया ॥ ५३३ ॥ उसके वाद ही संग्रामपालका चाचा बलवान् मदनपाल अपने पराक्रमसे मदमत्त होकर उस वालकका राज्य छीननेके लिए उद्योग करने लगा ॥ ५३४ ॥ उससे भयभीत होकर संग्रामपालकी वहिन और जस्सराज ठक्कुर राजा कलशके पास सहायता माँगने आये ॥ ५३५ ॥ उनकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा कलशने प्रसन्नतापूर्वक उनकी सहायताके लिए जयानन्द और विज्जको उन दोनोंके साथ भेज दिया ॥ ५३६ ॥ वहाँ पहुँचकर जयानन्दने शत्रुओंको मार भगाया और समस्त राज्य तथा उसके विभागोंपर अधिकार कर लिया। यह देखकर संग्रामपालके मन्त्रियोंको जयानन्दपर सन्देह हो गया ॥ ५३७ ॥ तब उन मन्त्रियोंने उसे वहाँ हटानेके लिए नाना प्रकारकी विभीषिकायें दिखायीं और धमकाया भी। किन्तु जयानन्द इन वातोंसे नहीं डरा ॥ ५३८ ॥ राजपुरीके मन्त्रियोंको यह सलाह विज्जने दी थी। इससे सशंक होकर जयानन्द विज्जपर क्रुद्ध हो गया ॥ ५३९ ॥ तदनन्तर जब वहाँवाले लोग प्रचुर धन देकर वहाँसे चले जानेके लिए कहने लगे, तब जयानन्द रक्षाके बहाने अपनी सेना राजपुरीमें ही छोडकर स्वदेश चल पड़ा ॥ ५४० ॥ अत्यन्त चतुर तथा राजनीतिनिपुण राजा कलश जयानन्दके चातुर्यपूर्ण कार्यसे राजपुरीपर अपना स्थायी प्रभुत्व स्थापित समझकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ५४१ ॥ इसी तरह विज्ज आदि उसके कृपापात्र राजाके सदृश ऐश्वर्यसमन्वित होकर रहने लगे, किन्तु कुछ ही दिनों वाद जया-

स्वास्थ्यवार्तोपलम्भाय भूपतिं गृहमागतम् । वाच्यमस्ति रहः किंचिदित्यूचे स कथान्तरे ॥५४३॥
निर्यातेष्वथ सर्वेषु किंचिन्नैवाब्रवीद्यदा । तदा ताम्बूलतित्यक्षाव्याजाद्विज्जो विनिर्ययौ ॥५४४॥
आप्तेनोक्तोऽपि निर्गच्छन्किं प्रयासीति भूभुजा । मन्त्रिणा चैत्य स प्राज्ञो बहिरेव व्यलम्बत ॥५४५॥
जयानन्दोऽभ्यधाद्भूपमुक्त्वा राजपुरीकथाम् । व्यक्तं नास्त्येव ते राज्यं विज्जे वृद्धिमुपागते ॥५४६॥
आदीयमानाद्विज्जेन कार्येभ्यो वेतनादपि । दर्शयामास गणनां बहुमूल्यां महीभुजे ॥५४७॥
प्राप्तः कलुषतां राजा प्रयातः स्वगृहांस्ततः । याचितो गमनानुज्ञां विज्जेनेङ्गितवेदिना ॥५४८॥
निषेधन्निव दाक्षिण्यलेशान्निर्बन्धकारिणः । तस्यानुज्ञां ददौ गन्तुं सान्तस्तोषो महीपतिः ॥५४९॥
लब्धादेशो गृहान्गत्वा सर्वोपकरणैः समम् । प्रस्थाप्य सोऽग्रतो भ्रातॄनाप्रष्टुं नृपतिं ययौ ॥५५०॥
राजधर्मगभीरत्वक्रूरयोः स्वामिभृत्ययोः । काचिदेव क्षणे तस्मिंश्चेष्टाऽभूदद्भुतावहा ॥५५१॥
न यत्प्रभुः प्रियं भृत्यं गमनात्स न्यवर्तयत् । उपालेभे समन्युश्च न यद्भृत्यः प्रियं प्रभुम् ॥५५२॥
सहोत्थितेन कतिचित्पदानि सह भूभुजा । चिरं कृत्वा कथां नीचैर्हसन्विज्जो विनिर्ययौ ॥५५३॥
जिन्दुराजं हलधरो मुमूर्षुर्दूषयन्यथा । तथा विज्जं जयानन्दः स व्यवारोपयत्पदात् ॥५५४॥

तल्लक्ष्मीमात्रशेषां क्ष्मां कृत्वा गच्छन्विधीयताम् ।
हृतार्थो विज्ज इत्युक्तिं नाग्रहीन्मन्त्रिणां नृपः ॥५५५॥

निवर्तयिष्यति क्ष्माभृन्नियतं गमनादमुम् । इत्याशयाऽन्वगाद्विज्जं राजवर्जं जनोऽखिलः ॥५५६॥

नन्दको दुर्भाग्यवश एक प्राणान्तक रोग हो गया ॥५४२॥ उसका स्वास्थ्यसमाचार पाने के लिए राजा कलश विज्ज आदिके साथ जयानन्दके घर गया। वहाँपर वार्तालापके प्रसंगमें जयानन्दने कहा—'महाराज ! मैं एकान्तमें आपसे कुछ कहना चाहता हूँ'। यह सुनकर विज्जको छोड़कर बाकी सब लोग वहाँसे हट गये। फिर भी जयानन्दने कुछ नहीं कहा। तब पान थूकनेके बहाने विज्ज भी वहाँसे हट गया॥ ५४३ ॥ ५४४ ॥ उसके जाते समय राजा तथा जयानन्द दोनोंने ऊपरी मनसे कहा कि 'आप क्यों जाते हैं ?'। फिर भी विज्ज रुका नहीं ॥ ५४५ ॥ तब जयानन्दने राजपुरीका सब वृत्तान्त बतानेके बाद कहा कि 'इस विज्जका प्राबल्य तथा ऐश्वर्य देखकर कौन कह सकता है कि राजपुरीपर आपका अधिकार है ?' ॥ ५४६ ॥ साथ ही जयानन्दने यह भी बताया कि 'राजकीय कार्योंके द्वारा विज्जने वहाँ खूब धन कमाया है'। उस कमाईका ब्योरा भी उसने राजाको समझाया ॥ ५४७ ॥ यह हाल सुनकर राजाके मनमें कुछ मैल आ गया। उसके बाद राजा राजमहल लौट आया। उसी समय इंगितमात्रसे हार्दिक अभिप्राय समझनेमें निपुण विज्जने राजाका मनोभाव समझकर उससे विदेश जानेकी अनुमति माँगी ॥ ५४८ ॥ उसकी प्रार्थना सुनकर राजाने ऊपरी मनसे तो ऐसा करनेसे रोका, किन्तु विशेष अनुरोध करनेपर अन्तःकरणमें प्रसन्न होते हुए उसने उसे विदेश जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ५४९ ॥ तब वह अपने घर गया और सब सामान भाइयोंके साथ आगे भेजकर राजासे मिलनेके लिए राजमहल गया ॥ ५५० ॥ राजनीतिक गाम्भीर्यके कारण उस समय परस्पर कठोर व्यवहार करनेवाले स्वामी तथा सेवकका काम बड़ा विस्मयजनक दीख रहा था ॥ ५५१ ॥ क्योंकि उस समय न राजाने अपने प्रिय सेवक विज्जको विदेश जानेसे रोका न उस रुष्ट विज्जने ही अपने आदरणीय स्वामीको इस विषयमें कोई उलाहना दिया ॥ ५५२ ॥ तदनन्तर जाते समय राजा विज्जके साथ कुछ दूर पहुँचाने गया। उस समय धीरे-धीरे उन दोनोंमे कुछ बातें भी होती रहीं और बादमें हँसता हुआ विज्ज वहाँसे चला गया ॥ ५५३ ॥ पूर्वकालमें मरणशय्यापर पड़े हुए हलधरने जिन्दुराजको लांछित करके उसका उच्चाटन किया था। इसी तरह इस समय जयानन्दने विज्जका उच्चाटन करके उसकी पुनरावृत्ति कर दी ॥ ५५४ ॥ विज्जको जाते देखकर राजाके मन्त्रियोंने कहा—'महाराज ! विज्ज राज्यकी प्रचुर सम्पत्ति अपने साथ लिये जा रहा है। यहाँ वह अपना कोई भी सामान नहीं छोड़ रहा है। अतएव उसकी सम्पत्ति छीन ली जानी चाहिए'। किन्तु राजा कलशने मंत्रियोंकी इस सलाहपर ध्यान नहीं दिया ॥ ५५५ ॥ 'इस प्रकार जाते हुए विज्जको राजा अवश्य रोक लेगा' यह

आस्कन्दं शङ्कमानोऽस्थाद्विज्जाद्राजा बलोर्जितात् । तृणस्पन्देऽपि चकितो निर्निद्रः पञ्च यामिनीः ॥५५७॥
तस्मिञ्शूरपुराद्याते निवृत्तेष्वनुगन्तृषु । निवृत्तशङ्कस्तां शङ्कां प्रादुश्चक्रे स मन्त्रिणाम् ॥५५८॥
ते तदाकर्ण्य यं मन्त्रं विज्जार्थहरणेऽब्रुवन् । तस्याविधाने भूभर्तुरमन्यन्त नयज्ञताम् ॥५५९॥
विज्जादयस्तु निर्द्रोहा यं यं देशमशिश्रयन् । तत्र तत्रैव पूज्यत्वं रत्नानीव प्रपेदिरे ॥५६०॥
विज्जोऽधिकं प्रवृद्धोऽपि दैवतस्येव भक्तिमान् । पद्भ्यां कलशदेवस्य सत्यंकारः सदाऽभवत् ॥५६१॥
एवं निर्वास्य विज्जादीनचिरावाप्तवैभवः । क्षिप्रं सूर्यमतीशापाज्जयानन्दः क्षयं ययौ ॥५६२॥
राज्ञो विरोधकृद्वक्तुं शापस्याव्यभिचारिताम् । प्रमयं जिन्दुराजोऽपि तस्मिन्नेव क्षणे ययौ ॥५६३॥
तेऽपि विज्जादयः क्षिप्रमचिरावाप्तसंपदः । प्रापुः शापोचितं सर्वे प्रमयं गौडमण्डले ॥५६४॥
आकस्मिकेऽथ प्रमये विज्जः प्रमयमाययौ । सुदीर्घबन्धनक्लेशं प्रापुस्तदनुजा अपि ॥५६५॥
पलायितेषु कारायास्तेषु व्याघ्रेण पाजकः । हतस्तदनुजाः शेषा भुक्तक्लेशाः क्षयं ययुः ॥५६६॥
द्वित्रास्तद्द्वेषकाराणां नानश्यन्मदनादयः । अदीर्घेणैव कालेन दुरन्तैर्यैर्भविष्यते ॥५६७॥
जयानन्दसहायोऽथ तत्पुत्रान्परिपालयन् । सर्वाधिकारी भूपेन वामनाख्यो व्यधीयत ॥५६८॥
यस्य तास्ता व्यवहृतीर्नीतिज्ञस्याद्भुतावहाः । वर्णयन्ति वयोवृद्धा गोष्ठीष्वद्यापि धीमताम् ॥५६९॥
ग्रामानवन्तिस्वाम्यादिभोग्यानाहृत्य लुब्धधीः । राजा कलशगञ्जाख्यं कर्मस्थानं विनिर्ममे ॥५७०॥
मन्त्रिणे नोनकायासौ धनोत्पादविदेऽप्यदात् । क्रौर्यत्रस्तो न पादाग्रं जनरक्षणदक्षिणः ॥५७१॥

सोचकर राजाके सिवाय बाकी सभी लोग विज्जके पीछे-पीछे चले ॥ ५५६ ॥ तभीसे राजा कलश भी उस अत्यन्त बलवान् विज्जके आक्रमणकी आशंकासे बेचैन रहने लगा। तिनका हिलनेपर भी वह भयभीत हो उठता था। इस प्रकार जागते-जागते राजाकी पाँच रात्रियाँ गुजर गयीं ॥ ५५७ ॥ राजधानीसे चलकर विज्ज जब शूरपुरसे आगे पहुँच गया और उसे पहुँचाने गये हुए लोग लौट आये, तब राजाको कुछ शान्ति मिली और तभी उसने मंत्रियोंके समक्ष अपनी आशंका प्रकट की ॥ ५५८ ॥ यह बात सुनकर मंत्रियोंने विज्जका सर्वस्व अपहरण करनेके लिए दी गयी सलाह न मानना राजाकी नीतिज्ञता समझी ॥ ५५९ ॥ वे विज्ज आदि द्रोहभावनाविहीन लोग जहाँ कहीं भी गये, सर्वत्र रत्नोंके समान उनका सम्मान किया गया ॥ ५६० ॥ इस तरह सम्मान बढनेपर भी विज्जके हृदयमें राजा कलशके प्रति जो देवता सदृश आदरभाव था, उसमें तनिक भी न्यूनता नहीं आयी। वह सदा कलशके चरणोंका अनन्य भक्त बना रहा ॥ ५६१ ॥ इस तरह विज्ज आदिको निकलवा देनेके बाद बहुत थोड़े समय तक अधिकारका वैभव भोगकर रानी सूर्यमतीके शापानुसार जयानन्द कालके गालमें समा गया ॥ ५६२ ॥ इसी तरह स्वर्गीय महाराज अनन्तदेवके साथ द्रोह करनेवाला जिन्दुराज भी सती सूर्यमतीका शाप सत्य करनेके लिए शीघ्र ही यमपुरीको पयान कर गया ॥ ५६३ ॥ वे विज्ज आदि भी कुछ दिन सम्पत्तिका आनन्द लेकर रानीके शापानुसार गौड़देशमें जाकर मर गये ॥ ५६४ ॥ वहाँपर एक आकस्मिक रोगसे विज्जका प्राणान्त हो गया और उसके भाई भी चिरकालतक जेलमें पड़े सड़ते रहे ॥ ५६५ ॥ जब वे कारागारसे निकलकर भागे, तब विज्जके भाई पाजकको रास्तेमें बाघ खा गया और शेष भाई भी अत्यधिक दुःख भोग-भोगकर मर गये ॥ ५६६ ॥ इस तरह उन पिता-पुत्र अर्थात् राजा अनन्तदेव और कलशमें वैर उत्पन्न करानेवाले धूर्तोंमेंसे मदन आदि दो-तीन व्यक्ति यद्यपि तुरन्त नहीं मरे, तथापि कालान्तरमें उनकी बड़ी दुर्दशा हुई ॥ ५६७ ॥ तदनन्तर जयानन्दके सहायक एवं राजाके पुत्रोंका पालन करनेवाले वामनको कलशने सर्वाधिकारीके पदपर बैठाया ॥ ५६८ ॥ वामन बड़ा चतुर एवं राजकार्यमें निपुण व्यक्ति था। उसके अद्भुत चातुर्य एवं उत्तम कार्य-प्रणालीकी बड़े-बड़े वृद्ध पुरुष अब भी सराहना करते हैं ॥ ५६९ ॥ कुछ ही दिनों बाद राजा कलश बड़ा लोभी हो गया। उसने अवन्तिस्वामी आदिके मंदिरोंके नाम लगे गाँवोंको जब्त करके कलशगंज नामसे एक नयी कचहरी स्थापित की ॥ ५७० ॥ यद्यपि उसका मंत्री नोनक धनसंग्रहमें बहुत निपुण था, किन्तु उसके क्रूर स्वभावको

मन्त्रिणो राजकलशापत्यान्यत्यन्तरङ्गताम्। लेभिरे क्ष्माभुजः पार्श्वे प्रशस्तकलशादयः ॥५७२॥
सुताः स्वाच्छन्द्यविवशाश्चौराः संध्यादिसंश्रयाः। युक्त्या निदधिरे राज्ञा निवद्धस्त्राधिकारिणः ॥५७३॥
पुनर्मदनपालेन क्रान्ते राजपुरीपतौ। साहायकाय व्यसृजत्सेनान्यं वप्पटं नृपः ॥५७४॥
प्रतापैर्भूपतेस्तेन भृत्यांशेनापि निर्जितः। वद्ध्वा मदनपालोऽपि कश्मीरान्संप्रवेशितः ॥५७५॥
भ्राता वराहदेवस्य कन्दर्पाख्यो महीभुजा। कृतो द्वाराधिपो वीरो विदधे डामरक्षयम् ॥५७६॥
वभूव जिन्दुराजात्स शिक्षितो नयविक्रमौ। भूम्यनन्तरसामन्तमुकुटस्पृष्टशासनः ॥५७७॥
स राजपुर्यादिजयी द्वारं परमकोपनः। क्षणे क्षणेऽत्यजद्राज्ञा प्रसाद्य ग्राहितः स्वयम् ॥५७८॥
मदनः क्षितिपालेन प्रापितः कम्पनेशताम्। लब्धप्रकर्षान्वोपादीन्डामरान्वहुशोऽवधीत् ॥५७९॥
सेवावशीकृतः श्येनपालं स नगराधिपम्। चक्रे विजयसिंहाख्यं हताशेषमलिम्लुचम् ॥५८०॥
कन्दर्पोदयसिंहाद्यैः प्रहिते लोहरे सकृत्। राजा भुवनराजस्य दूरं निःसारणं व्यधात् ॥५८१॥
कीर्तिराजस्य तनयां स च नीलपुरप्रभोः। लब्ध्वा भुवनमत्याख्यां रिपोश्छिन्नामयोऽभवत् ॥५८२॥
कार्यप्रतिग्रहे कर्तुं प्रवृत्तिं ग्राहितोऽभवत्। हृत्वा विजयसिंहाद्यो नृपेण नगरेशताम् ॥५८३॥
गुङ्गात्मजः स मल्लोऽथ तेन द्वारपतिः कृतः। राज्ञां मौलिमणिस्थाने स्वप्रतापमरोपयत् ॥ युग्मम् ॥५८४॥
शौर्यं निष्परिवारस्य पार्थस्योत्तरगोग्रहे। उरशासंप्रवेशे वा श्रुतं मल्लस्य मानिनः ॥५८५॥
पञ्चाशैस्तुरगैर्यत्स कृष्णां तीर्त्वा व्यपाहरत्। राज्यं वाजिव्रजैः सार्धमभयाख्यस्य भूभुजः ॥५८६॥

ध्यानमें रखकर प्रजा-रक्षणकुशल राजा कलशने उसको पादाग्रका अधिकार नहीं प्रदान किया ॥ ५७१ ॥ उस समय राजकलश नामक मंत्रीके पुत्र प्रशस्तकलश आदि राजा कलशके प्रेमपात्र तथा अन्तरंग सेवक वन गये थे ॥ ५७२ ॥ किन्तु उनमेसे कुछ मंत्रिपुत्र स्वेच्छाचारी, असत्यभाषी, चोर और लूट-मार करनेवाले थे। इसीसे राजाने उन्हें किसी भी अधिकारके पदपर नहीं वैठाया ॥ ५७३ ॥ कालान्तरमें मदनपालने फिर राजपुरीके राजापर आक्रमण किया। तव वहाँके राजाकी सहायताके लिए सेनापति वप्पटको भेजा ॥ ५७४ ॥ राजा कलशके प्रवल प्रतापसे वप्पट जैसे साधारण अधिकारीने मदनपालको परास्त करके कैद कर लिया और उसे वहाँसे कश्मीर भेज दिया ॥ ५७५ ॥ तदनन्तर राजा कलशने वराहदेवके भाई कन्दर्पदेवको द्वारपति वनाया और उस पराक्रमी वीरने आक्रमण करके डामरोंको सर्वथा नष्ट कर दिया ॥ ५७६ ॥ वीर कन्दर्पदेवने जिन्दुराजसे राजनीति तथा पराक्रमकी शिक्षा पायी थी। अतएव थोड़े ही समयमें उसने आस-पासके सामन्तोंपर अपनी धाक जमा ली। जिससे वे उसकी आज्ञाको शिरोधार्य मानने लगे ॥ ५७७ ॥ उसका स्वभाव वहुत ही उग्र था। अतएव जव कभी वह कुपित होकर अपना पद त्यागनेको उद्यत हो जाता था, तव राजा कलश उसे समझाकर पुनः उसके पदपर प्रतिष्ठित कर देता था ॥ ५७८ ॥ वादमें राजाने मदनपालको कम्पनेश (सेनापति) वनाया तो उसने अपनी वीरतासे उद्दण्डतामें वढ़े-चढ़े वोप आदि डामरोंको मार डाला ॥ ५७९ ॥ वाजोंको पालनेवाले विजयपालकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर राजाने उसे नगरपाल अर्थात् कोतवाल वना दिया। उस पदको पाते ही विजयपालने राज्यके सव चोरोंको पीस दिया ॥ ५८० ॥ तत्पश्चात् राजा कलशने कन्दर्पदेव तथा उदयसिंह आदि वीरोंको लोहर प्रान्तमें भेजकर उनके द्वारा भुवनराजको वहाँसे निकलवाकर दूर कर दिया ॥ ५८१ ॥ नीलपुरके राजा कीर्तिराजकी कन्या भुवनमतीसे अपना विवाह करके राजा कलशने उसके साथ प्राचीन शत्रुताके रोगको सदाके लिए समाप्त कर दिया ॥ ५८२ ॥ गुंगके पुत्र मल्लको शासनकार्य सिखानेके लिए राजा कलशने विजयसिंहसे कोतवालका पद छीनकर मल्लको दे दिया ॥ ५८३ ॥ कुछ दिनों वाद उस मल्लको राजाने द्वारपति वना दिया। इस पदपर पहुँचकर उसने सामन्त राजाओंके मुकुटोंमें जटित रत्नोंपर अपने प्रतापकी महिमा अंकित कर दी ॥ ५८४ ॥ जैसे उत्तरगोग्रहणकालमें एकाकी अर्जुनकी वीरता संसारमें प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उरशानगरीमें प्रविष्ट होते समय वीर मल्ल द्वारा प्रदर्शित वीरता संसार भरमें प्रसिद्ध हो गयी ॥ ५८५ ॥ क्योंकि उस वीरने केवल पाँच-छ घुड़सवारोंके साथ कृष्णानदीको पार करके अभयराजके राज्यको और

एवं वशीकृतभुवो भूपतेर्नयवेदिनः । सममेवाष्टभूपालास्त्रिषष्टेऽब्देऽविशन्पुरम् ॥५८७॥
कीर्तिर्न्यब्यपुराधीशश्चाम्पेयो भूभृदासटः । तुक्कात्मजस्तु कलशो वल्लापुरनरेश्वरः ॥५८८॥
राजा संग्रामपालाख्यः स च राजपुरीपतिः । उत्कर्षो लोहरोर्वीभृदौर्वशो युङ्गजो नृपः ॥५८९॥
गाम्भीरसीहः कान्देशः काष्ठवाटवराधिपः । श्रीमानुत्तमराजोऽपि राजानमुपतस्थिरे ॥ तिलकम् ॥५९०॥
राजलोकः प्रवृद्धोऽपि घने जनपदेऽभवत् । दुर्लक्ष्यो वार्षिकसरित्पूरो वारिनिधाविव ॥५९१॥
तस्मिन्क्षणे शिलीभूतवितस्तासलिले नृपैः । शीतक्षणेऽप्यसंक्षीणं सुखं तैरन्वभूयत ॥५९२॥
मनसापि हि भूपाला यत्ते किंचिदचिन्तयन् । प्राप्तमेव पुरेऽपश्यन्वामनेन तदाहृतम् ॥५९३॥
कौशलं मन्त्रिणस्तस्य रराजेतरदुर्लभम् । निमित्तं तदसंभ्रान्तो नित्यवद्योऽप्यवाहयत् ॥५९४॥
पार्थिवेष्वथ यातेषु मल्ले कार्यपराङ्मुखे । क्षितिपालेन कन्दर्पो द्वारं स्वीकारितः पुनः ॥५९५॥
अभिमानघनो मन्त्री कृतारब्धिर्निजैर्धनैः । दुर्गं स स्वापिकं नाम युक्त्या दुर्ग्रहमग्रहीत् ॥५९६॥
स प्रविष्टोऽपि नगरं खिन्नः केनापि हेतुना । पार्थिवाभ्यर्थ्यमानोऽपि कार्यं नैवाग्रहीद्यदा ॥५९७॥
तदा प्रशस्तकलशो नित्यं दूत्यं समाचरन् । तदुत्सिक्तोक्तिसंतप्तः संस्पृशन्नभिमानिताम् ॥५९८॥
निजश्रियातिभूयस्या भृतीन्संगृह्य शस्त्रिणः । तत्पदे रत्नकलशं स्वभ्रातरमकारयत् ॥५९९॥
सोऽर्थैः क्रीतप्रथोऽप्यासीन्न कन्दर्पसमः क्वचित् । किं चित्रोल्लिखितः सिंहः सत्यसिंहक्रियां स्पृशेत् ॥६००॥
ततः क्रमेण भूभर्त्रा भृत्यरत्नं कथंचन । राजस्थानाधिकारं स नगरे ग्राहितः पुनः ॥६०१॥

उसके साथ ही सब अश्वोंको भी छीन लिया ॥ ५८६ ॥ तदनन्तर पृथिवीपर विजय प्राप्त करनेवाले एवं नीति-कुशल राजा कलशके नगरमें ४१६३ लौकिक वर्षमें एक साथ आठ राजे अतिथि होकर आये ॥ ५८७ ॥ वे थे—न्यच्चपुराधीश कीर्तिराज, चम्पाका राजा आसट, वल्लापुरके राजा तुक्कका पुत्र कलश, राजपुरीका राजा संग्रामपाल, लोहरप्रान्तका राजा उत्कर्ष, उरशाका राजा युगज, कान्ददेशका राजा गाम्भीरसीह और काष्ठवाटका राजा श्रीमान् उत्तमराज ॥ ५८८–५९० ॥ उन सब राजाओंका समुदाय उस विशाल राजधानीमें पहुँचकर समुद्रमें मिलनेवाली बरसातकी नदियोंके समान लुप्त हो गया, यह पता ही नहीं लगता था कि वे सब कहाँ हैं ॥ ५९१ ॥ उस समय ठढक विशेष थी, अतएव वितस्ता नदीका पानी बर्फके समान शीतल हो गया था। जाड़ा भी भयानक पड़ रहा था। फिर भी उन राजाओंको वहाँ सब तरहसे आनन्दका ही अनुभव हुआ ॥ ५९२ ॥ वे राजे जिस किसी वस्तुको पानेकी बात मनमें सोचते थे, यह वस्तु मन्त्रिशिरोमणि वामनके द्वारा पहलेसे लाकर उपस्थित दिखायी देती थी ॥ ५९३ ॥ उस समय मन्त्री वामनने जो अद्भुत एवं सराहनीय कार्यकौशल दिखाया, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता था। क्योंकि उस नैमित्तिक कार्यका भी उसने नित्यकार्यके समान सम्पन्न किया था ॥ ५९४ ॥ कुछ दिन बाद वे राजे चले गये। उसी बीच मल्लने द्वारपतिका पद त्याग दिया। नव राजा कलशने उसके स्थानपर कन्दर्पदेवको नियुक्त कर दिया ॥ ५९५ ॥ उस स्वाभिमानी मन्त्री कन्दर्पने अपने धनसे सैन्यसंग्रह आदिका उद्योग करके अत्यन्त दुर्ग्राह्य स्वापिक दुर्गपर कब्जा कर लिया ॥ ५९६ ॥ वहाँसे लौटनेपर किसी अज्ञात कारणवश कन्दर्पदेवका मन खिन्न हो गया, जिससे राजाके अनेकशः आग्रह करनेपर भी उसने द्वारपतिपदको नहीं स्वीकार किया ॥ ५९७ ॥ इस कार्यमें मुख्य बाधक प्रशस्तकलश था। क्योंकि कन्दर्पने अभिमानके साथ उसे बहुतेरे कटु वचन कहे थे। अतएव तैशमें आकर प्रशस्तकलशने अपना स्वाभिमान प्रकट करते हुए अपने धनसे एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित करके राजाकी ओरसे उस सेनाके सेनापति-पदपर अपने भाई रत्नकलशकी नियुक्ति करा दी ॥ ५९८ ॥ ५९९ ॥ क्योंकि रत्नकलश घरका सम्पन्न था। अतएव उसे निजी सम्पत्तिके बूतेपर उच्चपद प्राप्त करनेका अवसर मिल गया। किन्तु उसमें कन्दर्पदेवके समान योग्यता नहीं थी। चित्रलिखित सिंह और वास्तविक सिंहका पराक्रम एक जैसा भला कैसे हो सकता था ? ॥ ६०० ॥ कुछ दिनों बाद राजाने बहुत अनुनय करके भृत्यरत्नसे नगरमें राजस्थानाधिकारका पद स्वीकार

अतिताडनतश्चौरे विपन्नेऽथ कृपाकुलः । त्यक्त्वा तमग्र्यधीकारं विषण्णो जाह्नवीमगात् ॥६०२॥
पटान्तकृतसंरोधस्ताडयित्वा करं प्रभोः । कोपाद्देशान्तरं यातस्तं प्रत्यास्ते स्म मन्युमान् ॥६०३॥
अत्यन्तखेदितोऽप्यासीदानीतस्यान्तिकं पुनः । दर्पं हर्तुं नृपस्तस्य संनद्धो न तु जीवितम् ॥६०४॥
इत्थं पुरुषसिंहानां प्रौढदात्यौ विसोढवान् । आरोहमवरोहं च सोऽन्तरज्ञः क्षमापतिः ॥६०५॥
उपाङ्गगीतव्यसनं नर्तकीसंग्रहादरः । देशान्तरोचितं राज्ञा तेनैवेह प्रवर्तितम् ॥६०६॥
ततो जयवनोपान्ते निरन्तरमहागृहम् । स्वनामाङ्कं पुरं कर्तुं प्रावर्तत विशांपतिः ॥६०७॥
मठाग्रहारप्रासादमहागृहपरंपराः । सत्तोयोपवनास्तत्र ययुः सिद्धिं सहस्रधा ॥६०८॥
अत्रान्तरे राजसूनुर्हर्षः सोत्कर्षपौरुषः । गुणैर्लेभे प्रकाशत्वमन्यभूपालदुर्लभैः ॥६०९॥
सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः । कृत्स्नविद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि ॥६१०॥
लुब्धेन पित्रा संत्यक्ता जना नानादिगागताः । गुणशौर्योज्ज्वलास्तेन गृहीताः कृतवेतनाः ॥६११॥
अपर्याप्ते पितृकृते वेतने व्ययशालिनः । एकाहान्तरितं तस्य भोजनं त्यागिनोऽभवत् ॥६१२॥
पितरं गायन इव व्यक्तं गीतैः स रञ्जयन् । भर्तव्यभरणं चक्रे तद्दत्तैः पारितोषिकैः ॥६१३॥
उद्गायनि पुरस्तस्मिन्कदाचिदथ पार्थिवः । सभ्येषु प्रीयमाणेषु शौचायोत्थाय निर्ययौ ॥६१४॥
तेन प्रसङ्गभङ्गेन जानतेजोवधः सुधीः । क्षुभ्यन्वैलक्ष्यकोपाभ्यां कुमारः क्षितिमैक्षत ॥६१५॥

कराया ॥ ६०१ ॥ तदनन्तर एक दिन राजाकी आज्ञासे एक चोरको इतना पीटा गया कि वह उसी मारसे मर गया। इस घटनासे सुकुमारहृदय मल्लको बहुत खेद हुआ। जिससे पद त्यागकर वह गंगातटकी ओर चल पड़ा ॥ ६०२ ॥ उसके जाते समय स्वयं राजा कलशने आगे आकर विनम्र भावसे उसका पल्ला पकड़ लिया और जानेसे रोका। किन्तु मल्ल राजाका हाथ झटकारकर क्रुद्धभावसे चला गया ॥ ६०३ ॥ उसकी इस धृष्टतासे राजा भी क्रुद्ध हो उठा और उसने मन्तरियोंको भेजकर उसे पकड़वा मँगाया। उस समय राजा केवल उसका दर्प दूर करना चाहता था। उसके प्राणोंका लेनेकी इच्छा नहीं थी ॥ ६०४ ॥ इस प्रकार मनके मनोभावका विज्ञ तथा दृढनिश्चयी वह राजा अपने वीर अधिकारियोंके आरोह अर्थात् अधिकार-स्वीकृति एवं अवरोह अर्थात् पदत्यागको वह शान्तिपूर्वक सह लेता था ॥ ६०५ ॥ अन्यान्य देशोंके समान अपने कश्मीर देशमें भी उपांगगीतका व्यसन एवं उच्चकोटिकी नर्तकियोंके संग्रहका आदर इन दोनों प्रथाओंका प्रचलन राजा कलशने ही किया था ॥ ६०६ ॥ तदनन्तर उसने जयवनके निकट अपने नामसे एक नया नगर बसाया। जिसमें बहुत बड़े-बड़े भवन बने हुए थे ॥ ६०७ ॥ उसके बाद थोड़े ही दिनोंमें वहाँपर सैकड़ों अग्रहार, हवेलियाँ, छोटे-बड़े मकान, सरोवर, बगीचे और बाजार बनकर तैयार हो गये ॥ ६०८ ॥ उधर कलशतनय हर्ष अपने विविध सद्गुणों तथा अनुपम पुरुषार्थके कारण सारे संसारमें प्रसिद्ध हो गया था। अन्य राजाओंमें उसके समान गुणोंका मिलना कठिन था ॥ ६०९ ॥ वह सभी देशोंकी भाषायें जानता और उन विभिन्न भाषाओंमें कविता भी करता था। वह समस्त विद्याओं तथा कलाओंका निधान था। इसीसे उस राजपुत्रकी अन्य देशोंमें भी अच्छी ख्याति हो गयी थी ॥ ६१० ॥ अन्यान्य देशोंसे आये हुए जिन विदेशी विद्वानों तथा कवियोंको उसका लोभी पिता कलश आश्रय नहीं देता था, उन्हें हर्ष अपने यहाँ रखकर उचित वेतन देता था ॥ ६११ ॥ ऐसा करनेसे उसका खर्च बहुत बढ़ गया था और पिताकी ओरसे मिलनेवाले वेतनसे उसे इतनी कठिनाई उठानी पड़ती थी कि कभी-कभी उसको एक दिनका अन्तर देकर तीसरे दिन भोजन करके गुजारा करना पड़ जाता था ॥ ६१२ ॥ एक उत्कृष्ट गायकके समान वह राजसभामें गायन गाकर अपने मधुर गीतोंसे राजाको प्रसन्न कर देता था। उसके उपलक्ष्यमें जो पारितोषिक मिलता था, उस धनसे वह विद्वानोंका भरण-पोषण करता था ॥ ६१३ ॥ एक रोज राजपुत्र राजसभामें अपने पिताके समक्ष बड़ी तन्मयताके साथ उच्च स्वरमें गा रहा था। उस गायनके माधुर्यसे सभी सभासद गद्गद हो रहे थे। उसी समय राजा कलश किसी आवश्यक कार्यसे उठकर बाहर चला गया ॥ ६१४ ॥ राजाके इस प्रकार प्रसंगभंग करनेसे

प्रभुर्वीतक्षान्तिः सुहृदतिशठः स्त्री परुषवाक्सुतो गर्वोन्नद्धः परिजन उदात्तप्रतिवचाः ।
इयान्सोढुं शक्यो ननु हृदयदारी परिकरो न तु श्रोतावज्ञालुलितनयनान्तं परिभवन् ॥६१६॥

पितुरेव तदा भृत्यो विश्शावट्टाभिधो विटः । शाधि राज्यं निहत्येमं नर्मणेवेत्युवाच तम् ॥६१७॥
अधिक्षिपन्स तं रोपान्नानेनोक्तमसांप्रतम् । इत्यासन्नेन हसता धम्मटेनाप्यकथ्यत ॥६१८॥
अग्रे भोगेच्छवश्छन्नाः कुमारानन्वगान्पितुः । स्नेहं प्रदर्श्य स्वीकुर्युर्वेश्या कामिसखीरिव ॥६१९॥
पुनः सभां संप्रविष्टस्तं पिता पर्यतोपयत् । प्रीतिदायैस्ततस्तैस्तैः साधुवादैश्च मानिनाम् ॥६२०॥
अन्येद्युस्तु पितुः पार्श्वात्स भुक्त्वा स्वगृहान्गतः । अभ्येत्य विश्शावट्टेन तदेव जगदे रहः ॥६२१॥
उपपन्नं तत्तदुक्त्वा तेनाभीक्ष्णं निषेधता । निर्बध्नन्नपि हस्तेन सोऽथ कोपादताड्यत ॥६२२॥
लग्नाभिघातं रुधिरं वमन्तं घ्राणवर्त्मना । तं वीक्ष्य सोभिजातोभूत्सदाक्षिण्यो नृपात्मजः ॥६२३॥

भृत्यैः प्रक्षालयन्नस्रं तस्येदृक्पाप्मनो भवेत् ।
उक्तेनापीति कथयन्स्मित्वा वासांस्यदापयत् ॥६२४॥

अनिच्छोरपि तस्येच्छा दानात्तेनान्वमीयत । दुःशीलेनान्यकामिन्याः स्मितमात्रादिव स्पृहा ॥६२५॥
असकृत्कृतयत्नः स ततः कालेन भूयसा । तं प्रैरयत्तत्र कृत्ये मध्ये स्वीकृत्य धम्मटम् ॥६२६॥
स रोहद्द्रोहसंकल्पजन्मना पाप्मना श्रितः । संमन्त्र्य पितरं हन्तुं तीक्ष्णान्प्रायुङ्क्त सर्वतः ॥६२७॥

राजकुमार हर्षके स्वाभिमानको असह्य चोट पहुँची। वह लज्जा तथा क्रोधसे क्षुब्ध होकर धरतीकी ओर ताकने लगा ॥ ६१५ ॥ क्षमाहीन स्वामी, अतिशयशठ मित्र, कटुभाषिणी स्त्री, अत्यन्त अभिमानी पुत्र और उत्तर देनेवाला हृदयदाही भृत्यवर्ग सहा जा सकता है, किन्तु श्रोताओंकी तिरस्कार भरी दृष्टि गायकों एवं वक्ताओंको असह्य हो जाती है ॥ ६१६ ॥ उसी समय राजाके आश्रित विश्शावट्ट नामके विट (धूर्त) ने हँसकर राजपुत्र हर्षसे कहा—'इस राजाको मारकर राज्य करिए' ॥ ६१७ ॥ यह सुनकर कुपित हर्षने उसे धिकारा, किन्तु उसके पास ही बैठे हुए धम्मटने भी विश्शावट्टकी बातका समर्थन करते हुए कहा—'इसका कहना भी अनुचित नहीं है' ॥ ६१८ ॥ जैसे भावी सुखोपभोगकी लालसासे वेश्यायें अपने प्रेमीके मित्रोंसे भी प्रेम करनेका प्रयत्न करती है, वैसे ही भविष्यमें सुखभोगकी कामना रखनेवाले राजाके अनुचर भी समय-समयपर राजपुत्रोंके समक्ष अपनी भक्तिको गुप्तरूपसे प्रकट करते रहते हैं ॥ ६१९ ॥ तदनन्तर राजा कलश जब फिर राजसभामें लौटकर आया, तब उसने उस स्वाभिमानी राजपुत्रको सादर सप्रेम पारितोपिक और अनेकशः धन्यवाद देकर प्रसन्न किया ॥ ६२० ॥ दूसरे रोज जब राजपुत्र हर्ष भोजन करके अपने पिताके भवनसे घर लौट रहा था, तब विश्शावट्टने एकान्तमें फिर वही बात छेड़ी ॥ ६२१ ॥ सो सुनकर हर्षने उस धूर्तको बहुत फटकारा और समझाते हुए बहुतेरी बातें कहीं। तथापि उसने अपना दुराग्रह नहीं त्यागा। तब अत्यधिक क्रुद्ध होकर हर्षने उसके मुखपर एक करारा थप्पड़ जड़ दिया ॥ ६२२ ॥ उस प्रहारके कारण विश्शावटकी नाकसे रुधिर बहने लगा। यह देखकर स्वभावतः उदार होनेके कारण हर्षके हृदयमें उसके प्रति दयाभाव जागृत हो गया ॥ ६२३ ॥ तदनन्तर तत्काल उसने सेवकोंको बुलवाकर उसका रुधिर धुलवाया और उसके रुधिराक्त वस्त्र भी बदलवा दिये। फिर कहा—'इस प्रकारकी पापमयी भावना मनमें लानेसे ऐसी ही दुर्गति होती है' ॥ ६२४ ॥ इस बातसे उस धूर्तने यह समझ लिया कि हर्ष मेरी सलाहसे सहमत है, यद्यपि वैसी बात थी नहीं। क्योंकि दुराचारी पुरुष परस्त्रीके सहज मुसकानको भी देखकर यह समझ लेता है कि 'यह स्त्री मुझसे प्रेम करती है' ॥ ६२५ ॥ कुछ दिनों बाद उस धूर्तने उसी बातके लिए उद्योग करना आरम्भ कर दिया। इस कार्यकी ओर हर्षको अग्रसर करनेके लिए उसने धम्मटको मध्यस्थ बनाया। तदनुसार विश्शावट्ट धम्मटके द्वारा राजपुत्र हर्षको पितासे द्रोह करनेके लिए उकसाने लगा ॥ ६२६ ॥ अन्तमें उस धूर्तकी सतत प्रेरणासे राजपुत्र हर्षके मनमें पितृद्रोहरूपी पापमय वृक्ष अंकुरित तथा पल्लवित हो गया और कुछ नीचोंकी सलाहसे उसने गुप्तरूपसे पितापर प्रहार करनेके लिए स्थान-स्थानपर घातकोंको नियुक्त कर

शश्वत्स गोचरीभूतस्तेषां स्नेहलवस्पृशाम् । न घातितः सूनुना च वर्जिता न च तत्कथा ॥६२८॥
आप्तत्वं तीक्ष्णवर्गेऽथ प्रतिभेदभयाद्गते । तां विश्शावट्ट एवाशु वार्तां राज्ञे न्यवेदयत् ॥६२९॥
बुद्ध्वात्राजपुत्रस्तत्तस्मिन्नहनि जातभीः । भोक्तुं नागात्पितुः पार्श्वमपि दूतैः कृतार्थनः ॥६३०॥
सोऽपि तस्मिन्ननायाते तत्रार्थे शान्तसंशयः । दिने तत्र मनस्तापान्नाभुङ्क्त सपरिच्छदः ॥६३१॥
सभ्रातृकस्य प्राप्तस्य प्रातर्दुःखं न्यवेदयत् । सुचिरं थक्कनस्याङ्के शिरो विन्यस्य सोऽरुदत् ॥६३२॥

उक्त्वा च धम्मटोदन्तं बद्ध्वा तस्य समर्पणम् ।
विधेहीत्यभ्यधान्नापि तं भङ्गीभणितिक्रमैः ॥६३३॥

न कृताधिगमावावां कृत्यस्यास्येत्युदीर्य तम् । अभाषेतां भ्रातुरर्थे पुनस्तन्वङ्गनन्दनौ ॥६३४॥
त्वत्प्रसादबलाद्राजन्नापन्नत्राणदीक्षितौ । यावावां तत्प्रवेशार्थं व्यक्तद्वारं निशास्वपि ॥६३५॥

कथं नु पृथिवीपाल प्राप्ते प्राणात्ययक्षणे ।
निर्दोषो वा सदोषो वा ताभ्यां संत्यज्यतेऽनुजः ॥ युगलकम् ॥६३६॥

स्वामिद्रोहापवादश्च भवेत्तद्रक्षणाद्ध्रुवम् । देशत्यागं तदुत्सृज्य शरणं नान्यदावयोः ॥६३७॥
इत्यादि संभाष्य तयोः पादन्यस्तोत्तमाङ्गयोः । रुदित्वा गमनानुज्ञां कथंचित्पार्थिवो ददौ ॥६३८॥
पथि कश्चिदमुं हन्यान्मध्योकृत्येति धम्मटम् । तौ विनिर्जग्मतुर्देशात्ततः सबलवाहनौ ॥६३९॥
तन्वङ्गजेषु यातेषु विविक्तीकृतमन्दिरः । सुतमानीय नृपतिः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥६४०॥
आसंसारं जगत्यस्मिन्सर्वतः ख्यातकीर्तिना । जनकेनैव जन्यस्य ज्ञप्तिरुत्पाद्यते जनैः ॥६४१॥

दिया ॥ ६२७ ॥ इस योजनाके अनुसार राजा कलश कई बार उन घातकोंके चक्रमें फँसा, परन्तु हर्षने पितृ-स्नेहवश उन घातकोंको पिताका वध नहीं करने दिया। फिर भी उस योजनाका परित्याग उसने नहीं किया ॥ ६२८ ॥ तदनन्तर स्वयं विश्शावट्टने 'घातक लोग ही राजासे मिलकर यह भेद खोल देंगे' इस भयसे उस षड्यंत्रका सारा भेद राजा कलशको कह सुनाया ॥ ६२९ ॥ इस बातका पता लगानेपर राजपुत्र हर्ष भयभीत हो उठा और राजाके बुलानेपर भी नित्यकी तरह उस रोज उसके यहाँ भोजन करने नहीं गया ॥ ६३० ॥ राजपुत्रके इस व्यवहारसे राजा कलशको उस गुप्त षड्यंत्रकी सत्यतापर पूर्ण विश्वास हो गया। इस बातसे उसे बहुत दुःख हुआ और उस दिन उसने तथा उसके परिजनोंने भोजन नहीं किया ॥ ६३१ ॥ अगले दिन थक्कन तथा उसका भाई राजासे मिलने गया, तब राजा कलशने अपने दुर्भाग्यका वह सारा वृत्तान्त उनसे कहा और उनकी गोदमें माथा रखकर बड़ी देरतक रोता रहा ॥ ६३२ ॥ उसने उन दोनोंसे धम्मटका भी सारा हाल कहा, किन्तु 'उसे कैद कर ले आओ' ऐसा स्पष्ट आदेश नहीं दे सका ॥ ६३३ ॥ सो सब सुनकर तन्वंग-के उन दोनों पुत्रोंने कहा—'राजन्! हम दोनोंको धम्मटके इस षड्यंत्रका कुछ भी पता नहीं था ॥ ६३४ ॥ हम दोनों तो आपकी कृपासे आजतक विपत्तिग्रस्त लोगोंकी रक्षा करनेमे सदा तत्पर रहते आये थे और आपकी रक्षाके लिए सदा सावधान रहते हैं ॥ ६३५ ॥ हे पृथिवीपाल! हमारा भाई दोषी हो या निर्दोष। अपने प्राणोंपर विपत्ति आ जानेपर भी उसे हम कैसे त्याग सकते है? ॥ ६३६ ॥ ऐसी परिस्थितिमें यदि हम अपने भाई धम्मटकी रक्षा करते है या उसका पक्ष लेते है तो हमारे हिस्सेमें स्वामिद्रोहका पातक आता है। अतएव हमारे लिए देशत्यागके सिवाय और दूसरा कोई मार्ग ही नहीं रह जाता' ॥ ६३७ ॥ ऐसा कहकर उन दोनोंने राजा कलशके पैरोंपर माथा रखकर जानेके लिए आज्ञा माँगी। तब राजाने भी आँखोंमें आँसू भरके किसी-किसी तरह बड़े कष्टसे अनुमति दी ॥ ६३८ ॥ 'मार्गमें इसे कोई मार न सके' इस विचारसे उन दोनों भाइयोंने धम्मटको बीचमें रक्खा और अपना सब सामान, सेना तथा वाहन आदि अपने साथ लेकर वहाँसे चल पड़े ॥ ६३९ ॥ उन थक्कन आदि तन्वंगके पुत्रोंके चले जानेपर राजा कलशने एकान्तमें राजकुमार हर्षको बुलवाकर सान्त्वना देते हुए कहा—॥ ६४० ॥ 'सृष्टिके आरम्भसे इस धरतीपर यशस्वी पिताके द्वारा

पुत्र शीतांशुनेवात्रिं दिग्द्वीपख्यातकीर्तिना । भवता तु सुपुत्रेण मां जानात्यखिलो जनः ॥६४२॥
स त्वं गुणवतामग्र्यो निरर्गलयशा भवन् । असाधुसेव्यमध्वानं वद कस्मान्निषेवसे ॥६४३॥
पैतामहं निजं चार्थं यन्न तुभ्यं समार्पयम् । तत्र हेतुमनाकर्ण्य नासूयां कर्तुमर्हसि ॥६४४॥
रिक्तः स्वेभ्यः परेभ्यश्च प्राप्नोत्यभिभवं नृपः । इति निर्धार्य हि मया क्रियते कोशरक्षणम् ॥६४५॥

पुरप्रतिष्ठां निष्पाद्य क्षिप्त्वा राज्यधुरं त्वयि ।
वाराणस्यां गमिष्यामि नन्दिक्षेत्रेऽथ वा पुनः ॥६४६॥

तद्राज्यकोशयोः स्वामी बुभूषुर्न चिराद्भवान् । अतितात्पर्यतः कस्मादनार्योचितमीहसे ॥६४७॥
संभाव्यते त्वयि न तद्यन्ममावेदितं खलैः । यथार्थकथनात्तस्मात्कौलीनं विनिवार्यताम् ॥६४८॥
विशुद्धये करोत्वेष स्वकृतस्याप्रतिश्रवम् । स्नेहादितीच्छंस्तद्राजा साभिप्रायं वचोऽभ्यधात् ॥६४९॥
अपलापवचोमात्रं निनीषुस्तस्य हेतुताम् । जनप्रत्यायने सोऽभूद्यस्मात्क्षान्तिसमुत्सुकः ॥६५०॥
हर्षस्तु साधुवादैस्तात्पितुः संपूज्य भाषितम् । वक्ष्याम्याप्तमुखे तत्त्वमित्युक्त्वा निर्ययौ बहिः ॥६५१॥
सामान्यप्रेरणादेषा चिकीर्षाऽभूदिति ब्रुवन् । स पितृप्रहितं दूतं ह्रीतः स्वावसथं ययौ ॥६५२॥
दूतं म्लानाननं वीक्ष्य पाणिभ्यां ताडयञ्छिरः । हा पुत्रेति वदन्राजा तस्यास्कन्दमदापयत् ॥६५३॥
हतेऽस्मिन्स्वशिरच्छिन्द्यामिति प्रोक्तवतः प्रभोः । निदेशाद्वेष्टयित्वैव तस्थुस्तद्वेश्म शस्त्रिणः ॥६५४॥

ही प्रजाजनोंमे पुत्रकी ख्याति होती रही है ॥ ६४१ ॥ किन्तु लोकव्यापी यह नियम हमारे और तुम्हारे ऊपर नहीं लागू होता। क्योंकि जैसे चन्द्रमासे अत्रि ऋषिकी ख्याति होती है, वैसे ही तुम जैसे विश्वविख्यात, यशस्वी एवं सुयोग्य पुत्रके सम्बन्धसे मुझे भी सब लोग जानते हैं ॥ ६४२ ॥ गुणियोंमें अग्रणी एवं विख्यात यशस्वी होते हुए भी तुम इस नीचोंके सेवनीय मार्गपर क्यों चल रहे हो ? ॥ ६४३ ॥ अब तक जो मैंने तुम्हारे पितामहकी और अपनी सम्पत्ति तुम्हें नहीं सौंपी, उसका कारण सुने बिना तुम्हें मेरे ऊपर क्षुब्ध न हो जाना चाहिए ॥ ६४४ ॥ 'धनहीन राजा अपने और पराये दोनोंसे तिरस्कृत होता है' इस बातको ध्यानमें रखकर ही मैंने इस कोशकी रक्षा की है ॥ ६४५ ॥ यह जो नये नगरका निर्माण हो रहा है, उसे पूरा करके मैं सारा राज्यभार तुम्हें देकर मैं काशी अथवा नन्दिक्षेत्र चला जाऊँगा और वहाँ ही तप करूँगा ॥ ६४६ ॥ यह राज्यसिंहासन और समस्त राज्यकोश शीघ्र तुम्हारे हाथ आनेवाला है। ऐसी परिस्थितिमें तुम जल्दबाजी तथा व्याकुलताके अधीन होकर अपनी शक्तिका ऐसे निंद्य एवं नीच कार्यमे क्यों अपव्यय कर रहे हो ? ॥६४७॥ उन झूठे तथा कुटिल पुरुषोंने मेरे समक्ष जो बुरा-भला कहा है, उस बातकी संभावना मुझे तुम्हारी ओरसे होती नहीं दिखायी देती। अतएव जो यथार्थ बात हो, उसे मेरे सामने कहकर तुम अपनेपर लगाये गये कलंकको धो डालो' ॥ ६४८ ॥ पुत्रस्नेहके अधीन होकर राजा कलशने हर्षसे ये वचन जान-बूझकर कहे थे। क्योंकि उसे विश्वास था कि अपनेको निर्दोष साबित करता हुआ वह यही कहेगा कि 'मेरे ऊपर किया गया आरोप सर्वथा मिथ्या है' ॥ ६४९ ॥ वह राजा राजपुत्र हर्षके उस अपराधको क्षमा कर देनेके लिए तैयार था। वह तो केवल जनसाधारणके मनमे यह बात बैठा देना चाहता था कि 'हर्षके ऊपर लगाया गया लांछन एकदम झूठा है' ॥ ६५० ॥ राजपुत्र हर्षने पिताकी आज्ञाको साधुवादपूर्वक अंगीकार करके कहा—'महाराज ! मैं किसी आप्त पुरुषके द्वारा सच्चा वृत्तान्त कहला भेजूँगा'। इतना कहकर वह चल पड़ा ॥ ६५१ ॥ तदनन्तर राजाके द्वारा भेजे गये विश्वासपात्र दूतसे उसने कहा—'सच तो यह है कि औरोंके कहनेसे मैने वह काम करनेका विचार किया था'। ऐसा कहकर लज्जित होता हुआ राजपुत्र हर्ष अपने महलमे चला गया ॥ ६५२ ॥ जब राजाने अपने भेजे हुए दूतको मलिनमुख होकर लौटते देखा तो अपने दोनों हाथोंसे सिर पीटते हुए 'हायरे अभागे पुत्र !' ऐसा कहकर उसे तुरन्त कैद कर लेनेका आदेश दे दिया ॥ ६५३ ॥ उस आदेशके साथ ही उसने यह भी कह दिया कि 'यदि वह मारा गया तो मैं भी प्राण दे दूँगा'। इस प्रकार राजाकी आज्ञा पाकर सशस्त्र राजपुरुषोंने राजपुत्रके महलको

तीक्ष्णास्तु पिहितद्वाराः परिवार्य नृपात्मजम् । ऊचुः सुपरुषां वाचमेवं निश्चितमृत्यवः ॥६५५॥
अस्मान्घृणी प्रमादी च विरुद्धं छन्न कारयन् । घातयित्वा दुराचार क्व जीवन्स्थातुमिच्छसि ॥६५६॥
रक्षिष्यति सुतं स त्वां स पिता रक्षितस्त्वया । ज्ञातेयं युवयोरस्ति वयमेव हताः पुनः ॥६५७॥
युध्यस्व मध्यगोऽस्माकं त्वां निहन्मोऽन्यथा वयम् ।
एवं सर्वप्रकारं ते व्यक्तं नास्त्येव जीवितम् ॥६५८॥
तां वार्तां भूपतेः श्रुत्वा व्याकुलस्याग्रतः स्थितः । हर्षान्तिकं दण्डकाख्यः प्रायान्निजमहत्तरः ॥६५९॥
तीक्ष्णैर्निजतया दत्तप्रवेशः स नृपात्मजम् । प्रसृत्योवाच मतिमानेवं सर्वान्विमोहयन् ॥६६०॥
क्षत्रियापुत्र जीवित्वा कल्पानल्पेतरानपि । कारणैरपि गन्तव्यं नियमान्नियतेर्वशम् ॥६६१॥
तदेतस्मिन्समासन्ने मरणेऽव्यभिचारिणि । यदर्थं गृह्यते शस्त्रं स मानः पाल्यतां त्वया ॥६६२॥
कृतश्रुतः ख्यातयशा युवा सुक्षत्रियो भवान् । तदाहवविलम्बेन कार्यं किमिव पश्यसि ॥६६३॥
एतेषु सुसहायेषु मयि चाग्रेसरेऽधुना । विपत्तिर्विजयो वापि प्रतापिंस्तव शोभते ॥६६४॥
उत्तिष्ठ नखकेशादियोजनं कारय द्रुतम् । वीरपट्टं बधानापि स्वःस्त्रीपरिणयस्रजम् ॥६६५॥
इत्युक्त्वा क्षुरकर्मार्थं राजपुत्रं सनापितम् । प्रावेशयत्पूज्यमानस्तीक्ष्णैरास्यन्तरं गृहम् ॥६६६॥
न्यस्तासिधेनुर्हर्षेण दत्तझम्पः क्षणात्स्वयम् । पश्चात्प्रविश्य तद्वेश्म चक्रे सुनिहितार्गलम् ॥६६७॥

चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६५४ ॥ उधर उन घातकोंको भी उस षड्यंत्रका भेद खुल जानेकी बात मालूम हो गयी थी, जिससे उन्हें विश्वास हो गया कि अब हमें प्राणदण्ड अवश्य मिलेगा। अतएव वे सब राजपुत्रके महलमें घुस गये और भीतरसे द्वार बन्द कर लिया। तदनन्तर वे राजकुमारको चारों ओरसे घेरकर इस प्रकार कर्णकटु वचन बोलने लगे। उन्होंने कहा—॥ ६५५ ॥ 'अरे दुष्ट ! तू अत्यन्त प्रमादी और नीच है। बिना आगा-पीछा सोचे तू राजद्रोह करनेको तैयार हो गया ? अरे दुराचारी ! हमें इस प्रकार मौतके मुँहमें ढकेलकर तू कहाँ और कैसे जीवित रहेगा ? ॥ ६५६ ॥ जब हमलोग तेरे पिताको मारने चले, तब तूने बीचमें पड़कर उसे बचा लिया। अतएव वह भी तुझे अपना पुत्र समझकर बचा लेगा। क्योंकि तुम दोनोंमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध है, लेकिन हम लोग व्यर्थ मारे जायँगे ॥ ६५७ ॥ अतएव तू हमारे साथ रहकर राजाके सैनिकोंसे युद्ध कर। नहीं तो हमीं लोग तुझे मार डालेंगे। इस तरह अब सर्वथा तेरा जीवन संकटमें रहेगा' ॥ ६५८ ॥ उधर राजाको भी इस बातका पता लग गया था। अतएव वह बहुत घबरा गया। उस समय उसके पास दण्डक नामका वृद्ध प्रतीहार खड़ा था ॥ ६५९ ॥ राजमहलसे वह वृद्ध प्रतीहार राजपुत्र हर्षके महलकी ओर गया। उसे देखकर उन घातकोंने उसको राजपुत्रका विश्वस्त सेवक समझकर भीतर जाने दिया। तदनन्तर उस बुद्धिमान् दण्डकने उन सब घातकोंको चक्करमें डालते हुए कहा—॥६६०॥ 'हे क्षत्रियपुत्र ! जब कि पाँच मुख्य देवताओं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर और सदाशिवको भी निश्चितसंख्यक कल्पोंकी आयु भोगनेके बाद विधाताके अधीन होकर एक दिन चले जाना पड़ता है ॥ ६६१ ॥ ऐसी परिस्थितिमें आपको यह सुनिश्चित तथा प्रशंसनीय मृत्युका सुअवसर प्राप्त हो रहा है। अतएव जिस आत्माकी रक्षाके लिए शस्त्र धारण किया जाता है, अपने उस स्वाभिमानकी रक्षा करिए ॥ ६६२ ॥ आप युवा, विद्वान्, यशस्वी तथा लोकविख्यात क्षत्रिय हैं। तब आप युद्धमें विलम्ब किस लिए कर रहे हैं ? ॥ ६६३ ॥ इधर देखिए, ये वीर आपकी सहायताके लिए तैयार खड़े हैं. साथ ही आपका सेवक मैं भी युद्धके लिए पूर्ण रीतिसे तैयार हूँ। अतएव हे प्रतापिन् ! अब तो हम लोगोंके लिए विजय और मरण दोनों ही श्रेयस्कर हैं ॥ ६६४ ॥ अब उठिये और नख, केश तथा दाढ़ी-मूछ आदि साफ कराके स्वर्गीया अप्सराओंकी स्वयंवरमालाके सदृश वीरपट्ट बाँधिए' ॥ ६६५ ॥ तदनन्तर उस वृद्धने नाई बुलवाकर राजपुत्र हर्षको उसके साथ भीतर भेज दिया। भीतर जाते समय हर्षने अपनी तलवार बाहर ही छोड़ दी। उस समय उन घातकोंने उस वृद्ध प्रतिहारकी बड़ी सराहना की ॥ ६६६ ॥ तदनन्तर वह वृद्ध भी अपनी तलवार बाहर छोड़कर हर्षके पीछे-पीछे भीतर चला गया और वहाँ पहुँचकर द्वारको

ततः स राजस्थानीयं तमारादब्रवीद्वचः। रक्षितो राजपुत्रोऽयं क्रियतां स्वोचितं त्वया ॥६६८॥

भूतग्रहादिभवमौषधिभिर्विरोधिजातं बलैः प्रहरणप्रभवं तनुत्रैः।
निर्वाप्यते प्रतिभयं पृथिवीपतीनां सार्वत्रिकं तु रभसाद्भुवि बुद्धिवृद्धैः ॥६६९॥

नदन्तस्तुमुलं योधास्ततो राजसुतास्पदे। आरोढुमाययुर्वप्रहर्म्यादि प्रविविक्षवः ॥६७०॥
तीक्ष्णा दृढद्वारगृहस्थितं त्यक्त्वा नृपात्मजम्। यावन्निर्गन्तुमिच्छन्ति हन्यमाना युयुत्सवः ॥६७१॥
द्वित्राः प्रसङ्गसांनिध्यान्मध्यपातं समाश्रिताः। तावद्विनिर्ययुर्वीरा निर्द्रोहा अभिमानिनः ॥६७२॥

ते निर्याताः सूर्यमतीगौरीशाश्रयिणो गृहात्।
सदाशिवान्तिकं प्रापुर्घ्नन्तो युधि विरोधिनः ॥६७३॥

रक्ष्यमाणोऽपि भूभर्तुर्गिरा ज्ञातेयशालिनः। राजज्ञातिर्हतस्तेषु प्रथमं सहजाभिधः ॥६७४॥
द्विजस्तिव्याभिधो वीरः पण्डितः शौर्यमण्डितः। रामदेवश्च केशी च कर्णाटोऽरिभटैर्हतः ॥६७५॥
केचित्त्यजन्तः शस्त्राणि स्वं घ्नन्तः केऽपि च स्वयम्। लेभिरे वधबन्धादि पापाः कापुरुषोचितम् ॥६७६॥
सितपट्यां सहस्यस्य चतुःषष्ठे स वत्सरे। वैरं नीत्वा पितापुत्रौ विप्लवः कारितो विटैः ॥६७७॥

हठत्यागासक्तिः प्रिययुवतिसंप्रेरणवचः खलासङ्गः पूर्वप्रणयपरिहारो जनयितुः।
अमात्येन भ्रात्रा सममपरमात्राथ कलहः कुमाराणां बुद्धिं पितरि विपरीतां प्रतनुते ॥६७८॥

एवं स खलसंगत्या कुमारो लब्धलाघवः। बन्धं कारागृहे प्रापदसुखानि सुखोचितः ॥६७९॥
राज्ञी भुवनमत्यस्मिन्बद्धे माध्यस्थ्यसंविदि। स्थापिता मानिनी कण्ठच्छेदं कृत्वा जहावसून् ॥६८०॥

भीतरसे बन्द कर लिया ॥६६७॥ तत्पश्चात् पास ही खड़े राजाके एक विश्वस्त पुरुषसे खिड़कीके झरोखेमेंसे झाँकते हुए वृद्धने कहा कि 'राजपुत्र सुरक्षित हैं. अब तुम्हें जो उचित जँचे सो करो' ॥ ६६८ ॥ इस धरतीपर बुद्धिमान् मंत्री भूत-ग्रह आदिसे ग्रस्त राजाकी औषधियोंसे. शत्रुजनित संकटके समय सेनासे, शस्त्रसंकटके समय कवचसे और सार्वत्रिक संकटके अवसरपर उस भयसे भी भीषण भय उपस्थित करके राजाकी रक्षा करते हैं ॥ ६६९ ॥ तदनन्तर वीरगर्जन करते हुए राजाके सैनिक राजकुमारके महलमें घुसनेके लिए उसकी दीवारोंपर चढने लगे ॥ ६७० ॥ ऐसी स्थितिमें वे घातक लोग उस दृढ कपाटवाले कमरेके भीतर गये हुए राजकुमारको वहाँ ही छोडकर लडते-मरते हुए बाहर निकलने लगे ॥ ६७१ ॥ वहाँ दो-तीन व्यक्ति ऐसे भी थे कि जिनका उस षड्यन्त्रसे कोई सम्बन्ध नहीं था केवल बीच-बचाव करनेके लिए वे वहाँ पहुँच गये थे। वे वहाँसे सकुशल निकल गये ॥ ६७२ ॥ बाहर निकले हुए लोग विरोधियोंको मारते-काटते हुए सूर्यमती रानीके गौरीश्वर मन्दिरके पासवाले मकानसे होते हुए सदाशिव मन्दिरके पास जा पहुँचे ॥ ६७३ ॥ राजा कलश अपने स्वजनोंको बहुत मानता था। इसीलिए उसने उनकी रक्षा करनेके लिए अपने सैनिकोंको आज्ञा दे रक्खी थी। तदनुसार रक्षा करनेपर भी राजा कलशका बान्धव सबसे पहले मारा गया ॥ ६७४ ॥ वीर, शौर्यसे मण्डित तथा विद्वान पण्डित तिव्य नामका ब्राह्मण, रामदेव तथा कर्नाटक देशनिवासी केशी ये तीन वीर शत्रुपक्षवालोंके हाथों मारे गये ॥ ६७५ ॥ उनमेंसे कितने ही लोगोंने हथियार डाल दिये कितनोंने आत्महत्या कर ली कितने मार डाले गये और कितने ही कायर कैद कर लिये गये ॥ ६७६ ॥ इस प्रकार ४१६४ लौकिक वर्षकी पौष शुक्ल प्रतिपदाको उन धूर्तोंने पिता-पुत्रमें वैर कराके इस काण्डका सूत्रपात किया था ॥ ६७७ ॥ हठधर्मिता तथा दुराग्रहपर आसक्ति, प्रिय युवतीके प्रेरणादायक तथा उत्तेजक वाक्य शठ पुरुषोंका संग. पिताके पूर्व प्रेममें अन्तर. अमात्य-बान्धव तथा सौतेली माताके साथ कलह. इन्हीं कारणोंसे राजपुत्रोंका मन अपने पिताके विषयमें विकृत हो जाया करता है ॥ ६७८ ॥ दुष्टोंकी संगतके कारण सुख भोगने योग्य राजपुत्र हर्षको इस प्रकार अविचारपूर्ण कार्य करनेसे भयानक कारागारके निवासका दुःख झेलना पड़ा ॥ ६७९ ॥ राजपुत्र हर्षके सम्बन्धमें राजा कलशके साथ जो शर्त निश्चित हुई थी, उसमें मानवती महारानी भुवनमती मध्यस्थ थीं। अतएव राजाके द्वारा हर्षको कारागारका दण्ड दिये जानेपर उस रानीने

रक्षिणो मन्त्रिणामाप्ताँस्तस्य विन्यस्य भूपतिः । प्राहिणोदुचितान्भोगान्सुतस्नेहाद्दिने दिने ॥६८१॥
चक्रिकायामशक्तोऽयमिति संचिन्त्य भूभुजा । भृत्यः प्रयागनामाऽस्य निजः पार्श्वान्न वारितः ॥६८२॥
नोनको हर्षमुद्दिश्य स्वेनान्यैश्च महीभुजम् । जीवितं लोचने वास्य कृष्येतामित्यभाषत ॥६८३॥
नृपः स शीलवैकल्ये पशुतुल्ये ह्रियं त्यजन् । रिपोरिव तनूजस्य चकमे कतिचित्प्रियाः ॥६८४॥
तासु श्वशुरवाल्लभ्यमवाप्य सुगलाभिधा । बभूव तुक्कभूभर्तृनप्त्री भर्तृवधार्थिनी ॥६८५॥
संमन्त्र्य नोनकः सा च द्वौ सूदावशनान्तरे । रसं प्रदातुं हर्षस्य पापं प्रैरयतां ततः ॥६८६॥
अन्यसूदमुखाद्वार्तां प्रयागस्तामवाप्तवान् । प्रभुं तद्दाप्यमानान्नपरिहारमकारयत् ॥६८७॥
तेनान्नेन परीक्षार्थं दापितेनापजीवितौ । हर्षः श्वानौ निशम्याभून्निराशो निजजीविते ॥६८८॥
प्रयुक्तिं गूढदण्डस्य पितुरेव स तां विदन् । ततः सर्वाणि भोज्यानि स्पृष्ट्वैवौज्झीद्दिने दिने ॥६८९॥
प्रयागोपहृतेनासीत्परं वाह्येन सर्वदा । भोज्येन येन केनापि कुर्वञ्जीवितधारणम् ॥६९०॥
अन्नस्याभोजनं श्रुत्वा राजा सूदैर्निवेदितम् । ततः प्रयागमानीय तत्र पप्रच्छ कारणम् ॥६९१॥
प्रयोजकौ च सूदौ च सोपलभ्य न्यवेदयत् । रसार्पणकथां कृत्स्नां तज्ज्ञानं च स्वयं प्रभोः ॥६९२॥
अथान्येष्वपि सूदेषु पित्रा दत्तेषु शङ्कितः । राजसूनुर्न बुभुजे प्रयागोपहृतं विना ॥६९३॥
स सर्वेषु विरुद्धेषु यद्यत्तत्रात्यवाहयत् । मेने तत्तद्दिनं लब्धं शेषेष्वास्थापराङ्मुखः ॥६९४॥
अत्रान्तरे समुदभूदकस्मान्नाशसूचकः । अदृष्टपूर्वो भूभर्तुः सदाचारविपर्ययः ॥६९५॥

अपने हाथसे अपनी गर्दन काटकर प्राण त्याग दिया ॥ ६८० ॥ राजा कलशने कारागारमे भी हर्षकी सम्हालके लिए विश्वस्त मंत्रियोंको पहरपर नियुक्त किया था और पुत्रस्नेहके कारण उसके लिए राजकुमारोंके योग्य भोजन तथा भोगकी वस्तुयें भेजता था ॥ ६८१ ॥ बाल्यावस्थासे सदा साथ रहनेवाले प्रयाग नामके सेवकको सीधा-सादा तथा राजनीतिक कार्योंमे भाग न लेनेवाला समझकर हर्षके पास नियुक्त कर दिया था ॥ ६८२ ॥ तदनन्तर मंत्री नोनकने एकान्तमे राजाको सलाह दी कि 'या तो आप स्वयं अथवा किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा हर्षको मरवा डाले। यदि यह संभव न हो तो उसकी दोनों आँखे तो अवश्य निकलवा ली जायँ' ॥ ६८३ ॥ उन नोनक जैसे दुष्ट मंत्रियोंकी मंत्रणासे राजा कलश फिर शीलभ्रष्ट होकर पशुसदृश निर्लज्जतापूर्ण बर्ताव करने लगा। तदनुसार अपनी पुत्रवधुओंमेसे कुछ सुन्दरियोंका अपहरण कराके उसने शत्रुकी स्त्री समझकर उनके साथ दुराचार किया ॥ ६८४ ॥ उनमेसे राजा तुक्ककी पुत्री सुलभा ससुर (कलश) का प्रेम प्राप्त करके अपने पति (हर्षका) वध करा देनेका प्रयत्न करने लगी ॥ ६८५ ॥ उसने और मंत्री नोनकने परस्पर मंत्रणा करके दो रसोइयोंको हर्षको विष मिश्रित भोजन देने जैसे पापके लिए प्रेरित किया ॥ ६८६ ॥ एक अन्य रसोइयेके द्वारा प्रयागको इस षड्यंत्र-का पता लग गया, जिससे उसने हर्षको वह भोजन नहीं करने दिया ॥ ६८७ ॥ परीक्षाके लिए उसने वह भोजन दो कुत्तोंको खिलाया। जिसे खाते ही वे मर गये। इस घटनासे हर्ष अपने जीवनसे निराश हो गया ॥ ६८८ ॥ उसने गुप्तरूपसे दण्ड देनेका उद्यत अपने पिता कलशका वह कार्य समझा। उसी दिनसे उसने राजाके यहाँसे आये हुए भोजनका स्पर्श करके त्यागना प्रारम्भ कर दिया ॥ ६८९ ॥ अब प्रयाग अन्यत्रसे खान-पानकी जो सामग्री लाता था, उसे ही खाकर वह रहने लगा ॥ ६९० ॥ रसोइयोंके द्वारा जब राजा कलशको इस बातका पता लगा, तब उसने प्रयागको बुलाकर इसका कारण पूछा ॥ ६९१ ॥ तब प्रयागने विष देनेकी प्रेरणा करनेवालो, विष देनेवाले रसोइयों और विष देनेके ढंगका पूरा विवरण राजाको कह सुनाया और यह भी कहा कि 'शेष बातोंका पता तो श्रीमान्‌को स्वयं होगा' ॥ ६९२ ॥ उसके बाद राजाने उन रसोइयोंको बदल दिया। फिर भी हर्ष अपने नियमपर अटल रहा। अब भी वह प्रयाग द्वारा लाया गया अन्न ही खाता था ॥ ६९३ ॥ उन दिनो हर्ष सबको अपने प्रतिकूल समझकर जो-जो दिन बीतता था, उसे अपना समझता था। शेष दिनोंपर उसकी कोई आस्था नहीं रह गयी थी ॥६९४॥ इसी बीच राजा कलशके आचार-व्यवहारमे अदृष्टपूर्व एवं विनाशसूचक परिवर्तन

उत्पाद्य ताम्रस्वाम्याख्यं पूर्वं ताम्रमयं रविम् । स रीतिप्रतिमाः स्वैरं विहारेभ्योऽप्यपाहरत् ॥६९६॥
धनानि निरपत्यानामाहर्तुं व्यवसायिना । न्यवार्यतार्यमर्यादा क्रौर्याक्रान्तेन भूभुजा ॥६९७॥
ततोऽतिशापसंतापव्यञ्जकेनाञ्जसाऽभवत् । अतिसंभोगजातेन धातुक्षैण्येन सोऽर्दितः ॥६९८॥
कुम्भप्रतिष्ठासंभारं चिकीर्षोर्हरमन्दिरे । तस्यापतन्महाकालकुम्भे नासापुटादसृक् ॥६९९॥
आकस्मिकं दुर्निमित्तं तत्प्रतीकारसंविदा । न मनागप्यगाच्छान्तिं प्रवृद्धिं प्रत्युताययौ ॥७००॥
अस्रस्रुत्यनुबन्धेन तेन ग्लपितसौष्ठवः । शनैः शय्याप्रणयितामन्तः स प्रत्यपद्यत ॥७०१॥
बलमांसकृतक्षैण्यमग्निमान्द्याद्युपद्रवैः । कलाशेषेण शशिना तद्वपुः साम्यमाययौ ॥७०२॥

राज्यं स दित्सुर्हर्षाय दृष्ट्वाऽमात्यान्पराङ्मुखान् ।
ततोऽभिषेकमौत्कर्षमानिन्ये लोहराचलात् ॥७०३॥

उच्चावचास्तेन सर्वे संविभक्ता मुमूर्षुणा । परमीर्ष्याविधेयेन न शुद्धान्तवधूजनः ॥७०४॥
कृत्वा धनार्पणं कुर्यां देशादस्य प्रवासनम् । इत्युक्त्वा हर्षमानेतुं तेनाप्रार्थ्यन्त मन्त्रिणः ॥७०५॥
ते तु गोप्तृन्निवार्याद्याँष्ठक्कुराँल्लोहराश्रितान् । विन्यस्य रक्षिभावे तमुत्कर्षाय न्यवेदयन् ॥७०६॥
स नाट्यमण्डपात्तेन निष्कृष्टः क्षामविग्रहः । निवेशितश्चतुःस्तम्भे बद्ध्वा बान्धववर्जितः ॥७०७॥
अथोज्जिगमिषून्प्राणान्निःसामर्थ्यो विदन्नृपः । मुमूर्षुरभवत्तीर्थप्रस्थानाय कृतत्वरः ॥७०८॥
स जानन्दैवतक्रोधं ताम्रस्वामिविपाटनात् । इयेष शरणं कर्तुं मार्तण्डं प्राणलब्धये ॥७०९॥
संत्यज्य विजयक्षेत्रमत एवापवर्गदम् । महीश्वरोऽपि प्रययौ तत्र त्रासवशंवदः ॥७१०॥

आ गया ॥ ६९५ ॥ तदनुसार उसने ताम्रस्वामीकी ताम्रमयी सूर्यप्रतिमा तोड़वा डाली और बौद्धविहारोंमें स्थापित पीतलकी मूर्तियोंको निकलवाकर तोड़वा दिया ॥ ६९६ ॥ अब उसने नैतिक मार्ग त्यागकर क्रूरता धारण कर ली और निःसंतान होकर मरनेवाले प्रजाजनोंका धन हड़पना आरम्भ कर दिया ॥ ६९७ ॥ उसके कुछ ही दिनों बाद पीड़ित प्रजाके सन्तापसे उत्पन्न शापके फल एवं अत्यधिक स्त्रीप्रसंगजनित धातुक्षयके कारण वह रुग्ण हो गया ॥ ६९८ ॥ एक दिन राजा कलश शिवमन्दिरमें कुम्भप्रतिष्ठाके समारम्भका कार्य कर रहा था। सहसा उसी समय उसकी नाकसे रुधिरकी बूँदें निकलकर महाकालके कुम्भमें जा गिरीं ॥ ६९९ ॥ इस आकस्मिक अपशकुनका प्रतीकार करनेके लिए किये गये सभी प्रयत्न बेकार हो गये और उसका रोग उग्ररूपसे बढ़ने लग गया ॥ ७०० ॥ निरन्तर रक्तस्राव होते रहनेके कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गया और उसे विवश होकर शय्याकी शरण लेनी पड़ी ॥७०१॥ मन्दाग्नि आदि उपद्रवों तथा बल और मांसकी क्षीणताके कारण उसका शरीर सूखकर कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमाके सदृश क्षीण दीखने लगा ॥ ७०२ ॥ यद्यपि वह हर्षको राज्य देना चाहता था, किन्तु मंत्रियोंको इस विचारके विरुद्ध देखकर उसने लोहरप्रान्तसे अपने दूसरे पुत्र उत्कर्षको बुलवाया ॥ ७०३ ॥ उस मरणासन्न राजाने अन्तःपुरकी सुन्दरियोंको छोड़कर बाकी सब सेवकोंको प्रचुर पारितोषिक प्रदान किया। अब उसके मनमें उन स्त्रियोंके प्रति रोष और ईर्ष्याकी भावना जाग गयी थी ॥ ७०४ ॥ तदनन्तर उसने अपने मंत्रियोंको बुलवाकर अभ्यर्थनाभरे शब्दोंमें कहा कि 'मैं हर्षका धन देकर उसे अपने देशसे निर्वासित कर देना चाहता हूँ' ॥ ७०५ ॥ किन्तु मंत्रियोंने राजाकी बात नहीं मानी। उन्होंने हर्षकी देख-रेखपर नियुक्त पुराने रक्षकोंको हटा दिया और उनकी जगह लोहरप्रान्तके ठक्कुरोंको नियुक्त करके हर्षको उत्कर्षके अधीन कर दिया ॥ ७०६ ॥ कुछ दिनों बाद उत्कर्षने अत्यन्त दुर्बल हर्षको नाट्यमण्डपसे हटाकर चतुःस्तम्भ मण्डपमें रक्खा ॥ ७०७ ॥ तदनन्तर अत्यधिक कमजोर राजा कलशने अपनी मृत्युको समीप देखकर अतिशीघ्र वहाँसे किसी तीर्थमें चले जानेकी इच्छा व्यक्त की ॥ ७०८ ॥ उस समय उसने सोचा कि 'ताम्रस्वामीकी प्रतिमा तोड़नेके कारण सूर्यभगवान् मुझपर कुपित हो गये हैं'। ऐसा सोचकर प्राणरक्षाके निमित्त वह भगवान् मार्तण्डकी शरणमें जानेको उद्यत हो गया ॥ ७०९ ॥ यद्यपि वह राजा शैव था, किन्तु इस मरणासन्न स्थितिमें मृत्युके

अधीकारप्राप्त्या तृणमिव विदन्विश्वमखिलं नियोगी जातार्तिर्नमति गृहदासीरपि रुदन् ।
नदन्मूर्खो ज्ञानी बहुदुरुपदेशाधिगमतः करोति प्राणान्ते शिशुरिव च किं किं न विगुणम् ॥७११॥
तादृश्या कृपणप्रायसेव्यया क्लैव्यसंविदा । गुरूपदेशाहंकारस्तस्य हास्यत्वमाययौ ॥७१२॥
शुक्लायां मार्गशीर्षस्य तृतीयस्यां निशामुखे । तलादेवाश्रितो युग्यं भूभृन्मर्तुं विनिर्ययौ ॥७१३॥
स भेरीतूर्यनिर्घोषैर्जनाक्रन्दं तिरोदधत् । सामात्यान्तःपुरो नौभिः प्रतस्थे जलवर्त्मना ॥७१४॥
यामशेषे दिनेऽन्यस्मिन्प्राप्तस्य चरणान्तिके । मार्तण्डस्य स्वजीवाप्त्यै सौवर्णीं प्रतिमां व्यधात् ॥७१५॥
भृत्यैरगणिताज्ञस्य दिदृक्षोर्ज्येष्ठमात्मजम् । औत्सुक्येनारतिस्तस्य व्यथितस्याधिकाऽभवत् ॥७१६॥
बहिर्हर्षकृतं गीतं गायनानां स गायताम् । विवृतद्वारविवरः शृणोति स्म विनिःश्वसन् ॥७१७॥
प्राणावसानसमये परिसंकुचन्ती स्वप्नप्रसङ्ग इव धावनशक्तिराज्ञा ।
प्रोचुर्यदा खलु रुजो मरणोद्भवाया मर्मव्यथां प्रथयते पृथिवीपतीनाम् ॥७१८॥
प्रजाज्येष्ठं तनूजं च संविभक्तुं कृतार्थनः । उत्कर्षं ग्राहयञ्शिक्षां बद्धजिह्वोऽभवत्ततः ॥७१९॥
अव्यक्तं वदतो हर्ष इति वाचं पुनः पुनः । निह्नोतुं नोनको भावं तस्यादर्शमढौकयत् ॥७२०॥
स तन्निवार्य विहसन्दष्टौष्ठः कम्पयञ्शिरः । जपन्किमपि सार्धे द्वे बद्धवागभवद्दिने ॥७२१॥
आसन्नप्राणनिर्याणः संज्ञयाहूय मन्त्रिणः । ततः स्वं तैरसंमूढैर्मार्तण्डाग्रमनाययत् ॥७२२॥
वर्षानेकोनपञ्चाशद्भुक्तवान्स सितेऽहनि । मार्गस्य पञ्चषष्ठेऽब्दे षष्ठ्यां निष्ठामथासदत् ॥७२३॥

भयसे उसने मोक्षदाता विजयेश्वर शंकरजीको छोड़कर मार्तण्डमन्दिरको जानेकी तैयारी की ॥ ७१० ॥ अधिकारके मदसे मदमत्त होकर समस्त विश्वको तृणवत् समझनेवाला अधिकारी विपत्तिमें घरकी दासियोंका भी पैर पकड़कर रोने लगता है। किसी पाखंडी गुरुसे उपदेश लेकर अपने आपको सबसे बड़ा ज्ञानी माननेवाला मूर्ख मनुष्य संसारके समक्ष पाडित्यकी बड़ी-बड़ी बातें करता है, किन्तु किसी प्राणान्तक प्रसगके अवसरपर वह बच्चोंके समान किस-किस प्रकारके पागलपन नहीं करता ॥ ७११ ॥ उस राजाको भी गुरूपदेश ग्रहण करनेका बड़ा अभिमान था, परन्तु दुर्बल हृदयवाले साधारण मनुष्योंकी तरह क्लीवतायुक्त आचरणके कारण वह सर्वत्र हास्यका पात्र बना ॥ ७१२ ॥ अन्तमें मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीयाको सायंकालके समय अपनी शय्यासे उठकर वह पालकीमें जो बैठा और मरनेके लिए चल पड़ा ॥ ७१३ ॥ वाद्योंकी तुमुल ध्वनिसे जनताके रोदनकी ध्वनिको दबाता हुआ वह राजा अन्तःपुरकी स्त्रियों तथा मंत्रियोंके साथ नौकाओंके द्वारा रवाना हुआ ॥ ७१४ ॥ वहाँसे चलकर वह दूसरे दिन दोपहर बाद एक पहर दिन रहते मार्तण्ड भगवानके श्रीचरणोंमें जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त सुवर्णकी सूर्यप्रतिमा बनवाकर भेंट करनेकी मनौती मानी ॥ ७१५ ॥ उस समय उसके सेवक उसकी आज्ञा नहीं मान रहे थे और वह अपने ज्येष्ठ पुत्र हर्षको देखना चाहता था। उस व्यथित एवं रुग्ण राजाको पुत्रदर्शनकी उत्कंठाके कारण बड़ी बेचैनीका अनुभव हो रहा था ॥ ७१६ ॥ बाहरी लोगोंके द्वारा हर्षके निर्मित गीतोंका गायन सुनकर वह बड़ी व्याकुलताके साथ वातायनके छिद्रोंसे देखने लगा, किन्तु कुछ न देखकर उसने लम्बी साँस छोड़ी ॥ ७१७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें दौड़नेकी शक्ति कुंठित हो जाती है, उसी प्रकार मरणासन्न राजाकी आज्ञा नहीं चलती। ऐसी परिस्थितिमें उसे यह बात भीतर ही भीतर बाणकी तरह चुभती है और मृत्युके समय होनेवाली असह्य पीडाको और भी अधिक बढ़ा देती है ॥ ७१८ ॥ उस समय राजा कलश अपने ज्येष्ठ पुत्र हर्षको कुछ देनेके लिए उत्कर्षसे कहना चाहता था, किन्तु तत्काल उसकी जीभ जड़ हो गयी ॥ ७१९ ॥ वह अव्यक्तरूपसे बार बार हर्ष-हर्ष कर रहा था, यह देखकर मंत्री नोनकने उसके आगे दर्पण रख दिया ॥ ७२० ॥ तब तनिक हँसकर उसने दाँतोंसे होंठ दबा लिया और दर्पण वहाँसे हटवाकर और कुछ अव्यक्त शब्द कहे। इस तरह ढाई दिन तक उसकी बोली बन्द रही ॥ ७२१ ॥ जब प्राण निकलनेका समय समीप समझा, तब संकेतसे मंत्रियोंको बुलाकर उसने अपने आपको मार्तण्डभगवान्की प्रतिमाके समक्ष रखवा दिया ॥ ७२२ ॥ उस समय राजा कलशकी अवस्था उनचास वर्षकी थी। इस प्रकार ४१६५ लौकिक वर्षकी

सप्त मम्मनिकामुख्या देव्यः परिणयाहृताः । अवरुद्धापि जयमत्यभिधाना तमन्वगुः ॥७२४॥
प्रसादवित्तया तस्य पुनः कय्याभिधानया । अवरुद्धिकया कृत्स्ना स्त्रीजातिरपवित्रिता ॥७२५॥
सर्वावरोधप्राधान्यप्रदानं नास्मरद्यदि । सा स्मार्पान्नाम भर्तुस्तदनुचाभिजनोद्भवा ॥७२६॥
संश्रित्य विजयक्षेत्रं क्रमाद्दासनियोगिनः । भेजे यत्त्ववरुद्धात्वमतो दुःखाकरोति नः ॥७२७॥
भूपालभोग्यं स्ववपुः सा भोगाभ्यासभासुरम् ।
निनाय ग्राम्यभोग्यत्वं धिङ्नारीर्नीचचेतसः ॥७२८॥
उत्कर्षस्याभिषेकाय व्यग्रेष्वखिलमन्त्रिषु । अन्त्येष्टिमकरोद्राज्ञः कृतज्ञो वामनः परम् ॥७२९॥
घोषोऽभिषेकतूर्याणामेकतो गीतमङ्गलः । साक्रन्दः प्रेततूर्याणां नादोऽन्यत्र समुद्ययौ ॥७३०॥
जातः पद्मश्रियो देव्याः पुत्रः कलशभूभुजा । ततो विजयमल्लाख्यो भ्रातुर्वैमत्यमादधे ॥७३१॥
यद्ददाद्धर्षदेवस्य पिता प्रत्यहवेतनम् । प्रतिशुश्राव तस्मै स तदेवोत्कर्षभूपतिः ॥७३२॥
आश्वासाय च मध्यस्थान्ददौ सामन्तमन्त्रिणः । कय्यात्मजस्य चक्रे च जयराजस्य वेतनम् ॥७३३॥
अन्विष्यन्ति रुदत्य एव तरला गत्यन्तरं योषितो योगक्षेमकथां चितान्तिकगता एवात्मजाः कुर्वते ।
अन्येषां शतशोऽवसानसमये चर्चा विचार्येदृशीं स्त्रीपुत्रादिकृते कुकर्मभिरहो संचिन्वतेऽर्थं जडाः ॥७३४॥
प्रविवेश ततः श्रीमान्नगरं नृपतिर्नवः । न तु हर्षोदयाकांक्षि हृदयं नगरौकसाम् ॥७३५॥
तत्राज्यलाभदिवसो जनस्याभोगदूषितः । सन्नपि प्रत्यभान्नैव स रोगार्तेरिवोत्सवः ॥७३६॥
हर्षदेवस्तु पितरि प्रयाते मर्तुमातुरे । नववद्वश्चतुःस्तम्भे न तस्मिन्नह्नि भुक्तवान् ॥७३७॥

मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी तिथिको वह राजा स्वर्गवासी हुआ ॥ ७२३ ॥ मम्मनिका आदि सात विवाहिता और जयमती नामकी रखैल ये आठो स्त्रियें उसके साथ सती हो गयीं ॥७२४॥ लेकिन उसकी अत्यन्त कृपापात्र प्रेमिका कय्याने सती न होकर सारी स्त्रीजातिको कलंकित कर दिया ॥ ७२५ ॥ वह कोई उच्च कुलकी कन्या नहीं थी, फिर भी राजाने उसे सब स्त्रियोंमे प्रधान स्थान दिया था। सो उसने राजाके दिये हुए उस सन्मानको भी भुला दिया ॥ ७२६ ॥ उसके बाद वह विजयक्षेत्रमें रहती हुई एक साधारण ग्रामीण मजदूरसे प्रेम करने लगी। यही बात मेरे हृदयको विशेषरूपसे दुःख देती है ॥ ७२७ ॥ राजाओंके भोगने योग्य एवं उत्तमोत्तम सुखोपभोगसे देदीप्यमान अपना शरीर उसने एक ग्रामीणको उपभोग करनेके लिए सौंप दिया। ऐसी नीच एवं क्षुद्र प्रवृत्तिवाली स्त्रियोंको धिक्कार है ॥ ७२८ ॥ जब कि अन्यान्य मंत्री उत्कर्षका राज्याभिषेक करनेके लिए उतावले हो रहे थे, उस समय एकमात्र कृतज्ञ मंत्री वामन दिवंगत राजाकी अन्त्येष्टि कर रहा था ॥ ७२९ ॥ एक ओर राज्याभिषेकको खुशियालीके उपलक्ष्यमे तुड़हियाँ बज रही थीं और दूसरी ओर लोगोंके विलापकी ध्वनिके साथ प्रेतवाद्य बज रहे थे ॥ ७३० ॥ उसके कुछ दिनों बाद राजा कलशकी पत्नी पद्मश्री देवीसे उत्पन्न विजयमल्ल नामका सौतेला भाई उत्कर्षसे झगड़ने लगा ॥ ७३१ ॥ तब जितना वेतन नित्य राजा कलश राजपुत्र हर्षको देता था, उतना ही वेतन विजयमल्लको देनेके लिए उत्कर्षने प्रतिज्ञा की ॥ ७३२ ॥ यह प्रतिज्ञा करते समय उसने कुछ मंत्रियोंको मध्यस्थ बनाया था। इसी तरह उसने कय्याके पुत्र जयराजको भी कुछ वेतन निश्चित कर दिया ॥ ७३३ ॥ मूर्ख संसारी लोग सैकड़ो बार औरोंकी मृत्युके समय रोती हुई चंचलचित्तवाली स्त्रियोंको अपना आश्रय खोजते तथा चिताके पास खड़े पुत्रोंको स्वतः प्राप्त होनेवाली सम्पत्तिके लिए परस्पर झगड़ते देखकर भी अपनी स्त्री तथा पुत्रके लिए कुत्सित कर्मों द्वारा धनसंचय करते हैं, यह कितने अचम्भेकी बात है ॥ ७३४ ॥ तदनन्तर नये राजा श्रीमान् उत्कर्षने राजधानीमें प्रवेश किया। किन्तु हर्षका अभ्युदय देखनेके लिए उत्कण्ठित नागरिकोंके हृदयमे वह नहीं प्रविष्ट हो सका ॥ ७३५ ॥ उत्कर्षके राज्याभिषेकोत्सवका दिन जनसमूहोंके अभावमें रोगी मनुष्यके समक्ष होनेवाले उत्सवके समान सूना-सा लग रहा था ॥ ७३६ ॥ जिस दिन रोगसे आतुर पिता कलश मरनेके लिए मार्तण्डमन्दिर गया, उस रोज चतुःस्तम्भ मण्डपमे

सार्थभ्रष्टमिवाध्वन्यमन्यस्मिन्नह्नि ठक्कुराः । ते शोकमूकं संप्रार्थ्य कथंचित्तमभोजयन् ॥७३८॥
राज्यं दातुं निजे देशे चक्रुश्चास्य प्रतिश्रवम् । राज्यद्वयं नायमर्हत्येक एवेति वादिनः ॥७३९॥
एवं मिलितचित्तस्तैर्विपत्तिं श्रुतवान्पितुः । कृतोपवासः सोऽन्येद्युः शुश्रावोत्कर्षमागतम् ॥७४०॥
बाष्पैः पित्रे प्रयच्छन्तं निर्वापसलिलाञ्जलीन् । तं दूतैरनुजो राजा स्नातुं प्रार्थयताऽथ सः ॥७४१॥
तस्य स्नानक्षणे राज्ञि सज्जे राज्याभिषेचने । घोषोऽभिषेकतूर्याणामुदभूत्सजयध्वनिः ॥७४२॥
स तेन सुनिमित्तेन प्राप्तां मेने निमित्तवित् । विद्युद्द्योतेन जीमूतगर्जामिव नृपश्रियम् ॥७४३॥
ततः प्रभृत्युन्मुखता सुनिमित्तैर्गृह्यतः । तस्यात्यासन्नराज्यस्य भृत्यैरिव दिने दिने ॥७४४॥
स भोजनं कारयितुं दूतान्भ्रात्रा विसर्जितान् । देशान्निर्वासयतु मां राजा संत्यज्य बन्धनात् ॥७४५॥
स्थातुमप्रत्यवस्थित्या विदध्यां कोशमंविदम् । म्रियेऽन्यथा निरशनैः संदिश्येति व्यसर्जयत् ॥७४६॥
स तन्मिथ्या प्रतिश्रुत्य तं दूतैः प्रहितैस्ततः । कृतकोशं सान्त्वयित्वा राजा भोज्यमभोजयत् ॥७४७॥
नित्यं च श्वो विधास्ये तदर्थ्यमान इति ब्रुवन् । कालापहारं कुर्वाणः शङ्कां तस्योदपादयत् ॥७४८॥
विश्वासाय स्वताडङ्कपाणिं कृत्वा प्रयागकम् । पार्श्वं विजयमल्लस्य सोऽथ गूढं व्यसर्जयत् ॥७४९॥
तदेवोक्त्वा तमूचे स त्वां ब्रूते दुःस्थितोऽग्रजः । कुमारे त्वयि राज्येऽस्मिञ्शुच्यामो बन्धने वयम् ॥७५०॥
संक्रान्तदुःखः संचिन्त्य चिरेणापि तमब्रवीत् । कार्यं कुर्यात्कथमिदं मद्गिरा नीतिमान्नृपः ॥७५१॥

कैद हर्षदेवने भोजन नहीं किया ॥ ७३७ ॥ अपने साथियोंसे बिछुड़े यात्रीकी भाँति शोकके कारण मौनभाव धारण किये हुए राजपुत्र हर्षको पहरेपर तैनात ठक्कुरोंने दूसरे दिन अनेकशः प्रार्थना करके बड़ी कठिनाईसे भोजन कराया ॥ ७३८ ॥ उसके बाद उन ठक्कुरोंने कहा—'यह अकेला राजा उत्कर्ष कश्मीर और लोहर इन दोनोंपर राज्य नहीं कर सकता । अतएव हम लोग आपको लोहरका शासनसूत्र सम्हालनेके लिए ले चलेंगे' यह कहकर उन्होंने प्रतिज्ञा की ॥ ७३९ ॥ परस्पर ऐसी-ऐसी बातें होनेके कारण हर्षका उन ठक्कुरोंसे मेल हो गया। तत्पश्चात् उसे पिताके मरणका समाचार मिला तो उस दिन भी उसने उपवास किया। उसके दूसरे दिन उसे अभिषिक्त होकर उत्कर्षके राजधानीमें आनेकी बात मालूम हुई ॥ ७४० ॥ जब जेलमें बैठा हुआ हर्ष अपने आँसुओंसे दिवंगत पिताको जलाञ्जलि दे रहा था उसी समय उसके छोटे भाई उत्कर्षने दूतके द्वारा स्नान करनेका सन्देश भेजा ॥ ७४१ ॥ इधर जब हर्ष पिताकी मृत्युके उपलक्ष्यमें स्नान कर रहा था, उसी समय संयोगवश उत्कर्षके राज्याभिषेकोत्सवमें मंगलवाद्य बज रहे थे और चारों ओर जयघोषकी ध्वनि गूँज रही थी ॥ ७४२ ॥ शकुनशास्त्रज्ञ राजपुत्र हर्षको यह शुभ शकुन देखकर बिजली चमकनेवाले बादलोंके गर्जनके अनुमानकी भाँति यह दृढ़ निश्चय हो गया कि 'मुझे राज्यश्रीका लाभ अवश्य होगा' ॥ ७४३ ॥ जैसे आसन्नश्रीक (जिसे लक्ष्मी शीघ्र प्राप्त होनेवाली होती है) राजपुत्रका सेवक लोग विशेष आदर करने लगते हैं, वैसे ही उस हर्षको भी विविध प्रकारके अभ्युदयदायक शुभ शकुन दीखने लगे ॥ ७४४ ॥ जब उत्कर्षने दूतके द्वारा भोजन करनेके लिए सन्देश भेजा, तब उसके उत्तरमें हर्षने कहलाया कि 'आप मुझे बन्धनमुक्त करके अपने देशकी सीमासे बाहर कर दीजिए। मैं तीर्थजलपानपूर्वक यह शपथ खानेके लिए तैयार हूँ कि आपके विरुद्ध में किसी प्रकारका कोई काम न करूँगा। यदि मेरी बात मानकर मुझे न छोड़िएगा तो मैं अनशन करके अपने प्राण दे दूँगा' ॥ ७४५ ॥ ७४६ ॥ तब उत्कर्षने दूतके द्वारा झूठ-मूठ कहला भेजा कि 'मुझे आपकी बात मंजूर है'। ऐसा करके उसने हर्षके मनको धैर्य बँधा दिया और कोशपानपूर्वक शपथ लेकर भोजन कराना आरम्भ किया ॥ ७४७ ॥ इसके बाद जब हर्ष अपनेको मुक्त करनेके लिए सन्देश भेजने लगा, तब आज-कलका बहाना करते हुए उत्कर्ष उसे टरकाने लगा। उसके इस व्यवहारसे हर्षका मन सशंक हो उठा ॥ ७४८ ॥ तदनन्तर विश्वासके लिए अपना कर्णाभूषण प्रयागको देकर हर्षने उत्कर्षके छोटे भाई विजयमल्लके पास यह सन्देश भेजा—॥ ७४९ ॥ 'राजकुमार ! तुम्हारे रहते हुए भी तुम्हारा अभागा बड़ा भाई हर्ष बन्धनमें पड़ा दुःसह दुःख भोग रहा है' ॥ ७५० ॥ इस सन्देशके द्वारा विजयमल्लको यह बात मालूम हुई, तब उसे बहुत कष्ट

तथाप्यस्मिन्यथाशक्ति यतिष्ये त्वद्विमोक्षणे । त्वया तु सावधानेन रक्षणीयं स्वजीवितम् ॥७५२॥
तं पार्श्वं हर्षदेवस्य संदिश्येति व्यसर्जयत् । उपायांश्चिन्तयन्नासीत्तस्य कार्यस्य सिद्धये ॥७५३॥
उत्कर्षः प्राप्तराज्यस्तु दैवतैरिव मोहितः । नादधे किंचिदारम्भं व्यवस्थाग्रथनक्षमम् ॥७५४॥
समर्पिताधिकारोऽपि कन्दर्पादीन्स मन्त्रिणः । राज्यकृत्यं न पप्रच्छ विदधे स च न स्वयम् ॥७५५॥
परिमातुं परीमाणं कोशसंचयवीक्षणे । परं क्षमापतेस्तस्य दिनकृत्यमजायत ॥७५६॥
कर्मणा निर्व्ययेनास्य चिन्त्यमानस्य येन वा । सुदीर्घदर्शी लोकोऽभूत्तेन लुब्धत्वनिश्चयी ॥७५७॥

सा तस्य लुब्धताख्यातिः समुद्गान्नप्रदायिनः ।
भूभर्तुः पितृपत्नीभिः स्वैरिणीभिः प्रवर्धिता ॥७५८॥

स श्रोत्रिय इवोत्कम्पी व्यवहारमिताशयः । महाहृदयभोग्यानां प्रजानां नाभवत्प्रियः ॥७५९॥
ततो नियमितां वृत्तिं तस्माल्लुब्धादनाप्नुवन् । कुप्यन्विजयमल्लोऽभूद्देशान्गन्तुं कृतोद्यमः ॥७६०॥
स्वं रक्षितुं स मध्यस्थाननुव्रज्याकृतेऽखिलान् । प्रार्थयामास तेनापि सज्जास्तमनुवव्रजुः ॥७६१॥
लवणोत्से निशामेकां पुरान्निर्गत्य तस्थुषः । मध्यस्थसैन्यास्तस्यैव योधाः पक्षमशिश्रयन् ॥७६२॥
हर्षे बद्धे त्वयि गते कृतकृत्यो भवेन्नृपः । तत्तं निष्कृष्य काराया गमनं तव सांप्रतम् ॥७६३॥
इति तैः प्रेर्यमाणः स राजसूनुरुदायुधैः । विनिवृत्याकरोद्यात्रां प्रत्यूपे नगरोन्मुखः ॥७६४॥
श्रुत्वा चिकीर्षितं तस्य व्यावृत्तस्य तथाविधम् । सहायाः समपद्यन्त कतिचिड्डामरा अपि ॥७६५॥

हुआ और तनिक देर सोचकर उसने कहा कि 'परम नीतिज्ञ राजा उत्कर्ष मेरे कहनेसे यह कार्य कैसे करेगा ? ॥ ७५१ ॥ फिर भी मैं आपको कारागारसे छुड़ानेकी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा । किन्तु आप भी अपने जीवनकी रक्षाके लिए सदा सतर्क रहिएगा' ॥ ७५२ ॥ यह सन्देश देकर प्रयागको उसने हर्षदेवके पास वापस भेज दिया और तभीसे विजयमल्ल इस कार्यकी सिद्धिके लिए उपाय सोचने लगा ॥ ७५३ ॥ राज्य पानेके बाद देवताओंने उत्कर्षको पागल जैसा कर दिया । अतएव वह राज्यव्यवस्थाकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता था ॥ ७५४ ॥ कन्दर्प आदि राज्यमंत्रियोंको उसने सब अधिकार सौंप दिये थे । किन्तु राज्यकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें न वह उनसे कुछ पूछता था और न स्वयं ही कुछ करता था ॥ ७५५ ॥ निरन्तर राज्यकोशका दर्शन, धनकी गणना तथा सोने-चाँदीकी तौल-नापमें ही उसका सब समय बीतता था ॥ ७५६ ॥ जिन कामोंमें धनके खर्चकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, उन्हें वह तुरन्त स्वीकार कर लेता था । किन्तु जिससे व्ययकी सम्भावना रहती थी उस कामके विषयमें बहुत समय तक सोचता था । ऐसा करनेसे वह दूरदर्शी लोगोंकी दृष्टिमें लोभी सिद्ध हुआ ॥ ७५७ ॥ अब उसने अपनी सौतेली माताओंके भोजनमें मूँगकी दाल देना शुरू कर दिया था । अतएव उन स्वैरिणियोंने उसके लोभीपनका खूब प्रचार किया ॥ ७५८ ॥ वह श्रोत्रियके समान कृपण हो गया था और उसका व्यवहार भी बहुत निकृष्ट कोटिका था । इसी कारण उदार स्वामीको चाहनेवाली प्रजाको वह प्रिय नहीं लगता था ॥ ७५९ ॥ कुछ दिनों बाद उस लोभी उत्कर्षने विजयमल्लको पूर्वनिर्धारित वेतन देना बन्द कर दिया । इससे रुष्ट होकर वह उस देशको ही त्यागकर चल देनेका उपक्रम करने लगा ॥ ७६० ॥ अपनी रक्षाके लिए विजयमल्लने मध्यस्थोंको भी साथ चलनेके लिए कहा, तब वे भी तैयार होकर चल पड़े ॥ ७६१ ॥ राजधानीसे चलकर वह एक रातके लिए पर्णोत्समें रुक गया । वहाँ-पर उन मध्यस्थोंके सैनिक भी उसीके पक्षमें शामिल हो गये ॥ ७६२ ॥ उन्होंने विजयमल्लसे कहा—'राजपुत्र हर्षदेवके कारावद्ध होने और आपके भी देश त्याग देनेसे उत्कर्ष निष्कण्टक राज्य पाकर सफल-मनोरथ हो जायगा । इस लिए हर्षदेवको कारागारसे छुड़ानेके बाद ही आपका यहाँसे चलना उचित होगा' ॥ ७६३ ॥ उन शस्त्रधारी वीरोंके वचन सुनकर विजयमल्ल आगे बढ़नेका विचार त्यागकर फिर राजधानीको लौट पड़ा ॥ ७६४ ॥ इस प्रकार लौटकर आते हुए विजयमल्लका अभिप्राय समझकर कुछ डामर

अकरोन्मधुरावट्टो हयसेनापतिः सुतम् । राजसूनुर्यियासुर्यं मध्यस्थानानुयात्रिकम् ॥७६६॥
नागाह्वयो द्रोहहीनो राजपक्षमसंत्यजन् । कैश्चित्सह हयारोहैः स पद्मपुरवर्त्मना ॥७६७॥
आगच्छन्नन्तिकं राज्ञो दुर्निमित्तहृतत्वरः । न यावन्नगरं प्राप क्षिप्रकारी नृपात्मजः ॥७६८॥
शकुनैराहितोत्साहः शालाग्रोद्दीपिताग्निभिः । सैन्यैर्गृहान्दहंस्तावद्राजधानीमवेष्टयत् ॥चक्कलकम्॥७६९॥
समयाय विनिर्यातं त्यक्त्वोत्कर्षं महीभुजम् । तत्पक्षं जयराजोऽपि राजसूनुरशिश्रयत् ॥७७०॥
हस्तस्थितौ राजपुत्रौ तस्याचिन्तयतां गतिम् । नवौ कवी व्यवहृतिं सिद्धवाचः कवेरिव ॥७७१॥
हर्षदेवे परित्यक्ते यास्याम इति वादिनः । स हस्तिमहिषादीनां शालाः सैन्यैरदाहयत् ॥७७२॥
त्यागप्रलयजीमूतो हर्षदेवोऽभिषिच्यताम् । लुब्धः खशो वणिक्प्रायो राज्यादेष निवार्यताम् ॥७७३॥
एवं वदन्तः सन्तोऽपि हर्षमेत्य पुरौकसः । पुष्पैः प्राच्छादयन्बद्धं तमोरिविवरार्पितैः ॥७७४॥
उत्पिञ्जे तत्र संजाते भग्नसैन्यस्य भूपतेः । संप्रेष्य ठक्कुरान्हर्षस्तटस्थं तद्बलं व्यधात् ॥७७५॥
इत्थं बद्धोऽपि तत्कृत्वा वैरिकार्यविरोधिनः । संदेहवेपमानाङ्गस्ततस्तानेवमब्रवीत् ॥७७६॥
वर्तेऽद्य संकटे दुष्टे तन्मां मुञ्चत बन्धनात् । न चेदाशु महीपालादनिष्टं नियमाद्भवेत् ॥७७७॥
इत्युच्यमानास्ते यावद्विमृशन्ति स्म तन्मुहुः । पादप्रहारा न्यपतंस्तावद्द्वारगृहाद्बहिः ॥७७८॥
उच्चचार स किं द्रोहः प्रक्रान्तोऽयं दुराशयैः । रे ठक्कुरा विवृणुत द्वारमित्युच्चकैर्वचः ॥७७९॥

भी सहायक वन गये ॥ ७६५ ॥ घोड़सवारोंकी सेनाके सेनापति मधुरावट्टने कुमार विजयमल्ल तथा उत्कर्षके आपसी झगड़ेमें निपटारेके समय मध्यस्थता की थी । अतएव जव विजयमल्ल राजधानी त्यागकर जाने लगा, तव उसने कुछ घोड़सवारोंके साथ अपने पुत्र नागको भी उसके संग भेज दिया था । नाग राजा उत्कर्षका अनन्य भक्त था । । सो जव विजयमल्ल पर्णोत्ससे लौटकर डामरोंके साथ राजधानीपर आक्रमण करने चला, तव राजा उत्कर्षको इस वातकी खवर देनेके लिए अपने घोड़सवारोंके साथ वह तुरन्त राजधानीकी ओर चल पड़ा। किन्तु मार्गमे अपशकुन हो जानेके कारण वह शीघ्र राजाके पास नहीं पहुँच सका । उधर तेजीसे काम करनेमें निपुण विजयमल्लने शुभ शकुनोंसे उत्साहित होकर हाथमे मशाले लिये हुए सैनिकों द्वारा घरोंको जलाते हुए उस राजधानीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७६६–७६९ ॥ उस समय जयराज अपनी सेनाके साथ विजयमल्लसे लड़नेके लिए निकला, किन्तु सामना होते ही राजपक्षको छोडकर वह विजयमल्लकी ओर मिल गया ॥ ७७० ॥ तदनन्तर जिम तरह दो नये कवि किसी महाकविके काव्यके अर्थपर विचार-विनिमय करते हैं, उसी तरह विजयमल्ल तथा जयराज ये दोनों उत्कर्षपर किये जानेवाले प्रहारकी योजनापर विचार करने लगे ॥ ७७१ ॥ तवतक विजयमल्लके सैनिकोंने राजा उत्कर्षकी हस्तिशाला तथा गोमहिषशाला जलाकर भस्म कर दी और वे कहने लगे कि 'हमलोग हर्षदेवको कारागारसे छुड़ानेके वाद ही यहाँसे चलेंगे' ॥ ७७२ ॥ 'प्रलयकालीन मेघोंके सदृश धनकी वर्षा करके प्रजाको सन्तुष्ट करनेवाले उदार हर्षदेवको राज्य मिले और वनियेके समान लोभी इस खश उत्कर्षको राज्यके वाहर निकाल दिया जाय' ॥ ७७३ ॥ इस प्रकारका नारा लगाते हुए नागरिकोंने चतुःस्तम्भमण्डपके पास जाकर उस भवनकी खिड़कियोंसे हर्षदेवपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ७७४ ॥ विकट उपद्रव फैलनेपर हर्षदेवने ठक्कुरोंको भेजकर परास्त राजाके सैनिकोंको युद्धसे रोककर उन्हें तटस्थ रहनेका आदेश दिया ॥ ७७५ ॥ इस तरह वन्धन (कारागार) मे रहते हुए भी उस चतुर हर्षने अपने शत्रु उत्कर्षको हानि पहुँचायी और उसके वाद सन्देहसे काँपते हुए उसने उन ठक्कुरोंसे कहा—'मैं इस समय भीषण संकटमें फँसा हुआ हूँ । अतएव आप लोग शीघ्र इस कारागारसे मुझे छुड़ाइए । नहीं तो निःसन्देह राजाकी ओरसे मुझपर वड़े वड़े अत्याचार किये जायँगे' ॥ ७७६ ॥ ७७७ ॥ हर्षदेवके इन वचनोंको सुनकर वे परस्पर विचार करने लगे । उसी समय सहसा द्वारपर जोर-जोरसे लातोंके प्रहारकी ध्वनि सुनायी देने लगी ॥ ७७८ ॥ तभी किसीने वाहरसे कहा—'इन दुष्टोंने क्यों इस प्रकार राज्यद्रोह आरम्भ कर दिया है ? ठक्कुरो ! शीघ्र द्वार

ठक्कुरेष्वथ भीतेषु धैर्यादगणयन्भयम् । अकारयद्धर्षदेव एव द्वारमपावृतम् ॥७८०॥
नेत्रमात्रस्थितप्राणो ददर्श विशतस्ततः । लोहराञ्शस्त्रिणो हन्तुं प्राप्तान्षोडश वार्षिकान् ॥७८१॥
ते हि छित्त्वोज्झिते हर्षशीर्षे सर्वमिदं क्षणात् । शाम्येदिह भयं मन्त्रं नोनकस्येति जल्पतः ॥७८२॥
उत्कर्षेणासकृच्छ्रुत्वा तं निहन्तुं विसर्जिताः । विमृश्य चोक्त्वा गच्छन्तः कार्यशेषं विमुञ्चता ॥७८३॥
कदाचित्तेन कृत्यं स्यादहतेनेति तत्क्षणम् । निवार्य ठक्कुरान्रक्ष्यो हन्तव्यश्च यदोर्मिकाम् ॥७८४॥
इमां दद्यामभिज्ञानं यदा चेयं विसृज्यते । तदा तु बन्धनात्त्याज्य इत्युदीर्याङ्गुलीयकम् ॥७८५॥

पाणौ दर्शयता चोक्ता विलम्बालम्बनं यतः ।
निवार्य ठक्कुरांस्तस्मिन्क्षिप्रं न प्राहरंस्ततः ॥ कुलकम् ॥७८६॥

स तु प्रत्येकमाहूय नामग्रहणपूर्वकम् । अजिग्रहत्तांस्ताम्बूलमप्युपावेशयत्पुरः ॥७८७॥
जहुस्ते कृतसत्कारास्ताम्बूलग्रहणक्षणे । ह्रीताः कराग्राच्छस्त्राणि प्रजिहीर्षां च मानसात् ॥७८८॥

धत्ते श्रियं सृजति कीर्तिमघं लुनीते मित्रत्वमानयति हन्त विरोधिनोऽपि ।
यात्यध्वभिः प्रतिपदं सुमनोनुकूलैर्गीः कामधुक्किमिव नापहरत्यनर्थम् ॥७८९॥

राजपुत्रः स तानूचे किं ह्रीता इव तिष्ठथ । निर्दोषाः सर्वथा प्रेष्याः स्वाम्यादेशानुपालने ॥७९०॥
विलम्ब्यतां तथाप्यत्र द्रष्टव्यं महदद्भुतम् । यथोदेष्यत्यवस्थानामन्यथात्वं क्षणे क्षणे ॥७९१॥

द्विपद्वीपिक्रव्यादुरगतुरगादिभ्रमकृतो यथाऽस्यां भिद्यन्ते दिवि किल त एवाम्बुदलवाः ।
तथा सौम्यक्रूरक्रमविकृतिभाजस्तनुभृतां क्षणानां नानात्वान्ननु हृदि विकारोर्मय इमाः ॥७९२॥

खोलो' ॥ ७७९ ॥ यह सुनकर वे ठक्कुर भयसे ठिठक गये, किन्तु निर्भीक हर्षदेवने उनके द्वारा द्वार तुरन्त खोलवा दिया ॥ ७८० ॥ द्वार खुलते ही उसने लोहरप्रान्तके सोलह सशस्त्र सिपाहियोंको भीतर घुसते देखा। उस समय हर्ष बहुत दुर्बल दीख रहा था। उसके प्राण उसकी आँखोंमें टिके हुए थे ॥ ७८१ ॥ नोनक मंत्रीने राजा उत्कर्षसे कहा था कि 'हर्षका सिर काटकर बाहर दिखाते ही सब भय तथा उपद्रव शान्त हो जायगा' ॥ ७८२ ॥ तदनुसार उत्कर्षने उन सोलह सशस्त्र सन्तरियोंको भेजनेका निर्णय किया था। किन्तु वह यह निश्चय नहीं कर सका था कि हर्षका वध किया जाय या नहीं। बादमें उसने सोचा कि यदि वह जीवित रहेगा तो समय पड़नेपर काम आयेगा। अतएव उन सोलह सन्तरियोंको भेजते समय उसने कहा—'आप लोग चतुःस्तम्भमण्डपमें जाकर वहाँ पहलेसे तैनात ठक्कुरोंको हटाकर उनकी जगह स्वयं पहरा दें। कुछ देर बाद मैं यह अंगूठी आप लोगोंके पास भेजूँ तो हर्षको मार डालिएगा और यदि यह दूसरी अँगूठी भेजूँ तो उसे बन्धनमुक्त कर दीजिएगा'। ऐसा कहकर उसने उन लोगोंको दोनों अँगूठियाँ भलीभाँति दिखा दीं। इसी कारण इस समय चतुःस्तम्भमण्डप पहुँच करके वे सोलहों सन्तरी केवल ठक्कुरोंको हटाकर स्वयं पहरा देने लगे। हर्षपर किसीने प्रहार नहीं किया ॥ ७८३–७८६ ॥ तदनन्तर हर्षने उनमेंसे प्रत्येक सन्तरीका नाम ले लेकर पास बुलाया और ताम्बूल दे देकर अपने समक्ष बिठाया ॥ ७८७ ॥ उसके इस सत्कारसे वे सब लज्जित हो गये और पान लेते समय हाथसे उन्होंने अपने शस्त्र तथा हृदयसे उसके वधका विचार सर्वथा त्याग दिया ॥ ७८८ ॥ मधुर वाणी लक्ष्मी प्रदान करती है, यश बढ़ाती है, पाप नष्ट करती है, शत्रुको भी अपना मित्र बना देती है, अपने अनुकूल सज्जनोंको विरुद्ध नहीं होने देती और सभी अनर्थोंका निवारण करती है। इस तरह कामधेनुस्वरूपा मधुर वाणी कौन-सा काम सम्पन्न नहीं करती और किस अनिष्टको नष्ट नहीं कर देती ? ॥ ७८९ ॥ तदनन्तर हर्षने उन सन्तरियोंसे कहा—'आप लोग लज्जित क्यों हो रहे हैं ? अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेमें सेवकोंको कोई दोष नहीं लगता ॥ ७९० ॥ तथापि यदि आप लोग कुछ देर ठहर जायँ तो आपको वर्तमान स्थितिमें क्षण-क्षणपर होनेवाले अनेकानेक परिवर्तनोंका चमत्कार देखनेको मिलेगा ॥ ७९१ ॥ जैसे आकाशमें दीखनेवाले बादलोंमें हाथी, घोड़े, गैंड़े, मांसाहारी पशुओं तथा सर्पोंकी आकृतियाँ बनती-बिगड़ती दिखायी देती हैं, उसी प्रकार

क्षणानुवृत्तिं कुर्वाणास्तद्यथात्र स्थिता वयम् । तथा सन्तु भवन्तोऽपि कार्यान्तरदिदृक्षवः ॥७९३॥
अपि चैवंविधा एव वितन्वन्तो रसान्तरम् । आसन्नराज्यप्राप्तीनां राज्ञां स्युः प्राणसंशयाः ॥७९४॥
ग्रीष्मस्योष्मा व्रजति घनतां नूनमासन्नवृष्टेर्नैशं गाढीभवति तिमिरं संनिकृष्टप्रभातम् ।
जन्तोरेवं प्रसभविभवस्फारसंपत्प्रचारान्निष्क्रामन्ती विपदुपचितोपद्रवोद्रेकमेति ॥७९५॥
प्राणचारेण शकुनं निश्चित्येति वदन्सताम् । आचचक्षे शुभोदर्काः स्वोदन्तसदृशीः कथाः ॥७९६॥
कालं चेप्तुमुपन्यस्नशुद्धिव्यक्तीभवद्रसाम् । तेभ्यश्च कथयामास हरिश्चन्द्राश्रयां कथाम् ॥७९७॥
तद्रञ्जने स्वरक्षायां बाह्यवार्तागवेषणे । व्यापृतत्वं गभीरस्य न तस्य समलक्ष्यत ॥७९८॥
अत्रान्तरे तमुद्दिश्य मते जाते नवे नवे । राजश्रियश्च काल्याश्च शतशोऽभूद्गतागतम् ॥७९९॥
उत्कर्षो भूमिपस्तस्य परित्यागं ह्यमन्यत । आदिदेशानुगांस्तांस्तान्भूरिशश्च प्रमापणे ॥८००॥
अभिज्ञानोर्मिकादानं वधादेशे तु नास्मरत् ।
ते नोक्तिं तस्य दूतानामन्वतिष्ठन्त रक्षिणः ॥८०१॥
स तान्वन्ध्यश्रमान्वीक्ष्य स्मृत्वाभिज्ञानसंविदम् । सत्त्वात्मजं राजपुत्रं शूराख्यं व्यसृजत्ततः ॥८०२॥
अभिज्ञानं वितरतस्तत्करे तस्य मुह्यतः । दैवयोगात्क्षणे तस्मिन्नूर्मिकाव्यत्ययोऽभवत् ॥८०३॥
यः पातार्थमुपार्जितोऽन्यशिरसस्तेनैव सिन्धुप्रभुर्वृद्धक्षेत्रधराधवः स्वशिरसः पातं वरेणान्वभूत् ।
दिव्या स्वैव गदा श्रुतायुधनृपं हन्तावधीदाहवे यत्त्राणाय विगण्यते विधिवशात्तेनैव नाशो भवेत् ॥८०४॥

मनुष्योंके मानसिक विकारोंमे मृदु एवं तीक्ष्ण विचारोंकी तरंगे बराबर उठती रहती है ॥ ७९२ ॥ जिस तरह मैं जो कुछ होनेवाला है, उसे झेलनेके लिए तैयार बैठा हूँ। उसी प्रकार आप लोग भी जो कुछ होनेवाला है, उसे देखनेके लिए तैयार रहिए ॥ ७९३ ॥ और फिर जिन्हें राज्य मिलनेवाला होता है, ऐसे राजाओंको विभिन्न रस उत्पन्न करनेवाले ऐसे-ऐसे प्राणघातक प्रसंग प्राप्त होते ही रहते है ॥ ७९४ ॥ जब बरसात आनेवाली होती है, तब गर्मी अपनी पराकाष्ठापर पहुँच जाती है और प्रभात होनेको होता है तो रातका अँधेरा और भी घना हो जाता है। उसी प्रकार जब विपुल सम्पदा आनेवाली होती है, तब शीघ्र नष्ट हो जानेवाली विपत्तियाँ विशेष दुःखदायिनी हो जाती हैं ॥ ७९५ ॥ उस हर्षको स्वरोदयशास्त्रका भलीभाँति ज्ञान था। अतएव वह उस बातको दृढ विश्वासके साथ कह रहा था। अन्तमें उसने उन लोगोंको अपने समान विपत्तिमें फँसे बहुतेरे महापुरुषोंके दृष्टान्त कह सुनाये ॥ ७९६ ॥ समय बितानेके लिए उसने कथाको सरस बनाते हुए राजा हरिश्चन्द्रका भी विपत्तिगाथा सुनायी ॥ ७९७ ॥ उन सन्तरियोंका मनोरंजन, अपनी रक्षा और विद्यमान बाहरी उपद्रवका सूक्ष्म दृष्टिसे पर्यवेक्षण करते हुए उस गम्भीर प्रकृतिके राजपुत्र हर्षने अपनी चतुराईका किसीको भी पता नहीं लगने दिया ॥ ७९८ ॥ उधर उसके सम्बन्धमें तबतक सैकड़ों नये-नये विचार उत्पन्न हो होकर उत्कर्षके पास बार-बार राज्यलक्ष्मी तथा महाकालीका आवागमन हो रहा था ॥ ७९९ ॥ 'हर्षको मारना चाहिए या बन्धनमुक्त कर देना चाहिए' इस विषयमें राजा उत्कर्ष अपने सेवकोंको भिन्न-भिन्न प्रकारके आदेश देता रहा ॥ ८०० ॥ अन्तमें उसने हर्षको मार डालनेकी आज्ञा दे दी, किन्तु उन सेवकोंको वह अँगूठी देना भूल गया, जिससे सन्तरियोंने राजाके सेवकोंकी बात माननेसे साफ इनकार कर दिया ॥८०१॥ जब राजाको अँगूठी न देनेकी बात याद आयी, तब उसने सत्यके पुत्र शूरको उनके पीछे-पीछे भेजा ॥ ८०२ ॥ परन्तु जब उसे भेजने लगा, तब भूलसे वह अँगूठी दे दी, जिसे देखकर हर्षको बन्धनमुक्त कर देनेकी आज्ञा सन्तरियोंको पहलेसे ही मिली हुई थी ॥ ८०३ ॥ वृद्धक्षेत्रके कुलमें जायमान एवं सिन्धुदेशके राजा जयद्रथके मस्तकको जो धरतीपर गिरा देगा उसको तुरन्त मृत्यु हो जायगी, यह वरदान उसके पिताने पहलेसे ही प्राप्त कर रक्खा था। किन्तु जयद्रथका सिर स्वयं उसके पिताके हाथसे गिरकर उसीकी मृत्युका कारण बन गया। इसी तरह राजा श्रुतायुधकी दिव्य गदा भी श्रुतायुधके ही मस्तकपर गिरकर उसीकी मृत्युका कारण बन गयी। इस प्रकार जो वस्तु रक्षाका उपाय समझी जाती है,

तथा चैकस्य विस्मृत्या व्यत्ययेनापरस्य च । अभिज्ञानस्य स नृपो नाशं प्रत्युत लब्धवान् ॥८०५॥
आभिजन्येन हर्षस्य ते क्षणादेव रक्षिणः । प्रपेदिरे हितैषित्वमुत्कर्षाज्ञाविरोधिनः ॥८०६॥
द्वारमाक्रान्तमुत्क्रोधो वधायायमुपागतः । इति निर्ध्याय ते शूरं हन्तुमैच्छन्नुदायुधाः ॥८०७॥
उद्घाटितारपुटा दृष्ट्वा तस्योर्मिकां करे । तेनैव साकं नृत्यन्तो हर्षं समुपतस्थिरे ॥८०८॥
पादन्यस्तोत्तमाङ्गैस्तैर्निर्गच्छेत्यर्थितस्ततः । अविश्वसन्राजसूनुः क्षणमासीत्स चिन्तयन् ॥८०९॥
तस्मिन्क्षणे हर्षदेवं हतं ज्ञात्वा रणे स्थितः । क्रुध्यन्विजयमल्लोऽभूदधिकोद्रिक्तपौरुषः ॥८१०॥
तं दग्धुमुद्यतं राजधानीं जीवति तेऽग्रजः । अभिधायेति रुरुधुः कथंचित्पार्थिवानुगाः ॥८११॥
प्रत्ययार्थं ततस्तस्य राज्ञा हर्षवधूर्तु तम् । गृहीतभर्तृताटङ्का सुगला प्रैष्यतान्तिकम् ॥८१२॥
तां विलोक्यैव विरते वह्निदाहान्नृपात्मजे । राजा भयप्रतीकारं हर्षत्यागादमन्यत ॥८१३॥
गत्वामात्याः स्वयं नोनप्रशस्तकलशादयः । हर्षं निर्निगडं कृत्वा कारागारात्ततोऽत्यजन् ॥८१४॥
मन्त्रः स तेषां शोकेन वक्त्रात्कृतगतागतः । अन्त्यक्षणे श्वास इव प्रससार बहिश्चरन् ॥८१५॥
हर्षः प्रच्छाद्यमानस्तु पौराणां पुष्पवृष्टिभिः । हयमारुह्य सामात्यो रणस्थं नृपमासदत् ॥८१६॥
अभिनन्द्यानुजो राजा तमूचे भ्रातरं रणात् । निवार्यागम्यतां कुर्मः प्राप्तकालं ततो वयम् ॥८१७॥
तथेति प्रस्थिते तस्मिंस्त्यक्त्वा तत्स रणाजिरम् । प्राविशन्मन्त्रिभिः सार्धं कोशं हेमादिसंश्रयम् ॥८१८॥

वही विधाताके विलक्षण विधानसे विनाशका कारण बन जाया करती है ॥ ८०४ ॥ वैसे ही राजा उत्कर्षके एक अभिज्ञान अर्थात् पहचानकी अंगूठी बदलकर दे देनेसे उस राजाको लाभके स्थानपर सर्वनाश प्राप्त हो गया ॥८०५॥ राजपुत्र हर्षदेव बड़ा ही मिलनसार और उदार था। इससे वे रक्षक बहुत अल्प समयमें उसके हितैषी और उत्कर्षकी आज्ञाके विरोधी बन गये ॥८०६॥ उसी समय क्रोधकी मुद्रामें शूरको आते देखकर उन्होंने यह अनुमान किया कि 'यह हर्षदेवकी हत्या करनेके लिए आ रहा है'। ऐसा सोचकर हर्षके हितैषी रक्षकोंने शूरको ही मार डालनेके लिए अपने-अपने शस्त्र सम्हाल लिये ॥ ८०७ ॥ द्वार खोलकर शूर जब भीतर गया और रक्षकोंने उसके हाथमें वधके स्थानपर बन्धनमुक्त कर देनेवाली अंगूठी देखी तो आनन्दविभोर होकर उछलते-कूदते हुए वे हर्ष-देवके पास गये ॥ ८०८ ॥ वहाँ उसके चरणोंमें मस्तक रखकर सविनय प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा कि 'अब आप तुरन्त बाहर निकल चलिए'। किन्तु उनकी इस बातपर हर्षको सहसा विश्वास नहीं हुआ और क्षणभर वह कुछ सोचता रहा ॥ ८०९ ॥ उसी समय 'राजा उत्कर्षने हर्षदेवको मरवा डाला है' ऐसा समझकर विजय-मल्लकी क्रोधाग्नि धधक उठी और उसने अपनी पूरी शक्तिसे राजाकी सेनाका संहार करना आरम्भ कर दिया ॥ ८१० ॥ वह तो उसी आवेशमें सारी राजधानी भस्म कर देनेको उद्यत हो गया था, किन्तु उसी समय 'आपका बड़ा भाई हर्ष जीवित है'। ऐसा कहकर राजा उत्कर्षके अनुयायियोंने किसी-किसी तरह उसको रोका ॥ ८११ ॥ तब उत्कर्षने भी हर्षके जीवित रहनेका विश्वास दिलानेके लिए हर्षकी पत्नी सुगलादेवीको हर्षका ताटंक (आभूषण) देकर विजयमल्लके पास भेजा ॥ ८१२ ॥ उसे देखनेपर विजयमल्लने अग्निकांडका विचार त्याग दिया। उधर उत्कर्षने भी हर्षदेवको कारामुक्त कर देनेमें ही अपना कल्याण देखा ॥ ८१३ ॥ तदनुसार तत्काल नोन और प्रशस्तकलश आदि राजमंत्री चतुःस्तम्भमण्डप गये और हथकड़ी-बेड़ी खोलकर उन्होंने हर्षदेवको कारागारसे मुक्त कर दिया ॥ ८१४ ॥ राजा उत्कर्षका वह हर्षके कारागारमुक्तिका मंत्र उन नोन-प्रशस्तकलश आदि मंत्रियों-के मुखसे शोकके कारण मुमूर्षु व्यक्तिके अन्तिम श्वासकी भाँति कुछ देर तक आता-जाता हुआ बड़ी कठिनाईसे बाहर निकला ॥ ८१५ ॥ तदनन्तर हर्षदेव घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे चला। जगह-जगह एकत्रित नागरिकों-की भीड द्वारा की गयी पुष्पवर्षासे आच्छादित होता हुआ वह अपने मंत्रियोंके साथ चलकर उस रणभूमिमें पहुँचा, जहाँ राजा उत्कर्ष खड़ा था ॥ ८१६ ॥ वहाँ लघुभ्राता उत्कर्षने भी हर्षदेवका अभिनन्दन किया और कहा—'आप तत्काल विजयमल्लके पास जाकर युद्ध बन्द कराइए। उसके बाद आगेका कार्यक्रम हमलोग परस्पर परामर्श करके निश्चित कर लेंगे' ॥ ८१७ ॥ तदनुसार हर्ष युद्ध बन्द करानेके लिए चल पड़ा और उत्कर्ष अपने

उत्तीर्णं महतः कृच्छ्राद्धर्षदेवमुपस्थितम् । दृष्ट्वा विजयमल्लोऽभूत्प्रहर्षान्निष्क्रियः क्षणम् ॥८१९॥
ततो ववन्दे तत्पादौ स चोत्क्राम्यालिलिङ्ग तम् । तास्ताः कथास्तयोरासन्नुपकर्त्रुपकार्ययोः ॥८२०॥
व्यापाद्यैनमेवादौ हर्षोत्कर्षं ततो नृपः । निष्कण्टकोऽसि भवितेत्याप्तस्योपांशु जल्पतः ॥८२१॥
ततो विजयमल्लेन नाद्रोहेणादृतं वचः । ज्ञात्वेङ्गितज्ञो हर्षस्तत्ततस्तु चकितः क्षणम् ॥ युग्मम् ॥८२२॥
स्वदेहमामिषीभूतं स भ्रात्रोः श्येनयोरिव । निष्पत्रपक्षप्रतिमो ररक्षार्वगतश्चरन् ॥८२३॥
आसन्नाभ्रजलस्य दावविगमे विद्युद्भयं शाखिनो नक्रास्याद्गलतश्च मज्जनमयी शङ्का भवेद्वारिधौ ।
भोक्तव्यस्य विधिः शुभस्य रभसात्स्वादुत्वनिष्पत्तये जन्तोः संतनुते निराकृतभियो भीत्यन्तरोत्पादनम् ॥८२४॥
तं हयभ्रमणव्याजाद्रक्षितुं निजजीवितम् । ज्ञातवार्ता निजाः केचित्पत्तयः पर्यवारयन् ॥८२५॥
साकं विजयमल्लेन ततः संमन्त्र्य स क्षणात् । चचाल विप्लवापायमाख्यातुं तं महीभुजे ॥८२६॥
अग्रं तद्वेश्मनः प्राप्तं विनिर्यान्तं नृपात्मजात् । ततो विजयसिंहस्तं संप्रवेशान्न्यवारयत् ॥८२७॥
ऊचे च मरणात्तीर्णो मर्तुं विशसि किं पुनः । निष्प्रज्ञ गत्वोपविश त्यक्तशङ्कं नृपासने ॥८२८॥
एवमुक्तवतस्तस्य भृत्यैः कोशादुपाहृते । सिंहासने हर्षदेवस्ततस्तूर्णमुपाविशत् ॥८२९॥
वैयात्यच्छादितानन्तप्रतिकूल्या तदन्तिके । उपाविशच्च सुगला महादेवीत्वसिद्धये ॥८३०॥
तस्याभिषेकशब्देन समपद्यन्त सर्वतः । रसितेनाम्बुवाहस्य चातका इव मन्त्रिणः ॥८३१॥

मंत्रियोंके साथ सुवर्ण-रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुओंसे परिपूर्ण राजकीय कोशागारकी ओर लपका ॥८१८॥ अत्यन्त भीषण विपत्तिसे छूटकर आते हुए हर्षदेवको देखकर विजयमल्ल प्रसन्नताके आवेशमें कुछ देर तो स्तब्ध-सा खड़ा रह गया ॥ ८१९ ॥ तत्पश्चात् वह हर्षके चरणोंमें लोट गया। तुरन्त हर्षने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। उसके बाद उन उपकर्ता तथा उपकृत दोनोंमें बड़ी देरतक बातें होती रहीं ॥ ८२० ॥ उसी समय एक विश्वस्त पुरुष विजयमल्लके पास आया। उसने धीरेसे कहा—'पहले हर्षको और उसके बाद उत्कर्षको मारकर आप निष्कण्टक राज्य भोगिए' ॥ ८२१ ॥ किन्तु द्रोहभावसे विहीन विजयमल्लपर उसकी बातका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु उन दोनोंके वार्तालापका ढंग देखकर चतुर हर्षदेवने उसका मनोभाव समझ लिया और चकित होकर इधर-उधर टहलने लगा ॥ ८२२ ॥ उस समय वह एकाकी था। उसके पक्षका कोई भी व्यक्ति उसके साथ नहीं था। अतएव दो प्रतिद्वन्द्वी बाज पक्षियोंके बीच फँसे पंखहीन एवं प्राणरक्षाके लिए आश्रय खोजनेवाले पखेरूकी भाँति वह घोड़ेपर बैठकर इधर-उधर घूम रहा था ॥ ८२३ ॥ वर्षासे वृक्षोंका दावानलजनित क्लेश नष्ट हो जाता है, किन्तु उसके साथ ही बादलोंसे बिजली गिरनेका संकट सामने आ उपस्थित होता है और समुद्रमें मगरके मुखसे बचकर निकले हुए मनुष्यको पानीमें डूब जानेका भय घेर लेता है। उसी प्रकार निकटवर्ती भावी शुभ फलका अधिकाधिक आनन्द देनेके लिए विधाता एक भयके दूर होते ही दूसरा भय सामने खड़ा कर देता है ॥ ८२४ ॥ तभी इस विचारपरिवर्तनका रहस्य जाननेवाले कुछ पैदल सैनिक अपनी रक्षा करते हुए घोड़े टहलानेके बहाने हर्षके निकट आ उपस्थित हुए ॥ ८२५ ॥ तदनन्तर हर्ष कुछ देरतक विजयमल्लसे मंत्रणा करता रहा। फिर विद्रोह शान्त हो जानेका समाचार राजा उत्कर्षको देनेके लिए वह वहाँसे चल पड़ा ॥८२६॥ वहाँसे चलकर जब राजमहलके द्वारपर पहुँचा तो विजयसिंहने उसे भीतर नहीं जाने दिया ॥ ८२७ ॥ उसने कहा—'राजपुत्र ! एक बार आप मौतके मुखमें जाकर बड़ी कठिनाईसे बाहर निकले हैं तो अब फिरसे क्यों मृत्युके निकट जाना चाहते हैं ? अतएव हे सरल स्वभाववाले राजपुत्र ! अब आप तुरन्त राजगद्दीपर बैठ जाइए ॥ ८२८ ॥ विजयसिंहकी बात सुनकर उसके सेवक तत्काल कोशागारसे राजसिंहासन बाहर निकाल लाये और हर्षदेव तुरन्त उसपर बैठ गया ॥ ८२९ ॥ उसी समय हर्षकी पत्नी सुगला भी ढिठाईके साथ अपने बहुतेरे अक्षम्य अपराधोंको छिपाती हुई महादेवीका पद प्राप्त करनेके लिए उसकी बगलमें सिंहासन-पर बैठ गयी ॥ ८३० ॥ उस अभिषेककालीन हर्षध्वनिको सुनकर मेघगर्जनसे एकत्र हो जानेवाले चातकोंके

तद्वार्ताश्रवणेनार्तमुत्कर्षं मन्दिरात्ततः । धूर्तो विजयसिंहोऽपि कृष्ट्वाऽन्यमनयद्गृहम् ॥८३२॥
आस्थानस्थस्य भूभर्तुरग्रेण स मितानुगः । नष्टश्रीर्ददृशे गच्छन्स्थिराः कस्य विभूतयः ॥८३३॥
तस्य वेश्मप्रविष्टस्य बहिर्विन्यस्य रक्षिणः । राज्ञो विजयसिंहस्तत्कृतं कार्यं न्यवेदयत् ॥८३४॥
कारायां संस्तुतान्राजपार्श्वमानीय ठक्कुरान् । तत्सैन्येऽग्रस्थितेऽत्याक्षीद्भयं विजयमल्लतः ॥८३५॥

सोऽप्यग्रजं प्राप्तराज्यं श्रुत्वा तत्सविधं व्रजन् ।
निन्ये संमान्य तद्दूतैः स्वामेव वसतिं क्षणात् ॥८३६॥

तत्सैन्यं स्वान्तिकं प्राप्तमथ वीक्ष्य क्षमापतिः । आनिनाय तमभ्यर्णं क्षणमात्रेण नीतिवित् ॥८३७॥
मह्यं प्राणाश्च राज्यं च त्वया दत्तमिति ब्रुवन् । स प्राञ्जलिस्तमकरोत्क्लेशसाफल्यदायिनम् ॥८३८॥
तस्य दैवानुकूल्येन नीत्येव सुप्रयुक्तया । तत्कालमेव तद्राज्यशय्यायां समुपाविशत् ॥८३९॥
कारागृहान्तःसंवीतान्येव वासांसि धारयन् । सिंहासनेन शुशुभे श्रीसान्निध्यान्नवो नृपः ॥८४०॥
तादृक्साहससंरम्भपरिश्रान्तो दिनात्यये । कृतारोहोऽथ शय्यायां त्यक्तभार इवापतत् ॥८४१॥
पश्यन्निवसतामेव सर्वतो विगरारुताम् । न स निद्रासुखं तत्र मीलिताक्षोऽपि लब्धवान् ॥८४२॥
उत्कर्षो युधि बद्धस्तु मन्त्रं पृच्छन्स्वमन्त्रिणः । आक्षिप्यान्यद्वचो रूक्षं नोनकेनेत्यकथ्यत ॥८४३॥
प्रातः प्रोक्तोऽसि यन्मन्त्रं तन्नाकार्षीर्महीपते । पतितामनयादस्माद्भाविनीं शृणु संविदम् ॥८४४॥
अभ्याक्षिपो बन्धनस्थं त्वं तमुच्छिष्टभोजिनाम् । श्वः श्वमांसार्पिणां हस्ते स तु त्वामर्पयिष्यति ॥८४५॥

समान उसके मंत्री भी चारों ओरसे आ-आकर वहाँ एकत्र हो गये ॥ ८३१ ॥ उधर हर्षदेवके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर व्याकुल उत्कर्षको धूर्त विजयसिंहने जबर्दस्ती राजमहलसे हटाकर दूसरी जगह कैद कर दिया ॥ ८३२ ॥ उस समय राजसभाके भीतर सिंहासनपर बैठे हुए राजा हर्षदेवने इने-गिने सेवकोंके साथ जाते हुए राज्यभ्रष्ट एवं श्रीहीन भूतपूर्व राजा उत्कर्षको देखा। सम्पदायें चिरकाल तक भला किसके पास टिकती हैं ? ॥ ८३३ ॥ उत्कर्षकी निगरानीके लिए विश्वस्त रक्षकोंको नियुक्त करके विजयसिंहने राजा हर्षदेवके पास आकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८३४ ॥ तदनन्तर राजा हर्षदेवने कारावासके विकराल समयके सहायक तथा सच्चे मित्र लोहरप्रान्तके निवासी ठक्कुरों तथा उनके सैनिकोंको बुलवाकर अपने पास रख लिया। ऐसा करनेसे उसके मनसे विजयमल्लका भय दूर हो गया॥८३५॥ उसी समय अपने ज्येष्ठ भ्राता हर्षदेवके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर विजयमल्ल हर्षके पास जा रहा था। किन्तु उसके दूत रास्तेसे ही उसको उसके घर लौटा ले गये ॥ ८३६ ॥ तदनन्तर विजयमल्लकी सेनाको अपने समक्ष उपस्थित देखकर नीतिनिपुण हर्षदेवने क्षणमात्रके भीतर विजयमल्लको भी अपने पास बुलवा लिया ॥ ८३७ ॥ इसके बाद हाथ जोड़कर हर्षदेवने कहा कि 'ये प्राण आपकी ही देन हैं। आपकी कृपासे मेरा परिश्रम उसी तरह सफल हुआ है। जैसे भाग्यके अनुकूल रहनेपर अच्छे ढंगसे प्रयोग की गयी नीति सफल होती है'। यह कहकर हर्षदेवने विजयमल्लको राजसिंहासनपर बगलमें बिठा लिया ॥ ८३८ ॥ ८३९ ॥ हर्ष अबतक वह कारागारवाला ही वस्त्र पहने हुए था, फिर भी राज्यश्रीके सम्पर्कके कारण उस राजसिंहासनपर बैठकर वह नया राजा बड़ा ही सुन्दर लग रहा था ॥ ८४० ॥ इस तरहके साहसिक कार्योंको करनेके कारण थका हुआ हर्ष साँझके समय मस्तकसे भार उतारकर थके हुए मजूरेके समान शय्यापर पड़कर सो गया ॥ ८४१ ॥ किन्तु इस परिवर्तनशील संसारके प्राणियोंके भाग्यकी विचित्र चंचलतापर विचार करते हुए राजा हर्षदेवको आँखे मींचकर पड़े रहनेपर भी नींदका सुख नहीं प्राप्त हो सका ॥ ८४२ ॥ युद्धमें विजयसिंहके द्वारा कैद किया गया उत्कर्षने जेलमें ही अपने मंत्रियोंसे भावी कार्यक्रमके विषयमें सलाह माँगी। तब मंत्री नोनकने बड़े तिरस्कारके साथ ये वचन कहे– ॥ ८४३ ॥ राजन् ! आज सवेरे मैंने जो सलाह दी थी, उसे आपने नहीं माना। यह अनीतिमय व्यवहार करनेसे अब जो विपत्तियाँ भोगनी पड़ेंगी, वह सुनिए ॥ ८४४ ॥ उस समय कारावद्ध हर्षको आपने उच्छिष्टभोजियों

शरणं मरणादन्यत्तस्मादस्मिन्क्षणेऽस्ति किम् । त्यक्ताहवानामस्माकं तदप्यप्राप्यतां गतम् ॥८४६॥
अवसादफलास्वादकालेऽत्यन्तमरुंतुदम् । यद्वोपालम्भपाण्डित्यं न विपत्तेषु शोभते ॥८४७॥
त्वयाऽपायमनालोच्य य उपायः प्रवर्तितः । सर्वमेकपदे तेन मुहूर्ते नैव हारितम् ॥८४८॥
संस्थाप्यमानो दुर्नीत्या सूच्येव जरठः पटः । प्रत्युतोपद्रवोल्पोऽपि शतद्वारः प्रजायते ॥८४९॥
एवं श्रुत्वा स तन्मध्यान्निर्गत्याभ्यन्तरं गृहम् । अवरुद्धिकया सार्धं विवेश सहजाख्यया ॥८५०॥
तत्र संध्यासमाधिस्थस्तिष्ठामीत्यभिधाय ताम् । क्षणं तिरस्करिण्यन्तरेकाक्येवाकरोत्स्थितिम् ॥८५१॥
निःशस्त्रेण गले क्षिप्त्वा पटच्छेदनकर्तरीम् । नाड्यः प्राणहरास्तेन छिन्नाः खिन्नात्मना ततः ॥८५२॥
फणत्कारेण कर्तर्याश्च्युताया भुवि शङ्किता । अपश्यत्सहजा रक्तं श्च्योतज्जवनिकान्तरात् ॥८५३॥
सोऽथ लम्बशिरोनिर्यत्सान्द्रासृग्ददृशे तया । वज्रावभग्नशृङ्गान्तश्च्योतद्धातुरिवाचलः ॥८५४॥
तस्यास्तदानीमौचित्यं निर्व्यूढं येन योषिताम् । भर्तृप्रसादपात्राणामवाप्युच्चैस्तरां शिरः ॥८५५॥
व्रजति रजनी त्यक्त्वा क्वापि क्षये क्षणदाकरं पदमुपगतस्यास्तं संध्या रवेरनुगच्छति ।
इति परिणतौ प्रेमण्युच्चावचे परिचिन्तिते क्वचन नियमान्निन्द्या वन्द्या न वा सुधियां स्त्रियः ॥८५६॥
कुलाचारपतिप्रेमसादृश्येऽप्यभवत्तदा । कय्यासहजयोर्यस्मान्निन्द्या वन्द्या च पद्धतिः ॥ युग्मम् ॥८५७॥
सापि हि घुसदो वेश्मनर्तकी नाट्यमण्डपे । दृष्ट्वा तेनावरुद्धात्वं निन्ये राजवधूः पुरा ॥८५८॥
कान्तास्रगैरिकास्यन्दकृतसान्द्राङ्गरागया । प्रेम्णो हेम्न इवौज्ज्वल्यं प्रविश्याग्निं तयार्पितम् ॥८५९॥

(जूठा खानेवालों) के हाथ सौंपा था, अव वह आपको श्वपचों (चाण्डालों) के हाथ सौंपेगा ॥ ८४५ ॥ अव मरनेके सिवाय हम लोगोंके लिए और कोई भी गति नहीं है, किन्तु युद्धसे अलग हो जानेके कारण मृत्यु भी अप्राप्य वन गयी है ॥ ८४६ ॥ अव शत्रु आपको अधिकसे अधिक कष्ट देनेमें कुछ भी उठा न रक्खेगा। वह कष्टके हृदयको भी कष्ट देनेवाले वचनोंका उपयोग करेगा ॥ ८४७ ॥ आपने उस समय अपने विनाशकी ओर ध्यान न देकर जो उपाय किया, वही अव सर्वनाशके रूपमें हमारे सामने उपस्थित है ॥ ८४८ ॥ वहुत पुराने कपड़ेको सीकर ठीक भी किया जाय तो वह फिर फट जाता है। उसी प्रकार विगड़ी वात वनानेकी चेष्टा करनेपर वह और भी विगड जाती है' ॥ ८४९ ॥ अपने मंत्री नोनककी यह वात सुनकर उत्कर्ष अपनी प्रिय रखैल सहजाको लेकर भीतरी कक्षमें चला गया ॥ ८५० ॥ वहाँ पहुँचकर उसने सहजासे कहा—'मैं यहाँ सन्ध्या-वन्दन करता हुआ क्षणभर एकान्तमें अकेला रहना चाहता हूँ'। यह कहकर वह परदेके पीछे चला गया ॥ ८५१ ॥ यद्यपि उस समय वह निःशस्त्र था, फिर भी खिन्न होकर उसने कपड़ा काटनेवाली कैंचीसे अपने गलेकी रक्तवाहिनी नसें काट डालीं ॥ ८५२ ॥ उसके वाद कैंची गिरनेकी आवाज सुनकर सहजाको सन्देह हुआ। तनिक ही देर वाद उसने परदेके नीचेसे रक्तकी धारा वहती देखी ॥ ७५३ ॥ तत्काल भीतर जाकर उसने उत्कर्षकी गर्दनसे इस प्रकार रक्तका प्रवाह होते देखा, जैसे विजली गिरनेसे कोई पर्वत फट गया हो और उसके भीतरसे गेरू आदि धातुयें निकलकर वह चली हों ॥ ८५४ ॥ वह भीषण काण्ड देखकर सहजाने जो कुछ किया, उससे संसार भरकी पतिभक्तिपरायणा स्त्रियोंका मस्तक ऊँचा हो गया ॥ ८५५ ॥ रात्रि चन्द्रमाको क्षीण देखकर उसका साथ छोड़ देती है, किन्तु सन्ध्या सूर्यका साथ न छोड़कर उसके साथ अस्त हो जाती है। अतएव वुद्धिमानोंको कदाचित् प्रेमका परिपाक हो जानेके समय ही उसमें परिवर्तन दिखायी दे सकता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रियोंको सर्वथा निंद्य अथवा वंद्य नहीं कहा जा सकता ॥ ८५६ ॥ कुलाचार तथा पतिप्रेममें समान होती हुई भी कय्या और सहजा इन दोनों प्रेमिकाओंमेंसे एक निन्दनीय और दूसरी सवकी वन्दनीया वन गयी ॥ ८५७ ॥ कय्याके समान ही सहजा भी एक दासी थी और देवमन्दिरमें नृत्य करती थी। एक दिन राजा उत्कर्षने उसे नाट्यमण्डपमें देखा और उसके सौन्दर्यपर आसक्त होकर अपने अन्तःपुरमें रख लिया और राजरानी वना दिया ॥ ८५८ ॥ तत्काल उसने पतिके शरीरसे अंगारके समान

हर्षदेवस्यापि पूर्वं वेश्यात्वे साऽभवत्प्रिया। अतस्तेनार्थ्यमानापि मरणान्न न्यवर्तत ॥८६०॥
चतुर्विंशाब्ददेशीयो दिनद्वाविंशतौ नृपः। मृतस्तिष्ठन्निशामेकां प्रातः सोऽक्रियताग्निसात् ॥८६१॥
तस्यावरोधलोलाक्ष्यो लोहराद्रिस्थिता अपि। कृशानुवर्त्मना काश्चित्पदवीं द्रुतमन्वयुः ॥८६२॥
शस्त्रं संत्याज्यमानेषु तन्मन्त्रिषु नृपानुगैः। मुमूर्षुर्नोनकः शस्त्रं न तत्याज क्षणं यदा ॥८६३॥
विनास्मान्मन्त्रदो राज्ञः कोऽन्यः स्याद्दिनैरसौ। मोक्ष्यत्यस्मांस्ततः प्राणान्नोपेक्षिष्ठा विचारयन् ॥८६४॥
स्वयूथ्य एवेति वचः प्रशस्तकलशो वदन्।
तदा संत्याजयामास स्वयं तच्च समर्पितम् ॥ तिलकम् ॥८६५॥
नोनसिल्हारभट्टारप्रशस्तकलशादयः। वद्ध्वाथ हर्षदेवेन कारागारं प्रवेशिताः ॥८६६॥
इत्येवमेकेनैवाह्वा तादृग्राजविपर्ययः। कृतश्च हर्षदेवेन दैवेनेव महाद्भुतः ॥८६७॥
यथाकथंचिद्व्युत्क्रान्ता वहवः पृथिवीभृतः। प्रतीतिविषमो मार्गः कष्टमापतितोऽधुना ॥८६८॥
सर्वोत्साहोदकक्षेत्रं सर्वानुल्लासदूतिका। सर्वव्यवस्थाजननी सर्वनीतिव्यपोहकृत् ॥८६९॥
उद्रिक्तशासनस्फूर्तिरुद्रिक्ताज्ञाक्षयक्षितिः। उद्रिक्तत्यागसंपत्तिरुद्रिक्तहरणग्रहा ॥८७०॥
कारुण्योत्सेकसुभगा हिंसोत्सेकभयंकरी। सत्कर्मोत्सेकललिता पापोत्सेककलङ्किता ॥८७१॥
स्पृहणीया च वर्ज्या च वन्द्या निन्द्या च सर्वतः। निश्चोद्या चोपहास्या च काम्या शोच्या च धीमताम् ॥८७२॥

वहे हुए रक्तरूपी गेरूको सारे शरीरमें लगाया और अपने प्रेमको सुवर्णके समान उज्ज्वल तथा निष्कलंक साबित करती हुई सहजा चितामें जल मरी ॥ ८५९ ॥ वेश्याकालमें सहजा राजा हर्षदेवकी भी प्रेमिका रह चुकी थी। अतएव अग्निप्रवेशके समय उसने रोका, किन्तु हर्षके अनुरोधका कुछ भी ख्याल न करके वह अपने निश्चयपर अडिग वनी रही ॥ ८६० ॥ जिस समय उत्कर्ष मरा, तव उसकी उम्र कुल चौवीस वर्षकी थी। उसने केवल वाईस दिन राज्य किया था। उसका शव रातभर रक्खा रहा। सवेरे अग्निसंस्कार किया गया ॥ ८६१ ॥ उसकी अन्यान्य चपलनयनी रानियाँ लोहर प्रान्तमें रहा करती थीं। उनमेंसे कुछने अग्निमें प्रविष्ट होकर तत्काल पतिके समागमका आनन्द प्राप्त कर लिया ॥ ८६२ ॥ राजा हर्षदेवके सेवकोंने जव दिवंगत उत्कर्ष-के मन्त्रियोंका शस्त्रास्त्र छीनना आरम्भ किया, तव मरणोद्यत नोनकने अपने शस्त्र नहीं त्यागे। तव दूसरे मंत्री प्रशस्तकलशने कहा—'इस समय हमलोगोंके सिवाय दूसरा कौन राजा हर्षको सही सलाह दे सकेगा। अतएव यह निश्चित है कि हमलोग छूट जायँगे। ऐसा परिस्थितिमें आप अपने प्राणोंकी उपेक्षा न करें' ॥ ८६३ ॥ ८६४ ॥ ऐसा कहकर मंत्री प्रशस्तकलशने नोनकसे शस्त्रास्त्र दिला दिये और उसने अपना शस्त्रास्त्र भी उन राजसेवकोंके हवाले कर दिया ॥ ८६५ ॥ तदनन्तर राजा हर्षदेवने नोनक, सिल्हार, भट्टार एवं प्रशस्तकलश आदि मंत्रियोंके हाथोंमें हथकड़ी तथा पैरोंमें वेड़ी पहनाकर कारागार भेज दिया ॥ ८६६ ॥ इस तरह देवके समान विचित्र कार्य करनेमें समर्थ राजा हर्षदेवने एक ही दिनमें राज्यपरिवर्तनका काम कर दिखाया ॥ ८६७ ॥ हमने अपनी कथामें यहाँतक वहुतेरे भले और वुरे राजाओंका इतिहास वताया। अव दुर्भाग्यसे वुद्धिकी सामर्थ्यके वाहर कुछ भयंकर प्रसंग सामने आ रहे हैं ॥ ८६८ ॥ राजा हर्षदेवके कथा-प्रसंगमें सव तरहके अच्छे कार्योंका सूत्रपात तथा उन कार्योंकी असफलताका वर्णन करना पड़ेगा। साथ ही सव तरहकी सुव्यवस्थाका निश्चय और उस निश्चयमें राजनीतिक सूझ-वूझका अभाव भी दिखायी देगा ॥ ८६९ ॥ इसमें उद्रिक्त (कठोर) शासनकी चमक और उस शासनका उल्लंघन करनेके कारण उत्पन्न होनेवाली गड़वड़ी तथा इससे होनेवाली हानिका भी वर्णन किया जायगा। इस तरह राजा हर्षदेवकी कथा वहुत ही उदारता-भरी और परधन अपहरणकी पराकाष्ठासे ओतप्रोत है ॥ ८७० ॥ इसमे करुणाके आधिक्यका सौन्दर्य तथा हिंसाकी अधिकताके कारण भीषणता भी भरी पड़ी है। धार्मिक सुकृत्यकी अधिकताके कारण यह कथा लालित्ययुक्त है और पापाचारकी वहुलतासे कलंकित भी है ॥ ८७१ ॥ इस प्रकार यह कथा स्पृहणीय भी है और वर्जनीय भी। यह कथा वन्दनीय होकर भी निन्दनीय है। यह वुद्धिमानोंकी दृष्टिमें कौतुकप्रद होती हुई भी

आशास्या चापकीर्त्यां च स्मार्या त्याज्या च मानसात् ।
हर्षराजाश्रया चर्चाकथा व्यावर्णयिष्यते ॥ कुलकम् ॥८७३॥

नूनं स तैजसैरेव ससृजे परमाणुभिः । कुतोऽन्यथाऽभूत्प्रसवे दुष्प्रेक्ष्यो महतामपि ॥८७४॥
न मर्त्येषु न देवेषु तद्रूपो दृश्यते क्वचित् । दानवेन्द्रेषु स प्राज्ञैः परमुत्प्रेक्ष्यते यदि ॥८७५॥
प्रतिमार्कपरीमाणज्वलत्कुण्डलमण्डितः । उत्तुङ्गमुकुटानद्धविकटोष्णीपमण्डलः ॥८७६॥
प्रसन्नसिंहविप्रेक्षी नीचश्मश्रुच्छटाञ्चितः । वृषस्कन्धो महाबाहुः श्यामलोहितविग्रहः ॥८७७॥
व्यूढवक्षाः क्षाममध्यो मेघघोषगभीरवाक् । सोऽमानुषाणामपि यत्प्रतिभाभङ्गकार्यभूत् ॥तिलकम्॥८७८॥
सिंहद्वारे महाघण्टाश्चतुर्दिक्कमबन्धयत् । ज्ञातुं विज्ञप्तिकामान्स प्राप्तांस्तद्ध्वानसंज्ञया ॥८७९॥
आर्तां च वाचमाकर्ण्य तेषां तृष्णानिवारणम् । प्रावृषेण्यः पयोवाहश्चातकानामिवाकरोत् ॥८८०॥
अचित्रवस्त्रो निर्हेमभूषणोऽल्पपरिच्छदः । ददृशे विगतोत्तापे न कश्चिद्राजमन्दिरे ॥८८१॥
सिंहद्वारे नरपतेर्नानाजनसमाश्रिते । सर्वदेशश्रियोऽश्रान्तमासन्राशीकृता इव ॥८८२॥
अपेतसंख्याः सौवर्णशृङ्खलाकटकान्विताः । भ्रेमुर्मन्त्रिप्रतीहारमुख्याः क्ष्मापतिमन्दिरे ॥८८३॥
एवं स्फूर्जन्स नृपतिर्नवसाम्राज्यसुन्दरः । अभूद्विजयमल्लस्य गुरोरिव मते स्थितः ॥८८४॥
आदीयमानवचसः कृतज्ञेन महीभुजा । तस्याभूत्पार्थिवस्येव सेवकैः संकटा सभा ॥८८५॥
स्वसेवकाननादृत्य रक्षन्संस्थाव्यतिक्रमम् । पित्र्येभ्य एव मन्त्रिभ्यः सोऽधिकारान्समर्पयत् ॥८८६॥

उपहासास्पद है और कमनीय होनेपर भी शोचनीय है ॥ ८७२ ॥ यह कथा वाञ्छनीय होती हुई भी अपकीर्तिके योग्य है। स्मरण रखने योग्य होती हुई भी त्याज्य है। इन विशेषताओंसे भरी हर्षदेवकी कथाका वर्णन किया जा रहा है ॥ ८७३ ॥ राजा हर्षदेवका निर्माण अवश्य तैजस परमाणुओंसे किया गया था। यदि ऐसा न होता तो वह महापुरुषोंको भी सूर्यनारायणके सदृश तेजस्वी एवं दुष्प्रेक्षणीय क्यों लगता ? ॥ ८७४ ॥ राजा हर्ष जैसा तेजस्वी पुरुष न मनुष्योंमें मिलना संभव है और न देवताओंमें। यदि बड़े-बड़े विद्वान् अनुसन्धान करें तो दानवेन्द्रोंमें भले ही कोई उसके समान व्यक्ति मिल जाय ॥ ८७५ ॥ उसके कानोंमे सूर्यके सदृश चमकीले कुण्डल चमका करते थे और उसकी बहुत ऊँची पगड़ीपर ऊँचा मुकुट बँधा रहता था ॥ ८७६ ॥ प्रसन्न सिंहकी आँखोंकी भाँति उसकी आँखे थीं। उसकी लम्बी तथा सुन्दर दाढी उसके मुखारविन्दकी शोभा बढाया करती थी। बैलकी गर्दनकी तरह उसके सुपुष्ट कन्धे थे। बड़ी-बड़ी भुजाये थीं और काला-लाल मिश्रित रंगका शारीरिक वर्ण था ॥ ८७७ ॥ उसकी चौड़ी छाती थी, कृश मध्यभाग था और मेघगर्जनके समान गम्भीर उसकी आवाज थी। इन सभी विशेषताओंके एकत्र हो जानेके कारण बड़े बडे अतिमानव एवं सत्त्वसम्पन्न महापुरुषोंकी प्रतिभा भी उसके समक्ष जड़ बन जाती थी ॥ ८७८ ॥ उसने प्रार्थियोंकी प्रार्थना सुननेके लिए अपने महलके चारों द्वारोंपर बड़े-बड़े घण्टे बँधवा दिये थे और उनकी ध्वनि सुनते ही वह प्रार्थीसे मिलनेके लिए तैयार हो जाता था ॥ ८७९ ॥ जैसे वर्षाकालीन बादल चातकोंकी करुण वाणी सुनकर उनकी प्यास बुझा देता है, वैसे ही वह भी प्रार्थियोंकी आकांक्षा पूर्ण कर देता था ॥ ८८० ॥ उसके आनन्दपरिपूर्ण महलमे रंग-विरंगे तथा सुन्दर वस्त्रों, सुवर्णके अलंकारोसे रहित एवं अल्प सेवकोंवाला कोई भी व्यक्ति नहीं दिखायी देता था ॥ ८८१ ॥ राजा हर्षदेवके सिंहद्वारपर नित्य असंख्य मनुष्य खड़े दीखते थे और सभी देशोंकी सम्पदाओंकी राशि विखरी पड़ी रहती थी ॥ ८८२ ॥ उसके राजप्रासादमे सोनेके कंकण तथा सोनेकी ही कण्ठी पहने मन्त्री, प्रतीहार तथा सामन्तगण इधर-उधर घूमा करते थे ॥ ८८३ ॥ इस तरह नवीन साम्राज्य पानेके कारण अत्यन्त शोभासम्पन्न एवं प्रतापसे जाज्वल्यमान राजा हर्ष गुरुके सदृश आदरणीय विजयमल्लकी सलाहसे राज्यका सारा शासनकार्य करता था ॥ ८८४ ॥ राजा हर्ष बड़ी कृतज्ञताके साथ उसकी बात सुनता था और विजयमल्लकी सभा भी राजसभाके समान नित्य अगणित मनुष्योंसे भरी रहती थी ॥ ८८५ ॥ राजा हर्षने प्राचीन व्यवस्थाओंका भलीभाँति संचालन करने लिए अपने पिताके

द्वारे चकार कन्दर्पं मदनं चापि कम्पने। अन्यान्विजयसिंहादीन्कर्तव्ये च निजे निजे ॥८८७॥
तेन प्रशस्तकलशप्रमुखाः शान्तमन्युना। बन्धात्संत्यज्य कार्येषु निजेष्वेव नियोजिताः ॥८८८॥
स्मृत्वापकारान्सुबहूनमात्यो नोनकः परम्। धात्रेयेण समं भ्रात्रा कोपाच्छूले विपादितः ॥८८९॥
काले काले तु कार्येषु संकटेषु महामतिम्। संस्मरन्स्वामिभक्तं तं पश्चात्तापेन पस्पृशे ॥८९०॥
योग्यः कृतापकारोऽपि कदाचिदुपयुज्यते। विहितागारदाहोऽग्निः शरणं भोज्यसिद्धये ॥८९१॥
संदर्श्याग्रे स्वभार्यायाः कर्णनासावकर्तनम्। विश्वावट्टो राजभृत्यैः शूलेनैव विपादितः ॥८९२॥
उदये संविभेजे स भृत्यान्कारविनिर्गतान्। मधौ प्रफुल्लः शाखीव भृङ्गान्भूविवरोत्थितान् ॥८९३॥
रक्कैः क्षेमस्य यः पौत्रो वज्रजः स महीभुजा। सर्वामात्यप्रधानत्वं निन्ये सुन्नः सहानुजः ॥८९४॥
राज्ञो यात्रादिसमये प्रेक्षकाणां पदे पदे। एक एकोऽभवन्मन्त्री महीपालभ्रमप्रदः ॥८९५॥
सर्वप्रतीहारघटामूर्धानमधिरोपितः। जयराजोऽनुजस्तस्य जीवितादधिकोऽभवत् ॥८९६॥
जाह्नवीयात्रया भ्रात्रोरानृशंस्याद्विचक्षणः। धम्मटः सोऽपि तान्वङ्गैर्भ्रातृपुत्रैः सहाययौ ॥८९७॥
संमान्य तं नरपतिः स्वकृते हारिताग्रजम्। सभ्रातृपुत्रमद्राक्षीत्स्वाविशेषेण सर्वदा ॥८९८॥
विभज्य भुञ्जतो राज्यं तस्यैवं प्रेरितः खलैः। क्रमाद्विजयमल्लोऽथ दुद्रुक्षुर्विकृतिं दधे ॥८९९॥
राज्यं प्रादाः किमन्यस्मै जित्वेत्युक्तः स दुर्जनैः। तल्लिप्सुर्मन्त्रयामास वधं प्रथमजन्मनः ॥९००॥
विजने मन्दिरे हन्यामिति संमन्त्र्य भूपतिः। यागं विधाय व्याजेन तेनागन्तुं निमन्त्रितः ॥९०१॥

समयके अनुभवी मंत्रियोंको सब अधिकार सौंपे थे। अतएव वह नये सेवकोंका मतानुयायी नहीं बना ॥ ८८६ ॥ कन्दर्प तथा मदनको उसने द्वाराधिकार तथा कम्पनेश (सेनापति) के पदपर नियुक्त करके विजयसिंह आदिको भी उनके प्राचीन पदोंपर तैनात कर दिया ॥ ८८७ ॥ कुछ दिनों बाद जब क्रोध शान्त हो गया, तब हर्षने प्रशस्तकलश आदि उत्कर्षके मन्त्रियोंको भी जेलसे छोड़कर उनके योग्य कामोंपर लगा दिया ॥ ८८८ ॥ किन्तु नोनक मन्त्री तथा उसके धात्रेय भ्राताके अगणित अपकारोंका स्मरण करके उसने उन दोनोंको सूलीपर चढ़वाके मार डाला ॥ ८८९ ॥ फिर भी महत्त्वपूर्ण कार्योंके अवसरपर राजा हर्षदेव बुद्धिमान् तथा स्वामिभक्त नोनककी याद करके पछताता था ॥ ८९० ॥ क्योंकि अपकारी मनुष्य भी किसी समय काम आ सकता है। जैसे घर जला डालनेवाली आगसे भी भोजन तो बन ही सकता है ॥८९१॥ राजा हर्षके सेवकोंने उसकी स्त्रीके सामने विश्वावट्टके नाक-कान काटकर सूलीपर चढ़ा दिया ॥ ८९२ ॥ जैसे वसन्त ऋतुमें पुष्पित वृक्ष भूविवर तथ वन्कोटरसे निःसृत कृष्णमधुमक्षिकाओंका पालन करता है, उसी प्रकार राजा हर्षने अपनी उन्नतिके समय कारावाससे मुक्त सेवकोंको भी अपने भाग्योदयमें साझेदार बनाया और उन्हें उत्तमसे उत्तम इनाम दिये ॥८९३॥ रक्कके वंशज, क्षेमके पौत्र एवं वज्रके पुत्र सुन्न तथा उसके भ्राताको राजा हर्षने मंत्रियोंमें प्रधानपद प्रदान किया ॥८९४॥ राजा हर्ष जब अपने राज्यमें पर्यवेक्षणके लिए भ्रमण करने निकलता था, उस समय उत्तम वस्त्रों तथा अलंकारोंसे विभूषित उसके मंत्रियोंको देखकर राजाका भ्रम होने लगता था अर्थात् दर्शकगण प्रत्येक मंत्रीको राजा समझने लगते थे ॥८९५॥ राजा हर्षने प्राणोंसे भी बढ़कर अपने प्रिय कनिष्ठ भाई जयराजको समस्त प्रतीहारोंका अध्यक्ष बना दिया ॥ ८९६ ॥ अपने दोनों भाइयोंकी मृत्यु हो जानेके बाद तन्वंगका पुत्र धम्मट नटके उपकारके ऋणसे उऋण होनेके लिए गंगाजीकी यात्रा करनेके बाद कश्मीर लौट आया था ॥८९७॥ 'धम्मटके बड़े भाइने मेरे लिए प्राण दे दिये थे' यह सोचकर राजा हर्षने धम्मट और उसके भतीजोंका बहुत सम्मान किया और उन्हें प्राणोंसे प्रिय समझने लगा ॥ ८९८ ॥ इस प्रकार भोगोंका विभाजन करके राज्य करनेवाले हर्षदेवके साथ दुष्टोंकी बातोंमें आकर विजयमल्ल विद्रोह करनेके लिए उद्यत हो गया ॥ ८९९ ॥ उन खलोंने उससे कहा—'राज्यको स्वयं जीतकर आपने गैरोंके अधीन क्यों कर दिया ?' सो उनके भड़कावेमें आकर विजयमल्ल पुनः राज्य हस्तगत करनेके लिए अपने बड़े भाई हर्षको मार डालनेका विचार करने लगा ॥ ९०० ॥ नगरसे बाहर निर्जन मन्दिरमें यह कुकृत्य सम्पन्न करनेके लिए उसने यज्ञके बहाने राजाको आमन्त्रित

मन्त्रे श्रुतिगते राज्ञः सोऽथास्कन्दविशङ्कितः । आदिदेश स्वसैन्यानां द्रुतं संनहनोद्यमम् ॥९०२॥
संनद्धे राजसैन्येऽथ द्रुतं निर्गत्य भूपतेः । हृता विजयमल्लेन मन्दुराभ्यस्तुरंगमाः ॥९०३॥
संहरंस्तुरगान्वीक्ष्य प्रहरन्नृपतेर्बलम् । कुर्वन्महाहवं वीरो निर्गन्तुं तत्वरे पुरात् ॥९०४॥
आश्लिष्य पृष्ठं तिष्ठन्त्या जायया सहितो व्रजन् । स चकार तुरंगस्थः संग्राममतिमानुषम् ॥९०५॥
धारासारैः क्षणे तस्मिन्नकालजलदोज्झितैः । विपर्यस्तेव पृथिवी सर्वतः समलक्ष्यत ॥९०६॥
भांकारमारुतारब्धभूरिभेरीरवे रणे । आसारेण शरैश्चासीच्छाद्यमानो नृपात्मजः ॥९०७॥
तं क्षीयमाणपृतनं यान्तं हन्तुं समुद्यताः । कर्माणि प्राक्तनानीव न चण्डकसुता जहुः ॥९०८॥
भग्नसेतुं पयोवेगैर्वितस्तासिन्धुसंगमम् । सजानिरतरद्दोर्भ्यामवतीर्य स वाजिनः ॥९०९॥
सत्त्ववानकरोत्पत्न्या मज्जनं रिपुसंकटे । सिन्धुं प्रवृद्धामुत्तीर्य तुरङ्गोऽपि तमन्वगात् ॥९१०॥
द्विषां दृग्गोचरायातः स तमारुह्य वाजिनम् । दरदेशोन्मुखो वीरः प्रायाल्लहरवर्त्मना ॥९११॥
कन्दर्पद्वारपतिना सर्वतो रुद्धपद्धतिः । गिरीनुल्लङ्घ्य चाविक्षद्गिरिगुप्तां दरत्पुरीम् ॥९१२॥
दरदाभ्यर्चितं तत्र श्रीविद्याधरदेहिना । केचिन्निजाः परिजनाः शनकैस्तं प्रपेदिरे ॥९१३॥
श्रुत्वा स्वीकार्यमाणं च संरम्भं डामरादिभिः । प्रायुङ्क्त हर्षपृथ्वीभृदुपायांश्चकितोऽन्वहम् ॥९१४॥
तेषु वन्ध्येषु शीततुं सोऽतिवाह्य दरत्पुरे । डामरैः प्रहितालापश्चैत्रे यात्रामदान्मदात् ॥९१५॥
उत्तीर्य संकटांस्तिष्ठन्मार्गान्तः पटमण्डपे । अकस्मादभवन्मानी हिमानीहृतजीवितः ॥९१६॥

किया ॥ ९०१ ॥ उसी बीच राजा हर्षको उसके दूषित अभिप्रायका पता लग गया। अतएव आक्रमणसे बचावके लिए उसने अपनी सेना तैयार कर ली ॥ ९०२ ॥ जब सेना तैयार हो रही थी, उसी समय विजय-मल्लने उसकी अश्वशालाके अश्वोंका अपहरण कर लिया ॥ ९०३ ॥ इस तरह घोड़ोंकी चोरी करते समय राजाके सैनिकोंने विजयमल्लपर प्रहार कर दिया। तब वह भी सेनापर प्रत्याक्रमण करके भीषण युद्ध करते हुए नगरसे निकल भागनेका प्रयत्न करने लगा ॥ ९०४ ॥ उस समय पीछेकी ओर पतिके शरीरसे चिपककर बैठी हुई अपनी पत्नीके साथ अश्वारूढ विजयमल्लने अपना पराक्रम प्रकट करते हुए बड़ा भयानक युद्ध किया ॥ ९०५ ॥ उसी समय एकाएक जलवृष्टि होने लगी और मूसलधार वर्षासे सारी पृथिवी जलमयी होकर विपरीतरूपमें दिखायी देने लगी ॥ ९०६ ॥ उस युद्धमे झंझावातका हाहाकार रणभेरीके समान सुनायी देता था । उस समय विजयमल्ल मेघकी जलवर्षा तथा शत्रुकी बाणवर्षा दोनोंसे आच्छादित हो गया ॥ ९०७ ॥ उसके सैनिक पराक्रमहीन होकर उसका साथ छोड़ रहे थे। उधर जैसे प्राणियोंके कर्म कर्ताका साथ नहीं छोड़ते, उसी प्रकार उसे मार डालनेके लिए सन्नद्ध चण्डके पुत्रोंने विजयमल्लका पीछा नहीं छोड़ा ॥ ९०८ ॥ तबतक भागता-भागता विजयमल्ल वितस्ता नदीके तटपर पहुँच गया। उस समय भयानक बाढ आयी हुई थी। अतएव नदीका पुल टूट गया था। तथापि वह वीर घोड़ेसे उतरकर हाथोंसे तैरता हुआ अपनी पत्नीके साथ नदी पार कर गया ॥ ९०९ ॥ वह बहुत बड़ा वीर था। अतएव उस संकटके समय भी अपनी पत्नीके साथ नदीमे कूद पड़ा था। उसका घोड़ा भी उसके पीछे-पीछे तैरकर उस पार पहुँच गया ॥ ९१० ॥ वहाँसे वह वीर शत्रुओंके देखते-देखते घोड़ेपर सवार होकर लहरके मार्गसे दरददेशकी ओर चल पड़ा ॥ ९११ ॥ उस समय यद्यपि द्वाराध्यक्ष कन्दर्पने सब ओरसे उसका मार्ग अवरुद्ध कर रक्खा था, फिर भी विजयमल्ल एक विकट पहाड़ी रास्तेसे पर्वतोंको लाँघकर दरदपुरमें पहुँच गया ॥ ९१२ ॥ वहाँके राजा विद्याधर शाहीने उसका भली भाँति स्वागत-सत्कार किया। कुछ ही दिनो बाद विजयमल्लके बहुतेरे परिजन भी चुपकेसे उसके पास पहुँच गये ॥ ९१३ ॥ तदनन्तर राजा हर्षदेवको जब यह मालूम हुआ कि डामर लोग भी विजयमल्लसे मिलकर राज्यमें उपद्रव कर रहे है, तब चकित होकर राजा हर्ष उन्हें दबानेका उद्योग करने लगा ॥ ९१४ ॥ परन्तु उसका यह उद्योग असफल रहा। क्योंकि शीतकाल दरदपुरमे बिताकर डामरोंके निमंत्रणपर चैत्रमासमें विजयमल्ल बड़े अभिमानके साथ विजययात्राके लिए चला ॥ ९१५ ॥

यदुल्लासाय संरम्भो धीरैर्विस्तार्यते महान् । कृत्यं हिनस्ति तद्दैवमत्यल्पेनैव वस्तुना ॥९१७॥
उन्मीलनं तिग्मरुचिः प्रयत्नाद्येषां सहस्रेण करैः करोति ।
उन्मूलयत्येककरेण तानि पद्मानि धाता कुपितो द्विपेन ॥९१८॥
द्वैराज्यशङ्कया कंचित्कालं संकुचितं ततः । भूयः प्रभवतो लग्नं राज्यं हर्षमहीभुजः ॥९१९॥
राजशब्दस्तदा सेहे न कुत्राप्यधिरोपणम् । अत्युदग्रतया तस्मिंल्लघुत्वेनान्यराजसु ॥९२०॥
सुशोभादायनीर्भङ्गीः प्रावर्तयत मण्डले । निर्मत्सरो नरपतिः पुष्पर्तुरिव कानने ॥९२१॥
मुक्तकेशा निरुष्णीषा निष्कलाभरणाः पुरा । संत्यज्यैकं महीपालमभवन्निह देहिनः ॥९२२॥
धम्मिल्लग्रन्थनाद्यत्र मदनः कम्पनापतिः । जयानन्दोऽप्यमात्याग्र्यश्चित्रार्धोरुकधारणात् ॥९२३॥
अन्वभूत्पार्थिवक्रोधमविशेषेण मण्डले । तेन राज्योचितो वेषस्तत्र राज्ञा प्रवर्तितः ॥युग्मम्॥९२४॥
स केषांचिदमात्यानामाकल्पोल्लासशोभिनाम् । निर्मत्सरः स्वदासीभिरारात्रिकमकारयत् ॥९२५॥
दाक्षिणात्याऽभवद्भङ्गिः प्रिया तस्य विलासिनः । कर्णाटानुगुणष्टङ्कस्ततस्तेन प्रवर्तितः ॥९२६॥
लडत्तालीदलाः स्थूलचन्दनस्थाससुन्दराः । रेजुर्जनास्तदास्थाने श्लाघ्यदीर्घासिधेनवः ॥९२७॥
स्वर्णकेतकपत्राङ्कजूटलम्बोर्जितस्रजः । चटुलातिलकाश्लिष्टविलोलतिलकाङ्कुराः ॥९२८॥
अपाङ्गश्रोत्रयोर्बद्धसंधयोऽञ्जनरेखया । निर्नीरङ्गिककेशान्तबद्धहेमोपवीतकाः ॥९२९॥

वह स्वाभिमानी राजपुत्र अनेक बड़े बड़े संकटोंको पार कर चुका था। किन्तु उस यात्राके समय एक जगह तम्बू लगाकर ठहरा हुआ था। सहसा बड़े जोरोंसे बर्फ गिरने लगी और उसीमें दबकर उसे असमयमें ही कालकवलित हो जाना पड़ा ॥९१६॥ जिस कार्यको सफल बनाने के लिए धैर्यशाली लोग बड़े बड़े उपाय करते हैं, उस कार्यको दैव एक नन्हीं-सी घटनाके द्वारा तहस-नहस कर देता है ॥९१७॥ तीक्ष्ण दीप्तिवाले सूर्यभगवान अपनी हजारों किरणोंसे जिन कमलोंको विकसित करते हैं, उनको दैवके कुपित होनेपर हाथीकी केवल एक सूँड़ उखाड़ फेंकती है ॥९१८॥ इस प्रकार द्वैराज्य अर्थात् दो राजाओंके शासनकी आशंकासे राजा हर्षदेवका राज्यवैभव कुछ कालके लिए संकुचित जैसा हो गया था, किन्तु विजयमल्लके नष्ट हो जानेपर वह फिर उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगा ॥९१९॥ हर्षदेवका स्वभाव बड़ा तीखा था और उस समय अन्य राजे बहुत छोटे-छोटे थे। अतएव 'रंजयति लोकानिति राजा' अर्थात् जो प्रजाको आनन्दित करे, वह 'राजा' कहलाता है। इस अर्थको सार्थक करनेवाला 'राजा' उस हर्षके शासनकालमें कोई भी नहीं था ॥९२०॥ निर्मत्सर राजा हर्षने उसी प्रकार कश्मीरमण्डलको सुन्दर बना दिया, जैसे वसन्त ऋतु उपवनको सुन्दर बना देती है ॥९२१॥ प्राचीन कालमें कश्मीर राज्यके राजाको छोड़कर और किसी भी व्यक्तिके सिरपर न तो पगड़ी दिखायी देती थी और न कोई कुण्डल पहनता था ॥९२२॥ कम्पनेश मदनने अपने केश सँवारकर बाँधे थे और शरीरपर रंगीन तथा सुन्दर अँगरखा पहना था, जिसके कारण उसे राजाका क्रोपभाजन बनना पड़ा ॥९२३॥ किन्तु राजा हर्षने इस संकुचित मनोवृत्तिकी परिचायक प्रथाका सदाके लिए अन्त कर दिया और राज्यके सब लोगों अर्थात् मंत्रियों एवं नागरिकोंको भी राजोचित वेष धारण करनेकी स्वतंत्रता दे दी गयी ॥९२४॥ सुन्दर वेष-भूषासे सुसज्जित कतिपय राज्यकर्मचारियोंकी दर्शनीय सजावट देखकर उस राजाने दासियों द्वारा उनकी आरती उतरवायी थी ॥९२५॥ रसिक राजा हर्षको दाक्षिणात्य पद्धति विशेष पसन्द थी, अतएव उसने अपने राज्यमें गोलाकार टंक (सिक्के) चलाये थे ॥९२६॥ कर्णाटक देशकी प्रथाके अनुसार उसकी राजसभामें ताड़के पंखेसे हवा की जाती थी, प्रत्येक सभ्य पुरुषके मस्तकपर बड़े-बड़े चन्दनतिलक लगे रहते थे और सब लोग अपनी-अपनी कमरमें बड़ी-बड़ी कटारें बाँधते थे ॥९२७॥ राजा हर्षदेवके पास सदा रहनेवाली चंचल भ्रुकुटियोंसे विभूषित सुन्दरियाँ पीठपर लहराती हुई वेणियोंमें स्वर्णकेतकीके पत्र लगाती थीं। उन वेणियोंमें फूलोंकी मालायें गुँथी रहती थी और उनके माथेपर आभूषणोंसे आभूषित केशोंकी

अधराम्बरपुच्छान्तैर्लम्बैश्चुम्बितभूतलाः । प्रच्छादितार्धदोर्लेखकञ्चुकाङ्कपयोधराः ॥९३०॥
कर्पूरोद्धूलनस्मेरा भ्रमन्त्यस्तरलभ्रुवः । बभ्रुराश्रितपुंवेषा झषाङ्कच्छलदङ्कताम् ॥चक्कलकम्॥९३१॥
अन्योपजीव्यतां प्रापुस्तस्यार्थित्वेन मार्गणाः । विश्वाप्यायकतां मेघाः प्रणयेनेव वारिधेः ॥९३२॥
प्रसादैस्त्यागिनस्तस्य राज्ञः कनकवर्षिणः । समस्ता गाथकगणाः पार्थिवस्पर्धितां ययुः ॥९३३॥
विद्वच्चूडामणिर्भूभृत्पण्डितान्रत्नमण्डितान् । चकार युग्यतुरगच्छत्रादिप्रक्रियाभृतः ॥९३४॥
कश्मीरेभ्यो विनिर्यान्तं राज्ये कलशभूपतेः । विद्यापतिं यं कर्णाटश्चक्रे पर्माडिभूपतिः ॥९३५॥
प्रसर्पतः करटिभिः कर्णाटकटकान्तरे । राज्ञोऽग्रे ददृशे तुङ्गं यस्यैवातपवारणम् ॥९३६॥
त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकविबान्धवम् । बिल्हणो वञ्चनां मेने विभूतिं तावतीमपि ॥९३७॥
सौवर्णामलसाराढ्या राजधान्यो धरापतेः । सुबह्व्योऽभ्रलिहगृहा भ्रेजिरे भुवनाद्भुताः ॥९३८॥
तदीये नन्दनवने द्रुमेभ्यो नो व्यधुः स्थितिम् । त्यागिना निर्जितास्तेन केवलं कल्पपादपाः ॥९३९॥
विविधाभिरशून्याम्बु विहंगमृगजातिभिः । तेन व्याप्तदिगाभोगं चक्रे पम्पाभिधं सरः ॥९४०॥
सोऽज्ञासीद्यावतीर्विद्यास्तासां नामापि निश्चितम् । वक्तुं नास्त्येव सामर्थ्यं व्यक्तं वाचस्पतेरपि ॥९४१॥
गीतमाकर्ण्यतेऽद्यापि तस्य वाग्गेयकारिणः । विपक्षैरपि पक्ष्माग्रलुठद्बाष्पोदबिन्दुभिः ॥९४२॥
स्वपतो दिनयामौ द्वौ सर्वकालं विलासिनः । दत्तस्थानस्य तस्यासीद्यामिनीषु प्रजागरः ॥९४३॥
तस्य दीपसहस्राङ्के स्थितस्यास्थानमण्डपे । विद्वद्गोष्ठीगीतनृत्तप्रस्तावेन क्षपा ययुः ॥९४४॥

लटें बहुत सुन्दर लगती थीं। उनके अपांगसे लेकर कर्णप्रान्ततक अंजनरेखा सुशोभित रहती थी। उनकी वेणीके अग्रभागमें सुनहली जरीके गुच्छे लटकते रहते थे। उनके लहँगोंकी छोर धरतीका स्पर्श करती रहती थी। उनके स्तन अधबँहियाँ कंचुकीसे ढँके रहते थे। उनका हास्य कपूरकी धूलके समान उज्ज्वल रहता था। वे अपनी चपल भ्रुकुटियोंके विलासका प्रदर्शन करती हुई विचरा करती थीं। कदाचित् वे सुन्दरियाँ यदि पुरुषवेश धारण कर लेतीं तो कामदेवसे कम सुन्दर न दीखतीं ॥ ९२८–९३१ ॥ जैसे समुद्रसे प्रेम करके मेघ सारे संसारको सुख देते हैं, उसी प्रकार जो याचक हर्षके सम्पर्कमें आता था, वह अन्य याचकोंकी आकांक्षा पूर्ण करनेमें समर्थ हो जाता था ॥ ९३२ ॥ उस उदार तथा सुवर्णवर्षी राजाकी प्रसन्नतासे धनाढ्य बने हुए गायक और वादक रहन-सहनमें राजाओंसे होड़ करते थे ॥ ९३३ ॥ विद्वच्छिरोमणि राजा हर्षदेवने विद्वानोंको विविध रत्नजटित अलंकारोंसे अलंकृत किया था। साथ ही उसने उन्हें पालकी, रथ, छत्र आदि सम्मानसूचक वस्तुयें भी दी थीं ॥ ९३४ ॥ राजा कलशके राज्यकालमें बिल्हण कवि कश्मीर छोड़कर कर्णाटक देशके राजा पर्माडीके पास चला गया था। उस राजाने उस कविको अपने यहाँ विद्यापतिपदपर नियुक्त करके उसका बहुत सम्मान किया था। इसके सिवाय अपने देशके पर्वतीय स्थानोंपर यात्राके समय राजाके समक्ष छत्र धारण करनेका सम्मान एकमात्र उसीको हाथीपर सवारी करके भ्रमण करते समय प्राप्त था। तथापि बिल्हणने राजा हर्षदेवकी प्रशंसा सुनकर कर्णाटकके समस्त वैभवोंको तुच्छ समझ लिया ॥ ९३५–९३७ ॥ क्योंकि राजा हर्षदेवकी अनेक राजधानियोंमें बहुतेरे गगनचुम्बी एवं पर्वतीय प्रदेशमें सुवर्णकलशोंसे विभूषित राजप्रासाद दर्शकोंके हृदयमें विस्मयभाव जागृत कर देते थे और वे विश्वके प्रमुख वस्तु समझे जाते थे ॥ ९३८ ॥ उस राजाके द्वारा लगवाये हुए उपवन नन्दनवनसे होड़ करते थे। वहाँके वृक्ष अपनी उदारतासे कल्पवृक्षको भी लज्जित करते थे। इसी कारण उन उपवनोंमें अन्य वृक्षोंके रहते हुए भी कल्पवृक्ष नहीं थे ॥ ९३९ ॥ विविध पशु-पक्षियोंसे परिपूर्ण पम्पासरोवरका निर्माण उसी राजाने कराया था ॥ ९४० ॥ वह राजा हर्ष जितनी विद्याओंको जानता था, उन सबका नाम जानना बृहस्पतिके लिए भी अशक्य था ॥ ९४१ ॥ संगीतमय काव्यके निर्माणमें निपुण हर्षदेवके गीतकाव्यको सुनकर आज भी उसके शत्रु तक आँखोंसे आँसू बरसाने लगते हैं ॥ ९४२ ॥ वह सदा आनन्द एवं विलासमय जीवन बिताता था। वह दिनमें दो पहर सो लेता था और रातको जागता हुआ सारा राजकार्य करता था ॥ ९४३ ॥ वह जब राज-

कथान्ते शुश्रुवे तत्र पर्णचर्वणजः परम् । कान्ताधम्मिल्लशेफालीत्रुटिजन्मा च मर्मरः ॥९४५॥
वितानैः सपयोदेव साग्निवप्रेव दीपकैः । रुक्मदण्डैः सशम्पेव सधूमेवासिमण्डलैः ॥९४६॥
साप्सरा इव कान्ताभिः सनक्षत्रेव मन्त्रिभिः । सर्षिसंघेव विबुधैः सगन्धर्वेव गायनैः ॥९४७॥
नित्यसंकेतवसतिर्धनदस्य यमस्य च । एकं विहरणारण्यं दानस्य च भयस्य च ॥९४८॥
क्षपास्थानस्थितिस्तस्य राज्ञः शक्राधिकश्रियः ।
कस्य वाचस्पतेर्वाचा वक्तुं कार्त्स्न्येन शक्यते ॥ चक्कलकम् ॥९४९॥
रौक्मैश्च राजतैश्चासीद्व्यवहारस्तदा घनः । मण्डले विरलाऽमुष्मिन्दीन्नारैस्ताम्रजैः पुनः ॥९५०॥
दण्डनायकतां प्राप्य सुन्नः सर्वोन्नतिं भजन् । तस्मिन्काले त्वभूल्लोभान्नीचो मुष्टिंपचः परम् ॥९५१॥
निजा जयवने सूर्यामूलके विजयेश्वरे । आख्यान्ति यस्य लुब्धत्वं निर्व्ययस्थितयो मठाः ॥९५२॥
क्षुधितव्याधितानाथदीनाद्यार्तिनिवारणम् । सुस्पष्टं प्राप पट्टस्य राज्यलक्ष्मीः कृतार्थताम् ॥९५३॥
नन्दिक्षेत्रे व्ययीकृत्य प्रत्यब्दं सप्तवासरान् । चम्पकः सफलां चक्रे सर्वकालार्जितां श्रियम् ॥९५४॥
कृष्णाजिनोभयमुखीमुख्यैर्दानैः क्षमाभुजा । अदरिद्रीकृता विप्रा निःशेषार्तिच्छिदार्थिनाम् ॥९५५॥
राज्ञो वसन्तलेखाख्या शाहिवंशप्रियाऽकरोत् । मठाग्रहारान्नगरे पूज्ये च त्रिपुरेश्वरे ॥९५६॥
माहेश्वर्यमयी काचिदित्थं ज्वालेव सोद्ययौ । उदारव्यवहारं तु न तद्राज्यं प्रचक्षते ॥९५७॥
अथ प्रवृद्धिं संप्राप्ताः शनकैर्नवमन्त्रिणः । पूर्वामात्यद्विपो राज्ञो मतिमोहं प्रचक्रिरे ॥९५८॥

कार्य करनेके लिए सभामण्डपमे बैठता था, उस समय वह मण्डप हजारों दीपकोंके प्रकाशसे जगमगा उठता था। वहाँ बैठकर वह विद्वानोंके साथ शास्त्रचर्चा, गीत तथा नृत्य आदि विनोदके विविध साधनोंसे रात व्यतीत करता था ॥ ९४४ ॥ राजसभामे जब सम्भाषणकार्य समाप्त हो जाता था, तब लोगोंके ताम्बूलचर्वणजनित तथा सुन्दरियोंके केशकलापमे गुँथी शेफालिकाके फूलोंके टूटनेकी मर्मरध्वनि ही सुनायी देती थी ॥ ९४५ ॥ उस सभामण्डपमे लगे उज्ज्वल चँदोवेसे वह मण्डप मेघाच्छादित जैसा, दीपकोंके प्रकाशपुंजसे प्राकारपरिवेष्टित जैसा, सुवर्णदण्डोंसे विद्युल्लतायुक्त सरीखा, खड्गसमुदायसे धूमयुक्तके समान, सुन्दरी स्त्रियोंकी जमघटसे अप्सराओंयुक्त जैसा, मन्त्रियोंसे नक्षत्रवान् सरीखा, विद्वन्मण्डलीसे ऋषिगणोंसे युक्त सदृश एवं गायकोंके जत्थोंसे गन्धर्वगणसे भरा हुआ-सा दीखता था। उसके सभामण्डपमे कुबेर और यमराज ये दोनों सदा विराजमान रह करते थे। अतएव दान और भय दोनोंके लिए वह सभामण्डप क्रीडास्थल बना हुआ था। उस सभामण्डपके सौन्दर्यका पूर्ण रीतिसे वर्णन भला कौनसा बृहस्पति कर सकेगा ॥ ९४६–९४९ ॥ राजा हर्षदेवके राज्यमे लेन-देनका सारा व्यवहार सोने-चाँदीके दीनारोंसे ही होता था। तामेके सिक्कोंका उपयोग बहुत कम किया जाता था ॥ ९५० ॥ राजा हर्षने सुन्नको दण्डनायक पद दे रक्खा था। जिससे वह उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचा हुआ था। किन्तु वैसी परिस्थितिमे भी वह नीच कंजूस ही बना रहा ॥ ९५१ ॥ क्योंकि सुन्नके बनवाये हुए जयवन, सूर्यामूल एवं विजयेश्वरके मठ व्यवस्थासे विहीन होनेके कारण उस लोभीकी कंजूसीका ही सबूत दे रहे थे ॥ ९५२ ॥ उसके विपरीत पट्टकी सम्पदा भूखों, रोगियों, अनाथों तथा गरीबों आदि विपत्तिग्रस्त मनुष्योंके कष्टनिवारणकार्यमे उपयुक्त होकर कृतार्थ मानी जाती थी ॥ ९५३ ॥ ऐसे ही चम्पक भी हर साल नन्दिक्षेत्रमे सात दिनों तक प्रचुर धन व्यय करके अपनी न्यायोपार्जित सम्पत्तिका सदुपयोग करता था ॥ ९५४ ॥ याचकोंकी समस्त पीडायें नष्ट करनेवाले राजा हर्षदेवने काले रंगकी तथा तुरन्तकी व्याई गौओंका दान देकर ब्राह्मणोंकी दरिद्रता दूर कर दी थी ॥ ९५५ ॥ शाही कुलकी राजकन्या एवं राजा हर्षकी रानी वसन्तलेखाने नगर एवं पुनीत त्रिपुरेश्वर क्षेत्रमें मठों एवं अग्रहारोंकी स्थापना की थी ॥ ९५६ ॥ इस तरह राजा हर्षदेवके राज्यमें एक विचित्र तथा वर्णनातीत कलाका प्रादुर्भाव होता दीखता था। फिर भी उस राजाका शासनकार्य उदार व्यवहारसे सम्पन्न नहीं कहा जा सकता ॥९५७॥ क्योंकि बादमें धीरे-धीरे पुराने

कुष्ठार्तोङ्घ्रियुगः शिखी बहुपदं गृह्णाति धावन्नहिं भानुः पादसहस्रभाक्प्रतिपदं संचार्यतेऽनूरुणा ।
वञ्च्यन्ते बलिनोऽपि यल्लघुबलैः सामर्थ्यहीनैश्च यद्भ्राम्यन्ते परिपूर्णवृत्तय इदं दैवस्य लीलायितम् ॥९५९॥
स सर्वशास्त्राधिगमप्रौढः परिवृढो विशाम् । यन्मोहितमतिश्चक्रे वैधेयैरपि मन्त्रिभिः ॥९६०॥
विपन्नस्य पितुर्वैरप्रतीकारविधित्सया । स राजधानीनामाङ्कमठादि निरलोठयत् ॥९६१॥
त्यागी तत्कोशसंभारं व्ययीकुर्वन्नितस्ततः । लुब्धस्य चाभिधां तस्य पापसेन इति व्यधात् ॥९६२॥
शुद्धान्ते शुद्धशीलानां ढौकितं मूढचेतसा । स्पष्टं षष्ट्यधिकं राज्ञा स्त्रीणां तेन शतत्रयम् ॥९६३॥
यादृशीस्तादृशीस्तत्र नारीर्विन्यस्यतानिशम् । नागृह्णन्त परं डोम्बजनंगमकुलाङ्गनाः ॥९६४॥
अत्रान्तरे पूर्यमाणो गूढं कोटपदातिभिः । पुनर्भुवनराजोऽभूल्लहरालिप्सुलुब्धधीः ॥९६५॥
स दर्पितपुरं प्राप्तः कन्दर्पद्वारनायकम् । श्रुत्वा योद्धुं विनिर्यातं ययौ भूयोप्यदृश्यताम् ॥९६६॥
तस्मिन्नासङ्गेऽपि नृपो दृप्यन्राजपुरीपतिः । संग्रामपालः केनापि हेतुना विक्रियां ययौ ॥९६७॥
कन्दर्पे कोटभृत्यानां भिन्नानां संग्रहोद्यते । क्रुध्यन्राजपुरीं राजा व्यसृजद्दण्डनायकम् ॥९६८॥
स महद्भिः समं सैन्यैर्गच्छँल्लोहरवर्त्मना । अधीरः कोटकच्छेषु सार्धं मासं व्यलम्बत ॥९६९॥
प्रत्यासन्नाच्छुचेर्मासात्प्रतापाच्च विरोधिनाम् । त्रस्यतस्तस्य यात्रायां न संकल्पोऽप्यराजत ॥९७०॥
अविशेषज्ञभावेन भर्तुस्तिष्ठन्निरुद्यमः । ततो जगाम कन्दर्प एवोपालम्भपात्रताम् ॥९७१॥
कृतप्रतिज्ञोऽनाहारतया राजपुरीजये । उपालम्भार्दितः सोथ निःसामग्र्योप्यवाचलत् ॥९७२॥

मन्त्रियोंकी जगह नये-नये मन्त्री आये और उनका प्रभाव बढने लगा। वे पुराने मन्त्रियोंसे द्वेष करने लगे और उन्होंने राजाके भी मनसे भ्रम उत्पन्न कर दिया ॥ ९५८ ॥ जिसके दोनो पैरोंमें कुष्ठरोग रहता है, वह मयूर बहुतेरे पैरोंवाले सर्पको धर दबोचता है, सहस्रों चरणो (किरणों) से सम्पन्न सूर्यको अनूरु (विना पैरका) अरुण चलाता है, बड़े-बड़े बलवान् भी दुर्बल मनुष्यों द्वारा ठग लिये जाते हैं और असमर्थ लोग समर्थ पुरुषोंको नचा देते हैं, यह सब दैवका खेल है ॥ ९५९ ॥ क्योंकि समस्त शास्त्रों तथा सम्पूर्ण कलाओंका विज्ञ होता हुआ भी राजा हर्ष उन मूर्ख मन्त्रियोंके वहकावेमें आकर मोहसागरमे जा गिरा ॥ ९६० ॥ तदनुसार उसने मृत पिताके वैरका बदला लेनेके लिए उसके द्वारा स्थापित मठों तथा नगरों आदि उसके स्मारकचिह्नोंको उसने लूट-खसोटकर नष्ट कर डाला ॥९६१॥ अपनी उदारताके आवेशमे आकर उसने पिताके द्वारा लोभसे संचित सारा कोश खर्च डाला और पिताका नाम पापसेन रख दिया ॥ ९६२ ॥ ॥ उस मूर्ख राजाने न जाने कहाँसे शुद्ध शीलवाली तीन सौ साठ स्त्रियाँ लाकर अपने अन्तःपुरमे रख लीं ॥९६३॥ उसने केवल डोमो और चण्डाल जातिकी स्त्रियोंको छोडकर बाकी सभी जातिकी स्त्रियोंका अहर्निशि संग्रह किया ॥९६४॥ उन्हीं दिनो भुवनराजने गुप्तरूपसे किलेदारोंको उभाड़कर उनकी सहायतासे फिर लोहर प्रान्तपर अधिकार करनेका संकल्प किया ॥९६५॥ तदनुसार आगे बढता हुआ वह दर्पितपुर तक पहुँच गया, किन्तु जब उसे पता लगा कि द्वारपति कन्दर्प लड़नेके लिए चल चुका है तो चुपकेसे गायब हो गया ॥ ९६६ ॥ उसी समय राजपुरीका शासक संग्रामपाल भी घमण्डमे आकर न जाने क्यों राजा हर्षदेवके विरुद्ध हो गया था ॥ ९६७ ॥ उधर द्वारपति कन्दर्प राजाके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले वहाँके दुर्गरक्षकोंको दबा रहा था। अतएव राजा हर्षने क्रुद्ध होकर राजपुरीपर आक्रमण करनेके लिए दण्डनायक सुन्नको भेजा ॥९६८॥ वह अपने साथ बहुत बड़ी सेना लेकर चला। उसे वहाँ अति शीघ्र पहुँचना आवश्यक था। लेकिन उसने मूर्खतावश लोहरकोटके पासवाले प्रदेशोंमें डेढ़ महीने व्यर्थ बिता दिये ॥ ९६९ ॥ इसी बीच आषाढ मास आ गया और शत्रुका दबाव प्रबल देखकर वह भयभीत हो उठा, जिससे उसे आगे बढनेका साहस नहीं हुआ ॥ ९७० ॥ इस प्रकार राजा हर्षदेवकी विशेष जानकारीके अभावमें शान्त बैठे द्वारपति कन्दर्पको ही उलाहने सुनने पड़े ॥ ९७१ ॥ इससे कन्दर्पको बहुत क्षोभ हुआ और वह राजपुरीपर विजय प्राप्त किये विना अन्न न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा करके विना विशेष तैयारी किये ही

निराहारस्य वसतः कन्दर्पस्याद्रिगह्वरे । षष्ठेऽह्न्यथभूद्राजपुरी योजनेऽभ्यधिके स्थिता ॥९७३॥
अव्याहतः सोऽरिबलाद्द्विषच्छस्त्राणि पातयन् । कदलीपल्लवान्मृद्नन्वनं सिंह इवाविशत् ॥९७४॥
दण्डनायकसैन्येभ्यः परमेकस्तमन्वगात् । सेनानीः कुलराजाख्यो बुद्धराजकुलोद्भवः ।.९७५॥
तं बाह्याल्यां राजपुर्यां हतासंख्याहितं द्विपः । निहत्य शुक्लच्छत्राङ्कं कन्दर्पं मेनिरे हतम् ॥९७६॥
मध्याह्ने स तु कन्दर्पः स्वयं संप्राविशद्बली । राजधानीं राजपुर्यां विंशत्रिंशैः समं भटैः ॥९७७॥
द्विषां त्रिंशत्सहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् । रुरोध राजपुर्यग्रे तत्पदातिशतत्रयम् ॥९७८॥
काश्मीरिकाणां निहतं रणे तत्र शतद्वयम् । चत्वारि तु शतान्युर्व्यां खशानामप्यशेरत ॥९७९॥
भग्ने रिपुबले दूरमसंख्येयैश्चिताग्निभिः । संस्कुर्वद्भिर्हतांस्त्राशीत्रणो मृत्योर्महानसः ॥९८०॥
तेनैवं स्वाम्युपालम्भवेतालो रभसार्पितः । रणश्मशाने वीरेण शमितो मांसशोणितैः ॥९८१॥
याममात्रावशेषेऽह्नि पुनरेवाथ संहताः । द्विषः परिभवोत्तप्ताः कन्दर्पं योद्धुमाययुः ॥९८२॥
ततस्तानथ नाराचान्निचिक्षेप स संयुगे । लिप्तानौषधितैलेन विद्धा यैः प्राज्वलन्दिशः ॥९८३॥
आग्नेयं वेत्त्यसावस्त्रमिति मूढा विशङ्किताः । ते दूरं प्रययुर्भीता निन्दन्तः पुनरागमम् ॥९८४॥

प्रगल्भभावः प्रतिभानमोजः प्रयोगचातुर्यमसंभ्रमश्च ।
महाशयानामतिसंकटेषु धैर्योपनद्धां न धियं जहाति ॥९८५॥

राजधानीं प्रविष्टः स भानावस्ताभिलाषिणि । भूयोऽप्यपश्यत्स छन्नां बाह्यालीं बहलैर्बलैः ॥९८६॥
योद्धुं यियासुः शुश्राव प्राप्तं तं दण्डनायकम् । घोरां रणाटवीं दृष्ट्वा भयात्स्थगितसैनिकम् ॥९८७॥

वहाँसे चल पड़ा ॥ ९७२ ॥ पाँच दिन तक पर्वतकी कन्दराओंमें निराहार रहकर टिकते हुए छठे दिन वह वीर राजपुरीके निकट पहुँच गया । वहाँसे राजपुरी केवल एक योजन (चार कोस) दूर रह गयी थी ॥ ९७३ ॥ अब वह शत्रुसेनाकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ इस प्रकार आगे बढा, जैसे सिंह केलेके पत्तोंको रौंदता हुआ कदलीवनमें प्रविष्ट होता है । इस प्रकार उसने राजपुरीमें प्रवेश किया ॥ ९७४ ॥ दण्डनायक सुन्नके सैनिकोंमेंसे युद्धराजके कुलमें उत्पन्न केवल सेनापति कुलराज ही कन्दर्पके साथ राजपुरीमें प्रविष्ट हुआ था ॥ ९७५ ॥ राजमहलके बाहरी मैदानमें तुमुल युद्ध करके उसने शत्रुके असंख्य सैनिकोंको मार डाला था । किन्तु राजमहलके आँगनमें श्वेत छत्र धारण किये रहनेसे कन्दर्पके धोखेमें शत्रुओंने सेनापति कुलराजको मार डाला ॥ ९७६ ॥ तदनन्तर दोपहरके समय बीस-तीस योद्धाओंके साथ द्वारपति कन्दर्प राजपुरीके राजमहलमें प्रविष्ट हो गया ॥ ९७७ ॥ उसके केवल तीन सौ पैदल सैनिकोंने राजपुरीके राजभवनके समक्ष शत्रुओंके तीस हजार ऐसे सैनिकोंको रोक रक्खा था, जो असाधारण वीर थे और जिन्होंने युद्धमें कभी भी पीठ नहीं दिखायी थी ॥ ९७८ ॥ उस संग्राममे दो सौ कश्मीरी तथा चार सौ खश सैनिकोंको कटना पडा ॥ ९७९ ॥ इस तरह शत्रुसेनाके परास्त हो जानेपर मृत वीरोंके दाहसंस्कारके समय धधकती हुई चिताओंको देखकर ऐसा भान होता था कि वह रणभूमि नहीं है, बल्कि मृत्युका रसोईघर है ॥ ९८० ॥ इस प्रकार वीर कन्दर्पने उस रणश्मशानमें अपने स्वामीके उपालम्भ (उलाहना) रूपी वैतालको प्रचुर मांस तथा रुधिरकी बलि देकर तृप्त कर दिया ॥ ९८१ ॥ किन्तु जब एक पहर दिन शेष था, तब पराजयसे सन्तप्त शत्रुओंने एकाएक फिर कन्दर्पपर आक्रमण कर दिया ॥ ९८२ ॥ तब कन्दर्पने उन शत्रुओंपर औषधियुक्त तेलसे लिप्त बाणोंकी वर्षा कर दी । उन बाणोंके लगते ही शत्रुओंके कपड़े जलने लगे, जिसके प्रकाशसे दसों दिशाये जगमगा उठीं ॥ ९८३ ॥ इस चमत्कारसे शत्रुओंने समझ लिया कि 'कन्दर्प आग्नेयास्त्रका उपयोग करना जानता है' । यह सोचकर अपने प्रत्याक्रमणकी निन्दा करते हुए वे शत्रु रणभूमिसे भाग गये ॥ ९८४ ॥ भीषण संकटकालमें भी महापुरुषोंकी धैर्यशालिनी बुद्धिको प्रागल्भ्य (साहस), प्रतिभा, ओज, प्रयोग, चातुर्य तथा असंभ्रम ये गुण नहीं त्यागते ॥९८५॥ तदनन्तर सूर्यास्तके समय कन्दर्पने फिर उस राजधानीको शत्रुओंकी असंख्य सेनासे घिरा पाया ॥ ९८६ ॥ यह

स्वीयैर्दृष्टैः क्षतैः कैश्चिद्दृप्यन्त्यधिकमाहवे । पारकीयैस्त्रसन्त्यन्ये कोऽन्तरं वेत्ति देहिनाम् ॥९८८॥
आनीतोऽथ विनिर्गत्य तेनैव स भये ब्रुडन् । स्पर्धमानो यथाम्भोधौ मज्जन्हंसेन वायसः ॥९८९॥
रक्तप्रजं वीतसैन्यमभिन्नं बहुकोशवत् । परराष्ट्रं विशेदेवं स्ववीर्येणैव कोऽपरः ॥९९०॥
प्रणतात्करमादाय ततो राजपुरीपतेः । मासमात्रेण कन्दर्पः पुनः स भुवमाययौ ॥९९१॥
प्रत्युद्गमादिसत्कारैः कृतपूजो महीभुजा । स दण्डनायकादीनां शिरःशूलावहोऽभवत् ॥९९२॥
परिहासपुरे पारिपाल्यं कुर्वन्कठोरधीः । वातगण्डाख्यया ख्यातिं निन्ये यस्तत्र पर्षदा ॥९९३॥
प्रभूतोत्कोचसंप्रीतसचिवप्रेरणस्पृशा । अपास्य वामनं राज्ञा पादाग्रादौ नियोजितः ॥९९४॥
आनन्दः स क्षणे तस्मिन्निच्छन्द्वाराधिकारिताम् । कन्दर्पद्वेषिणामासीन्मन्त्रिणामतिसंमतः ॥९९५॥
तत्प्रेरितस्ततः पातुं लोहरं विप्लुताहितम् । मण्डलेश्वरतां दत्त्वा कन्दर्पं प्राहिणोन्नृपः ॥९९६॥
मन्त्रविक्रमसंपन्नः कुभृत्यैः स्वोदयेप्सुभिः । युक्त्या तया राजपशोः समीपात्सोऽपवाहितः ॥९९७॥
दूत्यार्होऽयमिति प्रहाय निकटाद्देशान्तरं वाग्मिनं सूरिं बन्धुवियोगकृन्ननु वचोऽमुष्येति संत्यज्य च ।
शूरो राज्यमसौ हरेदिति तया हित्वा विचारोज्झितो धूर्तप्रेरणयाबुधो नृपपशुर्नायाति नाशं चिरात् ॥९९८॥
अदर्शनात्सुनद्धापि कन्दर्पप्रीतिराशयात् । राज्ञो जगाल कालेन सा मुष्टेरिव वालुका ॥९९९॥
उत्कर्षपुत्रान्नादाय चिकीर्षुर्लोहरेशताम् । कन्दर्पो वर्तत इति क्षितिपं मन्त्रिणोऽब्रुवन् ॥१०००॥

देखा तो वह फिर लड़नेके लिए महलसे वाहर निकल आया, किन्तु शत्रुसैनिकोंकी अपार भीड़ देखकर उसने अपने सैनिकोंको प्रहार करनेसे रोक दिया। उसी समय कन्दर्पको ज्ञात हुआ कि यह सेना शत्रुकी नहीं, वल्कि अपने दण्डनायक सुन्नकी सेना है ॥ ९८७ ॥ कुछ लोगोंका ऐसा स्वभाव होता है कि जो अपने पक्षवाले सैनिकोंको रण-भूमिमे गिरे देखकर मारे क्रोधके तमतमा उठते हैं और कुछ ऐसे होते हैं कि जो शत्रुपक्षके मरे हुए सैनिकोंको देखकर भयसे काँपने लगते हैं। मनुष्यप्रकृतिके इस अन्तरकी विवेचना भला कौन कर सकता है॥ ९८८ ॥ तत्पश्चात् भयभीत दण्डनायक सुन्नको कन्दर्प राजधानीके भीतर लाया। यह घटना तो वैसी ही थी कि जैसे हंसके साथ होड़ करनेवाला कोई कौआ समुद्रके जलमें गोता खाकर डूवने लगे और दयालु हंस पानीसे निकालकर उसके प्राण बचा ले ॥ ९८९ ॥ राजभक्त प्रजा, प्रचुर सेना, ऐश्वर्यवद्ध एवं भरे-पूरे कोशसे परिपूर्ण शत्रुराज्यमें इस तरह अपने शौर्यके प्रभावसे कन्दर्प जैसे वीरके सिवाय भला और कौन प्रविष्ट हो सकता था॥ ९९० ॥ तदनन्तर अपनी शरणमें आये हुए राजपुरीके राजासे कर लेकर कन्दर्प एक मासके भीतर ही कश्मीर लौट आया॥ ९९१ ॥ उस समय स्वयं राजा हर्षदेवने आगे वढकर कन्दर्पका स्वागत किया। उस सत्कारको देखकर दण्डनायक सुन्न आदि राजकर्मचारियोंका सिर दुखने लगा और वे सव मन ही मन जलने लगे ॥ ९९२ ॥ परिहास-पुरकी व्यवस्था करनेवाला कर्मचारी आनन्द वड़ा दुष्ट और क्रूर प्रकृतिका था। इस कारण वहाँकी सभाके ब्राह्मण उसे वातगंड कहते थे। वहुतेरे घूसखोर मंत्रियोंके अनुरोधपर राजा हर्षने वामन मंत्रीके स्थानपर उस आनन्द-को पादाग्रका अधिकार दे दिया। किन्तु वह द्वारपतिपद चाहता था। इसी कारण कन्दर्पके विरोधियोंका वह अगुआ था ॥ ९९३–९९५ ॥ आनन्दकी ही प्रेरणासे राजा हर्षने लोहर प्रान्तमें फैले हुए विद्रोहको शान्त करनेके लिए कन्दर्पको मण्डलेश वनाकर वहाँ भेजा ॥९९६॥ अपना कल्याण चाहनेवाले दुष्ट मंत्रियोंने इस युक्तिसे उस मंत्री तथा पराक्रमसम्पन्न कन्दर्पको पशुओंकी भाँति राजनीतिक सूझ-बूझसे विहीन राजाके पाससे दूर कर दिया ॥ ९९७ ॥ जानवरोंके समान विचारहीन एवं मूर्ख राजे मिथ्यावादी तथा स्वार्थी लोगोंकी वातमें आकर विद्वान् तथा वक्ताको अपने पास न रखकर यह सोचते हुए वे उसे वाहर भेज देते हैं कि 'यह दूतका काम भली भाँति कर सकता है'। आप्तजनोंके साथ विरोध हो जानेके भयसे वे बुद्धिमान् मंत्रीको त्याग देते है। 'यह कहीं राज्य ही न छीन ले' यह सोचकर वे प्रवल मंत्रीको पास नहीं रखते। धूर्तोंकी प्रेरणासे ऐसा करनेवाले राजे शीघ्र नष्ट हो जाते है ॥९९८॥ कन्दर्पके चले जानेपर उसपर राजाकी पुरानी आस्था मुट्ठीमें रक्खी हुई वालूके समान खिसक गयी ॥ ९९९ ॥ तदनन्तर कन्दर्पके विरोधियोंने राजाको समझाया कि 'कंदर्प उत्कर्षके पुत्रको लोहर-

तथेति नृपतिर्गृह्णन्बन्धुं हन्तुमथाशु तम्। ससैन्यं व्यसृजत्पट्टं टक्कं चासिधराभिधम् ॥१००१॥
तयोः संप्राप्तयोर्वार्तां तां लेखव्यत्ययाद्विदन्। विमुखश्चकितात्सा च कन्दर्पोऽभूद्यथा मुहुः ॥१००२॥
केलिद्यूतक्षणे हस्तं मृद्नन्सेवकवत्पुरः। आसीदसिधरस्तस्य बद्धुमभ्युद्यतस्तदा ॥१००३॥
ततः पाणिं विनिष्कृत्य सोऽङ्गुष्ठाग्रेण तत्करम्। अमृद्नाद्येन निस्त्वक्त्वं छिन्नः पक्षीव सोगमत् ॥१००४॥
अनन्तरज्ञो भूभृच्च तेनात्मा च नृपाश्रितः। विगर्ह्यते स्म खिन्नेन पट्टश्चैवमकथ्यत ॥१००५॥
नेयाशयो नरपतिः कुटुम्बं प्रहिणोतु मे। अर्पयित्वा ततः कोटं प्रयास्यामि दिगन्तरम् ॥१००६॥
आनीय दत्तांस्तैर्ज्ञातीनादाय द्रोहवर्जितः। स विमुक्ताधिकारोऽथ मन्त्री वाराणसीं ययौ ॥१००७॥
हत्वा गयायां सामन्तमेकमन्यं निवेश्य च। काश्मीरिकाणां चक्रे स श्राद्धशुल्कनिवारणम् ॥१००८॥
स हत्वा चौरसेनान्यं ससैन्ये दुर्गमेऽध्वनि। पूर्वाशामध्वनीनां च व्यधान्निर्धूतकण्टकाम् ॥१००९॥
व्याघ्रं निहत्योग्रसत्त्वं वाराणस्यां निरस्यता। पूर्वा दिग्भूषिता तेन मठैः सुकृतकर्मठैः ॥१०१०॥
ते तन्निर्वासनादेव लब्धलक्षाः कुमन्त्रिणः। अन्योन्यासूयया जघ्नुरथ कार्याणि भूभुजः ॥१०११॥
स्वैराहारोदितगुरुमदाः भृङ्गकण्डूतिशान्त्यै दुर्वारेर्ष्याकलुषमतयो यत्र दुर्मन्त्रिमेषाः।
घ्नन्त्यन्योन्यं भवति गणितैर्वासरैरेव कैश्चिन्मध्यस्थाणोरिव नरपतेस्तत्र सर्वाङ्गभङ्गः ॥१०१२॥
अतिक्रामति कालेऽथ पार्थिवं हन्तुमुद्यतम्। दुद्रुहुर्जातराज्येच्छस्तान्वङ्गिर्धम्मऽटोभजत् ॥१०१३॥

प्रान्तका राजा बनाना चाहता है' ॥ १००० ॥ यह बात सही मानकर राजा हर्षने अपने भाई कन्दर्पको मरवा डालनेके विचारसे मंत्री पट्ट तथा टक्कदेशनिवासी असिधरको एक विशाल सेनाके साथ लोहर भेजा ॥ १००१ ॥ एक गुप्त पत्रके द्वारा जो कि भूलसे कन्दर्पके पास पहुँच गया था, सब भेद उसे ज्ञात हो गया। इससे उसको बड़ा दुःख हुआ और बड़ी देरतक वह आश्चर्यमें पड़ा रहा और उसका मन राजाकी ओरसे फिर गया ॥१००२॥ जब पट्ट तथा असिधर वहाँ पहुँचे, उस समय कन्दर्प चौपड़ खेल रहा था। तत्काल असिधरने सेवककी भाँति उसके समक्ष जाकर उसे कैद कर लेने सम्बन्धी राजाज्ञाकी सूचना दी और उसका हाथ पकड़ लिया ॥ १००३ ॥ कन्दर्पने तुरन्त अपना हाथ छुडा लिया और असिधरके हाथपर अपने अंगूठेका केवल अग्रभाग रगड़ दिया, जिससे उसके हाथकी चमडी छिल गयी और वह पंखकटे पखेरूके समान विकल होकर छटपटाने लगा ॥१००४॥ उसने सेवकोंकी योग्यता न समझनेवाले राजा एवं उसके आश्रित बनकर अपनी दुर्दशा करानेवाले अपने आपको धिक्कारा। इसके बाद असिधर भागकर पट्ट मंत्रीके पास गया और उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १००५ ॥ उसने कहा कन्दर्पका कहना है कि—'महाराजमें स्वतंत्ररूपसे सोचने-समझनेकी सामर्थ्य नहीं है। इस लिए वे औरोंकी सलाहपर चलते हैं। अतएव यदि वे मेरे कुटुम्बको यहाँ भेज दें तो मैं यह किला छोड़कर किसी दूसरे देशको चला जाऊँगा' ॥ १००६ ॥ तत्पश्चात् राजाके द्वारा भेजवाये हुए अपने कुटुम्बियोंको साथ ले तथा समस्त राजकीय अधिकारोंका परित्याग करके कन्दर्प वाराणसी चला गया ॥ १००७ ॥ उस वीरने गयामें एक सामन्तको मारकर उसकी जगह दूसरेको गद्दीपर बिठा दिया। ऐसा करके उसने गयाक्षेत्रमें श्राद्ध करनेके लिए आनेवाले कश्मीरियोंसे लिया जानेवाला कर बन्द करा दिया ॥ १००८ ॥ इसके अतिरिक्त सेनाके साथ उस मार्गसे जाते हुए कन्दर्पने यात्रियोंको सतानेवाले डाकुओंके सरदारोंका दमन करके वह मार्ग सदाके लिए निष्कण्टक बना दिया ॥ १००९ ॥ वाराणसीमें पहुँचनेपर एक भयानक बाघको मारकर उसने वहाँवालोंका भय दूर किया और मठनिर्माण आदि बहुतेरे धार्मिक कार्य करके उसने देशके पूर्वी भागको अलंकृत कर दिया ॥ १०१० ॥ इधर कन्दर्पको निकलवानेके बाद अपना-अपना स्वार्थ साधकर वे दुष्ट मन्त्री आपसी ईर्ष्या-द्वेषवश परस्पर झगड़ते हुए राज्यकार्य नष्ट करने लगे ॥ १०११ ॥ जैसे भरपूर भोजन मिलनेके कारण उन्मत्त मेढ़े सींगकी खुजली मिटानेके लिए परस्परमें ही लड़कर माथा टकराने लगते हैं और उन दोनोंके बीचका खम्भा उनकी टक्करसे चूर हो जाता है। उसी प्रकार मनमाना काम करनेके अभ्यासवश उद्दण्ड, दुर्दमनीय तथा ईर्ष्यासे कलुपित बुद्धिवाले मंत्री जब आपसमें ही लगते हैं तो राजा अति शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १०१२ ॥ कुछ

द्रोहापवादभागेष भवेद्राज्यमिदं पुनः । मामेव वेश्यापुत्रत्वादनर्हेऽस्मिन्नुपेष्यति ॥१०१४॥
इति संमन्त्र्य सुचिरं निहन्तुं पृथिवीभुजम् ।
प्रेरितो जयराजोऽभूत्तेनासरलचेतसा ॥ युग्मम् ॥१०१५॥
विलावग्रामजान्क्षिप्त्वा तीक्ष्णान्द्रोहाय भूपतेः । सोऽवरोधवधूर्द्वित्रा विदधे मध्यपातिनीः ॥१०१६॥
क्रमात्सिद्ध्युन्मुखे तस्मिन्कार्ये राजपुरीं नृपः । दूत्याय व्यसृजज्जातु बहुमानेन धम्मटम् ॥१०१७॥
सहसमङ्गलगृहे सुदिनापेक्षया स्थितम् । तं सिद्धिभङ्गचकितो जयराजः समाययौ ॥१०१८॥
तमर्थं मण्डपे गूढं तयोर्मन्त्रायमाणयोः । प्रयागानुचरः कश्चिद्भित्तिव्यवहितोऽशृणोत् ॥१०१९॥
तदावेदिततद्वार्तात्प्रयागात्तत्कथां ततः । बुद्ध्वा निवर्तयामास धम्मटं गमनान्नृपः ॥१०२०॥
कुलक्षयभयात्तिष्ठंस्तत्प्रतीकारमन्थरः । स्वमेव केवलं रक्षन्नासीत्स चकितोऽन्वहम् ॥१०२१॥
असिद्धिं जयराजस्तु दृष्ट्वा दूतैः स्वसंमुखौ । शमालडामरौ वीरौ वागपाजाभिधौ व्यधात् ॥१०२२॥
स्वभृत्यैर्भेदनिर्यातैर्यियासुं तं निवेदितम् । श्रुत्वा क्षपायां क्षितिभृद्दिक्षु चिक्षेप रक्षिणः ॥१०२३॥
व्याजाद्यात्रां वदन्सज्जः प्रातस्तान्वञ्चिरेव तम् । चतुष्कं पूजने धूर्तो जयराजमुपानयत् ॥१०२४॥
राज्ञो दत्तार्गले धाम्नि स्थितस्य स्थानमण्डपम् । सत्रा स भ्रातृपुत्रेण धम्मटेन ततोऽविशत् ॥१०२५॥
रक्षिणोऽथ बहिर्न्यस्य प्रयागः पार्थिवाज्ञया । जयराजं बधानेति नीचैर्धम्मटमभ्यधात् ॥१०२६॥
धम्मटे विश्वसञ्शस्त्रं जयराजस्त्यजेद्ध्रुवम् । निदेशेनामुना वेत्ति स्वमज्ञातं च धम्मटः ॥१०२७॥

ही दिनों बाद राजद्रोही तथा राज्यलोलुप तन्वंगका पुत्र धम्मट राजा हर्षको मार डालनेका उपक्रम करने लगा ॥ १०१३ ॥ उस राजद्रोहके कलंकसे बचनेके लिए उसने राजाके भाई जयराजको इस कार्यके लिए तैयार किया । क्योंकि उसे यह विश्वास था कि वेश्यापुत्र होनेके कारण जयराज राज्य कदापि न पा सकेगा । अतएव शासनसूत्र मेरे हाथमे आना निश्चित है ॥ १०१४ ॥ १०१५ ॥ तदनुसार जयराजने राजाका वध करनेके लिए विलाव ग्रामवासी घातकोंको मिलाया और अन्तःपुरकी दो-तीन रानियोंको भी उस कुचक्रमे सम्मिलित कर लिया ॥ १०१६ ॥ किन्तु संयोगवश उनका षड्यंत्र कार्यरूपमे परिणत होनेके कुछ पहले ही राजाने धम्मटको ससम्मान राजपुरीका राजदूत बनाकर भेजनेका निर्णय किया ॥ १०१७ ॥ राजाज्ञा पाकर धम्मट जब शुभ मुहूर्तकी प्रतीक्षामे मंगलके घरपर था। उसी समय षड्यंत्र विफल हो जानेकी आशंकासे व्याकुल होकर जय-राज उसके पास पहुँचा ॥ १०१८ ॥ जिस समय वे दोनों इस विषयपर गुप्तरूपसे मंत्रणा कर रहे थे, उसी समय प्रयागका एक सेवक वहाँ पहुँच गया और दीवारकी ओटमे खड़े होकर उसने उनकी सब बाते सुन लीं। तुरन्त जाकर उसने प्रयागको और प्रयागने उसी समय सब हाल राजाको बताया। यह सुनकर राजाने तत्काल धम्मटको राजपुरी जानेसे रोक दिया ॥ १०१९ ॥ १०२० ॥ समस्त कुलके नष्ट हो जानेकी आशंकावश राजा हर्षने इस षड्यंत्रका बदला कई दिनोंतक नहीं लिया और वह केवल आत्मरक्षाका प्रबन्ध करनेमे व्यस्त रहा ॥ १०२१ ॥ उसी बीच अपना षड्यंत्र व्यर्थ होता देखकर जयराजने पाज तथा बाज नामके शमाला ग्रामके दो वीर डामरोंको अपने पास बुलवा लिया ॥ १०२२ ॥ किन्तु जयराजके सेवकोंने सारा रहस्य प्रकट कर दिया और उसके पलायनका समाचार भी राजाको बता दिया, जिससे राजाने रात्रिके समय चारों ओर रक्षकोंको नियुक्त कर दिया ॥ १०२३ ॥ अगले दिन सवेरे धूर्त धम्मट वहाँसे चल देनेके लिए अपने घरसे बाहर निकला और जयराजको साथ लेकर राजा हर्षके पास चतुष्कमण्डपमें जा पहुँचा ॥ १०२४ ॥ किन्तु उस समय मण्डपके द्वार बन्द थे। अतएव वह अपने भतीजे तथा जयराजको साथ लिये हुए आस्थानमण्डपमे गया ॥ १०२५ ॥ उसी समय प्रयागने राजाकी आज्ञाके अनुसार मण्डपके चारो ओर रक्षकोंको तैनात करके चुपके-चुपके धम्मटसे कहा—'जयराजको कैद कर लो' ॥ १०२६ ॥ उस नीतिनिपुण राजाने यह योजना इस विचारसे चालू की थी कि जब धम्मट कैद करने जायगा तो उसपर विश्वास करके जयराज शस्त्र त्याग देगा और राजाका ऐसा

द्वयोरेकस्य वा युद्धे तयोर्मृत्यौ हितं च नः। व्यक्तीकृतेऽन्ययोर्वापि वधो लोकेऽप्यगर्हितः ॥१०२८॥
इति निर्ध्यायतः युग्मद्विरोधेन वेधसः !
प्रज्ञास्य प्रत्ययमाद्राज्ञो मन्त्रो युक्ततमस्तथा ॥तिलकम्॥१०२९॥
नाद्रुह्यं मां ध्रुवं राजा तान्वङ्गिगिति विश्वसन्। जयराजमुपागत्य ततो धार्ष्ट्याद्वचोऽब्रवीत् ॥१०३०॥
अनमन्नस्त्वयि नृपो यद्द्रोहोऽसि निश्चयात्। तत्त्वयाशु विशुद्ध्यर्थमसिधेनुः समर्प्यताम् ॥१०३१॥
दैवेन वा मोहितः स तद्विश्वासेन वास्त्यजत्। आक्षिप्यमाणः शस्त्रास्त्रकोविदः शस्त्रमन्यवत्॥१०३२॥
वैक्लव्यदर्शनात्सेर्ष्यस्ततः स परुषां गिरम्। तन्वङ्गपौत्रस्तुल्लाख्यस्तं जगादाजकात्मजः॥१०३३॥
न त्वं निःसत्त्व कल्याण जातः कलशभूभुजा। आसीज्जनयिता नूनं क्लीबो यः कश्चिदेव ते ॥१०३४॥
निष्ठायां वैरचर्याणां परिणाममजानता। तेनेत्युक्तः स शीताम्बुसिक्तसुप्तोपमोऽभवत् ॥युगलकम्॥१०३५॥
द्रोहोदन्तं पृच्छ्यमानो धीरस्तन्मल्यपातिनम्। यातनाक्षेपितोऽप्यूचे स्वमेव न तु धम्मटम् ॥१०३६॥
विषघ्नमन्त्रवीर्येण मोघीकृतविषाशनः। रज्ज्वा निर्पीड्यग्रीवाग्रं ततो निशि विपादितः॥१०३७॥
जन्यकेन प्रतीहार्या शिरश्छित्त्वोज्झितं यया। भट्टारनड्वलातोये तद्वपुर्मत्स्यभोज्यताम् ॥१०३८॥
तमेवमष्टमे वर्षे हत्वा भाद्रपदे नृपः। वधं गम्भीरहृदयो धम्मटस्याप्यचिन्तयत् ॥१०३९॥
आदिदेशाथ तत्सिद्धयै रहः शस्त्रभृतां वरम्। शूरं कल्यणराजाख्यं ठक्कुरं लोहरान्वयम् ॥१०४०॥
प्रहिणोति यदा दूतं प्रयागस्ते तदा त्वया। संपाद्यमेतदित्यूचे तं चोपचितसत्क्रियम् ॥१०४१॥
असिद्धिभीत्या स्वं दूतं स प्रहिण्वन्प्रयागकः। संमन्त्र्य क्रियतामेतदित्यूचे कुपितो नृपम् ॥१०४२॥

आदेश पानेके कारण धम्मटको भी यह विश्वास हो जायगा कि राजा मुझे इस षड्यंत्रसे निर्लिप्त समझ रहा है। यदि कुछ करते समय दोनोंमें झगड़ा हो गया तो दोनों आपसमें ही कट मरेंगे। ऐसा होनेमें भी अपना ही लाभ है। कदाचित् वे दोनों परस्पर मिल गये तो उन्हें पकड़कर मार भी डाला जायगा तो नागरिक मेरी निन्दा न करेंगे ॥ १०२६–१०२९ ॥ तदनुसार धम्मटने यह समझते हुए कि 'इस षड्यंत्रसे मेरा कोई सरोकार नहीं है। राजाका ऐसा विश्वास समझकर बड़े दर्पाकके साथ उसने जयराजसे कहा—॥ १०३० ॥ 'महाराज आपके ऊपर नाराज हैं। अतएव यदि आप निर्दोष हों तो तुरन्त अपनी तलवार मुझे सौंप दीजिए' ॥ १०३१ ॥ यद्यपि जयराज खड्गयुद्धमें पूर्ण निपुण था और सभी शस्त्रोंकी चालनक्रियाका उसे सम्यक् ज्ञान था, तथापि दुर्भाग्यवश या धम्मटपर विश्वास होनेके कारण बड़ी सरलतासे उसने अपनी तलवार उसे दे दी ॥ १०३२ ॥ उसकी ऐसी भीरुता एवं व्याकुलतामयी स्थिति देखकर तन्वंगके पौत्र एवं अजकके पुत्र तुल्लने जयराजसे बड़े तिरस्कार भरे कठोर वचन कहे ॥ १०३३ ॥ वह बोला—'ओ कायर ! ज्ञात होता है कि तू राजा कलशके द्वारा कल्याके गर्भसे न उत्पन्न होकर किसी नपुंसकके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है'। वैरके परम भक्त और वैरहीनताका परिणाम जानने-वाले तुल्लके वचन सुनकर जयराज उसी तरह ठंडा पड़ गया, जैसे शीतल जलका छिड़काव होनेसे कोई मनुष्य सो जाय ॥ १०३४ ॥ १०३५ ॥ इस प्रकार कैद कर लेनेके बाद जब उससे षड्यंत्रविषयक प्रश्न पूछे गये तो भीषण यातनाओंको सह करके भी उस वैरव्रती वीरने एकमात्र अपनेको ही अपराधी बताया और धम्मटका नाम ही नहीं लिया ॥ १०३६ ॥ बादमें उसको मारनेके लिए विष दिया गया। किन्तु जयराज विषघ्न मंत्र सिद्ध किये हुए था, अतएव उसका उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ। तब रात्रिके समय उसे फाँसीपर चढ़ाकर मारा गया ॥ १०३७ ॥ तदनन्तर जन्य नामके प्रतीहारने उसका सिर काट लिया और उसकी लाश भट्टारनड्वला सरोवरमें मछलियोंके भोजनार्थ डाल दी गयी ॥ १०३८ ॥ इस प्रकार उस गम्भीरहृदय राजाने ४१७९ लौकिक वर्षके भाद्रपद मासमें जयराजको मरवाकर मन ही मन धम्मटके भी वधका निश्चय करके तदर्थ प्रयत्न आरम्भ कर दिया ॥ १०३९ ॥ इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए राजा हर्षदेवने लोहरप्रान्तनिवासी वीर कल्हराज ठक्कुरको एकान्तमें आदेश देते हुए कहा—जब प्रयाग तुम्हारे पास अपना दूत भेजे, उसी समय तुम धम्मटका काम तमाम कर देना। ऐसा कहकर राजाने उसका भलीभाँति सम्मान किया ॥ १०४० ॥ १०४१ ॥ तदनुसार

राज्ञि मन्त्रयमाणेऽथ पञ्चानीयाग्र्यमन्त्रिणः । वामनः सार्गले द्वारे त्यक्तदेहोऽब्रवीद्वचः ॥१०४३॥
मन्त्रश्च मन्त्रिणश्चैते न यावन्निःसृता बहिः । तावत्क्रियेत चेदेतन्न भद्राणि दरिद्रति ॥१०४४॥
राजाज्ञया प्रयागेन ततो दूते विसर्जिते । तीक्ष्णः कलशराजाख्यस्तनयाभ्यां सहाययौ॥१०४५॥
तस्मिन्प्रसङ्गे तान्वङ्गिः श्येनस्य दददातपम् । राजधान्यन्तरेऽवासीद्द्वित्रैरनुचरैः समम् ॥१०४६॥
पुरः कलशराजं तं दृष्ट्वा पश्चाच्च तत्सुतौ । यावत्साशङ्कमाचख्यौ तावद्भृत्यैर्निजैर्जहे ॥१०४७॥
शक्तोऽपि धम्मटः क्रष्टुं कृपाणीमिति वादिनम् । हन्तुं कलशराजं तु यावच्छस्त्रे व्यधात्करम् ॥१०४८॥
तावत्तेनाग्रतः पश्चात्तत्पुत्राभ्यां कृताहतिः । आसनादुच्चलन्नेव क्षिप्रं प्राणैरमुच्यत ॥१०४९॥
मुमूर्षुणा क्षतस्तेन ज्यायान्कलशराजजः । चित्रमायुधवैगुण्यान्नाभीक्ष्णव्रणितोऽभवत् ॥१०५०॥
तस्य ह्यभाग्ययोगेन तेष्वेवाहःसु शस्त्रिणः । निजा कृपाणी तुत्रोट तेनाभद्रायुधोऽभवत् ॥१०५१॥
निहत्य पातितः पृष्ठात्स तैर्व्याधैरिवाण्डजः । शुनां ग्रासाय संत्यक्तः श्वपाकैः पार्थिवाज्ञया॥१०५२॥
राज्ञा तन्वङ्गनप्तारौ स्वयं रल्हणमल्हणौ । आगत्य प्राङ्गने त्यक्तकृपाणी परिरक्षितौ ॥१०५३॥
दत्तास्कन्दास्तु डुल्लाद्याः संरम्भेण युयुत्सवः । माययोदयसिंहेन दाम्भिकेनैत्य वञ्चिताः ॥१०५४॥
यूयं पुत्रा ममेत्युक्तवतस्ते धार्मिकस्य यत् । प्रत्ययात्तस्य शस्त्राणि तत्यजुर्जीवितेच्छवः ॥१०५५॥
राज्ञो विशुद्धिः क्रियतां पार्श्वमेत्येति तद्वचः । तैः समागत्य जगृहे मार्गो राजगृहान्प्रति ॥१०५६॥
तन्वङ्गजगृहोच्छिष्टैर्वाल एव विवर्धितः । डुल्लं ततो विहस्यैवं स्वच्छत्रग्राहकोऽवदत् ॥१०५७॥

अपने दूत भेजनेसे पहले कार्यसिद्धिमे बाधा पड़नेकी आशंकावश क्रुद्ध होकर प्रयागने राजा हर्षदेवसे कहा कि 'अपने मंत्रियोंसे मंत्रणा करनेके बाद ही यह काम करिए' ॥ २०४२ ॥ उसके कथनानुसार पाँच मंत्रियोंको बुलाकर राजा उनके साथ मंत्रणा करने लगा। तत्काल वामन मन्त्रीने उठकर आस्थानमण्डके सभी द्वार बन्द करा दिये और अर्गलदण्ड युक्त प्रधान द्वारसे अपनी देह सॅटाकर खड़े ही खड़े वह बोला— ॥ १०४३ ॥ 'राजन्! आप मन्त्रणा करनेके बाद जो निश्चय करें, वह जबतक कार्यरूपमे न परिणत हो जाय, तबतक ये सभी मन्त्री इस मण्डपके बाहर न जाने पायें। तभी कार्यकी सिद्धि होगी—अन्यथा नहीं' ॥ १०४४ ॥ तदनन्तर राजाके आज्ञानुसार प्रयागने कलशराजके पास दूत भेजा। तब कलशराज नामका घातक अपने दो पुत्रोंको साथ लेकर धम्मटका वध करने गया ॥ १०४५ ॥ उस समय धम्मट राजधानीमे अपने दो-तीन सेवकोंके साथ बैठा हुआ बाज पक्षीको धूप खिला रहा था ॥ १०४६ ॥ सहसा सशस्त्र कलशराजको सामने तथा उसके दोनों पुत्रोंको अपने पीछे खड़ा देखकर धम्मट सशंक हो उठा। वह अपने सेवकोंसे कुछ कहना ही चाहता था कि इतनेमें वे सेवक उसे अकेला छोड़कर भाग गये ॥ १०४७ ॥ तब शक्तिमान् धम्मट कलशराजपर प्रहार करनेके लिए तलवार निकालने लगा। इतनेमे आगेसे कलशराज और पीछेसे उसके दोनों पुत्रोंने उसपर एक साथ प्रहार कर दिया, जिससे वह आसनसे उठनेके पहले ही मर गया ॥ १०४८ ॥ १०४९ ॥ घबराहटमे धम्मटने भी कलशराजके बड़े पुत्रपर तलवारसे प्रहार किया था, किन्तु तलवार खराब थी, अतएव वह उसे विशेष आहत नहीं कर सकी ॥ १०५० ॥ उसके दुर्भाग्यसे उन्हीं दिनों उसकी तलवार टूट गयी थी, इसीसे वह ऐन मौकेपर काम नहीं ॥ १०५१ ॥ जैसे बहेलिये पक्षियोंको मारकर फेंक देते हैं, उसी प्रकार कलशराज तथा उसके पुत्रोंने जब उसे मारकर फेंक दिया। तब राजाकी आज्ञासे चाण्डालोंने उसके मृतक शरीरको टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तोंको खिला दिया ॥ १०५२ ॥ तत्काल राजा हर्षने नीचे ऑगनमे आकर तन्वंगके उन दोनों पौत्रों अर्थात् रल्हण और मल्हणकी रक्षा की, जिन्होंने अपनी तलवार पृथ्वीपर रख दी थी ॥ १०५३ ॥ इसी समय डुल्ल आदि कतिपय वीर क्रोधके वशीभूत होकर युद्धके लिए सन्नद्ध होने लगे। इतने ही मे महान् कपटी उदयसिंहने वहाँ पहुँचकर अपनी मायासे उन्हें ठग लिया ॥ १०५४ ॥ उसने कहा—'तुम सब मेरे पुत्र हो' ऐसी मीठी बात करनेवाले धर्मात्मा उदयसिंहकी बातपर विश्वास करके अपने जीवनकी रक्षाके लिए उन डुल्ल आदि वीरोंने अपने शस्त्रास्त्र रख दिये ॥ १०५५ ॥ उसीके कथनानुसार वे अपनेको निर्दोष प्रमाणित करनेके

तन्वङ्गनप्तर्यत्पूर्वं जयराजमभाषथाः । न त्वं निःसत्त्व कय्याया इति तद्विस्मृतं तव ॥१०५८॥
स ते ताद्दश एवायं वर्तते संकटः क्षणः । किं धैर्यावसरे मूढ वैक्लव्यमवलम्बसे ॥१०५९॥
तस्माज्ज्ञातोऽसि नियतं मत्पित्रोच्छिष्टमुष्टिना । अहं तु तेन वीरेण त्वत्पित्रा कीर्तिभागिना ॥१०६०॥
इत्युक्त्वा स रणे गृह्णन्खड्गधाराजलज्जलम् । पपात जन्ममालिन्यं मानी प्रक्षालयन्निव ॥१०६१॥
नृपान्तिकं प्रयास्याम इति निश्चयतस्ततः । ढुल्लादीन्राजपुरुषाः कारागारे निचिक्षिपुः ॥१०६२॥
ते यौवनभरोन्मत्ता द्रुमा वासन्तिका इव । प्रत्यभासन्त कारुण्याद्रक्षणीयाः क्षमाभुजः ॥१०६३॥
टक्कस्तु विम्वियो नाम पापः संप्रेक्ष्य भूभुजम् । न्यजिग्रहत्तान्ग्रीवासु निशि पाशान्निवेशयन् ॥१०६४॥
ढुल्लो विजयराजश्च वुल्लो गुल्लश्च तेऽलुठन् । तन्वङ्गपौत्राश्चत्वारो हता वध्यमहीतले ॥१०६५॥
हतानामपि सौन्दर्यं तेषामद्यापि वर्ण्यते । कथान्तरे वयोवृद्धैर्वृद्धाश्रुस्यन्ददुर्दिनैः ॥१०६६॥
सतताम्यस्तताम्बूलैः स्रस्तैस्तद्दशनाङ्कुरैः । कीर्णशोणाश्ममालेव सुचिरं वध्यभूरभूत् ॥१०६७॥
वृद्धिमानीतयो राज्ञाप्युत्कर्षापत्ययोस्ततः । ज्यायान्प्रमिम्ये डोम्बाख्यो गूढदण्डैः कुलच्छिदा ॥१०६८॥
स्फुलिङ्गमिव संभाव्य तेजोविस्फूर्जितं शिशुम् । जघान जयमल्लं च तद्वद्विजयमल्लजम् ॥१०६९॥
गोप्तॄन्स्वगोत्रजान्हत्वा भोक्तुमेकस्य कस्यचित् । कुर्वन्ति दैवोपहता राज्यं निष्कण्टकं नृपाः ॥१०७०॥
संरूढं मधुगोलमुच्चविटपव्यूहावलीगह्वरे मूढः कर्तुमकृच्छ्रहार्यमभितः कस्यापि भव्यात्मनः ।
दैवप्रेरणया प्रकम्पविवशः पत्रप्रहारैर्दृढं तद्गोप्तॄन्मधुपान्निहत्य शमयत्यश्वत्थपृथ्वीरुहः ॥१०७१॥

लिए राजाके पास जानेको तैयार हो गये ॥ १०५६ ॥ बाल्यकालसे ही तन्वंगके घर रहकर जूठनपर पले हुए ढुल्लके छत्रधारी एक सेवकने हँसकर कहा—'हे तन्वंगके पौत्र ढुल्ल! आजके कुछ समय पूर्व आपने जयराजसे कहा था—'तुम कय्याकी कोखसे नहीं उत्पन्न हुए हो'। क्या आप वह वचन भूल गये ? ॥ १०५७॥ ॥ १०५८ ॥ आपके लिए भी वैसा ही संकटका समय उपस्थित है। हे मूढ ! धैर्य धारण करनेके समय आप इस तरह घबड़ा क्यों रहे हैं ॥ १०५९ ॥ इस समय आपको देखकर ऐसा लगता है कि आप मेरे उच्छिष्टभोजी पिताके वीर्यसे उत्पन्न हुए हैं और मैं आपके यशस्वी पिताके वीर्यसे जनमा हूँ' ॥ १०६० ॥ ऐसा कहकर वह मनस्वी वीर जैसे अपने जन्मकी मलिनताको धोनेके लिए खड्गधाराके जलमें कूद पड़ा अर्थात् शस्त्र लेकर उसने शत्रुओंके साथ जमकर युद्ध किया ॥ १०६१ ॥ उधर राजाके पास जानेके लिए घरसे निकलते ही ढुल्ल आदि वीरोंको राजपुरुषोंने पकड़कर कारागार भेज दिया ॥ १०६२ ॥ उस समय वे वीर यौवनके भारसे उन्मत्त होकर वसन्तकालीन वृक्षोंके सदृश सुन्दर लग रहे थे। उन्हें देखकर राजाके हृदयमें दयाभाव जाग गया, जिससे वह उनके प्राण बचानेका विचार करने लगा ॥ १०६३ ॥ किन्तु टक्कदेशनिवासी पापी विम्वियने राजाकी ओर ऐसी दृष्टिसे देखा कि उसका मन फिर दूषित हो गया और उसके सामने वह विम्विय ढुल्ल आदि वीरोंको वरवस घसीट ले गया और रात्रिके समय उनके गलेमें फाँसीका फन्दा डालकर मार डाला ॥ १०६४ ॥ इस प्रकार ढुल्ल, वुल्ल, गुल्ल और विजयराज ये चारों तन्वंगके पौत्र मरकर वध्यभूमिमें लोट गये ॥ १०६५ ॥ मर जानेपर भी वे बड़े सुन्दर दीखते थे। उनकी पुरातन गाथा कहनेवाले वृद्धजन आज भी जब उनके मरणोत्तरकालीन सौन्दर्यका वर्णन करने लगते हैं तो उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लग जाती है ॥ १०६६ ॥ सदा पान खानेके कारण उनकी लाल दाँतोंकी पंक्ति वध्यभूमिपर चिरकालतक बिखरी हुई माणिक्य माला सरीखी दीखती रही ॥ १०६७ ॥ अपने ही कुलको उच्छिन्न करनेवाले राजा हर्षदेवने अपने प्रयत्नसे बढ़े हुए राजा उत्कर्षके ज्येष्ठ पुत्र डोम्बको गुप्तरीतिसे मरवा डाला ॥ १०६८ ॥ ऐसे ही विजयमल्लके चतुर एवं चंचल छोटे पुत्रको भी आगकी चिनगारी समझकर उस राजाने गुप्त रीतिसे मरवा दिया ॥ १०६९ ॥ बहुतेरे अभागे राजे अपने राज्यके आधारभूत एवं विश्वस्त स्वजनोंको अपना प्रतिद्वन्द्वी मानकर मार डालते हैं। ऐसा करके वे समझते हैं कि 'मैंने राज्यको निष्कण्टक बना लिया'। किन्तु प्रायः ऐसे राजाओंका राज्य

ज्ञातिद्रोहमहापाप्मनष्टधीरथ पार्थिवः । डिम्भानामप्यसंभाव्यासभजद्विटभोज्यताम् ॥१०७२॥
वामनस्यात्मजः क्षेमस्तं जानञ्जनकद्विपम् । प्रैरयत्कलशेशस्थच्छत्रहेमनिवर्हणे ॥१०७३॥
तामिच्छामच्छिनत्तस्य भक्तो युक्त्या प्रयागकः । धावतः श्वभ्रपातेच्छां धीरो यन्तेव दन्तिनः ॥१०७४॥
अनिशं नष्टचेष्टानां शवानामिव भूभुजाम् । अन्तःप्रवेशकुशलो यो वेताल इवाभवत् ॥१०७५॥
नप्ता हलधरस्याथ विटो लोष्टधराभिधः । जगाद निर्जने जातु राजानं रञ्जनेच्छया ॥युग्मम्॥१०७६॥
ह्रियतां ग्रामहेमादि कलशेश्वरसंश्रयम् । तत्प्रासादाश्मभिः सेतुं वितस्तायां करोमि ते॥१०७७॥
आलेख्यं गगने लिखामि विसिनीसूत्रैर्वयाम्यम्बरं स्वप्नालोकितमानयामि कनकं ग्रथ्नामि वप्रं हिमैः ।
इत्याद्युक्तमपि स्फुटं जडमतिर्जानाति सत्यं नृपो यस्तादृक्त्रपया न वक्ति स गतप्रौढिः परं वञ्च्यते ॥१०७८॥
निषिषेध चिकीर्षां तु प्रयागस्तामपि प्रभोः । सदुपस्थायिकोऽपथ्याभ्यर्थनामिव रोगिणः ॥१०७९॥
अथ लोष्टधरो हास्यावसरे जातु भूपतिम् । बद्धस्य मोक्षो देवस्य क्रियतामित्यभाषत ॥१०८०॥
स्मित्वा किमेतदित्युक्तवन्तं तं स व्यजिज्ञपत् । उदभाण्डपुरे दिव्ये भीमशाहिरभूत्पुरा ॥१०८१॥
विरोधात्पारिषद्यानां तत्कृतो भीमकेशवः । राज्ये कलशदेवस्य बद्धद्वारोऽभवच्चिरम् ॥१०८२॥
तैः शान्तवैरैर्विदधे सदाथ विवृतारिः । चौरापहृतदुर्वर्णकवचो ददृशे तदा ॥१०८३॥

कोई दूसरा ही भाग्यवान् पुरुष भोगता है ॥ ११७० ॥ अज्ञानी पीपलका वृक्ष अपनी शाखाओंकी छायामें लगे मधुके छत्तेको चाहे कोई भी भाग्यशाली पुरुष निकाल ले, इस अभिप्रायसे वह उस डालीको धीरे-धीरे कँपाता है और उसकी रक्षक मधुमक्षिकाओंको अपने गिरते हुए पत्तोंके निर्दय प्रहारसे मार डालता है ॥ १०७१ ॥ इसी प्रकार ज्ञातिद्रोहस्वरूप महान् पापसे नष्टबुद्धि राजा हर्ष धूर्तोंके अधीन होकर ऐसे-ऐसे काम करने लगा, जिन्हें छोटे-छोटे बालक भी नहीं कर सकते ॥ १०७२ ॥ 'अपने पिता कलशके प्रति राजाके मनमें विशेष द्वेषभाव है' यह सोचकर वामनमंत्रीके पुत्र क्षेमने कलशेश्वर मन्दिरके शिखरपर लगे हुए छत्रके सुवर्णको निकाल लेनेके लिए उसे उकसाया ॥ १०७३ ॥ किन्तु जैसे मतवाला गजराज उन्मत्तावस्थामें दौड़ते दौड़ते जब किसी गढ़ेमें गिरने लगता है तो तत्काल धैर्यशाली महावत उसे रोककर मरनेसे बचा लेता है, उसी प्रकार राजाके परम भक्त तथा चतुर सेवक प्रयागने युक्तिसे राजाकी वह इच्छा नष्ट कर दी ॥ १ ७४ ॥ जैसे सदाके लिए निश्चेष्ट मृतकके शरीरमें वैताल आसानीसे घुस जाता है, उसी प्रकार मृतकतुल्य चेष्टाशून्य राजाओंके मनमें परम धूर्त विट लोग अनायास प्रविष्ट हो जाते हैं। इन्हीं गुणोंका गुणी हलधरपौत्र लोष्टधर था। सो एक बार एकान्तमें राजाको प्रसन्न करनेके लिए उसने कहा—॥ १०७५ ॥ १०७६ ॥ 'महाराज ! कलशेश्वरके नाम जो गाँव हों और उसमें जो सुवर्ण आदि सम्पदा हो, वह सब छीन लीजिए तो मैं उस मन्दिरके पत्थरोंसे वितस्ता नदीपर एक बड़ा अच्छा पुल बनवा दूँगा ॥ १०७७ ॥ 'मैं आकाशपर चित्र बना लेता हूँ, मृणालतन्तुओंसे कपड़े बुन देता हूँ, स्वप्नमें देखी हुई स्वर्णराशि ले आ सकता हूँ और बर्फसे प्राकारका निर्माण कर सकता हूँ'। इस तरह धूर्त मनुष्यके द्वारा कही हुई बातोंपर भी विश्वास करके मूर्ख तथा जड़बुद्धिवाले राजे उन बातोंको सच मान लेते हैं। क्योंकि वे राजे अज्ञानी होनेके कारण लज्जावश कुछ कह नहीं पाते और धूर्त उनको ठग लेते हैं ॥ १०७८ ॥ जैसे भली-भाँति रोगीकी परिचर्याकी पद्धतिका विज्ञ मनुष्य कुपथ्य करनेपर उतारू रोगीको कुपथ्यसे बचा लेता है। उसी तरह प्रयागने अपने प्रभुके मनको उस कार्यकी ओरसे फेर दिया ॥ १०७९ ॥ उसके कुछ दिनों बाद बातचीतके प्रसंगमें उसी लोष्टधरने हँसकर राजा हर्षसे कहा—'राजन् ! एक देवता बन्धनमें पड़े हुए हैं, उन्हे आप मुक्त कर दीजिये' ॥ १०८० ॥ यह सुना तो राजाने हँसकर कहा— 'तुम्हारे कथनका क्या तात्पर्य है ?'। लोष्टधर बोला—'पुरातनकालमें उदभाण्डपुरमें भीमशाही नामका एक राजा रहता था ॥ १०८१ ॥ राजा कलशके शासनकालमें उसने भीमकेशव नामके विष्णुभगवानकी स्थापना की। कुछ दिनों बाद उस मन्दिरके ट्रस्टियोंमें परस्पर झगड़ा हो गया, जिसके कारण बहुत समयतक उस मन्दिरमें ताला लगा रहा ॥ १०८२ ॥ जब उनका पारस्परिक विवाद समाप्त हुआ और ताला खुला, तब देखनेपर

भूयोऽपि चक्रे तद्भीत्या कोशसामग्र्यभागिति । ततः प्रभृत्यद्य यावद्बद्धद्वारारिः स्फुटम् ॥१०८४॥
आदीयतां तदीयस्तत्कोशश्चौरभयावहः । सोपि बन्धाद्विमुक्तोस्तु पुष्पदीपादिभोगभाक् ॥१०८५॥
इति संप्रेरितस्तेन तथा चक्रे स भूपतिः । कोशं ततः प्रपेदे च मणिस्वर्णादिनिर्भरम् ॥१०८६॥
अचिन्तयच्च यत्रेदृग्वस्तु शून्यसुरास्पदे । कीदृक्तत्रापरेषु स्यादाढ्येषु सुरवेश्मसु ॥१०८७॥
कृतप्रायः स तत्रत्यैः पारिषद्यैस्ततो नृपः । निष्क्रयं रूढभारोढिवारणेन प्रदापितः ॥१०८८॥
क्रमेण सेनानानाङ्गव्ययव्यसनशालिनः । सुरार्थहरणे रूढा धीः संभावनया तया ॥१०८९॥
पूर्वराजार्पितान्कोशांस्ततः स भुवनाद्भुतान् । सर्वगीर्वाणवेश्मभ्यो लुब्धबुद्धिरपाहरत् ॥१०९०॥
हृतेषु कोशेष्वानेतुं देवानां प्रतिमा अपि । चकारोदयराजाख्यं देवोत्पाटननायकम् ॥१०९१॥
वदनेषु स नग्नाटैः शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणिभिः । मूर्तिनाशाय देवानां शकृन्मूत्राद्यपातयत् ॥१०९२॥
स्वर्णरूप्यादिघटिता गीर्वाणाकृतयोऽलुठन् । अध्वस्विन्धनगण्डाल्य इव सावस्करेष्वपि ॥१०९३॥
विबुधप्रतिमाश्चक्रुराकृष्टा गुल्फदामभिः । थूत्कारकुसुमच्छन्ना भग्ननग्नाटकादयः ॥१०९४॥
ग्रामे पुरेऽथ नगरे प्रासादो न स कश्चन । हर्षराजतुरुष्केण न यो निष्प्रतिमीकृतः ॥१०९५॥
तस्य देवावधृष्यौ द्वौ परमास्तां प्रभाविनौ । नगरे श्रीरणस्वामी मार्तण्डः पत्तनेष्विव ॥१०९६॥
द्वौ महाप्रतिमामध्याद्बुद्धबिम्बावरक्षताम् । दानप्रसङ्गे तं जातु याचित्वा त्यागिनं नृपम् ॥१०९७॥
परिहासपुरे जन्ममेदिन्यां कनकाभिधः । गायनः कुशलश्रीश्च श्रमणो नगरान्तरे ॥१०९८॥

पता चला कि देवताकी प्रतिमापर जो चाँदीका कवच चढा हुआ था, उसे कोई चुरा ले गया है ॥ १०८३ ॥ उस मन्दिरकी सम्पदा चोरोंसे बचानेके लिए ट्रस्टियोंने उसमे फिरसे ताला लगा दिया और तबसे अबतक वह मन्दिर बन्द पड़ा है ॥ १०८४ ॥ अतएव अच्छा तो यह हो कि उस मन्दिरसे चोरका भय उत्पन्न करनेवाला सारा धन ले लिया जाय । ऐसा करनेसे भगवान् भीमकेशव बन्धनमुक्त हो जायँगे और उन्हें पुष्प तथा धूप-दीप आदि पूजनसामग्रीके उपभोगका सौभाग्य प्राप्त हो जायगा' ॥ १०८५ ॥ उस धूर्तके द्वारा इस प्रकार प्रेरित होकर राजा हर्षने भीमकेशवका मन्दिर खोलवा दिया और वहाँकी सुवर्ण-रत्न आदिसे परिपूर्ण पुष्कल धनराशि राजाको प्राप्त हो गयी ॥ १०८६ ॥ इसके बाद राजाने सोचा कि जब इस तरह बहुत समयसे बन्द मन्दिरमे इतनी सम्पत्ति थी, तब बड़े-बड़े मन्दिरोंमें तो इससे बहुत अधिक धन होगा ॥ १०८७ ॥ तदनन्तर उस मन्दिरकी सम्पत्तिके बदलेमें वहाँके ट्रस्टियोंने अनशन करके अपने ऊपर बोझा लादकर ले जानेवाली बेगारकी प्रथा राजासे बन्द करा ली ॥ १०८८ ॥ तदनन्तर राजा हर्षको धीरे-धीरे अपनी सेनाके विभिन्न विभागोंमें सुधार तथा उन्नति करनेके नामपर अत्यधिक धन व्यय करनेका व्यसन जैसा हो गया और देवमन्दिराका धन लूटनेकी आदत पड़ गयी ॥ १०८९ ॥ इस प्रकार उस लोभी राजाने पुराने राजाओंके द्वारा अर्पित सभी मन्दिरोंकी आश्चर्यजनक एवं कल्पनातीत धनराशि लूट ली ॥ १०९० ॥ देवसम्पत्ति लूट लेनेके बाद देवताओं-की धातुनिर्मित मूर्तियोंको भी निकलवानेके लिए उसने उदयराजको देवोत्पाटननायक बनाया ॥ १०९१ ॥ दुष्ट उदयराज देवप्रतिमाओंको भ्रष्ट करनेके लिए ऐसे नंगे भिखारियोंके द्वारा उन मन्दिरोंमें मल-मूत्र छिड़कवाता था, जिनके नाक-कान और हाथ-पैर रक्तविकारसे सड़े रहते थे ॥ १०९२ ॥ सोने-चाँदी आदि धातुओंकी बनी देवमूर्तियाँ जलावनकी लकड़ियोंके समान कूड़ा-कर्कट भरे और एकदम गन्दे रास्तोंपर घसीटी जाती थीं ॥ १०९३ ॥ पुष्पोंकी जगह उन मूर्तियोंपर वे नंगे भिखारी थूकोंकी वर्षा करते थे और प्रतिमाओंके पैरोंमें रस्सी बाँधकर उन्हें सड़कपर घसीटा जाता था ॥ १०९४ ॥ उस हर्षरूपी तुरुष्क राजाने अपने राज्यमें किसी भी गाँव, पुर तथा नगरका एक भी ऐसा मन्दिर नहीं छोड़ा था, जिसकी देवमूर्ति न तोड़ी गयी हो ॥ १०९५ ॥ राजा हर्षके उस अत्याचारसे नगरमें रणस्वामी तथा अन्य स्थानोंमें श्रीमार्तण्ड ये केवल दो मन्दिर बाकी बचे थे ॥ १०९६ ॥ किसी समय दानके प्रसंगमें उस राजासे परिहासपुरमें उत्पन्न प्रसिद्ध गायक कनक तथा एक दूसरे ग्रामके निवासी कुशलश्री नामके भिक्षुकने बहुत अनुनय-विनय करके बुद्धभगवान्की दो विशाल प्रतिमाओंको उस

अधिगतवतां लोके विश्वाद्भुतामपि संपदं न खलु विरतिर्दुष्कर्मभ्यो धनार्जनकाङ्क्षिणाम् ।
किमपि कमलावाप्त्यै पद्माकरोद्धृतिपातकं भजति कमलालीलावासो भवन्नपि हि द्विपः ॥१०९९॥
यन्नामहेन पित्र्येण तथा गर्व्याचिर्कीर्षया । लोहराद्राहृतार्थस्य कोशेनोत्कर्षभृपते ॥११००॥
युक्तोऽपि पूर्वराजार्थं देवकोशस्यो जहार यः ।
एच्छद्धनार्जनं हा धिक्सोऽपि वास्तव्यपीडया ॥ युग्मम् ॥११०१॥
तदाज्ञामात्रमादाय सचिवैरथ पापिभिः । ते ते नवनवायासनामाङ्का नायकाः कृताः॥११०२॥
कालानुवृत्तिपरतां धिग्धिग्राजोपजीविनाम् । यत्र मन्त्री वयःस्थः सन्सदाचारोऽपि गौरकः ॥११०३॥
सर्वदेवगृहग्रामसर्वस्वापहृतिव्रतम् । स्वीचकाराज्ञया भर्तुरर्थनायकतामपि ॥युग्मम् ॥११०४॥
पार्षदः समरस्वामिदेवागारे सहेलकः । आप्तो विजयमल्लस्य यो राज्ञो द्वेष्यतां ययौ ११०५॥
द्विगुणोत्पत्तिदानेन सोऽर्थनायकतां गतः । लब्धावकाशो राजाग्रे क्रमेणाभून्महत्तमः ॥११०६॥
किमन्यद्भणता तेन सर्वार्थान्सर्वनायकैः । व्यधीयत धनावाप्त्यै पुरीषस्यापि नायकः ॥११०७॥
श्रीगर्भपदपर्यायच्छन्नजाड्यप्रभावतः । तथार्जितस्य कोशस्य सोऽनुरूपव्ययोऽभवत् ॥११०८॥
मृगीदृशां दुर्लभतां हयानां श्वासान्विटानां कुवचःसहत्वम् ।
वैतालिकानां च विकत्थनत्वं क्रेतुं क्षितीशाः क्षपयन्ति लक्ष्मीम् ॥११०९॥
कोपप्रसादैर्दयिताजनस्य हयादिवृत्तान्तगवेषणेन ।
भृत्यानुवृत्त्या मृगयाकथाभी राज्ञां शिशूनामिव याति कालः ॥१११०॥

विपत्तिसे बचा लिया था ॥ १०९७ ॥ १०९८ ॥ सारे संसारको निगाहमें चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाली, विलक्षण एवं अगणित धनराशि प्राप्त करके भी उसकी अपेक्षा और अधिक धन पानेके लोभी लोग किसी भी प्रकारका कुकर्म करनेमें संकोच नहीं करते । क्योंकि हाथी लक्ष्मीजीके विलासभवनस्वरूप कमलोंको उखाड़कर फेंक देनेका पाप कर ही गुजरते हैं ॥ १०९९ ॥ यद्यपि राजा हर्षको उसके पितामह महाराज अनन्तदेव तथा पिता कलशके द्वारा संचित एवं लोहरनरेश उत्कर्ष जो अपरिमित धन अपने साथ लाया था, ऐसी-ऐसी अनेक धनराशियाँ उसे मिल चुकी थीं । इनके सिवाय उसने अपनी सम्पदा बढ़ानेके लिए प्राचीन राजाओं द्वारा अर्जित देवमन्दिरोंकी धनराशि भी छीन ली थी । इतनेपर भी उस लोभी राजाने प्रजाको सताकर बलात् धन लेनेका निश्चय किया । ऐसे राजाओंको धिक्कार है । ॥ ११०० ॥ ११०१ ॥ उस राजासे केवल नाममात्रकी आज्ञा लेकर उसके पापी मंत्री प्रजाको सतानेके लिए नये-नये अधिकारी नियुक्त करते थे और उन्हींके अनुरूप उनके नाम भी रख देते थे ॥ ११०२ ॥ राजाके सेवक समयकी गति-विधि देखकर उसीके अनुसार काम करते हैं । उनकी इस वृत्तिको धिक्कार है । क्योंकि वयोवृद्ध तथा सदाचारी होते हुए भी गौरक राजाकी आज्ञासे अर्थमंत्रीका पद स्वीकार करनेके बाद समस्त देवमन्दिरोंकी सेवा-पूजाके लिए अर्पित ग्रामोंका अपहरण करने लगा ॥ ११०३ ॥ ११०४ ॥ समरस्वामीके मन्दिरके पार्षद सहेलकको विजयमल्लका विश्वस्त सलाहकार समझकर राजा उसपर कुपित था ॥११०५॥ अतएव सहेलकने दूना करव मूल करके राजाको दिया । उसके इस कार्यसे सन्तुष्ट होकर राजाने उसे अर्थनायक बना दिया । बादमें धीरे-धीरे उसकी राजाके पास पहुँच हो गयी, जिससे वह एक बहुत बड़ा आदमी बन गया ॥ ११०६ ॥ और अधिक कहाँ तक कहें, उस राजाने अन्यान्य नायकोंको नियुक्त करनेके बाद पुरीषनायक (मल-मूत्रकी सम्हाल करनेवाला अधिकारी) को भी नियुक्त किया था ॥ ११०७ ॥ श्रीगर्भपदके प्रच्छन्न जाड्यके कारण उस राजाके द्वारा अर्जित सम्पत्तिका उपयोग भी उसी ढंगसे होने लगा । तात्पर्य यह कि जिस तरह अन्यान्यसे धन आता था, उसी तरह दुष्कर्मोंके मार्गपर वह खर्च भी होता था ॥ ११०८ ॥ मृगनयनी सुन्दरियोंकी दुर्लभता, अश्वोंके श्वास, धूर्तोंकी गाली-गलौजके श्रवण तथा वैतालिकों (प्रशंसक भाँटों) की झूठी प्रशंसा खरीदनेमें ही राजे अपने धनको खर्च करते हैं ॥ ११०९ ॥ अपनी प्रियतमाओंके कोप एवं प्रसन्नताकी खोज करने, हाथी-घोड़े आदिका वृत्तान्त सुनने, सेवकोंकी मनो-

विलासहासासनयानदानपानाशनाद्या असतीः सतीर्वा ।
छायेव चेष्टाः क्षितिपालवर्गः परानुकारेण करोति सर्वाः ॥१११११॥
अमानुषत्वं पुरुषाधिराजा विटस्तवैः स्वस्य विचिन्त्य सत्यम् ।
तृतीयमत्यभ्यधिकं भुजौ वा ममेति मत्वा न विदन्ति मृत्युम् ॥११११२॥
निशासु येषां प्रभवन्ति दारा दिनेष्वमात्या नियताधिकाराः ।
अहो भ्रमः स्वस्य यदत्र तेऽपि विदन्ति भूपा प्रभविष्णुभावम् ॥११११३॥
स्वादूचितं स्वादुतयैव भुंक्ते थूत्कृत्य मुञ्चत्यपि थूत्कृतानि ।
वित्रासितस्त्रासमुपैत्यकस्माद्भूभृच्च वालश्च समानभावः ॥११११४॥

जाड्यमित्यादि यत्किंचित्क्षितिपानां कटाक्षितम् । तत्सर्वं हर्षदेवस्य जाड्येन लघुतां ययौ ॥१११५॥
तुष्टः पटहवाद्येन हृद्यातोद्यविदे ददौ । भीमनायकनाम्ने स करिणं करिणीसखम् ॥१११६॥
स्वशिष्यस्तेन तस्यासीद्गायनः कनकोऽथ सः । चम्पकावरजः खेदाद्गीताभ्यासकृतोद्यमः ॥१११७॥
प्रसादीकृतमस्मै च खेदच्छेदनमिच्छता । तेन काञ्चनदीनारलक्षमक्षतचेतसा ॥१११८॥

कर्णाटभर्तुः पर्माण्डेः सुन्दरीं चन्दलाभिधाम् ।
आलेख्यलिखितां वीक्ष्य सोऽभूत्पुष्पायुधक्षतः ॥१११९॥

उत्तेजयन्ति संघर्षे हास्ये जडमतीन्विटाः । सारमेयानिवाजस्रं प्रोत्साह्य प्राकृताशयाः ॥११२०॥
स विटोद्रेचितो वीतत्रपश्चक्रे सभान्तरे । प्रतिज्ञां चन्दलावाप्त्यै पर्माण्डेश्च विलोडने ॥११२१॥
कृतापक्विमकर्पूरपरित्यागं प्रतिज्ञया । तं च स्तुतिमिषादेवं जहसुः कविचारणाः ॥११२२॥

धृत्तिका अनुसरण करने तथा वालकोंके समान शिकारसम्बन्धी वार्ताओंको कहने सुननेमें राजाओंका समय वीतता है ॥ ११११० ॥ ये राजे विलास, हास, आसन, गमन, दान, पान एवं भोजन आदि सभी कामोंमें छायाकी भाँति औरोंका ही अनुकरण करते हैं ॥ ११११ ॥ धूर्तों द्वारा की गयी झूठी प्रशंसासे फूलकर ये राजे अपनेको अतिमानुष समझकर शिव अथवा विष्णुका अवतार या उससे भी अधिक कुछ मान लेते हैं और मृत्युको भी कुछ नहीं समझते ॥ ११११२ ॥ रात्रिके समय ये राजे स्त्रियोंके दास वने रहते हैं और दिनमें इनपर मंत्रियोंका अधिकार रहता है। फिर यह कितनी विडम्बना है कि सब कुछ होते हुए भी ये अपनेको सबका प्रभु समझते हैं ॥ ११११३ ॥ राजाओं और वालकोंका स्वभाव एक जैसा होता है। जैसे बालक मधुरभाषी व्यक्तिको अच्छा समझते हैं, यदि कोई थू थू करता है तो वे भी थू थू करने लगते हैं और यदि कोई धमकाता है तो उससे विगड़ जाते हैं। ठीक यही हाल राजाओंका भी रहता है ॥ ११११४ ॥ पुरातन कालमें राजाओंकी मूर्खतापर जो कटाक्ष किये जाते थे, वे सब राजा हर्षकी मूर्खताके समक्ष तुच्छ दीखने लगे ॥ ११११५ ॥ राजा हर्षने उत्कृष्ट वाजा वजानेवाले भीमनायकके पटहवाद्यसे प्रसन्न होकर उसे एक हाथी और हथिनी दे दी ॥ ११११६ ॥ चम्पकका छोटा भाई कनक संगीतविद्यामें राजा हर्षदेवका शिष्य वन गया था। वड़े परिश्रमसे उसने संगीतशास्त्र की साधना की थी। उसके श्रमको सफल करते हुए राजा हर्षदेवने उसे पारितोषिकस्वरूप एक लाख स्वर्णदीनार दिये ॥ ११११७ ॥ ११११८ ॥ एक वार राजा हर्ष कर्णाटक देशके शासक पर्माडिकी पत्नी चन्दलाका चित्र देखकर कामातुर हो उठा ॥ ११११९ ॥ इन विचारविहीन और मन्दबुद्धि राजाओंको हँसी-हँसीमें धूर्त लोग कुत्तोंकी भाँति प्रोत्साहित तथा संघर्षके लिए उत्तेजित करते रहते हैं ॥ १११२० ॥ सो उन धूर्तोंके प्रोत्साहनसे उत्तेजित होकर उस निर्लज्ज हर्षने भरी सभामें चन्दलाकी प्राप्ति तथा राजा पर्माडिको पराजित करनेकी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ११२१ ॥ इसके सिवाय जबतक चन्दला प्राप्त न हो जाय, तबतक कच्चे कपूरका सेवन न करनेकी भी प्रतिज्ञा की। उस समय कवियों तथा चारणोंने राजाकी स्तुतिके वहाने किसी अन्य व्यक्तिको लक्ष्य करके उसकी इस

भाषावेषविशेषतः परिगतस्त्वं दाक्षिणात्योऽध्वगो गन्धादप्यवधारितं यदुत ते कर्पूरकोलं करे ।
पक्वं चेदिदमङ्ग हर्षनृपतेस्तत्कल्पयोपायनं नो चेत्तिष्ठतु नारिकेलकुहरे संप्रत्यमुष्मिन्यतः ॥११२३॥
आकर्णाटवसुंधराधववधादाचन्दलालिङ्गनादाकल्याणपुरप्रवेशनविधेरापिम्मलादर्शनात् ।
आराजाश्रयकाननान्तवसुधापारर्द्धिकौतूहलाद्देवेन प्रतिपिद्धमिद्धमहसा पोतासंसंचर्वणम् ॥११२४॥
विटः प्रसाद्य नृपतिं मदनः कम्पनापतिः । महत्तरत्वं जग्राह तस्याश्चित्रार्पिताकृतेः ॥११२५॥
वस्त्रालंकारनिर्वाहकृतेऽमुष्याश्च वेतनम् । नित्यमादत्त भूपालाद्दायमीर्ष्याशमाय च ॥११२६॥
विटत्वे निस्त्रपत्वे च मदनस्य कथाक्रमः । मौग्ध्ये पारिप्लवत्वे च नृपस्य निकषोऽभवत् ॥११२७॥
मातेयं वप्पिका नाकात्तवानीतेति वादिभिः । संदर्श्य जरतिं नारीं मुषितः सोऽपरैर्विटैः ॥११२८॥
दासीश्च देवता एता इत्युक्त्वान्यैः प्रवेशिताः । उन्नतिं च श्रियं चोज्झत्प्रणमञ्जहसे जनैः ॥११२९॥
दास्यो मदनसंलापमन्त्राद्युल्लेखकारिभिः । अध्यापिता विटैस्तस्य मतिमोहं प्रचक्रिरे ॥११३०॥
ताभ्यः काभिरपि क्ष्माभृत्सुरतं समयोचितम् ।
वाञ्छन्तीभिः कृतः स्वाङ्गस्पर्शाद्भाग्योदयोज्झितः ॥११३१॥
आयुष्कामाय भूयांसं कालं जीवितकांक्षिणे । आयुर्वर्षशतान्यस्मै ता मूढमतये ददुः ॥११३२॥
डोम्बेन पिण्डसिद्धार्थी केनाप्येतद्रसायनम् । पिण्डसिद्धिकृदित्युक्त्वा पेयं किमपि पायितः ॥११३३॥
किं तस्य कथितैरन्यैर्मौग्ध्यैर्यो याचितो विटैः । विद्यमानादिव धनादायुपोऽपि व्ययं व्यधात् ॥११३४॥

प्रकार हँसी उड़ाना आरम्भ कर दिया ॥ ११२२ ॥ उन्होंने कहा—'पथिक ! तुम्हारी वेष-भूषा देखकर ऐसा लगता है कि तुम कोई दाक्षिणात्य यात्री हो । सुगन्धिसे ऐसा भान होता है कि तुम्हारे हाथमें कपूरका गोला है । यदि वह कपूर पका हुआ हो तो तुम उसे राजा हर्षदेवको उपहारके रूपमें दे दो, किन्तु यदि वह कच्चा हो तो अपने ही पास रक्खे रहो । क्योंकि ऐसा कपूर तो नारियलके भीतरसे भी प्राप्त किया जा सकता है ॥११२३॥ और फिर कर्णाटक देशके नरेश परमार्डिका वध करके चन्दलाकी प्राप्ति एवं उसके आलिंगनका आनन्द लूटना, कल्याण-पुरमें जाकर पिम्मलादेवीके दर्शन करना तथा उस राजाके उपवनकी जमीनमें गड़ी हुई अपार धनराशिको हस्तगत करना, इतने कार्योंके पूर्ण न होनेतक हमारे परम प्रतापी राजा हर्षने पोतास (कच्चे कपूर) का चर्वण न करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ११२४ ॥ कम्पनाधिपति (सेनापति) पदपर नियुक्त मदन नामके एक धूर्त विटने कहींसे चन्दला-का एक चित्र प्राप्त कर लिया था । तभीसे वह उस चित्रका प्रतीहार बन गया ॥ ११२५ ॥ उस चित्रलिखित चन्दलाके लिए वह राजासे वस्त्र और आभूषणके वास्ते नित्य धन लेता था । कभी-कभी चन्दलाकी ईर्ष्या एवं कोपको शान्त करनेके बहाने वह कुछ पारितोपिक भी प्राप्त कर लिया करता था ॥ ११२६ ॥ मदनके कथा-प्रसंगसे धूर्त विटोंकी निर्लज्जता एवं चंचलताका पता लगता है और इसी बातसे उस राजाकी मूर्खता तथा उसके झक्की स्वभावका भी आभास मिल जाता है ॥ ११२७ ॥ कुछ धूर्त कहींसे एक वृद्धाको ले आये और उसे दिखाकर राजासे कहा कि 'यह चन्दलाकी माता है । इसे हम आपके लिए स्वर्गसे ले आये हैं ।' ऐसा करके उन्होंने राजा हर्षको खूब ठगा ॥ ११२८ ॥ इसी प्रकार कुछ धूर्तोंने कतिपय देवदासियोंको यह कहकर राजाके पास भेजा कि 'ये देवाङ्गनायें चन्दलाकी परिचारिकायें हैं' । राजा हर्षने भी उन्हें सचमुच देवाङ्गना समझकर प्रचुर धन भेटस्वरूप दिया और अपना बड़प्पन त्यागकर उनके चरणोंको प्रणाम किया । इस कार्यसे वह जन-साधारणमें उपहासका पात्र बन गया ॥ ११२९ ॥ वे देवदासियाँ उन धूर्तोंके शिक्षानुसार राजाके कामजनित सन्तापको दूर करनेके लिए कामपीडाका निवारण करनेवाले मंत्र पढ़कर उस मूर्ख बनाती थीं ॥ ११३० ॥ अपनेको देवागना बतानेवाली उन देवदासियोंके साथ इच्छानुसार राजाने सम्भोग भी किया ॥ ११३१ ॥ वह मूर्ख राजा चिरायु होकर बहुत समय तक जीना चाहता था । अतएव उन देवदासियोंने उसे सौ वर्षतक जीवित रहनेका आशीर्वाद भी दे दिया था ॥ ११३२ ॥ पिण्डसिद्धिके इच्छुक उस राजाको किसी डोमने कोई रसायन 'पिण्डसिद्धिरसायन' बताकर पिला दिया था ॥ ११३३ ॥ उस राजाकी मूर्खताका वर्णन और कहाँ तक किया

बलरूपेच्छुरपरानुपायान्यानसेवत । कथयेत्कः सदाचारस्तानतोऽपि त्रपावहान् ॥११३५॥
स एवमन्धतामिस्रे निक्षिप्तः शाश्वतीः समाः । मुग्धबुद्धिः स्वजाड्येन दुर्जातैश्च कुमन्त्रिभिः ॥११३६॥
मेघवाहनमुख्यानां कृत्ये लोकोत्तरे यथा । सन्त्यद्याल्पधियः केचित्संदेहान्दोलिताशयाः ॥११३७॥
तथास्मिन्नपि दुष्कृत्ये वर्ण्यमानेऽद्भुतावहे । भविष्यतीव कालेन नूनमप्रत्ययो जनः ॥११३८॥
राज्ये बहुच्छले तादृग्दुर्नीत्योपहतोऽप्यभूत् । आयुःशेषेण न वशे स रन्ध्रान्वेषिणां द्विषाम् ॥११३९॥
नर्तकीः शिक्षयन् रात्रावुत्थायाभिनयं स्वयम् । तिष्ठन्दीपोज्ज्वले धाम्नि दूरात्केनापि शत्रुणा ॥११४०॥
क्षिप्तेषुरपि नाभूद्यन्निहतो व्रणितोऽथ वा । फलं तस्यायुःशेषस्य प्रजानां कुकृतस्य वा ॥११४१॥
कश्चिद्देवाथ शुद्धान्ते पातदूतो महीपतेः । सर्वाशुद्धिनिधेः प्राभून्नारीचारित्रविप्लवः ॥११४२॥
ते युवानो मदोन्मत्तास्ताः स्त्रियो यौवनोन्मदाः । नाशाय हर्षदेवस्य तस्मिन्नेवाभवन्क्षणे ॥११४३॥
निगृहीतास्तेन रोषात्सजाराः काश्चन स्त्रियः । काश्चित्त्वाकृष्य शुद्धान्ताज्जारैर्नीता दिगन्तरम् ॥११४४॥
स्वेन दौःशील्यदोषेण सर्व एव विशङ्किताः । भृत्यास्तस्याशुभान्यैच्छन्नयतन्त च शान्तये ॥११४५॥
तस्यापि शीलवैकल्यं तावत्सर्वत्र पप्रथे । यावत्कलशभूपालात्संजातस्योपपद्यते ॥११४६॥
शैशवे वर्धितो याभिरङ्कमारुह्य मातृभिः । सोऽङ्कमारोप्य ता एव चुम्बन्संबुभुजेऽनिशम् ॥११४७॥
संभोगं भगिनीवर्गे कुर्वता दुर्वचोरुषा । निगृहीता च भुक्ता च नागा पुत्री पितृस्वसुः ॥११४८॥
स तुरुष्कशताधीशाननिशं पोषयन्धनैः । निधनावधि दुर्बुद्धिर्बुभुजे ग्राम्यसूकरान् ॥११४९॥

जाय? बस, इतनेसे ही समझ लीजिए कि धूर्तोंकी माँगके अनुसार धनदानके साथ-साथ उसने अपनी आयु भी उन्हें दे डाली थी ॥ ११३४ ॥ सुन्दर रूप और प्रचुर पराक्रम प्राप्त करनेके लिए वह जिन उपायोंको काममें लाता था, उससे लज्जाजनक उपायोंका कौन सदाचारी कवि वर्णन कर सकेगा? ॥११३५॥ इस प्रकार अपनी मूर्खता तथा दुष्ट मंत्रियों द्वारा वह राजा सदाके लिए अन्धतामिस्र नरकमे ढकेल दिया गया ॥११३६॥ जैसे मेघवाहन आदि प्राचीन राजाओंके विलक्षण कार्योंका हाल सुनकर अल्प बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमे सन्देह होने लगता है॥११३७॥ वैसे ही कुछ समय बाद राजा हर्षके भी आश्चर्यजनक कुकर्मोंका वृत्तान्त सुनकर लोग विश्वास नहीं करेंगे॥११३८॥ इस तरह विविध भाँतिके छल-कपटसे व्याप्त राज्यमे दुराचारके कारण पथभ्रष्ट होनेपर भी आयु शेष रहनेसे वह राजा नित्य छिद्रान्वेषणमे तत्पर रहनेवाले शत्रुओंके वशीभूत नहीं हुआ ॥ ११३९ ॥ रातके समय वह नर्तकियोंको नृत्यकी शिक्षा देता था। उस समय दीपकोंकी तेज रोशनीसे जगमगाते राजभवनमे उन नर्तकियोंके साथ स्वयं भी अभिनय करते हुए राजा हर्षपर दूरसे किसीने बाण चलाया तथापि न वह उस शत्रुके बाणका लक्ष्य बनकर मरा और न घायल ही हुआ। कुछ कहा नहीं जा सकता कि यह उसके आयुःशेषका परिणाम था या कि उसकी प्रजाके पापोंका फल था॥ ११४० ॥ ॥ ११४१ ॥ कुछ ही समय बाद सब तरहकी अपवित्रताओंके निवासस्थानस्वरूप उस राजाके रनिवासमे उसके भीषण अधःपातसूचक अन्तःपुरकी रानियोंमे व्यभिचार व्याप्त हो गया ॥११४२॥ अन्तःपुरमे पहुँचे हुए नौजवान और यौवनोन्मत्त नवयुवतियाँ राजा हर्षका संहार करनेके लिए षड्यंत्र रचने लगीं ॥ ११४३ ॥ किन्तु भेद खुल गया, जिससे राजाने कुछ तरुणियों और उनके यारोंको कठोर दण्ड दिया और कुछ युवक अपनी चहेतियोंको अन्तःपुरसे भगाकर परदेश चले गये ॥ ११४४ ॥ अब दुश्चरित्रतावश सभी सेवक राजासे सशंक रहते हुए अपनी चिन्ता दूर करनेके निमित्त उसके विनाशका उपाय करने लगे ॥ ११४५ ॥ राजा हर्षकी दुश्चरित्रता संसारमे उस सीमा तक विख्यात हो गयी थी कि जहाँ तक कलशसरीखे दुराचारी राजाके पुत्रकी कुख्याति हो सकती थी ॥११४६॥ बाल्यावस्थामे जिन माताओंने उसे अपनी गोदमे लेकर खिलाया और पालन-पोषण किया था, उन्हींको उसने अपनी गोदमे बैठाकर चुम्बन करते हुए उनके साथ भोग किया ॥ ११४७ ॥ एक बार उसकी पिता राजा कलशकी बहिनकी कन्या नागाने उसे कुछ कटु वचन कह दिये। इससे कुपित होकर हर्षने उसको पकड़वा मँगाया और पटककर उसके साथ बलात्कार किया। इस प्रकार उसने अपनी बहिनके साथ भी दुराचार कर डाला ॥ ११४८ ॥ जिनके साथ सौ-सौ तुर्की सिपाही रहा

अथ सेवाभिसारेण कदापि कुपितो नृपः । स मन्दबुद्धिरास्कन्दमदाद्राजपुरीं प्रति ॥११५०॥
विलोक्य सैन्यसामग्रीमनन्यसदृशीं पथि । त्रैलोक्याक्रान्तिसामर्थ्यं पार्थिवैस्तस्य शङ्कितम् ॥११५१॥
स तु पृथ्वीगिरिं दुर्गं दृष्ट्वा तद्ग्रहणोद्यतः । अप्रविष्टो राजपुरीं तन्मूले समुपाविशत् ॥११५२॥
मासमभ्यधिकं तेन तस्थुपा परिपीडिताः । प्रक्षीणान्नादिसंभारा बभूवुर्दुर्गरक्षिणः ॥११५३॥
त्रातुं संग्रामपालस्तानूरीचक्रे धरापतिः । कियन्तं न करं भीतः कियतीर्न च संविधाः ॥११५४॥
उपोढदार्ढ्ये नृपतौ स तदप्रतिगृह्णति । लुब्धमुत्कोचदानेन स्वीचक्रे दण्डनायकम् ॥११५५॥
अमन्यमाने नृपतौ व्यावृत्तिं प्रेरिता रहः । प्रवासवेतनं भूरि मार्गितुं तेन शस्त्रिणः ॥११५६॥
तैः प्राये प्राकृतप्रायैः कृते सोल्लुण्ठभापितैः । राज्ञो दूरस्थकोशस्य कटकः क्षोभमाययौ ॥११५७॥
स तत्समर्थनां यावच्चक्रे तावद्विभीपिकाम् । तुरुष्कास्कन्दजामन्यां प्रददौ दण्डनायकः ॥११५८॥
अथाल्पधैर्यो नृपतिरुत्थाप्य कटकं ययौ । कृत्स्नां च कोशसामग्रीं तत्याजाध्वसु साध्वसात् ॥११५९॥
अपरीक्ष्याहृतो भृत्यः स्वामिनामतिसंकटे । करोति व्यसनापातमजात्योऽसिरिवाहवे ॥११६०॥
तेन स्वयमयोग्येन योग्यानन्याननिच्छता । कलङ्किता नरेन्द्रश्रीः क्षुद्राश्वेनेव मन्दुरा ॥११६१॥
ततः प्रभृति निर्वाणप्रतापस्य महीपतेः । प्रतापचक्रवर्त्याख्या सर्वतो म्लानिमाययौ ॥११६२॥
म्लानाननो न यत्सिद्धं स्वेन भृत्यैस्तथाखिलैः । तत्कर्म कृतवन्तं स कन्दर्पं बह्वमन्यत ॥११६३॥

करते थे, ऐसे तुरुष्कशताधीश सेवकोंको उसने अपनी सेवामें नियुक्त कर रक्खा था। वह उन्हें भरपूर वेतन देता था। वह दुष्ट राजा जीवनपर्यन्त ग्राम्यसूकरोंका मास खाता रहा॥ ११४९॥ एक बार राजपुरीके राजासे सेवामें कहीं कोई त्रुटि हो गयी। जिससे कुपित होकर राजा हर्पने उसपर चढाई कर दी॥ ११५०॥ रास्तेमें उसकी विलक्षण सैन्यसामग्री देखकर अन्यान्य राजाओंके मनमें यह शङ्का समा गयी कि 'यह राजा चाहे तो समस्त त्रिलोकीपर आक्रमण कर सकता है'॥ ११५१॥ चलते-चलते मार्गमें उसे पृथ्वीगिरि नामका एक किला दीख गया। बस, राजपुरी न जाकर उसे हस्तगत कर लेनेके विचारसे वह उस किलेके चारों ओर घेरा डालकर वहाँ ही टिक गया॥ ११५२॥ इस प्रकार वह महीनाभर उस किलेको घेरे रहा। इस बीच उसके भीतर रहनेवाले रक्षकोंका सब रसद चुक गया, इससे वे घबरा गये॥ ११५३॥ उनकी रक्षाके लिए राजपुरीके राजा संग्रामपालने बड़ा प्रबल प्रयत्न किया और वह डरकर राजा हर्पको कर तथा बहुतेरे उपहार भी देनेको उद्यत हो गया॥११५४॥ किन्तु हठ करके हर्पने उसे नहीं स्वीकार किया। बल्कि बहुत कड़ी-कड़ी शर्तें उसके समक्ष रक्खीं। अन्तमें विवश होकर राजा संग्रामपालने उसके दण्डनायकको घूस देकर अपने अनुकूल कर लिया॥ ११५५॥ तदनुसार दण्डनायकने राजासे किलेका घेरा हटा लेनेका अनुरोध किया, किन्तु उसने उसकी भी बात नहीं मानी। तब दण्डनायकने धीरेसे सैनिकोंको प्रवासका विशेष वेतन और भत्ता माँगनेके लिए उभाड़ दिया॥ ११५६॥ वे सैनिक प्रायः निम्नकोटिके थे। अतएव उन्होंने राजाको बड़ी खरी-खोटी सुनायी और वेतनके लिए अड़ गये। राजाका खजाना वहाँसे बहुत दूर था। इस कारण सैनिकोंकी माँग पूरी नहीं हो सकी। जिससे वे सब क्षुब्ध हो उठे॥ ११५७॥ राजा उनका क्षोभ शान्त करनेका प्रयत्न करने लगा। उसी समय दण्डनायकने यह अफवाह फैलाकर राजाको भयभीत कर दिया कि 'तुर्क लोग शीघ्र उपद्रव मचानेवाले हैं'॥ ११५८॥ राजा हर्पमें धैर्यकी बहुत कमी थी। अतएव डरके मारे वह अपनी सेना वहाँसे लेकर चल पड़ा और सारी कोश-सामग्री रास्तेमें ही छोड़ दी॥ ११५९॥ जैसे निम्नकोटिकी तलवार युद्धके समय धोखा दे जाती है, उसी तरह बिना सोचे-समझे आगे बढ़ाया हुआ सेवक अपने स्वामीको संकटकालमें बहुत दुःख देता है॥ ११६०॥ वह राजा स्वयं अयोग्य था और अन्य योग्य व्यक्तियोंको भी अपने पास नहीं रखता था। अतएव जैसे एक अधम श्रेणीका अश्व अश्वशालाके सभी अश्वोंको बिगाड़ देता है, वैसे ही उस राजाने राज्यके वैभवको लाञ्छित कर दिया था॥ ११६१॥ उसी दिनसे उसका प्रताप ठंढा पड़ गया और 'प्रतापचक्रवर्ती' यह विख्यात नाम मलिन हो गया॥ ११६२॥ उस समय लज्जासे म्लानमुख राजा हर्प जो काम स्वयं तथा सब सेवकोंसे पूरा नहीं कर सका था, उसे अकेले

आनिनीषोऽथ तं तस्य जडस्याकृत भूपतेः। दण्डनायक एवेच्छाच्छेदं पैशुनकर्मणा ॥११६४॥
ज्ञातद्रोहोऽथ नृपतिरवध्नाद्दण्डनायकम्। प्रातिपत्त्यानुरोधेन न क्रुधा न्यग्रहीत्पुनः ॥११६५॥
दुर्गे संदिग्धजीवोऽपि निवसन्संचिकाय सः। क्षुब्धस्ताम्बूलवस्त्रादि प्रहितं भृत्यबान्धवैः ॥११६६॥
आत्मनः सर्वनाशाय संजातं दैवमोहितः। वधार्हं प्रत्युत पुनर्निन्ये तं स्वपदं नृपः ॥११६७॥
तं विटाश्चाटुभिर्भूयो गजानमुदतेजयन्। घोषयात्राजितं स्तोत्रैः कर्णाद्या इव कौरवम् ॥११६८॥
वादी वादपराजितः प्रतिभटं गालीभिरत्याक्षिपन्योपिन्नष्टसतीव्रता कुकलहैरुद्वेजयन्ती पतिम्।
कायस्थश्च हृताखिलार्थमहिमा कृच्छ्रे नृपं पातयन्स्वस्यासन्नपराभवस्य कुरुते भूयः समुत्तम्भनम् ॥११६९॥
भुक्तदेयधनो बिभ्यत्तं सहेलमहत्तमः। उर्वीपतिं दुर्व्यसने प्रेरयन्स्वार्थपण्डितः ॥११७०॥
रन्ध्रमन्विष्य दरदां लवन्यैः सह लोहरैः। दुर्गघाताभिधं दुर्गं ग्रहीतुं तमचूचुदत् ॥११७१॥
तद्धि लक्कनचन्द्राख्ये पुरा गोप्तरि डामरे। जनकद्वारपतिना हतेऽनन्तनृपाज्ञया ॥११७२॥
प्रायोपविष्टया द्वारे तत्पत्न्यापि समर्पितम्। कलशक्ष्माभुजा कृतोपेक्षं प्राप दरन्नृपः ॥११७३॥
तद्बलाद्दारदैः क्रान्तानन्तग्रामेऽत्र मण्डले। राजा च मन्त्रिणा चाथ बभूव स्वीकृतोद्यमः ॥११७४॥
निर्हृदे तत्र गोप्तॄणां वृत्तये संभृतं हिमम्। अवग्रहेण तत्तस्मिन्क्षणे निःशेषतां ययौ ॥११७५॥
चारैस्तद्रन्ध्रमालक्ष्य तद्ग्रहाय महत्तमः। अभीक्ष्णं प्रेरयन्क्ष्मापं स च तत्रोद्यमं व्यधात् ॥११७६॥

कर डालनेवाले वीर कन्दर्पसेनको अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ समझने लगा ॥ ११६३ ॥ तभी उसके मनमें कन्दर्पको बुलवानेका विचार उत्पन्न हुआ। किन्तु दुष्ट दण्डनायकने उस मूर्ख राजाके इस सद्विचारको अपनी धूर्ततासे दबा दिया ॥ ११६४ ॥ बादमें जब राजाको दण्डनायकके द्रोहभावका पता चला, तब उसने उसको कैद कराके जेलमें डाल दिया। किन्तु सबूतके अभावमें वह उसके अक्षन्य अपराधोंका समुचित दण्ड नहीं दे सका ॥११६५॥ यद्यपि वह दण्डनायक एक सुदृढ़ दुर्गमें कैद करके रक्खा गया था और उसका जीवन खतरेमें था, तथापि वह लोभी वहाँ भी अपने सेवकों तथा बान्धवोंके द्वारा भेजे हुए ताम्बूल तथा वस्त्र आदिका संग्रह करता रहा ॥११६६॥ फिर भी दुर्भाग्यके मारे हुए उस राजाने अपना सर्वनाश करनेके लिए प्राणदण्ड देनेके बजाय फिरसे उसे उसके पुराने पदपर नियुक्त कर दिया ॥ ११६७ ॥ जैसे घोषयात्राके समय परास्त होकर लौटे हुए दुर्योधनको कर्ण आदि धूर्तोंने झूठी प्रशंसा करके उत्साहित किया था, उसी तरह राजा हर्षको भी धूर्तगण खुशामद कर-करके फिर उत्तेजित करने लगे ॥ ११६८ ॥ मुकदमेमें हारा हुआ वादी प्रतिवादीको गालियें देता है, दुराचारिणी स्त्री झूठा झगड़ा खड़ा करके पतिको उद्विग्न करती है और अपना समस्त वैभव तथा प्रतिष्ठा गँवा देनेवाला कायस्थ स्वामीको संकटमें डालकर अपने पराभवका परिमार्जन करने लगता है ॥ ११६९ ॥ राजा हर्षके महामंत्री सहेलने बहुतसा राज्यधन निजी कामोंमें खर्च कर दिया था। 'यदि राजा उस बातको जान पायगा तो बड़ी दुर्गति होगी' इस भयसे अपनेको बचानेके लिए स्वार्थ साधनेमें निपुण मंत्रीने राजाको विविध दुर्व्यसनोंकी ओर ढकेलना आरम्भ कर दिया ॥ ११७० ॥ तदनुसार उस धूर्तने दरद लोगोंका छिद्रान्वेषण करके लोहरप्रान्त-निवासी लवन्यों तथा दुर्गघात नामक दुर्गको हस्तगत करनेके लिए राजाको उकसाया ॥ ११७१ ॥ प्राचीन कालमें राजा अनन्तदेवकी आज्ञासे द्वारपति जनकने उसके संरक्षक लक्कनचन्द्र नामके डामरको मारकर उस दुर्गपर अधिकार किया था ॥ ११७२ ॥ तदनन्तर लक्कनचन्द्रकी पत्नीने राजद्वारपर अनशन करके बड़े आग्रहके साथ वह दुर्ग राजा कलशको सौंपा था। किन्तु कलशने उधर कुछ ध्यान नहीं दिया। अतएव दरदराजने उसपर कब्जा कर लिया ॥ ११७३ ॥ उस दुर्गके साथ ही दरदराजने आस-पासवाले कश्मीर राज्यके बहुतसे गाँवोंपर भी अधिकार कर लिया था। इसीसे उस सहेल मंत्रीके कहनेपर राजा हर्षने वह दुर्ग अपने कब्जेमें करनेके लिए उद्योग आरम्भ कर दिया ॥ ११७४ ॥ उस दुर्गके निवासी किसानोंके उपभोगके लिए वर्फ एकत्रित करके रक्खा करते थे। उस वर्ष अनावृष्टिके कारण सारी वर्फ चुक गयी थी ॥११७५॥ गुप्तचरोंके द्वारा मंत्री सहेल-को इस बातका पता लग गया था। अतएव उस दुर्गपर आक्रमण करके शीघ्र अपने अधीन कर लेनेके लिए वह

वातगण्डं तदुद्योगे प्रतिष्ठासुं नृपाज्ञया। चम्पको द्वारकार्यस्थमभिसंधातुमैहत ॥११७७॥
द्वारं निवार्य भूपेन प्रापितो मण्डलेशताम्। सर्वैः सहाभजद्द्वारं स हि द्वाराधिकारिभिः ॥११७८॥
विप्लुतेऽपि कटके तेन द्वारपतिस्ततः। तीर्त्वा मधुमतीं सिन्धुं सैन्यैर्दुर्गमवेष्टयत् ॥११७९॥
समस्तानपि सामन्तान्प्रहिण्वन्सर्वतः स्वयम्। एकप्रयाणान्तरितः कोटेऽपि न्यवसन्नृपः ॥११८०॥
त्यजद्भिर्गण्डशैलादि दुर्गसंश्रयदुर्जयैः। काश्मीरिकाः सह दरत्सैनिकैः समरं व्यधुः ॥११८१॥
निदध्रे प्राजिमठिकानाम्न्याघातपदे वसन्। सपुत्रो गुङ्गजो मल्लः संभ्रमानतिदुःसहान् ॥११८२॥
तत्पुत्रौ दैववित्प्रोक्तराज्यप्राप्ती तदिच्छया। मानं व्यवर्धयातां यौ वीरावुच्चलसुस्सलौ ॥११८३॥
अभ्युद्दामस्तयोर्ज्यायान्द्विपन्नपि नृपासनम्। आसीद्भ्राव्यर्थमाहात्म्याद्यात्रायां तत्र निर्गतः ॥११८४॥
अवग्रहेण भूपालप्रतापेन च शोषिताः। यथाकथंचित्तद्दुर्गं ररक्षुर्दारदा भटाः ॥११८५॥
अथाज्ञेव विधेर्हर्षप्रतापपरिपन्थिनी। पपात महती वृष्टिरेकीकृतजलस्थला ॥११८६॥
दुर्गशृङ्गं हिमैः कृत्स्नं दुर्भेद्यैः पर्यवार्यत। अनुकूलेन विधिना संनाहैर्निहितैरिव ॥११८७॥
उत्थाने पातयन्कांश्चित्पतने कांश्चिदुत्क्षिपन्। वेधाः कन्दलयत्येव कन्दुकक्रीडितभ्रमम् ॥११८८॥
ततः स्मृत्वा गृहान्वृष्टिदुःस्थास्ते दुष्टमन्त्रिणः। चक्रिरे पूर्ववद्राज्ञः स्कन्दावारे विप्लवणम् ॥११८९॥
ऊर्ध्वस्रोतोनुसारीव तिमिः शैलहताननः। ततोऽपि चक्रे व्यावृत्तिं राजा जयपराङ्मुखः ॥११९०॥
मुक्तापणः शीर्णकोशः त्यक्तश्रीकश्च्युतायुधः। कटकः सर्व एवाभूत्पलायनपरायणः ॥११९१॥

बारम्बार राजाको प्रेरित करने लगा॥ ११७६॥ उन दिनों चम्पक उस प्रदेशका द्वारपति था और आक्रमणार्थ वह यात्रा करने ही वाला था, किन्तु उसी बीच दरदराजकी आज्ञासे वातगंड आनन्दने उसपर अधिकार कर लिया ॥ ११७७॥ राजाने उसको द्वारपतिपदसे हटाकर मण्डलेश बनाया था। वह उस प्रान्तके सभी द्वारपतियोंसे वैर रखता था॥ ११७८॥ उसने सेनामें अव्यवस्था फैला रक्खी थी। तथापि द्वारपति चम्पकने मधुमती नदी पार करके अपनी सेनाके द्वारा उस दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया॥ ११७९॥ उस समय राजा हर्षने अपने सभी सामन्तोंको चारों तरफसे एकत्र करके वहाँ भेज दिया और वह स्वयं मुख्य शिविरसे एक शिविर पीछे रहा करता था ॥ ११८०॥ अब दुर्गमें रहनेवाले सैनिकोंने बड़े-बड़े शिलाखण्ड गिराते हुए कश्मीरी सैनिकोंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ ११८१॥ गुंगका पुत्र मल्लराज उच्चल तथा सुस्सल नामके दो पुत्रोंको साथ लेकर प्राजिमठिका मोर्चेपर डटकर दरदोंपर दुःसह तथा भीषण प्रहार कर रहा था॥ ११८२॥ ज्योतिषियोंने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि 'मल्लराजके पुत्र उच्चल तथा सुस्सल आगे चलकर राजा होंगे'। इसी आशापर वे वीर अपना प्रभाव तथा प्रतिष्ठा बढ़ा रहे थे॥ ११८३॥ उन दोनोंमें जो अतिशय उद्दण्ड और राजद्वेषी था, वह ज्येष्ठ भ्राता होनेकी प्रबलतावश इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो सका। क्योंकि वह उस समय कहीं यात्रापर गया हुआ था ॥ ११८४॥ अनावृष्टिसे अथवा उस प्रतापशाली राजाके प्रतापसे शोषित दरदराजके सैनिक किसी-किसी तरह उस दुर्गकी रक्षा कर रहे थे॥ ११८५॥ तदनन्तर राजा हर्षदेवके प्रतापका विरोध करनेवाले विधाताकी आज्ञाकी भाँति जल तथा स्थलको एकाकार कर देनेवाली भीषण जलवृष्टि हुई ॥ ११८६॥ उस बरसातसे सारा दुर्गशिखर अभेद्य बर्फकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंसे ढँक गया। जैसे अनुकूल दैवने बर्फको उस दुर्गका कवच बनाकर भेज दिया था॥ ११८७॥ ऊपर उठते हुए कुछ मनुष्योंको नीचे गिराकर और कुछ गिरते हुए लोगोंको ऊपर उठाकर विधाता जैसे अपनी सृष्टिके साथ गेंद खेल रहा था॥ ११८८॥ उस भयंकर जलवृष्टिसे त्रस्त दुष्ट मन्त्रियोंको अपने-अपने घरकी याद आने लगी और उन धूर्तोंने पहलेकी तरह इसी समय भी सेनामें अव्यवस्था उत्पन्न कर दी॥११८९॥ तब जैसे जलप्रवाहके विपरीत चलनेवाली मछली चट्टानकी टक्कर खाकर वापस लौट पड़ती है, उसी तरह राजा हर्ष भी विजयकी आशा त्यागकर लौट पड़ा ॥ ११९०॥ उस समय राजाकी सारी सेना सब सैनिक सरंजाम, बहुमूल्य वस्तुएँ,

धावतः पथिभिस्तैस्तैः साक्रन्दान्राजसैनिकान् । पृष्ठलग्नरिपून्दीर्वा मार्गेऽग्रसिष्यतापगा ॥११९२॥
क्षौमैः सहंसमालेव साब्जषण्डेव खेटकैः । सशैवलेव खड्गौघैः सशिलेव तुरंगमैः ॥११९३॥
सौवर्णैः सरथाङ्गेव राजतैर्भाजनैरपि । सफेनेव जनत्यक्तैरासीन्मधुमती सरित् ॥११९४॥
नीतानां च हतानां च दरदैः प्रसृतोदयैः । अभून्नदीहृतानां च संख्या काचिन्न देहिनाम् ११९५॥
अनाथवत्तथाभूतं सैन्यं त्रातुं कृतोद्यमः । एकस्तु सानुजो मानी नाचलन्माल्लिरुच्चलः ॥११९६॥
दरद्बलाम्बुधिर्धावन्स विश्वाक्रमणोद्यतः । ताभ्यां वेलागिरीन्द्राभ्यामिव संस्तम्भितोखिलः ॥११९७॥
तौ रक्षित्वा बलं प्राप्तौ प्रसिद्धिमतुलां गतौ । पतिंवरेव राजश्रीर्भेजे लक्ष्येण तेजसा ॥११९८॥

ततः प्रभृति लोकस्य सर्वस्यासीदसौ मतिः ।
राज्यार्हौ मानिनावेतौ क्लीबोऽयं न तु भूपतिः ॥११९९॥

तथा कृत्वापि यद्राज्ञे दर्शनं परिजह्रतुः । तौ प्रीतिदायविमुखौ बबन्धास्थां ततो जनः॥१२००॥
अथ शान्तरिपुत्रासो नगरं प्राविशन्नृपः । प्रतापस्तु दिशः प्रायान्मल्लराजतनूजयोः ॥१२०१॥
तौ रामलक्ष्मणावेताविति सर्वस्तदाब्रवीत् । रावणप्रतिमे राज्ञि भाव्यर्थानुगुणं वचः ॥१२०२॥
राजा तु गतलज्जः स नित्यकृत्योपमं जडः । कर्तुं प्रारभताखिन्नः पुनर्मण्डलपीडनम् ॥१२०३॥

अल्पापकारमपि पार्श्वगतं निहन्ति नीचो न दूरमसमागसमप्यरातिम् ।
श्वा निर्दशत्युपलमन्तिकमापतन्तं तत्त्यागिनं न तु विदूरगमुग्ररोषः ॥१२०४॥

शस्त्रास्त्र तथा धनराशि जहाँकी तहाँ छोड़कर भाग खड़ी हुई ॥ ११९१ ॥ राहमें कोलाहलपूर्ण चीत्कार करते, शत्रुसैनिकों द्वारा अनुसृत तथा विभिन्न मार्गोंसे भागते हुए राजा हर्षके सैनिकोंको वर्षासे बढ़ी हुई मधुमती नदीने उदरस्थ कर लिया और वे सब नदीमें डूबकर मर गये ॥ ११९२ ॥ उस समय वह मधुमती नदी राज्य-सैनिकों द्वारा परित्यक्त क्षौमवस्त्रोंसे हंसपंक्तियुक्त जैसी, ढालोंके समुदायसे कमलपुंजसहित सरीखी, खड्गोंसे सरोवर युक्तकी नाईं, घोड़ोंसे शिलाखण्डविमण्डित जैसी, स्वर्णपात्रोंसे चक्रवाकयुगलसे अलंकृतकी भाँति एवं चाँदीके पात्रोंसे फेनराशिसे सुशोभित सरीखी दिखायी देने लगी ॥ ११९३ ॥ ११९४ ॥ उस अवसरपर विजयी दरदराजके वीर सैनिकोंने राजा हर्षके कितने ही सैनिकोंको मार डाला, कितने जीवित योद्धाओंको कैद कर लिया और कितने नदीके बहावमें बह गये, उन सबकी गिनती करना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव है ॥ ११९५ ॥ इस प्रकार उन अनाथ हर्षके सैनिकोंको दुर्दशासे बचानेके लिए अकेले विजयमल्लके पुत्र उच्चलने अपने भाई सुस्सलकी सहायतासे साहसिक प्रयत्न किया ॥ ११९६ ॥ राजा हर्षके सैन्यरूपी महान् समुद्रको उन दोनों वीर भाइयोंने तटवर्ती पर्वतोंके समान अचल बनकर जहाँका तहाँ रोक दिया ॥ ११९७ ॥ इस तरह राजा हर्षके सैन्यकी रक्षा करके जब वे दोनों भाई राजधानी लौटे, तब उनकी असाधारण ख्याति हुई और पतिका वरण करनेके लिए उद्यत कन्याके समान राजलक्ष्मी उन दोनों भाइयोंके देदीप्यमान तेजसे और भी जगमगा उठी ॥ ११९८ ॥ उसी दिनसे प्रजाजनोंके हृदयमें यह विचार पक्का हो गया कि 'ये दोनों स्वाभि-मानी वीर ही वास्तवमें राज्य पाने योग्य हैं—यह नपुंसक राजा हर्ष नहीं' ॥ ११९९ ॥ इस तरह अनुपम वीरताका परिचय दे करके भी वे दोनों न राजासे मिलने गये और न उन्होंने इस महान् कार्यके उपलक्ष्यमें कोई पारितोषिक पानेकी आकांक्षा की। इससे प्रजाजनोंके हृदयमें उन दोनोंके प्रति श्रद्धाभाव और भी दृढ हो गया ॥ १२०० ॥ शत्रुओंके भयसे छुटकारा पाकर राजा हर्ष अपनी राजधानीमें प्रविष्ट हुआ और मल्लराजके दोनों पुत्रोंका प्रताप सर्वत्र व्याप्त हो गया ॥ १२०१ ॥ उन दोनों भाइयोंके भावी अभ्युदयके अनुसार सब लोग उन्हें राम-लक्ष्मण एवं राजा हर्षको भावी अवनतिके अनुरूप रावण कहने लगे ॥ १२०२ ॥ तत्पश्चात् वह मूर्ख और निर्लज्ज राजा हर्ष खेदहीन होकर फिर अपनी प्रजाको सताने लगा ॥ १२०३ ॥ तनिकसे अपराधपर नीच मनुष्य अपने सेवकको मार डालता है, किन्तु अत्यधिक अपराधी दूर देशके मनुष्यको कुछ नहीं कहता। जैसे क्रोधी कुत्ता अपने ऊपर गिरनेवाले पत्थरको काटने दौड़ता है, किन्तु दूरसे पत्थर फेंककर

ततः प्रविष्टः संप्रीतः सेवया दन्तकम्पनम् । मदनं सोऽशृणोत्स्वैरं शंसन्तं तत्पराभवम् ॥१२०५॥
तद्रोषेण जिघांसुस्तमागो जग्राह सोऽपरम् । तस्य देवीविसृष्टाज्ञालेखोल्लङ्घनलक्षणम् ॥१२०६॥
प्राप्तो मडवराज्यात्स क्ष्माभुजादत्तदर्शनः । भीतो लक्ष्मीधरस्यागान्मन्दिरं टक्कमन्त्रिणः ॥१२०७॥
राजा प्रसाद्यमानोऽपि तत्कृतेऽन्येन मन्त्रिणा । सस्मितं वीक्षितं सैन्यैस्तं सपुत्रमघातयत् ॥१२०८॥
कोपस्मितं नरपतेरकालकुसुमं तरोः । वेतालस्याट्टहसितं नैवमेव प्रशाम्यति ॥१२०९॥

ये संप्ररूढविपुलप्रणयाभिमाना निःशङ्कमीश्वरनिषेवणमाचरन्ति ।
मन्त्रानुषङ्गरभसाद्भुजगेन्द्रसख्यं प्रख्यापयन्त इव ते प्रलयं प्रयान्ति ॥१२१०॥

कर्णेजपकुले तावन्मदनप्रलयावधिः । शापः सूर्यमतीदेव्याः प्रसारितभुजोऽभवत् ॥१२११॥
विक्रमालोकनोत्कम्पी निचिक्षेप क्षमापतिः । बद्ध्वा कलशराजं तं लक्ष्मीधरनिवेशने ॥१२१२॥
विरुद्धं तस्य बद्धस्य शिक्षापेक्षामिषान्नृपः । तेजोवधाय सविधमुदयाख्यं व्यसर्जयत् ॥१२१३॥

लक्ष्म्यां जाज्वल्यमानं तं वीक्ष्य प्रज्वलितः क्रुधा ।
लब्धासिधेनुः कस्माच्चिन्मनस्वी सहसाऽवधीत् ॥१२१४॥

तद्भृत्यैरथ संक्रुद्धैर्निपत्य स विपादितः । दुर्बुद्धेस्तस्य भूभर्तुरेवं भृत्या विपेदिरे ॥१२१५॥
मण्डले राजदण्डेन क्षतेनेव परिक्षते । क्षारपातोपमाऽन्यापि प्राभृद्दुःखपरंपरा ॥१२१६॥
अहारि काञ्चनस्थाली यैः पार्थिवगृहादपि । सत्यप्यहस्करे जघ्नुस्तस्करास्तादृशा विशः ॥१२१७॥

मारनेवाले मनुष्यपर कोप नहीं करता ॥ १२०४ ॥ राजा हर्षने किसी समय मदनपर प्रसन्न होकर उसे अपना सेनापति बनाया था। किन्तु जब वह दरदराजसे पराजित होकर लौटा, तब राजाको ज्ञात हुआ कि इस पराजयके विषयमें मदनने बड़ी कड़ी आलोचना की थी ॥ १२०५ ॥ इससे वह मदनपर बहुत कुपित हो उठा और उसका वध करा देनेका निश्चय कर लिया। इसके लिए आरोप यह लगाया कि 'उसने महारानीके आज्ञापत्रका उल्लंघन किया है' ॥ १२०६ ॥ मडवराज्यसे लौटनेपर मदन राजासे मिलने गया था, किन्तु राजा उससे नहीं मिला। इससे उसके मनमें भय तथा शंका उत्पन्न हो गयी और वह वहाँसे टक्कदेशनिवासी मंत्री लक्ष्मीधरके घर चला गया ॥ १२०७ ॥ उसको क्षमा कर देनेके लिए मंत्री लक्ष्मीधरने बहुत चेष्टा की, किन्तु उसकी प्रार्थनापर कुछ भी ध्यान न देकर राजाने पुत्रसहित मदनको मरवा डाला। उसकी यह करतूत देखकर राजाकी मूर्खतापर उसके सैनिक तक हँसने लगे थे ॥ १२०८ ॥ क्रोधपूर्वक राजाकी हँसी, असमयमें वृक्षोंका फूलना और वैताल (प्रेत) का अट्टहास ये उपद्रव घातक हुए बिना नहीं रहते ॥ १२०९ ॥ सर्पका मंत्र जाननेके कारण असावधान मान्त्रिक जैसे सर्पदंशसे ही मरता है, उसी प्रकार जो लोग 'राजा मेरे ऊपर बहुत स्नेह रखता है' यह सोचकर निर्भयभावसे राजाकी सेवा करते हैं, उन्हें असीम दुर्दशा भोगनी पड़ती है ॥ १२१० ॥ इस तरह राजा अनन्तदेवकी पत्नी महारानी सूर्यमतीका शाप राजा कलशके अन्तिम सलाहकार तथा चुगलखोर मदनपर घहराया ॥ १२११ ॥ राजा हर्ष किसी भी पराक्रमी मनुष्यको देखकर भयसे काँप उठता था। इसीलिए उसने वीर मंत्री कलशराजको हथकड़ी-बेड़ी डालकर लक्ष्मीधर मंत्रीके घरमें कैद कर दिया ॥ १२१२ ॥ कलशराजको अपमानितके करने लिए राजाने उसके विरोधी उदय नामके मंत्रीको शिक्षा देनेके लिए उसके पास भेजा ॥ १२१३ ॥ लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त एवं जाज्वल्यमान उदयको देखकर स्वाभिमानी कलशराज मारे क्रोधके जल उठा और अपने समीप खड़े सेवककी तलवार लेकर उसने तुरन्त उसका सिर काट लिया ॥ १२१४ ॥ तदनन्तर उदयके सेवकोंने क्रुद्ध होकर कलशराजको पृथिवीपर पटक दिया और मार-मारकर उसके प्राण ले लिये। इस तरह उस दुर्बुद्धि राजाके दो-दो मन्त्री एक साथ मर मिटे ॥ १२१५ ॥ राजा हर्षके अत्याचारोंसे पीड़ित कश्मीरमण्डलमें घावपर नमक छिड़कनेके समान दुःखोंकी अन्य परम्परायें भी आने लगीं ॥ १२१६ ॥ जिन तस्करोंने दिन-दहाड़े राजमहलसे सोनेकी थाली चुरा ली,

प्रवर्धमाने मरके क्रन्दितध्वनिनिर्भरः । निर्घोषः प्रेतवाद्यानां न व्यरंसीद्दिवानिशम् ॥१२१८॥
उदीपन्नुडितग्रामे वत्सरे पञ्चसप्तते । अखण्डं सर्वभाण्डानां दुर्भिक्षमुदजृम्भत ॥१२१९॥
दीन्नाराणां धान्यखारिः प्राप्याभूत्पञ्चभिः शतैः । दीन्नारेणाभवल्लभ्यं मार्द्वीकस्य पलद्वयम् ॥१२२०॥
ऊर्णापलस्य दीन्नारैः क्रयः षड्भिरजायत । लवणोषणहिंग्वादेरभिधाप्यास्त दुर्लभा ॥१२२१॥
शवैर्नद्योऽभवन्नम्भःसंसेकोच्छूनविग्रहैः । छन्नतोया गिरिस्रस्तैश्छिन्नदारुवनैरिव ॥१२२२॥
एतद्व्यवहिता राजधानी दूरान्न दृश्यते । ध्यात्वेति सर्वतो राजा द्रुमाणां छेदमादिशत् ॥१२२३॥
स प्रसूनफला वृक्षा गृहस्था इव पातिताः । कुटुम्बैरिव रोलम्बैरशोच्यन्त पदे पदे ॥१२२४॥
प्राणापहं महादण्डं तथार्तेऽपि जने नृपः । हलावरुग्णे वृद्धोक्षे गण्डशैलमिवाक्षिपत् ॥१२२५॥
निपीड्य लोकं कायस्थैर्महादण्डव्यवस्थया । पुरग्रामादिषु क्वापि न मृदप्यवशेषिता ॥१२२६॥
अथोल्वणत्वं संप्राप्तान्निहन्तुं सर्वडामरान् । स दण्डभृदिव क्रुध्यन्नादिक्षन्मण्डलेश्वरम् ॥१२२७॥
पूर्वं मडवराज्योर्व्यां होलडान्तः स डामरान् । दत्तास्कन्दोऽवधीत्तांस्तान्कुलाये विहगानिव ॥१२२८॥
घ्नता लवन्यानुन्नद्धकुन्तलोऽविकटाकृतिः । जीवन्मडवराज्यान्तस्तेन विप्रोऽपि नोज्झितः ॥१२२९॥
लावन्यबुद्ध्या शूलानि पान्थैरप्यथ रोपितैः । भीमरूपाऽभवद्भूमिर्भैरवस्य महानसः ॥१२३०॥
शूले लवन्यस्यैकस्य क्रूरां विनस्यतो वधूम् । ययुः सर्वे दिशो भीता लवन्या मण्डलेश्वरात् ॥१२३१॥

ऐसे शातिर चोर राज्यके धनिकोंको लूटने लगे ॥ १२१७ ॥ इस उपद्रवके साथ राज्यमें महामारी भी फैल गयी, जिससे चारों ओर हाहाकार मच गया। स्थान-स्थानपर रोदन तथा प्रेतवाद्योंकी ध्वनि कभी नहीं रुकती थी ॥ १२१८ ॥ ४१७५ लौकिकवर्षमें उस राज्यमें इतनी भयानक वाढ़ आयी कि जिससे कश्मीरमण्डलके सभी ग्राम पानीमें डूब गये और सभी जीवनोपयोगी वस्तुओंका अकाल पड़ गया ॥ १२१९ ॥ जिससे मँहगी इतनी वढ़ी कि पाँच सौ दीनारमें एक खारी चावल और एक दीनारमें दो तोले द्राक्षारस बिकने लगा ॥ १२२० ॥ छ दीनारका एक पल ऊन मिलता था। नमक-मिर्च तथा हींगका तो दर्शन भी दुर्लभ हो गया ॥ १२२१ ॥ पानीमें पड़कर फूली तथा सड़कर भीषण दुर्गन्धि फैलानेवाली लाशोंसे सारी नदीका पानी ढँक गया। वे मुर्दे ऐसे दीखते थे कि जैसे पानीके वहावमें वड़े-बड़े पहाड़ी देवदारुके वन वह आये हों ॥ १२२२ ॥ उन्हीं दिनों दूरसे राजधानीके दिखलायी देनेमें वाधक समझकर उस मूर्ख राजाने नगरके चारों ओर लगे हरे-भरे वृक्षोंको काट डालनेका आदेश दे दिया ॥ १२२३ ॥ तदनुसार अच्छे-भले गृहस्थोंके समान फलों और फूलोंसे लदे वृक्ष काट-काटकर धराशायी कर दिये गये और कुटुम्बीके समान उनके प्रेमी भौंरे रुदन करने लगे ॥ १२२४ ॥ इसी प्रकार अत्यन्त दुःखिनी प्रजापर भी वह राजा उसी तरह महान् अत्याचार कर रहा था, जैसे जीवनभर वोझा खींचनेके कारण शिथिल एवं वृद्ध बैलके सिरपर पत्थरोंकी मार पड़ रही हो ॥ १२२५ ॥ उसने अपने कायस्थ कर्मचारियोंकी सलाहपर नानाप्रकारके कर लगाकर जनताको इतना त्रास दिया कि गाँवों और नगरोंमे मिट्टी भी राजकीय करसे नहीं वच सकी ॥ १२२६ ॥ तदनन्तर डामरोंको उद्धत होते देखकर उस राजाने यमराजके समान क्रुद्ध होकर उस प्रान्तके मण्डलेश्वर आनन्दको उन्हें उच्छिन्न कर देनेका आदेश दे दिया ॥ १२२७ ॥ तदनुसार मण्डलेश्वरने सर्वप्रथम मडवराज्यके अन्तर्गत होलडा प्रान्तके वहुतेरे डामरोंको घोसलेमे रहनेवाले पक्षियोंके समान अपनी-अपनी जगह रोककर सामूहिक रूपमें मरवा डाला ॥ १२२८ ॥ जिस समय वह लवन्य जातिके डामरोंका संहार कर रहा था, उस अवसरपर यदि कोई ब्राह्मण भी ऊपरकी ओर उठाकर केश वाँधे तथा विकट वेशधारी दीखता तो वह भी मार डाला जाता था ॥ १२२९ ॥ कितने ही निरपराध पथिक भी लवन्य डामर मानकर सूलीपर चढा दिये जाते थे। अतएव कुछ ही दिनोंमें वह प्रदेश भैरवकी पाकशाला सदृश भीषण और जंगलके समान सूना-सूना दीखने लगा ॥ १२३० ॥ उसने लवन्यजातिकी एक क्रूर स्त्रीको बड़ी निर्दयताके साथ सूलीपर चढाया था। यह देख सभी लवन्य उस मंडलेश्वरसे भयभीत होकर इधर-उधर भाग

केचिद्बुभुजिरे तेषां गोमांसं म्लेच्छभूमिषु । अरघट्टघरट्टादिकृष्टाः केचिदवालगन् ॥१२३२॥
प्राहिणोत्प्राभृतं भूरि भैरवाय महीभुजे । लवन्यमुण्डमालालीरखण्डा मण्डलेश्वरः ॥१२३३॥
तोरणावलयो राजद्वारेऽदृश्यन्त सर्वतः । डामराणां करोटीभिर्घटीभिरिव निर्भराः ॥१२३४॥
द्वारे कङ्कणवस्त्रादि लम्बमानं नृपौकसः । नेता डामरमुण्डस्य यः कोपि स किलासदत् ॥१२३५॥
भोक्तुं डामरमुण्डानि व्याप्तविस्तीर्णतोरणाः । विदधुर्गृध्रकङ्काद्या राजद्वारोपसेवनम् ॥१२३६॥
यत्र यत्रास्त भूपालस्तत्र तत्र व्यधुर्जनाः । लवन्यमुण्डैरुच्चण्डैर्विस्तीर्णास्तोरणस्रजः ॥१२३७॥
गन्धेनाशुचिना घ्राणं कर्णौ भीमैः शिवारुतैः । अखिद्यत शवाकीर्णे श्मशान इव मण्डले ॥१२३८॥
वलेरकप्रपाप्रान्ताल्लोकपुण्यावधि व्यधात् । एकश्रेणीं मण्डलेशो डामरैः शूलकीलितैः ॥१२३९॥
एवं मडवराज्यं स कृत्वा निर्नष्टडामरम् । अधावत्क्रमराज्योर्वी कर्तुं तामेव पद्धतिम् ॥१२४०॥
अवश्यं न भविष्याम इति निश्चित्य डामराः । चक्रिरे क्रमराज्यस्था लौलाहे सैन्यसंग्रहम् ॥१२४१॥
तैः सवैर्दत्तसंग्रामैः कुर्वद्भिः कदनं महत् । आस्ते स्म तत्र सुचिरं निरुद्धो मण्डलेश्वरः ॥१२४२॥
किमन्यद्राक्षसः कश्चित्सुरतीर्थर्षिपूजितम् । निहन्तुं मण्डलमिदं हर्षव्याजादवातरत् ॥१२४३॥
उल्लासो रात्रिषु दिने स्वापः क्रौर्यमुदग्रता । अवाङ्मयत्वं कर्तव्ये दक्षिणेशोचिते रतिः ॥१२४४॥
इत्यादयस्तस्य केचिद्धर्मा नक्तंचरोचिताः । तथा हि तत्कालभवैः प्रियाः प्राज्ञैः प्रकीर्तिताः ॥१२४५॥
अत्रान्तरे मल्लसूनुः कनीयान्यौवनोन्मदः । लक्ष्मीधरस्य गेहिन्या हृदयाह्लादकोऽभवत् ॥१२४६॥

गये ॥ १२३१ ॥ उनमेंसे कुछ लवन्य म्लेच्छराज्यमें जाकर गोमांस खाने लगे, कुछ रहट खींचने और कुछ चक्की पीसने लगे ॥ १२३२ ॥ उस आनन्द नामक मण्डलेश्वरने राजा हर्षदेवरूपी भैरवके पास उपहारके रूपमें बहुतेरे लवन्योंकी मुण्डमालायें भेजीं ॥ ११३३ ॥ जिससे राजद्वारके चारों ओर घण्टोंकी भाँति डामरोंकी खोपड़ियोंको गूँथकर बनायी गयी तोरणावलियाँ टँगी दिखायी देती थीं ॥ १२३४ ॥ जो भी मनुष्य किसी डामरका सिर काटकर लाता था, उसे पारितोपिकरूपमें देनेके लिए सोनेके कंकण तथा रेशमी वस्त्र आदि राजमहलके द्वारपर टाँग दिये गये थे ॥ १२३५ ॥ डामरोंकी खोपड़ियोंका मास खानेके लिए लालायित गिद्ध-कौए आदि पक्षी उन नरमुण्डके तोरणोंपर मँडराते हुए रात-दिन राजद्वारपर निवास करने लगे ॥ १२३६ ॥ उस समय यह परिपाटी-सी बन गयी थी कि राज्यमें भ्रमण करते समय राजा हर्षदेवका जहाँ-जहाँ पड़ाव पड़ता था, वहाँ-वहाँके नागरिक उसके स्वागतार्थ लवन्य डामरोंकी खोपड़ियोंका वन्दनवार अपने-अपने द्वारपर लटकाते थे ॥ १२३७ ॥ मृतकोंके शरीरासे भरे श्मशानकी भाँति भयंकर उस प्रदेशमें सड़े हुए शवोंकी दुर्गन्धिसे नासिका तथा सियारोंकी चिल्लाहटसे कानोंको बड़ा क्लेश पहुँचता था ॥ १२३८ ॥ उस निर्दयी मण्डलेश्वर आनन्दने वलेरक प्रपाप्रान्तसे लेकर लोकपुण्य पर्यन्त मार्गके दोनों ओर डामरोंको सूलीपर चढा-चढ़ाकर मार्गकी सीमा-सी बना दी थी ॥ १२३९ ॥ इस तरह मडवराज्यके डामरोंका संहार करके वह मण्डलेश्वर क्रमराज्यके डामरोंका विनाश करनेके लिए चला ॥ १२४० ॥ उधर क्रमराज्यके डामरोंको यह विश्वास हो गया था कि हम जीवित नहीं बच सकेंगे। अतएव लौलाहमें एकत्र होकर उन डामरोंने विशाल सेनाका संग्रह किया ॥ १२४१ ॥ वे वहाँ मोर्चा बनाकर डट गये और उस क्रूर मण्डलेश्वरके साथ उन्होंने भयंकर युद्ध किया। इसीसे आनन्दको वहाँ कई दिन रुक जाना पड़ा ॥१२४२॥ उस राजा हर्षके विषयमें और अधिक कहाँतक कहूँ ? मेरे विचारसे तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैसे कोई राक्षस देवताओं एवं ऋषियों द्वारा पूजित इस पवित्र कश्मीरमण्डलको नष्ट करनेके लिए हर्षका रूप धारण करके यहाँ पैदा हुआ था ॥ १२४३ ॥ क्योंकि तत्कालीन विद्वानोंका कहना है कि रात्रिके समय उल्लास, दिनमें शयन, क्रूरता, औद्धत्य, बातचीतमें क्षुद्रता और यमराजके करने योग्य प्राणहरण आदि कार्योंमें प्रेम ऐसे-ऐसे राक्षसोचित कर्म राजा हर्षको बहुत ही प्रिय थे ॥ १२४४ ॥ १२४५ ॥ उसी बीच जवानीके मदसे उन्मत्त मल्लराजका छोटा पुत्र सुस्सल लक्ष्मीधर मन्त्रीकी पत्नीसे प्रेम करने लगा,

सा हि राजसुते तस्मिन्संसक्ता प्रातिवेश्मिके । नारज्यत निजे पत्यौ वानरप्रतिमाकृतौ ॥१२४७॥
ज्ञातीनगण्यान्हत्वान्यान्कस्माद्राज्यार्हलक्षणौ । नावधीरुद्धतावेतौ राजन्नुच्चलसुस्सलौ ॥१२४८॥
इति लक्ष्मीधरेणेर्ष्यारोपादुक्तोऽपि भूपतिः । न चुक्रोधानुतापार्तिं पूर्वज्ञातिवधाद्गतः ॥१२४९॥
स्वयमन्यमुखेनापि स तेनोक्तस्ततोऽसकृत् । प्रतिघाते तदौद्धत्यं ध्यात्वा साध्वसमादधे ॥१२५०॥
ज्ञातिप्रीत्यनुवृत्त्यादि तेन विस्मरता ततः । संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं दध्रे तद्वधनिश्चयः ॥१२५१॥
आसन्नवारवनिता थक्कनाख्याऽथ तं व्यधात् । भूभर्तुर्दुरभिप्रायं तयोः कर्णपथातिथिम् ॥१२५२॥
सख्या दर्शनपालेन तत्रार्थे छिन्नसंशयौ । निरगातां निशीथिन्यां द्वित्रैस्तावनुगैः समम् ॥१२५३॥
षट्सप्ततेऽब्दे नगरान्मार्गशीर्षेऽथ निर्गतौ । उत्रासवसतेः प्राप्तौ डामरस्योपवेशनम् ॥१२५४॥
प्रशस्तराजो दुद्रुक्षुः सिल्लराजं निजानुजम् । सोभिसंधाय तौ निन्ये लवन्यो मण्डलान्तरम् ॥१२५५॥
ततो राजपुरीं ज्यायान्प्रायात्कल्हस्य भूपतेः । कनीयान्प्रययौ पार्श्वं कलिञ्जरधरेशितुः ॥१२५६॥
तयोर्निर्गतयो राज्यं न कैश्चिच्छ्रद्दधीयत । निमित्तज्ञेन राज्ञैव दुर्निमित्तैस्त्वशङ्क्यत ॥१२५७॥
लक्ष्मीधरमुखेनैव प्रार्थनां हन्तुमुच्चलम् । चक्रे संग्रामपालस्य सोऽङ्गीकृत्य धनं ततः ॥१२५८॥
स त्वन्तिकागतस्येपन्मल्लसूनोः कृतादरः । तया विशङ्कया शत्रोरासीदधिकगौरवः ॥१२५९॥
आसन्नाभ्युदयं शत्रुं द्वेष्टैव विधिचोदितः । शङ्काविष्करणाल्लोके नयेत्संभावनाध्रुवम् ॥१२६०॥

॥ १२४६ ॥ सुस्सल लक्ष्मीधरका पड़ोसी था। इस लिए सुन्दर एवं नौजवान राजकुमार सुस्सलको देखकर मन्त्रीकी पत्नी उसपर मोहित हो गयी। क्योंकि वन्दर जैसी आकृतिवाला लक्ष्मीधर उसे तनिक भी नहीं भाता था ॥ १२४७ ॥ कुछ दिन वाद मन्त्री लक्ष्मीधरको भी इस प्रेमलीलाका पता चला, तब उसने राजा हर्षसे कहा—'राजन्! आपने अपने वहुतेरे सजातीय वान्धवोंको तो मरवा डाला, तब अत्यन्त उद्दण्ड और राज्यका अधिकार पाने योग्य उच्चल तथा सुस्सल इन दोनों भाइयोंको क्यों नहीं मरवा डालते ?' मन्त्री लक्ष्मीधरके इस ईर्ष्या तथा रोषभरे वचनको सुन करके भी राजा हर्ष क्रुद्ध नहीं हुआ। क्योंकि पूर्वकालमें मारे गये वान्धवोंकी हत्यासे उसे वहुत पछतावा हो रहा था ॥ १२४८ ॥ १२४९ ॥ इसके वाद उस मन्त्रीने औरोंसे भी यही वात कहलायी और स्वयं भी कई वार इस प्रसंगकी चर्चा की। तथापि राजाने इधर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि उन दोनों भाइयोंकी वीरता तथा उद्दण्डताको सोचकर उसे डर लगता था ॥ १२५० ॥ किन्तु कुछ ही दिनों वाद ज्ञातिप्रेम, अनुवृत्ति तथा उपकार आदि सभी वातोंको भूलकर राजा हर्षने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करके उन दोनोंको मरवा डालनेके लिए पक्का निश्चय कर लिया ॥ १२५१ ॥ राजाका यह दूषित अभिप्राय पड़ोसमें रहनेवाली वेश्या थक्कनाने उच्चल तथा सुस्सलको वता दिया ॥ १२५२ ॥ उन दोनोंके मित्र दर्शनपालने भी इस वातका समर्थन करके उनका सन्देह निवृत्त कर दिया। तव वे दोनों भाई दो-तीन सेवकोंको साथ लेकर रातके समय राजधानीसे निकल भागे ॥ १२५३ ॥ इस प्रकार ४१७६ लौकिक वर्षके मार्गशीर्षमासमें नगरसे भागकर वे उत्रास ग्रामनिवासी डामरोंकी टोलीमें जा पहुँचे ॥ १२५४ ॥ उसी समय अपने छोटे भाई सिल्लके साथ द्रोह करनेकी इच्छावश प्रशस्तराज नामके एक लवन्य डामरने उन्हें समझाकर अन्य प्रान्तमें भेज दिया ॥ १२५५ ॥ तदनन्तर उनमेंसे वड़ा भाई उच्चल राजपुरी और छोटा भाई सुस्सल कालिंजर चला गया ॥ १२५६ ॥ इस प्रकार उन दोनों भ्राताओंके कश्मीरकी राजधानीसे चले जानेपर किसी भी मनुष्यको राजापर विश्वास नहीं रह गया। विविध प्रकारके अपशकुनोंको देखकर शकुनशास्त्रके विज्ञ राजा हर्षके मनमें भी सन्देह होने लगा ॥ १२५७ ॥ उसके वाद राजा हर्षने मन्त्री लक्ष्मीधरके द्वारा राजपुरीके राजा संग्रामपालको घूस देकर उच्चलका वध करा देनेके लिए कहलाया ॥ १२५८ ॥ संग्रामपालने अपने यहाँ आये हुए उच्चलका पहले तो वहुत कम आदर किया। लेकिन जव उसे हर्षसे डर लगा, तव वह उसका अत्यधिक आदर करने लग गया ॥ १२५९ ॥ विधिका विधान ही कुछ ऐसा है कि जिससे दुष्ट मनुष्य धैर्यहीन होकर अपना सन्देह तथा भय प्रकट करने लगता है। ऐसा करके वह अपने उदयोन्मुख शत्रुका महत्त्व वढ़ा देता है ॥ १२६० ॥

राजपुर्याः प्रकृत्यैव काश्मीरानर्थकांक्षिताः । प्रभविष्णौ रिपौ प्राप्ते चक्रिकायां किमुच्यताम्॥१२६१॥
कांश्चिन्निकृतिकप्रायान्पार्श्वयातानथोच्चलः । गमागमान्कृतोद्योगो डामराणामकारयत् ॥१२६२॥
डामरास्तु महोत्साहास्तमानेतुं व्यसर्जयन् । राज्ञा विप्रकृता दूतान्वितीर्णोपायनान्बहून् ॥१२६३॥
तं सूर्यवर्मचन्द्रस्य तनयो जनकाभिधः । चकारोपचितोत्साहं मायादूतैर्विसर्जितैः ॥१२६४॥
वीक्ष्य डामरदूतांस्ताञ्जहता राजतो भयम् । व्यक्तं संग्रामपालेन निन्ये माहात्म्यमुच्चलः ॥१२६५॥
स कार्यगौरवात्प्रह्वो मूर्ध्नि कर्पूरचूर्णनम् । कृत्वा तमविनाशाय यावद्विसस्रष्टुमैहत ॥१२६६॥
तावत्कलशराजाख्यस्तद्देशे मुख्यठक्कुरः । हर्षदेवार्पितोत्कोचस्तमेत्य विजनेऽब्रवीत् ॥१२६७॥
राज्ञः प्रसादनं त्यक्त्वा तवोच्चलहितैषिणः । कामधेनुं विनिर्धूय छागकण्ठग्रहे ग्रहः ॥१२६८॥
कोऽयं काश्मीरभूपानां कास्य शक्तिस्तपस्विनः । आराधनेन तद्राज्ञो विधेहि स्वमसाध्वसम् ॥१२६९॥
अयं राजगिरौ दुर्गे स्थाप्यतां पार्थिवस्ततः । स्यान्मनीषितवर्षी वस्त्रासान्मित्रं च सर्वदा ॥१२७०॥
तेनेति प्रभुराख्यातः खशानां स मिताशयः । तद्भीतः स्वार्थलुब्धश्च तथेति प्रत्यपद्यत ॥१२७१॥
तमस्यधाच्च नो वद्धुं शक्तोऽहममुमुद्यतम् । त्वयैव वध्यतामेष मिषतः प्रेषितोऽन्तिकम् ॥१२७२॥
इत्युक्त्वा तं स्ववसतिं विसृज्यावददुच्चलम् । प्रातः कलशराजस्य त्वया गन्तव्यमन्तिकम् ॥१२७३॥
इह प्रधानामात्योऽसौ तेन ते स्यादनत्ययः । ततो विपक्षोच्छित्त्यै त्वां प्रतिमोच्यामि सानुगम्॥१२७४॥
अथ तद्वसतिं गन्तुं चलितोऽन्येद्युरुच्चलः । प्राग्दुर्निमित्तैस्तत्कृत्यमाप्तैरथ विबोधितः ॥१२७५॥

एक तो राजपुरीके लोग स्वतः कश्मीरमे होनेवाले अनर्थोंका अभिनन्दन किया करते थे, उसपर भी जब हर्षका शत्रु एवं राज्य पानेका अधिकारी उच्चल वहाँ पहुँच गया, तब वहाँ रचे जानेवाले षड्यंत्रोंका क्या कहना था ॥ १२६१ ॥ उसके बाद उच्चल अपने यहाँ आने-जानेवाले पक्षपातियोंके द्वारा डामरोंको अपनी ओर मिलानेका प्रयत्न करने लगा ॥ १२६२ ॥ राजा हर्षके अत्याचारसे त्रस्त डामर उच्चलका आश्रय पानेके लिए बड़े उत्साहपूर्वक अपने दूतों तथा उच्चलके अन्तरंग मित्रों द्वारा विविध प्रकारके उपहार भेज-भेजकर उससे कश्मीर लौट आनेका अनुरोध करने लगे ॥ १२६३ ॥ सूर्यवर्मचन्द्रके पुत्र जनक डामरने भी अपने मायावी दूतोंको भेजकर उसे कश्मीर चले आनेके लिए प्रोत्साहित किया ॥ १२६४ ॥ निरन्तर डामरोंके दूतोंका आवागमन देखकर संग्रामपालने राजा हर्षका भय त्याग दिया और अब उच्चलका बहुत अधिक सम्मान करने लगा ॥ १२६५ ॥ संग्रामपालने कार्यका महत्त्व समझकर बड़े विनीत भावसे माथेपर कर्पूरचूर्ण चढाकर उसे अभयदान दिया और युद्धकी विजययात्राके निमित्त प्रयाण करनेको कहना ही चाहता था ॥ १२६६ ॥ इतनेमे राजा हर्षने उस प्रान्तके प्रधान ठक्कुर कलशराजको पुष्कल धन देकर राजपुरी भेजा। वहाँ पहुँच कर कलशराजने एकान्तमे संग्रामपालसे कहा—॥ १२६७ ॥ 'आप महाराज हर्षदेवका आराधन छोड़कर उच्चलका कल्याण क्यों चाहते हैं? यह तो कामधेनु त्यागकर बकरीकी सेवा करनेके समान बड़ा ओछा काम है ॥ १२६८ ॥ कश्मीरनरेश समक्ष उच्चल क्या चीज है? उसमे शक्ति ही क्या है? अतएव आप राजा हर्षकी आराधना करके सदाके लिए निर्भय बन जाइए ॥ १२६९ ॥ अच्छा तो यह हो कि आप उच्चलको राजगिरिके किलेमें रख दीजिए। उसके वहाँ रहनेसे हर्षको भी भय बना रहेगा, जिससे वह हम लोगोंका स्थायी मित्र बन कर हमारी इच्छायें पूर्ण करता रहेगा' ॥ १२७० ॥ कलशराज ठक्कुरके वचन सुनकर स्वार्थी तथा विवेक-हीन संग्रामपालने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली ॥ १२७१ ॥ तदनन्तर उसने कलशराजसे कहा—'मैं उच्चलको कैद करनेमे असमर्थ हूँ। अतएव उसे किसी बहाने आपके पास भेज दूँगा—आप स्वयं उसको कैद कर लीजिएगा' ॥ १२७२ ॥ ऐसा कहकर संग्रामपालने कलशराजको उसके डेरेपर लौटा दिया और उच्चलसे कहा कि 'आज ही आप कलशराजसे अवश्य मिल लीजिएगा ॥ १२७३ ॥ क्योंकि वह इस प्रदेशका अधिकारी है। उससे मिल लेनेपर आप भविष्यके लिए निरापद हो जायँगे। उसके बाद मैं भी आपको अपनी सेना देकर शत्रुपक्षका विनाश करनेके लिए भेज सकूँगा' ॥ १२७४ ॥ संग्रामपालके कथनानुसार जब दूसरे

मन्त्रे भिन्ने निवृत्तं तं श्रुत्वा खशनृपान्तिकम् । कुप्यन्कलशराजोऽथ सज्जसैन्यः समाययौ ॥१२७६॥
तमास्कन्दाय संग्रामं जानञ्शस्त्रभृतां वरः । ऐच्छद्रणाय निर्गन्तुं निजभृत्यैः सहोच्चलः ॥१२७७॥
क्षोभे संप्रस्तुते तं स सान्त्वयित्वा खशाधिपः । तिष्ठन्कलशराजेन सहानिन्ये निजां सभाम् ॥१२७८॥
निषेधाधायिनो भृत्यान्स विधूयौजसां निधिः । सज्जः खशसमाजं तं कोपकम्प्राधरोऽविशत् ॥१२७९॥
द्रष्टुं तं नाशकत्कश्चित्कल्पान्तार्कमिवोल्बणम् । क्रुद्धं कलशराजो वा राजा वा तेजसां निधिम् ॥१२८०॥
स विविक्तीकृते धाम्नि खशाधीशं समन्त्रिणम् । सान्त्वयन्तं महातेजाः कोपरूक्षाक्षरोऽब्रवीत् ॥१२८१॥
पूर्वं दार्वाभिसारेऽभूद्भारद्वाजो नरो नृपः । नरवाहननामास्य सूनुः फुल्लमजीजनत् ॥१२८२॥
स सातवाहनं तस्माच्चन्द्रोऽभूत्तत्सुतः सुतौ । गोपालसिंहराजाख्यौ चन्द्रराजोऽप्यत्राप्तवान् ॥१२८३॥
बहात्मजः सिंहराजो दिद्दाख्यां तनयां ददौ । क्ष्माभुजे क्षेमगुप्ताय सावीग भ्रातृनन्दनम् ॥१२८४॥
राज्ये संग्रामराजाख्यं व्यधादुदयराजजम् । भ्रातापि कान्तिराजोऽस्य जस्सराजमजीजनत् ॥१२८५॥
पिताऽनन्तस्य संग्रामो जस्सस्तन्वङ्गगुङ्गयोः । अनन्तात्कलशक्ष्माभृद्गुङ्गान्मल्लोऽप्यजायत ॥१२८६॥
कलशाद्धर्षदेवाद्या जाता मल्लात्तथा वयम् । कोयमित्यादि तन्मन्दैः क्रमेऽस्मिन्कथ्यते कथम् ॥१२८७॥
पृथिव्यां वीरभोज्यायां क्रमो वा क्वोपयुज्यते । वीरस्य च सहायोऽस्तु कः स्वबाहुद्वयात्परः ॥१२८८॥
दिष्ट्या तदनुकम्प्यानां मूर्ध्नि हस्तमिवास्पृशन् । काश्मीरिकाणां भूपानां नाभूवं कुलपांसनः ॥१२८९॥

दिन उच्चल कलशराजसे मिलने चला तो सहसा अनेक प्रकारके अशकुन दीखे और अपने कुछ विश्वस्त मित्रों द्वारा उसे गुप्त षड्यंत्रका भी पता लग गया ॥ १२७५ ॥ इस प्रकार रहस्यका भेद खुल जानेपर उच्चल संग्रामपालके पास जानेके लिए चल पड़ा। यह सुनकर कलशराज बड़े क्रोधके साथ उच्चलपर आक्रमण करनेके लिए बढ़ा ॥ १२७६ ॥ तब वीरश्रेष्ठ उच्चल भी कलशराजको अपनेपर आक्रमण करनेके लिए आते देख अपने सेवकोंको साथ लेकर उसका मुकाबला करनेको जा डटा ॥ १२७७ ॥ इस प्रकार उन दोनोंमें संघर्षकी स्थिति देखकर संग्रामपालने मध्यस्थ बनकर उच्चलको शान्त किया और उसको अपने दरबारकी ओर ले चला ॥ १२७८ ॥ उस समय उच्चलके सेवकोंने कहा—'इस समय उधर जाना ठीक नहीं है'। किन्तु उसने उन्हें डाँट दिया और सुसज्जित होकर खशराज संग्रामपालके साथ चल पड़ा। उस समय क्रोधसे उच्चलके होंठ काँप रहे थे ॥ १२७९ ॥ प्रलयकालीन सूर्यके सदृश अत्यन्त तीक्ष्ण, तेजसे भरे एवं कुपित वीर उच्चलकी ओर संग्रामपाल तथा कलशराज इन दोनोंमें कोई भी देखनेका साहस नहीं कर पा रहा था ॥ १२८० ॥ तदनन्तर उस महान् तेजस्वी उच्चलने एकान्तमें बुलाकर सान्त्वना देनेके बाद मंत्रियों समेत खशराज संग्रामपालसे कठोर शब्दोंमें कहा—॥ ११८१ ॥ 'आजसे बहुत दिनों पहलेकी बात है, दार्वाभिसार देशमें नर नामका एक भारद्वाजगोत्रीय राजा था। उसका पुत्र था–नरवाहन। नरवाहनके यहाँ फुल्लनामके पुत्रने जन्म लिया ॥१२८२॥ कालान्तरमें फुल्लके यहाँ सातवाहन जनमा और सातवाहनका पुत्र चन्द्र हुआ। चन्द्रका पुत्र चन्द्रराज और चन्द्रराजके गोपाल तथा सिंहराज नामके दो पुत्र जनमे ॥ १२८३ ॥ उन दोनोंमेंसे सिंहराजके अनेक पुत्र हुए। उसने अपनी पुत्री दिद्दाका विवाह कश्मीरनरेश क्षेमगुप्तके साथ किया था। पतिका स्वर्गवास हो जानेपर अपना कोई निजी पुत्र न होनेके कारण दिद्दारानीने अपने भाई उदयराजके पुत्र संग्रामराजको राजगद्दीपर बिठाया। दिद्दारानीके दूसरे भाई कान्तिराजके यहाँ जस्सराज नामके पुत्रका जन्म हुआ ॥ १२८४ ॥ १२८५ ॥ संग्रामराजका पुत्र अनन्तदेव हुआ और जस्सराजके तन्वंग तथा गुंग ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। आगे चलकर अनन्तदेवसे कलश तथा गुंगसे मल्लराजका जन्म हुआ ॥ १२८६ ॥ कलशराजके हर्षदेव आदि पुत्र जनमे और मल्लराजके पुत्र हम दोनों भाई उच्चल तथा सुस्सल हैं। इस तरह हमारी वंशावलीका स्पष्ट क्रम होते हुए भी मूर्ख लोग यह प्रश्न करते हैं कि 'ये कश्मीर-राजवंशके कौन हैं ?' ॥ १२८७ ॥ पृथिवी सदासे वीरभोग्या रही है। यहाँपर वंशपरम्पराके क्रमका उपयोग ही कहाँ होता है और वीर पुरुषोंके लिए अपनी दोनों भुजाओंके सिवाय अन्य कौन सहायक हो सकता है ? ॥१२८८॥ आज तक मैंने कभी किसी दयनीय या शोचनीय व्यक्तिके समक्ष सिरपर हाथ रखकर अपने काश्मीरके

तस्माद्द्रक्ष्यथ मे शक्तिमित्युक्त्वा निर्गतस्ततः । विजयाय स पत्तीनां शतेनानुगतोऽचलत् ॥१२९०॥
निहतं शशमादाय तस्याग्रे कश्चिदाययौ । स तेन सुनिमित्तेन प्राप्तां मेने रिपुश्रियम् ॥१२९१॥
अरघट्टजरट्टादिकृष्टिमुत्सृज्य निर्गताः । डामरा वाट्टदेवाद्यास्तं यान्तमुपतस्थिरे ॥१२९२॥
कटकस्थस्य संग्रामपालस्यायातमन्तिकात् । तद्देव्यो राजपुर्यन्तः खिन्नं निन्युः प्रसन्नताम् ॥१२९३॥
भुक्त्वा तद्वसतेर्गच्छन्स्वावासं स दिनात्यये । सैन्यैः कलशराजस्य दत्तास्कन्दोऽभवद्बहिः ॥१२९४॥
राज्ञीभिर्निर्गमात्तस्मिन्द्वारं संरोध्य वारिते । तदीयाः सैनिका युद्धे लोष्टावट्टादयो हताः ॥१२९५॥
मध्यं प्रविश्य शमिते प्रधानैस्तत्र संयुगे ।
सोल्पसैन्योपि संवृत्तः सुतरामल्पसैनिकः ॥१२९६॥
चैत्रस्य पौर्णमास्यन्तः कृच्छ्रमप्यनुभूतवान् । वैशाखासितपञ्चम्यां यात्रामत्रस्तधीर्व्यधात् ॥१२९७॥
विसृज्य वाट्टदेवादीन्विप्लवाय स्ववर्त्मभिः । आललम्बे प्रवेशेच्छां क्रमराज्याध्वना स्वयम् ॥१२९८॥
यं राजोदयसीहान्ते कपिलं क्षेमजात्मजम् । अस्थापयल्लोहरोर्व्यां स विशन्तं मुमोच तम् ॥१२९९॥
स्वयमग्रे समग्राणां खड्गचर्मधरो व्रजन् । पलायने पूर्वशिष्यान्पर्णोत्से तद्भटान्व्यधात् ॥१३००॥
बद्ध्वा निःशङ्कमासीनं द्वारेशं सुज्जकाभिधम् । कश्मीरानामिषाकांक्षी क्षिप्रं श्येन इवापतत् ॥१३०१॥
तं डामराश्च कतिचित्खाशिकाश्चाद्रिसंश्रयाः । राजद्विपः ग्रासमात्रं सर्वतः पर्यवारयन् ॥१३०२॥

राजवंशको कलंकित नहीं किया है, यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है ॥ १२८९ ॥ अब आप लोग मेरी शक्ति देखिएगा'। यह कहकर वीर उच्चल अपने केवल सौ पैदल सैनिकोंको साथ लेकर विजय प्राप्त करनेके निमित्त वहाँसे चल पड़ा ॥ १२९० ॥ वहाँसे चलते समय सबसे पहले मारे हुए खरगोशको हाथमें लिये मार्गमें एक शिकारी मिला। वह शुभ शकुन देखकर उच्चलने शत्रुका राज्यवैभव अपने हस्तगत हुआ-सा मान लिया ॥ १२९१ ॥ कुछ आगे बढनेपर पूर्वकालमें कश्मीरसे निर्वासित वाट्टदेव आदि डामर रहट खींचने तथा चक्की पीसने आदिके कामोंको छोड़कर उसके साथ हो गये ॥ १२९२ ॥ उस समय संग्रामपाल नगरके बाहरवाले अपने सेनाशिविरमें था। अत एव उच्चल सीधे राजपुरीमें आया। वहाँपर संग्रामपालकी रानियोंने उसका स्वागत किया और उसे खिन्न देखकर प्रसन्न करते हुए अनेकशः सान्त्वना दी ॥ १२९३ ॥ वहाँपर भोजन करके सायंकालके समय वह अपने निवासस्थानकी ओर जैसे ही चला, उसी समय कलशराज ठक्कुरके सैनिकोंने उच्चलपर आक्रमण कर दिया ॥ १२९४ ॥ यह देखकर संग्रामपालकी रानियोंने उसे घरके भीतर खींचकर द्वार बन्द कर लिया। उस स्थानपर कलशराज तथा उच्चलके सैनिकोंमें जमकर लड़ाई हुई। जिसमें लोष्टावट्ट आदि उच्चलके सैनिक मार डाले गये ॥ १२९५ ॥ तदनन्तर वहाँके प्रधानोंने बीच-बचाव करके वह संघर्ष समाप्त करा दिया। उच्चलके सैनिक पहले ही बहुत थोड़े थे, कुछके उस युद्धमें मारे जानेके कारण उनकी संख्या और भी कम हो गयी ॥ १२९६ ॥ इस प्रकार चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको उसे इस संकटका सामना करना पड़ा, किन्तु इससे किसी प्रकार त्रस्त तथा विह्वल न होकर वैशाख कृष्णपंचमीको उसने विजयके लिए फिरसे प्रयाण किया ॥ १२९७ ॥ वाट्टदेव आदि अपने अनुयायियोंको उसने अपने-अपने मार्गसे लूटमार आदि उपद्रव करते हुए आगे बढनेका आदेश देकर स्वयं क्रमराज्यके रास्तेसे कश्मीरमें प्रविष्ट होनेकी योजना बनायी ॥ १२९८ ॥ उदयसीहका स्वर्गवास हो जानेके बाद राजा हर्षदेवने क्षेमराजके पुत्र कपिलको लोहर प्रान्तका द्वारपति बनाया था। उसने अपनी सीमा पार करके कश्मीरमें प्रविष्ट होते हुए उच्चलको देख करके भी नहीं रोका ॥ १२९९ ॥ बल्कि कपिल अग्रणी बन तथा ढाल-तलवार हाथमें लेकर चल पड़ा। आगे चलकर पर्णोत्स प्रदेशमें कपिलके राजपक्षवाले सैनिकों तथा उच्चलके डामर सैनिकोंमें घमासान लड़ाई छिड़ गयी। जिसमें वीर उच्चलने शत्रुपक्षकी सेनाको मार भगाया ॥ १३०० ॥ उस समय राजा हर्षका सुज्जक नामक द्वारपति गाफिल बैठा था, उसको उच्चलने कैद कर लिया और मांसके इच्छुक बाजकी तरह वह कश्मीरपर झपटा ॥ १३०१ ॥ उसे उपस्थित देख राजा हर्षके विरोधी डामर तथा खाशिकगण चारों ओरसे आ आकर उच्चलकी सहायताके लिए तैयार हो गये ॥ १३०२ ॥

तमाकाशादिव स्रस्तं भुवो गर्भादिवोत्थितम् । निशम्यातर्कितं प्राप्तं चकम्पे हर्षभूपतिः ॥१३०३॥
मा भूदसौ बद्धमूलः क्रमराज्यान्तरस्थितम् । मा वधीन्मण्डलेशं च ध्यायन्नित्याकुलोथ सः ॥१३०४॥
विलम्बमाने संनद्धसैनिके दण्डनायके । त्वरितं प्राहिणोत्पट्टं वितीर्णासंख्यनायकम् ॥१३०५॥
दैवोपहतवीर्यो वा क्रान्तो वा द्रोहचिन्तया । अभ्यमित्रीणतां त्यक्त्वा स तु मार्गे व्यलम्बत ॥१३०६॥
अन्याश्च यान्यांस्तिलकराजादीन्व्यसृजन्नृपः । ते ते पट्टं समासाद्य नाकुर्वन्नग्रनिर्गमम् ॥१३०७॥
दण्डनायकमुख्येऽपि लोके राज्ञा विसर्जिते । याते विमूढतां प्राप बद्धमूलत्वमुच्चलः ॥१३०८॥
वराहमूलं प्रविशन्नागतां द्विषतां बलात् । अश्वां सुलक्षणोपेतां राजलक्ष्मीमिवासदत् ॥१३०९॥
महावराहमौलिसक्तस्य मूर्ध्नि पपात च । स्वदंतस्थितया पृथ्व्या वरणार्थमिवार्पिता ॥१३१०॥
काकाद्यैर्वैद्यकुलजैर्योधैः संरुद्धपद्धतिः । स हुष्कपुरमुत्सृज्य क्रमराज्योन्मुखो ययौ ॥१३११॥
अत्रान्तरे तमायान्तमाकर्ण्योत्सेकमागतैः । विद्रवोन्मुखतां निन्ये डामरैर्मण्डलेश्वरः ॥१३१२॥

तैर्हि प्रागेव भङ्गं स नीतो हत्वा महाभटान् ।
यशोराजमुखान्भूरीन्ययौ मन्दप्रतापताम् ॥१३१३॥

शनैरपसरन्सोऽथ तारमूलकमासदत् । उच्चलाधिष्ठितास्तेऽपि विद्विषन्तस्तमन्वयुः ॥१३१४॥
समेतानन्तसैन्येन तेन तत्र चिरं वृतः । उच्चलश्चलयाभ्रस्य पौरस्त्यानिलविभ्रमः ॥१३१५॥
सैन्ययोरुभयोस्तत्र जयश्रीकरिणीकृते । बभूव तुल्यसंघर्षः सेर्ष्ययोरिव दन्तिनोः ॥१३१६॥

एकाएक आकाशसे गिरे अथवा जमीनके भीतरसे निकले हुएके समान उस वीर उच्चलको देखकर राजा हर्ष भयके मारे काँपने लगा ॥ १३०३ ॥ 'कहीं उसने क्रमराज्यके मण्डलेश आनन्दका वध करके अपनी स्थिति तो मजबूत नहीं कर ली है' इस प्रकार सोच-विचार करके वह राजा अतिशय व्याकुल हो उठा ॥ १२०४ ॥ जब उसने देखा कि दण्डनायक सेना जुटानेमें विलम्ब कर रहा है, तब स्वयं पट्टको एक बहुत बड़ी सेना देकर शत्रुसे लड़नेके लिए भेजा ॥ १३०५ ॥ किन्तु न जाने भाग्यके फेरसे निकम्मा हो जानेके कारण अथवा स्वामि-द्रोह करनेके अभिप्रायसे पट्ट शत्रुपर आक्रमण करनेके समयकी उपेक्षा करके मार्गमें ही विलम्ब करने लग गया ॥ १३०६ ॥ उसके अतिरिक्त तिलकराज आदि जिन-जिन वीरोंको राजाने शत्रुसे लड़नेके निमित्त भेजा, वे सब पट्टके पास पहुँच-पहुँचकर वहाँ ही रुक गये, उनमेंसे कोई आगे नहीं बढ़ा ॥ १३०७ ॥ तदनन्तर राजाने दण्डनायकको मुखिया बनाकर एक बहुत बड़ी सेनाके साथ भेजा। किन्तु वह भी मार्गमें ही जड़ बन गया और ऐसा होनेसे उच्चलके पैर मजबूत होते गये ॥ १३०८ ॥ जब उच्चल वराहमूल क्षेत्रमें पहुँचा तो वहाँ उसे शत्रुकी सेनासे बिछुड़ी हुई राजलक्ष्मीकी भाँति एक सुलक्षण घोड़ी अपने आप आकर मिल गयी ॥ १३०९ ॥ जब वह वराह भगवानका दर्शन करनेके लिए मन्दिरमें गया तो भगवानके मस्तकसे एक माला खिसककर उच्चलके मस्तकपर आ गिरी। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वाराह भगवानकी दंष्ट्रापर निवास करनेवाली पृथिवी-ने स्वयं उसके गलेमें वरमाला डाल दी हो ॥१३१०॥ वैद्यकुलमें जायमान काक आदि वीरोंने मार्गमें उच्चलको रोका, तब वह हुष्कपुरका मार्ग छोड़कर क्रमराज्यके रास्तेसे चल पड़ा ॥ १३११ ॥ उधर उच्चलके आगमनका समाचार सुनतेही डामरोंने उत्साहित होकर मण्डलेश्वरको भाग जानेके लिए विवश कर दिया ॥१३१२॥ क्योंकि उन्होंने मण्डलेश्वरके साथी यशोराज आदि बड़े-बड़े वीरोंको मारकर उसको परास्त तथा हतोत्साह कर दिया, जिससे उसका प्रभाव अत्यन्त क्षीण हो गया ॥ १३१३ ॥ तदनन्तर दण्डनायक पीछेकी तरफ हटते-हटते तारकमूल पहुँच गया। उधर उच्चलके साथ-साथ डामर लोग भी उसका पीछा करते हुए वहाँ पहुँच गये ॥ १३१४ ॥ तब अगणित सैनिकोंको साथ लेकर दण्डनायकने उच्चलरूपी प्रलयकालीन मेघको रोकनेके लिए झंझावात (वर्षामिश्रित आँधी) का रूप धारण कर लिया ॥ १३१५ ॥ वहाँपर विजयश्रीरूपिणी हस्तिनीके लिए ईर्ष्यावश जूझनेवाले दो मदमत्त हाथियोंकी तरह उन दोनों सैन्योंमें चिरकाल तक भीषण संग्राम चलता रहा ॥ १३१६ ॥

आनन्दनामाप्युत्पिञ्जोत्थानमुच्चलमातुलः । चक्रे मडवराज्येऽथ निबिडीकृतडामरः ॥१३१७॥
तद्दिवसे डामरौघा दिग्देशेभ्यः सहस्रशः । उन्ममज्जुर्हिमापाये रन्ध्रेभ्य इव षट्पदाः ॥१३१८॥
तत्क्षणं क्षीणभाग्यस्य यथा द्वारपतिस्तथा । कायस्थः कम्पने गञ्जः सहेलोऽभून्महत्तमः ॥१३१९॥
आनन्देन कृतास्कन्दो बहुशो विहिताहवः । औज्झीन्मडवराज्यं स न यत्तद्भद्रभृत्तदा ॥१३२०॥
अथाद्भुतप्रतापेन वेष्टयित्वा महाचमूम् । उच्चलेनाहवे बद्धः ससैन्यो मण्डलेश्वरः ॥१३२१॥
न विद्मः किं तदा वृत्तं योधानां यत्किलाविदन् । ते सखड्गाश्वसंनाहा बद्धा वयमिति स्फुटम् ॥१३२२॥
तथा बद्धोऽपि निर्दध्यौ स भव्यः प्रभवे हितम् । स्वामिभक्तिर्विपर्येति पर्यन्तेपि न मानिनाम् ॥१३२३॥
तूर्णं पुरप्रवेशाय सोऽथ प्रैरयदुच्चलम् । विश्वास्य नेदृगन्योऽस्ति क्षण इत्यसकृद्ब्रुवन् ॥१३२४॥
विगतस्तस्य चानेकैः पुरग्रामाद्यलुण्ठयत् । कर्मणानेन कौलीनमस्यास्त्विति विचिन्तयन् ॥१३२५॥
परिहासपुरे तेन स ततः संप्रवेशितः । श्वभ्राम्बुविषमाद्यस्मान्निर्गमोऽत्यन्तदुर्गमः ॥१३२६॥
तत्रोच्चलं चतुःशाले स्वं च दग्धुमचूचुदत् । निजान्स निशि ते तत्तु न चक्रुस्तद्धितैषिणः ॥१३२७॥
यथा चित्तं तथास्य स्यात्कायश्चेत्साहसक्षमः । तदात्मनिरपेक्षस्य किं न सिद्ध्येन्मनीषितम् ॥१३२८॥
क्लीबच्छन्नपुरुत्वचा सह वसत्यच्छेद्यया कच्छपो निर्वर्मा रणकर्मसाहसमहोत्साहश्च सिंहः सदा ।
धिक्क्रूरदुष्कृतपक्षपातरभसो नीचेषु मुग्धो विधिर्वीराणां कुरुते शरीरमभितो वैकल्यशल्याहतम् ॥१३२९॥
संदिदेशाथ स क्ष्मापमाकृष्यायं समागतः । शृगाल इव ते क्षिप्तः क्षिप्रं निर्गत्य बध्यताम् ॥१३३०॥

उसी समय उच्चलके मामा आनन्दने बहुतेरे डामरोंको जुटाकर मडवराज्यमे भी उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया ॥ १३१७ ॥ जैसे शीतकालके बीतते ही धरतीके छिद्रोंसे असंख्य भौंरे बाहर निकल आते हैं, उसी प्रकार उस विप्लवके समय चारों ओरसे असंख्य वीर आ-आकर वहाँ एकत्र हो गये ॥१३१८॥ उस समय अभागे राजा हर्षका कायस्थ महत्तम सुहेल ही द्वारपति तथा कम्पनेश (सेनापति) दोनों था ॥ १३१९ ॥ यद्यपि उच्चलके मामा आनन्दने कई बार उसके ऊपर भीषण प्रहार करके तुमुल युद्ध किया, तथापि सुहेलने मडवराज्यको नहीं ही छोड़ा। यह कोई साधारण वीरताकी बात नहीं थी ॥ १३२० ॥ तदनन्तर विलक्षण प्रतापी उच्चलने उस विशाल सेनाको चारों ओरसे घेरकर सैन्य समेत मण्डलेश्वरको कैद कर लिया ॥ १३२१ ॥ यह हमें नहीं मालूम कि सशस्त्र, सकवच तथा अश्वारूढ़ होते हुए भी मण्डलेश्वरके वे वीर सैनिक कैसे इस तरह घिरकर कैद हो गये ॥ १३२२ ॥ शत्रुके द्वारा इस प्रकार बाँध लिये जानेपर भी वह भव्य द्वारपति अपने स्वामीके कल्याणकी ही बात सोचता रहा। क्योंकि स्वाभिमानी पुरुषोंके हृदयसे स्वामिभक्ति मरण पर्यन्त दूर नहीं होती ॥ १३२३ ॥ तब कैदी द्वारपति सुहेलने अपने हृदयमें विश्वास उत्पन्न करके कहा--'राजधानीमें प्रविष्ट होनेके लिए इससे अच्छा अवसर फिर कभी नहीं मिलेगा'। इसी बातको कई बार दुहराकर उसने उच्चलको शीघ्र नगरमें प्रवेश करनेके लिए प्रेरित किया ॥१३२४॥ उसके कथनानुसार जब उच्चल नगरसे प्रविष्ट होने लगा, तब सुहेलने उसके सैनिकों द्वारा यह सोचकर लूट-मार मचवा दी कि ऐसा करनेसे उच्चलकी बदनामी होगी ॥ १३२५ ॥ तदनन्तर उसने उच्चलको परिहासपुर भेज दिया। क्योंकि उन दिनों पानी भरे गड्ढे तथा भयंकर दलदल होनेके कारण वहाँसे निकलना बहुत मुश्किल था ॥ १३२६ ॥ वहाँ एक चौकमें उच्चल तथा दूसरे चौकमें मण्डलेश्वरने डेरा डाला। उन दोनों चौकोंमे आग लगाकर जला देनेके लिए मण्डलेश्वरने अपने सेवकोंको आदेश दिया, किन्तु उच्चलके प्रति आदर भाव होनेके कारण उन सेवकोंने वैसा नहीं किया ॥ १३२७ ॥ मनुष्यका जैसा चित्त हो, उसी प्रकार साहसी यदि शरीर भी हो तो उस आत्मनिरपेक्ष पुरुषका कौनसा मनोरथ नहीं सिद्ध हो जाता ? ॥ १३२८ ॥ कछुआ दुर्बल तथा भीरु होता है। अतएव शरीरपर अच्छेद्य कवच धारण किये रहता है, किन्तु युद्धकर्ममें साहसी एवं उत्साही सिंह कवचविहीन होता है। जिसका तात्पर्य यह निकला कि मूढ़ विधाता नीच लोगोंका विशेष पक्षपात करके उनकी रक्षा करता है और वीरोंके शरीरको असुरक्षित रखकर चारों ओर बाणसे छेदवाता है। ऐसे विधाताको धिक्कार है ॥ १३२९ ॥ इसके बाद

ततः समस्तसामन्तसैन्यसंततिसंयुतः । अद्य मृत्युर्जयो वेति निश्चित्य निरगान्नृपः ॥१३३१॥
स प्राणसंशये सर्वायामभयसमादिशत् । पटहोद्घोषणेनासीत्परैरनुगतोऽखिलैः ॥१३३२॥
प्राप्तं भरतसेत्वग्रं घ्नन्तः सैन्यं विरोधिनम् । आजानेयै राजभृत्याः क्षणान्मार्गमलङ्घयन् ॥१३३३॥
क्षुभितेऽब्धाविवायाते राजसैन्ये द्विपद्बलम् । मण्डलेश्वर एवान्तःप्रविष्टो निरनाशयत् ॥१३३४॥
अथोच्चलबले भग्ने विदुद्रुः केऽपि जाङ्घिकाः । श्रान्ता राजविहारं च प्राविशन्केऽपि डामराः ॥१३३५॥
भिल्लसेनाभिधं दृष्ट्वा प्रविष्टं डामरं परे । उच्चलोऽसाविति भ्रान्त्या विहारं तमदाहयन् ॥१३३६॥
सोमपालाभिधेनारिहयारोहान्तरे चिरम् । कुर्वन्दर्शनपालस्य पितृव्येण सहाहवम् ॥१३३७॥
यत्नाज्जनकचन्द्राद्यैर्मानी व्यावर्तितो रणात् । परिहासपुरात्कायान्मृत्युवक्त्रादिवोच्चलः ॥१३३८॥
वितस्तां गौरिकावालग्रामात्तीर्त्वा हयान्वितः । स डामरैः सह पुनः प्रययौ तारमूलकम् ॥१३३९॥
जयेन तावन्मात्रेण कितवोऽल्प इवोन्मदः । राजा प्रशंसन्नानन्दं राजधानीं न्यवर्तत ॥१३४०॥
जीवन्तमप्यरिं श्रुत्वा न पश्चादलगत्स यत् । आसन्नुच्छ्वसितास्तेन भङ्गभाजोपि डामराः ॥१३४१॥
यातान्पलाय्य तान्ज्येष्ठामूलीये मासि सर्वतः । भूयोऽपि संघटयितुं स स्थिरधीरैच्छदुच्चलः ॥१३४२॥
स्वदोर्मात्रसहायस्य परायत्तस्य मानिनः । दुर्भिक्षान्तर्महोद्योगः स तस्य विषमोऽभवत् ॥१३४३॥
तन्मध्येतिदरिद्रोऽपि संत्रासं स ररक्ष यत् । तमुत्पाट्यानयद्राजा श्रीपरीहासकेशवम् ॥१३४४॥
तस्मिन्विघटिते पांसुः कपोतच्छदधूसरः । रोदसीच्छादनं हर्षशीर्षच्छेदावधि व्यधात् ॥१३४५॥

मण्डलेश्वर आनन्दने राजा हर्षके पास यह सन्देश भेजा कि 'इस उच्चलरूपी सियारका शिकार मैंने आपके लिए रख छोडा है। अब आप शीघ्र आकर इसे अपने शस्त्रका लक्ष्य बना दीजिए' ॥ १३३० ॥ तब राजा हर्ष समस्त सेना तथा सामन्तोंको साथ लेकर इस निश्चयके साथ घरसे चला कि 'आज या तो विजय प्राप्त होगी अथवा मृत्युका आलिंगन करना होगा' ॥ १३३१ ॥ इस प्राणसङ्कटके समय उसने जेलके अपराधियोंको क्षमा प्रदान करनेका ढिंढोरा पिटवा दिया। ऐसा करनेसे उसे विरोधियोंकी भी सहानुभूति प्राप्त हो गयी ॥ १३३२ ॥ तबतक शत्रुसेना भरतसेतुपर आ पहुँची। अतएव राजाके सैनिक अपने घोड़ोंको दौड़ाकर क्षणभरमें उस स्थानपर जा पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही उन्होंने शत्रुसेनाको ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया ॥ १३३३ ॥ क्षुब्ध समुद्रके समान कोलाहल मचाती हुई राजाकी सेनाको आती देखकर मण्डलेश्वर शत्रुसेनाके भीतर घुसा गया और उसे नष्ट कर डाला ॥ १३३४ ॥ इस पराजयके बाद उच्चलके डामरसैनिकोंमें जो चञ्चल स्वभावके थे, वे तो निकल भागे और जो थक गये थे वे भागकर राजविहारमें जा छिपे ॥ १३३५ ॥ उनके नायक भिल्लसेन नामके डामरको विहारके भीतर जाते देखकर राजाके लोगोंने उसे उच्चल समझ लिया और उस विहारमें आग लगा दी ॥ १३३६ ॥ उस समय दर्शनपालके चाचा सोमपालको अपने संग लेकर उच्चल शत्रुके घोड़सवार सैनिकोंके साथ बडी देरतक लडता रहा। उस स्वाभिमानी वीर उच्चलको उसी समय बड़ी युक्तिसे जनकचन्द्र आदि डामरोंने मृत्युमुख सदृश उस भीषण युद्धमेंसे बाहर निकाल लिया ॥ १३३७ ॥ १३३८ ॥ तदनन्तर उच्चल बल गौरिका बालग्रामके पाससे वितस्तानदीको पार करके डामरोंके साथ फिरसे तारमूलकको वापस चला गया ॥ १३३९ ॥ किसी क्षुद्र जुआड़ीके समान राजा हर्ष इस छोटी-सी विजयसे सन्तुष्ट होकर मण्डलेश्वर आनन्दकी सराहना करता हुआ अपने नगरकोचला गया ॥ १३४० ॥ 'अभी शत्रु जीवित है' यह जानते हुए भी राजा हर्षने उसका पीछा नहीं किया। जिससे वे पराजित डामर पुनः सिर उठाने लगे ॥ १३४१ ॥ उस समय रणभूमि त्यागकर भागे हुए डामर अपने-अपने घर चले गये थे। उन सबको फिर एकत्रित करनेके लिए ज्येष्ठमासमें स्थिरबुद्धि उच्चलने पुनः इच्छा की ॥ १३४२ ॥ उसकी दोनों भुजायें ही सहायक थीं, वह पराधीन था, फिर भी स्वाभिमानी था। उस दुर्भिक्षमें वह महान् उद्योग करना चाहता था, किन्तु उसके सामने बड़ी-बड़ी बाधायें थीं ॥१३४३॥ उसी समय अत्यन्त दरिद्र होते हुए भी उच्चलने जिसकी रक्षा की थी, उस परिहासकेशवकी मूर्तिको राजा हर्ष उखड़वाकर उठा ले गया ॥ १३४४ ॥ उस मूर्तिके उखड़ते ही जंगली कबूतरके पंखकी भाँति

प्रागन्धकारो देशेऽस्मिन्दिवसेऽपि व्यजृम्भत । रुपिकादिवसालोक इति यत्प्रथे जने ॥१३४६॥
निवेशिते परीहासकेशवे प्रशशाम तत् । तस्मिन्नुन्मूलिते भूयः सार्धं मासमजृम्भत ॥१३४७॥
किंचिदुच्छ्वसिते राज्ञि मन्दोद्रेकतया रिपोः । दिशा शूरपुरस्याथ सुस्सलः प्रत्यदृश्यत ॥१३४८॥
अवनाहे स हि वसन्नुपालम्भपरैः पितुः । संदेशैः शंसतो ज्यैष्ठ्यमौदासीन्यादपाहृतः ॥१३४९॥

दत्तान्कल्हक्षितीशेन कांश्चिदादाय वाजिनः ।
चिरेण राजदाक्षिण्यमौज्झीत्तेन व्यलम्बत ॥१३५०॥

आरम्भादुदयान्तं च तिष्ठन्वैरेऽपि निष्ठुरे । साम प्रयुयुजे मोहावहं मायानिधी रिपोः ॥१३५१॥
जित्वा माणिक्यनामानं तेन सेनापतिं रणे । प्रापि शूरपुरद्रङ्गाज्जयश्रीः श्रीश्च भूयसी ॥१३५२॥
तस्याभ्युदयमात्रस्य तया संप्राप्तया श्रिया । आरब्धिसमयः कृत्स्नः स विभूत्यद्भुतोऽभवत् ॥१३५३॥
मण्डलेश्वरपट्टादीनविचिन्त्योच्चलं ततः । प्राहिणोन्नृपतिर्योद्धुं सुस्सलं क्षिप्रकारिणम् ॥१३५४॥
तेन शूरपुरे भग्नास्तद्योधाः शौर्यशालिना । भूयांसः प्रलयं प्रापुर्मग्ना वैतरणीजले ॥१३५५॥
तत्र दर्शनपालस्य स्वामिद्रोहकृतो वपुः । विक्रामतो न संस्पृष्टं खिन्नयेव जयश्रिया ॥१३५६॥
राजसैन्यं तदन्येद्युर्हतशेषं पलायितम् । लोकपुण्ये निवसतः सहेलस्यान्तिकं ययौ ॥१३५७॥
सुस्सलापातकल्पान्तं विशङ्क्यापि सहेलकः । तैस्तैर्भग्नैर्बलैः साकं नगरं प्राविशत्ततः ॥१३५८॥
एवमभ्येत्य नृपतौ सुस्सलेन विमन्त्रिते । अवाप तारमूलस्थः प्रतिष्ठां पुनरुच्चलः ॥१३५९॥

धूसरवर्ण धूल उड़ने लगी, जिससे सभी दिशायें ढँक गयीं वह और धूल तबतक उड़ती रही, जबतक हर्षका सिर नहीं कट गया ॥ १३४५ ॥ उस धूलसे सब ओर इतना भीषण अन्धकार छा गया कि दिनमे भी कुछ दिखायी नहीं देता था। वह अन्धकार तभी कुछ कम हुआ, जब परिहासकेशवकी मूर्ति फिर यथास्थान स्थापित कर दी गयी। उस देशके निवासियोंका कहना है कि जब मूर्ति पुनः प्रतिष्ठित हो गयी, तब उसके तेजसे चारों ओर उजाला हो गया। उसके बाद हर्षने जब फिर वह मूर्ति उखड़वायी तो डेढ़ महीने तक घोर अन्धकार छाया रहा ॥१३४६॥१३४७॥ इधर शत्रुका उपद्रव थम्ह जानेसे राजाको कुछ शान्ति मिली थी, किन्तु इतनेमें शूरपुरकी तरफसे सुस्सल उभड़ा और उस प्रदेशमे उसने भीषण उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया ॥ १३४८ ॥ उन दिनों वह अवनाह ग्राममे रहता था। उसे निरुपाय देखकर उसके पिताने कई बार उलाहनेभरे कड़े सन्देश भेजवाये, जिससे सुस्सल तन्द्रा त्यागकर सक्रिय हो उठा ॥ १३४९ ॥ तदनुसार राजा कल्हसे प्राप्त कुछ घोड़े लेकर वह वहाँसे चला। बहुत समय तक उसके हृदयमें राजा हर्षके प्रति श्रद्धाभाव बना रहा। इससे उसने विलम्ब किया ॥ १३५० ॥ सुस्सल बड़ा मायावी था। अतएव राजाके साथ प्रबल वैर होनेपर भी वह आदिसे अन्ततक अपना हार्दिक भाव छिपाये ऊपरसे प्रेमभाव दिखलाता रहा ॥ १३५१ ॥ शूरपुरकी सरहदपर उसने माणिक्य सेनापतिको परास्त करके विजयश्रीके साथ-साथ विपुल सम्पत्ति प्राप्त की ॥ १३५२ ॥ अभ्युदयके पात्र सुस्सल-का उस सम्पत्तिसे सारा भविष्यकालीन प्रश्न सुलझ गया और आश्चर्यजनक रीतिसे उसका ऐश्वर्य बढ़ने लगा ॥ १३५३ ॥ अतएव उच्चलकी ओरसे ध्यान हटाकर राजा हर्षने मण्डलेश्वर तथा पट्ट आदि वीरोंको उस क्षिप्र-कार्यकारी सुस्सलसे लड़नेके लिए भेजा ॥ १३५४ ॥ किन्तु परम पराक्रमी वीर सुस्सलने उन सबको तुरन्त परास्त कर दिया और उनमेसे बहुतेरे योद्धा वैतरणी नदीमें डूबकर मर गये ॥ १३५५ ॥ उस समय स्वामिद्रोही दर्शन-पालने अपना असाधारण पराक्रम प्रदर्शित किया। किन्तु स्वामिद्रोहसे खिन्न विजयलक्ष्मीने उसके अपवित्र शरीरका स्पर्श नहीं किया ॥ १३५६ ॥ उस युद्धसे बाकी बचे और भागे हुए कितने ही भगोड़े सैनिक दूसरे दिन पासके ही लोकपुण्य ग्राममे रहनेवाले सहेलके पास जा पहुँचे ॥ १३५७ ॥ तब सुस्सलरूपी प्रलयकालके आगमनकी आशंकासे त्रस्त होकर उन भगोड़ों तथा अपनी निजी सेनाको साथ लेकर सहेल राजधानीकी ओर चला ॥१३५८॥ इधर जब सुस्सलने राजा हर्षकी भरपूर दुर्गति कर डाली, तब तारमूलकमे विद्यमान उच्चलका प्रभाव फिर बढ़ने

विस्यद्भिस्तुरगानीकात्पत्तिप्रायैः स डामरैः । आनिन्ये शैलदुर्गेण भूयो लहरवर्त्मना ॥१३६०॥
राजाप्युदयराजाख्यं कृत्वा द्वारपतिं पुनः । प्राहिणोदुच्चलं जेतुं लहरं मण्डलेश्वरम् ॥१३६१॥
ततः पद्मपुरं प्राप्ते मातुले मल्लजन्मनोः । न कोपि कम्पनं भूपान्मन्त्री त्रासातुरोग्रहीत् ॥१३६२॥
को मेस्तीति विनिःश्वस्य वदतोऽथ महीपतेः । अधिकारस्रजं हस्ताच्चम्पराजः समाददे ॥१३६३॥
अनाशीः शयने मृत्युर्येषां तेषां स वंशजः । श्रीजिन्दुराजमुख्यानामौचित्यं प्रत्यपाद्यत ॥१३६४॥
स द्रौणिरिव निर्नष्टे काले सेनापतिः कृतः । निर्गत्य तत्पद्मपुरादरिसैन्यं न्यवारयत् ॥१३६५॥
विपक्षः कम्पनेशः स तेन क्ष्मां क्रामता शनैः । नवम्यां शुक्लनभसो हतोऽवन्तिपुरान्तरे ॥१३६६॥
स हि गोवर्धनधरोपान्ते कुर्वद्भिरहवम् । स्वसैन्यैर्वर्जितो गीतं शृण्वन्परिमितानुगः ॥१३६७॥
प्रविश्यारिहयारोहैर्वितस्तातीरवर्त्मना । प्रापोऽकस्माद्वधं लेभे प्रमत्तानां शुभं कुतः ॥१३६८॥
प्रहितं चन्द्रराजेन क्ष्मापतिर्वीक्ष्य तच्छिरः । भूयो जयाशामकरोदानुकूल्यं विदन्विधेः ॥१३६९॥
वैमुख्येन व्रजन्कुर्यात्सांमुख्यैरन्तरा विधिः । प्रत्यागमभ्रमं सिंह इव व्यावृत्य वीक्षितः ॥१३७०॥
अथ लब्धबलश्चन्द्रराजो मन्दोद्यमोऽविशत् । विजयक्षेत्रमाकर्षन्कटकं दशधाऽष्टधा ॥१३७१॥
तुलाधर इव स्रष्टा साम्यभङ्गं न चक्षमे । तदा द्वयोः कटकयोस्तुलायाः पुटयोरिव ॥१३७२॥
प्राप्ते ततस्तृतीयस्मिन्दिवसे मण्डलेशितुः । अकालवृष्टिविवशं लहरे व्यद्रवद्बलम् ॥१३७३॥
शीतवातहता योधा मग्नाः केदारकर्दमे । तुरगासितनुत्रादि द्राक्तिर्यञ्च इवामुचन् ॥१३७४॥

लगा ॥ १३५९ ॥ उच्चलके सहायक डामर पैदल सैनिक होनेके कारण अश्वारोही सैनिकोंसे दहलते थे। इसी कारण वे सब अबकी बार उच्चलको लोहरप्रान्तके पहाड़ी एवं दुर्गम मार्गसे राजा हर्षपर आक्रमण करनेके लिए ले आये ॥ १३६० ॥ उस समय राजाने उदयराजको द्वारपतिपदपर नियुक्त करके मण्डलेश्वरको उच्चलको हरानेके लिए भेज दिया ॥ १३६१ ॥ दूसरी ओर उच्चलका मामा आनन्द जब पद्मपुर पहुँचा तो राजाके सब मंत्री इतने डर गये कि उनमेंसे कोई भी सेनापति बननेको राजी नहीं हुआ ॥ १३६२ ॥ तब बहुत खिन्न होकर दीर्घश्वास लेते हुए राजा हर्षने कहा—'मेरा हितैषी कौन है ?' उसी समय चन्द्रराजने आगे बढ़कर राजाके हाथसे विद्यमान कम्पनेशके अधिकारकी माला ले ली ॥ १३६३ ॥ चन्द्रराज उन जिन्दुराज आदि वीरोंके कुलमें जनमा था, जिनके यहाँ चारपाईपर पड़े रहकर मरना अभिशाप समझा जाता था। अतएव उस वीरने वही किया, जो उसके कुलकी मर्यादाके अनुरूप था ॥ १३६४ ॥ द्रोणतनय अश्वत्थामाके सदृश चन्द्रराज भी सब कुछ नष्ट हो जानेके बाद सेनापति बनाया गया था। सो उसने नगरसे निकलकर पद्मपुरसे शत्रुकी सेनाको भगा दिया ॥ १३६५ ॥ तदनन्तर वह धीरे-धीरे आगेके प्रदेशोंको जीतने लगा। उसने श्रावण शुक्ल नवमीको शत्रुपक्षके कम्पनेश आनन्दको अवन्तिपुरमें मार डाला ॥१३६६॥ उसके सैनिक गोवर्धनधरके पास शत्रुओंसे लड़ रहे थे और आनन्द उन्हें वैसे ही छोड़कर पासके ही प्रदेशमें कुछ सेवकोंके साथ संगीत सुन रहा था ॥ १३६७ ॥ उसी समय शत्रुके घुड़सवार सैनिकोंने वितस्ता नदीके तटवर्ती मार्गसे वहाँ पहुँचकर उसे देख लिया और अचानक आक्रमण करके मार डाला। इस प्रकारके प्रमादी मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥१३६८॥ चन्द्रराजने उसका मस्तक राजाके पास भेज दिया। उसे देखकर राजाने दैवको अपने अनुकूल माना और विजयकी आशा करने लगा ॥ १३६९ ॥ जैसे मार्गपर चलता हुआ सिंह कभी-कभी पीछे ताककर पुनः लौट पड़नेका सन्देह उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार प्रतिकूल दैव भी कभी-कभी अनुकूलता दिखाकर मानव मनमें आशाका संचार कर देता है ॥ १३७० ॥ तदनन्तर रास्तेमें सैन्य संग्रह करता हुआ चन्द्रराज सेनाकी अठारह टुकड़ियाँ लिये यत्र-तत्र पराक्रम प्रदर्शित करता हुआ विजयक्षेत्रमें जा पहुँचा ॥ १३७१ ॥ उस अवसरपर तौलाई करनेवाले बनियेकी तरह विधाता तराजूके दो पलड़ोंकी भाँति उस पक्ष-विपक्षकी दोनों सेनाओंकी असमानता नहीं सह सका ॥ १३७२ ॥ क्योंकि तीसरे दिन एकाएक बड़ी प्रबल जलवृष्टि होनेके कारण मण्डलेश्वरकी सेनाको लाचार होकर लोहर प्रान्तकी ओर भागना पड़ा ॥ १३७३ ॥ उस समय शीत तथा वातसे पीडित सैनिक मार्गके कीचड़ भरे खेतोंमें बुरी तरह फँस

उच्चलेन ततो रक्ष्यमाणमप्यार्द्रचेतसा । प्राप्तं जनकचन्द्राद्या निजघ्नुर्मण्डलेश्वरम् ॥१३७५॥
हर्षभूभृद्भृत्यवर्गे द्रोहशङ्काङ्किते परम् । कलेवरव्ययात्कीर्तिः क्रीता तेनैव मन्त्रिणा ॥१३७६॥
ध्रुवं संस्पर्धतो वन्द्या देवशर्मादयोऽस्य ते । न चेत्कोऽपि विपर्यासे दोषमुद्घोषयेज्जनः ॥१३७७॥
लवन्योन्मूलनारातिव्यूहव्यामोहनादयः । विध्यधीने फले ध्याते स्तुत्याः कस्य न तत्क्रियाः ॥१३७८॥
किं पातालतमो न हन्ति हिमगुः किं नो विषं भीतये पानीयं गिलतः क्षितान्तरशिखिध्वस्त्यै न धन्वन्तरिः ।
सर्वत्रैकपदे प्रयात्यफलतां वाच्यो जडो नाम्बुधिः सिद्धेर्दैवविधेयतां विमृशतां स्तुत्यैव वस्तुज्ञता ॥१३७९॥
स्वामिकृत्योद्यमस्तुत्यप्रसूतिषु स्त्रीषु पूज्यताम् । गज्जा तज्जननी स्वस्य नमस्यन्त्यविशच्चिताम् ॥१३८०॥
साहसे सा हि तनये यत्र तत्र महीभुजा । प्रहीयमाणे तं स्नेहमोहिताह स्म भूभुजम् ॥१३८१॥
अनन्यसंततेरेकं सुतमेतं प्रभो मम । मा नियुंक्था यत्र तत्र कार्ये संदेहितासुनि ॥१३८२॥
स तामकथयन्मातर्यथा तेऽनन्यसंततेः । तथा मेऽनन्यभृत्यस्य सोऽयमेकोऽवलम्बनम् ॥१३८३॥
स्वसंभवस्य तां भर्तुर्भक्तिसंभावनामसौ । प्राप्तप्रतिष्ठानिष्ठायां मेने मानवती सती ॥१३८४॥
उच्चलस्य क्षणे तस्मिन्हिरण्यपुरमीयुषः । राज्याभिषेकं संभृय तत्रत्या ब्राह्मणा ददुः ॥१३८५॥
नृपमत्यन्तविवशं प्रसङ्गे तत्र मन्त्रिणः । भूयांसः सन्ति तैः सार्धं व्रज तल्लोहराचलम् ॥१३८६॥
प्रजा एव ततः शान्तोत्कण्ठा नवनृपं प्रति । त्वामानेष्यन्ति न चिराद्दिनैर्वा स्वयमेष्यसि ॥१३८७॥

गये। जिससे हताश होकर पशुओंकी तरह उन्होंने अपने घोड़े, तलवारें तथा कवच आदि सब सामान जहाँका तहाँ छोड़ दिया ॥ १३७४ ॥ ऐसी दयनीय स्थितिमें दयालु उच्चल मण्डलेश्वरको बचा लेना चाहता था, किन्तु जनकचन्द्र आदि डामरोंने उसे मार डाला ॥ १३७५ ॥ स्वामिद्रोहकी आशंकासे कलंकित राजा हर्षके सेवकोंमें एक वही ऐसा मंत्रिरत्न था, जिसने अपने शरीरको मूल्यरूपमें देकर कीर्ति खरीदी थी ॥ १३७६ ॥ उस वीर चन्द्रराजके विषयमें यदि कहा जाय कि 'वह देवशर्मा आदि स्वामिभक्तोंके साथ होड़ करना चाहता था' तो जनसाधारणके कुछ लोग मुझे विपरीत इतिहास लिखनेका दोषी कहने लगेंगे ॥ १३७७ ॥ संसारके प्रत्येक कार्यमें यश तथा अपयश दैवके अधीन रहता है। फिर भी लवन्योंकी पराजय एवं नाश तथा शत्रुके षड्यंत्रको विफल कर देने आदि उसके महान् कार्योंकी सराहना कौन नहीं करेगा ? ॥ १३७८ ॥ क्या चन्द्रमा पातालके अन्धकारको नहीं दूर करता ? क्या संसार भरके समुद्रोंका जल सोखनेवाले वड़वानलको हलाहल विषका भय नहीं रहता ? उस विषकी भी शक्तिको ध्वस्त करनेके लिए क्या भगवान धन्वन्तरि नहीं विद्यमान हैं ? इस तरह इस संसारमें एकके लिए दूसरा प्रतियोगी खड़ा ही रहता है। अतएव समुद्रको जड़ मानकर दोष देना उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कार्यकी सिद्धि-असिद्धि दैवके अधीन मानकर समुद्रकी समुचित स्तुति करनेसे ही व्यक्तिकी गुणग्राहकता व्यक्त होगी ॥ १३७९ ॥ स्वामिकार्यके लिए सतत प्रयत्नशील सन्तानोंको जन्म देनेवाली एवं स्त्रियोंमें आदरणीया उसकी माता गज्जा अपना गौरव प्रदर्शित करती हुई चितामें जल गयी ॥ १३८० ॥ जब कभी राजा हर्ष चन्द्रराजको कोई साहसिक कार्य सौंपता था, तब स्नेहसे मोहित होकर गज्जा उस राजासे कहा करती थी— ॥ १३८१ ॥ 'महाराज ! इस पुत्रके सिवाय मेरे और कोई सन्तान नहीं है। इसलिए आप मेरे इस इकलौते बेटेको किसी ऐसे कामपर मत लगाइएगा, जहाँ प्राण जानेका भय हो' ॥ १३८२ ॥ यह सुनकर राजा कहता— 'माताजी ! जैसे आपके पास इसके सिवाय और कोई दूसरी सन्तान नहीं है, वैसे ही मेरे पास भी उसके समान दूसरा कोई सच्चा सेवक नहीं है। मेरा तो एकमात्र वही अवलम्ब है' ॥ १३८३ ॥ अपने औरस पुत्रपर राजाकी ऐसी निष्ठा देखकर वह सती-साध्वी गज्जा बड़े आनन्दका अनुभव करती थी ॥ १३८४ ॥ उन दिनों उच्चल हिरण्यपुर गया हुआ था। तभी वहाँके ब्राह्मणोंने उसका राज्याभिषेक कर दिया ॥ १३८५ ॥ यह समाचार सुनकर व्याकुल राजा हर्षसे उसके मंत्रियोंने कहा—'महाराज ! इस समय आपके शत्रु बहुत प्रबल पड़ गये हैं। अतएव आप सपरिवार लोहराचल चले जाइए ॥ १३८६ ॥ कुछ समय बाद नये राजाकी अभिलाषिणी प्रजाकी उत्कण्ठा जब शान्त हो जायगी, तब वह स्वयं वहाँ जाकर आपको बुला लायेगी, अथवा आप चाहेंगे तो स्वतः

सोऽभ्यधादवरोधस्त्रीकोशसिंहासनाद्यहम् । असामान्यं परित्यज्य गन्तुं सपदि नोत्सहे ॥१३८८॥
पुनस्तेऽकथयन्नाप्ता यान्तोऽप्यारुह्य वाजिनः । पृष्ठे विन्यस्य नेष्यन्ति कोशान्तःपुरयोपितः ॥१३८९॥
श्वपाकीकामुकोऽप्यासीद्यस्मिंस्तदपरोऽपि चेत् । सिंहासनं समारोहेत्काऽभिमानक्षतिस्ततः ॥१३९०॥
आस्तामेतत्परं ब्रूथ मन्त्रमित्यथ चोदिताः ।
ते पार्थिवेन भूयोऽपि ससंरम्भं बभापिरे ॥१३९१॥
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य शासतां क्ष्मां क्षमाभुजाम् । को दैन्यस्यावकाशः स्यादाशीर्येषां मृधे वधः ॥१३९२॥
अनुद्योगश्च लज्जा च भयं द्वैधं च मन्त्रिणा । भूभुजां व्यसनोल्लासे शत्रवो न तु गोत्रिणः ॥१३९३॥
कार्यं न पश्येदलसः स्वयं यो भृत्येषु विन्यस्तसमस्तकृत्यः ।
यष्ट्याश्रयस्येव विनष्टदृष्टेः पदे पदे तस्य किलोपघातः ॥१३९४॥
लज्जेऽहमस्य स्वयमात्तशस्त्रः स्वल्पस्य शत्रोः कलयन्नवज्ञाम् ।
एवं किलादीर्घमतिर्ददाति स्वयं प्रवृद्धिं त्रपया विमुग्धः ॥१३९५॥
कालेन याति क्रिमितां महेन्द्रो महेन्द्रभावं क्रिमिरप्युपैति ।
अयं प्रथीयानयमप्रतिष्ठ इत्येष निष्ठाऽनुचितोऽभिमानः ॥१३९६॥
पराभवाधायि भयं जिगीषोः सर्वाङ्गवैकल्यवताहितेन ।
येनाभियुक्तः स समस्तसंपत्पूर्णोऽपि वैकल्यहतत्वमेति ॥१३९७॥
लब्धस्थितिः स्फीतविभूतिपात्रं दीनोऽभियोक्ता परपिण्डवृत्तिः ।
आद्ये कथं नाम पराभवः स्याद्भयं भवेच्चेह न तत्र भावः ॥१३९८॥

आ जायँगे' ॥१३८७॥ यह परामर्श सुनकर राजा बोला—'अन्तःपुरकी स्त्रियों, कोश तथा राजसिंहासन आदि त्यागकर मैं अभी वहाँ नहीं जाना चाहता' ॥ १३८८ ॥ उन विश्वस्त सचिवोंने कहा—'महाराज ! आप घोड़ेपर सवार होकर चल दीजिए। आपके पीछे-पीछे घोड़सवार सैनिक अन्तःपुरकी स्त्रियों तथा कोश आदि कीमती वस्तुओंको ले जाकर शीघ्र आपके पास पहुँचा देंगे ॥ १३८९ ॥ रही सिंहासनकी बात, सो उसपर तो आपके पहले चण्डाली-के चहेते राजे भी बैठ चुके हैं। अब उसपर यदि कोई दूसरा राजा बैठ ही जायगा तो आपकी कौन बड़ी अप्रतिष्ठा हो जायगी' ॥ १३९० ॥ इसपर राजाने कहा—'अभी आप इस सलाहको अपने पास रहने दीजिए—कोई दूसरा रास्ता बताइए'। इस प्रकार राजाके द्वारा प्रेरित मंत्री कुछ तैशमें आकर कहने लगे ॥ १३९१ ॥ 'राजन् ! क्षात्रधर्मको अपना आदर्श मानकर पृथिवीपर शासन करनेवाले राजाओंको दैन्य प्रदर्शित करनेका मौका ही कहाँ मिलता है ? क्योंकि वे तो युद्धमें मरणको आशीर्वाद समझते है ॥ १३९२ ॥ विपत्तिमें पड़े हुए राजाओंके वास्तविक शत्रु उनके बन्धु-बान्धव आप्तजन तथा मंत्री नहीं होते। वास्तविक शत्रु तो होते हैं—निरुद्योग, लज्जा, भय तथा मंत्रियोंके साथ मतभेद ॥ १३९३ ॥ जो आलसी राजा अपना सारा काम सेवकोंको सौंप देता है, उसे पद-पदपर उसी तरह ठोकरें खानी पड़ती हैं, जैसे आँखोंका अन्धा मनुष्य लाठीके सहारे चलता हुआ बराबर गिरता-पड़ता रहता है ॥ १३९४ ॥ सशस्त्र हो हुआ भी जो राजा अपने शत्रुको छोटा समझकर सोचता है कि 'मैं इसपर प्रहार करनेमें लज्जाका अनुभव करता हूँ' और इसी विचारके आधारपर अवज्ञापूर्वक उसे छोड़ देता है तो आगे चलकर उस अदूरदर्शी राजाको उससे परास्त होकर लज्जित होना पड़ता है ॥ १३९५ ॥ समयके प्रभावसे एक साधारण कृमि इन्द्र बन जाता है और इन्द्रको कृमि बनना पड़ता है। अतएव यह सोचना मिथ्या अभिमानमात्र है कि अमुक व्यक्ति बहुत बड़ा आदमी है और अमुक व्यक्ति तुच्छ है ॥ १३९६ ॥ जिस विजिगीषु राजाके हृदयमें भय समा जाता है, उसकी पराजय अवश्य होती है। कभी-कभी तो सर्वथा विकल (अकिंचन) शत्रुओं द्वारा सभी सम्पदाओंसे परिपूर्ण राजाको हार खानी पड़ जाती है ॥ १३९७ ॥ जिसकी उच्च स्थिति है, जो निर्भय है और जिसके पास उत्कृष्ट विभूतियाँ विद्यमान हैं, वह पुरुष उन लोगोंके द्वारा कैसे

अमात्यवैमत्यवशेन निष्ठा दृष्टा न कार्यस्य तनीयसोऽपि ।
वैशाखरज्जोरिव कूर्पकाभ्यां पर्याययोगेन कृते विकर्षे ॥१३९९॥
समग्रशक्तेरेकेनाप्याशाक्रान्तस्य भूपतेः । वैरी सर्वाङ्गहीनोऽपि राज्यमायुश्च कर्षति ॥१४००॥
यत्र द्विपस्तत्र याहि क्रान्तां क्रान्तां च मेदिनीम् । पातार्थी न चिरादेवं पुनर्जयमवाप्स्यसि ॥१४०१॥
विधुरेऽपि विधौ शूरसहस्रपरिवारतैः । पतद्भिराहवे भूपैः ख्यात्याभिख्योपलभ्यते ॥१४०२॥
नृत्यच्छिन्नशिरोधरोद्धुरनटे ज्यालावुवीणागुणप्रक्वाणिन्युदयच्छिवामुखशिखिज्वालाप्रदीपाङ्कुरे ।
धन्याः केऽप्युपलभ्य वीरशयने शान्ताभिमानज्वरोल्लाघश्लाघ्यशरीरतासफलितस्निग्धाशिषः शेरते ॥१४०३॥
उदात्तमित्यन्तकृत्यं संचिन्त्य कितवा इव । राज्ये भजन्ते दीव्यन्तः क्षत्रियास्त्रासहीनताम् ॥१४०४॥
मन्त्रान्तरानुयोक्तारं तदप्युत्सृज्य मन्त्रितम् । परुषं प्राप्तकालं च ते निःश्वस्य तमब्रुवन् ॥१४०५॥
उत्कर्षवदसूंस्त्यक्तुमपि शक्तोपि संकटे । अन्यथानुचितं किंचित्प्राप्स्यस्यहितचिन्तितम् ॥१४०६॥
स तानुवाच स्वं हन्तुं न शक्तोऽहं ततो मयि । भवद्भिरेव विषमे प्रहर्तव्यमुपस्थिते ॥१४०७॥
गिरं कापुरुषस्येव क्लैब्यग्रस्तस्य तां प्रभोः । सवाष्पास्तेऽनुशोचन्तः पुनरेवं बभाषिरे ॥१४०८॥
प्रतीकाराय नः शक्तिर्न चेद्दैवहतौजसाम् । प्रत्युतैवंविधे कृत्ये प्रसरेयुः कराः कथम् ॥१४०९॥
पशून्पुरुषरूपान्स नूनं भूभृत्पुपोष तान् । दुःखेनोदखनंस्तस्य ये तादृग्दैन्यमीनुषः ॥१४१०॥

पराजित या भयभीत हो सकता है ? जो दीन हैं, कायर हैं और परमुखापेक्षी है ॥ १३९८ ॥ मंत्रियोंके आपसी मतभेदसे मामूली काम भी बनना कठिन हो जाता है। क्योंकि कूपकोंकी वैशाखरज्जु (पशु बाँधनेके लिए बटी जानेवाली रस्सी) के खींच-तानकी तरह मंत्रियोंके दो दलोंमें ही रस्साकशी होने लग जाती है ॥ १३९९ ॥ सर्वाङ्गविहीन एक तुच्छ व्यक्ति भी समस्त शक्तियोंसे परिपूर्ण किन्तु आशावादी राजाके राज्य तथा आयुष्य दोनोंको नष्ट कर सकता है ॥ १४०० ॥ राजाके तो सर्वत्र शत्रु होते हैं और इस धरतीपर एकके बाद दूसरा राजा होता ही है। अतएव आप यदि हमारे बताये मार्गपर चलेंगे तो आपको फिरसे राज्य प्राप्त हो जायगा ॥ १४०१ ॥ यदि भाग्यकी प्रतिकूलतावश राज्य न भी मिला तो हजारों वीरोंसे घिरे हुए राजाओंको रणभूमिमें पराक्रम प्रदर्शित करके मरनेसे जो ख्याति और शोभा प्राप्त होती है, वह तो आपको अवश्य मिलेगी ॥ १४०२ ॥ किसी वीर पुरुषका जब मस्तक कट जाता है और उसका मस्तकविहीन कबन्ध रणाङ्गणमें नाचने लगता है, तब धनुषकी प्रत्यञ्चाका टंकार वीणाके तारोंकी झंकारके समान उस नृत्यमें संगत करता है और सियारोंके झुण्ड उसके समक्ष जाकर मुखसे निकलनेवाली आगकी लपटोंके दीपकों द्वारा उसकी आरती उतारते हैं। उस समय उसका शारीरिक अभिमान शान्त हो गया रहता है और शरीरलाभकी सफलतासे पूर्णकाम तथा धन्य होकर वह वीर सानन्द मृत्युशय्यापर सोता है ॥ ११०३ ॥ इस तरह जुआड़ीके समान क्षत्रिय लोग इस अन्तिम कृत्यको श्रेयस्कर समझकर राज्यकी बाजी लगाकर खेल खेलते हुए सदाके लिए निर्भय हो जाते हैं' ॥ १४०४ ॥ मंत्रियोंकी इस सलाहको भी जब राजा हर्षने नहीं माना और दूसरी सलाह देनेके लिए प्रेरित किया, तब शोकाकुल भावसे दीर्घश्वास छोड़ते हुए वे मन्त्री समयानुकूल कठोर वचन बोले— ॥ १४०५ ॥ 'महाराज ! यदि आप अपने प्राणोंकी तनिक भी चिन्ता न करके अपने पिता उत्कर्षके समान प्राण त्याग सकें तो बहुत अच्छा हो। नहीं तो आपको शत्रुओंकी ओरसे किसी प्रकारके भीषण अपमानका सामना करना पड़ जायगा' ॥ १४०६ ॥ यह सुनकर राजाने कहा—'मैं आत्महत्या करनेमे सब तरहसे असमर्थ हूँ। अतएव जब कभी शत्रुसे अपमानित होनेका अवसर आ पड़े तो आप ही लोग मुझे मार डालिएगा' ॥ १४०७ ॥ एक साधारण श्रेणीके कायर-पुरुषकी तरह राजाके भयभरे वचन सुनकर मन्त्रियोंके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये और अत्यन्त शोक प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—॥ १४०८ ॥ 'राजन् ! अभाग्यवश यदि ऐसा विकट प्रसंग आ ही गया और हमलोग उसका प्रतीकार नहीं कर सके तो भी उस समय आपके कथनानुसार आपकी हत्या जैसा भयंकर दुष्कर्म करनेके लिए हमारे हाथ कैसे उठेंगे ?' ॥ १४०९ ॥ सच तो यह है कि उस राजाने

युगान्तानपि जीवित्वा कायः सापाय एव यः । तत्त्यागमात्रसाध्येऽर्थे धिग्दैन्यमनुजीविनाम् ॥१४११॥
योषितोपि विशन्त्यग्निं यं ध्यात्वा विस्मृतिं व्रजेत् । भर्तृस्नेहः स पुंसोपि यस्य कोन्यस्ततोऽधमः ॥१४१२॥
शैलूषस्येव ये शोकभयदैन्याद्यविक्रियाः । भर्तुः पश्यन्ति तैरेषा भूः सतीर्थाप्यपावनी ॥१४१३॥
क्षुत्क्षामस्तनयो वधूः परगृहप्रेष्यावसन्नः सुहृद्दुग्धा गौरगनाद्यभावविवशा हम्भारवोद्गारिणी ।
निष्पथ्यौ पितरावदूरमरणौ स्वामी द्विषन्निर्जितो दृष्टो येन परं न तस्य निरये भोक्तव्यमस्त्यप्रियम् ॥१४१४॥
भूयोऽपि मानुषपशून्स तान्नृपतिरब्रवीत् । उदात्तकृत्योऽप्याविश्य भूतैरिव विमोहितः ॥१४१५॥
एतस्मिन्पश्चिमे काले भुक्तं राज्यं यथा मया । जाने विशालेच्छतया तथान्यो नोपभोक्ष्यते ॥१४१६॥
यमः कुवेरश्चौष्ठाग्रे राज्ञां तिष्ठत इत्यसौ । मदेकशरणैवाभूत्ख्यातिरस्मिन्कलौ युगे ॥१४१७॥

रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राद्याः प्रयातारो यदध्वना ।
उपस्थितायां नियतौ तत्र मर्त्यस्य काः शुचः ॥१४१८॥

किं तु दूये यदेषा भूर्भूत्वा कुलवधूरिव । मद्दोपाद्धट्टचेटीव प्राप्ता प्रसभभोग्यताम् ॥१४१९॥
इतः प्रभृति यः कश्चिद्राज्यस्यास्य गतौजसः । चक्रिकामात्रसाध्यत्वं जानन्नाशां करिष्यति ॥१४२०॥
अलौकिके कृते यद्यत्तद्वीक्ष्य फलवन्ध्यताम् । प्राप्तोदयैरल्पसत्त्वैर्दर्पान्नूनं हसिष्यते ॥१४२१॥
कार्यारम्भः फलोल्लासमालोक्य प्रायशो जनैः । अनानुगुण्यगणनां कुर्वाणैर्न विगर्ह्यते ॥१४२२॥

मन्त्री नहीं, वल्कि उन पुरुषरूपधारी पशुओंका पालन किया था, जो इस प्रकार दीन तथा हताश उस राजाके उन करुण वचनोंको सुन करके भी उसके दुःखका प्रतीकार नहीं किया॥ १४१० ॥ युगके अन्ततक जीनेवाला भी जो शरीर एक दिन नष्ट होने ही वाला है, उसके त्यागसे होनेवाले कार्यमें जो सेवक शरीर त्यागनेमें पीछे हट जाते हैं, ऐसे सेवकोंको धिक्कार है ॥ १४११ ॥ जिस स्वामिस्नेहका स्मरण करके स्त्रियाँ भी धधकती चितामें जल मरती हैं, उस स्वामिस्नेहको जो लोग पुरुष होते हुए भी भूल जाते हैं, उनसे बढकर अधम भला और कौन होगा ? ॥ १४१२ ॥ जो सेवक स्वामीको अभिनेताके समान शोक, भय, दैन्य आदि विकारोंका प्रदर्शन करते देखकर भी निर्विकारभावसे मजेमे बैठे रहते हैं, उन नराधमोंके कारण अनेकानेक तीर्थोंसे परिपूर्ण होती हुई भी धरती अपवित्र वनी रह जाती है ॥१४१३॥ जो अपने घरमें भूखों मरते बच्चों, पराये घर सेवाकर्म करनेवाली स्त्री, दुःख सहते हुए सच्चे मित्र, क्षुधासे पीडित दुधार गाय, रुग्णावस्थामें पथ्य न मिलनेसे मरते हुए पिता एवं शत्रुसे पराजित होते हुए स्वामीको देख चुका हो, उसे इससे बढ़कर नरकमें भी कौन-सी यातना सहनी पड़ेगी ? ॥ १४१४ ॥ फिर भी उस राजाने उन नरपशुओंसे कहा—'देखिए, मैंने जीवनमें बडे ऊँचे दर्जेके काम किये हैं। तथापि इस समय एक भूताविष्ट प्राणीके समान मेरी बुद्धिमें मोह उत्पन्न हो गया है ॥ १४१५ ॥ इस नये जमानेमें जिस तरह मैंने राज्यका उपभोग किया है, वैसा राज्य विशाल वैभव-सम्पन्न होता हुआ भी कोई अन्य राजा नहीं भोग सकेगा। इस वातका मुझे पूर्ण विश्वास है ॥ १४१६ ॥ इस कलिकालमें यह लोकोक्ति वस्तुतः मेरे ही विषयमें चरितार्थ हुई है कि 'राजाके ओष्ठाग्रपर यम और कुवेर ये दोनों ही देवता निवास करते हैं' ॥ १४१७ ॥ जब नियतिका निर्दिष्ट समय आ जानेपर रुद्र, उपेन्द्र एवं महेन्द्रको भी मृत्युके मार्गसे अवश्य जाना पड़ता है, तब उसके विषयमें मनुष्य क्यों शोक करे ॥ १४१८ ॥ किन्तु मुझे खेद केवल इसी वातका है कि मेरे राज्यकालमें जो धरती एक कुलवधूके समान उच्चस्थितिमें थी, अव वह बाजारू औरतके समान सवकी उपभोग्य वन जायगी ॥ १४१९ ॥ अबसे जो मनुष्य कुचक्र रचनेमें निपुण होगा, वही इस हतप्रभ राज्यको प्राप्त करनेकी आशा कर सकेगा ॥ १४२० ॥ इस राज्यको प्राप्त करनेके लिए मैंने जो लोकोत्तर कार्य किये हैं, वे सव विफल हो गये। अतएव थोड़े परिश्रमसे सफलता प्राप्त करके भविष्यकी पीढीवाले अल्पवली लोग मेरा उपहास करें ॥ १४२१ ॥ मनुष्यको यदि किसी भी उद्योगमें सफलता प्राप्त हो जाती है तो कोई उसे बुरा नहीं कहता और न यही सोचता है कि वह उद्योग उस समयके अनुरूप था या नहीं ॥ १४२२ ॥

पश्चान्तकोरिग्वलम्वनभृः स नेत्रं दुग्धेन यस्य मरणं धियि कैरिवेत्थम्।
पारं गते मथनकर्मणि मन्दराद्रेर्दोषोऽर्प्यते त्रिगुणहेतुपरीक्षणेन ॥१४२३॥
शास्त्रसंदर्भविच्छेदेऽपि श्रीगर्भत्वमदर्शयम्। जनोपजीवनार्थं यत्तज्जातं जाड्यसिद्धये ॥१४२४॥
उच्चलेनापि सत्कृत्ये हस्ताग्रोच्छ्रेयचेतसा। दर्शितश्यामदशनं करिष्यन्ते विडम्बनाः ॥१४२५॥
ततोऽवमानात्त्रासात्संत्रासोऽत्र विहस्तताम्। समर्थनेच्छुर्वाञ्छामि मृत्युमीदृगमप्यहम् ॥१४२६॥
स्वैरेव स हतो नो चेत्कस्तस्माद्वसुधां हरेत्। लब्धां रक्षितुमिच्छामि ख्यातिमेतेन हेतुना ॥१४२७॥
मुक्तापीडः पुरा राजा ज्वलित्वा मूर्ध्नि भूभुजाम्। कार्पण्यप्रणयं प्राप लब्धरन्ध्रो विरोधिभिः ॥१४२८॥
स ह्युत्तरपथे नानापथस्थगितसैनिकः। मितानुगोऽहितै रुद्धमार्गोऽभूद्दुर्गमेऽध्वनि ॥१४२९॥
तं शल्यो नाम सामग्र्यवैकल्यविवशं नृपः। बद्धुं प्रतिज्ञामकरोद्वाजिलक्षैर्युतोऽष्टभिः ॥१४३०॥
स सामप्रमुखोपायापायध्यानावसन्नधीः। भवस्वाम्यभिधं कृत्यमपृच्छन्मुख्यमन्त्रिणम् ॥१४३१॥
असाध्यां सोऽपि निर्ध्याय विनिपातप्रतिक्रियाम्। न्याये निश्चित्य नैयत्यं कर्तव्ये प्रत्युवाच तम्॥१४३२॥
उपाययुक्तिप्रत्युक्ते कृत्ये कीर्त्यभिमानिनाम्। निःसंभ्रमेव प्रतिभा लोभेनाक्षोभिते हृदि ॥१४३३॥
कृत्यं कृत्यविदो लब्धप्रसिद्धिपरिरक्षणम्। साम्राज्योपार्जनमुखो व्यापारस्त्वानुषङ्गिकः ॥१४३४॥
गन्छन्त्यशरीरविच्छेदादपि भस्मावशेषताम्। कर्पूरः सौरभेणेव जन्तुः ख्यात्याऽनुमीयते ॥१४३५॥

समुद्रमन्थनके महान् कार्यमें सफलता मिलनेकी सम्भावना देखकर इस कार्यमें पर्वतोंके पंख काटनेवाले इन्द्र और विषधर वासुकी नागके रज्जुरूपमें विद्यमान रहनेपर भी उपर्युक्त दोनों सहायकोंके विपरीत व्यवहारका परीक्षण न करके तन्मयतापूर्वक मथानीका काम करनेवाले मन्दर पर्वतको क्या कोई दोषी ठहराता है ? ॥ १४२३ ॥ शास्त्रसन्दर्भका विघ्न होते हुए भी मैंने जनताकी भलाईके लिए समय-समयपर श्रीगर्भत्व प्रदर्शित करते हुए अपने धनसे जनसाधारणको सुखी तथा सम्पन्न बनानेका प्रयत्न किया है। मेरे उन्हीं उदार कार्योंने आज मुझे मूर्ख साबित कर दिया ॥ १४२४ ॥ उँगलीकी पोरके समान अतिशय अल्पबुद्धि उच्चल भी अब अपने काले-काले दाँत दिखाता हुआ मुझे नीचा दिखायेगा ॥ १४२५ ॥ मैं जो आज अपनेको इतना विवश पा रहा हूँ, उसका एकमात्र कारण अपमान है—भय नहीं। इस बातको प्रमाणित करनेके निमित्त मैं अकाल मृत्युकी कामना कर-रहा-हूँ ॥१४२६॥ इस प्रकारकी किंवदन्ती द्वारा मैं अपनी प्रसिद्धिकी रक्षा करना चाहता हूँ कि 'यदि अपने ही लोगोंने इस राजाकी हत्या न कर दी होती तो उससे पृथिवीको भला कौन छीन सकता था ॥ १४२७ ॥ प्राचीनकालमें मुक्तापीड नामका एक राजा बहुतेरे राजाओंके सिरपर तप रहा था। किन्तु शत्रुओंने मौका पाकर उसे प्राणसंकटमें डाल दिया ॥ १४२८ ॥ बात यह हुई कि राजा मुक्तापीड उस समय उत्तरापथके मार्गोंपर भ्रमण कर रहा था। सुरक्षाकी दृष्टिसे उसने उन मार्गोंपर जगह-जगह सैनिक तैनात कर दिये थे। इस प्रकार निर्द्वन्द्व होकर जब वह अपने इने-गिने अनुचरोंके साथ घूम रहा था, उसी समय किसी दुर्गम स्थानपर शत्रुओंने उसे घेर लिया ॥१४२९॥ युद्धोपयोगी सामग्रीकी कमीके कारण विवश राजा मुक्तापीडको आठ लाख घोड़सवारोंकी सेनाके साथ जाकर राजा शल्यने कैद कर लेनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥ १४३० ॥ उस समय साम-दान आदि उपायोंसे अपना छुटकारा असम्भव समझकर राजाने अपने घबड़ाये हुए प्रधान मन्त्री शिवस्वामीसे समयके अनुकूल कर्तव्य पूछा ॥ १४३१ ॥ प्रधान मन्त्रीने भी उस भीषण संकटसे निस्तार-का उपाय असाध्य समझकर उचित कर्तव्यका निर्धारण करके राजासे कहा—॥ १४३२ ॥ 'अपने निष्कलंक यशका अभिमान रखनेवाले मनस्वी पुरुषोंके लोभ तथा क्षोभशून्य शुद्ध हृदयमें विराजमान अकुंठित प्रतिभा ही युक्तिसंगत कर्तव्य सुझा दिया करती है ॥ १४३३ ॥ जीवनमें संचित ख्यातिको सुरक्षित किये रहना ही कर्मठ एवं बुद्धिमान मनुष्योंका मुख्य कर्तव्य है। साम्राज्य उपार्जन आदिका काम तो गौण होता है ॥ १४३४ ॥ जैसे जलता हुआ कपूर अपनी सुगन्धिसे पहचाना जाता है। वैसे ही शरीरके नष्ट हो जानेपर भस्मावशिष्ट

शान्तयोर्जीवितस्थानं द्वयमत्यद्भुतं द्वयोः । अनङ्गस्याङ्गनापाङ्गः स्तोतृजिह्वा यशस्विनः ॥१४३६॥
ख्यातिसंरक्षणं नाम जन्तोः कल्पान्तरस्थितिः । वर्तन्ते कीर्तिकायस्य संपूर्णाः परमाणवः ॥१४३७॥
धीरैर्विधिश्च निर्ध्येयो विरोधिष्ववधानवान् । यस्तेषामुन्नतिधनध्वंसाय यततेऽन्वहम् ॥१४३८॥
तुङ्गावपातनहठव्यसनी विधाता स्वोत्पत्तिपद्मकुलजेऽपि सरोजपण्डे ।
संकोचिनि द्विजपतावपि शुद्धिवन्ध्ये मातङ्गहस्तपतनैः कुरुतेऽवमानम् ॥१४३९॥
ये हठापातिनो धातुर्धियं ख्यातिनिपातने । रक्षितुं समुपेक्षन्ते तैः किं नाम रक्षितम् ॥१४४०॥
जातिः क्ष्माभृति वंशजाश्रयतया ख्यातिप्रतिष्ठामिमामुद्दीप्यानलभुञ्झितस्ववपुषः केप्यत्र वेत्राङ्कुराः ।
त्रातुं हन्त विदन्ति ये न विधिना क्रुद्धेन पृथ्वीभृता द्वारि द्वाःस्थकरैर्गतागतखलीकाराणि संप्रापिताः॥१४४१॥
भोगान्निर्वाणभूयिष्ठानिष्टान्प्राप्तानवेत्य तत् । प्रतिष्ठासौष्ठवत्राणे संरब्धुं देव सांप्रतम् ॥१४४२॥
दण्डकालसकाख्यस्य तद्रोगस्याशुकारिणः । पार्थिवाकस्मिकोत्थानं मिपादद्य प्रकाश्यताम् ॥१४४३॥
श्वो वक्ताऽस्म्यथ कर्तव्यं व्यापत्प्रक्षपणक्षमम् । उक्त्वेति स महामात्यो निर्गत्य स्वगृहानगात् ॥१४४४॥
दण्डकालसकं दण्डधरो व्यञ्जन्मिपात्ततः । अधीर इव चक्रन्द लुठन्निस्पन्दलोचनः ॥१४४५॥
स्वेदसंवाहनस्नेहवमनाद्यैरुपक्रमैः । निःशैथिल्यव्यथं तेन मुमूर्षुं तं जनोऽवदत् ॥१४४६॥
ततो निश्चितमृत्युत्वं पत्युः कथयता कृतः । वह्निप्रवेशोऽमात्येन कृतज्ञत्वनिवेदकः ॥१४४७॥
कर्तव्यशेषं दाक्षिण्यादनाचक्षाणमग्रतः । युक्त्योक्तनिष्ठुराचारमन्तस्तुष्टाव तं नृपः ॥१४४८॥

प्राणी अपनी ख्यातिसे ही जाना जाता है ॥ १४३५ ॥ शान्त (मरे हुए) यशस्वी पुरुप और शान्त कामदेव इन दोनोंके लिए क्रमशः स्तुतिपाठक (वन्दीजन) की जिह्वा और सुन्दरी स्त्रीके कटाक्ष ये दोनों विलक्षण जीवन स्थान हैं ॥ १४३६ ॥ अपनी ख्यातिकी रक्षा करनेसे ही प्राणी कल्पान्तपर्यन्त अपना स्थायित्व सिद्ध कर सकता है। क्योंकि कीर्तिरूपी शरीरको स्थिर रखनेसे ही परमाणुओंका काम पूरा होता है ॥ १४३७ ॥ धैर्यशाली पुरुपोंको चाहिए कि अपने विरोधियोंके विपयमें सदा सावधान रखनेवाली विधिकी ओर ध्यान देते रहें। क्योंकि विरोधी नित्य उनकी उन्नति तथा धनका विनाश करनेके लिए सचेष्ट रहता है ॥ १४३८ ॥ उन्नत पुरुपको वरवस नीचे गिरा देनेका विधाताको जैसे व्यसन हो गया है। इस व्यसनके अनुसार वह अपने ही उत्पत्तिके स्थानस्वरूप कमलवनको चन्द्रमाके उदित होते ही संकुचित तथा मतवाले हाथियोंकी सूँड़से अपमानित कराता है ॥ १४३९ ॥ ऐसी परिस्थितिमें जो लोग वलात् लोगोंकी कीर्ति नष्ट करनेवाले विधाताकी वुद्धिकी उपेक्षा करके अपनी कीर्तिकी रक्षा नहीं करते तो उन्होंने आखिर जीवनमें किस वस्तुकी रक्षा की ? ॥ १४४० ॥ उच्च कुलमें जन्म लेनेके कारण राजाओंमें अपनी ख्यातिको उज्ज्वल करके अच्छी किस्मके वेत्रांकुरकी भाँति जोअपनेको आगमे जलाकर भस्म कर डालते हैं, ऐसे साहसी राजे संसारमें विरले ही हैं। इसके विपरीत जो अपनी ख्याति तथा प्रतिष्ठाकी रक्षा नहीं करते, उन्हें विधाताके कोपसे शत्रु राजाओंके द्वारपालोंका हाथ थाम्हकर वार-वार राजद्वारपर आना-जाना पड़ता है ॥ १४४१ ॥ अतएव हे महाराज ! पूर्व समयमें आपने जिन भोगोंका उपभोग किया था, वे सव प्रायः नष्ट हो चुके हैं। ऐसा सोचकर अव आप प्राणप्रणसे अपनी प्रतिष्ठा और अपने महत्त्वकी रक्षा करिए ॥ १४४२ ॥ तदनुसार आज ही आप यह प्रसिद्ध कर दीजिए कि 'मुझे अकस्मात् शीघ्रपरिणामी दण्डकालसक रोग हो गया है ॥ १४४३ ॥ इस भीषण विपत्तिसे त्राण पानेका उपाय मैं कल आपको वताऊँगा'। यह कहकर वह मुख्य मंत्री अपने घर चला गया ॥ १४४४ ॥ तदनन्तर मंत्रीके कथनानुसार राजाने दण्डकालसक रोगका वहाना करके जोर-जोरसे कराहना आरम्भ कर दिया और मरणासन्न अवस्था प्रदर्शित करता हुआ आँखें मूँदकर धरतीपर छटपटाने लगा ॥ १४४५ ॥ जव स्वेदन, संवाहन एवं वमन आदि उपचारोंसे भी उसका रोग शान्त नहीं हुआ, तव लोगोंकी यह धारणा हो गयी कि राजा अव अवश्य मर जायगा ॥ १४४६ ॥ वह उपाय वतानेवाला प्रधान मंत्री कृतज्ञता प्रदर्शित करता हुआ अग्निमें जल गया। क्योंकि उसने अपने स्वामीकी मृत्यु निश्चित समझ ली थी ॥ १४४७ ॥ ऐसा करके मन्त्रीने अपने दाक्षिण्यवश

अग्नौ तः सोढुमुद्दामां व्यथामस्मीति वादिना । राज्ञाऽप्यनलसाद्देहं ततश्चक्रेऽभिमानिना ॥१४४९॥
तेन प्राणानुपेक्ष्यैवमन्यख्यातेर्मनस्विना । ऊर्ध्वाधिरोहे सोपानं कृतं न निजकीर्तनात् ॥१४५०॥
एवं दैवोपनीतानामख्यातीनां चिकित्सितम् । स्वधियामात्यबुद्ध्या वा पारमेति मतस्विनाम् ॥१४५१॥
इत्युक्त्वा विरतो वंशबीजरक्षार्थमात्मजः ।
भोजो विसृज्यतां कोटमेवमूचेऽथ मन्त्रिभिः ॥१४५२॥
तं राजपुत्रं प्रस्थानमङ्गलान्ते विनिर्गतम् । पुनर्व्यावर्तयामास दण्डनायकमोहितः ॥१४५३॥
सा धीः स साहसारम्भस्तद्धैर्यं तुल्यमापदि । नष्टमेकपदे तस्य नाशकाले ह्युपस्थिते ॥१४५४॥
लक्ष्मीतडिल्लता कीर्तिबलाका शौर्यगर्जितम् । प्रतापशक्रचापं च भागधेयाम्बुदानुगम् ॥१४५५॥
वीर्यशौर्यादिगुणेन भाग्यसमये प्रागेव एको नृपः शक्रस्याक्रमणं क्रियेत न कुतोऽनेनेति संभाव्यते ।
मौग्ध्यं पङ्गुजडान्धवच्च स ततो गच्छन्नभाग्योदये दत्तोऽनेन पदक्रमो भुवि कथं नामेति संचिन्त्यते ॥१४५६॥
विरोधिविनिरोधाय तन्त्रिसैन्यं विसर्जितम् । नगरस्थमपि क्ष्मापात्प्रवासधनमाददे ॥१४५७॥
दायादाश्रयणं राजभृत्याः सर्वेऽपि चक्रिरे । ये केचित्त्ववसन्नेहे ते देहैरेव केवलम् ॥१४५८॥
परश्रयपरं द्वित्रा न संकल्पमपि व्यधुः । किं वा स्तुतैस्तैर्ये स्त्रीवदमुञ्चन्नचिरादसून् ॥१४५९॥
यां काणशावतीनर्तक्यन्वये कापि नर्तकी । पुत्रीचक्रे क्वापि जातां जयमत्यभिधाथ सा ॥१४६०॥

राजाको रोग अथवा संकटसे मुक्तिका उपाय शब्दों द्वारा न बताकर कर्तव्यके द्वारा करके दिखा दिया। इस प्रकार युक्तिपूर्वक कर्तव्यपथका प्रदर्शन करनेवाले मुख्यमन्त्रीकी लोगोंने बड़ी सराहना की ॥१४४८॥ तदनन्तर यह कहकर कि मैं यह भीषण वेदना सहनेमें असमर्थ हूँ उस राजाने भी अभिमानके साथ अग्निप्रवेश किया ॥ १४४९ ॥ उस तरह उस मनस्वी राजा मुक्तापीडने कुख्यातिसे बचनेके लिए प्राणोंकी उपेक्षा करके अपने लिए स्वर्गारोहिणीकी सीढ़ी-सी तैयार कर ली ॥ १४५० ॥ इस प्रकार भाग्यवश आयी हुई अपकीर्तिका मनस्वी राजे अपनी बुद्धि तथा मन्त्रियोंकी सलाहसे परिहार कर लिया करते हैं ॥ १४५१ ॥ ऐसा कहकर राजा हर्ष चुप हो गया। तदनन्तर मन्त्रियोंने राजवंशके बीजकी रक्षाके लिए राजकुमार भोजको लोहरके किलेमें भेज देनेकी सलाह दी ॥ १४५२ ॥ तदनुसार राजकुमार मांगलिक प्रस्थान करके यात्रा करनेको घरसे निकला ही था कि इतनेमें दण्डनायककी बातोंके चक्करमें पड़कर राजाने उसे वापस लौटा लिया ॥ १४५३ ॥ विनाशकाल का उपस्थित होनेके कारण राजा हर्षकी वह पहलेवाली तीक्ष्ण बुद्धि, वे साहसिक कार्य और विपत्तिमें भी असाधारण धैर्य, ये सब गुण सर्वथा नष्ट हो गये ॥ १४५४ ॥ लक्ष्मीरूपिणी तडिल्लता (कौंधनेवाली बिजली), कीर्तिरूपिणी बगुलियाँ, शौर्यरूपी गर्जन और प्रतापरूपी इन्द्रधनुष ये सब भाग्यरूपी मेघके ही आधारपर टिकते हैं ॥ १४५५ ॥ जिस समय किसी राजाका भाग्य प्रबल होता है, तब उसके शौर्य, वीर्य, धैर्य आदि सद्गुणोंको देखकर लोग सोचने लगते हैं कि 'यह इन्द्रपर आक्रमण क्यों नहीं कर देता ?' किन्तु जब उसी राजाके दुर्भाग्यका उदय होता है और वह सर्वथा पंगु, जड़, अन्ध, विमूढ एवं निर्बल हो जाता है। तब वे ही लोग यह सोचने लग जाते हैं कि 'इस राजाके पैर धरतीपर कैसे टिके हुए हैं ?' ॥ १४५६ ॥ राजा हर्षने शत्रुसे संघर्ष करनेके लिए तंत्रियोंकी जो सेना तैयार की थी, उस सेनाके सैनिक जो अभी नगरमें ही विद्यमान थे, वे राजासे प्रवासधन (यात्राका भत्ता) माँगने लग गये ॥ १४५७ ॥ उसी समय बहुतेरे राजसेवक शत्रुसे जा मिले। इस प्रकार बहुत थोड़ेसे सैनिक राजभवनमें रह गये थे। किन्तु वे भी केवल अपने शरीरमात्रसे वहाँ थे। उनका मन शत्रुकी ही ओर था ॥ १४५८ ॥ हाँ, दो-तीन व्यक्ति ऐसे अवश्य थे कि जिन्होंने शत्रुकी ओर जानेका विचार भी नहीं किया था। किन्तु यहाँ उनकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। क्योंकि उन्होंने स्त्रियोंके समान शीघ्र ही प्राण त्याग दिये ॥ १४५९ ॥ काणवती नामकी एक नर्तकीने अज्ञातकुलवाली एक बालिका जयमतीको अपनी पुत्रीके समान पाला-पोसा था। जब कौमार अवस्थाको पीछे छोड़कर वह तरुणी हुई, तब उच्चलसे प्रेम करने लगी। किन्तु कुछ ही दिनों बाद धनके लोभवश वह मण्ड-

भूत्वा गृहीतकौमारा तरुण्युच्चलरागिणी । घनलुब्धावरुद्धात्वमभजन्मण्डलेशितुः ॥१४६१॥
तस्मिन्हते तदैवास्तापत्रपोच्चलमाययौ । तयैव दैवयोगेन पट्टदेव्या भविष्यते ॥ तिलकम् ॥१४६२॥
आबद्धपङ्क्तयश्चर्चामुच्चलाश्रयिणीं व्यधुः । भूपालदर्शनेप्यस्तभीतयो राजसेवकाः ॥१४६३॥
वेतनस्वीकृतैः सर्वैः शिक्षाधायी पुरस्कृतः । लोभावमानावुद्धोष्य योधश्रद्धां हरन्युधि ॥१४६४॥
मन्दश्रतापंतावाप्तो नर्मोक्त्या मर्मभेदकृत् । आहारादिक्षणे कर्ता प्रक्रियार्थनया कलेः ॥१४६५॥
अतीव प्रभुदानादिमाहात्म्याख्यानकोविदः ।
एक एकोऽकरोद्योधः पृतनानां विस्त्रणम् ॥ युग्मम् ॥१४६६॥
श्रीलेखाभ्रातृसूनोर्यस्तनयो व्यड्डमङ्गलः । मल्लज्ञातीयकोपेन स राज्ञास्कन्द्य घातितः ॥१४६७॥
मातुलस्यात्मजा मल्लापत्ययोस्तस्य गेहिनी । श्वश्र्वा समं स्ववसतीगदीप्य दहने मृता ॥१४६८॥
मौनव्रतादिनियमच्छन्नक्रौर्योऽन्तकोपमः । करोत्यभ्यन्तरान्भिन्नान्मल्लः परमदाम्भिकः ॥१४६९॥
तदेष पुत्रराज्येच्छुर्वध्यतां निर्भयं रिपुः । शाहिपुत्रीभिरित्यूचे तस्मिन्नवसरे नृपः ॥१४७०॥
स्वयं प्रादात्समास्कन्दं द्वारि स्थितवतः पुरः । तस्य प्राणार्थिनो वाञ्छापूर्त्यै मल्लश्च निर्ययौ ॥१४७१॥
स हि द्वैराज्यसज्ञाभ्यां पुत्राभ्यां प्रार्थितोपि सन् । मुनिव्रतः सदाचारानुरोधान्नात्यजन्नृपम् ॥१४७२॥
विश्वासाय परं राज्ञो भ्रातृत्राज्ञोर्भविष्यतोः । द्वैमातुरान्सल्हणादीन्नीर्त्रिं दत्त्वावसद्गृहे ॥१४७३॥

लेश्वर आनन्दकी रखैल बन गयी ॥ १४६० ॥ जब मण्डलेश्वर मार डाला गया, तब वह जंथमती निर्लज्ज बनकर फिर उच्चलके पास जा पहुँची और उससे पूर्ववत् प्रेम करने लगी। दैवयोगसे कुछ ही समय बाद वह नर्तकी पटरानी बन जायगी ॥ १४६१ ॥ अब तो राजा हर्षके सेवक सर्वथा निर्भीक भावसे उच्चलके ही विषयमे बाते करने लगे। ऐसे समय यदि राजा स्वयं वहाँ दीख जाता, तब भी उन्हें कोई झिझक नहीं होती थी ॥ १४६२ ॥ उधर केवल वेतनके भक्त राजसैनिक किसी एक सैनिकको अपना मुखिया चुन लेते थे और वह यह घोषणा कर देता था कि 'राज्यसेनाके सभी अधिकारी लोभी हैं'। इस घोषणाके द्वारा वह सभी योद्धाओं-का धैर्य ध्वस्त कर देता था ॥ १४६३ ॥ १४६४ ॥ इसी तरह स्वयं अनुपयुक्त होता हुआ भी वह निर्वाचित मुखिया अन्यान्य लोगोंकी हँसी उड़ाता तथा मर्मकी बाते उधेड़ता था। रसद मिलते समय वह अपने अधिकारके लिए बड़े-बड़े अधिकारियोंसे लड़ जाता था ॥ १४६५ ॥ वह अपने स्वामी (किसी सामन्त राजा) की दानवीरताका वर्णन बड़े कौशलसे करता था। इस तरहके व्यवहारसे प्रत्येक सामन्त राजाका प्रत्येक सैनिक अपने जत्थेका नायक बनकर सेनामे फूट डालनेकी चेष्टा करता था ॥ १४६६ ॥ राजा हर्ष मल्लकुलपर विशेष कुपित था। अतएव उसने मल्लकुलमे उत्पन्न एवं रानी श्रीलेखाके भतीजेके पुत्र व्यड्डमङ्गलको अचानक आक्रमण कराके मरवा डाला ॥ १४६७ ॥ मल्लके सालेकी कन्या व्यड्डमङ्गलकी पत्नी थी। सो पतिके मरणोपरान्त उसने तथा उसकी सास (व्यड्डमङ्गलकी माता) ने अपने ही घरमें आग लगा दी और वे दोनो उसीमें जल मरीं ॥ १४६८ ॥ उन्हीं दिनों शाहीकुलमें उत्पन्न रानियोंने राजा हर्षके पास यह सन्देश भेजा कि 'मल्लराज ऊपर-ऊपरसे तो मुनियोंके समान बड़ा पवित्र और धर्मात्मा दिखायी देता है, किन्तु भीतरसे यमराजके समान क्रूर है। मौनव्रत आदि पाखण्डोंके द्वारा यह हमारे मन्त्रिवर्गमें भेदभाव उत्पन्न कर रहा है। अपने पुत्रको राज्य दिलानेके लिए यह विशेषरूपसे सचेष्ट है। अतएव इस भयानक शत्रुको निर्भय होकर शीघ्र मरवा डालिए' ॥ १४६९ ॥ १४७० ॥ रानियोंका सन्देश पाकर राजा हर्षने स्वयं मल्लराजके वधकी तैयारी की और सेना साथ लेकर उसके घरको चारों ओरसे घेर लिया। उधर मल्लराज भी अपने दरवाजेपर खड़े एवं प्राणोंके याचक हर्षदेवकी कामना पूर्ण करनेके लिए राजमहलसे बाहर निकला ॥ १४७१ ॥ मुनिजनोंकी भाँति सरल तथा शान्त प्रकृति मल्लराजने राज्यके इच्छुक अपने पुत्र उच्चल और सुस्सलकी प्रार्थना ठुकराकर सदाचारको ध्यानमें रखते हुए हर्षदेवके पक्षको नहीं त्यागा था ॥ १४७२ ॥ अपनी ओरसे सुदृढ विश्वास उत्पन्न करनेके लिए मल्लराजने अपनी दूसरी पत्नीके सल्हण आदि कई पुत्रोंको राजा हर्षके पास जमानतके रूपमें

आसेदुषे मुनिदशामाजन्मप्रीणिताग्नये । तदा स तस्मै चुक्रोध प्रत्यासन्नवधो नृपः ॥१४७४॥
स सुराभ्यर्चनं कुर्वन्नाहूतः परिपन्थिभिः । रेजे तेनैव वेषेण समराय विनिर्गतः ॥१४७५॥
उपवीत्यक्षसूत्राङ्कपाणिर्दर्भोज्ज्वलाङ्गुलिः । भस्मस्मेरललाटाङ्को जामदग्न्य इवापरः ॥१४७६॥
स्नानार्द्रधवलश्यामलोलधम्मिल्ललीलया । देहत्यागे प्रयागाम्बु धारयन्निव मूर्धनि ॥१४७७॥
उष्णीषी वीरपट्टेन खेटकेनोष्णवारणी । सोऽसिधारातीर्थपान्थो दण्डी खड्गेन दिद्युते ॥१४७८॥
भोगे पुरस्कृताः केचित्तद्भृत्याः पूर्वनिर्गताः । अमर्त्यनारीभोगेऽपि तस्यासन्नग्रभागिनः ॥१४७९॥
द्वौ रथ्यावट्टविजयौ द्विजौ पौरोगवस्तथा । कोष्ठकः सज्जकाख्यश्च योद्धा युद्धे हता बभुः ॥१४८०॥
क्षतोऽप्युदयराजाख्यः शतायुः शेषसत्तया । प्राणैर्नियोगभागाजौ नाज्जकोऽपि व्ययुज्यत ॥१४८१॥
विरोधियोधैर्नीरन्ध्रं द्वारमालोक्य सर्वतः । त्यक्तकम्पो ददौ झम्पां स तेषामेव मूर्धनि ॥१४८२॥
शैवलेष्विव खड्गेषु खेटकेष्वम्बुजेष्विव । जरसा धवलो भ्राम्यन्राजहंस इवाबभौ ॥१४८३॥
क्षणाच्च ददृशे शातशरशङ्कुशताचितः । प्रवीरो वीरशयने सुप्तो भीष्म इवापरः ॥१४८४॥
शोच्यं गतायुषो राज्ञः किं नाभूत्तस्य तादृशः । चिच्छेद यः शिरः पृष्ठे हयं च भ्रमयन्स्मयात् ॥१४८५॥
राज्ञी कुमुदलेखाख्या मल्लस्याला च वल्लभा । गृहेष्वजुहुतां वीतिहोत्रे गात्राणि संभृते ॥१४८६॥
राजानकल्ययोः पत्न्यौ बाले सल्हणरल्हयोः । स्नुषे मल्लस्यासमती सहजा चाग्निसाद्गते ॥१४८७॥

रख दिया था और अब वह शान्तिपूर्वक अपने घरपर रह रहा था ॥ १४७३ ॥ ऋषियों जैसा पवित्र जीवन बितानेवाले तथा जीवनपर्यन्त अग्निके उपासक उस महात्मा मल्लराजपर वह अभागा और आसन्नमृत्यु राजा हर्ष अचानक नाराज हो गया था ॥ १४७४ ॥ राजाके सैनिकोंने जब उसे युद्धके लिए ललकारा, उस समय वह देवपूजन कर रहा था। सैनिकोंकी आवाज सुनकर उसी पूजाके वेशमें बाहर निकल आया। उस अवसरपर वह बहुत ही सुन्दर दीख रहा था ॥ १४७५ ॥ वह जनेऊ पहने था, उसके हाथमें रुद्राक्षकी माला और कुशमुष्टि विद्यमान थी, उसके मस्तकपर लगी हुई भस्मकी रेखायें मुस्कुरा रहीं थीं। इन उपकरणोंसे वह साक्षात् परशुरामके समान दीख रहा था ॥ १४७६ ॥ अभी कुछ ही देर पहले उसने स्नान किया था। अतएव काले तथा सफेद बालोंसे मिली-जुली उसकी जटा देहत्यागके समय मस्तकपर चढ़ाये गये प्रयागके गंगा-यमुना-संगमके जलकी भाँति दीख रही थी ॥ १४७७ ॥ उस समय मल्लराज मस्तकपर विद्यमान वीरपट्टसे साफाधारी तथा खेटक (ढाल) से छत्रयुक्त एवं म्यानविहीन तलवारसे दण्डधारी यम जैसा दीखता हुआ असिधारा तीर्थका यात्री मालूम पड़ रहा था ॥ १४७८ ॥ उसके साथ रहकर आनन्द भोगनेवाले कुछ अच्छे सेवक पहले ही शत्रुओंसे लड़ने तथा मरकर देवांगनाओंके साथ विहार करनेकी अभिलाषासे बाहर आ चुके थे ॥ १४७९ ॥ उनके सिवाय रथ्यावट्ट, विजय, पुरोहित, कोष्टक (कोठारका प्रमुख अधिकारी) एवं वीर सैनिक सज्जक ये लोग लड़कर मृत्युको प्राप्त हो चुके थे। इससे उनका यश समस्त संसारमें व्याप्त हो गया ॥ १४८० ॥ मल्लराजका द्वारपाल उदयराज युद्धमें आहत हो करके भी आयु शेष रहनेके कारण नहीं मरा। इसी तरह उसका कर्मचारी अज्जक भी घायल होकर बच गया ॥ १४८१ ॥ अपने द्वारको चारों ओरसे शत्रुओं द्वारा घिरा देखकर वीर मल्लराज निर्भय भावसे उनके मस्तकोंपर कूद पड़ा ॥ १४८२ ॥ सेवारसरीखी तलवारों तथा कमल जैसे खेटकों (ढालों) के बीचमें घूमता हुआ बुढ़ापेके कारण श्वेत केशोंवाला वीर मल्लराज राजहंसके समान सुन्दर लग रहा था ॥१४८३॥ किन्तु कुछ ही क्षणमें तीक्ष्ण बाणोंकी मारसे उसका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया और भीष्मपितामहके समान वह सदाके लिए वीरशय्यापर सो गया ॥ १४८४ ॥ इस प्रकार अनन्तकालके लिए रणभूमिमें मृत्युका आलिंगन करके चिरनिद्रामें सोये हुए मल्लराजका मस्तक काटकर हर्षने बड़े घमण्डके साथ उसकी पीठपर घोड़ा दौड़ाया। आसन्नमृत्यु राजा हर्षका यह कार्य क्या शोचनीय नहीं था? ॥ १४८५ ॥ राजकुलमें उत्पन्न कुमुदलेखा तथा उसकी बहिन वल्लभा ये दोनों पतिके मर जानेपर महलके भीतर ही आगमें जल मरीं ॥ १४८६ ॥ राज तथा अवकल्यकी कन्यायें आसमती और सहजा ये दोनों मल्लराजकी पतोहुएँ रल्हण तथा सल्हणकी पत्नियाँ

सर्वोपभोगभागिन्यस्तदन्तःपुरयोषिताम् । परिवाराङ्गना वह्नौ षट् चात्रैव विपेदिरे ॥१४८८॥
महागृहाग्नितापेन शोकोष्णैश्च जलाश्रुभिः । तप्ताम्भसो वितस्तायास्तीरे वामे बभूव तत् ॥१४८९॥
प्रवर्धितायाः स्तन्येन द्रष्टुमक्षमया पयः ।
दास्यमानं निवापेषु पुत्र्याश्चान्द्र्याख्यया समम् ॥१४९०॥
धात्र्या परस्मिन्वै तस्मिंस्तीरे स्वान्तःपुरे स्थिता । माता भविष्यतो राज्ञोर्नन्दाऽनिन्द्यकुलोद्भवा ॥१४९१॥
महानसाग्निधूमेन संलक्ष्यावीक्ष्य पुत्रयोः । सोत्कण्ठं कटकौ सौधादुदग्दक्षिणदिक्स्थयोः ॥१४९२॥
क्रियतां दिवसैरेव पुत्रौ शत्रोः पितृद्विषः । जामदग्न्यायितं वंशे शप्त्वेति नृपतिं सती ॥१४९३॥
अनिषण्णेव दीप्ताग्नौ गृहे स्वं निरदाहयत् । प्रनृत्यन्तीभिरालीभिरिव ज्वालाभिरावृता ॥१४९४॥
वधे दर्शनपालस्तु नृपे प्राप्ते प्रतिक्षणम् । अत्यद्भुतैरन्तरायैरायुःशेषेण रक्षितः ॥१४९५॥
वर्षमात्रावशेषायुर्यद्वा द्रोहेण रक्षितः । सोऽवमानस्य पूयस्य रोगजस्य च भुक्तये ॥११९६॥
कृष्णभाद्रनवम्यां तं वधं श्रुतवतोः पितुः । मल्लात्मजन्मनोः शोकः कोपेन निरपीयत ॥१४९७॥
आवह्निपुरकग्रामान्प्रज्वलन्क्रोधवह्निना । अधावद्विजयक्षेत्रं सोऽन्येद्युरथ सुस्सलः ॥१४९८॥
योद्धुमभ्यापतंतं तं चन्द्रराजोऽथ निर्गतः । पट्टदर्शनपालाद्यैः ससैन्यैः पर्यवर्ज्यत ॥१४९९॥
निजैरुपेक्षितश्चक्रे स चिरं तत्र दुष्करम् । स्वल्पसैन्योपि संग्रामं भूरिसैन्येन शत्रुणा ॥१५००॥
अक्षोटमल्लः समरे तत्र मल्लश्च चाचरिः । अगातां राजगृह्यौ द्वौ स्वर्गस्त्रीभोगभागताम् ॥१५०१॥

थीं। सो वे दोनों भी अग्निदेवकी आहुति बनकर मर गयीं ॥ १४८७ ॥ इस प्रकार मल्लराजके अन्तःपुरमे रहकर जिन छ स्त्रियोंने सब तरहके सुखोंका उपभोग किया था, वे सब आगमे जल मरी ॥ १४८८ ॥ यह काण्ड वितस्ता नदीके बाये तटपर विद्यमान मल्लराजके प्रासादमे हुआ था। अतएव अग्निके ताप तथा दुखी परिवारके शोकोष्ण आँसुओंके पानीसे वितस्ता नदीका सारा जल गरम हो गया था ॥ १४८९ ॥ भविष्यमे होनेवाले राजा उच्चल एवं सुस्सलकी माता नन्दा उस समय मल्लराजके दाहिने तटवर्ती महलके अन्तःपुरमें थी। उस महलके शिखरपर चढकर वह उत्तर-दक्षिण दोनों ओरसे अपने पुत्रोंके सेनाशिविरके रसोईघरसे उठनेवाले धुएंको बड़ी बेचैनीके साथ देख रही थी। सो उसने भी नदीके बाये तटके महलमें होनेवाले भीषण काण्डोंको देखकर अग्निमे प्राण दे देनेका सकल्प कर लिया। जब वह अग्निमें प्रविष्ट होने लगी, तब उस सतीने कहा 'मेरे प्यारे पुत्रो! अपने पिताकी इस प्रकार निर्मम हत्या करनेवाले शत्रुके वंशका तुम दोनो वीर परशुरामकी तरह शीघ्र उच्छेद कर डालोगे'। ऐसा शाप देकर खड़ी-खड़ी वह सती अग्निकुण्डमे कूद पड़ी। उस समय सहेलियों सरीखी आगकी लपटें उसे सब ओरसे घेरकर नाचने लगीं। उसकी धाय चन्द्रा कन्याके समान प्रिय राजरानीको तिलाजलि देनेका कारुणिक दृश्य देखनेमें असमर्थ होकर धधकते अग्निकुण्डमें कूदकर जल मरी ॥ १४९०–१४९४ ॥ राजा हर्ष दर्शनपालकी भी हत्या करनेके लिए सदा लालायित रहता था। किन्तु उसकी आयु अभी शेष थी, इस लिए अत्यन्त विलक्षण बाधाओंके कारण वह बच गया ॥ १४९५ ॥ अथवा यह भी कहा जा सकता है कि भविष्यमें अपमानरूपी कडुआ फल चखनेके लिए वह एक वर्ष और जीवित रहा ॥ १४९६ ॥ उधर उच्चल तथा सुस्सलको अपने पिताकी भीषण हत्याका समाचार भाद्रपद कृष्ण नवमीको मिला, उससे उन्हें अपार शोक हुआ, किन्तु वह शोक क्रोधके आवेगमें दब गया ॥ १४९७ ॥ उसके दूसरे ही दिन क्रोधाविष्ट सुस्सल मार्गपर पड़नेवाले वह्निपुर तकके सभी गाँवोंको जलाकर भस्म करता हुआ विजयक्षेत्रकी ओर बढा ॥ १४९८ ॥ युद्ध करनेके लिए सुस्सलके आगमनकी खबर पाकर चन्द्रराज भी चला। पट्ट तथा दर्शनपाल आदि भी उसे छोड़कर अपनी-अपनी सेनाके साथ दूसरी ओर चल पड़े ॥ १४९९ ॥ इस तरह आत्मीय जनोंके धोखा देनेपर भी चन्द्रराजने बची-खुची सेना लेकर शत्रुकी विशाल सेनाके साथ बहुत दिनोंतक घमासान युद्ध किया ॥ १५०० ॥ उस युद्धमे राजा हर्षके आत्मीय अक्षोटमल्ल एवं चाचरिवंशमे उत्पन्न मल्ल ये दोनों वीर देवांगनाओंके साथ सुखोपभोगके

रजोन्धकारे छत्रेन्दुद्योतिन्यालिङ्गितो हतः। चन्द्रराजः सुरस्त्रीभिरिन्दुराजोऽस्य चानुगः ॥१५०२॥
तस्मिन्नपि हते वीरे चक्रे हर्षमहीभुजः। आशारविन्दिनीमूलकन्दनिर्दलनं विधिः ॥१५०३॥
पट्टादयः प्रविश्याथ विजयेशाङ्गमं भयात्। प्रविष्टे सुस्सले देशं द्वारं दत्तार्गलं व्यधुः ॥१५०४॥
आस्थानीयः परं पद्मनामा युद्ध्वा हतो बहिः। लक्ष्मीधरो मर्तुमिच्छुर्युद्ध्वा नीतः स डामरैः ॥१५०५॥
विजयेश्वरगञ्जाग्रसौधारूढोऽथ सुस्सलः। अधो ददर्श तान्सर्वान्पशूनिव भयाकुलान् ॥१५०६॥
धूर्तः स दत्तमध्यस्थो हसन्नानीतवान्पुनः। पट्टदर्शनपालौ द्वौ तेषां पूर्वं निजान्तिकम् ॥१५०७॥
निःश्रेण्यभावादारोढुमक्षमौ सुस्सलानुगैः। तौ मृताविव निर्बद्धपाणी रज्ज्वाधिरोपितौ ॥१५०८॥
तयोर्विदेशगमनं व्रीडादर्थायमानयोः। प्रतिश्रुत्याकरोद्धीमान्सुस्सलो ग्लानिमार्जनम् ॥१५०९॥
स्निग्धोक्त्या भृष्टमांसादिभोगैस्तस्याग्रतस्तयोः। तस्मिन्नेवाह्नि मन्दत्वं विदेशौत्सुक्यमाययौ ॥१५१०॥
केनाप्यधिष्ठितश्चक्रे परेद्युर्यत्स सुस्सलः। जाने विश्वसृजोप्यङ्गं रोमाञ्चयति तत्स्मृतिः ॥१५११॥
जासटो नृपतिर्हर्षभूभर्तुर्मातुलात्मजः। उमाधरमुखाश्चान्ये राजानो यत्र च त्रयः ॥१५१२॥
राजपुत्रहयारोहतन्त्रिसामन्तसंततेः। न यत्र गणना काचित्सैन्येष्वष्टादशस्वभूत् ॥१५१३॥
विजयेशाङ्गणस्थानां द्वारमुत्पाट्य सोऽविशत्। एकाक्येवान्तरं तेषां सासिराक्षेपरूक्षवाक् ॥१५१४॥
स तत्र साक्षिणं कृत्वा क्षमावान्विजयेश्वरम्। प्रतिश्रुत्याभयं तेभ्यः प्रणतेभ्यो विनिर्ययौ ॥१५१५॥

पात्र बनकर स्वर्गवासी हो गये ॥ १५०१ ॥ इसी तरह भीषण संघर्षके कारण उडनेवाली धूलके अन्धकारमें जिसका छत्र चन्द्रमाके समान चमकता था, वह वीर चन्द्रराज भी अपने अच्छे सेवक इन्दुराजके साथ देव-वधूटियोंका आलिंगन करनेके लिए स्वर्ग चला गया ॥ १५०२ ॥ उस वीर चन्द्रराजके मर जानेसे विधाताने जैसे राजा हर्षदेवकी आशारूपिणी कमलिनीकी जड़को ही नष्ट कर दिया ॥ १५०३ ॥ वीर सुस्सलको विजयेश्वर क्षेत्रमें घुसते देखकर पट्ट आदि हर्षपक्षके योद्धा घबड़ाकर विजयेश्वरके मन्दिरमें घुस गये और उन्होंने अन्दरसे उसका विशाल दरवाजा भली भाँति बन्द कर लिया ॥ १५०४ ॥ विजयेश्वरका आस्था-नीय (महन्त) पद्ममन्दिरके बाहरवाले मैदानमें लड़ता हुआ मार डाला गया। उसी प्रकार अपने प्राणों-की भी चिन्ता न करके शत्रुसे लडता हुआ लक्ष्मीधर डामरो द्वारा कैद कर लिया गया ॥ १५०५ ॥ उसी समय विजयेश्वरके कोशभवनकी छतपर चढकर सुस्सलने नीचेकी ओर निहारा तो देखा कि मैदानमे हर्षपक्षके सभी सैनिक पशुओंके सदृश भयसे घबड़ाये हुए खड़े है ॥ १५०६ ॥ सुस्सल बड़ा धूर्त था। सो उसने उस सेनामेंसे पट्ट तथा दर्शनपालको अभयदान देकर अपने पास बुलवाया ॥ १५०७ ॥ उस छतपर जानेके लिए सोपान नहीं था। अतएव सुस्सलके सेवकोंने रस्सी थम्हाकर उन्हें मुर्देके समान ऊपर खींचा ॥ १५०८ ॥ सुस्सलके समक्ष लज्जित होकर उन दोनोंने विदेश जानेकी आज्ञा देनेकी प्रार्थना की। तब बुद्धि-मान् सुस्सलने भी उनकी प्रार्थनाके अनुसार विदेशयात्रा की आज्ञा दे देनेकी प्रतिज्ञा करके उनकी घबड़ाहट दूर कर दी ॥ १५०९ ॥ तदनन्तर मधुर भाषण करते हुए उसने पट्ट तथा दर्शनपालको मांसादि स्निग्ध पदार्थोंका भोजन कराया। उसके इस व्यवहारसे उन दोनोंका विदेश जानेका उत्साह कुछ ठंढा पड़ गया ॥ १५१० ॥ उसके दूसरे रोज पिशाचके द्वारा आविष्ट मनुष्यकी तरह सुस्सलने ऐसा भीषण तथा निर्दय कर्म किया कि जिसका स्मरण करके विश्वस्रष्टाके भी रोंगटे खड़े हो गये होंगे ॥ १५११ ॥ उस समय वहाँपर राजा हर्ष-देवका ममेरा भाई जासट एवं उमाधर आदि तीन राजे, राजपुत्र, सम्पन्न, प्रतिष्ठित, अश्वारोही, वीर, तंत्री तथा अठारह सैन्य विभागोंके अध्यक्ष आदि असंख्य लोग एकत्र थे ॥ १५१२ ॥ १५१३ ॥ वे सब सुस्सलके शरणागत हो चुके थे। उसी समय मन्दिरका द्वार खोलकर सुस्सल हाथमे नंगी तलवार लिये भीतर घुसा। पहले तो उसने उन लोगोंको खूब डॉटा-फटकारा, किन्तु बादमें शरणागत जानकर विजयेश्वरको साक्षी बनाते हुए उसने उन्हें अभयदान दिया और फिर मन्दिरकी छतपर वापस लौट गया ॥ १५१४ ॥

पुनः सौधाग्रमारूढस्तान्सर्वानर्पितायुधान् । रज्जुबद्धकरान्भृत्यैरानिनाय ततोऽन्तिकम् ॥१५१६॥
स्वर्णरूप्यत्सरुश्रेणिपूर्णायुधपरिष्कृता । कीर्णपुष्पोपकारेव सुस्सलास्थानभूरभूत् ॥१५१७॥
विन्यस्य पशुपालानां पशूनिव स तान्करे । संरक्षितुं डामराणां त्र्यहं तत्राकरोत्स्थितिम् ॥१५१८॥
ततः सुवर्णसानूरग्रामं स प्राप्य बन्धनात् । पट्टदर्शनपालौ द्वावौज्झीद्देशान्तरोन्मुखौ ॥१५१९॥
पट्टः शूरपुरं प्राप्तो भार्ययागतया गृहात् । संसृष्टमानोऽप्यस्मार्षीदल्पसत्त्वो दिगन्तरम् ॥१५२०॥
यावन्माप्राप्यौचिती सा विदेशोन्मुख्यलक्षणा । द्रोग्धुर्दर्शनपालस्य पट्टमैत्र्या विसूत्रिता ॥१५२१॥
अहंपूर्विकया राज्यं जिघृक्षुरथ सुस्सलः । नगरासादनाद्वैच्छदभिसंधातुमग्रजम् ॥१५२२॥
समानप्रायवयसोः सर्वदोद्दामयोरभूत् । यस्माज्ज्येष्ठकनिष्ठत्वं प्रक्रियारहितं तयोः ॥१५२३॥
द्वित्रेष्वहःसु यातेषु क्रामंस्तां तां भुवं बली । उदतिष्ठद्राजधान्याः सविधादेव सुस्सलः ॥१५२४॥
निर्दग्धुं कलशाख्यं तत्प्रस्तुतं भूपतेः सुतः । बुप्पापराभिधो भोजदेवो योद्धुं विनिर्ययौ ॥१५२५॥
आत्मवच्छङ्कमानेन कुमाराणां प्रदुष्टताम् । यो भाव्यर्थबलात्पित्रा हतौजा विदधे सदा ॥१५२६॥
कृतो गत्यन्तराभावात्तदानीं तु निरङ्कुशः । केषु केषु न युद्धेषु योधानामग्रणीरभूत् ॥१५२७॥
प्रपितामहतुल्यः स स्याच्चेत्प्रागेव वर्धितः । कुर्यादुत्साहसंपन्नो निर्दायादा न किं दिशः ॥१५२८॥
नानीतिविन्नाम कश्चित्प्रयोगस्तु विहीयते । अस्त्रविल्लभ्यते सर्वो विषयज्ञस्तु दुर्लभः ॥१५२९॥
स राजवद्गुरुद्दामविक्रमस्य रिपोरभूत् । अत्युद्दामोऽधिकं जातस्तिमेरिव तिमिंगिलः ॥१५३०॥

॥ १५१५ ॥ वहाँपर बैठकर उसने उन सबके शस्त्रास्त्र छीन लिये और उन्हें कैद कराके सेवकोंके द्वारा अपने समीप बुलवाया ॥ १५१६ ॥ जिस छतपर उस समय सुस्सल बैठा था, वह हर्षके सैनिकोंसे छिनी तलवारोंकी सुनहरी तथा रुपहली मूठोंकी ढेरसे पुष्पित उपवनके समान दिखायी देती थी ॥ १५१७ ॥ उसने उन निःशस्त्र सैनिकोंको पशुओंके समान बँधवाकर डामरोंके अधीन कर दिया। उसके बाद भी तीन दिन तक वह वहाँ और ठहरा ॥ १५१८ ॥ तदनन्तर वहाँसे चलकर वह सुवर्णसानूर ग्राम पहुँचा। वहाँ उसने पट्ट तथा दर्शनपालको इच्छानुसार विदेश जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १५१९ ॥ तदनुसार पट्ट वहाँसे चलकर शूरपुर गया। वहाँपर उसकी पत्नी घरसे आकर मिली। उससे मिलनेके बाद उस अल्पसत्त्व प्राणीने विदेश जानेका विचार त्याग दिया ॥ १५२० ॥ उस समय दर्शनपालने आवेशमें आकर विदेश जानेकी बात कह दी थी, किन्तु बादमें उसने पट्टकी मैत्रीके बहाने विदेशयात्राका विचार छोड़ दिया ॥ १५२१ ॥ सुस्सल स्वयं राज्य हस्तगत करना चाहता था, अतएव वह इस बातसे चौकन्ना रहा करता था कि कहीं बड़ा भाई उच्चल न पहले राज्यपर कब्जा कर ले ॥ १५२२ ॥ उच्चल तथा सुस्सल दोनोंकी प्रायः समान अवस्था थी और दोनोंका स्वभाव उद्दण्ड था। अतएव उनमें परस्पर ज्येष्ठता तथा कनिष्ठताका कोई लिहाज नहीं रहता था ॥ १५२३ ॥ सो उस वीर सुस्सलने दो ही तीन दिनोंमें आस-पासके बहुतेरे स्थानोंपर कब्जा कर लिया और वहाँसे आगे बढ़कर राजधानीके समीप पहुँच गया ॥ १५२४ ॥ मार्गमें पड़नेवाले कलशपुरको वह जलाना ही चाहता था कि इतनेमें बुप्पा अर्थात् भोजदेव नामक राजा कलशका पुत्र उससे लड़नेके लिए नगरसे बाहर निकला ॥ १५२५ ॥ राजा हर्षने यह सोचकर कि 'मेरे ही समान वह भी दुष्ट स्वभावका होनेके कारण दुःखदायी होगा, उस राजकुमार भोजदेवको भावी दुर्भाग्यके प्रभावसे सदा निर्बल बनाकर रक्खा था ॥ १५२६ ॥ उस समय तो निरुपाय होकर भोजदेवको सुस्सलय स्वतंत्र कर दिया, किन्तु आगे चलकर वह वीर किन-किन संग्रामोंमें-सेनाका अग्रणी नहीं बना ॥ १५२७ ॥ यदि प्रपितामह अनन्तदेवके समान उसका पालन-पोषण करके अच्छी शिक्षा मिली होती तो उत्साहसे सम्पन्न होकर उसने दसों दिशाओंको शत्रुहीन कर दिया होता ॥ १५२८ ॥ संसारमें एक तो नीतिज्ञ ही बहुत थोड़े हैं और उनमें भी नीतिका प्रयोग करनेकी विधि जाननेवाले और भी कम हैं। जैसे अस्त्रविद्याके जानकार तो सब होते हैं, किन्तु अचूक निशाना लगाना विरले ही लोगोंको आता है ॥ १५२९ ॥ आगे

कृतघ्नभावं पितरि प्रपन्ने विगर्हणां नार्हति तत्प्रसूतिः ।
कल्कीभवेच्चेत्तिलमुज्झ्यते किं तैलेन दत्तः कुसुमाधिवासः ॥१५३१॥
देवेश्वरात्मजः पित्थः पार्थिवेनाधिगौरवम् । वर्धितोऽप्यभजत्पापः प्रतिपक्षसमाश्रयम् ॥१५३२॥
ततस्तदात्मजो मिल्लः प्रस्थिते सुस्सलाहवे । नृपेणार्थ्यमानोऽश्वं खेदात्सावज्ञमीक्षितः ॥१५३३॥
ज्ञास्यस्यद्यान्तरं राजन्ममेत्युक्त्वा विनिर्गतः । खड्गधाराजलैर्मानी म्लानिमक्षालयद्रणे ॥१५३४॥
सर्वनाशादभूद्दुःखं तथा न हृदि भूपतेः । तदन्तरापरिज्ञानात्कृतज्ञस्य यथाधिकम् ॥१५३५॥
विभवैर्नित्यसंमूढा जानते त्वन्तरं नृपाः । तदा शक्या यदा तेषां प्रलापैरेव सत्क्रिया ॥१५३६॥
भोजेन निर्जितानीको विद्रुतः सुस्सलो रणात् । लवणोत्सं पलाय्यागाद्द्विर्दर्शितगतागतः ॥१५३७॥
प्रत्यावृत्तस्ततो भोजस्तीव्रातपकदर्थितः । उद्यानान्तस्तनुं तल्पे पित्रा सह मुहुर्जहौ ॥१५३८॥
अथोत्तरेणोदतिष्ठन्नादः पारान्नृपौकसः । ज्यायान्मल्लात्मजः प्राप्तः सेतुराच्छिद्यतामिति ॥१५३९॥
सुस्सलेन हृतं राज्यं नाद्यायासि द्रुतं यदि । स दण्डनायकेनाभूत्संदिष्ट इति पापिना ॥१५४०॥
अतो जवेन चाविक्षत्प्रथमं चावधीन्मृधे । नरेन्द्रेश्वरदेवाग्रवर्तिनं देवनायकम् ॥१५४१॥
अथोज्जगाम स्थामस्थः सह व्यूहेन सादिनाम् । नगराधिकृतो नागस्तस्याग्राद्भूरिसैनिकः ॥१५४२॥
यत्रास्थां पार्थिवोऽबध्नात्प्रधानपृतनान्विते । बभार नोच्चलाशङ्कां सुस्सलाहवनिर्गतः ॥१५४३॥

चलकर युवराज भोजदेव तिमि मत्स्यके लिए तिमिंगिलके समान अत्यन्त पराक्रमी सुस्सलके लिए उससे भी बहुत बढ-चढकर पराक्रमी होनेके कारण दुःसह हो उठा ॥ १५३० ॥ जिसका पिता कृतघ्न हो, उसकी सन्तान भी यदि कृतघ्न हो जाय तो उसे अनुचित कैसे कहा जा सकता है। तिल घुने हुए ही क्यों न हों, सुरभित सुमनोंके सहवाससे जायमान होनेवाली सुगन्धि उनके तेलसे कैसे अलग हो सकती है, कदापि नहीं ॥ १५३१ ॥ राजा हर्षने देवेश्वरके पुत्र पित्थका बहुत अधिक गौरव बढा दिया था, किन्तु वह पापी राजाका साथ छोड़कर शत्रुपक्षमें जा मिला ॥ १५३२ ॥ बादमें जब राजा हर्षका सुस्सलसे युद्ध छिड़ा; तब पित्थके पुत्र मिल्लके प्रति अनादर भाव प्रकट करते हुए राजा हर्षने उससे अपने घोड़े वापस माँग लिये ॥ १५३३ ॥ राजाके इस बर्तावसे खिन्न होकर मिल्लने कहा—'राजन्! आज आपको मेरी वास्तविक योग्यताका पता लगेगा' यह कहकर वह वहाँसे चल पड़ा और उस वीरने रणभूमिमे उतरकर तलवारकी धाररूपी जलसे अपना कलंक धो डाला अर्थात् कटकर मर गया॥ १५३४ ॥ यह सुनकर उस कृतज्ञ राजाके हृदयको उस वीरका वास्तविक स्वरूप न जाननेके कारण अपना सर्वस्व नष्ट हो जानेकी अपेक्षा भी अधिक क्लेश हुआ ॥ १५३५ ॥ सर्वदा वैभवसे मोहग्रस्त राजे अपने सेवककी सच्ची योग्यता तब समझ पाते हैं, जब कि उनके पास शाब्दिक पुरस्कार प्रदान करनेके सिवाय और कुछ शेष नहीं रह जाता ॥ १५३६ ॥ अबकी बार भोजदेवसे परास्त होकर सुस्सल रणभूमि छोड़कर भाग गया और उसने लवणोत्समें अपना अड्डा जमाया। वहाँसे वह फिर एक-दो बार आया था ॥ १५३७ ॥ एक रोज सूर्यकी तीव्र धूप तथा युद्धके श्रमसे थका हुआ युवराज भोज शिविरमें वापस आया और राजाके साथ एक बगीचेमे पलंगपर लेट गया॥ १५३८॥ उसी समय उसे राजमहलके उत्तर नदीके उस पारसे यह कोलाहल सुनायी पड़ा कि 'मल्लराजका ज्येष्ठ पुत्र उच्चल आक्रमण करने आ रहा है, इसलिए नदीका पुल तुरन्त तोड़ दिया जाय' ॥ १५३९ ॥ तत्काल राजाके दुष्ट तथा कृतघ्न दण्डनायकने उच्चलके पास यह सन्देश भेजा कि 'यदि आप आज ही राजधानीमे न पहुँच जायँगे तो राज्यसिंहासन सुस्सलके हाथ लग जायगा' ॥ १५४० ॥ यह सन्देश पाकर उच्चल बड़े वेगसे आक्रमण करनेके लिए आगे बढा। मार्गमें नरेन्द्रेश्वरके पास लड़नेके लिए उद्यत देवनायकको रणभूमिमें पराजित करके उच्चलने यमपुर भेज दिया ॥ १५४१ ॥ तदनन्तर नगरका अधिकारी नाग घोड़सवारोंका व्यूह बना तथा बहुत बड़ी सेना साथ लेकर उससे लड़ने चला ॥ १५४२ ॥ क्योंकि उसीके पास राज्यकी प्रधान सेना थी और अभी हालमे वह सुस्सलको पराजित करके आया था। इसी कारण राजाको उसपर बहुत अधिक विश्वास था और उसे उच्चलसे न कोई भय था और कोई आशंका थी

अल्पसैन्यो मल्लसूनुर्यावत्तस्मादशङ्कत । अपनीतशिरस्त्राणस्ताव रा तमवन्दत ॥१५४४॥
मण्डलेश्वरवत्तं स प्रियं शत्रोरविश्वसन् । ऊचे स्ववेश्म याहीति स च पापस्तथाकरोत् ॥१५४५॥
तस्य द्रोहफलं दृष्टमेतस्मिन्नेव जन्मनि । मण्डले यदनन्यस्मिन्भिक्षित्वा जीवितं जहौ ॥१५४६॥
ततो राजा सरित्तीरं प्राप्तः प्रैक्षत डामरान् । सेत्वग्रे श्यामविकृतान्दावदग्धान्द्रुमानिव ॥१५४७॥
वलक्षवारबाणस्य तेषां मध्ये वपुर्बभौ । परं जनकचन्द्रस्य शुक्रस्येव तमोन्तरे ॥१५४८॥
महासेतुः स घटितो राज्ञा नौभिः स्वसिद्धये । पर्यवस्यन्विधिवशाच्छत्रूणां सिद्धये पुनः ॥१५४९॥
अथारुरुहुरादाय वह्निं हर्म्यचतुष्किकाम् । शतद्वारे मर्तुकामा देव्यः शाहिसुतादिकाः ॥१५५०॥

लोको विरक्तः सेत्वग्रे दायादैः सह संगरम् ।
ददर्शाश्वयुजीलागिमिव निर्विक्रियः प्रभोः ॥१५५१॥

विजये सावशेषेऽसौ वह्निदानोद्यताः प्रियाः । अनिशं वारयन्राजा सेत्वग्रे रणमग्रहीत् ॥१५५२॥
अथ विन्यस्तवर्माणं राजसेनागजं शरैः । सेतोर्जनकचन्द्राद्याः प्रमुखस्थमताडयन् ॥१५५३॥
स विद्धो मर्मसु शरैः पूत्कारोद्गारकद्गजः । स्वचमूमेव चरणैरमृद्नाद्विमुखीकृतः ॥१५५४॥
विधिनेव विरुद्धेन सिन्धुरेण कदर्थिता । भ्रश्यत्पत्तिहयारोहा समपद्यत वाहिनी ॥१५५५॥
सेतुं तीर्णस्ततो वैरिसेनिकैर्विमुखीकृतः । शतद्वाराङ्गणं त्रस्तः साश्वारोहोऽविशन्नृपः ॥१५५६॥

॥ १५४३ ॥ उस समय उच्चलके पास बहुत कम सेना थी, इसलिए वह नागसे डरता था। किन्तु नागने उच्चलको देखा तो पगड़ी उतारकर बड़े विनम्रभावसे उसको प्रणाम किया ॥ १५४४ ॥ किन्तु उच्चलने मण्डलेश्वर आनन्दके समान ही उसे भी अपने शत्रु, राजा हर्षका प्रेमपात्र समझकर उसपर विश्वास नहीं ही किया। लेकिन जब उच्चलने उसे अपने घर चले जानेको कहा तो उस पापी नागने वैसा ही किया ॥ १५४५ ॥ आगे चलकर उस कृतघ्न नागको स्वामिद्रोह तथा राजद्रोहका फल इसी जन्ममें और बहुत जल्द मिल गया। क्योंकि कुछ ही समय बाद वह दुष्ट विपत्तिग्रस्त होकर उसी मण्डलमें भिक्षावृत्तिके द्वारा शेष जीवन बिताकर मर गया ॥ १५४६ ॥ तदनन्तर राजा हर्षने वितस्ता नदीके तटपर पहुँचकर दावानलसे जले हुए हुए वृक्षोंकी भाँति अत्यन्त काले तथा विकृत वेष धारण किये डामरोंको नदीके पुलपर देखा ॥ १५४७ ॥ उनके बीचमें कृष्णपक्षकी रातमें चमकनेवाले शुक्रग्रहके समान देदीप्यमान तथा उज्ज्वल कवच धारण किये जनकचन्द्र सुशोभित हो रहा था ॥ १५४८ ॥ नौकाओंके उस विशाल पुलको राजा हर्षने अपने लाभके लिए बनवाया था। किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय वह पुल शत्रुओंकी कार्यसिद्धिमें सहायक हो रहा था ॥ १५४९ ॥ जब शत्रु बहुत समीप आ गया तो उसे देखकर राजरानियाँ घबड़ा गयीं। तत्काल उन्होंने प्राण-त्यागका निश्चय कर लिया और वे हाथमें जलती हुई मशालें लेकर शतद्वार नामके राजमहलके ऊपर चतुष्किकाके प्रकोष्ठपर चढ गयीं ॥ १५५० ॥ उस समय नगरनिवासिनी जनता विरक्तभावसे सेतुके अग्रभागमें शत्रुओंके साथ किये जानेवाले युद्धको आश्विनमासमें किये जानेवाले क्रीडायुद्धकी भाँति किनारे खड़ी-खड़ी देख रही थी ॥ १५५१ ॥ उस युद्धमें राजाको विजय प्राप्त होनेकी आशा थी, इसीलिए उसने रानियोंको राजमहलमें आग न लगानेकी चेतावनी दी और स्वयं पुलके द्वारपर जाकर तुमुल युद्ध करने लगा ॥ १५५२ ॥ पुलके अग्रभागपर खड़े राजाके हाथीका कवच धनुर्धरोंके बाणप्रहारसे कटकर गिर गया। अतएव जनकचन्द्र आदि डामरोंने और भी अधिक उत्साहके साथ उस हाथीपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ १५५३ ॥ उस भीषण बाणप्रहारसे व्यथित गजराज चीत्कार करता हुआ लौट पड़ा और पैरोंसे अपनी ही सेनाको रौंदने लगा ॥ १५५४ ॥ इससे राजा हर्षके प्रतिकूल भाग्यके समान उस विमुख गजराजके द्वारा हतोत्साहित राज्यसेनाके घोड़सवार तथा पैदल सैनिक व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये ॥ १५५५ ॥ उधर शत्रुसैनिकोंके भीषण प्रहारसे विताडित राजा हर्ष रणभूमिसे मुँह मोड़ तथा सेतुको लाँघकर इस पार आ गया और भयभीत भावसे अपने अश्वारोही सैनिकोंके साथ शतद्वार महलके आँगनमें घुस गया ॥ १५५६ ॥

उदात्तवेषरहितो रहोऽपि ददृशे न यः । भुञ्जानस्यापि यस्यास्य मुद्रा नैव व्यभाव्यत ॥१५५७॥
स भयद्विगुणार्कांशुस्वेदप्रस्विन्नविग्रहः । पुनः पुनः क्षिप्यमाणस्रस्तवर्मांसयोर्निजैः ॥१५५८॥
अनवस्थितपार्ष्ण्यन्ताघातप्रचलितं हयम् । निरोद्धुं बहुशः कर्षन्नष्टवल्गाग्रहं करम् ॥१५५९॥
खल्वाटशीर्षपर्यन्तलम्बिनीः कुन्तलच्छटाः । प्रापयञ्श्रवणोपान्तं करेण गलितासिना ॥१५६०॥
लडत्प्रलम्बनिर्भूषश्रोत्रपालिलताच्छलात् । कालोऽहिनेव मूर्तेन वेष्टितोच्छुष्ककन्दरः ॥१५६१॥
निस्ताम्बूलतयोच्छुष्कौ जतुपीताविवासकृत् ।
ओष्ठावुत्क्षिप्य कृच्छ्रेण विह्वलो जिह्वया लिहन् ॥१५६२॥
कनीनिकासक्तरेणु क्षामधूसरमाननम् । उत्तानीकृत्य पृष्ठस्थाः पश्यन्दीनमनाः प्रियाः ॥१५६३॥
परिभ्रमन्नङ्गनान्तस्त्रस्तः स ददृशे जनैः । वह्निदानोद्यतास्ताश्च वारयन्करसंज्ञया ॥१५६४॥
मल्लराजस्य वेश्माऽभूद्राजधान्यन्तिकेऽपि यत् । तीर्त्वा जनकचन्द्रेण तत्र वह्निरदीयत ॥१५६५॥
राजधान्युन्मुखं दृष्ट्वा ज्वलन्तं वह्निमागतम् । भेजे पलायनं भोजो राज्यं निश्चित्य हारितम् ॥१५६६॥
स शूलैर्विद्विषां भीमैर्नडैरिव तिरोहितम् । द्वारं भित्त्वा तुरंगस्थः प्राङ्गणान्निर्ययौ बहिः ॥१५६७॥
पञ्चषैः सादिभिः सार्धं लोहरौन्मुख्यमाश्रितः । प्रतस्थे सेतुमुत्तीर्य सिंहराजमठाग्रगम् ॥१५६८॥
यातस्य दृक्पथात्सूनोः साश्रु रालोकयन्दिशम् । राजाश्ववारैः सहितो वेश्मनां बहिरभ्रमीत् ॥१५६९॥
अत्रान्तरे मर्तुकामास्त्रातुं काश्चिन्नृपाङ्गनाः । अश्मभिस्तत्परिजनैरभज्यत चतुष्किका ॥१५७०॥

जो राजा हर्ष कभी एकान्तमें भी उज्ज्वल वस्त्र धारण किये बिना नहीं देखा गया था। जिसका मुख भोजनके समय भी अस्वच्छ नहीं रहता था ॥ १५५७ ॥ उसी राजाका शरीर उस समय सूर्यके तीक्ष्ण आतपके ताप तथा शत्रु के भयसे पसीना-पसीना हो रहा था। उसके कन्धेसे खिसकते हुए कवचको उसके सेवक वार-बार दुरुस्त करते थे ॥ १५५८ ॥ उसका घोड़ा वार-बार एँड़ीकी रगड़ लगनेके कारण दौड़नेके लिए व्याकुल हो रहा था। उसे रोकनेके निमित्त राजा उसकी लगाम वार-बार जोरसे खींचता था ॥ १५५९ ॥ उसके सिर-पर केश बहुत कम रह गये थे, अतएव खल्वाटता आ गयी थी। किन्तु आस-पासके अवशिष्ट और अस्तव्यस्त वालोंको वह तलवार लिये हुए हाथसे कानोंके पीछेकी ओर हटा रहा था ॥ १५६० ॥ उसके कान कुण्डलविहीन थे। उसकी लम्बी कर्णपाली कृष्ण सर्पिणी सदृश उसकी शुष्क ग्रीवापर लटकी हुई थी ॥ १५६१ ॥ काफी देरसे पान न मिलनेके कारण उसके सूखे होंठ ऐसे दीख रहे थे, जैसे उनपर लाख पोत दी गयी हो। वह उन होठोंको बड़े कष्टके साथ जिह्वाके अग्रभागसे वार-वार चाट रहा था ॥ १५६२ ॥ उसकी आँखोंमें धूल भर गयी थी, इसलिए उसका मुँह रूखा तथा धुँधला दीख रहा था। वह बड़ी निराशाके साथ राजमहलकी छतपर खड़ी रानियोंको ऊँचा मुख करके वार-वार निहार रहा था ॥ १५६३ ॥ वाहरके लोगोंने भी देखा कि आगमें जल जानेके लिए सन्नद्ध रानियोंको संकेतसे वैसा न करनेका अनुरोध करता हुआ राजा हर्ष उस राजमहलके आँगनमे टहल रहा था ॥ १५६४ ॥ राजमहलके पास ही मल्लराजका भी भव्यभवन था। सो जनकचन्द्रने नदीके इसपार आकर उसमें आग लगा लगा दी ॥ १५६५ ॥ उस धधकती हुई आगको धीरे-धीरे राजधानीकी ओर आती देखकर युवराज भोजदेवको अपने पिताके हाथसे राज्य निकल जानेका पक्का विश्वास हो गया। अतएव वह पलायनकी तैयारीमें लग गया ॥ १५६६ ॥ तनिक देर वाद वह वीर राजपुत्र घोड़ेपर सवार होकर पाँच-सात घोड़सवारोंके साथ नरकुल घासके समान राजभवनके द्वारको रोककर खड़े सशस्त्र सैनिकोंको तितर-बितर करके महलसे निकला और सिंहराज मठके पासवाले पुलको पार करके लोहार प्रान्तकी ओर चल पड़ा ॥ १५६७ ॥ १५६८ ॥ इस प्रकार राजपुत्र भोज जब राजा हर्षकी आँखोंसे ओझल हो गया, तब वह आँखोंमे आँसू भरके कुछ घोड़सवार सैनिकोंके साथ महलसे वाहर आकर जिधर युवराज गया था, उसी ओर ताकता हुआ धीरे-धीरे टहलने लगा ॥ १५६९ ॥ उसी समय आगमे जल जानेके लिए उद्यत रानियोंको बचानेके लिए

शाहिपुत्र्यस्तदज्ञात्वा शत्रवः पतिता इति । मत्वा चतुष्किकाशृङ्गे ततोऽग्निमुददीपयन् ॥१५७१॥
वास्तव्या डामराश्चाथ घ्नन्तोऽन्योन्यमुदायुधाः । ज्वलतः क्ष्मापतिगृहाद्भाण्डागाराद्यलुण्ठयन् ॥१५७२॥
केचित्तत्र वधं प्रापुर्विपदं केचनात्यजन् । अदृष्टवस्तुसंप्राप्तिः केषांचिद्धास्यदाऽभवत् ॥१५७३॥
सितेयं शर्करेत्येकः कर्पूरं वदनेऽक्षिपत् । ततः सरिति तद्भाण्डं निर्दग्धवदनो न्यधात् ॥१५७४॥
पामरैः स्वर्णचित्राणि कैश्चित्स्वर्णग्रहेच्छया । विनिर्दग्धानि वासांसि विचितं भस्म चादरात् ॥१५७५॥
अविद्धमौक्तिकस्तोमः सिततण्डुलविभ्रमात् । क्वचित्पामरनारीभिर्घरट्टेषु विचूर्णितः ॥१५७६॥

वसन्त्यदृश्ये देशेऽस्मिन्खलीकारेण तादृशा ।
एवं विडम्बिता लक्ष्मीर्न पुनः काप्यदृश्यत ॥१५७७॥

विद्याधरीरिवोदात्तवेषाः क्ष्मापतिसुन्दरीः । हरन्तो डामराः क्रूरा दृश्यन्ते स्म पदे पदे ॥१५७८॥
वसन्तलेखाप्रमुखाः सस्नुपास्तत्र चक्रिरे । निर्यातशेषाः स्वान्देहात्राज्ञ्यः सप्तदशाग्निसात् ॥१५७९॥
गृहाणां दह्यमानानामश्रूयत चटत्कृतिः । गाढोष्मक्वथमानाभ्रसिन्धुघोषप्रतीतिकृत् ॥१५८०॥
श्रीपद्मश्रीप्रपापार्श्वस्थितस्तद्वीक्ष्य पार्थिवः । आर्षं श्लोकमिमं शोकात्स्मृत्वापाठीत्पुनः पुनः ॥१५८१॥
प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः । राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्तते ॥१५८२॥
दग्ध्वाऽथ राजधानीं तामुच्चलो डामरान्वितः । अत्यक्तसैन्यं वीक्ष्यारिं पारमेवातरत्पुनः ॥१५८३॥
ततो युद्ध्वा मर्तुमिच्छन्निन्ये राजा कुलात्मताम् । उच्चावचैर्मतिद्वैधैः पदातीनां क्षणे क्षणे ॥१५८४॥
गच्छन्ननन्तपालादिराजपुत्रधिया मृधम् । दण्डनायकवाक्येन न्यपिध्यत पदे पदे ॥१५८५॥

कुछ राजसेवक महलकी चतुष्किका तोड़ने लगे ॥ १५७० ॥ उसे टूटते देखकर रानियोंने उनका तात्पर्य न समझते हुए राजमहलके ऊपरी हिस्सेमें आग लगा दी ॥ १५७१ ॥ वह दृश्य देखकर राजाके नौकर-चाकर तथा डामर आदि विद्रोही आपसमे लड़ते हुए राजमहलके भीतर घुसकर लूटने लगे ॥ १५७२ ॥ उस लूटमे बहुतोंके प्राण गये, बहुतोंके जीवन भरका दारिद्र्य दूर हो गया और बहुतेरे लुटेरोंके हाथ ऐसी-ऐसी वस्तुये लगीं कि जिनसे उन्हे हास्यास्पद बनना पड़ा ॥ १५७३ ॥ उस लूटके समय किसी मूर्खने कर्पूरखण्डको मिसिरीकी डली समझकर मुँहमे रख लिया, किन्तु जब मुख जलने लगा तब उसने उसे नदीमे फेक दिया ॥ १५७४ ॥ बहुतेरे लुटेरोंने सुनहले बेल-बूटोंवाले वस्त्रोंको जला डाला और सुवर्णप्राप्तिकी आशासे उसकी राख बटोर ली ॥ १५७५ ॥ कहीं-कहीं अविद्ध (बिना छिदी) मोतियोंकी राशि पाकर कुछ मूर्ख स्त्रियोंने उन्हें चावल समझ लिया और चक्कीमे पीस डाला ॥ १५७६ ॥ इस तरह उन नीच लुटेरोंके द्वारा लुटी हुई कश्मीरकी अतुलनीय सम्पत्ति इस प्रकार नष्ट हुई कि भविष्यमे फिर कभी वहाँ वैसी सम्पदा देखनेमें नहीं आयी ॥ १५७७ ॥ विद्याधरियों सदृश उज्ज्वल वेष धारण किये अतीव सुन्दरी रानियोंको वे उपद्रवी तथा क्रूर डामर बलात् उठा ले गये ॥ १५७८ ॥ उस समय वसन्तलेखा आदि पटरानियाँ, उनकी पतोहुएँ और राजकन्यायें कुल मिलाकर सत्रह स्त्रियाँ बचनेकी कोई राह न देखकर आगमे जल मरीं। बाकी सबको डामर उड़ा ले गये ॥ १५७९ ॥ उन जलते हुए राजभवनोंके काष्ठस्तम्भोंके चटकनेका शब्द अत्यधिक उष्णताके कारण उबलती हुई आकाशगंगाके भीषण निनाद सरीखा लग रहा था ॥ १५८० ॥ उस समय पद्मश्री नामक प्रपा (पौसरे) के पीछेकी ओर छिपकर खड़ा राजा हर्ष यह दृश्य देखता हुआ परम शोकाकुलभावसे इस आर्ष श्लोकका बार-बार मनन कर रहा था— ॥ १५८१ ॥ 'प्रजापीडनके सन्तापसे उत्पन्न अग्नि राजाके कुल, ऐश्वर्य तथा प्राणोंको भस्मीभूत किये बिना नहीं शान्त होती ॥१५८२॥ अभी भी राजा हर्षके पास कुछ सम्पदा बाकी बची हुई थी। इसलिए उच्चल राजमहलमें आग लगाकर डामरोंके साथ नदीके उस पार चला गया ॥ १५८३ ॥ राजा हर्ष रणभूमिमें लड़कर मरना चाहता था, किन्तु उसके पैदल सैनिकोंमें पद-पदपर मतभेद हो जाता था। अतएव अत्यन्त व्याकुल हो जानेके कारण यह नहीं सोच पाता था कि अब क्या किया जाय ॥ १५८४ ॥ अनन्तपाल आदि राजपुत्रोंकी सलाहसे वह युद्धके

युध्यस्व लोहरं वापि याहीत्यूचे च चम्पकः। प्रयागस्योत्तरः पक्षः प्रत्यभान्नाग्रिमः पुनः ॥१५८६॥
वार्तामबुद्ध्वा पुत्रस्य नृपतिर्व्याकुलीभवन्। पदवीं भोजदेवस्य याहीत्याह स्म चम्पकम् ॥१५८७॥
प्रयागमात्रानुचरो राजन्संपत्स्यसे क्षणात्। तस्मान्मामपि मा त्याक्षीरित्यूचे तं स निःश्वसन् ॥१५८८॥
सोऽन्तर्बाष्पस्तं बभाषे निर्व्रीडोऽसीति कथ्यते। त्वयाप्यस्मिन्क्षणे कस्मात्तस्माद्‌ल्लङ्घ्यते वचः ॥१५८९॥
विना पुत्रं न पश्यामि सार्केऽपि दिवसे दिशः। त्वं तस्मिन्नङ्कसंवृद्धे न मन्युं कर्तुमर्हसि ॥१५९०॥
अश्वानिमित्तं कलहस्तेष्वेव दिवसेष्वभूत्। मन्त्रिणो राजपुत्रेण तेन तस्याभिमानिना ॥१५९१॥
गिरा प्रभोरुपालब्धस्तदागूरणगर्भया। स लज्जानम्रवदनो राजपुत्रानुसार्यगात् ॥१५९२॥
पञ्चाशताश्ववारैः स भ्रातृभृत्यादिभिः समम्। उत्तीर्णः सरितः पारमात्मना पञ्चमोऽभवत् ॥१५९३॥
भ्रातृद्वयेऽश्ववारे च शेपाराजात्मजे पथि। हताश्वे पतिते सोऽभूद्धनकेनान्वितो भ्रमन् ॥१५९४॥
अनाप्नुवन्नराजसूनोर्वार्ता वा वर्त्मनाप्यटन्। गलितेऽहनि संप्राप वितस्तासिन्धुसंगमम् ॥१५९५॥
एवमाप्तान्परान्पुत्रमन्वेष्टुं प्राहिणोन्नृपः। अन्येपि तन्मिषं लब्ध्वा तस्य पार्श्वादवाचलन् ॥१५९६॥
उत्कोचादायिना क्रुद्धं राजपुर्यादिविग्रहे। योग्यानसहता भृत्यान्निःसारः कटकः कृतः ॥१५९७॥
लोहरप्रस्थितौ विघ्नं राजा पुत्रस्य कारितः। प्रवेशितः पुरं वैरी राजन्यन्याहवाकुले ॥१५९८॥
सर्वस्वध्वंसिना येन स एव नृपतेरभूत्।
तदाप्युचितकर्तव्यनिषेद्धा दण्डनायकः ॥ तिलकम् ॥१५९९॥

लिए अग्रसर होता था तो दण्डनायक उसे युद्धमें जानेसे रोक देता था ॥ १५८५ ॥ चम्पक कहता था कि 'युद्ध करिए या लोहार प्रान्तकी ओर चले जाइए'। किन्तु प्रयाग लोहारको चले जाना ही ठीक समझता था। उसे युद्ध करना ठीक नहीं जँचता था ॥ १५८६ ॥ युवराज भोजदेवके चले जानेपर फिर उसका कोई समाचार न मिलनेके कारण व्याकुल राजाने चम्पकको उसका पता लगानेके लिए जानेको कहा ॥ १५८७ ॥ चम्पक लम्बी साँस लेकर बोला—'महाराज! मेरे चले जानेपर अकेला प्रयाग ही आपके पास रह जाएगा। अतएव जैसे भी हो, मुझे अपने समीपसे दूर न करिए' ॥ १५८८ ॥ तब आँखोंमें आँसू भरके राजाने कहा—'चम्पक! यह बात जगजाहिर है कि तुम कृतघ्न नहीं हो, तब इस संकटके समय मेरी आज्ञाका उल्लंघन क्यों करते हो? ॥ १५८९ ॥ पुत्रके अभावमें सूर्यसे प्रकाशित दिनके समय भी मुझे दसों दिशायें अंधकारपूर्ण दिखायी देती हैं। मैंने उसे अपनी गोदमें खेलाकर पाला है। अतएव तुम्हें उसके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए' ॥ १५९० ॥ मन्त्री चम्पकसे युवराज भोजदेवका एक घोड़ीके लिए कुछ झगड़ा हो गया था। इसीसे राजाने उस समय यह व्यंग्य वचन कहा था। ऐसी बात सुनकर चम्पक लज्जित तथा दुखी होकर युवराजकी टोह लेनेके लिए चल पड़ा ॥ १५९१ ॥ १५९२ ॥ चलते समय उसके साथ उसके भाई तथा सेवक आदि कुल मिलाकर पचास घोड़सवार वीर थे, किन्तु नदीके पार पहुँचते-पहुँचते उसके साथ उसके समेत केवल पाँच व्यक्ति रह गये ॥ १५९३ ॥ उन चार साथियोंमें चम्पकके दोनों भाई तथा अश्वारोही शेपराजका पुत्र ये ही चार वीर थे। मार्गमें शेपराजका अश्व मर गया। अतएव उसे पैदल ही चलना पड़ा ॥ १५९४ ॥ वे पाँचों वीर बड़ी देरतक राजकुमार भोजदेवको खोजते रहे। परन्तु कहीं उसका पता नहीं लगा। शामतक वे वितस्ता तथा सिन्धु नदीके संगमपर जा पहुँचे ॥ १५९५ ॥ उनके अतिरिक्त और भी बहुत-से आप्तजनोंको राजाने युवराजका पता लगानेके लिए भेजा। किन्तु उनमेंसे अधिकांश लोग तो इसी बहाने उसके पाससे निकल भागे ॥ १५९६ ॥ राजपुरी आदिकी लड़ाइयोंमें जिन सेनानायकने शत्रुपक्षसे घूस लेकर राजाको धोखा दिया था, जिसने राजासे चिढकर सेनासे योग्य व्यक्तियोंको निकाल दिया था और ऐसा करके सारी सेनाको निःसार बना दिया था ॥ १५९७ ॥ जब राजा युवराजको लोहर प्रान्त भेज रहा था, तब जिस दुष्टने उसमें विघ्न डाला था। जिसने राजाको युद्धलिप्त देखकर शत्रुको राजधानीमें घुसा दिया था ॥ १५९८ ॥ जिसने राजा हर्षका सर्वस्व नष्ट कर डाला था, वही पापी

राज्ञः कृत्स्नावसन्नस्य शृण्वतो बहुमन्त्रितम् । नैकत्र रूढिः कर्तव्ये काप्यधीरधियोऽभवत् ॥१६००॥

सर्वैर्यथा निखिलरन्ध्रमुखेन वंशः संपूरितो न खलु शब्दमपाकरोति ।
तैस्तैस्तथा बहुपथप्रचयेन मन्त्रः संकल्पितः किल न निश्चयमभ्युपैति ॥१६०१॥

भाग्यक्षयस्यैतदेव लक्षणं प्राकृतोऽपि यत् । अपृष्टः कथयेद्धाष्टर्यान्मन्त्रं स्वहृदयोचितम् ॥१६०२॥

त्रैलोक्यनाम्ना सूतेन शंसता दण्डनायकम् । निरोध्य वल्गामित्यूचे भूयः क्ष्माभृद्रणोन्मुखः ॥१६०३॥

एकाङ्गैः साश्ववारैः प्राग्जिगाय त्वत्पितामहः । तद्गच्छामोऽक्षपटलोपान्तं तत्संग्रहेच्छया ॥१६०४॥

पदातिग्रामसैन्यांस्तान्निहन्मः संहतान्रिपून् । पश्चान्निपत्य तैः साकं श्येना इव विहंगमान् ॥१६०५॥

ततश्चिचलिषावेव राज्ञि तत्कटको दिशः । सद्यष्टयम्बुहतो रङ्गप्रेक्षिलोक इवागमत् ॥१६०६॥

पारे वितस्तां प्राप्तेभ्यः पाथेयायात्मजन्मनः । स शेपाराजजन्मभ्यो रत्नग्रैवेयकावदात् ॥१६०७॥

आरामिकैस्तैः संप्राप्ते राजचिह्ने क्षणादिव । तेजःस्फारोज्झितो राजा गतश्रीर्ददृशे जनैः ॥१६०८॥

पदे पदे भ्रश्यमानसैन्योऽक्षपटलादिषु । स्थानेषु चाभ्रमीत्कश्चिन्न च तस्यापदन्तिकम् ॥१६०९॥

संश्रयार्थ्यथ बभ्राम सायं वेश्मानि मन्त्रिणाम् । प्रवेशं प्रददौ चास्य न कोऽपि द्वारि तस्थुषः ॥१६१०॥

प्रायोपवेशकुशलाः शक्तास्त्वन्ते न कुत्रचित् । मिथ्यासंभावनाभूमिर्भूपानां ब्रह्मबन्धवः ॥१६११॥

ये केऽपि देशे सन्त्यस्मिंस्तद्गेहेष्वास्थया भ्रमन् । प्रविविक्षुर्गृहान्प्राप कपिलाख्यस्य मन्त्रिणः ॥१६१२॥

दण्डनायक उस समय भी उचित कर्तव्यके पालनमें बाधक बन गया ॥ १५९९ ॥ उस समय राजा भीषण संकटमें फँस गया था, बहुतेरी सलाह पा करके भी वह कर्तव्यका निश्चय नहीं कर सकता था। उसका धैर्य जवाब दे गया था और उसकी बुद्धि भ्रममें पड़ गयी थी ॥ १६०० ॥ जैसे बाँसुरीके सभी छिद्रोंमें एक साथ हवा भर जानेसे मधुर स्वर निकलना असम्भव हो जाता है, वैसे ही परस्परविरुद्ध अनेक मतोंसे बाधित विचार कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं प्राप्त कर पाते ॥ १६०१ ॥ राजाके भाग्यक्षयका सबसे उत्कृष्ट लक्षण यह है कि उस अभागेको साधारण मनुष्य भी बिना पूछे स्वेच्छासे और मनमानी सलाह देनेकी धृष्टता करने लगता है ॥ १६०२ ॥ जब राजा हर्ष युद्धके लिए चलनेको उद्यत हुआ, तब त्रैलोक्य नामके सारथीने घोड़की लगाम थाम्हकर दण्डनायककी बहुत सराहना की और कहा—॥ १६०३ ॥ 'राजन्! प्राचीनकालमें आपके पितामह अनन्तदेवने एकाङ्गों तथा घोड़सवारोंको साथ ले जाकर विजय प्राप्त की थी। अतएव उन्हें एकत्र करनेके लिए हमें अक्षपटल अर्थात् कचहरीके पासवाले स्थानपर चलना चाहिए ॥ १६०४ ॥ उनको साथ लेकर हमलोग शत्रुके प्रायः कुछ पैदल सैनिकोंकी सेनापर पीछेकी तरफ एकाएक बाजकी तरह हमला करके साधारण पक्षियों जैसे उन तुच्छ सैनिकोंको नष्ट कर डालेंगे ॥ १६०५ ॥ राजा हर्ष जब इस कार्यकी तैयारी कर रहा था, उसी समय उसकी सेनामें सहसा बड़े जोरोंसे कोलाहल होने लगा। जैसे घनघोर वर्षा होने लगनेपर तमाशाई लोग तमाशा छोड़कर भाग जाते हैं, उसी तरह उस राजाके सब सैनिक उसे त्यागकर भाग गये ॥ १५०६ ॥ वितस्ता नदी पार करके आये हुए शेपराजके पुत्रोंको राजा हर्षने युवराज भोजदेवका पता लगानेके लिए मार्गव्ययस्वरूप अपने गलेका कण्ठहार तथा अन्यान्य आभूषण दे दिये थे ॥ १६०७ ॥ शेपराजके वे पुत्र बागवानीका काम करते थे। उनको अपना समस्त राजचिह्न स्वरूप आभूषण दे देनेके बाद वह राजा सर्वथा निस्तेज दिखायी देने लगा ॥ १६०८ ॥ उसके बचे-खुचे सैनिक भी पग-पगपर उसे छोड़-छोड़कर भाग रहे थे। वह अक्षपटल तथा अन्यान्य कार्यस्थानोंमें बहुत देरतक भटकता रहा, पर वहाँ उसे कोई नहीं मिला ॥ १६०९ ॥ इस तरह सब ओरसे निराश होकर सायंकालके समय राजा हर्ष आश्रय पानेके लिए अपने प्रत्येक मन्त्रीके द्वारपर गया, किन्तु उसे किसीने अपने घरके भीतर नहीं बुलाया ॥ १६१० ॥ केवल अनशनके कार्यमें कुशल दुष्ट ब्राह्मणोंसे गाढ़े समयपर कोई काम नहीं बन पड़ता। अतएव इन नीचोंपर राजाओंको कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए ॥ १६११ ॥ इस तरह वह राजा नगरके प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्तिके यहाँ आश्रयके लिए ठोकर खाता हुआ कपिल

तस्मिँल्लोहरकोट्टस्थे तत्पत्न्या स्थातुमर्थितः । नौभिश्च कोट्टं गन्तुं न प्राविक्षद्दैवमोहितः ॥१६१३॥
आर्तस्य तस्य तत्पुत्रैः पितृवद्द्रोहकारिभिः । ऋणिकैरुत्तमर्णस्य स्वं निःस्वैरिव गोपितः ॥१६१४॥
सदोपोस्मीति सोऽज्ञासीत्स्वयं शृण्वन्विगर्हणाम् । तदैव गोपिताशेषकृत्यो दुर्मन्त्रिभिः पुरा ॥१६१५॥
गृहीतसर्वनैराश्यः पार्श्वस्थेष्वप्यविश्वसन् । अभूत्प्रद्युम्नमुत्तीर्णो नितरां विरलानुगः ॥१६१६॥
प्रख्यापयन्तः संभूतिं षट्त्रिंशति कुलेषु ये । तेजस्विनो भास्वतोपि सहन्ते नोच्चकैः स्थितिम् ॥१६१७॥
तेऽप्यन्तेनऽन्तपालाद्या राजपुत्रास्तमत्यजन् । सान्द्रतां दधति ध्वान्ते स्थगिताश्वाः पदे पदे ॥१६१८॥
वाहनाज्जोहिलमठोपान्तं प्राप्यावतीर्णवान् । स दण्डनायकेनापि तत्यजे सानुजन्मना ॥१६१९॥

इहास्मच्छ्वशुरावासस्तत्र वस्तुमिमां निशम् ।
वीक्ष्य ते स्थानमेष्यामीत्युक्त्वा व्याजेन सोऽचलत् ॥१६२०॥

यियासोरनुजं तस्य पाथेयार्थं प्रयागकः । ययाचेऽङ्गदसस्मै स प्रादात्सक्तून्स तत्पुनः ॥१६२१॥
एकांशुकावशेषश्रीस्ततो वा शेषजीवितः । प्रयागशेषानुचरो नृपतिः समपद्यत ॥१६२२॥
सूदश्चम्पकभृत्यस्य जलकाख्यस्य तत्क्षणम् । मुक्तो नामान्तिकं प्राप्तो नृपतेराप्ततामगात् ॥१६२३॥
उदीपविहितैः खातैरग्रे दुःसंचरा क्षितिः । भ्राम्यतस्तानुवाचेति नारी काचिद्गुहान्तरात् ॥१६२४॥
ततस्तीरे वितस्ताया निषण्णेऽस्मिन्प्रयागकः । गन्तुं जयपुरं कोट्टमाजुहाव स नाविकान् ॥१६२५॥
स हि प्राक्संविदं चक्रे तत्रत्यैः सह शस्त्रिभिः । नृपं प्रेयाश्रयं नेतुं भीमादेवस्य मन्दिरम् ॥१६२६॥

मन्त्रीके द्वारपर जा पहुँचा ॥ १६१२ ॥ उस समय मंत्री लोहरकोट गया हुआ था। सो उसकी पत्नीने राजा हर्षसे रातभर उसके यहाँ ठहरकर सवेरे नौकासे लोहरकोट चले जानेकी प्रार्थना की, किन्तु उस अभागे राजाने मन्त्रिपत्नीकी वह हितकर बात नहीं मानी ॥ १६१३ ॥ अपने पिताकी तरह ही द्रोह करनेमें निपुण उस कपिल मंत्रीके पुत्रोंने दुःखी राजा हर्षको देखकर वैसे ही अपना मुँह छिपा लिया, जैसे कर्जदार साहूकारको देखकर मुँह छिपाता है ॥ १६१४ ॥ अब राजा हर्षको अपनी सदोषताका पता लगा। क्योंकि इसके पहले तो दुष्ट हृदयवाले मन्त्री उसके द्वारा किये गये दुराचारोंसे रुष्ट प्रजा द्वारा की गयी निन्दाओंपर परदा डालकर उन्हें दबा देते थे ॥ १६१५ ॥ किन्तु इस समय वह सब ओरसे निराश हो चुका था। अब उसके मनमें अपने निकटवर्ती सेवकोंपर भी विश्वास नहीं रह गया था। वहाँसे चलकर वह प्रद्युम्नतीर्थकी पहाड़ीपर जा पहुँचा। वहाँसे कुछ आगे बढनेपर उसके साथ बहुत थोड़े सेवक रह गये ॥ १६१६ ॥ जो छत्तीस उच्चतम कुलोंमें उत्पन्न होनेके कारण उत्तम, तेजस्वी एवं प्रभावशाली सूर्यसे भी अपनेको श्रेष्ठ मानते थे, वे ही अनन्तपाल आदि राजपुत्र शामको अँधेरा होते ही अपने-अपने घोड़े सम्हाल तथा राजा हर्षको राहमें ही छोड़कर भाग गये ॥ १६१७ ॥ १६१८ ॥ चलते-चलते राजा जब जोहिलमठ पहुँचा तो वहाँ वह घोड़ेपरसे उतर पड़ा। वहाँ ही अपने छोटे भाई समेत दण्डनायकने भी राजाका साथ छोड़ दिया ॥ १६१९ ॥ बात यह हुई कि जोहिलमठ पहुँचनेपर दण्डनायकने राजा हर्षसे कहा—'यहीं मेरी ससुराल है। सो आजकी रात बितानेके निमित्त कोई उत्तम स्थान देखकर मैं अभी आता हूँ'। ऐसा बहाना करके वह धूर्त दण्डनायक चला गया ॥ १६२० ॥ दण्डनायक जब पलायनकी तैयारी कर रहा था, तब प्रयागने उसके छोटे भाईसे राजाके लिए कुछ राहखर्च देनेको कहा, तब उसने थोड़ा सा सत्तू उसे दिया ॥ १६२१ ॥ इस प्रकार अब उस राजाके पास उसके वस्त्रमात्रकी सम्पत्ति, प्रयाग सेवक और उसका अपना-जीव ये ही साथी रह गये ॥ १६२२ ॥ उसी समय चम्पक महामात्यके सेवक जलकका रसोइया मुक्त अनायास उससे आ मिला और थोड़ी ही देरमे वह राजाका विश्वस्त सेवक बन गया ॥ १६२३ ॥ जब वे तीनों इधर-उधर भटक रहे थे तो पास ही की पर्वतीय गुफाके भीतर रहनेवाली एक स्त्रीने बताया कि 'आगेका रास्ता नदीकी बाढके कारण बड़ा दुर्गम है और बहुतेरे गढ़े हैं' ॥ १६२४ ॥ यह सुनकर राजा जब वितस्ता नदीके तटपर टिक गया। तब प्रयागने नदीके उस पार जयपुरकोट जानेके निमित्त नाविकोंको बुलाया ॥ १६२५ ॥ क्योंकि प्रयागने पहले ही राजाको भीमादेवके घर पहुँचानेके लिए उसके कुछ सशस्त्र

उच्चलाश्रयिणाप्यूचे भीमादेवेन येन सः । राज्ञोऽनुगो गमिष्यामि प्रविष्टस्योपवेशनम् ॥१६२७॥
नौचरैराहृतां नावमारुरोह न भूपतिः । नाशोन्मुखः समासन्नदृष्टिपातभयाकुलः ॥१६२८॥
पर्यापतत्कालकरस्यभोगिसंदर्शनेनेव मतिप्रदीपः ।
क्षिप्रं प्रशान्त्युन्मुखतामुपैति विनाशकालेषु शरीरभाजाम् ॥१६२९॥
तस्मिन्द्रोहसुभिक्षेऽपि यस्य मानवतः परम् । अनन्यालोकिनी दृष्टिर्भेजे कुलवधूव्रतम् ॥१६३०॥
नीलाश्वीयः स विम्वाख्यो डामरो मिलितोऽहितैः ।
तदापि प्रययौ राज्ञो विस्मृतिं संश्रयार्थिनः ॥ युगलकम् ॥१६३१॥
ततः प्रावर्तत त्यक्तुं वारि वारिमुचां गणः । क्षमामिव क्षालयितुं द्रोहस्पर्शेन दूषिताम् ॥१६३२॥
भूर्निर्जना वृष्टिपातस्तमिस्रा दुःसहायिता । वैरिभीतिरिति प्राभूत्किं किं तस्य न दुःखदम् ॥१६३३॥
इति वृत्तानुरोधेन धिग्दुष्कर्मविधायिनाम् । अस्मर्तव्यमपि व्यक्तं नाम ग्राहिष्यतेऽधुना ॥१६३४॥
सोमानन्दाभिधानस्य पूज्याः सिद्धस्य देवताः । सोमेश्वराभिधाः सन्ति काश्चित्पितृवनान्तरे ॥१६३५॥
तल्लाञ्छिताङ्गना तुङ्गतरुप्रच्छन्नवाटिका । अभूद्गुणाभिधानस्य कुटी क्षुद्रतपस्विनः ॥१६३६॥
वारस्त्रिया स विरहभुजंगीतिप्रसिद्धया । भिक्षाख्यया समं भेजे चेष्टितं कुट्टिनोचितम् ॥१६३७॥
तस्य प्रतापगौरीशदेवागारान्तिकस्थितेः । कुटीं मुक्तेन तां निन्ये क्ष्माभृद्वस्तुं स तां क्षपाम् ॥१६३८॥
मुक्तमालम्ब्य नृपतिस्तमालम्ब्य प्रयागकः ।
यान्ति स्म विद्युद्द्योतेन क्ष्मां पश्यन्तोऽन्तरान्तरा ॥१६३९॥

सैनिकोंसे परामर्श कर लिया था ॥ १६२६ ॥ यद्यपि भीमादेव उच्चलके पक्षपातियोंमेंसे था । तथापि उसने कहा था कि 'यदि राजा हर्ष मेरे घर आयेंगे तो मैं उन्हींका साथ दूँगा' ॥ १६२७ ॥ किन्तु अभागा, अपने विनाशके लिए अग्रसर और किसी नजदीकी आदमीकी भी दृष्टिपातमात्रसे भयभीत हो जानेवाला वह राजा नाविकों द्वारा लायी हुई नावपर नहीं बैठा ॥ १६२८ ॥ जैसे सर्पके निहारते ही दीपक बुझने लग जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणीका बुद्धिरूपी दीपक विनाशकाल उपस्थित होनेपर समयरूपी सर्पकी दृष्टि पड़ते ही बुझ जाता है ॥ १६२९ ॥ यद्यपि उस समय स्वामिद्रोहका सुभिक्ष चल रहा था, ऐसे अवसरपर भी अपने स्वामीको छोड़कर और किसीकी ओर आँख उठा करके भी न देखनेवाली एक उच्च कुलकी स्त्रीके समान जिस नीलाश्ववंशज डामर विम्बने अन्ततक राजाका साथ नहीं छोड़ा था, उसको भी दुर्भाग्यवश वह आश्रयाभिलाषी राजा नहीं स्मरण कर सका ॥ १६३० ॥ १६३१ ॥ तदनन्तर जैसे स्वामिद्रोहके महापापसे दूषित पृथिवीको धोनेके लिए बादलोंका समुदाय उमड़ पड़ा और बड़े जोरोंसे वर्षा होने लगी ॥ १६३२ ॥ निर्जन भूमि, अनवरत मूसलधार वर्षा, घोर अन्धकार तथा क्षण-क्षणपर शत्रुका भय इस तरह उस राजाके लिए कौनसी दुःखदायिनी विपत्ति बाकी रही ? उसपर सभी विपत्तियाँ एक साथ बहरा पड़ी थीं ॥ १६३३ ॥ यद्यपि उस समय राजाके साथ विद्रोह करनेवाले पापियोंका नाम गिनाना कदापि उचित न होता, तथापि ऐतिहासिक प्रसंगके अनुरोधवश मुझे उनका नामोल्लेख विवश होकर करना पड़ रहा है ॥ १६३४ ॥ चलते-चलते राजा अब जिस स्थानपर पहुँचा था, वह श्मशान था । वहाँ सोमानन्द नामक सिद्ध योगीके द्वारा स्थापित सोमेश्वर नामका शिवमंदिर था ॥ १६३५ ॥ उस मन्दिरके चारों ओर बड़े ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे और उन वृक्षोंके बीचमें एक वाटिका थी। उस वाटिकाके भीतर गुण नामके एक क्षुद्र तपस्वीकी कुटिया थी ॥ १६३६ ॥ उस कुटियामें वह क्षुद्र भिक्षुक 'विरहभुजङ्गी' नामसे विख्यात भिक्षा नाम्नी वृद्धा वेश्याके साथ रहता हुआ कुटनेका धंधा करता था ॥ १६३७ ॥ वह कुटी प्रतापगौरीश मन्दिरके पास थी और मुक्तके साथ राजा हर्ष उसी कुटीमें रैन बसेरा करने जा रहा था ॥ १६३८ ॥ उस अँधेरी रातमें राजा मुक्तके सहारे और प्रयाग राजाके सहारे चल रहा था । इस प्रकार वे तीनों उस घोर अन्धकारभरी रात्रिमें कभी-कभी चमकनेवाली बिजलीके प्रकाशसे पृथिवीको देखते हुए चल रहे थे

निरुष्णीषोऽङ्गसंस्यूतक्लृप्तवासाः स्खलन्नृपः । स तां प्रयागमुक्ताभ्यां कथंचित्प्रापितः कुटीम् ॥१६४०॥
तदा कुमन्त्रिनिष्कृष्टं स व्यापद्वारणक्षमम् । शोचन्सस्मार कन्दर्पं रुद्रं दैत्यमिवोत्पलः ॥१६४१॥
प्राकारमूर्ध्नां मुक्तेन प्रविष्टेन हृतार्गलाम् । नृपः कुटीप्राङ्गणोर्वीं विवेशास्थिततापसाम् ॥१६४२॥
विशतोऽश्मक्षतः पादस्तस्यासृग्दक्षिणोऽत्यजत् । मेने तेनानिमित्तेन स मृत्युं समुपस्थितम् ॥१६४३॥
कुठ्यामर्गलरुद्धायां निषण्णस्याङ्गणे ययौ । रात्रिर्भीतिमतो भीमा तस्य घोराभ्रमालिनी ॥१६४४॥
पङ्कोपलिप्तः पङ्काङ्कस्थण्डिलस्थो निनाय ताम् । दासकम्बलिकाच्छन्नगात्रो वृष्टयुत्तरां निशम् ॥१६४५॥
विसस्मारान्तराद्दुःखमासीनप्रचलायितैः । निर्निद्रस्त्वभवच्छ्वभ्राद्भ्रश्यन्निव समाकुलः ॥१६४६॥
कोऽहं केनाभिभूतोऽद्य क्व वर्ते कोनुगोऽधुना । किं कृत्यमिति निर्ध्याय मुहुर्मुहुरकम्पत ॥१६४७॥
हृतं राज्यं प्रिया दग्धा भ्रष्टः सूनुरबान्धवः । जातोस्म्येकाक्यपाथेयो लुठन्भिक्षाभुजोऽङ्गणे ॥१६४८॥
इत्येकैकं च निर्ध्याय दुःखं नैक्षिष्ट सोपरम् । प्राप्तावसादं शोचन्तमात्मतुल्यं कथास्वपि ॥युग्मम्॥१६४९॥
भोजस्तु वाजिभिर्द्वित्रैरवशिष्टैः समं व्रजन् । हस्तिकर्णान्तरं प्राप निर्गत्य नगरान्तरात् ॥१६५०॥
व्रजतस्तस्य धीरासीन्नियतं पञ्चषैर्दिनैः । पुनः संप्राप्नुयां राज्यं यदीन्द्रोऽपि भवेद्रिपुः ॥१६५१॥

गर्भवास इव पौरुषे स्फुरन्कि न कर्म पुरुषश्चिकीर्षति ।
कर्मवायुरिव संस्पृशन्हठान्मूढमेव कुरुते तु तं विधिः ॥१६५२॥

॥ १६३९ ॥ उस समय राजाके मस्तकपर उष्णीष (पहाडी या साफा) नहीं था, वर्षासे भींग जानेके कारण उसके वस्त्र शरीरमें चिपक गये थे और वह मार्गमें बार-बार फिसल पड़ता था। इस तरह प्रयाग और मुक्त उसे बड़ी कठिनाईसे उस कुटी तक ले गये ॥ १६४० ॥ जैसे कभी किसी विकट समयमें उत्पलको रुद्रका स्मरण आया था, उसी प्रकार उस शोकाकुल राजाको दुष्ट मंत्रियोंकी सलाहपर निर्वासित एवं समस्त विपत्तियोंका निवारण करनेमें समर्थ परम वीर कन्दर्पका स्मरण आया ॥ १६४१ ॥ वे तीनों जब उस कुटीपर पहुँचे, तब भिक्षुक गुण कहीं गया हुआ था। अतएव मुक्त दीवार फाँदकर आँगनमें कूदा और आँगनके द्वारकी अर्गली खोली। तब वे सब उस कुटीके आँगनमें पहुँचे ॥ १६४२ ॥ आँगनमें जाते समय राजाके दायें पैरमें ठोकर लग गयी, जिससे रुधिर बहने लगा। यह अपशकुन देखकर राजाने समझ लिया कि 'अब मेरी मृत्यु समीप है' ॥ १६४३ ॥ उस कुटियाके द्वारपर ताला लगा हुआ था। अतएव वह भीषण मेघसे आच्छादित तथा घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि उस राजाको कुटीके आँगनमें बैठकर डरते-डरते बितानी पडी ॥ १६४४ ॥ उस समय राजा हर्षका सारा शरीर कीचड़से भरा हुआ था। वर्षा रुकनेपर उसने अपने सेवक प्रयागके कम्बलसे शरीर ढाँककर उस कीचड़-भरी जमीनपर प्रायः खड़े ही खड़े बाकी रात्रि व्यतीत की ॥ १६४५ ॥ उस समय वह कभी उठता था, कभी बैठता था और कभी चलने लगता था। इस तरह वह किसी काममें उलझकर अपना दुःख भूलनेकी चेष्टा कर रहा था। रह-रहकर वह अपनेको ऊँचे स्थानसे किसी गहरे गर्तमें गिरा हुआ अनुभव करने लगता था ॥ १६४६ ॥ 'मैं कौन हूँ, आज मुझपर कौन हावी है, मैं कहाँ हूँ, इस समय मेरा कौन अनुचर है और अब मेरा क्या कर्तव्य है' इन बातोंको सोचकर वह राजा बार-बार काँप उठता था ॥ १६४७ ॥ 'मेरा राज्य छिन गया है, मेरी रानियाँ अग्निमें जल मरी है, मेरा पुत्र न जाने कहाँ चला गया है, मैं बान्धवविहीन अकेला और पाथेय रहित हूँ, आज मुझे एक भिखारीकी कुटियाके आँगनमें बैठकर समय व्यतीत करना पड़ रहा है' इस तरह एक-एक दुःखपर गंभीर विचार करनेवाले उस राजाको अपने जैसा दुखिया और ऐसी दुर्दशा भोगनेवाला मनुष्य सारे विश्वके पुराणों तथा इतिहासोंमें भी नहीं दिखायी देता था ॥ १६४८॥ १३४९ ॥ उधर युवराज भोजदेव अपने अवशिष्ट दो-तीन अश्वारोहियोंके साथ नगरके समीपवाले भागसे निकलकर हस्तिकर्ण जा पहुँचा ॥१६५०॥ राजधानीसे चलते समय युवराज भोजदेवको इस बातका पूरा विश्वास था कि यदि इन्द्र भी मेरा शत्रु होगा तो मैं पाँच-छः दिनोंमें उससे अपना राज्य छीन लूँगा ॥ १६५१ ॥ माताके गर्भमें बैठे हुए जीवके समान मनुष्य अपनेपौरुषसे क्या-क्या नहीं करना चाहता, किन्तु जैसे गर्भसे बाहर आते ही प्रारब्धकी हवा जीवको मोहमें

मातृभिर्दत्तपाथेयं भृत्यं नागेश्वराभिधम्। प्रतीक्षमाणश्चक्रे स रङ्गवाटान्तरे स्थितिम् ॥१६५३॥
शून्ये देवगृहे तत्र तिष्ठञ्श्रुत्वा तमागतम्। स निर्ययौ तेन तस्मिन्निःशङ्कं प्रहृतं पुनः ॥१६५४॥
तत्र प्रादुष्कृतद्रोहे क्षत्रधर्मादविच्युतः। राजपुत्रः स यच्चक्रे न तत्कस्याद्भुतावहम् ॥१६५५॥
स सिंह इव संहारं कृत्वा युधि विरोधिनाम्। असाङ्गरागलिप्ताङ्गो वीरशय्यामभूषयत् ॥१६५६॥
भ्रातास्य मातुलापत्यं विपेदे पद्मकाभिधः। खेलो लालितवच्चैव संख्येऽसंख्यपराक्रमः ॥१६५७॥
मठं सूर्यमतीदेव्याः शर्वर्यामुच्चलोऽविशत्। भ्राताप्यस्य रणश्रान्तो लवणोत्सात्समाययौ ॥१६५८॥
हतं भोजं श्रुतवतोर्हर्षमात्रे स्थिते तयोः। मनस्युत्खातशूलेऽश्रिरेवैका पर्यशिष्यत ॥१६५९॥
प्राप्तमप्राप्तवद्राज्यं तथापि प्रत्यभात्तयोः। प्रवासे विस्मृते राज्यसुखे लब्धे च कुत्रचित् ॥१६६०॥

प्राप्ते कुतश्चिदानीतो मुक्तेनान्विष्य तापसः।
प्रणम्य नृपतिं चक्रे स्वकुटीं तां निरर्गलाम् ॥१६६१॥

तां दंशमशकाकीर्णामास्तीर्णतृणविष्टराम्। कृताम्बुसेकां मुक्तेन नृपतिः प्राविशत्कुटीम् ॥१६६२॥
यद्गिरा बहुमानोऽभूत्कृतया भूभुजामपि। स भूभृच्चाटुकारित्वं भीतो भिक्षाभुजोऽप्यगात् ॥१६६३॥
भिक्षाकस्योचितं ग्राम्यमनुदात्तं त्रपावहम्। आलापाभ्यवहाराभ्यां तस्य शृण्वन्स विव्यथे ॥१६६४॥
स भिक्षाकः प्रयागेन विक्रयायाधरांशुकम्। निजं दत्त्वा विससृजे विपणिं भोज्यसिद्धये ॥१६६५॥
कटूक्तिः कटुवागग्रे परोक्षं भेदभीतिकृत्। कुतापसो दौःस्थ्यहेतुर्नृपस्यारिरिवाप्यभूत् ॥१६६६॥

डाल देती है वैसे ही बड़े लम्बे-चौड़े मंसूबे बाँधनेवाले मनुष्यको भी दैव बरबस मोहित कर देता है ॥ १६५२ ॥ उसका नागेश्वर नामक सेवक माताओंके दिये हुए पाथेय (राहखर्च) लानेके लिए गया हुआ था। उसकी प्रतीक्षामें युवराज हस्तिकर्णके पास रंगवाट नामकी वाटिकामें टिका था ॥ १६५३ ॥ उस शून्य देवमन्दिरमें बैठे हुए राजकुमार भोजदेवको जैसे ही नागेश्वरके आनेकी आहट मिली, तैसे ही वह बाहर निकल आया। उसी समय नागेश्वर तथा उसके साथियोंने भोजदेवपर प्रहार कर दिया ॥ १६५४ ॥ उन लोगोंकी कृतघ्नता देखकर क्षुब्ध तथा अपने क्षात्रधर्मपर दृढ उस युवराजने जो पराक्रम प्रदर्शित किया, उसपर किसको आश्चर्य न होगा ॥ १६५५ ॥ उस युद्धमें अपने विरोधियोंको धराशायी करते हुए सिंहके समान उस वीरने रुधिर-का अंगराग सारे शरीरमें लगाकर वीरशय्या (मरण) को विभूषित किया ॥ १६५६ ॥ साथ ही उसके मामाका पुत्र एवं असाधारण पराक्रमी पद्मक तथा बालसाथी खेल ये दोनों वीर भी उस युद्धमें मारे गये ॥ १६५७ ॥ इधर उच्चल रातके समय शूरमतीके मठमें डेरा डाले हुए था। वहाँ ही युद्धसे थका हुआ उसका भाई सुस्सल भी लवणोत्सवसे जा पहुँचा ॥ १६५८ ॥ 'राजपुत्र भोजदेव मार डाला गया और अब केवल हर्ष बाकी रह गया है' यह समाचार सुनकर उन्हें ऐसा भान हुआ कि मानो उनके हृदयका काँटा निकल गया, अब केवल उसका अग्रभाग निकलना बाकी है ॥ १६५९ ॥ उच्चल तथा सुस्सल इन दोनों भाइयोंको राजा हर्षके कारण देशान्तरमें भटकनेका जो कष्ट उठाना पड़ा था अब वे उसे भूल चुके थे। उन्हें इस समय कुछ राज्यसुख भी सुलभ हो गया था, तथापि उनको वह राज्यप्राप्ति अप्राप्तिके समान ही प्रतीत हो रही थी ॥ १६६० ॥ इधर दूसरे दिन सवेरे मुक्त उस कुटियाके भिक्षुकको कहींसे खोज लाया। तब राजाको अभिवादन करके उसने कुटीका द्वार खोला ॥ १६६१ ॥ उस कुटीमें डाँसों एवं मच्छरोंकी भरमार थी। पृथिवीपर पुआल बिछा हुआ था। सो मुक्तने उसके भीतर थोड़ा-सा पानी छिड़का, तब राजा उसके भीतर गया ॥ १६६२ ॥ जिसकी वाणी सुनकर बड़े-बड़े राजे भी अपनेको धन्य मानते थे, वही राजा उस समय भयभीत होनेके कारण उस भिक्षुककी खुशामद करता हुआ बड़े विनम्र वचन बोलता था ॥ १६६३ ॥ उस भिक्षुककी भिक्षुकों जैसी नीरस बातें, ग्राम्य भोजन एवं चातुर्यहीन बर्ताव आदि देखकर राजा बहुत दुखी हुआ ॥ १६६४ ॥ तदनन्तर प्रयागने अपना अन्तर्वस्त्र (भीतर पहिननेका कपड़ा) बेचने तथा प्राप्त द्रव्यसे भोजनसामग्री खरीद लानेके लिए भिक्षुकको भेजा ॥१६६५॥ सामने कटु तथा कुत्सित वचन बोलनेवाला तथा पीठ पीछे रहस्य भेदन करनेके कारण भयोत्पादक वह नीच

मध्याह्ने स्कन्धविन्यस्तभोज्यभाण्डकरण्डिका । तपस्विन्याप्यथानिन्ये तेन क्षुद्रतपस्विना ॥१६६७॥
भृत्यभिक्षाकयोः पूर्वं स्त्रिया अप्यथ पार्थिवः । स्वं वीक्ष्य गोचरीभूतं निराशो जीवितेऽभवत् ॥१६६८॥
तेन प्रयागोपहृतं भोज्यं तदनुरोधतः । स्पृष्टमेव न भुक्तं तु तीव्रदुःखोल्वणात्मना ॥१६६९॥
का वार्तेति प्रयागेन प्राङ्गणस्थेन पृष्टया । तापस्या ग्राम्यया व्यक्तमुक्तो भोजवधस्ततः ॥१६७०॥
मिथ्यैतदिति तेनाथ कथ्यमानोऽपि पार्थिवः । श्रुतिं तामङ्गशकुनं परीक्ष्यावुद्ध नान्यथा ॥१६७१॥
नारोहति गिरं शत्रोरप्रियाख्यायिनोऽपि यत् । तस्य संववृते दुःखं निमग्नस्य तदापदि ॥१६७२॥
स शोचन्नात्मजं वाल्ये नीत्यै यां यन्त्रणां व्यधात् । आजन्म दुःखदायित्वं मेने तस्यात्मनस्तथा ॥१६७३॥
हतः स समरे वृत्त्या प्रवीरस्पृहणीयया । जज्ञे तेनातिवात्सल्यादङ्कशायीव वातितः ॥१६७४॥
गात्रेषु हारान्पुत्रस्य यौवनव्यूढवक्षसि । पश्यन्नात्मनि संकल्पैर्विह्वलः सोऽकृताशिषः ॥१६७५॥
रक्षणीयो हतो वालो वृद्धस्त्वेवं स्वजीवितम् । रक्षाम्यनुचिताचारैर्जिह्रायेति स चिन्तयन् ॥१६७६॥
एवं स पुत्रशोकेन धृतावाच्यव्यथो व्यथन् । निनाय तापसावासे द्वितीयामपि यामिनीम् ॥१६७७॥
कृतार्थनः प्रयागेन प्रयातुं भगवन्मठम् । शोकहारितधी रात्रौ न संकल्पमपि व्यधात् ॥१६७८॥
लम्बेन्दुवदनसान्द्रावश्यायाम्भोऽश्रुवर्षिणी । रथाङ्गाक्रन्दिनी रात्रिः सशोकेवाथ सागमत् ॥१६७९॥
क्षुत्पिपासापरिक्षामं प्रभुं वीक्ष्य स तापसः । प्राथ्यते स्म प्रयागेन प्रातर्भोक्तव्यसिद्धये ॥१६८०॥

भिक्षुक राजा हर्षको शत्रुकी तरह दुःखदायी दीख रहा था ॥ १६६६ ॥ दोपहरके समय वह क्षुद्र तपस्वी अपनी साथिन तपस्विनीके साथ भोजनपात्रको मस्तक रक्खे हुए वहाँ आया ॥ १६६७ ॥ उस भिक्षुकीको देखकर राजाने अपने मनमें सोचा कि अवतक तो मुझे भृत्य तथा भिक्षुक इन्हीं दो व्यक्तियोंने देखा था । अव इस तपस्विनीको भी मेरा सव हाल मालूम हो गया होगा । अतएव अव मेरे जीनेकी आशा कम ही है ॥ १६६८ ॥ तदनन्तर प्रयागके द्वारा समक्ष लाकर रक्खे हुए भोजनका राजाने उसके अनुरोधसे केवल स्पर्श भर कर दिया—खाया नहीं । क्योंकि उसका हृदय तीव्र दुःखके कारण वहुत ही व्याकुल था ॥ १६६९ ॥ कुछ देरके वाद आँगनमें खड़े प्रयागने उस भिक्षुकीसे पूछा—'क्या कोई नया समाचार है ?' तव उसने अपनी ग्रामीण वोलीमें भोजदेवके मरणका वृत्तान्त साफ-साफ वता दिया ॥ १६७० ॥ सो सुनकर प्रयागने कहा—'यह वात सर्वथा मिथ्या है' । किन्तु राजाने अपने वामनेत्र तथा वामवाहुके फड़कने आदि अपशकुनोंको देखकर उस समाचारको असत्य नहीं माना ॥ १६७१ ॥ यह अत्यन्त दुःखदायी समाचार सुनकर राजा हर्ष दुःखकी जिस स्थितिमें पहुँच गया था, उसका वर्णन राजाका प्रवलसे प्रवलतम शत्रु भी अनायास न कर सकेगा ॥ १६७२ ॥ राजनीतिकी कपटभरी चालोंमें आकर राजाने युवराजको जो क्लेश दिये थे, उन्हें सोचकर उसने आदिसे लेकर अन्ततक भोजदेवको विपत्तिमें डालनेका प्रधान अपराधी अपने आपको माना ॥ १६७३ ॥ युवराज भोजदेव यद्यपि असाधारण शौर्यके साथ युद्ध करनेके वाद मरा था, तथापि उस समय उमड़े हुए वात्सल्यातिरेकके कारण राजा हर्षको ऐसा लगा कि 'मानो युवराज उसकी गोदमें सोया हुआ है और वचपनमें हो उसकी मृत्यु हो गयी है' ॥ १६७४ ॥ सहसा वह राजा कल्पना करने लगा कि 'जवानीसे उभड़ी हुई सुपुष्ट गर्दनमें सुन्दर मुक्ताहार पहने हुए युवराज सामने खड़ा है' । उसे इस रूपमें खड़े देखकर आशीर्वाद देते हुए राजाकी वड़ी ही विह्वल दशा हो गयी ॥ १६७५ ॥ 'जिसकी रक्षा होनी चाहिए थी, वह राजकुमार तो मर गया और मैं वुढ़ापेके इस शरीरकी अनुचित उपायोंसे अवतक रक्षा कर रहा हूँ' यह सोचकर वह वहुत लज्जित हुआ ॥ १६७६ ॥ पुत्रशोकके कारण अनिर्वचनीय पीड़ासे पीड़ित होकर राजा हर्षने उसी तपस्वीकी कुटियामें दूसरी रात भी वितायी ॥ १६७७ ॥ रात्रि वीतनेपर प्रातःकाल होते ही प्रयागने भगवन्मठ चल देनेकी प्रार्थना की, किन्तु शोकसे उसकी वुद्धि लुप्त हो गयी थी । इस कारण वह प्रयागकी सलाहपर कोई संकल्प-विकल्प नहीं कर सका ॥ १६७८ ॥ चन्द्रविम्वसे टपकनेवाले ओसरूपी आँसू वरसाती तथा चकवा-चकवीके करुणक्रन्दन द्वारा जैसे वह रात्रि भी राजाके साथ रो रही थी ॥ १६७९ ॥ सवेरे प्रयागने अपने स्वामीको भूख-प्याससे मुरझाया देखकर उस तापससे भोजन

उपनिन्ये विनिर्गत्य प्रविष्टस्तापसस्तयोः । सुव्यञ्जनान्नपूर्णे द्वे पात्रे तद्वीक्षणात्पुरः ॥१६८१॥
कस्यापि गृहिणो यागोत्सवादेते मयाहृते । तस्मिन्नित्युक्तवत्यूचे विनिःश्वस्य प्रयागकः ॥१६८२॥
राजन्स्वामिवियोगेस्मिन्परस्य लोकस्य सुस्थताम् । स तं जगाद विहसन्किं मूढ इव भाषसे ॥१६८३॥
यो गतो गत एवासौ तत्क्षत्या नापरः क्षतः । सर्वो निजसुखापेक्षी न किंचित्कोपि शोचति ॥१६८४॥

लोकैकचक्षुषि गते परलोकमर्के लोकः स्वपित्यखिल एव सुखं गृहेषु ।
कोन्यो विचिन्तयितुमर्हति विश्वमेतत्तिष्ठेन्मया विरहमेत्य कथं किलेति ॥१६८५॥

पुत्रस्य स्नेहविश्वासः पूर्वमास्त क्षये श्रुते । यथैकः प्रभवेन्नान्यस्तथा स्नेहोपि देहिनः ॥१६८६॥
अहमेव हतं पुत्रं श्रुत्वा जीवितजीवितम् । तिष्ठामि स्वस्थवद्यत्र तत्रान्यो निन्द्यतां कथम् ॥१६८७॥
इत्युक्त्वा विरते राज्ञि पुनर्गृहं प्रयागकः । प्रैरयत्तापसं भोज्यं कर्तुं ते भाजने त्यजन् ॥१६८८॥
अस्तनव्ययशिष्टं मे पर्याप्तं नास्ति वेतनम् । यते तथापीत्युक्त्वा स सखेद इव निर्ययौ ॥१६८९॥
गोप्यं रहस्यभणितमत्यल्पहृदयातिथि । अमृतं पारतमिव नोल्पसत्त्वैः सुदुर्जरम् ॥१६९०॥
कुन्यो मनोरथो नाम विप्रस्य वनवासिनः । सुहृत्तपस्विनस्तस्य तां कथामुपलब्धवान् ॥१६९१॥
राज्ञः संदर्श्य दायादं भवावो भृतिभाजनम् । इत्युक्त्वा तेन निन्ये स द्रोग्धृतां क्षुद्रतापसः ॥१६९२॥
जज्ञे भृत्येन गर्हेण जातः सोन्त्येन केनचित् । सदृशं यत्सदसतोर्ज्ञापकं जन्मकर्मणोः ॥१६९३॥
इल्लाराजस्तां प्रवृत्ति बुद्ध्वा ताभ्यां न्यवेदयत् । उच्चलाय समादिक्षत्कार्यं तत्र तमेव सः ॥१६९४॥

लानेकी प्रार्थना की ॥ १६८० ॥ उसके प्रार्थनानुसार तापस तुरन्त चल पड़ा और शीघ्र ही लौटकर उनके समक्ष व्यंजन तथा उत्तम भोजनसामग्रीसे भरे दो पात्र रख दिये ॥ १६८१ ॥ साथ ही उसने कहा—'एक अच्छे गृहस्थके यहाँ यज्ञ था, वहाँसे ही ये दोनों पात्र लाया हूँ'। यह सुनकर लम्बी तथा गरम साँस छोड़ते हुए प्रयागने कहा— ॥ १६८२ ॥ 'राजन्! आपके वियोगसे प्रजा कितनी सुस्थ हो गयी है? तभी तो उसे यज्ञ-याग सूझ रहा है।' तब राजाने सूखी हँसी हँसते हुए कहा—'तुम मूर्खोंकी तरह बकवास क्यों कर रहे हो?' ॥ १६८३ ॥ जो गया, सो गया। उसके चले जानेपर औरोंकी क्या हानि हुई? सारा संसार अपने लिए सुख चाहता है, दूसरेके लिए कोई शोक नहीं करता ॥ १६८४ ॥ जब कि समस्त विश्वको प्रकाश देनेवाले सूर्य भगवानके अन्य लोक चले जानेपर सब लोग अपने-अपने घरोंमें आनन्दपूर्वक सोते हैं। तब दूसरे किसी पुरुषको यह सोचनेका क्या अधिकार है कि मेरे न रहनेपर संसार कैसे टिकेगा?' ॥ १६८५ ॥ मुझे पहले अपने पुत्रस्नेहपर जितना विश्वास था, अब उसके मर जानेपर उतने गाढ़ स्नेहका विश्वास अन्य किसीपर नहीं हो सकता। यही बात दूसरे लोगोंपर भी लागू होती है। औरोंकी बात ही क्या है, मुझे ही देखो कि अपने जीवनके जीवनस्वरूप पुत्रके मर जानेका समाचार सुन करके भी कैसे स्वस्थके समान जी रहा हूँ। ऐसी स्थितिमें दूसरोंको कैसे दोष दिया जाय ॥ १६८६ ॥ १६८७ ॥ इतना कहकर राजा चुप हो गया। उसके बाद प्रयागने चुपकेसे उन भोजनपात्रोंको हटाकर उस भिक्षुकसे दूसरा अन्न लानेकी बात कही ॥ १६८८ ॥ यह सुनकर उस तापसने कहा—'कल खर्च करनेके बाद इतने पैसे नहीं बचे हैं कि आजका भी काम चल सके, तथापि कोशिश करके देखता हूँ' यह कहकर वह भिक्षुक खेद प्रदर्शित करता हुआ चला गया ॥ १६८९ ॥ जैसे पारेकी भस्मको कोई दुर्बल व्यक्ति नहीं पचा सकता, उसी प्रकार क्षुद्रहृदय मनुष्य किसी रहस्यको अपने मनमें नहीं रख पाता ॥ १६९० ॥ उस वनवासी भिक्षुका मनोरथ नामक एक विश्वस्त ब्राह्मण मित्र था, उससे उसने यह रहस्य कह दिया ॥ १६९१ ॥ यह सुनकर मनोरथ बोला—'यह राजा उच्चलका शत्रु है। अतएव उसको इस बातकी सूचना देनेसे हम दोनोंको प्रचुर पारितोषिक मिलेगा, जिससे हम शीघ्र धनी बन जायँगे'। यह सलाह देकर मनोरथने उस भिक्षुकको भी राजाका विद्रोही बना दिया ॥ १६९२ ॥ वह ब्राह्मण नहीं, बल्कि किसी नीच कुलमें उत्पन्न दासका पुत्र था। क्योंकि भले या बुरे कर्म और स्वभाव ही कुलके परिचायक होते हैं ॥ १६९३ ॥ सो उन दोनोंने यह रहस्यकी बात इल्लराजको बतायी और उसने उच्चलको इसकी सूचना दी। तदनन्तर उच्चलने राजा हर्षको पकड़नेका काम

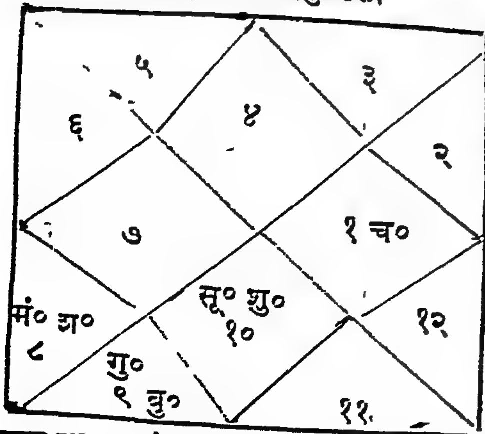
केचित्तु भूतिभिश्राख्यमिल्लाराजोपसर्पणे । कायस्थं कारणं प्राहुस्तयोस्तापसविप्रयोः ॥१६९५॥
वार्ता चेदवगीतेयं सुबहुश्रोत्रसंकुले । काले तद्भृत्यपाशस्य तस्यैव द्रोहमुख्यता ॥१६९६॥
श्वपाकस्कन्धमारूढो लब्ध्वा तास्ता विमानना: ।
विपेदे यत्स कारायां युक्तं तत्तस्य कर्मणः ॥१६९७॥
क्षुत्तप्तो हर्षदेवस्तु प्रयागेनार्थितोऽसकृत् । प्रत्यग्रे पुत्रशोकेऽपि भोजनायाकरोन्मनः ॥१६९८॥
गृहीतभोजनं जानन्प्राप्तं प्राप्तं स तापसम् । तमोरेर्वहिरैक्षिष्ट नीडाच्छिशुरिवाण्डजः ॥१६९९॥
अपश्यच्च कुटीं कृत्स्नां वेष्टितामेत्य शस्त्रिभिः ।
शुश्राव चाङ्गणद्वाराद्दार्यमाणार्गलाद्ध्वनिम् ॥१७००॥
जानञ्ज्ञातं ततो द्रोहमङ्गणात्तापसाधमम् । सशस्त्रिणं मुक्तमेहीत्याह्वयन्तं व्यलोकयत् ॥१७०१॥
मुक्तं विसृज्य कृत्वा च द्वारमुद्घाटितारि । त्यक्तभीरादधे लघ्वीं छुरिकामन्तिकस्थिताम् ॥१७०२॥
एकस्तत्सविधं क्रूरः साहसाहंक्रियोन्मदः । आरुरोहाथ कृष्टासिधेनुः कवचितो भटः ॥१७०३॥
तं राजा संकटकुटीरुद्धायामोऽप्यपातयत् । क्षितौ व्यायामकुशलो नावधीत्कृपया पुनः ॥१७०४॥
पतितेन हतेनार्थो वराकेणामुना न मे । इत्यूचे दुरहंकारग्रस्तस्तस्मिन्नपि क्षणे ॥१७०५॥
नीध्रमुत्पाट्य निपतन्नेकोन्योऽप्युत्पतन्भटः । भयाद्भूमौ न्यपततां तं विलोक्योद्यतायुधम् ॥१७०६॥
पृष्ठे पूर्वं प्रविष्टस्य तिष्ठन्स्थानकनिष्ठुरः । स रुरोरिव चामुण्डा रेजे दण्डाकृतिः क्षणम् ॥१७०७॥

इल्लाराजको ही सौंप दिया ॥ १६९४ ॥ इस प्रसंगमे कुछ इतिहासविदोंका कहना है कि 'मनोरथ ब्राह्मण तथा उस क्षुद्र भिक्षुकको भूतिभिश्र कायस्थने इल्लाराजके पास पहुँचाया था' ॥ १६९५ ॥ संभव है कि इस झूठी बातका किसीने बादमें प्रचार कर दिया हो। फिर भी ऐसी किंवदन्ती प्रचारित होनेका कारण उस कायस्थ का बदनाम बर्ताव ही हो सकता है ॥ १६९६ ॥ लेकिन कुछ ही समय बाद उसे एक चण्डालके कन्धेपर बिठाकर चारों ओर घुमाया गया और अनेक तरहसे वह अपमानित हुआ। अन्तमें जेलकी अनेक यंत्रणायें भोगनेके पश्चात् वहाँ ही उसकी मृत्यु हुई। जैसे उसके कर्म थे, उन्हींके अनुरूप दण्ड भी उसे मिला—जो ठीक ही था ॥ १६९७ ॥ बादमे प्रयागके अनेकशः आग्रह करनेपर क्षुधासे सन्तप्त एवं पुत्रशोकसे व्यथित उस राजाने किसी तरह भोजन करना स्वीकार किया ॥ १६९८ ॥ जैसे कोटरमे बैठा हुआ पक्षिशावक कुछ खाद्य-पदार्थ लानेके निमित्त गये हुए अपने माता-पिताके लौटनेकी प्रतीक्षामे बार-बार कोटरके बाहर मुँह निकालता है, उसी प्रकार भोजन लानेको गये हुए उस क्षुद्र तपस्वीको देखनेके लिए प्रयाग खिड़कीसे गर्दन निकालता था ॥ १६९९ ॥ उसी समय उसने कुटीको चारों ओरसे सशस्त्र सैनिकों द्वारा घिरी देखा और आँगनके अर्गलदण्डको तोड़नेकी आवाज सुनी ॥ १७०० ॥ इस तरह अपने साथ किये जानेवाले विश्वासघातको राजाने जान लिया। तब भी उसने निर्भीक भावसे आँगनमे खड़े होकर मुक्तको अपनी ओर बुलाते हुए उस विश्वासघाती भिक्षुकको सैनिकोंके साथ खड़े देखा ॥ १७०१ ॥ तथापि निर्भय होकर राजाने कुटीका द्वार खोल दिया। फिर मुक्तको बाहर भेजकर अपने पासकी कटारको म्यानसे निकालकर हाथमे ले लिया ॥ १७०२ ॥ उसी समय एक क्रूर, साहसी, अहंकारसे उन्मत्त एवं कवचधारी सैनिक हाथमे नंगी तलवार लिये कुटीके भीतर घुसा ॥ १७०३ ॥ उस सँकरी कुटियाके भीतर बड़ी कठिनाईसे खड़े उस सैनिकको व्यायामनिपुण राजा हर्षने धरतीपर पटक दिया, किन्तु दयावश उसे मारा नहीं ॥ १७०४ ॥ इस तरह व्यर्थ अहंकारसे ग्रस्त उस राजाने अपने मनमें सोचा कि 'धरती पर गिरे हुए इस बेचारेको मारनेसे क्या लाभ होगा' ॥ १७०५ ॥ उधर एक अन्य सैनिक कुटीकी छाजन उठाकर भीतर उतर रहा था और तीसरा ऊपर चढ रहा था। उन दोनोंने जब देखा कि राजा पहलेवाले सैनिकको पटककर हाथमे कटार लिये उसकी पीठपर खड़ा है, तब वे दोनों सैनिक भयसे मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़े ॥१७०६॥ कटार लेकर उस पहलेवाले सैनिककी पीठपर खड़ा राजा हर्ष क्षण भरके लिए ऐसा दीखने लगा, जैसे हाथमे दण्ड लेकर रुरु नामक दानवकी पीठपर भगवती चामुण्डा खड़ी हों ॥ १७०७ ॥

न सिंहनादैर्नो भेरीतूर्यघोषैर्न वोन्मदैः । शस्त्रशब्दैः स शुशुभे भूपस्यान्तक्षणे रणः ॥१७०८॥
आखोर्भाण्डप्रवेशस्य विडाला इव डामराः । परं प्रवेशितास्तस्य निःशब्दं शस्त्रिणः कुटीम् ॥१७०९॥
अथान्यो नीध्रमार्गेण संप्रविष्टः प्रयागकम् ।
हत्वा दोष्णि च शीर्षे च राजानं समुपाद्रवत् ॥१७१०॥
राज्ञः प्रहरतः शस्त्रं वञ्चयित्वा स शस्त्रभृत् । वक्षसि क्षुरिकाघातद्वयं प्रादात्कृतत्वरः ॥१७११॥
वर्णान्महेश्वरेत्येनान्द्विरुक्त्वा गतजीवितः । पपात निहतो भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१७१२॥
पलाय्य संप्रविगतो योग्यश्चौरस्य यादृशः । चक्रवर्त्यपि स प्राप वधं वेश्मनि तादृगम् ॥१७१३॥
नान्यः स इव कालेऽस्मिन्ददृशे भूतिमान्नृपः ।
गर्ह्यनिर्हरणत्वं च तस्येवान्यस्य नेक्षितम् ॥१७१४॥
यद्वैकेनैव संग्रामवैमुख्येनोन्नतात्मनः । सर्वप्रकारसुभगं माहात्म्यं तस्य खण्डितम् ॥१७१५॥
नेयबुद्धित्वमेवासीदथ वा तस्य दूषणम् । सर्वक्लेशावहा दोषाः कृत्स्नास्तन्मन्त्रिणां पुनः ॥१७१६॥
द्वाचत्वारिंशतिः साष्टमासा यस्य वयःसमाः । स शुक्लभाद्रपञ्चम्यां हतोऽब्दे सप्तसप्तते ॥१७१७॥
राजा दुर्योधन इव स्ववंशच्छेदमिच्छता । सोऽभूज्जातकयोगेन कारितः स्वकुलक्षयम् ॥१७१८॥
तस्यासन्क्ष्मार्कजौ जीवबुधौ शुक्रोष्णगू शशी । तनयामित्रजामित्रखेषु कर्कटजन्मनः ॥१७१९॥
चन्द्रदैत्येज्यपापेषु खमदात्मजगेषु यत् । आहुः सुसंहिताकाराः कौरवादीन्कुलान्तकान् ॥१७२०॥

राजा हर्षदेवके जीवनका वह अन्तिम युद्ध वीरोंके सिंहनाद, रणभेरीके उत्साहवर्धक शब्द तथा शस्त्रोंके झनकारकी ध्वनिसे सुशोभित नहीं था ॥ १७०८ ॥ बल्कि जैसे कोई चूहा किसी गहरे बर्तनमें अन्न खानेको उतरे और उसे पकड़नेके लिए बिलावोंका झुण्ड उस बर्तनको चारों ओरसे घेर ले, उसी तरह कुछ शस्त्रधारी डामर उस कुटीके भीतर घुस गये थे और राजाको चारों ओरसे घेरकर खड़े थे ॥ १७०९ ॥ तदनन्तर एक अन्य सशस्त्र सैनिक कुटीकी छाजनपरसे भीतर उतरा और उसने प्रयागके कन्धे तथा मस्तकपर प्रहार करके सहसा उसने राजापर भी आक्रमण कर दिया ॥ १७१० ॥ तत्पश्चात् राजाके दो प्रहारोंसे बचकर उसने राजा हर्षदेवके वक्षः-स्थलमें जल्दी-जल्दी दो बार खंजर भोंक दिया ॥ १७११ ॥ उस प्रहारसे घायल होकर राजाने दो बार 'महेश्वर-महेश्वर' कहा और जड़से कटे वृक्षकी नाईं मरकर धरतीपर वह लोट गया ॥ १७१२ ॥ यद्यपि राजा हर्ष एक चक्रवर्ती राजा था, फिर भी उसे भयभीत होकर भागनेके बाद चोरकी तरह उस सँकरी और गन्दी कुटियामें छिपकर रहते समय मरना पड़ा ॥ १७१३ ॥ वर्तमान कालमें हर्ष जैसा ऐश्वर्यशाली राजा और कोई नहीं हुआ। उसी प्रकार उसके समान गर्हित मृत्यु भी और किसीकी नहीं हुई ॥ १७१४ ॥ उस महामनस्वी राजाको अपने वैभव तथा सुखसे इसीलिए वंचित होना पड़ा कि वह संग्रामसे विमुख हो गया था ॥१७१५॥ अथवा उस राजाका सबसे बड़ा दोष यह था कि वह स्वयं कुछ भी न सोचकर सारा काम मंत्रियोंके सुझावपर करता था। बस, उसका यही एक दोष था, बाकी सब अनर्थोंके मूल कारण तो उसके मंत्री ही थे ॥१७१६॥ इस प्रकार राजा हर्ष ४१७७ लौकिक वर्षके भाद्रपद शुक्ल पंचमीको मरा। उस समय उसकी अवस्था बयालीस वर्ष आठ महीनेकी थी ॥ १७१७ ॥ राजा हर्षकी जन्मकुण्डलीमें दुर्योधनकी तरह अपनी ही करनीसे अपने वंशका मूलोच्छेदयोग पड़ा हुआ था ॥१७१८॥ उसकी जन्मकुण्डलीमें जन्मलग्न कर्क था। शनि-मंगल पंचम भवनमें और बुध तथा बृहस्पति षष्ठ स्थानमें बैठे हुए थे। सूर्य तथा शुक्र सप्तम स्थान एवं चन्द्रमा दशम स्थानमें स्थित था ॥ १७१९ ॥ ज्योतिषशास्त्रके संहिताकारोंका कहना है कि जब

राजा हर्षकी जन्मकुण्डली



निर्ब्रह्मण्यो जनः कृत्स्नो देशेऽस्मिन्वैरिणोऽन्तिकम् ।
दस्योरिव शिरश्छित्वा स्वामिनोऽपि निनाय तत् ॥१७२१॥
तस्योत्तमाङ्गे भूभर्तुश्छिद्यमाने ससागरा । चकम्पे भूर्निरभ्रापि द्यौर्वृष्टिं महतीं जहौ ॥१७२२॥
तन्मुण्डे लगुडारूढे यद्युक्तं जनो व्यधात् । अभूत्तेनाभिशापेन सोऽग्रे दीर्घोपसर्गभाक् ॥१७२३॥
मण्डले देवबिम्बानां यथामुष्मिन्विपाटनम् ।
तथा नवं प्रववृते भूपतेर्मुण्डखण्डनम् ॥१७२४॥
नैक्षिष्ट तच्छिरः प्राप्तमौचित्यादुच्चलो नृपः । भूत्वा चिरमुदश्रुस्तु कारयामास वह्निसात् ॥१७२५॥
धिक्कष्टं तस्करस्येव तादृशश्चक्रवर्तिनः । नोच्चलाज्ञां विना प्राप्ता शरीरेणान्तसत्क्रिया ॥१७२६॥
भृत्यत्यक्तो नष्टवंशो गौरकाख्येन केनचित् ।
स काष्ठागारिणा चक्रे नग्नोऽनाथ इवाग्निसात् ॥१७२७॥
दीर्घो हर्षनृपोदन्तः सोऽयं कोऽप्यद्भुतावहः । रामायणस्य नियतं प्रकारो भारतस्य वा ॥१७२८॥
भाग्याम्बुवाहतडितस्तरलाः श्रियस्तास्तच्चावसानविरसं प्रसभोन्नतत्वम् ।
तत्रापि नैष बत मोहहताशयानां शान्तिं प्रयाति विभवानुभवाभिमानः ॥१७२९॥
तावत्यप्यवरोधिकापरिकरे नैकापि चक्रन्द तं
तावत्स्वप्यनुगेषु नानुसृतवान्कोऽप्यास्त तीर्थे न वा ।
लोकस्य स्वसुखोपलिप्तमनसो वीक्ष्येति निःस्नेहतां
निर्वेदं समुपेत्य नाश्रयति धिक्स्वान्तं वनान्ते रतिम् ॥१७३०॥

चन्द्रमा, शुक्र एवं पापग्रह क्रमशः दशम, सप्तम तथा पंचम स्थानमें थे, ऐसे ही कुयोगमें उत्पन्न कौरवोंने अपना वंश नष्ट कर दिया था ॥१७२०॥ उस समय सारा कश्मीर अब्रह्मण्य (सदाचारहीन) हो गया था। इसी कारण प्रभु होते हुए भी चोरोंके समान राजा हर्षका सिर काटकर शत्रु उच्चलके पास भेजा गया ॥ १७२१ ॥ जिस समय उस राजा-का मस्तक कटा तो समुद्रों समेत धरती काँपने लगी और बिना बादलके ही आकाशसे जल बरसने लगा ॥ १७२२ ॥ उसके मस्तकको लाठीके सिरेपर रखकर तरह-तरहकी दुर्दशा करते हुए चारों ओर नचाया गया। ऐसा करनेवाले पापियोंको अपने इस दुष्कर्मके परिणामस्वरूप बहुत कष्ट भोगना पड़ा ॥ १७२३ ॥ जिस तरह हर्षके शासनकालसे ही देवमूर्तियोंको तोड़ने तथा उखाड़नेकी परिपाटी चली, उसी तरह राजाके सिर काटनेकी प्रथा भी उसके शिरश्छेदसे ही चालू हुई ॥ १७२४ ॥ हर्षका मस्तक जब उच्चलके सामने गया, तब औचित्यके नाते उसने उस सिरकी ओर निहारा ही नहीं, बल्कि आँखोंमें आँसू भरके वह बड़ी देर तक रोता रहा। तदनन्तर उसने उस मस्तकका दाहसंस्कार कराया ॥ १७२५ ॥ यह कितने बड़े कष्ट और लज्जाकी बात है कि हर्ष जैसे चक्रवर्ती राजाके शवका दाहसंस्कार किसी चोरकी तरह उच्चलकी आज्ञा बिना नहीं हो सका ॥ १७२६ ॥ जिसके सेवकोंने उसे त्याग दिया था और सारा वंश नष्ट हो चुका था, उस राजा हर्षके नंगे ही शवको गौरक नामके लकड़हारेने एक अनाथ मुर्देके समान जला दिया ॥ १७२७ ॥ रामायण तथा महाभारतकी कथाके समान राजा हर्षकी कथा भी बड़ी लम्बी, वर्णनातीत एवं आश्चर्यजनक घटनाओंसे ओत-प्रोत है ॥ १७२८ ॥ सम्पदायें भाग्यरूपी मेघमें चमकनेवाली बिजलीके समान चंचल होती हैं। उसी प्रकार अत्यन्त उत्कट वैभवका अन्त भी नीरस होता है। फिर भी मोहसे जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी रहती है, उनका कल्पित वैभवके अनुभवका अभिमान कभी भी शान्त नहीं होने आता ॥ १७२९ ॥ राजा हर्षके रनिवासमें इतनी अधिक स्त्रियाँ थीं, तथापि उनमेंसे एकने भी शोकाकुलभावसे रुदन नहीं किया। उसके हजारों सेवक थे, पर उनमेंसे किसीने भी उसकी मृत्युसे खिन्न होकर प्राणत्याग तथा तीर्थवास नहीं स्वीकार किया। इस तरह अपने-अपने सुखमें तन्मय रहनेवालोंकी स्नेहशून्यता देख करके भी विरक्त

नादौ किंचिद्भवति नियतं यच्च पश्चान्न किंचित्
मध्येऽकस्मात्सपदि घटयन्सौस्थ्यदौस्थ्यानुगेधम् ।
निःशीर्षाङ्घ्रिर्नट इव मुहुः कोपि जन्तुर्नटित्वा
नो जानीमो भवजवनिकान्तर्हितः क प्रयाति ॥१७३१॥

श्रीसातवाहनकुलेऽकृत कान्तिराजवंशे त्यजन्त्युदयराजकुले प्रतिष्ठाम् ।
शृङ्गं सुरैर्विरहितं जहती हिमाद्रेर्दिव्ये तटे सुरगिरेरिव वासरश्रीः ॥१७३२॥

इति काश्मीरिकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कवेः कृतौ राजतरङ्गिण्यां सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

समाष्टानवतावस्यां व्यहोनायां महीभुजः । षडत्रोदयराजस्य वंशे जाताः प्रकीर्तिताः ॥ राजानः ६ श्लोकाः १७३२ ॥



होकर वनवासमें रुचि नहीं लेता, उसे धिक्कार है ॥ १७३० ॥ आदिमें कोई भी वस्तु स्थायी नहीं होती और वही दशा अन्तमें भी होती है। मध्यमें एकाएक सुखद या दुःखद स्थितिवश कोई कृति अल्प समयके लिए सम्पन्न हो जाती है और वह प्राणी बिना सिर-पैरवाले अभिनेताके समान इस मिथ्या भासमान संसार-रूपी परदेके पीछे छिपकर कहाँ चला जाता है, इस रहस्यको हम नहीं जानते ॥ १७३१ ॥ जैसे दिनश्री देवताओंके द्वारा त्यागे हुए हिमालयके शिखरको त्यागकर देवगिरि सुमेरु पर्वतकी दिव्य तलहटीपर जाकर विश्राम करती है, उसी प्रकार महाराज सातवाहनके वंशमें उत्पन्न उदयराजके वंशका निवासस्थान त्याग कर राज्यश्री कान्ति राजके कुलमें जाकर विराजमान हो गयी ॥ १७३२ ॥

इति श्रीकाश्मीरिक महामात्य चम्पक प्रभुके पुत्र कल्हण महाकविविरचित राजतरंगिणीका सप्तम तरङ्ग समाप्त ॥७॥

इस तरंगमें तीन दिन कम ९८ वर्षमें उदयराजके वंशज छ राजाओंके शासनकालका वर्णन किया गया है। और कुल मिलाकर १७३२ श्लोक हैं।



अथ अष्टमस्तरङ्गः ।

प्रौढाः कञ्चुकिनो जरद्वरवृषः कुब्जस्तुषारद्युतिर्नित्यासोऽपि बहिष्कृतः परिकरः सोऽयं समस्तोऽप्यहो । अर्धाग्रहसतीकृताद्भगवता चारित्रचर्याविदा सा भिद्यादुरितं चराचरगुरोरन्तःपुरं पार्वती ॥१॥
छन्नकोपप्रसादोऽभूत्कंचित्कालं नवो नृपः । प्राङ्मन्थादिव पाथोधिरव्यञ्जितविषामृतः ॥२॥
सोदरो डामरौघश्च तस्याभूतां भृशोन्मदौ । मेघस्येव पुरो वातावग्रहौ स्फूर्तिहारिणौ ॥३॥
यत्किंचनविधाय्यासीद्भ्राता यद्यौवनोन्मदः । राज्ञो दुष्प्रक्रिया दौःस्थ्यकारी वात्सल्यशालिनः ॥४॥
सोऽनिशं हि गजारूढो विकोशासिः परिभ्रमन् । आत्तसारां महीं पीतरसां रविरिवाकरोत् ॥५॥
एकीभूतानमून्सर्वान्डामरान्निर्दहाग्निना । इत्युक्तं तेन नोर्वीभृत्सत्त्वैकाग्र्यो वचोऽग्रहीत् ॥६॥
दस्यवो मन्त्रिसामन्ता द्वैराज्येच्छुः सहोदरः । भूर्निष्कोशेत्यभूत्किं न भूपतेस्तस्य संकटम् ॥७॥
अधिराज्याभिषेकेण सत्कृत्य भ्रातरं ततः । पातुं लोहरसम्बन्धं प्राहिणोन्मण्डलान्तरम् ॥ ८ ॥
द्विरदायुधपत्त्यश्वकोशामात्यादि स व्रजन् । निनाय सर्वं वात्सल्यादनिषिद्धोऽग्रजन्मना ॥ ९ ॥
आशङ्क्य कोट्टभृत्येभ्यः प्रवेशे प्रत्यवस्थितिम् । उत्कर्षजं प्रतापाख्यं सह निन्येऽब्रवीच तान् ॥१०॥
कुर्याममुं नृपमहं प्रातिहार्यं समाचरन् । नम्राः स्वभृत्यवत्तस्थुर्भूभुजो भूम्यनन्तराः ॥११॥

जिनके समक्ष प्रौढ़ (सुशिक्षित) कंचुकी खड़े रहते हैं, बूढ़ा और कुबड़ा बैल जिनका वाहन है, जिनके माथेपर चन्द्रमा विद्यमान है, जिन्होंने अपना समस्त परिकर त्याग दिया है, चारित्र आचरणके आचार्य एवं चराचरगुरु जिन भगवान शंकरके अर्धाङ्गमें उनके अन्तःपुरकी अधिष्ठात्री भगवती पार्वती विराजमान हैं, वे शिवजी सब लोगोंके समस्त पापोंको नष्ट कर दें॥ १ ॥ नया राजा उच्चल कुछ दिन ऐसा बना रहा कि उसके कोप तथा प्रसन्नताका पता ही नहीं चलता था। जैसे मन्थनके पहले क्षीरसमुद्रके भीतर विद्यमान विष तथा अमृतका पता नहीं लगा था ॥ २ ॥ उच्चलका सहोदर भाई सुस्सल तथा डामरसमुदाय ये दोनों उस समय उसी प्रकार अतिशय उन्मत्त हो गये थे, जैसे बरसात होनेके पहले वायु रुक जानेके कारण प्राणिमात्रको स्फूर्ति गायब हो जाती है ॥ ३ ॥ जवानीके जोशमें उन्मत्त उस राजाका भाई सुस्सल जो मनमें आता, सो कर गुजरता था। छोटे भाईके वात्सल्यवश उच्चल कुछ नहीं बोलता था। इससे उसकी उद्दण्डता और भी बढ़ती जाती थी ॥ ४ ॥ सुस्सल हाथमें नंगी तलवार लेकर हाथीपर सवार हो जाता और मनमाने तौरपर राज्यभरमें घूमता हुआ प्रजाको लूटता फिरता था। जिससे कुछ ही दिनोंमें उसने राज्यके सारी धरतीको इस प्रकार निःसार कर दिया, जैसे सूर्य पृथिवीका रस सोखकर उसे शुष्क कर डालता है ॥ ५ ॥ एक दिन सुस्सलने अपने बड़े भाई राजा उच्चलको यह सलाह दी कि 'समस्त डामरोंको एकत्र करके आगमें भून दीजिए'। किन्तु सतोगुणी स्वभावके राजा उच्चलने उसकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया ॥ ६ ॥ उस नये राजाके हाथमें राज्य आते ही चोरों, मंत्रियों, सामन्तों, राज्यका दो भाग करा लेनेके इच्छुक छोटे भाई और धनहीन धरती इन सबने उस राजापर कौन-कौन-सा संकट नहीं लादा ॥ ७ ॥ अन्तमें राजा उच्चलने बड़े सत्कारपूर्वक छोटे भाई सुस्सलका अधिराज्यपदपर अभिषेक करके राज्यके लोहर प्रान्तका शासन करनेके लिए उसे अन्य मण्डलमें भेज दिया॥ ८ ॥ सुस्सल जब लोहर जाने लगा, तब उसने राज्यके सभी हाथी-घोड़े, शस्त्रास्त्र, पैदल सेना, कोश तथा मंत्री सब कुछ अपने साथ ले गया। स्नेहवश बड़े भाईने उस समय भी कुछ नहीं कहा ॥ ९ ॥ सुस्सलको लोहरके किलेमें रहनेवाले सेवकोंसे भय था कि कहीं वहाँवाले हमारा प्रतिरोध न करने लगें। इसी आशंकावश उसने उत्कर्षके पुत्र प्रतापको भी अपने साथ ले लिया था। बादमें उसने कहा—॥ १० ॥ 'मैं चाहता हूँ कि राजा उत्कर्षके पुत्रको इस देशका राजा बनाया जाय और हमलोग इसके प्रतीहारकी तरह रहें। उस समय कश्मीर देशमें भेंट

दिनानि सप्त संरुद्धे मार्गे तदनुयायिनाम् । गायनः कनको लब्धान्तरो देशान्तरं ययौ ॥१२॥
वाराणस्यां विजहता निर्वेदात्तेन जीवितम् । हर्षभूभर्तृभृत्येषु व्यक्तं निन्ये कृतज्ञता ॥१३॥
ऊर्ध्वाधिरोहं दाक्षिण्याद्दस्यूनामुच्चलः पुनः । सेवास्मृत्या सुधीः सेहे चन्दनो भोगिनामिव ॥१४॥
तथा जनकचन्द्रेण दर्पाद्व्यवहृतं तदा । राजान्ये डामराश्चासन्यथा नष्टप्रभा इव ॥१५॥
अभयस्योरशाभर्तुस्तनयायामजीजनत् । राज्ञ्यां विभवमत्यां यं भोजो हर्षनृपात्मजः ॥१६॥
जातं मृतद्वित्रिपुत्रानन्तरं गुरुभिः शिशुम् । आयुष्कामैस्तमाबद्धाभव्यभिक्षाचराभिधम् ॥१७॥
द्व्यब्दमप्यरिसंतानतन्तुत्वेनाप्रियोचितम् । ररक्ष तद्गिरा राजा राज्ञ्याश्चाङ्के समार्पयत् ॥ तिलकम् ॥१८॥
तमादाय स्वयं वासौ यावद्राज्येऽकरोन्मनः । तावद्भारेङ्गितज्ञो नीतिकौटिल्यमुच्चलः ॥१९॥
तुल्योत्साहासहिष्णुत्वादस्मै कुप्यन्तु डामराः । एष एवातिसत्काराद्यद्वास्तु विशदाशयः ॥२०॥
इति संचिन्त्य स द्वारदित्सां तस्योदघोषयत् । यथा विकारं प्रययुर्भीमादेवादयोऽखिलाः ॥२१॥
तेषां तस्य च मात्सर्यं यदा पर्याप्तिमाययौ । तदान्योन्याश्रिता भृत्याः पणं चक्रुर्युयुत्सवः ॥२२॥
दिदृक्षुः क्ष्मापतिस्तेषां सेतुपृष्ठे रणं मिथः । वार्यमाणोऽपि सचिवैरारुरोह चतुष्किकाम् ॥२३॥
द्वन्द्वयुद्धे प्रवृत्ते तु डामरैरुभयाश्रितैः । अथ प्रारभ्यताकस्मात्संरब्धैर्दारुणो रणः ॥२४॥
सेतुद्वयाध्वना युद्धे लग्ने राज्ञि सरित्तटात् । योधा जनकचन्द्रस्य शरवर्षमवाकिरन् ॥२५॥

राज्यके राजे भृत्योंके समान नतमस्तक होकर खड़े थे ॥ ११ ॥ जब सुस्सलके कार्यक्रमके अनुसार सब अनुचर सात दिनों तक मार्गमें रोक दिये गये, तब कनक नामका एक गायक मौका पाकर उस समुदायसे निकल भागा और वहाँसे किसी दूसरे देशको चला गया ॥ १२ ॥ चलते-चलते वह वाराणसी पहुँचा। वहाँ मानसिक वेदनासे त्रस्त होकर उसने प्राण त्याग दिया। ऐसा करके उसने राजा हर्षके सेवकोंमें अपना एक कृतज्ञतापूर्ण स्थान बना लिया ॥ १३ ॥ उधर राजा उच्चल अपनी उदारतावश राज्यके दस्युओंकी उच्छृंखलताको उसी प्रकार सह रहा था, जैसे चन्दनका वृक्ष विषैले सर्पोंको अपने शरीरपर बिठाता है ॥ १४ ॥ उस समय जनकचन्द्रका भी व्यवहार बड़ा ही दर्पपूर्ण था। उसके आगे अन्यान्य राजे तथा डामर हतप्रभ हो गये थे ॥ १५ ॥ उरशा राज्यके नरेशकी पुत्री विभवमतीसे राजा हर्षके पुत्र भोजदेवने दो-तीन सन्ताने उत्पन्न होकर मर जानेपर जो सन्तति उत्पन्न की थी, उसे जीवित रखनेकी इच्छासे गुरुजनोंने उसका नाम भिक्षाचर रक्खा और दो वर्ष तक उसे पाला-पोसा। तदनन्तर उन लोगोंने राजा उच्चलको भी सब सही-सही हाल बता दिया। उन दिनों दो वर्षकी भी शत्रुकी सन्तानको जीवित देखना एक राजाके लिए बड़ी अप्रिय बात थी। तथापि उसने उसकी रक्षाका संकल्प करके अपनी रानीके हाथोंमें सौंप दिया ॥ १६—१८ ॥ इस प्रकार उसकी ओरसे निश्चिन्त होकर राजा उच्चलने राजकार्यमें मन लगाया और राज्यके कार्यकर्ताओंकी भाव-भंगिमा तथा उनकी कुटिल नीतियोंको देखने लगा ॥ १९ ॥ बादमें उसने सोचा कि यदि उत्साह और असहिष्णुता दोनोंका समान उपयोग किया जाता है तो डामर कुपित हो जाते हैं और यदि इनका अत्यधिक सत्कार किया जाय तो संभव है कि इनका हृदय शुद्ध हो जाय ॥ २० ॥ ऐसा विचार करके उसने उन्हें सुधरनेके लिए अवसर देनेकी घोषणा कर दी। किन्तु इससे भीमादेव आदि प्रमुख डामरगण बिगड़ गये ॥ २१ ॥ भीतर ही भीतर सुलगते-सुलगते जब उनकी मात्सर्यरूपी अग्नि बहुत तीव्र हो गयी, तब उन अन्योन्याश्रित राजसेवकोंने आपसमें ही युद्ध ठान लेनेकी प्रतिज्ञा की ॥ २२ ॥ राजाको जब इस बातका पता चला तो पुलके पिछवाड़े उन भृत्योंका वह पारस्परिक युद्ध देखनेके लिए मंत्रियोंके रोकनेपर भी अपने महलकी छतवाले चौबारेसे जा पहुँचा ॥ २३ ॥ उसी समय दोनों पक्षके डामरोंमें पहले द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हुआ और उसके बाद जब उनका क्रोध बढ़ा तो भयंकर संग्राम होने लगा ॥ २४ ॥ राजाके राजमहल एवं नदीतटसे सटकर पुलके दोनों ओर जानेवाले मार्गपर जनकचन्द्रके योद्धा बाणवर्षा कर रहे थे

यान्तः शराः ससीत्कारास्ते स्पृष्टनृपविग्रहाः । मग्नाः स्तम्भेष्वदृश्यन्त कोपेनेव प्रकम्पिनः ॥२६॥
आकृष्य दोर्भ्यां भूपालं बलादिव ततोऽनुगाः । प्रविष्टा मण्डपद्वारं चक्रिरे निहितार्गलम् ॥२७॥
शस्त्रं जनकचन्द्राद्या भीमादेवादयोऽपि ते । चतुष्किकायां चक्रुस्ततोऽन्योन्यं जिघांसवः ॥२८॥
तुमुले तत्र शस्त्र्याङ्गं भीमादेवानुगोऽभिनत् ।
तीक्ष्णो जनकचन्द्रस्य कालपाशात्मजोऽर्जुनः ॥२९॥
स वीक्ष्य स्वं क्षतं द्रोहं प्रयुक्तं भूभुजा विदन् । पादप्रहारान्विदधे क्रोधाद्द्वारि नृपौकसः ॥३०॥
अभग्ने तत्र संत्रासात्स्नानद्रोण्यन्तरं गतम् । अधावत्कृष्टशस्त्रीको भीमादेवो जिघांसया ॥३१॥
स्तम्भच्छन्नस्तद्विलोक्य तद्गेहगणनापतिः । मध्यं जनकचन्द्रस्य कृपाणेन द्विधा व्यधात् ॥३२॥
तस्मिन्हते तदनुजौ गग्गसड्डौ प्रधावितौ । स एव करवालेनालक्षितोऽकृत विक्षतौ ॥३३॥
अवभज्य तरुं वज्रः सुचिरं नावतिष्ठते । उदग्रकर्मा च पुमान्निहत्यात्युन्नतं रिपुम् ॥३४॥
स हि द्विभाद्रे तत्राब्दे हर्षान्ताहादनन्तरम् । अन्यूनानतिरिक्तैर्यस्त्रिभिः पक्षैरहन्यत ॥३५॥
यद्वोपकर्तुरप्येप द्रोहं यत्स्वामिनो व्यधात् । औत्कण्ठ्यात्पाप्मनस्तस्य क्षिप्रमेव क्षयं ययौ ॥३६॥
सान्तस्तोपे कोपशोकावाविष्कुर्वति कृत्रिमौ । भीमादेवः पलायिष्ट गग्गस्तु व्यश्वसीन्नृपे ॥३७॥
प्रहिते लोहरं गग्गे स्वमुल्लाघयितुं क्षतम् । त्रस्तास्तेन व्यसृज्यन्त स्वोर्वीरन्येऽपि डामराः ॥३८॥
उपयापकृतैः प्राप्य राज्यं दस्युभिरुज्झितम् । एवं शनैरवष्टम्भं भेजे भूपतिरुच्चलः ॥३९॥

॥ २५ ॥ वे वाण सूँ सूँ करके उड़ते तथा कभी-कभी राजाके शरीरका स्पर्श करते हुए निकलते और महलके किसी खम्भेमें घुस जाते तो उसे कँपा देते थे ॥ २६ ॥ ऐसी परिस्थितिमें अनुचरगण राजाको जवर्दस्ती दोनों हाथोंसे पकड़कर मण्डपद्वारमें ले आये और अर्गलदण्ड लगाकर उसका द्वार भीतरसे वन्द कर लिया ॥ २७ ॥ अव परस्पर एक दूसरेका प्राण लेनेको उद्यत जनकचन्द्र तथा भीमादेव आदि योद्धा उस चौवारेपर भीषण शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ २८ ॥ उस तुमुल युद्धमें भीमादेवके अनुचर एवं कालपाशके पुत्र अर्जुनने अपने शस्त्रसे जनकचन्द्रका अङ्ग छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २९ ॥ इस प्रकार अपनेको घायल देखकर जनकचन्द्रने समझा कि राजा उच्चलकी प्रेरणासे ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। वस, वह वड़े क्रोधके साथ राजद्वारपर गया और उसे वन्द देख लात मार-मार कर खोलनेका प्रयत्न करने लगा ॥ ३० ॥ किन्तु ऐसा करनेपर भी जव द्वार नहीं टूटा और न खुला ही, तव वह भयवश भागकर स्नान करनेकी टंकीमें घुस गया। उसी समय भीमादेव उसे मार डालनेके लिए हाथमें नंगी तलवार लिये जनकचन्द्रकी ओर दौड़ा ॥ ३१ ॥ पास पहुँचकर उसने जनकचन्द्रको एक स्तम्भके पीछे छिपा देखा और देखते ही तलवारके प्रहारसे उसे वीचो-वीच काटकर दो टुकड़े कर डाला ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जनकचन्द्रके मारे जानेपर उसके दो भाई गग्ग और सड्ड वड़े वेगसे भीमादेवपर झपटे, किन्तु भीमाने उसी तलवारसे घायल करके उन्हें भी जमीनपर सुला दिया ॥ ३३ ॥ जैसे इन्द्रका वज्र (विजली) वृक्षको गिराकर अधिक देर वहाँ नहीं ठहरता, वैसे ही भीमा जैसे महान् कार्य करनेवाले पुरुष शत्रुको मारकर उस जगह देरतक नहीं रुकते ॥ ३४ ॥ जिस लौकिक वर्षमें राजा हर्ष मरा था, उसी वर्ष उससे ठीक तीन पक्ष वाद मलमासके द्वितीय भाद्रपदमें जनकचन्द्र मरा ॥ ३५ ॥ उसने अपने उपकारी स्वामीके साथ जो द्रोह किया था, उस पापके फलस्वरूप वह शीघ्र ही नष्ट हो गया ॥ ३६ ॥ तव तक गग्ग तथा सड्ड भी होशमें आ गये और प्राण वच जानेसे उनकी आत्माको कुछ सन्तोप हुआ, किन्तु भ्राताके मरणसे जव वे कृत्रिम कोप तथा शोकका प्रदर्शन करने लगे, तभी भीमादेव वहाँसे निकल भागा। किन्तु गग्गका राजा उच्चलपर विश्वास वढ गया ॥ ३७ ॥ उसके वाद सड्डने तलवारके घावका इलाज करानेके लिए गग्गको लोहर भेजा। उसके साथ उसने उन डामरोंको भी भेज दिया, जो राजधानीका खून-खरावा देखकर दहल उठे थे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार लुटेरोंके आपसी संघर्पसे दस्युओंका दल राज्य छोड़कर भाग गया। जिससे राजा उच्चलकी स्थिति धीरे-धीरे सुधरने लगी ॥ ३९ ॥

तेनाथ लब्धस्थैर्येण दिनैरेव जिगीषुणा। त्याजिताः क्रमराज्यान्तर्हयसैन्यादि डामराः ॥४०॥
ततो मडवराज्यं स प्रस्थितो विप्रियप्रियान्। डामरान्कालियमुखान्बद्ध्वा शूले व्यपादयत् ॥४१॥
इल्लाराजोऽपि बलवांस्तेन क्रान्तक्षितिः क्रमात्। बलैर्नगर एवोग्रैरवस्कन्देन घातितः ॥४२॥
प्राग्जन्मप्रेमसंस्कारादन्तरङ्गतयाऽथ वा। तस्य पुत्र इव प्रीतिर्गग्गे एव व्यवर्धत ॥४३॥
न सेहे नाममात्रं यः कण्टकानां प्रियप्रजः। नृपो गग्गाय चुक्रोध सापराधाय न क्वचित् ॥४४॥
राज्यारम्भेऽनुयुक्तेन भीमादेवेन धीमता। उक्ते शुभावहे शिक्षे द्वे स मन्त्रवदस्मरत् ॥४५॥
एकया लोकवार्तार्थं प्राह्णात्प्रभृति निर्गतः। बहिरुद्दिश्य वाह्यालीरचारीदादिनक्षयम् ॥४६॥
अन्ययोत्थानशीलेन श्रुत्वा नामापि वैरिणः। अर्धरात्रेऽपि यात्राभिस्तेनाच्छिद्यत विप्लवः ॥४७॥
तस्यैवालुप्तधैर्यस्य राज्ञां मध्ये मनस्विनः। कार्पण्योपहतं वृत्तं नाप्यभूदमलीमसम् ॥४८॥
अथोच्चलसदाचारजाह्नवीजलमज्जनात्। कुनृपोदीरणोद्भूतो गिरः पाप्मापनेष्यते ॥४९॥
तेनानुपचिताङ्गेन प्रायशो विनिवारिताः। अनूरुणेव सद्दृष्टिध्वंसिनो ध्वान्तसंचयाः ॥५०॥
प्रायोपविष्टप्रमये देहत्यागप्रतिज्ञया। निबद्धया प्रत्यवेक्षां धर्माध्यक्षानकारयत् ॥५१॥
निशम्य कृपणस्यार्तं क्रन्दितं तदनिष्टकृत्। बभूव तस्य स्वात्मापि नानिग्राह्यो महात्मनः ॥५२॥

कार्यिणो यस्य वा दोषादार्ताक्रन्दितमुद्ययौ।
तस्य स्वबान्धवाक्रन्दैस्तस्मिन्क्रुद्धे शशाम तत् ॥५३॥

अबलानुग्रहव्यग्रे तस्मिन्नाजनि सर्वतः। वास्तव्या बलिनस्तस्थुरबलास्त्वधिकारिणः ॥५४॥

विजिगीषु वीर उच्चलकी स्थिति दृढ होते ही उसने कुछ ही दिनोंमें क्रम राज्यके डामरोंको अश्व तथा सेनासे विहीन कर दिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर वह मडवराज्यसे गया और वहाँके उपद्रवप्रिय कालिय आदि प्रमुख डामरोंको पकड़कर सूलीपर चढवा दिया ॥ ४१ ॥ बलवान् इल्लाराजको भी उसने धीरे-धीरे नगरमें ही घेरकर उग्र नामके गुप्तचरों द्वारा मरवा डाला ॥ ४२ ॥ पूर्वजन्मके प्रेमसंस्कार अथवा अन्तरात्माके झुकावके कारण राजा उच्चल गग्गको पुत्रके समान मानने लगा और उसका वह प्रेम उत्तरोत्तर बढता ही गया ॥ ४३ ॥ प्रजाका प्रिय जो राजा उच्चल कण्टकोंका नाम भी अपने राज्यमें नहीं रहने देना चाहता था, वही राजा अपराधी गग्गके ऊपर कभी भी कुपित नहीं होता था ॥ ४४ ॥ राज्यके संचालनकार्यपर नियुक्त बुद्धिमान् भीमादेवकी दो कल्याणकारिणी शिक्षाओंको राजा मंत्रकी तरह सदा स्मरण रखता था ॥ ४५ ॥ उनमेंसे एक शिक्षाके द्वारा वह लोककल्याणके निमित्त सवेरे ही घरसे निकल पड़ता और शामको सूर्यास्त तक राज्यकी स्थिति देखता हुआ घूमता रहता था ॥ ४६ ॥ उसकी दूसरी शिक्षाको हृदयंगम करके वह राजा यदि अर्धरात्रिके समय भी शत्रुकी कोई कार्यवाही सुनता तो तुरन्त चल पड़ता था और उस विप्लवको यथास्थान कुचल देता था ॥ ४७ ॥ इसी कारण तत्कालीन राजाओंमें राजा उच्चल असाधारण धैर्यवान् और मनस्वी माना जाता था। उसके उदात्त चरित्रपर कहीं कोई दाग नहीं लग सका था ॥ ४८ ॥ उस समय राजा उच्चलके सदाचाररूपी गंगाजलमें स्नान करनेसे दुष्ट राजाओंकी दूषित वाणियोंका पाप दूर हो जाता था ॥ ४९ ॥ जैसे भगवान सूर्यके सारथी अरुण संसारका अन्धकार दूर कर देते हैं, उसी प्रकार राजा उच्चलने अपनी तत्परतासे राज्यका अन्धकार दूर कर दिया था ॥ ५० ॥ राज्यके जो लोग किसी विशेष कारणवश देह त्यागनेके लिए अनशनकी शरण लेते थे, उनके उन विशेष कारणोंको जाननेके लिए वह राज्यके धर्माध्यक्ष द्वारा सूक्ष्म रीतिसे विवेचन कराता था ॥ ५१ ॥ यदि कभी वह किसी दुखियाका करुण क्रन्दन सुनता था तो उसकी आत्मा रो पड़ती थी और कितना ही सोचनेपर भी वह अपने आपको काबूमें नहीं कर पाता था ॥ ५२ ॥ जिस किसी भी कार्यार्थीके कार्यमें किसीके दोषसे बाधा पड़ती थी, जिससे वह आर्त हो उठता था तो राजा उच्चलके कुपित होनेपर वह बाधक शान्त हो जाता था ॥ ५३ ॥ वह राजा निर्बल व्यक्तिपर अनुग्रह करनेके लिए सदा व्यग्र रहता था।

सोऽश्वेनैकश्चरन्राजेत्यज्ञात्वा कथितं जनैः । यं यं स्वदोषमश्रौषीत्तं तं त्वरितमत्यजत् ॥५५॥
येन केनापि संप्राप्तः प्राप्त्युपायेन पार्थिवः । अमोघदर्शनः सोऽभूत्कल्पवृक्ष इवार्थिनाम् ॥५६॥
सुधावर्षी प्रियालापप्रीतिदायैर्जनप्रियः । नाशकत्सेवकांस्त्यक्तुं विश्रम्भभवनेष्वपि ॥५७॥
श्लाघ्यश्रमैः प्रतिकलं तस्य सेवाविधायिभिः । प्राप्तं त्रिचतुरान्वारान्क्षणदास्वपि दर्शनम् ॥५८॥
सेव्यमानः सदाक्षिण्यः क्षणेनैव फलप्रदः । कस्यैन्द्रजालिकैरुप्तः शाखीव न बभूव सः ॥५९॥
वास्तव्यानां निशम्यार्तिं तेन दैन्यनिवारणम् । चक्रे पित्रेव पुत्राणां संत्यक्तेतरकर्मणा ॥६०॥
स्वसंचितानि सोऽन्नानि विक्रीणानोऽल्पवेतनैः । दुर्भिक्षमुद्गतावेव जघान जनवत्सलः ॥६१॥
निवार्य चौर्याचरणात्कृपार्द्रस्तस्करानपि । कोशाध्यक्षान्स विदधच्चकारागर्ह्यजीविकान् ॥६२॥
कः संविभाग्यश्छेत्तव्या विपदः कस्य मण्डले । इत्यन्विष्यन्सदैकैकं चारैश्चिन्तापरोऽभवत् ॥६३॥
तस्यैकोप्यर्थनैस्पृह्यं नाम कोऽपि महान्गुणः । अनुपक्तो गुणैस्तैस्तै राज्ञः पल्लवितोऽभवत् ॥६४॥
स स्थित्यै दण्डयन्दण्ड्यानघाश्लेपभयाद्धनम् । तेषां नादत्त सत्कर्म शुद्धये तांस्त्वकारयत् ॥६५॥
प्रस्तुतस्यार्थिने दातुं वस्तु तस्यैकसंख्यया । सहस्रसंख्यया दानश्रद्धागात्पूर्णतां यदि ॥६६॥
श्रूयतेऽर्थी यथा मह्यं देहि देहीति गा वदन् । तथाऽस्मै देहि देहीति वदन्दाता स शुश्रुवे ॥६७॥
अनुदात्तं क्षिप्तकालं क्षीणसंख्यमसत्कृतम् । नेतृदूतादिनीतार्घं न तद्दत्तमदृश्यत ॥६८॥

अतएव उस राज्यके निवासी प्रवल और अधिकारी निर्वल पड़ते थे ॥ ५४ ॥ प्रायः वह राजा वेप वदल और घोड़ेपर सवार होकर राज्यकी गति-विधि देखनेके लिए अकेला ही निकल पड़ता था। उस अवसरपर जिस किसी अधिकारीको दोपी पाता, उसे तत्काल नौकरीसे पृथक् कर देता था ॥ ५५ ॥ जो प्रार्थी जिस किसी भी उपायसे उसके पास पहुँच जाता था तो कल्पवृक्षके समान उसका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता था अर्थात् प्रार्थीकी अभिलापा पूर्ण हो जाती थी ॥ ५६ ॥ वात करते समय तो वह जैसे अमृत वरसाने लगता था। लोगोंको सतत प्रेमदान करनेके कारण वह वहुत लोकप्रिय हो गया था। एकान्तमें भी वह अपने सेवकोंको साथ रखता था ॥ ५७ ॥ पूर्ण तन्मयता तथा मेहनतके साथ काम करनेवाले उसके सेवक रात्रिके समय भी तीन-चार वार राजासे मिलते थे ॥ ५८ ॥ वह उदार राजा सेवा करनेपर क्षण भ्रमें ही उस सेवाका उसी तरह फल दे देता था, जैसे कुशल वाजीगर खेल दिखाते समय तुरन्त वीज वोता है और फल लगा हुआ वृक्ष तैयार करके दिखा देता है। उन दोनोंमे अन्तर यही था कि वाजीगरका वृक्ष फलसमेत क्षणभर वाद लुप्त हो जाता है, किन्तु राजाका दिया हुआ फल चिरस्थायी होता था ॥ ५९ ॥ अपने राज्यनिवासियोंके कष्ट सुनता तो वह सारा काम छोड़कर तुरन्त उनका दुःख उसी तरह दूर कर देता था, जैसे पिता पुत्रकी विपत्ति दूर करता है ॥ ६० ॥ राज्यमें कभी यदि दुर्भिक्ष पड़ जाता था तो वह राज्यका संचित अन्न वहुत सस्ते भावपर वेच डालता था। इस प्रकार दुर्भिक्षके उत्पन्न होते ही उसका अन्त कर देता था ॥ ६१ ॥ कृपासे आर्द्रहृदयवाला वह राजा चोरोंको भी चोरीकी आदत छुड़ाकर कोशाध्यक्ष तक वना देता था। जिससे वे वह नीच वृत्ति त्यागकर सौम्य वन जाते थे ॥ ६२ ॥ राज्यमें किसका विभाजन करना है और किसकी विपत्ति दूर करनी है, गुप्तचरोंके द्वारा इन वातोंका पता लगाकर वह इन समस्याओंके समाधानकी विधिपर विचार करता था ॥ ६३ ॥ वह अपने विभिन्न गुणोंके साथ निस्पृहतारूपी महान् गुणको दिनानुदिन वढा रहा था ॥ ६४ ॥ वह राज्यकी सत्ताको स्थिर करनेके लिए दण्डनीय व्यक्तियोंको दण्ड देता था, पापके सम्पर्कसे वचनेके लिए प्रजासे धन नहीं लेता था और सवके कल्याणार्थ तथा आत्मशुद्धिके निमित्त सवको सत्कर्म करनेके लिए उत्साहित करता था ॥६५॥ यदि कोई याचक उससे कुछ माँगने जाता और वह उसे एक वस्तु देनेको उद्यत होता तो देते-देते उसका हजारगुना देनेकी श्रद्धा वढ जाती थी ॥ ६६ ॥ ऐसा सुना जाता है कि राजा उच्चलके समक्ष पहुँचकर जैसे याचक दो दो कहता था, उसी प्रकार राजा अपने सेवकोंको दो-दो कहकर देनेकी आज्ञा प्रदान करता था ॥ ६७ ॥ उस राजाका दान असत्कृत, समय टालकर और माँगसे कम संख्यामें

उत्सवे दैन्यविज्ञप्तौ रञ्जने कार्यसाधने । आलेख्यलीनशाखीव न सोऽलभ्यफलोऽभवत् ॥६९॥
उत्सवे शिवरात्र्यादौ जनतां सोऽसिचद्धनैः । ग्रहयोगे पयःपूरैर्महेन्द्र इव मेदिनीम् ॥७०॥
ताम्बूलदानव्यसनं पराघ्योत्सवता तथा । नाभूद्धर्षनृपस्यापि तादृक्तस्यास्ति यादृशी ॥७१॥
लोष्टमात्रावशेषेऽपि लब्धे नृपपदे व्यधात् । स दानविभ्रमांस्तान्ये धनदेनापि दुष्कराः ॥७२॥
निर्माणलोठनैर्धाम्नामजस्रं वाजिनां क्रयैः ।
काश्मीरिकोऽपि चक्रे स न मृत्तस्करसाद्धनम् ॥७३॥
अध्वन्यध्वनि योगेन प्राणविन्यासनैस्तथा । बभूव सर्वकृत्यज्ञः सोऽन्तरात्मेव देहिनाम् ॥७४॥
भोगान्राजोचितान्विप्रा भैषज्यं व्याधिपीडिताः । वेतनं वृत्तिहीनाश्च तस्मात्समुपलेभिरे ॥७५॥
पित्र्योपरागकेत्वादिदुर्निमित्तोपशान्तिषु । गोसहस्राश्वहेमादिसंभवैः सोऽभजद्द्विजान् ॥७६॥
नन्दिक्षेत्रे पुरं कृत्स्नं दग्धमुत्पातवह्निना । पूर्वाधिकगुणं तेन नवं राज्ये व्यधीयत ॥७७॥
श्रीचक्रधरयोगेशस्वयंभूस्थानयोजनम् । जीर्णोद्धृतिव्यसनिना कृतं तेन सुकर्मणा ॥७८॥
हर्षदेवेन यो निन्ये श्रीपरीहासकेशवः । परिहासपुरे तं स नवं नरपतिर्व्यधात् ॥७९॥
प्राग्वर्णितशुकावल्या भूषितो हर्षनीतया । तेन त्रिभुवनस्वामी निर्लोभेन महीभुजा ॥८०॥
जयापीडाहृतं हर्षोत्पाटने प्लुष्टमग्निना । सिंहासनं नवं चक्रे स राज्यककुदं नृपः ॥८१॥
लब्ध्वा तदर्धाध्यारोहं भर्तुः प्रेम्णातिदुर्लभम् । सामान्ययापि देवीत्वं जयमत्या न दूषितम् ॥८२॥

दिया हुआ नहीं होता था और उसके दानमें कोई नेता तथा दूत घूसस्वरूप कुछ काट-कपट नहीं कर पाता था ॥ ६८ ॥ किसी उत्सवके अवसरपर, दैन्यप्रदर्शनके समय, मनोरंजनके अवसरपर और कार्य साधन करते समय वह राजा चित्रलिखित फलवान् वृक्षके समान अलभ्यफल नहीं होता था, अर्थात् उन अवसरोंपर वह तत्काल उन कर्मोंका फल प्रदान करता था ॥ ६९ ॥ जैसे ग्रहोंका योग होनेपर इन्द्र प्रचुर जल बरसाकर पृथिवीको सींचता है, वैसे ही शिवरात्रि आदि पर्वोंपर वह राजा धनकी वर्षा करके जनताको सींचता था ॥ ७० ॥ जैसा सत्कारपूर्वक ताम्बूलदानका व्यसन एवं बड़े बड़े उत्सवोंका आयोजन उस समय हो रहा था, वैसा राजा हर्षके राज्यकालमें भी नहीं होता था ॥ ७१ ॥ उस राजाके पास यदि मिट्टीका ढेला भी रहता तो वह दानका ऐसा तूमार खड़ा कर देता था कि जो कुबेरके लिए भी अशक्य होता ॥ ७२ ॥ उसके राज्यकालमें पुराने मकान गिरा-गिराकर बराबर नये-नये भवन बनते जा रहे थे और अच्छे-अच्छे घोड़ोंकी खरीद होती रहती थी, इस प्रकार प्रत्येक कश्मीरी अर्जित धनको मकान आदि बनवाकर या तो मिट्टीके हवाले कर देता था अथवा बचाकर रखनेपर वह धन स्वतः चोरोंके पास चला जाता था ॥ ७३ ॥ प्रत्येक मार्गोंपर योगविद्या तथा प्राणायाम-शिक्षाके केन्द्र बने हुए थे। इस प्रकार वह राजा प्राणिमात्रकी अन्तरात्माके समान सब कामोंका विज्ञ बन गया था ॥ ७४ ॥ उस राजाके पाससे ब्राह्मण राजोचित भोग, रोगी औषधि और बेकार लोग जीविकाके लिए वेतन पाते थे ॥ ७५ ॥ पितृश्राद्ध, सूर्य-चन्द्रके ग्रहणकाल तथा केतु आदि ग्रहोंकी शान्तिके अवसरपर वह ब्राह्मणोंको हजारों गौ-घोडे तथा रत्नोंका दान करके देता था ॥ ७६ ॥ उन्हीं दिनों सहसा नन्दिपुर क्षेत्रमें आग लग गयी, जिससे सारा नगर जलकर भस्म हो गया। किन्तु उस राजाने तत्काल पहलेसे अच्छा तथा सर्वगुणसम्पन्न नगर बनवाकर तैयार करा दिया ॥ ७७ ॥ जीर्णोद्धारके व्यसनी एवं सुकृती राजा उच्चलने श्रीचक्रधर योगेश भगवान्का एक बहुत सुन्दर मन्दिर बनवाया ॥ ७८ ॥ पूर्वकालमें परिहासकेशवकी जो मूर्ति हर्षदेव उखड़वा ले गया था, उसके स्थानपर नयी मूर्ति बनवाकर इस राजाने स्थापित की ॥ ७९ ॥ पूर्वोक्त जिस शुकावलीको हर्ष उठा ले गया था, उसे फिर यथास्थान स्थापित करके उस निर्लोभ राजाने त्रिभुवनस्वामीकी शोभा फिरसे बढा दी ॥ ८० ॥ अग्निदग्ध जिस सिंहासनको हर्षने उखड़वाया और जिसे जयापीडने चुरा लिया, राज्यके अलंकारस्वरूप उस सिंहासनको बिल्कुल नये ढंगसे बनवाकर उसने तैयार करा दिया ॥८१॥ एक साधारण स्त्री होकर भी रानी जयमतीने अपने पतिके प्रेमसे जिस दुर्लभ सिंहासनपर बैठनेका सुयोग प्राप्त किया, सो उसने कभी भी अपने देवीत्वपर

सा ह्यानृशंस्यमाधुर्यत्यागसत्प्रियतानयैः । अस्तम्भार्तपरित्राणमुख्यैर्भव्याभवद्गुणैः ॥८३॥
लब्धभूपालवाल्लभ्या नार्यः क्रोधात्प्रजासु यत् । राक्षस्य इव भङ्गाय लावण्यललिता अपि ॥८४॥
प्रियप्रजस्यायमन्यो गुणः सर्वगुणाग्रणीः । उच्चलक्ष्मापतेरासीदर्थैर्नैस्पृह्यशालिनः ॥८५॥
जिघांसवः पापकामाः परस्वादायिनश्च ताः । रक्षांस्यधिकृता नाम तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥८६॥
तेनेतिहासिनीं नीतिं श्रद्दधानेन सर्वदा । येन संपठता श्लोकं कायस्थोन्मूलनं कृतम् ॥८७॥
यत्ते विषूचिकाशूलसंन्यासेभ्यः किलेतरे । घ्नन्त्याशुकारिणो विश्वं प्रजारोगा नियोगिनः ॥८८॥
पितरं कर्कटो हन्ति मातरं हन्ति पुत्तिका । हन्ति सर्वं तु कायस्थः कृतघ्नः प्राप्तसंभवः ॥८९॥
गुणात्समर्थ्य स्फुरता येनैवोत्थाप्यते शठः । वेताल इव कायस्थस्तमेवाहन्ति हेलया ॥९०॥
विषवृक्षो नियोगी च यदेवाश्रित्य वर्धते । चित्रं करोति तस्यैव स्थानस्यानभिगम्यताम् ॥९१॥
तेन ते क्ष्माभुजा मानक्षतिकार्यनिवारणैः । काराप्रवेशैश्च खलाः शमं नीताः पदे पदे ॥९२॥
कार्यान्निवार्य बहुशः सहेलाग्रान्महत्तमान् । भङ्गासूत्रमयं वासः कारायां पर्यधापयत् ॥९३॥
स कार्यवेपं हास्याय सभार्यं चारणोचितम् । अकारयद्भ्रतिभिश्चं धावनं डोम्बयोधवत् ॥९४॥
स प्रांशुर्वेष्टितश्मश्रुरुष्णीषेणोत्फलन्पुनः । शूलहस्तः सजानूरुः केषामासीन्न हास्यकृत् ॥९५॥
स शीर्षदर्शनं साम्यवादवेश्याविटान्वितम् । प्रियवेश्यं कंचिदग्रे नृत्तवाद्यमकारयत् ॥९६॥
वदूध्वान्यं शकटे नग्नं क्षुरलूनार्धमस्तकम् । अकारयत्सटान्यस्तचीनपिष्टच्छटाङ्कितम् ॥९७॥

आँच नहीं आने दी ॥ ८२ ॥ वह अपनी दयालुता, माधुर्य, त्याग, सज्जनोंसे प्रेम, न्याय, धैर्य और दुखियोंकी रक्षा आदि गुणोंसे भव्य बन गयी थी ॥ ८३ ॥ कितनी ही रानियाँ अपने सौन्दर्यसे राजाका प्रेम पाकर अपने क्रोध द्वारा राक्षसियोंके समान प्रजाका सर्वनाश करनेको उद्यत हो जाती है, किन्तु रानी जयमती ऐसी नहीं थी ॥ ८४ ॥ धनकी लालचसे दूर और परम लोकप्रिय राजा उच्चलकी यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि वह पूर्ण निस्पृह था ॥ ८५ ॥ बहुतेरे प्राणी घातक, पापी और परधनापहारी होते है। वे एक प्रकारसे राक्षसाविष्ट प्राणी होते हैं, उनसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिए ॥ ८६ ॥ वह राजा ऐतिहासिक नीतिपर अपार श्रद्धा रखता था। उन्हीं नीतिके श्लोक पढकर उस राजाने अपने राज्यमे कायस्थोंका मूलोच्छेद कर डाला ॥ ८७ ॥ क्योंकि ये कायस्थ विषूचिका (हैजा), शूल और संन्यास आदि रोगोंसे भी भयानक होते हैं। क्योंकि ये राजाकी ओरसे तो प्रजाकी रक्षाके लिए नियुक्त किए जाते हैं, किन्तु ये उसी प्रजाके लिए रोग बनकर शीघ्र ही उसे नष्ट कर डालते हैं ॥ ८८ ॥ कर्कट (केकड़ा) अपने पिताको और मकड़े अपनी माताको नष्ट कर देते हैं, किन्तु ये कृतघ्न कायस्थ यदि मौका पाते है तो सबको मार डालते है ॥ ८९ ॥ अपने गुणोंका उपयोग करके जो भी व्यक्ति इनको आगे बढाता है तो प्रेतकी तरह भयानक ये शठ उसीको खेल-खेलमें मार डालते है ॥ ९० ॥ विषवृक्ष और कायस्थ जिसके सहारे उन्नत होते हैं, उसीको समूल नष्ट करके ये उसका चिह्न भी शेष नहीं रहने देते ॥ ९१ ॥ इसी कारण राजा उच्चलने अपमानित करके, कामसे हटाकर और जेल भेजकर पद-पदपर इन्हें शान्त किया ॥ ९२ ॥ बहुतेरे उच्च पदपर बैठे हुए घूसखोर कायस्थोंको नौकरीसे हटा तथा जेल भेजकर उस राजाने इन खलोंको भाँगके सूतसे निर्मित भँगरा (टाट) पहननेके लिए बाध्य किया ॥ ९३ ॥ कितने ही कायस्थों तथा उनकी स्त्रियोंको चारणों (जोकरों) जैसे कपड़े पहनाकर भरी सड़कपर डोमोंकी तरह दौड़ाया गया ॥ ९४ ॥ जब उनकी दाढी-मूछपर कपड़े लपेट दिये गये, बहुत ही ऊँची टोपी पहना दी गयी और हाथमे बल्लम थम्हा दिया गया, तब कौन ऐसा व्यक्ति था कि जो उन्हें देखकर न हँस पड़ता ॥ ९५ ॥ किसी-किसी कायस्थको तड़क-भड़कवाला वस्त्र पहना तथा माथेपर स्त्रियों जैसी माँगदार केशराशि लगाकर कुछ साम्यवादियों (भँडुओं), वेश्याओं तथा धूर्तोंके साथ भरी सभामें बाजोंके तालपर नचाया जाता था ॥ ९६ ॥ किसीके मस्तक तथा दाढी-मूछके एक-एक ओरका आधा बाल छुरेसे बनवा दिया जाता और एकदम नंगा करके बैलगाड़ीमे बैलकी जगह जोतकर चाबुक

ते कुम्भवादनैर्मुण्डमण्डनैश्चाङ्किताभिधाः । नियोगिनो भग्नमानाः सर्वतः ख्यातिमाययुः ॥९८॥
कार्यभ्रष्टा मलक्लिन्नक्षीणवस्त्रावगुण्ठनाः । सर्वार्थिनो व्यभाव्यन्त केऽप्यटन्तः प्रतिक्षपम् ॥९९॥
वृथावृद्धाः सुखप्राप्यं पाण्डित्यं भूर्जवत्परे । मत्वा बाला इवाचार्यगृहे प्रारेभिरे श्रुतम् ॥१००॥
केऽप्युच्चैरट्टभिक्षाकाः सादरं स्तोत्रपाठिनः । कृतानुपाठाः स्वापत्यैः प्राह्ले लोकमहासयन् ॥१०१॥
माता स्वसा सुता भार्या स्वापि कैरप्यकार्यत । सामन्तसेवनं कार्यप्राप्त्यै सुरतसेवया ॥१०२॥
जातकस्वप्नशकुनसुलक्षणनिरीक्षणम् । कारयद्भिः शठैरन्यैर्गणकाः परिखेदिताः ॥१०३॥

पिशाचा इव शुष्कास्या रूक्षश्मश्रुकचाः कृशाः ।
बद्धाः परैर्व्यभाव्यन्त भृङ्खलामुखराङ्घ्रयः ॥१०४॥

नृपेण कार्यिणां दर्पलिङ्गनाशे विपाटिते । अक्ष्णोर्जातिपरिज्ञानक्षमत्वं समजायत ॥१०५॥
भारतस्तवराजादिस्तोत्रपाठमशिश्रियन् । ते दुर्गोत्तारिणीविद्याजपं चोदश्रुलोचनाः ॥१०६॥
इत्थं दौःस्थ्योदये दीर्घे मज्जन्तो नित्यदुर्जनाः । तस्मिन्नाजनि कायस्था व्यलोक्यन्त पदे पदे ॥१०७॥
भिन्नसंधानभूर्यर्थदानभोज्यादिढौकनैः । न हि मोहयितुं शक्ताः प्राज्ञं तं तेऽन्यराजवत् ॥१०८॥
तान्प्रजाकण्टकान्दुष्टान्कृतधीरकृतानिशम् । तैस्तैः शुचिभिरध्यक्षैः स विशामीश्वरो वशान् ॥१०९॥
भूतेशस्य यथा पुरी हुतवहप्लुष्टा त्वदाज्ञावलाद्व्यः स्वां श्रियमाससाद सहसा तद्वत्समस्तामिमाम् ।
त्वं कायस्थकुटुम्बिकृमिसचिवप्रायां च पश्चानलीलीढामुच्चलदेव निर्वृतिसुखस्थित्या पुरीं स्वां क्रियाः ॥११०॥

मार-मारकर उससे भरी सड़कपर गाड़ी खिंचवायी जाती थी ॥ ९७ ॥ किसी-किसीसे घड़ा बजवाया जाता और शरीर भरमे मानवमुण्डका चिह्न बनाकर सारे शहरमे घुमाया जाता था। ऐसा करनेसे उन देशद्रोही कायस्थोंका मानभंग हो गया और उनकी काली करतूतोंको सब लोग जान गये ॥ ९८ ॥ कितने नौकरीसे हटा दिये जानेपर मैले-कुचैले चीथड़े पहने भिखारियोंकी तरह रातके समय इधर-उधर घूमते दिखायी देते थे ॥९९॥ उनमेसे कितने ही बूढे तथा भडभूजों जैसी आकृतिवाले कायस्थ पाण्डित्य प्राप्त करनेकी कलाको आसान समझकर बच्चोंकी तरह आचार्योंके घर जाकर फिरसे पढने लगे ॥ १०० ॥ कितने ही कुछ स्तोत्र कण्ठस्थ करके अपने बच्चोंके साथ घर-घर भीख माँगते हुए अपनी हँसायी कराने लगे ॥ १०१ ॥ कुछ कायस्थ नौकरी पानेके लिए अपनी माता, बहिन, पुत्री और स्त्रीको सामन्तोंके पास भेजकर उनसे सुरत कर्म कराते हुए खुशामद करने लगे ॥ १०२ ॥ कितने शठ ज्योतिषियों, स्वप्नका शुभाशुभ फल बतानेवालों, शकुनशास्त्रके जानकारों, सुलक्षण पहचाननेवालों और गणित करके भविष्य बतानेवालोंको तंग करने लगे ॥ १०३ ॥ कितने कायस्थ अपने कुकर्मोंसे कैद हो चुके थे और उनके पैरोंमे झनझनाती बेड़ियाँ डाल दी गयी थीं। उनका मुख रूख गया था, दाढी-मूछके बाल रूखे हो गये थे और शरीर एक दम दुर्बल हो गया था। इसलिए वे पिशाचकी तरह भयंकर दिखायी देते थे ॥ १०४ ॥ राज्यके कायस्थोंका जाति सम्बन्धी मिथ्या गर्व दूर हो गया था। अतएव राजाके समक्ष जो कार्यार्थी पहुँचता था, उसके नेत्रोंको देखकर ही वह उनकी जाति तथा जीविका समझ लेनेमे निपुण हो गया था ॥ १०५ ॥ कितने ही भारतस्तवराज आदि स्तोत्रोंको याद करके उनका पाठ करते थे और बहुतेरे शठ कायस्थ नेत्रोंमे आँसू भरके दुर्गोत्तारिणी विधिके मंत्रका जप करने लगे ॥ १०६ ॥ इस प्रकारकी दुरवस्थाओंके उदय होनेपर वे सदाके दुर्जन कायस्थ पद-पदपर अगाध दुःखसागरमे डूबते-उतराते दिखायी देते थे ॥ १०७॥ वे दुष्ट तोड़-जोड, प्रचुर धनदान, भोज तथा उपहार आदिके द्वारा अन्य राजाओंकी भाँति राजा उच्चलको नहीं ठग सके ॥ १०८॥ वह स्थिरप्रज्ञ राजा ईमानदार अधिकारियोंको नियुक्त करके प्रजाके कण्टकों तथा दुष्टोंको अहर्निश अपने वशमें रखता था ॥ १०९ ॥ हे महाराज उच्चलदेव ! भूतेश भगवान शंकरकी पुरी जब आगसे जलकर भस्म हो गयी थी, तब आपकी आज्ञासे उसका पुनर्निर्माण हो गया था। जिससे सहसा उसने फिर अपनी पुरानी शोभा प्राप्त कर ली। उसी प्रकार आप कायस्थ कुटुम्बियोंके सचिवोंसे भरे रहनेके कारण उनके पञ्च अनलसे जलकर राख बनी हुई अपनी पुरीका पुनरुद्धार करके इसे पुनः सुखकी स्थितिमे लाइए ॥११०॥

शिवरात्र्युत्सवे श्लोकममुं शिवरथाभिधः। विद्वान्पठंस्तेन हठात्सर्वाध्यक्षो व्यधीयत ॥१११॥
व्यवहारानभिज्ञोऽपि कंचित्कालमदीदृशत्। शुचित्वादार्यसाजः स क्रामन्कृतयुगस्थितिम् ॥११२॥
शीघ्रदण्डत्वमुच्चण्डतेजसस्तस्य भूपतेः। क्रूरानुद्दिश्य कायस्थान्धीमद्भिर्बह्वमन्यत ॥११३॥
न हि क्षुद्राश्वकायस्थपिशाचाविष्टवैरिणाम्। शंसन्त्यन्तरितं दण्डं दण्डनीतिविशारदाः ॥११४॥
चिरेण दण्डिता ह्येते कुर्युर्दण्डभयाद्ध्रुवम्। लब्धान्तराः प्राणहरं कृच्छ्रं किंचित्प्रशासितुः ॥११५॥
दण्ड्यानां दण्ड्यमानानां पुत्रस्त्रीमित्रबान्धवाः। राज्ञा विचारशीलेन न तेनोपद्रुताः क्वचित् ॥११६॥
कर्णेजपांल्लोष्टधरप्रमुखांस्तेन दुःखदैः। कर्मभिः क्लिश्नताध्वापि पैशुन्यस्य खिलीकृतः ॥११७॥
विस्मृतिं लब्धराज्यानां पूर्वसंकल्पवासनाः। प्रयान्ति प्राप्तजनुषां गर्भवासस्पृहा इव ॥११८॥
प्राग्राज्याधिगमात्किंचित्सदसद्यद्व्यचिन्तयत्। राज्ये तन्न विसस्मार जातिस्मर इवोच्चलः ॥११९॥
ददर्श शत्रोरद्रोहान्त्यान्द्रोग्धृन्त्वा पुरानुगान्। कर्तव्यानुगुणं तेषां प्रतिपत्तिमदर्शयत् ॥१२०॥
स्मरेन्नोपपतिः पूर्वपतिद्रोहं कुयोषितः। पूर्वस्वाम्यरितां चात्र कुभृत्यस्येश्वरो जडः ॥१२१॥
शेषाहिदेहान्मेदिन्या समं प्रज्ञापि राज्यभृत्। तस्मिन्परिणता नूनं कृत्याकृत्यविवेक्तरि ॥१२२॥
तथा ह्येकस्य वणिजो व्यवहर्तुश्च सोऽभवत्। विवादे संशयं छिन्दन्नेवं स्थेयाद्यगोचरे ॥१२३॥
सौहृदागूढसद्भावे व्यापदौपयिकं धनी। न्यासीचकार दीनारलक्षं कोऽपि वणिग्गृहे ॥१२४॥
तेनोपयुज्यमाना च व्ययेषु वणिजः करात्। कियत्यपि गृहीताभूदात्तमात्रान्तरान्तरा ॥१२५॥

शिवरात्रिके उत्सवपर शिवरथ नामके विद्वान्ने राजाके समक्ष इस श्लोकका पाठ किया था, जिससे वह राज्यके सभी विभागोंका अध्यक्ष बना दिया गया ॥ १११ ॥ यद्यपि वह विद्वान् कुछ समय तक तो लोकव्यवहारसे अनभिज्ञ जैसा दिखायी पड़ा। किन्तु बादमें अपनी ईमानदारीके कारण उसने इतना अच्छा काम किया कि जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो कश्मीर राज्य सत्ययुगकी स्थितिसे भी उन्नत अवस्थामें पहुँच जायगा ॥ ११२ ॥ प्रचण्ड तेजस्वी राजा उच्चलके क्रूर कायस्थोंको शीघ्र दण्ड देनेसे सभी बुद्धिमान् नागरिक बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे राज्यका सबसे बड़ा काम सम्पन्न समझा ॥ ११३ ॥ दण्डनीतिके विज्ञ विद्वानोंका कथन है कि क्षुद्र, अश्व, कायस्थ, पिशाचाविष्ट व्यक्ति और वैरी इनके दण्डमें कोई भेद नहीं है अर्थात् ये ये सब समान रूपसे शीघ्र दण्डदानके पात्र हैं ॥ ११४ ॥ क्योंकि इन्हें दण्डित करनेमें यदि विलम्ब किया जाता है तो ये दण्डके भयसे अवसर पाते ही प्रशासकके लिए कोई प्राणहारी संकट खड़ा कर देते हैं ॥ ११५ ॥ दण्डनीय तथा दण्ड पाये हुए अपराधियोंके स्त्री-पुत्र-बान्धवोंको विचारशील राजा किसी प्रकारका कष्ट न दे ॥ ११६ ॥ उसे चाहिए कि कान भरनेवालों तथा ढेला फेंकनेवाले जैसे अपराधियोंके दुष्कर्मोंपर सदा सतर्क दृष्टि रक्खे और चुगली खानेवालों तथा राह चलते लोगोंको मार्गपर कष्ट देनेवालोंको समाप्त कर दे ॥ ११७ ॥ राज्य प्राप्त करनेके बाद जो राजे पूर्वसंकल्पित वासनाओंको भूल जाते हैं तो वे मरनेके बाद जब पुनर्जन्म प्राप्त करने चलते हैं, तब वे वासनायें गर्भवासके समय ही उन्हें घेर लेती हैं ॥ ११८ ॥ राज्य प्राप्त करनेके पहले उच्चलने जो भली-बुरी बात सोची थी, वे पूर्वजन्मकी स्मृतिके समान उसे नहीं भूली थीं ॥ ११९ ॥ वह शत्रुमें विद्यमान गुणोंपर दृष्टि रखता था और द्रोहभाव अपनाये हुए पुराने सेवकोंके गुणोंका आदर करता हुआ उनके कर्तव्यके अनुरूप सत्कार भी करता था ॥ १२० ॥ कुलटा स्त्रीके पूर्वकृत पतिद्रोहको नवीन उपपति नहीं देखता। उसी प्रकार जड़ स्वभावका राजा सेवक द्वारा पुराने स्वामीके साथ किये गये द्रोहाचरणकी ओर नहीं निहारता ॥ १२१ ॥ कृत्य और अकृत्यका विवेचन करनेमें निपुण राजा उच्चलको शेष भगवान्की देहसे प्राप्त पृथिवीके साथ-साथ परिपक्व प्रज्ञा भी प्राप्त हुई थी ॥ १२२ ॥ जैसे एक कुशल व्यापारी तथा साहूकार अपने ग्राहकको सब तरहसे समझा-बुझाकर राजी करता है, उसी प्रकार वह राजा भी सबका सन्देह दूर करता हुआ उन्हें सन्तुष्ट रखता था ॥ १२३ ॥ एक समयकी बात है कि किसी धनीने एक वनियेके पास एक लाख दीनार धरोहरके रूपमें रख दिया। उस वनियेके साथ धनीकी गाढ़ी मैत्री थी ॥ १२४ ॥ वनियेने वह धन व्यापारमें

त्रिंशद्विंशासु यातासु समासु न्यासधारिणम् । गृहीतशेषं दातुं स धनं प्रार्थयताथ तम् ॥१२६॥
वणिक्तु कुकृती तस्य न्यासग्रासाय सोद्यमः । कालापहारमकरोत्तैस्तैः कलुषधीर्मिषैः ॥१२७॥
स्रोतोभिर्व्यस्तमम्भोधौ लभ्यं मेघमुखैः पयः । प्राप्तिर्भूयस्तु नास्त्येव वणिङ्न्यस्तस्य वस्तुनः ॥१२८॥
तैलस्निग्धमुखः स्वल्पालापो मृद्वाकृतिर्भवन् । न्यासग्रासविवादोग्रो वणिग्व्याघ्राद्विशिष्यते ॥१२९॥

विवादे श्रेष्ठिना शाठ्यं स्मितैः प्राक्सख्यदर्शनैः ।
मुक्तं मुक्तं ज्ञायमानं प्राणान्तेऽपि न मुच्यते ॥१३०॥

निसर्गवञ्चका वेश्याः कायस्थो दिविरो वणिक् । गुरूपदेशोपस्कारैर्विशिष्टाः सविषादिषोः ॥१३१॥
चन्दनाङ्कालिके श्वेतांशुके धूपाधिवासिनि । विश्वस्तः स्यात्किराते यो विप्रकृष्टेऽस्य नापदः ॥१३२॥
ललाटदृक्पुटश्रोत्रद्वन्द्वहृन्न्यस्तचन्दनः । षड्बिन्दुर्वृश्चिक इव क्षणात्प्राणान्तकृद्वणिक् ॥१३३॥
पाण्डुश्यामोऽग्निधूमार्द्रः सूच्यास्यो गहनोदरः । तुम्बीफलोपमः श्रेष्ठी रक्तं मांसं च कर्षति ॥१३४॥
सोथ निःशेषितमिषः क्रुद्धो निर्बन्धकारिणः । गणनापत्रिकां तस्य सभ्रूभङ्गमदर्शयत् ॥१३५॥
यदादौ श्रेयस इति न्यस्तमश्रेयसे पदम् । आतरेष्वत्यये सेतोर्गृहीता षट्शती त्वया ॥१३६॥
छिन्नोपानत्कपावन्धे शतं चर्मकृतेऽर्पितम् । विपादिकाकृते दास्या नीतं पञ्चशतो घृतम् ॥१३७॥
स्फोटने भाण्डभारस्य क्रन्दन्त्याः कृपयार्पितम् । कुलाल्या बहुशः पश्य भूर्जे लग्नं शतत्रयम् ॥१३८॥

लगा दिया । आवश्यकतानुसार धनी उस वनियेसे समय-समयपर कुछ धन ले लिया करता था ॥ १२५ ॥ बीस-तीस साल बीतनेके बाद धनीने उस धरोहर रखनेवाले वनियेसे अपनी बाकी रकम माँगी ॥ १२६ ॥ वनियेकी नीयत साफ नहीं थी । वह उसकी रकम हजम कर लेना चाहता था । इसलिए तरह-तरहके बहाने बताकर समय बिताने लगा ॥ १२७ ॥ जैसे नदियोंका पानी जब समुद्रमें जा मिलता है तो वह नदियोंको यथावत् रूपमें न मिलकर बादलोंसे वर्षाके रूपमें मिल भी जाता है, किन्तु बनियोंको दिया हुआ धन ज्योंका त्यों कदापि नहीं मिल पाता ॥ १२८ ॥ धन लेनेके समय तो वनिया तेलके समान स्नेहपूर्ण तथा मुसकानभरी मृदु आकृतिसे कम और बड़ी मीठी-मीठी बात करता है, किन्तु जब देनेका समय आता है तो वह बाघसे भी बढ़कर उग्ररूप दिखाता तथा वाद-विवाद करता हुआ सारी धरोहर हड़प लेनेका उपक्रम करने लग जाता है ॥ १२९ ॥ इन वनियोंमें यह बड़ी विशेषता होती है कि उग्र विवादमें शठता करते हुए भी ये पुरानी मित्रता प्रदर्शित करते और मुसकराते रहते हैं । यद्यपि ऊपरसे तो ऐसा ज्ञात होता है कि वह शठता त्याग रहा है, किन्तु वह प्राणान्त तक उससे नहीं छूटता ॥ १३० ॥ वेश्या, कायस्थ, धूर्त और वैश्य ये स्वभावसे ही वंचक होते हैं । यदि इन्हें उपयुक्त गुरुका उपदेश भी प्राप्त हो जाय, तब तो ये विषैले बाणसे भी अधिक घातक हो जाते हैं ॥ १३१ ॥ जो मनुष्य इनके चन्दनचर्चित मस्तक तथा धूपसे सुवासित वस्त्रोंकी तड़क-भड़कपर रीझकर इन मायावी बहेलियोंपर विश्वास कर लेता है, उसे फाँसकर ये निर्धन बना देते हैं । जो इनसे दूर रहता है, वही विपत्तिसे बच सकता है ॥ १३२ ॥ ललाट, दोनों नेत्रोंकी पलकों, दोनों कानों तथा हृदय इन छः स्थानोंमें चन्दन लगानेवाला वनिया छः बिन्दुओंवाले बिच्छूकी तरह तुरन्त प्राण ले लेता है ॥ १३३ ॥ पीला-काला मिश्रित वर्ण, आगके धुएँसे गीले, सुईके समान मुख और गहरे पेटवाली तुम्बी सरीखे ये सेठ जिसको फाँसते हैं, उसका रक्त और मांस दोनों खींच लेते हैं ॥ १३४ ॥ सो बहाने बनाते-बनाते जब उस वनियेने काफी लम्बा समय ले लिया, तब एक दिन क्रोधसे झुँझलाकर धनीके सामने अपने हिसाब की बही रक्खी और हिसाब समझाता हुआ कहने लगा—॥ १३५ ॥ 'क्या बतायें, समय ही ऐसा है कि जिसकी भलाई करो, उसीसे बुराई मिलती है । अस्तु, अब आप अपनी धरोहरका हिसाब समझिए—एक बार जब आप नदीके उस पार गये थे, तब उतराई देनेके लिए आपने छः सौ दीनार लिये थे ॥ १३६ ॥ जब आपके जूते फट गये थे, तब उसकी सिलाईके लिए सौ दीनार मोचीको दिये गये थे । आपके पैरमें जब बिवाय फटी थी, तब पाँच सौ दीनारका घी आपकी दासी ले गयी थी ॥ १३७ ॥ एक बार एक कुम्हारिन मिट्टीके बर्तनोंका बोझा

शिशुभ्योऽस्य बिडालस्य क्रीताः पोषाय मूषिकाः । त्वया शतेन वात्सल्याद्दुग्धान्मत्स्यरसस्तथा ॥१३९॥
चरणोद्वर्तनं सर्पिः शालिचूर्णं च सप्तभिः । क्रीतं शतेन श्राद्धपक्षस्नाने च घृतमाक्षिकम् ॥१४०॥
नीतं क्षौद्रार्द्रकं कासायासायादर्भकेण ते । सोऽव्यक्तजिह्वः किं वेत्ति वक्तुं लग्नं शतं ततः ॥१४१॥
वृषणोत्पाटको भिक्षाचरस्ते हठयाचकः । यो वारितो युद्धपटुस्तस्मै दत्तं शतत्रयम् ॥१४२॥
आनीते भट्टपादानां मध्यं सर्वव्ययोपरि । शतं शतद्वयं धूपशन्दामूलपलाण्डुषु ॥१४३॥
इत्याद्यचिन्त्यतायुक्तान्परिहार्यव्ययानसौ । तस्यैकीकृत्य गणनां लाभेऽपि शनकैर्व्यधात् ॥१४४॥
वर्षमासग्रहतिथिप्रत्यावृत्तिः पुनः पुनः । संसारस्येव तस्यान्तं न ययौ नर्तिताङ्गुलेः ॥१४५॥
स मूलग्रहणं पिण्डीकृत्याथ सकलान्तरम् । प्रसारितोष्ठस्तन्नेत्रे मीलयन्नभ्यधान्मृदु ॥१४६॥
शल्यमुद्धर निक्षेपं नयोज्ज्ञासधनं त्विदम् । विश्रम्भदत्तं निर्दम्भं दीयतां सकलान्तरम् ॥१४७॥
तत्स घर्म्यं वचो जानन्क्षणमुच्छ्वसितोऽभवत् । क्षुरं क्षौद्रोपलिप्तं तु ध्यात्वा पश्चादतप्यत ॥१४८॥
युक्तापह्नुतसर्वस्वं क्रौर्यानार्यमथार्थकः । विवादे नाशकज्जेतुं नापि स्थेया विचारकाः ॥१४९॥
स्थेयैरनिश्चितन्यायं पुरो न्यस्तं ततो नृपः । तदित्थमिति निश्चित्य वणिजं तमभाषत ॥१५०॥
अद्यापि न्यासदीनाराः सन्ति चेत्तत्प्रदर्श्यताम् । अंशः क्रियानपि ततस्ततो वच्मि यथोचितम् ॥१५१॥
तथा कृते तेन वीक्ष्य दीनारान्मन्त्रिणोऽब्रवीत् । राजभिर्भाविनां राज्ञां नाम्ना टङ्कः क्रियेत किम् ॥१५२॥

लिये जा रही थी। वह बोझा आपकी टक्करसे गिर पड़ा और उसके सब वर्तन फूट गये। जिससे कुम्हारिन रोने लगी और आपने दयावश उसे तीन सौ दीनार दिलाये थे ॥ १३८ ॥ आपने जो दुलारी बिल्ली पाल रक्खी है, उसके बच्चोंको खिलानेके लिए सौ दीनारके चूहे तथा मत्स्यरस खरीदे गये ॥ १३९ ॥ पितृपक्षमें श्राद्धके समय सात सौ दीनारसे पाँवोंमें लगानेके लिए मक्खन, चावलका आँटा, घी और शहद खरीदी गयी ॥ १४० ॥ एक बार आपके दुधमुँहे बच्चेको खाँसी आने लगी थी। उसके लिए सौ दीनारकी अदरख तथा शहद आयी थी। इस बातको कौन जानता है और वह अनबोलता बच्चा भी कैसे बतायेगा ? ॥ १४१ ॥ वह जो बड़ा हठीला तथा लड़ाका भिक्षुक बरबस जानवरोंके अण्डकोष निकाल लिया करता था, उसको उस कामसे विरत करनेके लिए आपने तीन सौ दीनार दिलवाये थे ॥ १४२ ॥ जब आपके आराध्य भट्टपादमहोदय पधारे थे, तब उनका सत्कार करनेके लिए तीन सौ दीनारके धूप, कन्दमूल और प्याज आये थे ॥ १४३ ॥ ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके बेकार खर्च दिखाकर उस बनियेने धनीके धनको लाभके बदले घाटेके रूपमे परिणत करके हिसाब समझा दिया ॥ १४४ ॥ जब वह उँगलिये नचा-नचाकर वर्ष, मास और तिथियोंको बार-बार दुहराता था, तब इस विशाल संसारके समान उसके हिसाबका अन्त ही नहीं होने आता था ॥ १४५ ॥ इस प्रकार मूल धनको जोड़कर खर्चखातेके हिसाबमे बाकी दिखाते हुए होंठ फैला तथा आँखे मीचकर अत्यन्त मृदु स्वरमे बोला— ॥ १४६ ॥ 'आपका इतना मूलधन था, सो सब खर्च होकर इतना दीनार हमारा बाकी निकलता है। इसे चुकाकर उऋण हो जाइए। मैंने कोई हीला-हवाला न करके आपके विश्वासपर यह रकम दी थी। अब आज उसे दे दीजिए' ॥१४७॥ उस धनीने शहद लपेटे हुए छुरेके समान उसके मधुर वचन सुनकर उसे पूर्ण धर्मात्मा समझ रक्खा था, किन्तु अब उसकी चालबाजी देखकर उसने लम्बी साँस ली ॥ १४८ ॥ उस सेठने जो हिसाब समझाया था, उसमें आदिसे अन्ततक झुठाई, क्रूरता, निर्दयता और अनर्थका नग्न प्रदर्शन था। धनीने कुछ प्रतिवाद किया, किन्तु विवादमे वह उसे नहीं जीत सका और न्यायालयके विचारक भी निर्णय करनेमें असमर्थ हो गये ॥ १४९ ॥ अन्तमे अधिकारियों द्वारा अनिर्णीत वह मामला राजा उच्चलके समक्ष पहुँचा। बनियेका बनाया हिसाब देखकर राजाने उससे कहा—॥ १५० ॥ 'इस धनीने तुम्हारे पास जो दीनार जमा किये थे, उनमेसे जो अंश तुम्हारे पास बचा हुआ हो उसे लाकर दिखाओ, तभी मामलेका निपटारा हो सकेगा' ॥ १५१ ॥ जब सेठने शेष दीनार ले जाकर राजाके समक्ष रक्खे, तब उन्हें देखकर राजाने मंत्रियोंसे कहा—'क्या जो राजे

न चेत्कलशभूपालकाले न्यासीकृतेष्वमी । दीनारेषु कृतष्टङ्का मन्नामाङ्का अपि स्थिताः ॥१५३॥
निक्षिप्तेनैष लक्षेण वणिक्तस्माद्व्यवाहरत् । वणिजो द्रविणेनायमप्यात्तेनान्तरान्तरा ॥१५४॥
तस्माद्यदा यदेतेन गृहीतं दीयतां ततः । तदा प्रभृत्यद्ययावल्लाभोऽस्मै वणिजोऽर्थिनः ॥१५५॥
न्यसनानेहसश्चैष प्रभृत्यस्मै प्रयच्छतु । लक्षादखण्डिताल्लाभं किं वाच्यं मौलिके धने ॥१५६॥
अवधारयितुं शक्यं मादृशैः सघृणैरियत् । श्रीयशस्करवद्रौक्ष्यमीदृक्षेषु तु युज्यते ॥१५७॥
विवादे संदिहानस्य युक्तं क्षान्त्यानुशासनम् । भाव्यं दण्डधराचारैः प्रयुक्तकुसृतेः पुनः ॥१५८॥
अनिर्हार्येषु शल्येषु महामर्मगतेष्विव । सविवादेषु चोपेक्षां कालापेक्षी व्यधान्नृपः ॥१५९॥
पप्रथे पार्थिवस्येत्थं निश्चोद्यं तस्य पालनम् । प्रजासु जागरूकस्य मनोरिव मनस्विनः ॥१६०॥

सख्यं कारणनिर्व्यपेक्षमिनताहंकारहीना सतीभावो वीतजनापवाद उचितोक्तित्वं समस्तप्रियम् ।
विद्वत्ता विभवान्विता तरुणिमा पारिप्लवत्वोज्झितो राजत्वं विकलङ्कमत्र चरमे काले किलेत्यन्यथा॥१६१॥

स तादृशोऽपि राजेन्द्रचन्द्रमाः सन्किलाभवत् । मात्सर्याविष्टवैवश्याद्दोषोल्कावर्षभीषणः ॥१६२॥
औदार्यशौर्यधीधैर्यगुणतारुण्यमत्सरः । बभूव संख्यातीतानां मानप्राणहरो नृणाम् ॥१६३॥
मानोन्नतैश्च भूयोऽपि वाक्पारुष्यरुषाहतैः । लाघवं प्रत्युपालम्भैः पार्थिवोऽप्यनुभावितः ॥१६४॥
प्रसुप्तानां फणीन्द्राणामिव कोपोद्भवं विना । तेजो विस्फूर्जितं ज्ञेयं न हि नाम शरीरिणाम् ॥१६५॥
विविधे भूतसर्गेऽस्मिन्न च कश्चित्स विद्यते । वपुर्वंशचरित्रादि यस्य दोषैर्न दूषितम् ॥१६६॥

भविष्यमें होनेवाले होते हैं, उनका नाम भी दीनारोंपर छापा जाता है ? ॥ १५२ ॥ यदि ऐसा नहीं होता तो महाराज कलशके राज्यकालमे रक्खी धरोहरमे मेरे नामके सिक्के कैसे आये ? ॥ १५३ ॥ और फिर धनीने एक लाख दीनार तुम्हारे पास जमा किये थे। उन्हें तुमने व्यापारमे लगाकर लाभ किया। यदि इस धनीने समय-समयपर कुछ लिया भी तो वह लाभांश था, मूलधन नहीं। अतएव जब तुमने इस धनीसे धन लेकर व्यापारमे लगाया, तबसे लेकर आजतक तुमने जो लाभ किया हो, वह सब इस धनीको दे दो ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ इस प्रकार लाभांश देनेपर भी इसकी धरोहरवाली एक लाख दीनारकी रकम ज्योंकी त्यों बनी रहेगी ॥ १५६ ॥ मेरे जैसे दयालु राजे नर्मकि साथ ऐसा फैसला दे सकते हैं। वास्तवमें तो ऐसे बेईमान बनियेके लिए 'श्रीयशस्कर जैसे रूखे स्वभाववाले राजाकी आवश्यकता थी ॥ १५७ ॥ जिस मामलेमे सन्देहकी गुंजाइश हो, उसके फैसलेमे शासकको क्षमानीतिसे काम लेना चाहिए। किन्तु जिस विवादमें वादी या प्रतिवादी अनीतिके पथपर चल रहे हों, उसमे शासकको यमराजके समान कठोर बनकर न्याय करना उचित होता है' ॥ १५८ ॥ राजा उच्चल किसी मर्मस्थानमे चुभे हुए काँटेके सदृश खटकनेवाले विवादोंकी वास्तविक स्थिति समझनेके लिए उपेक्षापूर्वक कुछ समयतक प्रतीक्षा करता था ॥ १५९ ॥ इस प्रकार महाराज मनुके समान मनस्वी तथा प्रजापालनके कार्यमें सतत जागरूक राजा उच्चलकी शासनशैली अल्पकालमे ही विख्यात हो गयी ॥ १६० ॥ बिना कारण किसीसे किसीकी मित्रता नहीं होती, अहंकारहीन तथा जनापवादसे शून्य सतीभाव नहीं होता, उचित बात सबको प्रिय नहीं लग सकती, विद्वान् धनाढ्य नहीं होता, यौवन अचंचल नहीं रहता और राजकार्य अन्ततक निष्कलंक नहीं रह पाता ॥ १६१ ॥ तदनुसार चन्द्रमा सदृश सबके लिए सुखदायी राजा उच्चल कुछ ही समय बाद मात्सर्य युक्त होकर दोषरूपिणी उल्काओंकी वर्षा करनेके कारण बहुत ही भयंकर हो उठा ॥ १६२ ॥ उदारता, धैर्य, शौर्य, बुद्धि आदि गुणों तथा तारुण्यके कारण सहसा ईर्ष्यालु होकर वह असंख्य सम्मानित मनुष्योंका मानरूपी प्राण हरने लगा ॥ १६३ ॥ जब उसने यह रुख अपनाया तो बहुतेरे सुसम्मानित व्यक्तियों द्वारा कठोर शब्दोंमे उस राजाको उलाहने भी सहने पड़े ॥ १६४ ॥ जैसे सोये हुए सर्पका तेज दबा रहता है। उसी प्रकार जबतक मनुष्य क्षोभ नहीं प्रदर्शित करता, तबतक उसका तेज छिपा रहता है ॥ १६५ ॥ विविध प्रकारके प्राणियोंसे भरे इस संसारमें कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है, जिसका शरीर दुश्चरित्रता

जातिः पङ्करुहाद्वपुः कपिलताक्रान्तं शिरः खण्डनप्रभ्रश्यच्छुचिशीलतादिविगुणाचारप्रदुष्टं यशः ।
विश्वस्रष्टुरिति प्रभूतविषयव्याप्तिस्पृशो दुःसहा दोषा यत्र पुरोऽस्तु तत्र कतमो निर्दोषतोत्सेकभूः ॥१६७॥
अविचार्येति भूपालः स चकारानुजीविनाम् । वंशचारित्रदेहादिदोषोद्धोषणमन्वहम् ॥१६८॥
अन्योन्यद्वेषमुत्पाद्य संख्यातीता महाभटाः । युद्धश्रद्धालुना तेन द्वन्द्वयुद्धेषु घातिताः ॥१६९॥
मासार्धदिनमाहेन्द्रमहाद्यवसरेषु सः । निनाय योधान्संनद्धानन्योन्यप्रधनैर्धनम् ॥१७०॥
स नाभूदुत्सवः कश्चित्तदा यत्र नृपाङ्गणे । भूमिर्न सिक्ता रक्तेन हाहाकारो न चोद्ययौ ॥१७१॥
नृत्यन्त इव निर्याता गृहेभ्यो वंशशोभिनः । बान्धवैर्निन्यिरे योधा लूनाङ्गाः पार्थिवाङ्गणात् ॥१७२॥
स्निग्धश्यामकचांश्चारुश्मश्रूनाकल्पशोभिनः । हतान्वीक्ष्य भटान्राजा मुमुदे न तु विव्यथे ॥१७३॥
नार्यो राजगृहं गत्वा प्रत्यायातेषु भर्तृषु । मेनिरे दिवसं लब्धमनास्था नित्यमन्यथा ॥१७४॥
भवेत्तद्यदहं कुर्यामित्यहंक्रियया वदन् । साचिव्यमव्याहतवाग्यैस्तैर्भृत्यैरजिग्रहत् ॥१७५॥
प्रवर्धमानांस्तानेव विद्वेषकलुषाशयः । हताधिकारान्विदधे बहुशश्च विमानितान् ॥१७६॥
दन्छकः कम्पनाधीशः प्रवृद्धौ तत्र सक्रुधि । विद्रुतो विपलाटायां निपत्य निहतः खशैः ॥१७७॥
तेन स्ववर्धितो द्वाराधीश्वरो रक्ककाभिधः । हृताधिकारो विदधे विभूतिं वीक्ष्य भूयसीम् ॥१७८॥
माणिक्यसैन्यपतिना द्वारेऽकस्मान्निवारिते । खिन्नेन विजयक्षेत्रे चक्रे व्रतपरिग्रहः ॥१७९॥
कम्पनाद्यधिकारस्थाः प्रवीरास्तिलकादयः । काकवंश्या मार्दवेन तत्कोपं नानुभाविताः ॥१८०॥

आदि लांछनोसे लांछित न हो ॥ १६६ ॥ जिनका जन्म कमलसे हुआ, शरीरपर पीलापन छा गया, शिवजीके हाथों जिनका सिर कटा और अपनी ही पुत्रीके प्रति दुर्भाव प्रदर्शित करनेके कारण जिनकी शुचिता-शीलता आदि सद्गुणोंकी कड़ी आलोचना हुई, उन सर्वव्यापी विश्वरचयिता ब्रह्मामे जब इतने दुःसह दोष विद्यमान हैं, तब उनकी सृष्टिमे भला कोई सर्वथा निर्दोष व्यक्ति कैसे उत्पन्न हो सकता है ॥ १६७ ॥ अब वह राजा नित्य बिना सोचे-समझे अपने अनुचरोंके वंश, चरित्र तथा देवताओंके दूषण दिखा-दिखाकर कोसने लगा ॥ १६८ ॥ बहुतेरे वड़े-वड़े वीरोंमे आपसी कलह उत्पन्न करा-करके युद्धप्रेमी राजा उच्चलने पारस्परिक द्वन्द्वयुद्धमे उन्हें मरवा डाला ॥ १६९ ॥ महीने-आध महीनेमे महेन्द्र पर्व आदि अवसरोंपर वह बहुतसे योद्धाओंको एकत्र करके दंगल कराता और उसकी सारी आमदनी स्वयं ले लिया करता था ॥ १७० ॥ उस समय ऐसा कोई भी उत्सव नहीं होता था कि जब राजाके ऑगनमें रुधिर न गिरे और उससे हाहाकार न मचे ॥ १७१ ॥ अपने-अपने कुलोंके दीपकस्वरूप नौजवान लड़के खुशीसे नाचते हुए घरसे उत्सव देखने जाते थे और बादमें राजाके ऑँगनसे हाथ-पैर तोड़वा या कपार फोड़वाकर बान्धवोंके कन्धेपर लदकर लौटते थे ॥ १७२ ॥ चिकने, घुघराले तथा श्यामवर्णके सुन्दर बालों एवं तनिक-तनिक रेख सरीखी उभड़ती मूछोंवाले नौजवान योद्धाओंको अपने ऑगनमें मरते देखकर राजा प्रसन्न होता था—इसके लिए उसे कुछ भी व्यथा नहीं होती थी ॥ १७३ ॥ उन दिनों स्त्रियाँ राजाके ऑँगनमें गये हुए पतिको अपने घर सकुशल लौटा देखकर ही कुशल समझती थीं। अन्यथा उन्हें सकुशल लौटनेकी आशा नहीं रहती थी ॥१७४॥ कभी-कभी हठ करके वह किसी मंत्रीसे उलझ जाता और कहता कि 'जो मैं कह रहा हूँ, वही ठीक है—तुम्हारा कहना ठीक नहीं है'। यों कहकर जिद पकड़ लेता और बादमे किसी बहाने वह उस मंत्रीको अपमानित करके निकाल दिया करता था ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ दंछक उसका सेनापति था। राजा उसके भी पीछे पड़ गया और बात जब बहुत बढ गयी, तब वह नौकरी छोड़कर भागा। इस प्रकार भागकर जब वह विपलाटामे पहुँचा, तब वहाँ उसे खशोंने मार डाला ॥ १७७ ॥ इसी प्रकार उसने रक्कको द्वाराधीश बनाकर आगे बढाया। बादमे जब राजाको पता चला कि रक्क बड़ा मालदार हो गया है, तब उसे निकाल दिया ॥ १७८ ॥ सेनापति माणिक्यको एक दिन उस राजाने अपने द्वारसे लौटा दिया। इससे उस बेचारेको इतना कष्ट हुआ कि विजयक्षेत्रमे जाकर उसने संन्यास ले लिया ॥ १७९ ॥ तिलक आदि महान् काकवंशी योद्धा सेनापति आदि पदोपर रहते हुए भी अपने मृदु स्वभावके

भोगसेनो निरन्नुगः क्षीणवासा भवन्कृतः । तेनातिसेवाप्रीतेन राजस्थानाधिकारभाक् ॥१८१॥
यस्येन्द्रद्वादशीयुद्धे सान्द्रसैन्योऽपि विद्रुतः । क्षुद्रवद्गग्गचन्द्रोऽपि रौद्रमालोक्य विक्रमम् ॥१८२॥
येऽपि सड्डाभिधानस्य पुत्राः सामान्यशस्त्रिणः । तान्रड्डच्छुड्डव्यड्डान्स मन्त्रिणः समपादयत् ॥१८३॥
पुत्रौ विजयसिंहस्य तत्सेवात्यक्तदुर्दशौ । तिलको जनकश्चास्ताममात्यश्रेणिमध्यगौ ॥१८४॥
यमैलाभयबाणादिमुख्या द्वागदिनायकाः । कस्तान्समर्थः संख्यातुं तडित्तरलसंपदः ॥१८५॥
द्वित्राः प्रशस्तकलशादयः पूर्वे तदन्तरे । प्रापुर्बालद्रुमान्तःस्थजीर्णानोकहविभ्रमम् ॥१८६॥
कन्दर्पः क्ष्माभुजा दूतैः समानीतोऽपि नाददे । तस्यासहनतां वीक्ष्य प्रार्थितोऽप्यधिकारिताम् ॥१८७॥
आस्थानाचारसंलापव्यवहारादि मण्डले । नवमेवाभवत्सर्वं तस्मिन्नभिनवे नृपे ॥१८८॥
लक्ष्मीः कार्मणचूर्णाङ्का वेश्येव वशवर्तिनः । धीरानपि विधायेयं करोत्युन्मार्गवर्तिनः ॥१८९॥
सपिण्डानामपि व्यक्तशूलवीक्षणतत्परा । प्रेततेव नरेन्द्रश्रीर्जातिस्नेहापकारिणी ॥१९०॥
समस्तसंपत्पूर्णोऽपि यस्मात्सुस्सलभूपतिः । दध्यौ भ्रातुरवस्कन्दं राज्यापहरणोद्यतः ॥१९१॥
अकस्मादशृणोच्छ्येनमिव तं शीघ्रपातिनम् । स्थानं वराहवार्ताख्यमुल्लङ्घ्यायातमग्रजः ॥१९२॥
क्षिप्रकारी विनिर्गत्य तमप्राप्तपदं ततः । निपत्य सैन्यैर्बहुलैः सोपकारमकारयत् ॥१९३॥
विद्रुतस्यास्पदे तस्य नानोपकरणैश्च्युतैः । ताम्बूलवल्लीकूटैश्च सामग्री समभाव्यत ॥१९४॥
कृतकार्यपरावृत्त्यासावरूढोऽपि पार्थिवः । प्रत्यावृत्तं तमशृणोदन्येद्युः क्रूरविक्रमम् ॥१९५॥

कारण उसके कोपभाजन नहीं बने ॥ १८० ॥ भोगसेन कुछ दिन पहले फटे चीथड़े पहने अनाथकी तरह मारा-मारा फिरता था। सो उसकी अतिशय सेवासे प्रसन्न होकर राजा उच्चलने उसको अपने समीप रहनेका अधिकारी बना दिया ॥ १८१ ॥ इन्द्रद्वादशीके युद्धमें विपुल सेनाका सेनापति गग्गचन्द्र उस भोगसेनका भीषण पराक्रम देखकर एक क्षुद्र व्यक्तिके समान मैदान छोड़कर भाग गया ॥ १८२ ॥ साधारण शस्त्रधारी सड्डके पुत्र रड्ड, छुड्ड और व्यड्डको उसने मन्त्री बना दिया ॥ १८३ ॥ विजयसिंहके दो पुत्र उसकी सेवा त्यागकर दुर्दशा भोगने लगे, किन्तु शेष दो तिलक तथा जनक मंत्रिमण्डलमें ले लिये गये ॥ १८४ ॥ यम, ऐल, अभय तथा बाण आदि द्वाराधीश जैसे कितने ही प्रमुख अधिकारी बादलमें बिजलीकी चमक जैसी क्षणिक सम्पदाके प्रभु बनकर देखते-देखते कंगाल हो गये ॥ १८५ ॥ हाँ, प्रशस्तकलश आदि दो-तीन व्यक्ति अलबत्ते ऐसे थे कि जो एक नन्हे पौधेके समान रोपे गये थे और अब जीर्ण वृक्षका रूप धारण किये दीख रहे थे ॥ १८६ ॥ उस राजाने अपने दूतों द्वारा कन्दर्पको बुलवाया था, किन्तु वह राजाकी असहनशीलता देखकर अनुरोध करनेपर भी कोई पद ग्रहण करनेको राजी नहीं हुआ ॥ १८७ ॥ उस नये राजाके राज्यकालमें राजदरबार, आचार, बातचीत आदि सभी व्यवहार बिल्कुल नये ढंगके दिखायी देते थे ॥ १८८ ॥ कार्मण (समूल नष्ट कर देनेवाले पदार्थ) के चूर्णसे अंकित वेश्याके समान लक्ष्मी कितने ही धीर-गम्भीर एवं अपने वशवर्ती लोगोंको कुमार्गकी ओर अग्रसर कर दिया करती है ॥ १८९ ॥ राजाओंकी राज्यश्री अपने कुलके लोगोंका भी दूषण देखती रहती है और प्रेतकी नाईं जातिस्नेहको दूर भगा देती है ॥ १९० ॥ इधर समस्त सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण होते हुए भी राजा सुस्सल अपने बड़े भाई उच्चलका राज्य हस्तगत करनेकी फिक्रमें था ॥ १९१ ॥ सो अकस्मात् राजा उच्चलको यह समाचार मिला कि सुस्सल बाजकी तरह झपटता हुआ बड़े वेगसे राजधानीकी ओर बढ़ा आ रहा है। वह वराहवार्तानामक स्थानको लाँघ चुका है ॥ १९२ ॥ यह समाचार सुनते ही उच्चल विशाल सेना साथ लेकर गया और रास्ते हीमें सुस्सलसे मिला और बहुतेरा पुरस्कार देकर उसका सम्मान किया ॥ १९३ ॥ बातकी बातमें उसने सुस्सलके आगे ताम्बूल आदि उपहार सामग्रियोंका अम्बार लगा दिया ॥ १९४ ॥ इस सम्मानसे ही अपनेको कृतार्थको समझकर सुस्सल रास्तेसे ही पीछेको लौट पड़ा। सबेरे ही उच्चलने यह समाचार सुना कि वह क्रूर पराक्रमी फिर लौट पड़ा है ॥ १९५ ॥

गग्गचन्द्रस्तदादेशाद्गत्वा वहलसैनिकः । चक्रे सुस्सलभूपालवलनिर्दलनं ततः ॥१९६॥
असंख्यैः सौस्सलैर्योधैराहवायासनिःसहैः । क्लान्तिर्विमानोद्यानेषु द्युनारीणाममुच्यत ॥१९७॥
भर्तृप्रसादस्यानृण्यं प्राणैर्युधि समर्पितैः । राजपुत्रौ गतौ तत्र सहदेवयुधिष्ठिरौ ॥१९८॥
वराश्वान्सुस्सलानीकाद्गग्गस्तान्प्राप विद्रुतान् । चक्रे भूरितुरंगस्य यैर्भूपस्यापि कौतुकम् ॥१९९॥
निविष्टकटकं तं स श्रुत्वा सेल्यपुराध्वना । क्रमराज्योन्मुखं यान्तं द्रुतमन्वसरन्नृपः ॥२००॥
अन्विष्यमाणसरणिः प्रयत्नादग्रजन्मना । प्रविवेश दरद्देशं परिमेयपरिच्छदः ॥२०१॥
दत्तमार्गं तस्य राजा डामरं लोष्टकाभिधम् । स सेल्यपुरजं हत्वा नगरं प्राविशत्ततः ॥२०२॥
तस्मिन्दूरं गते वैरकलुषोऽपि स नाददे । भ्रातृस्नेहेन संरम्भं ग्रहीतुं लोहरं गिरिम् ॥२०३॥
कल्हः कालिञ्जराधीशो दौहित्रीं पुत्रवद्गृहे । यामवर्धयत स्नेहादपुत्रः पितृवर्जिताम् ॥२०४॥
राज्ञो विजयपालस्य सुतां सुस्सलभूपतिः । उपयेमे स तां श्रीमाननघां मेघमञ्जरीम् ॥२०५॥
तस्य प्रभावाधिष्ठानाच्छिशोरपि न लोहरे । शक्तिरासीद्विरुद्धानामपि वाधाय वैरिणाम् ॥२०६॥
धीरः सुस्सलदेवोऽपि मार्गैर्निर्गत्य दुर्गमैः । आसदद्भूरिभिर्मासैः स्वोर्वीं दुर्गिरिवर्त्मना ॥२०७॥
प्रशान्ते व्यसने तस्मिन्धीरस्योच्चलभूपतेः । अन्येऽपि व्यसनाभासा उत्पन्नध्वंसिनोऽभवन् ॥२०८॥
भीमादेवः समादाय भोजं कलशदेवजम् । साहायकार्थमानिन्ये दरद्राजं जगद्दलम् ॥२०९॥
सल्हो हर्षमहीभर्तुरवरुद्धात्मजोऽभवत् । भ्राता दर्शनपालस्य सञ्जपालस्तु तद्बलम् ॥२१०॥
नीतिज्ञेन ततो राज्ञा साम्नैव दरदीश्वरः । आक्षेपाद्वारितः प्रायात्प्रत्यावृत्य निजां भुवम् ॥२११॥
सल्हस्तमन्वगाच्छन्नं भोजोऽविक्षत्स्वमण्डलम् । भेजे सुस्सलदेवस्य सज्ञपालोऽनुजीविताम् ॥२१२॥

यह सुनकर उसने एक विशाल सेनाके साथ गग्गचन्द्रको भेजा और उसने जाकर सुस्सलकी सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी ॥ १९६ ॥ जिससे सुस्सलके जैसे अगणित योद्धा—जो युद्धके कष्टको नहीं सह सकते थे—गग्गचन्द्रके हाथों मरकर देवाङ्गनाओंके विमानोंपर जाकर अपनी थकान मिटाने लगे ॥ १९७ ॥ उस युद्धमें अपने प्राण देकर राजपुत्र सहदेव और युधिष्ठिर स्वामीके ऋणसे उऋण हो गये ॥ १९८ ॥ उस समय गग्गचन्द्रको सुस्सलके बहुतसे भागे हुए कीमती घोड़े अनायास प्राप्त हो गये । उनकी संख्या इतनी विशाल थी कि जिन्हें देखकर उच्चल भी चकपका गया था ॥ १९९ ॥ तबतक राजा उच्चलको यह समाचार मिला कि सुस्सल सेना संग्रह करके सेल्यपुरके मार्गसे क्रमराज्यकी ओर बढ रहा है ॥ २०० ॥ यह सुनते ही उच्चल अपनी थोड़ी सी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे चला और जाते-जाते दरददेशमें प्रविष्ट हुआ ॥ २०१ ॥ वहाँ सेल्यपुरमें उत्पन्न लोष्टक नामक डामरका वध करके वह नगरके भीतर घुसा ॥ २०२ ॥ किन्तु जब उसने देखा कि सुस्सल बहुत दूर निकल गया है तो वैरवश कलुषित चित्त होनेपर भी भ्रातृस्नेहके कारण उच्चल लोहर पर्वतकी ओर नहीं बढा ॥ २०३ ॥ कालिंजर देशके अधिपति कल्हणने निःसन्तान होनेके कारण अपनी दौहित्रीको बड़े स्नेहसे पाला था, क्योंकि उस बच्चीका पिता मर चुका था ॥ २०४ ॥ तदनन्तर श्रीमान् सुस्सल राजाने महाराज विजयपालकी पुनीत पुत्री मेघमंजरीके साथ अपना विवाह किया ॥ २०५ ॥ ऐसा करनेसे सुस्सलका प्रभाव इतना अधिक बढ गया कि कोई शत्रु लोहर राज्यके एक बच्चेको भी कष्ट नहीं पहुँचा सकता था ॥ २०६ ॥ धैर्यशाली सुस्सल दुर्गम पहाड़ी मार्गोंसे चलता हुआ कई मासमे अपनी भूमिपर अर्थात् लोहर राज्य पहुँचा ॥ २०७ ॥ राजा उच्चलकी ओरसे आनेवाले महान् संकटसे छुटकारा पाकर सुस्सलके अन्य छोटे-मोटे संकटाभास उत्पन्न होकर ही अनायास समाप्त हो गये ॥ २०८ ॥ तदनन्तर भीमादेव कलशदेवके पुत्र भोजको साथ लेकर दरद देशके नरेश जगद्दलकी सहायता करनेके लिए जा पहुँचा ॥ २०९ ॥ राजा हर्षदेवकी रखैलका पुत्र भोज, सल्ह और दर्शनपालका भाई सञ्जपाल भी अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँच गये ॥ २१० ॥ किन्तु नीतिज्ञ राजा उच्चलने सामनीतिका उपयोग करके उसे समझाया, जिससे दरदीश्वर अपने देश लौट गया ॥ २११ ॥ उनमें

गृहीतार्थेन भृत्येन निजेनैव प्रदर्शितः । भोजः क्षिप्रं नृपात्प्राप निग्रहं तस्करोचितम् ॥२१३॥
देवेश्वरात्मजः पित्थकोऽपि द्वैराज्यलालसः । डामरानाश्रिते राज्ञि निर्याते व्यद्रवद्दिशः ॥२१४॥
विचारपरिहारेण धावन्तः सर्वतो जडाः । तिर्यञ्च इव हास्याय प्रसिद्धिशरणा जनाः ॥२१५॥
मल्लस्य रामलाख्योऽहं सूनुरासं दिगन्तरे । अट्टसूदः कश्चिदेवं चक्रिकाचतुरो वदन् ॥२१६॥
निन्ये प्रवृद्धिं व्यामूढैर्बहुभिर्विप्लवप्रियैः । धनमानादिदानेन भूमिपैर्भूम्यनन्तरैः ॥ युग्मम् ॥२१७॥
ग्रीष्मे प्रविष्टः कश्मीरानेकाकी घर्मपीडितः । व्यधीयत छिन्ननासः परिज्ञाय नृपानुगैः ॥२१८॥
कटके पर्यटन्नाज्ञः स एव ददृशे पुनः । स्वजात्युचितभक्ष्यादिविक्रयी सस्मितं जनैः ॥२१९॥
मिथ्यैव नीतिकौटिल्यैः क्रियतेऽभ्युदयश्रमः । शक्यतेऽपरथा कर्तुं न दैवस्य मनीषितम् ॥२२०॥
शान्तापि ज्वलति क्वापि क्वचिद्दीप्तापि शाम्यति । दैववातवशाच्छक्तिः पुंसः कक्षाग्निसंनिभा ॥२२१॥
पलायनैर्नापयाति निश्चला भवितव्यता । देहिनः पुच्छसंलीना वह्निज्वालेव पक्षिणः ॥२२२॥

नाच्छिन्नवह्निविषशस्त्रशरप्रयोगैर्न श्वभ्रपातरभसेन न चाभिचारैः ।
शक्या निहन्तुमसवो विधुरैरकाण्डे भोक्तव्यभोगनियतोच्छ्वसितस्य जन्तोः ॥२२३॥

भिक्षाचरः समादिष्टवधो जयमतीगृहात् । नक्तं वध्यभुवं निन्ये वधकैः पार्थिवाज्ञया ॥२२४॥
ग्राव्णि प्रस्फोट्य निक्षिप्तो वितस्तायां समीरणैः । क्षिप्तस्तटं क्षणं स्पन्दमानवक्षाः कृपालुना ॥२२५॥

सल्ह दरदीश्वरके साथ प्रच्छन्न रूपसे चला गया, भोज अपनी भूमिपर लौट गया और सज्जपालने जाकर मुस्सलके यहाँ नौकरी कर ली ॥ २१२ ॥ उसी समय राजा उच्चलसे धन लिये हुये एक भृत्यने भोजको देखते ही राजाको सूचित कर दिया, जिससे चोरकी तरह पकड़कर भोज कारागारमें बन्द कर दिया गया ॥२१३॥ देवेश्वर-का पुत्र पित्थक भी अपनेको राज्यका हकदार समझता था। किन्तु जब राजा हर्षको डामरोंकी सहायता नहीं मिली, जिससे राजाको भागना पड़ा तो उसी समय पित्थक भी निकल भागा ॥ २१४ ॥ जड़ पुरुष दृढ़ निश्चयके अभावमें किसी प्रसिद्ध पुरुषका नाम ले-लेकर पशु-पक्षियोंके समान इधर-उधर दौड़ते हुए उपहासके पात्र बनते हैं ॥२१५॥ षड्यंत्र रचनेमें चतुर इसी प्रकारका एक अट्टसूद (खाने-पीनेकी चीजें फेरी लगाकर वेचने वाला) चारों ओर घूम-घूमकर अपनेको मल्लका पुत्र रामल बताया करता था ॥ २१६ ॥ ऐसा करके उसने बहुतेरे विगड़ैल मस्तिष्कवाले उपद्रवी लोगोंको जुटा लिया। जिससे उसे कई राजाओंसे धन तथा सम्मान भी प्राप्त हो गया ॥ २१७ ॥ वह अट्टसूद गर्मीके दिनोंमें तापसे सन्तप्त होकर अकेला ही कश्मीर जा पहुँचा। वहाँ जब राजपुरुषोंको उसके आगमनका पता चला, तब उन्होंने उसकी नाक काट ली ॥ २१८ ॥ कुछ समय बाद उस नकटे फेरीवालेको फिर अपनी जातिके अनुरूप तरह तरहकी चीजें बेचते देखकर लोग हँसने लगे ॥ २१९ ॥ कितने ही लोग विविध प्रकारकी कुटिल नीतियोंका उपयोग करके अपने अभ्युदयके लिए परिश्रम करते हैं. किन्तु वे यह नहीं जानते कि दैव उनकी इच्छाओंके विपरीत परिस्थिति भी ला सकता है ॥२२०॥ जैसे खलिहानमें लगी हुई आग कहीं शान्त हो करके भी फिर भभक उठती है और कहीं धधकती हुई भी आग बुझ जाती है। इसी प्रकार दैवकी प्रेरणासे कभी कोई अकिंचन व्यक्ति भी श्रीमान् बन जाता है और कभी श्रीमान व्यक्ति अकिंचन बन जाता है ॥ २२१ ॥ जैसे किसी पक्षीकी पूँछमें लगी आग उसके भागनेसे नहीं शान्त होती। उसी प्रकार मनुष्यकी भी भवितव्यता उसके पलायन करनेसे पीछा नहीं छोड़ती ॥२२२॥ जिस प्राणीको नियति द्वारा निर्धारित जो भोग भोगने हैं, वे प्रचण्ड अग्नि, विष, शस्त्र, बाणप्रयोग, किसी गढ़ेमें कूद जाने, अभिचार क्रिया करने तथा ऐसे भोगाधीन प्राणियोंका वध कर देनेसे भी निवृत्त नहीं किये जा सकते ॥ २२३ ॥ क्योंकि एक भिक्षुक प्राणदण्डसे बचनेके लिए भागकर रानी जयमतीके महलमें छिप गया था। किन्तु राजाकी आज्ञासे वधिकोंने रात्रिके समय वहाँ जाकर उसे पकड़ा और वध्यभूमिको ले गये ॥ २२४ ॥ एक मनुष्यको भीषण आँधी उड़ाकर वितस्ता नदी तक ले गयी और वहाँ एक चट्टानपर पटक दिया, जिससे उसके जीवित रहनेकी कोई आशा नहीं रह गयी थी। किन्तु कृपालु दैवने उसके शरीरमें प्राण

द्विजेनैकेन संप्राप्तश्चिराद्धृतचेतनः । आसमत्यभिधानायां ज्ञातिर्दिद्देति गौरवात् ॥२२६॥
शाहिपुत्रीभिरुक्ता या दत्तश्चतुरया तया । नीतो देशान्तरं गूढं ववृधे दक्षिणापथे ॥ तिलकम् ॥२२७॥
स वृत्तप्रत्यभिज्ञोऽथ पुत्रवन्नरवर्मणा । मालवेन्द्रेण शस्त्रास्त्रविद्याभ्यासमकार्यत ॥२२८॥
अन्यदीयं घातयित्वा तत्तुल्यवयसं शिशुम् । रक्षितो जयमत्यैव स किलेत्यपरेऽब्रुवन् ॥२२९॥
देशान्तरागताद्दूतात्तां वार्तामुपलब्धवान् । अत एवाभवत्तस्या भूभृद्विरलितादरः ॥२३०॥
बहिरप्रतिभिन्दंस्तत्स धीरो मार्गवर्तिभिः । चक्रे तदप्रवेशाय सम्बन्धं पार्थिवैः समम् ॥२३१॥
ईर्ष्यामगोपयन्नार्याः शङ्कामच्छादयन्रिपोः । स्वयमन्याभिगम्यत्वं करोति हि जडो जनः ॥२३२॥
भिक्षाचरे हते बालं कंचिदादाय तत्समम् । तन्नाम्ना ख्यातिमनयद्दिद्देत्यपरेऽब्रुवन् ॥२३३॥
तथ्येन सोऽस्तु मिथ्या वा प्रतिष्ठां तां तथाप्तवान् । यया लघुत्वमानेतुं न दैवेनाप्यशक्यत ॥२३४॥
स्वप्नेन्द्रजालमायानामपि निर्विषया इमाः । कर्मवैचित्र्यजनिताः काश्चिदाश्चर्यविप्रुषः ॥२३५॥
स राजबीजी नाशाय विशां गूढं व्यवर्धत । पुरग्रामादिदाहाय कक्षान्तरिव पावकः ॥२३६॥

रोहत्यन्तिकसीमनि प्रतिविषावीरुद्विषक्ष्मारुहः काले प्रावृडुपद्रुताच्छसलिले मूर्छत्यगस्त्योदयः ।
सर्गच्छेदविधिक्षमानुदयतो दृष्ट्वा किलोपद्रवान्संधत्ते प्रतिकारकल्पनमहो दीर्घावलोकी विधिः ॥२३७॥

अजायत विपन्मज्जज्जगदुद्धरणक्षमः । तस्मिन्नेव क्षणे यस्मात्सुस्सलक्ष्मापतेः सुतः ॥२३८॥
तज्जन्मकालादारभ्य सर्वतो जयमर्जयन् । नामान्वर्थं नृपस्तस्य जयसिंह इति व्यधात् ॥२३९॥

संचार कर दिया और वह फिर भला-चंगा हो गया ॥ २२५ ॥ आसमती अर्थात् दिद्दारानीको शाहीकी पुत्रियोंने एक नवजात शिशु कहींसे लाकर दे दिया, उसके नाम-धाम तथा जाति-गोत्रका कुछ भी पता नहीं था। सो दिद्दारानीने उस शिशुको छिपाकर दक्षिणापथ भेज दिया। वह बालक वहाँ ही रहकर पला और बढा। इस प्रकार जब वह सयान हुआ, तब दैवी प्रेरणासे उसे अपने आप अपनी जातिका स्मरण हो आया ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ जब उसका वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब मालवानरेश नरवर्माने पुत्रकी तरह मानकर उसे शस्त्रास्त्रविद्याका अभ्यास कराया ॥ २२८ ॥ कुछ लोगोंका कहना है कि रानी जयमतीने उसीके समान अवस्था-वाले एक अन्य बालकको मरवाकर उस बालककी रक्षा की थी ॥ २२९ ॥ किसी अन्य देशसे आये हुए दूतने राजाको यह वृत्तान्त बताया था। तभीसे रानी जयमतीके प्रति राजाका आदरभाव कम हो गया था ॥ २३० ॥ उसी समयसे राजाने रानी आसमतीका बाहर निकलना तथा किसी अजनबी मनुष्यसे उसका मिलना-जुलना बन्द कर दिया ॥ २३१ ॥ मूर्ख मनुष्य स्त्रियोंके ईर्ष्याभावको न छिपाकर शत्रुकी शंकाको आच्छादित करके नारियोंको स्वयं परपुरुषके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिए बाध्य कर देते हैं ॥ २३२ ॥ कुछ लोग कहते हैं कि दिद्दारानीने एक भिक्षुकका वध कराके किसीके एक बालकको लेकर उसने उसे भिक्षुकके नामसे विख्यात किया था ॥ २३३ ॥ यह बात सच हो या झूठ, किन्तु उस अज्ञात बालकने ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त की कि दैव भी उसे हीन बनानेमें समर्थ नहीं हुआ ॥ २३४ ॥ संसारमें कर्मकी कुछ ऐसी विचित्र गतियाँ देखी जाती हैं कि उनके आगे स्वप्न, इन्द्रजाल (बाजीगरीका खेल) तथा माया भी तुच्छ प्रतीत होने लगती है ॥ २३५ ॥ जैसे नगर-ग्राम आदिको भस्म करनेके लिए ही तृणके ढेरमें आग लगती है, उसी प्रकार वह राजबीजी बालक धूर्तोंका विनाश करनेके लिए ही गुप्तरूपसे पला और बढा था ॥ २३६ ॥ विषवृक्षके पास ही प्रतिविष, अर्थात् विषकी शक्तिको शमन करनेवाला वृक्ष उग आता है और वर्षाके उपद्रवसे जब नदियों तथा सरोवरोंका जल गन्दा होता है, तब अगस्त्यका उदय हो जाता है। इस प्रकार अपनी सृष्टिमें बाधा डालनेके लिए उदीयमान उपद्रवोंकी शान्तिके हेतु वह दूरदर्शी विधाता पहलेसे ही प्रतीकारकी कल्पना कर लेता है ॥ २३७ ॥ उसी समय विपत्तिरूपी सागरमें डूबते हुए संसारका उद्धार करनेमें समर्थ एक पुत्र सुस्सल राजाके घर जन्मा ॥ २३८ ॥ जब वह बालक उत्पन्न हुआ, तबसे सुस्सलको सर्वत्र विजय प्राप्त हुई। इसी कारण उसने उसका

शास्तुः सर्वार्थसिद्धाख्या यथा सर्वार्थसिद्धिभिः। तथा तस्याभिधान्वर्था नात्यजद्रूढिशब्दताम् ॥२४०॥
मुद्रां स कुङ्कुमस्यांघ्रेस्तदीयस्याभ्युपागताम्। विलोक्योच्चलदेवोऽभूद्विमन्युर्भ्रातरं प्रति ॥२४१॥
बालस्यैवांघ्रिमुद्रास्य वैरं पितृपितृव्ययोः। निवारयन्ती विदधे सुस्थितं मण्डलद्वयम् ॥२४२॥
स स्वर्गिणः पितुर्नाम्ना ततः सुकृतसिद्धये। चकारोच्चलभूपालः पैतृके स्थण्डिले मठम् ॥२४३॥
गोभूमिहेमवस्त्रान्नदाता तस्मिन्महोत्सवे। आश्चर्यकल्पवृक्षत्वं त्यागी सर्वार्थिनामगात् ॥२४४॥
प्रसादैः प्रहितैस्तेन महार्घैः श्लाघ्यसंपदा। महान्तोऽपि दिगन्तेषु पार्थिवा विस्मयं ययुः ॥२४५॥
भर्तृप्रसादाधिगतां श्रियं नेतुं परार्ध्यताम्। विहारं समठं देवी जयमत्यपि निर्ममे ॥२४६॥
केषांचित्पूर्वपुण्यानां विरहेण महीभुजः। हताभीष्टाभिधानोऽभून्मठो नवमठाख्यया ॥२४७॥
सुल्लां स्वसारमुद्दिश्य परस्मिन्स्थण्डिले पितुः। विहारोऽपि कृतस्तेन नोचितां ख्यातिमाययौ ॥२४८॥
मृत्योर्मस्तकपातित्वं तस्याकलयतः किल। न निष्ठां स्वप्रतिष्ठासु संप्रपेदे व्ययस्थितिः ॥२४९॥
कदाचित्क्रमराज्यस्थो द्रष्टुमग्निं स्वयंभुवम्। ययौ वर्हटचक्राख्यं गिरिग्रामं स भूपतिः ॥२५०॥
तं कम्बलेश्वरग्रामाध्वना यान्तमवेष्टयन्। अकस्मादेत्य तत्रत्याश्चौराश्चण्डालशस्त्रिणः ॥२५१॥
प्रजिहीर्षुभिरप्याशु तस्मिन्नत्यल्पसैनिके। न तैः प्रहृतमुत्तेजोऽवष्टम्भस्तम्भितायुधैः ॥२५२॥
अथ हारितमार्गः स गहने गिरिगह्वरे। भ्रमन्नल्पानुयाय्येकां क्षणदामत्यवाहयत् ॥२५३॥
उच्चचार क्षणे तस्मिन्स्कन्दावारेषु दुःसहा। नास्ति राजेति दुर्वार्ता सर्वतः क्षोभकारिणी ॥२५४॥

'जयसिंह' नाम रक्खा ॥ २३९ ॥ जैसे सब मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण सुस्सल 'सर्वार्थसिद्ध' इस नामसे भी पुकारा जाने लगा था, उसी प्रकार जयसिंहसे उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होने लगी ॥ २४० ॥ जिस दिन उसने उस बालकका कुंकुमचर्चित चरण देखा, उसी दिन उसका अपने छोटे भाई उच्चलके प्रति होनेवाला कोप शान्त हो गया ॥ २४१ ॥ इस प्रकार उस बालककी चरणमुद्राने अपने पिता और पितृव्यमें चिरकालसे चला आनेवाला वैर समाप्त कर दिया और कश्मीर तथा लोहरमण्डल दोनों जगह स्थायी शान्ति स्थापित हो गयी ॥ २४२ ॥ तदनन्तर राजा उच्चलने अपने पिताकी आत्माके कल्याणार्थ उसके स्थानपर एक मठ बनवाया ॥ २४३ ॥ उस मठस्थापन-महोत्सवके अवसरपर राजा उच्चल गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रका विपुल दान देकर सब याचकोंके लिए एक आश्चर्यजनक कल्पवृक्ष बन गया ॥ २४४ ॥ उस उत्सवकी समाप्तिपर श्लाघनीय सम्पदाओंसे परिपूर्ण जो प्रसाद भेजा गया था, उसे देखकर दिग्दिगन्तके बड़े-बड़े राजे भी विस्मित हो उठे थे ॥ २४५ ॥ अपने पतिकी कृपासे प्राप्त धनका महत्त्व बढानेके लिए रानी जयमतीने भी मठ तथा विहारका निर्माण कराया ॥ २४६ ॥ किन्तु राजा उच्चलके पूर्वसंचित पुण्यके अभाववश उसके बनवाये मठकी विशेष ख्याति नहीं हो सकी और वह नया मठ ही कहलाता रहा ॥ २४७ ॥ इसी कारण अपने पिताके स्थानको छोड़कर अन्यत्र अपनी बहिन सुल्लाके नामपर उसने एक विहार बनवाया, किन्तु वह भी उचित ख्याति नहीं प्राप्त कर सका ॥ २४८ ॥ राजा उच्चलको यह पता नहीं था कि मृत्यु सिरपर मँडरा रही है, अतएव वह अपनी प्रतिष्ठाके अनुसार व्यवस्था करनेमें कुछ शिथिल पड़ गया ॥ २४९ ॥ उन्हीं दिनों किसी कार्यवश वह क्रम राज्य गया। वहाँसे अपने आप उत्पन्न अग्निको देखनेके लिए वह वर्हटचक्र नामके पर्वतीय ग्रामकी ओर चला ॥ २५० ॥ जब कम्बलेश्वर ग्रामकी राहसे वह चला जा रहा था, तभी अकस्मात् आस-पास रहनेवाले सशस्त्र चोरों और चण्डालोंने उसे घेर लिया ॥ २५१ ॥ उस समय राजाके साथ इने-गिने सैनिक थे। अतएव वह बलप्रयोग करके उन्हें रोकनेमें समर्थ नहीं था। इसी कारण उसके शस्त्रास्त्र स्तम्भित हो गये और वे चोर-चण्डाल सब तरहसे संघर्ष करके लूटनेके लिए तैयार होकर आये थे ॥ २५२ ॥ ऐसी स्थितिमें राजा किसी तरह दो-चार अनुचरोंको साथ लेकर उनके घेरेसे निकल भागा। किन्तु कुछ ही दूर जाकर रास्ता भूल गया और एक रात उसने भटकते हुए बितायी ॥ २५३ ॥ सबेरे सेनाशिविरके लोगोंको यह दुःसह और दूषित समाचार

कटकान्निःसृतात्यल्पा वात्येव गिरिगह्वरात् । सा दुष्प्रवृत्तिर्दीर्घत्वं पुरेऽरण्य इवासदत् ॥२५५॥
नगराधिकृतस्तस्मिन्क्षणे छुड्डाभिधोऽभवत् । शस्त्रिणः कामदेवस्य कुल्यो रड्डादिसोदरः ॥२५६॥
कृत्वा पुरक्षोभशान्तिं शस्त्रौकः स नृपास्पदे । प्रविश्य भ्रातृभिः सार्धं कार्यशेषमचिन्तयत् ॥२५७॥
नृपं कं कुर्म इत्येवं तान्विचिन्तयतोऽब्रवीत् । सड्डाभिधोऽपि कायस्थः कुटुम्बिकुटिलाशयः ॥२५८॥
यूयमेव सुहृद्बन्धुभृत्यबाहुल्यदुर्जयाः । राज्यं कुरुत संप्राप्य राष्ट्रमेकमकण्टकम् ॥२५९॥
तेनैवमुक्तास्ते पापा जातराज्यस्पृहास्ततः । सिंहासनाधिरोहाय क्षिप्रमासन्समुद्यताः ॥२६०॥
श्रीयशस्करदेवस्य वंश्या एत इति श्रुतिः । तदन्वयेऽभूत्सर्वेषां राज्यौत्सुक्यप्रदायिनी ॥२६१॥
अत एवाभजत्क्रोधं तेषां कुसुहृदुक्तिभिः । सा वासनान्तःसंलीना सदाचारानपेक्षिणाम् ॥२६२॥
कथं न प्रतिभात्वेषा सड्डस्यापि कुपद्धतिः । भारिकस्य कुले जातो लवटस्य हि सोऽधमः ॥२६३॥
क्षेमदेवाभिधानस्य पुत्रोऽप्यल्पनियोगिनः । क्रूराशयत्वमभजन्महासाहसिकोचितम् ॥२६४॥
चौर्येण स्वर्णभृङ्गारं हृतवान्भूपतेर्गृहात् । संभावितोपि गाम्भीर्यान्नाज्ञायि स किलेङ्गितैः ॥२६५॥
सासिधेनुर्निरुष्णीषो विहसन्नखिलान्स्मयात् । राजपुत्र इवात्यल्पं स त्रैलोक्यममन्यत ॥२६६॥
तस्य चिन्ता काचिदासीत्सदा दोलायतोऽङ्गुलीः । या राज्यहेतुः क्रूरेण फलेन समभाव्यत ॥२६७॥
तद्गिरा निजसंकल्पादपि ते राज्यलालसाः । नृपं जीवन्तमाकर्ण्य ततोऽभूवन्हतस्पृहाः ॥२६८॥

सुनायी पड़ा कि राजा उच्चल अब संसारमें नहीं रहे। इससे चारों ओर शोक तथा क्षोभका वातावरण व्याप्त हो गया ॥ २५४ ॥ किसी गिरिकन्दरासे उठे हुए एक छोटेसे बवण्डरके समान सेनासे फैले इस दुःखदायी समाचारने समस्त जंगलों तथा नगरोंको अपनी लपेटमें ले लिया ॥ २५५ ॥ उस समय शस्त्रधारी कामदेवका वंशज और रड्ड आदिका सहोदर भाई छुड्ड नगरपाल था ॥ २५६ ॥ इस समाचारसे नगरमें व्याप्त क्षोभको शान्त करके अपने भाइयोंके साथ चलकर वह शीघ्र उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ राजाका शव पड़ा था। वहाँ वह आगे किये जानेवाले कार्यके विषयमे विचार करने लगा ॥ २५७ ॥ विचारका मुख्य विषय यह था कि 'अब राजा किसे बनाया जाय'। उसी समय एक विशाल कुटुम्बी और कुटिल प्रकृतिके सड्ड नामक कायस्थने कहा—॥२५८॥ 'सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि अपने सभी बन्धु-बान्धवों तथा भृत्योंको संगठित करके दुर्जय बनते हुए तुम्हीं लोग इस अकण्टक राज्यको हस्तगत करके राज्य करो'॥ २५९ ॥ उसके यह कहनेपर वे पापी राज्यप्राप्तिके लिए लालायित हो उठे और राज्यसिंहासनपर बैठनेको उद्यत हो गये ॥ २६० ॥ ऐसा सुना जाता है कि ये लोग राजा यशस्करदेवके वंशज थे और यह जनश्रुति ही उस वंशमें उत्पन्न सभी लोगोंको राज्य प्राप्त करनेको उत्सुक बना रही थी ॥ २६१ ॥ आगे चलकर उनके मनमें यह वासना इतने उग्ररूपमें घर कर गयी कि उनमेंसे कुछ असदाचारी लोग बौखलाकर ऐसी अनाप-शनाप बातें करने लगे कि जिससे आपसमें ही क्षोभ फैल गया ॥ २६२ ॥ जब वातावरण बहुत विषाक्त हो गया, तब लवट नामक एक कुलीके पुत्र सड्डने अपनी दूषित योजना लोगोंके समक्ष रक्खी ॥ २६३ ॥ उसी समय मुट्ठी भर लोगोंको साथ लेकर क्षेमदेवका पुत्र भी क्रूरता तथा साहसिकतापूर्ण कदम उठाने लगा ॥ २६४ ॥ उसने चोरी करके राजभवनसे राजाका स्वर्णभृंगार उड़ा लिया। ऊपर-ऊपरसे वह इतना गम्भीर बना हुआ था कि चाल-चलन देखकर उसपर किसीको चोर होनेका सन्देह ही नहीं हो सकता था ॥२६५॥ वह तलवार लटकाये, नंगे सिर एवं अभिमानवश सबकी हँसी उड़ाता तथा त्रैलोक्यको तुच्छ समझता हुआ राजकुमारकी तरह विचरता था ॥ २६६ ॥ वह सदा उँगलियें नचाता हुआ किसी विशेष प्रकारकी चिन्तामें लीन रहा करता था। उसके क्रूर कर्मफलोंको देखकर यही अनुमान किया जा सकता था कि उसकी वह चिन्ता राज्य प्राप्त करनेकी थी ॥२६७॥ उसकी बातों और संकल्पसे यही ज्ञात होता था कि वह राज्यप्राप्तिके लिए अत्यधिक उत्सुक था। किन्तु जब सहसा उसे यह समाचार मिला कि महाराज अभी जीवित हैं तो उत्साह ठंढा पड़ गया ॥ २६८ ॥ अब उनमें न चपलता थी और न कार्यपटुता थी। वे

न स्फुरन्न च संमीलन्न वा सुप्त इवानिशम्। तेषां चेतसि संकल्पस्तदा प्रभृति सोऽभवत् ॥२६९॥
असुस्थिरादरेणाथ शनकैः पृथिवीभुजा। निन्यिरे मध्यमां वृत्तिं राजस्थानान्निवार्य ते ॥२७०॥
प्रकृत्या रूक्षवाग्राजा सर्वेषामेव सर्वदा। तेषामप्यकरोदत्रान्तरे मर्मस्पृशः कथाः ॥२७१॥
ते राज्ये हर्षभूभर्तुः पितरि प्रमयं गते। मातुस्तारुण्यमत्ताया विधवाया गृहेऽवसन् ॥२७२॥
तैर्मय्यामत्तको नाम शस्त्रभृत्प्रातिवेश्मिकः। सुहृद्धतोऽथ विश्वस्तो जननीजारशङ्कया ॥२७३॥
असतीमपि किं नैते न्यगृह्णन्निति भूपतिः। विचार्य कोपात्तन्मातुर्नासाच्छेदमकारयत् ॥२७४॥
तां कथां स नृपस्तेषां परोक्षमुदघोषयत्। क पुत्राश्छिन्ननासाया वदन्नित्यन्वियेष च ॥२७५॥
वृहद्गञ्जाधिगञ्जेशं कृत्वा कार्याण्यवारयत्। स कायस्थकृतान्तत्वं भजन्सङ्गमपि प्रभुः ॥२७६॥
पीडितस्तेन रौद्रेण निजोऽथ गणनापतिः। कोशोत्पत्त्यपहर्तारं तं नृपाय न्यवेदयत् ॥२७७॥
प्रवेशभागिकपदे हृते राज्ञा रुषा ततः। स क्रूरो रड्डच्छुड्डादीन्प्रैरयत्पूर्वचिन्तिते ॥२७८॥
जिघांसवस्ते नृपतिं प्रसङ्गापेक्षिणः परैः। समगंसत दुष्प्रज्ञैरथ हंसरथादिभिः ॥२७९॥
प्रजिहीर्षुभिरुर्वीशं पीतकोशैः समेत्य तैः। चतुष्पञ्चानि वर्षाणि नावाप्यवसरः क्वचित् ॥२८०॥
बहुभिर्बहुधा भिन्नैर्बहुकालं विचिन्तितः। न भेदमगमन्मन्त्रः स चित्रं लोकदुष्कृतैः ॥२८१॥
तवैतां कुरुते शश्वन्नृपो मर्मस्पृशं कथाम्। इति प्रत्येकमुक्त्वा ते विरागं पार्थिवेऽभजन् ॥२८२॥
तैरुरः पार्श्वपृष्ठादि गूढैर्वर्मभिरायसैः। प्रच्छाद्य पार्थिवोऽजस्रमन्वसस्रे जिघांसुभिः ॥२८३॥
असहो विरहं सोढुं यां प्रसादयितुं न काम्। राजाऽपि संदधे चेष्टां प्राक्प्राकृतभुजंगवत् ॥२८४॥

रात-दिन अलसाये-से पड़े रहते थे और उनके विचारोंमें परिवर्तन आ गया था ॥ २६९ ॥ राजाकी ओरसे भी अब धीरे-धीरे उनके प्रति आदर-भावमें कमी आ गयी और वे राज्यके कार्यस्थानोंसे अलग करके मध्यवृत्ति-वाले नागरिक बना दिये गये ॥ २७० ॥ सबके प्रति और सर्वदा राजाओंकी वाणी स्वभावतः रूखी हुआ करती है, अतएव इस बीच राजाने उन्हें बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी और जली-कटी बातें कह डालीं ॥ २७१ ॥ राजा हर्ष-देवके शासनकालमें जब उनका पिता मर गया, तब वे जवानीके मदसे मतवाली अपनी विधवा मातांके पास रहने लगे ॥ २७२ ॥ कुछ दिनों बाद उन्होंने मय्यामत्त नामके एक शस्त्रधारी और विश्वस्त पड़ोसीको अपनी माता-का यार समझकर मार डाला ॥ २७३ ॥ बादमें कुपित राजाने यह सोचकर कि उस दुराचारिणी माताको उसके पुत्रोंने क्यों नहीं दुराचारसे रोका, उनकी माताका नाक कटवा ली ॥ २७४ ॥ यह बात राजा हर्षने उनके परोक्षमें घोषित की और यह कहकर खोज करायी कि उस नकटीके बेटे कहाँ है ॥ २७५ ॥ एक समय राजा हर्षने उन्हें खजानेका सबसे बड़ा हाकिम बना दिया था, किन्तु बादमें उन्हें उस पदसे हटा दिया और वे सब सड्डके यहाँ जाकर कारिन्देका काम करने लगे ॥ २७६ ॥ इस अपमानसे पीडित होकर उन सबने खजानेके मुख्य अधिकारीपर राज्यकोशके अपहरणका दोष लगाया और राजाको भी इस बातसे अवगत करा दिया ॥ २७७ ॥ इससे कुपित होकर राजाने उस अधिकारीको खजानेके कामसे हटाकर राज्यमें प्रविष्ट होनेवालोंकी देख-रेखके पदपर नियुक्त कर दिया। तब उस क्रूरने रड्ड-छुड्ड आदिको पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार उपद्रवके लिए उभाड़ा ॥ २७८ ॥ तदनुसार राजाकी हत्याके लिए अवसर ढूंढते हुए वे दुर्बुद्धि हंसरथ आदि उपद्रवियोंके गरोहमें जा मिले ॥ २७९ ॥ अब उन सबने कोशपानपूर्वक राजाके अपहरणकी प्रतिज्ञा की। किन्तु चार-पाँच वर्षतक उन्हें अपना काम करनेका अवसर ही नहीं मिला ॥ २८० ॥ तब वे बहुत समय तक विभिन्न प्रकारसे विचार करके राजपुरुषोंमें भेद डालनेके उपाय करने लगे, किन्तु उन पापियोंकी यह चाल भी नहीं लही ॥ २८१ ॥ तब वे एक-एक राजपुरुषसे अलग-अलग कहने लगे कि 'राजा तुम्हें बहुत बुरा-भला कहता है'। यह कहकर उन्हें राजासे अलग करनेके लिए उकसाने लगे ॥ २८२ ॥ तबसे वे राजपुरुष राजाको फौलादी कवच पहनाकर इस विचारसे सेवा करने लगे कि कहीं कोई शत्रु राजापर वार न कर दे ॥ २८३ ॥ उधर राजा उच्चल भी

स्वभाववैपरीत्येन नाशचिह्नेन स स्थिराम् । जयमत्या सहाप्रीतिं तदादाद्वत्सरद्वयम् ॥२८५॥
रक्षां भिक्षाचरस्याहुर्निमित्तं तत्र केचन । केचित्तु विद्युत्सदृशीं प्रेम्णां तरलवृत्तिताम् ॥२८६॥
अथ वर्तुलभृभर्तुरात्मजा विज्जलाभिधा । कृतपाणिग्रहस्यागाद्वाल्लभ्यं वसुधाभुजः ॥२८७॥
संग्रामपाले नृपतौ तस्मिन्नवसरे मृते । तत्सूनुः सोमपालाख्यः पित्र्यं राज्यं समादधे ॥२८८॥
राज्यार्हमग्रजं बद्ध्वा सोऽभ्यपिच्यत चाक्रिकैः । इति कोपान्नरेन्द्रोऽभूत्क्रुध्यन्राजपुरीं प्रति ॥२८९॥
लक्ष्मीस्थैर्यप्रतिभुवः पुत्र्याः पाणिमजिग्रहत् । तं ग्रेष्ठं सर्वलोकानां श्रेष्ठं सर्वक्ष्माभुजाम् ॥२९०॥
अर्थिचिन्तामणेस्तस्य प्रीणतो निखिलाः प्रजाः । नानाव्ययोर्जितो रेजे पश्चिमः स महोत्सवः ॥२९१॥
याते जामातरि क्ष्माभृच्चक्रे निखिलतन्त्रिणः । निर्वृत्तीन्किमपि क्रुध्यन्दुद्रुहूंस्तु व्यसर्जयत् ॥२९२॥
भोगसेनोऽपि भूपेन काले तस्मिन्समन्युना । निवारितो द्वारकार्यात्सवैरः समपद्यत ॥२९३॥
विक्रान्तः स हि कार्यस्थो निर्जिताखिलडामरः । सुस्सलक्ष्मापतिं जेतुं प्रतस्थे लोहरं पुरा ॥२९४॥
वात्सल्यमिश्रवैरेण वारितोऽथ महीभुजा । तत्परीवादमकरोच्चक्रोधावेत्य तच्च सः ॥२९५॥
प्रवेशयन्रड्डच्छुड्डमुखान्स समयान्तरम् । तमादिसुहृदं वीरं तदा राज्ञा विमानितम् ॥२९६॥
विमानिता विशालेच्छाः संहता हतवृत्तयः । न ते बहिष्कृतास्तेन यमराष्ट्रं जिगीषता ॥२९७॥
तान्भोगसेनविन्यस्तसद्भावान्कुटिलाशयः । सड्डो निनिन्द वीरत्वात्तं जानन्सरलान्तरम् ॥२९८॥

प्राचीन कामुकोंकी तरह किसी स्त्रीपर आसक्त हो गया। उसका विरह उसे असह्य हो उठा, जिससे उसको प्रसन्न करनेके लिए वह विविध चेष्टायें करने लगा ॥ २८४ ॥ अपने स्वभावके विपरीत और स्थायी विनाशके चिह्नस्वरूप उसने दो वर्ष तकके लिए रानी जयमतीसे विगाड़ कर लिया ॥ २८५ ॥ इस विषयमें कुछ लोगोंका कहना है कि रानी जयमतीके महलमें छिपकर रहते हुए किसी भिक्षुकको राजाने देख लिया था। इसीसे विगाड़ हुआ। इसके विपरीत कुछ लोग विजलीकी चमकके समान प्रेमकी चञ्चलताको इसका कारण बताते हैं ॥ २८६ ॥ तदनन्तर वर्तुलराजकी कन्या विज्जलाके साथ राजा उच्चलने अपना दूसरा विवाह कर लिया और वह उसी नयी स्त्रीसे प्रेम करने लगा ॥ २८७ ॥ उन्हीं दिनों राजपुरीके राजा संग्रामपालकी मृत्यु हो गयी और उसके पुत्र सोमपालने अपने पिताकी गद्दी सम्हाली ॥ २८८ ॥ किन्तु षड्यंत्रकारी दुष्टोंने राज्य पाने योग्य सोमपालके बड़े भाईको कैद कराके छोटे भाईका राज्याभिषेक कराया था। यह समाचार सुनकर राजा उच्चल क्रोधसे तमतमा उठा और उसने राजपुरीकी ओर प्रस्थान कर दिया ॥ २८९ ॥ वहाँ पहुँचकर उच्चलने लक्ष्मी और स्थैर्यकी प्रतिभूस्वरूपा राजा सोमपालकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया ॥ २९० ॥ याचकोंके लिए चिन्तामणिस्वरूप राजा उच्चलने इस विवाहके उपलक्षमें एक बहुत बड़ा उत्सव आयोजित किया ॥ २९१ ॥ इस प्रकार विवाह करके जब जामाता उच्चल अपनी राजधानीको चला गया, तब राजा सोमपालने राज्यकार्यमें लगे हुए कुछ अफसरोंकी तरक्की करके उन्हें आनन्दित किया और जो उसके द्रोही थे, उन्हें उनके पदसे हटा दिया ॥ २९२ ॥ उन्हीं द्रोहियोंमें भोगसेन भी था, जिसे क्रोधपूर्वक राजाने द्वाराधीशके पदसे हटाया था। इस प्रकार निकाले जानेपर भोगसेन राजा सोमपालका वैरी बन गया ॥ २९३ ॥ धीरे-धीरे सैन्यसंग्रह करके भोगसेनने पहले समस्त डामरों-पर विजय प्राप्त की और उसके बाद राजा सुस्सलको पराजित करनेके लिए उसने लोहर राज्यकी ओर प्रस्थान किया ॥ २९४ ॥ किन्तु वात्सल्यमिश्रित वैर होनेके कारण राजा सुस्सलने उसे संघर्ष करनेसे रोका। किन्तु क्रोधके वशीभूत होकर भोगसेनने राजाके परामर्शका अनादर किया ॥ २९५ ॥ उसके कुछ दिनों बाद उसने अपने सदाके शुभचिन्तक राजा सुस्सलको अपमानित करनेके लिए रड्ड-छुड्ड आदि साथियोंको लोहर राज्यमें घुसा दिया ॥ २९६ ॥ उनकी उस विशाल इच्छासे सम्पन्न तथा सुसङ्गठित टोलीको अपने राज्यमें उपस्थित देखकर राजा सुस्सलने सबको बुलवाकर डाँटा-फटकारा, किन्तु उन्हें राज्यसे बाहर नहीं निकाला। क्योंकि उसे यमराष्ट्रपर विजय पानेकी इच्छा थी और उस कार्यमें उसे उनका उपयोग करना था ॥ २९७ ॥ जब कुटिल हृदय सड्डको यह बात मालूम हुई कि रड्ड-छुड्ड आदि लोहरमें जाकर राजा सुस्सल-

ऊचे चाद्यैव हित्वापि प्राणान्व्यापाद्यतां नृपः । भोगसेनोऽन्यथा भेदं कुर्यादगहनाशयः ॥२९९॥
अन्यथाभूय सड्डोक्तं भोगसेनो यदब्रवीत् । किंचिद्रहोऽस्मि वक्तेति नृपतिं भेदलालसः ॥३००॥
स तु किं वक्षि न द्वारं तव दद्यामिति ब्रुवन् । दुध्रुक्षुपक्षप्रणयं निन्ये तमवमानयन् ॥३०१॥
प्रबोधाधायिनो द्वेष्टि नियतिप्रणयीभवन् । तपात्ययाहनिद्रान्त इव जन्तुर्गतस्मृतिः ॥३०२॥
तन्त्रिणो यामिका भूत्वा स्वस्मिन्वारे ततोऽविशन् । ते राजधानीं संनद्धैः स्वसैन्यैः सह संहताः ॥३०३॥
यामिन्यां यं वयं हन्मस्तं हतेत्यभिधाय च । प्रावेशयन्न्यस्तचिह्नांश्चण्डालान्मण्डपान्तरम् ॥३०४॥
भुक्तोत्तरं स्थिते राज्ञि ते बाह्ये मण्डपे स्थिताः । सरोषो नृप इत्युक्त्वा सेवकोत्सारणं व्यधुः ॥३०५॥
राजा च विज्जलावेश्म यियासुर्मण्डपान्तरात् । दीपिकाभिः कृतालोको निर्ययौ मदनालसः ॥३०६॥
मध्यमं मण्डपं तस्मिन्प्राप्ते स्वल्पैः सहानुगैः । तत्त्यक्तं मण्डपं सड्डो रुद्ध्वान्यानरुणज्जनान् ॥३०७॥
अन्यैरप्यग्रिमे द्वारे निरुद्धे सर्व एव ते । जिघांसवः समुत्थाय नृपतिं पर्यवारयन् ॥३०८॥
विज्ञप्तिदम्भादेकेन रुद्धमग्रे निषेदुषा । तं द्विजो दिन्नजस्तेजः शस्त्र्या कृष्टकचोऽभिनत् ॥३०९॥
ततः काञ्चनगौराणि तस्याङ्गान्यसिधेनवः । बह्व्यः सुमेरुशृङ्गाणि महोरग्य इवाविशन् ॥३१०॥
स द्रोहो द्रोह इत्युक्त्वा केशान्कृष्टान्विमोचयन् । क्रीडाशस्त्र्याः कषां रुद्धमुष्टिं दन्तैर्व्यपाटयत् ॥३११॥
सुजनाकरनामा हि भृत्यः कट्टारकं वहन् । तस्यान्तिकात्पलायिष्ट प्रहरत्सु विरोधिषु ॥३१२॥
अतो नालोचितां लघ्वीं छुरिकां स चकर्ष ताम् । मुष्टावर्गलिता कोशात्सा कृच्छ्रेण विनिर्ययौ ॥३१३॥

के प्रभावमें आकर उसके हितचिन्तक बन गये हैं, तब उसने भोगसेनको सरलहृदय समझकर बहुत धिक्कारा ॥ २९८ ॥ साथ ही उसने कहा कि 'जैसे भी हो, आज सुस्सलकी हत्या कर देनी चाहिए। अन्यथा यह क्षुद्रहृदय भोगसेन सारा भेद खोल देगा' ॥ २९९ ॥ तब भोगसेन बोला—'सड्डकी बात टालने योग्य नहीं है। किन्तु राजा सुस्सलपर भेदनीतिका प्रयोग करनेके लिए मैं कुछ रहस्यकी बात बताना चाहता हूँ ॥ ३०० ॥ इसपर सड्डने कहा—'क्या कहते हो ? अब मैं तुम्हें कुछ भी कहने-सुननेका मौका नहीं दूँगा। क्योंकि तुमने अपने वैरियोंके पक्षपर प्रेम प्रदर्शित किया है' ॥ ३०१ ॥ जो व्यक्ति भाग्यके अधीन हो जाता है, वह सही सलाह देनेवाले लोगोंसे द्वेष करने लगता है। जैसे जाडेमें सोये हुए लोगोंको कुछ स्मरण नहीं रहता ॥ ३०२ ॥ अबकी बार बड़े-बड़े षड्यंत्रकारी नेता अपनी देख-रेखमें सेनाको सुसंगठित करके सामूहिक रूपसे लोहरकी राजधानीमें घुसे ॥ ३०३ ॥ 'रात्रिके समय हमलोग जिनको मारनेके लिए कहें, तुमलोग उन्हींको मारना' ऐसा कहकर उन्होंने विशेष चिह्नसे चिह्नित चाण्डालोंको राजमहलमें घुसाया ॥ ३०४ ॥ उस समय भोजन करके राजा मण्डपमें बैठा हुआ था। वे चण्डाल उसके बाहर बैठे थे। अतएव जो भी सेवक भीतर राजाके पास जाना चाहता था, उसे यह कहकर वे लौटा देते थे कि 'इस समय राजा क्रुद्ध हैं' ॥ ३०५ ॥ उसी समय राजा कामातुर होकर दीपकोंके प्रकाशमें विज्जलाके मण्डपकी ओर जानेको निकला ॥ ३०६ ॥ राजा थोड़ेसे अनुचरोंके साथ अपने मण्डपसे निकलकर जैसे ही मध्यम मण्डपमें पहुँचा, वैसे ही सड्डने आगे बढ़कर जहाँसे राजा चला था, उस मण्डपको घेरकर सब लोगोंको रोक लिया ॥ ३०७ ॥ इसी प्रकार अगले मण्डपको अवरुद्ध करके उन घातकोंने राजाको भी अपने घेरेमें ले लिया ॥ ३०८ ॥ उसी समय विज्ञप्तिके दम्भसे इस एक मनुष्य जो आगे बैठा हुआ था, उसीके संकेतपर दिन्नजके पुत्र तेजने राजा उच्चलका केश पकड़कर कटारसे प्रहार कर दिया ॥ ३०९ ॥ उसके बाद राजाके सुवर्णसदृश गौरवर्ण अङ्गोंमें एक साथ कई तलवारें घुस गयीं। इससे ऐसा लगा कि जैसे सुमेरु-पर्वतके शिखरोंमें बड़ी-बड़ी नागिनें घुस रही हों ॥ ३१० ॥ तदनन्तर राजा उच्चलने 'द्रोह-द्रोह' चिल्लाते हुए केश पकड़े मनुष्यकी मुट्ठीमें दाँत काटकर अपने केश छुड़ाये ॥ ३११ ॥ जब शत्रु राजापर प्रहार करने लगे, तब हाथमें कटार लिये हुए सुजनाकर नामका राजभृत्य उसके पाससे भाग खड़ा हुआ ॥ ३१२ ॥ जब वह भागने लगा, तब राजाने उसकी वह नन्हीं-सी कटार छीन ली। किन्तु वह बड़ी कठिनाईसे म्यानके बाहर

निर्यातान्त्रः शत्रुभिस्तैस्त्यक्तकेशो बबन्ध तम् । धम्मिल्लमथ तां शस्त्रीं जानुद्वन्द्वान्तरर्पयन् ॥३१४॥
नदित्वा प्रहरंस्तेजं तादृग्वीर्योऽपि सोऽभवत् । येन क्षितौ निपतितः सर्वमर्मस्विवाहतः ॥३१५॥
अभिनच्च ततो रड्डं प्रहरन्तं च पृष्ठतः । नदन्सिंह इव व्यड्डं परिवृत्य व्यदारयत् ॥३१६॥
अन्यं च शस्त्रिणं कंचित्सवर्माणमपातयत् । विचेष्टमानो यः प्राणैरचिरेण व्ययुज्यत ॥३१७॥
लब्धान्तरे प्रवासाय तस्मिन्धावति मण्डपः । रक्षिभिर्भूमिपालोऽयमित्यबुद्ध्वा कवाटितः ॥३१८॥
द्वारमन्यत्प्रसर्पन्स क्व प्रयासीति जल्पता । छुड्डेन रुद्धमार्गेण खड्गपातैरहन्यत ॥३१९॥
भोगसेनं ततोऽपश्यद्द्वारस्यान्ते समुत्थितम् । दारुतूलिकया भित्तिमालिखन्तं पराङ्मुखम् ॥३२०॥
भोगसेनेक्षसे कस्मादमुं त्वमिति वादिनम् । सोऽव्यक्तं किमपि ह्रीतः प्रधावन्तं जगाद तम् । ३२१॥
रय्यावट्टाभिधो दीपधरस्तिष्ठन्निरायुधः । अयोदीपिकयारब्धयुद्धस्तैर्विक्षतोऽपतत् ॥३२२॥
चाम्पेयः सोमपालाख्यराजपुत्रः क्षताहितः । प्रहारैः प्राप्तवैक्लव्यो न गर्ह्याचारतामगात् ॥३२३॥
पौत्रः श्रीशूरपालस्य राजकापत्यमज्जकः । विदद्रौ श्वेव संछाद्य शस्त्रीं पुच्छच्छटोपमाम् ॥३२४॥
ततः प्रधावन्प्राग्रीवमारुरुक्षुः क्षितीश्वरः । निकृत्तजानुश्चण्डालैरालिलिङ्ग वसुंधराम् ॥३२५॥
तत्पृष्ठे स्वं क्षिपन्देहं प्रहारैर्जर्जरीकृतः । शृङ्गारनामा कायस्थो निर्द्रोही वारितोऽरिभिः ॥३२६॥
पुनरुत्थातुकामस्य सर्वे शस्त्रावलीर्द्विषः । न्यपातयंस्तस्य काल्या नीलाब्जवरणस्रजम् ॥३२७॥
तिष्ठेत्कदाचिद्धूर्तोऽयमविपन्नो विपन्नवत् । कन्धरामधमः सड्डस्तस्येति स्वयमच्छिनत् ॥३२८॥

निकलीं ॥ ३१३ ॥ यद्यपि शत्रुओंके पहले ही प्रहारसे राजा उच्चलकी अँतड़ियाँ बाहर निकल आयी थीं, फिर भी शत्रुसे बाल छुड़ा तथा कटारको दोनों घुटनोंसे थाम्हकर उसने अपने केश बाँधे ॥ ३१४ ॥ उसके बाद बड़े जोरसे गर्जन करके उसने उसी कटारसे तेजपर प्रहार कर दिया, जिससे सभी मर्मस्थानोंके आहत हो जानेके कारण वह धरतीपर लोट गया ॥ ३१५ ॥ तदनन्तर पीठ पीछे प्रहार करनेके लिए उद्यत रड्डको उसने कटारसे ही चीर डाला और सिंह सदृश गर्जन करके व्यड्डका भी सारा शरीर विदीर्ण कर दिया ॥ ३१६ ॥ उसके बाद शस्त्र एवं कवचधारी एक अन्य शत्रुपर टूट पड़ा और ऐसा प्रहार किया कि जिससे आहत होकर वह धरतीपर गिरा और तनिक देर छटपटाकर मर गया ॥ ३१७ ॥ इसी बीच कुछ मौका मिला, जिससे निकल भागनेके लिए वह दौड़ा, किन्तु राजपुरुषोंने उसे नहीं पहचाना कि ये राजा हैं। अतएव उन्होंने झपटकर फाटक बन्द कर दिया ॥ ३१८ ॥ वहाँसे राजा उच्चल दूसरे द्वारकी ओर लपका, तब छुड्डने 'कहाँ जाते हो' यह कहकर तलवार चला दी ॥ ३१९ ॥ तभी उसने द्वारके पास ही खड़े भोगसेनको देखा। उस समय वह मुँह फेरकर खड़ा लकड़ीकी कलमसे दीवारपर कुछ लिख रहा था ॥ ३२० ॥ उसी समय एक मनुष्य दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—'तुम खड़े-खड़े क्या देख रहे हो? इसपर प्रहार क्यों नहीं करते?'। तब कुछ लज्जित होकर उसने उस दौड़ते हुए मनुष्यसे अव्यक्त भाषामें कहा ॥ ३२१ ॥ 'रय्यावट्ट मशालची निःशस्त्र था। सो तलवारोंकी चमकके प्रकाशमें उसने युद्ध आरम्भ कर दिया और तनिक ही देर बाद घायल होकर गिर गया ॥ ३२२ ॥ चम्पका सोमपाल नामक राजपुत्र शत्रुसे खूब लड़ा। यद्यपि उसपर बहुतेरे प्रहार हुए, फिर भी उसने अपनी वीरताको कलंकित नहीं होने दिया ॥ ३२३ ॥ श्रीशूरपालका पौत्र और राजकका पुत्र मज्जक कुत्तेकी पूँछ जैसी कटार छिपाकर भाग खड़ा हुआ' ॥ ३२४ ॥ तबतक बड़ी तेजीसे दौड़ते हुए हुए राजा उच्चलने मण्डपकी चहारदीवारी लाँघकर भागनेकी चेष्टा की, किन्तु उसी समय चण्डालोंने उसकी टाँग ही काट दी, जिससे वह गिरकर धरतीपर लोट गया ॥३२५॥ उसी समय शृंगार नामके कायस्थने अपने आपको गिराकर राजाको बचानेकी चेष्टा की, सो उसपर इतने प्रहार हुए कि वह एकदम जर्जर हो गया। बादमें शत्रुओंने उसे हटाकर अलग किया ॥ ३२६ ॥ तदनन्तर जब राजाने फिर उठनेकी चेष्टा की, तब शत्रुओंने उसके ऊपर कई शस्त्रोंसे एक साथ प्रहार कर दिया, जिससे उसका प्राणान्त हो गया। सो देखकर ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे भगवती कालीने उसके गलेमें नीलकमलोंकी माला डाल दी हो ॥ ३२७ ॥ 'सम्भव है कि यह धूर्त

कृतं पदापहरणं यस्य सोऽहमिति ब्रुवन् । छित्त्वाङ्गुलीश्चकर्षापि रत्नाङ्कामूर्मिकावलीम् ॥३२९॥
एकपादस्थितोपानत्स्रस्तमाल्यैः शिरोरुहैः । छन्नवक्त्रः स ददृशे सुप्तो दीर्घभुजः क्षितौ ॥३३०॥
पर्याप्तयाऽस्य पर्यन्ते वीरवृत्त्या महौजसः । निर्दोषतामीषदगान्निस्त्रिंशत्वं जनान्प्रति ॥३३१॥
सेवकः शूरटो नाम पूत्कुर्वन्द्रोहमुच्चकैः । निर्गत्य भोगसेनेन बहिः क्रोधान्निपातितः ॥३३२॥
प्रस्थितो दयितावासं स दिङ्मोहवशादिव । पन्थानं पृथिवीनाथः काल्या जग्राह वेश्मनि ॥३३३॥

राज्योद्याने नृपतिमधुपा भोगकिञ्जल्कलोलाश्चेतो नानावसनकुसुमश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
हा धिग्दैवानिलतरलया पात्यमाना नियत्या वल्ल्येवैते किमपि सहसा दृष्टनष्टा भवन्ति ॥३३४॥

तिर्यग्भ्यस्त्रिजगज्जयी परिभवं लङ्केश्वरो लब्धवान्प्राप्ताशेषनृपोत्तमः कुरुपतिः पादाहतिं मूर्धनि ।
इत्यन्ते बहुमानहृत्परिभवः सर्वस्य सामान्यवत्तत्को नाम भवेन्महानहमिति ध्यायन्धृताहंक्रियः ॥३३५॥

परासुमहितैस्त्यक्तं तमनाथमिव प्रभुम् । नग्नं हुताशसात्कर्तुं स्वच्छत्रग्राहिणोऽनयन् ॥३३६॥
भुजौ कण्ठे गृहीत्वैकः कराभ्यां चरणौ परः । तं भुग्नग्रीवमालोलकुन्तलं रुधिरोक्षितम् ॥३३७॥
सशूत्कारव्रणं नग्नमनाथमिव पार्थिवम् । राजधान्या विनिष्कृष्टं न्यधत्तां पितृकानने ॥३३८॥
महासरिद्वितस्ताम्भःसंभेदद्वीपभूतले । अह्नाय वह्निसंस्कारं ते भीतास्तस्य चक्रिरे ॥३३९॥
न हतो नापि निर्दग्धः स केनापि व्यलोक्यत । उड्डीयेव गतस्त्वाशु नेत्रनिर्विषयोऽभवत् ॥३४०॥
व्यतीतेन स वर्षैकचत्वारिंशतमायुषा । सप्ताशीत्यब्दपौषस्य शुक्लषष्ठ्यां व्ययुज्यत ॥३४१॥

जीवित होता हुआ भी मुर्दा बनकर लोट गया हो' यह सोचकर स्वयं सड्डने अपनी तलवारसे उसका सिर काट लिया ॥ ३२८ ॥ जिसको राजा उच्चलने अपने पदसे पृथक् कर दिया था, उसने राजाकी उँगलियें काटकर अँगूठियें निकाल लीं ॥ ३२९ ॥ उस समय मृत राजा उच्चलके केवल एक पैरमें जूता था, केशोंके फूल गिर गये थे और मुँह ढँका था। इसलिए विशाल भुजाओंवाला वह वीर धरतीपर सोया हुआ-सा दीख रहा था ॥ ३३० ॥ उस महान् तेजस्वी वीरने अन्तमें असाधारण वीरता प्रदर्शित की थी। अतएव इस प्रकार मरनेसे भी उसके लिए जनसाधारणमें कोई लज्जाकी बात नहीं थी ॥ ३३१ ॥ उसी समय शूरट नामका एक राजसेवक बहुत जोरसे रोता हुआ द्रोहबुद्धिसे शत्रुओंपर झपटा, किन्तु भोगसेनने क्रोधपूर्वक उसे पकड़कर बाहर फेंक दिया ॥ ३३२ ॥ जहाँ वह राजा दिशा-भ्रमवश अपनी प्रियतमाके मण्डपकी ओर जा रहा था, किन्तु काली उसे रोककर अपने घर खींच ले गयी ॥ ३३३ ॥ राज्यरूपी उद्यानमें भोगरसके लोभी राजारूपी भौंरे विविध प्रकारके वसनाभरणस्वरूप फूलोंसे अपना मन बहलाते हैं। किन्तु हा धिक्, दैवरूपी चंचल वायुकी चपटमें पड़ तथा नियतिरूपिणी वल्लरीसे गिरकर वे देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं ॥ ३३४ ॥ तीनों लोक जीत लेनेवाला रावण बन्दरोंसे हार गया था और समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ कुरुपति दुर्योधनको सिरपर चरणप्रहार सहना पड़ा था। इस प्रकार अन्तकालमें बड़े-बड़े अभिमानियोंको भी अपमानपूर्वक पराजय प्राप्त करनी पड़ती है, तब कौन ऐसा पुरुष है जो अहंकारके साथ अपनेको महान् कह सकता हो ॥ ३३५ ॥ इस प्रकार शत्रुओं द्वारा मारकर छोड़े एवं अनाथकी तरह मैदानमें पड़े, नग्न एवं अनाथ राजा उच्चलके शवको दाहसंस्कार करनेके लिए उसके छत्रग्राही लोग उठा ले गये ॥ ३३६ ॥ उनमेंसे एक मनुष्यने राजाका सिर और दोनों भुजायें उठायीं, दूसरेने दोनों पैर उठाये और अन्य कई व्यक्तियोंने उसका धड़ उठाया। उस समय उसकी गर्दन टेढ़ी हो गयी थी और सिरके केश रुधिरसे सन गये थे ॥ ३३७ ॥ उसके घावोंसे सूत्कार करके अब भी रुधिर बह रहा था। ऐसे एकदम नंगे और अनाथ राजाको उठाकर वे लोग राजधानीसे कुछ दूरीपर विद्यमान श्मशानमें ले गये और वहाँ रक्खा ॥ ३३८ ॥ तदनन्तर भयभीत होनेके कारण शीघ्र ही वे लोग उस शवको वितस्ता नदीके तटवर्ती द्वीपमें ले गये और तुरन्त दाह-संस्कार कर दिया ॥ ३३९ ॥ इस प्रकार राजा उच्चलको न किसीने मरते देखा और न जलते ही देख पाया। वह तो एक पंछीकी तरह उड़कर सहसा सब लोगोंकी आँखोंसे ओझल हो गया ॥ ३४० ॥ इस तरह ४१८७ लौकिक वर्षके पौष शुक्लकी षष्ठी तिथिको राजा उच्चलका देहान्त हुआ

चक्रेऽथ सासिकवचो रड्डः शोणितमण्डितः। श्मशानाश्मनि वेताल इव सिंहासने पदम् ॥३४२॥
समूर्त इव विघ्नौघ अकालजलदोदयः। स दोषैर्बद्धमूलानामाद्यानां तन्न दिद्युते ॥३४३॥
तस्यावरोहतः सिंहासनाद्योद्धुं पुरो युधि। विक्रामन्तो बन्धुभृत्या युद्धभूमिमभूषयन् ॥३४४॥
तन्त्रिणौ वट्टपट्टाख्यौ युद्ध्वा तद्भ्रान्ववौ चिरम्। योधाश्च कट्टसूर्याद्याः सिंहद्वारेऽपतन्हताः ॥३४५॥
रणरङ्गनटो नृत्यन्निव राजगृहाङ्गणे। सखड्गखेटको रड्डः खण्डयन्नहितान्बभौ ॥३४६॥
दिशन्विजयसंदेहमहितानां क्षणे क्षणे। प्रहारैः सुबहून्भित्त्वा स चिरेणापतद्रणे ॥३४७॥
राजद्रोहोचितं तस्य निहतस्यापि निग्रहम्। वैशसत्यक्तमर्यादो गर्गः कोपादकारयत् ॥३४८॥
दिद्दामठान्तिके व्यड्डः पौरैर्भस्माश्मवर्षिभिः। अवस्करप्रणालान्तर्मग्नवक्त्रो न्यपात्यत ॥३४९॥
ते गुल्फदामभिः कृष्टाः स्थाने स्थाने प्रभुद्रुहः।
तत्क्षणं लोकथूत्कारपूजां कृत्योचितां दधुः ॥३५०॥
पलाय्य प्रययुः क्वापि सड्डं हंसरथादयः। मरणाभ्यधिकां कंचित्कालं सोढुं विपद्व्यथाम् ॥३५१॥
दृप्यन्पराजितं गर्गं नष्टे तदनुजे विदन्। भोगसेनोऽथ तां वार्तामश्रृणोत्प्रलयोपमाम् ॥३५२॥
व्यावृत्य प्रत्यवस्थातुकामः पश्यन्पलायिनः। योधान्स्वैः सहितः कैश्चित्ततः क्वापि भयादगात् ॥३५३॥
इत्थं निहतविध्वस्तनायका द्रोग्धृसंहतिः। स्वदोर्मात्रसहायेन गर्गचन्द्रेण सा कृता ॥३५४॥
सत्त्वं साहससिद्धिं च नेतिहासेष्वपि क्वचित्। अश्रौषं तादृशं यादृक्तस्यास्ते स्म प्रतापिनः ॥३५५॥
निशां प्रहरमह्नश्च राज्यं कृत्वा स लब्धवान्। द्रोहकृच्छङ्खराजाख्यां गतिं कुकृतिनामगात् ॥३५६॥

॥ ३४१ ॥ तदनन्तर रुधिरसे स्नान करके तलवार तथा कवच धारण किये हुए रड्ड उसी तरह कश्मीरके राजसिंहासनपर बैठा, जैसे कोई प्रेत श्मशानकी चट्टानपर जा बैठा हो ॥ ३४२ ॥ मूर्तिमान् विघ्नसमूह तथा असमयमें उदीयमान मेघकी तरह अशोभन एवं अतीतकालके विविध दोषोंसे बद्धमूल होनेके कारण वह सड्ड राजा बन करके भी शोभित नहीं हुआ ॥ ३४३ ॥ जैसे ही वह सिंहासनपर बैठा, वैसे ही उसके बन्धुजन तथा भृत्यगण पराक्रम प्रदर्शित करते हुए युद्धभूमिमें उससे लड़नेके लिए संनद्ध दिखायी दिये ॥ ३४४ ॥ वट्ट तथा पट्ट नामके दोनों षड्यंत्रकारी उसके दोनों भाइयोंसे देरतक लड़ते रहे। कट्टसूर्य आदि योद्धा उस युद्धमें मरकर सिंहद्वारपर गिर गये ॥ ३४५ ॥ रणरूपिणी रंगभूमिके अभिनेतास्वरूप रड्ड राजमहलके आँगनमें जैसे नाचता हुआ ढाल-तलवार लेकर लोगोंके सिर काट रहा था ॥ ३४६ ॥ क्षण-क्षणपर वह जैसे शत्रुओंके हृदयमें विजयप्राप्तिका संशय उत्पन्न करता हुआ अपने भीषण प्रहारसे बहुतोंके सिर काटनेके बड़ी देर बाद मार खाकर धरतीपर गिरा ॥ ३४७ ॥ उसके उस तरह बलप्रदर्शन करनेपर भी कुपित गर्गने अहिंसाकी मर्यादा त्यागकर उसका वध करते हुए राजद्रोहोचित निग्रह किया ॥ ३४८ ॥ इसी प्रकार व्यड्डको दिद्दामठके पास नागरिकोंने राख और पत्थरोंसे मारकर धराशायी कर दिया। इस मारके कारण उसका माथा फट गया और वह कूड़ेके ढेरमें जा गिरा ॥ ३४९ ॥ स्थान-स्थानपर उन मृत राजद्रोहियोंके पैरमें रस्सी बाँधकर उन्हें सड़कोंपर घसीटा गया और लोगोंने उनके मुँहपर थूक-थूककर उनकी करनीके अनुसार यथोचित पूजा की ॥ ३५० ॥ नये राजा सड्डको मरणसे भी भीषण कष्टका अनुभव करानेके लिए हंसरथ आदि उसके अनुयायी कहीं भाग गये ॥ ३५१ ॥ बादमें भोगसेनने गर्गकी पराजय तथा अपने भाईके मरणका प्रलयोपम समाचार सुना ॥ ३५२ ॥ उसके बाद वह राजधानीमें ही रहनेके विचारसे वहाँ पहुँचा। किन्तु जब उसने देखा कि उसके सब सैनिक भाग गये हैं, तब वह भी मारे डरके अपने कुछ अनुचरोंके साथ भाग गया ॥३५३॥ इस प्रकार राजद्रोहियोंका वह जत्था नायकविहीन हो गया और अपने भुजबलके सहारे केवल गर्गचन्द्र बचा रह गया ॥ ३५४ ॥ इतिहासोंमें भी विद्रोहियोंका ऐसा बल, साहस और सिद्धि कहीं नहीं देखी या सुनी गयी, जैसा कि इन प्रतापियोंमें थी ॥ ३५५ ॥ इस प्रकार केवल एक रात तथा दिनमें एक पहर राज्य करके सड्ड भी

यशस्करकुले जन्म द्रोग्धृभिस्तैः प्रमाणितम् । क्षणभङ्गयभजद्राज्यं यस्माद्वर्णटदेववत् ॥३५७॥

दावोद्दीपनकूटयन्त्रघटनैः सिंहादिसंहारिणो यान्त्याकस्मिकगण्डशैलपतनैरन्तं किराता वने ।
एकेनैव ननु प्रधावति जनः सर्वोऽपि मृत्योः पथा हन्ताहं निहतोयमेष तु मितं कालं विभेदग्रहः ॥३५८॥

स्वोद्वाहे ललनौघमङ्गलरवो यैर्हृष्टैः श्रूयते दीनैस्तैर्दयिताविलाप उदयन्नाकर्ण्यतेऽन्तक्षणे ।
ह्योपि घ्नन्नहितं ग्रहष्यति परः स्वं घ्नन्तमन्ते मुदोद्वृत्तं सोऽप्यवलोकयत्यहह धिङ्मोहोयमान्ध्यावहः ॥३५९॥

सायं विचिन्तितो रात्रौ फलितोऽन्यत्र वासरे । दुर्विपाकप्रदाताऽभूद्द्रोग्धृणां साहसद्रुमः ॥३६०॥
अथ सिंहासनस्यान्तः कार्यान्ते त्यक्तविग्रहः । गर्गः प्रक्षालितामर्षश्चक्रन्द स्वामिनं चिरम् ॥३६१॥
तस्मिन्रुदति सर्वोऽपि पौरलोको भयोज्झितः । संप्राप्तावसरो भूपं व्यलापील्लोकवत्सलम् ॥३६२॥
कारुण्योत्पत्तये दत्त्वा कोशं जीवितकामया । जयमत्या तदावादि गर्गः कपटशीलया ॥३६३॥
कुरु मे संविदं भ्रातरिति सत्त्वमयस्तु सः । तत्प्रक्रियावचो ज्ञात्वा चितिं तस्या अकल्पयत् ॥३६४॥

चिकुरनिचये यत्कौटिल्यं विलोचनयोश्च या तरलतरता यत्काठिन्यं तथा कुचकुम्भयोः ।
वसति हृदि तद्यासां पिण्डीभवन्ननु ता इमा गहनहृदया विज्ञायन्ते न कैश्चन योषितः ॥३६५॥

दौःशील्यमप्याचरन्त्यो घातयन्त्योऽपि वल्लभान् । हेलया प्रविशन्त्यग्निं न स्त्रीषु प्रत्ययः क्वचित् ॥३६६॥
युग्याधिरूढा सा यान्ती यावन्मार्गे व्यलम्बत । अग्रतो बिज्जला तावन्निर्गत्य प्राविशच्चिताम् ॥३६७॥
अथ तस्याश्चितारोहं कुर्वन्त्या भूषणार्थिभिः । लुण्ठकैर्लुण्ठ्यमानाया व्यथा गात्रेषु पप्रथे ॥३६८॥

राजद्रोहका फल पाकर विद्रोही राजा शंख जैसे कुकर्मियोंकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ ३५६ ॥ उन विद्रोही लोगोंने ऐसा करके यह प्रमाणित कर दिया कि उनका जन्म यशस्करके वंशमें हुआ था और उन्होंने वर्णटदेवके समान क्षणभंगुर राज्य प्राप्त किया था ॥ ३५७ ॥ दवानलके भडकने तथा छिपे हुए जालोंमें फँसाकर सिंह आदि बड़े-बड़े जानवरोंको मारनेवाले किरात वनमें अकस्मात् पर्वतकी किसी चट्टानसे गिरकर मर जाते हैं। संसारके सब प्राणी एकमात्र मृत्युके पथपर तेजीसे दौड़ रहे हैं। फिर भी बड़े दुःखसे कहना पड़ता है कि लोग यह कहते हैं कि मैंने अमुक व्यक्तिको मार डाला या अमुक व्यक्ति अमुक व्यक्तिके हाथों मारा गया ॥ ३५८ ॥ अपने विवाहके अवसरपर लोग नारियोंके मुखसे मंगलगीत सुनते हैं और वे ही मरणकालमें उन्हीं स्त्रियोंके मुखसे विलापकी भी ध्वनि सुनते हैं। अभी कल जो मनुष्य अपने शत्रुको मारकर खुशी मना रहा था, वही आज उस शत्रुके साथियों द्वारा स्वयं मारा जा रहा है। अहर्निशि होते हुए इस खेलको देख करके भी लोग अन्धा बना देनेवाले मोहके चक्रमें पड जाते हैं, यही सबसे बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ३५९ ॥ उन विद्रोहियोंने सायंकालके समय जो बात सोची थी, वह रातको कार्यरूपमें परिणत हो गयी और रातको जो किया था, उसका फल उन्हें सवेरे मिल गया। इस प्रकार उनके साहसरूपी वृक्षने उनके दुष्कर्मोंका फल तत्काल दे दिया ॥ ३६० ॥ इस प्रकार राज-सिंहासन सूना हो जाने और सब झगड़ा निबट जानेपर जब सब अमर्ष मिट गया, तब गर्गचन्द्र अपने स्वामी राजा उच्चलके लिए बड़ी देरतक रोता रहा ॥ ३६१ ॥ उसका रुदन सुनकर निर्भय नागरिक लोग भी अपने प्रजावत्सल राजाकी याद करके, रोने लगे ॥ ३६२ ॥ उसके हृदयमें दयाभाव जागृत करनेके लिए जीवित रहनेकी इच्छुक तथा कपटिन रानी जयमतीने राज्यका कोश गर्गके हाथमें सौंपकर कहा—॥ ३६३ ॥ 'भैया ! तुम मेरे सती होनेके लिए चिता तैयार करा दो।' सत्त्वगुणी गर्गने उसकी बातको यथार्थ मानकर चिता तैयार करा दी ॥ ३६४ ॥ स्त्रियोंके केशोंमें जो कुटिलता, रहती है, नेत्रोंमें जो चञ्चलता रहती है और कुचोंमें जो कठोरता रहती हैं, वे तीनों अवगुण अर्थात् कुटिलता, चञ्चलता तथा कठोरता उनके हृदयमें जाकर पिण्डाकार बन जाते हैं। इसी कारण उनका हृदय बड़ा ही गहन होता है और उन्हें कोई भली-भाँति नहीं जान पाता ॥ ३६५ ॥ वे दुराचार तथा अपने प्रेमियोंकी हत्या करती हुई भी खेल-खेलमें चितामें कूद सकती हैं। इसीसे इनपर कदापि विश्वास नहीं किया जा सकता ॥ ३६६ ॥ जयमती रथपर बैठकर चली, किन्तु राहमें न जाने क्यों उसने कुछ विलम्ब कर दिया। तबतक बिज्जला महलसे निकलकर गयी और चितापर चढ़कर सती होगयी ॥३६७॥ जब

सच्छत्रचामरे राज्ञ्यौ दह्यमाने विलोकयन् । लोकः सर्वोऽपि साक्रन्दो दग्धदृष्टिरिवाभवत् ॥३६९॥
औचित्यं तेन च तदा निन्येऽत्यन्तपवित्रताम् । सर्वैर्यदर्थ्यमानोऽपि नोपाविक्षन्नृपासने ॥३७०॥
सुतमुच्चलदेवस्य बालमङ्के निधित्सता । राज्येऽभिषेक्तुं ते केचित्तेनान्वैष्यन्त यत्नतः ॥३७१॥
लोको येष्वद्य केषांचित्तत्त्वमालोक्य सस्मितः । भिक्षामप्यटितुं जाने नैव जानाति योग्यताम् ॥३७२॥
राज्यां श्वेताभिधानायां मल्लराजस्य ये सुताः । सल्हणाद्यास्त्रयोऽभूवन्मध्यमे प्राक्क्षयं गते ॥३७३॥
हन्तुं ज्येष्ठकनिष्ठौ द्वौ शेषौ सल्हणलोठनौ । अन्विष्टौ शङ्खराजेन भयान्नवमठं गतौ ॥३७४॥
निर्लज्जैर्निहतान्द्रोग्धॄन्विहाय मिलितैः पुनः । तन्त्र्यश्वारोहसचिवैरानीतः कृतचाक्रिकैः ॥३७५॥
दृष्ट्वा राज्यार्हमप्राप्य कंचिज्ज्यायांस्तयोस्तदा । गर्गेण राज्ये संरम्भादभ्यषिच्यत सल्हणः ॥३७६॥
हा धिक्चतुर्णां यामानामन्तरे नृपतित्रयी । अहस्त्रियामे तत्रासीद्दृश्या या पुरुषायुषैः ॥३७७॥
ये सायमुच्चलनृपं प्रह्वे रङ्गं सिषेविरे । मध्याह्ने सल्हणं प्रापुर्दृष्टास्ते राजसेवकाः ॥३७८॥
अथ लोहरकोट्टस्थः सार्धेऽह्नि गलिते नृपः । सुस्सलो भ्रातृमरणं श्रुत्वा तूद्भ्रान्तमानसः ॥३७९॥
गर्गेण प्रहितो दूतः स क्रन्दन्स्वं क्षिपन्क्षितौ । ततस्तं वीतसंदेहं चकारार्तप्रलापिनम् ॥३८०॥
आद्यात्सल्हणवृत्तान्तपर्यन्तां नाशृणोत्कथाम् । गर्गदूताद्भ्रातृवधं स्वस्याह्वानं च केवलम् ॥३८१॥
अश्रद्दधानस्तं शीघ्रमरिच्छेदं सुदुष्करम् । तदाह्वानाय गर्गो यं प्राहिणोत्तं चलन्गृहात् ॥३८२॥

जयमती चिताकी ओर चली तो उसके आभूषणोंको लूटनेवाले लुटेरोंने उसे बहुत तंग किया, जिससे उसके सब अङ्गोंमें बहुत पीड़ा हुई ॥ ३६८ ॥ इस प्रकार छत्र-चमर धारण करके दो-दो रानियोंके चितारोहणका कारुणिक दृश्य देखकर सभी नागरिक विधियाकर रोने लगे और उनकी आँखें आगके अँगारो जैसी लाल हो गयीं ॥ ३६९ ॥ वहाँ एकत्र जनसमुदायने औचित्यको ध्यानमें रखते हुए अत्यन्त पुनीत भावसे रानी जयमतीको समझाकर राज्यसिंहासन स्वीकार करनेका अनुरोध किया, किन्तु वह नहीं राजी हुई ॥ ३७० ॥ राजा उच्चलदेवका एक नन्हा-सा बालक उसकी गोदमें था, अब लोग कहने लगे कि इसीको अभिषिक्त कर दिया जाय ॥ ३७१ ॥ लेकिन उस समुदायमें कुछ लोग ऐसे थे कि जिन्हें ठीकसे भीख माँगना भी नहीं आता था, वे उस दुधमुँहे बच्चेके राज्याभिषेकसम्बन्धी प्रस्तावपर हँसने लगे ॥ ३७२ ॥ इस प्रकार वह प्रस्ताव हँसीमें ही उड़ गया। श्वेता नामकी रानीसे मल्लराज द्वारा सल्हण आदि जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनमेंसे बिचला पुत्र पहले ही मर गया था ॥ ३७३ ॥ बाकी दोनों अर्थात् सल्हण और लोठनका वध करनेके लिए शंखराज उन्हें खोज रहा था। उसीके डरसे भागकर वे दोनों बालक एक नये मठमें रह रहे थे ॥३७४॥ उधर वे निर्लज्ज षड्यंत्रकारी मरे हुए राजद्रोहियोंको त्यागकर पुनः संगठित हो गये और षड्यंत्र रचते हुए उन्हींमेंसे कुछ तंत्री, अश्वारोही और सचिव बनकर गये और उन दोनों बालकोंमेंसे एकको ले आये ॥३७५॥ अन्य किसी श्रेष्ठ बालकको न पाकर गर्गने तत्काल मल्लराजके उसी ज्येष्ठपुत्र सल्हणका राज्याभिषेक कर दिया ॥३७६॥ हाधिक् ! चार प्रहरके बीचमें कश्मीरके तीन-तीन राजे हो गये। उस समय वहाँ वह तीसरे पहरका दृश्य दर्शनीय था ॥ ३७७ ॥ जिन सेवकोंने सायंकालके समय राजा उच्चलकी सेवा की थी, उन्होंने ही दिनके निकलते ही सड़ककी सेवकाई आरम्भ कर दी और दोपहरके समय वे ही सेवक सल्हणकी सेवा करते देखे गये ॥ ३७८॥ उधर लोहरके किलेमें डेढ दिन बाद जब राजा सुस्सलको अपने बड़े भाई उच्चलके निधनका समाचार मिला तो वह जैसे शोकसे पागल हो उठा ॥३७९॥ गर्गके भेजे हुए दूतने रो रोकर सब हाल बताया और शोकाधिक्यके कारण धरतीपर गिर पड़ा। तनिक देर बाद सम्हलकर दूत फिर उठा और उसने बुरी तरह रोते हुए सुस्सलको विवरण सहित सारा वृत्तान्त बताकर आश्वस्त किया ॥ ३८० ॥ किन्तु शोकवेगके कारण राजा सुस्सलने आदिसे लेकर सल्हणके राज्याभिषेक पर्यन्तकी सारी कथा नहीं सुन पायी। अतएव दूतके सन्देशका इतना ही सारांश उसने समझा कि 'भाई उच्चल मारे गये और आप तुरन्त यहाँ आ जाइए' ॥ ३८१ ॥ इतनी जल्दी शत्रुका विनाश कठिन समझकर रात बीतनेपर अरुणोदयके समय रोता हुआ

आक्रन्दमुखरो भूत्वा तां रात्रिमरुणोदये । कश्मीराभिमुखो यात्रामसंभृतबलोऽप्यदात् ॥३८३॥
अन्योऽथ गर्गदूतस्तं पथि संघटितोऽभ्यधात् । कृत्स्नमावेद्य वृत्तान्तं नागन्तव्यमिति ध्रुवम् ॥३८४॥
क्षिप्रं हतेषु द्रोहेषु त्वय्यसंनिहितेऽनुजः । कृतस्तु सल्हणो राजा कृत्यमागमनेन किम् ॥३८५॥
श्रुत्वेति गर्गसंदेशं कोपादसहनो नृपः । अप्रयाणैषिणो भृत्यान्विहस्यैवं वचोऽब्रवीत् ॥३८६॥

मास्माकं पैतृकं राज्यं यदि रिक्थहरोऽनुजः ।
मज्ज्यायसा मया चैतद्भुजाभ्यामर्जितं पुनः ॥३८७॥

राज्यं स्वीकुर्वतोरन्यो न दाताऽभूत्तदावयोः । येनाहृतमिदं पूर्वं स क्रमः क्व गतोऽधुना ॥३८८॥
इत्युक्त्वाविरतैरेव वहन्नासीत्प्रयाणकैः । दूतांश्च पार्श्वं गर्गस्य स्वीकृत्यै प्राहिणोद्बहून् ॥३८९॥
स काष्ठवाटं संप्राप सल्हणस्य हितैषिणा । निर्गत्य गर्गचन्द्रेण चक्रे हुष्कपुरे पदम् ॥३९०॥
प्रवृत्तायां विभावर्यां दूतैः कृतगतागतैः । तस्याङ्गीकृतसामापि गर्गो द्रोग्धाभ्यधीयत ॥३९१॥
कार्यमध्यगतो राजा तथापि प्राहिणोत्तदा । धात्रेयं भ्रातरं गर्गोऽभ्यर्णं हितहिताभिधम् ॥३९२॥
भोगसेनः क्षणे तस्मिन्नाययौ दैवमोहितः । खाशकान्बिल्ववनजान्मध्येकृत्य नृपान्तिकम् ॥३९३॥
सोऽभ्यर्णं कर्णभूत्याख्यमश्वारोहं महीपतेः । विसृज्य गर्गं जेष्यामीत्युक्त्वाऽभूल्लोभनोद्यतः ॥३९४॥
कालापेक्षामपि त्यक्त्वा हन्तुं भ्रातृद्रुहं स तम् । योग्यं प्रसङ्गमन्विष्यञ्जज्ञे लोकैरसज्जनः ॥३९५॥
यस्य भ्रातृद्रुहः पार्श्वे स त्वमाश्रीयसे कथम् । गर्गोऽपि तमुपालेभे दूतैरित्यादि संदिशन् ॥३९६॥
स तु मार्गात्पलाय्यायं तमसीति विलम्बकृत् । दत्तास्कन्दः क्षपापाये तं सानुगमघातयत् ॥३९७॥

सुस्सल गर्गके भेजे हुए दूतके साथ घरसे चल पड़ा। उस समय उसके पास कोई सेना नहीं थी ॥ ३८२ ॥ ॥ ३८३ ॥ तब तक रास्तेमें ही गर्गका भेजा हुआ दूसरा दूत आकर उससे मिला और उसने कहा कि 'समस्त वृत्तान्तको भलीभाँति सुने और समझे बिना महाराज सुस्सल यहाँ आनेका कष्ट न करें ॥ ३८४ ॥ जब शीघ्र ही समस्त विद्रोहियोंको मारकर उनका सफाया कर दिया गया, तब यहाँ आपके यहाँ आनेका कोई प्रयोजन नहीं दिखायी देता' ॥ ३८५ ॥ गर्गका सन्देश सुनकर सुस्सल क्रोधसे तलमला उठा और उसने यात्रा भंग करनेको उत्सुक सेवकोंसे हँसकर कहा—॥ ३८६ ॥ 'मेरे पैतृक राज्यको कोई भी मेरा छोटा भाई नहीं ग्रहण कर सकता। क्योंकि मेरे बड़े भाई उच्चल और मैंने अपने बाहुबलसे उस राज्यका अर्जन किया है ॥ ३८७ ॥ वह राज्य सल्हणको देते समय हम दोनोंमेसे कोई भी वहाँ उपस्थित नहीं था। तब परम्पराके अनुसार उसका राज्याभिषेक वैध कैसे होगा' ॥ ३८८ ॥ ऐसा कहकर सुस्सल बिना रुके आगे बढ़ता ही रहा और अपने आगमनकी स्वीकृतिके लिए बहुतेरे दूतोंको गर्गके पास भेज दिया ॥ ३८९ ॥ जब तक चलकर सुस्सल काष्ठवाट पहुँचा, तबतक सल्हणका हितैषी गर्ग राजधानीसे चलकर हुष्कपुर पहुँच गया और वहाँ ही डेरा डाल दिया ॥ ३९० ॥ रात्रिके समय जब दोनो पक्षके दूतोंका आवागमन होने लगा, तब सामनीति अंगीकार किये हुए गर्गचन्द्रको राजा सुस्सलने राजद्रोही घोषित कर दिया ॥ ३९१ ॥ आगेका कार्यक्रम बनाकर राजा सुस्सलने अपने एक धात्रेय भ्राताको हितकी बात समझानेके लिए गर्गचन्द्रके पास भेजा ॥ ३९२ ॥ तबतक भाग्यके फेरसे भोगसेन अपने खाशक, बिल्व और वनज साथियोंको लेकर राजा सुस्सलके समीप जा पहुँचा ॥ ३९३ ॥ उसने कर्णभूति नामक घोड़सवारको राजाके पास भेजकर प्रलोभन देते हुए यह सन्देश कहलाया कि 'आप निश्चिन्त रहें, मैं अकेला ही गर्गको परास्त कर दूँगा' ॥ ३९४ ॥ यह सन्देश पाकर राजा सुस्सलका खून खौल उठा। वह तत्काल उस भ्रातृद्रोहीको मार डालना चाहता था, लेकिन कुछ सोचकर उचित समयकी प्रतीक्षा करता हुआ रुक गया ॥ ३९५ ॥ उसी समय गर्गके दूतने भी आकर राजा सुस्सलको उलाहना देते हुए कहा—'अपने भ्राता महाराज उच्चलकी हत्या करनेवाले राजद्रोहियोंसे आप क्यों सहायता लेना चाहते हैं ?' ॥ ३९६ ॥ उसी रातको भागकर राजा सुस्सल भोगसेनके पास जा पहुँचा और साथियों समेत,

पतत्त्रणं कर्णभूतिर्वीरवृत्त्या व्यरोचत । तस्य द्वैमातुरो भ्राता तेजःसेनोऽप्यनूनया ॥३९८॥
तेजःसेनस्तु शूलाग्रे नृपादेशान्न्यवेश्यत । मरिचो लवराजस्य तनूजोऽश्वपतेरपि ॥३९९॥
अवष्टम्भेन भूपोऽभूनिग्रहावग्रहक्षमः । न येनासितुमप्यास्था तावदासीत्तु तद्बलम् ॥४००॥
पुरोगोऽपि कृतः पश्चाद्योऽतीतेऽह्नि महीभुजा । स सज्जपालस्तत्पार्श्वमथादायाययौ हयान् ॥४०१॥
तेष्वायातेष्ववष्टम्भं यातं किंचिच्च तद्बलम् । प्राप्तश्च गर्गसेनानीः सूर्याख्योऽनल्पसैनिकः ॥४०२॥
दृष्ट्वानुवर्तिभिस्य तानाशैर्नृपोऽश्वमधिरोपितः । उत्सेकशठधीर्वर्म कृच्छ्राच्च परिधापितः ॥४०३॥
गगनं शलभच्छन्नमिव कुर्वन्नथापतत् । शरासारो रिपुबलात्सर्वतोऽच्छिन्नसंततिः ॥४०४॥
ओंकारं शरशूत्कारैः कृत्वा द्रोहस्य दुःसहाः । प्राहरन्राजकटके सर्वान्सर्वायुधैर्द्विपः ॥४०५॥
हतविक्षतविध्वस्तसैन्यः साहसिको नृपः । वेगादपससारैको मध्यान्निर्गत्य वैरिणाम् ॥४०६॥
गर्जत्सिन्धुरथाश्रान्तनतुन्नतिरलङ्घयत । सवाजिना तेन सेतुर्दुर्लङ्घ्यः पत्त्रिणामपि ॥४०७॥
सज्जपालादयो द्वित्राः शेकुस्तमनुवर्तितुम् । पृष्ठलग्ना निरुन्धन्तः स्थाने स्थाने विरोधिनः ॥४०८॥
वीरानकाभिधं वीरः स खशानां निवेशनम् । त्रिंशद्विंशैः समं भृत्यैः प्रविष्टस्तत्यजेऽरिभिः ॥४०९॥
निरम्बरैर्निराहारैस्तिष्ठन्कतिपयैः समम् । स तत्र चित्रमाक्रम्य निर्भयो दण्डयन्खशान् ॥४१०॥
क्रमेण च हिमापातदुर्लङ्घ्याध्वनि संकटे । अविपन्नो भाग्ययोगात्प्रययौ लोहरं पुनः ॥४११॥
पदे पदे प्राप्तमृत्युरायुःशेषेण रक्षितः । तथाप्यासीत्स कश्मीरप्राप्तिमेव विचिन्तयन् ॥४१२॥

उसका वध कर दिया ॥ ३९७ ॥ उस समय रणभूमिमें मरकर पड़ा हुआ कर्णभूति बड़ा सुन्दर लग रहा था । उसका सौतेला भाई तेजसेन भी मर जानेपर उससे कम अच्छा नहीं लगता था ॥ ३९८ ॥ तेजसेन, मरिच और अश्वपतिका पुत्र लवराज ये तीनों राजा सुस्सलकी आज्ञासे सूलीपर चढा दिये गये ॥ ३९९ ॥ इस प्रकार उन भ्रातृद्रोहियोंका सफाया कर देनेसे सुस्सलका उत्साह बहुत बढ़ गया। तबतक उसकी सेना भी उसके पास आ पहुँची ॥ ४०० ॥ राजा सुस्सलने पिछले दिन जिसे अपना अग्रगामी बनाया था, वह सज्जपाल भी घुड़सवारोंकी एक बहुत बड़ी सेना लेकर उसके पास आ गया ॥ ४०१ ॥ उस विशाल वाहिनीके साथ सुस्सल आगे बढ़ा, तबतक गर्गका सेनानायक सूर्य भी बहुत बड़ी सेना लेकर उसके समक्ष आ धमका ॥ ४०२ ॥ सेनापति सूर्यको देखकर राजा सुस्सलको उसके अनुचरोंने शीघ्र बड़ी कठिनाईसे कवच पहनाकर घोड़ेपर सवार करा दिया ॥ ४०३ ॥ उसी समय बाणोंकी वर्षासे आकाशमण्डल जैसे टिड्डीदलसे भर गया और अविरलरूपसे युद्ध होने लगा ॥ ४०४ ॥ दुःसह शत्रुगण बाणोंका तथा सूत्कार करते हुए सब प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करके एक दूसरेका वध करने लगे ॥ ४०५ ॥ कुछ ही समयके उस विकराल युद्धमें राजा सुस्सलके सब सैनिक या तो मार डाले गये या घायल होकर जमीनपर लोट गये । ऐसी परिस्थितिमें शत्रुओंके बीचसे निकलकर सुस्सल अकेला ही बड़े वेगसे भागा ॥ ४०६ ॥ उस समय वह जलकी थपेड़से गर्जन करती हुई नदियों तथा ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तोंको पार करता हुआ वह सेतु लाँघ गया, जो पक्षियोंके लिए भी अलंघ्य था ॥ ४०७ ॥ स्थान-स्थानपर शत्रुओंसे मुठभेड़ करते हुए सज्जपाल आदि केवल दो-तीन अनुचर उस संकटकालमें राजा सुस्सलका साथ दे सके ॥ ४०८ ॥ इस प्रकार भागते-भागते वह वीर खशोंकी निवासभूमि वीरानकमें जा पहुँचा। वहाँ जब वह अपने बीस-तीस सेवकोंके साथ नगरमें प्रविष्ट हो गया, तब गर्गके सैनिकोंने उसका पीछा छोड़ दिया ॥ ४०९ ॥ बिना भोजन और बिना वस्त्रके अपने कतिपय सेवकोंके साथ एक विचित्र ढंगका आक्रमण करके निर्भयभावसे खशोंको दण्डित करता और हिमपातसे दुर्लघ्य पहाड़ी घाटियोंका संकटाकीर्ण मार्ग तै करता हुआ भाग्ययोगसे जीवित अवस्थामें ही राजा सुस्सल किसी तरह अपनी राजधानी लोहरमें पहुँच गया ॥ ४१० ॥ ४११ ॥ उस रास्तेमें पद-पदपर मृत्यु उपस्थित थी, किन्तु अवशिष्ट आयुने उसे बचा लिया। फिर भी उसके मस्तिष्कमें कश्मीरप्राप्तिका विचार अब भी चक्कर काट रहा था ॥४१२॥

वराकं द्वारसेत्वग्राद्गर्गो हितहितं क्रुधा । विरुद्धधीर्वितस्तायां बद्धपाण्यंघ्रिमक्षिपत् ॥४१३॥
तस्मिन्प्रक्षिप्यमाणेऽप्सु क्षेमाख्यः स्वं क्षिपन्पुरः । दासोऽस्योच्चैःपदारोहमधःपातेऽपि लब्धवान् ॥४१४॥
राज्यप्रदः क्षतारिश्च गर्गः प्राप्तोऽन्तिकं ततः । प्राप सल्हणराजस्य सविशेषमधीशताम् ॥४१५॥
स भूभृन्मन्त्रिविक्रान्तिहीनो राज्यमवाप्तवान् । चक्रभ्रममिवापश्यत्सर्वतो भ्रान्तमानसः ॥४१६॥

न मन्त्रो न च विक्रान्तिर्न कौटिल्यं न चार्जवम् ।
न दातृता न लुब्धत्वं तस्योद्रिक्तं किमप्यभूत् ॥४१७॥

तद्राज्ये राजधान्यन्तर्मध्याह्नेऽपि मलिम्लुचः । लोकं मुमुषुरन्याध्वसंचारस्य कथैव का ॥४१८॥
पङ्गुरप्यङ्गना कालं क्रान्त्या यत्रात्यवाहयत् । पुमानप्यभवत्तत्र साध्वसाध्वस्तधीरसौ ॥४१९॥
यामद्य सल्हणोऽन्येद्युर्भेजे तां लोठनः स्त्रियम् । साधारण्यं गतो राज्यभोग इत्यभवत्तयोः ॥४२०॥
पुरुषान्तरविज्ञानविहीनस्य प्रमाद्यतः । सर्वोऽपि तस्य तन्त्रज्ञैर्व्यवहारो व्यहस्यत ॥४२१॥
श्वशुरो लोठनस्योजःसूहस्तेन व्यधीयत । द्वारे तापसगोष्ठीषु योग्यो विक्रमनिष्ठुरे ॥४२२॥
यः सुस्सलभयोच्छेदमङ्गीकुर्वंस्तदागमे । स्वमन्त्रलक्षजापेन सिद्धिं मन्त्रक्षणेऽभ्यधात् ॥४२३॥
जिह्मो गर्गाज्ञया राजा तदप्रियमपातयत् । बद्धाश्मानं वितस्तायां बिम्बं नीलाश्वडामरम् ॥४२४॥
राजानुग्राहको गर्गस्तांस्तान्व्यापादयन्रिपून् । हालाहाण्डामरान्भूरीन्दत्तभोज्यानघातयत् ॥४२५॥
राज्यकिंचित्करे गर्गायत्तजीवितमृत्यवः । बाह्याश्चाभ्यन्तरे चासन्नल्पे वा पृथवोऽपि वा ॥४२६॥

इधर गर्गने क्रुद्ध होकर हितहितको अपना वैरी समझ लिया और उसके हाथ-पैर बँधवाकर पुलके ऊपरसे वितस्ता नदीमे फेंकवा दिया ॥ ४१३ ॥ जब उसे फेंकनेकी तैयारी की जा रही थी, तभी हितहितका सेवक क्षेम स्वयं नदीमे गिर गया। इस प्रकार वह नदीमें नीचे गिर करके भी स्वामिभक्तिका कर्तव्य पालन करनेके कारण बहुत ऊँचे उठ गया ॥ ४१४ ॥ इस तरह राज्य प्रदान करनेके बाद शत्रुओंका संहार करके गर्ग राजा सल्हणके पास पहुँचा और अपने इन उदात्त कार्योंसे वह उसका अधिपति बन गया ॥ ४१५ ॥ क्योंकि सल्हणने मंत्रियों तथा सेनाके बिना ही राज्य प्राप्त कर लिया था। अतएव उस समय कुम्हारके चक्केके घुमावकी तरह घटित होनेवाली घटनाओंको वह बहुत विस्मित होकर देख रहा था ॥ ४१६ ॥ उसके पास न मंत्रणा थी, न सेना थी, न कुटिलता थी, न दातृता थी और न लिप्सा थी। हाँ, उसके पास इनके अतिरिक्त एक वस्तु थी—जिसका कोई नाम नहीं है ॥ ४१७ ॥ उसके राज्यकी राजधानीमे दिन दोपहरके समय चोर जिसे चाहते उसे लूट लेते और हत्यारे जिसे चाहते उसे मार डालते थे। तब अन्य रास्तोंकी बात ही क्या है ॥ ४१८ ॥ उसके राज्यमे स्त्रियाँ स्वच्छन्द विचरती थीं और जहाँ चाहतीं वहाँ रहती थीं। पुरुषोंका भय भाग गया था और वह जो चाहता सो कर गुजरता था ॥ ४१९ ॥ आज सल्हण जिस स्त्रीके साथ भोग करता था तो दूसरे दिन उसीके साथ उसका भाई लोठन आनन्द करता था। इस प्रकार उस समय राज्यभोग एक साधारण चीज बन गया था ॥ ४२० ॥ पुरुष-पुरुषमे कोई अन्तर न मानकर सबके साथ समान व्यवहार करनेके कारण वह प्रमादी राजा सभी राजनीतिज्ञोंकी दृष्टिमें उपहासका पात्र बन गया था ॥ ४२१ ॥ लोठनके ससुर ओजःसूहको राजाने अपना द्वारपाल बनाया। सच पूछो तो उसे तपस्वियोंकी गोष्ठीमें बैठकर भजन-कीर्तन करना चाहिए, किन्तु उसे ऐसे स्थानपर बैठा दिया, जहाँ कठोर परिश्रमकी आवश्यकता थी ॥ ४२२ ॥ किसी समय सुस्सलके भयसे छुटकारा पानेके लिए मंत्रियोंमे परस्पर मंत्रणा चल रही थी, तब उसने एक लाख मंत्रजाप करके शत्रुसे मुक्ति पानेका उपाय बतलाया था ॥ ४२३ ॥ गर्गकी आज्ञासे उस राजाने नीलाश्वडामर बिम्बके शरीरमे पत्थर बाँधकर उसे वितस्ता नदीमे फेंकवा दिया था ॥ ४२४ ॥ राजा सल्हणपर कृपालु गर्गने बहुतेरे शत्रुओंको विभिन्न उपायोंसे मारकर हालाह आदि बहुतेरे डामरोंको भोजनमे विष देकर मार डाला ॥ ४२५ ॥ राजा स्वयं कुछ नहीं करता था, इसलिए राज्यके बाहरी तथा भीतरी छोटे-बड़े सब लोगोंका जीवन-मरण एकमात्र गर्गके हाथमें केन्द्रित

कदाचिल्लहराद्गर्गे प्रविष्टेऽथ नृपान्तिकम् । चुक्षोभ नगरे लोकः सर्व एव भयाकुलः ॥४२७॥
तदा क्षुदचरद्वार्ता शूलान्यारोप्य नौपु यत् । क्रुध्यन्गर्गोऽयमायातो हन्तुं सर्वान्नृपाश्रितान् ॥४२८॥
गर्भिणीगर्भपातिन्या तादृश्या भयवार्तया । द्वित्राण्यहान्यन्वभावि जनैर्ज्वर इवाखिलैः ॥४२९॥
ततस्तिलकसिंहाद्यैरुद्रेकाद्वागदीयत । अनवेक्ष्य नृपादेशमास्कन्दो गर्गमन्दिरे ॥४३०॥
देगश्चात्युल्वणः कृत्स्नो धावति स्म धृतायुधः । प्रत्यग्रहीत्तानखिलान्गर्गचन्द्रस्त्वविह्वलः ॥४३१॥
निर्लज्जा दिल्हभट्टारलक्काद्यास्तुरंगमैः । भ्राम्यन्तस्तत्रादृश्यन्त गर्गावसथवीथिषु ॥४३२॥
निषिषेध न तान्राजा प्रत्युतास्कन्ददायिनाम् । लोठनं कुण्ठशक्तीनां तेषां स्फूर्त्यै व्यसर्जयत् ॥४३३॥
तेनापि योधैर्गर्गस्य रुद्धमार्गेण मन्दिरम् । न रुद्धं नापि निर्दग्धुं पारितं दत्तवह्निना ॥४३४॥
धानुष्कः केशवो नाम मठेशो 'लोठिकामठे । अबाधतैव नाराचैस्तद्योधान्घातयन्परम् ॥४३५॥
प्रकाशेन समं राजलोके विरलतां गते । सायं सानुचरो गर्गो हयारूढो विनिर्ययौ ॥४३६॥
समरैरप्रतिहतो निनाय लहरं व्रजन् । बद्ध्वोजःस्हमस्वस्थमासीनं त्रिपुरेश्वरे ॥४३७॥
तापसेन किमेतेनेत्युक्त्वाऽन्येद्युर्मुमोच तम् । तं सुस्सलेऽपि विधुरे नृपतिं नोदपाटयत् ॥४३८॥
क्षणे क्षणेऽभवद्देशस्ततः प्रभृति सर्वतः । गर्गागमनसंत्रस्तपौरार्गलितमन्दिरः ॥४३९॥
अथार्तस्य महीभर्तुर्गर्गसंधानमिच्छतः । महत्तमः सहेलोऽभूल्लहरे दूत्यमाचरन् ॥४४०॥
तेनाङ्गीकारितो गर्गः कथंचित्कन्यकार्पणम् । भृत्यास्तु तेन संवन्धं नैच्छन्भूतस्य भूपतेः ॥४४१॥

हो गया था ॥ ४२६ ॥ एक वार गर्ग लहर प्रान्तसे राजाके पास राजधानीमें आया । उस देखकर सभी नागरिक क्षुब्ध तथा भयभीत हो गये ॥ ४२७ ॥ उसी समय सारे शहरमें यह अफवाह फैल गयी कि गर्ग वहुतसे लोगोंको सूलीकी सजा देकर यहाँ राजाके समस्त सेवकोंको मार डालनेके लिए आया हुआ है ॥ ४२८ ॥ गर्भिणीके गर्भपात सदृश भीपण वह अफवाह सुनकर नागरिकोंने धीरे-धीरे चढने-उतरनेवाले ज्वरके समान भयंकर दुःख मानते हुए दो-तीन दिन झेला ॥ ४२९ ॥ उससे उद्विग्न होकर तिलकसिंह आदि वीरोंने निश्चय किया कि राजाके आदेश-की प्रतीक्षा किये विना ही गर्गके घरपर धावा वोल दिया जाय ॥ ४३० ॥ उस समय अत्यधिक क्रुद्ध नागरिक विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण करके गर्गके महलकी ओर दौड़ पड़े, किन्तु विना किसी घबड़ाहटके गर्गने उन सवको पराजित कर दिया ॥ ४३१ ॥ उस समय दिल्हभट्टार और अलक आदि योद्धा घोड़ेपर सवार होकर निर्लज्जभावसे गर्गकी आवासभूमिवाली गलियोंमें विचर रहे थे ॥ ४३२ ॥ किन्तु राजा सल्हणने धावा वोलने-वालोंको रोका नहीं, प्रत्युत जो लोग गर्गकी मारसे घवड़ा गये थे, उनमें स्फूर्ति लानेके लिए उसने लोठनको उनके साथ भेज दिया ॥ ४३३ ॥ किन्तु गर्गके सैनिकोंने मार्ग अवरुद्ध कर दिया था, इसलिए लोठनने न गर्गके महलको घेर पाया और न वह आग लगाकर उसे फूँक ही सका ॥ ४३४ ॥ असाधारण धनुर्धर एवं लोठिकामठका मठाधीश केशव अपनी वाणवर्षासे लोठन तथा उसके साथियोंको मारता हुआ त्रस्त किये रहा ॥ ४३५ ॥ सायंकालके समय सूर्य डूबते ही राजाके भेजे हुए लोग छितरा गये और मुँह अँधेरा होते ही गर्ग घोड़ेपर चढकर अनुचरोंके साथ अपने महलसे निकल भागा ॥ ४३६ ॥ उस घरेलू युद्धमें उसकी कोई हानि नहीं हुई थी । अतएव लहर जाते समय गर्ग त्रिपुरेश्वरमें विद्यमान अस्वस्थ ओजःसूहको कैद करके अपने साथ लेता गया ॥ ४३७ ॥ वादमें यह सोचकर कि 'इस वेचारेने मेरा क्या विगाड़ा है' ओजःसूहको छोड़ दिया । यद्यपि उस समय ध्वस्त हो जानेके कारण सुस्सल भी उसकी सहायता नहीं कर सकता था, तथापि गर्गने राजा सल्हणका मूलोच्छेद नहीं किया ॥ ४३८ ॥ उसी समयसे कश्मीरी नागरिकोंके हृदयमे क्षण-क्षणपर गर्गकी चढाईका भय व्याप्त हो गया और लोग सदा अपने घरोंकी किंवाड़ वन्द रखने लगे ॥ ४३९ ॥ तदनन्तर दुखी राजा सल्हण तथा गर्गमें सन्धि करानेके लिए सहेल दूतका काम करनेके लिए लहर गया ॥ ४४० ॥ सहेलके समझानेपर गर्ग किसी तरह सल्हणके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिए राजी हो गया, किन्तु

ततः सुस्सलदेवेन सह संधिं निबद्धवान् । पश्चात्संप्रार्थ्यमानोऽपि संबन्धं न व्यधत्त सः ॥४४२॥
मण्डले विशरारुत्वमेवं याते नृपोऽवधीत् । सड्डं हंसरथं नोनरथं चासादितांश्चरैः ॥४४३॥
तानग्निकणसूच्यादिप्रवेशैरिह दुर्जनः । अत्यक्तानसुभिर्घोरामवस्थामन्वबीभवत् ॥४४४॥
भोगसेनाङ्गनां मल्लामनुमेने स यन्नृपः । अनुसर्तुं पतिं छन्नं वसन्ती साधु तद्व्यधात् ॥४४५॥
तादृग्दृष्ट्वापि वैक्लव्यं शङ्कितेन तदन्तरे । प्रमिम्ये दिल्हभट्टारो रसदानेन भूभुजा ॥४४६॥
न राजवीजी नोचण्डविक्रमो वा बभूव सः । शमितो गूढदण्डेन यत्तथा तेन पापिना ॥४४७॥
तं या निनिन्दानिष्पन्नपौरुषं तत्स्वसुस्तदा । तस्या वह्निप्रवेशेन सिद्धं मानवतीव्रतम् ॥४४८॥
सोल्पोऽपि राज्यकालोऽभूदेवमातङ्कदुःसहः । दीर्घक्षपादृश्यमानदीर्घदुःस्वप्नसंनिभः ॥४४९॥

कालवित्सुस्सलो गर्गाद्बद्धसंधिरपि त्रसन् ।
न्ययुङ्क्ताग्रे सञ्जपालं काश्मीरैन्मुख्यभाक्ततः ॥४५०॥

द्वारेण सह दत्तार्थो लक्ककः सल्हभूभुजा । वराहमूलं संप्राप कथंचित्प्रस्थिति भजन् ॥४५१॥
गर्गः स्मरन्नवस्कन्दं पश्चादभ्येत्य नाशयन् । वाराहमूलेन समं तस्य सैन्यमलुण्ठयत् ॥४५२॥
विदद्रौ स तु तद्योधैर्हतैश्च परिपस्वजे । अदिव्यैर्मेदिनी दिव्यैर्देहैस्त्वप्सरसां गणः ॥४५३॥
नायके गलिते शुद्धवृत्तैः सद्वंशजैर्मही । पतितैरुप्पछुड्डाद्यैर्भूषिता मौक्तिकैरिव ॥४५४॥
आगच्छता छिन्नभीतिः सञ्जपालेन लक्ककः । निराश्रयः संप्रपेदे पार्श्वं सुस्सलभूपतेः ॥४५५॥
सोऽथ भूभृत्सञ्जपाले दूरं क्रान्तरिपौ गते । आजगामान्तिकं प्राप्तैः प्रेरितः पौरडामरैः ॥४५६॥

राजा सल्हणके भृत्य उसके साथ यह सम्बन्ध नहीं पसन्द करते थे ॥ ४४१ ॥ अतएव गर्गने राजा सुस्सलके साथ सन्धि कर ली और बादमें प्रार्थना करनेपर भी गर्गने उस राजा सल्हणके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं किया ॥ ४४२ ॥ तदनन्तर गुप्तचरों द्वारा यह पता लगनेपर कि सड्ड, हंसरथ तथा नोनरथ कश्मीर-मण्डलमें तोड-जोडके कार्यमें सक्रिय हैं, राजा सल्हणने उन तीनोंको मरवा डाला ॥ ४४३ ॥ मारनेके पहले वधिकोंने उनके शरीरपर आगके अंगारे रक्खे और सुई चुभाई। इस प्रकार प्राण निकलनेके पहले उन पापियोंको भीषण कष्ट भोगने पड़े ॥ ४४४ ॥ भोगसेनकी पत्नी मल्लाको राजा सल्हणने चुपकेसे अपने पतिके साथ रहनेकी अनुमति दे दी थी। सो उसने उसके साथ रहकर अच्छा ही किया ॥ ४४५ ॥ यह सब करनेपर भी राजा सल्हणके हृदयकी शंका दूर नहीं हुई, तब उसने विष दिलाकर दिल्हभट्टारको मरवा डाला ॥ ४४६ ॥ दिल्हभट्टार न राजवंशज था और न विशेष बलवान् था, तथापि उस पापी राजाने गुप्तदण्ड द्वारा व्यर्थ उसका वध करा दिया ॥ ४४७ ॥ राजाकी यह करनी देखकर दिल्हभट्टारकी बहिनने उस राजाको बहुत फटकारा और उसके बाद अग्निमें प्रविष्ट होकर उसने मानवती नारियोंका व्रत सिद्ध कर दिया ॥४४८॥ इस प्रकार दुःसह आतंक फलानेके कारण राजा सल्हणका राज्यकाल बहुत अल्पकालीन हो गया। जैसे लम्बी रातका लम्बा दुःस्वप्न भी अल्पकालीन ही होता है ॥ ४४९ ॥ समयकी गतिविधिका विज्ञ सुस्सल गर्गके साथ सन्धि करके भी भयभीत रहा करता था। अतएव उसने संजपालको कश्मीरपर नजर रखनेके कामपर नियुक्त किया ॥ ४५० ॥ उन्हीं दिनों राजा सल्हणने प्रचुर धन देकर द्वाराधीशके साथ लक्ककको भेजा। वह चलकर किसी किसी तरह वराहमूल पहुँचा ॥ ४५१ ॥ गर्गको जब यह खबर मिली तो पीछेकी ओरसे चढाई करके उसने पूरे वराहमूल शहरके साथ-साथ उसकी सारी सेना नष्ट कर दी ॥ ४५२ ॥ उस युद्धमें मारे गये अदिव्य पुरुषोंको देवांगनाओं एवं अप्सराओंने आकर उस भूमिपर आलिंगन किया ॥ ४५३ ॥ सेनानायकके मरनेपर सदाचारी तथा उच्चवंशमें जायमान उप्पल्लुड्ड आदि मृत वीरोंसे वह धरती इस तरह शोभित होने लगी कि मानो वहाँ मोती बिखरे पडे हुए हों ॥ ४५४ ॥ संजपालके साथ निर्भीक भावसे चलकर वह निराश्रय लक्कक राजा सुस्सलके यहाँ पहुँचा ॥ ४५५ ॥ उस समय राजा सुस्सल अन्तःपुरमें था। जब विजयी वीर संजपाल आदि

संधिं तव विधास्यामि सार्धं सुस्सलभूभुजा । इत्युक्त्वा सल्हणं प्रायात्तदभ्यर्णं सहेलकः ॥४५७॥
कांक्षिताभ्युदयं पौरैश्चातकैरिव वारिदम् । अशिश्रियान्राजवर्जं सर्वे एवोच्चलानुजम् ॥४५८॥
गर्गस्य गृहिणी छुड्डाभिधानाऽथ तदन्तिकम् । कन्यकाद्वयमादाय परिणेतुमुपाययौ ॥४५९॥
उपयेमे स्वयं राजा राजलक्ष्म्यभिधां तयोः । गुणलेखां स्नुषात्वेन स्त्रीचक्रे तद्यवीयसीम् ॥४६०॥
सल्हणे सानुजेऽभ्येत्य सञ्जपालेन वेष्टिते । राजापि राजसदसः सिंहद्वारं समासदत् ॥४६१॥
साक्षाद्विरोधिभृत्येन द्वारमेकेन पातितम् । अभून्मोघं तमप्राप्य सार्धं वैरिमनोरथैः ॥४६२॥
ससैन्यैर्गलितद्वारराजवेश्मस्थिते रिपौ । गर्गास्कन्दविशङ्कयासीच्चकितं सौस्सलं बलम् ॥४६३॥
गर्गे वितीर्णकन्येऽपि राजसैन्यमविश्वसत् । तस्थौ स्थातव्यमित्येव तृणस्पन्देऽपि शङ्कितम् ॥४६४॥
अस्ताभिलापिणि दिने तादृक्त्रासहते बले । स्नेहाददहति क्ष्मापे दुर्भेदौकःस्थितान्रिपून् ॥४६५॥
प्रविश्य ग्रावनिर्भुग्नकवाटेन तमोऽरिणा । द्वारं विवृत्याङ्गणस्थैः सञ्जपालोऽग्रहीद्रणम् ॥४६६॥
तस्य निश्चित्य पातंगीं वृत्तिं भूयस्यरिव्रजे । अनुप्रवेशं विदधे पदातिर्लक्ककाभिधः ॥४६७॥
दरदानयने काष्ठवाटसंकटविक्रमे । यस्तस्य सदृशो योधः प्रतिबिम्ब इवाभवत् ॥४६८॥
स केशवश्च स मठाधीशस्तमनुसस्रतुः । शैनेयमारुती पार्थमिव प्रार्थितसैन्धवम् ॥४६९॥
निर्गत्य मण्डपालग्नप्रहारैस्तैः कथंचन । विवृते प्राङ्गणद्वारे धीरो राजाऽविशत्स्वयम् ॥४७०॥

आये, तव पुरवासी डामरोंकी प्रेरणासे बाहर आकर वह उन लोगोंसे मिला ॥ ४५६ ॥ उधर सहेलने राजा सल्हणसे कहा कि 'मैं राजा सुस्सलसे आपकी सन्धि करा दूँगा'। यह कह तथा उसकी अनुमति पाकर सहेल राजा सुस्सलके पास जा पहुँचा ॥ ४५७ ॥ कश्मीरके निवासी उसी तरह इस दिनकी वाट जोह रहे थे, जैसे चातक मेघकी राह देखता है। सो सन्धिकी वात सुनकर वे सव उच्चलके भाई सुस्सलके आश्रित वन गये ॥ ४५८ ॥ उसी समय गर्गकी पत्नी छुड्डा अपनी दो कन्याओंको साथ लेकर उनका विवाह करनेके लिए सुस्सलके पास जा पहुँची ॥ ४५९ ॥ सो उनमेंसे राजलक्ष्मी नामकी कन्याके साथ राजा सुस्सलने अपना विवाह किया और छोटी कन्याको अपनी पुत्रवधू वनाना स्वीकार कर लिया ॥ ४६० ॥ उसी समय राजा सल्हण अपने छोटे भाई तथा सञ्जपालके साथ राजा सुस्सलके द्वारपर जा पहुँचा। राजाको जव उसके आगमनकी खवर मिली, तव उसने द्वारपर आकर उसका स्वागत किया ॥ ४६१ ॥ इस तरह सदाके विरोधी भृत्यने जव उन दोनोंको एक द्वारपर मिला दिया, तव वैरियोंकी सारी आकांक्षायें समाप्त हो गयीं ॥ ४६२ ॥ जिस समय वन्द फाटकवाले राजमहलमें शत्रुकी सेना विद्यमान थी, उस समय राजा सुस्सलके सैनिक गर्गके आक्रमणकी आशंकासे चकपकाये हुए थे ॥ ४६३ ॥ यद्यपि गर्गने राजा सुस्सलके साथ अपनी कन्या व्याह दी थी, तथापि उसकी सेनाका उसपर विश्वास नहीं था। वैसे वह पड़ाव डालकर पड़ी रहती थी, किन्तु यदि तिनका हिलता था तो भी उसके उसके सैनिक सशंक हो उठते थे ॥ ४६४ ॥ जव सूर्यास्तका समय आया, तव राजाने उस त्रस्त सेनाको ढाढ़स वँधाया और कहा कि हमारे शत्रु ऐसी चपेटमें आ गये हैं कि जिससे उनकी भेदनीति यहाँ कारगर नहीं हो सकेगी ॥ ४६५ ॥ वह ऐसा कह ही रहा था कि इतनेमें फाटकके झरोखेवाले पत्थरोंको फोड़कर एक सैनिक भीतर घुस गया और उसने फाटक खोल दिया। फाटक खुलते ही सञ्जपाल भीतर घुस गया और आँगनमें विद्यमान सैनिकोंसे लड़ने लगा ॥ ४६६ ॥ इस प्रकार दीपकके ऊपर गिरनेवाले फतिंगोंके समान वातकी बातमें अगणित सैनिकोंके साथ लक्कक भी फाटकके भीतर घुस पड़ा ॥४६७॥ दरद राज्यमें प्रविष्ट होकर काष्ठवाटके युद्धमें अनुपम पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले वीरोंके सदृश वीर लक्कक उस समय उनके प्रतिविम्वके समान दीख रहा था ॥ ४६८ ॥ जिस प्रकार शनिके पुत्र मंगलग्रह तथा वायुपुत्र हनुमान घोड़ेपर सवार अर्जुनका अनुसरण कर रहे हों, उसी प्रकार धनुर्धर केशव और मठाधीश ये दोनों लक्कक्के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ ४६९ ॥ जव युद्धका स्वरूप उग्र हो उठा, तव किसी तरह प्रहार वचाता

निर्विभागे वर्तमाने संगरे सैन्ययोर्द्वयोः । प्राङ्गणे प्रमयं प्रापुर्भूयांसस्तत्र शस्त्रिणः ॥४७१॥
सचिवः सल्हराजस्य पतंगग्रामजो द्विजः ।-आजौ प्रापाज्जको नाम स्वःस्त्रीसंभोगभागिताम् ॥४७२॥
कायस्थेनापि रुद्रेण लब्ध्वा गञ्जाधिकारिताम् । स्वामिप्रसादः साफल्यं निन्ये त्यक्त्वा तनुं रणे ॥४७३॥
सायं वनस्पतिर्लीनैः खगैर्वाचालितो यथा । ग्राव्णि प्रविष्टे प्रोड्डीननिःशब्दविहगोऽभवत् ॥४७४॥
आयोधनोर्वी वाचाला चक्रे चित्रार्पितेव सा । तथा सुस्सलभूपेन तुरंगस्थेन तर्जिता ॥४७५॥
अनारूढेऽङ्गणान्तःस्थे तस्मिन्सिंहासनं ध्वनिः । सुस्सलो जयतीत्येवं ढक्कावाद्यं च शुश्रुवे ॥४७६॥
मल्लराजगृहे तादृङ्नान्यस्याप्युदपद्यत । अगातां तत्र वैक्लव्यं यादृक्सल्हणलोठनौ ॥४७७॥
आबद्धकवचावश्वारूढावालिङ्ग्य सुस्सलः । बालौ युवामिति वदन्धूर्तोऽत्याजयदायुधम् ॥४७८॥
आदिश्य मण्डपेऽन्यस्मिन्बद्धयोश्च स्थितिं तयोः । प्राप्तराज्यस्ततो राजा विवेशास्थानमण्डपम् ॥४७९॥
त्र्यहोनांश्चतुरो मासान्भुक्तराज्यं बबन्ध तम् । सितस्य सोऽष्टाशीतेऽब्दे राधस्य त्रितयेऽहनि ॥४८०॥
तेन सिंहासने क्रान्ते भास्वतेव नभस्तले । क्षणादेवाखिलो लोकः क्षोभमब्धिरिवात्यजत् ॥४८१॥
विकोशशस्त्रः सन्द्रोहावेक्षणक्षोभतः सदा । व्याधलोके व्यात्तवक्त्रो मृगराज इवाभवत् ॥४८२॥
भ्रातृद्रुहां कुलच्छेदमन्विष्यान्विष्य कुर्वता । न तेन नीतिनिष्ठेन शिशवोऽप्यवशेषिताः ॥४८३॥
जनस्य वीक्ष्य दौर्जन्यमधृष्टाकारतां वहन् । स कार्यापेक्षयाप्यासीन्न क्वाप्याहितमार्दवः ॥४८४॥
वस्तुतस्त्वार्द्रहृदयः क्रूरं दमयितुं जनम् । अवास्तवं तद्धीमत्वाद्भित्तिव्याल इवादधे ॥४८५॥

हुआ बगलवाले मण्डपसे राजा सुस्सल स्वयं निकला और उस युद्धमें कूद पड़ा ॥ ४७० ॥ विना विभागके परस्पर लड़नेवाली उन दोनों सेनाओंके मध्य पहुँचते ही उस राजाने बहुतेरे सशस्त्र सैनिकोंको मारकर उसी आँगनमें लोटा दिया ॥ ४७१ ॥ पतंग ग्राममें उत्पन्न और राजा सल्हणका सचिव अज्जक नामका ब्राह्मण उस युद्धमें मरके देवांगनाओंके साथ भोग करनेका अधिकारी बन गया ॥ ४७२ ॥ रुद्र नामका कायस्थ जो खजानेका अधिकारी बन गया था, उसने भी रणभूमिमें तन त्यागकर अपने स्वामीकी कृपाको सफल कर दिया ॥ ४७३ ॥ सायंकालके समय पक्षियोंके बैठनेसे जैसे वृक्ष बोलने-से लगते हैं, किन्तु उसी समय यदि कोई पत्थर फेंक दे तो उनपरसे पक्षियोंके उड़ते ही वे वृक्ष खामोश हो जाते हैं, उसी प्रकार राजा सुस्सलके आते ही आँगनमें सन्नाटा छा गया ॥ ४७४ ॥ शस्त्रास्त्रोंकी खनखनाहटसे वाचाल आँगनकी धरती उसी समय चित्रलिखित सरीखी शान्त हो गयी, जब घोड़ेपर सवार होकर राजा सुस्सल उसे दौड़ाता हुआ उस स्थानपर पहुँचा ॥ ४७५ ॥ उस समय सहसा आँगनमें रक्खे हुए सिंहासनसे 'महाराज सुस्सलकी जय हो' यह ध्वनि निकलने लगी और नगाड़े बजनेकी आवाज सुनायी पड़ी ॥ ४७६ ॥ मल्लराजके घरानेमें अबतक कोई ऐसा राजा नहीं हुआ था कि जिसके राज्यकालमें इस प्रकार सिंहासन बोला हो और नगाड़े बजे हों । यह कौतुक देखकर राजा सल्हण और लोठन विकल हो गये ॥ ४७७ ॥ तत्काल सुस्सलने आगे बढ़कर कवच पहने तथा घोड़ेपर सवार सल्हण तथा लोठनको गलेसे लगाकर कहा—'तुम दोनों अभी बच्चे हो'। यह कहकर उस धूर्तने उनसे शस्त्र रखवा लिया ॥ ४७८ ॥ तदनन्तर सिपाहियोंको आदेश दे और उन दोनोंको क़ैद कराके दूसरे मण्डपमें भेज दिया। इस प्रकार राज्यको निष्कण्टक करके राजा सुस्सल अपने दरबारमें गया ॥ ४७९ ॥ इस तरह तीन दिन कम चार महीने तक राज्य करके राजा सल्हण १४८८ लौकिक वर्षकी वैशाख शुक्ल तृतीयाको क़ैद हो गया ॥ ४८० ॥ जैसे सूर्य आकाशमण्डलपर छा जाते हैं, उसी प्रकार जब राजा सुस्सलने सिंहासनपर अधिकार किया । उसी समय सब लोगोंने समुद्रकी तरह क्षोभ त्याग दिया ॥ ४८१ ॥ नंगे शस्त्र हाथमें लेकर जब वह द्रोहियोंकी खोजमें निकलता था, तब लोग वैसे ही भयभीत हो जाते थे, जैसे मुँह बाये हुए सिंहको देखकर व्याध घबड़ा जाते हैं ॥ ४८२ ॥ अपने भाई उच्चलके द्रोहियोंको खोज-खोजकर जब वह मारने लगा, तब उस नीतिज्ञने दुधमुँहे बच्चोंको भी नहीं छोड़ा ॥ ४८३ ॥ उन द्रोहीजनोंकी दुर्जनताको देखकर राजा सुस्सल इतना उग्र हो गया कि कार्यकालके अवसरपर भी वह मृदुभावको नहीं अंगीकार करता था ॥ ४८४ ॥ वह राजा

कालवित्समयत्यागी प्रगल्भः प्रतिभानवान्। इङ्गितज्ञो दीर्घदृष्टिः स एवान्यो न कोऽप्यभूत् ॥४८६॥
अधिकः कोपि कोप्यूनः कोपि तस्य समो गुणः। दोषोऽथ वा पूर्वजस्य स्वभावैक्येऽप्यदृश्यत ॥४८७॥
अन्वकारि समानेऽपि कोपे तत्पूर्वजन्मनः। कोपेन विषमालर्कं तदीयेन तु सारघम् ॥४८८॥
न बभूव स वेशादौ सासूयोऽनुचितं पुनः। स्थितिभेदभयात्स्नेहे नोत्सेकमनुजीविनाम् ॥४८९॥
नैच्छत्स द्वन्द्वयुद्धादिसंधानैर्मानिनां वधम्। तस्मिन्प्रमादान्निर्व्यूढे त्वदीयत कृपाकुलः ॥४९०॥
वाक्पारुष्यं नृपस्यासीदाबस्यातङ्कदुःसहम्। तस्य तु प्रणयप्रायं हिंसाद्याबाधवर्जितम् ॥४९१॥
तस्यार्थगृध्नोरुत्पादो भूयानास्ते स्म संपदाम्। त्यागो विषयकालादिनैयत्यात्तु मितोऽभवत् ॥४९२॥
नवकर्माश्वबाहुल्यप्रिये तस्मिन्दरिद्रताम्। तत्यजुः कारवो वाजिविक्रेतारश्च दैशिकाः ॥४९३॥
दुःसहव्यसनोत्पत्तौ जिगीषोः प्रशमैषिणः। तस्यासीदपरित्याज्यं न किंचिद्वसुवर्षिणः ॥४९४॥
तस्येन्द्रद्वादशी भूरिपरार्घ्यांशुकदायिनः। यथा नृपस्य शुशुभे तथा नान्यस्य कस्यचित् ॥४९५॥
यथा प्रागुच्चलो राजा सुप्रापः प्रियसेवकः। स तथा सेवकैरासीन्नूनं दुर्लभदर्शनः ॥४९६॥
नोच्चलादपरस्यासीद्व्यसनं हयवाहने। नान्यस्य सुस्सलनृपादाढ्यं तत्र च पप्रथे ॥४९७॥
शममुत्पन्नमुत्पन्नं निन्ये दुर्भिक्षमुच्चलः। राज्ये सुस्सलदेवस्य न तत्स्वप्नेऽप्यदृश्यत ॥४९८॥
किमन्यदखिलैः सोऽभूदग्रजादधिको गुणैः। त्यक्त्वा त्यागार्थनैस्पृह्यसुप्रापत्वानि केवलम् ॥४९९॥

वास्तवमें वड़ा दयालु हृदयका व्यक्ति था, किन्तु दुर्जनोंका दमन करनेके लिए वह बनावटी क्रूरता अपनाये हुए था। वस्तुतः उसकी क्रूरता दीवारपर चित्रित सर्पके समान अवास्तविक थी ॥ ४८५ ॥ समयकी गतिविधि पहचाननेवाला, समयपर त्याग करनेवाला, ढीठ, प्रतिभासम्पन्न, औरोंके मनोभाव समझनेवाला और दूरदर्शी एकमात्र वही था—उसके टक्करका कोई अन्य राजा हुआ ही नहीं ॥ ४८६ ॥ उसके बड़े भाई उच्चलमें जो गुण थे, वे राजा सुस्सलमें कुछ अधिक, कुछ गुण उससे न्यून और कुछ उसके समान थे। दोष भी एक ही स्वभावका होनेके कारण समान था ॥ ४८७ ॥ उसका क्रोध ठीक अपने बड़े भाईके समान, विष पागल कुत्तेकी तरह और मिठास उसमें मधुमक्खीके समान थी ॥ ४८८ ॥ वेश आदिके विषयमें वह किसीसे अनुचित ईर्ष्या नहीं करता था। किन्तु स्थितिके अन्तरको ध्यानमें रखते हुए वह अपने सेवकोंको घमण्डी नहीं होने देता था ॥ ४८९ ॥ वह द्वन्द्वयुद्ध आदि कराके मानी पुरुषोंका वध नहीं कराता था। वह प्रमादहीन रहकर सदा सबपर कृपा करता था ॥ ४९० ॥ उस राजामें वाक्पारुष्य (रूखी बात करनेकी आदत) पहलेसे ही थी। इसी कारण उसका आतंक छाया रहता था। किन्तु उनका हृदय हिंसा आदि बाधाओंसे रहित और प्रेमसे ओतप्रोत रहता था ॥ ४९१ ॥ उस अर्थलोलुप राजाके राज्यमें सम्पत्तियोंका उत्पादन बड़ी प्रचुरमात्रामें होता था और देश-काल आदिके अनुसार नियत खर्च ही होता था। अतएव बचत अधिक होती थी ॥ ४९२ ॥ उसे नये-नये काम छेड़ने और घोड़े खरीदनेका शौक था। इस कारण उसके राज्यमें कारीगरों तथा विदेशी अश्वविक्रेताओंका दारिद्र्य दूर हो गया था ॥ ४९३ ॥ उस शान्तिप्रेमी एवं विजिगीषु राजाके राज्यमें यदि कभी कोई दुःसह विपत्ति आ पड़ती थी, तब वह धनकी वर्षा करने लग जाता था और उस समय उसके पास अत्याज्य कोई भी वस्तु नहीं रह जाती थी ॥ ४९४ ॥ विपुल मात्रामें कीमती वस्त्र बाँटनेके कारण उसके राज्यमें इन्द्रद्वादशीका पर्व जैसा सुहावना लगता था, वैसा कभी किसी भी राजाके राज्यकालमें सुहावना नहीं लगा था ॥ ४९५ ॥ जैसे सेवकोंके प्रिय राजा उच्चलका दर्शन सर्वसाधारणके लिए सुलभ था, उसी प्रकार सेवकजन सदा बेरोक-टोक उसके पास भी पहुँच सकते थे। किन्तु अन्य लोग प्रायः कठिनाईसे उसके पास पहुँच पाते थे ॥ ४९६ ॥ जैसे राजा उच्चलसे बढ़कर घोड़ोंका शौकीन कोई अन्य राजा नहीं था, उसी प्रकार नैपुण्यमें राजा सुस्सलसे बढ़कर अन्य कोई राजा नहीं हो सका ॥ ४९७ ॥ राज्यमें शान्ति स्थापित करते-करते राजा उच्चलने दुर्भिक्ष बुला लिया था, किन्तु राजा सुस्सलके राज्यकालमें कहीं स्वप्नमें भी दुर्भिक्षका नाम नहीं सुनायी देता था ॥ ४९८ ॥ विशेष कहाँतक कहा जाय, सुस्सल अपने भाईसे सब गुणोंमें अधिक था। हाँ, वह उसके समान धननिस्पृह होनेके कारण खर्चालू

औच्चलेः पालको गर्गो यं राज्ये कर्तुमैहत। सहस्रमङ्गलस्तेन निरवास्यत स क्रुधा ॥५००॥
तस्मिन्भद्रावकाशस्थे प्रासनामा तदात्मजः। काञ्चनोत्कोचदश्चक्रे डामरैः सह चाक्रिकाम् ॥५०१॥
असंन्यजन्नुच्चलजं पितृव्येणार्थितं शिशुम्। प्रसङ्गे तत्र गर्गोऽपि प्रातिकूल्यमदर्शयत् ॥५०२॥
प्रहितानां नरेन्द्रेण तृणानामिव शस्त्रिणाम्। गर्गदावाग्निदग्धानां निःसंख्यानामभूत्क्षयः ॥५०३॥
गर्गस्यालोऽपि विजयः स देवसरसोद्भवः। प्रातिलोम्येन नृपतिसैन्यानां कदनं व्यधात् ॥५०४॥
राज्यप्राप्तेर्मासमात्रे दिनैरभ्यधिके गते। तेनोत्पिञ्जेन राज्ञोऽभून्न धीरस्याकुलं मनः ॥५०५॥
सुरेश्वर्यमरेशोर्वीवितस्तासिन्धुसंगमाः। गर्गेण राजसैन्यानां कृताः कदनकांक्षिणः ॥५०६॥
संग्रामे तुमुलेऽमात्यौ भृङ्गारकपिलौ हतौ। कर्णशूद्रकनामानौ तन्त्रिणौ च सहोदरौ ॥५०७॥
निहतानन्तसुभटसमूहान्तरलक्षितान्। तादृशानपि निष्क्रष्टुं नासीत्कस्यापि पाटवम् ॥५०८॥
हर्षमित्रः कम्पनेशो भूभर्तुर्मातुलात्मजः। विजयेन हतानीको विदधे विजयेश्वरे ॥५०९॥
पुत्रो मङ्गलराजस्य तिल्हो राजाऽन्यवंशजः। तत्र त्रिव्याकरमुखास्तन्त्रिणश्च प्रमिम्यिरे ॥५१०॥
राजानीके सज्ञपालः प्रवीरप्रवरोऽभवत्। भूरिसैन्येन गर्गेण नाल्पसैन्योऽपि यो जितः ॥५११॥
संस्तभ्य विजयक्षेत्रे लक्ककाद्यैर्विसर्जितैः। धीरो राजा बलं भग्नं स्वयं गर्गोन्मुखं ययौ ॥५१२॥
सोऽन्विष्य गर्गेण हतान्योधान्राशीकृतान्बहून्। निरदाहयदन्येद्युरसंख्येयैश्चिताग्निभिः ॥५१३॥
बलिना भूभुजा गर्गः पीड्यमानः शनैः शनैः। ततः स्ववसतीर्दग्ध्वा हलाहाभिमुखोऽभवत् ॥५१४॥
स तत्र रत्नवर्षाख्यं गिरिदुर्गं समाश्रितः। हताश्वोऽनुचरैस्त्यक्तो नृपेणारादवेष्ट्यत ॥५१५॥

और सबके लिए सुलभ नहीं था ॥ ४९९ ॥ राजा उच्चलके पुत्र सहस्रमंगलका पालक गर्ग उसीको राजसिंहासनपर विठाना चाहता था। उसके इस अभिप्रायसे क्षुब्ध होकर राजा सुस्सलने सहस्रमंगलको कश्मीरमण्डलसे निर्वासित कर दिया ॥ ५०० ॥ वहाँसे चलकर सहस्रमंगल जब भद्रावकाशमें ठहरा हुआ था, तब इधर कश्मीरमें उसके बेटे प्रासने बहुतसे सोनेका घूस देकर डामरोंको मिलाया और उनके साथ षड्यंत्र रचने लगा ॥ ५०१ ॥ पहले सहस्रमंगलको उसके पितृव्य अर्थात् चाचा सुस्सलने गर्गसे माँगा था, किन्तु गर्ग इस बातपर राजी नहीं हुआ ॥ ५०२ ॥ तब राजाने उसे मार डालनेके लिए बहुतेरे शस्त्रधारी सनिकोंको भेजा, किन्तु वे असंख्य सैनिक गर्ग-रूपी दावाग्निमें जलकर भस्म हो गये ॥ ५०३ ॥ देवसरसके पुत्र और गर्गके साले विजयने भी उस युद्धमें बहुतसे राजसैनिकोंका वध किया था ॥ ५०४ ॥ राज्यप्राप्तिके बाद एक महीना और कुछ दिन बीतते-बीतते यह संघर्ष हुआ और इसमें पराजय ही हाथ लगी। किन्तु इससे उस धैर्यशाली राजाके मनमें तनिक भी व्याकुलता नहीं आयी ॥ ५०५ ॥ सुरेश्वरी और अमरेशकी धरती एवं वितस्ता-सिन्धु-संगमके स्थलपर गर्गने राजाके सैनिकोंका संहार किया था ॥ ५०६ ॥ उस तुमुल संग्राममें भृङ्गार और कपिल नामके दो राज्यमंत्री तथा कर्ण और शूद्रक नामके दो सगे भाई और नीतिज्ञ भी मारे गये ॥५०७॥ इस प्रकार अगणित वीर सैनिकोंका वध करनेवाले आत-तायियोंको राज्यसे बाहर निकालनेमें अपनी पटुताका प्रदर्शन कोई भी नहीं कर सका ॥ ५०८ ॥ राजा सुस्सलके मामाका पुत्र हर्षमित्र राजाका सेनापति था। सो विजयेश्वरमें विजयने सैनिकों समेत उसको मार डाला ॥ ५०९ ॥ किसी अन्य वंशका राजा एवं मंगलराजका पुत्र तिल्ह और त्रिव्बाकर जैसे बड़े-बड़े तंत्री भी उस युद्धमें मारे गये ॥ ५१० ॥ राजाकी सेनामें सबसे बड़ा वीर सज्ञपाल रहा, जो प्रचुर सेनाके सेनानी गर्गसे अल्प-सैन्ययुक्त होता हुआ भी नहीं हारा ॥५११॥ ऐसी परिस्थितिमें जब सेना भाग खड़ी हुई, तब लक्कक आदि वीरोंको भेजकर उस भागती सेनाको विजयक्षेत्रमें रोकवा दिया और गर्गका सामना करनेके लिए राजा स्वयं गया ॥ ५१२ ॥ वहाँ पहुँचकर दूसरे दिन राजाने गर्गके द्वारा मारे गये योद्धाओंके शव खोजकर एकत्र किये और अगणित चितायें लगवाकर उनका दाहसंस्कार कराया ॥ ५१३ ॥ तदनन्तर प्रबल पराक्रमी राजा सुस्सल द्वारा पद-पदपर सताये जानेपर गर्गने अपने नगरमें आग लगा दी और उसे त्यागकर हलाहाकी ओर बढ़ा ॥ ५१४ ॥

अन्वारूढेन तत्रापि सञ्जपालेन वेष्टितः । चरणौ शरणीचक्रे राज्ञो दत्त्वोच्चलात्मजम् ॥५१६॥
अन्तिकस्थं नृपे कर्णकोष्ठजं मल्लकोष्ठकम् । विरुद्धं रुद्धवत्याशु गर्गो विश्वासमाययौ ॥५१७॥
गृहीतप्रणतिस्तस्य नष्टेषु विजयादिषु । शमितोपप्लवो राजा विवेश नगरं शनैः ॥५१८॥
गत्वाथ लोहरे न्यस्य बद्ध्वा सल्हणलोठनौ । स कल्हसोमपालाद्यै रेमे संसेवितो नृपैः ॥५१९॥
भूयः प्रविष्टः कश्मीरान्सेव्यः सर्वातिशायिभिः । गर्गं प्रसादैरनयत्प्रवृद्धिमधिकाधिकैः ॥५२०॥
ग्रीष्मार्कप्रतिमे तस्मिन्ह्लादिनावनुचक्रतुः । महादेवी कुमारश्च द्रुमच्छायावनानिलौ ॥५२१॥
डामरौ देवसरसोद्भवौ विजयगोत्रिणौ । बृहट्टिक्कस्तथा सूक्ष्मटिक्को वेलां प्रचक्रतुः ॥५२२॥
सानाथ्यकाङ्क्षिणौ पार्थिवस्य प्रविशतः पुरः । लोकपुण्ये तस्थतुस्तौ क्रन्दद्भिः स्वानुगैः समम् ॥५२३॥
विजये गर्गसंबन्धात्सदाक्षिण्यो महीपतिः । सदाचारं परित्यज्य वेत्रिभिस्तावताडयत् ॥५२४॥
तौ मानिनश्च तद्भृत्याः कृष्टशस्त्रास्ततो व्यधुः । साहसं सुमहत्सैन्ये प्रहरन्तो महीपतेः ॥५२५॥
श्वपाको भोगदेवाख्यः कृपाण्या प्राहरन्नृपम् । धीरो गञ्जकनामा च करवालेन पृष्ठतः ॥५२६॥
सावशेषतया भूपस्यायुषो मोघतां ययुः । द्विपत्प्रहृतयो वाहतुरगी तु व्यपद्यत ॥५२७॥
नृपस्यान्तरयन्वैरिप्रहृतिं बाणवंशजः । निहतस्तत्र शृङ्गारसीहः सादीशसस्यकः ॥५२८॥
सैनिकैस्तैर्बृहट्टिक्कभोगदेवादयो हताः । सूक्ष्मटिक्कस्तु निस्तीर्णो हेतुर्भाविनि विप्लवे ॥५२९॥

वहाँ पहुँचकर गर्गने रत्नवर्ष नामक दुर्गमें डेरा डाला । तबतक उसके सब अश्व मर चुके थे और सेवकोंने साथ छोड़ दिया था । कुछ ही देर बाद वहाँ पहुँचकर राजा सुस्सलने गर्गको घेर लिया ॥ ५१५ ॥ उस समय संजपाल राजाके साथ था । इस प्रकार असहाय अवस्थामें घिर जानेपर गर्ग उच्चलके पुत्रको राजाके हाथों सौंपकर शरणागत हो गया ॥ ५१६ ॥ अपने विरुद्ध बगावत करनेको सन्नद्ध कर्णकोष्ठके पुत्र मल्लकोष्ठको शीघ्र कैद करके राजाने गर्गको अपनेपर विश्वास करनेके लिए बाध्य कर दिया ॥ ५१७ ॥ इस प्रकार गर्गका गर्व खर्व करके और विजय आदि उसके प्रमुख योद्धाओंको मारकर जब विप्लवकी कमर तोड़ दी, तब राजा सुस्सल धीरेसे अपनी राजधानीमें प्रविष्ट हुआ ॥५१८॥ उसके बाद वह लोहर गया, वहाँ सल्हण तथा लोठनको भली-भाँति बाँध तथा जेलमें डालकर लौट आया और कल्ह-सोमपाल आदि राजाओंसे सेवित होता हुआ सानन्द रहने लगा ॥ ५१९ ॥ जब वह कश्मीर लौटा, तबसे सर्वाधिक सम्पत्तियोंसे सेव्यमान होता हुआ राजा सुस्सल गर्गको अधिकाधिक धन तथा सम्मान देकर प्रसन्न करनेके लिए सचेष्ट रहने लगा ॥ ५२० ॥ ग्रीष्मकालीन सूर्य सदृश तेजस्वी राजा सुस्सलकी छत्रछायामें सानन्द रहती हुई महारानी और राजकुमार ये दोनों वन्य वृक्षोंकी छाया-में वायु सेवन करते हुए बराबर उसका अनुसरण करने लगे ॥ ५२१ ॥ उस अवसरपर विजयके सगोत्री एवं देवसरस डामरके पुत्र बृहट्टिक्क तथा सूक्ष्मटिक्कने विप्लवकी एक नयी योजना तैयार की ॥ ५२२ ॥ क्योंकि जब राजा सुस्सल गर्गपर विजय प्राप्त करके अपनी राजधानी लौट रहा था, तब वीर विजयके मरणसे दुखी होकर रोते-चिल्लाते हुए अपने अनुयायियोंके साथ वे दोनों उन्हें सनाथ करनेके लिए लोकपुण्य नामक स्थानपर डेरा डाले पड़े हुए थे ॥ ५२३ ॥ गर्गके साथ नातेदारीका सम्बन्ध होनेके कारण राजा यद्यपि विजयके साथ उदारता-का व्यवहार करता था, किन्तु उसे न मालूम क्या सूझी कि जिससे सदाचार त्यागकर उसने बृहट्टिक्क और सूक्ष्मटिक्कको वेत्रियों द्वारा बेतासे बहुत पिटवाया ॥५२४॥ ऐसी स्थितिमें वे दोनों तथा उनके साथवाले सम्मानित साथी इस अपमानसे किटकिटा उठे और म्यानसे शस्त्र निकालकर उन्होंने राजसैनिकोंको मारना आरम्भ दिया ॥ ५२५ ॥ उसी समय भोगदेव नामक चण्डालने कटारसे राजा सुस्सलपर प्रहार कर दिया और गञ्जक नामके धैर्यशाली वीरने पीछेसे राजापर प्रहार किया ॥ ५२६ ॥ किन्तु राजाकी आयु शेष थी, इसलिए वे प्रहार व्यर्थ गये । हाँ, उसकी वह घोड़ी अलबत्ते मर गयी, जिसपर वह सवार था ॥५२७॥ जब विप्लवी राजा-पर प्रहार कर रहे थे, तब उसे बचानेके लिए बाणवंशज तथा राजाके घोड़ोंका अफसर शृङ्गारसीह उनकी चपेटमें पड़कर मर गया ॥ ५२८ ॥ उसके बाद राजाके सैनिकोंने बृहट्टिक्क एवं भोगदेव आदि विद्रोहियोंको मार डाला ।

शूले व्यापादिता गञ्जकादयो द्रोहसंश्रिताः। संदेहितासुरित्यासीद्राजा गर्गानुकूल्यभाक् ॥५३०॥
न भवेत्पविपातेऽपि प्रमयः समयं विना। प्रसूनमप्यसून्हन्ति जन्तोः प्राप्तावधेः पुनः ॥५३१॥
ज्वालाभिरौर्वदहनस्य पयोधिमध्ये न म्लानतामपि हि यानि मुहुः स्पृशन्ति।
तान्येव यान्ति विलयं किल मौक्तिकानि कान्ताकुचेषु युवभावभुवोष्मणापि ॥५३२॥
प्राक्सेवामपि विस्मृत्य परोत्सेकासहिष्णुना। मण्डलात्सञ्जपालाद्या निरवास्यन्त भूभुजा ॥५३३॥
संबन्धी काकवंश्यानां यशोराजाभिधस्ततः। सहस्रमङ्गलाभ्यर्णं राज्ञा निर्वासितो ययौ ॥५३४॥
तमन्यांश्च विनिर्यातान्देशाद्गृह्णन्समृद्धिमान्। ऐच्छल्लब्धप्रतिष्ठः स राज्ञः प्रत्यभियोगिताम् ॥५३५॥
तत्पुत्रः कान्दमार्गेण विविक्षुः क्ष्मापसैनिकैः। यशोराजे क्षते प्रासः प्रत्यावृत्य ययौ भयात् ॥५३६॥
अथान्येष्वपि भृत्येषु राज्ञा निर्वासितेषु सः। मिलितेषु प्रथां यावद्यथावदुपलब्धवान् ॥५३७॥
उपरागे नवे सज्जे पार्वतीयास्त्रयो नृपाः। चाम्पेयो जासटो वज्रधरो वव्वापुराधिपः ॥५३८॥
राजा सहजपालश्च वर्तुलानामधीश्वरः। युवराजौ त्रिगर्तोर्वीवल्लापुरनरेन्द्रयोः ॥५३९॥
वल्ह आनन्दराजश्च पञ्च संघटिताः क्वचित्। प्रस्थानार्थं कृतपणाः कुरुक्षेत्रमुपागताः ॥५४०॥
आसमत्याहृतं तावदभ्येत्य नरवर्मणः। प्रापुर्भिक्षाचरं तेन दत्तपाथेयकाञ्चनम् ॥ कुलकम् ॥५४१॥
स जासटेन संबन्धिस्नेहाद्विहितसत्कृतिः। नीतोऽन्यैश्च प्रथां भूपैर्वल्लापुरमथाययौ ॥५४२॥
देशाद्विनिर्गतैर्बिम्बप्रमुखैर्वर्धितप्रथे। तस्मिन्प्राप्ते सहस्रस्य प्रतिष्ठा लघुतामगात् ॥५४३॥
पौत्रोऽयं हर्षदेवस्य क एते राज्य इत्यथ। उक्त्वा त्यक्त्वा सहस्रादींस्तमेवाशिश्रियञ्जनाः ॥५४४॥
कृतज्ञभावमुत्सृज्य संबन्धिस्नेहमोहितः। दर्यको राजपुत्रस्तं राज्ञा निर्वासितोऽप्यगात् ॥५४५॥

किन्तु भावी विप्लवका हेतु वननेके लिए सूक्ष्मटिक्क निकल भागा ॥ ५२९ ॥ विद्रोही गञ्जक आदि वीर सूलीपर चढा दिये गये। किन्तु गर्गके प्रति पक्षपातकी भावना रहनेके कारण राजाके प्राण सदा संकटमें रहा करते थे ॥ ५३० ॥ जवतक समय नहीं आया रहता, तवतक वज्रपात होनेपर भी प्राणी नहीं मरता और जव समय आ जाता है, तव फूलकी चोटसे भी मर जाता है ॥ ५३१ ॥ जो मोती समुद्रमे रहते समय वडवानलके भीषण तापसे म्लान नही होते, वे ही स्त्रियोंके कुचोंपर रहते समय उनकी जवानीकी गर्मीसे चटककर फूट जाते हैं ॥ ५३२ ॥ वादमे औरोंकी उन्नति सहनेमें असमर्थ राजा सुस्सलने प्राचीन सेवाओंको भूलकर सञ्जपाल आदि कितने ही विश्वस्त सेवकोंको अपने राज्यसे वाहर निकाल दिया ॥ ५३३ ॥ काकवंशजोंका सम्वन्धी यशोराज राजाके द्वारा निर्वासित किये जानेपर उच्चलतनय सहस्रमंगलके पास चला गया ॥ ५३४ ॥ वहॉपर अन्यान्य निर्वासितोंकी सम्पत्तिका स्वामी वनकर यशोराज प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी इच्छावश राजा सुस्सलसे होड़ करने लगा ॥ ५३५ ॥ तदनुसार उसके पुत्र प्रासने कान्दके मार्गसे कश्मीरमे घुसनेके लिए चढाई कर दी। किन्तु सीमापर करारी मुठभेड़ हुई, जिसमे राजाके सैनिकोंने उसके पिता यशोराजको मार डाला। जिससे डरकर प्रास लौट पड़ा ॥ ५३६ ॥ तदनन्तर जो-जो सेवक राजा सुस्सलके द्वारा निर्वासित किये गये थे, वे सव सहस्रमंगलके पास जा-जाकर एकत्र होते गये। उनके मिलनेसे उसकी शक्ति वढने लगी ॥ ५३७ ॥ तव सहस्र-मंगल द्वारा नये विप्लवकी तैयारी आरम्भ होनेपर चाम्पेय, जासठ, वव्वापुरके अधिपति वज्रधर, वर्तुल देशका राजा सहजपाल, त्रिगर्त तथा वल्लापुरके नरेन्द्रके दोनों युवराज वल्ह तथा आनन्दराज ये पॉच राजे सघवद्ध होकर कश्मीरपर चढाई करनेकी प्रतिज्ञा करके चले और कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे। उनमेंसे तीन राजे भिक्षाचरके यहॉ गये और वहॉ उन्हें नरेन्द्रवर्माकी पत्नी आससतीने राहखर्चके लिए वहुत-सा सोना दिया ॥ ५३८-५४१ ॥ भिक्षाचरसे पारिवारिक सम्वन्धके कारण राजा जासट तथा अन्यान्य राजाओंने भी उन सवका वहुत सत्कार किया और वे वहॉसे चलकर वल्लापुर जा पहुँचे ॥ ५४२ ॥ जव राज्यसे निर्वासित विम्व आदि प्रमुख वीर वहॉ पहुँच गये, तव सहस्रमंगलकी प्रतिष्ठा घट गयी ॥ ५४३ ॥ 'यह महाराज हर्षदेवका पौत्र है, इसके आगे ये राजे

पुत्रः कुमारपालस्य तत्पितुर्मातुलस्य सः । वृद्धिं सुस्सलदेवेन पुरा निन्ये हि पुत्रवत् ॥५४६॥
प्रेरितो युवराजेन जासटेन च कन्यकाम् । वल्लापुरेशः प्रददौ भिक्षवेऽथ स पद्मकः ॥५४७॥
तद्देशठक्कुरो भूपान्संघटय्याखिलांस्ततः । तमैच्छद्गयपालाख्यः कर्तुं पैतामहे पदे ॥५४८॥
तां वार्तां श्रुतवान्राजा यावदासीत्समाकुलः । गयपालो हतस्तावद्गोत्रजैश्छद्मना बली ॥५४९॥
पद्मके तान्प्रतिगते योद्धुं प्रधनमभ्यगः । भिक्षाचरचमूधुर्यो दर्यकोऽपि व्यपद्यत ॥५५०॥
तेन प्रधाननाशेन ततो भिक्षाचरो ययौ । अकिंचित्करतां मेघ इवावग्रहवारितः ॥५५१॥
आसमत्यां प्रयातायां क्षीणे पाथेयकाञ्चने । श्वशुरोऽपि ययौ तस्य शनैर्मन्दोपचारताम् ॥५५२॥
चतुष्पञ्चानि वर्षाणि तिष्ठञ्जासटमन्दिरे । ग्रासाच्छादनमात्रं स ततः क्लेशात्समासदत् ॥५५३॥
ठक्कुरो देङ्गपालोऽथ चन्द्रभागातटाश्रयः । दत्त्वा सुतां बप्पिकाख्यां तं निनाय निजान्तिकम् ॥५५४॥
प्राप्तसौख्यो वसंस्तत्र कंचित्कालं भयोज्झितः । स राजबीजी दैन्येन शैशवेन च तत्यजे ॥५५५॥
तदन्तरे साहसिकः प्रासः साहसिरुन्मदः । गतागतानि कुर्वाणः संरम्भमनयन्नृपम् ॥५५६॥
स सिद्धपथमार्गेण विविक्षुर्विप्लवोन्मुखः । स्वैरेव भृत्यैर्भूभर्तुर्बद्ध्वा पापैः समर्पितः ॥५५७॥
तत्रोत्पिञ्जे परं सत्त्वं सज्जपालस्य पप्रथे । खिन्नोऽपि द्रोहविमुखो यत्स देशान्तरं ययौ ॥५५८॥
तस्मिन्शूरे कुलीने च किं वाच्यं स दिगन्तरे । शौर्येणैव यशोराजः पप्रथे यत्तदद्भुतम् ॥५५९॥
अथ राजा निवार्याद्यान्सहेलादीन्महत्तमान् । सर्वाधिकारे विदधे कायस्थं गौरकाभिधम् ॥५६०॥
स तापसस्य संबन्धी कस्यचिद्विजयेश्वरे । सेवया लोहरस्थस्य तस्य वाल्लभ्यमाययौ ॥५६१॥

क्या चीज है !' यह कहकर वे सहस्रमंगल आदिको त्यागकर बिम्ब आदिका अनुसरण करने लगे ॥५४४॥ किन्तु राजा सुस्सल द्वारा निर्वासित राजपुत्र दर्यक सम्बन्धके स्नेहसे मोहित हो और कृतघ्नभाव त्यागकर सहस्रमंगलके ही पास रह गया ॥ ५४५ ॥ इधर सुस्सलने अपने पिताके मामाके पुत्र कुमारपालकी पहले बड़ी उन्नति की और पुत्रके समान उसको प्यार किया, बादमें युवराज जासटकी प्रेरणासे वल्लापुरके नरेश पद्मकने उस कुमारपालके साथ अपनी पुत्री ब्याह दी ॥५४६॥५४७॥ तभी उस देशके ठक्कुर गयपालने बहुतेरे राजाओंको जुटाकर कुमारपालको उसके पितामहके पदपर बैठानेकी इच्छा की ॥५४८॥ यह समाचार सुनकर राजा सुस्सल बहुत घबड़ाया। तबतक कपट करके उसके सगोत्रियोंने ही गयपालको मार डाला ॥ ५४९ ॥ तदनन्तर जब पद्मकके नेतृत्वमें सेना आगे बढ़ी तो भिक्षाचरकी सेनाका सेनानी दर्यक भी मर गया ॥ ५५० ॥ उस प्रधानके नाशसे भिक्षाचर शुष्क मेघसे आहत वर्षाकालिक मेघके समान कुछ भी करनेमें असमर्थ हो गया ॥ ५५१ ॥ तबतक आसमतीसे प्राप्त सोना भी चुक गया और उसके ससुरका भी उत्साह जाता रहा ॥ ५५२ ॥ उसके बाद वह चार-पाँच वर्षतक जासटके यहाँ रोटी-कपड़ा प्राप्त करता हुआ बड़े क्लेशके साथ रहा ॥ ५५३ ॥ तत्पश्चात् चन्द्रभागातटनिवासी ठक्कुर देङ्गपालने अपनी कन्या बप्पिकाका भिक्षाचरके साथ विवाह कर दिया और उसको अपने घर ले गया ॥ ५५४ ॥ वहाँ पहुँचकर भिक्षाचर कुछ समयतक निर्भय होकर बड़े आनन्दपूर्वक रहा। वहाँपर वह राजवंशज कुमार गरीबी और बचपन दोनोंसे मुक्त हो गया ॥ ५५५ ॥ उन्हीं दिनों सहस्रमंगलका साहसी पुत्र प्रास बलोन्मत्त हो उठा और कई बार चढाई करके उसने राजा सुस्सलको कुपित कर दिया ॥ ५५६ ॥ एक बार वह सिद्धपथके मार्गसे कश्मीरमें घुसकर विप्लव मचानेके लिए चला। किन्तु उसके अपने ही पापी सेवकोंने उसे पकड़कर राजा सुस्सलके हवाले कर दिया ॥ ५५७ ॥ इस घटनासे सज्जपालके हृदयपर बड़ा कठोर आघात पहुँचा और उसी दुःखके कारण द्रोहसे विमुख होकर वह परदेश चला गया ॥५५८॥ उस वीर और कुलीन सज्जपालके लिए विदेशमें क्या कमी हो सकती थी, जब कि यशोराजने परदेशमें जाकर असाधारण ख्याति प्राप्त कर ली थी ॥ ५५९ ॥ कुछ समय बाद राजा सुस्सलने सहेल आदि पुराने लोगोंको हटाकर कायस्थ गौरकको सब अधिकारियोंका प्रमुख बना दिया ॥ ५६० ॥ गौरक विजयेश्वरनिवासी किसी तपस्वीका सम्बन्धी था। लोहरके निवासकालमें

शमिते पूर्वकायस्थवर्गे तेन ततः क्रमात् । नीतः सर्वाधिकारित्वं सोऽन्यामेव स्थितिं व्यधात् ॥५६२॥
अशेषकर्मस्थानेभ्यो वृत्तिं राजोपजीविनाम् । निवार्य कोशे भरणं तेनाकार्यनिशं प्रभोः ॥५६३॥
म्रदिम्ना पाप्मिनस्तस्य नाज्ञायि क्रूरता जनैः । मधुरिम्णा विषस्येव शक्तिः प्राणापहारिणी ॥५६४॥
न्यधात्कृपणवित्तं स पूर्वसंचितनाशकृत् । विशुद्धे नृपतेः कोशे हिमे हिममिवाम्बुदः ॥५६५॥
कोशः कृपणवित्तेन प्रविष्टेन हि दूषितः । भुज्यते भूमिपालानां तस्करैरथवाऽरिभिः ॥५६६॥
लोभाभ्यासेन भूयोऽपि संचिन्वन्कोशमन्वहम् । आस्ते स्म लोहरगिरौ प्रहिण्वन्सर्वसंपदः ॥५६७॥
गौरकाश्रयिभिर्वट्टपञ्चकाद्यैर्नियोगिभिः । विधीयते स्म निःसारा महोत्पातैरिव क्षितिः ॥५६८॥
उच्चलक्ष्मापतौ शान्ते मूर्धारूढशिलोपमे । अबाधन्त पुनर्लोकं व्याधा इव नियोगिनः ॥५६९॥
प्रशस्तकलशस्यान्ते तद्भ्रातृतनयः परम् । कायस्थः कनको नाम श्लाघ्यामकृत संपदम् ॥५७०॥
नानादिगन्तरायातो दुर्भिक्षपतितो जनः । येनाविच्छिन्नसत्रेण शान्तव्यापद्व्यधीयत ॥५७१॥
संजातमुच्चलस्यान्ते येषां तत्त्वपरीक्षणम् । त एव चक्रिरे राज्ञा प्रमत्तेनाधिकारिणः ॥५७२॥
द्वारे तिलकसिंहः स तादृक्तेन व्यधीयत । राजस्थाने च जनकः काणस्तस्य सहोदरः ॥५७३॥
प्रतापैर्नृपतेस्तीक्ष्णैः करमाक्रान्तमण्डलः । जिताद्द्वाराधिपः सोपि स्वीचकारोरशाधिपात् ॥५७४॥
काकवंश्यस्तु तिलकः क्ष्माभुजा दत्तकम्पनः । निन्ये प्रकम्पमहितान्प्रकम्पन इव द्रुमान् ॥५७५॥
ग्राम्यशस्त्रभृता शेडराजस्थानाधिकारिणा । नृपप्रतापै रहिताः सज्जकेनापि निर्जिताः ॥५७६॥

सुस्सलके साथ उसकी मित्रता हो गयी थी ॥ ५६१ ॥ पूर्वकालके नरेशोंने राज्यपर व्याप्त कायस्थोंके प्रभुत्वको समाप्त कर दिया था। किन्तु जबसे गोरक सर्वाधिकारी बना, तबसे स्थिति ही बदल गयी ॥ ५६२ ॥ उसने सब विभागोंके राजोपजीवियोंको निकाल दिया और वह अहर्निशि केवल राजकोशसे अपना घर भरनेका काम करने लगा ॥ ५६३ ॥ उस पापीके मीठे स्वभावके कारण कोई उसकी क्रूरताको नहीं जान सका। जैसे विषकी मिठास प्राणहारिणी होती है, उसी तरह उसका मीठा स्वभाव भी बड़ा घातक था ॥ ५६४ ॥ सो कुछ ही दिनोंमे उसने ऐसा कुछ किया कि जिससे राज्यका सारा पूर्वसंचित कोश वैसे ही नष्ट हो गया, जैसे पानी बरसनेसे पर्वतोंकी बर्फ पिघल जाती है ॥ ५६५ ॥ राजाओंके कोशागारमें जब कोई कृपण व्यक्ति घुसता है, तब वह दूषित हो जाता है। ऐसी स्थितिमें वह कोश या तो पानीमे बह जाता है अथवा उसे चोर लूट लेते हैं ॥ ५६६ ॥ किन्तु लोभके अभ्यासवश वह कायस्थ नित्य धन संग्रह करता रहा। अबतक उसने जितना संग्रह किया था, वह सब लोहरमें जाकर जमा हो गया था ॥ ५६७ ॥ गौरकके अधीन रहकर काम करनेवाले वट्टपंजक आदि कर्मचारियोंने राज्यको उसी प्रकार निःसार कर दिया, जैसे महान् उत्पात धरतीको साररहित कर देते हैं ॥ ५६८ ॥ एक विशाल चट्टानके समान राजा उच्चल जब तक सिरपर था, तब तक तो किसीका कुछ वश नहीं चला। किन्तु उसके मरते ही व्याधोंके समान राजाके कर्मचारी फिर प्रजाको सताने लगे ॥ ५६९ ॥ प्रशस्तकलशका देहान्त हो जानेपर उसके भ्रातृपुत्र कायस्थ कनकने अटूट धन संग्रह किया था ॥ ५७० ॥ कश्मीर राज्यके किसी भी प्रान्तमे जब दुर्भिक्ष पड़ता था, तब लोग उसीकी शरणमे जाते थे और वह अनवरत अन्नदान करने लग जाता था। जिससे उनकी विपत्ति दूर हो जाती थी ॥ ५७१ ॥ राजा उच्चलके मर जानेके बाद छानबीन करनेपर जो लोग अपराधी पाये गये थे, वे ही अब प्रमादी राजा सुस्सलके द्वारा अधिकारी बना दिये गये थे ॥ ५७२ ॥ उस राजाने तिलकसिंहको द्वाराधीश और राजस्थानकी सुरक्षाके पदपर उसके काने भाई जनकको नियुक्त किया ॥ ५७३ ॥ राजा सुस्सलके परम तीक्ष्ण प्रतापसे द्वाराधीश तिलकसिंहने उरशदेशके नरेशपर चढाई कर दी और उससे राज्यकर अदा करनेकी स्वीकृति प्राप्त कर ली ॥ ५७४ ॥ इससे राजा सुस्सलने काकवंशज तिलकको सेनापति बना दिया। सेना हाथमें आते ही उसने राज्यके शत्रुओंको इस तरह कँपा दिया, जैसे वायु वृक्षोंको कँपा देती है ॥ ५७५ ॥ शेड राजस्थानकी सुरक्षाका अधिकारी सज्जक जो ग्रामीण शस्त्रास्त्र रखता था,

काकवंशाश्रयात्प्राप्तराजद्वारेण धीमता । अट्टमेलकभृत्येनाप्यवापीष्टेन मन्त्रिता ॥५७७॥
एवं स्वाहंक्रियात्यक्तगुणापेक्षेण मन्त्रिणः । कुर्वतोच्चावचांस्तेन कश्चित्कालोऽत्यवाह्यत ॥५७८॥
वितस्तापुलिने सोऽथ कर्तुं प्रारभतोन्नतम् । स्वस्य श्वश्र्वाश्च पत्न्याश्च नाम्ना सुरगृहत्रयम् ॥५७९॥
उत्पातवह्निना दग्धो निःसंख्यधनदायिना । तेन दिद्दाविहारोऽपि नूतनत्वमनीयत ॥५८०॥
पुरीमट्टिलिकां जातु स प्रयातोऽन्तिकस्थितैः । आप्तैः प्रैर्यत कल्हाद्यैर्गर्गोच्छेदाय भूपतिः ॥५८१॥
गार्गिः कल्याणचन्द्राख्यस्तानतिक्रम्य हि स्फुरन् । मृगयादिक्षणे तेषामसूयामुदपादयत् ॥५८२॥
सर्वाभ्यधिकसामर्थ्यं तं निग्राह्यं निवेद्य ते । नित्योपजपनैर्गर्गे विक्रियामनयन्नृपम् ॥५८३॥
बद्ध्वा त्वां लोहरे भूभृदिच्छति क्षेप्तुमित्यथ । गर्गः शशङ्के भृत्येन राज्ञा चैकेन बोधितः ॥५८४॥
ततः स ससुतस्तत्र पलाय्य स्वभुवं ययौ । दिनैर्भूपोऽपि संप्राप्तः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥५८५॥
अन्योन्यशङ्कया भेदं यातयो राजगर्गयोः । चाक्रिकैः कृतसंचारैर्वैरं प्रौढिमनीयत ॥५८६॥
स्यालं गर्गस्य विजयं स्नेहशेषवशंवदः । समीपात्स त्यजन्राजा पश्चात्तापेन पस्पृशे ॥५८७॥
कारायां गर्गशत्रुर्यस्तेन पूर्वं व्यधीयत । स मल्लकोष्ठकस्तस्मिन्कालेऽमुच्यत बन्धनात् ॥५८८॥
निबद्धयौनसंबन्धं डामरैरपरैः समम् । तं कारयित्वा सामर्षो निनाय बलितां नृपः ॥५८९॥
गर्गैर्युद्धाय निर्याते राजसैन्येऽथ पूर्ववत् । गर्गेण कदनं चक्रे योधानाममरेश्वरे ॥५९०॥
तत्र सर्वातिशायिन्या वीरवृत्त्या नृपाश्रितः । शमालाडामरः प्राप प्रथां पृथ्वीहरः परम् ॥५९१॥
रणे द्वारपतेर्गर्गनिर्जितस्य पलायने । शौर्यं तिलकसिंहस्य प्राप सर्वोपहास्यताम् ॥५९२॥
हतशेषाः क्षताः शस्त्रवस्त्रादि त्याजिता भटाः । तदीया गर्गचन्द्रेण कारुण्यात्केऽपि रक्षिताः ॥५९३॥

उसने भी राजाके प्रतापकी आड़में बहुतेरे लोगोंको परास्त कर दिया था ॥ ५७६ ॥ बादमें काकवंशका आश्रय लेकर राजद्वार पहुँचे हुए अट्टमेलक नामके एक साधारण सेवकने मंत्रिपद प्राप्त कर लिया ॥ ५७७ ॥ इस प्रकार स्वाभिमान त्यागकर उच्च तथा अधम मंत्रियोंकी नियुक्ति करते हुए उस राजाने कुछ समय बिताया ॥ ५७८ ॥ तदनन्तर वितस्ता नदीके तटपर उसने अपने, अपनी सास तथा अपनी पत्नीके नामसे तीन बड़े ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिर बनवाना आरम्भ किया ॥ ५७९ ॥ असंख्य धन देनेवाले राजा सुस्सलने दवाग्निसे भस्मीभूत दिद्दा-विहारका भी पुनरुद्धार करके एकदम नया कर दिया ॥ ५८० ॥ एक बार वह राजा किसी कामसे अट्टिलिकापुरी गया था। तब वहाँके आस-पासवाले कल्ह आदि आप्तजनोंने उसे गर्गका मूलोच्छेद कर देने की सलाह दी ॥ ५८१ ॥ क्योंकि गर्गका पुत्र कल्याणचन्द्र वहाँ मृगया आदिके अवसरोंपर विभिन्न प्रकारके उत्पात मचाकर उन लोगोंको सताया करता था ॥ ५८२ ॥ इस प्रकार सर्वाधिक शक्तिशाली राजाको उभाड़कर उन लोगोंने रात-दिन कान भर-भरके गर्गके मनमें भी राजाके प्रति विद्रोहकी भावना भर दी ॥ ५८३ ॥ इसी बीच एक राजसेवकने जाकर गर्गसे कहा कि 'राजा आपको बाँधकर लोहरके कारागारमें बन्द कर देना चाहता है'। यह सुनकर गर्ग और भी सशंक हो उठा ॥५८४॥ तदनन्तर गर्ग पुत्रको लेकर अपने घर चला गया और राजा भी अट्टिलिकापुरी-से लौटकर अपनी राजधानीको लौट गया ॥ ५८५ ॥ इस प्रकार गर्ग और राजा सुस्सलके मनमें भेद उत्पन्न करके चाक्रिकोंने बार-बार जाकर उन दोनोंका वैरभाव पक्का कर दिया ॥ ५८६ ॥ राजा सुस्सल गर्गके साले विजयपर अत्यधिक स्नेह रखता था। सो उसे त्यागते समय राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ ॥ ५८७ ॥ गर्गके जिस शत्रु मल्लकोष्ठको राजाने जेलमें बन्द कर रक्खा था, उसे अब उसने छोड़ दिया ॥ ५८८ ॥ यौन सम्बन्धके कारण गर्गसे जिन डामरोंका हेल-मेल था, उन्हें फोड़कर राजाने उसका प्रबल वैरी बना दिया ॥ ५८९ ॥ तदनन्तर पूर्ववत् राजसेना युद्ध करने गयी और अमरेश्वरमें गर्गने वह सारी सेना काट डाली ॥ ५९० ॥ उन दिनों राजा सुस्सलके यहाँ शमाला नामका एक डामर था। वह सर्वश्रेष्ठ वीर पृथ्वीहरके नामसे संसारमें विख्यात था ॥५९१॥ गर्गसे पराजित होकर द्वाराधीश तिलकसिंह जब भागा, तब उसके शौर्यका बड़ा उपहास हुआ ॥ ५९२ ॥ बाकी

वह्निसात्क्रियमाणेषु वीरदेहेषु सर्वतः । राजसैन्ये चिताग्नीनां गणना कापि नाभवत् ॥५९४॥
कृष्टसैन्येन राज्ञाऽथ गर्गो निर्दग्धमन्दिरः । संत्यज्य लहरं प्रायाद्गिरिं धुडावनाभिधम् ॥५९५॥
गिरिमूलोपविष्टस्य भूपतेः सैनिकैः समम् । तेषु तेष्वकरोन्नित्यं गिरिमार्गेषु संगरम् ॥५९६॥
कूटयुद्धैर्नृपानीकं प्रतिरात्र्युपतापयन् । रणे त्रैलोक्यराजादिप्रमुखांस्तन्त्रिणोऽवधीत् ॥५९७॥
फाल्गुने हिमसंभारभीमे परिमितानुगः । स धीरो राज्यपि रिपौ न धैर्येण व्ययुज्यत ॥५९८॥
धैर्यवान्काकवंश्यस्तु तिलकः कम्पनापतिः । परं शिखरिशृङ्गस्थं शक्तोऽभूत्तं प्रधावितुम् ॥५९९॥
पीडितस्तेन संप्रेष्य स्वभार्यातनयेऽन्तिकम् । निन्येऽनुकूलतां भूपं प्रसादच्छादितक्रुधम् ॥६००॥
गूढमन्युर्नृपः संधिं बद्ध्वा प्रचलितस्ततः । तं मल्लकोष्ठकं वृद्धिं निनाय न पुनः शमम् ॥६०१॥
सेहेऽथ लहरे द्वित्रान्मासानविशदे नृपे । स मल्लकोष्ठकासह्यस्पर्धां नीचविमाननाम् ॥६०२॥
तन्मध्ये नृपतिर्गूढं विभेदं तद्बलं नयन् । तदीयानकरोद्भृत्यान्कर्णादीन्स्वहितावहान् ॥६०३॥
स खिन्नो नीचदायादसमशीर्षिकयाऽथ तैः । प्रेरितः पार्थिवाभ्यर्णं सदारतनयोऽविशत् ॥६०४॥
स्नातुं प्रवृत्तः पार्श्वस्थं स्नानद्रोण्युपरिस्थितः । अथैकदा तमाक्षिप्तं शस्त्रमत्याजयन्नृपः ॥६०५॥
कुर्यादास्थामवष्टम्भे कोऽन्यः पौरुषगर्वितः । आक्षेपसमये सोऽपि यत्क्लैव्यं भीरुवद्ययौ ॥६०६॥

उत्खातरोपितनृपः क नु सोभिमानः कार्पण्यभागितरलोकसमा क वृत्तिः ।
यद्वावशं नटयति प्रकटं विधातुरिच्छैव यन्त्रगुणपंक्तिरिवात्र जन्तुम् ॥६०७॥

बचे योद्धा अपने शस्त्र-वस्त्रादि त्याग तथा घायल होकर धरतीपर लोट गये। उनमेंसे कुछको गर्गचन्द्रने दया करके बचा लिया ॥ ५९३ ॥ जिस समय उस रणमें मरे हुए राजसेनाके सैनिकोंका दाहसंस्कार किया गया, तब कितनी चितायें लगी थीं, उनकी गणना नहीं की जा सकी ॥ ५९४ ॥ उसके कुछ ही देर बाद राजा अपनी विशाल वाहिनी लेकर वहाँ जा पहुँचा। पहुँचते ही उसने गर्गके महलमें आग लगा दी, जिससे उसका सर्वस्व जलकर राख हो गया। तब गर्ग वहाँसे भागकर धुडावना नामक लहरगिरिपर चला गया ॥ ५९५ ॥ वहाँके प्रत्येक पर्वतकी तलैटीमें छावनी डालकर पडे हुए राजसैनिकोंके साथ उसकी नित्य झड़पें हुआ करती थीं ॥५९६॥ इस प्रकार कूटयुद्ध करके गर्ग राजाकी सेनाको सदा परेशान किये रहता था। इसी युद्धमें उसने त्रैलोक्यराज्य आदि प्रमुख राजतंत्रियोंको मार डाला ॥ ५९७ ॥ वह फाल्गुनका महीना था, अतएव चारों ओर वर्फ ही वर्फ दिखायी देती थी और बहुत थोडेसे अनुचर उसके साथ थे। ऐसी परिस्थितिमें इतने बडे राजासे टक्कर ले करके भी वीर गर्गने अपना धैर्य नहीं खोया था ॥ ५९८ ॥ तदनन्तर परम धैर्यशाली राजसेनापति तिलक बहुत ऊँचे शिखरपर छावनी डालकर रहनेवाले गर्गको वहाँसे भी भागनेके लिए विवश करनेमें सफल हो गया ॥ ५९९ ॥ इस प्रकार तिलक द्वारा बाध्य किये जानेपर गर्गने अपनी भार्याको पुत्रके पास भेज दिया और स्वयं राजा सुस्सलके पास जा पहुँचा। वहाँ बात-चीत करके उसने फिर राजाको अपने अनुकूल कर लिया ॥ ६०० ॥ तदनन्तर अपना क्रोध दबाकर राजाने गर्गके साथ सन्धि की और वहाँसे चल पडा। चलते समय उसने मल्लकोष्ठकी पदोन्नति कर दी, किन्तु उसे अपने साथ नहीं लिया ॥ ६०१ ॥ क्योंकि दो-तीन महीने तक राजाका दिल साफ नहीं था, तबतक राजा सुस्सलके ससुर गर्गचन्द्रको मल्लकोष्ठक सरीखे नीच पुरुषकी स्पर्धा और अपमान सहना पड़ा था ॥ ६०२ ॥ इसी बीच राजाने प्रच्छन्न रीतिसे गर्गकी सेनामें फूट डाल दी और कर्ण आदि उसके मुख्य-मुख्य सेवकोंको फुसलाकर अपना हितकारी बना लिया ॥ ६०३ ॥ तदनन्तर अपनेको राजा द्वारा नीच दायादोंके समकक्ष समझे जानेके कारण खिन्न गर्गचन्द्र सेवकोंकी प्रेरणासे अपनी स्त्री और पुत्रके साथ राजाके समीप पहुँचा ॥ ६०४ ॥ जब राजा स्नान करने गया और स्नानकी टंकीपर बैठा, तब भी गर्ग वहाँ ही खड़ा रहा। तभी राजाने घुड़ककर उससे शस्त्र रखवा लिया ॥ ६०५ ॥ अपने पौरुषसे गर्वित कौन वीर इस प्रकारकी झिड़कियाँ सहेगा ? तथापि विवश होकर गर्गने वैसे आक्षेपको भी कायरके समान सह लिया ॥ ६०६ ॥ कहाँ

अशक्नुयुधि ये द्रष्टुमपि तं नास्य ते शठाः । केपि राजप्रिया बाहू ग्रन्थिबद्धौ तथा व्यधुः ॥६०८॥
श्रीसंग्राममठाभ्यर्णमन्दिरस्था नृपे स्वयम् । संक्रान्ते प्राङ्गणं युद्धात्कल्याणाद्या व्यरंसिषुः ॥६०९॥
जीवन्तं पितरं श्रुत्वा विदेहो गर्गनन्दनः । सान्त्वमानः स्वयं राज्ञा कृच्छ्राच्छस्त्रं समार्पयत् ॥६१०॥
गर्गः सदारतनयो राजौकस्येव भूभुजा । उपाचर्यत दाक्षिण्याद्बद्धो भोगैर्निजोचितैः ॥६११॥
गार्गिः पलाय्य यातोपि चतुष्को निजमन्दिरात् । अवर्णभाजा कर्णेन दृष्ट्वा राज्ञः समर्पितः ॥६१२॥
रूढच्छन्नशमक्रोपस्य प्रसादस्य महीभुजः । अन्तःशुद्धिविहीनस्य व्रणस्येव न निश्चयः ॥६१३॥
दरद्राजे मणिधरे दिदृक्षावागते नृपः । तत्संगमाय निर्यातो गर्गं भृत्यैरघातयत् ॥६१४॥
द्वित्रान्मासान्सोऽनुभूतकारागारस्थितिर्निशि । सत्रा त्रिभिः सुतैः कण्ठबद्धरज्जुर्न्यपात्यत ॥६१५॥
निष्ठां विम्बमुखान्निन्ये यथैव स नृपानुगैः । तथैव कण्ठबद्धाश्मा सपुत्रोऽक्षिप्यताम्भसि ॥६१६॥
तं चतुर्नवते वर्षे हत्वा भाद्रपदे नृपः । सुखेच्छुः प्रत्युत प्राप दुःखमुद्भूतविप्लवः ॥६१७॥
कल्हे कालिञ्जराधीशे महादेव्याश्च मातरि । मल्लाभिधायां शान्तायां स ततोऽभूत्सुदुःखितः ॥६१८॥
तन्मध्ये नागपालाख्यः सोमपालस्य सोदरः । तेन प्रतापपालाख्ये हते द्वैमातुरेऽग्रजे ॥६१९॥
शङ्कितस्तन्निहन्तारं हत्वामात्यं पलायितः । त्यक्तस्वदेशः शरणं ययौ सुस्सलभूभुजम् ॥६२०॥
क्रुद्धः स कारणात्तस्मात्प्रणयं वशवर्तिनः । अगृह्णन्सोमपालस्य निश्चिकायाभिषेणनम् ॥६२१॥

बार-बार अपने सिंहासनसे उतरते और फिर बैठाये गये राजे, कहाँ उनका कार्पण्यपूर्ण अभिमान और कहाँ नीच पुरुषोंसदृश उनका व्यवहार ! इन सब बातोंको देखकर यही कहना पड़ता है कि विधाताकी इच्छा ही सबसे प्रबल होती है, जो सबको विवश करके यंत्रचालित कठपुतलियोंके समान जब जिसे जिस रूपमें चाहती है, उस रूपमें उपस्थित कर देती है ॥ ६०७ ॥ रणभूमिमें जो लोग गर्गके समक्ष आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे, राजा सुस्सलके प्रिय उन्हीं शठोंने उसके दोनों हाथोंको बाँधकर गाँठ लगा दी ॥ ६०८ ॥ श्रीसंग्राममठके पासवाले महलमें कल्याण आदि कुछ राजभृत्य रहा करते थे। वे इतने ढीठ हो गये थे कि एक बार राजा वहाँ गया और उनके सामनेसे ही गुजरा, किन्तु किसीने उधर ध्यान नहीं दिया और जो खेल खेल रहे थे सो खेलते रहे ॥ ६०९ ॥ अपने पिताको जीवित सुनकर गर्गतनय विदेह उससे मिलने गया । तब स्वयं राजाने सान्त्वना देकर बड़ी कठिनाईसे उसका शस्त्र रखवाया ॥ ६१० ॥ उस समय स्त्री-पुत्र समेत गर्ग राजा सुस्सलके ही महलमें रहता था। यद्यपि उन दिनों वह वहाँ कैदीके रूपमें रह रहा था, तथापि राजाने उसे अपने ही समान सुख-सुविधा दे रक्खी थी ॥ ६११ ॥ एक बार गर्गका पुत्र चतुष्क अपने कमरेमेंसे भागने लगा, तत्काल कर्णने दौड़कर राजाको यह खबर दी ॥ ६१२ ॥ जैसे व्रण (घाव) का कोई निश्चय नहीं रहता कि कब विगड़ जाय, उसी प्रकार क्रोध और कृपाको छिपा रखनेवाले मलिन हृदय राजाका कोई निश्चय नहीं रहता कि कब क्या कर गुजरे ॥ ६१३ ॥ एक दिन दरदराज मणिधर गर्गसे मिलने आया और जब उससे मिलनेके लिए गर्ग अपने कमरेसे बाहर निकला, उसी समय राजा सुस्सलने अपने भृत्यों द्वारा उसे मरवा डाला ॥ ६१४ ॥ इस प्रकार दो-तीन महीने कारावासका दुःख अनुभव कराके रात्रिके समय तीनों पुत्रोंके साथ मृत गर्गके गलेमें रस्सी बाँधकर छतसे नीचे फेंक दिया गया ॥ ६१५ ॥ उस समय बिम्बने गर्गके प्रति कुछ निष्ठा व्यक्त कर दी थी, सो राजाके भृत्योंने उसके तथा उसके पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उन्हें भी नीचे फेंक दिया ॥ ६१६ ॥ इस प्रकार ४१९४ लौकिक वर्षके भादपदमासमें सुख प्राप्तिके निमित्त राजाने गर्गकी हत्या करायी । किन्तु राज्यमें उमड़े हुए विप्लवके कारण उसे भयानक दुःख भोगना पड़ा ॥ ६१७ ॥ कालिंजर देशके राजा कल्ह तथा महादेवीकी माता मल्लाके मर जानेपर राजा सुस्सलको बहुत दुःख हुआ ॥ ६१८ ॥ उसी बीच सोमपालने अपने सगे भाई नागपाल तथा सौतेले भाई प्रतापपाल इन दोनोंको मरवा डाला ॥ ६१९ ॥ तदनन्तर यह भेद छिपानेके लिए सोमपाल अमात्यकी भी हत्या करके भागा और अपना देश त्यागकर राजा सुस्सलकी शरणमें जा पहुँचा ॥ ६२० ॥ पहले तो राजा सब

निश्चित्य सर्वोपायानामसाध्यं विधुरं नृपम् । स भिक्षाचरमानिन्ये तस्य वल्लापुराद्रिपुम् ॥६२२॥
निशम्यानीतदायादं तं प्रकोपाकुलो नृपः । दत्तास्कन्दोऽविशत्तीव्रतेजा राजपुरीं ततः ॥६२३॥
दत्त्वा राज्ये नागपालं सोमपाले पलायिते । सप्त मासान्स तत्रासीत्तांस्तान्संत्रासयन्रिपून् ॥६२४॥
राज्ञां वज्रधरादीनां राजा वज्रधरोपमः । सेवावसरदानेन प्रसादविवशोऽभवत् ॥६२५॥
भ्रमतां चन्द्रभागादिसरित्तीरेषु सर्वतः । तत्सैन्यानां मुखमपि द्रष्टुं शेकुर्न वैरिणः ॥६२६॥
अग्रगास्यभवत्तस्य तिलकः कम्पनापतिः । पृथ्वीहरो डामरश्च मार्गरक्षणदीक्षितः ॥६२७॥
धार्मिको नृपतिर्ब्रह्मपुरीं देवगृहांश्च सः । मण्डलं द्विषतो रक्षन्प्रपेदे मौलिकं फलम् ॥६२८॥
तस्येन्द्रविभवस्यान्यत्सामग्र्यं वर्ण्यते कियत् । आययावश्वघासोऽपि सैन्ये यस्य स्वमण्डलात् ॥६२९॥
तत्र प्रसङ्गे तत्राप्तीभवन्सुजनवर्धनः । दूरस्थस्यानयद्रूढिं गौरकस्योपरि क्रुधम् ॥६३०॥
राष्ट्रगुप्त्यै स्वयं राज्ञा स्थापितः स स्वमण्डले । अज्ञायि पैशुनाशुद्धबुद्धिना निखिलार्थहृत् ॥६३१॥
तत्संबन्धेन जनकं स निन्दन्नगराधिपम् । मनस्तिलकसिंहस्य तद्भ्रातुरुदवेजयत् ॥६३२॥
हृत्वाधिकारं त्वस्याथ क्रुद्धः पर्णोत्ससंभवम् । अनन्तात्मजमानन्दाभिधं द्वाराधिपं व्यधात् ॥६३३॥
सोमपालादयः श्लाघ्यास्तदा प्रकृतयोऽभवन् । राज्ञस्तथा स्थितस्यापि न याः सविधमाययुः ॥६३४॥
स पञ्चनवते वर्षे वैशाखेऽथ स्वमण्डलम् । प्राविशन्नागपालोऽपि राज्यभ्रष्टस्तमन्वगात् ॥६३५॥
दुःसहातङ्कदूतेन लोभेन क्षोभितस्ततः । अदण्डयच्च वास्तव्याननयच्चाल्पतां व्ययम् ॥६३६॥
निवार्य गौरकं कार्यात्कार्यिणस्तत्समाश्रितान् । तस्य दण्डयतः सर्वे विरागं मन्त्रिणो ययुः ॥६३७॥

वृत्तान्त सुनकर उसपर बिगड़ा, किन्तु वादमें शरणागत तथा वशवर्ती होनेके कारण राजपुरीमें सोमपालका ही राज्याभिषेक करानेका उसने निश्चय किया ॥ ६२१ ॥ वादमें उसने सब उपायोंसे असाध्य वह काम पूरा करनेके लिए उस राज्यके शत्रु भिक्षाचरको वल्लापुरसे बुलवाया ॥ ६२२ ॥ तभी राजा सुस्सलको मालूम हुआ कि राजपुरीके अधिकारियोंने किसी दूसरे दायादको बुला लिया है, यह जानकर वह क्रोधसे व्याकुल हो गया और तुरन्त द्रुतगतिसे चलकर शीघ्र राजपुरीमें जा पहुँचा ॥ ६२३ ॥ उसके पहले नागपालको राज्य देकर सोमपाल भाग गया था। तब सात महीने तक विभिन्न शत्रुओंको त्रस्त करता हुआ नागपाल किसी तरह समय विताता रहा ॥ ६२४ ॥ वज्रधारी आदि राजाओंमें वज्रधर (इन्द्र) सरीखा प्रतापी राजा सुस्सल वैसी स्थितिमें सेवाका अवसर प्रदान करनेके लिए विवश हो गया ॥ ६२५ ॥ चन्द्रभागा आदि नदियोंके तटपर चक्कर काटती हुई उसकी सेनाका मुँह भी वैरीगण नहीं देख सके ॥६२६॥ सेनापति तिलक उस सेनाका अग्रणी था और पृथिवीहर डामर मार्गकी रक्षाके कार्यपर तत्पर था ॥ ६२७ ॥ वह धार्मिक राजा सुस्सल ब्राह्मणोंकी नगरी, देवमन्दिरों तथा शत्रुओंसे उस राजपुरी मण्डलकी रक्षा करके अपने आगमनका मूल फल पा गया ॥ ६२८ ॥ इन्द्रके समान वैभवसम्पन्न राजा सुस्सलकी सम्पत्तिका वर्णन कहाँ तक किया जाय, जिसके घोड़ोंके लिए घास तक कश्मीरमंडलसे आती थी ॥ ६२९ ॥ उस समय आप्त सदृश आचरण करनेवाला सुजनवर्धन दूर हीसे देखकर गौरकपर क्रुद्ध हो उठा ॥ ६३० ॥ रात-दिन चुगली सुननेके कारण अशुद्धबुद्धि राजा सुस्सलने उसे सब काममें कुशल व्यक्ति समझकर अपने कश्मीरमण्डलमें राष्ट्ररक्षाके कामपर लगा दिया था ॥ ६३१ ॥ इस सम्बन्धसे नगराधीश जनककी निन्दा कर करके उसने उसके भाई तिलकसिंहका मन उद्विग्न कर दिया ॥ ६३२ ॥ अन्तमें कुपित सेनापति तिलकसिंहने जनकका सब अधिकार छीनकर पर्णोत्समें उत्पन्न अनन्तके पुत्र आनन्दको द्वाराधीश बना दिया ॥ ६३३ ॥ उस स्थितिमें भी जो कभी राजाके समक्ष नहीं आये थे, वे सोमपाल आदि लोग आदरणीय मंत्री बन गये ॥ ६३४ ॥ इस प्रकार ४१९५ लौकिक वर्षके वैशाखमासमें सुस्सल अपने नगरको लौटा और राजा नागपाल भी उसके साथ चला आया ॥ ६३५ ॥ तदनन्तर दुःसह आतंकके दूतरूपी लोभसे क्षुब्ध होकर राजा सुस्सल नागरिकोंसे दण्डरूपमें धन वसूलता हुआ व्यय कम करने लगा ॥ ६३६ ॥ वादमें गौरकको भी

अकाण्डे व्यवहारेषु स विपर्यासितेष्वभूत्। अवसन्नधनो गाढमप्रौढ्यान्नवमन्त्रिणाम् ॥६३८॥
सौवर्णीरिष्टिकाः कृत्वा प्राहिणोल्लोहरान्तरे। काञ्चनाद्रिप्रतीकाशान्स्वर्णराशीनढौकयत् ॥६३९॥
अथ दण्डयितुं गर्गभृत्यान्दण्डाधिकारिणम्। लहरेऽकृत गर्गस्य मन्त्रिणं गञ्जकाभिधम् ॥६४०॥
तं दण्डभीतैर्गर्गस्य सेवकैराश्रितस्ततः। विश्वस्तमवधीत्क्रुध्यंश्छद्मना मल्लकोष्ठकः ॥६४१॥
लहरे विप्लुते राजा द्वैमातुरमथाग्रजम्। मल्लकोष्ठस्यार्जुनाख्यं बबन्ध सविधस्थितम् ॥६४२॥
हस्तं च सड्डचन्द्रस्य पुत्रं गोत्रिणमप्यसौ। बद्ध्वा व्यधाद्दिद्दकाख्यं तस्य तद्भ्रातरं हितम् ॥६४३॥
पूर्ववैरं स्मरन्सूर्यं सपुत्रं तं परांस्तथा। बबन्धानन्दचन्द्रादीन्नीत्युल्लङ्घनमाचरन् ॥६४४॥
निर्गते लहरं लल्लकोष्ठके विद्रुते ततः। आरोप्यार्जुनकोष्ठं तं शूले कोपाद्व्यपादयत् ॥६४५॥
निवेश्य सैन्यं तत्राथ प्रविष्टस्य पुरं ययुः। डामरा निखिलास्तस्य वैरं विश्वस्तघातिनः ॥६४६॥
क्रुध्यन्पृथ्वीहरायापि कृतसेवाय मन्त्रिभिः। आदिष्टैः कम्पनेशाद्यैरवस्कन्दमदापयत् ॥६४७॥
कथंचित्स तु निस्तीर्णो जयन्तविषयौकसः। बन्धोः क्षीराभिधानस्य प्रविवेशोपवेशनम् ॥६४८॥
दिनेऽवन्तिपुरादीनां पुराणामन्तरेण तम्। व्रजन्तं विधुरं केचिन्नाशकन्बाधितुं द्विपः ॥६४९॥
तद्वैधुर्यविधानं तत्प्रजासंहारकार्यभूत्। प्रमादाद्भूपतेः क्रुद्धवेतालोत्थापनोपनम् ॥६५०॥
क्षीरोऽथ तीक्ष्णधीर्वृद्धः सह पृथ्वीहरेण सः। अढौकयच्छमाङ्गासान्तरेऽष्टादश डामरान् ॥६५१॥
अभेद्यसंघांस्ताञ्जेतुं निर्यातो विजयेश्वरम्। न्ययुङ्क्त भूभृत्संभ्रान्तस्तिलकं कम्पनापतिम् ॥६५२॥

सर्वाधिकार पदसे पृथक् करके उसके सहायक कर्मचारियोंको निकाल बाहर किया। राजा सुस्सलके इस दण्डको देखकर सभी मंत्री तटस्थ हो गये॥ ६३७॥ सहसा इस प्रकार उलट-फेर करनेसे नवीन मंत्रियोंको राजकार्यका अनुभव न होनेके कारण शीघ्र ही खजानेका सारा धन चुक गया और राज्यपर अचानक भीषण अर्थ-संकट आ उपस्थित हुआ॥ ६३८॥ किसी समय सोनेकी ईंटे बना-बनाकर स्वर्णपर्वतके समान सोनेकी राशियाँ लोहर भेजी गयी थीं॥ ६३९॥ सो उसका पता लगाने और गर्गके भृत्योंको दण्ड दिलानेके लिए राजाने लहरमे गर्गके मंत्री गञ्जकको मंत्रीके पदपर नियुक्त कर दिया॥ ६४०॥ अतः दण्डसे भयभीत गर्गके सेवक तुरन्त गञ्जकके आश्रित बन गये। इस प्रकार जब गञ्जक उन लोगोंपर विश्वास करने लगा, तब एक दिन छल करके क्रुद्ध मल्लकोष्ठकने गञ्जकका वध कर दिया॥ ६४१॥ लहरमे इस प्रकार विप्लवकी खबर सुनकर राजा सुस्सलने पास ही विद्यमान मल्लकोष्ठकके सौतेले बड़े भाईको कैद कर लिया॥ ६४२॥ उसी सिलसिलेमे उसने सड्डचन्द्रके पुत्र हस्त, उसके सगोत्री दिद्दक और उसके भाई हितको भी बँधवा लिया॥ ६४३॥ इसी प्रकार नीतिका उल्लंघन करके राजा सुस्सलने पूर्व वैरका स्मरण करते हुए पुत्रसमेत सूर्य तथा आनन्दचन्द्र आदि अन्यान्य लोगोंको भी उसने कैद कर लिया॥ ६४४॥ तबतक मल्लकोष्ठक जेलसे निकलकर लहरको भाग गया। यह सुनकर सुस्सल मारे क्रोधके बावला हो गया और उसी आवेशमे उसने अर्जुनकोष्ठकको सूलीपर चढाकर मार डाला॥ ६४५॥ तदनन्तर वहाँ ही सेनाको छोड़कर वह नगरमें गया, किन्तु उस विश्वासघातीका यह घृणित व्यवहार देखकर सभी डामर उसके वैरी बन गये॥ ६४६॥ उसके बाद राजा सुस्सल अपने विश्वस्त सेवकपर भी कुपित हो गया और मंत्रियो तथा सेनापति आदिको आदेश देकर उसके ऊपर भी प्रहार करा दिया॥ ६४७॥ किन्तु पृथ्वीहरको किसी तरह पहले ही इस बातका पता चल गया था, जिससे वह भागकर जयन्त देशनिवासी अपने भाई क्षीरके घर चला गया॥ ६४८॥ वह दिनके समय ही अवन्तिपुर आदि नगरोंके आगे बढ़ चुका था, इसलिए पृथ्वीहरके शत्रु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके॥ ६४९॥ पृथ्वीहरके साथ किया हुआ राजाका यह व्यवहार प्रजाजनोंके संहारका कारण बन गया। उसका यह काम तो ऐसा था कि जैसे सोते हुए वैतालको जगा दिया गया हो॥ ६५०॥ वृद्ध क्षीरकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। सो उसने पृथ्वी-हरके साथ डामरोंको शमंगासा भेज दिया॥ ६५१॥ तदनन्तर अभेद्य संघोंपर विजय प्राप्त करनेके निमित्त

संग्रामैः खण्डशः कुर्वन्स तानतुलविक्रमः। विद्रावयामास रयैः पुरोवायुरिवाम्बुदान् ॥६५३॥
संमानावसरे तस्य जित्वायातस्य डामरान्। प्रवेशं प्रत्युत नृपो न प्रादादवमानकृत् ॥६५४॥
स भग्नमानो नगरं प्रविष्टे नृपतौ ततः। खिन्नः स्ववेश्मन्यवसत्स्वामिकार्ये निरुद्यमः ॥६५५॥

संप्राप्ताः समशीर्षिकां विसदृशैस्तुल्यैर्निरुद्धोदया

वैरे विद्विषतां कृता धुरि परं संधौ बहिः स्थापिताः।

कार्यान्तेऽद्भुतकर्मकौशलकृतावज्ञा विरागस्पृशः

सर्पाकीर्णमिवाशु वेश्म गृहिणो भृत्यास्त्यजन्ति प्रभुम् ॥६५६॥

त्यक्तकार्यानुसंधाने तस्मिन्सर्वत्र डामराः। संभूतिं विक्रियां निन्युः कृषिं क्षयघना इव ॥६५७॥
आतङ्कोद्वेजितैर्विप्रैः कृतप्रायैः पुरे पुरे। वह्नौ हुताग्निभिर्घोरा कुकीर्तिरुदपद्यत ॥६५८॥
उपसर्गेण तुरगाः करभाश्च क्षयं गताः। न्यवेदयन्मण्डलस्य प्रत्यासन्नमहाभयम् ॥६५९॥
प्रत्यासन्नाशुभा कम्पं भयेन जनता दधे। आसन्नवज्रपतना वातेनेव द्रुमावलिः ॥६६०॥
अथ षण्णवताब्दस्य प्रारम्भे डामरावलिः। ऊष्मस्पृष्टा हिमानीव बभूवापतनोन्मुखी ॥६६१॥
प्रथमं देवसरसाद्विप्लवप्रसरस्ततः। मुखं व्यथावहो गण्ड इव पाकं व्यदर्शयत् ॥६६२॥
एककार्यत्वमानीय टिक्कादीन्गोत्रजान्बली। स्थामस्थं विजयोऽभ्येत्य राजानीकमवेष्टयत् ॥६६३॥
तत्र कायस्थपुत्रोऽपि स्थामस्थानीकनायकः। संरम्भं नागवट्टाख्यः सेहे तस्य चिरं युधि ॥६६४॥
कथंचिदथ भूपेन प्रार्थितः कम्पनापतिः। निर्ययौ स्वामिदौरात्म्यसंस्मृतिश्लथसौष्ठवः ॥६६५॥

राजा सुस्सल विजयेश्वरमें जा पहुँचा और वहाँ यह काम पूरा करनेका भार कम्पनेश तिलकको सौंपा ॥ ६५२ ॥ तदनुसार अतुलित पराक्रमी तिलकने खण्डयुद्ध प्रारम्भ करके शत्रुओंको इस तरह उड़ा दिया, जैसे सामनेकी वायु बादलोंको उड़ा देती है ॥ ६५३ ॥ इस प्रकार डामरोंपर एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त करके सेनापति तिलक जब राजाके पास पहुँचा तो उसे सम्मानके स्थानपर अपमान मिला और वह भीतर राजाके समक्ष नहीं जा सका ॥ ६५४ ॥ इस प्रकार अपमानित होकर तिलक राजाके साथ जब राजधानी पहुँचा तो बहुत खिन्न मनसे वह अपने घर गया और राजाके कार्यसे उसका मन उचट गया ॥ ६५५ ॥ क्योंकि जिस प्रभुके यहाँ साधारण श्रेणीके नये लोग पुराने सेवकोंकी बराबरीके पदपर पहुँचा दिये जाते हैं, समकक्ष लोगोंकी तरक्की रुक जाती है, शत्रुके साथ वैर तो करा दिया जाता है, किन्तु सन्धिके समय बात नहीं पूछी जाती और अद्भुत कौशलके साथ किये गये कार्यको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है तो उस स्वामीके प्रति सेवकोंके मनमें विरागकी भावना भर जाती है। जिससे वे साँपसे भरे घरके समान उसे त्याग देते हैं ॥ ६५६ ॥ तदनन्तर जैसे प्रलयंकर मेघ खेतीको चौपट कर देते हैं, उसी प्रकार वे अपमानित डामर ऐक्यबद्ध होकर समस्त राजकीय विभागोंमें उथल-पुथल मचाने लगे ॥ ६५७ ॥ इधर राजा सुस्सलके आतंकसे उद्विग्न ब्राह्मण नगर-नगर और गाँव-गाँवमें राजाकी कुकीर्ति फैलाने लगे ॥ ६५८ ॥ उसी बीच एक ऐसी भीषण बीमारी फैल गयी कि जिससे राजाके बहुतेरे घोड़े-बछेड़े मर गये और अन्य लोगोंने आकर राज्यमें बहुत बड़ा भय उपस्थित होनेका समाचार दिया ॥ ६५९ ॥ इस प्रकार अशुभ समयको समक्ष उपस्थित देखकर जनतामें आतंक छा गया और लोग भयसे वैसे ही काँप उठे, जैसे आस-पास बिजली गिरनेसे बगीचेके सब वृक्ष काँप उठते हैं ॥ ६६० ॥ इस प्रकार ४१९६ लौकिक वर्षके आरम्भमें डामरोंका समूह वैसे ही छिन्न-भिन्न होने लगा, जैसे गर्मी पाकर बर्फ पिघलने लगती है ॥ ६६१ ॥ तदनन्तर सर्वप्रथम देवसरससे विप्लवका उसी प्रकार उत्थान होकर उसका प्रसार होने लगा, जैसे मुखके भीतर बहुत दुःखदायी फोड़ा निकले और वह शीघ्र पक जाय ॥ ६६२ ॥ उसी समय बलवान् विजयने टिक्क आदि अपने सगोत्रियोंको एकत्रित करके स्थाम नामके स्थानपर पड़ी हुई राजाकी सेनाको घेर लिया ॥ ६६३ ॥ स्थामके सेनानायक कायस्थपुत्र नागवट्टने विजयके साथ चिरकाल तक युद्ध करके उसके प्रहारको सहा ॥ ६६४ ॥ तदनन्तर राजा सुस्सलके अनेकशः प्रार्थना करनेपर सेनापति तिलक राजाकी कृत-

विजयेन समं तस्य वद्धमूलेन संयुगे । संदेहं प्राणवृत्तिश्च जयश्रीश्वासकृद्ययौ ॥६६६॥
प्रवृद्धिं मल्लकोष्ठेऽपि प्रयाते लहरान्तरे । वैशाखे निर्ययौ राजा ग्रामं थल्योरकाभिम् ॥६६७॥
सैनिकाः शत्रुभिस्तस्य भ्रामितास्तत्र रात्रिषु । अरतिं निन्यिरे घोरैः स्वप्नैरिव मुमूर्षवः ॥६६८॥
वाहुमात्रसहायेन सर्वशक्तिमतां वरः । येन हर्षनरेन्द्रोऽपि विधुरेणोदपाद्यत ॥६६९॥
भूरीन्वाराञ्जितवतो विक्रमेण महीमिमाम् । साहसानां न संख्यास्ति जामदग्न्यस्य यस्य वा ॥६७०॥
स संकुचितविक्रान्तिः कालस्य बलवत्तया । तत्र भग्नबलोऽकस्माद्वययुज्यत जयश्रिया ॥६७१॥
ततः पलायिते तस्मिन्नकस्मादन्य सज्जकम् । हाडिग्रामस्थितो वीरं भङ्गं पृथ्वीहरोऽनयत् ॥६७२॥
पलायितस्यानुसरंस्तस्य पृष्ठं स निष्ठुरः । प्रतापी नगराभ्यर्णे दग्ध्वा नागमठं ययौ ॥६७३॥

स चान्ये च ततः क्रूरा डामराः सर्वतोऽनयन् ।
शत्रो राजाश्रितानां च चाग्केभ्यस्तुरंगमान् ॥६७४॥

निस्त्रिंशानां तीव्रकोपस्ततो भूपः समाश्रयन् । अभाग्यभागिनां योग्यामालम्बे कुपद्धतिम् ॥६७५॥
नीतिं पृथ्वीहरस्याथ हत्वा डामरमन्तिकम् । पृष्ठन्यस्तविसं भोज्यमिव रात्रौ व्यसर्जयत् ॥६७६॥
विसृज्य भ्रातरं हस्व विद्दकस्य तथैव सः । अन्येषां प्राहिणोत्पार्श्वं भ्रातृन्पुत्रांश्च विप्लुतः ॥६७७॥
मातरं जय्यकाख्यस्य सिफिन्नाग्रामवासिनः । विच्छिन्नकर्णघ्राणां च कृत्वाभ्यर्णे व्यसर्जयत् ॥६७८॥
सपुत्रं सूर्यकं शूलेऽधिरोप्य नगरे परान् । भूरीनवध्यानवध्यांश्च क्रोधाक्रान्तो न्यपातयत् ॥६७९॥
कालस्यैवोल्बणस्याथ तस्य सर्वेऽपि शङ्किताः । आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च विरागं प्रतिपेदिरे ॥६८०॥

व्रतका स्मरण करता हुआ अनमने भावसे स्वामकी ओर अग्रसर हुआ ॥ ६६५ ॥ विजयके साथ जिसका बहुत पुराना वैर था, उस जयश्रीको वार-वार अपने प्राण बचनेमें संशय होने लगा ॥ ६६६ ॥ उधर लहर प्रान्तमें मल्लकोष्ठक भी तब तक प्रबल होकर राजाके साथ छेड़-छाड़ करने लगा। अतएव वैशाख महीनेमें राजा सुस्सल थल्योरका ग्रामकी ओर चला ॥ ६६७ ॥ कुछ दूर आगे बढ़नेपर रात्रिके समय जंगलमें उसके शत्रुओंने राजाके सैनिकोंको भ्रममें डालकर दूसरे रास्तेपर मोड़ दिया। जिससे वे भयानक स्वप्नके समान घोर संकटमें पड़कर मरणासन्न स्थितिको पहुँच गये ॥ ६६८ ॥ केवल अपने भुजबलपर भरोसा रखनेवाले जिस वीरने सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान् राजा हर्षदेवको भी चक्करमें डाल दिया था ॥ ६६९ ॥ जिसने अपने पराक्रमसे अनेक वार सारी पृथिवीपर विजय प्राप्त की थी और जिसके साहसिक कार्योंकी गणना नहीं की जा सकती, ऐसे जमदग्नितनय परशुरामके सदृश वीर राजाका जब समयके फेरसे पराक्रम घटा, तब उसकी सेना तितर-बितर हो गयी और राजा हर्षको पराजित होना पड़ा ॥ ६७० ॥ ६७१ ॥ सो वहाँसे जब सुस्सलकी सेना भागी, तब एकाएक हाडिग्रामनिवासी पृथ्वीहर धावा बोलकर वीर सज्जकके समक्ष जा पहुँचा और उसकी सारी सेना काट डाली ॥ ६७२ ॥ तब वह निष्ठुर वीर पृथ्वीहर भागकर बची हुई राजसेनाका पीछा करता हुआ नगरके पास तक चला आया और नागमठमें आग लगाकर लौट गया ॥ ६७३ ॥ इसके बाद पृथ्वीहर तथा क्रूर डामरगण राजा, राजाके आश्रितों एवं घूम-घूमकर पहरा देनेवाले घोड़सवार सैनिकोंके बहुतेरे घोड़े छीन ले गये ॥ ६७४ ॥ इन उपद्रवको देखकर राजा सुस्सल तीव्रतर कोप करके ऐसे कुत्सित पथपर चल पड़ा, जिसपर अभागे लोग चला करते हैं ॥ ६७५ ॥ तदनुसार पृथिवीहरके साथी एक डामरका वध करके रात्रि-भोजनके समान पृथ्वीहरके पास भेज दिया ॥ ६७६ ॥ इसी प्रकार हस्व और विद्दकके भी भ्राता तथा भ्रातृ-पुत्रको मरवाकर अन्यान्य लोगोंके पास भेजवाया ॥ ६७७ ॥ सिफिन्नाग्रामनिवासी जय्यककी माताके नाक-कान काटकर उसे जय्यकके पास भेज दिया ॥ ६७८ ॥ इसी तरह उस क्रुद्ध राजाने पुत्र समेत सूर्यको सूलीपर चढ़ा दिया। नगरके अन्य बहुतेरे ऐसे लोगोंको भी उसने मरवा डाला, जो सर्वथा निर्दोष थे ॥ ६७९ ॥ जिसका परिणाम यह हुआ कि भीतरी और बाहरी सभी लोग राजासे सशंक एवं उदासीन हो गये ॥ ६८० ॥

येनैवानीतिमार्गेण हारितं हर्षभूभुजा। निन्दन्नप्यादधे तं स राज्ये व्यवहरन्स्वयम् ॥६८१॥
प्रविष्टानां युद्धे गहनकविकर्मप्रणयिनां प्रसक्तानां द्यूते नरपतिधुरायां विहरताम्।
तटस्थत्वे वक्तुं स्खलितमसकृत्सोऽर्हति परं प्रयोगे वैकल्यं स्वयमविकलो यो न भजते ॥६८२॥
तीव्रप्रयत्नो नृपतिस्तत्रापि विहितोद्यमः। निनाय मल्लकोष्ठादीन्किंचिन्मन्दप्रतापताम् ॥६८३॥
अथानिनाय विजयो विपलाटाध्वना शनैः। नप्तारं हर्षदेवस्य तं भिक्षाचरमन्तिकम् ॥६८४॥
विविक्षन्देवसरसं कम्पनापतिना ततः। विद्राव्यमाणः श्वभ्राग्रात्प्रधावन्सोऽपतत्क्षितौ ॥६८५॥
परिज्ञाय हतस्याथ स तस्य विजयी शिरः। विससर्जान्तिकं राज्ञः फलं जयतरोरिव ॥६८६॥
तदप्यत्यद्भुतं कर्म भजन्भूभृत्कृतघ्नताम्।
न तस्य तुष्टस्तुष्टाव न चकार च सत्क्रियाम् ॥६८७॥
अवजानञ्जघानामुं श्वभ्राख्यः कम्पनापतिः। तत्र कस्मात्तवोत्सेक इति तं संदिदेश च ॥६८८॥
सर्वप्रकारं तिलकः कृतघ्नं नृपतिं विदन्। अथ जातविरागः स द्रोहौन्मुख्यं समादधे ॥६८९॥
सतां स्यादनुपालभ्यो भजेद्वैमुख्यमेव चेत्। द्रोहेच्छया स तु तया ययावग्राह्यनामताम् ॥६९०॥
नेयाश्रयित्वमथ वोचितकृत्यकृत्त्वं नीतिप्रियाः प्रतिपदं समुदाहरन्तु।
मानोन्नतास्तु विहितस्तुतयः कृतज्ञैस्त्यक्त्वाप्यसून्परहितं घटयन्ति सन्तः ॥६९१॥
पटं वह्निस्पर्शज्वलितमहिदष्टां त्वचमरेः श्रुतिं यातं मन्त्रं पतननिरतां जीर्णवसतिम्।
असेवाज्ञं भूपं व्यसनविमुखं स्निग्धमजहन्न धीरोऽप्युत्थानोपहतमहिमा शर्म लभते ॥६९२॥

पूर्वकालमें जिन नीतियोंको अपनानेसे राजा हर्षका पतन हुआ था, उनका निन्दक होते हुए भी अव सुस्सल उन्हीं नीतियोंपर चलने लगा ॥ ६८१ ॥ युद्धमें प्रविष्ट, किसी गहन कविताके निर्माणमें संलग्न, जुएके खेलमे मग्न और राज्यका भार वहन करनेवाले लोगोंके असंख्य दोष एक तटस्थ व्यक्ति दिखा सकता हैं, किन्तु विशेषता तो तव होती है, जव वह तटस्थ व्यक्ति स्वयं उस काममें लगकर निर्दोषरूपसे उसको सम्पन्न कर दे ॥ ६८२ ॥ इस प्रकार तीव्रतम प्रयत्न करके राजा सुस्सलने किसी प्रकार मल्लकोष्ठक आदि विरोधियोंका प्रताप कुछ कम किया ॥ ६८३ ॥ तदनन्तर विजयने विपलाटाके रास्ते राजा हर्षदेवके नाती भिक्षाचरको अपने पास वुला लिया ॥ ६८४ ॥ उसके वाद जव भिक्षाचर देवसरस जा रहा था, तव राजाके कम्पनेश तिलकसिंहने उसका पीछा किया। उसे देखकर भिक्षाचर भागा और भागते-भागते एक गहरे गढ़ेमें गिर गया। उसी समय झपटकर सेनापतिने उसका सिर काट लिया और विजयवृक्षके फलकी तरह वह सौगात ले जाकर राजा सुस्सलके समक्ष रख दिया ॥ ६८५ ॥ सेनापतिके उस अत्यन्त अद्भुत कृतघ्नतापूर्ण कामको देखकर राजाने प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा नहीं की और न उसका सत्कार ही किया ॥ ६८६ ॥ कुछ क्षण वाद कुपित होकर राजा वोला—'क्या तुम नहीं जानते कि श्वभ्र नामके कम्पनेशको तुमने मारा डाला है। तुम्हें ऐसा दुष्कर्म करनेका साहस कैसे हुआ? और ऐसा करके तुम गर्वका अनुभव कर रहे हो?' ॥ ६८७ ॥ ६८८ ॥ राजाकी इन वातोंको सुनकर सेनापति तिलकने समझ लिया कि यह राजा पूर्ण कृतघ्न है। तभीसे उदासीन होकर वह विद्रोही हो गया ॥ ६८९ ॥ जव कि भले लोगोंका कोई सेवक अपने स्वामीसे विमुख होकर विरोधी वन जाता है, तव उसका अपमानित होना अनिवार्य होता है ॥ ६९० ॥ प्रिय एवं जनताके काममें लगे हुए लोग उचित कृत्य सामने आ जानेपर पद-पदपर उसका पालन करनेके लिए सचेष्ट रहते हैं। ऐसे सुसम्मानित पुरुषकी जव कृतज्ञ पुरुष सराहना करते हैं, तव उनका हौसला और भी वढ जाता है वे और प्राण दे करके परोपकारका काम करने लग जाते हैं ॥ ६९१ ॥ जिसमें आग लग जाय-वह वस्त्र, जिसमें सॉप काट ले वह त्वचा, शत्रुके विषयमें सुनी गयी मन्त्रणा, गिर जाने लायक पुराना मकान, सेवाका महत्त्व न समझनेवाला राजा और व्यसनके कारण पराङ्मुख स्नेही जनोंको त्याग देनेवाला

इत्युपायं परित्यज्य न्याय्यं ये प्रभवे क्रुधि । द्रोग्धारः कथितास्तेभ्यः केऽन्ये पापीयसां धुरि ॥६९३॥
जन्मन्येकोपकारित्वं पित्रोः सर्वत्र च प्रभोः । अधिकाः पितृघातिभ्यः पापिनस्तत्प्रभुद्रुहः ॥६९४॥
निहते विजये शाम्यत्प्रभावेष्वपरेष्वपि । नाज्ञायि कस्यचित्स्वास्थ्यं तत्त्वज्ञेनान्तरात्मनः ॥६९५॥
कंचित्क्षणं सोपप्लुतः प्रत्युतोग्रोपतापकृत् । विप्लवप्रसरो ज्ञातः सर्वैर्हुंड इवोन्मदः ॥६९६॥
आनिनीषुस्ततो मल्लकोष्ठो भिक्षाचरं पुनः । विपलाटां तस्य पार्श्वं निजं सैन्यं व्यसर्जयत् ॥६९७॥
कम्पनेशस्तमायान्तं द्रोग्धाप्यावेदयंस्ततः । राज्ञा न्यपेधि तद्रोपादेवं च समदिश्यत ॥६९८॥
एनं वर्त्मन्यनुद्घाते त्यज हन्यामहं ततः । पुरोगतं मृगव्यान्तः शृगालमिव वाजिभिः ॥६९९॥
द्वैराज्यकार्यमर्मज्ञभावेऽपि विधिचोदितः । कर्तव्ये तत्र शाठ्यं स नृपतिः प्रत्यपद्यत ॥७००॥
मर्मराजमुखादेवं लब्ध्वा द्रोग्धाऽथ डामरान् । तिलकोऽकारयच्छैलमार्गैर्भिक्षाचरागमम् ॥७०१॥
स्थाने स्थाने ततः प्राप ततः कर्णोपकर्णिका । जनानां या ख्यातिहेतुर्भिक्षो राज्ञस्तु भीतिदा ॥७०२॥
नासंस्कृतं वक्ति शिला भिनत्त्येकेषुणा दश । अश्रान्तो योजनशतं यात्यायाति च संचरन् ॥७०३॥
इत्यादितादृङ्माहात्म्यभिक्षुस्तुत्यानयज्जनः । निखिलान्पलितश्वेतलम्बकूर्चोपि कौतुकम् ॥युग्मम्॥७०४॥
भविष्यन्निव साम्राज्यस्यैक एकोऽर्धभागभाक् । वार्तामप्यवहर्तापि भिक्षोरूचेऽन्विषेप च ॥७०५॥
सरित्स्नानगृहे स्नान्तो वृद्धाः क्षीणनियोगिनः । राजवेश्मन्यगणिता नाममात्रनृपात्मजाः ॥७०६॥
स्वभावदुर्जनाः केचिद्योधाश्चोच्चाश्वकांक्षिणः । कारयन्तोप्युपाध्यायाः शिष्यान्स्फिक्क्षपणं नखैः ॥७०७॥
वृद्धाः सुरौकोनर्तक्यो देवप्रासादपालकाः । वणिजो भुक्तनिक्षेपाः पुस्तकश्रुतितत्पराः ॥७०८॥

धैर्यशाली मनुष्य सब तरहसे कल्याण प्राप्त करता है ॥ ६९२ ॥ इन उपायोंको छोड़कर जो लोग न्यायके पथपर चलनेवाले प्रभुके साथ द्रोह करते हैं, उनसे बढ़कर पापी भला और कौन हो सकता है ? ॥ ६९३ ॥ माता-पिताका उपकार तो केवल एक जन्मका होता है, किन्तु प्रभुका उपकार सदाके लिए होता है। अतएव प्रभुके साथ द्रोह करनेवाला मनुष्य पितृघातीसे बढ़कर पापी होता है ॥ ६९४ ॥ तदनन्तर जब विजय मारा जा चुका और अन्य लोगोंका प्रभाव नष्ट हो चुका, तब उस तत्त्वज्ञ तिलकने वहाँ अपना कल्याण नहीं देखा ॥ ६९५ ॥ कुछ क्षणों तक तो वह यों ही तरह-तरहके ऊहापोह करता रहा, तबतक उसे चारों ओरसे भीषण विप्लव फैल जानेका समाचार मिला ॥ ६९६ ॥ उसी समय मल्लकोष्ठने फिर भिक्षाचरको बुलानेके लिए सैनिकोंको विपलाटा भेजा ॥ ६९७ ॥ उन सैनिकोंको देखकर द्रोही होते हुए भी उसने भिक्षाचरका सारा हाल कह सुनाया। यह सुना तो राजाने सेनापतिको आदेश दिया कि 'उस भिक्षाचरको छोड़ दो। बादमें मैं उसको उसी तरह मार डालूँगा कि जैसे कोई शिकारी राहमें मिले सियारको घोड़े दौड़ाकर मार डालता है' ॥ ६९८ ॥ ६९९ ॥ द्वैराज्य कार्यका मर्मज्ञ होते हुए भी राजा सुस्सल दैवकी प्रेरणासे शठता करनेके लिए उद्यत हो गया ॥७००॥ मर्मराजके मुखसे राजाका यह आदेश सुनकर विद्रोही तिलकने भिक्षाचरके आगमनके लिए पर्वतीय मार्गसे प्रबन्ध कर दिया ॥७०१॥ उसके बाद तिलकने जगह-जगह लोगोंको कानोकान यह कहते सुना कि राजा सुस्सल भिक्षाचरकी ख्यातिसे बहुत डरता है ॥ ७०२ ॥ भिक्षाचरके विषयमें ऐसा सुना जाता है कि वह एक ही बाण चलाकर दस शिलाओंको फोड़ देता है और अनायास सौ योजन दूर जाकर पुनः लौट आता है ॥ ७०३ ॥ उसके विषयमें किम्वदन्तियाँ सुन-सुनकर जनसाधारणके वे लोग भी उसकी महिमाकी स्तुति करने लग गये, जिनके सब बाल पक चुके हैं और दाढ़ी बढ़कर बहुत लम्बी हो गयी है ॥ ७०४ ॥ इस प्रकारकी अफवाहें सुनकर राजाको कुछ ऐसा भासमान होने लगा कि 'अब मेरे साम्राज्यका आधा हिस्सा बँटानेवाला उत्पन्न हो गया है'। तभीसे सतर्क होकर उसने भिक्षाचरकी चर्चापर रोक लगा दी और उसको खोजनेके लिए दूतोंको नियुक्त कर दिया ॥ ७०५ ॥ नदियोंके स्नानागारोंमें स्नान करनेवाले वृद्ध, राजमहलमें रहनेवाले नाममात्रके राजपुत्र, ऊँचे घोड़े चाहनेवाले स्वभावतः दुर्जन कुछ योद्धा, स्कूलोंके वे अध्यापक जो शिष्योंको अपने नितम्बमे नाखूनसे रेखायें खींचनेकी शिक्षा

प्रायोपवेशकुशलाः परिषद्द्विजातयः । शस्त्रिणः कर्षकप्राया नगरोपान्तडामराः ॥७०९॥
मुखयन्तः स्वमन्यांश्च किमप्युत्पिञ्जवार्तया । एते प्रायेण देशेऽस्मिन्पार्थिवोपप्लवप्रियाः ॥ कुलकम् ॥७१०॥
प्रवर्धमानया भिक्षाचरागमनवार्तया । वेपमानोऽभवल्लोको ययौ चिन्तां च भूपतिः ॥७११॥
पृथ्वीहरस्तरुच्छन्ने गिरिकच्छे वसन्नथ । राजानीकं बभञ्जाजौ निर्गत्यातुलविक्रमः ॥७१२॥
अनन्तकाकयोर्वंश्यावानन्दद्वारनायकौ । चक्रे तिलकसिंहं च मन्त्रिणस्त्रीन्पलायिनः ॥७१३॥
निहते विजये ज्यैष्ठे शुक्लषष्ठ्यां पराभवम् । तमाषाढस्य नृपतिः प्राप्याभूद्विवशः पुनः ॥७१४॥
उद्वीकितैर्गवां वृक्षमूर्धारोहेण भोगिनाम् । पिपीलककुलस्याण्डोपसंक्रान्त्यैव वर्षणम् ॥७१५॥
प्रत्यासन्नं स राजाथ दुर्निमित्तैरुपद्रवम् । विचिन्त्यायातमुचितं कर्तव्यं प्रत्यपद्यत ॥ युग्मम् ॥७१६॥
तृतीयेऽह्नि शुचेः शुक्ले ततः प्रास्थापयत्सुतम् । देवीमन्यत्कुटुम्बं च स कोटं लोहरं प्रभुः ॥७१७॥
ताननुव्रजतस्तस्य सेतुभङ्गात्परिच्युताः । लोष्टद्विजातयो विप्रा वितस्तायां विपेदिरे ॥७१८॥
स तेन दुर्निमित्तेन खिन्नो हुष्कपुरान्तिकम् । अनुगम्याथ तान्द्वित्रैर्दिनैर्भूयोऽविशत्पुरम् ॥७१९॥
विना पुत्रेण देव्या च स ततः प्रत्यपद्यत । प्रतापेन च लक्ष्म्या च परित्यक्त इवान्यताम् ॥७२०॥
स मन्त्रो व्यापदि शुभः प्रत्यभात्तस्य तद्वशात् । अभ्यन्तरप्रकोपेऽपि सर्वाभ्युदयभागभूत् ॥७२१॥
स्वयमुत्थापितानर्थः सोऽपि हर्षनरेन्द्रवत् । अद्यापि सान्वयो नीत्या तया साम्राज्यभोगभाक् ॥७२२॥
श्रावणे लाहरैर्योधैरानीय बलशालिनाम् । भिक्षुमडवराज्यानां डामराणामथार्प्यत ॥७२३॥

देते थे ॥ ७०६ ॥ ७०७ ॥ मदिरालयमें नाचनेवाली वृद्धा वेश्यायें, देवालयोंके प्रासादोंके रक्षक, कारवारसे निवृत्त वैश्य वाँची जाती हुई पुस्तकोंके श्रोता, अनशनकुशल एवं परिषद्के सदस्य ब्राह्मण, किसानी करनेवाले शस्त्रधारी सैनिक और नगरोंके आस-पास रहनेवाले डामर ये सभी लोग इस देशमें राज्यविप्लवके आकांक्षी थे और अन्यान्य लोगोंको आनन्दित करते हुए खूब बढ़ा-चढ़ाकर बातें किया करते थे ॥ ७०८–७१० ॥ भिक्षाचरके आगमनकी चर्चा ज्यों ज्यों जोर पकड़ती जाती थी, त्यों-त्यों लोगोंका भय और राजा सुस्सलकी चिन्ता बढ़ती जाती थी ॥ ७११ ॥ इसी समय पर्वतकी कन्दराओं तथा वृक्षोंकी झुरमुटमें छिपकर रहनेवाले अतुलित पराक्रमी पृथिवीहरने छापा मारकर तुमुल युद्ध किया और राजाके बहुतेरे सैनिकोंको काट डाला ॥ ७१२ ॥ अनन्तदेव, काकके वंशज आनन्द द्वाराधीश, सेनापति तिलकसिंह एवं तीन मंत्रियोंको उस वीरने युद्ध भूमिसे भगा दिया ॥ ७१३ ॥ इस प्रकार ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठीको विजय मारा गया और आगे आसाढमें उसका जन्मदिवस पड़ता था। उसके मरनेसे राजा सुस्सलने प्रबल पराजयका अनुभव किया और वह फिरसे कुछ सोचनेके लिए विवश हो गया ॥ ७१४ ॥ इसी समय वर्षाके आगमनकी सम्भावनासे गायें उछलने-कूदने लगीं, साँप वृक्षोंके शिखर पर चढ़ गये और चींटियें अण्डे देने लगीं ॥ ७१५ ॥ इस प्रकारके अपशकुनों एवं उपद्रवोंको देखकर राजाने उस समय वहाँसे राजधानी लौट आनेमें ही अपना कल्याण समझा ॥ ७१६ ॥ तदनन्तर आषाढ शुक्ल तृतीयाको राजा सुस्सलने अपने पुत्र स्त्री तथा कुटुम्बके अन्यान्य लोगोंको लोहरके किलेमें भेज दिया ॥ ७१७ ॥ जब वे लोग वितस्ताको पार करने जा रहे थे, तभी पुल टूट गया और उसमें लोष्ट देशके बहुतेरे ब्राह्मण मर गये ॥ ७१८ ॥ उस अपशकुनसे खिन्न होकर राजा सुस्सल हुष्कपुर तक उन कुटुम्बियोंके साथ गया और दो-तीन दिन बाद फिर राजधानी लौट आया ॥ ७१९ ॥ उस समय विना पुत्र और स्त्रीके वह अकेला ही वापस आया था। उस समय राजाको ऐसा अनुभव हुआ कि प्रताप और लक्ष्मीने भी उसका साथ छोड़ दिया है ॥ ७२० ॥ उस आपत्तिकालमें राजाको वह विचार शुभ प्रतीत हुआ। यद्यपि उस विचारके गर्भमें प्रकोप भी विद्यमान था, तथापि उसने उसको सब प्रकारके अभ्युदयका मूलमन्त्र समझा ॥ ७२१ ॥ यद्यपि राजा हर्षदेवके समान सुस्सलने स्वयं उन अनर्थोंको उभाड़ा था। फिर भी अपनी नीतिके फलस्वरूप वह अब भी सपरिवार अपने साम्राज्यका उपभोग कर रहा था ॥ ७२२ ॥ श्रावणमासमें लहरके

तेपि जन्या इव वरं श्वशुरालयसंनिभम् । प्रावेशयंस्तं लहरमनुयान्तः ससैनिकाः ॥७२४॥
संभाजयित्वा तान्मल्लकोष्ठमुख्या निजां भुवम् । व्यसर्जयन्कम्पनेशप्रमाथाय पृथुश्रियः ॥७२५॥
सर्वतः परचक्रेथ पर्यापतति पार्थिवः । संग्रहीतुं प्रववृते पदातीनतुलव्ययः ॥७२६॥
तस्मिन्दुर्व्यसने राज्ञि वसुवर्षिणि सर्वतः । चकार शस्त्रग्रहणं शिल्पिशाकटिकैरपि ॥७२७॥
नगरे सैन्यपतयः प्रतिमार्गमकारयन् । तुरगान्न्यस्तसंनाहान्व्यायामसमरोन्मुखाः ॥७२८॥
मयग्रामस्थिते भिक्षावमरेश्वरवासिभिः । राजसैन्यैः समं युद्धमगृह्णन्नेत्य लाहराः ॥७२९॥
तैर्हिरण्यपुरोपान्ते प्रबन्धारब्धसंगरैः । श्रीविनायकदेवाद्या राजसेनाधिपा हताः ॥७३०॥
आद्य एव रणे यातां राजानीकाद्विरोधिनः । लब्ध्वा वराश्वामायातामनन्यन्त नृपश्रियम् ॥७३१॥
राजधान्यन्तिके क्षिप्तिकाख्यायाः सरितस्तटे । पृथ्वीहरश्चकाराजावशेषसुभटक्षयम् ॥७३२॥
तिलके विजयेशस्थेऽप्यगृह्णन्नेत्य डामराः । महासरित्तटे युद्धं खड्वीहोलडौकसः ॥७३३॥
ते रुद्धनगरा दाहं क्वापि क्वापि च लुण्ठनम् । वास्तव्यानां विदधिरे विनदन्तो दिवानिशम् ॥७३४॥
निर्यत्सतूर्यपृतनाः प्रविशच्छस्त्रविक्षताः । क्रन्दद्धुतापसनिवहाः प्रधावद्भग्नसैनिकाः ॥७३५॥
प्रसरत्प्रेक्षिनिवहा वहदाशुगभारिकाः । संचार्यमाणसंनाहाः कृष्यमाणतुरंगमाः ॥७३६॥
आसन्नशान्तसंमर्दप्रसरत्पांसवोऽनिशम् । दिने दिने राजपथा उपप्लवविशृङ्खलाः ॥तिलकम्॥७३७॥
प्रतिप्रत्यूषमायात्सु सर्वारम्भेण वैरिषु । अद्य ध्रुवं जितो राजेत्यज्ञायि प्रतिवासरम् ॥७३८॥

योद्धाओंने भिक्षाचरको लाकर मडवराज्यके बलशाली डामरोंके हाथों सौंप दिया ॥ ७२३ ॥ उन ससैनिक डामरोंने भी वरातीके समान भिक्षाचरके साथ जाकर ससुरालके समान लेहरमें उसे सकुशल पहुँचा दिया ॥ ७२४ ॥ वहाँ परम श्रीमान् मल्लकोष्टक आदि वीरोंने अपनी भूमिपर आये हुए भिक्षाचरका स्वागत-सत्कार किया और उसे राजसेनापतिको परास्त करनेके लिए भेज दिया ॥ ७२५ ॥ उधर राजा सुस्सलने जब देखा कि चारों ओरसे शत्रुओंका दबाव बढता जा रहा है, तब उसने प्रचुर धन व्यय करके पैदल सैनिकोंकी भर्ती आरम्भ कर दी ॥ ७२६ ॥ वह दुर्व्यसनी राजा जब इस प्रकार धनकी वर्षा करने लगा, तब राज्यके कारीगरों और गाड़ीवानोंने भी शस्त्र ग्रहण कर लिया ॥ ७२७ ॥ नगरवर्ती प्रत्येक मार्गपर एक-एक सेनापतिके नायकत्वमें शस्त्रसज्ज एवं समरोन्मुख घोड़ोंका दस्ता तैनात कर दिया गया ॥ ७२८ ॥ जब कि भिक्षाचर मयग्राम पहुँचा, तब अमरेश्वरनिवासी नागरिकोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर लहरके योद्धाओंने राजसेनाके साथ डटकर युद्ध किया ॥ ७२९ ॥ उसके बाद उन लोगोंने हिरण्यपुरके पास राजसेनासे फिर लोहा लिया और इस युद्धमें श्रीविनायकदेव जैसे राजसेनाके बड़े-बड़े वीर नायक मारे गये ॥ ७३० ॥ तदनन्तर आरम्भमें ही अच्छे-अच्छे घोड़ों युक्त राजाकी सेनाको उपस्थित देखकर शत्रुओंने जैसे साक्षात् राजलक्ष्मीको वहाँ उपस्थित समझा ॥ ७३१ ॥ उधर राजधानीके पास क्षिप्तिका नदीके तटपर पृथिवीहरने बड़ा भीषण युद्ध किया और उसमें राजाके सभी अच्छे-अच्छे योद्धाओंको काट डाला ॥ ७३२ ॥ विजयेश्वरमें राजसेनापति तिलक मोर्चेपर डटा हुआ था, वहाँ खड्वी लोहड ग्रामके निवासी डामर वीरोंने महानदीके तटपर बड़ा भयानक युद्ध किया ॥ ७३३ ॥ वे डामर नगरोंको घेर लेते और जोरोंसे गर्जन करते हुए रात-दिन कहीं नागरिकोंके घर फूँकते तथा कहीं-कहीं लूट-पाट मचाते फिरते थे ॥ ७३४ ॥ उस समय तुड़हियाँ बजाती हुई राजाकी सेनायें आती थीं और आते ही शस्त्रास्त्रोंकी मारसे छिन्न-भिन्न हो जाती थीं। चारों ओर रोदन और विलाप होने लगता था और बचे-खुचे सैनिक अपने-अपने प्राण लेकर भाग खड़े होते थे ॥ ७३५ ॥ किसी तरफसे मार्गप्रेक्षकोंकी टोलियाँ आती थीं, उनके सामान द्रुतगामी घोडोंकी पीठपर लदे रहते थे। घोड़ों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ियोंपर शस्त्रादि युद्धोपकरण रहते थे ॥ ७३६ ॥ स्थान-स्थानपर संघर्ष समाप्त होनेके बाद उड़ती हुई धूल तथा टूटे-फूटे राजमार्ग दिखायी दे रहे थे ॥ ७३७ ॥ प्रतिदिन प्रातःकाल बड़ी सजधजसे राजाके सैनिक आते थे और ऐसा लगने लगता था कि आज राजा अवश्य जीतेगा ॥ ७३८ ॥

धीरः कः सुस्सलादन्यो न यः प्रत्यभियोगिनाम् । कृच्छ्रेणाऽपि स्वराष्ट्रेण क्रष्टुं धैर्यादपार्यत ॥७३९॥
व्रणपट्टाञ्चनं शल्योद्धारं पथ्यधनार्पणम् । शस्त्रक्षतानां सततं कारयन्स व्यलोक्यत ॥७४०॥
प्रवासवेतनप्रीतिदायभैषज्यदत्तिभिः । शस्त्रिलोके नरपतेर्निःसंख्योऽभूद्धनव्ययः ॥७४१॥
युद्ध एव विपन्नानां क्षतानां च स्ववेश्मसु । नित्यं नरतुरंगाणां सहस्राणि क्षयं ययुः ॥७४२॥
तुरंगवहलैर्हन्यमाना नृपवलैस्ततः । लाहरा मल्लकोष्ठाद्या मन्दोद्रेकत्वमाययुः ॥७४३॥
भिन्नैराभ्यन्तरैरेव दत्तमन्त्राः सुरेश्वरीम् । ते निन्युर्भिक्षुमल्पेन तन्मार्गेण युयुत्सवः ॥७४४॥
सेतुना स्वल्पपार्श्वेन धन्विप्रायैः सरोऽन्तरे । अवापि तैर्जयोऽमोचि वाजिभ्यश्च भयं रणे ॥७४५॥
द्रोग्धाथ कम्पनेशः स निवसन्विजयेश्वरे । बलितां डामराञ्चिन्ये मन्दोद्रेकं स्फुरन्रणे ॥७४६॥
लवन्यलोको मा ज्ञासीदशक्तिं मेऽथ गच्छतः । पृष्ठे निपत्य मा कार्षीद्व्यथां चेति विचिन्तयन् ॥७४७॥
स प्रभावं दर्शयितुं प्राप्तस्य विजयेश्वरम् । अञ्जराजस्य सेनायां व्यावृत्य प्रस्थितोऽभवत् ॥७४८॥
सार्धां शतद्वयीं तस्य योधानां हतवानपि । संत्यज्य विजयक्षेत्रं द्रोहकृन्नगरं ययौ ॥७४९॥
पथि नान्वसरन्भीत्या भयात्तं डामराः क्वचित् । नदन्तोऽद्रिशिरोरूढा मार्गान्सर्वांश्च तत्यजुः ॥७५०॥
त्यक्त्वा मडवराज्यं स प्रविष्टो व्यसनातुरम् । पूर्वचेष्टां स्मरन्भूपं जहास कृतसत्क्रियम् ॥७५१॥
इतरामात्यवत्स्थामस्थितोऽथ न निजोचितम् । रणे प्रादर्शयत्किंचित्साक्षिभूत इव स्थितः ॥७५२॥
ततो मडवराज्यात्ते समस्ता एव डामराः । अभ्येत्य प्रत्यपद्यन्त तां महासरितस्तटीम् ॥७५३॥
उपायाः सामभेदाद्या रिपुचक्रे प्रयोजिताः । राज्ञो विफलतां जग्मुर्वहिरास्तैः प्रकाशिताः ॥७५४॥

वैसे तो राजा सुस्सलसे बढकर धैर्यशाली भला और कौन होगा ? क्योंकि अहर्निशि उसका राष्ट्र शत्रुओंके प्रहारसे त्रस्त रहता था, तथापि उसका धैर्य ज्योंका त्यों बना हुआ था ॥ ७३९ ॥ वह नित्य देखता था कि किसी घायलके घावपर पट्टी बाँधी जा रही है, किसीके शरीरमे घुसा हुआ बाण निकाला जा रहा है और किसीको पथ्यके लिए धन दिया जा रहा है ॥ ७४० ॥ इस प्रकार प्रवासभत्ता अनुग्रहधन एवं दवाके लिए धन देनेसे सैनिकोंपर राजाका असंख्य धन खर्च हो गया ॥ ७४१ ॥ उस समय रणभूमिमें अथवा घायल होकर अपने घर नित्य हजारों योद्धा तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन मरते थे ॥ ७४२ ॥ इसी प्रकार अधिकाधिक अश्वोंसे परिपूर्ण राजाकी सेनाके प्रहारसे लहरके वीर योद्धा भी मर रहे थे। अतएव मल्लकोष्ठ आदि अग्रणी वीरोका भी उत्साह उत्तरोत्तर क्षीण होने लगा ॥ ७४३ ॥ उसी समय बाहरी तथा भीतरी सलाहकारोंकी सलाहसे लोग घोड़ा मोड़कर भिक्षाचरकी समीपके मार्गसे सुरेश्वरी ले आये ॥ ७४४ ॥ उन्होंने सुरेश्वरीके सरोवरपर एक सँकरा पुल बना लिया था। उसपर बहुत थोड़ेसे धनुर्धर योद्धा तैनात थे। अतएव वहाँ उन्हें अनायास विजय प्राप्त हो गयी और रणभूमिमें सहसा अश्वसेनाके आक्रमणका भय दूर हो गया ॥ ७४५ ॥ विद्रोही सेनापति तिलक विजयेश्वरमे छावनी डालकर पडा हुआ था। उसने भीतर ही भीतर मदद देकर मन्दोत्साह डामरोंमे पुन शक्तिका संचार किया ॥ ७४६ ॥ उसने सोचा कि मैं जब आगे बढ़ूँ तो लवन्य लोग मेरी कमजोरीको न समझ सके और पीछेसे आक्रमण न कर दें ॥ ७४७ ॥ अतएव अपना प्रभाव प्रदर्शित करनेके लिए वह विजयेश्वरमे पहुँची हुई अञ्जराजकी सेनाके साथ आगे बढ़ा ॥ ७४८ ॥ उस यात्राके समय उसने परपक्षके ढाई सौ सैनिकोंको मार डाला और विजयक्षेत्रको त्यागकर नगरकी ओर अग्रसर हुआ ॥ ७४९ ॥ उस समय मारे डरके डामरोंने उसका पीछा नहीं किया। वे पर्वतके शिखरोंपर ही रहते हुए गर्जन-तर्जन करते रहे और उसके लिए सभी रास्ते छोड़ दिये ॥ ७५० ॥ इस प्रकार आगे बढ़ता हुआ तिलक मडवराज्य पीछे छोड़कर दुःखसे व्याकुल नगरमें जा पहुँचा। वहाँ उसके सहयोगियोंने उसका स्वागत किया और वह राजाकी पूर्वकालीन चेष्टाओंका स्मरण करके हँसा ॥ ७५१ ॥ वहाँपर अन्यान्य मंत्रियोंके समान सेनापति तिलक भी नित्य अपनी छावनीमे पड़ा रहता था। रणभूमिमें उसने अपना कोई पराक्रम नहीं प्रदर्शित किया, प्रत्युत एक साक्षीकी तरह चुप बैठा रहा ॥७५२॥ तदनन्तर

क्रान्ततत्तन्महीपालमण्डलस्यापि भूपतेः । फलं दोर्विक्रमस्याग्र्यमासीन्नगररक्षणम् ॥७५५॥
अमरेशे द्वारपतिः सार्धं तस्थौ नृपात्मजैः । राजानवाटिकोपान्ते राजस्थानीयमन्त्रिणः ॥७५६॥
दूरद्वीपान्तरगता इव स्वीचक्रिरे नृपात् । ते प्रवासघनं भूरि न चायुध्यन्त कुत्रचित् ॥७५७॥
कटका विद्विषां सर्वे पर्यायेण जयाजयौ । लेभिरे विजायादन्यन्न तु पृथ्वीहरः क्वचित् ॥७५८॥
मधुमत्तेन तेनाजौ वेतालेनेव वल्गता । प्रायो वरा वराः सर्वे ग्रस्ता नृपचमूभटाः ॥७५९॥
उदयस्येच्छटिक्कुलोद्भूतस्यैकस्य पप्रथे । युवदेश्यस्यापि शौर्यमेकस्मिंस्तु तदाहवे ॥७६०॥
पृथ्वीहरस्यापजह्रे द्वन्द्वयुद्धाभिमानिना । प्रहृत्य कृष्टकूर्चेन कराग्रेनासिवल्लरी ॥७६१॥
युद्धे पुरोपकण्ठेषु वर्तमाने शराहताः । स्त्रीबालाद्या अपि वधं प्रमादात्प्रतिपेदिरे ॥७६२॥
एवं जनक्षये घोरे वर्धमाने किमप्यभूत् । अनुत्साहान्नृपो गेहादपि निर्गन्तुमक्षमः ॥७६३॥
तस्मिन्निरुद्धसंचारे सोमपालस्तदन्तरे । अलुण्ठयच्चाट्टलिकां लब्धरन्ध्रो ददाह च ॥७६४॥
सिंहे गजाहवव्यग्रे तद्गुहाग्रपरिग्रहे । समयो ग्रामगोमायोः पौरुषस्यापरोऽस्तु कः ॥७६५॥
राष्ट्रद्वयोपमर्देन राजा निःसद्वशेन सः । तेन त्रपाविधेयोऽभूत्स्वमपि द्रष्टुमक्षमः ॥७६६॥
सर्वानौचित्यबहलः सर्वव्यसनदुःसहः । सर्वदुःखमयः कालस्तस्यावर्तत कोऽपि सः ॥७६७॥
तथाप्यस्खलिते तस्मिन्हितव्याजाद्धितापहः । राजानवाटिकाविप्रैः प्रायश्चक्रे विरागिभिः ॥७६८॥
प्रार्थयन्ते स्म ते युद्धे तटस्थास्तव मन्त्रिणः । गृहीत्वा नीविरेतेभ्या लोहराद्रौ विसृज्यताम् ॥७६९॥
न चेद्व्याप्य इवैतस्मिन्व्यसने स्थायितां गते । को दध्यान्न परैर्नीतं प्रत्यासन्नं शरत्फलम् ॥७७०॥

वे सभी विद्रोही डामर मडवराज्यसे चलकर महानदीके तटपर आ पहुँचे ॥ ७५३ ॥ उस समय शत्रुओंपर राजाके द्वारा प्रयुक्त साम-भेद आदि सभी नीतियाँ विफल हो गयीं । क्योंकि बाहरी तथा भीतरी आप्तजनोंने उनका भेद पहलेसे ही खोल दिया था ॥ ७५४ ॥ राजा सुस्सलके सहायक राजाओंकी सेनाओंमें भी विद्रोहका प्रभाव पहुँच चुका था । अतएव अब नगररक्षाका सारा भार उसीके बाहुबलपर निर्भर था ॥ ७५५ ॥ क्योंकि द्वाराधीश राजपुत्रोंके साथ अमरेशमें पड़ा था और स्थानीय मंत्री राजानवाटिकामें डेरा डाले हुए थे ॥ ७५६ ॥ वे जैसे राज्यके बाहर कहीं दूर देशमें हों, इस तरह राजासे अत्यधिक धन वसूलते थे, किन्तु युद्ध उन्होंने कहीं नहीं किया ॥ ७५७ ॥ इस प्रकार विद्रोहियोंकी सेना कहीं विजय और कहीं पराजय प्राप्त करती रही, किन्तु पृथ्वीहर सर्वत्र विजयी हुआ ॥ ७५८ ॥ मदिरा पीनेके बाद मस्त होकर वह रणभूमिमें उतरता और वैतालकी तरह उछल-उछलकर राजाकी सेनाके चुने हुए बड़े-बड़े वीरोंको काटकर धराशायी कर देता था ॥ ७५९ ॥ उस युद्धमें इच्छाटिकुलमें जायमान नवयुवक उदयका ही पराक्रम दर्शनीय था ॥ ७६० ॥ द्वन्द्वयुद्धके अभिमानी उस वीरने पृथ्वीहरके हाथसे तलवार छीन ली थी और उसके साथ उसकी दाढ़ीके कुछ बाल भी खिंच आये थे ॥ ७६१ ॥ उस युद्धमें प्रमादवश समक्ष पड़नेवाले स्त्री-बच्चे भी बाणोंसे मार डाले जाते थे ॥ ७६२ ॥ इस प्रकार भीषण जनसंहार बढ़ने और राजा सुस्सलका उत्साह भंग हो जानेके कारण वह घरसे बाहर निकलनेमें भी असमर्थ हो गया ॥ ७६३ ॥ ऐसी स्थितिमें सोमपाल नगरमें घुस पड़ा । उसने राजाकी अट्टालिकाओंको लूटा और उनमें आग लगा दी ॥ ७६४ ॥ जैसे कि जब किसी सिंह और हाथीमें युद्ध छिड़ जाता है, तब सिंहकी गुफाके द्वारपर पहुँचा हुआ सियार भी पुरुषार्थ प्रदर्शित करने लगता है ॥ ७६५ ॥ इस प्रकार दो राष्ट्रोंके आक्रमणसे त्रस्त होकर राजा सुस्सल लज्जित हो जानेके कारण अपना मुँह भी देखनेमें असमर्थ हो गया ॥ ७६६ ॥ उसी समय सभी अनौचित्योंसे परिपूर्ण, सब प्रकारके व्यसनोंसे दुःसह और सभी दुःखोंसे भरा कोई एक विचित्र संकटकाल उसके समक्ष आ उपस्थित हुआ ॥ ७६७ ॥ क्योंकि उसी अवसरपर उसके हितचिन्तकके रूपमें परम अहितकारी एवं उदासीन राजवाटिकाके ब्राह्मणोंने अनशन आरम्भ कर दिया ॥ ७६८ ॥ राजासे उनका कहना था कि 'आपके सभी मंत्री युद्धसे तटस्थ हैं । अतएव उनका सारा मूलधन छीनकर उन्हें लोहर पर्वतपर भेज दिया

न प्रत्यभैत्सीत्ताटस्थ्यं यत्कालापेक्षया नृपः। तस्मिंस्तैर्दर्शिते शङ्कां निखिला मन्त्रिणो दधुः ॥७७१॥
शक्तिस्तृणं कुब्जयितुं न तस्य स तदार्थिभिः। छिन्नव्यवहारत्वं निन्ये राजा शठद्विजैः ॥७७२॥
कर्मस्थानोपजीव्युग्रपारिपद्यादिसंकुला । तत्पार्श्वात्प्रययौ वृद्धिमन्या सेनेव वैरिणाम् ॥७७३॥
तत्सान्त्वनक्षणे तैस्तैः प्रमादैरुत्थितैरगात्। देशो व्याकुलतां कृच्छ्रं लुण्ठिश्चाघटतोत्कटा ॥७७४॥
अदृष्टपार्थिवास्थानैः शठैरव्यवहारिभिः। ऊचे तैः सान्त्वयन्राजा दुःस्थितस्तत्तदप्रियम् ॥७७५॥
लवन्यविप्लवाद्राज्ञः सोऽधिको विप्लवोऽभवत्। गलरोगः पादरोगादिव तीव्रव्यथावहः ॥७७६॥
काञ्चनोत्कोचदानेन तन्मध्येऽधिकचक्रिकाम्। कांश्चित्स्वीकृत्य स प्रायं कथंचिद्भिन्यवीवरत् ॥७७७॥
विजयो वर्णसोमादिशस्त्रिवंश्यो हठात्पुरम्। प्रविशन्भिक्षुसेनानीरश्वारोहैरहन्यत ॥७७८॥
तेनातिरभसात्स्थानं भित्त्वा प्रविशता पुरम्। प्रायशः कृत एवाभूत्तदा राज्यविपर्ययः ॥७७९॥
ईषन्मन्दप्रतापेन लवन्येष्वपि भूपतेः। पृथ्वीहरेण संधित्सा भेदेच्छोः संप्रकाशिता ॥७८०॥
तस्मिन्धुर्ये जिगीषूणां संधित्सौ भूभुजा समम्। द्वयेऽपि सैनिकाः शान्तं तममन्यन्त विप्लवम् ॥७८१॥
राज्ञा नागमठोपान्तमानेतुं प्रहितांस्ततः। त्रीनमात्यान्सुविश्वस्तानागच्छंश्छद्मनावधीत् ॥७८२॥
धात्रेयो मम्मको गुङ्गो द्विजो रामश्च वारिकः। तेषां तिलकसिंहस्य पार्श्वे भृत्यास्त्रयो हताः ॥७८३॥
नीचैर्दत्तो गौरकस्तु हतो भूतपतिं स्मरन्। इष्टे त्वाक्रन्दिनि परैः प्रहृतं करुणोज्झितैः ॥७८४॥
तद्वैशसं श्रुतवतो देशः सर्वो विरागकृत्। राजधान्यन्तरे राज्ञो दुरुक्तिमुखरोऽभवत् ॥७८५॥

जाय ॥ ७६९ ॥ यदि ऐसा न किया गया तो राज्यसंकट स्थायी हो जायगा। उस स्थितिमे शत्रुओं द्वारा उपस्थित की गयी विपत्तिसे छुटकारा कैसे मिलेगा ?' ॥ ७७० ॥ जिस समयकी अपेक्षा करके राजाने उनकी तटस्थताकी उपेक्षा की थी, उसकी ओर उन विप्रों द्वारा राजाका ध्यान आकृष्ट किये जानेपर सब मंत्री सशंक हो उठे ॥७७१॥ इस प्रकार उन शठ ब्राह्मणोंने जिसमे अब एक तिनका भी टेढा करनेकी सामर्थ्य नहीं रह गयी थी, उस राजाका व्यवहारसूत्र भी छिन्न-भिन्न कर देनेका उपक्रम रच दिया ॥ ७७२ ॥ इससे सभी कार्यालयोंके कर्मचारी उग्ररूप धारण करके अपने-अपने कामसे हट गये, जिससे मानो वैरियोंकी एक प्रबल सेना और तैयार हो गयी ॥ ७७३ ॥ जब उन्हें समझाने-बुझानेकी चेष्टा की गयी, तब तरह-तरहकी प्रमादभरी अफवाहें उड़ने लगीं। जिससे राजाके नागरिक व्याकुल हो उठे और चोरीकी घटनायें अत्यधिक बढ़ गयीं ॥ ७७४ ॥ जिन दुष्टोंने कभी राजदरबारका मुँह भी नहीं देखा था और व्यवहारसे जिनका कोई सरोकार नहीं था, वे भी उस संकटग्रस्त राजाके पास जा-जाकर उसे मनमानी जली-कटी सुनाने लगे ॥ ७७५ ॥ लवन्यविप्लवकी अपेक्षा यह विप्लव राजाको विशेष अखरा। क्योंकि पैरके रोगकी अपेक्षा गलेका रोग अधिक पीड़ा पहुँचाता है ॥ ७७६ ॥ अब वह अधिकाधिक सुवर्णका घूस दे-देकर षड्यंत्रकारियोंके षड्यंत्रका किसी-किसी तरह निवारण करने लगा ॥ ७७७ ॥ वर्णसोम आदि प्रमुख शस्त्रधारियोंके वंशमे उत्पन्न और भिक्षाचरकी सेनाका सेनापति विजय हठात् नगरमें घुसने लगा। उसे राजाके घोड़सवारोंने मार डाला ॥ ७७८ ॥ क्योंकि वह बड़े वेगसे रास्ता बनाता हुआ नगरमें घुस रहा था और राज्यपरिवर्तनकी घड़ी प्रायः आ ही गयी थी ॥ ७७९ ॥ जब कि लवन्यमें भी राजाका प्रताप कुछ मन्द पड़ गया, तब भेद डालनेके विचारसे पृथिवीहरने राजा सुस्सलके साथ सन्धि करनेकी अभिलाषा प्रकट की ॥७८०॥ जब विजिगीषुओंमें श्रेष्ठ पृथिवीहरको राजाके साथ सन्धि करनेके लिए इच्छुक देखा, तब उभयपक्षकी सेनाओंने उसे शान्तिपूर्ण विप्लवका कार्य माना ॥ ७८१ ॥ सन्धिका प्रस्ताव पाकर राजाने पृथिवीहरको लानेके लिए अपने तीन प्रमुख मंत्रियोंको नागमठ भेजा। किन्तु जैसे ही वे मठके समीप पहुँचे, तैसे ही पृथिवीहरने छलपूर्वक उन तीनोंको मरवा डाला ॥ ७८२ ॥ उन मंत्रियोंके तीन भृत्य धात्रेय मम्मक, गुग ब्राह्मण और वारिक राम भी तिलकसिंहके समीप पहुँचनेपर मार डाले गये ॥७८३॥ जिसका सारा मूलधन राजाके द्वारा छीना जा चुका था, वह गौरक भी भगवान शंकरका स्मरण करता हुआ वहाँ ही मारा गया। क्योंकि उस समय करुण रोदन करनेवाले विपक्षीपर भी वे विद्रोही निर्दय प्रहार करते थे ॥ ७८४ ॥ इस हत्याकाण्डका समाचार जब राजधानीमें

इषे शुक्लचतुर्दश्यां तद्विपर्यस्तमण्डलम् । अतिवाहयितुं कष्टं दिनमासीन्महीपतेः ॥७८६॥
अथ संजातवैक्लव्यो नेदमस्तीति चिन्तयन् । किं कृत्यमित्यसद्भ्यानपि पप्रच्छ भूपतिः ॥७८७॥
विषमे वर्तमानस्य तस्य कश्चित्स नाभवत् । अन्तर्जहास यो नान्तर्बहिर्यो न तुतोष वा ॥७८८॥
तमपि व्यसनापातं तस्य सोढवतस्ततः । अभजन्त क्रमाद्भृत्याः प्रतिपक्षसमाश्रयम् ॥७८९॥
कम्पनेशस्य विम्बाख्यो भ्राता द्वैमातुरोऽहितान् । समाश्रयद्द्वारकार्यं तद्दत्तं प्रत्यपद्यत ॥७९०॥
गूढं जनकसिंहेन दूतान्प्रेषयताऽनिशम् । भिक्षवे भ्रातृतनया वाग्दत्ता निरवर्त्यत ॥७९१॥
असिवाजितनुत्रादि हृत्वा भिक्षाचरान्तिकम् । अश्ववारा व्यभाव्यन्त प्रयान्तः प्रतिवासरम् ॥७९२॥
किमन्यद्दृष्टभक्तमेवाह्नि येऽसेवन्त पार्थिवान्तिके । अलक्ष्यन्ताग्रतो भिक्षोस्ते निशायां गतत्रपाः ॥७९३॥
इतो याति ततश्चैति लोको व्यक्तमनन्वितः । इति राजनि कुण्ठाज्ञे कोऽप्यजृम्भत विप्लवः ॥७९४॥
डामरैः शरदुत्पत्तौ नीतायां सर्वतस्ततः । कान्दिशीकोऽभवल्लोकः कृत्स्नो धनजनोज्झितः ॥७९५॥
प्रयाते सुस्सलनृपे स्वर्णपूर्णामिमां महीम् । भिक्षुः कुर्यादिति मृषा लोकस्यासीद्विनिश्चयः ॥७९६॥
क्व दृष्टा त्यागिता भिक्षोः कुतो वा तस्य संपदः । परामर्शं नैवेति गतानुगतिको जनः ॥७९७॥

संदृश्यते परिवृता चिरमम्बरेण रेखा स्वयं न खलु या शशिनो नवस्य ।
तस्यां जनः प्रकुरुते नतिमम्बरार्थी धिग्लुब्धतामपसरत्सदसद्विचाराम् ॥७९८॥

विजये राजवर्ग्याणां भुग्नग्रीव इवाभवत् । भिक्षुपक्षजये लोको हृष्यन्नासीद्विशृङ्खलः ॥७९९॥
द्विजकौलेयकन्यायो राजडामरसंघयोः । ततोऽन्योन्यभयभ्रश्यद्वैरयोरुदजृम्भत ॥८००॥

पहुँचा तो वहाँ चारों ओर उदासी छा गयी और सब लोग राजाको भला-बुरा कहने लगे ॥ ७८५ ॥ इस प्रकार आश्विन शुक्ल चतुर्दशीको सारे राज्यमें अराजकता-सी छा गयी और राजाके लिए वह दिन बिताना कठिन हो गया ॥ ७८६ ॥ अब राजाको विश्वास हो चला कि यह राज्य हाथसे निकल जायगा। ऐसी स्थितिमें वह इतना घबड़ा गया कि साधारण श्रेणीके लोगोंसे भी पूछने लगा—'अब क्या करना चाहिए ?' ॥ ७८७ ॥ उस समय विषम परिस्थितिमें पहुँचे हुए राजाको देखकर कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो मन ही मन हँसता हुआ बाहरसे प्रसन्न न हुआ हो ॥ ७८८ ॥ उस भयानक संकटको झेलते देखकर धीरे-धीरे उसके भृत्य भी शत्रु-पक्षमें जा-जाकर मिलने लगे ॥ ७८९ ॥ सेनापति तिलकका सौतेला भाई विम्ब भी शत्रुओंसे जा मिला और उनके द्वारा दिये हुए द्वारपालका पद सम्हाल लिया ॥ ७९० ॥ प्रच्छन्नभावसे नित्य दूत भेजते हुए जनकसिंहने भीतर ही भीतर भिक्षाचरके साथ अपनी भतीजीके विवाहकी बात भी पक्की कर ली ॥ ७९१ ॥ अब तो प्रतिदिन राजकीय अश्वारोहियोंके दल तलवार, घोड़े तथा कवच आदि ले जाकर भिक्षाचरके पास पहुँचाने लगे ॥ ७९२ ॥ और कहाँ तक कहा जाय, दिनके समय जो सेवक राजा सुस्सलकी सेवा करते थे, वे ही निर्लज्जभावसे रातके समय भिक्षाचरके आगे विराजमान दिखायी देते थे ॥ ७९३ ॥ अब सभी लोग राजाज्ञाकी अवहेलना करते हुए निर्बाधभावसे भिक्षाचरके पास जाते थे। यह एक विचित्र प्रकारका विप्लव राज्यमें दिखायी दे रहा था ॥ ७९४ ॥ शरत्कालमें जब डामर चारों ओरसे राजधानीपर चढ़ चले, तब अपना धन-जन त्यागकर नागरिकगण भयके मारे भागने लगे ॥ ७९५ ॥ उस समय लोगोंकी ऐसी व्यर्थ धारणा बन गयी थी कि ज्योंही राजा सुस्सल चला जायगा, त्योंही भिक्षाचर सारी धरतीको स्वर्णमयी बना देगा ॥ ७९६ ॥ उस भिक्षुकका त्याग तथा उसकी सम्पदा किसने देखी थी ? इन बातोंपर कभी किसीने विचार भी नहीं किया। क्योंकि जन-समुदाय भेड़ियाधसानकी तरह एकके पीछे एकके क्रमसे चल पड़ता है—आगा-पीछा देखनेकी उसे फुरसत ही कहाँ रहती है ॥ ७९७ ॥ प्रतिपदाके दिन विशाल गगनमण्डलमें जिस चन्द्रमाकी महीन रेखा भी नहीं दिखायी देती, स्वर्ग प्राप्त करनेके लिए लोग उसका नमन करते हैं। सत् और असत्के विचारसे शून्य ऐसे लोगोंको धिक्कार है ॥ ७९८ ॥ उन दिनों राजाकी विजय सुनकर लोग दुःखसे गर्दन नीची कर लेते थे और भिक्षुकके

राजाभ्यन्तरभेदेन राज्ञः स्थैर्येण चारयः । ऐच्छन्पलायितुं भीता अज्ञातान्योन्यनिश्चयाः ॥८०१॥
बान्धवानपि दुद्रुक्षूनविश्वस्तो विदन्नृपः । स्थितौ पलायने वापि श्रद्दधे न स्वजीवितम् ॥८०२॥
तं महाव्यसने वासःस्वर्णरत्नादिवर्षणम् । नाभ्यनन्दन्गृहीतार्था निनिन्दुः शस्त्रिणः परम् ॥८०३॥
नष्टोऽयं नैष भवितेत्यभीतैर्जल्पतो जनात् । वचो रोगी भिषक्त्यक्त इव शृण्वन्स विव्यथे ॥८०४॥
अभ्यग्रोपस्थितं किंचित्तदादेशेन ढौकयन् । सविलासं सगर्वं च तमैक्षिष्टानुगव्रजः ॥८०५॥
सोऽन्य एवाभवत्तस्मिन्क्षणे साहसिकोऽप्यहो । स्वगृहादपि निर्गन्तुं नाशकद्भयाकुलः ॥८०६॥
यावदैच्छन्संवभेदाच्चलितुं डामरव्रजाः । स्वैरेव शस्त्रिभिस्तावन्निन्ये भूभृद्विभक्तताम् ॥८०७॥
ते कृष्टशस्त्रा द्वाराणि रुन्धन्तो नृपमन्दिरे । प्रवासवित्ते लब्धव्ये प्रायं चक्रुः पदे पदे ॥८०८॥
ददद्धनं धनेशगर्वादेयादप्यधिकं नृपः । तेषामभिमतो नाभूदवमानाभिलाषिणाम् ॥८०९॥
मर्तुं चिचलिषुस्तीर्थमृणिकैरिव सामयः । स रुद्ध्वा निखिलैर्देयं दापितोऽथ गतत्रपैः ॥८१०॥
स्थानपालैरपि प्रायकृद्भिराक्रम्य दापितः । धनं सुवर्णभाण्डादि चूर्णीकृत्य विशृङ्खलैः ॥८११॥
सवृद्धबालं नगरं ततः क्षुभ्यत्क्षणे क्षणे । सोऽभूदब्धिमिवोद्वृत्तं न संस्थापयितुं क्षमः ॥८१२॥
एकदा प्रातरेवान्यै रुद्धद्वारः स्वशस्त्रिभिः । सर्वतः क्षोभमागच्छन्नगरं स व्यलोकयत् ॥८१३॥
ततः क्षोभं शमयितुं जनकं नगराधिपम् । पुरभ्रमार्थमादिश्य चलितुं क्षणमैक्षत ॥८१४॥

पक्षवालोंको जीतकर खुशियाँ मनाते थे ॥ ७९९ ॥ यद्यपि राजा और डामरोंमें ब्राह्मण और कुत्ते जितना अन्तर था, तथापि पारस्परिक भयके कारण इन दोनों जातियोंका वैर पराकाष्ठापर पहुँच गया था ॥ ८०० ॥ भीतरी फूटके कारण राजा और राजाके स्थैर्यसे शत्रु लोग इस प्रकार दोनों ही एक दूसरेका निश्चय न जान पानेके कारण भागना चाहते थे ॥ ८०१ ॥ राजाका विश्वास नष्ट हो चुका था, अतएव वह अपने बान्धवोंको भी विद्रोही समझ रहा था। इसी कारण वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि भागकर जीवनकी रक्षा की जाय या महलमें बैठकर प्राण बचाये जायँ ॥ ८०२ ॥ उस महान् संकटमें पड़ा हुआ राजा सुस्सल स्वर्ण तथा रत्नकी वर्षा कर रहा था, फिर भी उससे विपुल मात्रामें धन पानेवाले सैनिक ही उसकी अत्यधिक निन्दा करते थे ॥ ८०३ ॥ अब तो सभी लोग निडर होकर कहते थे कि 'यह किसी तरह नहीं बच सकता—इसको नष्ट होना ही पड़ेगा'। इन वचनोंको राजा सुस्सल सुनता था तो उस रोगीके समान दुःखी होता था, जिसे वैद्यने असाध्य समझकर त्याग दिया हो ॥ ८०४ ॥ सामने रक्खी हुई कोई चीज यदि राजा माँगता था तो उसे उठाकर देते समय सेवकगण विचित्र ढंगसे इठलाकर उसकी ओर निहारते थे ॥ ८०५ ॥ महान् साहसी होते हुए भी वह राजा भयभीत होनेके कारण अपने घरसे बाहर नहीं निकल सकता था ॥ ८०६ ॥ जब डामरोंका समुदाय राजमहलपर धावा करने चला, तब राजाके सैनिकोंने ही चारों ओरसे सम्बन्ध भंग कर दिया ॥ ८०७ ॥ उन्होंने म्यानोंसे शस्त्रास्त्र निकाल लिया और राजमहलको चारों ओरसे घेरकर बकाया प्रवासभत्ता वसूलनेके लिए वे पद-पदपर अनशन करने लगे ॥ ८०८ ॥ बेचारे राजाने उन्हें इतना ज्यादा धन दिया था कि जितना कुबेर भी नहीं दे सकते थे, फिर भी उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। क्योंकि वे राजाका अपमान करना चाहते थे ॥ ८०९ ॥ अन्तमें वह राजा असाध्य रोगीके समान किसी तीर्थमें जाकर प्राण त्यागनेकी तैयारी करने लगा। तब पावनेदार महाजनोंकी तरह उसके सेवकोंने घेर लिया और निर्लज्ज होकर अपने पावनेका तगादा करने लगे ॥ ८१० ॥ उधर महलके सन्तरी वेतनके लिए अनशन कर रहे थे। उन्होंने तत्काल राजापर हमला कर दिया और उसके आभूषण तथा सोने-चाँदीके बर्तन आदि लूटकर चूर-चूर कर डाला ॥ ८११ ॥ उस समय नगरके आबालवृद्ध सभी लोग क्षण-क्षणपर इस तरह क्षुब्ध हो रहे थे, जैसे समुद्रमें तूफान आ गया हो और उसे कोई काबूमें न कर सके ॥ ८१२ ॥ एक बार तो बड़े सवेरे उस राजाके सैनिकोंने ही उसका द्वार घेर लिया और बादमें राजाको सारा नगर क्षुब्ध दिखायी पड़ा ॥ ८१३ ॥ वह क्षोभ दूर करनेके लिए राजा सुस्सलने नगराधिपति जनकको गश्त लगानेका

कथंचिद्दानमानाभ्यां तानावर्ज्यापि शस्त्रिणः। सावरोधः स संनद्धो राजधान्या विनिर्ययौ ॥८१५॥
अङ्गणात्तुरगारूढो बहिर्यावन्न निर्ययौ। राजधान्यन्तरे लुण्ठिस्तावत्प्रारम्भि तस्करैः ॥८१६॥
अरुदन्केऽपि केऽप्युच्चैरनदन्केऽप्यलुण्ठयन्। तद्भृत्यात्राज्यमुत्सृज्य तस्मिन्व्रजति शस्त्रिणः ॥८१७॥
विशृङ्खलस्त्रपाकोपशङ्काभिः शस्त्रिणां नृपः। सहस्रैः पञ्चषैरासीद्व्रजन्नानुगतोऽध्वनि ॥८१८॥
वर्षे षण्णवते कृष्णषष्ठ्यां मार्गे विनिर्गतः। याममात्रावशेषेऽह्नि सभृत्यो द्रोहविह्वलः ॥८१९॥
निजैर्हरद्भिरश्वादि त्यज्यमानः पदे पदे। स प्रतापपुरं प्राप क्षपायामल्पसैनिकः ॥८२०॥
तिलकस्य पुरो गत्वा प्राप्तस्याग्रं च विश्वसन्। तत्र बन्धोरिवाश्रूणि चिरं दुःखोल्वणोऽमुचत् ॥८२१॥
द्रोहं न कुर्यादेवं मे चिन्तयित्वेति सत्वरम्। वेश्म हुष्कपुरेऽन्येद्युस्तस्य च प्राविशत्स्वयम् ॥८२२॥
तद्गौरवेण स्नानादि कृत्वैच्छत्सैन्यसंग्रहम्। प्रविश्य क्रमराज्यं स कर्तुं भूयो जयोत्सुकः ॥८२३॥
गूढं युयुत्सुन्कल्याणवाडादीनथ डामरान्। आनीय स पुरस्तस्य धैर्यभ्रंशमकारयत् ॥८२४॥
गृहात्तेन तया युक्त्या निष्क्रुष्टः स ततो ययौ। स्वीकुर्वन्स्वर्णदानेन दस्यून्मार्गविरोधिनः ॥८२५॥
प्रयान्तं तत एवौज्झीत्तिलकस्तत्सहोदरः। प्रयाणमेकमानन्दो दाक्षिण्यादन्वगात्तु तम् ॥८२६॥
भृत्यत्यक्तः स दानेन विक्रमेण च तस्करान्। अगान्मार्गेण शमयन्नायुःशेषेण रक्षितः ॥८२७॥
त्राणं सिंहनखा द्रुमाद्रिगहनस्यारादरण्यस्य ये तेषां बालगलाश्रयादपि भवेत्कालातिवाहः क्रमात्।
ये दन्ताः करिणां रणप्रहरणं तेष्वाप्तुयुर्दीव्यतां क्रीडायां करताडनानि न दृढा शौर्यस्य रूढिः क्वचित् ॥८२८॥

आदेश दे दिया और स्वयं वहाँसे निकल भागनेका मौका देखने लगा ॥ ८१४ ॥ तदनुसार दान-मानसे महलके सशस्त्र पहरेदारोंको राजी करके राजा सपरिवार राजधानीसे निकल भागा ॥ ८१५ ॥ राजमहलके आँगनमें घोड़ेपर सवार होकर वह जैसे ही बाहर निकला, तैसे ही चोरोंने राजधानीमें लूट मचा दी ॥ ८१६ ॥ राज्य त्यागकर राजाके बाहर जाते ही सशस्त्र सन्तरी राजसेवकोंको लूटने लगे। उस समय उनमेंसे कुछ रोते थे, कुछ चिल्लाते थे और कुछ लूट रहे थे ॥ ८१७ ॥ जिस समय लज्जा, क्रोध तथा संशयसे आकुल राजा महलसे निकला, उस समय पाँच-छ हजार सशस्त्र सैनिक उसके साथ थे ॥ ८१८ ॥ इस प्रकार ४१९६ लौकिक वर्षके मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी तिथिको विद्रोहियोंसे विकल होकर राजा सुस्सलने राजधानी छोड़ी। उस समय केवल एक पहर दिन बाकी था ॥ ८१९ ॥ रास्तेसे अधिकांश सैनिक भी पद-पदपर अपना-अपना घोड़ा ले-लेकर भागते गये और रात्रिके समय थोड़ेसे सैनिकोंके साथ राजा सुस्सल प्रतापपुर पहुँचा ॥ ८२० ॥ वहाँ वह सेनापति तिलकसे मिला और उसे अपना बन्धु समझकर दुःखातिरेकके कारण फूट-फूटकर रोने लगा ॥ ८२१ ॥ 'कहीं सेनापति भी विद्रोह न कर दे' यह सोचकर राजा दूसरे दिन वहाँसे भी चलकर अपने हुष्कपुरवाले निवासस्थानपर जा पहुँचा ॥ ८२२ ॥ उस स्थानके गौरववश स्नान आदि करके जब वह क्रमराज्यमें पहुँच गया, तब पुनः उसके मनमें विजयकी इच्छा जागृत हुई और सैन्यसंग्रहके मंसूबे बाँधने लगा ॥ ८२३ ॥ तदनुसार वह विजिगीषु राजा काल्याणवाड आदि डामरोंको प्रच्छन्नभावसे बुलवाकर उनका धैर्य भ्रंश करने लगा ॥ ८२४ ॥ जब वह किसी युक्तिसे राजधानीसे बाहर होकर क्रम राज्यकी ओर जा रहा था, तब रास्तेमें उसे चोरोंने घेर लिया। उन्हें राजा सुस्सलने स्वर्णदानका लोभ देकर अपना पीछा छुड़ाया ॥ ८२५ ॥ वहाँसे जब चला, तभी सगे भाई तिलकने उसका साथ छोड़ दिया था। उदारतावश एकमात्र आनन्दने उसका अबतक साथ दिया ॥ ८२६ ॥ अपने सेवकोंको भरपूर द्रव्य देकर चोरोंको पराक्रमसे तथा आश्वासन देते हुए उसने अपना पीछा छुड़ाया और आयु शेष रहनेके कारण किसी तरह बचकर क्रम राज्यमें पहुँच गया ॥ ८२७ ॥ जो सिंहनख बड़े-बड़े वृक्षों तथा पर्वतोंयुक्त वनमें सिंहको रक्षाका काम करते हैं, वे ही समयके फेरसे बच्चोंके गलेमें बँधकर समय बिताते हैं। हाथीके जो दाँत वनमें सिंह आदिसे बचनेके लिए शस्त्रका काम करते हैं, वे ही समय आनेपर चौसर आदि खेलके पाँसे बनकर क्षण-क्षणपर हाथका प्रहार सहते हैं। अतएव यही कहना पड़ता है कि

जन्तूनां विक्रमत्यागयशःप्रज्ञादयो गुणाः । भवे चित्रस्वभावेऽस्मिन्न भवेयुरभङ्गुराः ॥८२९॥
भास्वानप्यौग्र्यमृदुतां भिन्नावस्थां दिने दिने । तां तामायाति जन्तूनां कः प्रभावेषु निश्चयः ॥८३०॥
अशक्नुवन्नट्टलिकामरिप्लुष्टां निरीक्षितुम् । मन्युनिःशब्दसैन्योऽद्रिमारुरोह स लोहरम् ॥८३१॥
स्वं कलत्रमपि द्रष्टुं तत्रातित्रपयाऽक्षमः । शयनीयविमुक्ताङ्गस्तप्यते स्म दिवानिशम् ॥८३२॥
दत्तदीपादनिर्गच्छन्नन्तर्गेहाद्दिनेष्वपि । दाक्षिण्याद्दर्शनं प्रादाद्भृत्यानां भोजनक्षणे ॥८३३॥
विलेपनानि नास्प्राक्षीन्नारुरोह तुरंगमान् । गीतनृत्तादि नैक्षिष्ट सुखगोष्ठीर्न चादधे ॥८३४॥
ताम्यंस्ताटस्थ्यमौखर्यतैक्ष्ण्यद्रोहादि दर्शितम् । एकेनैकेन च स्मृत्वा स्मृत्वा देव्यै न्यवेदयत् ॥८३५॥
अन्वगात्स्वां भुवं त्यक्त्वा मामेतेऽन्वगुरित्यपि । निन्ये वृद्धिं परार्ध्यश्रीः स दाक्षिण्याद्धनार्पणैः ॥८३६॥
कश्मीरेषु गते तस्मिंस्तदैवाखिलमन्त्रिणः । पुराणराजधान्यग्रे ससैन्याः समगंसत ॥८३७॥
मन्त्र्यश्वारोहसामन्ततन्त्रिपौरादिसंमतः । तेषां जनकसिंहोऽभूदग्रणीर्नगराधिपः ॥८३८॥
स भिक्षोर्मल्लकोष्ठाद्यैरास्रैः कृतगतागतैः । विश्वासाय सुतभ्रातृसुतौ नीविं प्रदापितः ॥८३९॥
प्रावर्तत भयभ्रश्यत्स्त्रीबालाद्याबृते पुरे । अराजकाऽथ रजनी सर्वभूतभयावहा ॥८४०॥
निहताः केपि मुषिताः केपि केप्यरिभिः पुरे । दग्धागारा व्यधीयन्त दुर्बला राजवर्जिते ॥८४१॥
सैन्यैरन्येद्युरुन्नादैर्निरुद्धाखिलदिक्पथः । सिन्दूरारुणपुण्ड्राश्वसादिमण्डलमध्यगः ॥८४२॥
विकोशशस्त्रकदलीषण्डदुर्लक्ष्यविग्रहः । मृगेन्द्र इव लोकस्य भयकौतूहलावहः ॥८४३॥

वीरताकी कोई निश्चित स्थिति नहीं होती ॥ ८२८ ॥ इस विचित्र स्वभाववाले संसारमें पराक्रम, त्याग, यश और प्रज्ञा आदि गुण कभी एक रूपमें स्थिर नहीं रह पाते ॥ ८२९ ॥ जब भगवान सूर्य भी प्रतिदिन उग्रता तथा मृदुताकी अवस्थाका अनुभव करते हैं, तब मनुष्य आदि प्राणियोंके प्रभावके विषयमें निश्चितरूपसे क्या कहा जाय ॥ ८३० ॥ जो राजा सुस्सल शत्रुओं द्वारा जलायी हुई अट्टालिकाको नहीं देख सका था, वही राजा दैन्यभावसे उस समय लोहरके पर्वतपर चढा जब सेनाका कोलाहल शान्त हो चुका था ॥ ८३१ ॥ वहाँपर पहुँच करके वह अत्यधिक लज्जाके कारण अपनी स्त्रीका भी मुख नहीं देख सका। वहाँ वह बिछौनेपर पडा-पडा रात-दिन अन्तस्तापसे जला करता था ॥ ८३२ ॥ जो व्यक्ति दिनके समय भी सेवकोंके द्वारा दीपक दिखाये बिना घरसे बाहर नहीं निकलता था और केवल भोजनके समय उदारतावश भृत्योंको दर्शन दे दिया करता था ॥ ८३३ ॥ उसी राजाने अब उबटन लगाना तथा घोड़ेपर चढ़ना छोड़ दिया। नृत्य देखना, गायन सुनना और मित्रोंकी विनोदगोष्ठी भी उसने त्याग दी ॥ ८३४ ॥ राजधानीमें सेवकोंकी तटस्थता, बकवास तथा विद्रोह आदिके प्रदर्शनसे राजा सुस्सलको जो जो कष्ट भोगने पड़े थे, उनमेंसे एक-एकका स्मरण कर-करके वह अपनी रानीको बताता था ॥ ८३५ ॥ अपनी जन्मभूमि त्यागकर संकटके समय अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे पीछे-पीछे आये थे और अमुक-अमुक व्यक्तियोंको मैंने उदारतापूर्वक प्रचुर धन देकर धनाढ्य बना दिया था ॥ ८३६ ॥ कश्मीरसे जैसे ही राजा सुस्सल भागा, उसी समय सेनासमेत सभी मंत्री पुरानी राजधानीके आगे आकर एकत्र हो गये ॥ ८३७ ॥ मंत्रियों, अश्वारोहियों, सामन्तों, तंत्रियों (सलाहकारों) तथा पुरवासियोंकी सलाहसे जनकसिंह सबका आग्रणी एवं नगराधिपति बनाया गया ॥ ८३८ ॥ भिक्षुकके सुहृद मल्लकोष्ठ आदि वहाँ आये और गये। उन सबके पुत्रों तथा भतीजोंको जनकसिंहने नीवी (विनिमयके निमित्त राजपुत्रोंको दिया हुआ धन) दिलायी ॥ ८३९ ॥ उस समय नगरमें भयसे गिरते-पड़ते बालकों-स्त्रियों आदिके कारण सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था और अराजकतासे परिपूर्ण रात समस्त प्राणियोंके लिए और भी भयावह हो उठी थी ॥ ८४० ॥ क्योंकि उस रोज राजहीन नगरमें शत्रुओं द्वारा कुछ लोग मार डाले गये थे, कुछ लुट गये थे और कितनोंके घर फुँक गये थे। इस प्रकार वह राजधानी सर्वथा दुर्बल हो गयी थी ॥ ८४१ ॥ दूसरे दिन सवेरे ही जोरोंसे गर्जनवाले सैनिकोंने सिन्दूर सदृश लाल रंगके घोड़ोंपर सवार सन्तरियोंको चारों ओर तैनात करके सभी मार्गोंको बन्द कर दिया ॥ ८४२ ॥ नंगे शस्त्रोंस्वरूप कदली-

वीरपट्टाञ्चलश्लिष्टैर्यौवनोद्रेचितैः कचैः । अवद्धैः शोभितः पृष्ठे जयश्रीवन्धश्रृङ्खलैः ॥८४४॥
कुण्डलद्योतिना स्निग्धधवलायतदृष्टिना । प्रत्यग्रश्मश्रुणा चारुचन्दनोल्लेखशोभिना ॥८४५॥
ताम्राधरेण वक्त्रेण श्रीसांनिध्याधिकत्विषा । पक्षपाति विपक्षाणामपि संपादयन्मनः ॥८४६॥
असेर्विकोशस्यान्तःस्थां श्रियमश्वेन वल्गता । केसरच्छटया चापि चामरेणेव वीजयन् ॥८४७॥
पदे पदे निवृत्ताश्वः सामन्तैरुपपादिताम् । स्वीकुर्वन्नर्हणां भिक्षुः प्राविशन्नगरं ततः ॥ कुलकम् ॥८४८॥
तस्यार्भकस्य धात्रीव पृष्ठस्थो मल्लकोष्ठकः । प्रययावप्रगल्भस्य सर्वकार्योपदेष्टृताम् ॥८४९॥
अयं पितुः प्रियस्तेऽभूत्त्वमस्याङ्के विवर्धितः । राज्यस्यायं मूलमिति प्रत्येकं समदर्शयत् ॥८५०॥
गृहं जनकसिंहस्य प्राकन्यावाप्तयेऽविशत् । राजलक्ष्मीं स संप्राप्तुं राजधानीं ततः परम् ॥८५१॥
दूरनष्टे कुले तेन पुनरुद्रेचिते ययौ । वद्धास्थो गर्भगेऽपत्ये स्त्रीजनो नवहास्यताम् ॥८५२॥
दृष्टेन तादृशा भिक्षोरिति वृत्तेन शत्रुषु । चित्रस्थेष्वपि साशङ्का नोपहास्या जिगीषवः ॥८५३॥
प्रावर्तन्त धनाधीशश्रियः सुस्सलभूपतेः । कोशेन नीतशेषेण विलासा नवभूपतेः ॥८५४॥
वाजिवर्मासिभूयिष्ठां राजलक्ष्मीं विभेजिरे । राजडामरलुण्ठाकमन्त्रिणो यन्त्रणोज्झिताः ॥७५५॥
पुरे स्वर्ग इवास्वादं भोगानामुपलेभिरे । दस्यवो ग्रामभोगार्हाः पिशाचा इव गह्वराः ॥८५६॥
आस्थाने न वभौ भूभृद्ग्रामीणैः सर्वतो वसन् । प्रलम्वकम्वलप्रायविलासावरणैः समम् ॥८५७॥
भिक्षाचरस्यासंभाव्यप्रादुर्भावतया प्रथाम् । डामरा अवतारोऽयमित्यन्यां निन्यिरे प्रथाम् ॥८५८॥

वनके भीतर कठिनाईसे दिखायी देनेवाला और सिंहके सदृश सब लोगोको भय तथा कौतूहलपूर्ण भिक्षु वीरपट्टकी छोरमें उलझे, छितराये, विना वँधे और विजयलक्ष्मीकी श्रृंखलाके समान केश उसकी पीठपर लहरा रहे थे ॥ ८४३ ॥ ८४४ ॥ भिक्षुकके कानोंमे कुण्डल झिलमिला रहे थे, उसकी आँखे स्निग्ध और धवल थीं, अभी नयी-नयी मूछें निकल रही थीं और उसके ललाटपर भव्य चन्दन लगा हुआ था ॥ ८४५ ॥ उसके ताम्र सदृश लाल अधरोंवाले मुखपर राज्यलक्ष्मीकी छाया स्पष्ट दिखायी दे रही थी। उससे उसका तेज वहुत वढ़ गया था और वह तेज विपक्षियोंका मन भी वरवस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था ॥ ८४६ ॥ नंगी तलवारके भीतर विद्यमान श्रीपर जैसे वह फड़कते हुए घोड़ेका केसररूपी चमर चला रहा ॥ ८४७ ॥ पद-पदपर घोड़ोंको घुमाकर सामन्तोंके द्वारा उपस्थिति की गयी अर्चना स्वीकार करता हुआ भिक्षु नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥ ८४८ ॥ जैसे वच्चेके पीछे धाय रहती है, उसी प्रकार मल्लकोष्ट उस नये राजा पीछे-पीछे चलता हुआ सभी कार्मोका उपदेश दे रहा था ॥ ८४९ ॥ 'ये आपके पिताके प्रिय मित्र थे और इन्हीकी गोदमें पलकर आप वढ़े हैं। ये राज्यके मूल आधार है' ऐसा कहकर उसने भिक्षका सवसे परिचय कराया ॥ ८५० ॥ सर्वप्रथम वह भिक्षु कन्याका पाणिग्रहण करनेके लिए जनकसिंहके घर गया और उसके पश्चात् राजलक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए राजधानीमे पहुँचा ॥ ८५१ ॥ वहुत समयसे नष्ट कुलको उजागर करके उसने राजधानीमें पदार्पण किया था। क्योंकि गर्भस्थ सन्ततिपर भरोसा करके स्त्रियोंको उपहासका पात्र वनना पड़ता है ॥ ८५२ ॥ उस भिक्षुका इतिहास सुन तथा उसको सम्मुख देखकर शत्रुगण उसके चित्रको भी सशंक दृष्टिसे देखने लगे। ठीक ही कहा है कि विजय प्राप्तिके इच्छुक पुरुषका उपहास नहीं करना चाहिये ॥ ८५३ ॥ सुस्सलके चले जानेके वाद जो कोश वाकी रह गया था, वही उस नये राजाके लिए भूतपूर्व राजा सुस्सलकी सम्पत्तिसे वढ़कर और कुवेरके भण्डार तुल्य अटूट हो गया था ॥ ८५४ ॥ भिक्षुके हाथमे शासनसूत्र आते ही सभी राजे, डामरगण और लुण्ठक सव प्रकारके कष्टोंसे छुटकारा पाकर तलवार, कवच तथा अश्वोंसे परिपूर्ण राजलक्ष्मीको परस्पर वाँटकर आनन्द लेने लगे ॥ ८५५ ॥ *गिरिकन्दरानिवासी पिशाचोंके समान ग्राम्य भोगोंके अधिकारी दस्यु नगरके* स्वर्गीय सुखोंका आनन्द लूटने लगे ॥ ८५६ ॥ लम्वे-लम्वे कम्वल कन्धेपर रक्खे या ओढ़े हुए देहाती लोग राजसभामें उस भिक्षुको घेरे वैठे रहते थे। अतएव वह राजा शोभित नहीं हो पाता था ॥ ८५७ ॥ उस भिक्षा-

राज्यस्यानन्यदृष्टस्य कर्तव्येषु मुमोह सः । अदृष्टकर्मेव भिषग्भैषज्यस्य पदे पदे ॥८५९॥
शनैर्जनकसिंहेन कृतभ्रातृसुतार्पणम् । कम्पनाधिपतिर्दत्तकन्योऽपि तमशिश्रियत् ॥८६०॥
जुङ्गो राजपुरीयस्य राज्ञः कटकवारिकः । पादाग्राविकृतोऽद्राक्षीत्स्वार्थमर्थं न तु प्रभोः ॥८६१॥
सर्वाधिकारिणं राजलक्ष्मीर्बिम्बमशिश्रियत् । राजशब्दस्यैव पात्रमभूद्भिक्षाचरः परम् ॥८६२॥
वेश्यायत्तीकृतैश्वर्यः प्राकृताचारभागपि । अन्तरङ्गः सदसतां किंचिद्विम्बस्तदाऽभवत् ॥८६३॥
द्वैमातुरो दर्पकस्य भ्राता साश्चर्यशौर्यभूः । नृपान्तरङ्गज्येष्ठत्वं ज्येष्ठपालोऽप्यशिश्रियत् ॥८६४॥
मन्त्रिणो भूतभिद्याद्यास्तस्य पैतामहा अपि । लक्ष्मीसरोजिनीभृङ्गा बहवोऽन्ये जजृम्भिरे ॥८६५॥
मुग्धे राज्ञि प्रमत्तेषु मन्त्रिधूर्तेषु दस्युषु । उत्थानोपहतं राज्यं नवत्वेऽपि बभूव तत् ॥८६६॥
स्त्रीभिर्नवनवाभिश्च भोज्यैः प्राज्यैश्च रञ्जितः । भिक्षुर्नैक्षिष्ट कर्तव्यं सुखानुभवमोहितः ॥८६७॥
स सुखानुभवप्रावृड्निद्रान्धो विजयोद्यमे । स्वैः प्रेरितः सभामध्ये स्वप्तुमैच्छन्मदालसः ॥८६८॥
दर्पेण सचिवे वाचं कथयत्यनुकम्पिकाम् । न स चुक्रोध मुग्धस्तु पितरीवान्वरज्यत ॥८६९॥
निष्प्रतिष्ठैः सेव्यमानो वेश्योच्छिष्टैरशिष्टवत् । अट्टचेटोचिताश्रेष्टा विटैः प्रैर्यत सेवितुम् ॥८७०॥
पानीयरेखाप्रतिमस्थैर्यस्याखिलवस्तुषु । तस्याप्रमाणवचसः सेवां प्रणयिनो जहुः ॥८७१॥
यदूचुः सचिवास्तत्तानन्वबोचन्न भूभृतः । वचः सुपिरगर्भस्य तस्य किंचित्समुद्ययौ ॥८७२॥

चरके असंभव प्रादुर्भाव, तथा अद्भुत कार्यकलापोंके कथानक गढ-गढकर डामर लोग यह प्रचार करने लगे कि 'राजा भिक्षाचर कोई अवतारी महापुरुष है' ॥ ८५८ ॥ जैसे औषधिनिर्माणकी कलासे अनभिज्ञ वैद्य पद-पदपर चकराया करता है, उसी प्रकार कभी भी राज्यकार्य न देखे हुए वह भिक्षु भी चक्करमें पड़ जाता था ॥ ८५९ ॥ उधर जनकसिंहने चुपकेसे भिक्षुको भाईकी कन्या देकर राज्यके सेनापतिका पद हस्तगत कर लिया और उस राजाकी सेवकाई करने लगा ॥८६०॥ जुङ्ग राजपुरीके राजाका एक सैनिक अधिकारी था। वह भी अव अपने नहीं, वल्कि अपने स्वामीका स्वार्थ साधन करनेके लिए कश्मीरके उच्च पदपर नियुक्त हो गया ॥ ८६१ ॥ अव वस्तुतः राज्यलक्ष्मी सर्वाधिकारी विम्वकी चेरी थी। भिक्षाचर तो नाममात्रका राजा था ॥ ८६२ ॥ अतएव विम्व समस्त राज्यका ऐश्वर्य वेश्याओंके हवाले करके खुलकर दुराचार करने लगा। जिससे वह राज्यके सत् और असत् व्यवहारका सच्चे अर्थमें विम्व अर्थात् प्रतीकमात्र रह गया ॥ ८६३ ॥ दर्पकका सौतेला भाई और आश्चर्यजनक पराक्रमी ज्येष्ठपाल राजा भिक्षुकका सर्वश्रेष्ठ अन्तरङ्ग वन गया ॥ ८६४ ॥ भूतभित् आदि उसके पितामहके सम्वन्धी भी राजलक्ष्मीस्वरूपिणी कमलिनीके भौंरे वनकर उस भिक्षु राजाके चारों ओर मँडराने लगे ॥ ८६५ ॥ जहाँ ऐसा अनुभवशून्य राजा हो और पक्के चोर तथा प्रमादी मंत्री हों, वहाँ नये राज्यका विकास अवरुद्ध हो जाना साधारण वात है। सो उस समय कश्मीरमें वही हुआ ॥ ८६६ ॥ वहाँ भिक्षुक राजाको नयी-नयी स्त्रियाँ मिलीं और नानाप्रकारकी भोगसामग्रियाँ सुलभ हो गयीं। अतएव वह राजा इन भोगविलासोंमें फँसकर वावला वन गया। वह राज्यकार्यकी ओर कभी दृष्टि उठाकर देखता ही नहीं था ॥८६७॥ इस प्रकार राजा भिक्षु सुखके अनुभवरूपी वरसातके दिनोंमें नींदसे अन्ध वनकर विजयके उद्यमसे पराङ्मुख हो गया। जव उसके पार्श्ववर्ती उसे राजदरवारमें चलनेको कहते तो वह मदिराके नशेमें चूर होनेके कारण लम्वी तानकर सो जाता था ॥ ८६८ ॥ यदि उसकी चालसे खीझकर कभी कोई सचिव झिड़क देता तो वह राजा क्रुद्ध न होकर इस प्रकार उससे अनुनय करने लगता था, जैसे कोई अपने पिताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता हो ॥ ८६९ ॥ उस राजाके पास वेश्याओंके दलालों और लफंगोंका मेला लगा रहता था। वे नीच जैसी सलाह देते थे, वह वैसा ही करता था ॥ ८७० ॥ जैसे पानीपर खींची हुई रेखा स्थिर नहीं होती, उसी तरह वह राजा भी अपनी किसी वातपर स्थिर नहीं रहता था। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके सेवकोंने सेवा करनी छोड़ दी ॥ ८७१ ॥ यदि कोई सचिव उन सेवकों द्वारा राजाको वतानेके लिए कोई सन्देश भेजता तो वे उसे राजाको नहीं वताते थे। यह वात दूसरी है कि कभी भूले-भटके कोई

सचिवैः स्वगृहान्नीत्वा दत्तभोज्यः स मुग्धधीः । धनी विपन्नपितृक इव प्रमुषितो विटैः ॥८७३॥
आहारमुष्टीर्बिम्बस्य गृहे बिम्बानितम्बिनी । तस्याश्वस्येव वडवा रागिणोऽग्रगताऽहरत् ॥८७४॥
वञ्चयित्वा दृशौ पत्युर्दर्शितैः स्मेरया तया । कुचकक्षकटाक्षैः स लुप्तधैर्यो व्यधीयत ॥८७५॥
पृथ्वीहरो मल्लकोष्ठश्चान्योन्योद्भूतमत्सरौ । क्षोभं व्यधत्तां संरब्धौ राजधान्याः क्षणे क्षणे ॥८७६॥
स्वयं राज्ञा सुतोद्वाहं गृहान्गत्वापि कारितौ । तावन्योन्यमुपैक्षेतां न मन्युं विक्रमोन्मदौ ॥८७७॥
अथ पृथ्वीहरगृहात्कृतोद्वाहः स्वयं नृपः । जातामर्षेण सुस्पष्टं मल्लकोष्ठेन तत्यजे ॥८७८॥
द्रुह्यञ्जनककाणोऽपि संबन्धापेक्षयोज्झितः । विरागमोजानन्दादीन्निन्ये ब्राह्मणमन्त्रिणः ॥८७९॥
तटस्थो द्रोग्धृदुर्बुद्धिप्रायभृत्यविधेयधीः । विस्रस्तव्यवहारत्वं निन्द्यत्वं च ययौ नृपः ॥८८०॥
डामरस्वामिके लोके प्राभवन्को न विप्लवः । ब्राह्मण्यो धर्षणं यत्र श्वपाकेभ्योऽपि लेभिरे ॥८८१॥
अराजकेऽथ वा भूरिराजके मण्डले तदा । समस्तव्यवहाराणां स्फुटं तुत्रोट पद्धतिः ॥८८२॥
दीनारा भैक्षवे राज्ये निष्प्रचाराः पुरातनाः । तच्छतेन तु नव्यानामशीतेरभवत्क्रयः ॥८८३॥
राजपुर्यध्वना बिम्बं ससैन्यमथ पार्थिवः । लोहरं प्राहिणोत्कर्तुं सुस्सलास्कन्दमुन्मदः ॥८८४॥
तुरुष्कसैन्यमानिन्ये सोमपालेन सोऽन्वितः । साहायकाय सल्लारे विस्मये मित्रतां गते ॥८८५॥
संदर्श्य पाशमेतेन बद्ध्वा कर्ष्यामि सुस्सलम् । इत्येक एकोऽश्वारोहस्तुरुष्काणामकत्थत ॥८८६॥
काश्मीरिकखशम्लेच्छयोधव्यतिकरोऽभवत् । न केषां नाम संभाव्यो विश्वोत्पाटनपाटवः ॥८८७॥

सन्देश उसके पास पहुँच जाय ॥ ८७२ ॥ सचिव लोग राजा भिक्षुको यदि अपने घर बुलाकर जिमा देते थे तो इतने हीसे वह मुग्ध हो जाता था । इस प्रकार उस सीधे-सादे राजाको धूर्तोंने उसी तरह खूब ठगा, जैसे किसी अबोध धनीका बाप मर जाता है तो धूर्तगण उसे ठग लेते हैं ॥ ८७३ ॥ बिम्बके घर उसकी स्त्री प्रायः राजा भिक्षुको भोजनके लिए बुलाती थी। वहाँ जाते-जाते वह उसपर उसी तरह आसक्त हो गया, जैसे कोई घोड़ा किसी घोड़ीपर आसक्त हो जाय ॥ ८७४ ॥ बिम्बपत्नी भी अपने पतिसे आँख बचाकर भिक्षुकी ओर रसभरी दृष्टिसे देखती, मुसकाती और कुचोंका प्रदर्शन करती थी। उसका यह भाव देखकर उस नये राजाका धैर्य लुप्त हो गया ॥ ८७५ ॥ उधर पृथ्वीहर तथा मल्लकोष्ठमें पारस्परिक राग-द्वेष बढ गया और वे दोनों क्षण-क्षणपर राजधानीमें अशान्तिका संचार करने लगे ॥ ८७६ ॥ यद्यपि राजाको जनकके घर ले जाकर उन दोनोंने ही विवाह कराया था, तथापि उन दोनोंने एक दूसरेको त्याग दिया। क्योंकि वे दोनों ही प्रबल पराक्रमी थे और उनपर शौर्यका उन्माद छाया हुआ था ॥ ८७७ ॥ पृथ्वीहरके घर जाकर विवाह करानेवाले मल्लकोष्टने अमर्षवश स्पष्टरूपसे राजा तकका त्याग दिया ॥ ८७८ ॥ जनककाण भी अब द्रोह-सा करने लगा और सम्बन्ध त्याग दिया। ओजानन्द आदिको ब्राह्मण मंत्रियोंने उदासीन कर दिया ॥ ८७९ ॥ ऐसा करनेसे वह तटस्थ राजा द्रोहियोंका भृत्य बन गया। उसका व्यवहारसूत्र छिन्न-भिन्न हो गया और चारों ओर उसकी निन्दा होने लगी ॥८८०॥ जिस राज्यके स्वामी डामर हों, वहाँ जो अनर्थ न हो जाय सो थोड़ा है। क्योंकि उनके प्रभुत्वमें ब्राह्मण चण्डालसे भी हीन माने जाने लगे थे ॥ ८८१ ॥ उन दिनों उस अराजक तथा कई राजाओंवाले कश्मीर-मण्डलमें समस्त व्यवहारोंका मार्ग स्पष्टरूपसे अवरुद्ध हो गया था ॥ ८८२ ॥ भिक्षुके राज्यमें पुराने दीनारोंका प्रचलन बन्द कर दिया गया था। अतएव अब पुराने सौ दीनारोंके बदलेमें अस्सी ही नये दीनार मिलते थे ॥८८३॥ तदनन्तर सहसा राजा भिक्षुने सुस्सलके आक्रमणको व्यर्थ करनेके लिए सेना समेत सेनापति बिम्बको राजपुरीके मार्गसे लोहर भेजा ॥ ८८४ ॥ वहाँसे चलकर बिम्बने अपनी सहायताके लिए सोमपालके द्वारा सल्लारमें तुर्कोंकी सेना बुलवा ली। इस प्रकार तुर्कोंके साथ उसकी मैत्री देखकर सब लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ ॥ ८८५ ॥ अब तुर्कसेनाका एक-एक अश्वारोही बड़े गर्वके साथ एक रस्सा दिखाता हुआ कहता फिरता था कि 'मैं इसी रस्सेमें सुस्सलको बाँधकर जमीनपर घसीटूँगा' ॥ ८८६ ॥ इस प्रकार काश्मीरों, खशों और म्लेच्छ योद्धाओंका एक

भिक्षाचरः प्रयाते तु बिम्बे विगलिताङ्कुशः । न कासामव्यवस्थानां मूढः स्थानमजायत ॥८८८॥
स निमन्त्र्य निजं नीतो गृहं बिम्बावरुद्धया । भोगसंभोगदानेन धर्षण्या पर्यतोष्यत ॥८८९॥
कार्यापेक्षापि तस्यासीन्न मन्त्रिस्त्रीसमागमे । कौलीनभीतेरासन्ननिपातस्य कथैव का ॥८९०॥
आद्यूनानुगुणं भोज्यं कुम्भकांस्यादिवादनम् । तत्र प्राकृतकामीव न स जिहाय शीलयन् ॥८९१॥
शनैः शनैस्ततो नष्टावष्टम्भस्य महीपतेः । काले भोज्यमपि प्राप्यं नासीद्दलितसंपदः ॥८९२॥
तादृक्प्रलोभक्रौर्यादिक्रान्तो यः प्रागगर्ह्यत । स सुस्सलोऽथ लोकानामभिनन्द्यत्वमाययौ ॥८९३॥
धनमानादिनाशं या विरक्तास्तस्य चक्रिरे । काङ्क्षन्ति स्म घनोत्कण्ठास्ता एवागमनं प्रजाः ॥८९४॥
प्रत्यक्षदर्शिनोऽद्यापि साश्चर्या वयमस्य यत् । ताः प्रजाः कोपिताः केन केन भूयः प्रसादिताः ॥८९५॥
क्षणाद्वैमुख्यमायान्ति सांमुख्यं यान्ति च क्षणात् । न हेतुं कंचिदीक्षन्ते पशुप्रायाः पृथग्जनाः ॥८९६॥
ते मल्लकोष्ठजनकादयो दूतैर्विसर्जितैः । त्यक्तराज्यं पुनर्भूपं जयोद्यममजिग्रहन् ॥८९७॥
अक्षोसुवाग्रहारेऽथ लोकैष्टिक्कस्य लुण्ठिते । तत्रत्या ब्राह्मणाः प्रायं नृपमुद्दिश्य चक्रिरे ॥८९८॥
तैश्चान्यैश्चाग्रहारैश्च संश्रितैर्विजयेश्वरे । राजानवाटिकाप्रायो नगरेऽपि न्यविक्षत ॥८९९॥
ओजानन्दादिभिर्मुख्यद्विजैरुत्तेजितास्ततः । गोकुलेऽपि व्यधुः प्रायं त्रिदशालयपर्षदः ॥९००॥
युग्यार्पितैः सितच्छत्रवस्त्रचामरशोभिभिः । विबुधप्रतिमावृन्दैः सर्वतश्छादिताङ्गणः ॥९०१॥

अच्छा जमावड़ा जुट गया। क्योंकि विश्वके विध्वंसकी पटुता सभी लोगोंमें विद्यमान रहती है (किन्तु विश्वके निर्माणका कौशल विरले ही लोगोंके पास होता है) ॥ ८८७ ॥ इस प्रकार बिम्बके चले जानेपर राजा भिक्षाचर पूर्ण निरंकुश हो गया। उसके बाद राज्यमें कौन-सी अव्यवस्था ऐसी हो सकती थी कि जिसकी सृष्टि उस मूर्खने न कर दी हो ॥ ८८८ ॥ अब बिम्बकी दुराचारिणी रखैल निमंत्रित करके भिक्षुको अपने घर ले जाती और नाना प्रकारके भोग और संभोग प्रदान करके सन्तुष्ट करती थी ॥ ८८९ ॥ उस मन्त्रीकी स्त्रीके समागममें वह इतना लीन हो गया कि राजकार्यकी उसे कुछ चिन्ता ही नहीं रह गयी, तब आत्मपतन तथा लोकलाजकी तो बात ही क्या थी ॥ ८९० ॥ उसके घर एक नीचवर्णके कामुककी भाँति अपनी प्रकृतिके विपरीत वस्तुओंके भोजन, घड़े तथा कांस्य (मजीरा) आदि वाद्य वादनमें वह तनिक भी लज्जाका अनुभव नहीं करता था ॥ ८९१ ॥ इस तरह धीरे-धीरे उसका अंकुश ढीला पड़ता गया और उसकी सारी सम्पदा नष्ट हो गयी। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे समयपर भोजन मिलना भी कठिन हो गया ॥ ८९२ ॥ उधर जो प्रजाजन पहले राजा सुस्सलके लोभाधिक्य तथा क्रूरताकी आलोचना करते थे, वे ही लोग अब उस भूतपूर्व राजाकी सराहना और अभिनन्दन करने लगे ॥ ८९३ ॥ पहले कुपित होकर जिन लोगोंने राजा सुस्सलके धन और मानका विनाश किया था, वे ही अब बड़ी उत्कण्ठाके साथ उसके लौट आनेकी इच्छा करने लगे ॥ ८९४ ॥ प्रत्यक्षदर्शी लोग यह सोचकर बड़े आश्चर्यमें थे कि 'उस समय राजा सुस्सलकी प्रजाको किसने कुपित किया और अब किसने उसे प्रसन्न कर लिया' ॥८९५॥ ठीक ही तो है, निम्न श्रेणीके पशुप्राय लोग क्षण ही भरमें कुपित एवं विमुख हो जाते हैं और क्षण भर ही बाद फिर प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि उनके कोप और उनकी प्रसन्नताका कोई हेतु नहीं रहता, और फिर हेतुकी ओर वे निहारते भी नहीं ॥ ८९६ ॥ अब उन्हीं मल्लकोष्ठक तथा जनक आदिने राज्य त्यागे हुए राजा सुस्सलके पास दूत भेजकर पुनः राज्य प्राप्तिके लिए उद्योग करनेका आग्रह किया ॥ ८९७ ॥ उधर अक्षोसुवाका अग्रहार (माफी जमीन) टिक्क अर्थात् तिलक हाथसे छीन लिया गया तो वहाँके ब्राह्मण राजाके विरुद्ध अनशन करने लगे ॥ ८९८ ॥ धीरे-धीरे इस अनशनकी हवा विजयेश्वरके अग्रहार अपहरणकाण्डको लेकर राजानवाटिकाके नगरतक फैल गयी ॥ ८९९ ॥ उसी समय ओजानन्द आदि प्रमुख विप्रोंके द्वारा उत्तेजित किये जानेपर गोकुलके मन्दिरोंमें रहनेवाले पुजारियोंने भी अनशन आरम्भ कर दिया ॥ ९०० ॥ अब चारों ओर बैलगड़ी अथवा विमान (पालकी) पर देवताओंकी प्रतिमा रख तथा श्वेत वस्त्र पहनाकर उनपर श्वेत छत्र लगाये चमर चलाते विप्र दिखायी दे रहे थे। घरके प्रत्येक आँगनमें भी यही दृश्य दृष्टिगोचर होता

काहलाकांस्यतालादिवाद्यक्षोभितदिङ्मुखः । अदृष्टपूर्वो ददृशे पारिषद्यसमागमः ॥९०२॥
ते सान्त्वमाना भूभर्तुर्दूतैरुत्सेकवादिनः । न विना लम्बकूर्चं नो गतिरित्यब्रुवन्वचः ॥९०३॥
ते हेलया लम्बकूर्चाख्यया सुस्सलभूपतिम् । तं निर्दिशन्तोऽमन्यन्त क्रोडापुत्रकसंनिभम् ॥९०४॥
प्रायं प्रेक्षितुमायातैः पौरैः सह दिने दिने । अमन्त्रयत कां कां न व्यवस्थां पर्षदां गणः ॥९०५॥
नृपापातभयात्क्षोभं मुहुर्मुहुरुपागतैः । पारिषद्यैश्च पौरैश्च योद्धुमास्थीयतोद्धतम् ॥९०६॥
वश्यं जनकसिंहस्य नगरं तन्मतेन तत् । सज्जं सुस्सलदेवस्य कृत्स्नमानयनेऽभवत् ॥९०७॥
प्रायाद्वारयितुं पूर्वमग्रहाराद्द्विजान्नृपः । प्रययौ विजयक्षेत्रं तत्रासीच्च हतोद्यमः ॥९०८॥
तन्मध्ये निखिलांस्तत्र डामरांस्तिलकोऽब्रवीत् । व्यापादयेति तं तच्च सत्त्वैकाग्रो न सोऽग्रहीत् ॥९०९॥
राज्ञ एव मुखाद्बुद्ध्वा लवन्यास्तद्विशश्वसुः । तस्मिन्पृथ्वीहरमुखास्तत्रसुस्तिलकात्पुनः ॥९१०॥
भागिनेयं प्रयागस्य क्षत्तारं लक्ष्मकाभिधम् । बद्धुमैच्छन्नृपोऽस्निग्धं प्रययौ स तु सुस्सलम् ॥९११॥
ततः प्रविश्य नगरं संनिपत्याखिलं जनम् । अकारणविरक्तानां पौराणां प्रददौ सभाम् ॥९१२॥
युक्तमप्युक्तवांस्तत्र हतोक्तिः शठबुद्धिभिः । पौरैः स चक्रे नास्त्येव भेषजं विप्लवस्पृशाम् ॥९१३॥
अत्रान्तरे सोमपालबिम्बाद्या लोहरे स्थितम् । योद्धुं सुस्सलभूतं ते सर्वे पर्णोत्समाययुः ॥९१४॥
तं च पद्मरथो नाम राजा कालिञ्जरेश्वरः । मैत्रीं संस्मृत्य कल्हाद्यैराययौ तत्कुलोद्भवः ॥९१५॥
सोऽथ शुक्लत्रयोदश्यां वैशाखे बलिभिः समम् । तैर्मानी सुस्सलो राजा संग्रामं प्रत्यपद्यत ॥९१६॥
प्रेक्षकैर्वर्ण्यतेऽद्यापि स पर्णोत्सान्तिके रणः । तस्याद्भुतोऽश्वमानाग्निक्षालनप्रथमक्षणः ॥९१७॥

था ॥ ९०१ ॥ वे नगाड़े, कांसेकी थाली तथा तालियें बजा-बजाकर दसों दिशाओंको मुखरित कर रहे थे। सब तरफ सभाओंकी अभूतपूर्व भीड़ दिखायी देती थी ॥ ९०२ ॥ जब राजाके दूत उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा करते तो वे साफ-साफ कह देते थे कि 'उस लम्बी दाढ़ीवाले राजाको फिरसे बुलाये बिना और कोई गति नहीं है' ॥ ९०३ ॥ वे लोग राजा सुस्सलका लम्बकूर्च (लम्बी दाढ़ीवाला) यह सांकेतिक नाम रखकर उसे खिलौनेका गुड्डा बनाये हुए थे ॥ ९०४ ॥ उन ब्राह्मणोंका अनशनसमारोह देखनेके लिए आये हुए नगर-निवासियोंकी सभामें मन्दिरके पुजारी लोग न जाने कितने प्रकारकी व्यवस्थाओंका ऊहापोह करते थे ॥ ९०५ ॥ बार-बार राजाके आगमनके भयसे पुजारी और नागरिक क्षुब्ध हो जाते और उससे उद्धतता प्रदर्शनपूर्वक लड़ जानेको सन्नद्ध हो उठते थे ॥ ९०६ ॥ उस समय सारा नगर जनकसिंहके अधीन था। सो उसकी प्रेरणासे समस्त नागरिक राजा सुस्सलदेवको वापस लानेके लिए प्रयत्नशील थे ॥ ९०७ ॥ उधर अग्रहारकी समस्याको लेकर अनशन करनेवाले ब्राह्मणोंको समझाकर उससे विरत करनेके लिए राजा भिक्षु विजयक्षेत्र गया, किन्तु वह उस कार्यमें असफल रहा ॥ ९०८ ॥ इसी बीच तिलकने डामरोंसे कहा कि 'तुम लोग राजा भिक्षाचरको मार डालो'। किन्तु सत्त्वगुण सम्पन्न डामरोंने उसकी बात नहीं मानी ॥ ९०९ ॥ बादमें इस साजिशकी बात राजा भिक्षुको मालूम हो गयी और उसने यह बात लवन्योंको बता दी। जिसपर उन्होंने विश्वास कर लिया और पृथ्वीहर आदि राज्यके प्रमुख अधिकारी डरकर तिलकसे सदा सशंक रहने लगे ॥ ९१० ॥ प्रयागके भांजे और अपने विद्रोही सारथी लक्ष्मकको राजा भिक्षुने कैद करना चाहा, किन्तु वह राजा सुस्सलके पास भाग गया ॥ ९११ ॥ इसके बाद राजाने नगरमें एक बहुत बड़ी सभा करायी और उसमें स्वयं जाकर अकारण रुष्ट प्रजाके समक्ष उसे वस्तुस्थिति समझायी ॥ ९१२ ॥ यद्यपि राजाने वहाँ युक्तिसंगत बातें कही थीं, किन्तु शठ प्रकृतिके लोगोंने उसकी बात काट दी। क्योंकि जिनके हृदयको विप्लव स्पर्श कर लेता है, उनके लिए कोई दवा ही नहीं होती ॥ ९१३ ॥ इसी बीच सोमपाल और बिम्ब आदि योद्धा लोहरमें रहनेवाले राजा सुस्सलसे लड़नेके लिए पर्णोत्स जा पहुँचे ॥ ९१४ ॥ उस समय कालिंजरेश्वर पद्मरथ पुरानी मित्रताका स्मरण करके कल्हार आदि राजाओंके साथ सुस्सलकी सहायता करने गया ॥ ९१५ ॥ इस प्रकार वैशाख शुक्ल त्रयोदशीको स्वाभिमानी राजा सुस्सल उन

कुतोऽप्येत्य निजस्फारस्ततः प्रभृति भूपतिम् । तमशून्यं पुनश्चक्रे मृगेन्द्र इव काननम् ॥९१८॥
भयस्खलितपाशानां कालपाशैः समागमम् । स चकार तुरुष्काणां क्षणात्पुष्कलविक्रमः ॥९१९॥
मातुलं सोमपालस्य निन्ये कवलतां बली । रणे तत्कोपवेतालो वितोलासरितस्तटे ॥९२०॥
किमन्यदल्पसैन्यः स बहूनपि स तान्व्यधात् । हतविद्रुतविध्वस्तान्यथात्मपरिपन्थिनः ॥९२१॥
काश्मीरिकाणामौचित्यं किं नाभूत्स्वामिनो द्रुदुः । एकस्य ये रणं नष्टाः कुकीर्तिमपरस्य च ॥९२२॥
तुरुष्कैः सह यातेऽथ सोमपाले गतत्रपाः । बिम्बं काश्मीरिकास्त्यक्त्वा राजान्तिकमशिश्रियन् ॥९२३॥
ह्यो धनूंपि शिरांस्यद्य नमयन्तोऽद्भुताशयाः । कुलप्रभोः पुरः स्पष्टं न ते धृष्टा ललज्जिरे ॥९२४॥
आगच्छद्भिस्ततः पौरैर्डामरैश्च समं नृपः । प्रतस्थे दिवसैर्द्वित्रैः कश्मीराभिमुखः पुनः ॥९२५॥
राजपुत्रः साहदेविः कल्हणो विशतः प्रभोः । डामरान्क्रमराज्यस्थान्संगृह्याग्रेसरोऽभवत् ॥९२६॥
य एव प्रथमं राजसैन्याद्भिक्षुमशिश्रियत् । स एव बिम्बो राजानं तमुत्सृज्य समाययौ ॥९२७॥
अन्ये जनकसिंहस्य संमता मन्त्रितन्त्रिणः । प्रत्युद्यन्तो व्यलोक्यन्त नृपतिं निरपत्रपाः ॥९२८॥
काण्डिलेत्राभिधग्रामजन्मा शस्त्री सुलक्षणः । भाङ्गिले कश्चिदभवच्छून्ये क्रान्तोपवेशनः ॥९२९॥
भिक्षुर्वितीर्णमार्गं तं सुस्सलान्तिकगामिनः । लोकस्यात्रान्तरे जेतुं सहपृथ्वीहरो ययौ ॥९३०॥
जितवांस्तं बबन्धेच्छां निहन्तुं सुस्सलोन्मुखम् । क्रोधाज्जनकसिंहं च वार्तां तां च विवेद सः ॥९३१॥

बलवान् सोमपाल-विम्ब आदिके साथ संग्राम करने लगा ॥ ९१६ ॥ जिन लोगोंने वह युद्ध देखा था, उन प्रेक्षकों-का आज भी कहना है कि पर्णोत्सके निकट जो युद्ध हुआ, वह अद्भुत था। उसमे राजा सुस्सलने अपने अप-मानरूपी अग्निका प्रथम क्षालन किया था ॥ ९१७ ॥ उस समय उस राजामे न जाने कहाँसे ऐसी अपार शक्ति आ गयी थी कि देखते-देखते उसने शत्रुओंसे सारा मैदान इस तरह खाली कर दिया, जैसे सिंह मृगोंको मारकर जगल सूना कर दे ॥ ९१८ ॥ भयसे ही जिनका साहस टूट चुका था, उन तुर्कोंको क्षण ही भरमे उस वीरने कालपाशमें बाँधकर जकड़ दिया ॥ ९१९ ॥ वितोला नदीके तटपर होनेवाले युद्धमे राजा सुस्सलका कोपरूपी वताल अपने मामा सोमपालको खा गया ॥ ९२० ॥ और अधिक कहाँतक कहें, अल्पसंख्यक सैनिकों युक्त होते हुए भी वीर सुस्सलने बहुसंख्यक सेनावाले शत्रुओंमेसे बहुतोंको मार डाला, कितनोंको भगा दिया और कितने ही योद्धाओंको घायल करके सदाके लिए बेकार कर दिया ॥ ९२१ ॥ उस युद्धमे कश्मीरियोंको किस औचित्यका लाभ हुआ, सो समझमे नहीं आता। क्योंकि एक पक्ष तो वहाँ जाकर रणमें मर मिटा और बाकी बचे पक्षके लोगोंको अपयश मिला ॥ ९२२ ॥ इस प्रकार तुर्कोंके साथ सोमपालके मर जानेपर शेष कश्मीरी निर्लज्ज भावसे बिम्बको वहाँ ही छोड़कर राजा भिक्षुके पास जा पहुँचे ॥ ९२३ ॥ अभी कल जो लोग रोदा चढानेके लिए धनुष झुका रहे थे, वे ही अद्भुत स्वभावके योद्धा राजा भिक्षाचरके समक्ष माथा झुका रहे थे। ऐसा करते समय उन्हें लज्जा नहीं आयी ॥ ९२४ ॥ ऐसी स्थितिमे राजा सुस्सल दो-तीन दिनमे तैयारी करके वहाँसे लौटते हुए नागरिकों और डामरोंके साथ कश्मीरकी ओर चल पड़ा ॥ ९२५ ॥ अपने प्रभुको कश्मीरसे प्रविष्ट होते देखकर राजपुत्र साहदेवि कल्हण क्रमराज्यके डामरोंको साथ लेकर उसके आगे-आगे चला ॥ ९२६ ॥ जो बिम्ब भिक्षु राजाकी सेना लेकर सुस्सलसे लड़ने आया था, अब वह राजा भिक्षुको त्यागकर राजा सुस्सलके साथ हो गया ॥ ९२७ ॥ उसके अतिरिक्त जनकसिंहके मतानुयायी मन्त्री और तंत्री निर्लज्ज होकर बड़ी उत्सुकताके साथ राजा सुस्सलके आगमनकी बाट जोह रहे थे ॥ ९२८ ॥ उसी अवसरपर एक बहुत ही सुलक्षण योद्धा, जो काण्डिलेत्र ग्राममें उत्पन्न हुआ था और भांगिलके आस-पास किसी शून्य स्थानपर रहता था ॥ ९२९ ॥ उसीको लेकर राजा भिक्षु पृथ्वीहरके साथ उन लोगोंको पराजित करनेके लिए गया, जो तिलकसिंह जैसे राजद्रोहियोंका सन्देश लेकर राजा सुस्सलके पास गये थे ॥ ९३० ॥ वहाँ जाकर उसने उन लोगोंको जीतकर कैद कर लिया। उसके बाद जनकसिंहके षड्यंत्रका पता पाकर भिक्षु मारे क्रोधके तलमला उठा। यद्यपि वह उसी समय सुस्सलके

नगरस्थेन तेनाथ पौराश्वारोहतन्त्रिणः । संघटय्याखिलान्भिक्षोः प्रातिपक्ष्यमगृह्यत ॥९३२॥
जानंस्तेनावृतं राज्यं ततो भिक्षाचरो नृपः । पृथ्वीहरेणानुयातो नगरं सहसाऽविशत् ॥९३३॥
सेतौ सदाशिवाग्रस्थे तत्सैन्यैः सह संगरम् । दृप्यज्जनकसिंहोऽथ सान्त्वमानोऽपि सोऽग्रहीत् ॥९३४॥
दृष्टं जनकसिंहस्य योधानां वल्गतां मदात् । अविशङ्क्य पराभूतिं मूहूर्तं सुभटायितम् ॥९३५॥
अलकेन समं पृथ्वीहरस्तद्भ्रातृसूनुना । अन्येन सेतुना तीर्त्वा तस्य सैन्यमनाशयत् ॥९३६॥
तन्त्र्यश्वारोहपौरेषु विद्रुतेषु सबान्धवः । नक्तं जनकसिंहोऽथ पलाय्य लहरं ययौ ॥९३७॥
भिक्षुपृथ्वीहरौ प्रातस्तत्पृष्ठग्रहणोद्यतौ । तत्पश्चात्तेऽश्ववाराद्या धृष्टा भूयोऽप्यशिश्रियन् ॥९३८॥
क्षिप्त्वा क्षिप्रं स्वकक्ष्यान्तर्विबुधप्रतिमा भयात् । ते पारिषद्यविप्राद्याः प्रायमुत्सृज्य विद्रुताः ॥९३९॥
शून्यानि सुरयुग्यानि रक्षन्तः केऽपि भिक्षुणा । प्रायान्निवृत्ता वयमित्युक्तवन्तो न बाधिताः ॥९४०॥
ह्यो जानके भैक्षवेऽद्य वल्गत्तुङ्गतुरंगमान् । दृष्टवन्तो वयं सैन्ये सादिनोद्याऽपि साद्भुताः ॥९४१॥
भिक्षुराजप्रदीपेन द्योतितः क्षणभङ्गिना । पैतृव्येणाधिकारेण स्यालस्तिलकसिंहजः ॥९४२॥
गते जनकसिंहेऽथ प्रतिपक्षानुसारिणाम् । विधातुं वेश्मभङ्गादि लब्धं भिक्षुमहीभुजा ॥९४३॥
अत्रान्तरे हुष्कपुरे नीतेषु तिलकादिषु । भङ्गं सुल्हणसिम्बाद्यैः समेतानन्तसैनिकैः ॥९४४॥
अग्रायातैर्मल्लकोष्ठजनकाद्यैः ससैनिकैः । अपरैरपि सामन्तैर्बलबाहुल्यशालिभिः ॥९४५॥
अन्वीयमानो दिवसैर्द्वित्रैराक्रान्तमण्डलः । विशंल्लहरमार्गेण विपक्षालक्षितोऽपतत् ॥९४६॥
नगरापणवीथ्यन्तर्हयारोहमुखान्पुरः । द्रोहयोधानुपायातांस्तदैवोज्झितसाध्वसः ॥९४७॥

सम्मुख जानेको उद्यत था, किन्तु वह वैसा नहीं कर सका ॥ ९३१ ॥ उसने सुना कि जनकने नगरके सभी नागरिकों, अश्वारोहियों तथा तंत्रियोंको संगठित करके मेरे विरुद्ध कर दिया है ॥ ९३२ ॥ इस प्रकार जनकके द्वारा नगरमें भीषण स्थिति उत्पन्न कर देनेका समाचार पाकर राजा भिक्षु पृथ्वीहरके साथ सहसा राजधानीमें जा पहुँचा ॥ ९३३ ॥ उसी समय लोगोंके समझानेपर भी अभिमानवश जनकसिंहने सदाशिव पुलपर राजाकी सेनाके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥९३४॥ जब जनकसिंहने अपने सैनिकोंका उत्साह फीका देखा तो पराजयकी चिन्ता त्यागकर उसने मुहूर्त भर बड़ी वीरताके साथ युद्ध किया ॥ ९३५ ॥ उसी समय अपने भतीजे अलकको साथ लेकर पृथ्वीहर दूसरे पुलसे नदी पार करके गया और उसने जनकसिंहकी सारी सेना नष्ट कर दी ॥ ९३६ ॥ ऐसी स्थितिमें जब सभी अश्वारोही, तंत्री तथा नागरिक उसे छोड़कर भाग गये, तब रात्रिके समय भागकर जनकसिंह लहर चला गया ॥ ९३७ ॥ सबेरे राजा भिक्षु और पृथिवीहर जनकसिंहका पीछा करनेको सन्नद्ध हो गये। तदनन्तर जो घोड़सवार-तंत्री आदि विरुद्ध हो गये थे, वे ही ढीठ बनकर प्रातःकालके समय फिर राजाकी ओर जा मिले ॥ ९३८ ॥ उसी समय वे अनशन करनेवाले ब्राह्मण भी देवप्रतिमाओंको कोठरीके भीतर रख तथा अनशन भंग करके भाग गये ॥ ९३९ ॥ कुछ ब्राह्मण देवताओंकी रखवाली करते हुए यथास्थान बैठे थे। उनसे जब राजाने पूछा तो वे कहने लगे—'हम लोगोंने अनशन तोड़ दिया है।' यह सुनकर राजाने उन्हें कुछ नहीं कहा ॥९४०॥ उस समय मैंने यह अद्भुत कौतुक देखा कि जो कल जनकके पक्षमें थे, वे ही अश्वारोही आज राजा भिक्षुके पक्षमें आकर अपने घोड़े नचाने और कुदाने लगे ॥ ९४१ ॥ भिक्षु राजाका जो क्षणभंगुर दीपक जला तो उसके प्रकाशमें तिलकसिंहका पुत्र अपने पितृव्य (चाचा) जनकसिंहके पदपर नियुक्त हुआ। उसको राजा भिक्षाचरने अपने प्रतिपक्षियोंके घर गिराने आदिका अधिकार दे दिया ॥ ९४२ ॥ ९४३ ॥ इसी बीच तिलक आदि विद्रोही सुल्हण तथा सिम्ब आदि सेनानायकों और उनकी अपार सेनाके साथ हुष्कपुर जा पहुँचे ॥ ९४४ ॥ उनके पहले ही राजा सुस्सलके सहायक मल्लकोष्ठ तथा जनक आदि विद्रोही अपनी-अपनी सेना तथा सामन्तोंके साथ पहुँच चुके थे ॥ ९४५ ॥ अब वे सब सुसंगठित होकर वहाँसे चले और दो-तीन दिनोंमें हुष्कपुर मण्डल पार करके लहरके मार्गसे कश्मीरकी राजधानीमें घुसे ही थे कि इतनेमें उन्हें विपक्षियोंने देख लिया

वेष्टिता लम्बकूर्चेन वक्त्रेण भ्रुकुटीभृता । कोपकम्पिततारेण फुल्लनासापुटस्पृशा ॥९४८॥
कांश्चित्संतर्जयन्निन्दन्नन्यान्भग्नांस्तथापरान् । तीव्रातपश्यामवपुस्ताम्यन्काल इवोल्बणः ॥९४९॥
आशीर्वोपकृतां पुष्पवर्षिणां पुरवासिनाम् । पूर्वापकारिणां श्रेणीष्ववज्ञान्यस्तलोचनः ॥९५०॥
स्कन्धमात्रोपरि न्यस्तं कवचं हेलया दधत् । केशानन्तशिरस्त्रान्तर्निःसृतान्धूलिधूसरान् ॥९५१॥
पक्ष्ममालां च बिभ्राणः सकोशासिस्तुरंगिणाम् । आकृष्टखड्गमालानामन्तर्वल्गत्तुरंगमः ॥९५२॥
ससिंहनादैरुद्दामैर्भेरीभांकारनिर्भरैः । बलैर्भरितदिक्कोशः सुस्सलः प्राविशत्पुरम् ॥ कुलकम् ॥९५३॥
षड्भिः सद्वादशदिनैर्मासैर्ज्यैष्ठे सितेऽह्नि । स सप्तनवताब्दस्य तृतीये पुनरायया ॥९५४॥
राजधानीमप्रविष्टो भिक्षुं पूर्वपलायितम् । अन्विष्यन्क्षिप्तिकातीरे सलवन्यं व्यलोकयत् ॥९५५॥
सरित्पारं रिपौ प्राप्ते स सपृथ्वीहरो गतः । मार्गे लवन्यैर्मिलितैरन्यैः साकं न्यवर्तत ॥९५६॥
तं विद्राव्य रणे राजा बद्ध्वा प्रहतिविक्षतम् । सिंहं पृथ्वीहरज्ञातिं राजधानीमथाविशत् ॥९५७॥
उपभोगैः सपत्नस्य तत्कालनिःसृतस्य सा । अङ्किता मानिनस्तस्य वेश्येवोद्वेगदाऽभवत् ॥९५८॥
भिक्षुः संत्यज्य कश्मीरान्सह पृथ्वीहरादिभिः । ग्रामं पुष्याणनाडाख्यं सोमपालाश्रयं ययौ ॥९५९॥
प्रस्थिते डामरान्सर्वान्राजा स्वीकृत्य तु व्यधात् । खेर्यां बट्टात्मजं मल्लं हर्षमित्रं च कम्पने ॥९६०॥
पूर्वापकारं स्मरतो देशकालानपेक्षिणः । पूर्वविद्वेषिणस्तस्य कृपां न प्रतिपेदिरे ॥९६१॥

॥ ९४६ ॥ उस समय नगर, बाजार तथा गलीमें रहनेवाले उन्हीं घुड़सवार योद्धाओंको लोगोंने देखा जो अभी कई दिन पहले विद्रोहका झंडा ऊँचा किये हुए थे ॥ ९४७ ॥ तत्काल आगे बढकर लम्बकूर्च राजा सुस्सलने उन्हें घेर लिया और टेढी भृकुटी, कोपके कारण काँपती हुई पुतलियों तथा फूली हुई नाकका स्पर्श करनेवाली आँखसे उन्हें निहारा ॥९४८॥ उन आँखोंसे ही उसने किसीको धमकाया और किसीकी निन्दा की। कुछ तो तीव्र धूप खाते रहनेके कारण श्याम तथा क्रुद्ध कालके समान भीषण उसकी आकृतिको ही देखकर भाग गये ॥ ९४९ ॥ बहुतेरे पुरवासियोंने आशीर्वादोंकी घोषणा की और कुछने राजा सुस्सलपर फूल बरसाये। वह उस समय अपने पहलेवाले अपकारियोंको घृणापूर्ण दृष्टिसे देख रहा था ॥ ९५० ॥ वह अपना कवच समेटकर कन्धेपर रक्खे हुए था। सिरपर विद्यमान शिरस्त्राणके भीतरवाले केशोंसे धूसरवर्णकी धूल निकल रही थी ॥ ९५१ ॥ उसको हजारों आँखें प्रेमपूर्वक निहार रही थीं। वह म्यानमें रक्खी तलवार कमरमें लटकाये था और अगणित अश्वारोही नंगे खड्ग चमका रहे थे। उनके झुण्डमें राजा सुस्सलका घोड़ा था ॥ ९५२ ॥ उसके चारों ओर उद्दाम सिंहनाद तथा नगाड़े-की गम्भीर ध्वनि गूँज रही थी और उसकी अपार सेना जैसे दसों दिशाओंमें भर गयी थी। ऐसे वातावरणमें राजा सुस्सल नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥ ९५३ ॥ इस प्रकार ४१९७ लौकिक वर्षकी ज्येष्ठ शुक्ल तृतीयाको छ महीने बारह दिन बाद वह राजा फिर अपनी राजधानीमें वापस लौटा ॥ ९५४ ॥ जब वह राजधानीमें प्रविष्ट नहीं हुआ था, तभी राजा भिक्षु भाग गया। बादमें खोजनेपर वह क्षिप्तिका नदीके किनारे लवन्यके साथ दिखायी पड़ा ॥ ९५५ ॥ जब शत्रु नदीके पार पहुँच गया, तब राजा सुस्सल पृथ्वीहरके साथ वहाँ गया और मार्गमें लवन्य आदिके साथ भिक्षुको लेकर लौट आया ॥ ९५६ ॥ जिस समय सुस्सल और भिक्षुका सामना हुआ, उस समय भिक्षु रणभूमिसे भागा। किन्तु उसे राजा सुस्सलने दौड़कर पकड़ा और बाँध लिया। इस दौड़-भागमें उसपर कुछ मार भी पड़ी, जिससे उसके शरीरमें कुछ घाव हो गये। उसके साथ ही पृथ्वीहर-के ज्ञातिबन्धु जनकसिंहको भी कैद करके राजधानी ले आया ॥ ९५७ ॥ शत्रुके उपभोग तथा तत्काल उसके निकल भागनेके चिह्नोंसे चिह्नित राजधानी उस स्वाभिमानी राजा सुस्सलको वेश्याके समान उद्वेगदायिनी दीख रही थी ॥ ९५८ ॥ तदनन्तर भिक्षु कश्मीरमण्डल त्यागकर पृथ्वीहर आदिके साथ पुष्याणनाड ग्राममें सोमपालके पास चला गया ॥ ९५९ ॥ उसके चले जानेपर राजा सुस्सलने सभी अपने पक्षवाले डामरोंको राजकीय मान्यता प्रदान करके उनकी विभिन्न स्थानोंपर नियुक्ति की। जिनमेंसे बिट्टाके पुत्र मल्लको खेरीमें तथा हर्षमित्रको सेनापतिपदपर नियुक्त किया ॥ ९६० ॥ देश-कालकी अपेक्षा न करनेवाले राजा सुस्सलने पूर्वकालीन

भिक्षुसंपर्कजं गन्धमपि सोढुमशक्नुवन् । भृत्येभ्यः खण्डशः कृत्वा द्वेषात्सिंहासनं ददौ ॥९६२॥
अनयोपार्जितां त्यक्तुमनीशा डामराः श्रियम् । समन्योश्च नृपाद्भीता नात्यजन्विप्लवोद्यमम् ॥९६३॥
भिक्षुस्तु राज्यविभ्रष्टः सुहृदो विषये वसन् । उत्साहं सोमपालस्य दानमानैः पुनर्ययौ ॥९६४॥
बिम्बः साहायकप्रार्थी विस्मयस्यान्तिकं गतः । तस्मिन्विरोधिभिर्बद्धे रणे धीरस्तनुं जहौ ॥९६५॥
भिक्षाचरो बिम्बशून्यो भजन्दुर्नयपात्रताम् । अनैषीदवरुद्धात्वं तत्प्रियां तां गतत्रपः ॥९६६॥
निपत्य स्वल्पसैन्योऽपि ततः शूरपुरे बली । जित्वा पृथ्वीहरो वट्टात्मजं व्यद्रावयद्रणात् ॥९६७॥
तस्मिन्पलायिते भिक्षुं पुनरानीय सोऽविशत् । भुवं मडवराज्यानां दस्यूनां स्वचिकीर्षया ॥९६८॥
तत्रत्यैर्मङ्खजय्याद्यैर्डामरैः स्वीकृतैः समम् । जगाम विजयक्षेत्रं विजेतुं कम्पनापतिम् ॥९६९॥
जितस्तेनाहवे हर्षमित्रो निहतसैनिकः । विजयेश्वरमुत्सृज्य भीतोऽवन्तिपुरे ययौ ॥९७०॥
विजयक्षेत्रजास्तत्तत्पुरग्रामोद्भवा अपि । जना भयेन प्राविक्षन्नथ चक्रधरान्तिकम् ॥९७१॥
योपिच्छिशुपशुव्रीहिधनोपेतैरपूर्यत । स्थानं तत्तैश्च राज्ञश्च योधैः सायुधवाजिभिः ॥९७२॥
अन्वारूढैरथ स्पष्टं लोकोल्लुण्ठनलालसैः । ते भैक्षवैरवेष्टयन्त कटकैर्व्याप्तदिक्तटैः ॥९७३॥
तान्दारुमयवप्रौघद्वारगुप्ते सुरौकसः । अङ्गणे तिष्ठती हन्तुं बद्धुं वा नाशकन्द्विपः ॥९७४॥
तदन्तरस्थितं दग्धुं कर्पूराख्यं स्ववैरिणम् । कश्चित्कतिस्थलीग्रामजन्मा निर्गुणडामरः ॥९७५॥
पापो जनकराजाख्यस्तत्राग्निमुददीदिपत् । मूढस्तादृगपर्यन्तजन्तुसंहारनिर्घृणः ॥९७६॥

अपकारका स्मरण करके पुराने राजद्रोहियोंपर कृपा नहीं की ॥ ९६१ ॥ भिक्षु राजाके सम्पर्कमे आयी हुई गन्धतकको सहनेमें असमर्थ होकर राजाने द्वेषवश उस सिंहासनको टुकड़े-टुकड़े करके सेवकोंमें बाँट दिया, जिसपर भिक्षु बैठता था ॥ ९६२ ॥ अन्यायोपार्जित धन त्यागनेमें असमर्थ डामरोंने क्रुद्ध राजासे भयभीत होकर विप्लवका उद्यम नहीं त्यागा ॥ ९६३ ॥ उधर राज्यभ्रष्ट भिक्षु अपने सुहृद्‌के राज्यमे रहने लगा । वहाँ सोमपालके दान-मानसे उसका उत्साह ज्योंका त्यों हो गया ॥ ९६४ ॥ बिम्ब सहायता माँगनेके लिए विस्मयके पास गया हुआ था । किन्तु वहाँ उसके विरोधियोंने उसे कैद कर लिया, लेकिन उनसे युद्ध करके उस धैर्यशाली वीरने अपने प्राण दे दिये ॥ ९६५ ॥ अपने राज्यकालमे ही जब बिम्ब बाहर गया हुआ था, तब राजा भिक्षाचरने अनीति मार्गपर चलकर निर्लज्जतापूर्वक उसकी पत्नीको बरबस अपने यहाँ रख लिया था ॥ ९६६ ॥ तदनन्तर बलवान् पृथ्वीहर थोड़ी-सी सेना लेकर शूरपुर गया और वहाँ वट्टके पुत्र मल्लको जीतकर रणभूमिसे भगा दिया ॥ ९६७ ॥ उसके भाग जानेपर वह भिक्षाचरको लाकर मडवराज्यके लुटेरोंका दमन करके अपनी सत्ता स्थापित करनेके लिए शूरपुरमें ही रहने लगा ॥ ९६८ ॥ तत्पश्चात् वहाँके निवासी मंख तथा जय्य आदि डामरोंसे मंत्रणा करनेके बाद उन्हे साथ लेकर पृथ्वीहर कश्मीरी सेनाके सेनापतिको जीतनेके लिए विजयक्षेत्र गया ॥ ९६९ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने सेनापति हर्षमित्रको परास्त कर दिया और उसके सैनिकोंको मार डाला । तब भयभीत हर्षमित्र विजयक्षेत्र त्यागकर अवन्तिपुर चला गया ॥ ९७० ॥ तब विजयक्षेत्र तथा उसके आस-पासवाले गाँवोंमें जन्मे हुए लोग मारे डरके वहाँसे भागकर चक्रधरके पास चले गये ॥ ९७१ ॥ इससे स्त्रियों, बच्चों, पशुओं, अन्नों, धनों, राजाके योद्धाओं, शस्त्रों तथा अश्वोंसे राजा चक्रधरकी सारी भूमि भर गयी ॥ ९७२ ॥ किन्तु कुछ ही देर बाद उन लोगोंको लूटनेके लिए भिक्षाचरकी सेना वहाँ जा पहुँची और उस दिगन्तव्यापिनी विशाल सेनाने उन शरणार्थियोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९७३ ॥ किन्तु वे लोग एक देवमन्दिरकी लकड़ीकी बनी ऐसी चहारदीवारीके भीतर थे कि जहाँ उन लुटेरोंकी पहुँच नहीं हो सकती थी । वहाँ पहुँच करके भी वे न उन्हे कैद कर सकते थे और न मार ही सकते थे ॥ ९७४ ॥ उन्हीं शरणार्थियोंके बीच विद्यमान कर्पूर नामक अपने वैरीको जला डालनेके लिए कतिस्थली ग्राममें उत्पन्न निर्गुण डामर उद्यत हो गया ॥ ९७५ ॥ सो उस पापी जनकराजने आग लगा ही दी । उन असंख्य प्राणियोंका संहार

तमापतन्तं ज्वलितं ज्वलनं वीक्ष्य सर्वतः। भूतग्रामस्य सुमहान्हाहाकारः समुद्ययौ ॥९७७॥
विगलत्कृतान्तवाहारिभियेव छिन्नबन्धनैः। अश्वैरसूचीसंचारा भ्रमद्भिर्जघ्निरे जनाः ॥९७८॥
प्राच्छाद्यत वलज्ज्वालाकरालैर्धूमराशिभिः। व्योम पिङ्गकचश्मश्रुजालैर्नक्तंचरैरिव ॥९७९॥
निर्धूमस्य विसारिण्यो ज्वाला हव्यभुजो दधुः। संतापद्रुतहेमाभ्रसुवर्णलहरीभ्रमम् ॥९८०॥
संतापविद्रुतव्योमचारिमौलिपरिच्युताः। रक्तोष्णीषा इव भ्रेमुर्ज्वालाभङ्गा नभोङ्गणे ॥९८१॥
दीर्घदारुग्रन्थिभङ्गजन्मा चटचटारवः। तापप्रक्वाथ्यमानाभ्रगङ्गाघोष इवोद्ययौ ॥९८२॥
स्फुलिङ्गैः प्लोषवित्रस्तजन्तुजीवितसंनिभैः। अग्राहि गहनव्योममार्गभ्रमणसंभ्रमः ॥९८३॥
शकुनैः शावसंचारशोकादाक्रन्दिभिर्नभः। मानुषैर्दह्यमानैश्च भूमिर्मुखरिताऽभवत् ॥९८४॥
भ्रातॄन्भर्तॄन्पितॄन्पुत्रानालिङ्ग्याक्रन्दनिर्भराः। भीमीलितदृशो नार्यो निरदह्यन्त वह्निना ॥९८५॥
तदन्तरात्साहसिका ये केचिन्निरयासिषुः। बहिस्ते निहताः क्रूरैर्डामरैर्मृत्युचोदितैः ॥९८६॥
तावन्तो जन्तवस्तत्र व्यपद्यन्त तदा क्षणात्। स्विन्ना एव न ये दग्धास्तावतापि कृशानुना ॥९८७॥
अन्तः शान्तेषु सर्वेषु बहिः शान्तेषु हन्तृषु। क्षणादेव प्रदेशः स निःशब्दः समजायत ॥९८८॥
वह्नेः कहकहाशब्दो ह्रस्वीभूतार्चिषः परम्। स्विद्यतश्च शवौघस्य श्रुतः सिमसिमाध्वनिः ॥९८९॥
विलीनासृग्वसामेदोनिःष्यन्दाः सरणीशतैः। प्रससुर्विस्रगन्धश्च योजनानि बहून्यगात् ॥९९०॥

करनेमें उस मूर्खको दया नहीं आयी ॥ ९७६ ॥ उस धधकती हुई आगकी लपटोंको चारों तरफसे अपनी ओर आती देखकर उस बाड़ेके भीतरवाले सब प्राणी भीषण हाहाकार करने लगे ॥ ९७७॥ वे लपटें फैलीं तो घोड़ोंके बन्धन जल गये, जिससे वे प्राण बचानेके लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। किन्तु उसके भीतर इतने अधिक प्राणी थे कि सुई भी रखने की जगह नहीं थी। अतएव उन घोड़ोंकी दौड़से ही कितने लोग कुचलकर मर गये ॥ ९७८ ॥ क्षण ही भरमें उस आगकी विकराल लपटें तथा विपुल धूमराशि सारे आकाश मण्डलमें छा गयीं, जिन्हें देखकर ऐसा लगता था कि मानो पीली-पीली दाढ़ी-मूछोंवाले निशाचर गगनमण्डलमें एकत्र हो गये हैं ॥ ९७९ ॥ जिन ज्वालाओंमें धुआं नहीं था, वे ऐसी दीखती थीं मानों विशेष तापसे सोनेके बादल पिघलकर सुवर्णकी लहरोंके रूपमें परिणत हो गये हैं ॥ ९८० ॥ उस समय आकाशके आँगनमें फैली हुई आगकी लपटें ऐसी लगती थीं कि विशेष तपनके कारण भागते हुए व्योमचारियोंके मस्तकसे गिरी हुई पगड़ियाँ मँडराती हुई घूम रही हैं ॥ ९८१ ॥ उस आगसे जलती हुई बड़ी-बड़ी लकड़ियोंकी गाँठें फटनेसे जो चट-चटका शब्द हो रहा था, उसे सुनकर ऐसा लगता था कि मानो उस अग्निके तापसे खौलती हुई आकाशगङ्गाकी ध्वनि सुनायी दे रही हो ॥ ९८२ ॥ आकाशमें उड़ती हुई उस आगकी चिनगारियोंको देखकर ऐसा भान होता था कि जैसे उस बाड़ेके भीतरवाले प्राणियोंके प्राण निकल-निकलकर विशाल आकाश मार्गमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ ९८३ ॥ उधर अपने-अपने बच्चोंके करुणक्रन्दनके स्वरमें स्वर मिलाकर चिचियानेवाले पक्षियोंके द्वारा आकाश मुखरित हो रहा था और इधर उस देवालयके हातेमें जलते हुए मनुष्यों द्वारा धरती चिल्ला रही थी ॥ ९८४ ॥ उस समय भाई, भर्ता, पिता और पुत्र सब एक दूसरेसे चिपककर चिचिया रहे थे और भयके कारण आँखें मूँदकर स्त्रियाँ भस्म हो रही थीं ॥ ९८५ ॥ उनमेंसे कुछ साहसी लोग यदि हातेके बाहर निकल आते तो बाहर उन्हें वे मृत्युके प्रेरित क्रूर डामर मार डालते थे ॥ ९८६ ॥ उस हातेके भीतर जितने प्राणी आगकी गर्मीसे उबल मर मरे, उतने आगमें जलकर नहीं ॥ ९८७ ॥ क्षण ही भर बाद भीतरवाले मरकर और बाहरवाले घातक डामर मारकर शान्त हो गये। जिससे वह प्रदेश एकदम नीरव हो गया ॥ ९८८ ॥ जब आगकी कहकहा ध्वनि और उसकी लपटें छोटी हो गयीं और सुनती हुई शवराशिकी सिम-सिमकी महीन ध्वनि सुनायी दे रही थी ॥९८९॥ उस आगमें जले रुधिर, वसा और मेदकी सैकड़ों धारायें बह चलीं और भयानक दुर्गन्धि कई योजन दूर तक फैल गयी

एकः सुश्रवसः कोपाद्द्वितीयो दस्युविप्लवात् । ईदृग्घुतवहाबाधो घोरश्चक्रधरेऽभवत् ॥९९१॥
भूतग्रामस्य संहारः संवर्त इव वह्निना । तादृक्त्रिपुरदाहे वा खाण्डवे तत्र वाऽभवत् ॥९९२॥
पुण्येऽह्नि शुक्लद्वादश्यां नभसः कुकृतं महत् । तद्भिक्षुः कृतवान्राज्यलक्ष्म्या भाग्यैश्च तत्यजे ॥९९३॥
सकुटुम्बेषु दग्धेषु तदानीं गृहमेधिषु । पुरग्रामसहस्रेषु गृहाः शून्यत्वमाययुः ॥९९४॥
मह्वाख्यो डामरश्चिन्वञ्शवान्नोनगरोद्भवः । प्रीतिं प्राप्तैस्तदीयार्थैः कापालिक इवाययौ ॥९९५॥
अवरूढोऽथ विजयक्षेत्रं भिक्षाचरस्ततः । लब्ध्वा नागेश्वरं पापं यातनाभिरमीमरत् ॥९९६॥
गर्ह्यं पैतामहे देशे किं नासीत्तस्य चेष्टितम् । पितृद्रुहः स तु वधः सर्वप्रीतिकरोऽभवत् ॥९९७॥
गृहिणी हर्षमित्रस्य पत्यौ त्यक्त्वा पलायिते । पृथ्वीहरेण संप्राप्ता विजयेशाङ्गणान्तरात् ॥९९८॥
निमित्तभूतमेतादृक्प्रजासंहारवैशसम् । स्वं निन्दन्सुस्सलो राजा ततो योद्धुं विनिर्ययौ॥९९९॥
संवेगात्पाप्मनः शीघ्रं निरयक्लेशमुक्तये । प्राप्तो जनकराजेन वधोऽवन्तिपुरान्तिके ॥१०००॥
यत्कृते क्रियते कर्म लोकान्तरसुखान्तकम् । स मूढैः सुलभापायः कायश्चित्रं न गण्यते ॥१००१॥
कम्पनाधिपतिं सिम्बं कृत्वा डामरमण्डलम् । चक्रे विजयक्षेत्रादन्यतोऽपि ततो नृपः ॥१००२॥
शमालां प्रययौ पृथ्वीहरो मडवराज्यतः । विजित्य मल्लकोष्ठेन त्याजितो निजमण्डलम् ॥१००३॥
क्षिप्ताः केचिद्वितस्तायां केचिच्चक्रधराङ्गणे । अक्रियन्ताग्निसात्कष्टुमशक्या बहवः शवाः ॥१००४॥
क्रमराज्येऽथ कल्याणवाडादीन्रिल्हणोऽजयत् । आनन्दोऽनन्तजस्तत्र ततो द्वाराधिपोऽभवत् ॥१००५॥
शूले प्रमापितं सिंहं नयन्पृथ्वीहरो बली । सार्धं जनकसिंहाद्यैरयुध्यत्क्षिप्तिकातटे ॥१००६॥

॥ ९९० ॥ एक तो सुश्रवाके कोप तथा दूसरे लुटेरोंके विप्लव इस प्रकार उस अग्निकाण्डसे चक्रधरमें दुहरी बाधा उपस्थित हो गयी ॥ ९९१ ॥ प्रलयकालके समान भयानक उस अग्निकाण्डमें जितने प्राणियोंका संहार हुआ, उतनी भीषण प्राणहानि या तो खाण्डववनमें आग लगनेपर अथवा शंकरजीके द्वारा त्रिपुरका दाह करनेपर हुई थी ॥ ९९२ ॥ इस प्रकार श्रावण शुक्ल द्वादशीके पवित्र दिन महान् कुकृत्य करनेवाला भिक्षाचर राज्यलक्ष्मी तथा भाग्य दोनोंसे वंचित हो गया ॥ ९९३ ॥ उस भयावह अग्निकाण्डमें असंख्य गृहस्थोंके जल मरनेसे आस-पासवाले नगर तथा ग्रामके हजारों घर सूने हो गये ॥ ९९४ ॥ तदनन्तर नोनगरमें उत्पन्न मख नामका डामर कापालिककी भाँति अग्निकाण्डवाली जगहपर पहुँचा और खोजनेपर मृतकोंकी विपुल धनराशि पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ९९५ ॥ तत्पश्चात् भिक्षाचर विजयक्षेत्र चला गया और वहाँ नागेश्वरपर कब्जा करके उसने भीषण यातनायें भोगीं ॥ ९९६ ॥ अपने पितामहके कश्मीरदेशमें उसने कौनसे कुकर्म नहीं किये थे। अतएव उस पितृद्रोही भिक्षाचरके पलायनका समाचार सुनकर सबको प्रसन्नता हुई ॥ ९९७ ॥ पति हर्षमित्र जब अपनी पत्नीको त्यागकर भाग गया, तब विजयेश्वरके आँगनमें वह (हर्षमित्रकी पत्नी) पृथ्वीहरको मिली ॥ ९९८ ॥ इधर राजा सुस्सल इस प्रकार क्रूरतापूर्वक प्रजासंहारका समाचार सुनकर उसका कारण अपनेको मानता हुआ युद्ध करनेके लिए घरसे निकला ॥ ९९९ ॥ अपने पापोंके आधिक्यवश शीघ्र नरक भोगनेके लिए महापापी जनकराज अवन्तिपुरीके पास मार डाला गया ॥ १००० ॥ यह बड़े विस्मयकी बात है कि जिस शरीरसे लोकान्तरमें भी सुख प्राप्त करने योग्य सुकर्म किये जा सकते हैं, उस क्षणभंगुर शरीरको मूर्ख लोग कुत्सित कर्म करके नष्ट कर देनेमें भी हानि नहीं समझते ॥ १००१ ॥ तदनन्तर राजा सुस्सलने सिम्बको सेनापति बनाकर उसके द्वारा विजयक्षेत्र तथा अपने राज्यके अन्य स्थानोंसे डामरोंको निकलवा दिया ॥ १००२ ॥ उधर मल्लकोष्ठने पृथ्वीहरको पराजित करके अपने मण्डलसे बाहर कर दिया। जिससे वह मडवराज त्यागकर शमाला चला गया ॥१००३॥ उस युद्धमें मारे गये लोगोंमेंसे कुछ वितस्ता नदीमें फेंक दिये गये, कुछ चक्रधरके आँगनमें ही जला दिये गये और बहुतेरे शव ऐसे रह गये, जिन्हें निकाला ही नहीं जा सका ॥ १००४ ॥ क्रमराज्यमें रिल्हणने कल्याणवाड आदि स्थानोंको जीत लिया और अनन्तका पुत्र आनन्द वहाँका द्वाराधीश बनाया गया ॥ १००५ ॥ उसी समय

तीर्थं प्रस्थाप्यमानेषु विपन्नास्थिष्विहास्त्यहः । भाद्रे मास्येकमवलाक्रन्दिताक्रान्तदिक्पथम् ॥१००७॥
हतवीरावलाक्रान्तमुखरे नगरान्तरे । पृथ्वीहराहवे सर्वैं दिवसैरन्वकारि तत् ॥ युग्मम् ॥१००८॥
अथायातो यशोराजस्यालः शूरो दिगन्तरात् । श्रीवको विदधे राज्ञा खेरीकार्याधिकारभाक् ॥१००९॥
अप्रियं स लवन्यानां तेऽपि वा तस्य नाचरन् । कालं तु गूढसौहार्दैरन्योन्यस्यात्यवीवहन् ॥१०१०॥
पुनराश्वयुजे राजा शमालां निर्गतस्ततः । परैर्मनीमुपग्रामे युधि भङ्गमनीयत ॥१०११॥
नित्याभ्यासेन युद्धानां लब्धोत्कर्षो न्यदर्शयत् । सर्ववीराग्रणीर्भिक्षुस्तत्पूर्वं तत्र विक्रमम् ॥१०१२॥
तुक्कद्विजादयो मुख्या भिक्षुपृथ्वीहरादिभिः । आसारापातविवशा निहताः सौस्सले बले ॥१०१३॥
प्रधानवीरभूयिष्ठे सैन्यद्वन्द्वे न कोऽप्यभूत् । स वीरश्चरतः संख्ये भिक्षोरैक्षिष्ट यो मुखम् ॥१०१४॥
पृथ्वीहरस्य भिक्षोश्च संग्रामे भूरिवार्षिके । कादम्बरीपताकाख्ये द्वे अश्वे पीतपाण्डुरे ॥१०१५॥
आस्तामत्यद्भुते याभ्यामनेकतुरगक्षये । न विपन्नं प्रहृतिभिर्नान्वभाव्यथ वा क्लमः ॥१०१६॥
सैन्यानां संकटे त्राणमश्रान्तिरविकत्थनः । आभूत्क्लेशसहो वीरो नान्यो भिक्षाचरात्क्वचित् ॥१०१७॥
योधानां सौस्सले सैन्ये विद्रवेषु न कश्चन । त्राणं बभूव तेनैते बहवो बहुधा हताः ॥१०१८॥
नवेषु डामरानीकाः केचिद्भङ्गेषु सैनिकाः । भिक्षाचरगजेन्द्रेण कलभा इव पालिताः ॥१०१९॥
नान्यस्योत्थानशीलत्वं दृष्टं पृथ्वीहरात्तदा । स्वयं यो भैक्षवे द्वारे जजागार प्रतिक्षपम् ॥१०२०॥
ततः प्रभृत्यभूद्गोप्ता पुरः पश्चाच्च सर्वदा । विश्वेदेव इव श्राद्धे युद्धे भिक्षुर्महाभटः ॥१०२१॥

बलवान् पृथ्वीहर क्षिप्तिका नदीके तटपर जनकसिंह आदिके साथ लडा और सिंहको सूलीपर चढाकर उसने मार डाला ॥ १००६ ॥ उस युद्धमें मारे गये वीरोंकी हड्डियाँ जब तीर्थ भेजी गयीं तो पूरे भादोंके महीने भर स्त्रियोंका रुदन चारों ओर सुनायी देता रहा ॥ १००७ ॥ जिन नारियोंके पति पृथ्वीहरके युद्धमें मारे गये थे, उनके विलापका हाहाकार सारे दिन समस्त नगरमें गूँजता रहा ॥ १००८ ॥ इसी बीच यशोराजका साला वीर श्रीवक देशान्तरसे राजा सुस्सलके पास आ पहुँचा । उसको राजाने खेरी प्रान्तका कार्याधिकारी बना दिया ॥ १००९ ॥ उस राजाने लवन्योंका कोई अपकार नहीं किया तो लवन्योंने भी राजाका कुछ नहीं बिगाड़ा । इस प्रकार दोनों ही बड़े सौहार्दके साथ मिल-जुलकर समय बिताते रहे ॥ १०१० ॥ आश्विनमासमें राजा सुस्सल शमालाकी ओर बढा, किन्तु मनीमुपग्राममें शत्रुओंने हथियार रख दिया, जिससे युद्ध भंग हो गया ॥ १०११ ॥ युद्धोंके नित्य अभ्यासवश सब वीरोंके अग्रणी भिक्षाचरने उसके पहले उस स्थानपर पराक्रम प्रदर्शित करके अपना महान् उत्कर्ष प्रकट किया था ॥ १०१२ ॥ भिक्षु-पृथ्वीहर आदिके साथी तुक्कद्विज आदि प्रमुख योद्धा राजा सुस्सलकी सेनाके मेघतुल्य शस्त्रास्त्रकी वर्षासे विवश हो जानेके कारण बुरी तरह मारे गये ॥ १०१३ ॥ प्रधान-प्रधान वीरोंसे भरी हुई दोनों पक्षकी सेनाओंमे कोई एक योद्धा ऐसा नहीं निकला, जो रणभूमिमें विचरते हुए भिक्षुकी ओर ऑख उठाकर उसका मुख देख सका हो ॥ १०१४ ॥ पृथ्वीहर तथा भिक्षुके बहुत वर्षोंतक चलनेवाले युद्धमे कादम्बरी तथा पताका ये दो पीली और पाण्डुर (कुछ पीलापन लिये हुए श्वेत) वर्णकी बहुत ही अद्भुत घोड़ियाँ थीं । उस युद्धमे बहुतेरे अश्वोंके मर जानेपर अनेकानेक प्रहार सह करके भी न वे मरीं और न उन्हें कष्टका ही अनुभव हुआ ॥ १०१५ ॥ १०१६ ॥ संकटकालमे सेनाकी रक्षा, थकावटका अभाव, व्यर्थ डींग न मारना और बड़ेसे बड़ा क्लेश सह लेना इन विशेषताओंमें भिक्षाचरके टक्करका और कोई भी वीर संसारमे नहीं हुआ ॥ १०१७ ॥ किन्तु जब राजा सुस्सलकी सेना पहुँची तो भिक्षुके योद्धाओंको भागकर प्राण बचानेका कोई स्थान नहीं मिला, इस कारण उसके बहुतेरे सैनिक मार डाले गये ॥ १०१८ ॥ उस सेनाके नष्ट हो जानेपर भिक्षाचररूपी गजराजने हाथीके बच्चोंके समान कुछ डामरोंको पालकर एक नयी सेना तैयार की ॥ १०१९ ॥ इसी प्रकार पृथ्वीहर जैसी उत्थानशीलता अन्यत्र किसी और पुरुषमे नहीं देखी गयी । क्योंकि वह प्रत्येक रात्रिको भिक्षाचरके द्वारपर बैठकर जागरण किया करता था ॥ १०२० ॥ तबसे लेकर वह महान् वीर

आहवे साहसं कुर्वन्सर्वतः सोऽभ्यघान्निजान् । एवमस्खलितस्थैर्यमुपपत्तिमसंत्यजन् ॥१०२२॥
न मे राज्याय यत्नोऽयं पर्याप्तं दुर्यशः पुनः । कृत्ये प्रसक्तुं पूर्वेषां व्यवसायं व्यपोहितुम् ॥१०२३॥
अनाथा इव ते नाथा विशां व्यापादनक्षणे । ज्ञात्वा नष्टं कुलं नाथवद्भ्यो नूनं स्पृहां दधुः ॥१०२४॥
इति मत्वा सोढकष्टश्चेष्टे सुदृढनिश्चयः । दूयमानोऽस्मि दायाददुःखदायी दिने दिने ॥१०२५॥
नास्त्येवाप्राप्तकालस्य विपत्तिरिति जानतः । कस्य साहसवैमुख्यमुत्पद्येत यशोऽर्थिनः ॥१०२६॥
किं कार्यगतिकौटिल्यैरुक्तैस्तान्यथ वा कथम् । न वदामः प्रतिज्ञाय स्वयमार्पेऽध्वनि स्थितिम् ॥१०२७॥
सोत्कर्षपौरुषाद्भिक्षोरशङ्किषत डामराः । ततो दायादविच्छेदं नास्याकृषत जातुचित् ॥१०२८॥
प्राग्राज्याधिगमाद्राज्ञामन्येषां राजबीजिनः । चिन्तयन्तो व्यवहृतिं व्युत्पद्यन्ते शनैः शनैः ॥१०२९॥
पितुः पितामहस्याथ न दृष्टं तेन किंचन । अत एवाभजन्मोहं राज्यं संप्राप्तवान्पुरा ॥१०३०॥
तस्य भूयोऽपि चेढाप्स्येत्कैव वार्ता विपाटने । सापेक्षं वीक्षितुं जाने न दैवेनाप्यशक्यत ॥चक्रलकम्॥१०३१॥
जानँल्लवन्यकौटिल्यं प्रमादात्स हतेऽहिते । प्राप्नुयां राज्यमित्याशां वद्ध्वाहान्यत्यवाहयत् ॥१०३२॥
दस्यूनां सुस्सलो राजा मेने तत्स्वहितं मतम् । जिगीषुर्नीतिविक्रान्त्योः प्रयुक्तौ लिप्सुरन्तरम् ॥१०३३॥
युद्धे स्वान्स स्मरन्वैरं नापासीत्तेन तेऽभजन् । नास्मिन्विश्वासमेतस्माद्धेतोर्नास्याभवज्जयः ॥१०३४॥
इत्थं नानामतैः पक्षप्रतिपक्षैरुपेक्षितम् । राष्ट्रं निखिलमेवागात्सर्वतः शोचनीयताम् ॥१०३५॥

यत्संबन्धाद्विटपिनिवहैर्निग्रहव्यग्रवन्यव्याधप्रत्तानलपरिभवः कोऽपि नन्वन्वभावि ।
हा धिग्दन्ती विघटनपरः सोऽपि माद्यन्नमीषां लभ्यं श्रेयो विधिविधुरितैर्नान्यतो न स्वतोऽपि॥१०३६॥

युद्धमें आगे-पीछे सब ओरसे श्राद्धमें विश्वेदेवके समान भिक्षुकी रक्षा करने लगा ॥ १०२१ ॥ युद्धमें अद्भुत साहसका परिचय देता हुआ वीर भिक्षु अपनी प्रतिभाका परित्याग किये विना असाधारण स्थैर्य दिखाकर सभी स्वजनोंका त्राण करता रहा ॥ १०२२ ॥ वह कहता था—'मेरा यह प्रयत्न राज्य प्राप्त करनेके लिए नहीं है। राज्य पाकर मैंने पर्याप्त अपयश कमाया है। अतएव अब पूर्वजोंके सुयशको मिटानेके काममें लिपटनेसे क्या लाभ ? ॥ १०२३ ॥ जो जनताकी हत्या करके भी अपनेको नाथ कहलाते हैं, वे नाथ स्वयं अनाथ हैं। प्रजाके कुलका नाश करके वे नाथवान् लोगोंके साथ व्यर्थकी स्पर्धा करते हैं ॥ १०२४ ॥ ऐसा सोच और विविध कष्ट सह तथा अपने दायादोंको सताकर मैं दिन-दिन दुखी हो रहा हूँ ॥ १०२५ ॥ जबतक समय नहीं आता, तबतक किसीपर विपत्ति नहीं आती। यह जानते हुए कौन यशोभिलाषी पुरुष साहससे मुँह मोड़ेगा ॥ १०२६ ॥ एक बार ऋषियोंके बताये हुए मार्गपर चलनेकी प्रतिज्ञा करके मैं राज्य प्राप्तिके लिए कितने प्रकारकी कुटिल चाले चला हूँ, उन्हें कह नहीं सकता' ॥ १०२७ ॥ भिक्षुके उत्कृष्ट पौरुषको देखकर डामरगण सशंक हो उठे। तभीसे उन्होंने राज्यके दायादोंको कभी भी नहीं सताया ॥ १०२८ ॥ पराक्रमसे अन्य राजाओंके राज्य प्राप्त करके बादमें होनेवाले व्यवहारोंको सोच-सोचकर उस भिक्षुको धीरे-धीरे उनके दोषोंका पता लगाने लगा ॥ १०२९ ॥ पूर्वकालमें बचपनके कारण उसने अपने पिता अथवा पितामहका तो व्यवहार देखा नहीं था, इसी कारण उसने अज्ञानवश राज्य प्राप्त किया था ॥ १०३० ॥ सो अब यदि फिर राज्यप्राप्तिकी सम्भावना हो तो भागा नहीं जा सकता। क्योंकि प्राप्तव्य वस्तुकी अवहेलना दैव भी नहीं कर सकता ॥ १०३१ ॥ शत्रुका विनाश करनेके बाद प्रमादवश लवन्यों द्वारा की हुई कुटिलताको जानता हुआ भी भिक्षु राज्य प्राप्त होनेकी आशा करके समय टेर रहा था ॥ १०३२ ॥ उसी प्रकार विजयेच्छुक राजा सुस्सल भी उन दस्यु लवन्योंको अपना हितचिन्तक मानकर नीति तथा पराक्रमका प्रयोग कर रहा था ॥ १०३३ ॥ युद्धमें पुराने वैरका स्मरण करके व लवन्य ऊपरी मनसे सेवा करते थे। सुस्सलपर उनका विश्वास नहीं था, इसी कारण वह युद्धमें नहीं जीत सका ॥ १०३४ ॥ इसी तरह विविध मत-मतान्तरोंमें फँसे पक्ष-प्रतिपक्षके द्वारा उपेक्षित राज्य शोचनीय अवस्थाको पहुँच गया ॥ १०३५ ॥ जिस आत्मरक्षाके लिए जंगलका वृक्षसमूह अपने शिकारको फाँसनेके

द्वैराज्ये प्रभवत्येवमकाण्डपतितैर्हिमैः । विवशं सुस्सलक्ष्माभृदजयद्भैक्षवं बलम् ॥१०३७॥
पुण्याणनाडं भूयोऽपि भिक्षुपृथ्वीहरौ गतौ । तेऽन्यैर्लवन्यैर्भूभर्तुर्नतिर्दत्तकरैः कृता ॥१०३८॥
सिम्बोऽपि कम्पनाधीशो व्यधाद्विजितडामरः । सर्वां मडवराज्योर्वीं वीरः शमितविप्लवाम् ॥१०३९॥
तावत्यापि विपक्षाणां शान्त्या शीतलतां गतः । पूर्ववैरं स्वपक्ष्याणां प्रादुश्चक्रेऽथ भूपतिः ॥१०४०॥
जिघांसौ कथिते राजन्युल्हणेन पलायितः । मल्लकोष्ठः सोपि कोपाद्राज्ञा राष्ट्रात्प्रवासितः॥१०४१॥

अनन्तात्मजमानन्दं बद्ध्वा द्वाराधिकारिणम् ।
व्यधत्त सैन्धवं प्रज्जिनामानं राजबीजिनम् ॥१०४२॥

गतोऽथ विजयक्षेत्रं सिम्बेन सहितोऽविशत् । नगरं तं च विश्वस्तं बद्ध्वा कारागृहेक्षिपत् ॥१०४३॥
अनुस्मृतिमहावात्याप्रेरितोऽमर्षपावकः । आचचाम क्षमावारि तस्य भृत्यान्दिधक्षतः ॥१०४४॥
सिंहथक्कनसिंहाभ्यामनुजाभ्यां सहावधीत् । शूलेऽधिरोप्य सिम्बं स रोपावेशविलुप्तधीः ॥१०४५॥
कम्पने श्रीवकं चक्रे सुज्जि प्रज्जेः सहोदरम् । बद्ध्वा जनकसिंहं च राजस्थाने न्ययोजयत् ॥१०४६॥
आप्ताश्च मन्त्रिणश्चासंस्तस्य वैदेशिकास्ततः । स्वदेशजस्तु सोऽभूद्यो लोहरस्थं तमन्वगात् ॥१०४७॥
अथ सर्वेऽपि साशङ्कास्तं त्यक्त्वाऽध्यश्रयन्रिपून् । शतैकीयः कश्चिदासीद्राजधान्यां नृपाश्रितः ॥१०४८॥
तेनाप्रतिसमाधेयो भूयः शान्तेऽप्युपद्रवे । इत्थमुत्थापितोऽनर्थो न पुनर्यः शमं ययौ ॥१०४९॥

लिए व्यग्र वनैले व्याधोंकी सहायता करके समय-समयपर लगनेवाली दवाग्निमें झुलसनेका अनुभव करता है। हाय-हाय ! उस वृक्षराजिको विघटनपरायण मस्त हाथीने मस्तीमें आकर व्यर्थ ढहा दिया। उसके ऐसा करनेसे उन वृक्ष वेचारोंका सारा श्रेय विधाताकी इच्छापूर्तिका ग्रास वन गया। वह श्रेय न उन वृक्षोंके काम आ सका और न अन्य किसीके ॥ १०३६ ॥ द्वैराज्य (दो राजाओंकी साझेदारीके राज्य) में एकाएक ऐसी वाधारूपी हिमकी वर्षा हो ही जाती है, जिससे सव काम विगड़ जाता है। सो यहाँ भी वैसा ही हुआ और भिक्षुकी विवश सेनाको राजा सुस्सलने पराजित कर दिया ॥ १०३७ ॥ ऐसी परिस्थितिमें भिक्षु और पृथ्वीहर वहाँसे भागकर फिर पुण्याणनाड गये और अन्य लवन्योंके साथ उन्होंने भी वहाँके राजाको कर देकर प्रणाम किया ॥ १०३८ ॥ इधर राजा सुस्सलके वीर सेनापति सिम्बने डामरोंको परास्त करके समस्त मडवराज्यकी भूमि विप्लवविहीन कर दी ॥ १०३९ ॥ उतने ही विपक्षियोंकी समाप्तिसे राजा सुस्सलकी आत्मा शीतल हो गयी और उसने अपने पक्षके प्राप्त किये गये पूर्व वैरका स्मरण करके नवीन परिस्थिति उत्पन्न की ॥ १०४० ॥ तदनुसार उसी समय उल्हणने राजाको वताया कि 'मल्लकोष्ठ आपको मार डालना चाहता है' । यह सुना तो कुपित सुस्सलने उसको राज्यसे वाहर निकाल दिया, जिससे मल्लकोष्ठ वहाँसे चला गया ॥ १०४१ ॥ तदनन्तर राजाने अनन्तके पुत्र आनन्दको कैद कर लिया और उसके स्थानपर सिन्धुदेशके राजपुत्र प्रज्जिको द्वाराधीश वनाया ॥ १०४२ ॥ तदनन्तर राजा सुस्सल सिम्बके साथ विजयक्षेत्र गया। उस नगरमें पहुँचकर राजाने विश्वस्त सिम्बको कैद करके जेलमें डाल दिया ॥१०४३॥ उस समय पूर्व वैरकी स्मृतिरूपा महावात्या (आँधी) से राजा सुस्सलके हृदयमें अमर्षरूपी अग्नि धधक रही थी। वह अग्नि समस्त राजभृत्योंको भस्म कर डालना चाहती थी और उसका शमन केवल क्षमाके जलसे हो सकता था—सो नहीं हुआ ॥ १०४४ ॥ उन दिनों रोपके आवेशवश उस राजाकी वुद्धि लुप्त हो चुकी थी। अतएव उसने सिंह तथा थक्कनसिंह इन दोनों भाइयोंके साथ सिम्बको सूलीपर चढ़ाकर मार डाला ॥ १०४५ ॥ अव श्रीवकको उसने सेनापति वनाया और जनकसिंहको कैद करके उसके स्थानपर सुज्जिके सगे भाई प्रज्जिको राजस्थानकी रक्षाका भार सौंपा ॥ १०४६ ॥ इसके वाद विदेशी लोग ही उसके विश्वस्त मन्त्री हो गये और स्वदेशी वही व्यक्ति उसका विश्वासपात्र रह गया, जो उसके साथ लोहर गया था ॥ १०४७ ॥ इसका परिणाम यह हुआ कि सभी राज्यभृत्य राजासे सशंक हो उठे और उसे त्यागकर शत्रुओंके गुटमें जा मिले। अव राजधानीमें केवल एक प्रतिशत मनुष्य राजाके आश्रित रह गये थे ॥१०४८॥ इस प्रकार एक वार समस्त उपद्रवोंके शान्त हो जानेपर भी फिरसे राज्यमें

एकाक्षेपे परेऽपि स्युर्यत्र भृत्या विशङ्किताः । तत्रापराधे प्राज्ञस्य राज्ञोऽवज्ञैव शस्यते ॥१०५०॥
माघेऽथ मल्लकोष्ठाग्र्यैराहूताः पुनराययुः । ते शूरपुरमार्गेण भिक्षुपृथ्वीहरादयः ॥१०५१॥
वितस्तापरिखाक्षिप्ता भूरगम्या द्विषामियम् । इति प्रायान्नवमठं त्यक्त्वा राजगृहं नृपः ॥१०५२॥
वर्षेऽष्टानवते चैत्रे डामरेषु युयुत्सुषु । अभ्येत्य मल्लकोष्ठेन प्रागेवाग्राहि संगरः ॥१०५३॥
सोऽश्ववारैः सह रणं चकार नगरान्तरे । नृपावरोधैः सौधाग्रादालोकितमथाकुलैः ॥१०५४॥
भिक्षुणा क्षिप्तिकातीरे स्कन्दावारं न्यवध्यत । रामेण वानरी सेना यथा पाथोनिधेस्तटे ॥१०५५॥
नृपोद्यानाद्द्रुमान्निन्युरिन्धनाय महानसे । दूर्वाङ्कुरान्मन्दुराभ्यो वाहभोज्याय डामराः ॥१०५६॥
पृथ्वीहरस्तु संगृह्णन्दस्यून्मडवराज्यजान् । चकार विजयक्षेत्रे यावत्कटकसंग्रहम् ॥१०५७॥
तावत्प्रज्जिमुखान्मल्लकोष्ठयुद्धाय भूपतिः । आदिश्यादादवस्कन्दं वैशाखे साहसोन्मुखः ॥१०५८॥
अकस्मात्पतितं तस्मिन्हतावष्टम्भविक्षताः । प्रययुः सेतुमुल्लङ्घ्य जीवाश्वस्ताः कथंचन ॥१०५९॥
नगरं मल्लकोष्ठाजिव्यग्रे प्रज्ञावथाविशत् । पृथ्वीहरानुजः सुज्जिं निर्जित्य मनुजेश्वरः ॥१०६०॥
परं पारं वितस्तायां सेतुच्छेदादनाप्नुवन् । अर्वाचि तीरे स गृहान्दग्ध्वागात्क्षिप्तिकां ततः ॥१०६१॥
लवन्यैर्नगरं प्राप्तं मत्वा सुस्सलभूपतिः । आययौ विजयक्षेत्रात्सैन्यमुत्थाप्य विह्वलः ॥१०६२॥
अहंपूर्विकयारातिगङ्कार्तैश्च निर्जरैलैः । पीडितस्तस्य गम्भीरासिन्धुसेतुरभज्यत ॥१०६३॥
स कृष्णषष्ठ्यां ज्यैष्ठस्य तस्यासंख्यश्चमूचयः । यथाग्निना चक्रधरे तथा तत्राम्भसा मृतः ॥१०६४॥

फिर जो अशान्तिकी लहर फैली, वह किसी तरह शान्त नहीं हुई ॥ १०४९ ॥ जिस राजाके यहाँ किसी एक भृत्यके दण्डित हो जानेपर अन्य भृत्य सशंक हो उठते हैं, वहाँ उस समझदार राजाके अपराध करनेपर उसी को अपमानका सामना करना पड़ जाता है और ऐसा होना उचित भी है ॥ १०५० ॥ तदनन्तर माघमासमें मल्ल-कोष्ठके बुलावेपर भिक्षु-पृथ्वीहर आदि शूरपुर मार्गसे फिर आकर एकत्र हुए ॥ १०५१ ॥ इधर राजा सुस्सल यह भूमि वितस्ता नदीरूपिणी खाईसे घिरी हुई है, अतएव शत्रु यहाँ नहीं आ सकता। यह सोचकर वह प्राचीन राजमहल त्यागकर नये मठमें रहने लगा ॥ १०५२ ॥ किन्तु ४१९८ लौकिक वर्षके चैत्रमासमें युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध डामरोंको साथ लेकर मल्लकोष्ठने फिर युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १०५३ ॥ धीरे-धीरे मल्लकोष्ठकी सेना नगरके भीतर घुस गयी और उसकी अश्वारोही सेना नागरिक सेनासे जूझने लगी। उस समय राजाके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ अपने महलकी छतसे वह युद्ध देखकर व्याकुल हो उठीं ॥ १०५४ ॥ उधर भिक्षाचरने क्षिप्तिका नदीके तटपर उसी प्रकार अपनी सेनाका पड़ाव डाला, जैसे रामने अपनी वानरी सेनाका पड़ाव समुद्रके तटपर डाला था ॥ १०५५ ॥ उस पड़ावके डामर राजाकी वाटिकासे इंधन तथा घोड़ोंके लिए घास लाया करते थे ॥ १०५६ ॥ पृथ्वीहर मडव राज्यके दस्युओंको एकत्र करके विजयक्षेत्रमें सैन्यसंग्रह कर रहा था ॥ १०५७ ॥ उसी बीच वैशाखमासमें साहस करके राजा सुस्सलने प्रज्जि आदि सेनानायकोंको मल्लकोष्ठके साथ लड़नेका आदेश दे दिया ॥ १०५८ ॥ किन्तु रणभूमिमें पहुँचते ही उन वीरोंने ऐसी मार खायी कि बुरी तरह घायल होकर अपने प्राण बचाते हुए किसी प्रकार पुल पार करके राजधानीमें भाग आये ॥१०५९॥ उस मल्लकोष्ठके युद्धमें सेनापति प्रज्जिको घायल तथा सुज्जिको परास्त करके पृथ्वीहरका छोटा भाई नगरमें जा पहुँचा ॥ १०६० ॥ पुल तोड़ दिये जानेके कारण वह वितस्ता नदीके उस पार तो नहीं जा सका, किन्तु इस पारके सभी भवनोंको जलाकर वह क्षिप्तिका नदीके तटपर चला गया ॥ १०६१ ॥ जब राजा सुस्सलने सुना कि लवन्य लोगोंने नगरको हस्तगत कर लिया है, तब विह्वलभावसे अपनी सेना सुसज्ज करके वह विजय-क्षेत्र नगरकी ओर चल पड़ा ॥ १०६२ ॥ बड़े दर्पके साथ शत्रुओंके आक्रमणसे शंकित अपनी सेना देखकर दुखी राजा गम्भीरा-सिन्धुसंगमवाले पुलपर जैसे ही पहुँचा, वैसे ही वहाँका पुल टूट गया ॥ १०६३ ॥ जिसके फलस्वरूप ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठीको राजाके असंख्य सैनिक पानीमें डूब मरे। जैसे कुछ दिनों पहले

भुजमुद्यम्य शमयन्सैन्यानां संभ्रमं नृपः । त्रस्तैर्भ्रष्टैस्तथा पृष्ठे पतितः सरिदन्तरे ॥१०६५॥
अनभ्यस्ताम्बुतरणैराश्लिष्य त्रुडितोऽसकृत् । तरदायुधविद्धाङ्गः स निस्तीर्णः कथंचन ॥१०६६॥
अनुत्तीर्णं बलं त्यक्त्वा पारे सामन्तसंकुलम् । सहस्रांशेन सैन्यस्य तीर्णेनानुगतो ययौ ॥१०६७॥
संत्यक्तानन्तसैन्योऽपि सोऽवष्टम्भमयो नृपः । प्रविश्य नगरं मल्लकोष्ठमुख्यान्रणेऽग्रहीत् ॥१०६८॥
विजयस्याथ जननी सिल्लाख्या स्वामिनोज्झितम् । निनाय देवसरसं सैन्यं तद्विजयेश्वरात् ॥१०६९॥
साऽथ पृथ्वीहरेणैत्य हता तत्रोपवेशने । टिक्कश्च दत्तो भूपालसैन्यं विद्रावितं च तत् ॥१०७०॥
परं व्यायामविद्याविद्विद्रुते निखिले बले । द्विजः कल्याणराजाख्यः समरेभिमुखो हतः ॥१०७१॥
मन्त्रिडामरसामन्तसंकुलात्सौस्सलाद्बलात् । पृथ्वीहरेणागृह्यन्त बद्ध्वा वृन्दानि शस्त्रिणाम् ॥१०७२॥
अन्वगात्स वितस्तान्तं यावत्तान्विद्रुतान्बलात् । ओजानन्दद्विजादींश्च बद्ध्वा शूले व्यपादयत् ॥१०७३॥
मन्त्रिणो जनकश्रीवकाद्या राजात्मजास्तथा । तीर्त्वाद्रिं विपलाटायां शरणं प्रययुः खशान् ॥१०७४॥
इत्थं पृथ्वीहरो लब्धजयः संगृह्य डामरान् । जिगीषुर्भिक्षुणा साकं नगरोपान्तमाययौ ॥१०७५॥
भूयोऽपि मानुषाश्वौघसंहर्ता सर्वतस्ततः । रणः प्रववृते प्राग्वत्पुरे रुद्धस्य भूपतेः ॥१०७६॥
निर्निरोधः पथानेन नृपावसथ इत्यभूत् । सैन्ये मडवराज्यानां स्वयं पृथ्वीहरोऽग्रणीः ॥१०७७॥
तत्तत्सामन्तकुलजैर्वीरैः काश्मीरकैर्भटैः । समेतं डामरकुलं दुर्जयं सर्वतोऽभवत् ॥१०७८॥
काश्मीरकाः शोभकाद्याः काकवंश्याः सहस्रशः । प्रख्याता भैक्षवे पक्षे रत्नाद्याश्चापरेऽस्फुरन् ॥१०७९॥
नदतः स्वबलाद्वाद्यं तुमुलं शृण्वतोन्मिपत् । पृथ्वीहरेणागण्यन्त वाद्यभाण्डानि कौतुकात् ॥१०८०॥

चक्रधरके अग्निकाण्डमें बहुतेरे लोग जल मरे थे, उसी प्रकार इस समय पानीमें बहुतसे लोग डूबकर मर गये ॥ १०६४ ॥ राजा भी उस समय पानीमें गिर गया था और वह वहींसे हाथ उठाकर घबड़ाये, भयभीत और जलमें गिरे सैनिकोंको ढाढस बँधा रहा था ॥ १०६५ ॥ राजाको तैरनेका अभ्यास नहीं था, अतएव वह कई बार डूबने-डूबनेको हो गया था। असावधानी वश शस्त्रोंके अघातसे उसके शरीरमें कई जगह घाव हो गये थे। फिर भी वह किसी तरह पानीसे निकलकर किनारे आ लगा ॥ १०६६ ॥ जो सेना नदीको नहीं पार कर सकी, उसे त्यागकर केवल सहस्रांश सेनाके साथ वह इस पार आया, जहाँ बहुतेरे सामन्त उसकी प्रतीक्षामें खड़े थे। अब उन सबको साथ लेकर राजा नगरकी ओर चला ॥ १०६७ ॥ यद्यपि उसकी अपार सेना साथ नहीं आ सकी थी, तथापि साहसी राजा सुस्सलने नगरमें पहुँचते ही रणभूमिमें मल्लकोष्ठ आदि प्रमुख शत्रुओंको कैद कर लिया ॥१०६८॥ तब विजयकी माता सिल्ला अपने स्वामी राजा सुस्सलकी बाकी सेना साथ लेकर विजयक्षेत्रसे देवसरस आ पहुँची ॥ १०६९ ॥ उसी समय पृथ्वीहरने उसके पड़ावपर सिल्लाको मार डाला। तबतक टिक्कने ऐसा प्रहार किया कि राजाकी सारी सेना भाग खड़ी हुई ॥ १०७० ॥ जब सब सेना भाग गयी, तब सैनिकशास्त्रका परम विद्वान् कल्याणराज नामका ब्राह्मण लड़ने गया और रणमें मारा गया ॥ १०७१ ॥ मंत्री, डामर और सामन्तोंसे भरी राजा सुस्सलकी सेनाके असंख्य शस्त्रधारियोंको पृथ्वीहरने कैद कर लिया ॥ १०७२ ॥ तदनन्तर उसने वितस्ताके तटपर भागी हुई राजाकी सेनाका पीछा किया और ओजानन्द आदि ब्राह्मणोंको कैद करके सूलीपर चढा दिया ॥ १०७३ ॥ तबतक राजाके मन्त्री जनक-श्रीवक तथा राजपुत्र पहाड़ लाँघकर विपलाटामें खशोंकी शरणमें जा पहुँचे ॥१०७४॥ इस प्रकार डामरोंका संग्रह करके पृथ्वीहर विजय प्राप्त करनेके बाद राज्यपर कब्जा करनेके लिए भिक्षुके साथ नगरके किनारे आ पहुँचा ॥ १०७५ ॥ वहाँ फिर मनुष्यों और अश्वोंके समुदायको नष्ट करनेवाला वैसा ही भीषण युद्ध आरम्भ हो गया, जैसा पिछले समय राजा सुस्सलके अवरुद्ध हो जानेपर हुआ था ॥ १०७६ ॥ उसी समय पृथ्वीहर मडवराज्यकी सेनामें ऐसे मार्गसे प्रविष्ट हुआ, जहाँ किसी प्रकारकी रुकावट नहीं थी ॥ १०७७ ॥ अब विभिन्न सामन्तोंके कुलमें उत्पन्न वीरों तथा कश्मीरी योद्धाओंके मिल जानेसे डामरोंकी सेना सर्वथा दुर्जय हो गयी ॥ १०७८ ॥ काश्मीरक, शोभक एवं

हित्वा भूर्यथ तूर्यादि परिच्छेत्तुं स कौतुकी । श्वपाकदुन्दुभीभाण्डशतानि द्वादशाशकत् ॥१०८१॥
तथा विनष्टसैन्योऽपि त्रिंशद्विंशैर्नृपात्मजैः । मितैः स्वदेशजैश्चारीन्प्रतिजग्राह सुस्सलः ॥१०८२॥
राजन्याविच्छटिकुलोद्भूतावुदयधन्यकौ । चम्पावल्लापुराधीशावुदयब्रह्मजज्जलौ ॥१०८३॥
ओजो मल्हणहंसानां धुर्यो हरिहडौकसः । क्षत्रिकाभिञ्जिकास्थानसव्यराजादयस्तथा ॥१०८४॥
विडालपुत्रा नीलाद्या भावुकान्वयसंभवाः । रामपालः सहजिको युवा तस्य च नन्दनः ॥१०८५॥
नानावंश्याः परेऽप्युग्रसंग्राममव्यग्रताजुषः । पुरोपरोधसंनद्धानरुन्धन्सर्वतो रिपून् ॥१०८६॥
तनूजनिर्विशेषेण रिल्हणेन महीभुजः । रणाग्रेसरताग्राहि विजयाद्यैश्च सादिभिः ॥१०८७॥
स्वयमुद्यमिना राज्ञा वर्मणेव निजौ भुजौ । सुज्जिप्रज्जी पाल्यमानावभूतां रणकर्मठौ ॥१०८८॥
ताभ्यां साधारणीकुर्वन्राज्योत्पत्तिं महीपतिः । स महाव्यसने तस्मिन्सम्यग्गूढधुरोऽभवत् ॥१०८९॥
तत्पक्षा भागिकशरद्भासिमुम्मुनिमुङ्गटाः । कलशाद्याश्च कुशला विपक्षक्षोभणेऽभवन् ॥१०९०॥
भूभर्तुष्टक्कविषये लवराजस्य नन्दनः । आसीत्कमलियश्चास्य संग्रामाग्रेसरः प्रभोः ॥१०९१॥
प्रहारं बलिनस्तस्य चामरध्वजशोभिनः । प्रभिन्नस्येव नागस्य हयारोहा न सेहिरे ॥१०९२॥
अनुजः सङ्गिकः पृथ्वीपालो भ्रातुः सुतोऽस्य च । पाञ्चालाः फल्गुनस्येव पार्श्वरक्षित्वमाययुः ॥१०९३॥
एतावद्भिर्भृत्यरत्नैः राष्ट्रेऽपि कुपितेऽजयत् । भूरिस्वर्णार्पणोपात्तैर्वाजिभिश्च महीपतिः ॥१०९४॥
तत्र तत्राहवे सोऽपि बभ्रामासंभ्रमो नृपः । उत्सवे गृहमेधीव मण्डपे मण्डपे स्वयम् ॥१०९५॥

हजारों प्रसिद्ध काकवंशज रत्न आदि वीर भिक्षाचरके पक्षमें जा मिले ॥ १०७९ ॥ सहसा अपनी सेनाके बजते हुए वाद्योंको सुनकर कौतूहलवश पृथ्वीहर उन बाजोंको गिनने लगा ॥ १०८० ॥ गिनते समय अन्य वाद्यों-को त्यागकर कौतुकी पृथ्वीहरने केवल तूर्यादि वाद्योंको गिनना आरम्भ किया तो श्वपाकों द्वारा बजायी जानेवाली विभिन्न प्रकारकी दुन्दुभियाँ (नगाड़े) ही बारह सौकी संख्यामें निकलीं ॥ १०८१ ॥ इधर प्रचुर सेना नष्ट हो जानेपर भी बीस-तीस राजपुत्रों तथा परिमित देशी सैनिकोंके साथ जाकर राजा सुस्सलने शत्रुओंको छोप लिया ॥ १०८२ ॥ इच्छटिकुलमें उत्पन्न दो राजे उदय तथा धान्यक, चम्पा एवं वल्लापुरके नरेश उदय और ब्रह्मजज्जल, मल्हण तथा हंसके कुलका अग्रणी ओज, हरिहरनिवासी तथा क्षत्रिका-भिञ्जिकाके सव्यराज आदि, भावुकके वंशमें उत्पन्न विडालके पुत्र नील आदि, रामपाल, सहजिक तथा उसका युवा पुत्र नन्दन, अन्यान्य वंशोंमें जायमान और भी बहुतेरे ऐसे वीर जो युद्धके लिए व्यग्र थे, इन सबने मिलकर नगरपर कब्जा करनेके लिए सचेष्ट शत्रुओंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १०८३–१०८६ ॥ राजपुत्र रिल्हण विजय आदि अश्वारोहियोंके साथ राजाकी ओरसे रणके लिए अगुआ बना ॥ १०८७ ॥ स्वयं उद्योगी राजाने अपनी भुजाके समान मानते हुए जिन सुज्जि तथा प्रज्जिको पाला-पोसा था, वे भी अब युद्धकार्यमें पूर्ण निपुण हो गये थे ॥ १०८८ ॥ उन दोनोंकी सहायतासे राजा सुस्सलने राज्यका उत्पादन सामान्य स्थितिपर पहुँचा दिया और उस महान् संकटके समय राज्यके भारको भली-भाँति सम्हालनेमें समर्थ हुआ ॥ १०८९ ॥ राज्यपक्षके भागिक, शरद्भासी, मुम्मुमि, मुंगट तथा कलश आदि वीर शत्रुपक्षको क्षुब्ध करनेके काममें लग गये ॥ १०९० ॥ टक्कराज्य-में लवराजका पुत्र कमलिय राजा सुस्सलकी ओरसे युद्धमें अग्रणी बना हुआ था ॥ १०९१ ॥ ध्वजा तथा चमरसे सुशोभित एवं मदमत्त गजराजके समान प्रबल पराक्रमी कमलियके प्रहारको विपक्षके अश्वारोही योद्धा नहीं सह सके ॥ १०९२ ॥ उसका युवक भ्राता संगिक और उसके भाईका लड़का पृथ्वीपाल ये दोनों उसी प्रकार राजा सुस्सलके पार्श्वरक्षक बन गये, जैसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें पंजाबके राजे अर्जुनके पार्श्वरक्षक बने थे ॥ १०९३ ॥ केवल इतने ही भृत्यरत्नोंसे राजा सुस्सलने उस क्षुब्ध राष्ट्रपर काबू पा लिया। हाँ, उस समय उसने प्रचुरमात्रामें सोना खर्च करके बहुतेरे अश्वारोहियोंको भी अपने साथ ले लिया था ॥ १०९४ ॥ उस भीषण युद्धके समय भी राजा सुस्सल प्रत्येक डेरेपर इस तरह घूमा करता था, जैसे घरमें कोई उत्सव होनेपर घरका मालिक देख-रेखके लिए

तस्य हि व्यसनं त्रासहेतुः प्राभूदुपक्रमे । प्रवृद्धिं प्राप्तमभवद्धैर्यादाव्यथ धीमतः ॥१०९६॥
क्लैव्यकृद्भयमापाते नव्यपाते न तादृशम् । करक्षिप्तं यथा शीतं मज्जने न तथा पयः ॥१०९७॥
वैरिसैन्यतमो यत्र यत्र ज्योत्स्नेव निर्ययौ । सितासिता च भूभर्तुस्तत्र तत्रास्य वाहिनी ॥१०९८॥
एकदा कृतसंकेतास्तुल्यमाहवमेलके । महासरितमुत्तीर्य डामरा नगरेऽपतन् ॥१०९९॥
असीमनगरस्थानविभक्तकटको नृपः । परिमेयाश्ववारस्तान्विगतः स्वयमाद्रवत् ॥११००॥
नाभजड्डामरानीकस्तेन विद्रावितो धृतिम् । हेमन्तमरुता कीर्णपर्णराशिरिवेरितः ॥११०१॥
त्र्यानन्दः काककुलजो लोष्टशाह्यनलादयः । अन्ये च डामरानीके ख्याता भूभृद्भटैर्हताः ॥११०२॥
लब्धाभिघातानानीतान्त्राजः क्रूरस्य दृक्पथम् । बहूनिजघ्नुश्चण्डाला इव राजोपजीविनः ॥११०३॥
भयाद्गोपाद्रिमारूढा अपरे भैक्षवास्ततः । आसन्नमृत्यवोऽभूवन्कटकैर्वेष्टिता द्विषाम् ॥११०४॥
यो मार्गो दुर्गमः पत्रिणोऽपि त्रातुं ततः स तान् । तत्र व्यापारयामास भिक्षुर्मानी तुरंगमान् ॥११०५॥
कथंचित्पत्रिणा विद्धग्रीवस्तस्याग्रहीन्मुहुः । पार्श्वे पृथ्वीहरो रूढिं द्वित्राश्चान्ये महाभटाः ॥११०६॥
वेलाद्रिभिरिवोद्वृत्तैः सिन्धौ तैर्द्विपतां बले । रुद्धे गोपाचलं त्यक्त्वा तेन्यानारुरुहुर्गिरीन् ॥११०७॥
अथोदतिष्ठद्वामेन राजानीकस्य वाहिनी । मल्लकोष्ठस्य पत्त्यश्वक्षोभिताशेषदिक्तटा ॥११०८॥
अरिपृष्ठग्रहव्यग्रैस्थितःसर्वैर्वर्जितो बलैः । तदाज्ञाप्यखिलैरेष हतो राजेत्यशंसयम् ॥११०९॥
आपातं सुस्सलो राजा यावत्तस्याविसोढवान् । तावत्सावरजः प्रज्जिराजगाम रणाङ्गनम् ॥१११०॥

चारों ओर चक्कर लगाता है ॥ १०९५ ॥ प्रारम्भिक अवस्थामें उसे भयानक स्थितिका सामना करना पड़ गया था, किन्तु उस धैर्यशाली वीरने सब कुछ झेल लिया ॥ १०९६ ॥ सभी कार्योंके आरम्भकालमें बड़ा भीषण और साहस खो देनेवाला भय उपस्थित होता है, किन्तु बादमें वह बात नहीं रहती । जैसे पानी हाथसे स्पर्श करनेपर जितना ठंढा लगता है, उतना ठंढा स्नान करते समय नहीं लगता ॥१०९७॥ शत्रुओंका सैन्यरूपी अन्धकार जहाँ-कहीं भी जाता था, वहाँ ही चन्द्रमाकी चाँदनीके समान उसकी सेना जा पहुँचती थी॥१०९८॥ जिस समय घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय अपनी सुनिश्चित योजनाके अनुसार महानदी पार करके डामरगण नगरके ऊपर टूट पड़े ॥ १०९९ ॥ उनके आ जानेपर नगरमें राजा सुस्सलकी सेना दो भागोंमें विभक्त हो गयी और दोनोंका सम्बन्ध भंग हो गया । अश्वारोहियोंकी बहुत थोड़ी सेना उसके पास रह गयी थी, तथापि उन्हींकी सहायतासे राजाने उन डामरोंपर आक्रमण कर दिया ॥ ११०० ॥ उस आक्रमणसे डामरोंका धैर्य छूट गया और वे उसी तरह भागने लगे, जैसे हेमन्तकालीन वायुके झोंकेसे वृक्षोंकी गिरी हुई पत्तियाँ उड़ जाती हैं ॥ ११०१ ॥ काकवंशमें उत्पन्न त्र्यानन्द, लोष्टकसाही, अनल एवं अन्यान्य डामरसेनाके प्रमुख योद्धा राजा सुस्सलके वीरों द्वारा मार डाले गये ॥ ११०२ ॥ उस समय उस क्रूर राजाकी आँखोंके सामने जो भी शत्रुके वीर आये, उन्हें राजाके सैनिकोंने मार डाला ॥ ११०३ ॥ उधर मार डरके गोपपर्वतपर चढ़े हुए भिक्षुके सैनिक शत्रुकी सेनासे घिरकर मरणासन्न स्थितिमें पहुँच गये ॥ ११०४ ॥ तब स्वाभिमानी राजा भिक्षुने उनकी रक्षाके लिए उस स्थानपर अपने घोड़े दौड़ा दिये, जहाँ पक्षियोंकी भी पहुँच नहीं थी ॥ ११०५ ॥ जब भिक्षु अश्वारोहियोंके साथ गोपपर्वत-पर चढ़ रहा था, उसी अवसरपर एक पहाड़ी पक्षीने उसकी गर्दन नोच ली, जिससे वह लड़खड़ाने लगा । किन्तु उसके पास ही विद्यमान पृथ्वीहर तथा दो-तीन सैनिकोंने उसे सम्हाल लिया ॥ ११०६ ॥ उसी समय उमड़े हुए समुद्रके समान भीषण शत्रुओंकी सेना चारों तरफसे उन्हें घेरती हुई दिखायी पड़ी, उसे देखकर भिक्षु-पृथ्वीहर आदि वह पर्वत त्यागकर अन्य पर्वतपर चढ़ गये ॥ ११०७ ॥ तदनन्तर बायीं ओरसे मल्लकोष्ठकी पैदल तथा अश्वारोहियोंकी सेनामें खलबली मचाती हुई राजा सुस्सलकी सेना पहुँच गयी ॥ ११०८ ॥ इस प्रकार जब सारी सेना शत्रुको घेरनेके काममें लग गयी, तब राजा सुस्सल अकेला पड़ गया । जिससे लोगोंको ऐसा लगने लगा कि अब राजा अवश्य मार डाला जायगा ॥ ११०९ ॥ राजा शत्रुके आघातकी प्रतीक्षा कर ही रहा था कि इतनेमें

आषाढबहुलाष्टम्यां स हयारोहमेलकः । निजशस्त्रध्वनिप्रवृत्तसाधुवादो महानभूत् ॥११११॥
ताभ्यां स शमिते युद्धे सधनुः ससमीरणः । दावो नभोनभस्याभ्यामिव प्रापाम्बुवृष्टिभिः ॥१११२॥
संग्रामसहले काले तादृगन्यो न कोऽप्यभूत् । यादृक्स दिवसो वीर्यशौटीर्यनिकषोपलः ॥१११३॥
अनीकिनी लाहरी सा विलम्बेनाययाविति । तेषामुत्पाटनेच्छूनां नाभवद्धस्तमेलकः ॥१११४॥
अन्योन्यस्य परिज्ञाता दिवसे तत्र संकटे । भिक्षोर्भूमिभृतां शक्तिर्भूमिभर्तुश्च भिक्षुणा ॥१११५॥
ततो मडवराज्यांस्तान्योद्धुं तत्रैव निर्दिशन् । क्षिप्तिकारोधसा युद्धमेत्य पृथ्वीहरोऽग्रहीत् ॥१११६॥
दिगन्तरादथायातो यशोराजो महीभुजा । मण्डलेश्वरतां निन्ये रिपून्प्रतिजिहीर्षुणा ॥१११७॥
स्वैरकार्ये पुरा तस्य लवन्या दृष्टविक्रमाः । रणेषु मुखमालोक्य शतशः प्रचकम्पिरे ॥१११८॥
कुङ्कुमालेपनच्छत्रहयादिप्रतिपत्तिदः । सर्वेषामभिनन्द्यत्वं तं राजा स्वमिवानयत् ॥१११९॥
दीर्घोपप्लवयाप्येन दुःस्थितः स्वास्थ्यलिप्सया । जनो बबन्ध तत्रास्थां नववैद्य इवातुरः ॥११२०॥
ज्यायांसं पद्मचन्द्राख्यं शेषाणां गर्गजन्मनाम् । नृपतिर्मल्लकोष्ठस्य प्रातिपक्ष्ये न्ययोजयत् ॥११२१॥
शिशुस्तुडाख्यया मात्रा पालितः स शनैः शनैः । आश्रीयमाणोऽनुचरैः पित्र्यैः किंचित्प्रथां ययौ ॥११२२॥
यशोराजानुयानेन राजा जन्येषु निर्जिताः । केचित्तत्पक्षमभजन्भग्नाः केचिच्च डामराः ॥११२३॥
सभिक्षुः प्रययौ पृथ्वीहरः स्वमुपवेशनम् । मल्लकोष्ठोन्मुखो राजा निर्जगामामरेश्वरम् ॥११२४॥
अत्रान्तरे मल्लकोष्ठो विसृज्य निशि तस्करान् । सदाशिवान्तिके शून्यां राजधानीमदाहयत् ॥११२५॥
पृथ्वीहरेण भूयोऽपि योद्धुमागच्छताऽसकृत् । प्रज्जिसुज्जिमुखा युद्धमकुर्वन्क्षिप्तिकातटे ॥११२६॥
वारं वारं लावन्यः स नगरे निर्दहन्गृहान् । प्रायः शून्यत्वमनयद्वितस्तातीरमुत्तमम् ॥११२७॥

अपने छोटे भाईके साथ प्रज्जि रणाङ्गणमें आ पहुंचा ॥ १११० ॥ इस प्रकार आषाढ कृष्ण अष्टमीको शत्रुके अश्वारोहियोंसे वीर राजा सुस्सलने अपनी स्थिति दृढ कर ली। ऐसी स्थितिमें अपने शस्त्रास्त्र खनकाते हुए सैनिकोंने उसकी बड़ी सराहना की ॥ ११११ ॥ जैसे सावन-भादोंकी बरसात वायुयुक्त दवानलको बुझा देती है, उसी प्रकार प्रज्जि और सुज्जिने वह युद्ध शान्त कर दिया ॥ १११२ ॥ उस भीषण समरकालमें वैसा दिन कभी भी नहीं आया था, जैसा कि पराक्रम तथा शौर्यकी पराकाष्ठाका वह दिन था ॥ १११३ ॥ लहरकी सेना वहाँ देरसे आयी। अतएव उसे उच्छिन्न करनेकी इच्छा रखनेवालोंकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई ॥१११४॥ उस संकटकालमें राजाने भिक्षुकी शक्ति और भिक्षुने राजाकी शक्ति समझ ली ॥ १११५ ॥ तदनन्तर मडवराज्यके सैनिकोंसे लड़नेके लिए निर्देश देकर पृथ्वीहरने क्षिप्तिका तटके मार्गसे राजधानी आकर युद्धकी बागडोर अपने हाथमें ले ली ॥ १११६ ॥ तत्पश्चात् देशान्तरसे यशोराज भी वहाँ आ पहुँचा और शत्रुओंको वशमें करनेके लिए राजा सुस्सलने उसे मण्डलेश्वर बना दिया ॥ १११७ ॥ पहले तो यशोराजका पराक्रम देखे हुए सैकड़ों लवन्यगण रणभूमिमें उसका मुख देखकर काँप उठे ॥ १११८ ॥ राजा सुस्सलने भी कुंकुमका लेप, छत्र एवं अश्व आदि प्रदान करके यशोराजको अपने ही समान अभिनन्दनीय बना दिया ॥ १११९ ॥ जैसे नये वैद्यको पाकर रोगी आश्वस्त हो जाता है, उसी प्रकार बहुत दिनोंसे विपत्तिमें पड़े रहनेके कारण कुछ शान्ति पानेकी आशासे जनताकी भी उसपर आस्था हो चली ॥ ११२० ॥ अवशिष्ट गर्गवंशियोंमें सबसे बड़े पद्मचन्द्रको राजाने मल्लकोष्ठका प्रतिद्वन्द्वी बना दिया ॥ ११२१ ॥ उस पद्मचन्द्रकी माताने बचपनसे उसे पाला था। बादमें धीरे-धीरे उसके पिताके सेवकोंने उसकी ख्याति की ॥ ११२२ ॥ यशोराजको साथ लेकर राजाने जिन डामरोंको जीता उनमेंसे कुछ डामर राजाके पक्षमें मिल गये और कुछ भाग गये ॥ ११२३ ॥ तदनन्तर भिक्षुको साथ लेकर पृथ्वीहर अपने घर चला गया और राजा सुस्सल मल्लकोष्ठसे भिड़नेके लिए अमरेश्वर जा पहुँचा ॥ ११२४ ॥ इसी बीच रात्रिके समय तस्करोंको भेजकर मल्लकोष्ठने सदाशिवके समीप स्थित सूनी राजधानीमें आग लगवा दी ॥ ११२५ ॥ उधर पृथ्वीहर युद्ध करनेके लिए बारम्बार क्षिप्तिकाके तटपर जाता रहा और प्रज्जि-सुज्जि आदि प्रमुख वीर उसके साथ लड़ते

तत्र तत्र रणान्कुर्वन्प्राणसंदेहदायिनः । आचक्रामाथ नृपतिर्लहरं बहलैर्बलैः ॥११२८॥
निःसेतुं तरतः सिन्धुं दृतिभङ्गाद्ययुर्जले । मन्दिरं कन्दराजाद्यास्तदीयाः समवर्तिनः ॥११२९॥
दरद्देशं ययौ मल्लकोष्ठो राज्ञा निराकृतः । सपुत्राप्यभजच्छुड्डा प्रारोहं लहरान्तरे ॥११३०॥
आनिन्यिरे जय्यकेन लवन्येन नृपान्तिकम् । विपलाटान्तरात्तेऽथ जयकश्रीवकादयः ॥११३१॥
लहरारब्धव्यतिक्रान्तनिदाघः शरदागमे । शमालां निर्ययौ राजा यशोराजान्वितस्ततः ॥११३२॥
भग्नं पृथ्वीहरत्रासात्सैन्यं रक्षन्मनीमुपे । आजौ सज्जात्मजो डोम्बनामा राजसुतो हतः ॥११३३॥
युद्धं सुवर्णसानूरग्रामशूरपुरादिषु । कुर्वञ्शश्वन्नृपः प्राप पर्यायेण जयाजयौ ॥११३४॥
श्रीकल्याणपुराद्भङ्गं नीते पृथ्वीहरादिभिः । श्रीवके नागवट्टाद्या युधि प्रापुः प्रमापणम् ॥११३५॥
पौषे सुवर्णसानूरान्निहन्तुं मातुरन्तकम् । टिक्कं स देवसरसं व्यसृजद्गर्गवल्लभाम् ॥११३६॥
स्वेन राज्ञश्च सैन्येन सहिता सा जिताहिता । अकस्मात्तत्र टिक्केन निपत्य निहता युधि ॥११३७॥
स स्त्रीवधं व्यधात्पापी द्वितीयमपि निर्घृणः । विशेषः कोथ वा तिर्यङ्म्लेच्छतस्कररक्षसाम् ॥११३८॥
अबलां स्वामिनीं हन्यमानां त्यक्त्वा पलायिताः । चित्रं पशूपमाः शस्त्रं स्वीचक्रुर्लाहराः पुनः ॥११३९॥
ईषत्प्रागागतं शय्यां भूय एवोल्बणं नृपः । ज्ञात्वा मडवराज्यं स प्रययौ विजयेश्वरम् ॥११४०॥
मल्लराजतनूजानां निजा जिह्वेव दुर्जना । बभूव प्रभविष्णुत्वे व्यापदापातदूतिका ॥११४१॥
प्रायश्चाद्यतने काले भृत्यास्तितउवृत्तयः । दर्शयन्ति समुत्सार्य सारं दोषपतुपग्रहम् ॥११४२॥
आत्राल्यात्संस्तुताश्लीलवचःपरुषभाषितैः । निर्गौरवैर्यशोराजो राज्ञि तस्मिन्व्यरज्यत ॥११४३॥

रहे ॥ ११२६ ॥ उसी प्रकार लवन्य वारम्वार नगरके घरोंको जलाता रहा। ऐसा करके उसने वितस्तातटका सुन्दर भूभाग जलाकर शून्य कर दिया ॥ ११२७ ॥ उधर जहाँ-तहाँ प्राणसंकट उत्पन्न कर देनेवाला भीषण रण करते हुए राजा सुस्सलने विशाल वाहिनीके साथ जाकर लहरपर आक्रमण कर दिया ॥११२८॥ उन दिनों सिन्धु-नदीपर कोई पुल नहीं था। अतएव उसे मशकके सहारे पार करते समय उसके फट जानेसे कन्दराज आदि उसके समशक्ति राजे जलमें डूबकर यमपुर चले गये ॥ ११२९ ॥ इस तरह राजा सुस्सलके सतानेपर मल्लकोष्ठ दरद-देश चला गया, जहाँ छुड्डा अपने बच्चोंका पालन-पोषण करती हुई रह रही थी ॥ ११३० ॥ उसके बाद जय्यक लवन्य विपलाटासे जनक और श्रीवक आदि सेनानायकोंको बुलाकर राजा सुस्सलके पास ले आया ॥ ११३१ ॥ लहरमें गर्मीके दिनोंको अन्ततक बिताकर शरद्कालके आते ही यशोराजके साथ राजा शमाला जा पहुँचा ॥ ११३२ ॥ उधर मनमुपमें पृथ्वीहरके डरसे भागती हुई सेनाकी रक्षा करते समय होनेवाले युद्धमें राजा सज्जका पुत्र डोम्ब मार डाला गया ॥ ११३३ ॥ तत्पश्चात् सुवर्णसानूर ग्राम तथा शूरपुर आदिमें अनेकशः युद्ध करते हुए राजा सुस्सलने बार-बार जय और पराजय प्राप्त किये ॥ ११३४ ॥ पृथ्वीहर आदि शत्रुओंने श्रीकल्याणपुरमें राजाकी सेनाको बुरी तरह पराजित किया। जिससे सेनापति श्रीवकको रणभूमिसे भागना पड़ा और नागवट्ट आदि प्रमुख योद्धा मारे गये ॥ ११३५ ॥ पौषमासमें पृथ्वीहरने सुवर्णसानूर ग्रामसे गर्गकी पत्नी छुड्डाका वध करनेके लिए टिक्कको देवसरस भेजा ॥ ११३६ ॥ किन्तु अपनी तथा राजा सुस्सलकी सेनाकी सहायतासे छुड्डाने शत्रुओंको परास्त कर दिया। तत्पश्चात् अकस्मात् टिक्कने रणभूमिमें पहुँचकर छुड्डाको मार डाला ॥११३७॥ उस निर्दयी और पापी टिक्कने दूसरी बार स्त्रीका वध करके महान् पाप किया। ठीक ही है पशु, म्लेच्छ, चोर और राक्षसोंमें फर्क ही क्या होता है ? ॥ ११३८ ॥ आश्चर्यकी बात तो यह थी कि सशस्त्र लहरनिवासी शत्रुके हाथों मारी जाती हुई अपनी स्वामिनीको त्यागकर पशुओंके समान भाग गये ॥ ११३९ ॥ राजा सुस्सल कुछ समयतक शान्तिके साथ रहा था कि इतनेमें पुनः अशान्तिकी लहर आयी, जिससे वह मडवराज्य त्यागकर विजयेश्वर चला गया ॥ ११४० ॥ उधर मल्लराजके पुत्रोंकी जिह्वा ही दुर्जन हो गयी और हाथमें प्रभुता आनेपर वह उसके विनाशकी दूती बन गयी ॥ ११४१ ॥ प्रायः आज-कलके भृत्य चलनीवाले स्वभावके होते

स दुर्जातिर्महासैन्ययुतोऽवन्तिपुरस्थितः । अभजत्तत उत्थाय प्रतिपक्षसमाश्रयम् ॥११४४॥
वैरिपक्षगते तस्मिन्बलैः सर्वोत्तमैः समम् । विह्वलो विजयक्षेत्रात्पलायिष्ट महीपतिः ॥११४५॥
धिग्राज्यं तत्कृते सोपि सेहे प्राणान्निरक्षुः । मुष्णद्भिश्चौरचण्डालप्रायैः परिभवं पथि ॥११४६॥
माघे पलाय्य नगरं प्रविष्टं स यथाभिधे । भृत्ये द्रोग्धर्यशङ्किष्ट स्वेषामपि तनूरुहाम् ॥११४७॥
काश्मीरके जनेऽशेषे निराशो नितरां ततः । अङ्कन्यस्तोत्तमाङ्गोऽभूत्प्रज्जिपक्षे क्षमापतिः ॥११४८॥
मुद्रिता रुद्रपालादिपूर्वराजात्मजप्रथा । प्रज्जिना विक्रमत्यागनयाद्रोहादिभिर्गुणैः ॥११४९॥
तेनैव वर्धितामुत्र देशे विशदकीर्तिना । कालदौरात्म्यलुठिता प्रतिष्ठा शस्त्रशास्त्रयोः ॥११५०॥
अमन्त्रयत संगत्य यशोराजस्तु भिक्षुणा । नेच्छन्ति डामरा राज्यं तव विक्रमशङ्किताः ११५१॥
उत्पाद्य पुनरुत्पिञ्जं साधिष्ठानबला वयम् । राज्यं स्वयं ग्रहीष्यामो यास्यामो वा दिगन्तरम् ॥११५२॥
इति तैर्मन्त्रिते छुड्डां हतां श्रुत्वा दरत्पुरात् । आगत्य मल्लकोष्ठोऽपि प्राविशत्स्वोपवेशनम् ॥११५३॥
वर्षोऽथ दुस्तरः ख्यात एकान्नशतसंख्यया । सर्वभूतान्तकृल्लोके प्रावर्तत सुदारुणः ॥११५४॥
वसन्ते डामराः सर्वे प्राग्वन्मार्गैर्निजैर्निजैः । आगत्य भूयो भूपालं नगरस्थमवेष्टयन् ॥११५५॥
धीरः सुस्सलदेवोऽपि पुनरासीद्दिवानिशम् । निःसीमसमरस्तोमारम्भसंरम्भभाजनम् ॥११५६॥
दाहलुण्ठनसंग्रामकर्मशौण्डैः स डामरैः । प्राग्विप्लवेभ्योऽप्यधिको विप्लवः पर्यवर्धत ॥११५७॥
महासरित्पथे निर्निरोधे तस्थुर्विविक्षवः । नगरं ते यशोराजभिक्षुपृथ्वीहरादयः ॥११५८॥
ततः कतिपुचिद्युद्धाहेषु यातेषु संगरे । निजेनैव यशोराजः परकीयभ्रमाद्धतः ॥११५९॥

हैं, जो गुणको अलग करके दोषोंको ही सम्मुख उपस्थित करते हैं ॥ ११४२ ॥ बाल्यकालसे ही विविध भाँतिके अश्लील, कठोर एवं गौरवहीन वचन सुनते हुए जो वयस्क हुआ था, वह यशोराज राजा सुस्सलके यहाँ प्रधान बना बैठा था ॥ ११४३ ॥ वह दुर्जाति यशोराज बहुत बड़ी सेना लेकर अवन्तिपुरमें बैठा हुआ था। वहाँसे उठकर वह शत्रुपक्षसे जा मिला ॥ ११४४ ॥ इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट सेना लेकर यशोराजके शत्रुपक्षमें मिल जानेपर राजा सुस्सल विकल होकर विजयक्षेत्रसे भाग गया ॥ ११४५ ॥ ऐसे राज्यको धिक्कार है कि जिसके लिए प्राणोंकी रक्षा करते हुए ऐसे-ऐसे चोरों और चण्डाल प्रकृतिवाले लोगोंके द्वारा रास्तेमें उस राजाको लुटना और अपमानित होना पड़ा ॥ ११४६ ॥ इस प्रकार माघमासमें भागकर वह राजा अपनी ऐसी राजधानीमें पहुँचा, जहाँ उसे भृत्योंके ही नहीं, बल्कि अपने शरीरके रोयेंतकके विद्रोह कर देनेका भय बना रहता था ॥ ११४७ ॥ वहाँ वह सभी कश्मीरनिवासियोंसे अत्यन्त निराश होकर प्रज्जिकी गोदमें माथा रखकर उसीको आत्मसमर्पण कर दिया ॥ ११४८ ॥ क्योंकि प्रज्जि रुद्रपाल आदि पूर्वज राजाओंकी प्रथाके अनुसार पराक्रम, त्याग, नीति एवं अद्रोह आदि गुणोंसे परिपूर्ण था ॥ ११४९ ॥ उसी महान् यशस्वी पुरुषने उस देशमें कालकी क्रूरताके कारण नष्ट-भ्रष्ट शस्त्र और शास्त्रकी पुनः प्रतिष्ठा की थी ॥ ११५० ॥ उधर यशोराज जाकर भिक्षुसे मिला और कहा कि 'आपके पराक्रमसे शंकित होकर डामर राज्यको हस्तगत नहीं करना चाहते ॥ ११५१ ॥ अतएव आइए, हमीं लोग सुसंठित होकर अपने सैन्यबलसे आगे बढ़ें। वैसी परिस्थितिमें या तो राज्य प्राप्त करेंगे अथवा असफल होनेपर परदेश भाग चलेंगे' ॥ ११५२ ॥ वे लोग ऐसी मंत्रणा कर ही रहे थे कि इतनेमें छुड्डाकी हत्याका समाचार सुनकर मल्लकोष्ठ भी दरत्पुरसे आकर अपने घर उतरा ॥ ११५३ ॥ लौकिक वर्षका १४९९ वां साल बड़ा ही कराल था। क्योंकि उस दारुण वर्षमें राज्यके सभी प्राणियोंके प्राण अन्तिम स्थितिमें पहुँच गये थे ॥ ११५४ ॥ सो वसन्त ऋतुमें पहलेकी तरह सब डामरोंने अपने-अपने मार्गसे आ-आकर नगरमें बैठे हुए राजा सुस्सलको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११५५ ॥ धैर्यशाली सुस्सल भी उन दिनों असीम समरसाधनोंको जुटानेमें व्यस्त रहता था ॥ ११५६ ॥ उसी समय गृहदाह और लूट-मारमें निपुण डामरोंने पहलेसे भी भीषण रूपमें विप्लव भड़का दिया ॥ ११५७ ॥ उधर निरोधशून्य महानदीके मार्गपर नगरमें प्रविष्ट होनेके इच्छुक पृथ्वीहर-यशोराज और

कय्यात्मजेन हि समं विजयाख्येन सादिना । सौस्सलेन तु संग्रामे परावृत्तीः प्रदर्शयन् ॥११६०॥
विप्रलब्धैः सवर्णाश्वकवचावेक्षणान्निजैः । शूलायुधिभिरुद्दामैः शूलाघातैरहन्यत ॥११६१॥
भिक्षो राज्यं समर्थोऽयं दातुं हन्तुं ततश्च नः । भीत्या तैर्डामरैरेव स घातित इति श्रुतिः ॥११६२॥
यथैव तेन विश्वस्तः स्वामी द्रोहेण वञ्चितः । तथैव प्राप विश्वस्तः क्षिप्रमेव वधं मृधे ॥११६३॥
पृथ्वीहरस्तत्र तत्र योधयित्वाऽथ डामरान् । क्षिप्तिकारोधसा भूयोऽभ्येत्य संग्राममग्रहीत् ॥११६४॥
तत्राधिष्ठानयोधानां भिक्षुपक्षोपजीविनाम् । पौरुषं स्वपरोत्कर्षपरिभावि व्यभाव्यत ॥११६५॥
वह्निदानमहायोधसंहाराद्यैरुपद्रवैः । एकमेकमहस्तत्रानेहस्यासीद्भयावहम् ॥११६६॥
अतपत्तरणिस्तीव्रमभीक्ष्णं भूरकम्पत । ववुर्द्रुमाद्रीन्भञ्जन्तो महोत्पातप्रभञ्जनाः ॥११६७॥
पवनोत्थापितैः पांसुकूटैर्दध्रे मदोद्धतैः । व्योम्नि प्रोत्तम्भनस्तम्भभङ्गिर्निर्घातदारिते ॥११६८॥
ज्येष्ठस्य शुक्लैकादश्यां प्रवृत्तेऽथ महारणे । काष्ठीले डामरा वह्निमेकस्मिन्प्रददुर्गृहे ॥११६९॥
सोऽग्निर्वा मारुतोद्भूतः प्रसरन्वैद्युतोऽथ वा । जज्वालैकपदे कृत्स्नं नगरं निरवग्रहः ॥११७०॥
दृष्टस्तदानीमेतावद्गजव्यूह इवापतन् । माक्षिकस्वामिनो धूमो बृहत्सेतौ यदुत्थितः ॥११७१॥
अथेन्द्रदेवीभवनविहारं सहसाऽगमत् । ततो नगरमुज्ज्वालं क्षणात्सर्वमदृश्यत ॥११७२॥
न भूमिर्न दिशो न द्यौर्धूमध्वान्ते व्यभाव्यत । हुडुक्कामुखचर्माभो दृश्यादृश्योऽभवद्रविः ॥११७३॥
धूमान्धकारसंच्छन्नास्ततः प्रज्वलताग्निना । अपुनर्दर्शनायेव मुहुराविष्कृता गृहाः ॥११७४॥
वितस्ताद्व्यतोज्ज्वालवेश्माश्लिष्टतटद्वया । रक्ताक्तोभयधारेव कृतान्तस्यासिवल्लरी ॥११७५॥

भिक्षाचर आदि बैठे हुए थे ॥ ११५८ ॥ तदनन्तर युद्धके कुछ दिन बीतनेपर यशोराजको अपने लोगोंने ही पराया समझकर मार डाला ॥ ११५९ ॥ विजय नामका अश्वारोही कय्याके पुत्रके साथ राजा सुस्सलके युद्धमें विविध प्रकारके कौशल दिखा रहा था ॥ ११६० ॥ उसी समय कुछ ऐसे अपने ही पक्षके कवचधारी सैनिक अश्वारूढ होकर आये। उनके हाथमें बड़े-बड़े बल्लम थे। उन्हींसे प्रहार करके उन्होंने विजयको मार डाला ॥ ११६१ ॥ ऐसा सुना जाता है कि 'यह भिक्षुसे राज्य लेकर हमें न देकर मार भी सकता है' इस भयसे डामरोंने ही उसे मार डाला था ॥ ११६२ ॥ जैसे उसने अधम स्वामीपर विश्वास किया, वैसे ही वह उसके द्वारा ठगा जाकर रणभूमिमें बुरी तरह मारा गया ॥ ११६३ ॥ पृथ्वीहर यत्र तत्र डामरोंको लड़ाता हुआ क्षिप्तिकाके तटसे आकर फिर युद्ध करने लगा ॥ ११६४ ॥ वहाँ भिक्षुपक्षवालोंके प्रमुख योद्धाओंके समक्ष उस वीर पृथ्वीहरने अपना उत्कृष्ट युद्धकौशल दिखाया ॥ ११६५ ॥ उन दिनों आग लगाने तथा बड़े-बड़े वीरोंको धोखा देकर मार डालने आदि उपद्रवोंका आधिक्य होनेके कारण एक-एक दिन बड़ा भयानक होकर बीत रहा था ॥ ११६६ ॥ सूर्यकी तपन बहुत बढ़ गयी थी, बारम्बार भूकम्प आता था और वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेवाली आँधियाँ चलती थीं ॥ ११६७ ॥ वायुके झोंकेसे उड़नेवाली धूलिराशि एकत्र होकर ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी स्तम्भोंके रूपमें परिणत हो गयी थी ॥ ११६८ ॥ ज्येष्ठ शुक्ल एकादशीको जब महान् युद्ध आरम्भ हुआ, तब काष्ठीलमें डामरोंने एक घरमें आग लगा दी ॥ ११६९ ॥ वायुके झोंकेसे भड़की हुई वह आग बिजलीकी तरह एक साथ सारे नगरमें अबाधरूपसे फैल गयी ॥ ११७० ॥ वितस्ता नदीके बड़े पुलपर माक्षिक स्वामीके पास जो साधारण-सा धुआँ उठा था, वह धीरे-धीरे बढ़कर हाथियोंके झुण्ड जैसा दीखने लगा ॥ ११७१ ॥ तदनन्तर वह आग सहसा इन्द्रदेवीभवन विहार जा पहुँची और उसके बाद क्षण ही भरमें सारा नगर जलता हुआ दिखायी पड़ा ॥ ११७२ ॥ सब ओर धुआँ भर जानेके कारण भूमि, दिशायें और आकाश कुछ भी नहीं दिखायी देता था। हुडुक (वाद्यविशेष) के मुखपर मढ़े हुए चमड़ेकी तरह सूर्य कभी दिखायी देता था और कभी नहीं ॥ ११७३ ॥ धुएँके अन्धकारसे ढँके नगरके भवन धधकती हुई आगकी लपटोंके प्रकाशमें इसलिए बार-बार दिखायी देते थे कि अब उन्हें कभी भी दर्शन नहीं देना था ॥ ११७४ ॥ जिसके दोनों तटोंपर बसे हुए नगरके घर जल रहे थे और

ब्रह्माण्डोर्ध्वकवाटान्तसंस्पर्शोत्पतितोन्नतैः । ज्वालाकलापैः संवृद्धैर्हैमच्छत्रवनायितम् ॥११७६॥
उच्चावचैर्युतो ज्वालाशृङ्गैर्हैमाद्रिसंनिभः । वह्निर्धूमच्छलान्मूर्ध्नि वभाराम्बुधरावलिम् ॥११७७॥
आविर्भवन्तो ज्वालाभ्यो गृहाश्चक्रुर्मुहुर्मुहुः । अदग्धा एत इत्याशां विमुग्धगृहमेधिनाम् ॥११७८॥
ज्वलितैस्तापितजला वितस्ता पतितैर्गृहैः । और्वोष्मवेदनाक्लेशं विवेद सरितां प्रभोः ॥११७९॥
दीप्तपक्षैः खगैः साकं ज्वलिता वालपल्लवाः । उद्यानद्रुमषण्डानां व्योमोड्डयनमादधुः ॥११८०॥
सुधासिताः सुरगृहा ज्वालासंवलिता व्यधुः । क्षयसंध्याम्बुदाश्लिष्टहिमाद्रिशिखरभ्रमम् ॥११८१॥
मज्जनावासनौसेतुकदम्बैः स्रोपशङ्कया । अपास्तैर्नगरस्यान्तर्ययुर्नद्योऽपि शून्यताम् ॥११८२॥
किमन्यन्मठदेवौकोगृहाट्टादिविवर्जितम् । नगरं क्षणमात्रेण दग्धारण्यमजायत ॥११८३॥
लोष्टावशेषे नगरे धूमश्यामो निरास्पदः । उच्चैरेको बृहद्बुद्धो दृष्टो दग्धद्रुमोपमः ॥११८४॥
सैन्येषु ज्वलितावासत्राणाय चलितेष्वथ । शतमात्रेण योधानां युतो भूभृदजायत ॥११८५॥
पारं गन्तुं वितस्तायाश्छिन्नसेतुं तमक्षमम् । लब्धरन्ध्रा द्विषोऽनन्ता निहन्तुं पर्यवारयन् ॥११८६॥
पुरं दग्धं स्वमुत्सन्नं प्रजा नष्टाश्च चिन्तयन् । आसन्नं मरणं राजा निर्विण्णो बह्वमन्यत ॥११८७॥
प्रस्थातुमथ तं प्रत्यङ्मुखमाशङ्क्य विद्रुतम् । संज्ञितोऽन्यैः कमलियः क्व देवेत्यब्रवीद्वचः ॥११८८॥
संरम्भस्मितविद्योति चन्दनोल्लेखमाननम् । परिवर्त्य निरुद्धाश्वो धीरः स तमभाषत ॥११८९॥
तदद्य करवै भूमेः कृते हम्मीरसंगरे । चकार राजा भिक्षो यत्सोऽभिमानी पितामहः ॥११९०॥

उनकी परछाईं जलपर पड़ रही थी, इससे वह वितस्तानदी यमराजकी रक्तलिप्त दोधारी तलवार जैसी दिखायी देती थी ॥ ११७५ ॥ ब्रह्माण्डके ऊपरी कपाटका स्पर्श करके नीचे गिरती और ऊपर उठती हुई बहुतेरी आगकी लपटें सुनहले छत्रवनके समान दीख रही थीं ॥ ११७६ ॥ ऊँची-नीची लपटोंसे युक्त वह अग्नि धुएँके बहाने मस्तकपर बादलका समूह रक्खे हुए दीख रही थी ॥ ११७७ ॥ अग्निकी लपटोंके प्रकाशमें बार-बार दीखनेवाले भवन व्याकुल गृहस्थोंके हृदयमें यह भावना भर रहे थे कि 'हम अभी जले नहीं हैं' ॥ ११७८ ॥ जल-जलकर गिरनेवाले मकानोंसे वितस्ता नदीका जल गरम हो गया और वह बहकर जब समुद्रमें पहुँचा तो उससे वडवानल-को जैसे क्लेशका अनुभव हुआ ॥ ११७९ ॥ उद्यानोंके वृक्षोंपर बैठे हुए पक्षियोंके पंखके साथ-साथ उनके नूतन पल्लव भी जल गये। ऐसी स्थितिमें वे पक्षी उड़कर आकाशमें चले गये ॥ ११८० ॥ चूनेसे पुते होनेके कारण उज्ज्वलवर्ण देवमन्दिर जब लपटोंकी लपेटमें आ गये तो ऐसा लगने लगा कि मानो विश्वविनाशिनी सन्ध्या बादलोंके साथ मिलकर हिमालयके शिखरका रूप धारण कर रही है ॥ ११८१ ॥ जब जल जानेके भयसे स्नान तथा आवासके लिए निर्मित नौकाओंके पुल हटा लिये गये तो ऐसा लगा कि मानो विध्वस्त नगरके साथ-साथ वितस्ता नदी भी नष्ट हो गयी है ॥ ११८२ ॥ और अधिक कहाँतक कहा जाय, उस भीषण अग्निकाण्डमें कुछ मठ, देवालय, गृह एवं अट्टालिकाके सिवाय बाकी सारा नगर क्षणमात्रमे जले हुए वनके समान सूना हो गया ॥ ११८३ ॥ जब नगरमे कंकड़-पत्थरके सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह गया, तब धुएँके कारण श्यामवर्ण, आसन-विहीन, बहुत ऊँचे और जले हुए वृक्षकी भाँति बड़ी एक बुद्धकी प्रतिमा दिखायी पड़ी ॥ ११८४ ॥ तदनन्तर जलते हुए घरोंको बचानेके लिए जब सेना चली तो केवल सौ योद्धाओंको साथ लेकर राजा भी चला ॥ ११८५ ॥ जब नदी पार करनेके लिए वह तटपर पहुँचा तो देखा कि पुल टूट चुका है। ऐसी परिस्थितिमें उसे असमर्थ देख तथा अच्छा मौका पाकर बहुतेरे शत्रु उसका वध करनेके लिए आ गये और उसको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११८६ ॥ अपने जले और उजड़े हुए नगर तथा नष्ट प्रजाके विषयमे राजा सुस्सल कुछ सोच ही रहा था कि इतनेमे जब उसने मरणकी स्थिति उपस्थित देखी तो दुखी होते हुए भी उसने उसे बहुत अच्छा समझा ॥ ११८७ ॥ जब पीछे मुँह करके वह वहाँसे चलने या भागनेको उद्यत हो गया, उसी समय अन्य लोगोंके संकेतपर आये हुए कमलियने कहा—'महाराज कहाँ हैं ?' ॥ ११८८ ॥ घबराहट भरी मुस्कानसे देदीप्यमान तथा चन्दनसे चर्चित मुख घुमा तथा घोड़ा रोककर धैर्यवान् राजा सुस्सल कमलियसे

कुतस्त्योऽप्येष दायादो यद्भ्रातास्माकमस्मि वा । स हर्षदेवोऽपश्यन्नः कार्यशेषं पलायितः ॥११९१॥
को नाम मानिनां पङ्क्तौ प्रविष्टोऽन्ते निजां भुवम् ।
असिक्त्वा स्वाङ्गरक्ताक्तां व्याघ्रः कृत्तिमिवोज्झति ॥११९२॥
इत्युक्त्वोदश्वयन्वल्गामुत्क्षिप्ताग्रमुखं हयम् । संस्प्रष्टुमिच्छुः पाणिभ्यां कृपाणमुदनामयत् ॥११९३॥
ततो निगृह्य वल्गायां वाजिनं लवराजजः । ऊचे भृत्येषु सत्स्वग्रे प्रवेशार्हो न भूभुजः ॥११९४॥
प्रहारविक्लवस्तिष्ठन्गृहादेकोऽभ्युपाययौ । संकटे तत्र भूभर्तुः पृथ्वीपालोऽन्तिकं परम् ॥११९५॥
कौलपुत्र्यं स्तुवंस्तस्य वात्सल्यादेष भूपतिः । स्वस्यात्तनिष्क्रयां मेने सेवाविष्कृत्युपक्रियाम् ॥११९६॥
अथ स्थितस्त्रिभिर्व्यूहै रहितास्तेऽकिरञ्शरान् । हन्तुं वामेन ते योधाः सर्वे वाहनदुर्मदाः ॥११९७॥
स प्रेरयंश्च तुरगं दैवात्तस्य च तादृशः । सहस्राण्यपि भूरीणि व्यघोयन्त विरोधिनाम् ॥११९८॥
अल्पसैन्यो द्विपत्खड्गमण्डलप्रतिबिम्बितः । नृपः साहाय्यकायातविश्वरूप इवाबभौ ॥११९९॥
कलविङ्कानिव श्येनः कुरङ्गानिव केसरी । एको व्यद्रावयद्भूरीनरीन्सुस्सलभूपतिः ॥१२००॥
निपत्य पत्तीन्रुन्धानान्खुराग्राण्यपि वाजिनाम् । प्राहरंस्ते हयारोहा व्यूहव्याहतरंहसः ॥१२०१॥
बिम्बितज्वलनज्वालाः सर्व एव महाभटाः । हन्तव्याश्च हताश्चासन्नस्रस्रोतोरुणा इव ॥१२०२॥
स द्विषां कदनं कृत्वा दिनस्यान्ते न्यवर्तत । बाष्पायमाणोस्तकाशं हव्याशेनोज्झितं पुरम् ॥१२०३॥
तादृशेऽप्यजिते तस्मिञ्जयाशागौरवं द्विपः । स चौज्झीद्रमणीयस्य विनाशाज्जीवितादरम् ॥१२०४॥
जाग्रन्स्वपंश्चलंस्तिष्ठन्स्नन्नश्नन्नथ सोऽरिभिः । निर्गच्छन्नित्यमाहूतो न कैरुद्धाप्यमीक्षितः ॥१२०५॥

बोला—॥ ११८९ ॥ 'इस भूमिके लिए आज मैं वह करना चाहता हूँ, जो मेरे स्वाभिमानी पिता महाराज भिज्जने किया था ॥ ११९० ॥ यह भिक्षाचर न जाने कहाँका मेरा भाई और राज्यका अधिकारी है। महाराज हर्षदेव हमें देखे बिना हमारे लिए बहुतेरा काम छोड़कर भाग गये ॥ ११९१ ॥ स्वाभिमानियोंकी पंक्तिमें उस व्यक्तिको प्रविष्ट होनेका क्या अधिकार है, जो अपने शरीरके रुधिरसे धरतीको रंगे बिना वैसे ही धरतीको छोड़ देता है, जैसे कोई व्याघ्र बिना शत्रुका सामना किये ही अपने शरीरकी खाल उतरवा दे' ॥ ११९२ ॥ ऐसा कहकर राजाने अपने घोड़ेकी लगाम ढीली की और मुँह आगे करके तलवार म्यानसे निकालकर हाथमें ले ली ॥ ११९३ ॥ उसी समय लवराजके पुत्रने आगे बढकर घोड़ेकी लगाम थाम्ह ली और उन भृत्योंके समक्ष ही उसने कहा—'महाराज यहाँसे आगे नहीं जा सकते' ॥११९४॥ उसी समय प्रहारसे विकल पृथ्वीपाल अपने घरसे निकलकर अकेला ही उस संकटग्रस्त राजाके पास आया ॥ ११९५ ॥ वत्सलताके कारण राजाने उसकी कुलीनताकी सराहना करके उसकी सेवा और उसके उपकारको अपने जीवनका बहुमूल्य निष्क्रय समझा ॥ ११९६ ॥ उसी समय तीन व्यूहोंमें विभक्त अश्वारूढ शत्रुयोद्धा राजाको मारनेके लिए उसकी बायीं ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११९७ ॥ किन्तु दैवात् राजाने कुछ ऐसे ढंगसे अपना घोड़ा दौड़ाया कि शत्रुसेनाके हजारों सैनिक चकपका गये ॥ ११९८ ॥ उस समय उसके साथ बहुत ही थोड़ी सेना थी और शत्रुओंकी नंगी तलवारोंमें उसका प्रतिबिम्ब दीख रहा था। उस अवसरपर वह राजा सहायताके लिए आये हुए विश्वरूपके समान सुन्दर लग रहा था ॥ ११९९ ॥ तत्पश्चात् जैसे गौरैयाको बाज और मृगको सिंह भगाये, उसी प्रकार उस अकेले राजा सुस्सलने बहुसंख्यक शत्रुओंको खदेड़ दिया ॥ १२०० ॥ राजाके उस घोड़े और अश्वारोही वीरोंने ही शत्रुके पैदल सैनिकों तथा अश्वोंकी गति अवरुद्ध कर दी और उनका वेग समाप्त करके भीषण प्रहार किया ॥ १२०१ ॥ आगकी लपटोंके प्रकाशमें उन मारे जानेवाले तथा मरे हुए योद्धाओंका प्रतिबिम्ब रक्तकी नदीके समान लाल दिखायी देता था ॥ १२०२ ॥ इस प्रकार दिन भर शत्रुओंका संहार करके शामको आँखोंमें आँसू भरे राजा सुस्सल अपने उस नगरकी ओर लौटा, जिसको अग्निने भस्म करके छोड़ दिया था ॥ १२०३ ॥ इस तरह उस राजाने स्वयं अजेय रहकर शत्रुकी विजयकी आशापर पानी फेर दिया था। तथापि उस रमणीक नगरके विनाशसे उसने अपने जीवनके प्रति आदरका भाव त्याग दिया ॥ १२०४ ॥ सोते, जागते, चलते, रुकते,

वह्निनिर्दग्धसर्वान्नसंभारे मण्डलेऽखिले । दुःसहः सहसैवाथ घोरो दुर्भिक्ष आययौ ॥१२०६॥
दीर्घविप्लवसंक्षीणसंचया डामरैर्वहिः । उत्तब्धोत्पत्तयो रुद्धसंचारा दग्धमन्दिराः ॥१२०७॥
अनाप्नुवन्तो विधुरे राज्ञि राजकुलाद्धनम् । दुर्भिक्षे तत्र सामन्ता अपि क्षिप्रं विपेदिरे ॥१२०८॥
वह्निनिष्ठ्यूतशेषाणि वेश्मान्यन्नाभिलाषिभिः । बुभुक्षार्तैर्जनैर्दग्धो ददाहाग्निर्दिने दिने ॥१२०९॥
सरितां सेतवो वारिसंसेकोच्छूनविग्रहैः । दुर्गन्धाः कुणपैः रुद्धघ्राणैस्तीर्णास्तदा जनैः ॥१२१०॥
निर्मांसनरकङ्कालकपालशकलाकुला । उवाह सर्वतः श्वेता क्षितिः कापालिकव्रतम् ॥१२११॥
कृच्छ्रसंचारिणोर्कांशुश्यामक्षामोच्चविग्रहाः । व्यभाव्यन्त बुभुक्षार्ता दग्धस्थाणुनिभा जनाः ॥१२१२॥
अथ प्रबन्धयुद्धेन दिनैः क्वापीषुणा क्षतः । पृथ्वीहरो मृत इति श्रुतिर्मिथ्यैव पप्रथे ॥१२१३॥
गाढप्रहारविवशे तस्मिन्प्रच्छादिते जनैः । तां वार्तां श्रुतवान्राजा ननन्दायुद्ध चोद्धतम् ॥१२१४॥
धीरेव पुंश्चली व्याजौत्सुक्यसंदर्शनेन तम् । जयश्रीर्लोभयन्त्यासीन्न तु भेजे समुत्सुकम् ॥१२१५॥

एकान्तवामहृदयो विधिरानुकूल्यं मिथ्या प्रदर्श्य विशिनष्टयनुबन्धि दुःखम् ।
अन्धीकरोति भृशमभ्रमगं ज्वलन्तं भास्वन्महौषधिभिदे प्रकटय्य वज्रम् ॥१२१६॥

दीर्घदुःखानुभूत्यन्ते यदीयागमनोत्सवम् । तपःफलमिव क्ष्माभृत्काङ्क्षन्नासीन्मनोरथैः ॥१२१७॥
वात्सल्येनान्वितं प्रेम गौरवेण प्रियं वचः । औचित्येन च दाक्षिण्यं सापत्यमिव या दधे ॥१२१८॥
तस्योपकरणीभूतविभूतिर्गृहिणी प्रिया । तस्मिन्काले महादेवी विपेदे मेघमञ्जरी ॥ तिलकम् ॥१२१९॥
विनोदशून्यनिर्विण्णलोकयात्रं जगद्विदन् । प्राणै राज्येन वा कृत्यं न स किंचिन्निरैक्षत ॥१२२०॥

स्नान-भोजन करते तथा घरसे बाहरसे निकलते समय किन शत्रुओंने उसे रोते नहीं देखा ? ॥ १२०५ ॥ इस प्रकार समस्त कश्मीरमण्डलका अन्नभण्डार जल जानेसे सहसा दुःसह एवं भयानक दुर्भिक्ष आ पड़ा ॥ १२०६ ॥ डामरों द्वारा किये गये उस महाविप्लवके कारण समस्त संचय नष्ट हो जानेसे उत्पादनके सभी साधन समाप्त हो गये, आवागमन अवरुद्ध हो गया और घर जल गये ॥ १२०७ ॥ इस तरह राजाके कंगाल हो जानेपर उसके समस्त सामन्त भी दुःखमे पड़ गये ॥ १२०८ ॥ उस प्रलयंकर अग्निकाण्डसे अवशिष्ट घरोंको भूखसे तड़पते हुए नागरिक अपने हाथों आग लगाकर फूँकने लगे ॥ १२०९ ॥ नदियोके टूटे पुलोंपर पानीमें सड़नेसे फूले हुए मुर्दोंका अम्बार लगा हुआ था। इसलिए नदी पार करनेवाले लोग दुर्गन्धके कारण नाक दबाकर जाते थे ॥ १२१० ॥ मांसहीन नरकंकाल एवं खोपड़ियोंके टुकड़ोंसे भरी हुई वहाँकी सफेद धरती जैसे कापालिक व्रत धारण किये हुए थी ॥ १२११ ॥ कठिनाईसे चलने-फिरनेवाले, निरन्तर सूर्यकी किरणें पड़ती रहनेके कारण श्याम एवं दुर्बल शरीर तथा लम्बे डील-डौलवाले वहाँके मनुष्य उस समय जले हुए वृक्षके ठूँठ सदृश दिखायी देते थे ॥ १२१२ ॥ कुछ दिनों बाद यह झूठी अफवाह फैली कि किसी साधारण लड़ाईमें बाणसे घायल होकर पृथ्वीहर मर गया ॥ १२१३ ॥ भीषण प्रहारसे विवश होकर वह पड़ा है और जनता चारों ओरसे घेरे हुए है। राजा सुस्सलने भी यह समाचार सुना तो उसे कुछ आनन्द मिला ॥ १२१४ ॥ उत्सुकताके साथ उसने भी जाकर देखा और धैर्यधारिणी कुलटा स्त्रीके समान विजयलक्ष्मीने तनिक देरके लिए उसे लुभा लिया, किन्तु इस बातपर उसकी आस्था नहीं हुई ॥ १२१५ ॥ सर्वथा कुटिलहृदय विधाता मनुष्यके समक्ष झूठी अनुकूलता (कृपा) प्रदर्शित करके दुःख और भी बढ़ा देता है। जैसे बादलोंसे ढँके पर्वतपर महौषधिके सदृश चमकनेवाली बिजली मनुष्यको अन्धा बना देती है ॥ १२१६ ॥ वह महान् दुःख भोगनेके बाद राजा सुस्सल तपस्याके फलकी प्राप्तिके समान विविध कामनाये करता हुआ भले दिन आनेकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ १२१७ ॥ वात्सल्य भरा प्रेम, गौरवपूर्ण प्रियवचन और औचित्ययुक्त उदारताको जो सन्ततिके समान पाल रही थी, राजाके समस्त उपकरणोंकी विभूतिस्वरूपा उसकी प्रिय गृहिणी एवं महादेवी मेघमंजरी भी उसी समय गुजर गयी ॥ १२१८ ॥ १२१९ ॥ जिससे राजा सुस्सलके लिए सारा संसार विनोद-

सा भर्तुर्व्यसनोदन्तैः कृशा काश्मीरसंमुखी । औत्सुक्याद्दत्तयात्रासीच्छ्रान्ता फुल्लपुरान्तिके ॥१२२१॥
पूर्वं तद्दर्शनाशाया दुर्वार्तायास्ततोऽतिथिः । भवन्नतोऽधिकं राजा दुःखावेगेन पस्पृशे ॥१२२२॥
राज्ञीमज्ञातपारुष्यतयाद्रूपितभक्तयः । अनुससुश्चतस्रस्ताः परिवारवरस्त्रियः ॥१२२३॥
अप्रत्यक्षे क्षयेऽप्यस्या भक्त्युद्रिक्तत्वमत्यजन् । तेजो नामाभवत्सूदो वन्द्यो भृत्यान्तरेष्वधिकम् ॥१२२४॥
स ह्यसंनिहितोन्यस्मिन्नह्न्यायातो निजं शिरः । तच्चितोपांतरूढेन भङ्क्त्वा ग्राव्णाविशन्नदीम् ॥१२२५॥
आहवाह्वानसंरम्भैः शोकविस्मृतिकारिणः । राज्ञो द्विषः कार्यवशादुपकारित्वमाययुः ॥१२२६॥
स राज्यमथ निक्षेप्तुकामो निर्विण्णमानसः । व्युत्क्रान्तशैशवं पुत्रमानिन्ये लोहराचलात् ॥१२२७॥
मण्डलेश्वरतां यज्ञेर्भ्रातृव्यं भागिकाभिधम् । नीत्वा च गुप्तिमकरोल्लोहरे कोशदेशयोः ॥१२२८॥
वराहमूलं संप्राप्तमग्रायातः प्रियं सुतम् । आश्लिष्य विषयो राजा बभूवानन्दशोकयोः ॥१२२९॥
राजसूनुस्त्रिभिर्वर्षैः प्रत्यायातः स्वमण्डलम् । स पश्यन्पितरं चान्तरसुस्थितमतप्यत ॥१२३०॥
खेदनम्राननो लोष्टावशेषं सोऽविशत्पुरम् । अम्बुलम्बाम्बुदो दावनिर्दग्धमिव काननम् ॥१२३१॥
राज्येऽभ्यषिञ्चदाषाढस्याद्येऽह्नि जनकोऽथ तम् । अवादीद्राज्यतन्त्रं च कृत्स्नमुक्त्वाश्रुगद्गदः ॥१२३२॥
श्रान्ताः पितृपितृव्यास्ते न यां वोढुमशक्नुवन् । धुरमुद्वह तां वीर त्वयि भारोऽयमर्पितः ॥१२३३॥
साम्राज्यप्रक्रियामात्रपात्रं पुत्रं नृपो व्यधात् । न त्वार्पिपदधीकारं तस्मिन्दैवविमोहितः ॥१२३४॥
अभिषेकविधावेव राजसूनोः शमं ययुः । पुरोपरोधावग्राहव्याधिचौराद्युपद्रवाः ॥१२३५॥

शून्य और लोकव्यवहार दुःखमय दिखायी देने लगा। वह यही नहीं समझ पा रहा था कि अब प्राणों अथवा राज्यसे उसे क्या मतलब रह गया है ॥ १२२० ॥ बेचारी मेघमंजरी राजाके दुःखोंको सुन-सुनकर बहुत दुर्बल हो गयी थी। यहाँका वृत्तान्त सुनकर वह राजाके दर्शनार्थ बड़े चावसे कश्मीरकी ओर चली थी, किन्तु फुल्लपुर तक पहुँचकर वह बहुत थक गयी और वहाँ ही उसका प्राणान्त हो गया ॥ १२२१ ॥ राजाको पहले तो उसकी दर्शनाशासे कुछ सुख मिला था, किन्तु बादमें मरणका हाल सुनकर अपार दुःख हुआ ॥ १२२२ ॥ वह बड़े मृदुस्वभावकी स्त्री थी। अतएव सब लोगोंकी उसपर बड़ी श्रद्धा थी। इस महाविपत्तिमें राजाके अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ उसके साथ चली आयीं थीं ॥ १२२३ ॥ यद्यपि उसके समक्ष महारानीका प्राणान्त नहीं हुआ था, फिर भी तेज नामका एक रसोइया राजाके सब सेवकोंमें सर्वाधिक वन्दनीय माना गया ॥ १२२४ ॥ क्योंकि दूसरे दिन जब चितापर महारानीका शव जल रहा था, तब एकाएक तेज वहाँ जा पहुँचा और पत्थरोंसे अपना मस्तक चूर्ण करके नदीमें कूद गया ॥ १२२५ ॥ युद्धके लिए सदा सन्नद्ध राजाके शत्रु भी उसका शोक दूर करनेके लिए कार्यवश उसके उपकारी बन गये ॥ १२२६ ॥ उसी समय अत्यन्त दुखी होनेके कारण राजा सुस्सलने राज्यका भार उतारनेकी इच्छासे शैशवावस्थाको पार किये हुए अपने पुत्रको लोहराचलसे राजधानीमें बुलवाया ॥ १२२७ ॥ तदनन्तर यज्ञके भतीजे भागिकको मण्डलेश्वर बनाकर लोहरमें अपने देश और कोशकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया ॥ १२२८ ॥ उसका पुत्र लोहर पर्वतसे चलकर वराहमूल पहुँचा, तब राजाने वहाँ ही पहुँचकर अपने प्रिय पुत्रको छातीसे लगा लिया। उस समय राजा सुस्सल आनन्द तथा शोक एक साथ दोनोंके वशीभूत हो गया ॥ १२२९ ॥ तीन वर्ष बाद राजकुमार अपने मंडलमें लौटा था। वह पिताको दुखी देखकर मन ही मन बहुत सन्तप्त हुआ ॥ १२३० ॥ खेदसे गर्दन झुकाकर युवराज लोष्टमात्र अवशिष्ट नगरमें प्रविष्ट हुआ। जैसे कोई बादल ऐसे जंगलपर बरसनेके लिए उद्यत हो कि जो दवाग्निसे जलकर भस्म हो चुका हो ॥ १२३१ ॥ तदनन्तर राजा सुस्सलने आषाढ़ मासकी प्रतिपदा तिथिको युवराजका अभिषेक करके अश्रुगद्गद कण्ठसे उसे राज्यतन्त्र सम्बन्धी सब बात बतायी ॥ १२३२ ॥ उसने कहा—'वत्स ! तुम्हारे पिता और पितृव्य (चाचा) जिस राज्यका भार नहीं सम्हाल सके, हे वीर ! अब तुम मेरे द्वारा अर्पित वह भार सम्हालो' ॥ १२३३ ॥ उस समय दैवसे मोहित राजा सुस्सलने पुत्रको केवल लौकिक प्रथाका निर्वाह करते हुए राजा बना दिया, राजाका अधिकार उसे नहीं सौंपा ॥ १२३४ ॥ इस प्रकार राजपुत्रका अभिषेक

संपन्नसस्या च तथा देवी संववृते मही । दुर्भिक्षं श्रावणे मासि यथावत्प्रशमं ययौ ॥१२३६॥
अत्रान्तरे सिंहदेवो रणे कुर्वन्नरिक्षयम् । कर्णेजपैर्जनयितुर्द्रोग्घाऽयमिति सूचितः ॥१२३७॥
कोपादविमृशंस्तत्त्वं स वद्धुं तं व्यसर्जयत् । कल्यात्मजं राजसूनुस्तत्तु प्रागेव बुद्धवान् ॥१२३८॥
कोपस्मितोत्कटस्याग्रे स तस्याप्रतिभोऽभवत् । निनाय रक्षामात्रेण पार्थिवाज्ञाममोघताम् ॥१२३९॥
अभुक्तवान्मनस्तापात्प्रत्ययोत्पत्तये पितुः । साकं तेन सुतोऽन्येद्युर्गन्तुं प्रावर्ततान्तिकम् ॥१२४०॥
आक्षेप्तुं शङ्कितोऽशक्य इति मत्वा स मन्त्रिभिः । मार्गान्न्यवर्तयत तं पिता मिथ्या प्रसादयन् ॥१२४१॥
अन्तस्तु निश्चिकायेति प्रविश्यातर्कितागमः । वद्ध्वैनं स्थापयिष्यामि कारायामिति सोऽनिशम् ॥१२४२॥
धिग्राज्यं यत्कृते पुत्राः पितरश्चेतरेतरम् । शङ्कमाना न कुत्रापि सुखं रात्रिषु शेरते ॥१२४३॥
पुत्रपत्नीसुहृद्भृत्या येषां शङ्कानिकेतनम् । विस्रम्भभूर्भूपतीनां कस्तेषामिति वेत्ति कः ॥१२४४॥
साह्याभिधानप्रख्यातकुग्रामोपान्तवासिनः । खलपालस्य तनयः स्थानकाख्यस्य कस्यचित् ॥१२४५॥
शैशवे पाशुपाल्येन वर्धितो डामरोद्भवैः । गृहीतशस्त्रस्तान्नित्यं क्रमाट्टिक्कस्य लब्धवान् ॥१२४६॥
प्रथमाब्दात्प्रभृत्यात्तदूत्यो भूभर्तुराप्तताम् । प्रययावुत्पलो नाम वैरिविच्छेदमिच्छता ॥१२४७॥
स हि भिक्षाचरं टिक्कमथ व्यापादयेत्यमुम् । जगादाङ्गीकृतैश्वर्यदानटिक्कोपवेशने ॥१२४८॥
कृतप्रतिश्रवं तस्मिन्नर्थे तं च महर्द्धिभिः । दानैरुपाचरद्गञ्जपतिनाम्नाऽप्ययोजयत् ॥१२४९॥
भोगलोभप्रभुद्रोहचिन्तादोलायमानधीः । स कार्यं परिहार्यं वा न कृत्यं निश्चिकाय तत् ॥१२५०॥
प्रासोष्टापत्यमत्रान्तस्तद्वधूः कार्यतो नृपः । तत्तच्च प्राहिणोत्तस्यै पितेव प्रसवोचितम् ॥१२५१॥

होते ही नगरके उपरोधरूपी सूखे वादल और चोरों तथा व्याधिके सव उपद्रव शान्त हो गये ॥ १२३५ ॥ धरती सस्यसम्पन्न हो गयी और श्रावण मासमें राज्यका दुर्भिक्ष भी दूर हो गया ॥ १२३६ ॥ इसी वीच सिंहदेव युद्ध ठानकर अपने शत्रुओंका नाश करने लगा । तभी गुप्तचरोंने आकर राजाको वताया कि 'सिंहदेव अपने पिताका द्रोही है' ॥ १२३७ ॥ यह सुनते ही क्रोधवश तत्त्वकी वात न समझकर राजाने उसे कैदकर लेनेका आदेश दे दिया और कल्यापुत्र सिंहदेवको इस आदेशका पता लग गया ॥ १२३८ ॥ उत्कट कोप तथा मुस्कान युक्त राजपुत्र (विजय) के लिए यह कार्य उसके अनुरूप नहीं था । जिसका परिणाम यह हुआ कि सिंहदेवपर नजर रखनेमात्रका प्रवन्ध करके राजाकी आज्ञाका पालन कर दिया गया ॥ १२३९ ॥ इस मनस्तापसे युवराजने भोजन नहीं किया । दूसरे दिन वह पिताके हृदयमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिए उसके पास जाने लगा ॥ १२४० ॥ किन्तु उसका पिता सूक्ष्म दृष्टिसे पुत्रकी गतिविधि देख रहा था । अतएव मंत्रियों द्वारा मीठे सन्देशसे प्रसन्न करते हुए उसने रास्तेसे लौटवा दिया ॥ १२४१ ॥ किन्तु सहसा युवराजके आगमनकी वात उसके मस्तिष्कमें चक्कर काटती रही, जिससे राजा सुस्सलने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि इसे कैद करके जेलमें डाल दिया जाय ॥ १२४२ ॥ ऐसे राज्यको धिक्कार है कि जिसके कारण पिता और पुत्र परस्पर एक दूसरेपर सशंक होकर रात्रिको सुखसे सो भी नहीं सकते ॥ १२४३ ॥ पुत्र, पत्नी, सगे-सम्वन्धी और भृत्यतक जिसके शंकास्पद रहते हों, तव उसका विश्वास किसपर होगा—यह कौन जान सकता है ? ॥ १२४४ ॥ किसी स्थानक नामके खलिहानके रक्षक साह्य नामक एक कुख्यात ग्रामनिवासीका उत्पल नामक पुत्र था ॥१२४५॥ वचपनमें डामरोंने उसे चरवाहा वनाकर पाला । वादमें उसने शस्त्रशिक्षा ग्रहण की और टिक्का साथी वना ॥ १२४६ ॥ पहले ही वर्ष उत्पल टिक्का सन्देश लेकर राजा सुस्सलके पास गया और उसका विश्वस्त दूत वन गया । तदनन्तर उसने शत्रुओंका उच्छेद करनेकी इच्छा की ॥ १२४७ ॥ राजा सुस्सलने ऐश्वर्यदानका प्रलोभन देकर भिक्षाचर तथा टिक्का वध करनेके लिए उत्पलसे कहा ॥ १२४८ ॥ जव उसने ऐसा करना स्वीकार कर लिया तो राजाने उसे सम्मानस्वरूप वहुमूल्य उपहार देकर कोपाध्यक्षके पदपर नियुक्त कर दिया ॥ १२४९ ॥ भोगके लोभ और प्रभुद्रोह इन दो वातोंसे उत्पलका चित्त चंचल हो उठा और वह यह निश्चय नहीं कर सका कि

सा तस्यात्युपचारस्य कारणं परिशङ्किता । पतिं पप्रच्छ निर्बन्धात्सोपि तस्यै व्यवर्णयत् ॥१२५२॥
न कार्यः स्वामिनो द्रोहः कृते वास्मिन्स सुस्सलः । त्वामेव शनकैर्हन्याद्द्रोग्धायमिति चिन्तयन् ॥१२५३॥
वरं स एव विश्वास्य व्यापाद्यस्तत्र चेद्वधः । भवेत्ते स्वामिपुत्रादिकुटुम्बं स्याद्विभूतिभाक् ॥१२५४॥
भार्ययेति प्रेर्यमाणः स निश्चयविपर्यये । टिक्कं विदितवृत्तान्तं कृत्वा वद्धोद्यमः कृतः ॥१२५५॥
गतागतानि कुर्वाणे द्रुघ्रुक्षावथ पार्थिवः । स पुत्र इव विश्वासं ययौ दैवविमोहितः ॥१२५६॥
विपर्यस्ता मतिः पुत्रे विश्वासो वैरिसंश्रिते । जायते क्षीणभाग्यानां को नाम न विपर्ययः ॥१२५७॥
वैधेयैः स्वार्थलोभान्धैर्यद्वानर्थसमागमः । सरघोपद्रवः क्षौद्रलुब्धैरिव न चिन्त्यते ॥१२५८॥
तं पीडितं प्रज्जिना च राज्ञा चावनतिं ततः । उत्पलोऽकारयट्टिक्कं नीविं चादापयत्सुतम् ॥१२५९॥
राजाऽथ देवसरसं जितं संत्यज्य कार्तिके । वाट्टकाख्यमगाद्ग्रामं खेरीविषयवर्तिनम् ॥१२६०॥
स कल्याणपुराऽभ्यर्णे रणैस्तैस्तैर्विलक्षताम् । भिक्षुकोष्ठेश्वरमुखानपि निन्ये महाभटान् ॥१२६१॥
मध्याद्भिक्षाचरादीनां सुज्जिः काककुलोद्भवम् । जीवग्राहं महावीरं युधि जग्राह शोभकम् ॥१२६२॥
भवकीयस्य कृत्वादौ विजयस्य पराभवम् । भूभुजा तद्गृहा दग्धाः कल्याणपुरवर्तिनः ॥१२६३॥
दग्धे वडोसके भिक्षाचरो नष्टाश्रयो व्यधात् । त्यक्त्वा तां क्ष्मां शमालायां ग्रामे काकरुहे स्थितिम् ॥१२६४॥
अनुजो भवकीयस्य विजयस्य भयान्नृपम् । संश्रितस्तेन तूर्णेण वद्ध्वा कारागृहेऽर्पितः ॥१२६५॥
भूरिसैन्यानुगं शूरपुरे विन्यस्य रिल्हणम् । आस्कन्दाशङ्किनीं राजा चक्रे राजपुरीमपि ॥१२६६॥

क्या करे और क्या न करे ॥ १२५० ॥ उसी वीच उत्पलकी पत्नीने वच्चेको जन्म दिया। उस समय राजाने अपना काम वनाने लिए पिताके सदृश उसके पास प्रसवकालके लिए उपयोगी विभिन्न वस्तुये भेजीं ॥ १२५१ ॥ राजाका अत्यधिक उपचार (खातिरदारी) देखकर उत्पलकी पत्नीको सन्देह हुआ और उसने अपने पतिसे इसका कारण पूछा। विशेष आग्रह करनेपर उत्पलने सव वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १२५२ ॥ तव पत्नीने कहा—'आप अपने स्वामी टिक्कके साथ द्रोह न करिए। यदि करिएगा तो राजा सुस्सल आपको भी विद्रोही समझकर एक दिन मरवा डालेगा ॥ १२५३ ॥ वल्कि अच्छा तो यह हो कि अपनेपर विश्वास उत्पन्न कराके सुस्सलका ही वध कर दीजिए। ऐसा करनेसे आपके स्वामी टिक्क तथा उसके पुत्र आदि कुटुम्वी धनसम्पन्न हो जायंगे, जिससे आपका भी भला होगा' ॥ १२५४ ॥ इस प्रकार भार्याके समझानेपर उत्पलका निश्चय वदल गया और टिक्कको सव वृत्तान्त वताकर वह राजा सुस्सलके वधका उपाय करने लगा ॥ १२५५ ॥ तदर्थ राजाके यहाँ उसका आवागमन नित्य होता रहा और दैवसे विमोहित राजा उस द्रोहीको पुत्रके समान मानने लगा ॥ १२५६ ॥ अव राजा अपने पुत्रपर अविश्वास और वैरीके साथीपर विश्वास करने लगा। जिनका भाग्य क्षीण हो जाता है, उनसे कौनसे उल्टे काम नहीं होने लगते ॥ १२५७ ॥ किंतु स्वार्थलोभान्ध मूर्ख उसी प्रकार अनर्थोंके आ पड़नेकी चिन्ता नहीं करते, जैसे मधुका लोभी वहेलिया मधुमक्खियोंके उपद्रवकी परवाह नहीं करता ॥ १२५८ ॥ तदनन्तर मंत्री प्रज्जिसे पीडित और राजाके द्वारा धिक्कृत युवराज विजयको उत्पलने टिक्कसे मिलाकर टिक्कसे उसे भरपूर धन दिलाया ॥ १२५९ ॥ कार्तिक मासमें उस जीते हुए देवसरसको त्यागकर राजा सुस्सल खेरी प्रदेशमें स्थित वाट्टका ग्रामको चला गया ॥ १२६० ॥ कल्याणपुरके पास उस राजाने ऐसे-ऐसे कई युद्ध किये कि जिन्हें देखकर भिक्षाचर तथा मल्लकोष्ठ आदि वड़े-वड़े योद्धा भी चकित हो गये थे ॥ १२६१ ॥ युद्धके समय भिक्षाचर आदिके मध्यसे सुज्जिने काकवंशमें उत्पन्न महावीर शोभकको जीवित ही पकड़ लिया ॥ १२६२ ॥ राजा सुस्सलने भवकके पुत्र विजयको पराजित करके कल्याणपुरमें विद्यमान उसके सव महल जलवा दिये ॥ १२६३ ॥ इसी प्रकार वडोसकके भी सव घर जलवा देनेपर भिक्षाचर निराश्रय हो गया और वह स्थान त्यागकर शमाला प्रदेशके काकरुह ग्रामको चला गया और वहीं रहने लगा ॥ १२६४ ॥ भवकीयका लघु भ्राता विजयके डरसे सुस्सलकी शरणमें गया था, किन्तु क्रुद्ध राजाने उसे कैद कराके जेलमें डाल दिया ॥ १२६५ ॥ तदनन्तर प्रचुर सेनाके साथ रिल्हणको उसने शूरपुरमें नियुक्त कर दिया और भिक्षाचर आदिके आक्रमणकी आशंकासे राजपुरी-

इत्थमुद्दण्डया वृत्त्या खण्डितोच्चण्डडामरः । स्तोकावशेषं सोऽपश्यत्कर्तव्यमरिनिर्जयम् ॥१२६७॥
भिक्षाचरो लवन्यांश्च शक्तिक्षयमुपागताः । विदेशगमनं भीता रिपौ बलिनि मेनिरे ॥१२६८॥
किमप्यभाग्यावतारैर्भिक्षुपक्षजुषां यतः । जीवतामप्यनुल्लासान्निर्जीवत्वमिवाययौ ॥१२६९॥
स सोमपालकौटिल्यं स्मरन्कुर्यां हिमात्यये । श्मशानोर्वीं राजपुरीमिति ध्यायन्न्यवर्तत ॥१२७०॥
शान्तप्रायस्वदेशोर्वीविप्लवस्य महीपतेः । तस्यार्णवान्तक्रमणप्रतीतिः समभाव्यत ॥१२७१॥
शतैकीयो योऽवशिष्टो विप्लवक्षपिते जने । वर्षं वर्षं स तद्राज्ये युगदीर्घं त्वमन्यत ॥१२७२॥
असुखत्रासदारिद्र्यप्रियनाशादिवैशसैः । स राज्यकालः सर्वस्य परितापावहो ह्यभूत् ॥१२७३॥
नरः पौरुषनैष्ठुर्यशठत्वेन करोति किम् । विधातृवृत्तिवैचित्र्यपराधीनासु सिद्धिषु ॥१२७४॥
पुरोभूतं कंचित्परिहरति राशिं तम इव व्यतीते कस्मिंश्चिद्धरिरिव विवृत्यास्यति दृशम् ।
स्वमुल्लङ्घ्यासन्नं क्वचन नृपतिं दर्दुर इव क्रमेत्स्वैरं दैवः स्फुटमिति गतीनामनियमः ॥१२७५॥
विश्वासनिहतान्निन्दन्नुच्चलादीन्पुराऽवसत् । नित्यं विकोशशस्त्रो यः पुराविद्भ्यो निशम्य च ॥१२७६॥
विदूरथादिवृत्तान्तं नादात्केलिक्षणे ब्रुवन् । स्त्रीषु संभुज्यमानासु विश्वासविशदां दृशम् ॥१२७७॥
स बन्धाविव निर्बन्धाद्विशश्वास यदुत्पले । तत्र संभाव्यते केन दैवादन्यो विमोहकृत् ॥१२७८॥
टिक्कादयो भूमिपतेः सुज्जेर्वान्यतरे हते । त्वां तुल्यकार्यकर्तारं विद्म इत्यूचुरुत्पलम् ॥१२७९॥
सुज्जिर्न व्यवसीत्तस्मिन्स जिघांसुस्तु भूभुजम् । तत्र तत्राभवत्सज्जः प्रसङ्गं नासदत्पुनः ॥१२८०॥

को भी मुक्त कर दिया ॥ १२६६ ॥ इस प्रकारके उद्दण्ड व्यवहारसे राजा सुस्सलने प्रचण्ड डामरोंको ध्वस्त करके उसने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिए बहुत थोड़ा काम अवशिष्ट देखा ॥ १२६७ ॥ उधर भिक्षाचर तथा लवन्यकी शक्ति नष्ट हो गयी थी अतएव बलवान् शत्रुसे डरकर उन्होंने विदेश भाग जानेमें ही अपना कल्याण समझा ॥ १२६८ ॥ किसी अभाग्यकी अवतरणासे भिक्षुपक्षके लोगोंके जीवित रहते ही अनुत्साहके कारण एक विचित्र प्रकारकी निर्जीवता छा गयी ॥ १२६९ ॥ इधर राजा सुस्सलने सोमपालकी कुटिलताका स्मरण करके निश्चय किया कि 'यह हिम ऋतु बीतनेपर राजपुरीको मैं श्मशानके रूपमें परिणत कर दूँगा' ॥ १२७० ॥ अपने देशकी धरतीपर विप्लवकी सब तरहसे शान्ति स्थापित हो जानेपर उस राजाको यह विश्वास हो गया कि अब मैं समुद्र पर्यन्तकी पृथ्वीपर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर सकता हूँ ॥ १२७१॥ एक समय विप्लवमें सब लोगोंके मर जानेपर उसके पास केवल एक प्रतिशत योद्धा बाकी रह गये थे, सो अब प्रतिवर्ष उसके राज्यमें योद्धाओंकी चौगुनी वृद्धि होने लगी ॥ १२७२ ॥ असुख, त्रास, दारिद्र्य तथा प्रियजनोंके विनाश आदि अनर्थोंसे वह राज्यकाल सबके लिए सन्तापदायक था ॥ १२७३ ॥ जब विधाताके व्यवहारवैचित्र्यसे सिद्धियाँ पराधीन हो जाती हैं, तब मनुष्य पुरुषार्थ, निष्ठुरता एवं शठताके वशीभूत होकर कर ही क्या सकता है ॥ १२७४ ॥ दैव कभी समक्ष उपस्थित मनुष्यको अन्धकारके समान त्यागकर आगे बढ़ जाता है। जो मनुष्य पीछे छूट गया रहता है, उसे सिंहके समान आँखे फाड़कर दूर-दूर तक निगाह दौड़ाता हुआ देखता है। कभी वह किसी समीपके राजाको छोड़कर मेढकके समान कूदकर आगे निकल जाता है। तात्पर्य यह है कि विधाताकी गतिमें कोई नियम नहीं दिखायी देता ॥ १२७५ ॥ वह राजा सुस्सल विश्वासवश मारे गये राजा उच्चल आदिकी निन्दा करते हुए पुरातन वृत्तान्त बतानेवालोंके मुखसे सब हाल सुनकर सदा नंगे शस्त्र अपने पास रक्खे रहता था ॥ १२७६ ॥ कभी-कभी विहारके समय वह राजा विदूरथ आदिका वृत्तान्त स्वयं चिल्ला-चिल्लाकर सुनाता और विश्वास भरे नयनोंसे निहारता हुआ स्त्रियोंके साथ सम्भोग करता था ॥ १२७७ ॥ इस प्रकार सर्वथा सतर्क रहनेवाले उस राजाने जो बान्धवके समान उत्पलपर इतना विश्वास किया, उस विषयमें दैवके सिवाय अन्य कौन उसके मनमें ऐसा मोह उत्पन्न कर सकता था ॥ १२७८ ॥ टिक्क आदि राजाके वैरी उत्पलसे बराबर कहा करते थे कि 'राजा सुस्सल, सुज्जि तथा अन्य किसी प्रमुख राजपुरुषका वध कर देनेपर हम तुम्हें अपने बराबरका कार्यकर्ता मान लेंगे'

प्रतिश्रुतविलम्बेन समन्योरथ भूपतेः। प्रत्ययोत्पत्तये देवसरसान्नीविमात्मजम् ॥१२८१॥
व्याघ्रप्रशस्तराजादींस्तीक्ष्णांश्चात्मसमान्परान्। आदाय कार्यमेतैर्मे सिद्ध्येदित्युक्तवान्नृपम् ॥१२८२॥
उच्चित्योच्चित्य सेनाभ्यो गृहीतैः साहसक्षमैः। शतैः समं त्रिचतुरैः पत्तीनामेकदा ययौ ॥तिलकम्॥१२८३॥
समयान्वेषिणो हन्तुस्तस्यासन्नस्य सर्वदा। प्रियाहारादिदानेन हन्तान्तःप्रीतिकार्यभूत् ॥१२८४॥
तुरंगं मन्दुराचक्रवर्त्याख्यं नगरस्थितम्। अस्वस्थमुल्लाघयितुं तुरगव्यसनी नृपः ॥१२८५॥
स लक्ष्मकप्रतीहारकय्यात्मजमुखान्निजान्। पार्श्वाद्विसृष्टवानासीत्क्षणे तस्मिन्मितानुगः ॥१२८६॥
शृङ्गारो लक्ष्मकापत्यं निशम्याप्तैर्निवेदितम्। व्यधाच्छ्रुतिपथे राज्ञस्तदुत्पलचिकीर्षितम् ॥१२८७॥
विरुद्धे बन्धुधीर्दृष्टहिंसारम्भेऽपि संभवेत्। आसन्नजीवितान्तस्य जन्तोः सूनापशोरिव ॥१२८८॥

स शापो गान्धार्यास्तदपि सरुषो भाषितमृषेस्त उत्पाताश्चक्षुः स्वमपि तदभौमं प्रकटयन्।

कुलान्तं तत्राणाक्षममकृत वैकुण्ठमपि तद्विदन्नप्यन्यत्वं क इव भवितव्यस्य कुरुताम् ॥१२८९॥

मिथ्यैतदित्यधिक्षिप्य क्षितिपालः प्रदर्शयन्। तमङ्गुल्योत्पलादींस्तानग्रस्थानेवमब्रवीत् ॥१२९०॥
द्रोग्धुः सुतोऽभवद्योगादनिच्छन्स्वास्थ्यमेष मे। त्वां दुष्टमुत्पलाचष्टे स्वेनान्यैर्वाथ चोदितः ॥१२९१॥
ते छादयन्तः स्मेरास्या धार्ष्ट्येन भयवैकृतम्। वक्ति देवो यदस्माभिर्वाच्यमित्येवमूचिरे ॥१२९२॥
निर्यातेष्वथ तेष्वीषत्साशङ्क इव निश्चलान्। द्वाःस्थेनाकारयद्द्वित्रानन्तिके मुख्यशस्त्रिणः ॥१२९३॥
उन्मनाश्च किमप्यासीद्विनिःश्वस्य स चिन्तयन्। साश्रुश्च न रतिं लेभे नृत्तगीतादिदर्शने ॥१२९४॥

॥ १२७९ ॥ सुज्जि उत्पलपर विश्वास नहीं करता था। अतएव वह राजा सुस्सलको ही मार डालनेकी ताकमें रहता था। किन्तु उसे कोई मौका ही नहीं मिला ॥ १२८० ॥ उधर राजाने टिक्कका वध करनेके लिए उत्पलको जो तैयार किया था, उस कार्यमें विलम्ब होनेसे वह नाराज हो रहा था। सो उसको विश्वास दिलानेके लिए उत्पलने देवसरससे अपने पुत्र नीवी, व्याघ्र तथा प्रशस्तराज आदि अपने समान तीक्ष्णों (घातकों) को बुलवाकर राजासे कहा कि 'इन लोगोंकी सहायतासे आपका कार्य शीघ्र सम्पन्न हो जायगा' ॥ १२८१ ॥ ॥ १२८२ ॥ तदनन्तर उत्पलने एक दिन सेनाओंमेंसे छाँटकर सौ साहसी व्यक्तियोंको चुना। फिर उनमेंसे भी छाँट-छाँटकर केवल तीन-चार व्यक्तियोंको पसन्द किया और उन्हें साथ लेकर चला ॥ १२८३ ॥ हा हन्त ! सदा साथ रहकर जो राजाके वधका अवसर देख रहा था, उसको राजा प्रिय आहार आदि देकर अपना अन्तरंग प्रेमी समझे बैठा था ॥ १२८४ ॥ घोड़ोंका शौकीन राजा सुस्सल नगरमें रहनेवाले मन्दुराचक्रवर्ती नामक अपने अस्वस्थ घोड़ेको नित्य घुमाता था ॥ १२८५ ॥ उसने उस समय लक्ष्मक प्रतीहार तथा कय्याके पुत्र आदि अपने मुख्य-मुख्य पार्श्ववर्तियोंको पहले ही हटा दिया था और बहुत थोड़े अनुचर उसके पास रह गये थे ॥ १२८६ ॥ इसी बीच लक्ष्मकके पुत्र शृंगारने कुछ विश्वस्त पुरुषोंके मुखसे उत्पलका कार्यक्रम सुना और उसने तुरन्त जाकर राजा सुस्सलको सब बात बता दी ॥ १२८७ ॥ जिसका जीवन विनाशके समीप पहुँच जाता है, उसका बन्धुके समान माननीय व्यक्ति भी वध कर सकता है। जैसे पशुवधशालामें पहुँचा हुआ पशु मरे बिना नहीं रहता ॥ १२८८ ॥ कुरुवंशको गान्धारीका शाप पहले ही मिल चुका था। उसके बाद एक ऋषिने रोषके साथ वह बात दुहरायी थी। अमंगलसूचक उत्पात भी हो रहे थे। कुरुवंशियोंकी आँख भी फड़ककर अशुभ सूचना दे रही थी। साक्षात् वैकुण्ठनाथ भगवान् कृष्ण स्वयं वहाँ उपस्थित थे। तथापि कौरव-पाण्डववंशका संहार हो गया। तब भला कोई अन्य पुरुष होनीको कैसे मेट सकता है ॥ १२८९ ॥ सो शृंगारकी बातको मिथ्या समझकर राजा सुस्सलने समक्ष बैठे हुए उत्पल आदिको उँगलीके संकेतसे अपनी ओर अभिमुख करके कहा—॥ १२९० ॥ 'उत्पल ! यह संयोगकी बात है कि मेरे साथ द्रोहबुद्धि रखनेवालेका पुत्र शृंगार मेरे स्वास्थ्यकी इच्छा न करके अपने मनसे या किसीकी प्रेरणासे तुम्हें दुष्ट कह रहा है' ॥ १२९१ ॥ तब बड़ी ढिठाईसे भयके कारण उत्पन्न अपने विकारको हँसीसे छिपाते हुए उन लोगोंने कहा—'जब आप स्वयं ऐसा कह रहे हैं, तब हम लोग क्या कहें ?' ॥ १२९२ ॥ उन लोगोंके चले जानेपर सशंकके समान निश्चल

मेने वैदेशिकप्रायानाप्तानपि धृतभ्रमः । पुण्यक्षये पिपतिषुर्वैमानिक इवाम्बरात् ॥१२९५॥
राजान्तरङ्गाः साशङ्काः प्रभौ शाठ्येन मोहिते । पूत्कारमैच्छन्दातारमन्यं केचिदचेतनाः ॥१२९६॥
अयमेव स कालस्य बलात्कवलनग्रहः । विदन्तोऽपि यदायान्ति जन्तवः कृत्यमूढताम् ॥१२९७॥
सर्वान्तरक्षणेष्वस्तचक्षुषो दिवसद्वयम् । उत्पलाद्याश्च साशङ्काः कथमप्यत्यवाहयन् ॥१२९८॥
रहः क्षणप्रार्थिनस्तांस्तृतीयेऽह्नयब्रवीन्नृपः । स्नात्वा प्रत्यूषे तत्रूयं भोक्तुं यात सुहृद्गृहम् ॥१२९९॥
देवतार्चनपर्यन्तमवसायाह्निकं विधिम् । आजुहावोत्पलं दूतैर्मध्याह्नेऽथ रहःस्थितः ॥१३००॥
कार्यसिद्धिं श्रद्दधानो वैजन्याद्राजसद्मनः । राज्ञोऽभ्यर्णं स साशङ्कं द्वाःस्थरुद्धानुगोऽविशत् ॥१३०१॥
प्रावेशयद्द्वारि रुद्धं व्याघ्रं तदनुजं नृपः । शेषाणामपि भृत्यानामादिदेश बहिःस्थितिम् ॥१३०२॥
विलम्बमानेष्वाप्तेषु केषुचित्सरुषो वचः । सत्यं तस्योग्रयावास्तां सोत्र द्रोग्धा य इत्यपि ॥१३०३॥
ताम्बूलदायकः प्रौढवयास्तेनावशेषितः । सांधिविग्रहिको विद्वान्राहिलश्चान्तिके परम् ॥१३०४॥
दूतौ टिक्कस्यार्यदेवतिष्यवैश्याभिधावुभौ । तत्र प्रसङ्गादास्तामज्ञातोत्पलसंविदौ ॥१३०५॥
वाटोत्सः सुखराजाख्यो डामरो भिक्षुसंमतः । प्रयास्यति प्रभोर्दृष्ट्वा पादौ तत्कार्यसिद्धये ॥१३०६॥
इत्युक्तवांस्तेष्वहःसु तं नृपं नातिदूरगम् । सैन्यं डामरं चक्रे स्वस्य त्राणार्थमुत्पलः ॥१३०७॥
तथा चैनं तस्थिवांसं कृत्यमस्त्यमुनेति च । उक्त्वा प्रशस्तराजं तं पार्श्वं प्रावेशयद्द्रुतम् ॥१३०८॥

राजाने तीन-चार मुख्य शस्त्रधारियोंको द्वारपालके द्वारा अपने पास बुलवाया ॥ १२९३ ॥ उस रोज दिन भर राजा कुछ अनमना-सा रहा। वह बार-बार लम्बी साँस लेकर कुछ सोचने लगता था। नेत्रोंमें आँसू उमड़े हुए थे। इस कारण उस दिन नृत्य-गीत आदिमें भी उसका मन नहीं रमा ॥ १२९४ ॥ जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर कोई वैमानिक स्वर्गसे गिरते समय दुखी हो, उसी प्रकार वह राजा भी दुखी होकर भ्रमवश आप्त पुरुषोंको भी विदेशी समझने लगा था ॥ १२९५ ॥ शृंगारकी बात सुन तथा राजाको उत्पल आदि शठोंकी मायासे मोहित देखकर राजाके सभी अन्तरङ्ग पार्श्ववर्ती सशंक हो उठे और कितने तो चिल्लाकर रोने-रोनेको हो गये और कितनोंकी चेतनाशक्ति लुप्त हो गयी ॥ १२९६ ॥ उनमेंसे कुछ कहने लगे कि 'इसीको बरबस कालका ग्रास बनना कहते हैं। क्योंकि ऐसे लोग सब कुछ जानते हुए भी काम पड़नेपर मूर्ख हो जाते हैं' ॥१२९७॥ उत्पल आदि द्रोहियोंने उस समयसे सभी क्षणोंमें सशंक एवं मुद्रितनेत्र रहकर किसी-किसी तरह दो दिन बिताया ॥ १२९८ ॥ तीसरे दिन क्षण भरके लिए एकान्तमें मिलनेकी प्रार्थना करनेपर राजा उनसे मिला और कहा कि 'इस प्रातःकालके समय आप लोग स्नान-भोजन करनेके लिए अपने-अपने घर जाइए' ॥ १२९९ ॥ तदनन्तर मध्याह्नकालमें दूत भेजकर राजाने देवपूजन पर्यन्त आह्निक विधि सम्पन्न होनेके अवसरपर उन उत्पल आदिको बुलवाया ॥ १३०० ॥ तब कार्यसिद्धिकी इच्छासे उत्पल एकान्तमें विराजमान राजाके पास जानेके लिए द्वारपर पहुँचा। किन्तु द्वारपाल सशंक था। अतएव उसके साथियोंको बाहर ही रोककर अकेले उत्पलको ही भीतर जाने दिया ॥ १३०१ ॥ किन्तु उत्पलके भीतर पहुँचनेपर राजाने उसके छोटे भाई व्याघ्रको भीतर बुलवा लिया, बाकी सब भृत्य लोगोंको बाहर ही बैठनेका आदेश दिया ॥ १३०२ ॥ जब कुछ आप्तजनोंके आनेमें विलम्ब हुआ, तब रुष्ट होकर राजाने कहा कि 'जो सदस्य अबतक नहीं आये हैं, वे राजद्रोही हैं। वे अब बाहर ही रहें' ॥ १३०३ ॥ तदनन्तर उसने वयोवृद्ध ताम्बूलदायक तथा सन्धि-विग्रहके अधिकारी विद्वान् राहिलको भीतर आनेकी अनुमति दी ॥ १३०४ ॥ उस समय अर्यदेव और तिष्यवैश्य ये दो टिक्कके दूत वहाँ उपस्थित थे। उन्हें इस बातका पता नहीं था कि उत्पल महाराज सुस्सलके पास पहुँच चुका है ॥ १३०५ ॥ भिक्षाचरका गुप्तचर वाटोत्स सुखराज डामर भी वहाँ उपस्थित था और कहता था कि प्रभु (राजा सुस्सल)के चरणों का दर्शन करके मैं चला जाऊँगा ॥ १३०६ ॥ उन दिनों उत्पलने आत्मरक्षाके निमित्त राजमहलसे थोड़ी ही दूर-पर डामरोंकी एक सेना रख छोड़ी थी ॥ १३०७ ॥ कुछ क्षणों बाद उत्पलने राजासे कहा कि 'प्रशस्तराजसे

प्रविष्टो निर्जनं बाह्यमाकलय्य स मण्डपम् । अलक्ष्यमाणव्यापारो द्वारमर्गलितं व्यधात् ॥१३०९॥
स्नानार्द्रकेशं शीतालुतया प्रावारवेष्टितम् । कृत्वा कृत्स्नं वपुः कृष्टशस्त्रीकं विष्टरोपरि ॥१३१०॥
आसीनं वीक्ष्य नृपतिं प्रसङ्गो नेदृशो भवेत् । विज्ञप्तिं कुरु भूभर्तुरित्यूचे व्याघ्र उत्पलम् ॥१३११॥
स तया संज्ञया व्यग्रः पादप्रणतिकैतवात् । राज्ञोऽग्रमेत्य तच्छस्त्रीं विष्टरस्थामपाहरत् ॥१३१२॥
विकोशां चाकरोत्पश्यंस्तां तथोद्भ्रान्तलोचनः । आह स्म हा धिक्किं द्रोह इति यावद्वचो नृपः ॥१३१३॥
प्राहरत्प्रथमं तावत्सव्ये पार्श्वे तथैव सः । तस्य प्रशस्तराजेन मूर्धनि प्रहृतं ततः ॥युग्मम्॥१३१४॥
व्याघ्रेणाथ क्षतं वक्षस्ताभ्यामेवासकृत्तदा । प्रहृतं तत्र स पुनः प्राहरन्न द्विरुत्पलः ॥१३१५॥
पूर्वयैव प्रहृत्या हि छिन्नपार्श्वास्थिमालया । मेने कृष्टान्त्रतन्त्रीकं स तं प्रोषितजीवितम् ॥१३१६॥
गत्वा तमोरिं पूत्कर्तुमिच्छन्व्याघ्रेण राहिलः । पृष्ठे कृताहतिर्द्वित्रा नालिका नोज्झितोसुभिः ॥१४१७॥
ताम्बूलदायकस्त्यक्त्वा कङ्कोलावग्ञको व्रजन् । दीनो निजेभ्यः कारुण्यादुत्पलेनैव रक्षितः ॥१३१८॥
अन्तः समुत्थिते क्षोभे बाह्यमण्डपवर्तिभिः । टिक्ककाद्यैः कृता लुण्ठिर्द्रोहिगृह्यैरुदायुधैः ॥१३१९॥
उत्पलो निहतो राज्ञेत्यवेत्य कटकस्थितैः । बहिःस्थान्हन्यमानान्स्वान्समाश्वासयितुं ततः ॥१३२०॥
रक्तार्द्रवस्त्रं संदर्श्य तमोरेर्वपुरुत्पलः । ऊचे मया हतो राजा न त्याज्या तच्चमूरिति ॥१३२१॥
तच्छ्रुत्वा दुःश्रवं राजभृत्याः क्वापि भयाद्ययुः । द्रोहानुगास्त्वङ्गणान्तर्लब्धोल्लासा व्यधुः स्थितिम् ॥१३२२॥

कुछ काम है। अतएव उसे बुलवा दीजिए'। इस प्रकार प्रशस्तराजको भी उसने तुरन्त भीतर बुलवा लिया ॥ १३०८ ॥ भीतर पहुँच तथा एकान्त देखकर उसने तुरन्त द्वार बन्द करके अर्गला चढ़ा दी। यह काम उसने इतनी फुर्तीसे किया कि किसीको इस बातका पता ही नहीं लगा ॥ १३०९ ॥ उस समय स्नानके कारण राजा सुस्सलके केश भीगे हुए थे और ठंडकसे बचनेके लिए उसने एक चादर ओढ़ रक्खी थी, जिससे उसके सब अंग ढँके हुए थे। उसकी शस्त्रिका (कटार) आसनपर रक्खी हुई थी ॥ १३१० ॥ तदनन्तर जब राजा आसनपर बैठ गया, तब यह सोचकर कि 'इससे अच्छा अवसर कोई नहीं मिलेगा' व्याघ्रने उत्पलसे कहा कि 'महाराजको सूचना दे दो' ॥ १३११ ॥ व्याघ्रके उस संकेतसे व्यग्र होकर उत्पलने महाराजके चरणोंको प्रणाम करनेके बहाने आसनपर रक्खी हुई कटार उठा ली ॥ १३१२ ॥ और तुरन्त उसने घबड़ायी हुई आँखोंसे उसे देखकर कटार म्यानसे बाहर निकाल ली। तब राजा 'हा धिक् ! यह क्या द्रोह !' इतना जबतक कहे ॥ १३१३ ॥ उसके पहले ही उत्पलने वह कटार राजाके वामपार्श्वमें घुसेड़ दी। उसके बाद प्रशस्तराजने उसके मस्तकपर प्रहार कर दिया ॥ १३१४ ॥ उसी समय व्याघ्रने राजाके वक्षःस्थलपर आघात किया। इस प्रकार प्रशस्तराज तथा व्याघ्र इन दोनोंने उसपर अनेक प्रहार किये, किन्तु उत्पलने फिर दूसरी बार कटार नहीं चलायी ॥ १३१५ ॥ पहले ही प्रहारसे उसकी पसलियोंकी हड्डियाँ कट गयीं और अँतड़ियाँ निकलकर बाहर आ गयीं, तभी उन्होंने समझ लिया कि राजा मर गया ॥ १३१६ ॥ तभी राहिल सहायतार्थ लोगोंको बुलानेके लिए खिड़कीकी ओर दौड़ा, किन्तु व्याघ्रने उसे रोककर मृतप्राय राजाके ऊपर दो-तीन नलिकाओंका प्रहार और किया ॥ १३१७ ॥ यह देखकर वृद्ध ताम्बूलदायक जय्यक पानका डब्बा आदि फेंककर करुणावश दुखी होकर वहाँसे जाने लगा, किन्तु उत्पलने आगे बढ़कर उसे बचा लिया। क्योंकि वह भी उसीके पक्षका एक व्यक्ति था ॥१३१८॥ तदनन्तर जब भीतरी मण्डपमें क्षोभ तथा हाहाकार मच गया, तब टिक्क आदि बाहर बैठे हुए सशस्त्र विद्रोहियोंने लूट-पाट मचा दी ॥ १३१९ ॥ उधर शहर बाहर टिकी हुई सेनामें यह खबर फैल गयी कि 'राजाने उत्पलको मार डाला'। यह सुनकर सेना राजमहलपर टूट पड़ी और बाहरी लोगोंको मारने लगी। तब उन्हें आश्वस्त करनेके लिए उत्पलने खिड़कीपर आकर रक्तसे रंगा वस्त्र तथा अपना शरीर उन सैनिकोंको दिखाया और कहा कि 'मैंने राजाको मार डाला है। उसकी सेनाको मत छोड़ना' ॥ १३२० ॥ ॥ १३२१ ॥ यह दुखदायी समाचार सुनकर राजा सुस्सलके सेवक डरके मारे भाग गये और विद्रोही लोग

निर्यान्तो मण्डपात्तीक्ष्णा निजघ्नुर्नागकाभिधम् । द्वारात्प्रविष्टं निष्कृष्टकृपाणीकं नृपानुगम् ॥१३२३॥
भूपालशय्यापालस्य त्रैलोक्याख्यस्य सेवकः । निन्दन्द्रोहं टिक्ककाद्यैर्द्वाःस्थश्चैको विपादितः ॥१३२४॥
उत्कृष्टं नष्टसत्त्वानां मध्ये राजानुजीविनाम् । सखेटकासिं धावन्तं भावुकान्वयभूषणम् ॥१३२५॥
दृष्ट्वा सहजपालाख्यं पार्श्वद्वारेण निर्ययुः । तीक्ष्णाः स त्वपतद्भूमौ तद्भृत्यप्रहतिक्षतः ॥१३२६॥
जाते कुकीर्तिकालुष्यपात्रे राजात्मजव्रजे । वैलक्ष्यक्षालनं सिद्धं तस्य स्वक्षतजैः परम् ॥१३२७॥
हतो दैशिकसंवादिदेहो राजात्मजभ्रमात् । विद्वान्द्विजन्मा नोनाख्यस्तीक्ष्णपक्षैः पुरो गतः ॥१३२८॥
अक्षतान्व्रजतो वीक्ष्य तीक्ष्णान्ग्रामान्तरोन्मुखान् । चित्रार्पिता इव क्रोधान्नाधावन्केऽपि शस्त्रिणः ॥१३२९॥
राजवंश्या महीपालप्रीतिपात्रमथाययुः । स्थगयन्तोऽङ्गणं स्थूलकाया जनविवर्जितम् ॥१३३०॥
तांस्तान्कापुरुषान्हर्षदेवोदन्तात्प्रभृत्यलम् । स्मृत्वा च कीर्तयित्वा च कृतभारग्रहा इव ॥१३३१॥
जाता दुष्कृतसंस्पर्शात्खेदात्कर्तुं न शक्नुमः । पापात्पापीयसां येषां नामग्रहणसाहसम् ॥१३३२॥
अङ्गणान्मण्डपारूढिं मन्वानाः पौरुषं महत् । पापिनः केऽपि तन्मुख्या ददृशुः स्वामिनं हतम् ॥१३३३॥
अधरेणास्रसंस्कारलेशावेशप्रकम्पिना । वदन्तं दन्तदष्टेन स्वान्तस्यान्तेऽनुतप्तताम् ॥१३३४॥
वञ्चितः कथमेषोऽहमिति नामेति चिन्तया । निस्पन्दे जीवितान्तेऽपि तथैव दधतं दृशौ ॥१३३५॥
श्यामायमानं व्राण्पेण व्रणवक्त्रैरुदञ्चता । अन्तःप्रशान्तामर्षाग्निशेषधूमलतात्विषा ॥१३३६॥
आननस्यास्फुटीभूतचन्दनोल्लेखकुङ्कुमम् । सक्तया लिखितस्येव घनक्षतजलाक्षया ॥१३३७॥

उसी आँगनमें उत्सव मनाने लगे ॥ १३२२ ॥ वे हत्यारे जब मण्डपसे बाहर निकले तो नागक नामके एक राजसेवकको किवाड़ खोलकर हाथमें तलवार लिये भीतर आते देखा उसको भी तुरन्त उन्होंने मार डाला ॥ १३२३ ॥ त्रैलोक्य नामक राजाके शय्यापालका एक सेवक द्वारपालोंसे टिक्क आदिके द्रोहकी निन्दा कर रहा था, उसे बाहर बैठे हुए विद्रोहियोंमेंसे किसीने मार डाला ॥ १३२४ ॥ जिनका साहस छूट चुका था, उन राजसेवकोंमेंसे भावुकवंशके भूषण सहजपालको ढाल-तलवार लिये दौड़कर आते देखा तो हत्यारे बगली द्वारसे बाहर निकल गये और उनके भृत्योंने सहजपालको मारकर धराशायी कर दिया ॥१३२५॥१३२६॥ राजपुत्रसमुदायमें इस प्रकारकी कुकीर्तिका पाप फैलनेपर जैसे बेचारे सहजपालने अपना रक्त देकर वह बदनामी धोनेका प्रयास किया ॥ १३२७ ॥ उसी समय राजपुत्रके भ्रममें उन हत्यारोंके साथियोंने वहाँ आये हुए एक सुशिक्षित ब्राह्मण नोनाको भी मार डाला। क्योंकि वह देखनेमें विदेशी जैसा लग रहा था ॥ १३२८ ॥ उन हत्यारोंको बचकर एक अन्य ग्रामकी ओर जाते देखकर भी क्रुद्ध शस्त्रधारियोंने उनका पीछा नहीं किया, वे चित्रकी भाँति जहाँके तहाँ खड़े रह गये ॥ १३२९ ॥ उसके बाद दिवंगत राजाके प्रेमपात्र एवं उसके समर्थक मोटे-मोटे राजवंशी वहाँ आये और उन्होंने वहाँके लोगोंको हटा-बढ़ाकर आँगन खाली कराया ॥ १३३० ॥ उन्होंने राजा हर्षदेवके वृत्तान्तसे लेकर अबतकके इस प्रकार कायरतापूर्ण हिंसाकी चर्चा की। क्योंकि उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनके ऊपर कर्तव्यका बहुत बड़ा भार आ पड़ा है ॥१३३१॥ बादमें उन्होंने कहा— 'पापके संस्पर्शभयसे हम उन पापियोंका नाम लेनेमे असमर्थ हैं, जिन्होंने यह महान् कुकर्म किया है' । अब आँगनसे मण्डपमें जानेके कार्यको बड़ा पुरुषार्थ मानते हुए कुछ पापियोंने भीतर जाकर देखा कि उनके प्रभु मार डाले गये ॥१३३२॥१३३३॥ उस मृतक राजाकी मुखाकृतिको देखकर ऐसा लगता था कि जैसे अन्तिम समयमें उसने अपनी अन्तरात्माकी वेदना प्रकट करनेकी चेष्टा की थी। इसी कारण उसका अधरोष्ठ दाँतोंके बीचमें था और उसपर रुधिर लिपटा हुआ था ॥१३३४॥ उसके निस्पन्द नेत्र अब भी खुले हुए थे, और मानो वे कह रहे थे कि 'मेरे साथ ऐसी धोखेबाजी क्यों की गयी ?' ॥ १३३५ ॥ उसके शरीरमें जो घाव थे, उनका मुँह रुधिर सूख जानेके कारण काला पड़ गया था। जिसे देखकर ऐसा लगता था कि उसके अन्दरकी अमर्षरूपी अग्नि ठंढी पड़ गयी है और धुएँकी आभा बाहर निकल आयी है ॥ १३३६ ॥ उसके ललाटमें लगा हुआ केसरिया चन्दन लुप्त हो गया था। उस चन्दनकी धूमिल

आश्यानास्त्रजटीभूतकेशं नग्नं भुवि च्युतम्। पर्यस्तपाणिचरणं स्कन्धाग्रालम्बिकन्धरम् ॥१३३८॥
तं वीक्ष्य नोचितं किंचिदाचेरुस्ते नराधमाः। वैजन्यस्य फलं भुङ्क्ष्वेत्यावेगादधिचिक्षिपुः ॥१३३९॥
बद्ध्वा तुरंगे युग्ये वा न तैर्नीतश्चिताग्निसात्। कर्तुं न वा पारितः स प्राणत्राणाय धावितैः ॥१३४०॥
आस्तां विलम्बसाध्यं वा कर्मैतद्भ्राष्ट्रदारुसात्। सज्ञाग्नि चाग्निसाद्गेहमपि कश्चिन्न नाकरोत् ॥१३४१॥
राजवाजिनमेकैकं तेऽध्यारुह्य पलायिताः। निर्लुण्ठितस्तु कटको व्रजन्ग्रामेषु डामरैः ॥१३४२॥
न पुत्रः पितरं पुत्रं पिता वा गत्यपालयत्। मृतं हतं लुण्ठितं वा प्रचलन्सहिमेऽध्वनि ॥१३४३॥
न कोपि शस्त्रभृत्सोऽभूत्स्मृत्वा मानोन्नतिं पथि। परैराक्षिप्यमाणो यः शस्त्रं वस्त्रं च नात्यजत् ॥१३४४॥
लवराज्ययशोराजद्विजौ व्यायामवेदिनौ। कान्दश्च राजा निहता वीरवृत्त्या त्रयः परम् ॥१३४५॥
अदूराद्दुत्पलाद्यास्तु कटकं वीक्ष्य विद्रुतम्। प्रविष्टा वास्तुकं छित्त्वा शिरो निन्युर्महीपतेः ॥१३४६॥
गतेषु देवसरसं तेषु छिन्नशिरा नृपः। ततश्चौर इव प्राप ग्राम्याणां प्रेक्षणीयताम् ॥१३४७॥
एवं द्रोहेस्तृतीयाब्दामावास्यायां स फाल्गुने। पञ्चपञ्चाशतं वर्षानायुषोऽतीतवान्हतः ॥१३४८॥
विलासशयनस्थस्य सिंहदेवस्य सा श्रुतौ। प्रेमाख्येनैत्य दुर्वार्ता धात्रेयेण व्यधीयत ॥१३४९॥
संभाव्यते योऽनुभावः सशस्त्रस्याप्रियश्रुतौ। हृतशस्त्रोऽपि तं प्राप स तदा पितृवत्सलः ॥१३५०॥
मोहलुप्तस्मृतिः स्मृत्वा चिराद्दुद्भूतचेतनः। तत्तद्दुःखाहतधृतिर्विललाप स्फुटास्फुटम् ॥१३५१॥
मदर्थं कुर्वता राज्यं प्रयत्नादपकण्टकम्। अधमे किं महाराज त्वयात्मा परिभावितः ॥१३५२॥

रेखा लिखित सरीखी अलबत्ते दीख रही थी ॥ १३३७ ॥ रुधिरसे सने हुए उसके केश जटा जैसे बन गये थे। उसका नग्न शरीर भूमिपर पड़ा हुआ था और हाथ-पैर अस्त-व्यस्त होकर पड़े थे और गर्दन कन्धेपर आ गयी थी ॥१३३८॥ उन नराधमोंने इस स्थितिमें उसे देखकर विलाप आदि समुचित कार्य कुछ नहीं किया, बल्कि गुस्सेमें आकर कहा—'एकान्तकी मित्रगोष्ठीका फल भोगो' ॥१३३९॥ उसके बाद किसीने उसे घोड़ेकी पीठपर या पालकीमें श्मशान ले जाकर दाहसंस्कार तक नहीं किया और वे अपने प्राण बचानेके लिए वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ १३४० ॥ उन्होंने कहा कि 'इसे यहाँ ही पड़ा रहने दो, कुछ देर बाद इसे कोई लकड़ीकी तरह भाड़में झोंक देगा'। अरे, उन अधमोंसे यह भी नहीं करते बना कि लकड़ियें जुटाकर उसके साथ-साथउस घरको ही फूँक देते ॥ १३४१ ॥ इनके बदले वे एक-एक राजकीय घोड़ेपर सवार हो-होकर भाग गये। उधर डामरगण जब नगरसे ग्रामकी ओर जाने लगे, तब उन्होंने सारी राज्य सेनाकी शस्त्रास्त्र आदि सब सामग्री लूट ली ॥ १३४२ ॥ उस समय जो भगदड़ मची तो बर्फीले मार्गपर चलते समय मरे हुए, मारे गये अथवा लूटे जाते हुए पिताकी पुत्रने और पुत्रकी पिताने भी रक्षा नहीं की ॥ १३४३ ॥ उस समय मार्गमें कोई ऐसा शस्त्रधारी नहीं था, जिसने शत्रुके झकझोरनेपर अपना शस्त्र और वस्त्र न त्याग दिया हो ॥१३४४॥ लवराज तथा यशोराज ये दोनों ब्राह्मण कसरती थे। सो ये दो और राजा कान्द ये तीन व्यक्ति अलबत्ते अपना पराक्रम प्रदर्शित करके वीरगतिको प्राप्त हुए ॥१३४५॥ नगरसे कुछ ही दूरीपर छावनी डालकर पड़े हुए उत्पल आदि विद्रोहियोंने जब देखा कि राजाकी सेना भाग गयी है, तब वे लोग फिर मण्डपमें आये और राजा सुस्सलका सिर काटकर अपने साथ लेते गये ॥१३४६॥ जब वे सब विद्रोही वहाँसे देवसरस चले गये, तब सिर कटे तथा चोरकी तरह मरकर पड़े हुए राजाके शवको ग्रामीण लोग आकर तमाशेकी तरह देखने लगे ॥१३४७॥ इस प्रकार विद्रोहके तीसरे वर्ष अर्थात् फाल्गुनकी अमावस्याको राजा सुस्सल पचपन वर्षकी अवस्थामें मारा गया॥ १३४८ ॥ जिस समय सिंहदेव अपनी शय्यापर लेटा हुआ आराम कर रहा था, तब धात्रीपुत्र प्रेमने उसके समीप जाकर यह भीषण समाचार सुनाया ॥ १३४९ ॥ जो अप्रिय समाचार सुनकर एक सशस्त्र व्यक्ति भी तलमला सकता था, वैसा ही वृत्तान्त सुनकर वह पितृवत्सल सिंहदेव निःशस्त्र रहता हुआ भी अधीर हो उठा ॥१३५०॥ उसी समय वह अचेत हो गया और उसकी स्मरणशक्ति लुप्त हो गयी। बहुत देर बाद उसे चेतना आयी तो दुःखसे धैर्य खो जानेके कारण वह बड़े जोरसे चिघियाकर रोने लगा ॥१३५१॥ उसी दुःखके आवेगमें उसने कहा—'महाराज ! मेरे ही लिए आपने बड़े प्रयत्नपूर्वक अकंटक राज्य

अहेतेः पश्यतः शत्रूनन्ते वैरविशुद्धये । अपि ते मानिनोऽगच्छंस्तात संभावनाभुवम् ॥१३५३॥
त्वया निषेधिते वैरे पिता भ्राता च ते दिवि । निर्मन्युः संप्रति त्वं तु वर्तसे मन्युदुःस्थितः ॥१३५४॥
अनरण्यकृपद्रोणजामदग्न्यादिषु स्पृहाम् । कुल्यक्षालितवैरेषु मा कार्षीः कांचन क्षणम् ॥१३५५॥
शोच्यस्त्वदाश्रयो मन्युरहं शोधयिता नृपः । दूये न तत्र यातं यत्त्रैलोक्यमभियोज्यताम् ॥१३५६॥
वात्सल्योत्पुलकस्मेरं स्निग्धोक्तिमधुरं मुखम् । मद्दर्शने यदासीत्ते तन्मे पुर इवाधुना ॥१३५७॥
इति चान्यच्च विलपन्गाम्भीर्यालक्ष्यवैकृतः । ह्रीशोकभयमूकान्स ददर्शाप्तान्पितुः पुरः ॥१३५८॥
अशिक्षयत यन्मन्युर्दाक्षिण्यं निरुरोध तत् । तथाप्येवं स तानूचे किंचिदाक्षेपकर्कशम् ॥१३५९॥
कोशैः सद्वंशतां वीक्ष्य कुर्वतः सत्क्रियां गताः । धिग्भवन्तश्च शस्त्रं च तातस्यान्ते विपर्ययम् ॥८३६०॥
यन्मत्पितृव्ये निहते कृतमुच्छिष्टजीविभिः । मान्यानां भवतां सिद्धं हा धिक्तदपि नाधुना ॥१३६१॥
इत्युपालम्भमानस्तान्द्वित्रैरन्तिकमागतैः । द्वित्रैरमात्यैः कर्तव्यश्रुतयेऽवहितः कृतः ॥१३६२॥
प्रस्थानं लोहरे केचिदूचुः संत्यज्य मण्डलम् । त्वरां च तत्र रात्र्यन्ते वदन्तो भैक्षवं भयम् ॥१३६३॥
गर्गात्मजं पञ्चचन्द्रमालम्ब्य लहरस्थितम् । द्वैराज्याचरणायान्ये धीरप्राया बभाषिरे ॥१३६४॥
न हि स्वगृहवद्भिक्षोर्विविक्षोर्नगरान्तरम् । अज्ञायि प्रत्यवस्थानं केनाप्यसति सुस्सले ॥१३६५॥
आत्मन्यसंभावनया तादृशां मन्त्रिणां नृपः । सान्तःखेदं श्वो विधेयं द्रक्ष्यथेत्यब्रवीद्वचः ॥१३६६॥
कालापेक्षापरिव्यक्तपितृव्यापत्तिदुःस्थितः । स कोशादिव्यथादिक्षद्रक्षिणस्त्राणदीक्षितान् ॥१३६७॥

करके अन्तमे उन अधमोंके हाथों अपने आपको सौप दिया ? ॥ १३५२ ॥ जब कि आपने अपने समस्त शत्रुओंको समाप्त कर दिया था, तब आपके विश्वासपात्र लोग ही शत्रु बनकर बदला लेनेको क्यों उद्यत हो गये ? ॥१३५३॥ जब आप वैर मोल लेते फिर रहे थे, तब आपके पिता और भ्राता क्रोधहीन भावसे स्वर्ग चले गये। किन्तु आप इस प्रकार दुःख भोगकर मरे ? ॥ १३५४ ॥ अनरण्य, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और परशुराम जैसे अपने कुलके वैरका बदला लेनेवाले लोगोंसे अब आप होड़ मत करिएगा ॥१३५५॥ हे राजन् ! आपके दुःखोंका उत्तराधिकारी मैं शत्रुओंसे आपके कष्टोंका बदला लूँगा। उस समय यदि मुझे तीनों लोकसे वैर करना पड़ जाय तो भी कोई चिन्ता नहीं ॥ १३५६ ॥ वात्सल्यसे पुलकित, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त और स्नेहभरी वाणीसे सम्पन्न होनेके कारण आपका मुख अब भी मेरी आँखोंके आगे उपस्थित है' ॥ १३५७ ॥ इस प्रकार अनेकशः विलाप करते हुए अपने गाम्भीर्यसे मनोविकारको छिपाये सिंहदेवने लज्जा, शोक और भयसे चुप आप्तजनोंको अपने पिताके समक्ष खड़े देखा ॥ १३५८ ॥ अबतक उसे जिस दैन्यभावनाकी सीख मिली थी, उसे उदारतासे छिपाते हुए सिंहदेवने कुछ आक्षेपपूर्वक ये कर्कश वचन कहे—॥ १३५९ ॥ 'धनके आधारपर कुलीनता देखकर ही आपने सत्कार किया। ऐसी स्थितिमें तात सुस्सलदेवका विनाश देखकर आपको और आपके शस्त्रोंको धिक्कार है ॥ १३६० ॥ मेरे पितृव्यके मर जानेपर जूठा खानेवाले उनके अनुचरोंने जो किया, इतने माननीय होते हुए आप लोगोंने उतना भी नहीं किया' ॥ १३६१ ॥ इस प्रकार उलाहना देनेके बाद सिंहदेवने अपने पास उपस्थित दो-तीन मंत्रियोंको आगेके कर्तव्यकी बात बतानेके लिए अपने अभिमुख किया ॥ १३६२ ॥ उनमेंसे कुछ मंत्रियोंने रातके पिछले पहर भिक्षाचरके आक्रमणका भय दिखाते हुए वह मण्डप त्यागकर शीघ्र लोहर चल देनेकी सलाह दी ॥ १३६३ ॥ कुछ धैर्यशाली मंत्रियोंने लहरनिवासी गर्गतनय 'पञ्च-चन्द्र'से मिलकर कश्मीरमे द्वैराज्य अर्थात् साझेदारीमें दो राजाओंके शासनकी विधि सुझायी ॥ १३६४ ॥ किन्तु उनमेसे किसीने यह सलाह नहीं दी कि राजा सुस्सलके न रहनेपर एक नगरसे दूसरे नगरपर नित्य आक्रमण परायण भिक्षाचरकी उपेक्षा करके जहाँ हैं, वहाँ ही रहा जाय ॥ १३६५ ॥ इस प्रकार आत्मबलहीन उन मंत्रियोंके वचन सुनकर राजा सिंहदेवने बड़े खेदके साथ कहा—'भली-भाँति सोच-समझकर कल कर्तव्यका निर्णय करिएगा' ॥ १३६६ ॥ तदनन्तर सामयिक स्थितिसे अभिज्ञ एवं पिताके मरणसे दुःखित सिंहदेवने

इतश्चेतश्च वम्भ्रम्यमाणैः प्रोद्यत्प्लुतस्वरम्। अन्योन्याख्यायिभिर्लोकैः पुरं मुखरतामगात् ॥१३६८॥
भक्तवेतालमालेव कालरात्र्याकुलेव च। बभूव सा यामवती सर्वभूतभयावहा ॥१३६९॥
दीपैर्निर्वातनिष्कम्पैश्चिन्तास्पन्दैश्च मन्त्रिभिः। तिष्ठन्परिवृतो राजा त्वन्तरेवमचिन्तयत् ॥१३७०॥
निर्द्वारे सतमस्युग्रमारुते शून्यवेश्मनि। तातोऽपि निहतः शून्ये मयि जीवत्यनाथवत् ॥१३७१॥
कष्टमेतादृशासह्यवैशसक्षालनावधि। कथं गोष्ठीषु शक्ष्यामि द्रष्टुं मानवतां मुखम् ॥१३७२॥
विरोधिवशवर्तिभ्यो देशेभ्यः सैन्यनायकाः। सहिमैरेव दुर्लङ्घ्यैः कथमेष्यन्ति वर्त्मभिः ॥१३७३॥
इत्थं विमृशतस्तस्य तत्तत्तीव्राभिषङ्गिनः। ययौ भीतिमतो भीमा कथंचित्सा निशीथिनी ॥१३७४॥
प्रातश्चतुष्किकां पौरसमाश्वासाय निर्गतः। नष्टं कटकमन्वेष्टुं सोऽश्वारूढान्व्यसर्जयत् ॥१३७५॥
मार्गानस्वचीसंचारैस्तुषारैर्विवरोज्झितान्। आश्लिष्टवसुधा मेघाः कर्तुं प्रारेभिरे ततः ॥१३७६॥
नामाप्यलब्ध्वा सैन्यस्य मोघसैन्येषु दूरतः। निवृत्तेषु नियुक्तेषु विमृश्य नृपतिः क्षणम् ॥१३७७॥
यद्यद्येनाहृतं तत्तत्परित्यक्तं मयाधुना। दत्तं चारीङ्श्रितवतामभयं सागसामपि ॥१३७८॥
इत्याज्ञां भ्रमयामास पटहोद्घोषणैः पुरे। साशीर्घोषास्ततः पौरास्तत्रारज्यन्त सर्वतः ॥तिलकम्॥१३७९॥
अनन्तरनृपाचारवैधर्म्योंकारकल्पया। तया सोऽनघया वृत्त्या फलं सद्योऽनुभावितः ॥१३८०॥
शतादप्यूनसंख्यैर्यः स्थितवाननुगैः समम्। अनुरागहृतैर्लोकैस्तत्कालं पर्यवार्यत ॥१३८१॥
प्रियोक्त्यावेदनं प्रीतिदायोपायः प्रभोः पुरः। भजंल्लोकस्याग्र्यमन्त्रिपदवीं लक्ष्मकोऽग्रहीत् ॥१३८२॥

रक्षाकार्यमें सुशिक्षित सन्तरियोंको कोश आदिकी रक्षाके कामपर नियुक्त किया ॥ १३६७ ॥ कुछ ही देर बाद एक दूसरेको बहुत ऊँचे स्वरसे पुकारते हुए पहरेदार लोगोंके भीषण निनादसे सारा नगर मुखरित हो उठा ॥ १३६८ ॥ उस रोज जैसे पिशाचोंके समुदायसे भरी एवं व्याकुल वह कालरात्रि नगरनिवासी सभी प्राणियोंका हृदय भयभीत किये दे रही थी ॥ १३६९ ॥ उस समय दीपकोंका हिलनातक बन्द हो गया था और राजा मंत्रियों-से घिरकर बैठा हुआ यह सोच रहा था—॥ १३७० ॥ 'द्वारविहीन, अन्धकार एवं प्रबल वायुसे परिपूर्ण एक सूने घरमें मेरे जीवित रहते अनाथके समान मेरे पिता मार डाले गये ॥ १३७१ ॥ जबतक इस प्रकारके निर्दय हिंसाके कामोंको समाप्त न कर दूँ, तबतक मैं गोष्ठियोंमें स्वाभिमानी वीरोंका मुख कैसे देख सकूँगा ॥ १३७२ ॥ विरोधियोंके अधिकारमें पड़े हुए देशोंसे मेरे सेनानायक हिमाच्छादित एवं दुर्लंघ्य मार्गोंसे होकर मेरे पास कैसे आयेंगे ?' ॥ १३७३ ॥ इस प्रकार तीव्र पराभवसे त्रस्त राजा सिंहदेवके विचार-विमर्श करते-करते भीरुजनोंके लिए अत्यन्त भयावनी वह रात्रि किसी-किसी तरह बीती ॥१३७४॥ तदनन्तर नगरनिवासी नागरिकोंको ढाढ़स बँधाने-के लिए राजा सिंहदेव अपने महलके चबूतरेपर आया और भगोड़े सैनिकोंका पता लगानेके लिए अश्वारोहियोंको भेजा ॥ १३७५ ॥ उसी समय हिमराशिके छिद्रपर निर्मित मार्गमें घोर अन्धकार फैलाते हुए बादल घिर आये और घनघोर वर्षासे सारी धरतीको एकामयी करते हुए बरसने लगे ॥ १३७६ ॥ अतएव जिन अश्वा-रोहियोंको सेनाकी खोजके कामपर लगाया गया था, वे दूर-दूरतक देख करके भी पुरानी सेनाका कहीं नाम तथा चिह्न भी न पाकर लौट आये। तब क्षणभर विचार करके राजा सिंहदेवने कहा—॥ १३७७ ॥ 'अबतक राज्यकी सम्पदामेंसे जिसने जिस किसी वस्तुका अपहरण कर लिया है, उसे मैं छोड़ता हूँ और साथ ही उन अपराधियोंको अभयदान देता हूँ, जिन्होंने शत्रुओंसे मिलकर राज्यका अपकार किया है' ॥ १३७८ ॥ तदनन्तर डुग्गी पिटवाकर सारे नगरमें इस आज्ञाकी घोषणा करा दी गयी। यह घोषणा सुनकर चारों ओरके सभी नागरिक आनन्दित हो उठे और राजा सिंहदेवको आशीर्वाद देने लगे ॥ १३७९ ॥ यद्यपि यह घोषणा राजनीतिक दृष्टिसे अधर्मसंगत थी, लेकिन राजाकी उस पुनीत भावनाका फल शीघ्र ही सबके सम्मुख आ गया ॥ १३८० ॥ कहाँ पहले सौसे भी कम राजाके अनुयायी थे, किन्तु यह घोषणा होते ही प्रेमपूर्वक असंख्य लोगोंने सेवकाई करनेके लिए उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ १३८१ ॥ तदनन्तर राजाको अपने मधुर वचनोंसे सर्वसाधारणका स्नेह प्राप्त करनेके लिए

राज्यं शय्यां नयत्येवं प्राज्ञे राज्ञि नयक्रमैः । याति मध्यं दिने भिक्षुर्विविक्षुः पुरमाययौ ॥१३८३॥
तस्य डामरपौराश्ववारलुण्ठाकसंकुलः । अदृष्टपूर्वो ददृशे सैन्यव्यतिकरस्तदा ॥१३८४॥
हतं श्रुत्वा रिपुं राज्योत्सुकः स नगरं व्रजन् । राजा काकात्मजेनेति तिलकेनाभ्यधीयत ॥१३८५॥
हतः समस्तविद्वेष्यः स दैवाद्यदि सुस्सलः । कथं प्रकृतयो जह्युर्गुणवन्तं तदात्मजम् ॥१३८६॥
पुरप्रवेशे का राजंस्तस्मादेकमहस्त्वरा । एहि पद्मपुरं यामो मार्गं रोद्धुं विरोधिनाम् ॥१३८७॥
आगच्छन्तो नष्टसैन्याः सुज्जिमुख्या महाभटाः । निहता यदि वा रुद्धास्तत्र सायुधवाहनाः ॥१३८८॥
प्रविष्टोऽसि ततो न्यस्तशस्त्रो द्वित्रैर्दिनैर्ध्रुवम् । नगरं नगरौकोभिः स्वयमभ्यर्थितागमः ॥१३८९॥
अलमेतैर्जरन्मन्त्रैर्वदन्त इति चक्रिरे । स च कोष्ठेश्वराद्याश्च स्मेरास्तस्यावधीरणाम् ॥१३९०॥
राज्यं विदद्भिः संप्राप्तं तांस्तान्शासनपट्टकान् । द्रुतमर्थयमानैश्च विलम्बं कारितो निजैः ॥१३९१॥
अतो वहुहिमापातविवशाशेषसैनिकः । आसदन्नगरोपान्तं समयेन स तावता ॥१३९२॥
एतस्मिन्नन्तरे लब्धे निःसैन्यस्य ससैनिकः । गर्गात्मजः पञ्चचन्द्रो नृपतेः पार्श्वमाययौ ॥१३९३॥
हतस्वामिपरित्यागमन्युक्षालनकाङ्क्षिभिः । राजपुत्रैः समं सोऽथ वीरो योद्धुं विनिर्ययौ ॥१३९४॥
असंभावनसंग्रामान्वीक्ष्य तान्भिक्षुसैनिकाः । यावत्प्रारेभिरे योद्धुं तावत्किमपि सर्वतः ॥१३९५॥
क्षणेनैव ययुर्भङ्गं तांस्तान्वीक्ष्य हतान्निजान् । न संस्तम्भयितुं शेकुः स्वचमूश्च पलायिनीः ॥१३९६॥
सेनानाथाश्च ये मुख्या भिक्षुपृथ्वीहरादयः । अदृष्टपूर्वं संत्रासं तेऽप्यशस्त्रिवदाययुः ॥१३९७॥
विद्रवन्तोऽनुयाताः स्युस्ते चेद्दूरं नृपानुगैः । तन्नूनमवशिष्येत क्षणादेव न किंचन ॥१३९८॥

अनेक उपाय वतानेवाले लक्ष्मकने प्रधान मन्त्रीका आसन ग्रहण किया ॥ १३८२ ॥ उस बुद्धिमान् राजाने ऐसी सुन्दर नीति अपनाकर सब नागरिकोंको मुग्ध कर दिया और दोपहरके समय जब वह शय्यापर लेटकर आराम कर रहा था, उसी समय भिक्षाचर नगरमें प्रविष्ट होनेके विचारसे वहाँ आ पहुँचा ॥ १३८३ ॥ उसके साथ बहुतेरे डामर, पुरवासी, अश्वारोही और लुटेरे थे। इनके अतिरिक्त सेना इतनी बड़ी थी कि जिसे कभी किसीने देखा ही नहीं होगा ॥ १३८४ ॥ राजाको मारा गया सुनकर राज्य प्राप्त करनेके लिए नगरके भीतर घुसते हुए भिक्षाचर-से काकपुत्र तिलकने पूछा—॥ १३८५ ॥ 'समस्त शत्रुओंके साथ दैवात् यदि सुस्सल मार डाला गया तो यहाँकी प्रजा क्या उसके गुणवान् पुत्रको छोड़ेगी ?' ॥१३८६॥ ऐसी परिस्थितिमे नगरप्रवेशसे क्या लाभ ? चलिए, पद्मपुर चलकर हमलोग अपने शत्रुओंका मार्ग अवरुद्ध कर दे ॥ १३८७ ॥ जिनकी सेना नष्ट हो चुकी है, ऐसे सुज्जि आदि महान् योद्धा यदि वहाँ ही रोककर आयुध एवं वाहन समेत नष्ट कर दिये जायँ ॥ १३८८ ॥ तब आप निःशस्त्र हो करके भी दो-तीन दिनोंमें ही नगरनिवासियोंकी प्रार्थनापर आसानीसे नगरके भीतर प्रविष्ट हो जायँगे' ॥ १३८९ ॥ इसपर कोष्ठपाल आदि राजे उसकी अवहेलना करके हँसी उड़ाते हुए कहने लगे—'ऐसे वृद्ध विचारोंकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं हैं' ॥ १३९० ॥ तदनन्तर राज्यप्राप्तिके बाद शासनसम्बन्धी विभागोंकी माँगें करते हुए परस्पर लड़ते-झगड़ते उन्होंने बहुतेरा समय बिता दिया ॥ १३९१ ॥ उसके बाद जब वे नगरकी ओर बढ़े तो जोरोंसे बर्फ गिरने लगी, जिससे उतने समयमें नगरके पास पहुँच करके उनके सभी सैनिक बेकार हो गये ॥ १३९२ ॥ इतना समय मिल जानेपर सेना समेत गर्गचन्द्रका पुत्र पंचचन्द्र सेनाविहीन राजा सिंहदेवके पास जा पहुँचा ॥ १३९३ ॥ दिवंगत प्रभुके परित्यागजनित पश्चात्तापका क्षालन करनेके लिए वह वीर पंचचन्द्र बहुतेरे राजपुत्रोंको साथ लेकर शत्रुओंसे युद्ध करनेके लिए निकल पड़ा ॥ १३९४ ॥ जिसकी कोई संभावना ही नहीं थी, उस युद्धको सम्मुख उपस्थित देखकर भिक्षाचरके सैनिकोंने जैसे ही युद्ध आरम्भ किया और उन्होंने अपने पक्षके कुछ सैनिकोंको मरते देखा, त्योंही वे रणभूमि त्यागकर भाग खड़े हुए। यद्यपि बड़े-बड़े योद्धाओंने वह भगदड़ रोकनेकी चेष्टा की, किन्तु वे उसमें सफल नहीं हो सके ॥१३९५॥१३९६॥ अब विपक्षीके भिक्षु-पृथ्वीहर आदि मुख्य सेनानायक अतर्कित संग्राम देखकर निःशस्त्रोंके समान त्रस्त हो

वैमुख्यं तेषु यातेषु चिरात्सांमुख्यमाययौ । नवभूभृत्प्रभावेण नगरे विधुरे विधिः ॥१३९९॥
अन्यथाऽऽकलितो लोकैरन्यथा दैवयोगतः । इत्थं राज्ञोर्द्वयोरासीद्विजयावजयक्रमः ॥१४००॥

कंचिन्निपातयति वद्धपदं क्षणेन कंचित्परं पिपतिषुं नयति प्ररूढिम् ।
संकल्पनिर्विषयचित्रतरानुभाव ओघोऽम्भसामिव तटं पुरुषं विधाता ॥१४०१॥

अथ तत्तद्भयस्थानशान्तः सुज्जिर्दिनात्यये । दावव्याप्ताद्रिनिष्क्रान्तो निःसहोहिरिवाययौ ॥१४०२॥
मेघाचक्रपुरग्रामस्थितः श्रुत्वा हतं नृपम् । स हि संमन्त्र्य रात्र्यन्तर्नोत्तस्थाववसत्परम् ॥१४०३॥
रिल्हणादीन्स्थिताञ्शूरपुरादौ सैन्यनायकान् । प्रतीक्षमाणस्तैः साकं निर्बाधं नगरेऽविशत् ॥१४०४॥
तमिस्रया प्रत्यभिज्ञाकृते तेषामनश्वरान् । स्वावासपृष्ठे ज्वलतो दीपानस्थापयत्ततः ॥१४०५॥
वैमत्यात्ते तु पत्तीनां विद्रुतानां पृथक्पृथक् । निशि क्वापि परिभ्रष्टा न तत्कटकमाययुः ॥१४०६॥
प्रत्यूषे प्रचलंस्तैस्तैः पृष्ठलग्नैः स डामरैः । न मुहूर्तमपि त्यक्तः प्रहरद्भिरितस्ततः ॥१४०७॥
वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्सहप्रस्थायिनो जनान् । ययौ रक्षन्पुरः कृत्वा पशुपालः पशूनिव ॥१४०८॥
पञ्चाशत्या हयारोहैः सह व्यावृत्य तिष्ठता । कंचित्क्षणं तेन रक्षा तेषां कर्तुमशक्यत ॥१४०९॥
द्राक्षापण्डद्रुमव्यूहसंबाधेऽध्वन्यसाध्वसैः । बाध्यमानोऽरिभिर्लोकं सोऽत्याक्षीत्तु पदे पदे ॥१४१०॥
हतस्य स्वामिनः स्वामिसूनोश्च व्यसनस्थिते । आनृण्याकांक्षिणा तेन तत्र ह्यात्मैव रक्षितः ॥१४११॥
येषां प्राणपरित्यागे निश्चयं वध्नतामपि । न योग्यकालापेक्षास्ति किं तैर्हिंस्रपशूपमैः ॥१४१२॥

उठे ॥ १३९७ ॥ यदि राजाके सैनिक उनमेसे वहुतेरोंको खदेड़ने लगते थे तो क्षण ही भरमें उनकी संख्या वहुत थोड़ी रह जाती थी ॥ १३९८ ॥ इस प्रकार जव विधाता शत्रुओंके प्रतिकूल हुआ, तव नये राजाके प्रभावसे नगरपर उसकी अनुकूलता दृष्टिगोचर हुई ॥ १३९९ ॥ लोगोने अन्य वात सोची थी और वहाँ दैवयोगसे अन्य ही वात हो गयी । इस प्रकार उन दोनों राजाओंमें विजय और पराजयका क्रम चलता रहा ॥ १४०० ॥ नदीके तटपर विद्यमान वृक्षकी भाँति किसी वद्धमूल पुरुषको विधाता क्षण ही भरमें उखाड़ फेंकता है और किसी उखड़ते हुएको वद्ध मूल कर देता है । जिसका प्रभाव संकल्पशक्तिके वाहर है, वह विधाता नित्य यही खेल करता रहता है ॥ १४०१ ॥ तदनन्तर विभिन्न भयके स्थानोंको पार करता हुआ सुज्जि सायंकालके समय राजाके पास आ गया । जैसे कि दावानलसे घिरे पर्वतकी आँच सहनेमें असमर्थ होकर कोई सर्प निकल भागे ॥ १४०२ ॥ जव कि वह मेघाचक्रपुर नामके ग्राममें था, तव वहाँ ही उसने राजा सुस्सलके मरणका समाचार सुना । यह सुनते ही उसने अपने साथियोंसे मंत्रणा की और रातको ही वहाँसे चल पडा ॥ १४०३ ॥ शूरपुर आदि ग्रामोंमें स्थित रिल्हण आदि सेनानायकोंको साथ लेता हुआ वह निर्वाधरूपसे नगरमे घुस आया ॥ १४०४ ॥ रात्रिके समय अन्धकारमें पहचानके लिए वह अपने शिविरके पीछे न वुझने वाले दीपकोंको रख दिया करता था ॥ १४०५ ॥ उसे यह भय था कि मतभेदके कारण भागे हुए शत्रुसेनाके पैदल सैनिक मेरी सेनामें न आ मिलें ॥ १४०६ ॥ सवेरे जव वह चलता था, तव डामरगण प्रहार करते हुए उसका पीछा करने लग जाते थे । तथापि वह अपने जत्थेसे क्षण भरके लिए भी अलग नहीं हुआ ॥ १४०७ ॥ वहुतेरे वृद्ध, वालक तथा स्त्रियोंको साथ लिये और उनकी रक्षा करते हुए सुज्जि नगरकी ओर इस तरह वढा चला जा रहा था, जैसे चरवाहा पशुओंको लेकर चलता है ॥ १४०८ ॥ रास्तेमें जहाँ टिकता था, वहाँ पाँच सौ अश्वारोहियोंका घेरा पड़ जाता था । अतएव एक क्षणके लिए भी ऐसा अवसर नहीं आया था कि जव वह अरक्षित रहा हो ॥ १४०९ ॥ अंगूरके वगीचोंकी अन्धकार भरी झुरमुटमें जव कभी कोई शत्रुकृत वाधा उपस्थित होती थी तो वह पद-पदपर उनसे वच-वचकर चलता था ॥ १४१० ॥ मरे हुए स्वामी तथा स्वामिपुत्रको संकटसे उवारकर उससे उऋण होनेकी आकांक्षावश वह वड़ी सतर्कतासे अपनी रक्षा कर रहा था ॥ १४११ ॥ प्राणत्यागका निश्चय किये हुए लोगोंमेसे भी जो लोग उचित अवसरसे लाभ

हन्तुं तं नष्टमायान्तं रुद्ध्वा पद्मपुरान्तिकम्। अवसण्डामराः क्रूराः खड्वीविषयौकसः ॥१४१३॥
खेरीतलालशाग्रामादुत्थाय पृथुसैनिकः। व्रजंस्तेनाययौ तत्र प्रसङ्गे श्रीवकः पथा ॥१४१४॥
तमनष्टानुगं सुज्जिरसाविति विशङ्किताः। निपत्य ते विदधिरे हतलुण्ठितसैनिकम् ॥१४१५॥
मेरुश्च सज्जनश्चाश्ववारौ तत्राहवे हतौ। क्षतो वट्टात्मजो मल्लो दिवसैर्यो व्यपद्यत ॥१४१६॥
उदीपविहितश्वभ्रवहत्सलिलसंकटम् । उदीपपूरवालाख्यं स्थानं तत्र क्षणेऽभवत् ॥१४१७॥
युद्ध्वा युद्ध्वा प्रचलतस्तत्र पद्मपुराद्बहिः। रुद्धसैन्यस्य विशिखः श्रीवकस्याविशद्गलम् ॥१४१८॥
प्रहारविवशो नासौ सुज्जिर्ज्ञात्वेति डामरैः। स निर्लुण्ठ्य परित्यक्तः पूर्वमैत्र्यनुरोधतः ॥१४१९॥
लुण्ठितश्रीवकानीककोशभारग्रहानतैः । तैः कैश्चिच्चलितैरासीत्सुज्जेर्मार्गोऽनुपद्रवः ॥१४२०॥
प्रस्थिते पथिकेऽकस्माद्यन्त्रेपूत्सादयन्वने। आयुःशेषो मृगेन्द्रस्य विदध्यादध्वशोधनम् ॥१४२१॥
निःशब्दसैन्यो निर्यातः सुज्जिः पद्मपुरान्तरे। उदीपश्वभ्रसविधं संप्राप्तोऽज्ञायि डामरैः ॥१४२२॥

पदातिकोशशस्त्रादि मुष्णतः सोनऽवेक्ष्य तान्।
तीर्त्वा श्वभ्रं वाजिगम्यां साश्ववारो भुवं ययौ ॥१४२३॥

ततः परं प्रशान्तारिभयं दूराद्विरोधिनः। भ्रूभङ्गतर्जनीकम्परूक्षालापैरतर्जयत् ॥१४२४॥
संत्रस्तैश्छत्रमात्रं तैस्त्यक्तमादाय च द्रुतम्। प्रविश्य नगरं साश्रुर्नृपतेः पार्श्वमाययौ ॥१४२५॥
ज्यायसि भ्रातरीवाग्रं तस्मिन्प्राप्ते जहौ नृपः। दुःखोष्णैरश्रुभिः सार्धं वैर्यापातसाध्वसम् ॥१४२६॥

उठानेकी कला नही जानते, उन हिंस्र पशुओंके समान लोगोंसे क्या काम हो सकता है ॥ १४१२ ॥ रास्तेमें उसे आते देखकर पद्मपुरके पास उसको मार डालनेके लिए खड्वी गाँवके वहुतेरे क्रूर डामर वैठे प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ १४१३ ॥ संयोगवश उसी समय खेरी तलालशा ग्रामसे वहुतेरे सैनिकोंके साथ श्रीवक भी उसी मार्गसे चलता हुआ वहाँ आ पहुँचा ॥ १४१४ ॥ उसे अनेक अनुयायियोंके साथ आया देखकर उन डामरोंने समझा कि यह सुज्जि है। वस, सहसा वे उसपर टूट पड़े। उसके वहुतेरे सैनिकोंको उन्होंने मार डाला और सामान लूट लिया ॥१४१५॥ उस युद्धमें मेरु और सज्जन नामके दो अश्वारोही मारे गये, वट्टका पुत्र मल्ल बुरी तरह घायल हो गया और कई दिनों वाद उसकी भी मृत्यु हो गयी ॥ १४१६ ॥ वहाँसे धीरे-धीरे आगे वढता हुआ वह उस उदीप-पुर वाल नामक ग्रामके पास पहुँचा, जहाँ वरसातके समय वड़े वेगसे जल वहनेके कारण वड़े-वड़े गड्ढे हो गये थे ॥ १४१७ ॥ इस प्रकार स्थान-स्थानपर युद्ध करते हुए चलते-चलते पद्मपुरके वाहर श्रीवककी सेना शत्रुओं द्वारा रोक दी गयी, उसपर यह गलग्राही महासंकट आ पड़ा ॥ १४१८ ॥ उन डामरोंने श्रीवकको सुज्जि समझ-कर खूव लूटा-पीटा और वादमें पूर्वकालीन मैत्रीका स्मरण करके छोड़ दिया ॥१४१९॥ इस तरह श्रीवककी सेनाके खजानेकी लूटका भारी वोझ ढोते हुए वे डामर वहाँसे चले गये। जिससे सुज्जिके लिए वह मार्ग निरुपद्रव हो गया ॥ १४२० ॥ जैसे अकस्मात् कोई वन्दूकधारी पथिक वन्दूक दागता और वन्य पशुओंको भयभीत करता हुआ मार्गसे चला जाय, जिससे सिंहका मार्ग निर्वाध हो जाय। ठीक वही वात यहाँ भी हुई ॥ १४२१ ॥ इस प्रकार सेनाका विना कोई कोलाहल किये सुज्जि पद्मपुर ग्रामसे वाहर निकल गया और जव वह उदीपपुरके गड्ढोंके पास पहुँचा, तव डामरोंको पता चला ॥ १४२२ ॥ जिससे वे सव तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और उसके पैदल सैनिकों, खजानों तथा शस्त्रोंको लूटने लगे। किन्तु सुज्जिने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उन गड्ढोंको पार करके अपने अश्वारोहियोंके साथ समतल भूमिपर जा पहुँचा ॥ १४२३ ॥ इस प्रकार जव वह शत्रुवाधासे मुक्त हो गया तो दूर ही से उसने विरोधियोंको भौंहें टेढी करके उँगली हिलाकर तथा मुखसे कठोर वाक्य कहकर धमकाया ॥ १४२४ ॥ तदनन्तर उन डरे हुए डामरों द्वारा परित्यक्त छत्रमात्र लेकर वह शीघ्र नगरमें प्रविष्ट हुआ और नेत्रोंमें आँसू भरकर राजा सिंहदेवके समीप जा पहुँचा ॥ १४२५ ॥ इस प्रकार सुज्जिको अपने समक्ष उपस्थित देखकर राजाने दुःखसे गरम आँसुओंके साथ-साथ शत्रुओंके उपद्रवका भय भी त्याग दिया ॥ १४२६ ॥

महत्तमोऽनन्तसूनुरानन्दस्तत्र वासरे । लोचनोड्डारकग्रामे डामरैः प्रचलन्हतः ॥१४२७॥
तत्तन्मङ्गल्यदण्डादिदुःसहायासकारणात् । स विपत्पतितो नाभूत्कस्यापि करुणावहः ॥१४२८॥
भासाभिधः सुज्जिभृत्यो लोकपुण्यात्पलायितः । श्रान्तोऽवन्तिपुरेऽविक्षदवन्तिस्वामिनोऽङ्गणम् ॥१४२९॥
कम्पनोद्वाहकः क्षेमानन्दः स च तदन्तरे । अमर्षणैरवेष्ट्येतां डामरैर्होलडोद्भवैः ॥१४३०॥
इन्दुराजोऽपि सेनानीः कुलराजकुलोद्भवः । टिक्कं तद्वेष्टितो ध्यानोड्डारे व्याजादशिश्रियत् ॥१४३१॥
पिश्वदेवादयोऽन्येऽपि बहवः सैन्यनायकाः । अतिष्ठन्क्रमराज्यान्तर्डामरैः कृतवेष्टनाः ॥१४३२॥
पाते वनस्पतेः शावा इव तन्नीडविच्युताः । इत्थं हताः क्षताश्चासंस्तत्र तत्र नृपानुगाः ॥१४३३॥
निष्पादत्रा हिमक्लुष्टचरणा नग्नविग्रहाः । क्षुत्क्षामा बहवोऽभूवन्मार्गेषु गलितासवः ॥१४३४॥
न व्यलोक्यत मार्गेषु तदा नगरगामिषु । पलालच्छन्नदेहेभ्यो मानुषेभ्यः परः क्वचित् ॥१४३५॥
घासं विलासवासस्त्वं तेऽपि चित्ररथादयः । निन्युर्यैरचिरेणैव महामात्यैर्भविष्यते ॥१४३६॥
द्वितीयेऽपि दिने रुद्धसंचाराः पत्त्रिणामपि । तुषारवर्षिणो मेघा न मुहूर्तं व्यरंसिषुः ॥१४३७॥
वनपूर्वाभिधग्रामस्थितस्य कटकाद्भटान् । भिक्षोर्निक्षिप्य धन्योऽथ सिंहदेवमशिश्रियत् ॥१४३८॥
निशम्य कृतसत्कारं नृपं तदनुयायिनाम् । सर्वेऽपि भैक्षवास्तस्थुः सैनिका नगरोन्मुखाः ॥१४३९॥
मन्दप्रतापे दायादे संप्राप्तावसरास्ततः । राज्यश्चतस्रो राजानमनुमर्तुं विनिर्ययुः ॥१४४०॥
परापातभयाच्छीतापाताच्च विवशैर्जनैः । न ता नेतुमशक्यन्त दूरस्थं पितृकाननम् ॥१४४१॥
चक्रिरे स्कन्दभवनोपान्ते देहांश्चिताग्निसात् । ते सत्वरं ततस्तासामदूरे राजसद्मनः ॥१४४२॥

उसी दिन महत्तम अनन्तपुत्र आनन्द मार्गपर चला जा रहा था । सो उसे लोचनोड्डारक ग्राममें डामरोंने मार डाला ॥ १४२७ ॥ किसी भी मंगलकार्यके समय तथा दण्डादि दुःखमें सबके लिए वह बड़ेसे बड़ा कष्ट सहनेको तैयार रहता था । अतएव उसकी मृत्युका समाचार सुनकर कौन ऐसा मनुष्य था कि जिसे करुणा न आ गयी हो ॥ १४२८ ॥ सुज्जिका सेवक भास पुण्यलोकसे भाग गया था। सो वह थककर अवन्तिपुरके राजाके आँगनमें जा पहुँचा ॥ १४२९॥ उसी बीच सैन्यसंचालक क्षेमानन्द लोहडके क्रुद्ध डामरोंसे घिर गया ॥ १४३० ॥ कुलराजवंशमें उत्पन्न सेनापति इन्दुराजको भी उन दुष्टोंने घेर लिया था, तब वह बहाना बनाकर ध्यानोड्डारके टिक्ककी शरणमें चला गया ॥ १४३१ ॥ इसी प्रकार पिञ्जदेव आदि और भी बहुतेरे सेनानायक क्रमराज्यमें डामरों द्वारा घेरे जा चुके थे ॥१४३२॥ जैसे वृक्षके घोंसलेसे गिरकर पक्षिशावक मर जाते हैं, उसी प्रकार राजाके बहुतसे अनुचर उनके द्वारा या तो मार डाले गये या घायल कर दिये गये थे ॥ १४३३ ॥ कितने पादुकाविहीन नंगे पैर बर्फपर चलनेके कारण पाँवोंसे हाथ धो बैठे थे। बहुतेरे नंगे बदन तथा क्षुधासे क्षीण होकर मर गये ॥ १४३४ ॥ इसी कारण उन गाँवों तथा नगरोंसे होकर गुजरनेवाले मार्गपर लोग पुआलसे अपना शरीर ढाँककर चला करते थे ॥ १४३५ ॥ अतएव निकट भविष्यमें महामंत्री बननेवाले चित्ररथ आदि भी घासको शौकीनीके वस्त्रोंके समान धारण करनेको विवश हुए थे ॥ १४३६ ॥ उसके बाद दूसरे दिन भी हिमवर्षा करनेवाले मेघ मुहूर्त भरके लिए भी नहीं थम्हे और हिमवर्षा इस तरह हो रही थीकि पक्षी भी अपने नीडसे बाहर निकलनेका साहस नहीं कर सकते थे ॥ १४३७ ॥ उन्हीं दिनों वनपूर्व ग्राममें स्थित भिक्षुकी सेनाको छोड़कर धन्य राजा सिंहदेवके पास चला आया ॥ १४३८ ॥ जब भिक्षुकी सेनामें यह समाचार पहुँचा कि राजाके यहाँ पहुँचनेपर धन्यका बहुत सत्कार हुआ। तब उसके सभी सैनिक नगरकी ओर दौड़ पड़े ॥ १४३९ ॥ इधर नगरमें जब दायादका प्रताप मन्द पड़ते देखा और उपयुक्त अवसर पाया, तब राजा सुस्सलकी चार रानियाँ राजाका अनुकरण करती हुई मरनेके लिए महलसे बाहर निकलीं ॥ १४४० ॥ उस समय बर्फ जोरोंसे पड़ रही थी और ठंढक भी विशेष थी। अतएव लोग उन्हें दूरवर्ती श्मशानमें नहीं ले जा सके ॥ १४४१ ॥ तब शीघ्र ही उन्होंने राजमहलके पासवाले स्कन्दभवनके समीप चिता तैयार करायी और वे चारों उसीपर चढ़कर सती हो गयीं ॥१४४२॥

राज्ञी चम्पोद्भवा देवलेखा तरललेखया । स्वस्रा सहाविशद्वह्निं रूपोल्लेखावधिर्विधेः ॥१४४३॥
गुणोज्ज्वला जज्जला च मृता वल्लापुरोद्भवा । गग्गात्मजा राजलक्ष्मीरपि वह्नौ व्यलीयत ॥१४४४॥
मत्वा हिमव्यपायान्तं राज्यरोधं निजप्रभोः । डामरा नवभूभर्तुर्हिमराजाभिधां व्यधुः ॥१४४५॥
ददर्श सौस्सलं मुण्डमथ भिक्षुरुपागतम् । गाढामर्षाग्निसंदीप्तैर्दृक्पातैर्निर्दहन्निव ॥१४४६॥
कोष्ठेश्वरज्येष्ठपालादयस्तत्सत्क्रियोद्यताः । असह्यासन्नतां वैराद्व्रजता तेन वारिताः ॥१४४७॥
नगरं हिमवृष्ट्यन्ते स यियासुर्युयुत्सया । ताटस्थ्येनाहिताकूटान्भृत्याञ्ज्ञात्वाब्रवीद्वचः ॥१४४८॥
प्रसह्य प्राप्नुयां राज्यमिति पृथ्वीहरे सति । हते तु तस्मिन्दायादेऽविपन्नः स्यां पतिर्भुवः ॥१४४९॥
इत्यचिन्तयमेतत्तु दैवात्संजातमन्यथा । राज्यस्याशापि विरता हते प्रत्युत यद्रिपौ ॥१४५०॥
किं राज्येनाथ वा कृत्यं भोगमात्रोपयोगिना । जिगीषोरुचितं कस्य ममेवान्यस्य सेत्स्यति ॥१४५१॥
मुण्डं न्यपातयन्भूमौ यः पूर्वेषां पुरा मम । सिंहद्वारे मदीयेऽद्य तन्मुण्डं वर्तते लुठत् ॥१४५२॥
दश मासान्मदाढ्यानां सुखच्छेदं व्यधत्त यः । तत्तद्दुःखं स तु मया दशाब्दाननुभावितः ॥१४५३॥
एवं निर्व्यूढकर्तव्यतया नेष्याम्यवन्ध्यताम् । उपशान्तमनस्तापः सुस्थितया शेषमायुषः ॥१४५४॥
इत्याद्युक्त्वा गतष्टिक्काभ्यर्णं तं प्रणतं व्यधात् । प्रीत्या स हेमघटितश्वेतच्छत्रादिभाजनम् ॥१४५५॥
तद्विस्रम्भेण राज्याशापिशाच्योदितया पुनः । गृहीतोऽभ्येत्य शीतार्तस्तस्थावन्तर्विचिन्तयन् ॥१४५६॥
अत्यन्तानुचितं चान्यल्लवन्यैः संविवित्सुभिः । रक्षितं रक्षिणो न्यस्य हतक्ष्माभृत्कलेवरम् ॥१४५७॥
विपक्षाश्रयणेऽप्यस्मिन्स्वामिनोऽन्ते किमीदृशी । दशा शरीरस्येत्यन्तः कृतज्ञत्वेन चिन्तयन् ॥१४५८॥

राजा चम्पकी पुत्री महारानी देवलेखा अपनी बहिन तरललेखाके साथ चिताकी अग्निमें कूदी थी। लोगोंका कहना है कि ब्रह्माने देवलेखाके निर्माणमें सुन्दरताके समावेशकी हद कर दी थी ॥ १४४३ ॥ वल्लापुरमें उत्पन्न तथा उज्ज्वल गुणोंसे परिपूर्ण जज्जला और गग्गकी पुत्री राजलक्ष्मी भी उसी चिताग्निकी आहुति बन गयी ॥ १४४४ ॥ हिमवर्षाका अन्त हो जानेपर राज्यरोध करनेके लिए उद्यत देखकर डामरोंने अपने नये प्रभु भिक्षाचरका 'हिमराज' यह नया नामकरण किया ॥ १४४५ ॥ राजा भिक्षाचरने जब उत्पल आदि आततायियों द्वारा लाये हुए सुस्सलके मुण्डको अत्यधिक क्रोधरूपी अग्निसे भरी दृष्टि द्वारा इस तरह देखा कि जैसे वह उसे जला डालेगा ॥ १४४६ ॥ कोष्ठपाल तथा ज्येष्ठपाल आदि कुछ उच्च अधिकारी उस मुण्डका सत्कार करनेको उद्यत थे, किन्तु वैरके कारण भिक्षाचरने उन्हें मना कर दिया ॥ १४४७ ॥ हिमपात रुकनेके बाद युद्धके लिए नगरपर चढ़ाई करनेको उद्यत भिक्षु अपने सैनिकोंका झुकाव शत्रुकी ओर देखकर बोला—॥ १४४८ ॥ 'पृथ्वीहरके साथ मैं हठात् राज्य प्राप्त करूँगा और अपने दायाद सिंहदेवको मारकर कश्मीरका राजा बनूँगा ॥ १४४९ ॥ ऐसा मैंने सोचा था, किन्तु दैवसंयोगसे उसके विपरीत परिस्थिति आ गयी। शत्रुके मर जानेपर भी राज्य प्राप्तिकी आशा नहीं रह गयी ॥ १४५० ॥ अब भोगमात्रके लिए उपयोगी राज्यसे मुझे क्या काम है। एक विजिगीषुके लिए जो उचित था, वह मेरे जैसा और कौन कर सकेगा ? ॥ १४५१ ॥ पूर्वकालमें जिस सुस्सलने मेरे पूर्वजोंका मुण्ड काटकर भूमिपर गिराया था, उसीका मुण्ड आज मेरे सिंहद्वारपर लुढक रहा है ॥ १४५२ ॥ जिसने मेरे पूर्वजोंको दस महीनेतक दुःख दिया था, उस दुःखके बदले मैंने सुस्सलको दस वर्षतक विविध प्रकारके कष्ट दिये ॥ १४५३ ॥ किन्तु अब मैं निष्काम कर्म करके अपनी आत्माको शान्ति देता हुआ एक सुन्दर स्थितिमें रहकर जीवनकी शेष आयुको सफल करूँगा' ॥ १४५४ ॥ ऐसी-ऐसी बहुतेरी बातें कहकर वह टिक्कके पास गया और बड़े ही प्रेमपूर्वक स्वर्णनिर्मित श्वेत छत्र आदि उपकरण भेंट करके उसे प्रणाम किया ॥ १४५५ ॥ किन्तु टिक्कके समझानेपर वह फिर राज्यप्राप्तिरूपिणी आशापिशाचीके फेरमें फँस गया और ठंढकसे दुखी होता हुआ अपने महलमें आकर फिर उन्हीं बातोंको सोचने लगा ॥ १४५६ ॥ तदनन्तर लवन्योंने अत्यन्त अनुचित कार्यक्रमकी योजना बनायी। तदनुसार रक्षकों द्वारा रक्षित मृत राजा सुस्सलके शरीरके विषयमें वे लवन्य

दिदृक्षाव्याजतः सज्जकाख्यो नगरशस्त्रभृत् ।
आयातो वाप्युकं गोप्तृन्युद्धैर्जित्वाऽग्निसाद्व्यधात् ॥ तिलकम् ॥१४५९॥
स चतुर्नवताद्वर्षादारभ्यासादितच्छलैः । भूतैरधिष्ठितस्तिष्ठन्प्रजासंहारकार्यभूत् ॥१४६०॥
देवताधिष्ठिताविष्टदेहिवाक्यादिति श्रुतिः । भावितद्वधसंवादजनितप्रत्ययोद्ययौ ॥१४६१॥
तदीयानन्यथात्वेन छेत्ता भ्रमयिता च यः ।
तन्मुण्डस्यास्य स पुमांल्लब्धः सुप्तो मृतस्तथा ॥ तिलकम् ॥१४६२॥
भिक्षुः कापुरुषाचारहतौचित्यो व्यसर्जयत् । प्राचण्ड्यख्यातये मुण्डमथ राजपुरीं रिपोः ॥१४६३॥
उच्चलात्मजया तत्र देव्या सौभाग्यलेखया । नेतृन्पितृव्यमुण्डस्य जिघांसन्त्या निजानुगैः ॥१४६४॥
राजपुर्यामाकुलत्वं नीतायामाससाद तत् ।
तद्भर्तुः सोमपालस्य दूरस्थस्यान्तिकं चिरात् ॥ युग्मम् ॥१४६५॥
आदीनस्य मधुक्षैव्यग्राम्यधर्मादिकर्मसु । तिरश्च इव शोच्यस्य नेयबुद्धेः खशप्रभोः ॥१४६६॥
सभ्यैरुच्चावचं तत्र कर्तव्यं परिचिन्तितम् । स्वोचितं व्यञ्जितौचित्यानौचित्यं निरवग्रहैः ॥१४६७॥
नागपालस्तु सौभ्रात्रं लब्ध्वा भ्रातुः स्थितोन्तिके । सेहे मुण्डावशेषस्य नोपकर्तुर्विमाननाम् ॥१४६८॥
सुदीर्घदर्शिनोऽप्यन्ते कश्मीरेभ्यः पराभवम् । विशङ्क्योचुः सर्वथेदं सत्कार्यं वः शिरः प्रभोः ॥१४६९॥
क्रियते येन नियतेरन्यथात्वं सनाथताम् । विनिहत्य हरेर्दंष्ट्राः कुर्वन्तो यत्र जम्बुकाः ॥१४७०॥
तद्बोपालपुरे कालागुरुचन्दनदारुभिः । काष्ठैर्निष्ठां शिरो निन्ये वीतिहोत्रेऽथ शत्रुभिः ॥१४७१॥

कृतज्ञतापूर्वक सोचने लगे कि 'विपक्षी होते हुए भी हम अभागे अपने स्वामीके मर जानेपर उनके शरीरकी यह दशा देख रहे हैं ? ॥ १४५७ ॥ १४५८ ॥ तदनन्तर नागरिक शस्त्रागारका अधिकारी सज्जक उस स्थानपर गया, जहाँ राजाका शव रक्खा था। वहाँ वह उसके रक्षकोंसे लड़ा और उन्हें परास्त करनेके बाद वह शव लेकर अग्निमें जला दिया ॥ १४५९ ॥ राजा सुस्सलने ४१९४ लौकिक वर्षमें छलसे राजा बनकर अन्ततक प्रजाका भीषण संहार किया था ॥ १४६० ॥ एक मनुष्य ऐसा था कि जिसपर देवताकी सवारी आती थी। उसीपर आये हुए देवताके मुखसे भविष्यमें होनेवाले राजा सुस्सलके वधकी भविष्यवाणी सुनकर जनसाधारणको विश्वास हो गया था कि सुस्सल अवश्य मार डाला जायगा। उसके साथ यह शर्त थी कि जो मनुष्य उसका मस्तक काटकर ले जायगा, वह जबतक सोयेगा तबतक मरा पड़ा रहेगा ॥ १४६१ ॥ १४६२ ॥ तदनन्तर भिक्षाचरने मानवता तकका औचित्य त्यागकर अपनी प्रचण्डताका विज्ञापन करनेके लिए राजा सुस्सलका वह मुण्ड राजपुरी भेज दिया ॥ १४६३ ॥ वहाँपर उपस्थित राजा उच्चलकी पुत्री सौभाग्यलेखाने यह क्रूरता देखकर पितृव्यका मुण्ड लानेवाले मनुष्यका अपने अनुचरों द्वारा वध करा देनेका निश्चय कर लिया ॥ १४६४ ॥ क्योंकि बहुत दिनों बाद उसके पति और शासक राजा सोमपालकी कश्मीरसे दूर स्थित राजधानी राजपुरीमें जब वह मुण्ड पहुँचा तो वहाँके लोग क्रोध और शोकसे व्याकुल हो उठे ॥ १४६५ ॥ मदिराके नशेमें आकर बकवास और स्त्रीप्रसंग आदि कुत्सित कृत्योंमें व्यस्त खशराज सोमपालकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी और वह पशुओंके समान शोचनीय अवस्थाको पहुँच गया था ॥ १४६६ ॥ उसमें उचित और अनुचितकी विवेचना करनेकी सामर्थ्य नहीं थी। अतएव उसके मंत्रिमण्डलने तत्कालीन उच्चावच कर्तव्यके विषयमें विचार किया ॥ १४६७ ॥ खशराज सोमपाल उस समय वहाँ ही था। एक अच्छे भाईका कर्तव्य पालन करनेका सुअवसर उपस्थित देखकर वह राजाका अपमान नहीं सह सका ॥ १४६८ ॥ उस दूरदर्शी पुरुषने सोचा कि 'यदि इस मस्तकका अपमान हुआ तो राजपुरीको पराभवका सामना करना पड़ जायगा'। अतएव उसने यह आदेश दिया कि 'अपने प्रभु महाराज सुस्सलके मुण्डका समुचित सत्कार किया जाय' ॥ १४६९ ॥ जो नियतिके बिगाड़े हुए कामको बनानेका उद्योग करता है, वह मानो सिंहके मारे हुए शिकारको सियारोंके समान अपने पौरुषका केन्द्र बनानेका उद्योग

यथा प्राप्तिभ्रंशा धरणिपतिभावस्य विविधा यथा ह्रासोल्लासा अपि समरसीमासु बहुशः ।
यथा तत्तद्दीर्घव्यसनविनिपातानुभवनं तथा दृष्टस्तस्य प्रमयसमयोऽप्यद्भुततरः ॥१४७२॥
कस्यापरस्य तस्येव लेभिरे वह्निसत्क्रियाम् । एकत्रेतरगात्राणि मुण्डमन्यत्र मण्डले ॥१४७३॥
टिक्कादयोऽथ नगरं यान्तोऽवन्तिपुराध्वना । तत्र हन्तुं व्यलम्बन्त भासादीन्पूर्ववेष्टितान् ॥१४७४॥
युद्धाग्न्युद्दीपनग्रावप्रहारच्छेदकारिभिः । न ते जेतुमशक्यन्त तैः प्रयत्नपरैरपि ॥१४७५॥
स्थितैर्महाश्मप्राकारगुप्ते सुरगृहाङ्गणे । तैर्हन्यमानास्ते स्थातुं गन्तुं वा नाभवन्क्षमाः ॥१४७६॥
एवं प्राप्तविलम्बेषु तेषु लब्धान्तरः सुधीः । स्वीचकार प्रदानेन खड्वीडामरान्नृपः ॥१४७७॥
गृहीतनीविना तेषां सुज्जिः प्रायोजि सत्वरम् । तेन भासादिमोक्षाय पञ्चचन्द्रादिभिः समम् ॥१४७८॥
प्रापावन्तिपुरं यावन्न स तावत्तदग्रगान् । कय्यात्मजादीनालोक्य भङ्गं टिक्कादयो ययुः ॥१४७९॥
देवागाराद्विनिर्याता भासाद्यास्ते च विद्विषाम् । भग्नानामनुगान्हत्वा सुज्जेरन्तिकमाययुः ॥१४८०॥
लब्धप्रतापे नगरं दविष्ठे कम्पनापतौ । आययाविन्दुराजोऽपि टिक्कं संत्यज्य सानुगः ॥१४८१॥
चक्रे चित्ररथश्रीवभासादीनपि भूपतिः । पादाग्रद्वारखेर्यादिकर्मस्थानाधिकारिणः ॥१४८२॥
यथापूर्वमधीकागनजहत्सुज्जिरप्यभूत् । प्रतीहारमुखप्रेक्षी का कथेतरमन्त्रिणाम् ॥१४८३॥
प्रतीहारोऽपि निःसीमडामरग्रामसंमतः । तद्भेदचक्रिकां कुर्वन्नगाद्राज्ञः प्रतीक्ष्यताम् ॥१४८४॥
स नासीदसुहृद्व्यूहे कोऽपि तत्प्रेरणेन यः । नाश्रिश्रियन्नृपं नो वा बभूवाश्रयणोन्मुखः ॥१४८५॥

करता है ॥ १४७० ॥ तदनन्तर कालागुरु और चन्दन आदि बहुमूल्य काष्ठोंकी चिता सजाकर उसीपर राजा सुस्सलके मुण्डका दाहसंस्कार कर दिया गया ॥ १४७१ ॥ जैसे विचित्र ढंगसे राजा सुस्सलको राज्यकी प्राप्ति और राज्यच्युति देखी गयी थी, जैसे समरभूमिमें उसका अनेकशः उत्थान और पतन दृष्टिगोचर हुआ और जैसे जीवनमें बड़े बड़े संकटोंका अनुभव करना पड़ा, उसी प्रकार उस राजाका प्राणान्त भी बहुत ही अद्भुत ढंगसे हुआ॥ १४७२ ॥ उस राजाके समान अग्निसत्कारका सौभाग्य अन्य किसी राजाको प्राप्त हुआ था ? जिसके शरीरका अन्यत्र और मस्तकका अन्य देशमें दाहसंस्कार किया गया ॥ १४७३ ॥ उधर टिक्क आदि विद्रोही अवन्तिपुरके मार्गसे कश्मीरकी राजधानीकी ओर चले, किन्तु पहलेसे ही घिरे हुए भास आदि शत्रुओंका वध करनेके लिए रुक गये ॥ १४७४ ॥ लेकिन बड़े प्रयत्नपूर्वक युद्ध, अग्निकाण्ड, प्रस्तरप्रक्षेप और तोड़-फोड़ आदिकी कार्यवाही करके भी वे भास आदिको परास्त नहीं कर सके ॥ १४७५ ॥ क्योंकि वे लोग बड़े-बड़े पत्थरोंसे बनी चहारदीवारीवाले एक मन्दिरमें रहते थे। अतएव ट्टिक आदि शत्रुओंके प्रहारसे न वे वहाँ न रह पाते थे और न भाग ही सकते थे ॥ १४७६ ॥ इस प्रकार विलम्ब होनेपर अवसर पाकर बुद्धिमान् राजा सिंहदेवने पड्वी ग्रामके डामरोंको धन देकर उन्हें अपनी ओर मिला लिया ॥ १४७७ ॥ जैसे ही डामरोंने वह उत्कोच स्वीकार किया, वैसे ही राजाने भास आदि स्वपक्षियोंको छुड़ानेके लिए पंचचन्द्र आदिके साथ सुज्जिको भेजा ॥ १४७८ ॥ सुज्जि अवन्तिपुर नहीं पहुँचा था, तभी उसके अग्रगामी कय्यपुत्र आदिको देखकर टिक्क आदि विद्रोही भाग खड़े हुए ॥ १४७९ ॥ यह खबर पाते ही भास आदि वीर मन्दिरसे बाहर निकल आये और टिक्क आदिके अनुचरोंका वध करके सुज्जिके पास जा पहुँचे ॥ १४८० ॥ प्रभावशाली सेनापति सुज्जि जब अवन्तिपुरमें पहुँचा तो अपने अनुयायियों समेत इन्दुराज भी टिक्कको छोड़कर सुज्जिसे जा मिला ॥ १४८१ ॥ तदनन्तर राजा सिंहदेवने चित्ररथ, श्रीवक तथा भास आदिको पादाग्र, द्वार तथा खेरी प्रान्तका प्रमुख अधिकारी बना दिया ॥१४८२॥ अधिकार प्राप्त रहनेपर भी सुज्जि सदा राजाके मुख्य मंत्री प्रतीहारका मुख देखा करता था, तब अन्य मंत्रियोंकी बात ही क्या है ॥ १४८३ ॥ वह प्रतीहार भी समस्त डामरोंमें सम्मानित पुरुष माना जाता था। अतएव वह उनमें पारस्परिक भेद डालता हुआ राजा सिंहदेवकी भी प्रतीक्षाका पात्र बन गया था ॥ १४८४ ॥ शत्रुओंकी टोलीमें कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो उसकी प्रेरणासे राजाकी सेवामें

निह्नुतेशित्वसद्दशस्फूर्तिर्मूर्तो महीपतिः । आहारमप्यनासाद्य तन्मतं न न्यषेवत ॥१४८६॥
इत्थं नगरमात्रान्तर्लब्धपादप्रसारिकः । सोऽवर्तिष्ट समासन्नफलं कन्दलयन्नयम् ॥१४८७॥
संघटय्याखिलान्भिक्षुर्डामरान्विजयेश्वरे । अथाविघ्नादविघ्नं जिघृक्षुः शिशिरात्यये ॥१४८८॥
अदृष्टपूर्वं स्वचमूचक्रैक्यं वीक्ष्य डामराः । भिक्षोर्हस्तगतं राज्यं मत्वाशङ्किपताथ ते ॥१४८९॥
एकैकस्यैप धैर्यशौर्यमित्रामित्रादि दृष्टवान् । नोत्तिष्ठेत्याप्तराज्यः किमास्कन्देषु गृहान्तरात् ॥१४९०॥
इति संमन्त्र्य ते राज्यं सोमपालाय दित्सवः । दूतान्निगूढं प्राहिण्वन्सोऽपि दूतं व्यसर्जयत् ॥१४९१॥
आकाराचारवैक्लव्यैः पशुतुल्यस्य तस्य तैः । राज्यभोगा अभङ्गा नो भविष्यन्तीत्यचिन्त्यत ॥१४९२॥
भोगलोभोज्झितौचित्यदस्युसंघचिकीर्षितम् । देशेऽत्र पापात्पापीयो दैवान्न समपादि तत् ॥१४९३॥
दास्येऽप्ययोग्यो यो राज्ये स इत्यास्तां त्रपान्यतः । शक्येत पातुं देशोऽयं किमीपदपि तादृशा ॥१४९४॥

शालीन्पलालपुरुषोऽवति यः कृशानुदग्धाननश्चटकपेटकभीतिदानैः ।
त्रातुं स काननतरून्विहितो विदध्यात्किं तत्र भञ्जनकृतां वनकुञ्जराणाम् ॥१४९५॥

भिक्षोर्नेदिष्ठतां दिष्टवृद्धिव्याजात्ततो भजन् । तद्दूतो डामरान्गूढं नीविदानोद्यतान्व्यधात् ॥१४९६॥
वैशाखेऽथ कृतारम्भस्तदा संभावितत्वरः । निर्गत्य नगरात्सुञ्जिर्गम्भीरातीरमाययौ ॥१४९७॥
तस्याभियोगः श्लाघ्योऽभूद्योद्धुं यत्समवायिनः । एकाकी तावतो वीरानूरीकृत्य स निर्ययौ १४९८॥
अन्तःपाते साहसानां नाद्भुतं तद्विधेर्वशात् । जीयते लक्षमेकेन लक्षेणैकोऽथ वा युधि ॥१४९९॥

न आ उपस्थित हो अथवा आश्रयप्रार्थी न हो जाय ॥ १४८५ ॥ वह राजा भी अपनी प्रभुता भूलकर फुर्तीलेपनके साथ राजकार्य करता हुआ उस प्रतीहारका मत जाने विना भोजन भी नहीं करता था ॥१४८६॥ इस प्रकार नगरमें पैर फैलानेका अवसर पाकर राजा सिंहदेव शीघ्र फलदायिनी नीतिका पौधा विकसित करने लगा ॥ १४८७ ॥ उधर भिक्षाचर विजयेश्वरमें सब डामरोंको संघटित करके शिशिर ऋतु बीतनेके बाद आक्रमणकी तैयारी करने लगा ॥ १४८८ ॥ उस समय अदृष्टपूर्व डामरसेनाकी एकता देखकर डामर गण राज्यको भिक्षाचरके हाथों प्राप्त समझकर निश्शंक हो गये ॥ १४८९ ॥ वे एक-एक व्यक्तिके धैर्य, शौर्य, मित्र तथा शत्रु-पर नजर रखते थे। क्योंकि उन्हें यह भय था कि राज्य प्राप्त हो जानेके बाद कहीं घरकी फूट न पनप जाय ॥ १४९० ॥ तदनन्तर परस्पर मंत्रणा करके उन्होंने सोमपालको राजा बनानेका निश्चय किया और यह वृत्तान्त बतानेके लिए उनके पास दूत भेजा। उसी समय सोमपालने भी अपना दूत इन लोगोंके पास रवाना किया ॥ १४९१ ॥ क्योंकि भिक्षाचर आदि विद्रोही सोमपालके पशुतुल्य आकार, आचार एवं असावधानीको भलीभाँति जानते थे। अतएव उन्होंने सोचा कि इसे राजा बना देनेसे राज्यके समस्त भोग अबाध रूपसे हमारे लिए सुलभ हो जायँगे ॥ १४९२ ॥ किन्तु भोगके लोभवश औचित्य विहीन इन दस्युओंकी भीषण पापभरी आकांक्षायें दैवसयोगसे कुछ दिनके लिए दब-सी गयीं ॥ १४९३ ॥ दूसरी ओर उन्हें इस बातकी लज्जा भी थी कि जो मनुष्य दास बनने योग्य भी नहीं है, उसे हम राजा बनानेको उद्यत हैं। वह भला तनिक भी राज्यपालनका कार्य कर सकेगा ? ॥ १४९४ ॥ जिसका मुँह आगसे जला रहता है, वह पुआलका पुतला थप्पड़ तथा घूँसेका भय दिखाकर धानके खेतकी रखवाली कर लेता है, किन्तु क्या वह तोड़-फोड़के स्वभाववाले बनैले हाथियोंसे जंगलके वृक्षोंकी भी रक्षा कर लेगा ? ॥ १४९५ ॥ भिक्षाचरका बड़प्पन और उसकी भाग्यवृद्धिका आदर करते हुए सोमपालके दूतने चुपकेसे डामरोंको घूस देनेके लिए राजी कर लिया ॥ १४९६ ॥ उधर वैशाख-मासमें तैयारी करके सेनापति सुञ्जि शीघ्र नगरसे निकलकर गम्भीरा नदीके तटपर जा पहुँचा ॥ १४९७ ॥ सुञ्जिकी यह विजययात्रा इस लिए सराहनीय थी कि वह अकेला थोड़ेसे सैनिकोंको साथ लेकर शत्रुकी बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्ध करनेके लिए निकला था ॥ १४९८ ॥ साहसी पुरुषोंके लिए वैसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी। क्योंकि दैवयोगसे कभी एक व्यक्ति लाखों मनुष्योंकी रक्षा कर लेता है और कभी-कभी लाख

पारं तरीतुं निःसेतोः सरितोऽपारयन्नसौ । पारे परस्मिन्नहितानपश्यच्छरवर्षिणः ॥१५००॥
द्वित्रानिशाः स ते चासंस्तस्याः सिन्धोस्तटद्वये । रुद्धाः संनाहिनोऽन्योन्यरन्ध्रावेक्षणदीक्षिताः ॥१५०१॥
अथावन्तिपुरान्नौभिरानीताभिरबन्धयत् । सेतुं साश्वोऽतरत्सुज्जिरारुह्य तरणीं स्वयम् ॥१५०२॥
तरन्तमेव तं दृष्ट्वा योधैः कतिपयैः समम् । द्विषच्चमूर्मरुल्लोला द्रुमालीवाभवच्चला ॥१५०३॥
दृष्टं मुहूर्तादेतावदारूढः स च यत्तटम् । बद्धश्च सेतुस्तीर्णाश्च योधा भग्नाश्च विद्विषः ॥१५०४॥
न खड्गी न हयारोहो नापि शूली न चापभृत् । व्यावृत्य प्रेक्षितुं कश्चिदशकद्द्रुताकुलात् ॥१५०५॥
निबद्धवध्रशैथिल्याल्लोलपल्ययने हते । कोष्ठेश्वरस्याश्ववारा व्यलम्बन्तान्तरे क्षणम् ॥१५०६॥
निर्यन्त्र्य तेऽपि पर्याणं सुज्जौ पश्चात्प्रधाविते । वात्योद्धूतं रजश्चक्रमिव क्षिप्रं तिरोदधुः ॥२५०७॥
हतलुण्ठितविध्वस्तध्वजिनीका विरोधिनः । व्यानोड्डारादिषु ग्रामेष्वमिलन्खण्डशो गताः ॥१५०८॥
विजयेशाग्रगं तीर्त्वा वितस्तासेतुनग्रगः । भासोऽपि दस्यून्विदधे पलायनपरायणान् ॥१५०९॥
उषित्वा विजयक्षेत्रे तदाऽन्येद्युरुपागते । कम्पनेशे ययुस्त्यक्त्वा व्यानोड्डारं विरोधिनः ॥१५१०॥
तत्र स्थित्वा दिनैः कैश्चित्स देवसरसोन्मुखः । शिश्रिये भेदनिर्यातैरेत्य टिक्कस्य गोत्रिभिः ॥१५११॥
जयराजयशोराजौ तन्मुख्यौ भोजकात्मजौ । प्रविश्य देवसरसं व्यधाट्टिक्कोपवेशने ॥१५१२॥
ययुर्विनष्टसंघातास्तस्मिन्पश्चात्प्रधाविते । भिक्ष्वादयः शूरपुरं स्वोर्वीं कोष्ठेश्वरादयः ॥१५१३॥
गर्हां महाभये सोमपालदूतः पलायितः । दास्याः सुतेन प्रहितः कुत्रास्मीति प्रभोर्व्यधात् ॥१५१४॥
स हि ताद्दृङ्महारम्भक्षोभसाध्योन्नतीच्छुताम् । तस्य सिंहीस्पृहाक्रान्तगोमायुवदमन्यत ॥१५१५॥

व्यक्ति एक मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥१४९९॥ उस समय गम्भीरा नदीपर कोई पुल नहीं था। अतएव वह नदीको पार नहीं कर सका और उस पार शत्रुकी सेना पड़ी थी, जो इस पारवाले सुज्जिके सैनिकोंपर बाण बरसाने लगी ॥१५००॥ इस प्रकार दो-तीन रात्रितक सुज्जि नदीके तटपर ही रुका रहा। इस बीच दोनों तटके सशस्त्र योद्धा परस्पर एक दूसरेका छिद्र देखते रहे ॥१५०१॥ तदनन्तर सुज्जिने अवन्तिपुरसे नौकायें मँगवा-कर पुल बँधवाया और अपने घोड़ेपर सवार होकर नदी पार की ॥१५०२॥ कुछ योद्धाओंके साथ सुज्जिको नदी पार करते देखकर शत्रुसेना वायुके झोंकेसे हिलनेवाले वृक्षसमूहकी भाँति काँप उठी ॥१५०३॥ मुहूर्त भरके भीतर यह कौतुक देखनेमें आया कि जैसे ही सेतु बाँधकर सुज्जि परली पार पहुँचा. वैसे ही शत्रुके सैनिक वहाँसे पलायन कर गये ॥१५०४॥ उन भगोड़े सैनिकोंमेंसे खड्गधारी, शूलधारी, अश्वारोही एवं धनुर्धारी किसी भी योद्धाने भागते समय मुड़कर पीछेकी ओर निहारनेका साहस नहीं किया ॥१५०५॥ वेगसे भागनेके कारण घोड़ोंके साज ढीले पड़ गये थे, सो उन्हें ठीक करनेके लिए कोटपालके अश्वारोही क्षणभर रुक गये ॥१५०६॥ वे घोड़ोंके साज ज्योंही ठीक कर चुके, त्योंही पीछेसे सुज्जिको आते देखा। बस, वे चक्करदार वायु (बवण्डर) से उठी हुई धूलिराशिके समान भागकर अलक्षित हो गये ॥१५०७॥ इस प्रकार निहत, लुण्ठित एवं विध्वस्त सेनावाले शत्रु छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें बँटकर व्यानोड्डार आदि ग्रामोंमें जा छिपे ॥१५०८॥ उसी प्रकार भास भी वितस्ता नदीको सेतुसे पार करके विजयेश्वरकी ओर अग्रसर हुआ और मार्गमें दस्युओंको मार भगाया ॥१५०९॥ विजयक्षेत्रमें पहुँचकर भास वहाँ ही रुक गया और जब दूसरे दिन सुज्जि भी वहाँ जा पहुँचा. तब शत्रु वह स्थान त्यागकर व्यानोड्डार चले गये ॥१५१०॥ कुछ दिन विजयक्षेत्रमें रहकर सुज्जि टिक्कके सगोत्रियोंके भेद डालने-पर देवसरस चला गया ॥१५११॥ जयराज तथा यशोराज ये दोनों भोजराजके मुख्य पुत्र देवसरस जाकर टिक्कके घर पहुँचे ॥१५१२॥ किन्तु जैसे ही सुज्जिने उनपर धावा किया, वैसे ही उनकी टोली छिन्न-भिन्न हो गयी और भिक्षु शूरपुर तथा कोटपाल अपने घर भाग गया ॥१५१३॥ उस महाभयके उपस्थित होते ही सोमपालका दूत भागकर अपने दासीपुत्र प्रभुके पास जा पहुँचा और वहाँका सब समाचार कह सुनाया ॥१५१४॥ जब सोमपालने उस महान् असमाध्य उन्नतिकी आकांक्षाको किसी सियारका सिंहिनीके साथ होड़ करनेके समान

प्रमादात्स्वामिनो राज्यं चिरं नष्टं मितैर्दिनैः । सुज्जिः प्रसाद्य प्रददावेवं स स्वामिसूनवे ॥१५१६॥
शमालादीनपि व्यूढान्दानोपायेन डामरान् । पौरांश्च भिक्षाश्रयिणो राजाऽभ्येतुं प्रचक्रमे ॥१५१७॥
राज्ञः परीक्ष्य सामर्थ्यमथ कुर्मो यथोचितम् । इति सर्वाभिसारेण तं संमन्त्र्य रणं दधुः ॥१५१८॥
रजोजवनिकालक्ष्यभटौघनटताण्डवः । दादोदरेऽभूत्संग्रामः स वीरग्रामघस्मरः ॥१५१९॥
कोष्ठेश्वरवशं यातं रक्षता पितरं क्षतम् । लब्धाः सहजपालेन श्लाघाः प्रकृतिभिः समम् ॥१५२०॥
श्रमस्तत्राविशेषोऽभूद्राज्ञो भिक्षाचरस्य च । भिक्षुस्त्वहन्यसंवेद्यं विवेदात्मपराजयम् ॥१५२१॥
ततः प्रभृति यः प्रातः स न सायमदृश्यत । योऽद्य वा न परेद्युः स सैनिको भैक्षवे बले ॥१५२२॥
एवं त्यक्त्वा परान्पौरडामरेषु नृपान्तिकम् । प्रयात्सु लाभसत्कारानुचितान्प्राप्नुवत्सु च ॥१५२३॥
क्वाप्यहंपूर्विकोत्तस्थौ मनुजेश्वरकोष्ठयोः । प्रयातुं पार्थिवाभ्यर्णं लाभसौख्याभिलाषिणोः ॥१५२४॥
ज्ञात्वाऽथ तत्काकरुहाद्गृहीतस्वपरिच्छदः । देशान्तरोन्मुखो भिक्षुराषाढे मास्यवाचलत् ॥१५२५॥
अनुयाद्भिः स दाक्षिण्यशेषाद्विहितसान्त्वनैः । तदाद्यैर्डामरैः क्रुध्यन्न निरोद्धुमपार्यत ॥१५२६॥
अकरोत्स्वैरिणीसूनुतया शीलबहिष्कृतः । अतिरूपेषु दारेषु तस्य कोष्ठेश्वरः स्पृहाम् ॥१५२७॥
सटां हरेः फणारत्नमहेर्ज्वालां हविर्भुजः । बालां च तस्य संस्प्रष्टुं कोऽप्रशान्तस्य शक्नुयात् ॥१५२८॥
समं सौस्सलिना बद्धसंधिराश्रयकांक्षिणः । सोमपालः स्वविषये नादात्तस्य प्रतिश्रयम् ॥१५२९॥
उद्वेजितः प्राणहरैः प्रयत्नैस्तस्य सर्वतः । तद्देशदुर्गममहीसीमान्तं सुल्हरीं ययौ ॥१५३०॥

हास्यास्पद एवं असंभव समझा ॥ १५१५ ॥ इस प्रकार स्वामी अर्थात् राजा सुस्सलके प्रमादवश चिरकालसे नष्ट राज्य इने-गिने दिनोंमें सुज्जिने अपने स्वामिपुत्रको प्रसन्न करके दे दिया ॥ १५१६ ॥ तदनन्तर संगठित डामरों तथा भिक्षुके आश्रित नागरिकोंको दान-मान आदिसे प्रसन्न करके राजा सिंहदेव शमाला आदिको भी हस्तगत करनेका चक्र रचने लगा ॥ १५१७ ॥ उधर भिक्षाचर तथा कोष्ठपाल आदिने यह निश्चय किया कि राजाकी सामर्थ्य देखकर बादमें जो उचित होगा, सो किया जायगा। यह सोचकर उन्होंने कृत्रिम युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १५१८ ॥ धूलके पर्देके पीछे दिखायी देनेवाले योद्धारूपी अभिनेताओंका ताण्डवनृत्य स्वरूप और वीरोंके लिए अधम वह युद्ध दामोदरमें छिड़ा ॥ १५१९ ॥ जहाँ कोष्ठेश्वरके वशमें पड़े अपने घायल पिताकी रक्षा करते हुए सहजपालको जनसाधारणकी ओरसे बड़ी वाहवाही मिली ॥ १५२० ॥ उस बनावटी युद्धमें राजा सिंहदेव और भिक्षाचर दोनोंको बहुत परिश्रम करना पड़ा, किन्तु भिक्षुने तो एक ही दिनकी परेशानीसे घबड़ाकर अपनी पराजय मान ली ॥ १५२१ ॥ उसका परिणाम यह हुआ कि उसी दिन भिक्षुकी सेनामें जो योद्धा सवेरे दिखायी पड़ा, वह शामको नहीं दीखा और जो सायंकालको था, वह सवेरे नहीं दिखायी दिया ॥१५२२॥ तदनन्तर नागरिकों तथा डामरोंमेंसे बहुतेरे योद्धा प्रचुर लाभ एवं उचित सत्कार पानेकी आशासे भिक्षुका पक्ष त्यागकर राजा सिंहदेवकी ओर जा मिले ॥ १५२३ ॥ उस समय मनुजेश्वर तथा कोष्ठामें लाभ एवं सौख्यके अभिलाषी भिक्षुपक्षके लोगोंमेंसे बहुतेरे लोग 'पहले हम-पहले हम' कहकर परस्पर स्पर्धा करते हुए राजाके पास जानेके लिए उतावले हो उठे ॥ १५२४ ॥ काकरुहके मुखसे यह समाचार सुना तो आषाढ मासमें भिक्षाचर अपने परिवारको साथ लेकर परदेश चल पड़ा ॥ १५२५ ॥ भिक्षुकी उदारताका स्मरण करके तथा उसके क्रोधपूर्वक सान्त्वना देनेपर भी कुछ डामर अनुयायी उसके साथ चले, भिक्षु उन्हें किसी तरह नहीं रोक सका ॥ १५२६ ॥ उसके चले जानेपर कुलटाका पुत्र होनेके कारण शीलरहित कोष्ठेश्वर भिक्षुकी अतिरूपवती पत्नीको प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगा ॥ १५२७ ॥ सिंहकी सटा (गलेका बाल), सर्पके फनका मणि, आगकी लपट और तेजस्वी पुरुषकी स्त्रीको सामर्थ्य रहते भला कौन प्राप्त कर सकता है ॥ १५२८ ॥ वहाँसे चलकर भिक्षु सोमपालके राज्यमें पहुँचा और आश्रय चाहा, किन्तु राजा सिंहदेवके साथ सन्धि होनेके कारण उसने उसे अपने यहाँ आश्रय नहीं दिया॥१५२९॥ मार्गमें चारों ओरसे उसका प्राण लेनेके लिए अनेक प्रयत्न किये गये, जिनसे ऊबकर वह उस दुर्गम

त्रिगर्तेषु दया शीलं चम्पायां मद्रमण्डले। त्यागो दार्वाभिसारेषु मैत्री नामर्त्यधर्मिणाम् ॥१५३१॥
पीडयेत्त्यक्तभीर्भूभृद्दूरस्थे त्वयि डामरान्। त्वामेवाभ्यर्थ्य राजानं ततः कुर्युः क्रमेण ते ॥१५३२॥
क्ष्मां तद्व्रजामोऽर्थयितुं सांप्रतं नरवर्मणः।
मन्त्रिभिर्युक्तमित्युक्तमपि मन्त्रं न चाग्रहीत् ॥१५३३॥
वसाल्पपरिवारोऽस्मद्गृह इत्यथ गृह्णतः। श्वशुरप्रार्थनां तस्य भृत्याः पार्श्वादिवाचलन् ॥१५३४॥
प्रावर्ततात्र नगरे विशदैर्विभवोज्ज्वलैः। सुलग्नसुलभे काले वरयात्रेव डामरैः ॥१५३५॥
वीक्ष्याश्वच्छत्रतुरगैरेकैकं पार्थिवाधिकम्। सुस्सलक्ष्मापतेर्धैर्यं नैष्ठुर्यं तुष्टुवुर्जनाः ॥१५३६॥
औदार्याकारतारुण्यवेषसौन्दर्यमन्दिरम्। कोष्ठेश्वरोऽधिकं स्त्रीणां प्रययौ प्रेक्षणीयताम् ॥१५३७॥
प्रशान्तविप्लवे देशे ययावुत्सववाद्यताम्। विशङ्कलिलवन्यौघतूर्यघोषो दिवानिशम् ॥१५३८॥
क्षीराद्या लक्ष्मकेणापि सर्वे मडवराज्यतः। आनीताः पार्थिवाभ्यर्णं सैन्यार्णवभयंकराः ॥१५३९॥
अपि भूपालवाल्लभ्यादभूद्राजोपजीविनाम्। प्रतीहारगृहद्वारप्रवेशो बहुमानकृत् ॥१५४०॥
लवन्यलुण्ठितग्रामतया दुर्भिक्षदुःसहः। व्ययोत्तरङ्गः कालोऽभूत्स राज्ञो धनदश्रियः ॥१५४१॥
डामरेभ्यो नृपः पारात्संगृह्णन्कृतवेतनः। निनायाभ्यन्तरं वृद्धिं बाह्यं चापचयं जनम् ॥१५४२॥
तिष्यवैश्याघदेवाद्या ज्ञातयो जनकद्रुहाम्। राजद्रोहोचितां राज्ञा विपत्तिमनुभाविताः ॥१५४३॥
मासैश्चतुर्भिः स पितृप्रमयाहादनन्तरम्। अनन्यशासनं राष्ट्रं स्वमेव समपादयत् ॥१५४४॥

देशकी सीमाके उस पार मुल्हरी चला गया ॥ १५३० ॥ त्रिगर्तदेशमें दया, चम्पामें शील, मद्रमण्डलमें त्याग तथा दार्वाभिसारमें मैत्रीकी भगवानने सृष्टि ही नहीं की है ॥ १५३१ ॥ जब भिक्षु चलने लगा, तब उसके मंत्रियोंने उसे सलाह दी कि 'जब आप दूर चले जायेंगे, तब निर्द्वन्द्व होकर राजा जयसिंह डामरोंको बहुत सतायेगा। वैसी स्थितिमें प्रजा उस राजासे असन्तुष्ट होकर आपको ही कश्मीरका राजा बनायेगी ॥ १५३२ ॥ अतएव हम आपके लिए आश्रय प्राप्त करनेको नरवर्माके पास जा रहे हैं'। किन्तु मन्त्रियोंकी इस युक्तिसंगत सलाहको भी उसने नहीं स्वीकार किया ॥ १५३३ ॥ भिक्षु वहाँसे चलकर अपनी ससुराल पहुँचा। वहाँ ससुरने उससे कहा कि 'थोड़ेसे परिवारके साथ आप हमारे ही घर रहिए'। अपने ससुरकी यह प्रार्थना उसने स्वीकार कर ली। तब वहाँतक साथ गये हुए डामर भृत्य लौट पड़े ॥ १५३४ ॥ उधर कश्मीरकी राजधानीमें सुन्दर लग्न तथा शुभ अवसरपर राजा जयसिंहकी सवारी निकली। उस समय कीमती और चमकीले वस्त्र पहिनकर डामरगण उसके साथ इस प्रकार चले, मानो किसीकी बारातमें जा रहे हों ॥ १५३५ ॥ अश्व, छत्र तथा तुरगसे सम्पन्न उस जूलूसमें चलनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको राजासे भी अधिक सुसज्ज देखकर लोगोंने दिवंगत सुस्सलके धैर्य तथा जयसिंहके नैष्ठुर्यकी सराहना की ॥ १५३६ ॥ उदारता, आकृति, तारुण्य, वेष एवं सौन्दर्यके मन्दिर स्वरूप कोष्ठेश्वरको वहाँकी स्त्रियाँ विशेष चावसे देखती थीं ॥ १५३७ ॥ इस प्रकार जिस राज्यका विप्लव शान्त हो चुका था, उस कश्मीरमें नित्य उत्सवके बाजे बजते रहते थे और झुण्डके झुण्ड लवन्योंकी तुड़ही रात-दिन सुनायी देती थी ॥ १५३८ ॥ सैन्यरूपी समुद्रके लिए भयंकर क्षीर आदि योद्धाओंको लक्ष्मकने मडवराज्यसे लाकर राजाके समीप उपस्थित कर दिया ॥ १५३९ ॥ राजा जयसिंहका प्रिय होनेके कारण सभी राजोपजीवियों-का प्रतीहारगृहद्वारके भीतर प्रवेश लक्ष्मककी ही मर्जीपर होता था और वह सबका बहुत सम्मान करता था ॥ १५४० ॥ कहाँ पहले लवन्यों द्वारा सब ग्राम लुट जानेके कारण राज्यमें सदा दुःसह दुर्भिक्षकी स्थिति बनी रहती थी और अब उस कुबेर सदृश श्रीसम्पन्न राजा जयसिंहके राज्यमें व्ययकी अपेक्षा बहुत अधिक आय होने लगी ॥ १५४१ ॥ डामरोंमेंसे जो उपयोगी थे, उन्हें राजाने राज्यके आभ्यन्तर कार्यपर और जो साधारण श्रेणीके लोग थे, उन्हें बाहरी कामोंपर नियुक्त कर दिया ॥ १५४२ ॥ तिष्यवैश्य तथा अघदेव आदि जातियोंके जिन लोगोंने उसके पिताकी हत्या की थी, उन्हें राजद्रोहके अनुरूप दण्ड भोगना पड़ा ॥ १५४३ ॥ इस प्रकार

निर्धाम नगरं पौराः सर्वसामर्थ्यवर्जिताः । अनन्तै राष्ट्रमाकीर्णं डामरैः पार्थिवोपमैः ॥१५४५॥
बद्धमूलो नातिदूरे सर्वभारसहो रिपुः । सबाह्याभ्यन्तरा मन्त्रिसामन्ता वैरिसंश्रिताः ॥१५४६॥
मन्त्रोपदेशो वृद्धस्य नैकस्यापि नृपास्पदे । अधर्मबहुलाः सर्वे भृत्या द्रोहैकवृत्तयः ॥१५४७॥
राज्यारम्भे बभूवेयं या सामग्र्यस्य भूपतेः । सा स्मर्तव्यान्तराज्ञातुं प्रत्युदन्तं विवेक्तृभिः ॥१५४८॥
प्रासप्रसङ्गात्तदिदं गुणग्रामोपवर्णनम् । वक्ष्यमाणं सुबहुशोऽप्यत्र लेशात्प्रदर्श्यते ॥१५४९॥
पूर्वापरानुसंघानवन्ध्यैर्दृष्टान्तवत्कथाः । नावुद्ध्वातिगभीराणां शक्या रसयितुं गुणाः ॥१५५०॥
प्रत्यक्षस्य गुणान्राज्ञो विचिन्वन्तो यथास्थितान् । अनीर्ष्यस्य भविष्यामो विवेकस्यानृणा वयम् ॥१५५१॥
स्थितस्य तत्त्वविज्ञाने नान्यस्य हि पटुर्जनः । अमानुषानुभावस्य राज्ञः किं पुनरीदृशः ॥ १५५२॥
हितानां दाराणां सदृशसुखदुःखस्य सुहृदः कवेः सोल्लेखस्य प्रियसकललोकस्य नृपतेः ।
स्थितानां कोऽप्यत्र व्यवहितविवेकः स्वकृतैरसामान्यं ज्ञातुं सुभगमनुभावं न कुशलः ॥१५५३॥
भवेत्प्रासप्रसरणा परिणामेऽथ वा मतिः । कथं सर्वस्याद्भुतायां निष्ठायां गुणदोषयोः ॥१५५४॥
सन्त्येवास्यापि विषमाः स्वभावा दोषतां जनः । येषां विपाकभव्यत्वमजानन्गणयत्ययम् ॥१५५५॥
विकासः केषांचिन्नयनविषमैर्विद्युदुदयैः परेषामुद्भूतिः श्रवणकटुभिर्दीर्घरसितैः ।
न चेष्टा काप्यन्योपकृतिपरिहीना जलमुचो जडो वर्षादन्यं गणयति गुणं नास्य तु जनः ॥१५५६॥
गुणॉल्लोकोत्तरान्शृण्वन्नस्यानुभवगोचरान् । भविता पूर्वभूपालकृत्ये सप्रत्ययो जनः ॥१५५७॥

पिताके मरण होनेके दिनसे लेकर चार महीनेके अन्दर राजा जयसिंहने अपने राज्यका शासन इतना अच्छा कर दिया कि वैसा शासन अन्य किसी राज्यमें था ही नहीं ॥१५४४॥ पहले उस नगरमें कोई घर नहीं था, नागरिकोंकी सब सामर्थ्य समाप्त हो गयी थी और राजाओंके सदृश प्रभावशाली असंख्य डामरोंने उस राज्यको चारों ओरसे घेर रक्खा था ॥१५४५॥ सब प्रकारके खर्चका भार सहनेमें समर्थ शत्रु अपनी जड़ जमाकर राज्यके पास ही डेरा डाले पड़ा रहता था और राज्यके सभी बाहरी तथा भीतरी मंत्री-सामन्त शत्रुसे मिले रहते थे ॥ १५४६ ॥ राज-दरबारमें किसी भी वृद्ध पुरुषके उपदेशकी सुनवाई नहीं होती थी। उस समय सभी राजसेवक अधर्मी थे और एकमात्र राजद्रोह ही उनका धन्धा था ॥ १५४७ ॥ किन्तु राजा जयसिंहके शासनसूत्र सम्हालते ही वहाँ जो कायापलट हो गयी, वह बड़े-बड़े विवेचकोंके लिए सदा स्मरण रखनेकी सामग्री बन गयी ॥ १५४८ ॥ उस राजाके बहुतेरे वर्णनीय गुणोंमेंसे प्रसंगवश यहाँ थोड़ेसे गुणोंका वर्णन किया जा रहा है ॥ १५४९ ॥ पूर्वापर अनुसन्धानसे हीन दृष्टान्तवत् कथायें जबतक गम्भीररूपसे न समझ ली जायँ, तब तक वे कथायें और वे गुण सरस नहीं बनाये जा सकते ॥ १५५० ॥ उस प्रत्यक्षवर्ती राजाके यथास्थित गुणोंका चयन करके हम ईर्ष्याशून्य विवेकसे उऋण हो जायँगे ॥ १५५१ ॥ अन्य किसी साधारण मनुष्यके भी तत्त्वकी बातको कोई भली-भाँति नहीं जान सकता, तब मानवोत्तर प्रभावसे सम्पन्न किसी राजाके विषयमें कोई पूर्ण जानकारी कैसे प्राप्त कर सकता है ? ॥ १५५२ ॥ इस संसारमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है कि जिसका जीवन अपने ही जीवनके हीन कार्यकलापके समान मानकर औरोंके द्वारा न निर्णीत कर दिया गया हो। दूसरेके प्रभावको भली-भाँति जाननेमें निपुण लोग तो हैं ही नहीं। हाँ, अपने हित-मित्रों, स्त्रियों, सुख-दुःखमें सदा साथ रहनेवाले मित्र, जिसकी कविता लिखी हुई हो उस कवि और सब लोगोंके प्रिय राजाके गुण-दोषके विषयमें भले ही कुछ निर्णय कर लिया जाय ॥ १५५३ ॥ अथवा परिणाम सामने आनेपर ही बुद्धि आगे बढती है, लेकिन गुण-दोषके विषयमें बनी हुई लोगोंकी निष्टापर उस बुद्धि बेचारीका भी क्या चारा है ॥ १५५४ ॥ जनसाधारणका स्वभाव ही कुछ ऐसा विषम होता है कि जिससे वह परिणामकी भव्यतापर विचार न करके प्रायः गुणको भी दोष समझ बैठता है ॥ १५५५ ॥ आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाली बिजलीसे बहुतोंके नेत्र खुल जाते हैं और कानोंको कटु लगनेवाले भीषण गर्जनसे कितनी ही वस्तुओंकी उत्पत्ति होती है। किन्तु जड़ मनुष्य मेघकी समस्त चेष्टाओंको निरुपकारी मानते हैं और साधारण श्रेणीके लोग तो बरसातके सिवाय मेघका और कोई

अनुच्चलन्नपि स्थानाद्भ्रूभङ्गेन चकार सः । विलोलांल्लोमकम्पेन दिङ्नाग इव भूधरान् ॥१५५८॥
विरुद्धवाहिनीवृन्दा गूढं यद्भयसंभवम् । वहन्ति तापं भूपाला और्वाग्निमिव सिन्धवः ॥१५५९॥
भूमिभृद्भास्वतस्तस्य तेजसाप्यायितो गतः । पूर्वराजयशश्चन्द्रो भुवनेष्वप्रकाशताम् ॥१५६०॥
यो यस्तं पश्यति स्वात्मसंमुखं स स सर्वतः । जानात्यवक्रोल्लिखितं देवबिम्बमिवेश्वरम् ॥१५६१॥
स्थिरप्रसादो दत्ते यत्तदादत्ते न स क्वचित् । भयं पुनः प्रणमतां दत्तं हरति विद्विषाम् ॥१५६२॥
कृष्टासेः प्रतिबिम्बं स्वं हित्वा नान्योस्य संमुखः । नापरः प्रतिशब्दाच्च गर्जतः प्रतिगर्जति ॥१५६३॥
तस्य नातिशितं कोपे प्रसादे निशितं पुनः । धत्ते तीक्ष्णैकधारस्य तरवारेस्तुलां वचः ॥१५६४॥
तस्याङ्कजन्मनो नित्याम्लानलक्ष्मीविकासिनः । प्रभवन्त्याश्रिताः कल्पशाखिनः पल्लवा इव ॥१५६५॥
राज्ञि गाम्भीर्यदुर्लक्ष्यमाहात्म्यप्रभविष्णुताम् । विवेद मन्त्रिणां लोकः सिषेवे तांश्च सर्वतः ॥१५६६॥
प्ररूढस्तु प्रतीहारो न विषेहेऽन्यमन्त्रिणाम् । पार्श्वद्रुमाणामेषाख्यौषधिस्तम्भ इवोद्गतिम् ॥१५६७॥
तस्योत्पाटयतः सर्वांस्तृणानीवावहेलया । स्फूर्जञ्जनकसिंहोऽभूदशक्योन्मूलनः परम् ॥१५६८॥
आ बाल्यात्संस्तुतो राज्ञः स कृत्स्नव्यवहारवित् । अधृष्यस्तरुणीभूततनयो ह्यास्त सर्वतः ॥१५६९॥
अद्वैधं यौनसंबन्धादिच्छतस्तत्सुतो मदात् । छुड्डाभिधस्तस्य ततः कृतावज्ञोऽतनोत्त्रपाम् ॥१५७०॥
रन्ध्रान्वेषी स तद्रोपादुपजापैः क्षणे क्षणे । सस्नौ जनके यत्नान्नृपं द्वेषमजिग्रहत् ॥१५७१॥

गुण ही नहीं जानते ॥ १५५६ ॥ सो राजा जयसिंहके लोकोत्तर एवं अनुभवगम्य गुणोंको सुनकर लोगोंको प्राचीन राजाओंके बड़े-बड़े कामोंपर विश्वास हो जायगा ॥ १५५७ ॥ दिग्गजके समान वह राजा अपने स्थानसे हटे बिना ही केवल भौहें तिरछी करके पर्वतोंको रोमांचित एवं कम्पित कर देता था ॥ १५५८ ॥ उसके प्रच्छन्न भयसे सैन्यसमुदाय रो पड़ता था। जैसे समुद्र वडवानलका ताप सहते हैं, उसी प्रकार सभी राजे उसका तेज सहन करते थे ॥ १५५९ ॥ सब राजाओंमें सूर्यस्वरूप उस राजाके तेजसे तृप्त होकर उसके पूर्वकालीन राजाओंके यशरूपी चन्द्रमाका प्रकाश नष्ट हो गया था ॥१५६०॥ जो व्यक्ति उसको जहाँ देखना चाहता था, वह उसे वहाँ ही दिखायी दे जाता था। जैसे पत्थरपर सीधी-सादी उत्कीर्ण देवमूर्ति ध्यान करते ही सम्मुख आ जाती है, वही हाल उसका भी था ॥ १५६१ ॥ वह प्रसन्न होकर जिसे जो वस्तु दे देता था, उसे लौटाता नहीं था। यदि कोई शत्रु भी उसके समक्ष नतमस्तक हो जाता था तो वह उसका भय हर लेता था ॥ १५६२ ॥ जिस समय वह म्यानसे तलवार खींच लेता था, उस समय उसकी परछाहींके सिवाय और कोई भी उसके सम्मुख नहीं आता था और जब गर्जन करता था, तब प्रतिध्वनिके सिवाय अन्य किसी पुरुषका गर्जन नहीं सुनायी देता था ॥ १५६३ ॥ उसके कोपमें विशेष तीक्ष्णता नहीं थी, अपितु प्रसन्नतामें अतिशय तीक्ष्ण उसकी वाणी ही तीखी धार-वाली तलवारका काम कर डालती थी ॥१५६४॥ जिसके घर अम्लान लक्ष्मीका विकास होता रहता था, उस उत्तम कुलमें जनमे हुए राजा जयसिंहके आश्रित जन कल्पवृक्षके पल्लवकी भाँति सदा बढ़ते रहते थे ॥ १५६५ ॥ उसके मंत्रीगण राजाके गाम्भीर्य, कठिनाईसे देखे जाने योग्य माहात्म्य और प्रभुताको समझते थे। इसीसे राजा भी उनकी सब तरहसे सेवा करनेको प्रस्तुत रहता था ॥१५६६॥ अत्यधिक उन्नत अवस्थाको प्राप्त प्रतीहार लक्ष्मक अन्य मंत्रियोंकी उन्नति सहनेमें असमर्थ था। जैसे एशा नामक औषधिका वृक्ष अपने आस-पास अन्य वृक्षोंकी उत्पत्ति नहीं सह पाता ॥ १५६७ ॥ सो तृणोंके समान अवहेलनापूर्वक अन्यान्य मंत्रियोंको उखाड़ते हुए भी लक्ष्मक जनकसिंहका उन्मूलन नहीं कर सका ॥ १५६८ ॥ क्योंकि बचपनसे ही वह राजाका स्नेहभाजन रहता आया था और उस राजाके समस्त व्यवहारोंसे सुपरिचित था। उसके कई तरुण पुत्र चारों ओर विद्यमान रहते थे। इस वास्ते वह सबके लिये अजेय बना हुआ था ॥ १५६९ ॥ किन्तु छुड्डा नामक उसका पुत्र किसी कारण पिता द्वारा अपमानित होकर अभिमानवश मन्त्री जनकसिंहके पीछे पड़ गया और उसने अपना मायाजाल फैलाया ॥ १५७० ॥ अब वह जनकके ऐबोंको बराबर देखता रहता और नित्य राजाको सब वृत्तान्त बताया करता था। ऐसा करते-करते उसने जनक और उसके अन्य पुत्रोंके प्रति राजाके हृदयमें द्वेष उत्पन्न कर दिया ॥ १५७१ ॥

राज्ञस्तुल्यवयःस्थौ हि जननीगाढसंस्तवात् । राज्यकाले हि सोत्सेकावास्तां तदवकाशदौ ॥१५७२॥
तुरंगयोग्योपस्कारस्नानाहारादि राजवत् । अकालज्ञावकुरुतां राजधान्यन्तरेव तौ ॥१५७३॥
सह स्ववृद्धैः समशीर्षिका प्रभोर्न युज्यते प्राप्तसमुन्नतेः क्वचित् ।
श्रितोन्नतेर्दर्दुरवृन्ददलङ्घनं सरोजषण्डस्य महाविडम्बना ॥१५७४॥
तद्भित्तिलाभसंरूढपैशुनालेख्यकल्पनाः । तद्वर्गेऽप्यखिले चक्रुस्तद्द्विपः कलुषं नृपम् ॥१५७५॥
अथ राजा विजयिनं सत्कर्तुं कम्पनापतिम् । कृतज्ञः श्रावणे मासि जगाम विजयेश्वरम् ॥१५७६॥
अत्रान्तरे पिञ्जदेवादागच्छन्गिरिगह्वरे । प्राप शूरपुरद्रङ्गाधीश्वरादुत्पलो वधम् ॥१५७७॥
पुष्याणनाडादुत्पिञ्जकृतये पुनरागतः । द्रङ्गाधिपेन गुटिकान्वेषिणा स ह्यवाप्यत ॥१५७८॥
क्षितौ निपतितः पार्श्वप्राप्तमेकं द्विपद्भटम् । मुमूर्षुर्विशिखाविद्धजानुमर्मापि सोऽव्यधीत् ॥१५७९॥
प्रत्यावृत्तस्य सत्कृत्य कम्पनेशं महीपतेः । द्वार्यवन्तिपुरस्थस्य द्रङ्गेशोऽरिशिरो व्यधात् ॥१५८०॥
स दृढद्राढिकामुष्टिरसुहृन्मुण्डमुद्गरः । चक्रे तस्य दृढामर्षशोकशङ्कुविपाटनम् ॥१५८१॥
आद्यायामेव यात्रायां जातारातिक्षयो जनैः । स निःशेषयिताशेषकण्टकानामगण्यत ॥१५८२॥
तस्मिन्प्रविष्टे नगरं विद्रुताः केऽपि सागसः । प्रापुर्जनकसिंहाद्याः केपि कारागृहस्थितिम् ॥१५८३॥
कैश्चित्पलायितैः शङ्कां ग्राहिताः पृथिवीपतेः । ततः कोष्ठेश्वरमुखाः प्रातिलोम्यं प्रपेदिरे ॥१५८४॥
शमालां निर्गतः श्रीमान्कार्तिकेऽथ कृती नृपः । तत्र तत्रासुहृद्ग्रामं संग्रामोग्रमवाधत ॥१५८५॥
यत्र सुस्सलभूपाद्याः प्रापुर्भग्नप्रतापताम् । तं हाडिग्राममदहत्सुज्जिरूर्जितविक्रमः ॥१५८६॥

राजा जयसिंह और जनकसिंह दोनों समवयस्क थे । राजमाता भी दोनोंको समानरूपसे प्यार करती थी । राज्यकालमें भी दोनों ही बड़े प्रेमसे अपना-अपना काम करते थे ॥ १५७२ ॥ दोनोंके घोड़े, वस्त्र, स्नान और आहार भी एक ही तरहके हुआ करते थे । इस प्रेमपूर्वक मेल-मिलापसे राजधानीमें दोनोंका समय बड़ा सुन्दर बीत रहा था ॥ १५७३ ॥ प्रभुकी बराबरी प्राप्त करके समुन्नत हो जानेको उन्नति नहीं समझनी चाहिए । क्योंकि जलनिवासी कमल अपनी महिमासे असाधारण उन्नति कर लेते हैं । किन्तु जब उनके झुण्डपर मेढक उछलने लगते हैं, तब उनकी कितनी बड़ी विडम्बना होती है ॥ १५७४ ॥ आगे चलकर उस जनकसिंहको दीवार बनाकर उसपर भलीभाँति चुगलीकी चित्रकारी होने लगी । जिसका परिणाम यह हुआ कि राजा जनकसिंहके साथ-साथ उसके साथियोंसे भी द्वेष करने लगा ॥ १५७५ ॥ तदनन्तर कृतज्ञ राजा जयसिंह विजयी सेनापति सुज्जिका अभिनन्दन करनेके लिए आषाढमासमें विजयेश्वर गया ॥ १५७६ ॥ उसी बीच पिंजदेवसे आते समय एक पर्वतके दर्रेमें शूरपुरके द्रंगाधिप राजा द्वारा उत्पल मार डाला गया ॥ १५७७ ॥ उसके बाद पुष्याणनाडसे लौटकर द्रंगाधिप अपने घोड़ेको खोजता हुआ उस स्थानपर पहुँचा ॥ १५७८ ॥ उसी समय किसी अज्ञात व्यक्तिके द्वारा छोड़ा हुआ बाण उसे लगा, जिससे वह वहाँ ही गिर पड़ा और मर्मस्थानमें आघात पहुँचनेके कारण तत्काल मर गया ॥ १५७९ ॥ सेनापति सुज्जिका सम्मान करके राजा जयसिंह जब लौटा तो अवन्तिपुरके द्वारपर पहुँचते ही द्रंगाधिपका एक सेनानायक शत्रुके रूपमें उसके समक्ष आया ॥ १५८० ॥ उसे देखते ही राजाने उसके मुखपर एक इतना करारा घूँसा मारा जिससे रुधिरकी धारा बहाता हुआ वह वहाँ ही मरकर धराशायी हो गया और उस सेनानायकके हृदयमें जो अपने प्रभुके मरणका शोकशंकु घुसा हुआ था, वह सदाके लिए निकल गया ॥ १५८१ ॥ इस प्रकार प्रथम यात्रामें ही एक प्रमुख शत्रुका संहार कर देनेके कारण लोग उसे समस्त कण्टकोंको दूर कर देनेवाला निष्कण्टक राजा मानने लगे ॥ १५८२ ॥ जब वह अपनी राजधानीमें लौटा तो बहुतेरे अपराधी स्वतः भाग गये और जनकसिंह आदि द्रोही पकड़कर जेलमें डाल दिये गये ॥ १५८३ ॥ कुछ लोगोंको राजासे भय था । इसलिए वे नगरसे निकल भागे । उसके बाद कोष्ठेश्वर आदि विद्रोही उससे वैर करने लगे ॥ १५८४ ॥ तदनन्तर वह कर्मठ राजा कार्तिक मासमें शमाला ग्राम गया । वहाँ उसे शत्रुसमुदायसे भीषण युद्ध करना पड़ा

महीभुजा पीड्यमानैराहूतः कोष्ठकादिभिः । अथ भिक्षाचरो राज्यगृध्नुर्भूयोऽप्युपाययौ ॥१५८७॥
एकैकाह्ना योजनानि प्रोल्लङ्घ्य दश पञ्च च । शिलिकाकोट्टनामानं गिरिग्राममवाप सः ॥१५८८॥
क्षुत्पिपासाक्लमारातिभीतिमार्गभ्रमोद्भवम् । क्लेशं नाजीगणन्मानी धावितः स जिगीषया ॥१५८९॥
कार्यमायाति वैमुख्यं जिगीषोर्विधुरे विधौ । प्रस्थितस्य पुरोवाते रथस्येव ध्वजांशुकम् ॥१५९०॥

आरम्भमात्रमपि कस्यचिदेव सिद्ध्यै कश्चित्प्रयत्नपरमोऽप्यफलप्रयासः ।
मन्थाद्रिणामृतमवाप्युदधेर्मुहूर्तात्सक्ति चिराद्विदधता न हिमाद्रिजेन ॥१५९१॥
भ्रष्टा सरित्स्ववसतेर्जलधिप्रदेशे वेलोर्मिवेल्लनवशेन विवर्तमाना ।
मिथ्यैव यच्छति धियं पुनरुद्गतेति नोत्थानमस्ति तु विधिव्यपरोपितानाम् ॥१५९२॥

तस्य तावन्महायत्नकठोरस्योदयक्षणे । सिद्धेर्विबन्धो विधिना विधुरेण व्यधीयत ॥१५९३॥
आयातं तमबुद्ध्वा तु तस्मिन्नेव क्षणेऽश्रयत् । पृथ्वीहरानुजः प्राप्तभङ्गः कृत्ताङ्गुलिर्नृपम् १५९४॥
कोष्ठेश्वरः स चावेत्य संप्राप्तं तमतिष्ठताम् । कृत्याक्षमौ ततः सर्पाविव मन्त्रनियन्त्रितौ ॥१५९५॥
ताभ्यां स्थानेथ सोन्यस्मिंस्त्याजितोध्वपरिश्रमम् । कार्कोटद्रङ्गमार्गेण निर्गतः सुल्हरीं ययौ ॥१५९६॥
आसीच्च तत्र प्रोच्चण्डदर्पकण्डूलदोर्द्रुमः । ऊष्मायमाणः कश्मीराक्रान्तिसंततचिन्तया ॥१५९७॥
उदीर्णसलिलस्येव तस्य रन्ध्रगवेषिणः । पुरं प्रविष्टो राजाऽपि प्रतीकारमचिन्तयत् ॥१५९८॥
अद्वितीयस्त्वमात्येषु प्रतीहारो मदोग्रताम् । सुज्जेरसहमानोऽभूच्छलान्वेषणतत्परः ॥१५९९॥

॥१५८५॥ जहाँ सुस्सल आदि राजाओंका भी प्रताप भंग हो चुका था, उस हाडिग्रामको असाधारण वीर सुज्जिने जलाकर भस्म कर दिया ॥ १५८६ ॥ इस प्रकार राजाके द्वारा पीडित किये गये कोष्ठक आदि दुष्टोंके बुलानेपर राज्यप्राप्तिकी आशासे भिक्षाचर फिर लौटा ॥ १५८७ ॥ एक-एक दिनमें पन्द्रह-पन्द्रह योजन मार्ग चलकर भिक्षु शिलिकाकोट नामक पहाड़पर आ धमका ॥ १५८८ ॥ भूख, प्यास, थकावट, शत्रुभय एवं राह भूल जाने आदि क्लेशोंको उस स्वाभिमानी पुरुषने कुछ नहीं समझा और शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिए कई दिन वह बराबर दौड़ता ही रहा ॥ १५८९ ॥ किन्तु जब विधाता ही विजिगीषुके विपरीत हो तो बना हुआ काम भी बिगड़ जाता है। जैसे रथ आगे बढ़ता है, तब ध्वजवस्त्र पीछेकी ओर उड़ता है ॥ १५९० ॥ किसीका कार्य आरम्भ होते ही सिद्ध हो जाता है और कोई प्रचुर प्रयत्न करके भी सफल नहीं होता। जैसे मन्दराचलने मन्थन करके मुहूर्त भरमें अमृत प्राप्त कर लिया था, किन्तु आसक्तिके कारण चिरकालतक प्रयत्न करनेपर भी हिमालयको सफलता नहीं मिली॥ १५९१ ॥ सरिता अपने निवासस्थानसे हटकर समुद्रमें मिलनेके लिए बड़ी बेचैनीसे दौड़ती है, लेकिन जब पास पहुँचती है तो समुद्रकी ऊँची-ऊँची लहरें उसे ढकेल देती हैं और उसके मनमें यह झूठा भ्रम भर देती हैं कि उसका उत्थान हो रहा है। किन्तु सच तो यह है कि विधाता जिसे नीचे गिरा देता है, उसका उत्थान कभी भी नहीं होता॥ १५९२॥ जब भिक्षुके कठोर प्रयत्नोंसे अभ्युदयका समय आया, तब वाम विधाताने उसकी सिद्धिमें बहुत बड़ी बाधा उपस्थित कर दी॥ १५९३ ॥ उसी समय राजा जयसिंहके आगमनसे अनभिज्ञ, पहले एक बार रणसे भागा हुआ और जिसकी उँगली कट चुकी थी, वह पृथ्वीहरका छोटा भाई वहाँ आ पहुँचा॥ १५९४ ॥ कुछ करनेमें असमर्थ होनेके कारण मंत्रनियंत्रित सर्पके समान कोष्ठेश्वर तथा पृथ्वीहरका भ्राता ये दोनों साथ-साथ रहने लगे ॥ १५९५॥ बादमें वहाँसे हटकर उन्होंने एक अन्य स्थानपर थकावट मिटायी और कार्कोट द्रंगके मार्गसे सुल्हरी चले गये ॥ १५९६॥ वहाँ जाकर वे दोनों ठहर गये। उनकी प्रबल एवं दर्पपूर्ण भुजाओंमें कश्मीरपर शीघ्रातिशीघ्र चढ़ाई कर देनेकी चिन्ताके साथ ही खुजली जैसी उठ रही थी॥ १५९७॥ बाढ़का पानी जैसे अपने बहावके लिए रास्ता ढूँढ़ता है, उसी प्रकार राजा जयसिंह अपने नगरमें जाकर शत्रुओंके प्रतीकारका उपाय सोचने लगा ॥ १५९८ ॥ उधर सब मंत्रियोंमें श्रेष्ठ प्रतिहार सेनापति सुज्जिके गर्व एवं उसकी उग्रताको सहनेमें असमर्थ होकर उसके साथ कोई

आययावथ विस्रम्भावष्टम्भं बल्गतः प्रभोः । धन्याग्रजः पूतमूर्तिर्जाह्नवीजलमज्जनात् ॥१६००॥
तदाद्याः संस्तुता राज्ञश्चिरसंभावितास्ततः । अनाप्नुवन्तोऽधीकारान्पर्यतप्यन्त चिन्तया ॥१६०१॥
कुर्वाणे कार्यतस्तस्मिन्भरं पित्र्येषु मन्त्रिषु । कालप्रतीक्षाक्षमतामूहुस्ते गहनाशयाः ॥१६०२॥
प्रतीहारस्तु दुर्लङ्घ्यमुज्झिनिर्लोठनोद्यतः । अप्रियानपि तान्प्रीत्या जग्राहोग्रोपयोगिनः ॥१६०३॥
व्यतीतेष्वथ मासेषु केषुचिद्दैवयोगतः । अकस्मादभवद्भूभृत्स्फीतलूतामयातुरः ॥१६०४॥
विस्फोटशोफातीसारवह्निमान्द्याद्युपद्रवैः । संदिग्धाभ्युदये तस्मिन्देशः पर्याकुलोऽभवत् ॥१६०५॥
इत्थं स्थितः कुलस्यैकभर्तुः स्वामी बली रिपुः । तत्पक्षा डामरा राष्ट्रं दुष्टमेव व्यचिन्तयन् ॥१६०६॥
आयत्यां च तदात्वे च हितकृत्यं विचारयन् । राज्ञः श्रीगुणलेखाया जातमेकसुतं शिशुम् ॥१६०७॥
पञ्चाब्ददेश्यं पर्माण्डिं सुज्जिर्भूमिपतिं तदा । चिकीर्षुर्मन्त्रयासास मातुलेनास्य गार्गिणा ॥१६०८॥
इत्थंभूतस्य बुभुक्षुः सन्नुः सुज्जिरव ते । पञ्चचन्द्रादिभिः सार्धं युक्त्या मन्त्रयतेऽनिशम् ॥१६०९॥
लब्धरन्ध्रः प्रतीहारो धन्याद्याश्च तदीरिताः । इत्यवोचंस्ततो भूपं स तथेत्यग्रहीच्च तत् ॥१६१०॥

पूर्वप्रजासृज इवाद्भुतवस्तुतत्त्वव्यावर्णनेन कुतुकं जनयन्ति तज्ज्ञाः ।
बाला इवाल्पमतिहार्यधियश्च सन्ति प्रायो नृपा नियमशून्यमनोऽनुभावाः ॥१६११॥

शौचस्थाने कृतवसतिभिः स्त्रीव्यवायालये वा निःशङ्को यश्छलनकुशलैर्मानसं संप्रविश्य ।
नीतो भूतैरिव विवशतां निर्भरं गर्भचेटैर्भद्रं भूपात्कथमिव ततः स्यादनष्टव्यचेष्टात् ॥१६१२॥

कपट करनेका अवसर खोज रहा था ॥ १५९९ ॥ उसी समय तेजस्वी राजा जयसिंहका परम विश्वासपात्र और गंगाजलमें स्नान करनेके कारण पावनदेह धन्यका बड़ा भाई उदय वहाँ आ पहुँचा ॥ १६०० ॥ धीरे-धीरे कुछ समय बीता और राजाके द्वारा प्रचुर सम्मान मिलनेपर भी उदय तथा उसके साथियोंको राज्यमें कोई अधिकारका पद नहीं मिला। इसलिए वे बहुत चिन्तित और सन्तप्त हुए ॥ १६०१ ॥ उन दिनों राजा जयसिंह पिताके समयवाले मंत्रियोंपर सब भार डालकर काम कर रहा था। अतएव उच्च विचारसम्पन्न वे उदय आदि समयकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ १६०२ ॥ उस समय मुख्य मंत्री प्रतीहार किसी भी तरह सुज्जिको परास्त करनेकी फिक्रमें था। अतएव वह समय आनेपर उग्ररूपमें उपयोग करनेके लिए सभी अप्रिय सामग्रियोंको भी बड़े प्रेमके साथ संचित कर रहा था ॥ १६०३ ॥ कुछ महीने बीतनेके बाद दैवयोगसे अकस्मात् राजा बड़े भयावक लूता-रोगसे ग्रस्त हो गया ॥ १६०४ ॥ उसके कारण राजाके शरीर भरमें बड़े-बड़े फफोले निकल आये, देह सूज गयी और मन्दाग्नि तथा अतीसार आदिने विकटरूप धारण कर लिया। अतएव राज्यके अभ्युदयमें यह महान् अन्तराय उपस्थित देखकर सारा देश व्याकुल हो उठा ॥ १६०५ ॥ राजकुलका एकमात्र प्रभु ऐसे संकटमें पड़ा हुआ था और शत्रु प्रबल हो रहे थे। तब शत्रुपक्षीय डामर यह चाहने लगे कि राज्यमें संकट बना रहे ॥ १६०६ ॥ ऐसी परिस्थितिमें वर्तमान तथा भविष्यका कल्याण सोचकर सेनापति सुज्जिने राजाके द्वारा महारानी गुणलेखासे उत्पन्न एकमात्र पंचवर्षीय बालक पर्माण्डिको राजा बनानेका विचार करके उस (पर्माण्डि) के मामा और गर्गके पुत्र (पञ्चचन्द्र) से सलाह की ॥ १६०७ ॥ १६०८ ॥ इसी समय अवसर पाकर मुख्य मंत्री प्रतीहारने राजासे कहा—'विद्रोहोन्मुख सुज्जि आपके पुत्रको साथ लेकर पञ्चचंद्र आदिके संग बड़ी युक्तिपूर्वक आजकल रात-दिन मंत्रणा कर रहा है'। उसके साथी धन्य आदिने इस बातका समर्थन किया और राजाने उनकी बात सही मान ली ॥ १६०९ ॥ १६१० ॥ बातें करनेमें निपुण धूर्त लोग ब्रह्माके समान अद्भुत शैलीसे अपने प्रतिपाद्य विषयका वर्णन करके लोगोंके हृदयमें उत्सुकता उत्पन्न कर देते हैं। उनके मायाजालमें प्रायः बालकों जैसे अल्पमति मनुष्य अथवा अनियंत्रित मनवाले राजे जल्दी फँस जाते हैं ॥ १६११ ॥ शौचस्थान अथवा मैथुनालयमें निवास करनेवाले भूतोंके समान प्रवंचनाचतुर एवं गर्मसे ही धूर्त अपने वचनकौशलसे जिस राजाके मनमें पैठकर उसकी मति फेर दें, उस निश्शङ्क तथा निश्चेष्ट राजासे प्रजाका कल्याण भला कैसे हो सकता है ? ॥१६१२॥

निर्हेतु प्रहसन्विटः प्रविशति क्षोणीपतेरन्तिकं प्रीत्युत्फुल्लदृगेप किं किमिति तं पृच्छत्यनच्छाशयम् ।
ब्रूते किंचिदसौ कचानथ कपन्सर्वंकपं मानिनां मानप्राणगुणेषु यत्सरभसं दम्भोलिपातायते ॥१६१३॥
सविभ्रमगतागतः किमपि भाषमाणः श्रुतौ प्रभोर्वलितलोचनं जगदवज्ञयालोकयन् ।
निजस्य मुखविक्रियाप्रणयताडनाद्यैर्विदन्ननुग्रहमिवाहितं नृपतिवल्लभो दुःसहः ॥१६१४॥
अपि जातु स दृश्येत निःसंक्षोभमतिर्नृपः । यो यन्त्रपुत्रक इव व्यक्तं धूर्तैर्न नर्त्यते ॥१६१५॥
यतो भृत्यान्तराज्ञानाज्जातः सर्वस्वसंक्षयः । तत्प्रजादुष्कृतै राज्ञां हा धिङ्नाद्यापि शाम्यति॥१६१६॥
सुज्जिरारोग्यसन्वेष्टुमागच्छन्पूर्ववत्प्रभोः । विन्यस्तरक्षिणः पश्यन्नविश्वासमखिद्यत॥१६१७॥
दाक्षिण्यं वामतां यातमाशये प्रतिबिम्बितम् । दर्पणस्येव राज्ञः स विभाव्याभूत्पराङ्मुखः ॥१६१८॥
तस्मिन्राजगृहे खेदान्मन्दीकृतगतागते । नृपतेस्तद्गतां प्रीतिं निःशेषां जहिरे खलाः ॥१६१९॥
भृत्यः सुज्जेश्चित्ररथोऽप्यास्थानद्विजभूः शठः । प्रातिलोम्यावहैर्भर्तुर्मन्त्रैरासीच्छ्रियोऽन्तकृत् ॥१६२०॥
नीरोगे राज्ञि दृष्टः स दिष्टवृद्ध्यै नृपास्पदे । वसुवर्षी विनिर्याय प्रार्थनार्थी गृहान्ययौ ॥१६२१॥
न तं प्रासादयद्राजा विशालबलवाहनः । आक्रम्योसौ कथं नः स्यादित्युपायं त्वचिन्तयत्॥१६२२॥
त्यज्येत हृतकार्योऽसौ निराशैरनुजीविभिः । मत्वेति तदधीकारानन्येभ्यस्तूर्णमार्पयत् ॥१६२३॥
राजस्थानोत्स्रजं धन्यमुदयं कम्पनादपि । अजिग्रहन्नरपतिः खेरीकार्यं च रिल्हणम् ॥१६२४॥
हृताधिकारे प्रव्यक्तवैकृते नृपतौ ततः । अल्पावशेपानुचरः सुज्जिरासीद्विशङ्कितः ॥१६२५॥
विमानितः पुराद्गङ्गायात्रामुद्दिश्य मानवान् । सोऽथ सुस्सलभूभर्तुरस्थीन्यादाय निर्ययौ ॥१६२६॥

अकारण हँसता हुआ धूर्त राजाके पास जा पहुँचता है, बड़े प्रेमके साथ आखें पसारकर वह दूषित आशयवाला वंचक राजासे अनेक प्रकारके प्रश्न करता है और उसके बाद अपने केश खुजलाता हुआ कुछ ऐसी बात कह देता है कि जो उस सम्मानित राजाके हृदयपर वज्रपातके समान भीषण प्रहार करती है ॥ १६१३ ॥ राजाका प्रिय धूर्त सर्वसाधारणके लिए बड़ा दुःसह होता है। क्योंकि वह बड़े नाजके साथ आ-जाकर राजाके कानमें कुछ कहता है, तिरछी आँखोंसे समस्त विश्वको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखता है और मुखविकार प्रदर्शनपूर्वक प्रेम तथा ताडन करके भी जैसे वह लोगोंका उपकार करता है ॥१६१४॥ इस संसारमें ऐसा कोई भी राजा नहीं है, जिसकी बुद्धि न क्षुब्ध हुई हो और वह यंत्रमय पुतलेके समान खुलकर धूर्तोंके संकेतपर न नाचता हो ॥ १६१५ ॥ एक भृत्यके अज्ञानसे सर्वस्व नष्ट हो जानेपर भी प्रजाके पापसे राजाओंकी वह कुबुद्धि आज तक शान्त नहीं हुई ॥ १६१६ ॥ पूर्ववत् कुशल-क्षेम पूछनेके लिए सुज्जि राजाके समीप गया तो उसने अविश्वास भरी दृष्टि उसकी ओर निहारा। यह देखकर सुज्जिको बहुत खेद हुआ ॥ १६१७ ॥ दर्पणमें प्रतिबिम्बकी भाँति राजाकी उदारताको अनुदारताके रूपमें परिणत देखा तो सुज्जिने भी उधरसे मुँह मोड़ लिया ॥ १६१८ ॥ अब धीरे-धीरे उसने राजाके यहाँ आवाजाही कम कर दी। इस प्रकार उन दुष्टोंने सुज्जिपर रहनेवाले राजाके समस्त प्रेमको खींच लिया ॥ १६१९ ॥सुज्जिका एक शठ सेवक राजाके पास ब्राह्मणके रूपसे आया-जाया करता था। वह राजाको विपरीत सलाह देकर उसकी श्रीवृद्धिका अन्त करनेमें सहायक सिद्ध हुआ ॥१६२०॥ जब राजा नीरोग हो गया तो लोगोंने देखा कि सुज्जिने सारे खुशीके बहुत-सा धन लुटाया और भगवानसे उसके कल्याणकी प्रार्थना करके अपने घर चला गया ॥ १६२१ ॥ किन्तु विशाल सेना तथा वाहनके साथ विद्यमान राजाने उसे प्रसन्न करनेके लिए दो बात भी नहीं की, बल्कि वह तो यही सोचता रहा कि कौन-सा अवसर मिले कि जब इसपर आक्रमण कर दिया जाय ॥ १६२२ ॥ अन्तमें राजाने यह उपाय सोचा कि 'यदि इसे कामपरसे हटा दिया जाय तो यह अपने आश्रितोंको लेकर भाग जायगा'। तदनुसार उसने उसके सब अधिकार औरोंको दिला दिये ॥१६२३॥ तदनन्तर राजाने धन्यको जज और उदयको सेनापति बनाया और खेरी प्रान्तके राज्यपालपदपर रिल्हणको नियुक्त किया ॥ १६२४ ॥ इस प्रकार प्रकटरूपसे अपना विकृत मनोभाव प्रकट करते हुए राजाने उसे कामसे

औत्सुक्यात्प्रार्थनाकांक्षी राजधान्यन्तिके न सः। निर्गच्छन्राजपुरुषैर्न राज्ञा वान्वरुध्यत ॥१६२७॥
तन्निर्वासनगर्वस्य स्थापनायानुयात्रिके। प्रतीहारस्तस्य गुप्त्यै कोशादेः स्वात्मजं व्यधात् ॥१६२८॥
निग्रहानुग्रहावस्मदायत्ताविति रक्षिणम्। पुत्रं प्रादाल्लक्ष्मको म इति ध्यायन्स विव्यथे ॥१६२९॥
निवृत्तो लक्ष्मको द्वारात्पर्णोत्सं शनकैर्गतः। अवारोपयदद्रोहो भागिकं लोहराचलात् ॥१६३०॥
प्रतीहारविसृष्टाय धात्रेयाय महीभुजः। प्रेमाभिधाय तत्कोट्टाधीकारं च समार्पयत् ॥१६३१॥
उत्खाय लोहरत्यागाच्छङ्काशङ्कुं महीपतेः। स ग्रीष्मविषमं कालं राजपुर्यामलङ्घयत् ॥१६३२॥
अमात्यकन्दुकव्रातपातनोत्पातनक्षमः। आयत्तडामरः प्राप प्रथां कामपि लक्ष्मकः ॥१६३३॥
द्वारेऽथाकारयत्सुज्जिप्रतिमल्लं विधित्सया। कृष्यमाणो राजवंश्यपौरुषं राजमङ्गलम् ॥१६३४॥
अनन्यदेशजः सुज्जेः शूरो मत्कोशपोषितः। कीर्तिमेष हरेद्ध्याविती्र्ष्याकलुषो हि सः ॥१६३५॥
खङ्गग्राहिसहायः स क्षुण्णः पर्यटितुं पथि। निःसुखश्चोपहास्यश्च तेन कार्यार्पणात्कृतः ॥१६३६॥
कर्तुं पदव्यां योग्यानामयोग्यान्प्रभवेन्न कः। तेषां गुणैस्तान्संयोक्तुं न शक्यं कारणैरपि ॥१६३७॥

पदे श्रीखण्डस्यानुचितमुचिते वर्ष्मणि निजे वृषाङ्कः प्रक्षेप्तुं प्रभवति चिताभस्म रभसात्।
न तस्स्वेच्छायत्तत्रिजगदुदयापायघटनोऽप्यसौ तद्गन्धेन स्फुटमिह पटुः संघटयितुम् ॥१६३८॥

तस्मिन्सुज्जिप्रतिस्पर्धाप्रौढे वोढुमक्षमे। दूतानसृजदानेतुं सज्जपालं दिगन्तरात् ॥१६३९॥
निर्वीरे मण्डले द्वेष्योऽप्यवापत्कार्यगौरवात्। कोष्ठेश्वरो नरपतेर्नितरामन्तरङ्गताम् ॥१६४०॥

हटा दिया तो सुज्जिके साथ बहुत थोड़ेसे साथी रह गये और वह सतर्क हो गया॥ १६२५॥ स्वाभिमानी सुज्जि इस प्रकार अपमानित होनेके बाद दिवंगत राजा सुस्सलकी अस्थियोंको लेकर गंगायात्राके लिए नगरसे निकल पड़ा॥ १६२६॥ चलते समय वह इस आशासे राजप्रासादके सामनेसे गुजरा कि शायद मुझे अब भी कोई जानेसे रोके, किन्तु उस समय न राजाने और न उसके किसी अनुचरने ही उसे रोका॥ १६२७॥ इस प्रकार सुज्जिको राज्यसे निकलवानेमें सफलता प्राप्त करके मुख्यमंत्री लक्ष्मक प्रतीहारने गर्वित होकर अपने पुत्रको इसलिए उसके साथ कर दिया कि वह उसके धन आदिका पता लगा ले॥ १६२८॥ 'निग्रह तथा अनुग्रहकी क्षमता अपने अधीन समझकर लक्ष्मक प्रतीहारने अपने पुत्रको मेरे पीछे लगाया है' यह सोचकर सुज्जिको बहुत क्लेश हुआ॥ १६२९॥ लक्ष्मक नगरके द्वारसे लौट आया और सुज्जि वहाँसे पर्णोत्सकी ओर चल पड़ा। चलते-चलते जब वह लोहर पहुँचा तो वहाँसे भागिकको उसने वापस लौटा दिया॥ १६३०॥ वहाँपर सुज्जिने प्रतीहारके भेजे हुए राजाके धात्रीपुत्र प्रेमको लोहरके किलेका सब अधिकार सौंप दिया॥ १६३१॥ इस प्रकार लोहरको त्याग देनेपर उसके मनसे राजाकी ओरसे होनेवाली सारी शंकायें दूर हो गयीं और वहाँसे आगे बढ़कर उसने राजपुरीमें ग्रीष्मकालके भीषण दिनोंको बिताया॥ १६३२॥ मंत्रियोंको गेंदकी भाँति ऊपर उठाने या नीचे गिरानेकी शक्ति प्राप्त करनेके बाद डामरोंको अपने अधीन करके लक्ष्मकने कुछ कीर्ति प्राप्त की॥ १६३३॥ तदनन्तर उसने सुज्जिके प्रतिद्वन्द्वी राजमंगलको द्वाराधीश बना दिया, जो राजवंशमें जनमा था और उसमें भरपूर वीरता थी॥ १६३४॥ ईर्ष्याके कारण कलुषितचित्त प्रतीहारने यह सोचकर सुज्जिके देशमें उत्पन्न एवं राज्यके कोपसे पालित राजमंगलकी नियुक्त की थी कि वह सुज्जिकी सारी कीर्ति समाप्त कर देगा॥ १६३५॥ इस प्रकार सारा अधिकार छीनकर प्रतीहारने केवल तलवार लटकाये, भूखे-प्यासे, सुखसे हीन और उपहासभाजन सुज्जिको पथपर भटकनेके लिए विवश कर दिया॥ १६३६॥ योग्यके स्थानपर अयोग्योंको बैठा देनेमें कौन समर्थ नहीं हो सकता, किन्तु अनेक उपायोंसे भी वह पहलेवाले योग्य पुरुषोंके गुण उन अयोग्योंमें नहीं ला सकता॥ १६३७॥ चन्दन लगाने योग्य अपने शरीरमें शंकरजी चिताको भस्म मल सकते हैं। किन्तु अपनी इच्छामात्रसे तीनों लोकोंकी सृष्टि तथा प्रलय करनेकी सामर्थ्य रखते हुए भी वे उस चिताभस्ममें चन्दनकी सुगन्धि नहीं उत्पन्न कर सकते॥ १६३८॥ उस नये पदाधिकारीमें सुज्जिसे प्रतिस्पर्धा करनेकी शक्तिका अभाव देखकर सज्जपालको विदेशसे लानेके लिए उसने दूत भेजे॥ १६३९॥ इस प्रकार कश्मीरमंडलमें

प्रीतिदायैस्तोष्यमाणस्तैस्तैस्तुष्टेन भूभुजा । विस्रब्धो नगरे तस्थौ सोऽपि लूतामयातुरः ॥१६४१॥
एवं दमकदम्बैक्यं राज्ञि कुर्वति कार्यतः । चालकैः सोमपालाद्यैः सुज्जिर्निन्ये‍थ वैकृतम् ॥१६४२॥
प्रतिज्ञाय लतामात्रसाध्यं कश्मीरनिर्जयम् । सोमपालाय तद्राज्यं सोऽङ्गीचक्रेऽवमानितः ॥१६४३॥
प्रतिशुश्राव तस्मै च भागिनेयीं स कन्यकाम् । धीमानत्रान्तरे सामदाने प्रयुयुजे नृपः ॥१६४४॥
द्वौ तावल्पाशयौ राजकन्ययोः स्वीक्रियां तदा । रभसाद्यावकुर्वाणावदत्तामन्तरं द्विषाम् ॥१६४५॥
उपायैर्जयसिंहस्य शकुनैश्च निरीक्षितैः । प्रेरितः सोमपालोऽथ सुज्जेर्मन्दादरोऽभवत् ॥१६४६॥
स्वयमेत्य प्रतीहारस्तत्र राजपुरीपतिम् । सीमान्तर्भुवमानिन्ये कन्यकोद्वाहसिद्धये ॥१६४७॥
जातां कल्हनिकाख्यायां महादेव्यां महीपतेः । उपयेमे नृपसुतां सोमोऽम्बापुत्रिकाभिधाम् ॥१६४८॥
याते तस्मिन्कृतोद्वाहे नागलेखाभिधां सुधीः । तत्स्वस्रेयीं प्रतीहारो भूभुजे प्रत्यपादयत् ॥१६४९॥
इत्थं राष्ट्रद्वये बद्धसंबंधे निरवकाशताम् । प्राप्तः प्रतस्थे हेमन्ते सुज्जिस्त्रिपथगोन्मुखः ॥१६५०॥
जालंधरे संघटितो ज्येष्ठपालो निनाय तम् । गाढावसाननिर्नष्टसौष्ठवं भिक्षुपक्षताम् ॥१६५१॥
त्वयि भिक्षाचरे चैकसैन्यनायकतां गते । नोपेन्द्रो वा महेन्द्रो वा समर्थौ प्रत्यवस्थितौ ॥१६५२॥
राज्यप्रदस्य ते यश्च चक्रे राजा विमाननाम् । तस्थुषो यश्च विषये प्रतिकुर्मस्तयोर्द्वयोः ॥१६५३॥
इति संप्रेरितस्तेन देङ्गपालान्तिकस्थितेः । यियासुः सोन्तिकं भिक्षोर्भागिकेन न्यषिध्यत ॥१६५४॥
अनिक्षिप्तवतोऽस्थीनि स्वामिनो जाह्नवीजले । न युक्तमेतत्ते कृत्यमित्यावेगादशासि च ॥१६५५॥

जब वीरोंका सर्वथा अभाव हो गया, तब कार्यके गौरववश कोष्ठेश्वर जैसा शत्रु भी राजा जयसिंहका अन्तरंग सलाहकार बन गया ॥ १६४० ॥ कोष्ठेश्वरने विश्वास प्राप्त करनेके बाद विविध भाँतिके उपहार देकर राजाको सन्तुष्ट कर लिया, तब उसे भी लूता अर्थात् चर्मव्याधि हो गयी और वह उसी नगरमें रहने लगा ॥ १६४१ ॥ इस प्रकार कार्यवश जब राजा दमन करने योग्य प्रतिरोधियोंसे मेल कर रहा था, तब उधर सोमपाल आदि राजविरोधी लोग सुज्जिको राजाके विरुद्ध उकसाने लगे ॥ १६४२ ॥ इस प्रकारकी चेष्टा करनेपर राजा द्वारा अपमानित सुज्जिने केवल छड़ी दिखाकर कश्मीरपर विजय प्राप्त कर लेनेका साहस करके वह राज्य सोमपालको दिला देना स्वीकार कर लिया ॥ १६४३ ॥ किन्तु इसी बीच राजा जयसिंहने सोमपालके साथ अपनी बहिनकी पुत्रीका ब्याह करना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार शत्रुपर उसने साम और दाननीतिका एक साथ प्रयोग किया ॥ १६४४ ॥ इस तरह दो तुच्छबुद्धि प्रतिद्वन्द्वियोंने राज्य तथा कन्यादानका वादा करके शत्रुको घरमें घुसनेका अवसर दे दिया ॥ १६४५ ॥ तदनन्तर जयसिंहके उपायों तथा दिखायी देनेवाले शकुनोंकी प्रेरणासे सुज्जिपर सोमपालका आदरभाव घट गया ॥ १६४६ ॥ कुछ दिन बाद प्रतीहार स्वयं राजपुरी आया और वहाँके नरेश सोमपालको विवाह करानेके लिए राजधानी ले गया ॥ १६४७ ॥ वहाँपर सोमपालने महादेवी कल्हणिकाकी पुत्री अम्बापुत्रिकाका पाणिग्रहण किया ॥ १६४८ ॥ इस तरह विवाह करके सोमपालके चले जानेपर बुद्धिमान् प्रतीहारने उस (सोमपाल) की बहिनकी लड़की नागलेखाका विवाह राजा जयसिंहके साथ करा दिया ॥ १६४९ ॥ इस प्रकार दोनों राज्योंमें सम्बन्ध हो जानेपर जब सुज्जिने अपने कार्यका कोई अवसर नहीं देखा, तब वह वहाँसे गंगाजीकी यात्रापर चल पड़ा ॥ १६५० ॥ जालन्धरमें उसे सुसंगठित सैन्ययुक्त ज्येष्ठपाल मिला और उसने सुज्जिको अपमानसे नष्ट महिमावाले भिक्षाचरके पक्षमें मिला दिया ॥ १६५१ ॥ ज्येष्ठपालने कहा—'यदि आप और भिक्षाचर एक सेनाके नायक हो जायँ तो इन्द्र तथा उपेन्द्र (विष्णु भगवान) भी आपका सामना नहीं कर सकते ॥१६५२॥ जिसने राज्य देनेका वादा करनेपर भी भिक्षुका अपमान किया और राज्यपर बैठे हुए जयसिंहने जो आपकी अवज्ञा की है, हमलोग उन दोनोंका प्रतीकार करेंगे ॥ १६५३ ॥ ज्येष्ठपालके इस प्रकार प्रेरित करनेपर देङ्गपालके यहाँ ठहरे हुए सुज्जिने जब भिक्षाचरके पास जानेकी इच्छा की, तब भागिकने उसे रोक दिया ॥ १६५४ ॥ उसने कहा—'जबतक आप अपने स्वामीकी

स्नात्वा ध्रुनग्रामेष्यामि पार्श्वं व इति निश्चयम् । स पीतकोशः कृत्वास्य ययौ प्रस्तुतसिद्धये ॥१६५६॥
प्रतीहारकरन्यस्तसर्वभारस्तु भूपतिः । मन्दाक्रान्तितया राज्यमसुस्थितममन्यत ॥१६५७॥
यो यो हि व्यग्रहीत्तं तं संधाय सविधस्थितः । तमन्वहं प्रतीहारः सानुग्रहमिवैक्षत ॥१६५८॥
प्रगल्भमाने शास्त्येवमुदयः कम्पनापतिः । अवधीच्छद्मना दृप्तं प्रकटं कालियात्मजम् ॥१६५९॥
अविश्वासोल्बणान्सर्वलावन्यानथ लक्ष्मकः । निर्मर्यादान्कम्पनेशमीपत्सान्त्वमजिग्रहत् ॥१६६०॥
स्नात्वाभ्येष्यति गङ्गायां यावत्सुज्जिर्विसूत्रताम् । तावत्कथं मया नेया कश्मीरा इति चिन्तयन् ॥१६६१॥
तावन्मात्रान्तरव्याप्त्या राज्ञो विज्ञाय डामरान् । भिन्नान्भिक्षाचरोऽविक्षद्विपलाटां हिमागमे ॥१६६२॥
मण्डलस्यान्तरे तस्य विविक्षो रुद्धडामरः । प्रतीहारो हिमर्तुश्च निषेद्धा समपद्यत ॥१६६३॥
स टिक्केन पितृद्रोहादेकान्तद्वेषिणा रिपोः । आनीतः संमतैर्दत्ताप्यायः सर्वैश्च डामरैः ॥१६६४॥
प्रतीक्षमाणो राज्याप्तिहेतुं सुज्जिसमागमम् । निर्भयष्टिक्कजामातुर्भागिकस्य खशप्रभोः ॥१६६५॥
बाणशालाभिधे दुर्गे वसन्नल्पोच्छ्रितावपि । दूतैर्विभेदमनयत्सर्वडामरमण्डलम् ॥१६६६॥
प्रमोदं सुहृदां त्रासं द्विषां च विसृजन्पुरः । व्यावर्ततार्थ गङ्गायाः सुज्जिर्विहितमज्जनः ॥१६६७॥
पूर्वविप्रकृते भिक्षावस्मिंश्चाभेदमागते । यथामुष्य महीभर्तुस्तथाऽस्माकं भयं भवेत् ॥१६६८॥
ध्यात्वेति सिंहदेवेन प्रार्थितो व्याजमादधे । सुज्जिस्वीकरणोद्योगे सोमपालो भयाकुलः ॥१६६९॥
सुज्जिर्जालंधरं प्राप्तः प्रातर्भिक्षाचरान्तिकम् । यावद्यास्यति तं सायं तद्दूतस्तावदासदत् ॥१६७०॥

अस्थियोंको गंगाजीमें न डाल दें, तबतक आपका ऐसा करना उचित न होगा' ॥ १६५५ ॥ तदनुसार उसने कोशपान पूर्वक ज्येष्ठपालसे कहा—'गंगास्नान करके जब मैं लौटूँगा, तब आप लोगोंसे मिलूँगा'। यह कहकर वह प्रस्तुत कार्य पूरा करनेके लिए वहाँसे चल पड़ा ॥ १६५६ ॥ तदनन्तर राज्यका सब भार प्रतीहारको सौंप कर राजा जयसिंहने राज्यको सुस्थित नहीं समझा ॥ १६५७ ॥ क्योंकि उन दिनों जो कोई लड़नेको उद्यत होता था, उनके पास पहुँचकर प्रतीहार सन्धि कर लेता था और उसे नित्य कृपादृष्टिसे देखा करता था ॥ १६५८ ॥ जब कि निर्भीकतापूर्वक शासनकार्य चल रहा था, उसी बीच सेनापति उदयने छल करके महान् अभिमानी कालियापुत्र प्रकटका वध कर दिया ॥ १६५९ ॥ तदनन्तर महामंत्री लक्ष्मकने अविश्वासके कारण उद्धत एवं मर्यादाविहीन लवन्योंको सेनापति उदयसे कुछ आश्वासन दिलाया ॥ १६६० ॥ उधर भिक्षाचरने सोचा कि जबतक सुज्जि गंगास्नान करके लौटेगा, तब तक मेरी निश्चित योजना विशृंखलित हो जायगी ऐसी स्थितिमें मैं कश्मीरको कैसे हस्तगत करूँगा' ॥ १६६१ ॥ उसी बीच राजा जयसिंहके साथ कुछ डामरोंका मतभेद हो गया। अतएव उन फूटे हुए डामरोंकी प्रेरणासे भिक्षाचर जाड़ेके दिनोंमें विपलाटा जा पहुँचा ॥ १६६२ ॥ वहाँसे आगे बढ़कर जब वह कश्मीरमण्डलमें घुसनेके लिए उद्यत हुआ, तब उसे राज्यका महामंत्री प्रतीहार और जाड़ेकी मौसम ये दो निषेधक सामने खड़े दिखायी दिये ॥ १६६३ ॥ उसी समय टिक्क भिक्षाचरके पास पहुँचा और उसे अपने साथ बुला ले आया। क्योंकि पितृद्रोहके कारण वह राजासे असाधारण वैरभाव रखता था और सर्व सम्मतिसे डामरोंने भी उसे यही सलाह दी थी ॥ १६६४ ॥ अब भिक्षु राज्यप्राप्तिके हेतुस्वरूप सुज्जिके आगमनकी प्रतीक्षा करता हुआ टिक्कके जामाता एवं खशजातिके प्रभु भागिकके यहाँ निर्भय भावसे रहने लगा ॥१६६५॥ वह बहुत कम ऊँचे बाणशाल नामक दुर्गमें रहता हुआ समस्त डामर समुदायमें दूतोंको भेज-भेजकर फूट डालने लगा॥१६६६॥ उस समय मित्रोंमें हर्ष तथा शत्रुओंमें भयका संचार करता हुआ सुज्जि गंगा स्नान करके आ पहुँचा ॥ १६६७ ॥ 'पहले ही अपमानित भिक्षाचरके साथ यदि सुज्जि भी मिल गया तो हमारे लिए एक बड़ा संकट खड़ा हो जायगा' ॥ १६६८ ॥ यह सोचकर राजा सिंहदेवने किसी बहाने सुज्जिको अपनी ओर मिलानेका प्रयत्न किया। जब सोमपालने सुज्जिको राजाका प्रस्ताव टालकर भिक्षुपक्षकी ओर मिलनेके लिए प्रयत्नशील देखा तो वह भयभीत हो उठा ॥ १६६९ ॥ सवेरे सुज्जि भिक्षाचरसे मिलनेके लिए जालन्धर चला

प्रेरितो ज्येष्ठपालेन निषिद्धो भागिकेन च । विरराम स तस्योक्त्या विपक्षाश्रयणग्रहात् ॥१६७१॥
ऋणं देशान्तरोपात्तं तव भूपोपनेष्यति । स्वं च दास्यत्यधीकारं मन्मुखप्रहितार्थनः ॥१६७२॥
इति दूतमुखेनोक्तः सोमपालेन चान्वहम् । विपक्षौत्सुक्यमुत्सार्य तद्देशाभिमुखो ययौ ॥१६७३॥
उदयः कम्पनाधीशो वैशाखे तीर्णसंकटः । खशान्वितेन संग्रामं प्रत्यपद्यत भिक्षुणा ॥१६७४॥
प्राक्तस्थुष्यल्पपृतने जाते पृथुवले ततः । तस्मिन्कोट्टान्तरं भिक्षुः प्राविशत्प्राप्तवेष्टनः ॥१६७५॥
राजाथ विजयक्षेत्रे निर्यातः प्रत्यपूरयत् । कम्पनेशस्य कटकं तास्ताः संप्रेषयंश्चमूः ॥१६७६॥
यन्त्रोपलशरासारविविधायुधवर्षिणी । दुर्गास्थितैर्नृपचमूः प्रत्ययोध्यश्मवर्षिभिः ॥१६७७॥
पतत्स्वश्मसु भिक्षोश्च नामलक्ष्मसु पत्त्रिषु । ग्रहीतुं दुर्गजान्राजसेना दीर्घापि नाशकत् ॥१६७८॥
दिनैरभ्यधिके मासमात्रे यातेऽग्रहीत्ततः । विदार्य मूलं दुर्गस्य धन्यः खाताम्बुसंभृतम् ॥१६७९॥
दुर्गभाजो वलासाध्या राज्युपायपरे धियम् । जाततद्वैरिवाधेच्छा धनलुब्धामदर्शयन् ॥१६८०॥
विससर्ज प्रतीहारमथ तद्वस्तुसिद्धये । राजा डामरसामन्तमन्त्रिराजात्मजैः समम् ॥१६८१॥
कोष्ठेश्वरत्रिल्लकाद्याः कृच्छ्रस्थस्य विमोक्षणम् । करिष्यामो वयं भिक्षोरिति वुद्धया तमन्वयुः ॥१६८२॥
पश्यन्संकटशैलाग्रादधः कोट्टं मितोन्नति । जितं मेने प्रतीहारो वीक्ष्यानन्ताः स्ववाहिनीः ॥१६८३॥
पूर्वस्थितैः प्रतीहारानुगैश्चान्यत्र वासरे । अयोधि सर्वसैन्यस्य वलात्कोट्टं जिघृक्षुभिः ॥१६८४॥
ते तावन्तोऽप्यश्मवृष्ट्या तथा तैः प्रतिचक्रिरे । नास्तीदं विक्रमेणेति यथागृह्णन्विनिश्चयम् ॥१६८५॥
वीरदेहद्रुमाग्रेभ्यो न्यपतन्नश्मभिर्हताः । निर्यदस्रौघसरघाः शीर्षभ्रमरगोलकाः ॥१६८६॥

गया, किन्तु राजा सिंहदेवका दूत उसके लौटने तक वहाँ ही टिका रहा ॥ १६७० ॥ तदनन्तर ज्येष्ठपालकी प्रेरणा तथा भागिकके निषेधसे उनकी वातोंको ध्यानमें रखकर सुज्जिने विपक्षके आश्रय ग्रहण करनेका विचार त्याग दिया ॥ १६७१ ॥ राजा सिंहदेवके दूतने कहा था कि 'देशान्तरकी यात्रामें आपके ऊपर जो ऋण हो गया है, उसे महाराज स्वयं उतार देंगे और आपको पुराना सेनापतिका पद पुनः प्राप्त हो जायगा' ॥ १६७२ ॥ इस प्रकार राजदूत तथा वार-वार सोमपालके कहनेपर सुज्जि भिक्षाचरसे मिलनेका विचार छोड़कर कश्मीरकी ओर चल पड़ा ॥ १६७३ ॥ वैशाखमासमें संकट पार करके सेनापति उदयने खशों समेत भिक्षाचरसे युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १६७४ ॥ पहले उदयके पास कम सेना थी, किन्तु वादमें अधिक हो गयी। ऐसी स्थितिमें शत्रुसेनासे घिरकर भिक्षाचर उसी किलेमें रहने लगा ॥१६७५॥ उसी समय जयसिंह (सिंहदेव) विजयेश्वर जा पहुँचा और वहाँसे सेनापतिके पास सेनाओंकी विभिन्न टुकड़ियें भेजने लगा ॥ १६७६ ॥ यन्त्र (तोप-वन्दूक), प्रस्तरवर्षा, वाणवर्षण एवं विविध भाँतिके आयुधोंसे राज्यसेना लड़ रही थी और किलेके भीतरसे भिक्षुसेना पत्थर वरसाती थी ॥ १६७७ ॥ पत्थरोंके साथ भिक्षुके नामसे अंकित वाण भी चल रहे थे। इस प्रकार राजसेना बड़ी होती हुई भी दुर्गमें स्थित भिक्षुसेनाको नहीं पकड़ सकी ॥ १६७८ ॥ तदनन्तर एक महीनासे भी कुछ दिन अधिक वीतनेपर धन्यने खाईके जलसे घिरे हुए उस दुर्गको समूल नष्ट करके भिक्षु तथा उसके भीतरवाले लोगोंको पकड़ लिया ॥१६७९॥ वादमें राजा जयसिंहने दुर्गनिवासियोंको वलप्रयोगसे कावूमें न आते देखकर अन्य उपायका अवलम्बन करके वैरियोंकी वाधा शान्त करनेके लिए उन्हें धनका प्रलोभन दिया ॥ १६८० ॥ तदनुसार राजाने इस कार्यकी सिद्धिके निमित्त डामरों, सामन्तों, मन्त्रियों और राजपुत्रोंके साथ प्रतीहारको भेजा ॥ १६८१ ॥ कोष्ठेश्वर तथा त्रिल्लक आदिने यह सोचकर राजाका प्रस्ताव मान लिया कि हमलोग संकटमें पड़े हुए भिक्षाचरको छुड़ा लेंगे ॥ १६८२ ॥ तव महामंत्री प्रतीहारने सोचा कि संकटग्रस्त पर्वतके ऊपर वहुत कम ऊँचा दुर्ग है और मेरे पास विशालवाहिनी है। अतएव इसे मैं आसानीसे जीत लूँगा ॥ १६८३ ॥ तदनुसार दूसरे दिन प्रतीहारके अनुगामियोंने किलेको वलात् कब्जेमें लानेके लिए युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १६८४ ॥ वाहरसे राजसैनिक जितने पत्थर वरसाते थे, उतने ही पत्थर किलेसे राजसेनापर वरसते थे। यह देखकर निश्चित हो गया कि वलप्रयोगसे

कोष्ठेश्वरस्य मूढत्वं निर्व्यूढं तत्र किंचन । स्वस्य भिक्षोर्लवन्यानामन्येषां च विनाशकृत् ॥१६८७॥
नास्त्यत्र मत्समो वीर इत्येतावत्प्रसिद्धये । स ह्ययुद्धोद्धतं भिक्षोर्यत्प्राणक्षयकार्यभूत् ॥१६८८॥
दुध्रुक्षूणां खशानां स संकटे धैर्यमादधे । कोष्ठेश्वरोऽस्मि चाभिन्नौ तद्वश्या डामराः परे ॥१६८९॥
यदेतद्दृश्यते भूरि सैन्यमस्मद्धिताय तत् । पर्यवस्येदिति वदन्समभाव्यन्यथा च तत् ॥१६९०॥
विस्रम्भभूरमुष्यारिर्यत्र कोष्ठेश्वरोऽप्यसौ । अन्येषु तत्र कैवास्थेत्यथ ते निश्चयं दधुः ॥१६९१॥
भूभृत्पितृद्रुहः कार्यवशेन स्वोपवेशने । अङ्गीकृताधिकारस्तु धीमांष्टिक्कस्य लक्ष्मकः ॥१६९२॥
खशाधीशं महाग्रामस्वर्णादित्यागसंश्रयात् । स्वीकृत्य भिक्षुदुध्रुक्षावद्धकक्ष्यमकारयत् ॥१६९३॥
आनन्दाख्यः खशाधीशस्यालः कृतगतागतः । नीत्वा टिक्कं प्रतीहाराभ्यर्णं भूयोऽप्यरोपयत् ॥१६९४॥
प्रतीहारस्य टिक्केन सहैक्यं वीक्ष्य डामरैः । निःसंशयं हतोऽज्ञायि भिक्षुः कोष्ठेश्वरादिभिः ॥१६९५॥
संरब्धास्तद्विमोक्षाय प्राहिण्वंस्ते खशान्तिकम् । दूतानूरीकृतस्वर्णदानो भूरिधनैः समम् ॥१६९६॥
खशस्तु दध्यावुत्कोचं गृहीत्वास्माभिरुज्झितः । जानाति रक्षितान्प्राणान्भिक्षुः कोष्ठेश्वरादिभिः ॥१६९७॥
समन्युः प्राप्तराज्योऽथ देङ्गपालोऽथ दूरगः । हन्यान्मां जयसिंहस्तद्रक्ष्यः पक्ष्यः प्रयत्नतः ॥१६९८॥
मत्वेति तेन प्रत्युक्ता भिक्षुं शौचस्थितं गृहात् । विपाद्यातः फलहकं निर्गच्छेत्यूचिरेऽपि ते ॥१६९९॥
स त्वमेध्योपलिप्ताङ्गः श्वेवावस्करवर्त्मना । यात इत्ययशो लोके ध्यायन्मानी न निर्ययौ ॥१७००॥

दुर्ग अपने अधीन नहीं किया जा सकता ॥ १६८५ ॥ क्योंकि उस अल्पकालके युद्धमें ही वीरोंके देहरूपी वृक्षसे प्रस्तरप्रहारके कारण वहती हुई मधुधाराके समान वीरोंके केशरूपी भौंरों युक्त मस्तकसे रुधिरकी भयावनी धारा वह चली ॥ १६८६ ॥ उस समय कोष्ठेश्वरकी तनिक-सी मूर्खता इतनी भीषण सिद्धि हुई कि जिससे उसका अपना, भिक्षुका एवं लवन्योंका विनाश निकट आ गया ॥ १६८७ ॥ 'मेरे समान वीर और कोई नहीं है' इस प्रसिद्धिके लिए उसने जो कार्यवाही की, वह भिक्षुके लिए प्राणघातक सिद्ध हुई ॥ १६८८ ॥ उस संकटकालमें विद्रोह कर देनेके लिये उद्यत खशोंको ढाढस बँधाते हुए कोष्ठेश्वरने कहा—'आपलोगोंकी विपत्ति दूर करनेके लिए मैं स्वयं और सभी डामर एकमत होकर सन्नद्ध हैं ॥ १६८९ ॥ सामने यह जो विशाल सेना दीख रही है, वह हमारे कल्याणके लिए ही तो एकत्र है'। यह कहकर कोष्ठेश्वरने समझाया अवश्य, किन्तु हुआ उसके विपरीत ॥ १६९० ॥ खशोंने सोचा कि जब कोष्ठेश्वर जैसा विश्वासपात्र राजा भी शत्रुके वहकावेमें आकर दगा दे सकता है, तब अन्य लोगोंपर आस्था कैसे की जा सकती है ? ॥ १६९१ ॥ उसी बीच बुद्धिमान् लक्ष्मक (प्रतीहार) ने कार्यसाधनके लिए पितृद्रोही टिक्कको अपने निवासस्थानपर बुलाकर उसकी सब माँगें स्वीकार कर लीं ॥ १६९२ ॥ इस प्रकार उसने खशाधीश टिक्कको कितने ही बड़े-बड़े गाँव तथा पुष्कल सुवर्ण देकर अपनी ओर मिला लिया। ऐसा करके उसने भिक्षुके विद्रोहको सीमाबद्ध कर दिया ॥ १६९३ ॥ खशाधीश टिक्कका साला प्रायः प्रतीहारके पास आया-जाया करता था। सो वह एक दिन टिक्कको प्रतीहारके पास ले गया और दोनोंकी मैत्री और भी दृढ़ कर दी ॥ १६९४ ॥ प्रतीहारको इस प्रकार टिक्क तथा डामरोंके साथ ऐक्य स्थापित करते देखकर भिक्षुने कोष्ठेश्वर आदिके साथ अपना मरण निश्चित समझ लिया ॥ १६९५ ॥ उसी घबड़ाहटमें भिक्षु तथा कोष्ठेश्वर आदिने अपनेको संकटमुक्त करनेके निमित्त बहुतेरा धन और सोना देकर दूतोंको खशराज टिक्कके पास भेजा ॥ १६९६ ॥ दूतोंको उपस्थित देखकर टिक्कने समझा कि 'भिक्षु और कोष्ठेश्वर आदि यह समझ रहे हैं कि राजासे घूस लेकर मैंने उन्हें छोड़ दिया है। इसीलिए अब यह घूस उन्होंने मेरे पास इस वास्ते भेजा है कि जिससे उसके प्राण बच जायँ' ॥ १६९७ ॥ उधर बहुत दूर स्थित देङ्गपाल राज्य प्राप्त करके यह सोचने लगा कि अवसर पाकर राजा जयसिंह मुझे अवश्य मार डालेगा। अतएव मुझे प्रयत्न करके जयसिंहका पक्ष दृढ रखना चाहिए ॥ १६९८ ॥ ऐसा सोचकर उसने कुछ घातकोंको जुटाया और फलहकको उनका अग्रणी बनाकर कहा कि 'तुम लोग भिक्षुके यहाँ जाओ और जब वह शौचके लिए निकले, तब उसका वध करके भाग आओ ॥ १६९९ ॥ किन्तु फलहकने सोचा कि 'कुत्तेकी तरह

कोष्ठेश्वरोऽव्यक्तकृत्यः सैन्यक्षोभेच्छयाक्षिपन् । रूक्षं कालविदा प्राह्णे प्रतीहारेण सान्त्वितः ॥१७०१॥
नीवौ खशाद्यैर्दत्तायामा प्रत्यूपादगृह्यत । व्यवसायः प्रतीहारमुख्यैर्भिक्षुप्रमापणे ॥१७०२॥
गच्छद्भिरागच्छद्भिश्च राजा दूतैः प्रतिक्षणम् । अन्विष्यन्विजयक्षेत्रे वार्तां पर्याकुलोऽभवत् ॥१७०३॥
तावद्भिराहवैस्तैस्तैः साहसे दश वत्सरान् । कृतयत्नस्य साध्योऽभून्न यो वृद्धमहीभुजः ॥१७०४॥
डिम्बो राजानुगा डिम्बास्तस्य भिक्षोः प्रमापणम् । साध्यमेते हि मन्यन्ते हन्त किं केन संगतम् ॥१७०५॥
विहस्य नीयते वित्तं खशैरेत्य क्षणादमी । भग्ना नूनं प्रयास्यन्ति मुषिताश्चाखिलाः परैः ॥१७०६॥
पृथग्भूतः कोष्ठकोऽयं त्रिल्लकोऽस्यैव बान्धवः । एते भिक्षाचरोच्छिष्टपुष्टा आभ्यन्तरा अपि ॥१७०७॥
को नूतनोऽत्र संप्राप्तो यो राज्ञः साधयेद्धितम् । सामग्री नूनमायाता सेयमस्यैव सिद्धये ॥१७०८॥
इत्यूचुः शिबिरे यावज्जनास्तावदवेष्ट्यत । कटकैर्मन्त्रिणां दुर्गं विकोशायुधवाहिभिः ॥१७०९॥
एकाकी चिरसंक्लिष्टो हन्तव्यस्तत्कृतेऽखिलैः । हा धिक्परिकरो बद्धो निर्लज्जैः सर्वशस्त्रिभिः ॥१७१०॥
त एवेत्यूचुरासीच्च कचच्छस्त्रोर्मिनिर्मलः । स्फुरद्योधाक्षिशफरो निःशब्दः सैन्यसागरः ॥१७११॥
व्योम्नोड्डीयेत वा सैन्यं लङ्घयेद्वा मृगप्लुतैः । दुष्टाभ्रवृष्टिरिव वा निखिलांस्ताडयेत्समम् ॥१७१२॥
साश्चर्यशौर्यः पर्यन्ते स्वीकुर्वन्भिक्षुरायुधम् । संभ्रान्तश्चकितश्चासीदित्यन्तश्चिन्तयञ्जनः ॥१७१३॥
एतावन्मन्त्रिणां सिद्धमथ प्रत्यूहसंभवः । तच्छान्तिः कार्यसिद्धिश्च प्रतापैर्नृपतेरभूत् ॥१७१४॥
सैन्ये भिक्षाचरापातं पश्यत्यूर्ध्वार्पितेक्षणे । कोष्ठान्निष्क्रष्टशस्त्रीकः पुमानेको विनिर्ययौ ॥१७१५॥

शरीरमें अपवित्र वस्तु पोतकर कूड़ा करकटके बीचसे होकर जाना और यह घृणित काम करना ठीक नहीं है'। ऐसा सोचकर वह स्वाभिमानी नहीं गया ॥ १७०० ॥ कोष्ठेश्वरका कार्यकलाप प्रच्छन्न था। अतएव उसकी सेना क्षुब्ध हो गयी, जिससे कुछ कुपित कोष्ठेश्वरको समयकी गतिविधिसे परिचित प्रतीहारने सान्त्वना दी ॥१७०१॥ तदन्तर सभी खश प्रतीहारके पास एकत्र होकर इस बातपर विचार करने लगे कि अब ऐसा कौन-सा उपाय किया जाय कि जिससे भिक्षुका अन्त हो जाय ॥ १७०२ ॥ उधर विजयक्षेत्रमे विद्यमान राजा जयसिंह प्रतिक्षण आने-जानेवाले दूतोंसे युद्धभूमिका वृत्तान्त सुनकर व्याकुल हो रहा था ॥ १७०३ ॥ दस वर्षोंतक वृद्ध राजाके द्वारा प्रयत्नपूर्वक किये गये अनेक युद्धोंसे जो काम नहीं बन सका था ॥ १७०४ ॥ सो डिम्ब तथा राजा जयसिंहके अनुगामी डिम्बगण उस भिक्षाचरको मार डालनेका कार्य साध्य मान बैठे थे। कुछ समझमें नहीं आता कि उन्हें यह विश्वास कैसे हो गया ॥ १७०५ ॥ वे सोच रहे थे कि अभी किष्टके गण खश लोग आकर भिक्षु तथा उसके साथियोका सब धन लूट लेंगे। इस प्रकार लुटकर ये अवश्य भाग खड़े होंगे ॥ १७०६ ॥ हमारी नीतिके फलस्वरूप कोष्ठक उस भिक्षुके गुटसे अलग हो गया। त्रिल्लक कोष्ठकका भाई ही है। भिक्षाचरका जूठन खाकर पलनेवाले ये ही लोग उसके अन्तरंग मित्र थे ॥ १७०७ ॥ अब नया कौन-सा ऐसा व्यक्ति यहाँ आयेगा, जो राजाका काम बना सके। उस राजाकी जो सामग्री आयी थी, सो सब शत्रुओंकी ही कार्य-सिद्धिमे सहायक हुई ॥ १७०८ ॥ अपने शिबिरमें बैठे हुए मंत्रीगण जब इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय निर्धन तथा निःशस्त्र सैनिकोंने दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १७०९ ॥ हाय-हाय, जिन परिकरोंके लिए उस अकेले वीरने चिरकालतक नाना प्रकारके क्लेश सहे थे, वे ही निर्लज्ज शस्त्रधारी सैनिक आज उस भिक्षुका बध कर देनेको उद्यत हो गये ! ॥ १७१० ॥ उन लोगोंने ही यह बात कही और केश तथा शस्त्ररूपिणी लहरियोंसे निर्मल एवं चुस्त योद्धाओंके नेत्ररूपी मत्स्योंसे परिपूर्ण वह सैन्यसागर निःशब्द हो गया ॥ १७११ ॥ उस समय ऐसा लगता था कि वह क्षुब्ध सेना आकाशसे उड़ जायगी, मृगोंके समान छलांग मार जायगी अथवा दुष्ट मेघके समान शस्त्रवृष्टि करके सबको एक साथ मार डालेगी ॥ १७१२ ॥ अन्तमें विस्मयजनक शौर्यके साथ भिक्षाचरने शस्त्र उठाया। उस समय उसका साहस देखकर लोग उद्विग्न एवं चकित हो गये ॥ १७१३ ॥ उन मंत्रियोंकी इतनी ही आकांक्षा सिद्ध हो सकी। बाकी विघ्नोंकी उत्पत्ति, उनकी शान्ति एवं कार्यसिद्धि तो राजा जयसिंहके प्रतापसे हुई ॥१७१४॥ जब कि सेनाके सैनिक ऊपर आँखे उठाकर भिक्षुके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे

रुदतीभिः परीतस्य नारीभिस्तस्य चिक्षिपुः । पृष्ठे केऽपि वपुर्लोलकौसुम्भाधरवाससः ॥१७१६॥
बद्धः पलायमानोऽत्र सोऽयं भिक्षुरिति ब्रुवन् । उन्मुखः स जनोऽश्रौषोट्टिक्कं तमथ निर्गतम् ॥१७१७॥
स हि भिक्षोः कृतद्रोहतुमुले प्रस्तुतो वधम् । तस्माद्राजानुगेभ्यो वा स्वस्याशंक्य विनिर्ययौ ॥१७१८॥
अद्रोहोऽस्मीति लोकस्य प्रत्ययाय चकर्ष च । कृपाणीमुदरं हन्तुं रक्ष्यमाणो निजानुगैः ॥१७१९॥
सानुगस्त्यक्तमार्गां स विलङ्घ्य नृपवाहिनीम् । अद्रिप्रस्रवणोपान्ते नातिदूरेऽभ्युपाविशत् ॥१७२०॥
उच्छ्वसंश्चिरसंप्राप्तैरम्भोभिर्दुर्गनिर्गतः । मायां प्रयोक्तुं प्रारेभे प्रेरितः सोऽन्यडामरैः ॥१७२१॥
संजातं लम्बमानार्कमहस्तद्रक्ष्यतां क्षणम् । भिक्षुः क्षपायामास्कन्दमपनेष्यन्ति डामराः ॥१७२२॥
इति तद्वाचिकात्तीक्ष्णा नीविभिर्मन्त्रिणां समम् । खशैस्त्यजद्भिर्दर्पदो न्यरुध्यन्तारुरुक्षवः ॥१७२३॥
ततः किलकिलारावमुखरैः करतालिकाः । योधैर्ददद्भिः सचिवा व्यगृह्यन्ताकुलाशयाः ॥१७२४॥
मुक्ताः स्वामिद्रुहः कृच्छ्रगता राज्यं प्रसाधितुम् । द्विषतो मन्त्रिभिः स्वार्थो दत्त्वार्थान्को नु साधितः ॥१७२५॥
राजकार्ये च भानौ च लम्बमानेऽथ लक्ष्मकः । किमेतदिति तं नीविं खशस्यालमभाषत ॥१७२६॥
सोऽभ्यधात्कुम्भदास्यापि रोद्धुं शक्यं चिकीर्षितम् । खशानां प्रत्यवस्थाता कथं तत्रास्म्यसंनिधिः ॥१७२७॥
स हन्तुं वैपरीत्यं तं खशानां त्वं व्रजेत्यथ । उक्त्वा व्यसृजदानन्दं जहसे चान्यमन्त्रिभिः ॥१७२८॥
सुदूरदर्शिना राज्ञा विपलाटाध्वपाततः । देङ्गपालगृहादस्मादारम्भः समभाव्यत ॥१७२९॥
अतः प्रधानकोट्टेशस्यालः समभिगृह्यत । प्रागेवार्थैरेतदर्थं ग्रथ्नता दीर्घवागुराम् ॥१७३०॥

थे, उस समय हाथमें नंगी कटार लिये हुए किलेसे एक व्यक्ति बाहर निकला ॥ १७१५ ॥ उसके चारों ओर बहुतेरी स्त्रियाँ रो रही थीं। उन्होंने केसरिया रंगके अपने अधोवस्त्र पीठपर फेंक रक्खे थे ॥ १७१६ ॥ 'भिक्षु भाग रहा था, वह पकड़कर बाँध लिया गया'। उस ओर उन्मुख होकर जनता ऐसा कह रही थी कि टिक्क सबके समक्ष आ खड़ा हुआ ॥ १७१७ ॥ उसने देखा कि इस भीषण विद्रोहमें भिक्षुका वध समक्ष उपस्थित दीख रहा है। इसके बाद या तो भिक्षु या राजाके अनुगामी मेरा भी वध अवश्य कर देंगे। इसी आशंकासे वह निकल पड़ा ॥ १७१८ ॥ लोगोंको इस बातका विश्वास दिलानेके लिए कि 'मैं द्रोही नहीं हूँ' उसने कटार निकाल कर अपने पेटपर मारनेकी चेष्टा की, किन्तु उसके अनुगामियोंने रोक लिया ॥ १७१९ ॥ जब अनुचरोंने रास्ता छोड़ दिया, तब वह दौड़ा और राजाकी सेना पार करके पासके ही एक पहाड़ी झरनेपर जा बैठा ॥ १७२० ॥ कुछ दूर दौड़नेके कारण जोर-जोरसे लम्बी सासें चल रही थीं। उस किलेसे निकलकर जलके किनारे बैठनेसे टिक्को कुछ शान्ति मिली। तदनन्तर डामरोंकी प्रेरणाके अनुसार उसने अपनी मायाका विस्तार किया ॥१७२१॥ 'सूर्यास्तका समय है, यदि कुछ देर तकके लिए भिक्षुके प्राण बच जायँ तो रात्रिके समय डामर राजाके आक्रमणको व्यर्थ कर देंगे'। उसने यह कहा, तैसे ही बहुतेरे घातक निकल पड़े और पत्थरोंकी वर्षा करते हुए खशोंके साथ धावा बोलकर उन्होंने खजाने समेत राजाके मन्त्रियोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥१७२२॥१७२३॥ तदनन्तर किलकिला शब्द करते हुए वे हाथोंसे तालियें बजाने लगे। यह देखकर वे मंत्रिगण बहुत घबड़ा उठे ॥ १७२४ ॥ वे सोचने लगे कि 'राज्यपर अधिकार बनाये रखनेके लिए हम पर जब कभी कोई कठिनाई आयी, तभी स्वामीके द्रोहियोंको छोड़ दिया। मंत्रियोंका स्वार्थ साधनेके लिए उन्हे प्रचुर धन देकर हमने अपना कौन काम नहीं बनाया ॥ १७२५ ॥ किन्तु अब जब राजकार्य तथा सूर्यभगवान् दोनोंको अस्तोन्मुख देखा, तब लक्ष्मक महामंत्री (प्रतीहार) सामने आकर उस खशके सालेसे बोला—'यह क्या कर रहे हो ?' ॥ १७२६ ॥ उसने जवाब दिया—'एक कुम्भकारकी दासी भी किसी योजनाको व्यर्थ कर सकती है। ऐसी स्थितिमें हम खशोंका सामना कैसे कर सकते हैं, जब कि हम वहाँ नहीं हैं' ॥ १७२७ ॥ यह सुनकर लक्ष्मकने तत्काल आनन्दको यह कहकर भेजा कि 'तुम जाकर खशोंका विद्रोह शान्त कर दो' ॥ १७२८ ॥ उधर सुदूरदर्शी राजा जयसिंह जब देङ्गपालके घरसे विपलाटाकी ओर चला तो रास्तेमें वह सोचने लगा—॥ १७२९ ॥ पहलेसे ही जिसके लिए लम्बी रस्सी बटी जा रही थी, वह प्रधान कोट्टपालका साला आनन्द पकड़ लिया गया' ॥१७३०॥

संक्षोभावसरे क्षत्ता ततो निःसंभ्रमोऽभवत् । शिक्षितं पक्षिणमिव त्यक्तं प्राप्यं विवेद तम् ॥१७३१॥
स तानूचे न हास्यं मे नष्टे कार्येऽत्र साहसम् । सर्वनाशे हतेऽमुष्मिन्खशस्यालेऽपि किं भवेत् ॥१७३२॥
अकुण्ठया भाग्यशक्त्या राज्ञः स्यालः खशस्य सः । सर्वान्नियन्त्र्य दुर्गाग्रात्तीक्ष्णादीनाजुहाव तान् ॥१७३३॥
दस्यूनामसवः कण्ठे संदेहं मन्त्रिणां धियः । स्वस्त्रीणां प्रीतयः काष्ठां तीक्ष्णाश्चारुरुहुर्गिरिम् ॥१७३४॥
स चर्मकौपीनपटीबन्धस्तत्स्वाभिधाङ्कितैः । इषुभिः स्वामिवत्तस्य ख्यापनं सर्वतो युधि ॥१७३५॥
स ताम्बूलाधरः सक्तिः सा केशश्मश्रुयोजने । याऽभूदनुमुमूर्षूणां भिक्षुराजोपजीविनाम् ॥१७३६॥
निश्चितान्ते ततस्तस्मिन्स्म तेषां संन्यवर्तत । कोष्ठेश्वरादिशिबिरं तूर्णं शरणमीयुषाम् ॥ तिलकम् ॥१७३७॥
एकैकशो लक्ष्मकेण मुक्त्या स्वैः प्रेरितैर्भटैः । टिक्कः स्वं वीक्ष्य वलितं निचकर्ताङ्गुलिं भयात् ॥१७३८॥
खशैरस्मिन्नवसरे स पलायनचाङ्गिभिः । रक्ष्यमाणस्तेष्वहःसु मनस्तापादभुक्तवान् ॥१७३९॥
वीरस्ताम्यन्विलम्बेन तीक्ष्णानामाहवोत्सुकः । तस्थौ भिक्षाचरः स्वान्तमक्षवत्या विनोदयन् ॥१७४०॥
हर्म्यप्राङ्गणमायाते तीक्ष्णलोके युयुत्सया । उत्तिष्ठता तेन दायः स्तोकशेषः समाप्यत ॥१७४१॥
दीव्यतः कान्तया साकं कामिनः सुहृदागमे । प्रत्युत्थास्नोरिव क्षोभो नान्तस्तस्य व्यजृम्भत ॥१७४२॥
किमत्रापि वधेन स्याद्बहूनामिति चिन्तयन् । स विहाय शरावापं सासिधेनुर्विनिर्ययौ ॥१७४३॥
सुदीर्घचिन्तागलितायामश्यामलिभिः कचैः । चञ्चच्चित्रपताकाङ्कमिव वीरपटाञ्चलैः ॥१७४४॥

प्रधान मंत्री प्रतिहार उस क्षोभके अवसरपर भी निश्चिन्त था। क्योंकि उसको विश्वास था कि शिक्षित पक्षीके समान आनन्द जिस कामके लिए गया है। उसे वह अवश्य पूर्ण करेगा ॥१७३१॥ फिर उसने उन उपद्रवी लोगोंसे कहा—'मैंने यह जो साहसका काम किया है, वह यदि बिगड़ भी जाय तो मेरी हँसी न होगी। यदि सर्वनाश होगा, तो भी ज्यादासे ज्यादा खशका साला आनन्द मार डाला जायगा। किन्तु उससे भी मेरी क्या हानि होगी ?' ॥ १७३२ ॥ उसी समय उस अकुण्ठित भाग्यशाली खशराजके साले आनन्दने दुर्गद्वारपर जाकर सब खशोंको निमंत्रित करके उन घातकोंको बुलाया ॥ १७३३ ॥ दस्युओं (डामरों) के प्राण कण्ठमें रहते हैं, मंत्रियोंका मस्तिष्क सन्देहमें रहता है और देवांगनाओंकी प्रीति बहुत ऊँची सतहपर रहती है। सो थोड़ी ही देर बाद वे घातक भागकर पर्वतपर चढ़ गये ॥ १७३४ ॥ राजा भिक्षुके अनुयायी उन लोगोंके समान अपनी वेष-भूषा रखते थे, जैसी कि मरणासन्न लोगोंकी होती है। पान खाये हुए लोगोंके समान उनके अधरोष्ठ लाल रहते थे। उनकी दाढ़ी-मूछ तथा केश बहुत बड़े-बड़े थे। वे चमड़ेकी कोपीन और उसीका पट्टा बाँधे रहते थे। रणभूमिमें अपने-अपने नामसे अंकित बाणोंकी वर्षा करके वे अपने स्वामीके समान ही अपने नामकी प्रसिद्धि करते थे। जब भिक्षुका अन्त निश्चित हो गया, तब भाग-भागकर शरण प्राप्तिके निमित्त वे शीघ्र कोष्ठेश्वर आदिके शिविरोंमे जा पहुँचे ॥ १७३५–१७३७ ॥ उधर जब टिक्कने देखा कि महामंत्री लक्ष्मकके सैनिक एक-एक करके भाग रहे हैं, तब भयभीत होकर उसने अपनी उँगली काट डाली ॥ १७३८ ॥ जब उसने देखा कि खश लोग एक ओर तो सशंक होकर भागनेकी तैयारी कर रहे हैं और दूसरी ओर उसकी रक्षाके निमित्त घेरा डाले पड़े हैं, तब टिक्कको बड़ा सन्ताप हुआ और उन दिनों उसने भोजन नहीं किया ॥ १७३९ ॥ उधर वीर भिक्षाचर घातकोंको युद्ध छेड़नेके लिए उत्सुक देख करके भी विलम्ब करता हुआ पाँसे खेल-खेलकर अपना मन बहला रहा था ॥ १७४० ॥ युद्धके लिए तैयार होकर वे घातकगण जब राजा भिक्षाचरके प्रांगणमें आ उपस्थित हुए, तब उठकर उसने अपना अधूरा खेल समाप्त कर दिया ॥ १७४१ ॥ जैसे अपनी प्रियतमाके साथ विहार करनेवाले कामी पुरुषके पास उसका कोई मित्र आ जाय और वह मनमे क्षुब्ध हुए बिना ही जैसे उठ खड़ा हो, उसी प्रकार उन घातकोंके आगमनसे भिक्षाचरको कुछ भी क्षोभ नहीं हुआ ॥ १७४२ ॥ तत्पश्चात् उसने सोचा कि अब बहुतेरे लोगोंका वध करनेकी क्या आवश्यकता ? यह सोचकर उसने बाण फेंक दिया और हाथमे केवल तलवार लेकर निकल पड़ा ॥ १७४३ ॥ अत्यधिक चिन्ताके कारण गिरे हुए लम्बे तथा श्यामल केशों, फहराती हुई रंग-बिरंगी पताकाओं सदृश वीरोंके वस्त्रों, गालोंपर थिरकनेवाले शंखनिर्मित आभूषणोंकी दीप्ति, चन्दनकी खौरकी कान्तिसे

गण्डताण्डविताच्छिद्रशङ्खनाटङ्करोचिषा । चन्दनोल्लेखकान्त्या च द्योतिताहंक्रियास्मितम् ॥१७४५॥
वितीर्णं चित्रचार्यन्ते विपर्यस्तांघ्रिताडनम् । द्योतयन्तमिवालातैः शस्त्रीनेत्राधरांशुकैः ॥१७४६॥
कौसुम्भाधरवासोग्रबद्धधौताधराञ्चलैः । लोलैर्वीरहरिं बद्धसटाटोपमिवांसयोः ॥१७४७॥
दृग्मनःपाणिपादैक्यचारुप्रचुरचारिभिः । चरन्तं मण्डलैश्चित्रैर्लघुचित्रस्थिरक्रमैः ॥१७४८॥
औचित्यस्योचितां चर्यामलंकारसहंकृतेः । अभिमानविभूतीनां नित्योत्सेकमनत्ययम् ॥१७४९॥
अलक्षितक्षिप्रपातं स सर्वोऽप्युन्मुखो जनः । विचरन्तं तमैक्षिष्ट भिक्षुमग्रे विरोधिनाम् ॥१७५०॥
राजबीजी मधोर्नप्ता तं प्रवीरः कुमारियः । भ्रातापि ज्येष्ठपालस्य निर्यातो रक्तिकोन्वगात् ॥१७५१॥
हर्म्यैर्निम्नोन्नतैऽस्तैर्विशतः परिपन्थिनः । रुरोधैकः शरासारैर्गार्गिको भिक्षुसंश्रितः ॥१७५२॥
ते धावन्तो व्यभाव्यन्त शरैस्तच्चापनिर्गतैः । वर्षोपलैः पुरोवातप्रेरितैरिव दन्तिनः ॥१७५३॥
स रोद्धा प्रतियोधानां पापैः क्षिप्ताश्मभिः खशैः । क्षताङ्गो भग्नचापश्च चिरेण विमुखीकृतः ॥१७५४॥
तस्मिन्प्रचलिते मार्गैः प्रविश्योच्चावचैर्भटाः । ते च भिक्षाचरादीनां सर्वे गोचरमाययुः ॥१७५५॥
भिक्षोरेकं क्षणालब्ध्यधैर्यं पार्श्वधतायुधम् । अधावत्तूर्णमादाय शूलमेको बृहद्भटः ॥१७५६॥
तस्य प्रहरतः शूलं भिक्षुराश्रितवत्सलः । क्षिप्त्वापहस्तेनावेगात्केशाञ्जग्राह धावितः ॥१७५७॥
प्रजहार कृपाण्या च निर्यत्प्राणे पतिष्यति । तस्मिन्प्रहरतां भूयस्तौ कुमारियरक्तिकौ ॥१७५८॥
निर्विभागैर्हते तस्मिन्विविधायुधवाहिभिः । विरोधियोधैः संनद्धैस्त्रयो युयुधिरेऽथ ते ॥१७५९॥
अजायन्त विविक्ताश्च शस्त्रसंत्रासिताहिताः । कोटराजगरापास्तसरघौघा इव द्रुमाः ॥१७६०॥
अशक्नुवन्तस्तान्हन्तुं खड्गशूलादिभिर्द्विपः । अपसृत्य शरासारैस्ततो दूरादवाकिरन् ॥१७६१॥

जगमगानेवाली अहंकारभरी मुसकान, विचित्र ढंगसे कुछ पग चलकर विपरीत रीतिसे पैरोंकी थाप, कटाररूपी नेत्रोंकी पलकोंसे उल्काकी भाँति देदीप्यमान, केसरिया रङ्गके अधोवस्त्रमें बँधे उज्ज्वल वस्त्रके चञ्चल आँचलमें निबद्ध वीर केसरीकी सटा (अयाल) के समान कन्धोंपर फैले, नेत्र-मन-हाथ-पैरकी सुन्दर चाल द्वारा मण्डलाकार एवं लघु (धीरे-धीरे), चित्र (अनेक तरहसे), स्थिर (स्थायी) एवं क्रम (सम्हाल कर एक-एक पग आगे बढने) से, अहंकारके अलंकारस्वरूप औचित्यसंगत चाल, अभिमान करने योग्य विभूतियोंकी नित्य और अविनाशिनी वृद्धिसे सम्पन्न और अलक्षित रीतिसे उपस्थित होकर विरोधियोंके समक्ष टहलते हुए भिक्षाचरको सब लोगोंने गर्दन उठाकर देखा ॥ १७४४–१७५० ॥ राजवंशमें जायमान और मधुका पौत्र कुमारिय तथा ज्येष्ठपालका भ्राता रक्तिक उसके पीछे-पीछे चल रहा था ॥ १७५१ ॥ ऊँचे-नीचे प्रासादोंमें छिपे हुए शत्रुओंको भिक्षुका सहायक अकेला गार्गिक अपनी बाणवर्षासे रोके हुए था ॥ १७५२ ॥ दौड़ते हुए वे वीर और उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको देखकर ऐसा लगता था, जैसे ओलोंकी वर्षाके साथ पुरवा हवा हाथियोंको ढकेल रही हो ॥ १७५३ ॥ तदनन्तर अपने प्रतियोद्धाओंको अवरुद्ध कर देनेवाला वह वीर पापी खशोंके फेंके हुए पत्थरोंसे घायल हो गया और उसका धनुष टूट गया। ऐसी स्थितिमें भी वह बड़ी देरतक शत्रुओंसे लड़कर लौट पड़ा ॥ १७५४ ॥ जब भिक्षाचर रणभूमिसे लौटा तो अनेक ऊँचे-नीचे मार्गोंसे बहुतेरे योद्धा रणभूमिमें आते दिखायी पड़े ॥ १७५५ ॥ उसी समय क्षण भरके लिए भी धैर्यच्युत न होनेवाले और बगलमें आयुध धारण किये हुए भिक्षाचरकी ओर एक विशालकाय योद्धा शूल लेकर बड़े वेगसे दौड़ा ॥ १७५६ ॥ अपने आश्रितोंके वत्सल भिक्षाचरने शूलसे प्रहार करनेवाले योद्धाका वह शूल बायें हाथसे छीनकर दौड़ा और उसका केश पकड़ लिया ॥ १७५७ ॥ उसके बाद उसने अपनी कटारसे प्रहार किया। इस प्रकार उसके मर जानेपर विविध आयुध धारण किये हुए शत्रुयोद्धा समक्ष आकर लड़ने लगे। किन्तु भिक्षाचर समेत केवल तीन योद्धा उन सबसे जूझ रहे थे ॥ १७५९ ॥ उन वीरोंके प्रहार तथा शस्त्रोंसे भयभीत होकर शत्रु योद्धा उसी प्रकार अलक्षित हो गये, जैसे वृक्षोंपर लगे मधुके छत्तेको कोटरनिवासी अजगरके खा लेनेपर वे वृक्ष सूने हो जाते हैं ॥ १७६० ॥ तदनन्तर वे शत्रु उन तीनोंको

भिक्षाचरमृगेन्द्रस्य भञ्जतः शरपञ्जरान् । ततो हर्म्यात्खशैर्मुक्ताः पुष्टाः पाषाणवृष्टयः ॥१७६२॥
धावतस्तस्य घोराश्मवृष्टिकुट्टितवर्ष्मणः । निममज्ज यकृत्पिण्डं भञ्जन्पार्श्वे शिलीमुखः ॥१७६३॥
क्रान्त्वा त्रीणि पदान्याशु स पपात दिशन्क्षितेः । ततश्चिरप्ररूढं तु कम्पं विद्विषतां हरन् ॥१७६४॥
कुमारियोऽपि बाणेन विद्धवक्षणवर्त्मना । व्रणितोऽप्यपतद्भर्तुः पादोपान्तेऽपजीवितः ॥१७६५॥
रक्तिकस्तु शरेणैव विद्धो मर्मणि विह्वलः । सजीवितोऽपि निर्जीव इव भूमावुपाविशत् ॥१७६६॥
महाकुलीनैः सहितो हतो भिक्षुरशोभत । वज्रावभुग्नः शिखरी पुष्पितैरिव पादपैः ॥१७६७॥
इयतो राजचक्रस्य मध्ये हर्षनृपात्मनः । नावमानस्य मानस्य त्वभूद्भिक्षोः परं पदम् ॥१७६८॥
विधाना नित्यविधुरस्तेनान्तेऽप्यभिमानितः । अकुण्ठेन ध्रुवं चक्रे गृहीतात्मपराजयः ॥१७६९॥
को वराको महर्द्धीनां सोऽग्रे पूर्वमहीभृताम् । उदात्तेनान्तकृत्येन ते त्वस्याग्रे न किंचन ॥१७७०॥
अहोपुरुषिकाग्रस्तैरारोहद्भिर्द्विपद्भटैः । तदवस्थस्तदार्तोऽपि शस्त्र्याऽयुद्ध कुमारियः ॥१७७१॥
स्फुरन्योद्धव्यमित्येव स प्रहारावशस्तथा । विज्ञाततत्त्वैररिभिर्वितत्य बहुशो हतः ॥१७७२॥
विपन्नेऽस्मिन्नलं मूढाः प्रहारैरिति निन्दिताः । खशैः प्रजह्रुर्बहुशो हते भिक्षौ द्विपद्भटाः ॥१७७३॥
अविधेयायुधस्तीव्रव्रणवेदनयाधमैः । कैश्चिन्निर्जीवितप्रायो रक्तिकः शस्त्रिभिर्हतः ॥१७७४॥
वयसस्त्रिंशतिं वर्षान्नव मासांश्च भुक्तवान् । स षष्ठाब्दासितज्यैष्ठदशम्यां नृपतिर्हतः ॥१७७५॥
निदानं विप्लवे दीर्घे सर्वनाशेऽपि कारणम् । येषां बभूव तेऽप्येवं तुष्टुवुः सत्त्वविस्मिताः ॥१७७६॥

खड्ग-शूल आदिसे मारनेमें असमर्थ होकर कुछ दूर पीछे हट गये और वहाँसे बाणवर्षा करने लगे ॥ १७६१ ॥ जब मृगेन्द्र सदृश वीर भिक्षाचरने उस बाणवर्षाको भी व्यर्थ कर दिया, तब खश लोग प्रासादोंकी छतोंपर जाकर भीषणरूपसे पत्थर बरसाने लगे ॥ १७६२ ॥ जब उन पत्थरोंकी मारसे भिक्षाचरका शरीर चूर-चूर हो गया, उसी समय उसके यकृत्पिण्डको चीरता हुआ एक बाण उसकी पसलियोंमें जा घुसा ॥ १७६३ ॥ उसके बाद तीन पग पीछे हटकर वह वीर चिरकालसे शत्रुओंके हृदयमें विद्यमान अपने प्रति भयजनित कँपकँपीको दूर करता हुआ धरतीपर गिर गया ॥ १७६४ ॥ उसी समय छातीमें बाण लगनेसे मरकर कुमारिय भी भिक्षाचरके चरणोंके समीप जा गिरा ॥ १७६५ ॥ रक्तिकके मर्मस्थानमें एक ऐसा बाण लगा कि जिससे जीवित रहता हुआ भी वह निर्जीवके समान पृथिवीपर बैठ गया ॥ १७६६ ॥ उन कुलीन पुरुषोंके साथ मरकर धरतीपर पड़ा हुआ वीर भिक्षाचर उसी प्रकार शोभित हो रहा था, जैसे पुष्पित वृक्षोंसे परिपूर्ण कोई पर्वत लुढक पड़ा हो ॥ १७६७ ॥ इतने राजाओंके बीचमें महाराज हर्षदेवका पुत्र राजा जयसिंह मृत भिक्षाचरके समक्ष मान या अपमानका कोई भी पद नहीं प्राप्त कर सका था ॥१७६८॥ नित्य विपरीत रहनेवाले विधाताने भी अन्तमें वीरताके साथ शत्रुके सम्मुख तुमुल युद्ध करके भिक्षुको अभिमानपूर्वक पराजय दिलायी ॥ १७६९ ॥ बड़े-बड़े वैभवसम्पन्न प्राचीन राजाओंमें कौन राजा बेचारा भिक्षुके अन्तिम उदात्त कर्मोंकी बराबरी कर पायेगा। वस्तुतः उस वीरके समक्ष उनकी कोई गणना ही नहीं हो सकती ॥१७७०॥ उधर वीर पुरुष कुमारियके पौरुषको देखकर चकित शत्रुके योद्धा चढ़े आ रहे थे, उस समय बुरी तरह घायल हो करके भी वह बराबर लड़ता रहा ॥ १७७१ ॥ फुर्तीलेपनके साथ लड़ना चाहिए, यह समझता हुआ भी वीर कुमारिय अनेक प्रहारोंके कारण विवश हो गया था। उसी अवसरपर उसे लड़खड़ाते देख चारों ओरसे शत्रुओंने उसपर और भी अनेक प्रहार किये ॥ १७७२ ॥ मर जानेपर भी प्रहार करनेके कारण उनकी निन्दा हो रही थी। तथापि भिक्षुके मरनेपर भी खशोंने उसे मारा ॥ १७७३ ॥ युद्धमें जिन शस्त्रोंका उपयोग अवैध माना जाता है, ऐसे तीव्र शस्त्रोंसे उन अधम योद्धाओंने मृतप्राय रक्तिकको भी मारा ॥ १७७४ ॥ इस प्रकार लौकिक संवत् ४२०६ की ज्येष्ठ कृष्ण दशमी तिथिको वह राजा भिक्षाचर तीस वर्ष नौ महीनेकी अवस्थामें मारा गया ॥ १७७५ ॥ उस भीषण तथा दीर्घकालीन विप्लवके कारण जिनका सर्वनाश हो गया था, वे भी उस वीरके असाधारण पराक्रमको देखकर विस्मित थे और उसकी

नेत्रस्पन्दं भ्रुवोः कम्पं स्मेरास्यत्वं च नामुचत् । सजीवमिव तन्मुण्डं कियतीरपि नालिकाः ॥१७७७॥
एकं व्योम्न्यविशच्चित्रभानुं भूमौ पुनः परम् । तद्देहमप्सरःसङ्गं धराम्बु च विदज्जडम् ॥१७७८॥
सचिवा विजयक्षेत्रस्थितस्याग्रे महीपतेः । तेषां त्रयाणां मुण्डानि ततोऽन्येद्युरुपाहरन् ॥१७७९॥
श्रीसुधारत्नदन्त्यश्वशशाङ्कादिप्रकाशने । दृष्टचित्रस्वभावोऽब्धिर्यथाऽयं पार्थिवस्तथा ॥१७८०॥
तत्र तत्राद्भुतं भावं दर्शयन्भुवनाद्भुतम् । परिच्छेद्यानुभावत्वं न केषामपि गच्छति ॥ युग्मम् ॥१७८१॥
नाहृष्यन्निहतोऽसाध्यः पितुर्मे योऽप्यभूदिति । न जहर्ष विनष्टोऽयं राजकण्टक इत्यपि ॥१७८२॥
नाकुप्यन्मत्पितुर्मुण्डमेष भ्रमितवानिति ।
वीक्ष्य भिक्षोः शिरोऽव्याजभावौदार्यस्त्वचिन्तयत् ॥ युग्मम् ॥१७८३॥
आकारस्यास्य संभाव्यं सत्त्वं न द्वेषवैकृतम् । वैशद्यं स्फाटिकस्येव नार्कालोकोपतप्तता ॥१७८४॥
उत्कर्षात्प्रभृति व्यक्तममुं यावन्महीभुजम् । हा धिक्स्वमृत्युना दृष्टं नेह देहविसर्जनम् ॥१७८५॥
प्रसादवित्ता येऽप्यासन्पूर्वमस्योर्वराभुजः । तटस्था इव वीक्षन्ते तेऽद्य मुण्डावशेषताम् ॥१७८६॥
इति क्षितीशोऽसामान्यसौजन्योऽन्तर्विचारयन् । आदिदेश रिपोः शीघ्रं तादृशस्यान्तसत्क्रियाम् ॥१७८७॥
निद्राच्छेदे च निशि च ध्यायंस्तस्योदयात्ययौ । भवस्वभाववैचित्र्यं मुहुर्मुहुरचिन्तयत् ॥१७८८॥
अपि वर्षसहस्रेण देशे दायाददुःस्थितिः । नूनं न भविता भूय इति लोकोऽप्यमन्यत ॥१७८९॥
दग्ध्वा तृणं तनु वनं प्रतनोति शष्पं वृष्टिं सृजत्युपचितोष्म दिनं प्रदर्श्य ।
वैचित्र्यसंस्पृशि विधेर्नियमेन कृत्ये न प्रत्ययः क्वचन चञ्चलनिश्चयस्य ॥१७९०॥

सराहना करते थे ॥ १७७६ ॥ मर जानेके बाद भी कुछ देरतक सजीवकी तरह भिक्षुका मुण्ड आँखें फड़काता, भौंहें नचाता और मुसकाता रहा ॥ १७७७ ॥ इस प्रकार वीरगति प्राप्त करके राजा भिक्षाचरका एक दिव्य शरीर देवांगनाओंके साथ विहार करनेके लिए स्वर्ग चला गया और दूसरा भौतिक जड शरीर अग्निमें जलकर धरती एवं जलमें विलीन हो गया ॥ १७७८ ॥ तदनन्तर मन्त्रियोंने उन तीनोंका कटा हुआ मस्तक विजयक्षेत्रमें विराजमान राजा जयसिंहके समक्ष उपहारके रूपमें उपस्थित किया ॥ १७७९ ॥ लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभ मणि, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा अश्व और चन्द्रमाकी उपलब्धि जैसे विचित्र स्वभाववाले क्षीरसागरने करायी थी, उसी प्रकार राजा भिक्षाचरने भी संसारमें समय-समयपर अद्भुत भावोंका प्रदर्शन करके कहीं भी अपना प्रभाव सीमित नहीं होने दिया था ॥ १७८० ॥ १७८१ ॥ भिक्षुके मुण्डको सम्मुख उपस्थित देखकर राजा जयसिंहने यह सोचते हुए अहंकारका अनुभव नहीं किया कि जो कार्य मेरे पिताजी नहीं कर सके थे, उसे मैंने कर डाला और न यह सोचकर हर्षित ही हुआ कि राज्यका एक कण्टक दूर हो गया ॥ १७८२ ॥ यह सोचकर वह कुपित भी नहीं हुआ कि इसने मेरे पिताका मुण्ड काटकर चारों ओर घुमाया था। प्रत्युत भिक्षुका सिर देखकर वह राजा उसके उच्च भाव तथा औदार्यका स्मरण करने लगा ॥ १७८३ ॥ जैसे स्फटिक मणिमें स्वच्छता तथा सूर्यकी उष्णताका अभाव विद्यमान रहता है, उसी प्रकार उस वीरकी आकृतिमें दोषके कारण कोई विकार न लक्षित होकर सात्त्विक भाव ही दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ १७८४ ॥ अपने उत्कर्षके समयको तो भिक्षुने भली-भाँति देखा था, किन्तु बड़े खेदकी बात यह है कि मृत्यु हो जानेके कारण उसने अपने देहत्यागके समयकी वीरता नहीं देखी ॥ १७८५ ॥ पूर्वकालमें जो लोग उसके कृपारूपी धनके धनी थे, वे आज तटस्थकी भाँति उसके मुण्डको देख रहे थे ॥ १७८६ ॥ इस प्रकार राजा जयसिंहने भिक्षुके असाधारण सौजन्यका मन ही मन स्मरण करके सेवकोंको उसके अनुरूप सम्मानके साथ शीघ्र अन्तिम संस्कार करनेकी आज्ञा दे दी ॥ १७८७ ॥ उस रोज रात्रिके समय जब भी राजाकी नींद टूटती तो वह भिक्षाचरके उत्थान-पतन तथा संसारके स्वभावकी विचित्रताका स्मरण करने लगता था ॥ १७८८ ॥ उस भिक्षुकी यह दशा देखकर लोगोंने समझा कि अब हजार वर्षोंतक राज्यमें दायादसंबंधी विवादका अवसर फिर नहीं आयेगा ॥ १७८९ ॥ किन्तु जो तृणोंको जलाकर

कृत्यं निर्वर्त्य विश्रान्त्यै धीरस्यावध्नतो मनः । विधिर्विधत्ते दीर्घान्यकार्यभारसमर्पणम् ॥१७९१॥

आरोढुं प्रथमस्य दीर्घदमनप्रत्तक्लमस्यांघ्रिणा नो संत्यज्यत एव पादकटको यावद्द्वितीयोऽखिलः ।
वाहस्यासनरक्षिणः कलयतो भारावतारात्सुखान्यारोहेण परेण तावदसहाधिष्ठीयते पृष्ठभूः ॥१७९२॥

एवमेव क्षपामात्रं राज्ये निःशत्रुतां गते । शोकमूको नृपस्याग्रं प्राविशल्लेखहारकः ॥१७९३॥

पृष्टः सभ्यैः स संभ्रान्तैर्यस्मिन्नेवाह्नि भूपतेः । यातो भिक्षाचरः शान्तिमरातिर्दत्तदुःस्थितिः ॥१७९४॥

भ्रातरौ लोहरगिरौ बद्धौ द्वैमातुरौ पुरा । न्यस्तौ सुस्सलभूपेन यौ तौ सल्हणलोठनौ ॥१७९५॥

ज्येष्ठे मृते कोट्टभृत्यैः कनिष्ठं लोठनं हठात् । तमिहाद्य त्रियामायामभिषिक्तमभाषत ॥१७९६॥

सुतभ्रातृसुतैर्दृप्तैः राज्यार्हैः सह पञ्चभिः । निर्यातं बन्धनादूचे कोशेषु स तमीश्वरम् ॥१७९७॥

दूयेत मुह्येदाक्रन्देत्प्रसारितभुजः पतेत् । स्वप्याद्विसृज्ञो निःस्पन्ददृक्त्वं गच्छेदथ ध्रुवम् ॥१७९८॥

दीर्घदौःस्थ्यशमक्षिप्रमृदूकृतमना नृपः । असौ तत्कालनिपतद्दुर्वार्तावज्रचूर्णितः ॥१७९९॥

इति संभाव्य दिक्पालैरपि साकूतमीक्षितः । नाकाराचारचेष्टाभिः प्रागवस्थां जहौ नृपः ॥१८००॥

न ह्यनन्याभिभूतेन सर्वतोऽसह्यवर्तिना । तादृशा वैशसेनान्यः स्पृष्टपूर्वो हि भूपतिः ॥१८०१॥

पित्रास्य यद्बलान्नष्टं राज्यं भूयः प्रसाधितम् । अनेनापि हताराति विहितं पैतृकं पदम् ॥१८०२॥

हारितौ दुर्गकोशौ तौ नष्टनामापि दारकः । दायादशेषो यत्रैको निर्धनो वीतबान्धवः ॥१८०३॥

घनी घासके रूपमें परिणत कर देता है और जो भीषण गर्मीके दिन दिखानेके बाद जल बरसाता है, उस चञ्चल निश्चयवाले विधाताके विचित्र नियमों और कृत्योंका क्या भरोसा? वह न जाने कब क्या करने लग जाय ॥ १७९० ॥ जब मनुष्य कोई काम पूरा करके कुछ विश्राम करनेकी बात सोचने लगता है तो विधाता पहलेसे भी बड़े किसी कामका भार उसपर लाद देता है ॥ १७९१ ॥ पहले सवारके पैरोंकी रगड़ खाता और विविध क्लेशोंको सहता हुआ घोड़ा पड़ावपर पहुँचकर भार उतारनेके बाद कुछ सुस्ता भी नहीं पाता कि दूसरा सवार जीन लाकर उसकी पीठपर कस देता है। कहाँ वह भार उतरनेपर विश्रामकी कल्पना कर रहा था कि दूसरे सवारने रकाबपर पैर रखकर पीठपर सवारी कर दी ॥ १७९२ ॥ इस प्रकार केवल एक रात राजा जयसिंहने राज्यको निष्कण्टक कर पाया था। सबेरा होते ही एक शोकमूक पत्रवाहक राजाके समक्ष आ उपस्थित हुआ ॥ १७९३ ॥ उसे देखकर घबड़ाये हुए सभ्योंने जब पूछा, तब उसने बताया कि 'जिस दिन महाराज जयसिंहका प्रबल शत्रु भिक्षाचर मारा गया, उसी दिन अन्य शत्रुओंने राजधानीमें बड़ी दुःखद स्थिति उत्पन्न कर दी ॥ १७९४ ॥ बात यह हुई कि महाराज सुस्सलने लोहर पर्वतपर सल्हण तथा लोठन नामके दो सौतेले भाइयोंको कैद कर रक्खा था ॥ १७९५ ॥ सो उनमेंसे ज्येष्ठ भ्राता सल्हणको किलेके नौकरोंने मार डाला और छोटे भाई लोठनका हठात् आजकी रातमें उन्होंने राज्याभिषेक कर दिया ॥ १७९६ ॥ राज्य पाने योग्य पाँच अभिमानी पुत्र तथा भ्रातृपुत्रोंके साथ लोठनको उन किलेके कर्मचारियोंने बन्धनमुक्त करके राज्य और कोशका अधिपति बना दिया' ॥ १७९७ ॥ यह समाचार सुनकर राजाकी समझमें नहीं आया कि वह दुःखी हो, मूर्छित हो जाय, जोर जोरसे रोने लगे, हाथ फैलाकर धरतीपर गिर जाय, संज्ञाशून्य होकर सो जाय अथवा आँखें फैलाकर ताकता रहे ॥ १७९८ ॥ लम्बे समयसे दुःखमें पड़े रहनेके कारण राजा जयसिंह वैसे ही अनमना था। अब इस दुखदायी समाचाररूपी वज्रपातसे जैसे वह चूर-चूर हो गया ॥ १७९९ ॥ ऐसी परिस्थितिमें दिक्पालोंने भी उसे मर्मभरी दृष्टिसे देखा, किन्तु आकार, व्यवहार और चेष्टाओंके द्वारा उसने अपनी पूर्णावस्थाका परित्याग नहीं किया ॥ १८०० ॥ अनेक असह्य दुःखोंसे आक्रान्त राजा जयसिंहको इस समाचारसे जितना क्लेश हुआ, उतना कभी किसी बातसे नहीं हुआ था ॥ १८०१ ॥ उसके पिताने बलात् जिस राज्यको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, उसे उसने फिरसे सम्हाला और शत्रुओंको मारकर पिताके पदको निष्कण्टक बना दिया ॥ १८०२ ॥ जब कि दुर्ग तथा कोश दोनों नष्ट हो चुके थे और जिस बालकका नाम भी लुप्त था। जो केवल दायादके

घनमानान्तकृद्भूरिवर्षान्व्यसनमादधे । उपप्लवप्रिये देशे तत्रैकस्मिन्हतेऽहिते ॥१८०४॥
मित्रदुर्गार्थसंपन्नाः प्रोद्भूताः षड्विरोधिनः । भिन्नप्रकृतिकं कोशशून्यमेतच्च मण्डलम् ॥१८०५॥
तादृङ्निकषनिस्तीर्णमाहात्म्यस्य महीपतेः । धैर्येण स्पर्धितुं जाने राघवोऽपि सलाघवः ॥१८०६॥
प्राक्पोपितं हि साम्राज्यदाने निर्वासने च तम् । तुल्यानुभावमस्मार्षीत्यितैवं गणयन्गुणान् ॥१८०७॥
आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय वा । न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविप्लवः ॥१८०८॥
कान्तेषु काननान्तेषु सकान्तं सानुजं च तम् । भूयः श्रियं प्रतिश्रुत्य स्थातुं सावधि सोऽभ्यधात् ॥१८०९॥
एकक्षणानुभूतेऽस्मिन्संघट्टे सुखदुःखयोः । ईदृक्तत्तद्दशाभेदादनयोरन्तरं महत् ॥१८१०॥
नियतं निरुपादानां शक्तिं दर्शयितुं जने । नानोपकरणग्रामं संनद्धोऽस्याच्छिनद्विधिः ॥१८११॥
अत्यद्भुतानि कृत्यानि वक्ष्यमाणानि भूपतेः । कोऽमुष्य बहु मन्येत सामग्र्ये सति संपदाम् ॥१८१२॥
धैर्याब्धिना कार्यशेषं ज्ञातुं राजा सविस्तरम् । पृष्टोऽथ कोट्टवृत्तान्तमाचख्यौ लेखहारकः ॥१८१३॥
उत्सृज्य भागिके कोट्टं प्रयाते मण्डलेश्वरः । लुप्तोद्योगोऽभवद्गुप्तौ प्रेमा संपत्प्रमत्तधीः ॥१८१४॥
मण्डनास्यवहारस्त्रीभोगैकाग्रो मदोग्रया । स वृत्त्या भृत्यवैमुख्याधात्र्याभव्यं व्यवहारत् ॥१८१५॥
कुल्यानुकम्पिना दृष्ट्युत्पाटनादेः स वारितः । देवेन नादाद्बद्धानां कांचिद्रक्षाक्षमां क्रियाम् ॥१८१६॥
मायाव्युदयनो नाम कायस्थः स्थूलवाञ्छितः । माञ्जिकश्च प्रतीहारो बद्धमूलस्य मन्त्रिणः ॥१८१७॥
पुत्रो भीमाकरस्येन्द्राकरश्चात्रान्तरे समम् । दुध्रुक्षवस्तत्र तत्र वधं प्रेम्णो व्यचिन्तयन् ॥१८१८॥
अलब्धो हन्तुमप्राप्तावसरैस्तैः कदाचन । कोट्टादट्टालिकां कार्यवशादवरुरोह सः ॥१८१९॥

नाममें जीवित, निर्धन और वान्धवहीन था ॥ १८०३ ॥ जिसने एक विप्लवप्रिय देशमें धन तथा मानको नष्ट करनेवाले दुःखका बहुत वर्षों तक सामना किया था ॥ १८०४ ॥ उसी राजा जयसिंहके इस समय मित्र, दुर्ग तथा धनसे सम्पन्न छः शत्रु उत्पन्न हो गये, उसके मंत्रिमण्डलमें फूट पड़ गयी और कश्मीरमंडल कोश-शून्य हो गया ॥१८०५॥ ऐसी भीषण कसौटीपर अपनी महिमासे खरे उतरे हुए उस राजाके धैर्यसे स्पर्धा करनेपर भगवान् राम भी हल्के दिखायी देंगे ॥ १८०६ ॥ क्योंकि पिता दशरथने राममें अपने ही समान गुणोंको विद्यमान देखकर उन्हें साम्राज्य प्रदान करनेकी इच्छा की, किन्तु बादमें रामको राज्यसे निर्वासित करना पड़ा ॥ १८०७ ॥ किन्तु राज्याभिषेक तथा वनके लिए निर्वासन इन दोनों ही अवसरोंपर रामकी आकृतिमें तनिक भी विकार नहीं दिखायी पड़ा ॥ १८०८ ॥ राजा दशरथने पत्नी तथा भ्राताके साथ रामको रमणीक वनोंमें भेजते समय वन-वासकी अवधि बीतनेपर पुनः राज्य देनेका वादा किया था ॥ १८०९ ॥ सो इस सुख-दुःखके टक्करमें केवल क्षण भरके लिए रामको क्लेश हुआ था। इस प्रकार राजा जयसिंह और रामकी परिस्थितिमें महान् अन्तर था ॥ १८१० ॥ क्योंकि यहाँ एक व्यक्तिपर अकारण अपनी शक्तिका प्रदर्शन करनेके लिए विधाताने विशेष रूपसे तैयारी करके उसके सभी उपकरणोंको नष्ट कर दिया था ॥ १८११ ॥ आगे चलकर उस राजाके अद्भुत कर्म बताये जानेवाले हैं। किन्तु समस्त सम्पदाओंके विद्यमान रहते उसे कोई बहुत बड़ा काम नहीं समझेगा ॥१८१२॥ तदनन्तर धैर्यके समुद्र राजाने शेष कार्य समझनेके लिए उस पत्रवाहकसे लोहरके किलेका विस्तृत वृत्तान्त पूछा तो वह कहने लगा—॥१८१३॥ 'जब कि भागिक किला छोड़कर चला गया, तब मण्डलेश्वर (गवर्नर) प्रेमा सम्पत्ति पाकर प्रमत्त हो उठा और सुरक्षाके कार्यसे विमुख हो गया ॥ १८१४ ॥ अब साज-शृंगार, भोजन तथा स्त्रीभोगमें आसक्त होकर मदके कारण अपनी उग्र प्रकृतिसे उसने भृत्यों तकको अपने विरुद्ध कर लिया और सबके साथ उद्दण्ड व्यवहार करने लगा ॥ १८१५ ॥ अपनी कुलमर्यादाको ध्यानमें रखके जब आपने उन कैदियोंको अन्धा या अपंग करनेकी अनुमति नहीं दी, तब उसने भी उनके ऊपर करने योग्य नियंत्रणकी ओर ध्यान नहीं दिया ॥ १८१६ ॥ उसी समय महत्त्वाकांक्षी एवं मायावी कायस्थ उदयने, माञ्जिक प्रतीहार और भीमाकरका पुत्र इन्द्राकर ये सब मिलकर द्रोह करनेकी इच्छासे उस प्रेमाको मार डालनेका उपाय सोचने

कश्मीरेभ्यो नृपेणाल्पावशेषप्राणवृत्तिना । प्रैषि शासनमेतादृगिति प्रत्ययसिद्धये ॥१८२०॥
कोट्टौकसामशेषाणां गूढलेखान्विधाय ते । निबद्धसंविदः पूर्वमभिषेच्यस्य भार्यया ॥१८२१॥
दृष्ट्वा दुर्गान्निर्निगडं कृत्वा च निशि लोठनम् ।
सिंहराजस्वामिविष्णुप्रासादाग्रेऽभ्यषेचयन् ॥ तिलकम् ॥१८२२॥
शरदाख्या वधूरेका कापि सुस्सलभूपतेः । तत्र स्थिताऽभवत्क्षुद्रा तेषामनुमतप्रदा ॥१८२३॥
तदर्पितैरयोयन्त्रभञ्जनैरर्गलानि ते । कोशान्निवार्य पर्याप्तं कोशरत्नादि जह्रिरे ॥१८२४॥
सभृत्यैः सप्तभिस्तत्तत्साहसं सुमहत्कृतम् । दानेन त्याजिता या सा चण्डालैः प्रतिकूलता ॥१८२५॥
भेरीतूर्यादिनिर्घोषैर्निर्निद्राः कोट्टवासिनः । कृता राजोचिताकल्पमपश्यन्नथ लोठनम् ॥१८२६॥
अदृष्टपूर्वतादृक्षोदात्तवेषः स विस्मयम् । निन्ये जनान्नृपामात्ययोगो दीपैः प्रकाशितः ॥१८२७॥
प्रेम्णः पार्श्वस्थितस्ताभ्यामानयेद्दारकोऽन्तिकम् । ससैन्यौ स्वभुवश्चर्मपासिकाख्यौ च ठक्कुरौ ॥१८२८॥
तदास्थयाहितास्कन्दभङ्गस्तेषामशेषतः । रात्रिशेषश्च चन्द्रांशुस्पर्शपाण्डुरशीर्यत ॥१८२९॥
प्रातः प्रेमाथ दुर्वार्ताश्रवणेनोष्णदारुणः । संताप्यमानश्चोष्णांशुकरै रोद्धुमुपाययौ ॥१८३०॥
तं प्रतोलीतलप्राप्तं निर्यातैर्वैरिसैनिकैः । पराङ्मुखीकृतं वीक्ष्य चलितोऽस्म्यन्तिकं प्रभोः ॥१८३१॥
श्रुत्वेति भूभृत्त्वरया लुल्लं लोहरमन्त्रिणम् । विससर्जोदयद्वारपतिमानन्दवर्धनम् ॥१८३२॥
भूमिज्ञौ तौ हि कोट्टस्य विवेदानन्यदेशजौ । सोऽल्पान्नत्वादिरन्ध्राणां लक्षणाद्ग्रहणक्षमौ ॥१८३३॥
प्रविष्टश्च पुरं दृष्ट्वा प्रीतिदायार्थिभिः शिरः । भ्राम्यमाणं भटैर्भिक्षोराक्षिप्यैतानदाहयत् ॥१८३४॥

लगे, जिसने राज्यमें इनकी जड़ मजबूत की थी ॥ १८१७ ॥ १८१८ ॥ यद्यपि इन लोगोंने उसे मारनेके लिए अनेक प्रयत्न किये, पर अवसर ही नहीं मिला। एक समय किसी कार्यवश प्रेमा किलेसे अट्टालिकापर चढा ॥ १८१९ ॥ उसी बीच मरणोन्मुख कश्मीरनरेशने ऐसा आदेश दिया है, यह विश्वास दिलानेके लिए अभिषेच्य लोठनकी पत्नीके साथ किलेके सभी कर्मचारियोंने संघबद्ध होकर एक जाली दस्तावेज तैयार किया। तदनन्तर रात्रिके समय लोठनको बन्धनमुक्त करके विष्णुसिंहने राजस्वामीके मन्दिरपर उसका राज्याभिषेक कर दिया ॥ १८२०–१८२२ ॥ उसी समय दिवंगत राजा सुस्सलकी एक क्षुद्र रानी शरदा, जो लोहरमें ही रक्खी गयी थी, वह भी उन सबकी सहायक बन गयी ॥ १८२३ ॥ उसने उन्हें ऐसे शस्त्र दिये कि जिनसे अर्गला तोड़कर वे खजानेके भीतर घुस गये और उसमेंसे बहुतेरा धन-रत्न आदि निकाल लिया ॥ १८२४ ॥ भृत्योंके साथ कुल सात व्यक्तियोंने यह दुःसाहस किया था। क्योंकि उन चण्डालोंने घूस देकर उन भृत्योंकी प्रतिकूलता दूर करके उन्हें अपनी ओर मिला लिया ॥ १८२५ ॥ रातभर नगाड़े-तुड़ही आदि बजा-बजाकर उन्होंने सारे कोटवासियोंकी नींद खराब कर दी। उसके बाद लोगोंने राजोचित वेष-भूषासे सज-धजकर बैठे हुए लोठनको देखा ॥ १८२६ ॥ इस प्रकार उदात्त वेष धारण करानेके कारण विस्मित लोठनको उन्हींमेंसे उस राजाके मंत्री बने हुए लोग मशालकी रोशनीमें वहाँसे ले गये ॥ १८२७ ॥ जब शेष रात्रिके साथ ही चाँदनी भी समाप्त हो गयी, तब वे लोग भी अपने विरुद्ध आक्रमणकी आशंका करने लगे। सो इस लिए कि कहीं प्रेमाका युवा पुत्र चर्म तथा पासिक ससैन्य ठाकुरोंके साथ यहाँ न आ जायँ ॥ १८२८ ॥ १८२९ ॥ सवेरे प्रेमा यह दुखदायी समाचार सुनकर मारे क्रोधके तमतमा उठा और सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त होकर प्रतिरोध करनेके लिए आगे बढा ॥१८३०॥ जब मैं श्रीमान्‌के पास आनेके लिए चला तो देखा कि प्रेमा शत्रुओंका प्रतिरोध करनेके लिए राजपथपर पहुँच चुका था, किन्तु शत्रुके सैनिकोंने उसे पीछे लौटनेके लिए विवश कर दिया ॥ १८३१ ॥ यह समाचार सुनकर राजाने तत्काल लोहरके मंत्री लुल्ल तथा द्वाराधीश आनन्दवर्धनके पुत्र उदयको भेजा ॥ १८३२ ॥ क्योंकि ये दोनों उसी देशमें जनमे थे। अतएव इन्हें उस भूमिकी पूरी जानकारी थी और ये लोग किलेमें अन्न आदिकी कमी तथा अन्य कमजोरियोंका लाभ उठाकर दुर्गको हस्तगत करनेमे समर्थ थे

राजादेशादसंरुद्धैः स्त्रीभूयिष्ठैरसौ जनैः । नप्ता पैतामहे देशे दह्यमानोऽन्वशोच्यत ॥१८३५॥
काले ग्रीष्मोदयोद्रिक्तभानौ सुविषमे नृपः । सिद्धिमश्रद्दधानोऽपि प्रहिणोति स्म रिल्हणम् ॥१८३६॥
स शौर्यस्वामिभक्त्यर्थनैस्पृह्यादिगुणोज्ज्वलः । तेन ह्यमोघप्रारम्भः समभावि जिगीषुणा ॥१८३७॥
भवितव्यतया दत्तव्यामोहः प्रेरितोऽथ वा । शठामात्यैरभूद्भूभृत्स व्यक्तायुक्तमन्त्रितः ॥१८३८॥
हीनोऽर्थदुर्गामात्यैर्यन्निर्वङ्क्तव्यस्य वैरिणः । अनुमेने कृतारब्धीन्भृत्यान्ग्रीष्मोल्बणे क्षणे ॥१८३९॥
उदयः कम्पनाधीशो राज्ञोऽग्रे पर्यशिष्यत । सर्वामात्याः प्रतीहारमन्वगच्छन्पुनः परे ॥१८४०॥
राजात्मजहयारोहडामरामात्यमिश्रया । दैर्घ्यं तत्सेनया वापि सर्वसामग्र्युदग्रया ॥१८४१॥
संवेष्टयन्नट्टलिकानिविष्टकटको दिशः । संग्रहीतुं प्रववृते सर्वोपायैर्विरोधिनः ॥१८४२॥
लुल्लादयः फुल्लपुरे कोट्टोपान्ताश्रये स्थिताः । भयभेदाहवव्यग्रान्प्रकम्पसनयन्रिपून् ॥१८४३॥
मुस्सलक्ष्मापतिर्बद्धे लोठने तत्सुतामदात् । यस्मै प्राक्पद्मलेखाख्यां बहुस्थलधराभुजे ॥१८४४॥
साहायकाय प्राप्तस्य तस्य सैन्यैर्द्विपच्चमूः । शूराभिधस्य युद्धेषु प्रत्यग्राहि प्रतिक्षणम् ॥१८४५॥
तेषूपरुद्धराष्ट्रेषु भयदोलायमानधीः । अङ्गीचक्रे नरपतेर्नतिं दण्डं च लोठनः ॥१८४६॥
एतावत्सिद्धमफलारब्धीनामत्र दुःसहे । काले व्यावृत्तिरस्माकमुचिताऽस्मिन्नलाघवा ॥१८४७॥
शारदारम्भसुभगे क्रमात्काले बलोर्जिताः । अथारब्धिं विधास्यामः सर्वारम्भेण शोभनाम् ॥१८४८॥
इत्यन्वहं लक्ष्मकेण प्रहितं नादधे नृपः ।
अन्ये च मन्त्रिणो मन्त्रं शाठ्यादभ्यर्णवर्तिनः ॥ तिलकम् ॥१८४९॥

॥ १८३३ ॥ तदनन्तर जब राजा जयसिंह लौटकर अपने नगरमें पहुँचा तो बहुतेरे सैनिक भिक्षाचरका मुण्ड लेकर आये और राजासे पुरस्कार माँगने लगे। तब राजाने उनको झिड़ककर लौटाते हुए वह मुण्ड आगमें जलवा दिया ॥ १८३४ ॥ इस प्रकार पितामहकी भूमिपर पौत्र (भिक्षु) का दाहसंस्कार करके वहाँके जन-समुदाय एवं विशेष करके स्त्रियोंने शोक मनाया और शान्तिपूर्वक चले गये ॥ १८३५ ॥ ग्रीष्म ऋतुमें जब सूर्यकी किरणें अत्यन्त तीक्ष्ण हो गयीं, तब उस भीषण समयमें जब कि सिद्धिकी आशा नहीं थी, तथापि उसने रिल्हणको लोहर भेज दिया ॥ १८३६ ॥ वीरता, स्वामिभक्ति और निःस्पृहता आदि गुणोंसे सम्पन्न रिल्हण द्वारा अमोघ प्रारम्भसे राजाको लोहरपर पुनः कब्जा होनेकी आशा हो चली ॥ १८३७ ॥ उस समय भाग्यके फेरसे मोहमें पड़कर अथवा दुष्ट मंत्रियोंकी प्रेरणासे राजाने सर्वथा अनुचित मार्ग अपनाया। उसे इस बात का विश्वास था कि बिना प्रबल सैनिकों तथा मंत्रियोंके इस भीषण गर्मीमें सर्वसाधनसम्पन्न एवं अडिग शत्रुओंपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती ॥१८३८॥१८३९॥ उस समय केवल सेनापति उदय राजाके पास रह गया। बाकी सब मुख्य मंत्री प्रतीहार (लक्ष्मक) के साथ चले गये ॥ १८४० ॥ राजपुत्र, अश्वारोही, डामर तथा मन्त्रियोंसे मिश्रित एवं समस्त युद्धसामग्रियोंसे परिपूर्ण राजकीय सेना चारों ओर फैल गयी ॥ १८४१ ॥ तदनन्तर राजाने अट्टलिकाके ऊपर अपना शिविर बनाकर शत्रुओंके सभी प्रवेशमार्गोंको अवरुद्ध कर दिया ॥१८४२॥ किलेके पासवाले ग्राम फुल्लपुरमें लुल्ल आदि योद्धा एकत्र हुए और उन्होंने अपनी उपस्थितिसे भय तथा भेद उत्पन्न करके युद्धसे भयभीत शत्रुओंको कँपा दिया ॥१८४३॥ बहुस्थलके मुख्य अधिकारी शूरके विवाहमें राजा मुस्सलने लोठनकी पुत्री पद्मलेखाको देकर लोठनको जेल भेज दिया था। बादमें अपने श्वसुरकी मदद करनेके लिए शूर वहाँ पहुँच गया और उसके सैनिक प्रतिक्षण शत्रुकी सेनापर आक्रमण करने लगे ॥ १८४४ ॥ १८४५ ॥ इस प्रकार जब राजाके सैनिकोंने उस स्थानपर अधिकार कर लिया, तब भयसे मस्तिष्कमें अशान्ति उत्पन्न हो जानेपर लोठन राजाके समक्ष आत्मसमर्पण करके दण्ड भोगनेके लिए तैयार हो गया ॥ १८४६ ॥ तब मुख्यमन्त्री लक्ष्मकने यह विचार व्यक्त किया कि इस समय जो प्राप्त हो चुका है, उसके अतिरिक्त इस खराब मौसममें अधिक लाभकी आशा त्यागकर लौट पड़नेमें कोई अपमान नहीं है। जब शरद् ऋतु आ जायगी,

सर्वाधिकार्युदयनः प्रतिश्रुत्य धनं बहु । साहायकार्थमानिन्ये सोमपालमपि प्रभोः ॥१८५०॥
अपाङ्क्तेयः स संबन्धबद्धोऽपि जनलुब्धधीः । द्रुह्यति स्म महाव्यापन्निमग्नाय महीभुजे ॥१८५१॥
बह्वर्थदो लोठनश्चेत्किं मे संबन्ध्यपेक्षया । अन्यथा भवतामस्मीत्यन्यान्वच्यामि कैतवात् ॥१८५२॥
दम्भमित्यभिसंधाय सोमपालोऽभ्युपाययौ । समर्थने हेतुरासीत्सुज्जेर्व्याजे कियानपि ॥ युग्मम् ॥१८५३॥
स हि भिक्षाचरौन्मुख्यान्निवार्यानायितो यदा । सोमपालमुखेनोर्वीभुजा राजविसर्जितः ॥१८५४॥
दूतः प्रार्थयमानस्य तस्यार्थान्प्राक्प्रतिश्रुतान् । ऋणिकस्योत्तमर्णेभ्यः प्रदातुमनुबध्नतः ॥१८५५॥
तदा भिक्षाचरं जानन्हतकल्पमनेन नः । व्यसनप्रशमे कोऽर्थ इत्यवज्ञां प्रकाशयन् ॥१८५६॥
मदेन न ददौ किंचित्सोऽथ भिक्षाचरं हतम् । श्रुत्वा निरुपयोगं स्वं राज्ञो ज्ञात्वा सशोकताम् ॥१८५७॥
यावदेकाहमभजल्लोहरव्यसने भयम् । तावन्निशम्य संप्राप्तोत्सेको भूयोपि मन्युभाक् ॥१८५८॥
लोठनं बद्धसंधिं वः करिष्यामीति भूभुजः । उक्त्वा दूतं लोठनेन दापयिष्यामि काञ्चनम् ॥१८५९॥
युष्मभ्यं कथयित्वेति सोमपालं चिकीर्षितुम् । वलितामबलत्वं च सर्वेषां स्वार्थसिद्धये ॥१८६०॥
समं सोमेन तत्सैन्यमध्यप्रस्थित्यलक्षितैः । मितैरनुगतो भृत्यैर्घोरमूलकमासदत् ॥ कुलकम् ॥१८६१॥
यद्वानौचित्यदुष्पांसुवर्षदूषितकीर्तिना । भोगलुब्धतया तेन हता विततसत्त्वता ॥१८६२॥
तुषारशर्कराशुक्लजलपानाददुर्जरम् । त्यक्तुं भोज्यं मृदु स्निग्धं काश्मीरं न शशाक सः ॥१८६३॥
सतुषं शुष्कसक्त्वादि बहिर्भोक्तुमपारयन् । यैस्तैरुपायैः कश्मीरान्प्रविविक्षुरतोऽभवत् ॥१८६४॥
काश्मीरकाः कार्यशेषमदृष्ट्वा ग्रीष्मशोषिताः । आकर्ण्य च तदापातमाकुलत्वमशिश्रियन् ॥१८६५॥

तब नयी स्फूर्ति और शक्ति लेकर आनेपर आशातीत सफलता प्राप्त होगी। लक्ष्मकने बार-बार यह बात कही, किन्तु राजाने तथा उसके मन्त्रियोंने शठतावश उसकी बात नहीं मानी ॥१८४७–१८४९॥ तभी लोहर राज्यके सर्वाधिकारी उदयनने सोमपालको बहुत सा धन देनेका वादा करके अपने प्रभुकी सहायताके लिए बुलाया ॥ १८५० ॥ वह जातिच्युत सोमपाल यद्यपि निकटका सम्बन्धी था, तथापि भीषण विपत्तिमें पड़े हुए कश्मीरनरेशको बराबर सताया करता था ॥ १८५१ ॥ उसने सोचा कि यदि लोठन मुझे पुष्कल धन दे तो उस अपने पुराने सम्बन्धीकी ओर निहारनेकी क्या आवश्यकता ? और फिर अन्यान्य लोगोंसे तो धूर्तताके साथ यही कहूँगा कि मैं राजाके साथ हूँ। इस प्रकार कपटपूर्ण जाल रचकर सोमपाल आया। उस जालसम्बन्धी मंत्रणामें सुज्जिका भी कुछ हाथ था ॥ १८५२ ॥ १८५३ ॥ सोमपाल जब भिक्षाचरके पक्षसे फोड़कर अपनी ओर मिलाया गया, तब उसने पूर्वप्रतिश्रुत धन अपने पावनेदारोंको देनेके लिए दूतोंसे माँगा। किन्तु दूतोंको यह मालूम हो चुका था कि भिक्षाचरका जीना-मरना समान है। इसके बाद दूतोंने कहा कि 'संकट टल जानेपर अब तुम्हारी क्या आवश्यकता है'। ऐसा कहकर उन्होंने कुछ भी देनेसे इनकार कर दिया। भिक्षाचरका समाचार सुनकर सुज्जिने यह समझ लिया कि अब राजाको मेरी आवश्यकता नहीं है। जब उसने लोहरके पतनका समाचार सुना तो भयके कारण उसे दिनभर बड़ी बेचैनी रही। उसके बाद उसका स्वाभिमान फिर जागा तो उसने राजाके दूतोंसे क्रोध भरे शब्दोंमें कहा—'हम तुम्हारे लिए लोठनसे शान्ति प्राप्त कर लेंगे'। दूतोंसे इतना कहकर सुज्जिने सोमपालसे कहा—'हम लोठनको समझाकर तुम्हें सोना दिलायेंगे'। ऐसा करके उसने अपने लाभके लिए बलाबलको स्वपक्षमें परिवर्तित कर लिया। उसके बाद सुज्जि सोमपाल तथा कतिपय अनुचरोंके साथ उस सेनाके बीचसे इस तरह निकल गया कि किसीको पता ही नहीं चला। वहाँसे वे लोग घोरमूलक चल पड़े ॥१८५४–१८६१॥ अथवा अनौचित्यरूपी दूषित धूलिकी वर्षासे जिसकी कीर्ति कलंकित हो चुकी थी, उस सुज्जिने भोगलिप्सासे अपना विख्यात सत्त्व नष्ट कर दिया ॥ १८६२ ॥ तुषारकणमिश्रित एवं श्वेत जल पीने और सभी प्रकारके मृदु तथा स्निग्ध भोज्य पदार्थ सरलतासे पच जानेके कारण वह कश्मीरको नहीं त्याग सका ॥ १८६३ ॥ बाहर तुष (भूसी) मिश्रित सत्तू आदि खानेमें असमर्थ होनेसे वह जिस किसी भी उपायसे कश्मीरमें घुसनेका उपाय करने लगा

भुञ्जानैर्भृष्टमांसानि पिबद्भिः पुष्पगन्धि च । प्रतीहाराग्रतो हारि माद्वीकं लघु शीतलम् ॥१८६६॥
आनेष्यामो जवात्सुज्जिमाकृष्य श्मश्रु संयुगे । इत्थं विकत्थनैस्तैस्तैराहोपुरुषिकाः कृताः ॥१८६७॥
काश्मीरकैर्मितैर्युक्तं खशैः सैन्धवकैरपि । अभिषेणयितुं शेकुर्न तेऽत्युद्यमिनोऽपि तम् ॥१८६८॥
भ्रातृव्याय च मुख्याय भूभुजां च करार्पणम् । विदध्यां जयसिंहाय वर्शमित्यभिमानिनाम् ॥१८६९॥
वह्वर्थमर्थ्यमानेन लोठनेन तिरस्कृतः । सोमपालः प्रियं किंचिद्राजपक्षे न्यदर्शयत् ॥१८७०॥
मयि श्वशुरसैन्यानां व्यग्राणां वैरिविग्रहे । सज्जे हिताय त्वं रन्ध्रमन्विष्यसि किमाश्रितः ॥१८७१॥
इति निर्भर्त्सितस्तेन सुज्जिः स्वाहंक्रियोचितः । सर्वानुल्लङ्घ्य संनद्धो राजसैन्यग्रहेऽभवत् ॥१८७२॥
जरठापाढसंजातशीतज्वरमहाभयः । वरूथिनीसथोत्थाप्य विदद्रौ निशि लक्ष्मकः ॥१८७३॥
विसृष्टदूताः कटकं नष्टं वक्तुं प्रभोर्द्रुतम् । केचिदन्वसरन्सुज्जिं सैनिकास्ते जिघांसवः ॥१८७४॥
पारेणैकेन भूपालसैन्यमन्येन वैरिणः । वर्त्मनः श्वभ्रदुर्गस्य तुल्यमेव प्रतस्थिरे ॥१८७५॥
शारम्बरपथं वैरिवश्यं त्यक्त्वा यियासवः । स्वोर्वीं कालेनकाख्येन संकटेन तदन्तिके ॥१८७६॥
तस्मिन्नहन्यस्खलिता वनिकावासनामनि । ग्रामे सैन्या न्यविक्षन्त लोकैरुच्चावचैः समम् ॥ युग्मम् ॥१८७७॥
अनुग्रस्थायिनोऽभ्यर्णग्रामकेष्वपि वुब्रुडुः । भुक्त्वा पीत्वाथ ते निन्युर्निशार्धमकुतोभयाः ॥१८७८॥
अथापातं विद्विषद्भिः स्वस्य श्रावयितुं द्रुतम् । क्षोभभृत्सुज्जिरभ्येत्य तूर्यघोषमकारयत् ॥१८७९॥
क्षणदाशेष एवाशु पलायांचक्रिरे ततः । तैस्तैः शैलपथैः सेना निरवष्टम्भनायकाः ॥१८८०॥

॥ १८६४ ॥ उधर ग्रीष्मसंतप्त कश्मीरके लोग अपने यहाँ सुज्जिका कोई काम शेष न देख तथा उसके पुनः आनेकी खबर सुनकर व्याकुल हो उठे ॥ १७६५ ॥ उधर महामन्त्री प्रतीहारके साथ बैठकर भुने हुए स्वच्छ मास खाने तथा पुष्पोंसे सुवासित हल्के नशेकी मदिरा-पीनेवाले उसके मित्रगण कहते थे—'हमलोग शीघ्र सुज्जिकी मूँछ पकड़कर संग्राममे घसीट लायेंगे'। ऐसी-ऐसी बहुतेरी डींगें हाँकते हुए वे धन्यवादके पात्र बन गये ॥ १८६६ ॥ ॥ १८६७ ॥ यद्यपि बहुतेरे कश्मीरियों, खशो और सिन्धियोंने उसे फुसलाकर लानेका घनघोर प्रयत्न किया, पर वे सफल नहीं हुए ॥ १८६८॥ जब कि सोमपालने-भरपूर धन पानेके लिए लोठनपर दबाव डालते हुए कहा—'यह बहुत अच्छा हो कि तुम राजा जयसिंहको प्रसन्न करनेके लिए मेरी माँगके अनुसार धन दे दो। यदि ऐसा करोगे तो अपने भाईके लड़के एवं-कश्मीरके महाराजका हाथ तुम्हारे हाथपर रखकर मैं आदरपूर्ण मैत्री करा दूँगा'। इस प्रकार बहुत तरहसे माँगनेपर भी लोठनने सोमपालकी माँग ठुकरा दी। तब सोमपालने कुछ राजपक्षकी प्रियता प्रदर्शित की ॥ १८६९ ॥ १८७० ॥ तदनुसार सोमपालने सुज्जिके पास जाकर कहा—'जब शत्रुओंके साथ युद्ध छिड़ जानेपर मेरे ससुर जयसिंहकी सेना व्यग्र हो उठेगी, तब तुम किसकी ओर मिलकर शत्रुके छिद्र देखोगे?' इस प्रकार उसके धमकानेपर अपने स्वाभिमानकी रक्षा करता हुआ सुज्जि राजसेनाके पक्षमें जा मिला ॥ १८७१ ॥ १८७२ ॥ आषाढ़के शुक्लपक्षमें शीतज्वरका महान् भय उपस्थित होनेपर लक्ष्मक आधी रातके समय अपनी सेना लेकर भाग खड़ा हुआ ॥ १८७३ ॥ सेनाकी इस भगदड़का समाचार सुनानेके लिए कुछ सैनिक राजाके पास भेजे गये और कुछ सुज्जिको मार डालनेके लिए उसका पीछा करने लगे ॥ १८७४ ॥ उसी समय किलेकी खाईके एक ओरके मार्गसे राजाकी और दूसरी ओरके मार्गसे शत्रुओंकी सेना आकर डट गयी ॥ १८७५ ॥ इस प्रकार आगे बढते हुए राजसैनिकोंने जब शारम्बरके मार्गको शत्रुके कब्जेमे देखा तो उस संकटकालमें सेनानायक कालेनकने वह पथ त्याग दिया और पास ही के दूसरे मार्गसे उसी दिन उत्तम-मध्यम सब लोगोंको साथ लिये हुए वह वनिकावास ग्राममे जा पहुँचा ॥ १८७६ ॥ १८७७ ॥ उनके पीछे-पीछे चलनेवाले लोग भी आस-पासके गाँवोंमें घुस गये और वहाँ खा-पीकर आधी राततक बड़े निर्भीक भावसे पड़े रहे ॥ १८७८ ॥ उसके बाद अपने सैनिकोंको शत्रुके आक्रमणकी सम्भावनाका समाचार शीघ्र सुनानेके लिए पहलेसे ही क्षुब्ध सुज्जिने आकर तूर्यघोप करा दिया ॥ १८७९ ॥ तुड़हीकी ध्वनि सुनकर कुछ रात रहते ही

चित्राम्बराणि मुष्णद्भिः प्राह्णेऽस्यजयन्त मन्त्रिणः । भूप्रकम्पैर्गण्डशैला नानाधातुद्रवैरिव ॥१८८१॥
लुण्ठ्यमानाश्चमूस्त्रातुं नादधे कश्चिदायुधम् । तदा तु येन वा तेन स्वात्मा नान्यस्तु रक्षितः ॥१८८२॥
उत्प्लुत्य लङ्घयन्तोऽद्रीन्केऽपि शोणाधरांशुकाः । रक्तस्फिजो गतौ प्रापुर्मर्कटा इव पाटवम् ॥१८८३॥
केऽप्यम्बरपरित्यागविकचद्गौरविग्रहाः । हरितालशिलाखण्डा इव वातेरिता ययुः ॥१८८४॥
शूलवेणुवनाकीर्णैः शैलैरक्रशविग्रहाः । केऽपि श्वासोत्थपूत्काराः करिपोता इवाव्रजन् ॥१८८५॥
किं नामोदीरणैर्मन्त्री स नासीत्तत्र कश्चन । तिरश्चेव विपर्यस्तधैर्यैर्येन पलायितम् ॥१८८६॥
भृत्यस्कन्धाधिरूढोऽथ गच्छन्मूढः प्रधावितुम् । प्रतीहारो द्विपद्योधैर्दूरात्कैश्चिद्व्यलोक्यत ॥१८८७॥
निरंशुकः स स्फुर्यांशुकचत्केयूरकुण्डलः । प्रतिज्ञायानुससे तैः सर्वप्राणप्रधावितैः ॥१८८८॥
अश्माहतेन भृत्येन त्यक्तः स्कन्धादुद्रपत्क्षतः । स निस्पन्दवपुस्तिष्ठंस्तैरग्राहि महाजवैः ॥१८८९॥
नवबन्धनशोकार्तशारिकाकृशविग्रहः । स गल्गलिरिव व्यञ्जद्द्विषः संकुचितेक्षणः ॥१८९०॥
बद्धस्य मे मानधनप्रहर्तुर्वैशसान्तरम् । इतोऽधिकं ध्रुवं सुज्जिर्विदध्यादिति चिन्तयन् ॥१८९१॥
स्कन्धेऽधिरोप्य निःशेषीकृतप्रावारभूषणः ।
नदद्भिः सोपहासं तैः सुज्जेरग्रं व्यनीयत ॥ तिलकम् ॥१८९२॥
प्रच्छाद्य सत्त्ववान्वक्त्रं सोंऽशुकेनैप नोऽर्चितः । बृहद्राज इवेत्युक्त्वा तस्मै स्वान्यंशुकान्यदात् ॥१८९३॥
प्रावारिताम्बरं कृत्वा हयारूढं च तं पुनः । धैर्येणायोजयत्स्निग्धैर्वचोभिः परिसान्त्वयन् ॥१८९४॥

वे सैनिक अपने नायकके आदेशकी अनसुनी करते हुए पहाड़ोंके विभिन्न मार्गोंसे भाग गये ॥ १८८० ॥ सवेरे उठकर मंत्रियोंने देखा कि उनके सभी कीमती वस्त्र चोरीसे चले गये हैं। जैसे भीषण भूकम्प आनेपर पर्वतोंकी खाड़ियोंको विविध प्रकारके धातुद्रव निगल जाते हैं ॥१८८१॥ उस समय लुटती हुई सेनाको बचानेके लिए किसीने शस्त्र नहीं उठाया। क्योंकि उस संकटकालमें सब अपने आपको बचानेमें व्यस्त थे। किसी अन्य व्यक्तिको बचानेकी ओर उनका ध्यान ही नहीं था ॥ १८८२ ॥ लाल वस्त्र धारण किये कुछ लोग कूद-कूदकर पर्वतोंको लाँघते हुए बन्दरों जैसा कौशल दिखा रहे थे ॥ १८८३ ॥ कुछ लोग वस्त्रोंको त्यागकर अपना नग्न और गौरवर्णका शरीर लिये वायु द्वारा उड़ाये हुए हरतालकी बड़ी चट्टान जैसे भागे जा रहे थे ॥ १८८४ ॥ कुछ शूल (भाला) रूपी बाँसके वनोंसे घिरे विशालकाय पुरुष बहुत जोर-जोरसे हाँफते हुए हाथीके बच्चों जैसे भाग रहे थे ॥ १८८५ ॥ यहाँ उनके नाम बतानेकी क्या आवश्यकता, इतना ही समझ लीजिए कि कोई भी ऐसा मंत्री नहीं था, जो पशुओंके समान धैर्य त्यागकर न भागा हो ॥ १८८६ ॥ अपने नौकरके कन्धेपर बैठकर भागते हुए मूर्ख महामंत्री प्रतीहारको दूर ही से शत्रुके सैनिकोंने देख लिया ॥ १८८७ ॥ उस समय वह नंगा था और उसके कानोंमें कुंडल चमक रहे थे। जब उसे शत्रु-सैनिकोंने दौड़ाया तो उसका और भी बुरा हाल हो गया ॥१८८८॥ अन्तमें उनका फेंका हुआ एक पत्थर भृत्यको लगा। जिससे विवश होकर उसने महामंत्रीको कन्धेपरसे उतार दिया। उसी समय शत्रुसैनिकोंने लपककर उस चुपचाप खड़े प्रतीहारको पकड़ लिया ॥ १८८९ ॥ नये नये बन्धनमें पड़नेके कारण वह शोकार्त हो उठा और उसका शरीर सिकुड़कर शारिकाके समान हो गया। उस समय उसकी घिग्घी बँध गयी थी और आँखें मिलमिलाकर शत्रुओंकी ओर निहार रहा था ॥ १८९० ॥ उसने सोचा—इस प्रकार बन्धनमें पड़ जानेपर सुज्जि मेरा मान और धन तो ले ही लेगा। संभव है कि इससे बढ़कर भी कोई अत्याचार करे ॥ १८९१ ॥ तभी उन शत्रुसैनिकोंने प्रतीहारका अवशिष्ट वस्त्राभूषण भी छीनकर उसे एक दम नंगा कर दिया और तरह तरहसे उपहास करते हुए वे उसे अपने कन्धेपर बिठाकर सुज्जिके पास ले गये ॥ १८९२ ॥ बलवान् सुज्जिने नग्न प्रतिहारको देखा तो वस्त्रसे अपना मुँह ढाँक लिया और उसका तनिक भी सम्मान नहीं किया। तदनन्तर उसने उसे अपना वस्त्र पहननेको दिया ॥ १८९३ ॥ वस्त्र पहननेके बाद उसे घोड़ेपर चढाया और मीठी-मीठी बातें करके धैर्य बँधाते हुए सान्त्वना प्रदान की ॥ १८९४ ॥

निर्लुण्ठिततुरंगासिकोशैः परिवृतः खशैः । ततो गृहीत्वा तं श्रीमान्सोमपालान्तिकं ययौ ॥१८९५॥
इमा व्योमाङ्गनाक्रीडत्तरलविभ्रमाः । भाग्यमेघानुयायिन्यः स्थायिन्यः कस्य संपदः ॥१८९६॥
आराधनधिया स्वैरं यस्याग्रेऽभोजि भृत्यवत् । गात्राणि कुङ्कुमालेपैरुपाचर्यन्त च स्वयम् ॥१८९७॥
सोमपालादिभिः प्रह्वैः स मासैरेव पञ्चषैः । तेषामग्रे तथाभूतस्तिष्ठन्नग्नोऽकैर्व्यभाव्यत ॥१८९८॥
लुल्लोपि पलितश्वेतोपान्तश्यामाननः परैः । वनौका इव बद्धोऽभूच्छोकमूको वनान्तरे ॥१८९९॥
अर्पितं सुज्जिना सोमपालः स्वीकृत्य लक्ष्मणम् । जानन्गृहीतान्कश्मीरान्निजराष्ट्रं न्यवर्तत ॥१९००॥
लोठनस्यान्तिकादेत्य स शूरैर्माजिकादिभिः । प्रतिश्रुत्य प्रभूतार्थैः प्रतीहारमयाच्यत ॥१९०१॥
कश्मीरा हि प्रतीहारशिक्षापक्षानुयायिभिः । तदा न कैरमन्यन्त संप्राप्या डामराण्डजैः ॥१९०२॥
लुब्धेनापि प्रतीहारायत्तं राष्ट्रं जिघृक्षुणा । भूरि चादित्सुना वित्तं राज्ञोऽकारि न तेन तत् ॥१९०३॥
भग्नमानेष्वमात्येषु प्राप्तेषु नगरं नृपः । हारिते च प्रतीहारे न धैर्यात्पर्यहीयत ॥१९०४॥
यैः सैन्यसारैर्द्वैराज्यं पुरा भिक्षाचरोऽकरोत् । यैश्चाप्युत्कुपिते राष्ट्रे वृत्त्यावतिष्ट सुस्सलः ॥१९०५॥
भूभृता संगृहीतानां शीतज्वररुजा ततः । तेषां दश सहस्राणि योधानां निधनं ययुः ॥१९०६॥
विरराम तदा देशे न मुहूर्तमपि क्वचित् । बान्धवाक्रन्दतुमुलं प्रेतवाद्यमहर्निशम् ॥१९०७॥
घोरघर्मघृणिश्रान्ताशेषव्यवहृतिस्थितिः । सोऽनुत्साहहतः कालो नष्टराज्य इवाभवत् ॥१९०८॥
नानादिगन्तरायातैः प्राप्तैः कार्श्मीरकैरपि । लोहरेऽथ प्रवृद्धर्द्धि राजद्वारमजायत ॥१९०९॥

इस प्रकार जिसका अश्व, तलवार और धन सब कुछ छिन चुका था, उस महामंत्री प्रतीहारको पकड़कर खश लोग सोमपालके पास ले गये ॥ १८९५ ॥ देवांगनाओंके समान खेलने एवं विद्युत्के समान क्षण भरके लिए चमकनेवाली और भाग्यरूपी मेघकी अनुगामिनी सम्पदायें कब किसके पास स्थायीरूपसे टिकी हैं ? ॥ १८९६ ॥ जिसके समक्ष सोमपाल आदि खश सेवकके समान विनम्रभावसे हाथ जोड़कर खड़े होते थे, उसका दिया खाते थे और उसके शरीरपर कुंकुमका लेप लगाते थे, पाँच ही छ महीने बाद आज उनका भूतपूर्व प्रभु प्रतीहार नंगा खड़ा था और खश लोग अवज्ञाभरी दृष्टिसे उसे निहार रहे थे ॥ १८९७ ॥ १८९८ ॥ इसी प्रकार पके होनेके कारण श्वेत केशों और श्याममुखवाले वनचरके समान वनान्तरमें लुल्ल भी पकड़ लिया गया। उस समय शोकके कारण वह गूँगा हो गया था ॥ १८९९ ॥ इस प्रकार सुज्जिके द्वारा अर्पित लक्ष्मकको अपने काबूमें करके सोमपालने कश्मीरको हस्तगत समझ लिया और वहाँसे अपने देशको लौट पड़ा ॥ १९०० ॥ तदनन्तर लोठनके भेजनेपर शूर एवं माणिक आदि सोमपालके पास पहुँचे और उन्होंने पुष्कल धनके बदले प्रतीहारको माँगा ॥ १९०१ ॥ किन्तु प्रतीहारके अनुगामी डामरोंने हर तरहका प्रयत्न करके जब प्रतीहारको नहीं लौटा पाया, तब कश्मीरी लोग यह सोचकर हताश हो गये कि 'अब लक्ष्मकको कोई नहीं छुडा पायेगा' ॥ १९०२ ॥ उसके बाद स्वयं राजा जयसिंहने भी सोमपालको प्रचुर धन देकर प्रतीहारको छुडानेका प्रयत्न किया। किन्तु प्रतीहारके अधीन कश्मीर राज्य हड़पनेके विचारसे उसने उसे नहीं ही छोड़ा ॥ १९०३ ॥ इस प्रकार मंत्रियोंके अपमानित होने तथा प्रतीहारके पकड़ जानेपर राजा जयसिंह राजधानी पहुँचा और ऐसी विकट स्थितिमें भी उसने अपना धैर्य नहीं खोया ॥ १९०४ ॥ जिस प्रकार सेनाकी सहायतासे पूर्वकालमें भिक्षाचरने द्वैराज्य शासन चलाया था और समस्त राष्ट्रके कुपित हो जानेपर जैसा व्यवहार राजा सुस्सलने किया था ॥ १९०५ ॥ तदनुसार राजाने जो सेना जुटायी, उसमेंसे दस हजार योद्धा शीतज्वरसे आक्रान्त होकर मर गये ॥ १९०६ ॥ उन दिनों देशमें मुहूर्त भरके लिए भी शान्ति नहीं स्थापित हो पा रही थी। चारों ओर बन्धु-बान्धवोंका चीत्कारपूर्ण रुदन एवं मुर्दोंके साथ बजनेवाले बाजोंकी ध्वनि सुनायी देती थी ॥ १९०७ ॥ बड़ी भीषण गर्मी पड़ रही थी, इस कारण सभी व्यवहार ठप पड़ गये थे और अतएव अनुत्साहसे निहत वह समय अराजक जैसा हो रहा था ॥ १९०८ ॥ अनेक देशोंसे कश्मीरियोंके आ आकर बस जानेके कारण समृद्ध लोहर भी अब एक राजद्वार

काकतालीयसंप्राप्तलोकोत्तरनृपश्रियः । अकुण्ठा लोठनस्यासीत्स्फूर्तिर्वित्तपतेरिव ॥१९१०॥
तस्याकारपरिक्लेशवैशसाभिन्नवृत्तयः । भोगेष्वबाह्या भ्रातृव्यभृत्यपुत्रादयोऽभवन् ॥१९११॥
नास्थानवर्षी स्थाने वा बद्धमुष्टिर्विभूतिमान् । स वयःपाकनिष्कर्मव्यवहारो व्यभाव्यत ॥१९१२॥

छाया निरङ्कुशमतिः स्वयमातपस्तु छायान्वितः शतश एव निजप्रसङ्गम् ।
दुःखं सुखेन पृथगेवमनन्तदुःखपीडानुवेधविधुरा तु सुखस्य वृत्तिः ॥१९१३॥

तादृगभ्युदयावाप्तेर्मासे न्यूनेऽधिके गते । एकसूनोः सुतो दिल्हो लोठनस्य व्यपद्यत ॥१९१४॥
तमेकपुत्रा शोचन्ती शोकशङ्कुहताशया । ततः प्रपेदे प्रलयं मल्ला लोठनवल्लभा ॥१९१५॥
पत्न्यामभिन्नभावायां गुणज्येष्ठे तथात्मजे । विपन्ने स तया लक्ष्म्या न कृत्यं किंचिदैक्षत ॥१९१६॥
निःस्नेहत्वस्य भूपालसुलभस्य विजृम्भितम् । मोहनी वा श्रियः शक्तिर्यदत्रासीत्पुनः सुखम् ॥१९१७॥
अकारयन्निर्धनोऽपि तथा वृद्धस्य कालवित् । लक्षैः षट्त्रिंशता मोक्षं लक्ष्मकस्य क्षमापतिः ॥१९१८॥
दिष्टवृद्धिपरिक्षिप्तपुष्पवृष्टौ जनैः पथि । तस्मिन्प्राप्ते न कोऽत्रासीद्राज्ञा प्रत्याहृतां श्रियम्॥१९१९॥
स लक्ष्मीमहिमाक्षिप्रविस्मृताभिभवप्रथः । प्रभवन्पुनरेवासीन्निग्रहानुग्रहक्षमः १९२०॥
धनप्रलोभनिर्नष्टसर्वावष्टम्भपाटवः । सुज्जिः साचिव्यमव्याजं भेजे लोठनभूपतेः ॥१९२१॥
दत्तवान्भागिकसुतामविश्वासमपाहरत् । स तस्याद्यप्रियापायदुःस्थितिव्यथया समम् ॥१९२२॥
अभ्यर्थ्य पार्थिवं पद्मरथं चानीतवान्कृती । तस्य सोमलदेव्याख्यामुद्वाहाय तदात्मजाम् ॥१९२३॥

वन गया था ॥ १९०९ ॥ काकतालीय न्यायसे सहसा लोकोत्तर राज्यश्री प्राप्त करके लोठनकी सम्पदा कुवेरके समकक्ष हो गयी थी ॥ १९१० ॥ उसका आकार, उसकी चेष्टा और उसकी साम्यवृत्ति ऐसी थी कि जिससे उसके भ्रातृव्य, भृत्य और पुत्र आदि सभी लोग समानरूपसे लोहर राज्यका सुख भोग रहे थे ॥ १९११ ॥ अनुपयुक्त स्थानपर धन खर्चनेमें निपुण और उपयुक्त स्थलपर मुट्ठी वाँध रखनेवाला धनी लोठन वृद्धावस्थामें निष्कामकर्मा वन गया ॥ १९१२ ॥ वैसे तो छाया स्वतंत्र होती है, किन्तु जब उसका धूपके साथ संयोग हो जाता है, तब वह अपने सैकड़ों रूप दिखाती है। वैसे ही दुःख भी निरंकुश रहता है, किन्तु सुखके साथ मिलकर वह उसमें अनेक प्रकारकी पीडायें उत्पन्न करके उसकी वृत्तिको ही वदल देता है ॥ १९१३ ॥ इस प्रकार अभ्युदय प्राप्त करनेके वाद कुछ ही महीने वीतनेपर लोठनका एकमात्र पुत्र दिल्ह मर गया ॥ १९१४ ॥ अपने इकलौते पुत्रके मर जानेपर उसकी पत्नी मल्ला भी उस शोकरूपी शंकुसे आहत होकर अहर्निशि पुत्रके ही लिए शोक करती-करती मर गयी ॥ १९१५ ॥ इस प्रकार अभिन्नहृदया पत्नी एवं गुणश्रेष्ठ पुत्रके मर जानेपर लोठनको अपनी सम्पत्तिका कोई भी उपयोग नहीं दिखायी पड़ा ॥ १९१६ ॥ अतएव सब राजाओंके समान उसके भी व्यवहारमें रूक्षता आ गयी। वह तो मोहनी लक्ष्मीकी माया थी कि जिसके वशीभूत होकर उसने धनमें सुखकी कल्पना कर ली थी ॥ १९१७ ॥ तदनन्तर निर्धन होते हुए भी समयके पारखी राजा जयसिंहने सोमपालको छत्तीस लाख दीनार देकर वद्ध लक्ष्मक महामंत्रीको छुड़ाया ॥ १९१८ ॥ जब वह वन्धनमुक्त होकर लौटा, तव राजाकी भाग्यवृद्धि समझकर नागरिकोंने मार्गमें पुष्पवर्षा करके लक्ष्मक प्रतीहारका स्वागत किया। उसे प्राप्त करनेके वाद किसने यह नहीं समझा कि राज्यलक्ष्मी पुनः लौट आयी है ॥ १९१९ ॥ तत्पश्चात् लक्ष्मीकी महिमासे राजा जयसिंहको पराजयकी वात भूल गयी और निग्रह तथा अनुग्रह करनेकी क्षमतासे सम्पन्न उसका प्रभुत्व फिर चमक उठा ॥ १९२० ॥ धनके लोभवश अपना समस्त कौशल खोकर सुज्जि राजा लोठनका मंत्रित्व करने लगा ॥ १९२१ ॥ उसने भागिककी पुत्रीका हरण करके लोठनकी उजड़ी गृहस्थी फिरसे वसा दी। ऐसा करके सुज्जिने पहलेकी प्रियतमा मल्लाके मरणसे लोठनको दुःस्थितिमें पड़कर जो कष्ट झेलने पड़े थे, उन सबको दूर कर दिया ॥ १९२२ ॥ तदनन्तर वह समझा-बुझाकर राजा पद्मरथको उसकी कन्याका विवाह करानेके लिए लोहर ले आया

एवं प्रधानसम्बन्धैर्बद्धमूलं विधाय तम्। सोऽव्याहतस्य साचिव्यग्रहस्यानृण्यमाययौ ॥१९२४॥
अचिन्तयच्च कश्मीरप्रवेशं डामरादिभिः। बहुशः प्रार्थ्यमानेन प्रेरितो नवभूभुजा ॥१९२५॥
इत्थंभूतं कृतैक्यं च समं सीमान्तभूमिपैः। अथ छलयितुं शत्रून् नीतिं प्रायुंक्त सौस्सलिः ॥१९२६॥
तत्रोदयद्वारपतिस्तस्यारम्भे गभीरधीः। अलुप्तसत्त्वः स्तुत्यत्वं सारेतरविदामगात् ॥१९२७॥
तत्रत्यः स हि निर्नष्टसर्वस्वोऽप्यर्थितोऽहितैः। दानमानादिभिः स्वामिकृत्ये नित्योदितोभवत् ॥१९२८॥
वनप्रस्थाभिधे स्थाने लोहराद्दूरगे स्थितः। अखिन्नोच्छिन्नसंग्रामैर्भेदं निन्ये द्विपद्बलम् ॥१९२९॥
कटाक्षिताभिप्रायेऽस्मिन्मिथ्या तथ्येन वा दधुः। भयं लोठनभूपालान्मात्रिकेन्दारकादयः ॥१९३०॥
हन्तव्यांश्चाक्रिकानस्मान्सुज्जौ न्यस्ताशयो नृपः। वेत्ति तत्प्रेरणेनालौ तदाशङ्किपतेति ते ॥१९३१॥
संजातं सहजाख्यायां राज्ञ्यां सुस्सलभूपतेः। कुर्मो मल्लार्जुनं भूपं लोहरेऽस्मिन्हिताय वः ॥१९३२॥
तत्प्रेमाणमिवाकस्मादभिसंघत्त लोठनम्। संदिदेशाथ तान्धीमाञ्जयसिंहो महीपतिः ॥१९३३॥
व्याजेन राज्ञा संदिष्टं तत्कोट्टं स्वीचिकीर्षुणा। प्रतिश्रुतमविश्वस्तैस्तस्मिंस्तैश्च तथैव तत् ॥१९३४॥
मल्लार्जुनं लोठनोऽथ ज्ञात्वा प्रारब्धचाक्रिकम्। तदाद्यान्भ्रातृसूनूंस्तांश्चाक्रिकानप्यबन्धयत् ॥१९३५॥
अवरुद्धतनूजेन शङ्कां सौस्सलिना भजन्। परं विग्रहराजेन प्रातिहार्यमजिग्रहत् ॥१९३६॥
राजा व्याजात्पितृव्येण बद्धसंधिरुपायवित्। तत्वरे हारितं राज्यं तैस्तैः स्वीकर्तुमुद्यमैः ॥१९३७॥
विसृज्य शूरं निष्कम्पराज्यः सुज्जेः परिश्रमात्। मासान्कांश्चिदसंक्षोभो वृत्त्याऽवर्तिष्ट लोठनः ॥१९३८॥
सुज्जिः पद्मरथापत्यं प्राक्कन्यामानिनाय याम्। अनूढाया विवाहाय तस्या मातरमागताम् ॥१९३९॥

॥१९२३॥ इस प्रकार बड़े-बड़े लोगोंके साथ लोठनका सम्बंध कराके सुज्जि अपने मंत्रित्वग्रहणजनित ऋणसे उऋण हो गया॥ १९२४॥ उसके बाद डामरों तथा नये राजा लोठनके अनेकशः प्रार्थना करनेपर उसने कश्मीरकी राजधानीमें प्रवेश करनेका विचार किया॥ १९२५॥ तदनुसार योजना बनाकर सुज्जिने जब सब राजाओंका एक सुदृढ संगठन कर लिया, तब शत्रुओंको छलनेके लिए राजा सुस्सलके पुत्र जयसिंहने एक नयी नीतिका प्रयाग किया॥ १९२६॥ उसके अनुसार गम्भीर बुद्धिसम्पन्न द्वाराधीश उदय भीतर ही सब अधिकार रखते हुए भी निर्धन बन गया॥ १९२७॥ इस प्रकार अकिंचन होनेपर भी जो शत्रुपक्षके लोग उससे कुछ माँगने आते थे, उनका वह दान-मानसे भरपूर सम्मान करके अपने राजा जयसिंहका काम बनाता था॥ १९२८॥ अब वह लोहरसे थोड़ी दूरपर स्थित वनप्रस्थ नामक स्थान पर रहता था। वहाँसे ही सूत्रसंचालन करते हुए उदयने छोटे-मोटे युद्ध कराके शत्रुकी सेनामें फूट डाल दी॥ १९२९॥ उधर उसने मात्रिक, इन्दाकर तथा अन्यान्य राजाओंके मनमें लोठनके अभिप्रायके प्रति भय उत्पन्न कर दिया॥ १९३०॥ 'हमारे शत्रु षड्यंत्र-कारियोंको मार डालना' सुज्जिको यह आदेश देकर राजा लोठन निश्चिन्त हो गया था। अतएव सुज्जिके कार्यकलाप देखकर वे राजे और भी सशंक हो रहे थे॥ १९३१॥ इसी बीच बुद्धिमान् राजा जयसिंहने उन भयभीत राजाओंसे कहलाया कि 'आप लोगोंके कल्याणार्थ रानी सहजासे उत्पन्न राजा सुस्सलके पुत्र मल्लार्जुनको मैं लोहरका राजा बना दूँगा। इस कार्यको पूर्ण करनेके लिए आप प्रेमाकी तरह अकस्मात् राजा लोठनको पराजित कर दें'॥ १९३२॥ १९३३॥ ऐसा बहाना बनाकर राजा जयसिंहने उन राजाओंके पास यह संदेश इसी वास्ते भेजा था कि जिससे हाथसे निकला हुआ लोहरका किला पुनः अपने अधिकारमें आ जाय। राजापर अविश्वास रखते हुए भी ये राजे इस बातसे सहमत हो गये॥ १९३४॥ जब लोठनको यह ज्ञात हुआ कि मल्लार्जुन षड्यंत्रकारियोंमें मिल गया है, तब उसने उसे तथा अन्य षड्यंत्रकारियोंको जेल भेज दिया॥ १९३५॥ तदनन्तर सशंक होकर लोठनने राजा सुस्सलकी रखैलके पुत्र विग्रहराजको प्रधान मंत्रीके पदपर नियुक्त कर दिया॥ १९३६॥ उपाय जाननेवाले राजा लोठनने बहाना बनाकर अपने चाचाके साथ सन्धि कर ली। उसके बाद खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करनेके लिए तरह-तरहके उपाय अपनाये॥ १९३७॥ सुज्जिके परिश्रमसे जब राज्यमें शान्ति स्थापित

आकर्ण्य तेजलादीनां प्रसङ्गेऽस्मिन्सगौरवाम् । सामात्यो दर्पितपुरं कृतप्रत्युद्गतां ययौ ॥१९४०॥
माणिक्याद्यैरथ प्राप्तरन्ध्रैर्निर्गत्य बन्धनात् । मल्लार्जुनः कोट्टराज्ये संहतैरभ्यषिच्यत ॥१९४१॥
ठक्कुरैः प्राग्वदानीतैः प्रतोलीतलमागतान् । भृत्यांस्ते सिंहभूभर्तुः प्रविविक्षून्न्यवारयन् ॥१९४२॥
षष्ठेऽब्दे लोठनः शुक्लत्रयोदश्यां स फाल्गुने । यथाऽयुज्यत राज्येन तथैवाशु व्ययुज्यत ॥१९४३॥
अनूढां कन्यकां मूढः संपदं चाव्ययीकृताम् । प्राप्तां परस्य भोग्यत्वं भाग्यहीनः शुशोच सः ॥१९४४॥
अट्टिल्वाट्टिलिकादिभ्यो देशेभ्यो नष्टशक्तिना । तेन सुज्जिबला कोशशेषः कश्चिदवाप्यत ॥१९४५॥
पूर्वाहूतान्सिंहभूभृद्भृत्यान्न्यक्कृत्य माणिक्यः । निनायाप्रतिमल्लत्वं मल्लार्जुनमहीभुजम् ॥१९४६॥
तेनातिव्ययिना नव्यवयसा भूभुजा कृतम्- । मौक्तिकैः पूगविच्छेदे ताम्बूलार्पणमेकदा ॥१९४७॥
वर्षतो विषयौत्सुक्याद्धाटकं कुट्टनादिषु । त्यागित्वं तस्य तत्त्वज्ञैः सदोषमुदघोष्यत ॥१९४८॥
प्रजोपतापोपचितः कोशः सुस्सलभूपतेः । तेनातिव्ययिना स्वैरमनुरूपव्ययः कृतः ॥१९४९॥
गणिकाचारणद्रोग्धृविटचेटादिपेटकम् । साधून्निधूय सोऽपुष्णादुर्पोष्णः कुमतिर्यतः ॥१९५०॥
सपत्नसादहितसाद्यदि वा वह्निसाद्भवेत् । द्रविणं क्षोणिपालानां जनतोपद्रवार्जितम् ॥१९५१॥
प्रजापीडनजं वित्तं जयापीडमहीभुजः । दास्याः पुत्रैरुत्पलाद्यैर्विलुप्तं नप्तुरन्तकैः ॥१९५२॥
लोकसंक्लेशनोद्भूतः कोशः शंकरवर्मणः । प्रभाकरादिभिः स्वैरं जायाजारैरभुज्यत ॥१९५३॥
अनङ्गवशगाः पङ्गोरङ्गना वृजिनार्जितम् । ददुः सुगन्धादित्याय धनं संभोगभागिने ॥१९५४॥

हो गयी, तब शूरको उसने विदा कर दिया और कुछ महीने शान्तिपूर्वक रहा ॥ १९३८ ॥ राजा पद्मरथकी जिस अविवाहित कन्याको विवाह करानेके लिए सुज्जि लोहर ले आया था, उसकी तेजस्विनी माता जब विवाहका प्रबन्ध करनेके लिए वहाँ पहुँची और यह समाचार लोठनको मिला। तब वह उससे मिलनेके लिए अपने अमात्योंके साथ दर्पितपुरकी ओर चल पड़ा ॥ १९३९ ॥ १९४० ॥ इसी समय माणिक्य तथा अन्यान्य-लोगोंको कारागारसे निकल भागनेका मौका मिल गया और उन लोगोंने मिलकर मल्लार्जुनको कोट्टराजके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ १९४१ ॥ पहलेकी तरह उन्होंने ठाकुरोंको फिर अपनी सहायताके लिए बुला लिया और उन सबने राजा जयसिंहके उन भृत्योंको राजमार्गपर ही रोक दिया, जो किलेमें घुसना चाहते थे ॥ १९४२ ॥ इस प्रकार लौकिक वर्ष ४९०० की फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशीको छः वर्ष राज्य करनेके बाद लोठनको जितनी शीघ्रतासे राज्य मिला था, उतनी ही शीघ्रतासे चला गया ॥ १९४३ ॥ जब वह समाचार अभागे लोठनको मिला, तब वह मूढ़ सोचने लगा कि 'मैंने न उस अविवाहिता कन्याके साथ विवाह किया और न संचित धनका ही व्यय करके कोई सुखभोग पाया'। अब वह धन औरोंके उपभोगमें काम आयेगा' ॥ १९४४ ॥ उसके बाद अट्टिलिका आदि स्थानोंमें घूम-घूमकर उस नष्टशक्ति लोठनने सुज्जिकी सहायतासे कुछ बचा-खुचा धन प्राप्त किया ॥ १९४५ ॥ तत्पश्चात् माणिकने राजा जयसिंहके सेवकोंको तिरस्कृत करके मल्लार्जुनको लोहरका निष्कण्टक राजा बना दिया ॥ १९४६ ॥ नवयुवक राजा मल्लार्जुन इतना अधिक खर्चालू था कि एक बार उसे सुपाड़ी नहीं मिली तो पानमें मोती डाल-डालकर लोगोंको खानेके लिए दिया ॥ १९४७ ॥ इस प्रकार उस लम्पट राजाको कुटने आदि धूर्तोंमें धन बरसाते देखकर बुद्धिमान् लोगोंने उसके उड़ाऊपनकी निन्दा की ॥ १९४८ ॥ प्रजाको सता-सताकर राजा सुस्सलके द्वारा एकत्रित किये हुए कोशको उस अत्यन्त अपव्ययी राजा मल्लार्जुनने इच्छानुसार लुटाया ॥ १९४९ ॥ अभिमानके कारण उग्रप्रकृति एवं दुर्बुद्धि राजा मल्लार्जुनने भले लोगोंको राज्यसे निकाल बाहर किया और वेश्याओं, चारणों (भाँटों), द्रोहियों, विटों और चेटकों (यंत्र-मंत्र करनेवालों) को वह प्रश्रय देने लगा ॥ १९५० ॥ जनताको सताकर प्राप्त किया हुआ राजाओंका धन या तो शत्रु भोगते हैं या अहितकारी हड़प लेते हैं अथवा अग्नि भस्म कर देती है ॥ १९५१ ॥ प्रजापीडनसे प्राप्त राजा जयापीडके धनको उत्पल आदि उन दासीपुत्रोंने लुटाया था, जिन्होंने जयापीडके नातीका वध किया था ॥ १९५२ ॥ राज्यके लोगोंको कष्ट देकर जुटाया हुआ राजा शंकरवर्माका कोश उसकी पत्नीके यार प्रभाकर

राज्ञो यशस्करस्यार्थान्व्ययीचक्रेऽतिसंचितान् । अङ्गनानङ्गवैवश्यादालिङ्गितजनंगमा ॥१९५५॥
पूर्वराजार्जितं पार्वगुप्तिः प्राप्य धनं मृतः । दाता जायोपपत्येन तुङ्गादीनामजायत ॥१९५६॥
संग्रामराजः श्रीलेखामुखाब्जमधुपैर्धनी । मुषितो व्यड्डुहाद्यैर्निबिडोपार्जनस्पृहः ॥१९५७॥
अप्रत्यवेक्षाक्षपितप्रजस्य जगदूर्जिता । अन्तेऽनन्तमहीभर्तुर्विभूतिर्भस्मसादभूत् ॥१९५८॥
पुत्रेणापात्रसान्नार्या जारसात्तरसा कृतः । कुकलाकौशलोद्भूतः कोशः कलशभूपतेः ॥१९५९॥
सह गेहैः समं स्त्रीभिः सत्रा पुत्रैरभूद्धनम् । अश्रान्तार्जनतर्षस्य हर्षदेवस्य वह्निसात् ॥१९६०॥
चन्द्रापीडोच्चलावन्तिवर्माद्यैर्धर्मनिष्ठुरैः । निष्ठा न्याय्यस्य कोशस्य नावाप्यनुचिता क्वचित् ॥१९६१॥
चौरचाक्रिकसीमान्तभृद्वेश्याविटादयः । लुण्ठं प्रारेभिरे पुष्टां नवे मल्लार्जुनोदये ॥१९६२॥
वञ्चयित्वाप्यरीन्भूभृत्ताम्यन्विघटितेप्सितः । अथ चित्ररथं तूर्णमास्कन्दाय व्यसर्जयत् ॥१९६३॥
द्वारपादाग्रयोस्तुल्याधीकारेण प्रवर्धितः । सोऽनन्तसामन्तयुतः पदं फुल्लपुरे व्यधात् ॥१९६४॥
उत्सेहिरे न विततां अपि दुर्गसमाश्रयात् । मल्लार्जुनचमूर्जन्ये जेतुं तदनुजीविनः ॥१९६५॥
भेदाय कोट्टमारूढस्तद्भृत्यो राजसंमतः । मल्लार्जुनानुगै रात्रौ हतः संवर्धनाभिधः ॥१९६६॥
युद्धासाध्येऽपि तिष्ठन्तः कोट्टे भयविधेयताम् । कोष्ठेश्वरेऽन्वगायाते तत्रामित्राः प्रपेदिरे ॥१९६७॥
प्रतिश्रुतकरो बद्धसंधिः स व्यसृजत्ततः । सभाजनाय जननीं तेषां मल्लार्जुनोऽन्तिकम् ॥१९६८॥
सा वैधव्यविविक्तेन वेषेणैश्वर्यगोभिना । कोष्ठेश्वरादीन्सोत्कण्ठांश्चक्रे चपलचेतसः ॥१९६९॥

आदिके उपभोगमें आया ॥ १९५३ ॥ राजा पंगु (निर्जितवर्मन) की कामातुरा पत्नियोंने पतिका पापसंचित धन अपने साथ सम्भोग करनेवाले सुगन्धादित्यको दे दिया था ॥ १९५४ ॥ राजा यशस्करके अत्यधिक संचित धनको उसकी कामातुरा पत्नियाँ उन लोगोंमें बाँटती थी, जो उनका आलिंगन करके उनके साथ संभोग करते थे ॥ १९५५ ॥ पर्वगुप्तका पुत्र क्षेमगुप्त अपने पूर्वज राजाओंका संचित धन पाकर असमय मर गया। बादमें वह धन उसकी पत्नीके यारों तुङ्ग आदिको प्राप्त हुआ ॥ १९५६ ॥ इसी प्रकार राजा संग्रामराजने कंजूसीके साथ बहुत-सा धन एकत्रित किया था। सो उस धनको व्यड्डुह आदि उन लम्पटोंने लूटा, जो श्रीलेखाके मुखरूपी कमलके भौंरे बनकर उसका रस पान करते थे ॥ १९५७ ॥ समस्त संसारसे जुटायी हुई राजा अनन्तदेवकी सम्पदा अग्निमें जलकर भस्म हो गयी थी ॥ १९५८ ॥ अधम उपायों द्वारा संचित राजा कलशका कोश उसके पुत्रने कुपात्र लोगोंमें तथा उसकी पत्नीने अपने यारोंपर खर्च किया ॥ १९५९ ॥ जिसकी धनसंचयजनित तृष्णा कभी भी नहीं बुझी, वह हर्षदेव अपने महल, स्त्री, पुत्र तथा धनके साथ अग्निमें जल मरा ॥ १९६० ॥ चन्द्रापीड, उच्चल एवं अवन्तिवर्मा आदि कट्टर धर्मात्माओंके न्यायोपार्जित कोशपर कभी कहीं आँच नहीं आयी ॥ १९६१ ॥ उस नये राजा मल्लार्जुनके राज्यमें चोरों, षड्यंत्रकारियों, सामन्त राजाओं, वेश्याओं और धूर्तोंने खुलकर लूट मचायी ॥ १९६२ ॥ उधर राजा जयसिंहकी योजना जब विफल हो गयी, तब उसने शत्रुओंकी आँख बचाकर लाहुरपर आक्रमणके लिए चित्ररथको भेजा ॥ १९६३ ॥ द्वाराधीश तथा पादाग्रका अधिकार प्राप्त करके चित्ररथ बहुतेरे सामन्तोंके साथ तुरन्त चल पड़ा और फुल्लपुरमें जाकर उसने डेरा डाला ॥ १९६४ ॥ यद्यपि उस समय लाहुरके किलेमें मल्लार्जुनकी बड़ी विशाल सेना पड़ी हुई थी, किन्तु उस सेना और उसके अनुगामियोंने युद्ध जीतनेके लिए उत्साह नहीं दिखाया ॥ १९६५ ॥ नये राजाका जाना-माना एक सेवक संवर्धन टोह लेनेके लिए किलेपर चढ़ा। सो मल्लार्जुनके अनुयायियोंने ही उसे मार डाला ॥ १९६६ ॥ युद्धके असाध्य होनेपर भी मल्लार्जुनके सभी अनुगामी एक ऐसे किलेमें चले गये, जहाँ शत्रुके आक्रमणका खतरा नहीं था। उधर कोष्ठेश्वरने भी चित्ररथकी सेनाके पीछे अपनी छावनी डाल दी थी ॥ १९६७ ॥ उसी समय मल्लार्जुनने कर देनेका वादा करके चित्ररथके साथ सन्धि कर ली और उसका स्वागत-सत्कार करनेके लिए उसने अपनी माताको भेज दिया ॥ १९६८ ॥ उसकी माताने अपने वैधव्योचित किन्तु ऐश्वर्य सम्पन्न वेषसे उन

तस्यां गृहीतविस्रम्भं व्यावृत्तायां तदन्तिकात् । द्वारेशाय ददावूरीकृतं मल्लार्जुनः करम् ॥१९७०॥
आकृष्टो राजजननीचक्षूरागेण कोष्ठकः । दिदृक्षाकपटात्कोट्टमारुरोह मितानुगः ॥१९७१॥
अवरूढेन सहितस्तेन चित्ररथस्ततः । संभूतप्राभृतो भूमिभर्तुः सविधमाययौ ॥१९७२॥
राजा तु संमन्त्र्य ततः प्रायुङ्क्ताहृतिशालिना । उदयद्वारपतिना नीतिं जेतुमरीन्पुनः ॥१९७३॥
वीतास्कन्दो लोठनोऽपि गते पद्मरथान्तिकम् । लेभेऽभिनवभूपालः किंचित्पादप्रसारिकाम् ॥१९७४॥
उदूढवान्सोमलाख्यां तां पद्मरथकन्यकाम् । उपयेमे धृतायामो नागपालात्मजामपि ॥१९७५॥
तस्मादहंक्रियामूढाल्लेभिरे गूढकैतवाः । भूभुजः सोमपालाद्या भृत्यभावेन वेतनम् ॥१९७६॥
कविगायनजल्पाकयोधचारणचेष्टितैः । बहवो मुमुषुर्धूर्तास्तेऽपि तं राजबीजिनः ॥१९७७॥
स बाल्यान्निष्परीपाकप्रज्ञो दृष्टो रटन्बहु । जज्ञे वाक्प्रौढिमात्रेण बालिशैः कुशलाशयः ॥१९७८॥
केतोरिवाभद्रहेतोः प्रदीप्तं वदनं विना । अनिष्ठुराकृतेर्दृष्टं तस्यान्यत्र न सौष्ठवम् ॥१९७९॥
अत्रान्तरे नृपः सुज्जिं संजग्राहोग्रविक्रमम् । माभून्मल्लार्जुनेनापि श्रितोसाविति चिन्तयन् ॥१९८०॥
निर्वासने प्रवेशे च प्रभुः सुज्जेस्ततोऽधिकम् । तात्कालिकीं प्रतीहारः शक्तिं कांचिददर्शयत् ॥१९८१॥
स कम्पनाद्यधीकारस्रजं राजविसर्जिताम् । वितरन्सुज्जये राजस्थानकार्यं स्रजं विना ॥१९८२॥
निस्तोपाय गृहायातसोमपालानुरोधतः । प्रसीदन्वामहस्तेन निजजूटस्रजं मदात् ॥१९८३॥
आकृष्य प्रददौ तस्य तत्प्राप्तिपरितोषिणः ।
आप्यायसान्द्रया दृष्ट्या यत्संपद्वीरुधो व्यधात् ॥ चक्कलकम् ॥१९८४॥

चञ्चल चित्तवाले कोष्ठेश्वर आदिको उत्कण्ठित कर दिया ॥ १९६९ ॥ जब माता वहाँसे लौट आयी, तब मल्लार्जुनने वादेके अनुसार द्वाराधीश चित्ररथको कर चुका दिया ॥ १९७० ॥ तदनन्तर राजमाताके नेत्रोंकी प्रीतिपर आकृष्ट होकर उसे देखनेके बहाने अपने कुछ अनुगामियोंके साथ कोष्ठेश्वर किलेपर चढ़ा ॥ १९७१ ॥ वहाँसे कोष्ठेश्वर-के साथ नीचे उतरकर चित्ररथ कररूपमें प्राप्त धन लिये वहाँसे चल पड़ा और राजधानीमें राजा जयसिंहके पास पहुँचा ॥ १९७२ ॥ तदनन्तर राजाने आहरणशील द्वाराधीशके साथ मंत्रणा करके शत्रुओंको जीतनेके लिए एक नयी नीतिका प्रयोग किया ॥ १९७३ ॥ इस प्रकार आक्रमणका खतरा दूर हो जाने और लोठनके पद्मरथके पास चले जानेपर नये राजा मल्लार्जुनको पैर फैलानेका कुछ अवसर मिल गया ॥ १९७४ ॥ बादमें उसने पद्मरथकी कन्या सोमलाके साथ विवाह कर लिया। आगे चलकर उसने नागपालकी कन्याके साथ भी व्याह किया ॥ १९७५ ॥ अहंकारवश मूढ सोमपाल आदि राजे अपना कपटभाव छिपाये हुए भृत्यभाव प्रदर्शित करके उससे वेतन लेते थे ॥ १९७६ ॥ इसी प्रकार बहुतेरे राजवंशज धूर्त, कवि, गायक, जल्पाक (गप्पे सुनानेवाले), योद्धा एवं चारण (गुण बखाननेवाले) का काम करके उस नये राजा मल्लार्जुनको लूटते थे ॥ १९७७ ॥ क्योंकि बचपनसे ही उसकी बुद्धि कच्ची थी और वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। जब वह राजा बना, तब धूर्तोंने झूठी प्रशंसा करके उसे सब बातोंमें प्रवीण घोषित कर दिया ॥ १९७८ ॥ केतुके समान असंगलसूचक उसकी आकृति थी। उसके मुखपर तेज कभी देखा ही नहीं गया। अनिष्ठुर आकृतिके अतिरिक्त उसमें कोई सौष्ठव नहीं दिखायी देता था ॥ १९७९ ॥ इसी बीच राजा जयसिंहने उग्र पराक्रमी सुज्जिको यह सोचकर फिर अपनी ओर मिला लिया कि जिससे वह मल्लार्जुनसे न मिल जाय ॥ १९८० ॥ निर्वासन तथा निजपक्षमें प्रवेश करानेमें निपुण महामन्त्री प्रतीहारने अबकी बार सुज्जिका संग्रह करनेमें अपनी एक विशेष तात्कालिकी शक्तिका प्रदर्शन किया था ॥ १९८१ ॥ उसने राजा द्वारा अर्पित सेनाके अधिकारकी माला उसे दे दी, किन्तु जज आदिके कर्मोंका अधिकार बिना मालाके ही सौंपा ॥ १९८२ ॥ उसी समय लक्ष्मकसे मिलनेके लिए उसके घर सोमपाल आ पहुँचा। तभी प्रसन्न लक्ष्मकने तैशमें आकर अपनी जूटस्रज सुज्जिको दे दी। वह माला प्राप्त करके प्रसन्न सुज्जिकी आँखे खिल उठीं और उसने उस जूटस्रजको भविष्यके लिए सम्पत्ति प्रदान

भर्त्रे हिताय सौहार्दं विधूयोदयधन्ययोः । अभजद्रिल्हणः सुज्जेः प्रवेशे प्रतिलोमताम् ॥१९८५॥
प्रत्युद्गमेन संमान्य सुज्जिं प्रावेशयन्नृपः । देशान्निरस्यद्धन्यादीन्मानसान्न तु तद्गिरा ॥१९८६॥
कृतायाः क्ष्मापतौ लब्धक्षणे तीक्ष्णैर्जिघांसति । कोष्ठेश्वरः पलायिष्ट ज्ञातोदन्तस्तदन्तिकात् ॥१९८७॥
आस्कन्दायागते राज्ञि गृहीतमनुजेश्वरे । स्वपक्षभेदोपहतः सोऽथ देशान्तरं ययौ ॥१९८८॥

लोठनस्तु निजग्राह कांश्चिदालम्ब्य ठक्कुरान् ।
वप्पनीलाभिधे स्थाने वसन्मल्लार्जुनं बलात् ॥१९८९॥

तत्र दृष्टमसंभाव्यमेवास्य खलु पौरुषम् । परिभ्रष्टोऽपि यद्भ्रष्टपदं तमजयत्सदा ॥१९९०॥
जहार तुरगांल्लुण्ठिं चकाराट्टिलिकापणे । मार्गद्रङ्गादिभङ्गं च सदा सर्वत्र सोऽकरोत् ॥१९९१॥
राजराजाभिधानेन डामरेणार्थितस्ततः । कश्मीरराज्यसंप्राप्त्यै क्रमराज्यमगाहत ॥१९९२॥
तदवेत्य समीपस्थे हते चित्ररथेन सः । तस्मिंल्लवन्ये प्रययौ वप्पनीलभुवं पुनः ॥१९९३॥
तस्मिन्नास्कन्दमसकृद्दत्यट्टिलिकामपि । अवरोद्धुमशक्तोभृत्कोट्टे मल्लार्जुनो वसन् ॥१९९४॥
भ्रातृव्येण पितृव्यस्य दापयित्वा धनं बहु । ततः कोष्ठेश्वरो यात्रासज्जः संधिं न्यबन्धयत् ॥१९९५॥
लोहरे विहितस्थैर्यो गृहीत्वा लोठनं ततः । कश्मीरोर्व्यां पपातासौ विजिघृक्षुः क्षमाभुजा ॥१९९६॥
गिरीनुल्लङ्घ्य कार्कोटद्रङ्गे विहितवान्पदम् । निपत्य मार्गेऽनुद्घाते यावदन्यैश्च डामरैः ॥१९९७॥
नावाप योगं निर्गन्त्य क्षिप्रकारी क्षमापतिः । सर्वोद्योगेन तं तावदुत्थानोपहतं व्यधात् ॥१९९८॥
अत्रान्तरे प्रतीहारः प्रापास्तमपपीडया । न संपत्स्वल्पपुण्यानामनपायित्वमायुषः ॥१९९९॥

करनेवाला वृक्ष समझा ॥ १९८३ ॥ १९८४ ॥ राजाके हितको ध्यानमें रखकर उसके द्वारा सुज्जिकी नियुक्ति किये जानेपर रिल्हणने विरोध किया। यद्यपि उदय और धन्यके साथ उसकी मित्रता थी ॥ १९८५ ॥ इस प्रकार पुनः अपने कामपर लौटे सुज्जिका राजाने सन्मान किया और उसे उदय-धन्य आदिसे चार्ज लेनेके लिए उनके पास भेजा। यद्यपि राजाने उदय तथा धन्य आदिको प्रत्यक्षरूपमें उनके पदोंसे हटा दिया था, किन्तु मनसे ऐसा नहीं किया था ॥ १९८६ ॥ उसी बीच राजा जयसिंहके अपराधी कोष्ठेश्वरको दरबारके लोगोंसे इस बातका पता लग गया कि कोई अवसर मिलते ही राजा घातकोंके द्वारा उसे मरवा डालेगा। बस, वह तुरन्त वहाँसे भाग गया ॥ १९८७ ॥ जब राजा उसपर आक्रमणके लिए चला और मनुजेश्वर जा पहुँचा, तब अपने ही पक्षमें मतभेद देखकर कोष्ठेश्वर परदेश चला गया ॥ १९८८ ॥ इधर लोठनने कुछ ठाकुरोंकी सहायतासे वप्पनील नामक स्थानपर मल्लार्जुनको बलात् पकड़ लिया ॥ १९८९ ॥ वहाँपर लोठनका असंभाव्य पौरुष देखनेमें आया, जो स्वयं राज्यभ्रष्ट होते हुए भी उसने एक गद्दीनशीन राजाको कैद कर लिया ॥ १९९० ॥ उसके बाद उसने अट्टिलिकाबाजारमें जाकर घोड़े लूटे और मार्गकी चौकियोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥ १९९१ ॥ राजराज नामक डामरकी अभ्यर्थनापर कश्मीर राज्य प्राप्त करनेके लिए वह क्रम राज्यमें जा पहुँचा ॥ १९९२ ॥ वहाँ उसे जब मालूम हुआ कि चित्ररथने किसी लवन्यको मार डाला है, तब वह फिर वप्पनील लौट गया ॥ १९९३ ॥ उसके बाद उसने अट्टिलिकापर कई बार आक्रमण किया, किन्तु लोहरके किलेमें रहनेवाले मल्लार्जुनने उसका प्रतिरोध नहीं कर पाया ॥ १९९४ ॥ तदुपरान्त राजा जयसिंहपर आक्रमण करनेके लिए सुसज्ज कोष्ठेश्वरने अपने भतीजेको बहुत बड़ी रकम दिलाकर लोठन तथा मल्लार्जुनके साथ सन्धि कर ली ॥ १९९५ ॥ उसके पश्चात् उसने लोहरमें जाकर डेरा डाला और वहाँसे लोठनको साथ लेकर राजा जयसिंहसे लड़नेके लिए कश्मीरकी भूमिपर जा धमका ॥ १९९६ ॥ मार्गके कई पर्वतोंको लाँघकर उसने कर्कोटद्रङ्गमें छावनी डाली। वहाँपर अन्य डामरोंने उसके साथ कोई छेड़खानी नहीं की ॥ १९९७ ॥ उसी समय क्षिप्रकारी राजा जयसिंहने सब प्रकारके उपाय करके कोष्ठेश्वरका बढ़ाव रोक दिया ॥ १९९८ ॥ उसी अवसरपर एक भयानक रोगसे एकाएक प्रतीहार लक्ष्मकका देहान्त हो गया। जब मनुष्यके दिन पूरे हो जाते हैं, तब स्वल्प पुण्यवाले लोगोंकी आयु अकृत

उत्सारणप्रियतया परिरुद्धसर्वद्वारं गृहे निरनुरोधतया वसन्तः ।
संपल्लघूकृतधियोऽप्रतिघप्रवृत्तेर्धिग्जानते न रभसान्नियतेर्निपातम् ॥२०००॥

कुर्वाणोत्सारणं तस्य गृहजा सततं नृणाम् । नाज्ञासीत्सुखसुप्तस्य पृष्ठे पतितमन्तकम् ॥२००१॥
ज्वरितः स हि निष्ठ्यूतज्वरः स्वपिति विज्वरः । विदित्वेति न विज्ञातः स्वपन्नेव मृतस्तदा ॥२००२॥
सलोठने कोष्ठकेऽथ प्रयाते नृपतिः पुनः । न स मल्लार्जुनो नापि कोष्ठको न स लोठनः ॥२००३॥
छद्मनोदयनं पार्श्वस्थितं मल्लार्जुनोऽवधीत् । तस्मै चुक्रोध माध्यस्थ्ये स्थापितस्तेन कोष्ठकः ॥२००४॥
अनुनिन्ये न तं खिन्नं स संभृतबलस्ततः । अभिषेणयितुं क्रोधादधावत्सहलोठनम् ॥२००५॥
कोष्ठको मल्लकोष्ठाद्यैर्मितैर्युक्तोऽपि सादिभिः । तीर्त्वा परोष्णीं तत्सेनां निर्ममाथाप्रमाथिनीम् ॥२००६॥
हतेषु तेषु संग्रामे खशसैन्धवकादिषु । वधं प्राप्तः सिंहभूभृद्द्वेषान्न स नृपो हतः ॥२००७॥
आरूढः कोट्टमूर्धानं मानमूर्ध्नः परिच्युतः । भग्नप्रतापो भूयोऽपि समधत्त स कोष्ठकम् ॥२००८॥
विसृज्य लोठनं तिष्ठन्निर्वैरमगमत्पुनः । अनिर्वाहितदेयेन तेन द्वैधं स डामरः ॥२००९॥
न्यदध्याधिकारिणः शुल्कं गृह्णताऽकारि राजवत् । तेन स्वनाम्ना भाण्डेषु द्रङ्गे सिन्दूरमुद्रणम् ॥२०१०॥
जतुसंहतयो काचकलशीदलयोरिव । क्षणे क्षणे संधिभङ्गस्तयो समुदपद्यत ॥२०११॥
निर्व्यूढिशून्यैर्वाग्रौक्ष्यैर्विरागं लोहरेश्वरः । निन्ये लवन्यं सोऽप्येनं स्पर्धावद्भिरनङ्कुशैः ॥२०१२॥
डामरेण ततो दत्त्वास्कन्दं तत्कटकान्तरम् । पराध्र्यायुधधुर्याश्वहरणात्सुस्थिरं कृतम् ॥२०१३॥

सम्पत्ति खर्च करके भी नहीं बढ़ायी जा सकती ॥ १९९९ ॥ मृत्युको दूर रखनेके लिए घरके सब खिड़की-दरवाजे बन्द करके लोग उसमें रहते हैं और मौतका प्रतिरोध करनेके लिए पानीकी तरह पैसा बहाते हैं। फिर भी अबतक कोई यह भेद नहीं जान सका कि नियति वहाँ कैसे जा पहुँचती है ॥ २००० ॥ सो महामन्त्री प्रतीहारकी पत्नी चुपचाप कमरेकी सफाईके काममें लगी थी। क्योंकि उसका ख्याल था कि रोगी आरामसे सोया हुआ है। उस बेचारीको क्या पता कि रोगीकी पीठपर यमराज सवार हो गया है ॥ २००१ ॥ उसकी पत्नीने सोचा था कि महामन्त्रीका ज्वर उतर गया है, इसी कारण नींद आ गयी है। जब कि सच यह है कि उस प्रकार सोते ही सोते वह मर चुका था ॥ २००२ ॥ जब लोठनको साथ लेकर कोष्ठेश्वर चला गया तो कुछ समयके लिए ऐसा समय भी आया, जब लोहरमें न लोठन था और न मल्लार्जुन ॥ २००३ ॥ उसी समय मल्लार्जुनने अपने समीप स्थित उदयनको मार डाला। तब जिसने उसकी सुरक्षाका जिम्मा लिया था, वह कोष्ठक इस मामलेमें मध्यस्थ बना ॥ २००४ ॥ तदनन्तर जब इतना बड़ा अपराध करके भी मल्लार्जुनने कोष्ठेश्वरसे कुछ भी अनुनय-विनय नहीं किया, तब कोष्ठकेश्वरने अपनी सेना लेकर लोठनके साथ उसपर चढ़ाई कर दी ॥ २००५ ॥ इस प्रकार मल्लकोष्ठ कतिपय अश्वारोहियोंको साथ लेकर चला और पयोष्णी नदी पार करके शीघ्र शत्रुकी भूमिपर जा पहुँचा और उसकी बहुतेरी सेना काट डाली ॥ २००६ ॥ इस प्रकार उसकी सेनाके प्रमुख खशों और सिन्धियोंको कोष्ठकेश्वरने मार डाला। उस समय वह चाहता तो मल्लार्जुनको भी समाप्त कर देता, किन्तु राजा जयसिंहके साथ वैर होनेके कारण उसने ऐसा नहीं किया ॥ २००७ ॥ इस प्रकार किलेके ऊपर चढ़ करके भी राजा मल्लार्जुन सम्मानके ऊपरसे गिर गया और प्रभाव भंग हो जानेपर उसे फिर कोष्ठकेश्वरके साथ सन्धि करनी पड़ी ॥ २००८ ॥ तदनन्तर कोष्ठेश्वरने लोठनको विदा कर दिया और कुछ दिन निर्वैर भावसे वहाँ रहा। किन्तु मल्लार्जुनने जो रकम देनेका वादा किया था, वह नहीं दिया। इससे उन दोनोंमें फिर अनबन हो गयी ॥ २००९ ॥ बादमें कोष्ठेश्वरने रकम पूर्ण करनेके लिए अपने अधिकारियोंको नियुक्त करके राजाकी तरह द्रंग चौकीकी चुंगी वसूलना आरम्भ कर दिया और सब कागज-पत्रोंपर अपनी सिन्दूरी मुहर लगवाने लगा ॥ २०१० ॥ उसके बाद लाखसे जुड़े हुए काचकलशके दो दलोंकी भाँति क्षण-क्षणपर उन दोनोंमें सन्धिभंग होने लगा ॥ २०११ ॥ उसी प्रसंगमें लौहरेश्वर मल्लार्जुनने प्रेमहीन व्यवहार एवं रूखी बातोंसे लवन्य (कोष्ठेश्वर) को कुपित कर दिया और वैसा ही व्यवहार उसे भी लवन्यकी ओरसे मिला ॥ २०१२ ॥ तदनन्तर कोष्ठकेश्वर डामरने उसकी सेनापर

दत्त्वाभयं तैरायत्यां विषमैर्हठपौरुषैः । एवं तं कोष्ठको मूढः सुखोच्छेदं व्यधाद्द्विषाम् ॥२०१४॥
तनयादानसंबन्धाच्छ्वशुरं मुख्यमन्त्रिणाम् । अत्रान्तरे नृपो हन्तुं माणिकं स व्यचिन्तयत् ॥२०१५॥
आसीत्कठोरतारुण्यतरङ्गितमनोभवः । सुव्यक्तं स हि तन्मातुरौपपत्येन संमतः ॥२०१६॥
आहारावसरे तीक्ष्णाः कृतसंज्ञाः क्षमाभुजा । दत्तप्रहरणाः प्राणैर्भुञ्जानं तं व्ययोजयन् ॥२०१७॥
धुन्वन्नसिपटं वद्धूवीरपट्टो रटन्बहु । निर्लुण्ठयन्स तत्सेनां तां तामारभटीं व्यधात् ॥२०१८॥
अत्राशिष्यत न द्रोहमध्यादिन्दाकरोऽप्यहो । राज्ञा विषमितस्तेन रसदानेन स स्वयम् ॥२०१९॥
दैवतोत्सारितारातिस्ततः सिंहमहीपतिः । संदधे कोष्ठकं सुज्जिं प्राहिणोद्विजयाय च ॥२०२०॥
मार्गस्य याममात्रेण गम्यस्यान्तिकमाप सः । यावत्तुरंगहरणात्कोष्ठकेनाकुलीकृतः ॥२०२१॥
अन्तर्भेदाकुलस्तावत्प्रत्यवस्थातुमक्षमः । गृहीतकोशः संत्यज्य कोट्टं मल्लार्जुनो ययौ ॥२०२२॥
राज्यभ्रष्टः स निर्लुण्ठ्यमानो मार्गेषु तस्करैः । अवनाहोन्मुखो रक्षन्कोशशेषं कथंचन ॥२०२३॥
अष्टमष्टादशशरदेऽत्यथाष्टमवत्सरे । राज्यात्तेन द्वितीयस्यां वैशाखस्यासितेऽह्नि ॥२०२४॥

दाता शिखामृतरुचेरमृतं विलुब्धकार्पण्यकृत्समिति लूनशिराः कृतश्च ।
ईशेन यत्र तदकार्युपकर्तुरस्तु तत्रापरः क इव संनिहितद्विजिह्वः ॥२०२५॥
मुक्ता इमा इति जलं नलिनेषु लीनं ज्ञातृत्वमेतदिति जाड्यमिनेषु लग्नम् ।
यज्जायते किमपि हन्त विमोहिनी सा शक्तिः श्रियः स्फुरति कापि तदाश्रयायाः ॥२०२६॥

हमला कर दिया और उसके सभी मूल्यवान् शस्त्रास्त्र और उच्चकोटिके अश्वोंको हस्तगत करके अपनी स्थिति सुस्थिर कर ली ॥ २०१३ ॥ इस प्रकार मूढ कोष्टकने अपने भीषण तथा हठीले पुरुषार्थके द्वारा मल्लार्जुनको ऐसा निकम्मा बना दिया कि जिससे शत्रु सहजमें उसका उच्छेद कर दे ॥२०१४॥ उन्हीं दिनों राजा मल्लार्जुनने अपने ससुर तथा मुख्यमन्त्री माणिकको मार डालनेका संकल्प किया ॥ २०१५ ॥ क्योंकि उसकी अभी भरी जवानी थी और कामदेवका आवेग उसपर सवार था । अतएव वह व्यक्तरूपसे मल्लार्जुनकी माताका उपपति बन बैठा था ॥ २०१६ ॥ तदनुसार जब राजा माणिक भोजन कर रहा था, उसी समय राजाके संकेतसे तीक्ष्ण (घातक) लोगोंने उसपर प्रहार करके मार डाला ॥ २०१७ ॥ इस प्रकार प्रहार होनेपर माणिक अपना असिपट (परतला) टटोलता हुआ चिल्लाने तथा जमीनपर लोटने लगा। किन्तु उस समय कोई सैनिक सहायताको नहीं पहुँच सका। क्योंकि वह अपनी सेना आरभटी भेज चुका था ॥ २०१८ ॥ माणिकका साथी इन्दाकर भी द्रोहकी लपेटसे नहीं बच सका। उसे राजाने स्वयं विष देकर मार डाला ॥ २०१९ ॥ इस प्रकार भाग्यवश जब कई शत्रु अपने आप समाप्त हो गये, तब राजा जयसिंहने कोष्ठकेश्वरसे सन्धि कर ली और सुज्जिको विजय प्राप्त करनेके लिए लोहर भेज दिया ॥ २०२० ॥ उस स्थानसे लोहरका मार्ग केवल पहर भर (तीन घंटे) का था. सो चलकर वहाँ शीघ्र पहुँच गया। उसके पहले ही कोष्ठेश्वरने पहुँचकर मल्लार्जुनके घोड़ोंपर कब्जा करके उसे व्याकुल कर दिया था ॥ २०२१ ॥ अतएव आन्तरिक फूटसे विह्वल होनेके कारण वह सुज्जिका सामना करनेमें असमर्थ था। अतएव कोश लेनेके बाद किला त्यागकर वह वहाँसे भाग गया ॥ २०२२ ॥ राज्यच्युत हो जानेसे रास्तेमें उसे चोरोंने लूटा और उनसे बचा हुआ धन लेकर वह उसकी रक्षा करता हुआ अवनाहकी तरफ चला ॥ २०२३ ॥ इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२०८ की वैशाख कृष्ण द्वितीयाको अठारह वर्ष राज्य करके मल्लार्जुन राज्यच्युत हुआ ॥ २०२४ ॥ जिन शिवजीने पहले कार्पण्य त्यागकर उदारतापूर्वक अपने मस्तकपर सर्पके रहते हुए भी चन्द्रमाकी किरणोंसे निःसृत अमृत पिलाया, बादमें अपने ही हाथों जिसका सिर काट लिया। ऐसी स्थितिमें उस सिरकटे व्यक्तिका उपकार कौन कर सकता है ॥ २०२५ ॥ कमलपत्रपर पड़े हुए जलबिन्दुको देखकर ऐसा भान होता है कि वह जलकी बूँद नहीं, बल्कि मोती है। इस मिथ्याज्ञानको देखकर यही सोचना पड़ता है कि भगवानकी कोई ऐसी मोहनी शक्ति है, जो अपने प्रभुके अधीन रहती

घ्नन्त्यद्भुतप्रहरणा विपिनेषु केऽपि घ्राणेन केचन दृशाऽथ रसज्ञयाऽन्ये ।
ते केपि सन्ति तु नरेन्द्रगृहेषु हिंस्रा वाचैव ये विरचयन्ति किलोपघातम् ॥२०२७॥
ज्योतीरसाश्मन इवाश्रितमीश्वरस्य निर्दग्धुमिन्धनमिवाग्रगतं न शक्ताः ।
पश्चाद्भवेद्यदि स तत्प्रसृतावकाशाः कुर्युः खला रविकरा इव भस्मशेषम् ॥२०२८॥
कापिलं हर्षटं कोट्टं नीतवान्मण्डलेशिताम् । उदयैः कोटभृत्यानां संग्रहं कम्पनाधिपः ॥२०२९॥
कुर्वञ्शय्यां पुनर्नेतुं मण्डलं तद्व्यलम्बत । दिनानि कतिचित्तत्र यावत्प्रकृतिदुर्जनैः ॥२०३०॥
विटैरस्त्रयाविषमैः प्रसादावसरो नृपः ।
तावत्कलुषतां तस्मिन्नुपजापैरनीयत ॥ तिलकम् ॥२०३१॥
राजा भवन्परः कोऽस्तु स्वविचारदृढक्रियः । एषोऽपि शिशुवद्भूभृद्यत्र धूर्तैः प्रनर्त्यते ॥२०३२॥
शैशवे वालिशप्रायैः संस्तुतैर्जाड्यमर्पितम् । प्रौढावपि न वा यायाद्राज्ञः कार्ष्ण्यं मणेरिव ॥२०३३॥
भृत्यान्तरापरिज्ञानमात्रेण जगतीभुजाम् । निरागसो वज्रपातः कष्टं राष्ट्रस्य जायते ॥२०३४॥
कृत्ये व्यवसितेऽसाध्ये हास्यः स्याल्लक्ष्मकादिवत् । सुज्जिः प्रायोजि राजाप्तैर्निर्जेतुमिति लोहरम् ॥२०३५॥
निर्व्यूढाद्भुतकार्येऽथ तस्मिन्ब्रह्मास्त्रतुल्यया । अमोघया प्रजहुस्ते पापाः पैशुनविद्यया ॥२०३६॥
गाम्भीर्यालक्ष्यविकृतैः प्रीत्यालापैर्महीपतेः । प्रत्यायातः कलुषतां नाज्ञासीत्कम्पनापतिः ॥२०३७॥
प्रकृत्या तस्य निर्द्रोहतया शङ्कास्य तादृशम् । प्रियं कृतवतश्च स्यादविश्वासोऽथ वा कथम् ॥२०३८॥

हुई जगतीतलके प्राणीमात्रको मोहमें डाले रहती है ॥ २०२६ ॥ अद्भुत शस्त्रधारी कुछ लोग वनोंमें रहकर शस्त्रोंसे प्राणियोंका वध करते हैं, कुछ ऐसे जीव होते हैं कि जो नाकसे सूँघकर प्राणीके प्राण ले लेते हैं, कुछ जीव जीभसे और कुछ आँखोंसे देखकर मार डालते हैं। किन्तु कुछ हिंसक जीव राजाओंके महलोंमें रहते हैं, जो अपनी बातोंसे ही लोगोंका वध कर देते हैं ॥ २०२७ ॥ राजाके पास रहनेवाले वे पापी मनुष्य तबतक किसीका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, जबतक उनकी सुनवाई न हो। जैसे सूर्यकी किरणें सम्मुख पड़े हुए ईंधनको तबतक नहीं जला सकतीं, जबतक सूर्यकान्त मणिके संयोगसे उनमें आग न लग जाय। यदि उन कुटिल मनुष्योंकी राजाके यहाँ सुनवाई होने लगे तो वे सूर्यकी प्रखर किरणोंकी तरह तपकर सबको भस्म कर डालें ॥ २०२८ ॥ तदनन्तर जब सेनापति सुज्जिने कपिलके पुत्र हर्षटको लाहुरके किलेका मण्डलेश (गवर्नर बना) दिया और उस कोटकी भलाईके लिए अच्छे लोगोंकी नियुक्ति कर दी ॥ २०२९ ॥ तब दूसरी ओर स्वभावसे ही दुर्जन कुछ लोग उस मण्डलको पुनः धराशायी करनेके चक्र रचने लगे। तदनुसार उसमेंसे कुछ डाही लोग राजाके पास पहुँचे और अपनी चुगली भरी बातोंसे प्रसन्न करके उसका हृदय कलुषित कर दिया ॥ २०३० ॥ २०३१ ॥ राजा हो जानेके बाद कौन ऐसा मनुष्य है कि जो अपने दृढ़ विचारोंके अनुसार काम कर सकता हो ? कुछ ही समय बाद वे राजे धूर्तोंके फेरमें पड़कर बच्चोंके समान उनके इशारेपर नाचने लगते हैं ॥ २०३२ ॥ जब बाल्यकाल्यमें ही वे धूर्त झूठी स्तुति करके राजाको जड बना देते हैं, तब प्रौढावस्थामें उसका सुधार कैसे होगा ? स्वभावतः शुभ्र मणि श्यामवर्ण कैसे की जा सकती है ॥ २०३३ ॥ राजे अपने सेवकोंके अन्तर्मनकी बात नहीं जान पाते। जिसका परिणाम यह होता है कि निरपराध राष्ट्रको दुःख भोगना पड़ जाता है ॥ २०३४ ॥ जो काम असाध्य होता है, उसमें हाथ डालनेसे लक्ष्मक आदिके समान कर्ताकी जगहँसाई होती है। सो सुज्जिने राजाके विश्वस्त पुरुषोंको लोहर जीतनेके लिए नियुक्त किया था ॥ २०३५ ॥ जब अद्भुत रीतिसे वह काम सम्पन्न हो गया, तब उन पापी राजपुरुषोंने अपनी पैशुन (चुगली) की विद्यासे सुज्जिपर ब्रह्मास्त्रके समान अमोघ शस्त्रका प्रहार किया ॥ २०३६ ॥ उन्होंने अपना मनोविकार छिपाते हुए गाम्भीर्य भरे शब्दोंमें प्रेमपूर्ण वार्तालापके द्वारा राजाका मन कलुषित कर दिया और सेनापति सुज्जिको इस बातका पता ही नहीं लगा ॥ २०३७ ॥ और फिर जो स्वभावतः विद्रोही था, उस सुज्जिके हृदयमें यह शंका ही कैसे उठती।

प्रीतिरासीन्न नृपतेस्तत्कृत्यैरुचितैरपि । अप्रियप्रमदालापैर्विरक्तस्येव कामिनः ॥२०३९॥
जित्वा राष्ट्रद्वयं प्रादां हारितं नृपतेरिति । बहुमानेन दर्पाच्च स्वच्छन्दं स व्यवाहरत् ॥२०४०॥
पौरानगारहरणाद्यपकारैर्निरङ्कुशाः । तद्बन्धवो बाधमाना विरागमनयञ्जनम् ॥२०४१॥
निजागःस्मरणात्कोष्ठेश्वरो न व्यश्वसीन्नृपे । न पितृव्येऽपि भूपालकोपाविष्कृतविक्रिये ॥२०४२॥
कोशं प्रजोपतापेन संचिन्वन्सुज्जिना समम् । संबन्धकृच्चित्ररथो नाभूदभिमतः प्रभोः ॥२०४३॥
धन्योदयौ नृपः सुज्जिदाक्षिण्यालक्ष्यसौहृदः । अपुष्णाद्द्रविणैर्गूढं राजपुर्यां कृतस्थिती ॥२०४४॥
तौ चाबालगतौ शीतज्वरनष्टपरिच्छदौ । मल्लार्जुनस्य साम्राज्यभ्रंशेऽपि विपुलश्रियः ॥२०४५॥
सुज्जिद्वेषात्पुरा दूतैराहूतो लक्ष्मकेण यः । आगच्छत्सञ्जपालः स प्राप राजपुरीं तदा ॥२०४६॥
सुज्जिचित्ररथाभ्यां तं रुद्धचेष्टेन भूभुजा । अविसृष्टप्रवेशाज्ञं दूतैर्मल्लार्जुनोऽभजत् ॥२०४७॥
तन्निमित्तं स केनापि सामन्तेन सहाध्वनि । संजातकलहे शस्त्रक्षतो लक्ष्म्या व्ययुज्यत ॥२०४८॥
तथाभूतमपि स्वर्णं भूयूरीकृत्य नाशकत् । यत्तन्मल्लार्जुनो नेतुं कार्यज्ञैस्तदपूज्यत ॥२०४९॥
सोऽस्वतन्त्रेण राज्ञा च सौजन्याद्रिल्हणेन च । दूतैः प्रच्छन्नमाहूतो रभसादाययौ ततः ॥२०५०॥
न न्यघ्नन्नत्र चेद्धन्त्युर्मामग्रत्रेति चिन्तयन् । अमित्रविषमे मार्गे पुरं साहसिकोऽविशत् ॥२०५१॥
स कान्यकुब्जगौडादिमण्डलेषु महीभुजाम् । स्पर्धया लब्धसत्कारो भूपतेर्मन्त्रियन्त्रिताम् ॥२०५२॥

जिसने बराबर राजाका उपकार किया था, उसपर अविश्वासकी सम्भावना कैसे होती ? ॥ २०३८ ॥ किन्तु उन धूर्तोंके चक्रसे राजा जयसिंहका मन इतना फिर गया कि जिससे अब सुज्जिके उचित कार्योंको भी देखकर वह उसी तरह प्रसन्न नहीं होता था, जैसे विरक्त कामीका मन स्त्रियोंके वार्तालापसे नहीं प्रसन्न होता ॥ २०३९ ॥ उधर सुज्जि यह सोचकर बड़े अभिमानके साथ स्वच्छन्द व्यवहार करता था कि मैंने राजाके हाथसे निकले हुए दो राज्य लौटाकर दिये हैं ॥ २०४० ॥ दूसरी ओर राजाके निरंकुश सेवक और उनके बन्धु-बान्धव गृहहरण आदि अपकारके द्वारा नागरिकोंको सता-सताकर उद्विग्न करने लगे ॥ २०४१ ॥ अपने अपराधोंका स्मरण करके कोष्ठेश्वर राजापर विश्वास नहीं करता था । उसी प्रकार वह अपने चाचा मनुलेश्वरसे भी सतर्क रहता था। क्योंकि उसने एक बार चुगली करके राजाको उसपर रुष्ट कर दिया था ॥ २०४२ ॥ चित्ररथ सुज्जिसे विवाहसम्बन्धी नाता जोड़नेके बाद प्रजाको सता-सताकर धनसंग्रह कर रहा था। इस कारण उसपर भी राजाका विश्वास नहीं रहा ॥ २०४३ ॥ सुज्जिकी सहायतासे राजाके मंत्री धन्य और उदय अप्रत्यक्ष रीतिसे पुष्कल धन ले जाकर राजपुरीमें अपनी स्थिति सुदृढ कर रहे थे ॥ २०४४ ॥ क्योंकि बाल्यकालमें ही उनके सभी परिवारवाले शीतज्वरकी बीमारीसे मर गये थे और मल्लार्जुनके राज्यच्युत होनेपर भी बहुत-सा धन उनके हाथ लगा था ॥ २०४५ ॥ एक समय सुज्जिसे द्वेष रहनेके कारण महामंत्री लक्ष्मकने दूत भेजकर जिस सञ्जकको बुलवाया था, वह राजपुरी जा पहुँचा ॥ २०४६ ॥ तब सुज्जि और चित्ररथने राजाको ऐसा कुछ समझाया कि जिससे सञ्जकको कश्मीर आनेकी अनुमति नहीं मिली । उसके बाद मल्लार्जुनने दूत भेजकर उसे अपने यहाँ बुलवाया ॥ २०४७ ॥ तदनन्तर जब वह रास्तेमे चला जा रहा था तो किसी सामन्तसे कुछ विवाद हो गया, जिससे उसने सञ्जकको घायल करके उसका सब धन छीन लिया ॥ २०४८ ॥ जब वह लोहर पहुँचा तो राजा मल्लार्जुनके निर्णायक मंत्रियोंने सोचा कि जितना सोना इसे दिये जानेका निश्चय हुआ है, उतना राजा नहीं दे सकेगा । अतएव उन्होंने उसकी नियुक्तिका समर्थन नहीं किया ॥ २०४९ ॥ तब पराधीन राजा तथा रिल्हणके सौजन्यसे सञ्जकको प्रच्छन्न रीतिसे कश्मीर बुलवाया गया और वह तुरन्त चला आया ॥ २०५० ॥ सञ्जक जब राजपुरीसे चला तो उसे सन्देह हुआ कि मार्गमें कहीं पहलेकी तरह मुझपर फिर आक्रमण न हो जाय। क्योंकि वह रास्ता शत्रुओंसे भरा होनेके कारण बड़ा भयंकर था, किन्तु कहीं कुछ नहीं हुआ और वह साहसी पुरुष सकुशल कश्मीर पहुँच गया ॥ २०५१ ॥ सञ्जकको

अनवाप्य निजे देशे सत्क्रियां दुःखितोऽभवत्। राजधान्यन्तिकैः पौरैः प्रसृताश्रु व्यलोक्यत ॥२०५३॥
भूपालोऽगणयित्वाथ मन्त्रिणो दत्तदर्शनः। भेजे स्वहस्तताम्बूलदानप्रक्रिययैव तम् ॥२०५४॥
निष्किंचनोपि सन्ख्यातिमात्रेणानुगतो जनैः। यातायातं नृपगृहे कुर्वञ्शत्रूनकम्पयत् ॥२०५५॥
व्याहारव्यवहारादि व्यालोक्यालौकिकाकृतेः। पुरुषान्तरवित्सुज्जिस्तस्य स्वैरमवेपत ॥२०५६॥
दध्यौ सोऽथ ध्रुवं राष्ट्रेऽखर्वसर्वकपक्रियम्। नैवमेवाद्भुतं भूतमेतादृक्शान्तिमेष्यति ॥२०५७॥
तांस्तान्देशान्तरे वीरानुत्सिक्तान्दृष्टवान्स च। तं पर्यालोच्य विश्रान्ति सोत्सेकानाममन्यत ॥२०५८॥
भवितव्यतया दर्पेणाथ नीतः स्वतन्त्रताम्। परिवादावहं सुज्जिस्ततो यत्तद्व्यवाहरत् ॥२०५९॥
स्वानुगैर्लुण्ठितं रूक्षमाचक्षाणं रुषा द्विजम्। ग्रासैर्मडवराज्यस्थः स शृगालमिवावधीत् ॥२०६०॥
बाह्ये कुकर्मणा तेन विप्लाव्य जनमागतम्। तं प्रत्युग्रक्रियं लोको विरागं नगरेऽप्यगात् ॥२०६१॥
अत्रान्तरे बन्धुमेकं व्यधुः कमलियादयः। अगण्यप्रायमुत्सेकादुत्तमप्रक्रियास्पदम् ॥२०६२॥
मयि सत्यपरोऽपि स्यात्किमनुग्राहकः स्मयात्। अकारि चारणप्रायस्तादृक्कोऽपीति सुज्जिना ॥२०६३॥
संजातयौनसंबन्धबन्धः कमलियादिभिः। अथास्याक्षिगतोत्यर्थं सामर्थ्याद्रिल्हणोप्यभूत् ॥२०६४॥
अल्पेन हेतुनोद्भूतं द्वैतं तेषां च तस्य च। खलपैशुनसेकैस्तत्प्रापाशु शतशाखताम् ॥२०६५॥
प्रकृत्योत्सिक्तमुत्सेकावहैः समुददीदिपत्। दुर्मन्त्रैर्विग्रहैकाग्र्ये साहदेविस्तमुल्हणः ॥२०६६॥
असमानां सहास्माभिः क्षमते समशीर्षिकाम्। कृतघ्नोऽयमिति स्वैरं मन्युं राज्यपि सोऽग्रहीत् ॥२०६७॥

कान्यकुब्ज-गौड आदि राजाओंके यहाँ स्पर्धापूर्वक पुष्कल सम्मान प्राप्त हुआ था। किन्तु यहाँ अपने देशमें मंत्रियोंके नियंत्रणके कारण उसे कुछ भी सम्मान नहीं मिला। इससे उसे अपार कष्ट हुआ और राजधानीके नागरिकोंने देखा कि उसके नेत्रोंमें आँसू छलछलाये हुए थे ॥ २०५२ ॥ २०५३ ॥ तदनन्तर जब राजा सब मंत्रियों तथा नागरिकोंको दर्शन देने आया, तब साधारण तौरपर उसे भी अपने हाथसे पानका बीड़ा दे दिया ॥ २०५४ ॥ यद्यपि सज्जक अकिंचन था, किन्तु उसकी ख्याति बहुत बड़ी थी। अतएव वह जब अपने घरसे राजदरबारकी ओर चलता था, तब हजारों दर्शक उसके पीछे-पीछे चलने लग जाते थे। यह देखकर उसके शत्रु काँप उठते थे ॥ २०५५ ॥ सज्जककी बात, उसका व्यवहार और उसकी अलौकिक आकृति देखकर पुरुषोंका पारखी सुज्जि भीतर ही भीतर काँपने लगा ॥ २०५६ ॥ उसने सोचा कि 'जिस राज्यमें इतना भीषण भ्रष्टाचार व्याप्त है, वहाँ यह बेचारा अपना स्वरूप दिखाकर तो शान्ति स्थापित नहीं करेगा' ॥ २०५७ ॥ अनेकानेक देशोंमें सुज्जिने बड़े-बड़े वीर और प्रभावशाली पुरुष देखे थे। अतएव मन ही मन उनसे सज्जककी तुलना करके उसने शान्ति प्राप्त की ॥ २०५८ ॥ बादमें भवितव्यताकी प्रेरणा अथवा अपने दर्पसे सुज्जि स्वतंत्रतापूर्वक अपना काम करता हुआ संजककी निन्दा करने लगा ॥ २०५९ ॥ सुज्जि जब मण्डव राज्यमें था तो वहाँ किसी ब्राह्मणने उसके विरुद्ध कुछ कटु वचन कह दिये थे। सो उसके अनुयायियोंने उस ब्राह्मणका सर्वस्व लूट लिया और सियारकी तरह उसे ग्रासोंसे मार डाला ॥ २०६० ॥ यद्यपि यह कुकर्म उसने नगरके बाहर किया था, तथापि इससे नगरके लोगोंमें उसके प्रति घृणाकी भावना भर गयी ॥ २०६१ ॥ उन्हीं दिनों कमलिय आदिने एक नगण्य और कर्मठ व्यक्तिको दर्पवश अपनी टोलीमें मिलाकर साथी बना लिया ॥ २९६२ ॥ सो उसे देखकर ईर्ष्यावश सुज्जिने सोचा कि 'यह कितना ही सत्यपरायण क्यों न हो, मुझपर अनुग्रह करनेवाला नहीं बन सकता'। सो उसे उसने एक चारणकी तरह ही रक्खा और आगे बढ़नेका अवसर नहीं ही दिया ॥ २०६३ ॥ कमलिय आदिके साथ यौन सम्बन्ध होनेके कारण अब रिल्हण भी सुज्जिकी आँखोंपर भली भाँति चढ़ गया ॥ २०६४ ॥ बहुत अल्प कारणसे कमलिय आदिके साथ सुज्जिका मतद्वैध उत्पन्न हुआ, वह खलों और चुगलखोरोंके बढ़ावेसे सैकड़ों शाखाओं प्रशाखाओंके रूपमें फैल गया ॥ २०६५ ॥ स्वभावसे ही घमण्डी सुज्जिकी दर्प प्रदर्शित करनेवाली बातें सुन-सुनकर सहदेवके पुत्र उल्हणने उस मतद्वैधकी आगको

विस्म्यत्तु भूपतिस्तस्माद्रिल्हणं वाह्यभृत्यवत् । मन्त्रस्वैरकथाक्षेपु विश्रम्भेषु न्यवर्जयत् ॥२०६८॥
स तु धूर्तत्वदुर्लक्ष्यतादक्षस्वामिवैकृतः । स्वेषां धैर्यं परेषां तु संत्रासं मायया‌ऽतनोत् ॥२०६९॥
समग्रशक्तिराकांक्ष्यसंस्तवः पक्षयोर्द्वयोः । तस्य तु प्रययौ सञ्जपालो दानेन मित्रताम् ॥२०७०॥
संनद्धयोः प्रविशतोरन्योन्यस्पर्धया तयोः । क्षणे क्षणे राजधानी ययौ संभ्रमलोलताम् ॥२०७१॥
सुज्जिः सभूपानाक्षेपं प्रतिपक्षान्युयुत्सया । महीमानोत्सवास्थाने संक्षोभमुदपादयत् ॥२०७२॥
कृकाटिकान्यस्तहस्तो द्वाःस्थेनावेदितो हि सः । तं निर्भर्त्स्य शिलाक्षेपं क्रोधरूक्षाक्षरोकरोत् ॥२०७३॥
लिखितैरिव तान्सर्वैः सोढुं रक्षणमीशितुः । मिथ्या तथ्यमिवोदीर्य संग्रथ्नद्भिः समर्थताम् ॥२०७४॥
उपावेशयदभ्यर्णे भूपतिः परिसान्त्व्य तम् ।
सत्यस्मिन्नास्ति नः किंचिदित्यन्तस्तु व्यचिन्तयत् ॥२०७५॥
चक्रे मडवराज्यस्थैरथ प्रायो द्विजातिभिः । न सुज्जेः कम्पनेशत्वमिच्छाम इति वादिभिः ॥२०७६॥
अन्विष्य विद्विपः शङ्कां मन्त्रविन्निशि रिल्हणः । संनद्धसैन्यमानिन्ये पञ्चचन्द्रं तदप्रियम् ॥२०७७॥
शशङ्के सञ्जपालाच्च तस्माच्च वहुसैनिकात् । सुज्जिरन्यानगणयन्नवुद्धास्य च तद्रिपुः ॥२०७८॥
आस्कन्दभीत्या निर्गत्य हयारोहैः समं गृहात् । व्यूढानीको निरुद्धातो जजागाराथ सोऽध्वनि ॥२०७९॥
भूपतिप्रातिलोम्येन वर्तमानस्तदाऽभवत् । कोष्ठेश्वरोऽपि संनद्धः सुज्जिना वद्धसौहृदः ॥२०८०॥
स्थितमप्रातिलोम्येन सोऽन्वयीन्मनुजेश्वरम् । इति द्वेष्योऽपि नितरां द्वेष्यतां नृपतेरगात् ॥२०८१॥

और भी भड़का दिया ॥ २०६६ ॥ उसी उल्हणने धीरे-धीरे राजा जयसिंहके मनमे विष वो दिया। जिससे वह भी यह समझकर सुज्जिसे रुष्ट रहने लगा कि 'यह कृतघ्न है, तभी तो अपनी स्थिति न देखकर हमारी बराबरी करता है' ॥ २०६७ ॥ अब राजा रिल्हणसे भी सशंक रहता हुआ मंत्रणा तथा स्वतंत्ररूपसे वातचीतके अवसरपर उसे दूर रखने लगा ॥ २०६८ ॥ स्वामीका यह रुख देखकर रिल्हणने अपनी धूर्तता तथा दुर्लक्ष्यसे ऐसी मायाकी सृष्टि की कि जिससे उसका धैर्य द्योतित होता था, किन्तु शत्रुओंमे त्रासका संचार हो जाता था ॥ २०६९ ॥ समस्त शक्तिसे रिल्हणने संजककी आकांक्षायें पूर्ण करते हुए विनम्र स्तुतिसे उसे अपना मित्र बना लिया ॥ २०७० ॥ भली प्रकार सन्नद्ध सुज्जि तथा संजककी टक्करसे राजधानीमे क्षण-क्षण घबड़ाहट तथा खलबलीकी स्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी ॥ २०७१ ॥ एक बार जब राजदरबारमे महीमान उत्सव हो रहा था, उस समय सुज्जिने अपने प्रतिपक्षीको अपमानित करनेके लिए सजक तथा महाराज जयसिंहपर कठोर आक्षेप करके घोर क्षोभकी सृष्टि कर दी ॥ २०७२ ॥ उसी समय द्वाररक्षकने सुज्जिकी गर्दनपर हाथ रखकर ढकेल दिया, इससे कुपित होकर उसने द्वाररक्षकको एक पत्थर उठाकर मारा और गालियें दीं ॥ २०७३ ॥ उस समय सभाके सभी सभासद चित्रलिखितकी भाँति सन्न हो गये और सोचने लगे कि देखें—'राजा इस अवसर पर क्या करता है'। राजाने भी ऊपरी तौरसे उस काण्डको उपेक्षा करके उन दोनोंको मिलानेकी चेष्टा की ॥ २०७४ ॥ तदनन्तर राजाने सान्त्वना देकर सुज्जिको अपने पास विठा लिया और वड़े गौरसे मन ही मन सोचने लगा कि 'इस व्यक्तिके रहनेपर मेरा सर्वस्व नष्ट हो जायगा' ॥२०७५॥ उन्हीं दिनों यह घोषित करके मडव राज्यके ब्राह्मण अनशन करने लगे कि 'हम सुज्जिको राज्यके सेनापतिके रूपमें नहीं देखना चाहते' ॥ २०७६ ॥ 'इधर मंत्रणा निपुण रिल्हण रातोरात अपने वैरी सुज्जिको दहलानेके लिए उसके शत्रु पंचचन्द्रको सेना समेत बुला लाया ॥ २०७७ ॥ अब सुज्जि संजपाल तथा प्रचुर सेना समन्वित चन्द्रपालसे डरने लगा। इन दोनोंके सिवाय वाकी सब लोगोंको वह तुच्छ समझता था ॥ २०७८ ॥ अब उसे अपने ऊपर आक्रमणका भय सताने लगा। अतएव एक रातको वह कुछ अश्वारोहियोंके साथ अपने घरसे निकल पड़ा और रातभर जागकर चलता हुआ सैन्यसंग्रहके मंसूवे बाँधता रहा ॥ २०७९ ॥ अव सुज्जि राजा जयसिंहका पूर्ण विद्रोही बन गया। उसी समय कोष्ठेश्वर भी मैत्री करके उसका साथ देनेको तैयार हो गया ॥ २०८० ॥ सुज्जिने मनुजेश्वरको अपनी ओर मिलानेकी चेष्टा की, किन्तु उसमे सफलता न मिलनेपर उसे

तथा स्थिते निशीथिन्यामाचख्युस्तस्य विद्विषः । दुर्घुक्षाहेतुतां राज्ञः स्वगुप्त्यै तेन या कृता ॥२०८२॥
अतथ्यं तथ्यवद्वस्तु तथ्यं वाऽतथ्यवन्नृपः । यः पश्येन्मूढवत्सोऽर्थैस्त्यक्तोऽनर्थैः कदर्थ्यते ॥२०८३॥
रत्नज्योतिर्हुतवहधिया त्यज्यते दृष्टिपातैः श्यावाक्षाणामितरविषयः स्वस्य संभाव्यते च ।
वस्त्वेकैकं यदिह न मृषा तन्मृषा यन्मृषा तत्तथ्येनेत्थं किमिव न जनैर्दृश्यते तत्त्वशून्यैः ॥२०८४॥
राजाऽथ तद्वधादन्यदजानन्दौस्थ्यभेषजम् । न्ययुंक्त तस्य तीक्ष्णत्वे सञ्जपालं महौजसः ॥२०८५॥
स कापुरुषवद्धीरः प्रहर्तुं छद्मनाक्षमः । कांक्षन्नाक्षिप्य तं हन्तुं तत्र तत्रैक्षत क्षणम् ॥२०८६॥
मायाप्रयोगानन्योन्यमुद्दिश्य स्पृशतोर्द्वयोः । क्षणे क्षणेऽभजद्राष्ट्रं त्रासोल्लासविलोलताम् ॥२०८७॥
प्रत्याशंक्योदयं गत्रौ सुज्जौ जाग्रति पूर्ववत् । अव्यग्रयामिकग्रामं राजधामाऽप्यजायत ॥२०८८॥
गण्डान्निर्वासने रिल्हणस्य सुज्जेरभीप्सिते । पार्थिवोऽप्यनुमन्ताभूदनीशः प्रत्यवस्थितौ ॥२०८९॥
स निर्यियासुरामन्त्र्य तत्खेदात्क्षुभिताः प्रजाः । संदर्श्य द्वारपतिना राज्ञो युक्त्या समर्थितः ॥२०९०॥
संमन्त्र्य नृपतिं मैत्रीप्रार्थिना सुज्जिना समम् । पीत्वा कोशं सञ्जपालः प्राप्तो रात्रौ व्यजिज्ञपत् ॥२०९१॥
प्रेरणादुल्हणादीनां स्वोत्सेकाच्चैष वर्तते । राजन्सुज्जेरभिप्रायः स्पर्धिनोऽन्याननिच्छतः ॥२०९२॥
निर्द्रोहस्योपकर्तुश्च मते स्याद्यदि मे नृपः । निर्वास्य रिल्हणं चित्ररथं बद्ध्वा महाधनम् ॥२०९३॥
लोहरारब्धविनिर्नष्टानश्वान्कोशं च भूपतेः । नयेयं संभृतो हन्यां दुर्वृत्तमपि कोष्ठकम् ॥२०९४॥
कार्योपरोधान्निर्बन्धः संबन्धेष्वेव नास्ति मे । दाक्षिण्यं स्वामिनः कृत्ये यस्य प्राणास्तृणोपमाः॥२०९५॥

मार डाला, इस बातसे वह राजाका प्रबल वैरी बन गया ॥ २०८१ ॥ उसी रोज आधी रातको सुज्जिके प्रतिपक्षियोंने राजाके पास जाकर विद्रोहका कारण तथा उसके द्वारा किये गये सुरक्षाके प्रबन्धका सब विवरण कह सुनाया ॥ २०८२ ॥ मूर्खके समान जो राजा झूठको सच तथा सचको झूठ समझ बैठता है, उसका अर्थ नष्ट हो जाता है और अनर्थसमुदाय उसे सताने लगता है ॥ २०८३ ॥ तत्त्वज्ञानसे हीन लोग दीप्तिमान् रत्नको आगकी चिनगारी समझ कर त्याग देते हैं। उन अज्ञानान्ध लोगोंको औरोंकी वस्तु अपनी दिखायी देती है। जो वस्तु मिथ्या नहीं होती, उसे मिथ्याके रूपमें और मिथ्या वस्तुको तथ्यके रूपमें वे देखने लग जाते हैं ॥ २०८४ ॥ तदनुसार राजा जयसिंहको सुज्जिके वधके सिवाय उसकी दुष्टताका और कोई प्रतीकार नहीं सूझा। अतएव उसने संजपालको उसकी हत्या कर देनेका काम सौंप दिया ॥ २०८५ ॥ किन्तु धैर्यशाली संजपाल कायर पुरुषकी तरह मारना अनुचित समझकर कोई झगड़ा करके मारनेके लिए अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २०८६ ॥ अब उभय पक्षसे तरह तरहकी मायाका प्रयोग होने लगा। उसे देख-देख करके राज्यके नागरिकोंमें क्षण-क्षणपर त्रास और उल्लासका वातावरण व्याप्त होता हुआ दिखायी देने लगा ॥ २०८७ ॥ रात्रिके समय प्रहरियोंको यह चिन्ता सताने लगी कि सुज्जि न जाने कब क्या कर गुजरे। अतएव राजमहलमें भी पूरी चौकसी रक्खी जाने लगी ॥ २०८८ ॥ अन्तमें रिल्हणकी सलाहपर राजा सुज्जिको राज्यसे निर्वासित कर देनेको सहमत हो गया। क्योंकि इसके सिवाय और कोई समीचीन मार्ग ही नहीं सूझ रहा था ॥ २०८९ ॥ जब निर्वासन निश्चित हो गया, तब द्वाराधीश उदयने राजाके पास जाकर बड़ी युक्तिसे समझाते हुए कहा कि 'सहसा ऐसा करनेसे राज्यकी प्रजाका एक बड़ा भाग क्षुब्ध हो उठेगा' ॥ २०९० ॥ इधर मैत्री करनेके इच्छुक सुज्जिके साथ संजपालने कोशपान पूर्वक मैत्री कर ली और रात्रिके समय राजाके पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २०९१ ॥ फिर उसने कहा—'राजन् ! उल्हण आदिकी प्रेरणासे सुज्जि उद्दण्डताका व्यवहार करता है। सुज्जि चाहता है कि उसका कोई प्रतिस्पर्धी न रह जाय ॥ २०९२ ॥ यदि आप मुझ निर्द्रोही और उपकारीकी बात मानें तो रिल्हणको निर्वासित करके महान् धनाढ्य चित्ररथको कैद कर लीजिए ॥ २०९३ ॥ लोहरमें राज्य-क्रान्तिके समय श्रीमान्का जो कोश एवं अश्वसमुदाय अपहरण कर लिया गया है, वह सब मैं कोष्ठेश्वरको मारकर वापस ले आऊँगा ॥ २०९४ ॥ केवल कार्यकालमें ही सम्बन्ध स्थापित करके अपना काम निकालनेवाला

मध्येऽथ प्रतिराजादिनिर्जयस्वीकृतोद्यमे । युवाविश्रान्तचित्तोऽयं नृपश्रीभोगभाग्भवेत् ॥२०९६॥
साहायकाय द्वारेशमुल्हणं रिल्हणाश्रये । कार्यव्राते च मामीशमाकारयितुमिच्छति ॥२०९७॥
ब्रूते च मामुल्हणश्च त्वं चाहं चाविभेदिनः । मिलिता यत्र तत्रास्ति गण्यः को नु नृपास्पदे ॥२०९८॥
इहस्था नवदायादमेकमानीय कंचन । निदध्मोऽस्य पदे राज्ञो नानुतिष्ठेदिदं यदि ॥२०९९॥
गुणान्प्रसरणत्रासाद्वन्धयेव गिरा सृजन् । द्विजांशुभङ्ग्या राजाथ विनिःश्वस्याब्रवीद्वचः ॥२१००॥
यथाह स तथैवैतन्न द्रोहो नासमर्थता । नौदासीन्यमथैतस्मिन्संभाव्यमभिमानिनि ॥२१०१॥
निष्प्रतिद्वन्द्वभावोऽस्य दुरुच्छेदो भवेदिति । इयमप्यन्यतस्तावद्स्त्वपायधियः कथा ॥२१०२॥
किं तु दूये यदा कोपप्राथम्यात्तथ्यतोऽपि वा । निर्द्रोहस्य वधो ध्यातो योस्यासौ कार्य एव तत् ॥२१०३॥
अर्थोऽयमल्पसत्त्वानामग्रेऽस्माभिर्हि मन्त्रितः । नूनं तेनोपलभ्येत तानावर्जयता धनैः ॥२१०४॥
पुण्यैरपरिहार्यैः स्वैर्जाड्यैर्वा मादृशाममी । जानतामपि जायन्ते निर्गुणा भोगभागिनः ॥२१०५॥
बालिशान्गृह्णतां प्रायश्चित्तमेतन्महीभुजाम् । तन्मौर्ख्यस्य फलं मूढैरेतैर्यदनुभूयते ॥२१०६॥
दुर्गमो भूमिभृन्मार्गो विटैर्हट्टवृषैरिव । क्व स नीतिज्ञविज्ञेयः क्व च ते खलबुद्धयः ॥२१०७॥
तन्वाना व्रतवैमुख्यं रसनालौल्यशालिनः । परपिण्डोपहर्तारः खलाः कौलेयका अपि ॥२१०८॥
इत्थं खलोपतापेन प्रयुक्तं तद्भयात्पुनः । असंहार्यं कुकर्मेदं पश्चात्तापाय नो भवेत् ॥२१०९॥
इत्युदीर्य नृपः सुज्जेः सज्जो व्यापादसिद्धये । तमजागारयच्छश्वज्जागरं चाग्रहीत्स्वयम् ॥२११०॥

व्यक्ति मैं नहीं हूँ। मैं तो स्वामीका कार्य सिद्ध करनेमें अपने प्राणोंको भी तृणके समान तुच्छ मानता हूँ ॥ २०९५ ॥ इस बीच अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाओंपर विजय प्राप्त करके शान्तिके साथ आप राज्यलक्ष्मीका उपभोग करें ॥ २०९६ ॥ अपनी सहायताके लिए रिल्हणकी जगह द्वाराधीश उल्हणको नियुक्त कर लीजिए। जब बहुतेरे काम एक साथ आ पड़ें, तब मुझे बुला लिया करिए ॥ २०९७ ॥ क्योंकि उल्हण कह रहा था कि 'यदि हम और तुम एकमत हो जायँ तो संसारका कोई भी राजा हमारे महाराजका मुकाबला नहीं कर सकेगा' ॥२०९८॥ बादमें संजपालने रिल्हणसे सलाह करते हुए कहा—'राजा यदि हमारी बात नहीं मानेगा तो हम किसी नये उत्तराधिकारीको इसके पदपर नियुक्त कर देंगे' ॥ २०९९ ॥ तब जैसे गुणोंके प्रसारको अपनी वाणीसे नियंत्रित एवं दन्तपंक्तिकी किरणोंको छितराते हुए राजाने लम्बी साँस लेकर कहा—॥२१००॥ 'जैसा आपने कहा, उस अभिमानी सुज्जिपर द्रोह, सन्धि तथा औदासीन्य इनमेंसे किसी भी नीतिका उपयोग करनेसे काम नहीं बनेगा ॥ २१०१ ॥ यदि उसे निर्द्वन्द्व छोड़ दिया जाय तो बादमें उसका उच्छेद करना और भी कठिन हो जायगा। तब तो यह बात सोचनेपर भी महान् विनाशकी घड़ी आ उपस्थित होगी ॥ २१०२ ॥ किन्तु कोपकी प्रधानता वश अथवा वस्तुतः एक निर्द्रोही व्यक्तिके वधकी बात सोचकर मैं दुखी हो रहा हूँ। अतएव आप लोग जो उचित समझिए सो करिए ॥ २१०३ ॥ यद्यपि आप लोगोंने जो सलाह दी है, वह मुझ जैसे वीरोंके लिए शोभनीय नहीं है। किन्तु उस मंत्रणाको कार्यरूपमें परिणत करनेसे पुष्कल धन प्राप्त होनेकी आशा अवश्य है ॥ २१०४ ॥ अपने अपरिहार्य पुण्य अथवा हमलोगोंकी जानी-समझी जड़ताके कारण ऐसे गुणहीन लोग भी हम जैसेके धनका भोग करनेके लिए उत्पन्न हो ही जाते हैं ॥ २१०५ ॥ ऐसे-ऐसे मूर्खोंका संग्रह करनेवाले हम राजाओंका प्रायश्चित्त ही यह है कि हम अपनी मूर्खताका फल भोगें ॥ २१०६ ॥ राजाओंका मार्ग बड़ा दुर्गम होता है। क्योंकि उन्हें हाटमें बोझा ढोनेवाले बैलोंकी तरह धूर्तोंके साथ राज्यका भार वहन करना पड़ता है। नहीं तो कहाँ बड़े-बड़े नीतिज्ञके द्वारा ज्ञेय शासनकार्य और कहाँ खलबुद्धि लोगोंका जमाबड़ा ॥ २१०७ ॥ नियमका उल्लंघन करनेवाले वातावरणका सृजन करते हुए जिह्वाकी चंचलताके वशीभूत ये परपिण्डोपजीवी खलरूपी कुत्ते न जाने कैसे राजाओंके पास आ धमकते हैं ॥ २१०८ ॥ इस प्रकार खलोंके व्यवहारसे सन्तप्त तथा भयभीत होकर मैं इस अपरिहार्य कुकर्मसे सहमत हो रहा हूँ, किन्तु बादमें इससे मुझे पश्चात्ताप ही होगा' ॥ २१०९ ॥ ऐसा कहकर राजा जयसिंह सुज्जिकी हत्या करानेको तैयार हो गया। ऐसा करके उसने

विश्रम्भमन्त्रश्रुतेः शङ्कां जिघांसुः सुज्जिरित्यपि। तथ्यं भृत्यवचो जानंस्तस्थौ दौःस्थ्येन पार्थिवः॥२१११॥
गत्वा स्वयं गृहान्यौनसंबन्धं कुरुतं युवाम्। इत्युक्त्वा रिल्हणेनाथ स सुज्जिं समयोजयत्॥२११२॥
विश्वास्यापि तथा हन्तुं तं प्रसङ्गमनाप्नुवन्। उदताम्यद्दिवारात्रं तल्पोपर्यवशं लुठन्॥२११३॥
सञ्जपाले गृहाद्बन्धुनाशदुःखिन्यनागते। आशङ्क्य साहसासिद्धिमधिकं पर्यतप्यत॥२११४॥
निपत्य वीरशयने सुस्सलक्ष्मापसत्क्रियाम्। भ्रातरो यस्य कल्याणराजाद्या व्यस्मरन्युधि॥२११५॥

सेनानीः कुलराजः स ख्यातो व्यायामविद्यया।
प्राणैरानृण्यमिच्छंस्तमपृच्छच्छोककारणम्॥ युग्मम्॥२११६॥

स संस्थापयितुं हन्तुं वाप्यशक्यं न्यवेदयत्। तस्याप्रतिसमाधेयं कम्पनाधीश्वराद्भयम्॥२११७॥
कियदेतन्निजप्राणमात्रलभ्यं महीभुजाम्। इत्याभाष्य स जग्राह साहसाध्यवसायताम्॥२११८॥
दिनद्वयमनायातो गृहेभ्यः कम्पनापतिः। न प्रातिभाव्यमभजत्तस्य मृत्योः श्रियोऽथ वा॥२११९॥
विस्रम्भभृत्यः भृङ्गारनामा चाप्यब्रवीत्प्रभोः। तं दृष्टवांस्तृतीयेऽह्नि शयनेऽवगणं स्थितम्॥२१२०॥
शोभोपयोगिनो भर्तुर्नित्यं सततसेवकाः। कर्तुं साहससाचिव्यं विदूरेण तु पार्यते॥२१२१॥

करे पिनाको मकराङ्कशत्रोः शोभाविशेषाय सदानुषक्तः।
पुराहवे कार्मुककर्म तस्य तत्कालमात्रेण तु मन्दरेण॥२१२२॥

ताम्बूलहारकव्याजात्ततो राजा व्यसर्जयत्। कुलराजं तमव्याजधैर्यासंलक्ष्यविक्रियम्॥२१२३॥

संजपालको रातभर जागनेके लिए वाध्य कर दिया और स्वयं भी जागता रहा॥ २११०॥ इस मंत्रणाकी सुनगुनी सुज्जिको भी लग गयी थी। अतएव वह भी हिंसा करनेको उद्यत था। भृत्य संजपालकी वात सच मानकर राजा स्वयं भी वेचैनीका अनुभव कर रहा था॥ २१११॥ इसके वाद राजाने रिल्हण तथा सुज्जिको आज्ञा दी कि 'अव आप लोग अपने-अपने घर जाकर स्त्रियोंके साथ आनन्द करिए'। ऐसा करके उसने सुज्जिको रिल्हणके साथ भेज दिया॥ २११२॥ यद्यपि संजपालने राजाको सुज्जिका वध करनेका विश्वास दिलाया था, किन्तु उसे मौका ही नहीं मिला। अतएव वह रात-दिन विछौनेपर पड़ा करवटे वदला करता था॥ २११३॥ जव वह साहसका काम पूरा करके अपने एक रिश्तेदारके मरणसे दुखी होता हुआ राजाके पास नहीं जा सका तो अपनी असफलताकी आशंकासे उसे वड़ा दुःख हुआ॥ २११४॥ विस्तरपर पड़ा-पड़ा वह दिवंगत महाराज सुस्सल और उसके भाई कल्याणराज आदिका युद्धसम्वन्धी संस्मरण सोचने लगा॥ २११५॥ सेनापति कुलराज व्यायामविद्यामें पारंगत होनेके कारण प्रचुर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। अपने प्राण देकर स्वामीकी कृपाके ऋणसे उऋण होनेकी अभिलाषा करके उसने राजा जयसिंहसे शोकका कारण पूछा। तव राजाने अपनी मनोदशा वताते हुए सुज्जिको अपने पदपर वनाये रखने या मरवा डालनेकी अशक्यताका सव हाल कह सुनाया और सेनापतिसे होनेवाले अप्रतीकार्य भयकी रूपरेखा भी वता दी। इसपर कुलराज वोला—'महाराज! यह कौन वड़ी वात है कि जिसके लिए आप राजा होकर इतने चिन्तित हो रहे हैं'। ऐसा कहकर उसने सुज्जिके वधका साहसिक कार्य अपने जिम्मे ले लिया॥ २११६॥ २११८॥ उसके वाद दो दिन सुज्जि अपने कामपर नहीं गया और न उसका कोई प्रतिनिधि मरने या सकुशल रहनेका कोई सन्देश ही लेकर आया॥२११९॥ तीसरे दिन राजाके एक विश्वस्त भृत्य भृंगारने वताया कि 'सुज्जि जैसे वहुत अपमानित होकर शय्यापर पड़ा हुआ है'॥ २१२०॥ शोभोपयोगी राजाओंके सेवक साहससम्वन्धी सलाह देनेके लिए अनायास उनके समीप पहुँच जाते हैं॥ २१२१॥ कामदेवके शत्रु शंकरजीके हाथमें केवल शोभाके लिए सदा धनुष विद्यमान रहता है। किन्तु जव त्रिपुरासुरके साथ युद्धमें धनुषकी आवश्यकता पड़ी, तव तत्काल मन्दराचलने उनके समक्ष पहुँचकर धनुषका काम कर दिया॥ २१२२॥ थोड़ी देर वाद जव कुलराज राजा जयसिंहके पास पहुँचा तो उसके चेहरेपर कोई विकार न देखकर पूर्ण धैर्यकी झलक दीखी, तव उसे पान लानेके लिए भेज दिया॥ २१२३॥

ध्रुवं मृत्युः पुनर्नाहमागन्ता तत्ततोऽस्य कः। आख्येति स निन्ये न ताम्बूलं स्वर्णभाजने ॥२१२४॥
व्यसनप्रशमं राज्ञः स्वदेहत्यागतोऽनुगाः। एवं कर्तुं यतन्तेन्ये निर्व्यूढौ स्खलिताः पुनः ॥२१२५॥
सगणोऽगणो वास्तु निहतो नियतं मया। जागर्त्यतः परं देव इत्युदीर्य विनिर्ययौ ॥२१२६॥
गतस्य साहसासिद्धौ शक्यं शंक्यं पलायनम्। इति चिन्तयतस्तस्य मन आसीद्विशृंखलम् ॥२१२७॥
व्रजन्स्वामिहितं कृत्वा पुनः पश्चान्निनाय सः। शस्त्रिणौ द्वौ सिपाच्छस्त्यौ बन्धस्थाने परामृशन् ॥२१२८॥
स्वयं गृहीत्वा ताम्बूलं राज्ञा प्रहित इत्यथ। द्वाःस्थेनावेदितः सुज्जेः पार्श्वं रुद्धानुगोविशत् ॥२१२९॥
ददर्शोच्चावचैस्तं च मितैः परिजनैर्युतम्। यूथनाथमिवात्यल्पैरद्धिपैररहितान्तिकम् ॥२१३०॥
गृहीतवन्दितस्वामिताम्बूलः सस्मितं स तम्। पृष्ट्वा कृत्यादि नृपतेः सत्कृत्य व्यसृजत्क्षणात् ॥२१३१॥
जनप्रवेशाशङ्की स त्वरमाणस्तमब्रवीत्। कृतागाः कोऽपि कैवर्तशस्त्रभृन्मत्समाश्रितः ॥२१३२॥
तस्यालोपपरान्भृत्यान्स्वान्निवार्याधुना तव। संमान्या वयमित्यग्रेऽलक्षयन्वक्त्रनिक्षणम् ॥२१३३॥
सोत्सेकामिव तां वाचं स दर्पादवधीरयन्। तस्य रूक्षाक्षरं नाहं कुर्यामित्यब्रवीद्वचः ॥२१३४॥
स रोषादिव निर्गच्छन्मान्योऽसाविति वादिभिः। तं सान्त्वयित्वा तद्भृत्यैं रुद्ध्वा व्यावर्तितः पुनः ॥२१३५॥
तेनावादि ततः कर्तुं विज्ञप्तिं वस्तुनोऽमुतः। सज्जयोरादिश द्वारप्रवेशं भृत्ययोर्मम ॥२१३६॥
अवशेनेव तेनाथ वीक्ष्य तौ संप्रवेशितौ। सहायलाभाद्द्रुह्युक्षुः प्रजिहीर्षुरवर्तत ॥२१३७॥

किन्तु वह सोनेकी तश्तरीमें पान रखकर नहीं लाया। उसने सोचा—'इस समय मैं राजाके पास जाकर अवश्य मारा जाऊँगा। अतएव वहाँ न जाना ही उचित होगा। तब वह तश्तरी उसके पास कौन पहुँचायेगा? ॥ २१२४ ॥ राजाका दुःख तभी दूर हो सकता है कि जब कोई अपने प्राण देकर उसका काम करे। ऐसा करनेकी बहुतोंने हामी भरी, किन्तु बादमें वे फिसल गये ॥ २१२५ ॥ अतएव अब चाहे सुज्जि अपने साथियोंके साथ मिले या अकेला, मैं उसे अवश्य मारूँगा। क्योंकि उसके मरे बिना मेरे स्वामीका कल्याण नहीं होगा'। ऐसा सोचकर वह चल पड़ा ॥ २१२६ ॥ रास्तेमें उसने फिर सोचा कि 'यदि वहाँ जा करके भी मैं वह साहसिक कार्य न कर सका तो राजा मेरे भाग जानेकी शंका करने लगेगा' इन बातोंको सोचते ही उसका मन विशृंखलित हो गया ॥२१२७॥ इस प्रकार अपने स्वामीका काम करनेके लिए घरसे निकलनेके बाद जेलके पास ढूँढकर उसने दो सशस्त्र संतरियोंको साथ ले लिया ॥ २१२८ ॥ उसी समय एक राजसेवकने आकर उसे पानका बीड़ा दिया और कहा कि 'इसे महाराजने आपके लिए भेजा है'। यह सुनकर उसने पान ले लिया और उन दोनों शस्त्रियोंके साथ सुज्जिके घरकी ओर चल पड़ा ॥ २१२९ ॥ उसके घर जाकर कुलराजने देखा कि थोड़ेसे उच्च एवं मध्यम वर्गके लोग उसके पास विद्यमान हैं। जैसे कोई गजराज अल्पसंख्यक हाथियोंसे घिरा हुआ हो ॥ २१३० ॥ उनमें एक व्यक्तिके हाथसे सुज्जिने मुसकाकर महाराजका भेजा हुआ पानका बीड़ा ले लिया और राजाका काम-काज पूछ तथा सत्कार करके क्षणभर बाद उसे लौटा दिया ॥ २१३१ ॥ सहसा किसी अन्य व्यक्तिके आगमनकी आशंकासे अधीर होकर सुज्जिने अपने पासवाले व्यक्तिसे पूछा—'कोई अपराधी एवं सशस्त्र केवट मुझसे मिलने आया था? यदि वह आये तो मेरे समीपवर्ती सेवक हटा दिये जायँ और उसे सादर एकान्तमें मेरे पास ले आया जाय'। यह कहकर वह क्षणभर सेवकके उत्तरकी प्रतीक्षा करता रहा ॥ २१३२ ॥ २१३३ ॥ उसके इस गर्व भरे वाक्यको सुनकर उसके पार्श्ववर्ती सेवकने उस वचनकी अवहेलना करते हुए कहा—'मैं उसकी उन कठोर बातोंको नहीं मान सकता' ॥ २१३४ ॥ यह कहकर वह रोषपूर्वक चल पड़ा। तब सुज्जिके अन्य सेवकोंने झपटकर उसे पकड़ लिया और 'उसकी बात तुम्हें माननी पड़ेगी' यह कहते हुए सुज्जिके पास लौटा लाये ॥ २१३५ ॥ बादमें बहुत समझाने-बुझानेपर जब वह काम करनेको राजी हो गया, तब सुज्जिने कहा कि 'बाहर जो दो सशस्त्र व्यक्ति खड़े हैं, मेरे उन भृत्योंको यहाँ भेज दो' ॥२१३६ ॥ तब जैसे विवश होकर उस सेवकने उन द्रोहेच्छु व्यक्तियोंको भीतर भेजा। वहाँ अपने सहायकोंको पाकर वह व्यक्ति प्रहार

यातात्र कुर्या प्रातर्वो विधेयमिति तान्वदन्। दत्तपृष्ठो निद्रिद्रासुस्तल्पे सुज्जिर्जहौ वपुः ॥२१३८॥
गत्वाथ किंचिद्व्यावृत्तो निष्कृष्टक्षुरिको जवात्। प्राहरत्कुलराजोऽस्य वामे पार्श्वे कृतत्वरः ॥२१३९॥
तस्य धिक्कुर्वतो द्रोहमधावत्क्षुरिकां प्रति। यावत्पाणिः प्रहरणं तावत्सर्वेऽपि ते व्यधुः ॥२१४०॥
विमर्शः पश्यतां यावदाशंक्ये तत्र नोव्ययौ। स तावदेव सुचिरापेतश्वास इवाभवत् ॥२१४१॥
भयत्यक्ताभिमानेषु विद्रुतेष्वनुजीविषु। चकर्ष शस्त्रं तत्रैकः पिञ्जदेवः परं तदा ॥२१४२॥
प्रहरंस्तैस्त्रिभिस्तुल्यप्रतिप्रहृतिभिः क्षतः। भ्राम्यन्लुतासृक्तस्मात्स मण्डपान्निरवास्यत ॥२१४३॥
स्थितान्दत्तार्गले धाम्नि रुद्धद्वारतमोरयः। जिघांसवः सुज्जिभृत्यास्ततस्ता-पर्यवारयन् ॥२१४४॥
तमोरिप्रतिकुर्वाणा भज्यमानेऽरिभिर्व्यधुः। ते द्वारे तूलशय्यां तां प्रोत्सार्य शवमुद्धृतम् ॥२१४५॥
खड्गेषुशूलपरशुक्षुरिकाश्माभिवर्षिणः। तान्संभ्रमयन्मार्गैरनेकैस्ते विविक्षवः ॥२१४६॥
नैराश्यहेतोर्विगतां तेषां संकटवर्तिभिः। पृष्ठाच्छित्त्वा गिरः सुज्जेरङ्गणेऽक्षिप्यताथ तैः ॥२१४७॥
अस्रनिःसरणाभीरुणशुक्लेक्षणपुटश्रुति। उत्तरौष्ठकचच्छन्नसन्नघ्राणपुटद्वयम् ॥२१४८॥
अक्ष्णोर्नम्भ्रम्यमाणस्य लोकस्य प्रतिबिम्बकैः। संभाव्यमानसंस्पन्दस्तोकप्रव्यक्ततारकम् ॥२१४९॥
स्थपुटस्याक्रमच्छेदाद्गलमांसस्य संधिषु। हरिद्रार्द्रैरिवाश्यानमेदोग्रन्थिभिरुल्बणम् ॥२१५०॥
धूलिध्वस्तकचश्मश्रु तदेतदिति निश्चयम्। परं भालतलस्थेन ददत्कुङ्कुमबिन्दुना ॥२१५१॥
तद्वीक्ष्य तिर्यक्पतनव्यक्तसंव्यन्तरद्विजम्। उच्चलत्तुमुलाक्रन्दा भृत्याः क्वापि विदुद्रुवुः॥ कुलकम् ॥२१५२॥

करनेको उद्यत हो गया ॥२१३७॥ जब वे उसके समक्ष पहुँचे, तब सुज्जिने कहा—'आज तुम लोग अपने घर जाओ, तुम्हारा काम कल होगा'। ऐसा कहकर वह निद्रावश अपनी शय्यापर लेट गया ॥२१३८॥ उसके कथनानुसार कुलराज कुछ पग पीछे हट गया और उसके बाद छुरा निकालकर उसने बड़ी शीघ्रतासे सुज्जिकी बायीं कोखमें भोंक दिया ॥२१३९॥ तदनन्तर धिक्कारते हुए सुज्जिने अपना हाथ छुरेकी ओर बढ़ाया, तब उन तीनोंने एक साथ अपने शस्त्रोंसे उसपर प्रहार कर दिया ॥२१४०॥ इसपर जब सुज्जि उन्हें पहचाननेकी चेष्टा कर रहा था, उसी समय उसकी साँस देर-देरमें आने लगी ॥२१४१॥ उस परिस्थितिमें उसके सभी सेवक तो भयके कारण स्वाभिमान त्याग-त्यागकर भाग खड़े हुए, किन्तु अकेला पिंजदेव नहीं भागा और वह शस्त्र तानकर खड़ा हो गया ॥२१४२॥ किन्तु उसके ऊपर भी उन तीनोंने एक साथ प्रहार कर दिया, जिससे घायल होकर वह रुधिरकी धारा बहाता हुआ धरतीपर लोट गया। तत्काल उन तीनोंने उसे उठाकर मण्डपके बाहर कर दिया ॥२१४३॥ उसी समय सुज्जिके सेवकोंने चारों ओरसे द्वार बन्द कर लिया और कुलराज आदिको मारनेके लिए चौतरफा घेरा डाल दिया ॥२१४४॥ इस प्रकार घिर जानेपर उन तीनोंने मृत सुज्जिका शव उठाकर द्वारपर बिछे रुईके गद्दे पर लेटा दिया ॥२१४५॥ उसी समय खड्ग, बाण, शूल, परशु, छुरे और पत्थरोंकी वर्षा करते हुए लोग अनेक मार्गोंसे भीतर घुसनेकी चेष्टा करने लगे ॥२१४६॥ उन्हें देखकर कुलराज आदि तीनों व्यक्ति निराश हो गये और सुज्जिका सिर काटकर उन्होंने आँगनमें फेंक दिया ॥२१४७॥ सतत रक्तस्रावसे उसके नेत्रकी पलकें, ऊपरी होंठ तथा दोनों कान श्वेत हो गये थे और दोनों नासिकायें बालोंसे ढँकी हुई थीं ॥२१४८॥ उसकी आँखोंमें वहाँ आने-जानेवाले लोगोंके प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहे थे। उसके नेत्रोंकी पुतलियोंको देखकर यह संभावना होने लगती थी कि अभी वे अपना काम शुरू कर देंगी ॥२१४९॥ जल्दबाजीमें गला काटनेके कारण उसके मांसकी संधियोंमे गीली हल्दीके समान कुछ सूखी चर्बीकी गाँठें उभड़ी हुई थीं ॥२१५०॥ उसकी मूँछके बालोंमें धूल भर गयी थी और मस्तकमें लगे केसरिया चन्दनके कुछ चूर्ण भी उन्हीं मूँछोंमें लिपटे हुए थे ॥२१५१॥ वह कटा हुआ मस्तक कुछ तिरछा होकर पड़ा था, जिससे उसके दाँत साफ दिखाई दे रहे थे। वह मस्तक देखकर सारे महलमें रोदनका भयानक

तीक्ष्णान्प्रयुज्य क्ष्मापस्तु तिष्ठन्व्याकुलधीस्तदा । बहिर्वीक्ष्य जनक्षोभं साहसं निश्चिकाय तम् ॥२१५३॥
सुज्जौ हते क्षते वापि कार्यमेतदिति द्रुतम् । संनह्य सैन्यस्यादिक्षत्स तन्मन्दिरवेष्टनम् ॥२१५४॥
मिथ्यैव सुज्जिर्निस्तीर्ण इति श्रुतवता जनात् । स्वयमग्राहि भूपेन ततः समरसंभ्रमः ॥२१५५॥
निःसंशयं हतं ज्ञात्वा सुज्जिं राजोपजीविनः । तत्र स्थितं शिवरथं सर्वद्वेष्यमबन्धयन् ॥२१५६॥
हिल्लात्मजन्मनः सुज्जिभ्रातृस्यालस्य कौशलम् । कलशस्याद्य निर्वर्ण्य वाणीयं पुण्यभागिनी ॥२१५७॥
आक्षिप्यमाणैर्भिक्षाद्यैरन्ते वीरोचितं कृतम् । तेन त्वसंशयस्थेन सदाचारान्न विच्युतम् ॥२१५८॥
राजौकस्येव तां वार्तां श्रुत्वा स ह्यपलायितः । हतस्य स्वामिनोऽभ्यर्णं जिहासुर्जीवितं ययौ ॥२१५९॥
द्वारं पदप्रहृतिभिर्भञ्जन्तं राजसैनिकाः । अपसार्य कथंचित्तं तीक्ष्णाः कृच्छ्रादरक्षिषुः ॥२१६०॥
प्रविष्टेऽस्मिन्ननिर्व्यूढपीडिते मण्डपान्तरम् । लब्धप्राणा नृपाभ्यर्णं कुलराजादयो ययुः ॥२१६१॥
हठप्रविष्टो हतवान्स तत्रैकं महाभटम् । शरैरेव हतो दूरात्कथंचित्परिपन्थिभिः ॥२१६२॥
आयातं क्षुभिते देशे सञ्जपालं महीपतिः । रिल्हणं चोल्हणं हन्तुं प्राहिणोद्विहितत्वरः ॥२१६३॥
यातो मार्गात्पलाय्यायं परिशङ्क्येति रिल्हणः । क्षिप्तिकातटपर्यन्तमटित्वा यावदाययौ ॥२१६४॥
पूर्वायातः सञ्जपालो गृहद्वाराद्विनिर्यतः । उल्हणस्य पथो रुन्धन्सुबहून्प्रहरन्रणे ॥२१६५॥

तावदेकस्य खड्गेन निकृत्ते दोष्णि दक्षिणे ।
त्वङ्मात्रशेषे छिन्नास्थिस्नायुग्रन्थिरजायत ॥ तिलकम् ॥ २१६६ ॥

कोलाहल मच गया, जिससे उसके सभी सेवक कहीं भाग गये ॥ २१५२ ॥ उधर घातकोंको सुज्जिके वधके काम-पर नियुक्त करके राजा जयसिंह बड़ी व्याकुलताके साथ परिणाम जाननेकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब बाहरकी ओर विशेष हल्ला सुनायी पड़ा, तब उसे विश्वास हो गया कि घातक अपने काममें सफल हो गये ॥ २१५३ ॥ अब उसने सोचा कि 'चाहे सुज्जि मरा हो या घायल हुआ हो। फिर भी यह कार्य आवश्यक है' यह निर्णय करके उसने तुरन्त सेनाको उसका घर घेर लेनेका आदेश दे दिया ॥ २१५४ ॥ तभी उसने जनसाधारणके मुखसे सुना कि 'सुज्जि व्यर्थ मारा गया'। यह सुनते ही राजाने युद्ध जैसी तत्परता दिखानी आरम्भ कर दी ॥ २१५५ ॥ निश्चितरूपसे सुज्जिके मरणकी खबर पाकर राजसेवकोंने वहाँ खड़े और सबके द्रोही शिवरथको तुरन्त कैद कर लिया ॥ २१५६ ॥ हिल्लाके पुत्र और सुज्जिके भाईके साले कलशका कौशल वर्णन करके वाणी आज पुण्यभागिनी हो गयी ॥ २१५७ ॥ भिक्षाचर आदि राजाओंने सुज्जिपर अनेक आक्षेप किये थे। फिर भी वह निःसंशयरूपसे अपने सदाचारपर अडिग रहा और अन्तमे ऐसी वीरोचित गति प्राप्त की ॥ २१५८ ॥ यद्यपि राजमहलमें ही सुज्जिको इस बातकी आहट मिल गयी थी, फिर भी वह वीर भागा नहीं और राजाके समीप हो उसने अपना प्राण दे दिया ॥ २१५९ ॥ पैरसे धक्के मार-मारकर राजसैनिकोंने किसी तरह द्वार खोलवाया और भीतर जाकर मृतकका शव हटानेके बाद उन्होंने बड़ी कठिनाईसे उन तीनों घातकोंके प्राण बचाये ॥ २१६० ॥ उन सैनिकोंके खेमेमें पहुँच जानेपर जैसे पुनः प्राणदान पाकर वे कुलराज आदि तीनों घातक राजा जयसिंहके पास पहुँचे ॥ २१६१ ॥ जब वे राजभवनके भीतर घुस रहे थे, उसी समय किसी राजद्रोहीने हठपूर्वक भीतर जाकर उन तीनोंमेंसे एक घातकको मार डाला ॥ २१६२ ॥ उसी समय राजाको पता चला कि इस समय क्षुब्ध देशमें रिल्हण आया हुआ है। बस, तत्काल रिल्हण और उल्हणको भी मार डालनेके लिए उसने संजपालको भेजा ॥ २१६३ ॥ सुज्जिके मारे जानेकी खबर पाकर मारे डरके रिल्हण भागा और क्षिप्तिका नदीके तटपर चला गया, किन्तु न जाने उसे क्या सूझा कि वह फिर लौट आया। उसके आते ही वहाँ पहलेसे उपस्थित संजपालने घरसे बाहर निकलते हुए उल्हणका मार्ग रोककर उसपर आक्रमण कर दिया और बहुत पीटा ॥ २१६४ ॥ २१६५ ॥ तबतक एक तलवारके आघातसे उसका दाहिना हाथ कट गया। उसकी हड्डी कटकर अलग हो गयी। केवल चर्ममात्र

अगण्यप्रायतां प्राप्ते वंशे यत्कौशलादसौ । दिगन्तरेषु स्वस्मिंश्च देशे प्राप प्रथां पुनः ॥२१६७॥
फलकाले समासन्ने शौर्यप्रतिभुवाऽभजत् । स तेन दोष्णा वैकल्यं धिगिच्छां विधुरां विधेः ॥२१६८॥
स प्राग्वदुदयावाप्तो भवेदविकलो यदि । फलेन तस्य जानीयादिच्छां लोकोयमद्भुताम् ॥२१६९॥

पीतामृतस्य क्षतविग्रहत्वं न प्राभविष्यद्यदि नाम राहोः ।
अज्ञास्यदिच्छां तदमुष्य लोकः सामर्थ्यभाजः सुचिरप्ररूढाम् ॥२१७०॥

दृष्टः शीलाभिधो वृद्धः पितृव्यः साहदेविना । सस्पृहं निहतः साधुः सम्यग्जातव्रणार्तिना ॥२१७१॥
तस्यार्त्या विशतो वेश्म जज्जलाख्योऽग्रगो हतः । मान्योनुगो भटौ द्वौ च यामिकश्च जनंगमः ॥२१७२॥
बालं तनयमालोक्य निषण्णस्याङ्गणस्थितेः । तस्यानिर्गच्छतो गेहे रिल्हणोऽग्निमदापयत् ॥२१७३॥
आनीयमानो धूमान्धो बद्ध्वा मुख्यैः स सैनिकैः । गृहद्वारे हतः कैश्चित्प्राकृतैर्व्रणविक्लवः ॥२१७४॥
तस्य प्रधानप्रकृतिक्षयहेतोर्महीपतिः । मुण्डसप्यवलोक्यासीदशान्तक्रोधविक्रियः ॥२१७५॥
व्यापाद्यमानाः साकोपं भूपतिप्रेरितैर्भटैः । उच्चावचाः सुज्जिभृत्याः कृत्यं सत्त्वोचितं व्यधुः ॥२१७६॥
अनुजो लक्ष्मकः सुज्जेर्बद्ध्वा नीतः स विक्रियाम् । नृपं वीक्ष्यादयैः कैश्चिद्राजधान्यङ्गणे हतः ॥२१७७॥
भ्राता पितृव्यजस्तस्य संगटाख्यो नृपाङ्गणे । अटन्नट इव प्राणानौचित्येनामुचन्कृती ॥२१७८॥
प्रविष्टः शरणं बाणवंश्यैः पापैः प्रमापितः । उन्मत्तो मुम्मुनिस्तस्य भ्राता कैश्चित्स्वमन्दिरे ॥२१७९॥
सुज्जिस्यालस्तु शृङ्गारवृत्त्या भङ्गुरया हतः । महाकुलीनो विचरन्नौचित्येन च चित्रियः ॥२१८०॥
सङ्गिकाख्यः प्रतीहारो व्रणितः शनकैर्हतः । अन्येऽपि संश्रिताः सुज्जेस्तत्र तत्र प्रमिम्यिरे ॥२१८१॥

अवशिष्ट रह गया और नसोंकी गाँठ बँध गयी ॥ २१६६ ॥ जिसके कौशलसे उसका वंश अगण्यप्राय हो गया था, उसने देश-विदेशमें सर्वत्र पुनः ख्याति प्राप्त कर ली ॥ २१६७ ॥ जब फलप्राप्तिका समय समीप आ गया था, तब शौर्यके प्रतीकस्वरूप उस छिन्न (लूले) हाथको लिये हुए ही उल्हण जीवित रहा । विधाताकी ऐसी विधुर इच्छाको धिक्कार है ॥ २१६८ ॥ यदि पहलेके समान वह इस अभ्युदयकालमें भी विकलांग न होता तो उसकी फलप्राप्तिसे ही लोग उसकी अद्भुत इच्छाको जान लेते ॥ २१६९ ॥ यदि अमृत पीनेके बाद राहुकी गर्दन न कट जाती तो संसार भरके लोग उस महान् सामर्थ्यशाली वीरकी वीरताका बहुत समय तक गुणगान करते ॥ २१७० ॥ पूर्वकालमें सहदेवके पुत्र उल्हणने अपने वृद्ध चाचा शीलको स्पृहापूर्वक मारा था। जिससे उसके शरीरमें घाव हो गया और उसीकी वेदनासे वह सज्जन पुरुष घुल-घुलकर मर गया ॥ २१७१ ॥ जब वह बेचारा दर्दसे कराह रहा था तो उसकी सेवाके लिए घरमें घुसते हुए सम्मानित अनुगामी जज्जल, यामिक और जनंगमको भी उल्हणने मार डाला ॥ २१७२ ॥ उस वृद्धके एक बालकको आँगनमें बैठे देखकर रिल्हणने तुरन्त उस घरमें आग लगवा दी। उस बालकको घरसे बाहर निकलने ही नहीं दिया ॥ २१७३ ॥ जब उस धूमान्ध बालकको मुख्य-मुख्य सैनिक उठाकर ले जा रहे थे तो घरके द्वारपर पहुँचते ही कुछ नीचोंने उस बालकको मार डाला ॥ २१७४ ॥ इधर राजा जयसिंह सुज्जिका कटा हुआ सिर देखकर भी शान्त नहीं हुआ। उसने राज्यके विद्रोही प्रवृत्तिके मुख्य-मुख्य अधिकारियोंको समाप्त कर देनेका कार्यक्रम चालू रक्खा ॥ २१७५ ॥ राजाके आदेशानुसार जब सैनिक सुज्जिके उत्तम-मध्यम भृत्योंका बड़े आवेशके साथ वध करने लगे। तब उन्होंने भी अपने पराक्रम भर उनका प्रतिरोध किया ॥ २१७६ ॥ सुज्जिका छोटा भाई लक्ष्मक जब सैनिकों द्वारा कैद करके राजाके पास ले जाया जा रहा था, तब कुछ निर्दयी लोगोंने उसे राजधानीके आँगनमें मार डाला ॥ २१७७ ॥ सुज्जिका चचेरा भाई संगट राजभवनके आँगनमें नटके समान नचा-नचाकर मारा गया ॥ २१७८ ॥ सुज्जिके उन्मत्त भाई मुम्मुनिको बाणवंशी पापियोंने उसके घरमें घुसकर मार डाला ॥ २१७९ ॥ सुज्जिके सालेको घातकोंने शृङ्गारवृत्तिकी टेढ़ी चाले चलकर मार डाला। महान् कुलीन चित्रिय औचित्यके आधारपर मारा गया ॥ २१८० ॥ संगिक नामका प्रतीहार घातकों द्वारा घायल करके मार डाला गया। इसी प्रकार सुज्जिके

जात्यवाजिजवप्राप्तप्राणाः कोष्ठेश्वरान्तिकम् । आसाद्य वीरपालाद्या द्वित्रा मृत्युभयं जहुः ॥२१८२॥
अजञ्शरदियो दुष्टोत्थानरुद्धतुरंगमः । अपेदे संगटभ्राता बन्धनं सुभटामठे ॥२१८३॥
सुञ्जुश्च सञ्जलः सुञ्जेः श्वेतिकश्चाग्रजात्मजः । उल्हणस्य तनूजश्च कारागारं प्रपेदिरे ॥२१८४॥
इत्थं राजन्यमात्ये च प्राप्ते पिशुनवश्यताम् । नवमेऽब्दे शुचेः शुक्लपञ्चम्यां विप्लवोऽभवत् ॥२१८५॥
कार्ये क्वापि विपर्यस्तसत्त्वं संस्मृत्य मन्त्रिणम् । तमद्यापि नृपस्तादृग्भृत्योपेतोऽनुतप्यते ॥२१८६॥
वेतालोत्थापनाच्छ्वभ्रलङ्घनाद्विषचर्वणात् । व्यालाश्लेषाच्च विषमं सत्यं राजोपसेवनम् ॥२१८७॥
अनात्मायत्तनिस्तीर्णगुणानां चक्रवर्तिनाम् । शकटानामिवाग्रस्थो विश्वस्तः को न भज्यते ॥२१८८॥
अयुक्तं नृपतिः सुञ्जिवधं मेने प्रजाः पुनः । युक्तं ज्ञात्वा तमुद्रिक्तशक्तितां चिविदुः प्रभोः ॥२१८९॥
भेजे राजा सञ्जपालं कम्पनाधिपतिं ददत् । कुलराजे च नगराधीकारित्वं समार्पयत् ॥२१९०॥
त्यक्त्वा मल्लार्जुनं धन्योदयौ नगरमागतौ । प्राग्वत्पुनर्जजृम्भाते प्रियौ विश्वंभराभुजः ॥२१९१॥
इतराश्रयविच्छेदा वीतपारिप्लवस्थितिः । श्रीः सर्वाकारमकरोत्स्थिरं चित्ररथे पदम् ॥२१९२॥
अद्भुतैश्वर्यधुर्योऽपि राष्ट्रं दण्डेन पीडयन् । शमं नेतुमशक्योऽभूत्स भूपस्याप्यनङ्कुशः ॥२१९३॥
गन्धर्वानाभिधे ग्रामे टिक्कं हत्वा व्यसर्जयत् । पारेविशोकं कोष्ठेशस्तच्छिरः पार्थिवान्तिकम् ॥२१९४॥
निसर्गद्वेषिणा प्राप्तप्रतापे नितरां नृपे । तदानीं तप्यमानेन दूतेनाप्यायितोऽसकृत् ॥२१९५॥
कोष्ठेश्वरेण रभसादल्पैः परिजनैर्युतः । निशि लोठनदेवः स हाडिग्रामं ततोऽविशत् ॥२१९६॥

अन्यान्य आश्रितजन विभिन्न स्थानोंपर मारे गये ॥ २१८१ ॥ उच्चकोटिके घोड़ोंके वेगकी सहायतासे वीरपाल आदि दो-तीन व्यक्ति कोष्ठेश्वरके पास पहुँच गये और वहाँ उनका मृत्युभय दूर हो गया ॥ २१८२ ॥ संगटका भ्राता शरदिय भी भाग रहा था, किन्तु उसका घोड़ा सुभटामठपर अड़ गया। अतएव वहाँ राजाके सैनिकोंने उसे कैद कर लिया ॥ २१८३ ॥ सुञ्जिका पुत्र सञ्जल, उसके बड़े भाईका पुत्र श्वेतिक और उल्हणका पुत्र ये तीनों पकड़कर जेलमें डाल दिये गये ॥ २१८४ ॥ इस प्रकार जब राजा तथा मंत्रिगण पिशुनों (चुगलखोरों) के फेरमें फँस गये, तब लौकिक वर्ष ४२०९ को आषाढ़ शुक्ल पंचमीको वह विप्लव हुआ ॥ २१८५ ॥ उसके बाद जब राजकार्य संचालन करते समय कहीं कोई बाधा खड़ी होती थी, तब उन पुराने मंत्रियों और सेवकोंका स्मरण करके राजा जयसिंह अपनी करनीपर पछताने लगता था ॥ २१८६ ॥ राजाकी सेवा सोते हुए वेतालको जगाने, खन्दक लाँघने, विष चबाने तथा सर्पका आलिंगन करनेसे भी टेढ़ा काम है। इस बातको सर्वथा सत्य समझिए ॥ २१८७ ॥ जिन चक्रवर्ती राजाओंने अपने आपको काबूमें न रखकर समस्त सद्गुणोंका परित्याग कर दिया हो, उनपर विश्वास करनेवालेको वैसे ही मरना पड़ता है, जैसे कोई बैलगाड़ीके आगे पड़कर पिस जाय ॥ २१८८ ॥ आगे चलकर कुछ दिन बाद राजा और प्रजा दोनोंने अनुभव किया कि सुञ्जिका वध अनुचित था और लोगोंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि राजाके पास अत्यधिक शक्ति रहनेके कारण ही यह घटना घटी ॥ २१८९ ॥ तदनन्तर राजाने संजपालको सेनापति एवं कुलराजको नगरका मुख्य अधिकारी बनाया ॥२१९०॥ उसी समय धन्य और उदय मल्लार्जुनको छोड़कर नगरमें चले आये और पूर्ववत् राजाके प्रेमपात्र बनकर आनन्द लेने लगे ॥ २१९१ ॥ तब अन्य पुरुषके आश्रयसे विहीन हो एवं चंचलता त्यागकर लक्ष्मीने सब प्रकारसे चित्ररथके घरमें आसन जमाया ॥ २१९२ ॥ अद्भुत ऐश्वर्य सम्पन्न होते हुए भी दण्डनीतिसे प्रजाको सताकर राजकार्य संचालित करते हुए निरंकुश दमन करके भी राजाने राज्यमें शान्ति नहीं स्थापित कर पाया ॥ २१९३ ॥ तदनन्तर गन्धर्वाना ग्राममें टिक्कका वध करके घातकोंने उसका सिर राजा जयसिंहके पास भेजा। जिसे देखकर राजाने स्वयंको शोकसागरके पार समझा ॥ २१९४ ॥ क्योंकि टिक्क स्वभावतः राजाका द्वेषी रहा। अतएव दूतने राजाके पास उसका सिर भेजकर बहुत कुछ सन्तुष्ट कर दिया ॥ २१९५ ॥ उन्हीं दिनों अपने थोड़ेसे परिजनोंके साथ कोष्ठेश्वर और लोठनदेव जल्दी-जल्दी रातके समय भागकर हाडीग्राम पहुँचे ॥ २१९६ ॥

महाकथितकन्योऽन्यैः संरुद्धे राज्ञि सर्वतः । वद्धसंधिर्लवन्यस्तं विससर्ज यथागतम् ॥२१९७॥
उच्चलादिवदाक्रान्तुं राज्यं स रभसं भजन् । निर्व्यूढिशून्यदाढ्योगान्मूढो लोकस्य हास्यताम् ॥२१९८॥
तीक्ष्णप्रयुक्तिभिः सैन्यभेदैरन्यैश्च कोष्ठकम् । उपायैर्नृपतिस्तैस्तैस्ततो हन्तुं व्यचिन्तयत् ॥२१९९॥
प्रतिद्वन्द्वीव तीक्ष्णानां पाटिताक्षः क्षमाभुजम् । न संप्रासादयत्क्रुद्धः प्रतियोद्धुं त्वचिन्तयत् ॥२२००॥
स्वैः स्वैः प्रदेशैरादिश्य प्रवेष्टुं पृतनापतीन् । स्वयमुच्चावचैः सैन्यैरवचस्कन्द तं पुनः ॥२२०१॥
स भूपं रभसायातं ज्ञात्वाऽल्पपृतनं वली । प्राप्तश्छलयितुं तस्थौ प्रतापैः परिहारितः ॥२२०२॥
लग्ने रणे चित्ररथः पृथुसैन्योऽपि दैवतः । तस्य सैन्यैकदेशेन निन्ये जयविपर्ययम् ॥२२०३॥
भङ्गेनामङ्गलोल्काकल्पेन किल तेन सः । ततः प्रभृत्यभूद्भ्रश्यदवष्टम्भो दिने दिने ॥२२०४॥
रिल्हणादीन्योधयित्वा व्यूढव्यस्ताखिलानुगः । लवन्यो न्यपतत्सायं कम्पनाधिपतेर्वले ॥२२०५॥
ऊनैः शतादपि भटैर्युतो विद्रुतसैनिकः । सेहे तत्सैन्यशेषं स गजक्षोभमिवाचलः ॥२२०६॥
किं वाच्यः स नरव्याघ्रः प्रवृद्धे याति संगरे । निजवर्मतनुत्रादि यस्यामानि न वर्ष्मणि ॥२२०७॥
मन्दीकृतारिसंरम्भमवष्टम्भेन तादृशा । तं त्रिल्लकादयः प्रापुर्लवन्याः सैन्यशालिनः ॥२२०८॥
तैः सजातीयदाक्षिण्यात्तटस्थैरपि संकटे । तस्योपकृपयोगोऽभूत्स्ववीर्यापास्तविद्विषः ॥२२०९॥
काले संनहनं रात्रिजागरः भ्रान्ततो वलैः । समये ग्रहणत्यागतत्त्वयुक्तिविकल्पनम् ॥२२१०॥
लब्धभूम्यपरित्यागो जिगीषोरीदृशैर्गुणैः । वलेऽनुरस्योऽप्यस्य का वैर्याक्रमणे स्तुतिः ॥२२११॥

किन्तु उस समय अनन्त आतंक और प्रभावसे राजा जयसिंह जैसे अपने राज्यभरमें सर्वत्र खड़ा दिखायी देता था। अतएव सभी डामरों और लवन्योंने राजाके साथ सन्धि कर ली और लोठनके कथनानुसार वे दोनों महाकथितकन्या लौट गये ॥ २१९७ ॥ किन्तु राजा उच्चल आदिके समान सारे राज्यपर छा जानेके लिए जल्दबाजी करनेके कारण राजा जयसिंहको जनसाधारणका हास्यभाजन बनना पड़ा ॥ २१९८ ॥ उसने घातकोंके उपयोग, सेनामें फूट तथा अन्यान्य कई उपायोंसे कोष्ठेश्वरके वधका प्रयास किया ॥ २१९९ ॥ घातकों द्वारा उसने कोष्ठेश्वरकी आँख निकलवा लीं, फिर भी राजी न होकर एक प्रतिद्वन्द्वीके समान राजा जयसिंह उसके साथ युद्ध करनेका विचार कर रहा था ॥ २२०० ॥ तदनुसार उसने अपने-अपने प्रदेशोंके सेनापतियोंको कोष्ठेश्वरके राज्यमें प्रविष्ट होनेका आदेश देकर स्वयं भी उत्तम-मध्यम सेना लेकर उसपर चढ़ाई कर दी ॥ २२०१ ॥ उधर प्रतापहीन कोष्ठेश्वरको मालूम हो गया कि राजा बहुत थोड़ी सेनाके साथ आ रहा है। अतएव उसने कपटका मार्ग अपनाया ॥ २२०२ ॥ तदनुसार जब युद्ध आरम्भ हो गया, तब उसने चित्ररथकी विशाल सेना लेकर राजाका सामना किया, जिससे उस युद्धमें जयसिंहको हार जाना पड़ा ॥ २२०३ ॥ उस अमंगलस्वरूप पराजयसे राजाका पतन आरम्भ हो गया और दिनोदिन उसका प्रभाव घटने लगा ॥ २२०४ ॥ इस प्रकार हौसला बढ़ जानेपर कोष्ठेश्वरने युद्धमें रिल्हण आदि राजाके सभी अनुगामियोंको परास्त करके सायंकालके समय सेनापति संजपालकी सेनापर धावा बोल दिया ॥ २२०५ ॥ उस भीषण आक्रमणको देखकर सेनापतिकी सारी सेना भाग गयी। सौसे भी कम स्वामिभक्त उसके साथ रह गये, किन्तु वीर संजपालने उन्हीं सैनिकोंको साथ लेकर उसी तरह उस आक्रमणका सामना किया, जैसे पर्वत हाथीके मस्तकके प्रहारका सामना करता है ॥ २२०६ ॥ जब युद्धका वेग बढ़ा, तब ऐसा अवसर भी आ गया कि राजा जयसिंहके शरीरपर कवचतक नहीं रह गया ॥ २२०७ ॥ इस प्रकार शत्रुका दबाव पड़नेपर जब राजा अपना धैर्य खो रहा था। उसी समय त्रिल्लक आदि विशाल सेनावाले कुछ लवन्य राजासे मिले ॥ २२०८ ॥ उस विकट संकटके समय वे सजातीयताको ध्यानमें रखकर तटस्थ रह गये, जिससे राजाको कुछ सहारा मिल गया। क्योंकि इस मुठभेड़में उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी ॥ २२०९ ॥ उस समय राजा ठीक समयपर सेना सुसज्ज करता था, घबड़ाये हुए सैनिकोंको ढाढ़स बँधाता था और उचित अवसरपर संग्रह तथा त्यागका निर्णय करता था ॥ २२१० ॥ प्राप्त भूमिको किसी भी तरह न त्यागने जैसे गुणसे शत्रु भी त्रस्त हो जाते हैं। सच तो यह है कि अल्पशक्ति रहनेपर ऐसा धैर्य ही स्तुत्य होता है—भारी

अविश्वसन्भिन्नभृत्यस्ताद‍्क्संरम्भपीडितः । पलायनोन्मुखः शैलात्कोष्ठकोऽथ व्यगाहत ॥२२१२॥
मार्गेष्वकालप्रालेयपातरुद्धेषु वाजिनाम् । गन्तुं तस्योद्यमं जघ्नुः पृष्ठलग्ना विरोधिनः ॥२२१३॥
अवमानोपतप्तोऽथ परिमेयपरिच्छदः । स ययौ जाह्नवीं स्नातुं राज्ञा राष्ट्रादपाकृतः ॥२२१४॥
सोमपालोऽथ भूपालनाम्ना पुत्रेण खेदितः । दीर्घद्वैराज्यदुःखार्तः शरणं नृपतिं ययौ ॥२२१५॥
पुत्रौ दत्तवतो नीविं नागपालस्य तस्य च । अभयं प्रतिशुश्राव भूभृदाश्रितवत्सलः ॥२२१६॥
वृहद्राजस्य जिह्मोऽयं दौःस्थ्यहेतुरभूदिति । स तदापदि नास्मार्षोदव्याजौदार्यधुर्यधीः ॥२२१७॥
साहायकाय स्वं सैन्यं दत्तवांस्तं महीपतिः । भूयः प्रतिष्ठामनयद्दर्पप्रशमनाद्द्विषाम् ॥२२१८॥
स्नात्वा द्युनद्यां व्यावृत्तः कोष्ठकोऽत्रान्तरे पुनः । मल्लार्जुनं गृहीत्वाभूद्द्वैराज्योत्थापनोद्यतः ॥२२१९॥
अर्कोपरागे प्राप्तः स कुरुक्षेत्रमवाप तम् । लवन्यं कार्यतस्त्यक्तपूर्ववैरो नृपात्मजः ॥२२२०॥
आहूतो लोठनः पूर्वमायातस्तेन डामरम् । निशम्य तं संघटितं खिन्नः प्रायाद्यथागतम् ॥२२२१॥
विजयेशाग्रतः पीतकोशोऽपि नृपतिद्विषः । प्रविविक्षूनुपैक्षिष्ट सोमपालो दुराशयः ॥२२२२॥
आराधनाय भूभर्तुस्तत्पुत्रः कोष्ठकं पुनः । प्राप्तं स्वविषयैस्तैस्तैष्ठक्कुरैर्निरलुण्ठयत् ॥२२२३॥
अत्रान्तरे चित्ररथं संवृद्धायासदुर्ग्रहम् । अनिच्छन्तोऽवन्तिपुरे प्रायं चक्रुर्द्विजातयः ॥२२२४॥
उपेक्ष्यमाणास्ते दर्पात्तेनागणितभूभुजा । ज्वलिते ज्वलने देहान्बहवो जुहुवुः शुचा ॥२२२५॥
चरके घर्मधेनूनामुत्तम्धेऽपि तदाश्रितैः । वह्निं गोपालकोऽप्येकः कारुण्यप्रवणोऽविशत् ॥२२२६॥
भट्टस्योद्भटवंशस्य पृथ्वीराजस्य नन्दनः । युवा विजयराजाख्यः सानुजो गाढदुर्गतः ॥२२२७॥

सेनाके साथ लड़कर जीत जानेपर भी स्तुतिकी कोई वात नहीं होती ॥ २२११ ॥ राजाके उस दवावसे पीडित हो तथा सैनिकोंमें आपसी फूट पड़ जानेके कारण कोष्ठक पलायन करनेके लिए पहाड़से नीचे उतर आया ॥ २२१२ ॥ किन्तु मार्गमें असमयकी हिमवर्षासे उसके घोड़ोंको रुक जाना पड़ा और पीछे लगे हुए शत्रु अलग उसके प्रयत्नमें वाधा डाल रहे थे ॥ २२१३ ॥ इस प्रकार अपमानसे सन्तप्त एवं राजा जयसिंहके द्वारा राज्यसे निष्कासित कोष्ठेश्वरने थोड़ेसे परिजनोंको साथ लेकर गंगास्नानके लिए यात्रा आरम्भ कर दी ॥ २२१४ ॥ तदनन्तर सोमपाल अपने पुत्र भूपाल द्वारा सताये जानेके कारण एवं द्वैराज्यसे दुःखित होकर राजा जयसिंहकी शरणमें चला आया ॥ २२१५ ॥ राजाके पास पहुँचकर उसने अपने भाई नागपालके दो पुत्रोंको धरोहरके रूपमें रख दिया। तव आश्रितवत्सल राजाने उसे अभयदान दे दिया ॥ २२१६ ॥ सोमपालकी इस विपत्तिका कारण वृहद्राजकी कुटिलता थी, किन्तु उदारवुद्धि सोमपालने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया ॥ २२१७ ॥ राजा जयसिंहने उसे सहायतार्थ अपनी सेना दी, जिससे उसने अपने शत्रुओंको परास्त करके पुनः अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली ॥ २२१८ ॥ इसी वीच गंगास्नान करके कोष्ठक लौट आया और मल्लार्जुनको साथ लेकर द्वैराज्यकी स्थापनाके लिए प्रयत्न करने लगा ॥ २२१९ ॥ सूर्यग्रहणके अवसरपर वह कुरुक्षेत्र गया और वहाँ लवन्यसे उसकी भेंट हो गयी। कार्यवश उस समय लवन्यने पूर्वकालीन वैरभाव त्याग दिया था ॥ २२२० ॥ क्योंकि उसके पहले मल्लार्जुनने लोठनको वुलाया था। किन्तु वहाँ जाकर जव उसने डामरोंके साथ साँठ-गाँठ देखी, तव लोठन जैसे आया था वैसे ही चुपचाप लौट गया ॥ २२२१ ॥ यद्यपि दूषित विचारवाले सोमपालने विजयेश्वरके समक्ष कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा की थी, तथापि उसने राजद्रोहियोंके प्रवेशकी उपेक्षा की ॥ २२२२ ॥ किन्तु सोमपालके पुत्र भूपालने राजा जयसिंहको प्रसन्न करनेके लिए कुछ ठाकुरोंको मिलाकर अपने राज्यमें पहुँचे हुए कोष्ठेश्वरको लूट लिया ॥ २२२३ ॥ इसी वीच संकट वढ़ानेके मूल कारण एवं दुराग्रही चित्ररथको राजपदसे हटानेके लिए अवन्तिपुरमें ब्राह्मणगण उपवास करने लगे ॥ २२२४ ॥ किन्तु अभिमानवश राजाने उनकी उपेक्षा कर दी। जिसके फलस्वरूप वहुतेरे ब्राह्मण धधकती हुई आगमें कूदकर जल मरे ॥ २२२५ ॥ चरक नामके स्थानपर राजा चित्ररथके भृत्योंने गौओंके चरनेकी मनाही कर दी, तव एक ग्वाला दुखी हो

देशान्तरं जिगमिषुर्विषमं वीक्ष्य तत्र तत्। व्याजहारानुजन्मानं कारुण्याश्रुकणान्किरन् ॥२२२८॥
उपेक्ष्यमाणा दाक्षिण्यस्तम्भितेन महीभुजा। विशः सचिवपाशेन विवशाः पश्य नाशिताः ॥२२२९॥
छन्दानुवृत्त्यामात्यानां यत्र क्ष्माभृदुपेक्षते। कस्तत्रान्यस्तु दीनानामापच्छमयिता विशाम् ॥२२३०॥
यद्वा न्यायोऽयमन्योन्यस्पर्धया यदुपप्लुतम्। शमिता दण्डयेच्छास्यं शमितारं परोऽथ वा ॥२२३१॥
विशृङ्खलं नयेच्छय्यां दार्ढ्यसारं विघट्टनैः। कदाचिल्लोहमश्मानमश्मा लोहं कदाचन ॥२२३२॥
दोषेणैकेन न द्वेष्यो राजा सर्वगुणोज्ज्वलः। वधाच्चित्ररथस्यान्यद्विधेयं नावभाति मे ॥२२३३॥
धर्मः सर्वोपकार्येकक्षुद्रक्षपणमुच्यते। जघानाजगरं सोऽपि जन्तूनामन्तकं जिनः ॥२२३४॥
दुर्वृत्तदमनेऽस्माभिः कृते तेजस्विनो जनात्। भूयोऽप्यधिकृतो बिभ्यन्न कश्चित्पीडयेत्प्रजाः ॥२२३५॥
कायस्यास्य परित्यागादनन्ता जन्तवो यदि। सुखिनः स्युरसौ भ्रातर्वणिज्या ज्यायसी न किम् ॥२२३६॥
शुश्रुवांसं स तथेत्यथ तं कोशपीथिनम्। विधायानुससारेत्य हन्तुं चित्ररथं तदा ॥२२३७॥
कालेऽस्मिन्धर्मदौर्बल्यकलुषेऽपि कलेः किल। प्रभावो भूमिदेवानां द्योततेऽद्याप्यभङ्गुरः ॥२२३८॥
ब्राह्मणैरपरिक्षीणपूर्णपुण्यो न कश्चन। धैर्यमारभते भ्रष्टदुष्टोत्पाटनपाटवैः ॥२२३९॥
द्विजानुद्वेजयन्सुज्जिर्द्विजादेवासदद्वधम्। विप्रेणैव हतश्चित्ररथो विप्रावमानकृत् ॥२२४०॥
द्विजोत्थापितयाक्रान्तचित्तोऽसौ कृत्यया ध्रुवम्। दध्यौ तस्य वधं प्राणान्विना कारणमुत्सृजन् ॥२२४१॥
कृशानुसादकृषत विप्रा देहान्यदैव ते। तद्वेपस्तुल्यसंवर्षे तदैवासीद्धतानुगः ॥२२४२॥

अग्निमें कूदकर मर गया॥ २२२६॥ उच्चवंशमें उत्पन्न भट्टके पुत्र पृथ्वीराजका पुत्र युवक विजयराज और उसका भाई ये दोनों बड़े संकटमें पड़कर परदेश यात्राको निकले, किन्तु मार्गकी भयंकरता देखकर दहल गये। तब नेत्रोंसे अश्रुवर्षा करते हुए विजयराजने अपने छोटे भाईसे कहा—॥ २२२७॥ २२२८॥ 'उस अनुदार राजाकी अपेक्षा उसके धूर्त मंत्रियोंके मायाजालसे विवश होकर हमें मरना पड़ रहा है॥ २२२९॥ जहाँ अमात्योंकी स्वच्छन्दताके कारण राजाकी उपेक्षा होती है, वहाँ हम जैसे दीनोंकी विपत्ति दूसरा कौन दूर करेगा?॥ २२३०॥ अथवा पारस्परिक स्पर्धाके कारण इस राज्यमें जो यह विपत्ति उपस्थित हुई है, उसका निवारण या तो शान्तिके लिए उत्तरदायी राजाको दण्ड देकर किया जा सकता है। अथवा दण्डदाताको भी कोई अन्य उससे भी प्रवल राजा दण्ड दे, तब संभव है॥ २२३१॥ विशृंखलित किन्तु बलवान् अन्यायी राजाको विघटित करके शान्ति स्थापित की जा सकती है। जैसे कभी लोहा पत्थरको और कभी पत्थर लोहेको काट देता है॥ २२३२॥ समस्त उज्ज्वल गुणोंसे सम्पन्न राजाके किसी एक दोषको देखकर उससे द्वेष न करना चाहिए। किन्तु सर्वथा अवगुणी राजा चित्ररथके वधके सिवाय मुझे राज्यके कल्याणका कोई अन्य उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता॥ २२३३॥ जैनी लोग अहिंसाधर्मको सर्वोपकारी कहते हैं। किन्तु उनके गुरु साक्षात् जिन भगवान् (महावीर स्वामी) ने प्राणियोंके घातक एक अजगरका वध किया था॥ २२३४॥ यदि हमलोग इस दुराचारी राजाका दमन कर देंगे, तब दमनके डरसे कोई भी अधिकारी या राजा तेजस्विनी प्रजाको सतानेका दुःसाहस नहीं करेगा॥ २२३५॥ हे भाई! यदि हमारे शरीरका त्याग कर देनेसे बहुतेरे प्राणी सुखी हो सकें तो क्या यह एक उच्चकोटिका वाणिज्य नहीं होगा?'॥ २२३६॥ इन बातोंको सुनकर जब उसके भाईने भी समर्थन कर दिया, तब विजयराज चित्ररथको मारनेके लिए फिर अवन्तिकी ओर लौट पड़ा॥ २२३७॥ यद्यपि कलिके प्रतापसे इस समय धर्म दुर्बल तथा कलुषित हो गया है। फिर भी ब्राह्मणोंका प्रभाव आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है॥ २२३८॥ ब्राह्मणोंके समान पूर्ण पुण्यात्मा धरातलमें कोई भी नहीं है। क्योंकि वे धैर्यके साथ भ्रष्टों एवं दुष्टोंका उत्पाटन करनेमें निपुण होते हैं॥ २२३९॥ ब्राह्मणोंको सतानेवाला सुज्जि ब्राह्मणके ही द्वारा मारा गया था और विप्रोंको अपमानित करनेवाला चित्ररथ भी ब्राह्मणके ही द्वारा मरा॥ २२४०॥ क्योंकि उसके कुकर्मोंसे त्रस्त होकर ब्राह्मणोंने कृत्या छोड़ी। उसने जाकर चित्ररथके चित्तपर कब्जा कर लिया और अकारण उसके प्राण ले लिये॥ २२४१॥ जब उन ब्राह्मणोंने चित्ररथका शरीर अग्निदेवको अर्पित किया, उसी समय उस राजाके तुल्य

अनासादयतश्चित्ररथं पृथुबलान्वितम् । गणरात्रमभूद्धन्तुर्दिवारात्रं प्रजागरः ॥२२४३॥
स द्वपर्यन्तसामन्तसीमन्तितपथो व्रजन् । अभूददृश्यो दृश्यश्च जनसंबाधमध्यगः ॥२२४४॥
तेन साश्चर्यधैर्यनिष्ठुरेणैकदा जवात् । सोऽनुससे व्यतिक्रान्तनिःश्रेणिर्नृपवेश्मनि ॥२२४५॥
विलम्बितस्य स्तम्भाग्रे कृपाण्या मूर्ध्न्यथास्य सः । सामन्तमध्यगस्यैव प्राहरत्तीव्रसाहसः ॥२२४६॥
मुमूर्षोरिव तत्रास्य वैह्वल्यगलितस्मृतेः । उद्भ्रान्तचक्षुषो वर्चश्च्यवनं समपद्यत ॥२२४७॥
प्रमापितोऽयं राज्ञेति ज्ञात्वा सत्त्वबहिष्कृताः । वित्रस्तास्तं तथाभूतमत्यजन्ननुजीविनः ॥२२४८॥
तं वीतजीवितं ज्ञात्वा न तीक्ष्णः प्राहरत्पुनः । प्राप्तं द्वितीयनिःश्रेण्या भ्रातरं निषिषेध च ॥२२४९॥
न पलायिष्ट निर्विघ्नसर्वमार्गोऽपि घातितः । राज्ञा चित्ररथः शश्वदित्युच्चैः प्रोच्चकार सः ॥२२५०॥
प्रनष्टं मृष्टमांसादिराज्यभोगपुरःसरैः । सर्वैः कापुरुषैस्त्रासादथ चित्ररथानुगैः ॥२२५१॥
ज्यायांल्लोठरथस्तस्य भ्राता भीत्या पलायितः । शरणं नर्तकीमेकां ययौ वक्त्रार्पितस्तनः ॥२२५२॥
तादृक्प्रवेगितश्चित्ररथोऽभ्यर्णं महीभुजा । मा भैषीः प्राहरत्कस्त्वामित्युक्त्वाश्वासितः स्वयम् ॥२२५३॥

नृपाज्ञया को निहन्ता द्वारेशस्येति वादिभिः ।
तीक्ष्णोऽन्विष्टो भटैः सोऽहमित्युक्त्वा स्वं न्यदर्शयत् ॥२२५४॥

धीरो योधान्स्वधैर्यात्तलङ्घनश्लाघ्यविक्रमः । त्रिंशद्विंशान्स हत्वाऽथ प्रहृत्य चरणे हतः ॥२२५५॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥२२५६॥

शत्रुओंने आक्रमण करके उसके अनुयायियोंको भी समाप्त कर दिया ॥ २२४२ ॥ बात यह हुई कि पूर्वोक्त विजय-राज तथा उसका भाई ये दोनों ब्राह्मण अवन्तिपुर पहुँचे, तब असंख्य सेनासे सुरक्षित चित्ररथको मारनेका वे कोई मौका नहीं पा सके। अतएव कई दिन-रात उन्हें जागकर अवसरकी प्रतीक्षा करनी पड़ी ॥ २२४३ ॥ तदनन्तर विजयराज महलके पास पहुँचा-तो वहाँ असंख्य सामन्तोंकी भीड़ मिली। उनके बीचमें घुसकर वह कभी दिखायी देता था और कभी लुप्त हो जाता था ॥ २२४४ ॥ सहसा वह आश्चर्यजनक धैर्य तथा निष्ठुरताके साथ बड़े वेगसे सन्तरियोंके बीच होता हुआ राजभवनके भीतर घुस गया ॥ २२४५ ॥ वहाँ बड़ी देरतक एक खम्भेके पीछे छिपा रहा। उसके बाद तीव्र साहस करके एकाएक बड़े वेगसे झपटा और सामन्तोंके मध्यमें खड़े राजा चित्ररथके मस्तकपर अपनी तलवारसे प्रहार कर दिया ॥ २२४६ ॥ इस प्रहारसे राजा मुमुर्षुके समान विह्वल एवं अचेत हो गया। उसकी आँखें नाचने लगीं और तेज लुप्त हो चला ॥ २२४७ ॥ यह काण्ड उपस्थित देखकर राजाके सहयोगियोंने समझा कि 'महाराज जयसिंहकी आज्ञासे इसकी हत्या हुई है'। यह सोचकर उन सबका साहस जवाब दे गया और भयभीत भावसे वे चित्ररथको उसी दशामें छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ २२४८ ॥ उसे मरा हुआ समझकर घातकने दूसरा प्रहार नहीं किया और दूसरी सीढ़ीतक पहुँचे हुए अपने भ्राताको उसने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २२४९ ॥ वह वहाँसे भागा नहीं, बल्कि बारम्बार यही चिल्लाता रहा कि 'राजा जयसिंहने चित्ररथका वध करा दिया'। उसके मार्गमें कोई बाधा नहीं आयी ॥ २२५० ॥ चित्ररथके साथ भुने हुए मांस खा तथा मदिरा पीकर राजभोग भोगनेवाले सब कायर साथी और अनुचर क्षण ही भरमें अन्तर्धान हो गये ॥ २२५१ ॥ चित्ररथका बड़ा भाई लोठरथ डरके मारे भागकर एक नर्तकीके घर पहुँचा। वहाँ उसने उसका स्तन अपने मुखमें रखकर उससे रक्षाकी भीख माँगी ॥ २२५२ ॥ जब राजा चित्ररथ ऐसी भीषण स्थितिमें पड़ा हुआ था, तब सहसा एक व्यक्ति उसके पास पहुँचा और उसने कहा—'डरिए मत, यह बताइए कि किसने आपपर प्रहार किया है ?' यह कहकर उसने राजा चित्ररथको आश्वासन दिया ॥ २२५३ ॥ तदनन्तर जब राजाज्ञासे छान-बीन होने लगी और पूछा जाने लगा कि घातक कौन है ? तब विजयराजने स्पष्ट कह दिया कि 'मैंने मारा है' ॥ २२५४ ॥ तभी उस धैर्यशाली वीरने अपने धैर्यसे इतना बल संचित कर लिया कि उछल-उछलकर बीस-तीस योद्धाओंका वध करनेके बाद स्वयं भी मर गया ॥ २२५५ ॥ मरते समय वह एक पत्र

लब्ध्वा लिखिततत्कृत्यकारणा पत्रिका करात् । तस्यान्तसमयाशंसा श्लोकेनानेन पावनी ॥२२५७॥
अरुच्युन्माददीनत्वयुतश्चित्ररथस्ततः । रूढव्रणोऽपि ललाटसंधिवेधादजायत ॥२२५८॥
स मासान्पञ्चपान्याप्य निराप्यायकृशाकृतिः । विचेष्टमानोऽवर्तिष्ट शयनीयतलेऽन्वहम् ॥२२५९॥
मल्लार्जुनं पुरस्कृत्य कोष्ठको विप्लवोन्मुखः । तन्मध्ये तरुसंबाधं गिरिदुर्गमगाहत ॥२२६०॥
मा मामभ्रमयं भ्राम्यन्स्वयूथ्यग्रसनोद्यमात् । अविस्मृतापदं लोकं पुनर्द्वैराज्यशङ्किनम् ॥२२६१॥
अकाण्डाम्बुदजाड्येन पीडिताङ्ग इवाभजत् । परचक्रोदयेनाशु लोकः शिथिलशक्तिताम् ॥२२६२॥
तरुदुर्गं तदक्रुशक्रोशव्याप्यथ सर्वतः । व्याप्तोपान्तवनग्रामैः सचिवैः स न्यरोधयत् ॥२२६३॥
सञ्जपाले यवनकैः स्कन्धावारं निवध्नति । अनुचक्रुर्द्विपोऽस्पन्दान्निवातस्तिमितांस्तरून् ॥२२६४॥
धन्योऽपि शिलिकाकोट्टपर्यस्तकटकोऽभवत् । गन्धद्वेपी गजरिपुः सिन्धुरस्येव वैरिणः ॥२२६५॥
आवासितबलो राजा गोवासे रिल्हणोऽकरोत् । अटवीं पर्यटन्धूकानिवार्को ब्रुडितानरीन् ॥२२६६॥
तीव्रशक्तेर्नृपस्यैवमारम्भैः स्तम्भितोऽभजत् । कोष्ठेश्वरस्त्रिचतुरान्मासान्संचारशून्यताम् ॥२२६७॥
क्लिष्टो देशान्तरे राष्ट्रानन्तरैर्न्यक्कृतो नृपैः । भिन्नस्ववर्गो भूभर्तृभृत्यव्यर्थीकृतोद्यमः ॥२२६८॥
बालिशत्वादकुशलो ज्ञातुं वृत्तिं महीभुजाम् । स विस्मृतागाः संधातुमैच्छच्छिन्नपदो नृपम् ॥२२६९॥
उज्जिहीर्षोः प्रभोर्मन्युं वाच्यं तद्वचनाद्विदन् । भक्त्येकाग्रः सञ्जपालस्तस्येच्छां तामपूरयत् ॥२२७०॥

भी डाल गया, जिसमें लिखा था—'साधुजनोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश एवं धर्मकी स्थापना करनेके लिए मैं प्रत्येक युगमें जन्म लेता हूँ'। मरणके समय उसकी इस श्लोकात्मिका वाणीने सब लोगोंको पवित्र कर दिया॥ २२५६ ॥ २२५७ ॥ अरुचि, उन्माद तथा दीनता युक्त चित्ररथ मस्तककी सन्धिमें भीषण व्रण होनेपर भी जीवित बच गया ॥ २२५८ ॥ वह सर्वथा कृशकाय होकर नित्य बिछौनेपर छटपटाता हुआ पाँच-छः महीने पड़ा रहा॥ २२५९ ॥ इसी बीच विप्लवोन्मुख कोष्ठकने मल्लार्जुनको अगुआ बनाकर वृक्षसमुदायसे घिरे हुए एक पर्वतीय किलेमें अड्डा जमाया॥ २२६० ॥ वहाँ उनकी उपस्थितिसे आस-पासके निवासी यह सोचकर चिन्तित हो उठे कि कहीं ऐसा न हो कि अपनी सेनायें जुटा-जुटाकर ये दोनों हमें ग्रस लें। और फिर दो राजाओंके राज्यमें उपस्थित होनेवाली विपत्तियोंका भी उन्हें अनुभव था॥ २२६१ ॥ असमयमें उदित मेघ एवं हिमपातसे जड़ अङ्गों युक्त जैसे होकर शत्रुओंके इस चक्रके उदयसे वहाँके निवासियोंकी शक्ति शिथिल हो गयी ॥ २२६२ ॥ कुछ ही समयमें कोष्ठक तथा मल्लार्जुनने अपने सचिवोंकी सहायतासे लगभग एक कोस लम्बे-चौड़े उस किलेके पार्श्ववर्ती जंगलों तथा ग्रामोंको घेर लिया ॥ २२६३ ॥ उधर राजा जयसिंहका सेनापति संजपाल यवनोंकी सहायतासे अपना शिविर बनाने लगा। शत्रुका अनुकरण करते हुए उन्होंने भी अपने शिविरको ऐसे स्थानपर बनाया, जहाँ वृक्षोंकी सघनताके कारण वायुका प्रवेश भी कठिन था॥ २२६४ ॥ जैसे सिन्धुगजका वैरी गन्धगज अपने शत्रुका पीछा करता रहता है, उसी प्रकार शत्रुका अनुसरण करनेवाले धन्यने भी अपनी सेना लाकर शिलिकाके किलेमें छावनी डाल दी॥ २२६५ ॥ दूसरी ओर राजा जयसिंहके साथ रिल्हणने आकर गोवासमें पड़ाव डाल दिया। जैसे सूर्य उल्लुओंको अँधेरेमें रहनेके लिए विवश कर देता है, वैसे ही उस अटवी (वन) ने उन सभी शत्रुओंको अपने गहन अन्धकारमें समेट लिया था॥ २२६६ ॥ तीव्र शक्तिसम्पन्न राजा जयसिंहकी इस चौकसीको देखकर कोष्ठेश्वर तीन-चार महीने तक संचारशून्य होता हुआ चुपचाप पड़ा रहा॥ २२६७ ॥ इस प्रकार परदेशके क्लेश झेलते हुए अन्यान्य देशोंके राजाओं द्वारा तिरस्कृत और आपसमें ही फूट पड़ जानेके कारण विह्वल कोष्ठकके आयोजनको राजा जयसिंहके सेवकोंने व्यर्थ कर दिया॥ २२६८ ॥ अपनी मूर्खतावश राजाओंके व्यवहारज्ञानमें अकुशल कोष्ठकने पिछले अपराधोंको भूलकर और पैर कट जानेके कारण राजा जयसिंहके समक्ष सन्धिका प्रस्ताव रक्खा॥२२६९॥ अपने स्वामीके कोपको शान्त और एवं पुरानी बदनामी दूर करनेके लिए स्वामिभक्त सेनापति संजपालने कोष्ठककी वह कामना पूर्ण

तथार्तोऽपि रिपुं राज्ञः संधित्सुर्न्यग्रहीन्न सः । पृथ्वीहरप्रसूतानां निर्द्रोहत्वं न कौतुकम् ॥२२७१॥
तेन प्रहिण्वता राजवैरिणं स्वकराङ्गुलिम् । छिन्दतापि महीभर्तुर्मन्युश्छेत्तुं न पारितः ॥२२७२॥
कण्ठबद्धशिरःशाटः शीर्षेणोपानहं वहन् । भुक्तवेलोऽपि भूपालं कर्तुं नाशकदक्रुधम् ॥२२७३॥
अस्वीकृतद्वित्रभूभृल्लाञ्छनः स हि राजवत् । तत्तत्प्रत्युक्तभूपाज्ञः सर्वं गर्वाद्व्यवाहरत् ॥२२७४॥
शुश्राव बद्धं तन्मध्ये यातं मल्लार्जुनं नृपः । अनुबध्नाति भव्यानामुदयेऽभ्युदयान्तरम् ॥२२७५॥
नीयमानः स हि स्कन्धमधिरोप्यानुजीविभिः । अजाङ्घिकतया मार्गोल्लङ्घनायासनिःसहः ॥२२७६॥
ततस्ततो भयस्थानान्निस्तीर्णो लोहराश्रितम् । सावर्णिकाभिधं ग्रामं प्राप्तो विन्यस्तरक्षिणा ॥२२७७॥
निरुद्धो जग्गिकाख्येन ठक्कुरेण महीपतिः । प्रियंकरं तं च भृत्यं शुश्रावान्तिकमागतम् ॥२२७८॥
बद्धप्रायोऽरिणा दुर्गान्निर्गतः स कथंचन । बद्धस्तेन पुनः शक्तिः कस्य भाव्यर्थलङ्घने ॥२२७९॥

गङ्गा द्युमार्गलुठिता जठरात्कथंचिदेकस्य संहृतवतो निसृता महर्षेः ।
ग्रस्तापरेण कृतसागरगर्तपूर्तिः शक्तो न कोऽपि भवितव्यविलङ्घनायाम् ॥२२८०॥

जग्गिके बद्धसंप्राप्तिपर्यन्तोपान्तरक्षिणि । राज्ञोदयद्वारपतिः प्रायोजि प्राज्यबुद्धिना ॥२२८१॥
तं विना धैर्यगाम्भीर्यशौर्यधुर्यं महाधियम् । संकटे न ह्यवष्टम्भो राज्ञाज्ञाय्यन्यमन्त्रिणाम् ॥२२८२॥
स ह्यतिक्रम्य साबाधान्मार्गानुभयवेतनैः । तमोरिस्थितमद्राक्षीत्तं क्षमापतिविद्विषम् ॥२२८३॥
निष्ठाशून्येन धैर्येण शौर्यसंभावनावहः । स्तुवन्स तं बहिः प्राप्तं तत्तदुक्त्वाऽब्रवीत्पुनः ॥२२८४॥

कर दी ॥ २२७० ॥ उस शत्रुसे अत्यधिक कष्ट पाये हुए भी संजपालने सन्धिके लिए उद्यत कोष्ठेश्वरको कैद नहीं किया। क्योंकि पृथ्वीहरके पुत्र कोष्ठक जैसे वंशजोंका निर्द्रोह बन जाना कोई साधारण बात नहीं थी ॥२२७१॥ एक समय राजाके वैरीको उसके पास भेज तथा अपने हाथकी उँगली काट करके भी संजपालने राजाके क्रोधको नहीं शान्त कर पाया था ॥ २२७२ ॥ गलेमें पगड़ी लपेट तथा सिरपर जूता रखकर उसने बहुत समय तक चिरौरी की, किन्तु फिर भी वह राजाके कोपको शान्त नहीं कर सका ॥ २२७३ ॥ उन दिनों राजाके दो-तीन प्रमुख अधिकारियोंकी अवहेलना करते हुए कोष्ठेश्वरने राजाज्ञाको ठुकरा दिया था। वह ऐसा व्यवहार करता था कि जैसे स्वयं राजा हो ॥ २२७४ ॥ उसी बीच राजा जयसिंहने सुना कि भागा हुआ मल्लार्जुन कैद कर लिया गया है। भाग्यशालियोंको एकके बाद दूसरी सफलता मिलती ही रहती है ॥ २२७५ ॥ मल्लार्जुनकी जाँघें बेकार थीं, अतएव वह मार्गपर चलनेकी थकावट सहनेमें असमर्थ था। उसे उसके अनुचर कन्धेपर बिठाकर ले चल रहे थे। मार्गके विभिन्न भयावने स्थानोंको पार करता हुआ वह लोहर राज्यके सावर्णिक ग्राममें पहुँचा। वहाँ जग्गिक नामक ठक्कुरके सिपाही पहलेसे ही तैनात थे। उन्होंने मल्लार्जुनको वहाँ ही रोक लिया। बादमें राजा जयसिंहने सुना कि मेरा कोई भृत्य मिलने आया है ॥ २२७६–२२७८ ॥ पहले वह किलेसे भागते समय शत्रुओंकी पकड़में आते-आते बच निकला था, किन्तु अबकी बार वह उन्हींके द्वारा कैद कर लिया गया। भावी (होनहार) की इच्छाका उल्लंघन करनेकी शक्ति किसमें है? ॥ २२७९ ॥ गंगाजी देवलोकसे नीचे उतरीं तो उन्हे जह्नुने सोख लिया। किसी प्रकार उनके उदरसे निकलकर जब उन्होंने समुद्रका गढा भरा तो अगस्त्यने समुद्रको ही पी लिया। तात्पर्य यह कि भवितव्यताका उल्लंघन करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है ॥ २२८० ॥ जबतक कैदी मल्लार्जुन राजाके पास न पहुँच जाय, तब तकके लिए जग्गिकने उसके चारों और चौकसीका पूर्ण प्रबन्ध कर दिया था। तभी प्रखर बुद्धिमान् राजा जयसिंहने भी द्वाराधीश उदयको सतर्क रहनेका आदेश दे दिया ॥ २२८१ ॥ धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्यमें अग्रणी एवं अतिशय-बुद्धिमान् उस राजाको अपने सिवाय किसी भी मंत्रीपर इस बातका भरोसा नहीं था कि संकट-कालमें कोई मेरी सहायता कर सकेगा ॥ २२८२ ॥ राजा तथा शत्रु उभय पक्षसे वेतन पानेवाले, कर्मचारियोंके द्वारा निर्मित अनेक बाधापूर्ण मार्गोंको पार करके उदयने किसी गाँवके एक मकानकी खिड़कीपर खड़े मल्ला-

सर्वतो ज्यायसीं भर्तृभक्तिं यो वहु मन्यते । भवान्धुर्यो मतिमतामाहतो लोभनातुरैः ॥२२८५॥
कृता रक्षामणिसमं सहायं त्वादृशं विना । हानिर्मे दुर्नरेन्द्रस्य बाल्ये राज्ये बहुच्छलैः ॥२२८६॥
दुष्प्रेक्ष्याणां भवत्येव नियमाद्राजभास्वताम् । भाग्यान्तहेमन्तदिने जननेत्रविलङ्घ्यता ॥२२८७॥
शोभते रुधिराताम्रमण्डलाग्रो यथोदये । तथा योऽस्तमये भास्वानिव वन्द्यः स भूपतिः ॥२२८८॥
धन्योऽवतारो यस्यासीत्क्षुभ्यत्पौराङ्गनाजनः । उदयेऽस्तमयेप्युग्रे रागव्यग्राप्सरोगणः ॥२२८९॥
पदे प्रयोगं लब्ध्वार्थं किंचित्कृत्वा कुलीनवत् । अहं कविरिव प्रौढः प्राप्तो निर्व्यूढिमूढताम् ॥२२९०॥
मत्यंकारोऽधुना भूत्वा विधत्तां स्वान्तसुस्थितिम् । साध्यत्वानतिवृत्तेन वरेणैकेन मे भवान् ॥२२९१॥
इत्युक्त्वा प्रत्ययोत्पत्त्यै संस्प्रष्टुं स्फाटिकं ततः । सपीठं पुरतो द्वारपतेर्लिङ्गमुपानयत् ॥२२९२॥
अच्छलाहवसंमर्दप्रासशूलेषुवर्षिणः । योधान्योद्धुं वरं सायं मानवान्नूनमिच्छति ॥२२९३॥
इति संभाव्य संस्पृष्टशिवलिङ्गः स वाञ्छितम् । वरं तस्योररीचक्रे स च भूयो जगाद तम् ॥२२९४॥
आकृष्टदृष्टिरहतः क्ष्माभुजोऽन्तिकमक्षतः । यथेदृगेव प्राप्नोपि तथा त्वामर्थयेऽधुना ॥२२९५॥
कार्पण्योपहतं तस्य वचः श्रुत्वा त्रपाजडाः । सर्वेऽप्युर्वीमुखास्तेस्थुर्वृष्टयार्द्राः पल्लवा इव ॥२२९६॥
अन्तक्षणस्ततो भिक्षोः स्मर्यमाणः सचेतसाम् । विकासहेतुतां प्राप स्वस्थस्य मनसः पुनः ॥२२९७॥
मनुष्यवाह्यमारूढः पत्रं निन्ये स निस्त्रपः । तेन स्वपालिताल्लोकानपि पश्यन्नविक्रियम् ॥२२९८॥
अहीनाहारनिद्रादिर्विवश्यः पशुवत्पथि । कृष्यमाणः स केनापि न विकल्पेन पस्पृशे ॥२२९९॥

र्जुनको देख लिया ॥२२८३॥ मल्लार्जुनने भी उदयको देखकर निष्ठाहीन धैर्य एवं शौर्यका आडम्बर रचते हुए प्रशंसा की और वहुत-सी इधर-उधरकी वाते करनेके पश्चात् कहा—॥ २२८४ ॥ 'आप बुद्धिमानामे श्रेष्ठ है और सर्वाधिक सम्मान्य स्वामिभक्तिको महान् मानते हैं। सो आप जैसे महापुरुषको कुछ लोभी लोग यहाँ ले आये है ॥ २२८५ ॥ रक्षामणिके समान आप जैसा कोई रक्षक मेरे पास नहीं था। अतएव मुझ कुत्सित शासकको वाल्यकाल तथा राज्यकाल दोनो समय कपटी पुरुषोंके कारण वहुत हानि उठानी पड़ी ॥ २२८६ ॥ राजा जवतक गद्दीपर रहता है, तवतक वह वड़ी कठिनाईसे देखा जाता है, किन्तु राज्यच्युत हो जानेपर उसे सव लोग आसानीसे देख सकते हैं। जैसे ग्रीष्मकालीन सूर्यको देखना कठिन और हेमन्त ऋतुमे सरल होता है ॥ २२८७ ॥ जैसे सूर्य प्रातःकाल उदित होते तथा अस्तके समय रुधिरके समान लाल वर्णका होता है, उसी प्रकार जो राजा उदय तथा अस्त दोनों समय अपना उग्र तेज धारण किये रहता है, वह वन्दनीय होता है ॥ २२८८ ॥ जिसे देखकर पौराङ्गनाये क्षुब्ध हो जाती है, उस अप्सरागणका अवतार धन्य होता है। क्योंकि उदय और अस्त दोनों समय उसका राग (अनुराग अथवा वर्ण) ज्योंका त्यों उग्र वना रहता है ॥ २२८९ ॥ एक कुलीनकी भाँति कुछ पदोंको जोड़ तथा अर्थ निकालकर जैसे कोई मूढ़ अपनेको कवि समझ लेता है, उसी प्रकार मैं भी मूढ़तावश अपनेको प्रौढ राजा समझ बैठा था ॥ २२९० ॥ अतएव अव आप मेरी इस विनम्र वृत्तिसे प्रसन्न हों और मुझे एक वरदान देकर मेरे मनको शान्ति प्रदान करें' ॥ २२९१ ॥ ऐसा कहकर मल्लार्जुनने विश्वास उत्पन्न करनेके लिए द्वाराधीश उदयके समक्ष पीठ समेत एक स्फटिक-मणिमय शिवलिंग रख दिया ॥ २२९२ ॥ तव उदयने सोचा कि कपटविहीन युद्धमें प्रास, शूल तथा वाणोंकी वर्षा करनेवाले योद्धाओंके साथ अव यह लड़ना नहीं चाहता ॥ २२९३ ॥ ऐसा सोचकर उसने शिवलिंगका स्पर्श करके उसे वांछित वर दे दिया। तदनन्तर मल्लार्जुनने फिर कहा—॥ २२९४ ॥ 'जैसे इस समय मै आपके समक्ष अक्षत स्थितिमें हूँ, उसी प्रकार आप ऐसा कुछ करिएगा कि जिससे मैं आपके राजाके समक्ष भी अक्षत स्थितिमें ही रहूँ, यही मेरी आपसे प्रार्थना है' ॥ २२९५ ॥ उसके इस प्रकार दैन्यभरे वचन सुनकर वहाँके सभी लोग वर्षासे भीगे हुए पत्तेकी तरह मस्तक नीचा करके धरतीकी ओर ताकने लगे ॥ २२९६ ॥ तदनन्तर मल्लार्जुनने भिक्षाचरके अन्तिम क्षणकी सचेतनताका स्मरण करके अपने स्वस्थ मनको पुनः विकसित किया ॥ २२९७ ॥ उसके वाद वह मनुष्यों द्वारा वहन की जानेवाली पालकीपर सवार हो गया। उसने अपने द्वारा पालित अनुचरोंकी ओर निर्विकार भावसे निहारा

पश्यन्नानीयमानं तं गोप्तृभिस्तादृशं जनः । दयार्द्रहृदयश्चासीन्नाभ्यनन्दच्च भूभुजम् ॥२३००॥
उवाच चानुकम्प्येऽस्मिञ्जन्मज्येष्ठस्य भूपतेः । नैतावद्भाति नैर्घृण्यमनुजे पितृवर्जिते ॥२३०१॥
असेचनकमेतस्य मेचकाब्जदृशो वपुः । क्लेशगर्ह्यमनिस्त्रिंशचेताः कः कर्तुमर्हति ॥२३०२॥
पूर्वापरानुसंधानवन्ध्यस्तं दृष्टवांस्तदा । विस्मृतागा नृपं तत्तदित्युपालभताध्वनि ॥२३०३॥
गणना काथ वा बालबालिशादौ विधीयते । न चित्तवृत्तेरैकाग्र्यं महतामपि सर्वदा ॥२३०४॥
श्रोतॄणां द्यूतपाञ्चालीकेशकृष्ट्यादि शृण्वताम् । पाण्डवेभ्योऽधिकः क्रोधो धार्तराष्ट्रेषु जायते ॥२३०५॥
कुरूणां क्षतजापाने भग्नोरोर्मूर्धताडने । श्रुते पाण्डवविद्वेषस्तेषामेव च दृश्यते ॥२३०६॥
परावरज्ञः कार्याणां न कश्चिन्मध्यमं विना । तटस्थेऽनुभवाभेदस्तत्र तत्र कथं भवेत् ॥२३०७॥
स पौरान्रोदयन्नङ्के छिन्नाङ्गुल्यङ्कमुद्वहन् । युग्याधिरूढो मृत्पात्रं सायं नगरमासदत् ॥२३०८॥
न्यधत्ताश्वयुजाशुक्लपञ्चदश्यां महीपतिः । एकादशेऽब्दे तं रक्षियुतं नवमठान्तरे ॥२३०९॥
त्यक्ताहारस्य च निशाः पञ्चपास्तस्य ताम्यतः । पार्श्वं जगाम कारुण्याच्चरणस्पर्शनार्थिनः ॥२३१०॥
अवादीदर्थितं तस्मै प्रतिशुश्रुवुषेऽभवत् । द्रोहावेकान्ततो वध्यौ स चित्ररथकोष्ठकौ ॥२३११॥
राजा निर्जग्मुषः स्वोर्वीं कोष्ठकस्याथ बन्धनम् । विधित्सुः पञ्चपानाप्तान्रिल्हणादीनचूचुरत् ॥२३१२॥
सर्वेषु गलितौजःसु स्वयं राज्ञ्युद्यमस्पृशि । अथ तं रिल्हणो दोर्भ्यां झषं ग्राह इवाग्रहीत् ॥२३१३॥
हृतशस्त्रः स बलिनस्तस्य दोष्पञ्जरान्तरे । तस्थावचेष्टो निद्रान्वो भृतेनेवासनीकृतः ॥२३१४॥

॥ २२९८ ॥ भोजन और नींदका समुचित प्रबन्ध होनेपर भी वह पशुकी तरह पालकीमें बैठा चला जा रहा था। उसके मनमें कुछ भी संकल्प-विकल्प नहीं होता था ॥ २२९९ ॥ राजकीय रक्षकोंके पहरेमें जाते हुए उस मल्लार्जुनको देखकर सभी लोगोंका हृदय दयासे आर्द्र हो उठता था और वे राजा जयसिंहके इस कार्यका समर्थन नहीं कर रहे थे ॥ २३०० ॥ वे परस्पर कहते थे कि अनुकम्पाके योग्य, उच्चकुलमें उत्पन्न एवं पितृहीन छोटे भाई-पर राजाका इस प्रकार क्रूर अत्याचार उचित नहीं कहा जा सकता ॥२३०१॥ चिक्कण कमल सदृश नेत्रोंवाले इसके रूखे शरीरको कोई भी दयालु हृदयका मनुष्य कष्ट कैसे देगा ? ॥ २३०२ ॥ पूर्वापर सम्बन्धका अनुसन्धान किये बिना मल्लार्जुनको देख और उसके अपराधोंको भूलकर रास्तेके लोग राजाको बुरा-भला कहने लगते थे ॥२३०३॥ जब बड़े-बड़े महापुरुषोंकी चित्तवृत्ति सदा एक जैसी नहीं रहती, तब बालक और बालिश (मूर्ख) की गिनती ही क्या है ॥ २३०४ ॥ महाभारतकी कथा सुनते समय जब जुए तथा द्रौपदीके केश पकड़कर खींचनेका प्रसंग आता है, उस समय पाण्डवोंकी अपेक्षा कौरवोंपर श्रोतागण अधिक क्रुद्ध होते हैं ॥ २३०५ ॥ किन्तु जब कौरवोंके रुधिर पीने तथा घुटने टूटे हुए दुर्योधनके सिरपर प्रहार होता है, तब श्रोता पाण्डवोंसे द्वेष करने लगते हैं ॥ २३०६ ॥ बिना किसी मध्यस्थके आगे-पीछेके कार्योंका समन्वय कौन कर सकता है ? तटस्थ व्यक्ति अपने अनुभवोंके आधारपर विभिन्न कार्योंकी संगति कैसे बैठायेगा ? ॥ २३०७ ॥ इस प्रकार मार्गके नागरिकोंको रुलाता हुआ पालकीपर सवार मल्लार्जुन सायंकालके समय नगरमें पहुँचा। उस समय वह उँगली कटे हुए अपने हाथसे अपनी गोदमें एक मिट्टीका बर्तन सम्हाले बैठा था ॥ २३०८ ॥ इस तरह लौकिक वर्ष ४२११ की आश्विन शुक्ल पूर्णिमाके रोज राजा जयसिंहने मल्लार्जुनको नवमठमें रक्खा और रखवालीके लिए सन्तरियोंको नियुक्त कर दिया ॥ २३०९ ॥ पाँच छः रात तथा दिनमें उसने कुछ भी भोजन नहीं किया और बार-बार वह यही प्रार्थना करता रहा कि मुझे महाराजके चरणस्पर्शका अवसर दिया जाय। अन्तमें वह राजाके पास गया ॥ २३१० ॥ वहाँ पहुँचकर उसने जब राजाको अपने अभिमुख देखा तो कहा—'अपने प्रबल वैरी चित्ररथ और कोष्टकका वध करा दीजिए' ॥२३११॥ तब तत्काल राजाने अपने स्थानको भाग जानेके लिए सन्नद्ध कोष्टकको पकड़नेके लिए रिल्हण आदि पाँच-छः विश्वस्त पुरुषोंको नियुक्त कर दिया ॥२३१२॥ यह आदेश सुनकर औरोंका उत्साह तो ठंढा पड़ गया, किन्तु इस कार्यमें स्वयं राजाको प्रयत्नशील देखकर रिल्हणने कोष्टकको इस तरह दोनों हाथोंसे पकड़ लिया, जैसे ग्राह मछलीको पकड़ता है ॥ २३१३ ॥ कोष्टकका शस्त्र अलग करके रिल्हण-

भ्रातृव्यो भिःखराजाख्यः कुलराजस्य कोपनः । भूभृद्भक्त्या कृपाण्यास्य निर्बिभेद कृकाटिकाम् ॥२३१५॥
परश्वधेन मूर्ध्न्येनं पृथ्वीपालश्च ताडयन् । राजबीजी स च क्रोधान्न्यपिध्यत महीभुजा ॥२३१६॥
कृकाटिकास्थिसंजातमर्मवेधोपचेष्टितः । विवेष्टमानोऽवर्तिष्ट क्षितौ स रुधिरोक्षितः ॥२३१७॥
महाबलैः कमलियप्रमुखैस्तस्य सोदरः । चतुष्कः पातितोऽप्युर्व्यां गण्डशैल इव द्विपैः ॥२३१८॥
विलोक्य वैकल्यहतौ बद्धौ तौ स्वामिनौ तथा । कृष्टासिधेनुरुत्तस्थौ द्विजन्मा मल्लकाभिधः ॥२३१९॥
उच्चावचेषु प्रहरन्स भूपालोपजीविषु । अतर्क्यमाणस्तुमुलं राज्ञैवालक्ष्यतापतन् ॥२३२०॥
नृपान्तिकादापततस्तांस्तान्घ्नन्तं महाभटान् । अधावत्सादिधेनुस्तं कुलराजो महौजसम् ॥२३२१॥
प्रतिप्रहृतिषु क्षिप्रापतत्पाणिमपारयन् । निहन्तुं संरुरोधेव भित्तौ व्यायामवित्स तम् ॥२३२२॥
अपयातुमवस्थातुं प्रहर्तुं वाप्यशक्नुवन् । तस्थौ च बहुसंधानः संस्तभ्यैनमविक्षतम् ॥२३२३॥
चरणास्फालनोत्फालदोःशब्दमुखरोऽन्तिकम् । धाविते पद्मराजेऽथ मल्लकोऽक्षिपदीक्षणम् ॥२३२४॥
प्राहरत्कुलराजोऽस्य लब्धरन्ध्रोऽथ वक्षसि । प्रहृत्य गच्छतः पाणेः स तस्याङ्गुष्ठमक्षिणोत् ॥२३२५॥
तौ विज्जराजे दर्पोष्णनिविडे प्रहरत्युभौ । तस्मिन्प्रतिप्रहरति क्षिप्रं प्राहरतां ततः ॥२३२६॥
स त्रीनप्यभियोक्तृंस्तांस्त्यक्त्वा दृक्पथमागतम् । चतुष्किकाद्वारगतं राजानं समुपाद्रवत् ॥२३२७॥
लक्षीभूते नृपे शीघ्रमनुधावन्ससंभ्रमम् । चकार कुलराजस्तं स्फिगस्थिक्षतिनिर्जवम् ॥२३२८॥
ततः सर्वैर्वृतो योधैः क्लीबाक्लीबान्स सत्वरम् । हत्वाभजद्वीरशय्यां रक्तस्यन्दोत्तरच्छदाम् ॥२३२९॥

के हाथोंरूपी पींजरेमें जकड़कर वह इस प्रकार निश्चेष्ट एवं निद्रान्ध जैसा हो गया, जैसे उसपर किसी भूतने सवारी कस दी हो ॥ २३१४॥ तभी कुलराजके क्रोधी चचेरे भाई भिखराजने राजभक्तिवश अपनी कटारसे उसकी गर्दनके पृष्ठभागपर प्रहार कर दिया ॥ २३१५ ॥ उसी समय पृथ्वीपाल कुठारसे उसके मस्तकपर आघात करने जा ही रहा था कि कोष्टकको राजवंशज समझकर राजा जयसिंहने क्रोधपूर्वक डाँटकर उसे रोक दिया ॥ २३१६ ॥ कृकाटिका (गर्दनके पृष्ठभाग) की हड्डी कट जानेपर कोष्टक रुधिरसे सराबोर होकर धरतीपर छटपटाने लगा ॥ २३१७ ॥ महाबली कमलिय आदि प्रमुख वीरोंके आघातसे कोष्टकका सगा भाई चतुष्क भी पृथिवीपर गिर गया। उस समय ऐसा लगा कि जैसे हाथियोंने किसी पहाड़की टेकरीको धराशायी कर दिया हो ॥ २३१८ ॥ इस प्रकार अपने दो स्वामियोंको विकल होकर छटपटाते देख मल्लक नामका ब्राह्मण कटार निकालकर उठ खड़ा हुआ ॥ २३१९ ॥ उसने उत्तम-मध्यम सभी वर्गके राजसेवकोंपर एकाएक प्रहार कर दिया और उसपर सर्वप्रथम दृष्टि राजा जयसिंहकी ही पड़ी ॥ २३२० ॥ अन्यान्य योद्धाओंका वध करता हुआ मल्लक राजाकी ओर बढ़ा आ रहा था। तभी तलवार लेकर कुलराज उस महातेजस्वी ब्राह्मणकी ओर दौड़ा ॥ २३२१ ॥ वैसे उसपर प्रहार करनेका अवसर न पाकर व्यायामविद्याके विज्ञ कुलराजने उसे मारनेके लिए दीवारकी ओरसे घेर लिया ॥ २३२२ ॥ उस स्थानसे हटने, टिकने तथा प्रहार करनेका अवसर न पाकर मौका देखता हुआ कुलराज मल्लकको वहाँ ही रोके रहा ॥ २३२३ ॥ उस समय बार-बार पैर पटकने तथा हाथसे तलप्रहारकी ध्वनि सुनायी दे रही थी। तभी उसने पद्मराजको दौड़कर आते देखा ॥ २३२४॥ उसी समय मौका पाकर कुलराजने उसकी छातीपर प्रहार कर दिया। इस प्रकार मारकर वह जैसे ही मुड़ा, तैसे ही मल्लकने उसका अंगूठा काट लिया ॥ २३२५ ॥ तदनन्तर विज्जराज मल्लकपर सहसा टूट पड़ा और बड़ी देरतक वे दोनों गर्वीले युवक परस्पर एक दूसरेपर प्रहार और प्रतिप्रहार करते रहे ॥ २३२६ ॥ इसी बीच मल्लकने राजाको देखा तो उन तीनों योद्धाओंको झटकारकर वह चतुष्किकाके द्वारपर खड़े राजाकी ओर बढ़ा ॥ २३२७॥ कुलराजने जब उसे राजाको प्रहारका लक्ष्य बनाते देखा तो मल्लकके कूल्हेकी हड्डीपर करारा आघात करके उसे अशक्त कर दिया ॥२३२८॥ उसके बाद सभी योद्धाओंने एक साथ उसे चारों ओरसे घेर लिया और मल्लिकाने उन सभी वीर तथा कायर योद्धाओंको मार तथा स्वयं भी मरकर रक्ताक्त धरतीके बिछौनेपर सदाके लिए सो गया ॥ २३२९ ॥

जीवद्व्यापद्गतस्वामिवीक्षितः श्लाघ्यविक्रमः । स एवास्पृहणीयान्तक्षणो वीरेष्वगण्यत ॥२३३०॥
वहिः कोष्ठकभृत्येषु विद्रुतेष्वदरिद्रिताम् । परं जनकचन्द्राख्यो धैर्येणोवाह डामरः ॥२३३१॥
निरायुधो राजभृत्याद्धृत्वैकस्मात्परश्वधम् । स ह्ययुद्धाग्रदूतत्वं नयन्भूरीन्यमान्तिके ॥२३३२॥
यियासोस्तस्य चण्डांशुमण्डलं परशुः करे । सुषुम्णासंविभागार्थी शशिखण्ड इवाविशत् ॥२३३३॥
नाद्राक्ष्म नाश्रौष्म वापि बद्धे भर्तरि तत्तदा । कोष्ठकस्य वधूरन्वतिष्ठन्मानवती सती ॥२३३४॥
जीवन्भूयोऽपि लभ्येत त्वया स पतिरित्यसौ । बन्धूनामवधीर्योक्तिं प्राविशद्धधुताशनम् ॥२३३५॥
सप्तर्षियोषिदाश्लेषपतर्षकिल्बिषदूषितः । तस्याः सतीलोकगायाः पादाभ्यां पावितोऽनलः ॥२३३६॥
वसन्तस्य सुता धन्योदयभ्रातुः पुपोष सा । शुचिवंशाभिमानेन न डामरवधूव्रतम् ॥२३३७॥
लवन्यललनाः कुर्युर्वैधव्येऽपि धनेच्छया । ग्रामकार्यिकुटुम्ब्यादीन्नितम्बाभोगभागिनः ॥२३३८॥
मतिव्यामोहनिर्व्यूढवैक्लव्यस्याभिमानिनः । तयानुगाभ्यां च कृतं कोष्ठकस्योच्चकैः शिरः ॥२३३९॥
रूढव्रणोऽपि क्रिमिसाद्भूतः कैरपि किल्बिषैः । निष्प्राणो गणरात्रेण कारायां कोष्टकोऽभवत् ॥२३४०॥
अथ चित्ररथः शोपकृशः कलुषितं नृपम् । श्रुत्वा मल्लार्जुनेनाभूद्भयादत्यन्तदुःस्थितः ॥२३४१॥
पत्नी तस्यैकभार्यस्य प्रिया सूर्यमती सती । परलोकातिथिः पूर्वं विभवप्रतिभूरभूत् ॥२३४२॥
देहे याप्यहताप्याये गेहे गतपरिग्रहे । पत्यौ वैमत्यकलुषे नेपदप्येष पिप्रिये ॥२३४३॥
तीर्थस्थितस्य न स्यान्मे सागसोप्यप्रियं नृपात् । इति संचिन्त्य स प्रायान्मिषान्मर्तुं सुरेश्वरीम् ॥२३४४॥
अथ नानार्थभूयिष्ठां धनायीशाधिकश्रियः । स्थानात्ततस्ततस्तस्य पार्थिवोपाहरच्छ्रियम् ॥२३४५॥

इस प्रकार जीवित किन्तु विपत्तिग्रस्त अपने स्वामीके समक्ष प्राण त्यागकर अन्त समय वही सब वीरोंमें श्लाघनीय वीर माना गया ॥ २३३० ॥ ऐसी वमासानकी स्थितिमें कोष्ठकके अन्य भृत्य भाग गये, किन्तु उदारबुद्धि एवं धैर्यवान् जनकचन्द्र नामके डामरने उसका साथ नहीं छोड़ा ॥ २३३१ ॥ उसके पास कोई शस्त्र नहीं था। सो एक राजसैनिकका परशु छीनकर उसीसे प्रहार करते हुए उसने बहुतेरे राजकीय योद्धाओंको यमपुरी भेज दिया ॥ २३३२ ॥ सुषुम्णा नाडीका विभाजन करके सूर्यमंडलमे प्रविष्ट होनेके लिए उद्यत जनकचन्द्र हाथमें परशु लिये हुए जैसे चन्द्रखण्डके मण्डलमें समा गया ॥ २३३३ ॥ किसी पतिके कैद हो जानेपर जो वात कभी कहीं देखी या सुनी नहीं गयी थी, वह वहाँ हो गयी अर्थात् कोष्टककी मानवती पत्नी अपने पतिके पास जा पहुँची ॥ २३३४ ॥ यद्यपि उसे मरणोन्मुख देखकर वान्धवोंने समझाया कि 'जीवित रहोगी तो तुम्हारा पति तुम्हें प्राप्त हो जायगा' किन्तु उनकी वात न मानकर वह अग्निमें जल मरी ॥ २३३५ ॥ जिससे सप्तर्षिपत्नीके संस्पर्शका पाप करनेके कारण दूषित अग्निदेव उस सतीलोकको जानेवाली नारीके चरणोंका स्पर्श करके पवित्र हो गये ॥ २३३६ ॥ धन्य तथा उदयके भ्राता वसन्तकी पुत्रीने अपने पवित्र वंशके अभिमानवश डामरोंकी स्त्रियों द्वारा निभाये जानेवाले व्रतका पालन नहीं किया ॥ २३३७ ॥ क्योंकि लवन्योंकी ललनायें विधवा होनेके वाद भी धनकी इच्छासे ग्राम्य-कार्य करती हुई कुटुम्बियोंके साथ भोग कराती हैं ॥ २३३८ ॥ किन्तु कोष्टककी पत्नीने ऐसा न करके मतिभ्रमके कारण संकटमें पड़े हुए स्वाभिमानी कोष्टकका मस्तक ऊँचा कर दिया ॥ २३३९ ॥ किसी पुराने पापके कारण कोष्टकके व्रणमें कीड़े पड़ गये थे और मर जानेके वाद भी वह कई राततक कारागारमें पड़ा रहा ॥ २३४० ॥ उसके वाद शोपसे कृश चित्ररथ तथा मल्लार्जुनने जब कोष्टकका हाल सुना तो उन्हें अपार कष्ट हुआ ॥ २३४१ ॥ चित्ररथकी एकमात्र पत्नी सती सूर्यमती पहले ही परलोक चली गयी थी ॥२३४२॥ क्योंकि कुमतिके कारण कलुषित चित्तवाले अपने पतिका कार्यकलाप उस सती-साध्वी नारीको तनिक भी पसन्द नहीं आता था। अतएव अपना शरीर त्यागकर वह इस सन्तापसे भी मुक्त हो गयी ॥ २३४३ ॥ तदनन्तर चित्ररथने सोचा कि 'तीर्थमें रहनेके कारण मुझ अपराधीपर भी राजा किसी प्रकारका अत्याचार न करेगा' ऐसा विचार करके किसी वहाने नवमठसे निकलकर वह मरनेके निमित्त सुरेश्वरी चला गया ॥ २३४४ ॥ इस प्रकार चित्ररथके चले जानेपर राजा जयसिंहने

कनकांशुकसंनाहवाजिरत्नायुधादिभिः । स्वा स्वा प्रकाशिता लक्ष्मीः स्पर्धयेवाधिकाधिका ॥२३४६॥
लोहरद्रोहघर्मोष्मशोषितो राजपादपः । तल्लक्ष्मीशैलतटिनीसेकेनाप्यायितोऽभवत् ॥२३४७॥
विप्लवे चिरनष्टेऽपि श्रीकल्याणपुरं न यः । वनवासोचितत्रासः शाल्वः सौभमिवात्यजत् ॥२३४८॥
श्वेतच्छत्रांशुपृक्तेव चिन्तापाण्डुरवर्तत । वन्दीकृता नरेन्द्रश्रीर्निर्निद्रा यस्य मन्दिरे ॥२३४९॥
राज्ञा प्रयुक्तं विज्ञाय विजयः स भवोद्भवः । तीक्ष्णमानन्दनामानमवधीत्तेन चावधि ॥ तिलकम् ॥२३५०॥
इत्थं स पप्रथे तादृक्प्रजापालनशालिनः । सर्वोत्साहमयोनेहा जयसिंहमहीभुजः ॥२३५१॥
तीर्थस्थिते चित्ररथे पादाग्रग्रहणैषिणौ । शृङ्गारजनकावास्तां तद्भृत्यौ व्यक्तचक्रिकौ ॥२३५२॥
प्रचुरोत्कोचदानेन स्वीकृत्य नृपतिं ययौ । शृङ्गारो भग्नजनकः स्वामिश्रीभोगभागिताम् ॥२३५३॥
चिरप्रचलितं द्वारमुदये निदधे पुनः । मेघकालः सरित्पूरं प्रतीर इव पार्थिवः ॥२३५४॥
अवश्यभोग्यदुष्कर्मदत्तमर्मव्यथश्चिरम् । कथाशेषोऽभवच्चित्ररथो मासैरथाष्टभिः ॥२३५५॥

हास्यावहोऽप्यविकृतो विकृतोऽनपास्यो दुर्गन्धिरप्यतिजडोऽपि गृहीतवाक्यः ।
पूर्वानुभावजयिनो भवति प्रभावावस्य स्तुमस्तमतिसंस्तवमप्रतर्क्यम् ॥२३५६॥

निर्व्यैराद्यूतनार्यैर्यैश्चेष्टितैः प्रागभीष्टताम् । बाल्ये दुर्ललितस्यागाद्भर्तुश्चित्रचेतसः ॥२३५७॥
विसृज्यमानः संप्राप्तसाम्राज्येन दिवानिशम् । क्रमात्स्वीकृत्य ताम्बूलं तेन चित्ररथान्तिकम् ॥२३५८॥
दूत्यैः कृत्यान्तरज्ञत्वं प्राप्तवानाप्ततां गतः । तदन्ते घटयन्राज्ञस्तद्भृत्यान्कोशदर्शकान् ॥२३५९॥

कुबेरसे भी अधिक श्रेष्ठ उसका खजाना वहाँसे मँगवा लिया। उसमे नाना प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें भरी हुई थीं ॥ २३४५ ॥ सोनेके तारका काम किया हुआ वस्त्र, साज धारण किये घोड़े, विविध भाँतिके रत्न एवं शस्त्रास्त्र आदिसे सम्पन्न लक्ष्मी ज्यों-ज्यो ढोकर राजकीय खजानेमें भरी जाती थी, त्यों-त्यों वह जैसे स्पर्धा करती हुई और भी बढ़ती जाती थी ॥ २३४६ ॥ इस तरह लोहरके विद्रोहरूपी अग्निको उष्णतासे सूखा हुआ वह राजारूपी वृक्ष चित्ररथरूपी पर्वतसे निकली लक्ष्मीरूपिणी सरिताके जलसे सिंचकर फिर हरा-भरा हो गया ॥ २३४७ ॥ यद्यपि विप्लव शान्त हुए बहुत समय बीत गया था, तथापि उसने श्रीकल्याणपुरको उसी प्रकार नहीं त्यागा जैसे वनवासीके समान भयभीत शाल्वने सौभको नहीं छोड़ा था ॥ २३४८ ॥ तथापि श्वेत छत्रकी किरणोंकी दीप्ति जैसे उसपर आ पड़ी हो, इस प्रकार वह मारे चिन्ताके पीला पड़ गया। मानो राज्यश्री वन्दिनी बनकर निद्राहीन दशामें उसके घर पड़ी हुई थी ॥ २३४९ ॥ उन्हीं दिनों भवके पुत्र विजयने राजा जयसिंहके द्वारा नियुक्त समझकर आनन्द नामके घातकको मार डाला और स्वयं भी उसके हाथों मारा गया ॥ २३५० ॥ इस प्रकार प्रजापालनपरायण राजा जयसिंहकी महिमासे सब प्रकारके उत्साहसे परिपूर्ण और इच्छाओंसे रहित होता हुआ विजय विख्यात हो गया ॥ २३५१ ॥ जब चित्ररथ तीर्थमें था, तभी उसका पादाग्र ग्रहण करनेको इच्छुक शृंगार और जनक नामके सेवक वहाँ जा पहुँचे। उन दोनोंने परस्पर पहलेसे ही साठ-गाँठ कर ली थी ॥ २३५२ ॥ तदनुसार प्रचुर धनका घूस देकर शृंगारने जनकको अलग कर दिया और स्वयं राजा जयसिंहके पास जाकर अवन्तिपुरमें अपने स्वामी चित्ररथकी राज्यलक्ष्मीको भोगनेका अधिकारी बन गया ॥ २३५३ ॥ चिरकालसे द्वाराधीशका काम करनेवाले उदयको शृंगारने उसी तरह अपना द्वाराधीश बनाया। जैसे वर्षाकाल नदीके बहावको तट बनाता है ॥ २३५४ ॥ अवश्य भोक्तव्य अपने दुष्कर्मोंका फल भोगते एवं मार्मिक व्यथा सहते हुए राजा चित्ररथने आठ महीने बाद अपना तन त्याग दिया ॥ २३५५॥ हास्यावह होते हुए भी निर्विकार, विकृत तथा दुर्गन्धित होते हुए भी अत्याज्य एवं अतिशय जड़ होते हुए भी प्रवचनशील जिस महापुरुषके पूर्वकालीन अनुभाव युक्त विजयके प्रभावकी हम स्तुति करते हैं, उसकी स्तुति अतर्कनीय रूपसे करनी ही चाहिए ॥२३५६॥ जिस शृंगारने बाल्यकालमें विशेष दुलारसे पलनेके कारण विचित्र चित्तवृत्तिवाले चित्ररथको निर्द्वन्द्व जुए आदिके खेल खेलाकर अपने अनुकूल कर लिया था ॥ २३५७ ॥ चित्ररथके राज्य प्राप्त कर लेनेपर जिसने रात-दिन सेवा करते हुए राजाकी ओरसे ताम्बूल प्राप्त करके दूतोंके समान दौड़कर विभिन्न प्रकारके

तदा सर्वोन्नताशेषमन्त्रिशून्ये नृपास्पदे ।
सज्जकस्यात्मजः प्राप शृङ्गारो मुख्यमन्त्रिताम् ॥ चक्कलकम् ॥२३६०॥
तस्य वैधेयताभ्यस्तकुदृष्टेरपि दुष्कृतम् । नागुः पात्रार्पणात्तुच्छत्यागित्वेनापि संपदः ॥२३६१॥
योषित्कशिपुभोग्येन धन्यंमन्योपि सोऽभवत् । धान्यदानवदान्यत्वं गुरूणामाजगाम यत् ॥२३६२॥
पीठं कृतवतो रूप्यं संयोज्य रजतैर्निजैः । विद्यमानं सुरेश्वर्यां सायुज्यं तस्य युज्यते ॥२३६३॥
उर्वीशैरपि निर्वोढुमशक्यः ... ॥२३६४॥
नन्दिक्षेत्रे स तत्राद्यैः प्रणीतश्चम्पकादिभिः । तेन कालानुसारेण पोषितः पञ्चषाः समाः ॥२३६५॥
नर्माङ्गतायां निःसारो ज्ञातो यः सोधिकारभाक् । अचिन्त्यकृत्यकार्यासीत्स्वामिस्नेहप्रभावतः ॥२३६६॥
केलीसज्जैर्युवतिकरजैः कण्ठभूषादशायां यस्याज्ञायि त्रुटनमसकृत्क्ष्माधरेष्वासकृष्टौ ।
सोप्यादिष्टस्त्रिपुररिपुणा प्राप भङ्गं न भोगी शक्त्याधायी क्वचन न परो भर्तुराज्ञाप्रभावात् ॥२३६७॥
तं च रिल्हणधन्यौ च समाश्रित्येतरेतरम् । कार्यं जनकशृङ्गारावुत्कोचेनापजह्नतुः ॥२३६८॥
कदाचिज्जनकं वद्ध्वा सार्धं भूषणमौक्तिकैः । सपुत्रदारं शृङ्गारो वाष्पविन्दूनमोचयत् ॥२३६९॥
स तं च जातु निर्विद्य मानहीनमकारयत् । रूक्षरक्ष्यार्पितोत्कोचघनाभ्यर्थितमैथुनः ॥२३७०॥
अङ्गुष्ठनखनिर्घर्षनर्तितानामिकोर्मिकः । वदन्वामोत्तरौष्ठाग्रोदञ्चनैः कुञ्चितेक्षणः ॥२३७१॥
भ्रूभङ्गोद्वेलितवलीनिम्नोन्नतललाटभूः । पुनरेकस्तयोर्लब्धकार्यो लोकमहासयत् ॥ तिलकम् ॥२३७२॥
अव्यक्ताक्षरवाग्रौक्ष्यमीलिताक्षो रटन्वहु । हसन्सकरतालं च संपद्धन्यो व्यभाव्यत ॥२३७३॥

कार्योंका अनुभव प्राप्त करनेके बाद राजाका विश्वास प्राप्त किया। तदनन्तर जिसने अनेकानेक राजाओंसे मेल करके कोशागारपर योग्य व्यक्तियोंकी नियुक्ति की। उन दिनों राजा चित्ररथके पास कोई मंत्री नहीं था। तव मज्जकके पुत्र शृंगारने ही मुख्यमंत्रित्व करते हुए अपने कौशलसे राज्यको उन्नतिकी पराकाष्टापर पहुँचा दिया था ॥ २३५८–२३६० ॥ यद्यपि शृंगार अदूरदर्शी, तुच्छबुद्धि, कुत्सितदृष्टि और दुष्कर्मी था। यद्यपि उसका धन धनियोंके पास गया, किन्तु पापके कामोंमें नहीं लगा ॥ २३६१ ॥ पर्याप्त स्त्रियों, वस्त्रों तथा अन्यान्य भोग्य वस्तुओंको जुटाकर वह अपनेको धनी मान बैठा। अपने गुरुजनोंको अन्नदान देनेमें वह उदार था ॥ २३६२ ॥ उसने सुरेश्वरीमें अपनी चाँदीसे रुपहला सिंहासन बनवाया। तब उसे सिंहासनारूढ हो जाना आवश्यक हो गया ॥२३६३॥ उसने नन्दिक्षेत्रमें आपाढी पूर्णिमाके दिन प्रचुर धन खर्च करके ऐसी व्यवस्था कर दी, जो प्राचीन राजाओं-के लिए भी अशक्य था। पहले चम्पक और वादमें अन्य पुरुषोंके द्वारा पथप्रदर्शन प्राप्त हुआ, जिससे पाँच-छः वर्षों तक निरन्तर राज्यका उत्थान होता रहा ॥२३६४॥२३६५॥ जो व्यक्ति हँसी-मजाकमें भी निःसार प्रतीत होता था, उसे स्वामीके स्नेहजनित प्रभावसे बहुमूल्य अधिकार मिलगये, जिससे वह कल्पनातीत कार्य करने लगा ॥२३६६॥ जब कि वासुकी नाग शंकरजीके गले हार बना हुआ था, उस समय बराबर यह आशंका बनी रहती थी कि कहीं खेल-खेलमें युवती पार्वतीके नाखूनोंसे उसके टुकडे-टुकडे न हो जायँ। किन्तु ऐसा न होकर शिवजीके आदेशसे उसे मन्दराचलकी रस्सी बनना पडा। तब क्यों न दूसरे लोग भी अपने प्रभुके प्रभावसे शक्तिमान् बन जायँ ॥ २३६७ ॥ तदनन्तर रिल्हण और धन्य इन दोनोंने परस्पर मिल तथा कुछ घूस देकर जनक तथा शृंगारका काम छीन लिया ॥ २३६८ ॥ किसी समय शृंगारने आभूषणों तथा मौक्तिकोंके साथ जनकको कैद करके उसे तथा उसकी स्त्री और बच्चोंको रुलाया था ॥२३६९॥ उसी प्रकार जयसिंहने एक बार उसे बहुत कष्ट देकर अपमानित किया और रूक्ष स्वभाववाले रक्षकोंके हाथों सौंपकर उससे प्रचुर उत्कोच दिलाया था ॥ २३७० ॥ उस समय अंगूठेका नाखून रगड तथा अनामिका उँगली नचा-नचाकर आँखें टेढी किये दोनों होंठ दाहिने-बायें ले जाकर शृंगार एक विचित्र ढंगकी बोली बोलता था ॥ २३७१ ॥ भौंहें टेढी करके कई बल पड़े हुए माथेको दिखा-दिखाकर वह दर्शकोंको खूब हँसाता था ॥ २३७२ ॥ वह उस समय अव्यक्त और रूखी वाणी बोलता हुआ

सोल्लेखप्रतिभोन्नीततत्त्वानां हास्यवस्तुनि । कथाशरीरं पर्याप्तं नेदृशां किमचेतसाम् ॥२३७४॥
सर्वस्मिन्वस्तुतोवाचि काले विगतयोग्यते । जाने तृणनृणां तुल्ये शृङ्गारोऽर्हत्यगर्ह्यताम् ॥२३७५॥
यः सर्वंकषनिष्कम्पशेमुषीकः क्षमापतिः । धुर्यतां धर्मचर्याभिर्गतः सुकृतशालिनाम् ॥२३७६॥
लब्धबोधिरिवारेर्यश्चक्रे व्यापद्युपक्रियाम् । दावप्रदस्य दग्धाङ्गोल्लाघत्वमिव चन्दनः ॥२३७७॥
गुरुसूरिद्विजानाथप्रभृत्युचितयापि यः । प्रतिपत्त्या संविभेजे संविभाग्यकुटुम्बकम् ॥२३७८॥
प्रासादान्विजयेशादिदेवव्रातस्य शुद्धधीः । सुधादानेन निन्ये च धन्यः कैलासतुल्यताम् ॥२३७९॥
मठदेवगृहारामह्रदकुल्यादियोजने । जीर्णोद्धृतिव्यसनिनस्तस्य चिन्ता निरन्तरा ॥२३८०॥
सकृद्दर्शितविद्वेषकार्यः सब्रह्मचारिणाम् । स क्रौर्यधाम पर्याप्तमीदृगप्युच्यते जडैः ॥२३८१॥

विश्वाप्यायनसप्तसिन्धुभरणब्रह्मादिसंप्रीणन-
प्रायं कृत्यमुदात्तमेकसमयोपात्तेन दुष्कर्मणा ।
स्वःसिन्धोर्लघुतां गतं सगरजश्रेणीचितास्पर्शनात्
पूता येन जनाः श्मशानमिव सा योग्या किलास्थ्नां स्थितौ ॥२३८२॥

तदन्तरे शिवरथो द्विजः प्रचुरचक्रिकः । कायस्थपाशः पाशेन गलं बद्ध्वा व्यपद्यत ॥२३८३॥
इत्थं पृथ्वीपतिः कृत्वा तत्तत्कण्टकपाटनम् । अपेतविघ्नं सौजन्यनिघ्नो व्यधित मण्डलम् ॥२३८४॥
विपक्षावरणापायप्रायेण पृथिवीभुजः । तैक्ष्ण्यमायान्ति जीमूतमुक्ता रविकरा इव ॥२३८५॥
परिणाममनोज्ञत्वं राजरत्नं स्वयं नृपः । माधुर्याधिक्यमुत्पाको द्राक्षाद्रुम इवाययौ ॥२३८६॥

आँखें बन्द करके बहुत चिल्लाता था और तालियें बजाकर हँसता हुआ कुछ और ही दिखायी देता था ॥२३७३॥ वह हास्यसामग्रियोंका इस प्रकार संचय करता था कि उसकी प्रतिभाका उल्लेख करने ही योग्य होता था। उसका कथाशरीर लोकविख्यानिके लिए पर्याप्त ही नहीं था, बल्कि सीधे-सादे लोगोंके लिए विस्मयजनक भी था ॥ २३७४ ॥ किसी भी योग्यताहीन एवं अवास्तविक कालमें जब लोग तृणकी तरह तुच्छ समझे जाते थे उस समय भी जयसिंहने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रक्खा था ॥ २३७५ ॥ इस प्रकार सर्वथा दृढबुद्धि राजा जयसिंह अपने धर्माचरणके द्वारा बड़े-बड़े पुण्यात्माओंमे भी अग्रणी माना जाने लगा ॥ २३७६ ॥ वह जान-बूझकर अपने शत्रुका भी उसी तरह उपकार करता था, जैसे दावाग्निसे जले हुए मनुष्यके शरीरको चन्दन शान्ति पहुँचाता है ॥२३७७॥ गुरुजन, विद्वान्, ब्राह्मण, अनाथ आदिका वह अपने कुटुम्बीके समान पालन करता था ॥ २३७८ ॥ विजयेश्वर आदि देवमन्दिरोंपर चूनाकारी कराके उसने उन्हें कैलासके सदृश धन्य बना दिया ॥ १३७९ ॥ मठ, देवालय, उपवन, सरोवर एवं नहरोंके निर्माण तथा जीर्णोद्धारके लिए वह सदा तत्पर रहा करता था ॥ २३८० ॥ कुछ जड़ प्रकृतिवाले लोगोंका कहना है कि एक बार उसने अपने सहपाठियोंके साथ विद्वेष किया था और वह बहुत ही क्रूर स्वभावका राजा था ॥ २३८१ ॥ किसी समयके किये हुए दुष्कर्मके प्रभावसे समस्त विश्वको सन्तुष्ट करनेवाला, सातों समुद्रोंका भरण एवं ब्रह्मादि सभी देवताओंको तृप्त करनेवाला एक बहुत बड़ा काम हो गया। उससे स्वर्णदी (गंगा) को कुछ लाघवका अनुभव अवश्य करना पड़ा, किन्तु उनके स्पर्शसे राजा सगरके पुत्रोंका उद्धार हो गया। अतएव कहना पड़ेगा कि उन सगरपुत्रोंकी हड्डियोंका ही यह प्रभाव था, जिससे उनकी श्मशानभूमिमें गंगाजी आयीं और उनका स्पर्श करके संसारके असंख्य प्राणी पवित्र हो गये ॥ २३८२ ॥ उसी बीच परम षड्यंत्रकारी शिवरथ नामका एक ब्राह्मण भी कायस्थोंके मायाजालमें फँस जानेके कारण गलेमें फाँसी लगाकर मर गया ॥ २३८३ ॥ इस प्रकार राजा जयसिंहने राज्यके विभिन्न कंटकोंका उत्पाटन करके सारे विघ्नोंको दूर कर दिया और अपने सौजन्यसे कश्मीरमण्डलको सुखी किया ॥ २३८४ ॥ शत्रुओंका आवरण एकदम हट जानेके कारण तत्कालीन सभी राजे बादलोंसे मुक्त सूर्यकी किरणोंके समान तीव्र प्रभावशाली हो गये ॥ २३८५ ॥ परिणाममें सुन्दर लगनेवाला वह राजा जयसिंह राजरत्न बन गया। जैसे अंगूरका फल वृक्षपर भली भाँति पक जानेपर

प्रावर्तयत सातत्यात्क्रतून्विततदक्षिणान् । विवाहतीर्थयात्रादीन्महितांश्च महोत्सवान् ॥२३८७॥
संविभेजे स्वसंभारैः स क्रिया धर्मचारिणाम् । तेजोभिः कुलशैलानामोषधीरिव चन्द्रमाः ॥२३८८॥
प्रतिज्ञातं सुतोद्वाहप्रतिष्ठादौ पुरौकसाम् । तेनौपयिकसामग्रीदानमव्यग्रचेतसा ॥२३८९॥
दारुणामाकराः कोशवृद्धये ये धराभुजाम् । नवीचक्रे पुरं सर्वं स्वाधीनान्स विधाय तान् ॥२३९०॥
मज्जतो राजकार्येषु तत्त्वविद्भिर्हरार्चने । विस्मितैर्वीक्ष्यते तस्य निष्ठा काष्ठा मुनेरिव ॥२३९१॥
प्राह्णादारभ्य सायाह्नपर्यन्तं चास्य दृश्यते । न तत्कृत्यं गता यत्र नाध्यक्षत्वं विचक्षणाः ॥२३९२॥
अविचारान्धतमसे विद्या व्यद्योततान्तरा । जयापीडादिमेघश्रीसौदामन्या विलोलया ॥२३९३॥
तेन श्रियं तु विश्राण्य स्थास्नुं रत्नप्रभामिव । गुणवैचित्र्यचित्रस्य प्रकाशोऽनश्वरः कृतः ॥२३९४॥
शूरयो येन संग्रामे विक्षतक्षेत्रसंपदाम् । ग्रामाणामाग्रहार्केन्दु सान्वयाः स्वामिनः कृताः ॥२३९५॥
विदुषां विततोत्सेधसौधास्तद्विहिता गृहाः । व्याप्ताः सप्तर्षिभिर्द्रष्टुमुत्कर्षमिव मूर्धसु ॥२३९६॥
प्रतिभाप्रभवे प्रज्ञोपज्ञे च पथि पान्थता । सार्थवाहं तमालम्ब्य निर्दोषा विदुषां स्थिता ॥२३९७॥
आसीद्यथार्यराजस्य शयानस्याप्यतिप्रियः । कामं लिङ्गाभिषेकाम्भःसंक्षोभप्रभवो ध्वनिः ॥२३९८॥
निद्राणस्य तथा वेणुवीणादिपरिहारिणः । दयितं तस्य निर्द्वेषविद्वज्जल्पविकल्पनम् ॥२३९९॥
काले श्रीललितादित्यावन्तिवर्मादिभूभुजाम् । सिद्धं न यत्प्रतिष्ठादि निष्ठां तदधुना गतम् ॥२४००॥
मठदेवगृहेष्वेव स्वकालप्रभवेषु यत् । सर्वेष्वेव कृता तेन निर्व्यपाया व्ययस्थितिः ॥२४०१॥

विशेष मधुर हो जाता है ॥ २३८६ ॥ बड़ी विशाल दक्षिणा युक्त एवं बहुत लम्बी अवधितक चलनेवाले कई यज्ञ उसने किये। उसी प्रकार विवाह और तीर्थयात्रा आदि महोत्सवोंको भी उसने सम्पन्न किया ॥ २३८७ ॥ धर्माचरण करनेवालोंको सामग्रीकी सहायता देकर उनसे बड़े-बड़े धार्मिक कार्य कराये। जैसे चन्द्रमा अपने तेजका दान देकर कुलपर्वतोंके द्वारा औषधिका उत्पादन कराता है ॥ २३८८ ॥ पुत्र-पुत्रीके विवाह तथा देवप्रतिष्ठा आदि शुभ कार्योंमें वह राजा दिल खोलकर सामग्रीदानसे सहायता करता था ॥ २३८९ ॥ इमारती लकड़ियाँ राजाओं-की कोशवृद्धिमें प्रचुर सहायक होती हैं। सो उनका उपयोग करके उसने सारे नगरको नवीन एवं नगरनिवासियों-को स्वाधीन बना दिया ॥ २३९० ॥ वह नित्य राजकार्यमें और तत्त्वज्ञानियोंके साथ शिवपूजनमें व्यस्त रहता था। अतएव लोग उसे विस्मित भावसे देखते हुए उसकी स्थिति मुनिके समान आदरणीय समझते थे ॥ २३९१ ॥ प्रातःकालसे सायंकाल पर्यन्त उसका कोई भी काम ऐसा नहीं होता था कि जिसमें किसी विलक्षणकी अध्यक्षता न रहती हो ॥ २३९२ ॥ अविचाररूपी अन्धकारमें उस विद्याका प्रकाश चमका करता था, जो जयापीड आदि पूर्ववर्ती राजाओंरूपी मेघमें चंचल बिजलीके समान चमकती थी ॥ २३९३ ॥ उस राजाने रत्नज्योतिकी भाँति अपनी स्थावर सम्पत्ति बाँटकर अपने गुणवैचित्र्यके चित्रमें अविनश्वर प्रकाश स्थापित कर दिया था ॥ २३९४ ॥ उसने युद्धमें लड़नेवाले वीरोंको अपने राज्यके हर क्षेत्रमें नियुक्त कर दिया था और गाँवोंमें सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों-की भाँति स्थापित करके वंशजों सहित उन्हें वहाँका स्वामी बना दिया ॥ २३९५ ॥ राजा जयसिंहने विद्वानोंके लिए इतने बड़े-बड़े भवन बनवाये थे कि जैसे उनकी छतपर सप्तर्षि आकर उन भवनोंकी ऊँचाई नापते थे ॥ २३९६ ॥ प्रतिभाजनित प्रज्ञा (बुद्धि) और उपज्ञा (ईश्वर प्रदत्त स्वाभाविक ज्ञान) के मार्गपर चलनेवाले विद्वान् पथिकोंकी पान्थता राजा जयसिंह जैसे सार्थवाह (बनजारोंके मुखिया) को पाकर निर्दोष बनी रही ॥ २३९७ ॥ जैसे शय्यापर शयन करते समय भी आर्यराजको शिवजीका अभिषेक कराते समय होनेवाली जलकी ध्वनि बहुत प्रिय लगती थी ॥ २३९८ ॥ उसी प्रकार वेणु-वीणा आदि वाद्योंको हटाकर सोते समय राजा जयसिंह द्वेषहीन विद्वानोंके सयुक्तिक वाद-विवादको विशेष पसन्द करता था ॥ २३९९ ॥ ललितादित्य तथा अवन्तिवर्मा आदि राजाओंने जो प्रतिष्ठा और निष्ठा नहीं प्राप्त कर पायी थी, वह इस समय राजा जयसिंहको अनायास प्राप्त हो गयी ॥ २४०० ॥ उसने सभी मठों और देवालयोंमें समय-समयपर होनेवाले व्ययके लिए

रत्नादेव्या दृढारूढभर्तृवल्लभताभुवः । सर्वप्रतिष्ठाप्रष्ठत्वं विहारः प्रथमं गतः ॥२४०२॥
रिल्हणोऽथ गुणग्रामबान्धवो धर्मपद्धतौ । बभूव पूर्वपथिकः समस्तामात्यसंततेः ॥२४०३॥
तपोधनांल्लब्धवर्णान्धर्मवृद्धांश्च शुद्धधीः । विस्रम्भभवनस्थोपि शक्तस्त्यक्तुं न यः क्वचित् ॥२४०४॥
कृष्णाजिनोभयमुखीदानमुख्यैः सुकर्मभिः । धर्मकन्याविवाहैश्च यस्याशून्यत्वमायुषः ॥२४०५॥
सर्वेषामाहिताग्नीनां निष्प्रत्यूहा महात्मना । सर्वयागोपकरणैर्येन विश्राणिताः क्रियाः ॥२४०६॥
भोगान्बुभुजिरे भव्यान्सत्रे सूत्रितविस्मये । यस्य वर्णाश्चतुःषष्टिः कुदृष्टयस्पृष्टचेतसः ॥२४०७॥
अग्रहारगणोदग्रैर्विततैर्मठसेतुभिः । पुरे परिष्कृते येन द्वयोः प्रवरसेनयोः ॥२४०८॥
आद्ये प्रवरभूभर्तुः पत्तने प्रत्तविस्मयः । प्रातः प्रतिष्ठाप्रष्ठत्वं यत्कृतो रिल्हणेश्वरः ॥२४०९॥
लोकान्तरगतां कान्तां कृतिनोद्दिश्य सुस्सलाम् । भलेरकप्रपास्थाने विहारस्तेन कारितः ॥२४१०॥
मार्जार्यास्तिर्यगुचितस्नेहविस्मृत्यपोहतः । मृतामनुमृतायास्तन्नाम्ना यः ख्यातिमागतः ॥२४११॥
तद्भर्तुरीर्ष्याकालुष्ये तस्या दूराग्रगा पुरः । प्रदेशे मानुषीवासीत्प्रिया क्रीडाविडालिका ॥२४१२॥
तीर्थप्रस्थानदिवसादारभ्यास्या विराविणी । उत्सृजन्त्याहृतं भोज्यं सा शुचा जीवितं जहौ ॥२४१३॥
आरोहति परां काष्ठां प्रतिष्ठाविविधाध्वना । दिद्दा नृपतिपत्नीषु मन्त्रिस्त्रीषु तु सुस्सला ॥२४१४॥
श्रीचङ्कुणविहारं या यातं नामावशेषताम् । अश्मप्रासादवेश्मादिकर्मणा निर्ममेऽधुना ॥२४१५॥
अरघट्टप्रबन्धान्धुच्छात्रशालादिकर्मभिः । तस्याः संपूर्णतां पुण्यप्राकारा निखिला गताः ॥२४१६॥

समुचित और अविनाशिनी व्यवस्था कर दी ॥ २४०१ ॥ दृढ़ पदपर स्थित अपने पतिदेवकी वल्लभताकी भूमि रत्नादेवीके द्वारा स्थापित विहार जगतीतलके सभी विहारोंसे श्रेष्ठ माना जाने लगा ॥ २४०२ ॥ समस्त गुणोंका प्रेमी रिल्हण भी सब मंत्रियोंमे धर्ममार्गका सर्वप्रथम पथिक बना ॥ २४०३ ॥ वह राजा अपने राजमहलमें रहते समय भी तपोवन, लब्धवर्ण एवं धर्मवृद्ध पुरुषोंका सम्पर्क कभी भी नहीं त्यागता था ॥ २४०४ ॥ कृष्ण-मृगचर्म तथा उभयमुखी आदि प्रमुख दानों एवं धर्मकन्याओंके विवाहोंसे उस राजाका सारा जीवन अशून्य बना रहा ॥ २४०५ ॥ उस महात्मा राजाने अग्निहोत्रियोंके लिए यज्ञ-यागादिकोंके सब उपकरण सुलभ कर दिये थे। इसलिए उनकी समस्त क्रियायें विना किसी विघ्न-बाधाके सम्पन्न होती रहती थीं ॥ २४०६ ॥ उसके राज्यकी सीमामें चौसठ वर्णोंके लोग भव्य भोगोंका उपभोग करते थे। क्योंकि उसका शासनसूत्र इतना विस्मयजनक था कि उसपर तथा नागरिकोंके मनपर किसी भी शत्रुकी कुदृष्टि पड़ ही नहीं पाती थी ॥ २४०७ ॥ उसके दिये हुए बड़े-बड़े अग्रहार और उसके द्वारा निर्मित बड़े-बड़े मठ तथा बाँध नगरमें विद्यमान दो बड़ी-बड़ी सेनाओं सरीखे लग रहे थे ॥ २४०८ ॥ उस श्रेष्ठ राजाके प्राचीन नगरमे महामंत्री रिल्हणने जो शिवमन्दिर बनवाकर उसमे रिल्हणेश्वर शिवकी प्रतिष्ठा की, वह एक विस्मयजनक एवं गौरवमय कार्य माना गया ॥ २४०९ ॥ लोकान्तरको गयी हुई अपनी प्रियतमा सुस्सलाके नामपर उस कुशल राजाने भलेरक प्रपा नामक स्थानमें एक विहारका निर्माण कराया ॥ २४१० ॥ तिर्यग्योनिवाले प्राणियोंके लिए उचित स्नेहका स्मरण करनेके हेतु एक मार्जारी (बिल्ली) के मर जानेके कारण उसीका नाम संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥ २४११ ॥ उसके पतिके ईर्ष्यालु हो जानेपर उसने उसे त्याग दिया और दूर जाकर रहने लगी। इसी कारण उस प्रदेशमें वह क्रीडाविडालिकाके नामसे एक मानुषीके समान प्रसिद्ध हो गयी ॥ २४१२ ॥ जब सुस्सला मरनेके लिए तीर्थ जाने लगी, उसी समयसे उस बिल्लीने भोजन त्याग दिया और बराबर रोती रही। अन्तमें उसने उसी शोकसे प्राण त्याग दिया ॥ २४१३ ॥ प्रतिष्ठाके विविध मार्गोंमेंसे राजरानियोंमें दिद्दा रानी और मंत्रिपत्नियोंमें सुस्सला प्रतिष्ठाकी पराकाष्ठापर पहुँची हुई थी ॥ २४१४ ॥ सुस्सलाने जो चंकुण विहार बनवाया था, उसका नाममात्र शेष रह गया था। सो अब पत्थरके प्रासाद एवं बहुतेरे घर बनवाकर राजा जयसिंहने उसका पुनरुद्धार कर दिया ॥ २४१५ ॥ उसमें रहट, छात्रशाल तथा प्राकार आदि भी बनवाकर उसको पूर्णरूपसे सुसज्जित कर दिया ॥ २४१६ ॥

पूर्वराजकुलाखण्डस्थण्डिलव्यापिनाखिलम् । तद्विहारेण नगरं नीतं नेत्राभिरामताम् ॥२४१७॥
प्रापि प्रतिष्ठयेवाशु यक्ष्मक्षपितया तया । विपत्तिः श्रीसुरेश्वर्यां प्राज्यसायुज्यदूतिका ॥२४१८॥
मठाग्रहारा धन्येन वल्लभाभिधया कृताः । नाभीष्टं लेभिरे क्षामं ख्यातिः पुण्यैर्विना कुतः ॥२४१९॥
अग्रहारमठांस्तद्वदुदयः कम्पनापतिः । कृत्वापि स्वाभिधामेव तत्संबद्धां सदाशृणोत् ॥२४२०॥
उदयद्वारपतिना सह ब्रह्मपुरीगणैः । कृते प्रष्ठे मठे शोभां लेभे पद्मसरस्तटः ॥२४२१॥
शृङ्गारतन्त्रपतिना श्रीद्वारेऽप्यग्र्यजन्मना । प्रत्यष्ठापि मठोद्यानदीर्घिकाद्यनघात्मना ॥२४२२॥
स्नानकोष्ठमठब्रह्मपुरीसेत्वादिकर्मणा । सोलंचकारालंकारो बृहद्गञ्जाधिपो धराम् ॥२४२३॥
बुधः सदौषधीशान्तिहेतोर्जातः कलावतः । यः कविर्दानवत्त्वं च ख्यातस्त्यागेन योजयन् ॥२४२४॥
नृसिंहसेवी निर्हिंस्रहिरण्यकशिपुप्रदः । वाराहसमये दत्तगौश्च योऽपूर्ववैष्णवः ॥२४२५॥
भट्टारकमठाभ्यर्णे पूर्णवार्धाविव ग्रहिः । मठः शृङ्गारभट्टस्य ख्यात्यानौचित्ययोज्झितः ॥२४२६॥
सांधिविग्रहिको दार्वाभिसारोर्वीभुजोऽकरोत् । अष्टमूर्तेर्जट्टनामा प्रतिष्ठां पुण्यकर्मठः ॥२४२७॥

पुष्पाकरप्रणयभूः सुभगा विभूतिरेकस्य हन्त करवीरतरोर्द्रुमेषु ।
पुष्पाणि यस्य सफलीकुरुते स्वयं तत्प्रादुर्भवत्किमपि लिङ्गमनङ्गशत्रोः ॥२४२८॥

विभूत्या संविभक्तेषु भूभुजाखिलमन्त्रिषु । उत्कर्षकोटिं भुट्टाख्यः परं जल्हानुजोऽर्हति ॥२४२९॥
स्वयंभूः प्रकटीभूय पूजां स्वीकुरुते स्वयम् । ज्येष्ठरुद्रो वसिष्ठस्य यस्य वा वालकेश्वरः ॥२४३०॥
सविहारमठोदग्रवेश्मभिः कलुषोज्झितम् । तेन तत्र कृतं भुट्टपुराख्यं पुटभेदनम् ॥२४३१॥
नगरेऽपि हरः प्रत्यष्ठापि भुट्टेश्वराभिधः । सरश्च मडवाग्रामे घर्मविभ्रमदर्पणः ॥२४३२॥

प्राचीन राजकुलके अखण्ड स्थण्डिलव्यापी उस विहारसे सारा नगर नेत्रोंको प्रिय लगने लगा ॥ २४१७ ॥ जैसे ही सुस्सला देवीने उस विहारका प्रतिष्ठा की, तैसे ही उसे सुरेश्वरीमे यक्ष्मा रोग हो गया और सायुज्यकी दूती वनकर वह वहाँ ही मर गयी ॥ २४१८ ॥ आगे चलकर धन्यने भी वहाँ अपनी पत्नीके नामसे अग्रहार दिये और मठ वनवाये। किन्तु उसे अभीष्ट नाम तथा ख्याति नहीं मिल सकी। विना पूर्वसंचित पुण्यके कहीं नाम तथा ख्याति मिलती है ? ॥ २४१९ ॥ सेनापति उदयने भी अपने नामसे अग्रहार देकर मठका निर्माण कराया और उसका नाम सदा सुनायी देता रहा ॥ २४२० ॥ द्वाराधीश उदयने ब्रह्मपुरीगणके साथ जो मठ वनवाया, उससे पद्मसरके तटकी शोभा वढ़ गयी ॥ २४२१ ॥ अग्र्यजन्मा, पुण्यात्मा तथा तंत्रपति शृंगारने भी श्रीद्वारमे मठ, उद्यान तथा वापीका निर्माण कराया ॥ २४२२ ॥ उस बृहद्गंजाधिपने भी स्नानकोष्ठ, ब्रह्मपुरी तथा सेतु आदिका निर्माण कराके धरतीको अलंकृत किया ॥ २४२३ ॥ वह विद्वान् तथा कलावन्त पुरुष सदा औषधिदान और शान्ति स्थापनके ही काममे लगा रहता था। वह कवि तथा असाधारण दानी था। अतएव उसका त्याग उन दिनों लोकविख्यात हो चुका था ॥ २४२४ ॥ वह अपूर्व वैष्णव नृसिंह भगवान्का आराधक था। अतएव उसने वराहक्षेत्रमे निर्हिंस्र हिरण्यकशिपुकी प्रतिमा स्थापित की और गोदान किया ॥ २४२५ ॥ भट्टारक मठके पास ही पूर्ण सजधजके साथ शृंगारभट्टका भी मठ वना था, किन्तु उसकी विशेष ख्याति नहीं हुई ॥ २४२६ ॥ दार्वाभिसारनामक राजाके सान्धिविग्रहिक एवं पुण्यकर्मा जट्टने अष्टमूर्तिकी स्थापना की थी ॥ २४२७ ॥ संसारके समस्त वृक्षोंमे करवीरका भी एक प्रमुख स्थान है और उसकी पुष्पाकर-प्रणयभूमिस्वरूपा अपनी एक सुन्दर विभूति है। क्योंकि उसके पुष्प शंकरजीके एक विशेष स्वरूपको सफल बनाते हैं ॥ २४२८ ॥ यद्यपि राजा जयसिंहने सभी मंत्रियोंमे अपनी सम्पदाका समानरूपसे वितरण कर दिया था, किन्तु उन सबमें जल्हके छोटे भाई भुट्टने सर्वाधिक उत्कर्ष प्राप्त किया ॥ २४२९ ॥ क्योंकि उस जितेन्द्रिय पुरुषकी पूजाको प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट होकर वालकेश्वरनामक ज्येष्ठ रुद्र स्वयं स्वीकार किया करते थे ॥ २४३० ॥ उसने विहार, मठ, ऊँचे-ऊँचे भवनसे सम्पन्न एवं पवित्र भुट्टपुर नामका एक नगर वसाया था ॥ २४३१ ॥ धर्मके

नीत्वा प्रतिष्ठां वैकुण्ठमठादि स्वविहारभूः । रत्नादेव्या दृढं चक्रे स्वार्थग्रथनसुस्थिरा ॥२४३३॥
रत्नापुरे बहुद्वारमहार्घे निरघो मठः । धत्ते सुकृतहंसस्य स्फीतवीतंसविभ्रमम् ॥२४३४॥
मृत्युंजयो राजतेऽस्याः सुधाधौतान्भजन्गृहान् । जनस्यानित्यतोच्छित्त्यै श्वेतद्वीपं सृजन्निव ॥२४३५॥
गोकुलानां विधातारो गोकुले विहिते तया । गणिताः शूरवर्माद्याः सतृणाभ्यवहारिणः ॥२४३६॥
गवामव्याहतस्वैरसंचारचरकाञ्चिते । तत्र वैतस्ततोयाढ्ये यदपोढामयं वपुः ॥२४३७॥
मुकुन्दस्तत्र साश्चर्यसौन्दर्यौदार्यमन्दिरम् । अश्वा गोवर्धनधरः सिद्धो ना विश्वकर्मणः ॥२४३८॥
मठप्रतिष्ठां कृत्वा सा नन्दिक्षेत्रेऽकरोत्स्थितिम् । विहारान् जयवनाद्येषु स्थानेषु च मनोरमान् ॥२४३९॥
दार्वाभिसारेऽप्युर्वीशसुन्दरौदार्यमन्दिरम् । स्वनामाङ्कं पुरं चक्रे तया शक्रपुरोपमम् ॥२४४०॥
उद्दिश्योपरतान्मान्यमहत्तरमुखानपि । प्रतिष्ठा विविधाश्चक्रे सा राज्याश्रितवत्सला ॥२४४१॥
एवं सर्वाङ्गमामुक्तालंकृतेरथ स क्षितेः । विशेषकाभं भूभर्तृनृपा स्वमकरोन्मठम् ॥२४४२॥
अनुत्सिक्तेन यो दत्तभूरिग्रामो महीभुजा । तज्ज्ञैरारोपितः ख्यातिं मुख्यः सिंहपुराख्यया ॥२४४३॥
व्यधात्कारपथेशस्य दौहित्रः सिन्धुजान्द्विजान् । निविडान्द्रविडांश्चात्र प्राक्सिद्धच्छत्रमध्यगान् ॥२४४४॥
किं वा मठादिनिर्माणस्तुत्या तस्य व्यधत्त यः । भूयः सग्रामनगरं कृत्स्नं कश्मीरमण्डलम् ॥२४४५॥
जीर्णारण्यसधर्माऽयं कालदौरात्म्यतो भवन् । देशो धनजनावासैस्तेन भूयोऽपि योजितः ॥२४४६॥
आरम्भात्प्रभृति क्ष्मापे दीक्षितेऽभीष्टदत्तिषु । शिल्पिप्रायैरपि प्रायो मठदेवगृहाः कृताः ॥२४४७॥
सत्कोशांशुकरत्नादौ निरसूयेन भूभुजा । साधारणीकृते पौरास्तांस्तांश्चक्रुर्महोत्सवान् ॥२४४८॥

दर्पणस्वरूप उस पुण्यात्माने नगरमे मुकुटेश्वर शिवकी स्थापना की और मडवग्राममे एक तालाव खोदवाया ॥ २४३२ ॥ रत्नादेवीने अपने निवासस्थानके पास ही बहुतेरे भवनोंके साथ वैकुण्ठ मठ आदिकी स्थापना करके अपने नामको चिरस्थायी बना दिया ॥ २४३३ ॥ रत्नापुरके बहुतसे द्वारोंके बीच विद्यमान वह पुनीत मठ उसके सुकृतरूपी शुभ्र हंसके सदृश देदीप्यमान दिखायी देता था ॥ २४३४ ॥ रत्नादेवीके द्वारा निर्मित और असंख्य धवल महलोंके बीच विद्यमान मृत्युंजयका मंदिर देखकर ऐसा लगता था कि मानो जनसाधारणकी अनित्यताका उच्छेद करनेके लिए भगवान्‌ने वहाँ ही श्वेतद्वीपका निर्माण कर दिया हो ॥ २४३५ ॥ महारानी रत्नाने जिस गोकुलका निर्माण कराया, उसके आगे अनेक गोकुलोंके निर्माता शूरवर्मा आदि राजे तृणवत् तुच्छ दीखने लगे ॥ २४३६ ॥ क्योंकि रत्नादेवीके गोकुलमे गौओंके स्वच्छन्द विचरने, चरने और स्वच्छ जल पीकर सदा स्वस्थ बने रहनेकी सुविधा थी ॥ २४३७ ॥ आश्चर्य, सौन्दर्य और औदार्यके आगारस्वरूप मुकुन्द भगवान्‌का गोवर्धनधर मन्दिर ऐसा भव्य था कि जिसे देखकर यह प्रतीति होने लगती थी विश्वकर्मा भी ऐसा मन्दिर न बना सकेंगे ॥ २४३८ ॥ इस प्रकार मठों तथा जयवन आदिमें सुन्दर विहारोंका निर्माण कराके रत्नादेवी नन्दिक्षेत्रमें रहने लगी ॥ २४३९ ॥ दार्वाभिसारमें उसने अपने पतिदेवके सौन्दर्य और औदार्यके निकेतन-स्वरूप उसके नामपर इन्द्रपुरीके समान एक भव्य नगरका निर्माण कराया ॥ २४४० ॥ आश्रितवत्सला रत्नादेवीने राज्यकार्य करते-करते मरनेवाले बड़े अधिकारियों तथा मंत्रियोंके नामपर भी अनेक देवताओंकी स्थापना की ॥ २४४१ ॥ उस महारानीने इस प्रकार कश्मीरकी भूमिको अलकृत करनेके बाद धरतीके अलंकार स्वरूप अपने नामपर एक मठका निर्माण कराया ॥ २४४२ ॥ निरभिमान भावसे राजाने जो बहुतसे ग्राम दान दिये थे, उनमेसे मुख्य ग्रामको विज्ञ लोगोंने सिंहपुरके नामसे विख्यात किया ॥ २४४३ ॥ कारपथेशके दौहित्र (नाती) ने बहुतेरे सिन्धी, विविड तथा द्राविड ब्राह्मणोंको भूमिदान देकर बसाया, जो पहलेसे ही कश्मीर राज्यकी छत्रछायामे रहते थे ॥ २४४४ ॥ और फिर उसके द्वारा निर्मित मठ आदिकी प्रशंसा करनेसे क्या लाभ ? जब कि उसने समग्र कश्मीरमण्डलके ग्रामोंको नये सिरेसे बसा दिया था ॥ २४४५ ॥ विकराल कालके प्रभावसे जीर्ण-शीर्ण एवं अरण्यके समान ऊजड़ कश्मीर राज्यको उसने धन-जनसे सम्पन्न करके फिरसे बसाया ॥ २४४६ ॥ अभिलषित दानका व्रत लेकर राजा जयसिंहने आरम्भसे ही उच्चकोटिके शिल्पियों द्वारा मठों और देवालयोंका निर्माण करानेमें

अकाण्डतुहिनापातोद्दीपाद्यैरप्युपद्रवैः । नष्टेषु शालिषु क्षीणं सुभिक्षं तत्र न क्षणे ॥२४४९॥
अद्भुतं चाभवद्वाचः श्रुता यन्निशि रक्षसाम् । केत्वाद्युत्पातजातं च दृष्टं नष्टाश्च न प्रजाः ॥२४५०॥
कोष्ठेश्वरानुजश्छुड्डनामा विहितविप्लवः । आहवैर्गूढदण्डैश्च राज्ञा निन्येऽन्तकान्तिकम् ॥२४५१॥
चक्रे विक्रमराजादीन्भूपानुन्मथ्य पार्थिवः । प्ररोहं गुल्हणादीनां राज्ञां वल्लापुरादिषु ॥२४५२॥
प्रजेशान्कान्यकुब्जादावजर्येण नृपार्यमा । स व्यधाद्भव्यभूभोगवैभवानभिमानिनः ॥२४५३॥
विद्योतमाने निश्चोद्यैर्मन्त्रैस्तत्रैवमेकदा । भेजे जीवितदारिद्र्यं दरद्राजो यशोधरः ॥२४५४॥
स भूम्यनन्तरोऽप्यन्तरज्ञो गाढोऽतिसेवया । विपत्तौ प्रकृतिक्रान्तसंतानश्चिन्त्यतामगात् ॥२४५५॥
निकृत्यास्य निजामात्यो विड्डसीहाभिधो यतः । संभुज्य दयितां राज्यमप्रौढतनयेऽग्रहीत् ॥२४५६॥
वशीकृत्य शनैर्देशं नाममात्रनृपं शिशुम् । उच्छेत्तुमैच्छद्यावत्तं स जिघृक्षुः स्वयं क्षितिम् ॥२४५७॥

अन्योऽमात्यः पुरस्कृत्य यशोधरसुतं परम् ।
तावत्तेन समं भेजे पर्युकाख्यो विपर्ययम् ॥ युग्मम् ॥२४५८॥

कश्मीरान्पृष्ठतः कृत्वा द्वैराज्यं तत्र कुर्वति । उत्सृज्य सञ्जपालादीन्सर्वकार्यभरक्षमान् ॥२४५९॥
हेवाकप्रतिपत्त्यान्याभिधमौग्ध्यनिरुद्धधीः । सर्वाधिकाराद्यारोपान्मन्यमानोऽभिमानिताम् ॥२४६०॥
पर्युकाजर्यतः साञ्जेरप्रौढमनुजं निजम् । प्रहिण्वतोऽनुमन्त्रित्वं मन्त्रज्ञोऽप्यभजन्नृपः ॥तिलकम्॥२४६१॥
अपूर्वमण्डलाख्यावाटोपाद्धामशालिनः । क्व सर्वकम्पनिष्कम्पप्रतिभाः कार्यवेदिनः ॥२४६२॥
क्व बालबालिशप्रायो नष्टव्यवहृतिर्जनः । धिक्परीपाकविषमं स्वाच्छन्द्यं मेदिनीभुजाम् ॥युग्मम्॥२४६३॥

ही मन लगाया ॥ २४४७ ॥ अच्छे कोश, वस्त्र तथा रत्न आदिके विषयमें असूयाहीन उस राजाने अपने राज्यके सभी नागरिकोंको समानरूपसे धनाढ्य बना दिया था। अतएव वे विभिन्न प्रकारके उत्सव किया करते थे ॥२४४८॥ किन्तु सहसा हिमपात एवं अग्निकाण्ड आदि उपद्रवोंसे धानकी खेती चौपट हो गयी, जिससे वहाँ पहले जैसा सुभिक्ष उस समय नहीं रह गया ॥ २४४९ ॥ रात्रिकालमें राक्षसोंने जो अद्भुत बात कही थी, तदनुसार केतूदय आदिके उपद्रव दृष्टिगोचर हुए। किन्तु प्रजा नहीं नष्ट हुई ॥ २४५० ॥ उन्हीं दिनों कोष्ठेश्वरके छोटे भाई छुड्डने विप्लव आरम्भ कर दिया। सो उसे राजा जयसिंहने युद्धों तथा गुप्त दण्डोंके द्वारा यमपुर भेज दिया ॥२४५१॥ विक्रमराज आदि राजाओंको त्रस्त करके उसने वल्लापुर आदिमें विद्यमान गुल्हण आदि राजाओंको आगे बढ़ाया ॥ २४५२ ॥ उस राजारूपी सूर्यने कान्यकुब्ज आदि देशोंके राजाओंको भव्य भूभागके वैभवको भोगने योग्य स्वाभिमानी बना दिया ॥ २४५३ ॥ दुर्मन्त्रणाओंके कारण बहके हुए दरददेशके राजा यशोधरको उसने एक बार जीवित दारिद्र्य भोगनेके लिए विवश कर दिया था ॥ २४५४ ॥ अपनी भूमिसे सटे हुए दरददेशके राजाकी अत्यधिक सेवासे आकृष्ट होकर आन्तरिक स्थितिसे अभिज्ञ राजा जयसिंह वहाँकी प्रजापर आयी हुई प्राकृतिक विपत्तियोंसे चिन्तित हो उठा ॥ २४५५ ॥ दरदेश यशोधरका एक मंत्री विड्डसीह अपनी चालबाजीसे उसकी रानीका उपपति बन गया और उसके साथ भोग करके उस राजाके एक अबोध बालकको वहाँका राजा बना दिया ॥ २४५६ ॥ उस मंत्रीने धीरे-धीरे सारे राज्यको अपने वशमें कर लिया और सारी पृथ्वीपर कब्जा करनेके बाद उस नाममात्रके शिशु राजाको मार डालनेका जैसे उसने चक्र रचा ॥२४५७॥ वैसे ही एक दूसरे मंत्री पर्युकने राजा यशोधरके एक अन्य पुत्रको भी उस राज्यका राजा बना दिया और स्वयं उसका मंत्री बनकर शासनकार्य चलाने लगा ॥ २४५८ ॥ इस प्रकार कश्मीरकी अवहेलना करके वे दोनों मंत्री दरददेशमें द्वैराज्य शासन करने लगे। कार्यभारको वहन करनेमें समर्थ संजपाल आदि योग्य मंत्रियोंको उन्होंने हटा दिया ॥२४५९॥ उस पर्युक मंत्रीने सञ्जिके अप्रौढ पुत्र एवं अपने अनुज शृंगारको मुख्य सलाहकार बना लिया और सर्वाधिकार उसीके हाथमें देकर राज्य चलाने लगा। यद्यपि राजा यशोधर उसकी चालबाजीको भली-भाँति जानता था, फिर भी निर्बल होनेके कारण उसका कोई वश नहीं चलता था ॥ २४६० ॥ २४६१ ॥ इस प्रकार अपूर्व कश्मीर मण्डल-

कार्यापेक्षविपक्षैः स्वैरिच्छत्युद्रिक्तताच्छिदाम्। सैन्यक्ष्मादुर्गकोशादेर्न विशन्त्यन्तरज्ञताम् ॥२४६४॥
प्रक्रियामात्रतो मन्त्रं गृह्णन्ति क्षित्यनन्तराः। कृतसाहायकैरेव चिन्त्या मित्रमुखा द्विषः ॥२४६५॥
युक्त्यारब्धविधौ तत्र वैरिसाहायकग्रहे। क्व वैधेया वकप्रायाः कार्यसंदर्भवेदिनः ॥२४६६॥
दरद्राजद्रुमोऽन्योन्यभेदकूलक्षयाच्च्युतः। क्रष्टुं नाशक्यताप्रौढैः स्रोतोभिरिव मध्यगः ॥२४६७॥
पर्युकात्संकटे कार्ये तं तमुत्कोचमिच्छतः। स दुग्धघातमादातुमप्यासीदलसक्रमः ॥२४६८॥
पर्युकेण समं विड्डसीहः संधिं निबद्धवान्। यथागतं गते साज्जौ कश्मीरेन्द्रेऽग्रहीद्रुपम् ॥२४६९॥
सर्वाधिकारप्रवगाचिरसंचारभूरुहः। प्रसङ्गे तत्र शृङ्गारो मृत्युसौहित्यकार्यभृत् ॥२४७०॥
आ लक्ष्मकान्तात्सर्वाधिकारोऽस्थादद्वितीयया। वृत्त्या ततस्तु शतधा निर्झराम्भ इवाभवत् ॥२४७१॥
अन्येऽप्यमात्याः सांमत्याद्भर्तुर्माहात्म्यभागिनः। प्रमयं समये तस्मिन्दैवात्क्रिमपि लेभिरे ॥२४७२॥
प्रशंसामो नृशंसस्य किं विदध्मो धराभुजः। मृतामात्यार्भकापत्यं निधत्ते यः पितुः पदे ॥२४७३॥
प्रवर्तिता त्वमात्यानां भृत्यैः पद्धतिरद्भुता। निर्विलक्ष्याः प्रभोर्लक्ष्मीं जह्रुः स्वगृहिणीमिव ॥२४७४॥
भूभर्तुः प्राभृतीकृत्य मृतस्य स्वामिनः श्रियम्। संतानस्य विभूत्यर्थं कृत्वा कार्यं हि तेऽहरन् ॥२४७५॥
गञ्जाधिपे विश्वनाम्नि विपन्ने रक्षिता परम्। एकेन सहजाख्येन सहायानां महार्घता ॥२४७६॥
नाध्यारुरोहाधिकारं पार्थिवेनार्थितोऽपि यः। स्वामिसूनोष्टिष्टिनाम्नो वृद्ध्यैसाहायकं व्यधात् ॥२४७७॥

के अन्तर्गत दरददेशका शासनसूत्र हाथमें आ जानेके कारण भारी भड़कमसे तेजस्वी बने हुए नौसिखुए मंत्री, कहाँ कार्यके तत्त्वज्ञ एवं स्थिर प्रतिभासम्पन्न राजे और कहाँ बालकों तथा मूर्खों सदृश व्यवहारशून्य प्रजाजन! हठके कारण ऐसी विषम स्वच्छन्दता दिखानेवाले राजाओंको धिक्कार है ॥ २४६२ ॥ २४६३ ॥ क्योंकि ये राजे स्वार्थी एवं अपना काम बनानेवाले विपक्षियोंकी सलाहपर चलते हुए राज्यके विघ्नोंको दूर करना चाहते हैं। सेना, भूमि, दुर्ग एवं कोश आदिके मर्मको जाननेकी चेष्टा नहीं करते ॥ २४६४ ॥ ये पड़ोसी राजे अपने सहायकोंसे प्रक्रियामात्रकी सलाह लेते हैं। ऐसे मित्ररूपधारी शत्रु विशेष चिन्त्य होते है ॥ २४६५ ॥ जब कि उनके वैरी सहायक युक्तिके साथ अपनी बात रखते हैं, तब केवल कार्यके संदर्भको जाननेवाले बगुलेके समान ये मूर्ख राजे कर ही क्या सकते हैं ॥ २४६६ ॥ इस प्रकार पारस्परिक भेदरूपी तट ढह जानेके कारण दरदराजरूपी वृक्ष धराशायी हो गया। उन अशिक्षित मंत्रियोंके सम्हाले वह उसी तरह नहीं सम्हल सका, जैसे कई नदियोंके बीचमें खड़ा वृक्ष नहीं सम्हलता ॥ २४६७ ॥ संकटकालमे पर्युकने आलस्यवश विभिन्न प्रकारके घूस देकर काम निकालनेकी चेष्टा की, किन्तु वह दरदराज्यवर्ती दुग्धघात किलेको भी हस्तगत करनेमें असमर्थ रहा ॥ २४६८ ॥ उसी बीच विड्डसीहने पर्युकसे सन्धि की और सज्जितनय शृंगारके जाते ही वह कश्मीरनरेश जयसिंहपर रोष प्रकट करने लगा ॥ २४६९ ॥ कुछ समय तक वहाँ प्रधानमंत्रित्व करते हुए सर्वाधिकारका सुख भोगनेके बाद शृंगार उस संकटकालमे मृत्युकी कामना करने लगा। जैसे कोई बन्दर किसी पेड़पर चढ़कर फल खा लेनेके बाद चल देता है, वैसे ही वह भी सब सुख भोगकर परलोक चल देना चाहता था ॥ २४७० ॥ कश्मीर राज्यमें जबतक लक्ष्मक प्रधान मंत्री था, तबतक निष्कण्टक शासनकार्य चलता रहा, किन्तु उसके बाद झरनेके जलकी तरह लोग सैकड़ों राहोंपर चलने लगे ॥ २४७१ ॥ उसी बीच राजाकी सम्मतिपर चलकर सम्मान प्राप्त किये हुए अन्य मन्त्री भी दैवात् कालकवलित हो गये ॥ २४७२ ॥ अब उस भोले-भाले राजाकी सूझकी कहाँतक प्रशंसा की जाय कि जिसने मरे हुए मंत्रीके पदपर उसके बेटेको बिठा दिया ॥ २४७३ ॥ उसके बाद अमात्योंके अधीनस्थ कर्मचारियोंने एकदम नयी परिपाटी चालू कर दी और निर्लज्ज होकर वे राजाकी लक्ष्मीको अपनी गृहिणीके समान खींचकर घर भरने लगे ॥ २४७४ ॥ उन दिनों यदि कोई स्वामी मरता था तो राजाको कुछ न समझकर राजभृत्यगण मृतकके लड़केके संरक्षक बनकर उसका सारा धन स्वयं उदरस्थ कर लेते थे ॥ २४७५ ॥ उनमेंसे अकेला सहज नामका राजभृत्य ईमानदार निकला कि जिसने खजानेकी देखरेखपर नियुक्त कर्मचारी विश्वके मरनेपर सच्चे अर्थमें संरक्षकका कार्य किया ॥ २४७६ ॥ यद्यपि राजाने स्वयं सहजसे वह पद (कोशकी देख-रेखका कार्य) स्वीकार

निष्ठायामप्रतिष्ठत्वं दृष्ट्वापि प्रभविष्णुभिः । धिक्परंपरया भृत्याः प्रावर्ध्यन्तेऽधिकाधिकम् ॥२४७८॥
आसीदाचमनोपयोगि कलशे स्रष्टुर्जगल्लङ्घनक्लान्तांघ्रिक्रमहार्यथासुररिपोस्त्रैस्रोतसं यत्पयः ।
शंभुस्तन्निदधे स्वमूर्धनि जडेऽप्येकप्रयुक्तादृतौ स्युः सर्वेऽप्यवशा गतानुगतया गाढादराः स्वामिनः ॥२४७९॥
सुज्जिनिर्वासनप्राप्तप्ररोहो दुर्नयद्रुमः । साज्जिजाड्यकृताप्यायः क्रमेणासीत्फलोन्मुखः ॥२४८०॥
द्वित्राः समाः समन्युः स विड्डसीहस्ततोऽभवत् । अकुण्ठराज्याद्युत्कण्ठं दूतैरकृत लोठनम् ॥२४८१॥
दूरादखण्डितोत्थानः शूरमाश्रित्य भूपतिम् । जीवन्कृपिवणिज्यादिकर्मणा स सबान्धवः ॥२४८२॥
दरदां मन्त्रिणां जातज्ञातेयैरभियोगभाक् । चक्रेऽलंकारचक्राद्यैर्डामरैः सह चक्रिकाम् ॥युग्मम्॥२४८३॥
सोऽप्यद्रिदुर्गस्वाम्यस्य प्रथमप्रस्थितौ सुहृत् । क्षुद्रो जनकभद्राख्यः पार्श्वं लिप्सोर्व्यपद्यत ॥२४८४॥
कर्णाढकादावभवत्स्थाने स्थाने विलोक्य तम् । प्रस्थितं कस्यचिद्द्रोहे बुद्धिः कस्यापि साधुता ॥२४८५॥
तं तथा विपुलारम्भमपि शाठ्यादसंभ्रमम् । प्रविविक्षुमुपैक्षिष्ट कौसीद्यानुद्यमो नृपः ॥२४८६॥
पोषिते प्रेषितश्रीकैरुत्पिञ्जे विप्लवैषिभिः । अथोदयद्वारपतिः प्रैषि विश्वंभराभुजा ॥२४८७॥
संगृह्णता चमूस्तेन पुरे शंकरवर्मणः । प्राप्तोऽलंकारचक्रस्य पार्श्वमश्रावि लोठनः ॥२४८८॥
अपि विग्रहराजाख्यः सूनुः सुस्सलभूपतेः । भोजः सल्हणजन्मा च श्रुतौ तेन सहागतौ ॥२४८९॥
अथोपहत्या उत्थान एव तेषां स सत्वरः । मार्गं बहुदिनोल्लंघ्यमेकेनाह्ना व्यलङ्घयत् ॥२४९०॥
सयूथ्यकन्थाग्रथनासिद्धेर्यातो विधेयताम् । तदास्कन्दहतस्पन्दः स पलायिष्ट डामरः ॥२४९१॥

करनेकी प्रार्थना की, किन्तु उसने साफ इनकार कर दिया और विश्वके पुत्रको उस स्थानपर नियुक्त कराके उसे बौद्धिक सहायता देता रहा ॥ २४७७ ॥ धिक्कार है उन प्रभुओंको, जो अपने सेवकोंको निष्ठाहीन देखते हुए भी क्रमशः आगे बढाते रहते हैं ॥ २४७८ ॥ पहले जो गंगाजी ब्रह्माजीके कमण्डलुमें केवल आचमन करने योग्य थीं, बादमें वे त्रिलोकीको लाँघनेकी थकावटसे व्यथित विष्णु भगवानका श्रम हरण करने योग्य हो गयीं और उसके भी बाद शंकरजीने उन्हें अपने मस्तकपर बिठा लिया। ठीक ही है, जब कोई महान स्वामी किसी जड पदार्थको भी आदर दे देता है तो उसकी देखा-देखी अन्य स्वामी भी उसका आदर करनेको विवश हो जाते हैं ॥ २४७९ ॥ सुज्जिके निर्वासनसे जिस दुर्नीतिरूपी वृक्षकी उत्पत्ति हुई थी और जिसका विकास सुज्जितनय शृंगारकी मूर्खतासे हुआ था। अब उस वृक्षके फल सामने आनेको थे ॥ २४८० ॥ उधर निष्कण्टक राज्यकी प्राप्तिके लिए उत्कण्ठित लोठन अपने दूतों द्वारा दो-तीन सालतक क्रुद्ध विड्डसीहको उकसाता रहा ॥ २४८१ ॥ क्योंकि लोठनकी उत्थान-सम्बन्धी लालसा भंग नहीं हुई थी। अपने परिवारके साथ वह राजा शूरके संरक्षणमें रहता हुआ भरण-पोषणके लिए कृपि-वाणिज्य आदि कार्य करता था॥ २४८२ ॥ बादमें दरदके मंत्रियोंके साथ जिन लोगोंका सम्पर्क था, उन अलंकारचक्र आदि डामरोंके संग वह पूर्ण शक्तिसे चक्र रचने लगा ॥ २४८३ ॥ जिसकी सहायतासे उसने पर्वतीय दुर्गका स्वामित्व पानेके निमित्त प्रथम यात्रा की, वह क्षुद्र जनकभद्र मर गया ॥ २४८४ ॥ इस प्रकार प्रस्थान करनेपर कर्णाढ आदि जिन-जिन स्थानोंपर वह पहुँचा, वहाँ उसे देखकर कुछ लोगोंने विद्रोही समझा और कुछ लोगोंने सज्जन माना ॥ २४८५ ॥ उसे इस तरह पूर्ण तत्परताके साथ आक्रमणकी तैयारी करते देख करके भी राजा जयसिंह शठतावश बिना घबड़ाये उसकी उपेक्षा करता रहा ॥ २४८६ ॥ विप्लवके इच्छुक लोगोंने आवश्यक सामग्रियें दे देकर जब लोठनको परिपुष्ट कर दिया और उसकी शक्ति चमक उठी, तब महाराज जयसिंहने अपने द्वाराधीश उदयको भेजा ॥ २४८७ ॥ जब उदय शंकरवर्माके नगरमें सैन्यसंग्रह कर रहा था, तब उसने सुना कि लोठन अलंकारचक्रके पास पहुँच गया है ॥ २४८८ ॥ उसने यह भी सुना कि राजा सुस्सलका पुत्र विग्रहराज तथा सल्हणका पुत्र भोज ये दोनों भी उसके साथ आये हैं ॥ २४८९ ॥ तब उनके उत्थानको तुरन्त दबा देनेके लिए बड़ी शीघ्रता करते हुए उदयने कई दिनोंका मार्ग एक ही दिनमें तै कर लिया ॥ २४९० ॥ लोठनके झूठे प्रलोभनमें अपने साथियोंको फँसते न देख और उदयके आक्रमणसे

सिन्धोर्मधुमतीमुक्ताश्रिया अन्तःस्थितं ततः । शिरःशिलाभिधं कोट्टमथ तैरश्रिशिश्रिये ॥२४९२॥
गहने त्रुडितः कोट्टे स्थितः किं वा स इत्यसौ । न निश्चिकाय द्वारेशो भ्राम्यन्दीर्घासु भूमिषु ॥२४९३॥
अथोपालभ्यतद्दुर्गारोहणेऽस्मिन्नशंक्यत । दैवेनापि न भूभर्तुः प्रभावो निष्पराभवः ॥२४९४॥
उत्थानोन्मुखतां सर्वेऽप्युत्पिञ्जे तत्र दस्यवः । पाल्वलास्तिमयो वर्षपृथक्कृत इवाभजन् ॥२४९५॥
तैस्त्रिल्लकादिभिर्गूढवैकृतैरथ लोठनः । पार्थ्वीहरिः पुनश्चक्रे मायाचतुरचाक्रिकः ॥२४९६॥
पुरग्रामादिदग्धारमसाध्यमथ धावताम् । पदे पदे कृतं कृच्छ्रगतं स्वपक्ष्यास्तमरक्षिषुः ॥२४९७॥
दिक्चक्रे नियतैर्भ्राम्यन्दृश्यादृश्यः स सर्वतः । कल्पात्ययोदयी ब्रह्मपुत्रः केतुरिवाभवत् ॥२४९८॥
श्रान्तैरमात्यैर्निर्बन्धे संधौ कालानुरोधतः । मेने मडवराज्योर्वी हारितेवाखिला जनैः ॥२४९९॥
असंवृत्तप्रतीकारतयारोहत्सु वैरिषु । तदन्तरेऽथ संमन्त्र्य धन्यं प्रास्थापयन्नृपः ॥२५००॥
तत्स्कन्धारोपिते कार्ये व्रीडां गच्छेत्तटस्थताम् । विपर्यासमथ द्वाराधीश इत्यभ्यधाज्जनः ॥२५०१॥
भिक्षुर्मल्लार्जुनस्तत्रासीदेक एव त्रयस्त्वमी । संहता हन्त दुःसाधा दस्युश्चेत्यखिलाः प्रजाः ॥२५०२॥
द्वाराधिपस्त्वनिर्व्याजव्यवहारो महीपतेः । सिद्धिं स्वस्याप्रसिद्ध्यापि वाञ्छन्हृद्योद्यमोऽभवत् ॥२५०३॥
एकाकी यः किल न भजते मूढतां भर्तृकार्ये नौदासीन्यं श्रयति च रुषा बह्वधीने च तस्मिन् ।
निर्व्याजव्यवहृतितया साध्यसिद्धिं क्रियेच्छंस्तादृङ्मन्त्री प्रभवति परं नाल्पपुण्यस्य राज्ञः ॥२५०४॥
पञ्चचन्द्रे मृते तस्यानुजं राजोपवेशने । न्यधाद्यं षष्ठचन्द्राख्यं सोऽप्यारब्धे विनिर्ययौ॥२५०५॥

विचलित होकर डामर निकल भागा ॥ २४९१ ॥ उस डामरके भाग जानेके कारण लोठन शिरःशिला नामक दुर्गमें चला गया, जो कि सिन्धु, मधुमती और मुक्ताश्री नदीके बीचमें विद्यमान था ॥ २४९२ ॥ वहाँ जाकर द्वाराधीश उदय इस फिक्रमें पड़ गया कि इस गहन वनके किलेमें लोठन है या नहीं। इस प्रकार बड़ी दूरतक चक्कर काट करके भी वह कोई निश्चय नहीं कर सका ॥ २४९३ ॥ तदुपरान्त उसे उस किलेपर चढ़नेवालोंके पदचिह्न जैसे देखे, तब उसे शंका हुई। क्योंकि उसके प्रभु जयसिंहका प्रभाव दैवसे भी अजेय था ॥ २४९४ ॥ लोठनने जब आक्रमणकी तैयारी करते हुए सैन्यसंग्रह किया तो उस संकटकालमें उसके सभी दस्यु साथी वैसे ही अलग हो गये, जैसे बरसातमें मछलियाँ छोटी-छोटी तलैयाको छोड़कर चली जाती हैं ॥ २४९५ ॥ उस समय माया रचनेमें चतुर पृथ्वीहरके पुत्र लोठनने अपने विकारको छिपानेमें समर्थ त्रिल्लक आदिसे परामर्श करके एक नयी माया रची ॥ २४९६ ॥ उस योजनाके अनुसार उसने सभी गाँवों और शहरोंमें आग लगाना आरम्भ कर दिया। यद्यपि उसे ऐसा करनेमें पद-पदपर संकटका सामना करना पड़ता था, किन्तु उसके साथी उसे बचा लिया करते थे ॥ २४९७ ॥ कल्पान्तमें उदित होनेवाले ब्रह्मपुत्रकेतुके समान लोठन कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ सब दिशाओंमें घूमता रहा ॥ २४९८ ॥ जब इस विपत्तिको टालनेका उपाय सोचते-सोचते सब मन्त्री थक गये और सन्धिका भी कोई उचित अवसर नहीं दिखायी पड़ा, तब सब लोग कहने लगे कि अब मडव राज्यकी सब जमीन कश्मीरनरेशके हाथसे निकल जायगी ॥२४९९॥ इस प्रकार जब उस वैरीका कोई प्रतीकार नहीं हो सका और वह दिनोदिन चढ़ाईके लिए उन्मुख दिखायी पड़ा, तब राजा जयसिंहने उदयकी सहायताके लिए धन्यको भेजा ॥ २५०० ॥ उस समय सब लोग कहने लगे कि द्वाराधीशने जो काम अपने हाथमें लिया है, उसमें या तो उसे लज्जित होकर तटस्थ हो जाना पड़ेगा या हार माननी पड़ेगी ॥ २५०१ ॥ भिक्षु, मल्लार्जुन और लोठन ये तीनों एक ही एक थे। किन्तु यदि सारी प्रजा लुटेरी हो जाय तो वह दुःसाध्य हो जाती है ॥ २५०२ ॥ द्वाराधीश उदय महाराज जयसिंहके साथ निष्कपट व्यवहार करता था। अतएव वह मन ही मन अपनी प्रसिद्धिको त्यागकर राजाकी कार्यसिद्धिके लिए प्रयत्नशील हुआ ॥ २५०३ ॥ जो भृत्य एकाकी रहकर स्वामीके कार्यमें मूढ़ता नहीं करता अथवा बहुतोंके अधीन होते हुए भी रोष एवं उदासीनताका बर्ताव नहीं करता। जो अपने निष्कपट व्यवहारसे स्वामीका कार्य सिद्ध करनेके लिए सदा सन्नद्ध रहता है, ऐसा मन्त्री या भृत्य राजाको प्रचुर पुण्यसे ही प्राप्त होता है ॥ २५०४ ॥ राजा पंचचन्द्रके

द्विवाहुकादयो मुख्याश्चारणैः सह गायकैः । धन्यमेवान्वयुर्बाह्याश्चान्ये राजोपजीविनः ॥२५०६॥
धन्यादिषु तिलग्रामं कोटसिन्धुतटाश्रयम् । श्रयत्स्वगच्छद्द्वारेशो द्रङ्गस्थः पृष्टपद्धतीः ॥२५०७॥
हठप्रवेशायोग्याजिमुख्यहेवाकवर्जितः । शोषयन्द्विपतो धैर्यगम्भीरं स व्यवाहरत् ॥२५०८॥
कुठारिकादिभिः कारुवृन्दैर्मन्दिरपद्धतीः । धन्यो मधुमतीतीरे नगरस्पर्धिनीर्व्यधात् ॥२५०९॥
निर्ध्वान्तं द्रुमसंबाधं सनिकेता वनस्थलीः । कटकं सर्वभोगाढ्यं शक्तः परिवृढोऽकरोत् ॥२५१०॥
देशे भूरितुपारोग्रहिमर्तौ भाग्यसंपदा । भूभर्तुरभियोग्यैव भूरभूद्भानुभूपिता ॥२५११॥
भुवनाद्भुतसंभारप्रेषणं विजयैषिणः । द्वैराज्यमीलिताज्ञेऽपि काले राज्ञो न खण्डितम् ॥२५१२॥
उत्थान एवोपहतिं भये यास्यत्यगात्परम् । भारोढिपीडितग्राम्याक्रन्दः क्षान्तिचरूपमाम् ॥२५१३॥
दीर्घप्रवासनिर्वेदाचलितान्दर्शयन्नुपम् । स्थास्नूंश्च तोपयन्दायैः स्थैर्यं निन्ये नृपश्चमूः ॥२५१४॥
इत्थं त्रिचतुरान्मासांस्तिष्ठद्भिरपि निष्ठुरैः । नैवादातुमशक्यन्त कटकैः कोट्टसंश्रयाः ॥२५१५॥
तेषां हि वीवधासारनिरोधादीनि दृप्यताम् । अप्रियाणि न जातानि दैन्यदायीनि कानिचित् ॥२५१६॥
चिकीर्षवस्तुपारान्ते स्वविभूतिप्रकाशनम् । तस्थुरङ्कुरितोल्लासाः पर्वता इव डामराः ॥२५१७॥
कृषिं कृषीवलैर्वेदपाठमुत्सृज्य च द्विजैः । उत्पिञ्जसज्जैर्ग्रामेषु सर्वतः शस्त्रमादधे ॥२५१८॥
प्रतीक्षमाणाः प्रालेयप्रलयं मार्गभूभृताम् । दारदास्तुरगानीकैः सज्जैस्तस्थुर्जिगीषवः ॥२५१९॥
मिहिकासंहतेः कालतूलतल्पाकृतेर्दधत् । पातभीतिं जनो राजसेना शश्वदेपत ॥२५२०॥

मर जानेपर उसके जिस छोटे भाई पद्मचन्द्रको गद्दीपर बैठाया गया था, वह भी अब कुछ कर गुजरनेके लिए निकल पड़ा ॥ २५०५ ॥ द्विवाहुक आदि मुखिया तथा अन्य वाहरी राजोपजीवीगण गायकों और चारणोंको लेकर धन्यके साथ चल पड़े ॥ २५०६ ॥ जब सिन्धुतटवर्ती तिलग्राममें धन्य आदि पहुँचे, तब लोगोंसे मार्ग पूछता हुआ द्वाराधीश उदय द्रङ्ग ग्राममें पहुँचा ॥ २५०७ ॥ वह युद्ध हठपूर्वक प्रवेश करने योग्य नहीं था। और फिर उसका नायक निष्कपट था और समय टालता हुआ शत्रुके धैर्य और गाम्भीर्यको धीरे-धीरे सोख रहा था ॥ २५०८ ॥ उधर धन्य वहुतसे मजदूरोंको जुटाकर मधुमतीके तटपर मन्दिरका ऐसा मार्ग वनवा रहा था, जो नगरके मार्गोंसे स्पर्धा कर सके ॥ २५०९ ॥ वह मार्ग विशेष अन्धकार युक्त तो नहीं था, पर वृक्षोंकी गहन झाड़ियाँ विद्यमान थीं। उस वनस्थलीमें यत्र तत्र घर वने हुए थे। वहाँपर ही शक्तिशाली धन्यने समस्त सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न सेना तैयार कर ली ॥ २५१० ॥ हेमन्त ऋतु होनेके कारण वहाँ यद्यपि अत्यधिक वर्फ जमी हुई थी, तथापि राजा जयसिंहके भाग्यसे सूर्यका प्रकाश फैल गया और वह जमीन युद्ध करने योग्य हो गयी ॥ २५११ ॥ विजिगीषु राजा जयसिंहकी आज्ञा यद्यपि उन दिनों द्वैराज्यके कारण कभी कभी अवरुद्ध हो जाती थी, तथापि उसने संसारमें अद्भुत मानी जानेवाली सामग्रियें रणभूमिमें भेजीं और किसीने इस कार्यमें हस्तक्षेप नहीं किया ॥ २५१२ ॥ यद्यपि आरम्भमें ही कुछ भय और कुछ विघ्न आये। क्योंकि इस प्रकारके युद्धोद्योगसे ग्रामोंपर वहुत वड़ा वोझ पड़ गया था और ग्रामीण कराह उठे थे ॥ २५१३ ॥ दीर्घकालीन प्रवासके कारण दुःखी सैनिकोंको क्रोध दिखाकर और अपने काममें दत्तचित्त लोगोंको इनाम देकर उस राजाने सेनामें स्थिरता स्थापित की ॥ २५१४ ॥ इस प्रकार तीन-चार महीने तक छावनी डालकर पड़ी हुई उस निष्ठुर सेनाको वह किला तथा उसमें रहनेवाले लोग नहीं मिल सके ॥ २५१५ ॥ यद्यपि उन सैनिकोंने किलेमें जानेवाली अन्न-घास-इंधन आदि सब सामग्रियाँ रोक ली थीं, तथापि किलेमें रहनेवालोंकी कोई भी दीनता लक्षित नहीं हुई और न उनका कुछ अहित ही हुआ ॥ २५१६ ॥ हेमन्त ऋतुके वाद अपना पराक्रम प्रदर्शित करनेके लिए अंकुरित पर्वतोंके समान निश्चलभावसे वे डामर उस किलेमें वैठे हुए थे ॥२५१७॥ उस समय किसान खेती और ब्राह्मण वेदपाठ त्यागकर सुसंगठित रूपसे शस्त्रसज्ज होकर गाँवोंमें तैयार वैठे थे ॥ २५१८ ॥ उधर दरद देशके सैनिक विशाल अश्ववाहिनी सुसज्जित करके विजय प्राप्त करनेके लिए मार्गके राजा वर्फके पिघलनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥२५१९॥ अपनी छावनीमें पड़ी राजसेना कालसदृश एवं रुईके ढेर जैसी वर्फ गिरनेकी संभावनासे काँप उठती थी

इत्थं प्रत्यर्थिसामर्थ्यपरमार्थापरीक्षणात् । क्ष्माभृन्मिथ्यैवमारेभे संदेहं च जयेऽभजत् ॥२५२१॥

वैदग्ध्यदिग्धमनसामयमेक एव कोऽप्यस्ति वञ्चनविधेरुचितः प्रकारः ।
येनात्मना किल विशङ्कितशक्तयस्ते मुग्धेऽपि वैरिणि विचारहतोद्यमाः स्युः ॥२५२२॥

प्रवादमात्रसाराद्यस्त्रसेत्परिकरादरेः । स्वयैव तस्य विघ्न्येत सिद्धिश्चिन्तान्धया धिया ॥२५२३॥

विध्येदाशु शिलीमुखैः प्रवितरेत्पत्रैरवस्कन्दनं वध्नीयात्तदिदं गुणैः परिकरैर्मिथ्या प्रसिद्धैरिति ।
स्याच्चेदम्बुरुहं द्विपस्य भयकृच्चिन्तासहैः साहसं प्रत्यूहेत ततो निजैरपघनैरप्येतदुन्मूलने ॥२५२४॥

लोठनाद्यैर्हि कर्णाहान्निस्तीर्णैस्तैः कथंचन । प्राप्तेऽलंकारचक्रेऽग्रे राज्यमज्ञायि निर्जितम् ॥२५२५॥

मिथ्यैव ग्रथिता कन्था स्वयूथ्यैः कथमन्यथा । तस्मिन्नमन्दमास्कन्दं धावन्द्वाराधिपो ददौ ॥२५२६॥

प्रत्यवस्थित्यसामर्थ्यात्ततः कोट्टं व्यसर्जयत् । स राजवीजिनस्तांश्च परेद्युः स्वयमन्वगात् ॥२५२७॥

कोट्टाद्रिः सलिलस्यान्तः कृशोऽधः पृष्ठदैर्घ्यभाक् । स तैर्वैसारिणग्रासव्यग्रो वक इवैक्ष्यत ॥२५२८॥

निःसामर्थ्यं तद्विलोक्य गजागारमिवागजम् । तत्यजुर्विजयाशंसां भयं चोदवन्हृदि ॥२५२९॥

ततः शरैर्दृषद्वर्षैर्वाध्याश्चेतो विरोधिनः । अर्णसो रक्षणमितो रक्ष्या यन्त्रोपला इतः ॥२५३०॥

इत्थं स तैरभिदधद्धैर्यादादाय डामरः । मेने स्वगुप्तिमात्रार्थी न युद्धे बद्धनिश्चयः ॥युग्मम्॥२५३१॥

ततः कन्दलितास्कन्दे तिलग्रामे द्विपद्बले । प्रतीकाराक्षमे दस्यौ ते चिन्ताक्षामतां दधुः ॥२५३२॥

विस्रवाविस्रुतप्रज्ञासौष्ठवो लोठनः पुनः । डामरं कृत्यसंपूर्णमगूढं तमगर्हत ॥२५३३॥

भोजस्तूद्विजितं यन्नो द्रोहो रोहेदिति ब्रुवन् । रुद्ध्वा पितृव्यं तं व्याजस्तुत्या नित्यमुपाचरत्॥२५३४॥

॥ २५२० ॥ इस प्रकार शत्रुकी सामर्थ्यको भली-भाँति समझे विना राजाने जो मिथ्या कार्यवाही की, उससे विजय प्राप्तिमें सन्देह होने लगा ॥ २५२१ ॥ चातुर्यसे जिन लोगोंका मन भर जाता है, उनके ठगे जानेका यह एक उचित प्रकार देखनेमें आता है कि वे अपनी शक्तिपर सशंक होकर मूर्ख वैरीके प्रति किये जानेवाले विचार-के समय हतोत्साह हो जाते हैं ॥ २५२२ ॥ जो व्यक्ति शत्रुके प्रवल परिकरोंकी अफवाहमात्र सुनकर भयभीत हो जाता है तो उसकी बुद्धि अन्धी हो जाती है और कार्यसिद्धि उसीकी करतूतसे नष्ट हो जाती है ॥ २५२३ ॥ यदि कमल हाथीको डरा सके तो उसे भौंरे वींध दें और उसके वड़े वड़े पत्ते उसे धर दबोचें । उसके चिन्ता-सहनशील और मिथ्या प्रसिद्ध परिकरोंके साथ साहस भी जवाव दे जाय और वरसातके पहले वे उच्छिन्न हो जायँ ॥ २५२४ ॥ यदि किसी तरह लोठन आदि कर्णाहके दुर्गसे निकल पड़े और अलंकारचक्र उनका अग्रणी वन जाय तो राज्यको जीतकर अपने कब्जेमें आया ही समझना चाहिए ॥ २५२५ ॥ अपने यूथके लोगोंने ही ऐसी मिथ्या कल्पनायें कर करके तथा द्वाराधीश उदयने व्यर्थकी दौड़-धूप करके शत्रुको आक्रमणका अवसर प्रदान किया ॥ २५२६ ॥ जव राजाके सैनिकोंको छावनीमें पड़े रहना असह्य हो गया, तव उन्होंने किलेको छोड़ देनेका विचार किया । दूसरे दिन द्वाराधीश उदय स्वयं उन राजकीय योद्धाओंके पास गया ॥ २५२७ ॥ उस दुर्गके पर्वतका अग्रभाग पतला होकर पानीके भीतर घुसा हुआ था और पृष्ठभाग विस्तृत था । अतएव वह राज-कीय सेनाको निगलनेके लिए उद्यत वगुले जैसा दीख रहा था ॥ २५२८ ॥ गजविहीन गजागारके समान भीषण उस पर्वत तथा उस किलेको देखकर राजकीय योद्धाओंने विजयकी आशा छोड़ दी और मन ही मन वहुत डर गये ॥ २५२९ ॥ उसी समय किलेके भीतरवालोंने वाणों तथा पत्थरोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । जिससे राजकीय सेनामें खलवली मच गयी और लोग अपने प्राण तथा शस्त्रास्त्र वचानेमें व्यस्त हो गये ॥ २५३० ॥ इस प्रकार विरोधियोंको त्रस्त करके उस डामर लोठनने अपनी स्थिति सम्हाल ली । क्योंकि उस समय उसकी नीति आत्म-रक्षाकी थी—आक्रमणकी नहीं ॥ २५३१ ॥ किन्तु तिलग्राममें पड़ी हुई आक्रमणके लिए सन्नद्ध राजाकी विशाल वाहिनी देख और अपनेको उसका प्रतीकार करनेमें असमर्थ पाकर किलेके भीतर वैठे लोठनके दलवाले लोग मारे चिन्ताके दुर्वल हुए जा रहे थे ॥ २५३२ ॥ उनको इस प्रकार उदास देखकर असाधारण वुद्धिमान् लोठन

गोप्तृभेदान्तरद्वैधमुखच्छिद्रानुसारिणः । धन्यादीन्वीक्ष्य विश्वासं कोट्टस्था नोपलेभिरे ॥२५६१॥
निद्राच्छेदार्थमन्योन्यं क्रोशन्तो नास्वपन्निशि । स्वपन्तोऽह्नि तु निःशब्दशून्यं कोट्टमदीदृशन् ॥२५६२॥
निशासु तत्तत्पृतना यामतूर्यरवैरपि । चटकाः कोटरगता मेघशब्दैरिवात्रसन् ॥२५६३॥
अहर्निशं भ्रमन्तीभिर्नौभिः संरुद्धपाथसः । तान्समभ्रमयन्सर्वप्रकारं राजसैनिकाः ॥२५६४॥
ते रुद्धपाथसस्तर्षशोषं कंचिद्विषेहिरे । निःसंचारास्तु संक्षीणे भोक्तव्ये क्लैब्यमाययुः ॥२५६५॥
बुभुक्षवः क्ष्मापयोग्यान्भोगान्भाग्योर्जितांस्ततः । कदन्नैर्नृपदायादा अशनाशंसनं व्यधुः ॥२५६६॥
दूरे स्पर्धास्तु निस्तीर्णाः क्षुधितास्तेऽधिकं व्यधुः । भूभर्तुर्भोगभागिभ्यो भृत्येभ्योऽप्यन्वहं स्पृहाम् ॥२५६७॥
गृहेष्वस्मासु पर्याप्तमकार्यमिति भाषिणम् । भोजं व्यधान्मध्यभृङ्गे दुर्गस्याथ स तं पृथक् ॥२५६८॥
एकस्य वार्द्धकाद्वेश्यापुत्रत्वादपरस्य च । जानन्नयोग्यतां मेने द्वैराज्यार्हं तमेव सः ॥२५६९॥
विनामुं चानयोः सम्यक्संरम्भेरन्न वैरिणः । इति मिथ्या प्रथां निन्ये तद्विनिःसरणं बहिः ॥२५७०॥
कान्ताऽलंकारचक्रस्य कांक्षन्ती क्षयमित्वरी । चक्षूरागात्षष्ठचन्द्रे सान्द्रस्नेहार्द्रतां गता ॥२५७१॥
बहिरभ्यन्तरं भेदं नयन्ती मन्त्रमायया । साल्हणेः कर्णसरणिं सर्वमन्विष्यतोऽन्वहम् ॥युग्मम्॥२५७२॥
रागान्धान्तान्वितधियः प्रतिभेदभयेन सः । तस्य प्रकाशयन्नेनां गन्तुं तु प्रार्थनां व्यधात् ॥२५७३॥
क्षमावाञ्शिक्षितोपेक्षो मैत्रीस्थैर्ये मुदं भजन् । नागः सागस्यपि दधे बोधिसत्त्व इव क्रुधम् ॥२५७४॥
प्रियामन्युः सरागेण मृत्युहेतुर्महानपि । हृदि विस्मर्यते पृष्ठे शरभेणेव वारणः ॥२५७५॥

गये जिनसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि भयके कारण किलेने अपनी आँखें मूँद ली हैं ॥ २५६० ॥ दोनों ही पक्षके लोग एक दूसरेके छिद्रान्वेषणमें संलग्न थे। किन्तु धन्य आदिकी स्थिति देखकर किलेके भीतरवालोंको अपनी विजयपर विश्वास नहीं हो रहा था ॥ २५६१ ॥ रात्रिके समय एक दूसरेकी निद्रा भंग करनेके लिए लोग रात भर चिल्लाया करते थे और दिनमें लोगोंके सोये रहनेके कारण सारा किला सुनसान दिखायी देता था ॥ २५६२ ॥ रात्रिकालमें उभयपक्षके सैनिक पहर-पहरपर यामतूर्यके बजते रहनेपर भी इसी प्रकार भयभीत रहा करते थे, जैसे घोंसलोंमें बैठे हुये गौरैया पक्षी मेघका गर्जन सुनकर डर जाते हैं ॥ २५६३ ॥ रात-दिन नौकाओंके दौड़ते रहनेके कारण नदीका जल अवरुद्ध हो गया था और राजाके सैनिक शत्रुसैनिकोंको सब तरहसे चक्करमें डाले रहते थे ॥ २५६४ ॥ प्यासे शत्रुसैनिकोंने कुछ समय तक तो प्यासका कष्ट सहा, किन्तु उसके बाद जब सञ्चार अवरुद्ध हो जानेके कारण भोजनमें भी बाधा उपस्थित हुई, तब वे अधीर हो उठे ॥२५६५॥ राजा जयसिंहके जो भाग्यवान कुटुम्बी राजसी भोग भोगनेके अभ्यस्त थे, वे इस समय तुच्छ अन्न खाकर सन्तुष्ट थे ॥ २५६६ ॥ उनकी लालसायें समाप्त हो गयीं। जब उन्हें भूख लगती थी, तब वे अपने तथा नौकरोंके लिए नयी-नयी खोज करते थे ॥२५६७॥ उसी समय भोजने कहा—'यदि हम सब यहीं एकत्र हो जाते हैं तो बहुत बड़ा अनर्थ हो सकता है'। उसकी यह बात सुनकर अलंकारचक्रने उसे किलेके मध्यभागसे हटा दिया ॥२५६८॥ उनमेंसे एक (लोठन) बहुत वृद्ध और दूसरा (विग्रहराज) वेश्यापुत्र था। अतएव लोगोंने द्वैराज्यका भार सम्हालनेमें समर्थ भोजको ही समझा ॥ २५६९ ॥ अलंकारचक्र यह भलीभाँति जानता था कि वैरी लोग भोजके बिना पूरी तरह प्रयत्न न कर सकेंगे। ऐसा सोचकर किलेके बाहर उसने यह झूठी अफवाह फैला दी कि भोज भाग गया ॥ २५७० ॥ सल्हणका पुत्र भोज जो चारों ओर पता लगाया करता था, उसने सुना कि अलंकारचक्रकी पत्नी षष्ठचन्द्रका सौन्दर्य देखकर अत्यधिक प्रेम करने लगी है और अलंकारचक्रको समाप्त कर देनेकी इच्छासे उसने उसके गुप्तभेद बाहरी लोगोंको बता दिया है ॥ २५७१ ॥ २५७२ ॥ तदनन्तर भोजने अलंकारचक्रको उसकी प्रेमान्ध पत्नी द्वारा भेद खोलनेका सच हाल बता दिया और जानेकी अनुमति माँगी ॥ २५७३ ॥ यह सुनकर क्षमाशील, जान-बूझ करके भी किसीकी त्रुटिपर ध्यान न देनेवाले और मैत्रीको स्थिर करनेमें आनन्दका अनुभव करनेवाले अलंकारचक्रको उसी तरह इस अपराधिनीपर भी क्रोध नहीं आया, जैसे बुद्ध भगवानको कभी किसीपर क्रोध नहीं आया था ॥ २५७४ ॥ अपनी प्रियतमाका प्रेमी प्रेमवश मृत्युके महान् हेतुको भी उसी

अथ प्रस्थापितो भोजः सुप्तारिशिविरान्तरात् । यातप्रायोऽप्यलंकारतनयेनानुयायिना ॥२५७६॥
द्रोहेच्छया भयाद्वापि ध्वस्तसत्त्वेन सत्वरम् ।
व्यावृत्यारोपितो भूयः कोट्टस्थस्यान्तिकं पितुः ॥ युग्मम् ॥२५७७॥
निर्भर्त्स्य पुत्रं गन्तासि श्वो निशीत्यभिधाय तम् । छन्नमस्थापयत्सोऽह्नि यात इत्यखिलान्वदन् ॥२५७८॥
प्रोचल्यानिश्चयादेकः प्रायाद्द्वौ श्वः प्रयास्यतः । बोधितैरथ धन्याद्यैरजागार्यखिलैर्निशि ॥२५७९॥
प्रस्थास्नुः स निशीथेऽथ कोट्टाट्टालादृयलोकयत् । जाग्रतः कटके सर्वान्परितो दीपितानले ॥२५८०॥
प्रकाश्य वह्निना दुर्गं प्रतोलीनिर्गतो यथा । पिपीलकोप्यलभ्यत्वं नोन्मुखानां द्विषां व्रजेत् ॥२५८१॥
ज्वालाप्रकाशचाञ्चल्याद्विलोला इव रक्षिताः । न्यषेधन्मूर्धकम्पेन साल्हणिं साहसाद्गृहाः ॥२५८२॥
तद्गन्तुमक्षमं क्षिप्रं क्षपाप्राह्णे स डामरः । अधोवातीतरच्छक्षमालिङ्गितवटाकरम् ॥२५८३॥
क्षेमराजाभिधानेन डामरेशेन सोऽन्वितः । शिलां वितर्दिकातुल्यामध्यास्त श्वभ्रमध्यगाम् ॥२५८४॥
आरुह्यासनमात्रे तां पर्याप्तां पातभीतितः । निर्निद्रौ पञ्चरात्रीस्तावत्यवाहयतामुभौ ॥२५८५॥
निर्वर्तितप्राणयात्रौ करस्थैः सक्तुपिण्डकैः । तत एव व्यजहतां विष्ठां नीडादिवाण्डजौ ॥२५८६॥
अव्यक्तव्याकृती चित्राद्यत्रिताविव तौ स्थितौ । वीक्ष्यारिकटके लक्ष्मीं पृष्ठाद्विस्मयमीयतुः ॥२५८७॥
तयोराश्रीयत स्फीतशीतविस्मृतिकारिणा । जयसिंहप्रतापाग्निसंतापेनोपकारिता ॥२५८८॥
षष्ठेऽह्नि तत्र निःशेषीभूतभोक्तव्ययोरथ । क्षतक्षार इवारम्भि तुषारं वर्षितुं घनैः ॥२५८९॥
अगृह्यतोचिते दन्तवीणावाद्योद्यमे तथा । शीतासादितसादेन पाणिपादेन सुप्तता ॥२५९०॥

तरह भूल जाता है, जैसे अपने पीछे शरभ (मृगविशेष) पर हाथी ध्यान नहीं देता ॥ २५७५ ॥ इसके बाद जब भोज सोये हुए शत्रुओंके शिविरसे प्रायः बाहर हो गया, तब उसके पीछे-पीछे आनेवाले अलंकारचक्रके पुत्र, जिसका साहस द्रोहेच्छा और भयसे समाप्त हो चुका था, वह भोजको फिर लौटाकर किलेमें विद्यमान अपने पिताके पास ले गया ॥ २५७६ ॥ २५७७ ॥ इस प्रकार उसे लौटा लानेपर अलंकारचक्रने अपने पुत्रको डाँटा और भोजसे कहा कि कल रातको तुम चले जाना । इसके बाद उसने भोजको छिपा दिया और किलेके सब लोगोंसे कहा कि वह चला गया ॥ २५७८ ॥ तदनन्तर धन्य आदिको यह खबर मिली कि भोज निकल भागा और लोठन तथा विग्रहराज कल भागनेवाले हैं । इस बातके अनिश्चित होनेपर भी वे लोग पूरी रात जागते रहे ॥ २५७९ ॥ भोज जब रात्रिके समय जानेकी तैयारी कर रहा था, तब किलेके सर्वोच्च भागपर खड़े होकर देखा कि शत्रु जाग रहे हैं और शिविरके चारों ओर आग जल रही है । उसके प्रकाशमें राजमार्गसे एक चींटा भी शत्रुओंकी आँखोंसे बचकर नहीं जा सकता ॥ २५८० ॥ २५८१ ॥ जिन मकानोंपर शत्रुका अधिकार हो चुका था, वे उस ज्वालाके चञ्चल प्रकाशसे ऐसे हिलते दीखते थे कि मानो साहसपूर्वक अपनी गर्दन हिलाकर भोजका भागनेसे रोक रहे हों ॥ २५८२ ॥ इस प्रकार जब रात्रिमें उसका भागना असंभव हो गया, तब बड़े तड़के डामरने भोजकी कमरमें रस्सी बाँधकर नीचे उतार दिया ॥ २५८३ ॥ डामरेश क्षेमराज भी उसके साथ था । ये दोनों एक खड्डके बीच चौकी जैसी शिलापर उतरे ॥ २५८४ ॥ केवल बैठने भरके लिए पर्याप्त उस शिलाखण्डपर गिर जानेके भयसे उन दोनोंने पाँच दिन और पाँच रात जागकर बितायी ॥ २५८५ ॥ सत्तूका पिण्ड खाकर अपनी भूख मिटायी और जैसे पक्षी अपने घोंसलेके बाहर मल त्याग करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने पुरीषोत्सर्ग किया ॥ २५८६ ॥ अपनी आकृतिको छिपाये हुए वे दोनों चित्रलिखितकी भाँति बैठे थे । अपनी पीठके पीछे शत्रुके शिविरकी अपूर्व शोभा देखकर उन्हें बहुत विस्मय हुआ ॥ २५८७ ॥ उन दोनोंकी प्रबल ठंढकको भुला देनेके कार्यमें राजा जयसिंहकी प्रतापाग्निने बड़ी सहायता पहुँचायी ॥ २५८८ ॥ छठें दिन उनकी भोजनसामग्री चुक गयी और जैसे घावपर नमक छिड़क दिया जाय, उसी प्रकार एकाएक बादल उमड़ आये और जोरोंसे वर्फ गिरने लगी ॥ २५८९ ॥ ठंढकके मारे उनके दाँतोंकी वीणा बजने लगी और अत्यधिक

तावच्चिन्तयतामद्य शुच्छीताभिहतौ ध्रुवम् । पतिष्यावोऽरिकटके पाशबद्धाविवाण्डजौ ॥२५९१॥
कं पूत्कुर्वः कस्य वावां विदितो यो विनिर्हरेत् । ततः पङ्कान्तरामग्नौ यूथपः कलभाविव ॥२५९२॥
विपमस्थावथेत्थं तौ नक्तमभ्यर्थ्य डामरः । आरोप्य रज्ज्वावसथे शून्ये स्थापयति स्म सः ॥२५९३॥
कृतशीतप्रतीकारौ पलालानलसेवनैः । दुःखं व्यस्मरतां तत्र निद्रया चिरलब्धया ॥२५९४॥
ततोऽप्यस्याधिका व्यापद्भेजे लोठनविग्रहौ । अचक्षुष्यौ जनात्स्निग्धां गिरमप्यापतुर्न यौ ॥२५९५॥
यवकोद्रवपूपादि तयोः सतुपमश्नतोः । गात्रैर्वस्त्रैश्च वैवर्ण्यं शुद्धिवन्ध्यतया दधे ॥२५९६॥
धन्योलंकारचक्रस्य क्षीणभोज्यस्य सर्वतः । स्वीचकारान्नदानेन तुल्यौ होलयशस्करौ ॥२५९७॥
ततः स दूतैर्विक्रेतुमङ्गीचक्रे नृपद्विपः । बुभुक्षाक्षुभितो भृत्यभेदभीतश्च डामरः ॥२५९८॥
दुस्तरव्यापदुद्रेकद्रुतसत्त्वतयाऽत्यजत् । पापोपलिप्तचित्तमधर्माकीर्तिसाध्वसम् ॥२५९९॥
भूपतेर्विद्विपच्छेदस्थापनात्स्वस्य रक्षणम् । ख्यातिशुद्ध्यै चिकीर्षुश्च कुशकाशावलम्बनम् ॥२६००॥
भृत्यस्योदयनाख्यस्य धिया प्रच्छादितं तथा । ररक्ष साल्हणिं भोजं द्वौ तु दातुं स तत्वरे ॥२६०१॥
तं विना च तयोर्भूपाद्दण्डं जानन्नसांप्रतम् । अवाधं स्वस्य चाशेपकृत्यं युक्तममन्यत ॥२६०२॥
भोज्याभावकृतां तस्य व्यापदं तच्च मन्त्रितम् । तदा नाज्ञासिपुर्धन्यादयः संधिं विधित्सवः ॥२६०३॥
मिपाच्चिचलिपा तेपां कस्माच्चिदभवत्ततः । किं पुनस्तेन दायादद्वये दातुं प्रतिश्रुते ॥२६०४॥
देयविश्राणनानीकोत्थानादिपणसिद्धये । भ्रातृव्यमनयद्धन्यः कल्याणमवकल्यताम् ॥२६०५॥

प्रवन्धं निर्वध्नन्नरिमुपचरञ्छादितरुपं महार्हिं संगृह्णन्नयकुटिलचेष्टं व्यवहरन् ।
स भूमिः सिद्धीनां दधदुचितकर्तव्यपरतां भवेद्यो निर्व्यूढावपि सुदृढसंरम्भरभसः ॥२६०६॥

शीतके कारण हाथ-पैर सुन्न हो गये ॥ २५९० ॥ तब उन्होंने सोचा कि भूख और जाड़ेसे त्रस्त हम दोनों आज जालमें फँसे पक्षीकी भाँति, अवश्य कैद होकर शत्रुके शिविरमें पहुँच जायँगे ॥ २५९१ ॥ वहाँ हम किसके आगे रोयेंगे और हमें पहचाननेवाला भी कौन व्यक्ति मिलेगा, जो दलदलमें फँसे दो हाथीके बच्चोंकी तरह हम दोनोंको उबारेगा ॥ २५९२ ॥ जब वे इस भीषण संकटमें पड़े थे, तब रातके समय डामरने उन दोनोंकी प्रार्थना करके फिर उसी रस्सीके सहारे वहाँसे हटाकर एकान्त स्थानमें पहुँचा दिया ॥ २५९३ ॥ वहाँ पुआलकी आँचमें उन्होंने ठंढक मिटायी और कई दिनों बाद भरपूर सोकर अपना सारा दुःख भुलाया ॥ २५९४ ॥ उन दोनोंसे अधिक कष्ट तो लोठन और विग्रहराजको भोगना पड़ा। क्योंकि वे जनताकी आँखोंसे बचते हुए भाग रहे थे, अतएव उन्हें किसीकी स्निग्ध वाणी भी सुननेको नहीं मिलती थी ॥ २५९५ ॥ छिलकेदार जौ और कोदोंके पुए उन्हें खाने पड़ते थे। नहाने-धोनेकी सुविधा न मिलनेके कारण उनका शरीर और वस्त्र बहुत गन्दा हो गया था ॥ २५९६ ॥ अलंकारचक्रका सारा रसद चुक गया था। सो होल और यशस्कर इन दोनों राजद्रोहियोंको सौंप देनेके बदले धन्यने उसे भोज्यसामग्री देना स्वीकार कर लिया ॥ २५९७ ॥ इस प्रकार भूखसे दुखी और भृत्योंके फूट जानेके भयसे डामर अलंकारचक्र राजद्वेपियोंको दूतोंके द्वारा वेचनेको तैयार हो गया ॥ २५९८ ॥ दुस्तर विपत्तिके आधिक्यके कारण साहस छूट जाने तथा मनमें पापके घर कर लेनेसे उसने अधर्म तथा अपयशके भयको भी त्याग दिया ॥ २५९९ ॥ राजाके शत्रुओंको पकड़ाकर आत्मरक्षा एवं अपनी ख्यातिको शुद्ध करनेके लिए उसने कुश और काशका अवलम्बन कर लिया ॥ २६०० ॥ अपने सेवक उदयनकी सलाहपर वह सल्हणके पुत्र भोज और क्षेमराज इन दोनोंको बचाकर बाकी सब लोगोंको दे देनेके लिए जल्दी करने लगा ॥ २६०१ ॥ इन दोनोंको राजासे दण्ड दिलाना अयुक्तिसंगत समझकर डामर अलंकारचक्रने बाकी सब कार्य उचित समझा ॥ २६०२ ॥ भोजनसामग्रियोंके अभावमें डामरकी विपत्ति देखकर धन्य आदिने उसके समक्ष जो प्रस्ताव रक्खा था, उसकी सिद्धिपर उन्हें विश्वास नहीं था ॥ २६०३ ॥ फिर किसी कारणवश उनकी बुद्धि डगमगा गयी। क्योंकि डामरने अपने दो ही दायादोंको सौंपनेका वादा किया

दुःखैर्दीर्घप्रवासोत्थैरपसारितसौष्ठवाः । तदा संरम्भशैथिल्यं भूभृद्भृत्याः प्रपेदिरे ॥२६०७॥
स सत्यं सचिवोऽप्राप्यः संग्रहीतुं प्रगल्भते । कथाशरीरमिव यो निर्व्यूढो कार्यमाकुलम् ॥२६०८॥
संधिं निबद्धं विज्ञाय सैनिकाः स्वगृहोन्मुखाः । उपेक्ष्य स्वामिदाक्षिण्यं क्षणादेव प्रतस्थिरे ॥२६०९॥
तद्विक्रीतमवाप्यान्नं लवन्यः कार्यमन्थरः । धन्याद्याः स्वल्पसैन्यत्वादासन्कृच्छ्रगतासवः ॥२६१०॥
प्रतोलीकीलितदृशः प्रार्थितागमनाशया । तदहः सोऽभियोक्तॄंस्तानददत्तावतापयत् ॥२६११॥
रथाङ्गाक्रन्दिनी रात्रिस्तेषां कृच्छ्रेण साऽगमत् । विना जीवितसंन्यासमन्यत्कार्यमपश्यताम् ॥२६१२॥
प्रयत्नसंभृते कृत्ये नष्टे मन्दतया धियः । अस्मत्संभावनादूरीकृतवाक्यादरं प्रभुम् ॥२६१३॥
नष्टानुशोचनव्याजात्तत्तद्युक्त्युपहासिनः । सदयं नो ध्रुवं दुःस्थीकरिष्यन्त्यन्यमन्त्रिणः ॥२६१४॥
सद्यो यात्रातारतम्यात्ताम्यन्तो नत्रपार्पणम् । कार्यनिष्ठामपश्यन्तः कुर्युर्वैत्यपरेऽब्रुवन् ॥२६१५॥
मायामेतां विहितवांस्तैः संमन्त्र्य नृपाहितैः । सिद्धसाध्योधुना दस्युर्हसन्नस्मान्ध्रुवं स्थितः ॥२६१६॥

अल्पेतरांस्तु संकल्पानेवं तेषां वितन्वताम् ।
दत्तानन्ततनुज्यानिः प्रभाता सा विभावरी ॥ कुलकम् ॥२६१७॥

प्राह्णेऽथ राजस्थानीयोऽलंकारः साहसोत्सुकः । डामरं कोट्टमारुह्य निन्ये नयभयैर्वशम् । २६१८॥
एकाहं गमने सोढविलम्बस्तत्र वासरे । लोठनं क्षीणदाक्षिण्यः स गच्छेत्यब्रवीत्स्फुटम् ॥२६१९॥

था ॥ २६०४ ॥ तदनन्तर देय वस्तुएँ देने तथा सेनाभंग आदि कार्य सम्पन्न करानेके लिए धन्यने अपने भतीजे कल्याणको नियुक्त कर दिया ॥ २६०५ ॥ अपना क्रोध छिपाये हुए शत्रुको सुप्रबन्धके द्वारा अपने अनुकूल करके उससे काम निकालना और कुटिल चेष्टावाले महान् सर्पको पकड़ना ये दोनों कार्य एक जैसे हैं। जो मनुष्य उचित कर्तव्यपरायणता दिखाता हुआ अनेक कठिनाइयोंके रहते हुए भी दृढ़ताके साथ अपना काम करता है, वह समस्त सिद्धियोंका मूल आधार माना जाता है ॥ २६०६ ॥ उधर दीर्घकालीन प्रवासके कारण दुःखी सैनिकोंने सारा सौहार्द त्यागकर अपने-अपने काममें शिथिलता लानी आरम्भ कर दी ॥ २६०७ ॥ संसारमें ऐसा सचिव अप्राप्य है, जो संकटके समय भी तत्परतापूर्वक अपना कार्य सम्पन्न करते हुए जनसाधारणके लिए कहानी बन जाय ॥ २६०८ ॥ अतएव जब सैनिकोंको पता लगा कि सन्धि हो गयी है, तब अपने स्वामीकी उदारतासे भी मुँह मोड़कर वे क्षण ही भरमें अपने-अपने घरोंकी ओर चल पड़े ॥ २६०९ ॥ उधर राजद्रोहियोंको बेचकर लवन्यने जब अन्न प्राप्त कर लिया, तब उसके कार्यकी गति धीमी पड़ गयी। इधर बहुत कम सेना रह जानेके कारण धन्य आदि अधिकारियोंके प्राण संकटमें पड़ गये ॥ २६१० ॥ इच्छित अभियुक्तोंके आगमनकी आशासे राजमार्गपर जिनकी दृष्टि लगी हुई थी, उसी दिन उन राजद्रोहियोंको सन्तप्त करते हुए डामरने सौंप दिया ॥ २६११ ॥ बराबर रथके पहियोंकी घड़घड़ाहट होती रहनेके कारण उसकी वह रात्रि बड़ी कठिनाईसे बीती। क्योंकि रातभर जीवनसे संन्यास ले लेनेके सिवाय उसे और कोई कार्य होता दिखायी नहीं पड़ा ॥ २६१२ ॥ 'मन्दबुद्धिताके कारण प्रयत्नपूर्वक किया हुआ काम बिगड़ जानेपर केवल संभावनाके आधारपर स्वामीकी स्वीकृति एवं मेरी बातका आदरसे सुनना कोई साधारण घटना नहीं थी' ॥ २६१३ ॥ इस प्रकार शिविरमें रहनेवाले लोग नाना प्रकारके वार्तालाप कर रहे थे। उनमेंसे एकने कहा—'नष्ट कार्यके लिये शोक करनेके बहाने हमलोगोंने विविध युक्तियोंसे जो उपहास किये हैं, उन्हें क्षमा न करते हुए अन्य मंत्री हमको अवश्य दुःख देंगे' ॥ २६१४ ॥ दूसरे लोगोंने कहा कि 'यात्राके लिए हमलोगोंने लज्जा त्यागकर जो हड़बड़ी मचायी है और कार्यनिष्ठाके प्रति जो उदासीनता प्रदर्शित की है, उसका फल हमें अवश्य भोगना पड़ेगा' ॥ २६१५ ॥ अन्य लोग बोले—'राजाके शत्रुओंने परस्पर मन्त्रणा करके यह माया रची है। अपना कार्य सिद्ध करके वह दस्यु अब हमारी मूर्खतापर अवश्य हँस रहा होगा' ॥ २६१६ ॥ इस प्रकार तरह-तरहके संकल्प-विकल्प करते-करते शय्यापर पीठ लगाये बिना ही रात बीत गयी और सबेरा हो गया ॥ २६१७ ॥ प्रातःकालके समय राजाका अनुचर अलंकारचक्र साहसपूर्वक किलेपर चढ़ गया और

उपन्यस्यंस्ततस्तस्य म्लानिप्रक्षालनक्षमम् । मानिनः केऽपि कर्तव्यं कीर्तिव्ययनिवर्हणम् ॥२६२०॥

कालः सोऽयं सकलजनतालोचनध्वान्तदायी नित्यालोकप्रकटनपटुः किंतु सत्क्षत्रियाणाम् ।
अभ्रश्यामाद्भुतमसिलता स्वर्वधूसंगताऽपि व्यक्तं सक्ति दिशति रभसान्मण्डलेनोष्णभानोः ॥२६२१॥

संप्राप्नुवन्ति ननु मण्डलमेकमेव क्ष्मापा जये समरसीम्नि वपुस्तु हित्वा ।
चण्डांशुमण्डलमथाभिमतानि कामं प्रेमार्द्रनिर्जरवधूकुचमण्डलानि ॥२६२२॥

नास्मिन्संततवेष्टनोल्वणतलैस्तल्पैरुदेति व्यथा ग्रन्थिस्यश्वलितैर्न चालमसुभिर्मर्मव्यथा जन्यते ।
क्रन्दद्बन्धुजनार्तनादचकितस्वान्तं न वा स्थीयते नन्वेतन्मरणं सुखस्य सुभगा काप्येव संप्राप्तिभूः ॥२६२३॥

मार्गैः खड्गलतावितानगहनैर्यातः पिता ते दिवं
भ्रातुस्यामसिधेनुकण्टकवने भ्रान्त्वार्जिता सद्गतिः ।
वंशक्षुण्णमिमं निषेव्य रभसादध्वानमुन्नद्धया
वृत्त्या व्योम्नि विशार्कमण्डलमिह स्वान्तं च तेजस्विनाम् ॥२६२४॥

साम्राज्यं विधिनोपनीतमसकृत्क्लैब्येन यद्धारितं तत्रापि प्रशमोचिते वयसि यत्संचेष्टितं बालवत् ।
प्रायश्चित्तममुष्य लब्धमधुना तद्वेवसापादितं मा भूद्राज्यमिवैतदप्यसुलभं कर्तव्यमूकस्य ते ॥२६२५॥

राज्यं प्राप्तमपि प्रनष्टमसमोच्छिष्टाशनैर्यापितः
कालः सर्वजनक्षयस्य विषये याता स्थितिर्हंतुताम् ।
इत्यासीत्किमिवोचितं प्रभवतो भिक्षाचरक्ष्मापते-
र्निर्व्यूढं तु तदस्य देहविरतौ येनैष सर्वोन्नतः ॥२६२६॥

उसे अपने कब्जेमें कर लिया ॥ २६१८ ॥ केवल एक दिनकी अवधि देकर दूसरे दिन निष्ठुरताके साथ उसने लोठनसे साफ-साफ कह दिया कि 'अब आप यहाँसे जाइए' ॥ २६१९ ॥ ग्लानिको धोनेमें समर्थ उसके वचन सुनकर लोठन कुछ सोचने लगा। क्योंकि कुछ स्वाभिमानी ऐसे होते हैं कि जो अपनी कीर्तिरूपिणी पूँजीपर आघात लगनेके समय तलमला उठते हैं ॥ २६२० ॥ जो विकराल काल सब लोगोंके नयनोंके आगे अन्धकार उपस्थित कर देता है, वही काल सच्चे क्षत्रियोंके समक्ष नित्य एक निपुण और प्रकाशदायक सहारेके रूपमें उपस्थित होता है। उसी तरह आकाशके समान श्याम तलवार देवांगनाओंको अपने साथ लेकर उस क्षत्रियको सूर्यमण्डलमें पहुँचा देती है ॥ २६२१ ॥ समरभूमिमें विजय प्राप्त करनेवाले राजे केवल एक मण्डल (राज्य) प्राप्त करते हैं। किन्तु जो वहाँपर प्राण त्याग देते हैं, वे सूर्यमण्डलमें जा पहुँचते हैं और वहाँ उन्हें उनकी मन-चाही एवं प्रेमरससे सराबोर देवांगनाओंके अगणित कुचमण्डल प्राप्त हो जाते हैं ॥ २६२२ ॥ इस रणभूमिरूपिणी शय्यापर लोटते समय इसकी कठोर जमीनसे कुछ कष्ट नहीं होता। जब शरीरकी ग्रन्थियोंसे प्राण निकलने लगते हैं, तब कुछ भी मार्मिक व्यथा नहीं होती। मरते समय बन्धु-बान्धवोंके करुणक्रन्दन सुनकर हृदयको बेचैनीका अनुभव नहीं करना पड़ता। यह मरण तो सुखप्राप्तिकी किसी विचित्र ही भूमिकाके रूपमें उपस्थित होता है ॥२६२३॥ तुम्हारे पिता खड्गलतारूपी वितानके घने वनसे होकर स्वर्ग गये हैं और तुम्हारे भाईने खंजरके कँटीले वनमें भ्रमण करके सद्गति पायी है। अतएव अपनी कुलपरम्परासे निर्धारित मार्गपर चलकर पूर्ण उत्साहके साथ उदार वृत्तिका अवलम्बन करके आकाशके सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट हो जाओ। ऐसा करनेसे तुम्हें तेजस्वियोंके मनमें बसनेका सुअवसर प्राप्त हो जायगा ॥ २६२४ ॥ तुमने विधाताके द्वारा प्रदत्त राज्यको कायरताके साथ कई बार प्राप्त किया है और शान्तिसेवनोचित अवस्थामें बालकोंके समान अनेक खेल खेले हैं। विधिके विधानसे अब तुम्हें उसके प्रायश्चित्तका अवसर प्राप्त हुआ है। ऐसा न हो कि राज्यके ही समान यह सुयोग भी तुम्हारे जैसे कर्तव्यमूढ़के हाथसे निकल जाय ॥ २६२५ ॥ तुमने प्राप्त राज्यको भी गँवा दिया और असमान जनोंका जूँठन चाटते हुए समय व्यतीत किया। इसी कारण तुम ऐसी स्थितिमें जा पहुँचे हो कि जहाँ सर्वसंहार मुँह बाये खड़ा

स तथोत्तेजितोऽप्योजो नाददे तेजसोज्झितः । न ज्वलत्यग्निसङ्गेऽपि निर्वीर्यं वानरेन्धनम् ॥२६२७॥
शान्ताहंतस्तु संवृत्तनिद्राभङ्ग इवार्भकः । ऐच्छद्वृद्धयोद्वेगो रोदितुं प्रसृताधरम् ॥२६२८॥
डामरेणार्पितं नेतुं प्रवृत्तास्तं नृपाश्रिताः । तादृशं वीक्ष्य कारुण्याद्धैर्याधानार्थमभ्यधुः ॥२६२९॥
मा विषीद न दैवस्य दयाचन्द्रोदयोज्ज्वले । हृदि प्ररोहति स्वैरं विकारतिमिरान्धता ॥२६३०॥
स सौजन्यसुधासिन्धुः स स्थिरत्वसुराचलः । स प्रपन्नार्तिसंतापच्छेदचन्दनपादपः ॥२६३१॥
पुण्यां शुद्धां च संलक्ष्य शरदीव द्युवाहिनीम् । मूर्ति तस्यो वणं चेतः समाधास्यत एव ते ॥२६३२॥
निष्कलङ्कैर्वंशपूर्वैर्निर्विशेषं सभाजयन् । चारित्रं लाघवसुवो ह्रियस्त्वां सोऽपनेष्यति ॥२६३३॥
अपकर्तृन्विपन्नशत्रून्दयमानः परानपि । क्षमापरीक्षाहेतुत्वात्स वेत्ति ह्युपकारिणः ॥२६३४॥
उक्त्वेति हृष्टस्तैर्लोलस्थूलकूर्चो गृहात्ततः । व्यालम्बकम्बलो गोष्ठाद्वृद्धोक्ष इव निर्ययौ ॥२६३५॥
निर्भूषणं म्लानजीर्णवस्त्रशस्त्रं निरीक्ष्य तम् । युग्याधिरूढमायान्तं धन्यो हीनम्रतां दधे ॥२६३६॥
दीर्घास्पन्देक्षणं रूक्षघनकूर्चांसविग्रहम् । व्यलोकयदथोलूकमिव नष्टं गुहागृहात् ॥२६३७॥
रेजे शैलश्चलद्भिस्तैः शिबिरोद्दीपितानलः । भूपप्रतापस्वर्णस्य कषाश्मत्वमिवागतः ॥२६३८॥
स्कन्धावारे गते वर्षत्तुपारं प्रसभं नभः । अमर्त्यभावे भूभर्तुर्विशां चिच्छेद संशयम् ॥२६३९॥
प्राक्चेत्पतेद्धिमं तावन्म्रियेरन्त्रुटिताः क्षणात् । पिष्टातकान्तर्गर्ताटाः प्रविष्टा इव सैनिकाः ॥२६४०॥
एवमेकान्नविंशेऽब्दे दशम्यां शुक्लफाल्गुने । न्यूनाब्दषष्टिदेशीयो निबद्धो लोठनः पुनः ॥२६४१॥

है। इस विषयमें तुम्हें राजा भिक्षाचरको आदर्श मानना चाहिए कि जिसने अपना तन त्यागनेके बाद सर्वोन्नत पद प्राप्त किया' ॥ २६२६ ॥ इस प्रकार उत्तेजित किये जानेपर भी उस निस्तेज पुरुषने उन वार्तोको हृदयंगम नहीं किया। क्योंकि अग्निमें डालनेपर वानरेन्धन (इन्धनविशेष) नहीं जलता ॥२६२७॥ जब लोठनका अहंभाव शान्त हुआ और चारों ओरसे भयका वेग बढ गया, तब वह अधरोष्ठ फैलाकर उसी प्रकार रोने लगा, जैसे कोई नन्हा बच्चा जागनेपर रोता है ॥ २६२८ ॥ तदनन्तर जब डामरने उसे भी राज्यके अधिकारियोंको सौंप दिया और राजाके भृत्य उसे लेने आये। तब उसकी व्याकुल दशा देखकर दयावश उन लोगोंने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा—॥ २६२९ ॥ 'हे भाई ! विषाद मत करो। विधाताके चन्द्रोदय सदृश उज्ज्वल हृदयमें दयाका प्रादुर्भाव न होकर विकाररूपी अन्धकार ही छाया रहता है ॥ २६३० ॥ साथ ही वह सौजन्यसुधाका सागर है, स्थैर्यका मन्दर पर्वत है और शरणागत जनोंका सन्ताप दूर करनेवाला चन्दन वृक्ष है ॥ २६३१ ॥ पुनीत, शुद्ध और शरत्कालमें गगनगामिनी तारिका जैसी उसकी भव्य मुखाकृति देखकर तुम्हारे चित्तको शान्ति मिलेगी ॥ २६३२ ॥ तुम्हारे निष्कलंक पूर्वजोंका सम्मान करता हुआ वह तुम्हारी इस लाघवतासूचक लज्जाको दूर कर देगा ॥ २६३३ ॥ हमारा राजा जयसिंह अपकारियों एवं विपत्तिग्रस्त शत्रुओंको भी क्षमावृत्तिका परीक्षण करता हुआ अपना उपकारी मान लेता है' ॥ २६३४ ॥ ऐसा कहनेके बाद उन्होंने देखा कि लम्बी और चंचल दाढीवाला तथा कम्बल कन्धेपर रखे एक पुरुष उस घरसे उसी प्रकार निकला, जैसे कोई बूढा बैल गोशालेके बाहर आता हो ॥ २६३५ ॥ तदुपरान्त जिसके शरीरपर कोई आभूषण नहीं था और जो मलिन वस्त्र तथा शस्त्र लिये हुए था, उस पुरुषको पालकीपर बैठकर आते देख धन्यने लज्जासे अपनी गर्दन नीची कर ली ॥ २६३६ ॥ उसकी बड़ी बड़ी किन्तु निःस्पन्द आँखे थीं और उसकी रूखी तथा घनी दाढी कन्धोंपर लहरा रही थी। उसे देखकर ऐसा लगता था कि मानो कोई उल्लू किसी गिरिकन्दरासे निकल आया हो ॥ २६३७ ॥ इस प्रकार चलते हुए लोगोंसे वह पर्वत बड़ा सुन्दर लग रहा था। क्योंकि सेनाशिविरमें आग जलायी जा चुकी थी। अतएव वह पर्वत राजा जयसिंहके प्रतापरूपी सोनेकी कसौटी जैसा दीख रहा था ॥ २६३८ ॥ जब वे सब शिविरमें पहुँच गये, तब आकाशसे हिमवृष्टि होने लगी। तभी लोगोंको यह विश्वास हो गया कि राजा जयसिंह मनुष्य नहा, देवता है ॥ २६३९ ॥ क्योंकि यदि कुछ देर पहले हिमवर्षा हो जाती तो रास्तेमें क्षण ही भरके भीतर वे सभी सैनिक इस

दीर्घप्रवासादायातं सत्कर्तुं कटकं पुनः । निर्ममो हर्म्यमुत्तुङ्गमारुरोह महीपतिः ॥२६४२॥
यथोचितं दानमानसंभाषणविलोकनैः । संतोष्य व्यसृजत्सैन्यं धन्यादीन्प्रैक्षतागतान् ॥२६४३॥
तेषां पुनश्च दोर्द्वन्द्वमूले क्षिप्तकरं भटैः । न्यस्तेनानासिकं वासःप्रान्तेनाच्छादिताननम् ॥२६४४॥
निर्भूषणश्रोत्रपालिप्रविष्टैः श्मश्रुलोमभिः । वलक्षरूक्षैः प्रव्यक्तकार्श्यक्लेशं कपोलयोः ॥२६४५॥
उच्चावचोक्तिमुखरे पौरलोकेऽन्तरान्तरा । व्यापारयतं नेत्रान्तौ दीनस्तिमिततारकौ ॥२६४६॥
कातर्यदैन्यभीक्लान्तिक्षुदलक्ष्मीकटाक्षितम् । वेपमानविनिद्राङ्गं गां शीतेनार्दितामिव ॥२६४७॥
भ्रान्तामिव क्ष्मां पर्यस्तानिवाद्रीन्पतितानिव । विदन्तं च दिवं शोषवहुशुष्करदच्छदम् ॥२६४८॥
दैविको वान्तरायोऽस्तु ध्वान्तं वोग्रं प्रवर्तताम् । राजौकोभ्यर्णतां यातं वाता वा जरयन्त्विदम् ॥२६४९॥
सर्वापकारकृद्राज्ञः स्थास्यामि पुरतः कथम् ।
पदानि संनिरुन्धानं निध्यायेति पदे पदे ॥ अन्तयुगलम् ॥२६५०॥
वहुलोकावृततया स्तोकसंलक्ष्यमैक्षत । प्रतीहारैरथावेद्यमानं लोठनमङ्गने ॥ कुलकम् ॥२६५१॥
भ्रूसंज्ञया वितीर्णाज्ञो राज्ञा तामारुरोह सः । सभां पारिप्लवाम्भोजामिव प्रेक्षकलोचनैः ॥२६५२॥
दृष्टया निर्दिष्टपार्श्वोर्वीस्थितिः पृथ्वीभुजस्ततः । अस्प्राक्षीत्क्षितिनिक्षिप्तजानुर्मूर्ध्नांघ्रिपङ्कजे ॥२६५३॥
हस्ताम्बुजाभ्यामालम्ब्य ललाटतटमानतम् । सम्राट् संभ्रमनम्रस्य तस्योदनमयच्छिरः ॥२६५४॥
रत्नौषधीजुषोः स्पर्शः पाण्योस्तापं स चेतसः । दौर्भाग्यमहरद्देहाच्चास्य श्रीखण्डशीतलः ॥२६५५॥
पुण्यानुभावात्कारुण्यभाजो भूभर्तुरञ्जसा । विस्रम्भसंभावनया स क्षणात्पस्पृशे हृदि ॥२६५६॥

प्रकार वर्फमें डूवकर मर जाते, जैसे पिसानके गढ़ेमें गिर गये हों ॥ २६४० ॥ इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२१९ की फाल्गुन शुक्ल दशमीको साठ वर्षकी अवस्थामें लोठन फिर गिरफ्तार हुआ ॥ २६४१ ॥ दीर्घकालीन प्रवाससे लौटी हुई सेनाका स्वागत करनेके लिए वह निर्मम राजा जयसिंह अपने उत्तुंग प्रासादपर चढ़ा ॥ २६४२ ॥ वहाँ उसने सेनाका दान, मान, सम्भाषण तथा अवलोकनसे यथोचित सत्कार करके विदा किया । तभी उसने धन्य आदिको अपने समक्ष उपस्थित देखा ॥ २६४३ ॥ उनके वीचमें राजाने एक ऐसे व्यक्तिको देखा कि जिसका दोनों हाथ सैनिकगण पकड़े थे, जिसने नासिका तक ऊँचा वस्त्र पहन रक्खा था और उसी वस्त्रके एक छोरसे अपना मुँह ढाँक लिया था ॥ २६४४ ॥ उसकी दाढ़ीके वाल भूषणविहीन कानोंमे घुसे हुए थे । रूखी सलवटोंसे उसके कपोलोंकी कृशता स्पष्ट दीख रही थी ॥ २६४५ ॥ वीच-वीचमें नागरिकगण उसके विषयमें तरह-तरहकी उत्तम-मध्यम वातें कर रहे थे । वात करते समय वे दीन आँखोंकी पुतलियें स्थिर करके कनखियोंसे उसे निहारते चलते थे ॥ २६४६ ॥ कातरता, दीनता, भय, थकावट, क्षुधा और दुर्भाग्य ये सव जैसे एक साथ उसपर कटाक्ष कर रहे थे । कई दिनोंसे सोनेका अवसर न पानेके कारण उसके अङ्ग शीतपीडित गायके समान काँप रहे थे ॥ २६४७ ॥ उसे धरती घूमती-सी दीखती थी, पर्वत अस्त-व्यस्त तथा गिरे हुए दिखायी देते थे, आकाश शुष्क दीखता था और उसके होंठ अत्यधिक सूख गये थे ॥ २६४८ ॥ वह चाहता था कि कोई दैवी वाधा खड़ी हो जाय, भीषण अन्धकार छा जाय अथवा राजभवनके पास पहुँचते-पहुँचते इस शरीरको वायु सुखा डाले ॥२६४९॥ वह वार वार यही सोच रहा था कि 'सवके अपकारी राजा जयसिंहके समक्ष मैं कैसे खड़ा हूँगा !' यह सोचकर वारम्वार उसके पैर लड़खड़ा रहे थे ॥ २६५० ॥ वहुतेरे लोगोंसे घिरे रहनेके कारण राजाने उसकी साधारण झलक-सी पायी, किन्तु उसी समय प्रतीहारने आँगनमें लोठनके आनेकी खवर दी ॥२६५१ ॥ भौंहोंके संकेतसे आज्ञा पाकर लोठन उस राजसभाकी ओर वढ़ा, जो प्रेक्षकोंके नेत्रों द्वारा चंचल कमलवनसरीखी दीख रही थी ॥ २६५२ ॥ उस समय उसकी आँखे पृथ्वीकी ओर थीं । समीप पहुँचनेपर उसने घुटनोंको जमीनमें टेककर मस्तकसे राजाके चरणकमलोंका स्पर्श किया ॥ २६५३ ॥ तव सम्राट् जयसिंहने अपने दोनों हाथोंसे उसके आनत मस्तकको ऊपर उठाया ॥ २६५४ ॥ राजाके रत्नौषधिसे

मा भैषीरिति दर्पोक्तिः सुखं संप्राप्स्यसीति वाक् । अगाम्भीर्येण भग्नैव मन्युर्न त्वयि सोऽधुना ॥२६५७॥
इत्युक्ते पूर्ववैराणां भवेदुद्घाटनं कृतम् । बान्धवो नस्त्वमित्यस्मिन्परीहास इव क्षणे ॥२६५८॥
क्लिष्टोऽसीति - स्वप्रतापप्रभावाभापणं भवेत् ।
ध्यात्वेति भूभृद्दृष्ट्वास्य नाप्यायं तु गिराऽकरोत् ॥ तिलकम् ॥२६५९॥
अभयार्थनया पादौ स्प्रष्टुं नमयतः शिरः । संस्पर्शं मौलिपु पुनर्विग्रहस्यांघ्रिणाऽकरोत् ॥२६६०॥
का योग्यता सत्क्रियायां ममेति वदता बलात् । अजिग्रहत्पितृव्येण ताम्बूलं स्वकरार्पितम् ॥२६६१॥
नम्रं द्वारेशमूचेभृच्छ्रमो व इति सस्मितम् । धन्यं पष्ठं च पस्पर्श प्रष्ठं सव्येन बाहुना ॥२६६२॥
दाक्ष्यदाक्षिण्यगाम्भीर्यविनयाद्यैर्विभाव्य तम् । भूभृद्गुणैः परीतं स्वं लोठनोऽमन्यतावरम् ॥२६६३॥
आदिश्य सान्त्वनं धन्यमुखेनाथ त्रपानतम् । पितृव्यं प्राहिणोद्वेश्म भ्राजिष्णु विनयाञ्जलिः ॥२६६४॥
अभियोगे य एवास्य नीतो विन्यस्यतो दृशम् । मुखरागः स एवाभूत्फलावाप्तावविप्लुतः ॥२६६५॥
नायाति वाडवशिखिक्कथनेन तापं शैत्यं हिमाद्रिपयसा विशता न चाब्धिः ।
कश्चिद्गभीरमनसां सततं विषादकाले प्रमोदसमये च समोनुभावः ॥२६६६॥
प्रीतिस्थैर्यैर्न्नीतियोग्यैश्चोपचारैरकृत्रिमैः । क्रमाद्राजाहरल्लज्जां पौरुषभ्रंशजीवयोः ॥२६६७॥
दायादोष्ठद्वयादेव राष्ट्रे कृष्टेऽपि मन्त्रवित् । भोजेनोरःपिञ्जसर्पस्य दन्तं सोन्तरचिन्तयत् ॥२६६८॥
प्रवासायासभीत्या स्वैस्त्यक्तसंरम्भसंभ्रमैः । जिगीषुर्विद्विषच्छेदैश्चक्रे यन्निष्प्रजागरः ॥२६६९॥

युक्त हाथोंके चन्दन सदृश शीतल स्पर्शने लोठनके मनस्ताप तथा दैहिक दौर्भाग्यको हर लिया ॥ २६५५ ॥ अपने पूर्वार्जित पुण्यके प्रतापसे लोठनने दयालु राजा जयसिंहका करुणापूर्ण रुख देखकर अपने हृदयमें सन्तोषका अनुभव किया ॥ २६५६ ॥ उसी समय सम्राट्ने दर्पके साथ कहा—'मत डरो, अब तुम सुख प्राप्त करोगे। विशेष गम्भीर होनेके कारण तुम्हारेपर रहनेवाला मेरा क्रोध अब शान्त हो गया है' ॥ २६५७ ॥ उसके ऐसा कहनेपर लोठनके सब वैरोंका अन्त हो गया। 'तुम मेरे बन्धु हो। अबतक जो कुछ हुआ, वह सब क्षणिक परिहासमात्र था' ॥ २६५८ ॥ 'मैं जानता हूँ कि अपना प्रताप और प्रभाव नष्ट हो जानेके कारण तुम दुखी हो। किन्तु समय आनेपर वह सब पुनः प्राप्त हो सकता है' राजा जयसिंहने ऐसा कहना चाहा, किन्तु इससे अपने प्रताप और प्रभावमें हेठीकी संभावना देखकर उसे वचनसे आप्यायित नहीं किया ॥ २६५९ ॥ उसी समय अभयदान पानेकी इच्छासे विग्रहराजने अपना मस्तक झुकाकर राजाके चरणोंका स्पर्श किया। तब राजाने पैरसे उसके मस्तकका स्पर्श किया ॥ २६६० ॥ तदुपरान्त विग्रहराजने कहा—'आपका सत्कार करनेकी सामर्थ्य मुझमे कहाँ है ?' यह कहकर उसने बलात् राजाके हाथमें पानका बीड़ा थम्हा दिया ॥ २६६१ ॥ फिर अपने समक्ष विनम्र होकर खड़े द्वाराधीशसे कहा—'आपको बहुत परिश्रम करना पड़ा' और धन्य तथा पष्ठचन्द्रका उसने दाहिने हाथसे स्पर्श किया ॥ २६६२ ॥ राजा जयसिंहकी दक्षता, उदारता, गम्भीरता और विनयशीलता देखकर अपनेको राजोचित गुणोंसे सम्पन्न माननेवाले लोठनने अब स्वयंको निम्न श्रेणीका राजा समझ लिया ॥ २६६३ ॥ तदनन्तर लज्जावनत अपने चाचा लोठनको धन्य द्वारा सान्त्वनासन्देश देकर उसे उसके घर भेजवा दिया ॥ २६६४ ॥ उस राजाके समक्ष जो भी अभियुक्त पहुँचा और उसने जिसे सकरुण दृष्टिसे निहारा, उसके मुखपर पहले जैसी लाली आ गयी और उसे जीवनका असाधारण फल प्राप्त हो गया ॥ २६६५ ॥ वडवानलके तापसे समुद्र न तो गरम होता है और न हिमालयकी नदियोंका ठंढा जल मिलनेसे उसमें शीतलता ही आती है। क्योंकि गम्भीर हृदयवाले लोगोंका स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि जिससे वे विषाद अथवा आनन्द दोनों ही अवसरोंपर एकसाँ रहते है ॥ २६६६ ॥ जिन लोगोंने प्रेमपूर्वक एवं अकृत्रिम उपचारोंसे राजाका सत्कार किया, उनके पुरुषार्थभ्रंशजनित तथा जीवजनित दोनों प्रकारकी लज्जाओंका उसने क्रमशः हरण कर लिया ॥२६६७॥ मंत्रज्ञ राजा दो दायादरूपी ओष्ठोंके मध्यसे अपना राज्य खींच करके उस उच्छृंखल सर्प भोजके दाँतोंको तोड़नेके लिए सतत चिन्तित रहता था ॥ २६६८ ॥ क्योंकि प्रवासके कष्टसे भयभीत

साल्हणिः स तु निस्तीर्णः श्वभ्राच्छून्यगृहे वसन् । पितृव्यविग्रहोदन्तमुपलेभे न कंचन ॥२६७०॥
राजगृह्यं त्वलंकारं डामरान्तिकमागतम् । पृष्ठाद्वीक्ष्याभवद्द्रोहद्द्रोहसंभावनस्तदा ॥२६७१॥
ददर्श च क्रमाद्दूरतया दुर्लक्ष्यविस्तृति । स्कन्धावारं वद्धमालं मार्गे नगरगामिनि ॥२६७२॥
अज्ञातेन विदूरत्वात्पितृव्येणाश्रितं ततः । युग्यं चासौ धन्यषष्ठयुग्ययोरन्तरैक्षत ॥२६७३॥
अचिन्तयच्च को हेतुः कटकप्रस्थितेरितः । युग्यारूढश्च कोऽथ स्यात्तृतीयो धन्यषष्ठयोः ॥२६७४॥
पृष्टस्तेनावदत्कश्चित्पामरोऽथ प्रमोदभाक् । संधिनिर्बद्धो नगरं गतौ लोठनविग्रहौ ॥२६७५॥
संदेहौजहृतद्रोहो भयमुन्मुखतां भजेत् । ज्ञातिस्नेहेन तस्यासीन्मुहूर्तमपहस्तितम् ॥२६७६॥
सैन्ये गते शून्यतया मिलितैर्विहगैः सरित् । रुवद्भिस्तेन तौ नीतौ क्रन्दन्तीव व्यकल्प्यत ॥२६७७॥
लवन्य एव मे दध्यावाद्ध्यात्वेहस्थमवेत्य ते । पुनर्नयेयुर्धन्याद्याः क्रमाद्ध्यावथेति सः ॥२६७८॥
स्वां नेतुं पार्थिवचमूं प्रत्यावृत्तां निनादिनीम् । श्रुतेन्तरान्तरा घोषे निर्झराणामशङ्कतः ॥२६७९॥
अथाजायत जीमूतवितीर्णतिमिरं जगत् । वन्ध्यं मध्यंदिनेनेव निशीथव्यथितश्रिया ॥२६८०॥
राधमासावधि दधुस्ततः प्रभृति वारिदाः । दीक्षां क्षोण्यां तुषारौघसत्त्राख्त्रणकर्मणि ॥२६८१॥
विस्रब्धघात्यभव्योऽहं निर्ब्रह्मण्यो ह्रियोज्झितः । निन्दन्स्वमिति भोजाग्रे ततो दस्युरुपाविशत् ॥२६८२॥
समयापेक्षयाक्षोभो मन्युं संस्तभ्य साल्हणिः । सान्त्वयन्निव नास्त्यागस्तवात्रेति जगाद तम् ॥२६८३॥
ऊचे च संश्रितापत्यज्ञात्याद्यापद्गतं त्वया । त्रातुमेतत्कृतं तत्र गर्हां नार्हसि कस्यचित् ॥२६८४॥

स्वजनोंने जिसे त्याग दिया था, वह विजिगीषु भोज वचेस्त्वुचे राजद्रोहियोंके साथ मंत्रणा करता हुआ रात-रात भर जागता रहता था ॥ २६६९ ॥ सल्हणका पुत्र भोज उस गढेसे निकलकर एक सूने घरमे रह रहा था । वहाँ ही उसने अपने चाचा विग्रहराजके विषयमे कुछ अफवाहे सुनीं ॥ २६७० ॥ उधर राजाको प्राप्य अलकार डामर अलंकारचक्रके पास जा पहुँचे । वादमे जव इस वातका पता चला, तव फिरसे वैरकी संभावना आ उपस्थित हुई ॥ २६७१ ॥ तदनन्तर भोज वहुत दूर होनेके कारण उसके विस्तारकी इयत्ताको तो नहीं जान सका, पर नगरको जानेवाले राजमार्गपर सेनाकी वड़ी लम्वी कतार माला जैसी गुँथी हुई जाती दिखायी दी ॥२६७२॥ दूरीमे साफ न दिखनेवाली उसके चाचाकी पालकी धन्य और षष्ठचन्द्रके वीचमे जाती दिखायी पड़ी ॥ २६७३ ॥ उसे देखकर भोजने सोचा कि यहाँसे प्रस्थित राजसेनामे धन्य और षष्ठके सिवाय यह तीसरी पालकी किसकी हो सकती है ? ॥ २६७४ ॥ पूछ-ताछ करनेपर उसे किसीने वताया कि पामर एवं भोगलोलुप लोठन और विग्रहराज सन्धि करके राजाके पास जा रहे हैं ॥ २६७५ ॥ सन्देह और ओजके कारण द्रोह नष्ट हो जानेपर भयवश सम्भव है कि वह राजाके उन्मुख हो गया हो । किन्तु ज्ञातिस्नेहसे वह मुहूर्त भरके लिए स्तव्ध हो उठा ॥ २६७६ ॥ सेना चली जानेसे उस स्थानपर सन्नाटा छा गया और वहुत दिनके विछुड़े पंछी फिर नदीके तटपर आकर चहकने लगे । उन्हें देखकर उसने यह कल्पना की कि लोठन तथा विग्रहराजके चले जानेपर पक्षी रो रहे हैं ॥ २६७७ ॥ उसने फिर सोचा—यदि लवन्यको पता चल जाय कि मैं यहाँ हूँ तो सम्भव है, वह धन्य आदिको फिर यहाँ ले आये ॥ २६७८ ॥ तभीसे वह भोज झरनोंका निनाद भी सुनकर वीच-वीचमे सोचने लगता था कि यह शोर मचाती हुई राजाकी सेना मुझे पकड़ने आ रही है ॥ २६७९ ॥ उसी समय मेघोदयके कारण समस्त संसारमे अन्धकार छा गया और दोपहरके समय भी अर्धरात्रि जैसा अँधेरा दीखने लगा ॥ २६८० ॥ उस समयके उमड़े हुए वादल पूरे वैशाख मास भर छाये रहे और धरतीको हिमके ढेरसे लादते हुए दीक्षा देते रहे ॥ २६८१ ॥ उसी समय दस्यु (अलंकारचक्र) भोजके पास आ पहुँचा । वह कहने लगा—'मैं विश्वासघाती, अभव्य, अब्रह्मण्य तथा निर्लज्ज हूँ' इस प्रकार स्वयं अपनी निन्दा करता हुआ उसके समक्ष वैठ गया ॥ २६८२ ॥ तव समयानुसार क्षोभ तथा कोपको रोककर सल्हणतनय भोजने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'इस विषयमे तुम्हारा कोई अपराध नहीं है' ॥ २६८३ ॥ उसने फिर कहा—'उस समय अपनी सन्तति तथा ज्ञातिवान्धवोंके विपद्ग्रस्त हो जानेपर उनकी रक्षा करनेके लिए तुमने वैसा किया था । सो उसके लिए तुम्हें किसीको कोसना उचित नहीं है ॥ २६८४ ॥

तव द्रोहस्पृहा स्याच्चेन्नानृशंस्यं भवेन्मयि । परवत्ताऽभवत्तस्मादियं कालानुरोधतः ॥२६८५॥
राज्ञश्च हर्षभूभर्तृवंश्या इव न वा वयम् । उच्छेद्याः किं तु संयम्या राजधर्मानुरोधिनः ॥२६८६॥
स्वस्याख्यातिस्तयोर्बाधा राज्ञश्चामार्गगामिता । शेषं मां रक्षता हन्त निषिद्धा धीमता त्वया ॥२६८७॥
इत्युक्तवन्तं तं त्यक्तलज्जाभार इवावदत् । साक्षी त्वमेवं सर्वत्र ममेति सततं स्तुवन् ॥२६८८॥
क्षणेन च प्रहिणु मामधुनेत्यभिधायिनम् । तमेव हिमवृष्टयन्ते कर्ताऽस्मीत्युक्तवान्ययौ ॥२६८९॥
त्वयि दस्युर्विपर्यस्येन्मन्युं जानन्नभोजनम् । भोजस्तत्रेति केनापि कथितो व्यधिताशनम् ॥२६९०॥
स्पृशंश्चान्नं चिरात्प्राप्तमिदं विक्रीय ताविति । ध्यायञ्ज्ञात्योर्देहमांसं तयोर्भुक्तममन्यत ॥२६९१॥
दस्युस्तु हिमवृष्टयन्ते त्वां प्रहेष्यामि निश्चयात् । श्वो वाद्य वेति कथयन्द्वौ मासौ न मुमोच तम् ॥२६९२॥
मां ज्ञात्वेह स्थितं राज्ञः कृतारब्धेर्हिमात्यये । विक्रीणात्येष मत्वेति भोजोधाद्गमने त्वराम् ॥२६९३॥
मिषं यं यं निषेधाय गमनायोदपादयत् । तस्युस्तं तं समुच्छेद्य सापराधं व्यधत्त तम् ॥२६९४॥
तेजोनाम्नो वलहरात्संजातो भाद्रमातुरः । अभ्यधाद्बाल्यमाशास्य लम्बकम्बलकावृतः ॥२६९५॥
तेजोविस्फूर्जितां तत्तद्वीरोत्कर्षकषोपले । द्वैराज्ये सौस्सले सैन्ये पङ्क्तिपावनतां गतः ॥२६९६॥
पितुराप्ततया राज्ञा वर्धितस्तदनन्तरम् । एवेनकादिविषयाधीकारित्वं क्रमाद्भजन् ॥२६९७॥
विमुखे राज्ञि नागेन खूयाश्रमभुवा कृते । तं राजवदनो नाम विजिघृक्षू ररक्ष तम् ॥चक्कलकम्॥२६९८॥
आनृशंस्यं भृत्यभावादलवन्यतयाऽस्य च । प्रत्ययस्थित्यसामर्थ्यं राज्ञि सर्वे शशङ्किरे ॥२६९९॥

उस अवसरपर यदि मेरे साथ भी द्रोहकी भावना जाग गयी हो तो उसे निर्दयता नहीं कहा जायगा। वह तो समयके अनुरोधसे वैसी परवशता आ गयी थी॥ २६८५ ॥ हमलोग राजा हर्षदेवके वंशजों जैसे उच्छेद्य नहीं हैं, वल्कि राजधर्मका अनुसरण करनेवाले एवं नियम्य हैं ॥ २६८६ ॥ अपनी अप्रसिद्धि, लोठन एवं विग्रहराजके कार्यमें वाधा तथा राजाकी अमार्गगामिताको रोकते हुए तुमने मेरी रक्षा की है' ॥ २६८७ ॥ भोजके ऐसा कहने-पर जैसे उस दस्युके सिरसे लज्जाका भार उतर गया और उसने कहा—'एकमात्र तुम्हीं मेरे सर्वत्रके साथी हो'। ऐसा कहकर वह उसकी प्रशंसा करने लगा ॥ २६८८ ॥ तदनन्तर दस्युने कहा कि 'क्षण भरके लिए मुझे जाने दो। हिमवृष्टिके वाद तुम जो कहोगे, मैं वही करूँगा'। ऐसा कहकर वह चला गया ॥ २६८९ ॥ उसके चले जानेपर किसी अनजान व्यक्तिने भोजसे कहा—'तुम्हें भूखा देखकर दस्यु तुम्हारे साथ विश्वासघात करना चाहता है ॥ २६९० ॥ तदनन्तर जव भूखा भोज दस्युके द्वारा अर्पित अन्न खानेको उद्यत हुआ, तव उसे ख्याल आया कि 'यह अन्न लोठन और विग्रहराज जैसे मेरे ज्ञातिवान्धवोंको वेचकर प्राप्त हुआ है। अतएव इसे खाना उनके मांस खाने सदृश पापमय होगा' ॥ २६९१ ॥ तदुपरान्त यह वादा करके दस्यु उसे अपने घर ले गया कि 'हिमवृष्टि रुक जानेके वाद मैं तुम्हें अवश्य तुम्हारे घर भेज दूँगा'। किन्तु हिमवर्षा रुकनेके वाद भी आज-कल करते-करते दो महीने विता दिये और फिर भी उसे नहीं छोड़ा ॥ २६९२ ॥ तव भोजको सन्देह हुआ कि 'हिमवृष्टि रुक जानेके वाद यह मेरी उपस्थितिका राजाके पास सन्देश भेजेगा और भीतर ही भीतर सौदा पटाकर मुझे वेच देगा'। यह सोचकर वह शीघ्र वहाँसे निकल भागनेका प्रयत्न करने लगा ॥ २६९३ ॥ उसके वाद जो-जो वहाना वताकर भोज जानेका उपक्रम करता, उन वहानोंका मूलोच्छेद करके दस्यु उसे अपराधी सावित कर देता था ॥ २६९४ ॥ राजवदन वलहरका पुत्र था, जो तेज तथा भाद्रमातुरके नामसे भी विख्यात था। वाल्यकालसे ही वह लम्बा कम्वल ओढ़े रहता था ॥ २६९५ ॥ जव कि वीरोंकी परीक्षाका समय था, तव वह राजा सुस्सलके द्वैराज्यकी सेनामें अपने प्रभावसे योद्धाओंका अग्रणी वन चुका था ॥२६९६॥ उसका पिता राजाका विश्वस्त पुरुष था। अतएव राजाने उसे आगे वढ़ाया और उसने भी क्रमशः अपने पौरुषसे एवेनका आदि प्रान्तों-पर अधिकार करके अपनी धाक जमा ली ॥ २६९७ ॥ आगे चलकर खूयाश्रममें उत्पन्न एक नागके कारण राजा उससे विमुख हो गया। तव उसके साथ युद्ध करनेके लिए राजवदनने उस नागकी रक्षा की ॥ २६९८ ॥ उसके वाद सेवकके प्रति करुणभावापन्न एवं लवन्य न होने तथा विश्वसनीय स्थितिके अभाववश सभी लोग

अतोऽलंकारचक्रेण कुर्वतोऽप्यर्थमर्थनाम् । द्वैराज्येच्छो राजबीजी तदा न स समर्प्यत ॥ युगलकम् ॥२७००॥
नीतः प्रत्यक्षतां दूरस्थितेऽप्युदयने स तम् । विसृष्टवति दुर्बुद्धिस्त्यक्तुमेनं न सोऽशकत् ॥२७०१॥
राज्ञा कर्तुं विनियमं भोजस्य प्रहितो धनैः । आप द्रङ्गामलंकारो विषयाधिकृतस्ततः ॥२७०२॥
तत्पार्श्वमुद्यतं गन्तुं मां समुत्सृज्य यासि चेत् । त्यक्ष्यामि तदसूनेवमूचे भोजस्तु डामरम् ॥२७०३॥
श्वस्त्वां प्रभाते द्रक्ष्यामीत्येनावत्तत्र जल्पति । कोट्टादनुक्त्वैव निशस्तुर्ययामे विनिर्ययौ ॥२७०४॥
घनवर्षेऽप्यमर्षेण मार्गान्वेषी गवेषणम् । यावच्चक्रे क्षपान्ते तं तावच्छुश्राव निर्गतम् ॥२७०५॥
असाध्यप्रतिपत्त्याथ तमहन्यनुजगाम सः । प्रस्थितं शारदादेवीस्थानं यावन्मितानुगः ॥२७०६॥
एकसार्थगतौ ज्ञाती विना तौ ज्ञातियोषिताम् । दाक्षिण्यादक्षमः स्थातुमग्रे सागा भवन्निव ॥२७०७॥
प्रययौ पञ्चपान्थागन्त्यथादागव्धिमेष तु । युवाप्यकल्प्यः कौलीनमिति स्वस्य च चिन्तयन् ॥२७०८॥
दुराण्डगमने खण्डितेच्छः संश्रित्य दारदान् । संयुयुत्सुर्मधुमतीरोधसा मार्गमग्रहीत् ॥ तिलकम् ॥२७०९॥
क्वापि श्यामाश्मसूच्यग्रिमृत्युदंष्ट्राङ्कुरोत्कटान् । क्वचिद्गुहप्रकाशाप्रकालपाशान्धकारितान् ॥२७१०॥
प्रकृष्यद्धिमसंघातगजव्यूहोल्वणान्क्वचित् । क्वापि निर्झरफूत्कारनाराचक्षतविग्रहान् ॥२७११॥
क्वचित्सुखस्पर्शपवनस्पृष्टस्फुटदसृग्धरान् । क्वाप्यातपक्षतहिमज्योतिर्निहतदृक्पथान् ॥२७१२॥
दूरावरोहं प्रसृते स्फुटमप्रसृते विदन् । ऊर्ध्वावरोहमसकृन्मन्यमानोऽप्यधोगतः ॥२७१३॥
तुषारकालविषमान्षट्सप्तान्पथि वासरान् । उल्लङ्घ्य स दरद्राष्ट्रसीमान्तग्राममासदत् ॥ कुलकम्॥२७१४॥

राजाको सन्देहकी दृष्टि देखने लगे ॥ २६९९ ॥ अतएव अलंकारचक्रके अनेकशः प्रार्थना करनेपर भी द्वैराज्यकी इच्छावश उस राजवंशज नागको उसे नहीं सौंपा ॥ २७०० ॥ यद्यपि उदय उन दिनों बहुत दूर था, तथापि अलंकारचक्रने उसे दिखा दिया, किन्तु द्रोहबुद्धिवश वह उसे छोड़ नहीं सका ॥ २७०१ ॥ इसी बीच भोजको अपने काबूमें करनेके लिए राजा जयसिंहने पुष्कल धन भेजा और अलंकार द्रङ्ग ग्राममें जा पहुँचा ॥ २७०२ ॥ जब अलङ्कार भोजको छोड़कर जाने लगा, तब उसने अलङ्कार डामरसे कहा—'यदि तुम मुझे छोड़कर जाओगे तो मैं प्राण त्याग दूँगा' ॥ २७०३ ॥ डामरने कहा—मैं कल सुबह तुमसे मिलूँगा। यह कहकर वह रातके चौथे पहर भोजको बिना बताये किलेके बाहर हो गया ॥ २७०४ ॥ उस समय घोर वर्षा हो रही थी। अतएव मार्ग बड़ी कठिनाईसे मिल पाता था। सवेरा होनेपर जब अलंकारने भोजकी खोज की तो सुना कि वह रातको ही निकल भागा ॥ २७०५ ॥ यह समाचार सुनकर अलंकारने उसका पीछा किया तो देखा कि भोजके कुछ साथी उसके साथ हैं और वह उनके साथ शारदा देवीके स्थानकी ओर चला जा रहा है। किन्तु उसे रोकनेका साहस डामरको नहीं हुआ ॥ २७०६ ॥ एक ही जातिके दो मनुष्योंको बिना स्त्रीके एक साथ चलते देखकर उधर भोजकी विचित्र स्थिति हो गयी। वह अपनेको अपराधी मानता हुआ न आगे बढ़ पाता था और न रुक ही सकता था। एकाएक उस नौजवान भोजके मनमें ऐसी भावना जागी कि जिससे अपनी कुलीनताका विचार करके उसने पाँचवें ढंगसे आगेका कार्यक्रम बनाया। तदनुसार उसने दुराण्ड जानेका विचार त्याग दिया और दरद लोगोंकी सहायतासे युद्धके निमित्त मधुमतीके तटसे जानेवाला रास्ता पकड़ा ॥ २७०८–२७०९ ॥ उस मार्गपर काले पत्थरके रोड़ोंकी नोकें ऐसी उभड़ी हुई थीं कि जैसे मृत्युके विकराल दाँत हों, कहीं-कहीं ऐसे खड्ड मिलते थे कि जहाँ प्रकाश न पहुँचनेके कारण कालपाशसदृश घटाटोप अन्धकार छाया रहता था। कहीं-कहीं हाथियोंके झुण्डकी भाँति बर्फके बड़े-बड़े ढूह दिखायी देते थे। कहीं-कहीं झरनोंकी फुहार उड़-उड़कर बाणकी तरह शरीरमें चुभती थी। कहीं-कहीं सुखस्पर्शी पवनके स्पर्शसे रक्तवाहिनी नसें फूटने लगती थीं। कहीं-कहीं हिमराशिपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणोंसे आँखें चौंधिया जानेके कारण आगेका रास्ता ही नहीं दिखायी देता था। कहीं दूरसे कठिन चढ़ाई दिखायी देती थी और पास पहुँचनेपर इससे उलटी स्थिति देखनेमें आती थी। कहीं दूरसे कड़ी उतराई दिखायी देती थी, किन्तु समीप पहुँचनेपर वह बात नहीं रहती थी।

गूढार्पितात्मसामग्रीहताकिंचन्यलाधवम् । तं दुग्धघाट्टकोट्टेशः प्रणम्यानयदर्च्यताम् ॥२७१५॥
दूरस्थितो विड्डसीहस्तद्दूतोक्ततदागमः । प्रक्रियां प्राहिणोच्छत्रवादित्राद्यां नृपोचिताम् ॥२७१६॥
आदिष्टदिष्टवृद्धिश्च राष्ट्रे कोट्टाधिपेन सः । अवारयत्स्वकोशस्य स्वामित्वं राजबीजिनः ॥२७१७॥
राजायमानो भोजोऽथ राजवासगतोऽर्चितुम् । आनिन्ये राजवदनापत्येनाभ्येत्य पक्ष्यताम् ॥२७१८॥
स पित्रैकान्ततो राज्ञो भिन्नेन प्रहितोऽन्तिकम् । तेनाज्ञाय्यरिनीत्युग्रपाशाग्रस्थापनोपमः ॥२७१९॥
कार्यगौरवविश्वासाभावव्यतिकरोचितम् । संदिश्य प्राहिणोत्तं स न स्वीकुर्वन्न चोत्सृजन् ॥२७२०॥
किमाप्तोऽहं किमेकान्तभिन्नो राज्ञः शनैरिति । मां ज्ञास्यसीति तं दूतैः स राजवदनोवदत् ॥२७२१॥
तस्य दार्ढ्यं दर्शयितुं गोत्रिवैरिमिपान्नृपे । ब्रुवाणेऽथ विदोषत्वं नागाद्यैरग्रहीद्रणम् ॥२७२२॥
सामग्र्यूनः शनैः स्थैर्यं ततः साम्यमथ क्रमात् । आधिक्यं चादधे तेषां विग्रहैर्धैर्यनिष्ठुरः ॥२७२३॥
तथा प्रतिष्ठां स प्राप तस्यापूर्वस्य भूमिजाः । दास्यमेत्य यथा व्रीडां नागुर्नागस्य बान्धवाः ॥२७२४॥
स हि त्यागक्षमास्तम्भालोभादिगुणभूषितः । अभिगम्योभवन्नित्याभ्यस्तभूतिरिवोन्मिषन् ॥२७२५॥
स्थैर्यं पृथ्वीहरादीनां साश्रयाणां न कौतुकम् । आडम्बरो निरालम्बस्यास्य स्तुत्यस्तु विस्तृतः ॥२७२६॥
ग्रथयन्पृथुलान्व्यूहांश्चौराटविकघोषिकैः । क्रान्तग्रामेऽथ तस्थौ स भोजादीन्प्रतिपालयन् ॥२७२७॥
जहुरन्योन्यसंघर्षसेर्ष्यामात्यमतेन वा । ततो लुण्ठिप्रियत्वाद्वा नीतिमन्येऽपि डामराः ॥२७२८॥
उद्घातध्वंसितां विप्लवेच्छां लोठनबन्धने । याधात्तेषां तदानीं सा जगाम शतशाखताम् ॥२७२९॥

हेमन्त ऋतुके कारण उस भीषण मार्गको छः सात दिनमें पार करके भोज दरदराजकी सीमाके ग्राममे पहुँच गया ॥ २७१०—२७१४ ॥ उस समय भोजने अपना सामान इसलिए छिपा रक्खा था कि जिससे लोग उसे अकिंचन समझ बैठे । उसी समय दुग्धघाट किलेके अधिपतिने आकर प्रणाम किया, जिससे तत्काल भोज पूजनीय बन गया ॥ २७१५ ॥ वहाँसे दूर रहनेवाले विड्डसीहने जब दूतोंके मुखसे उसके आगमनका समाचार सुना तो तत्काल उसने भोजके लिए छत्र आदि राजोचित उपकरण भेज दिये ॥ २७१६ ॥ तदनन्तर भोजके आदेशसे कोटपालने अपने राज्यके कोशपरसे राजवंशजोंका प्रभुत्व समाप्त कर दिया ॥ २७१७ ॥ अब भोज एक राजाके समान सब काम करता था । उसी समय राजभवनमे राजा भोजकी अर्चना करनेके लिये राजवदनका पुत्र आया और उसकी पक्ष्यता स्वीकार कर ली ॥ २७१८ ॥ उसे उसके पिताने भोजके पास भेजा था । क्योंकि उन दिनो राजवदन कश्मीरनरेश जयसिंहसे कुछ रुष्ट था । अतएव उसने सोचा कि राजाके लिए भोज एक प्रबल पाश बन सकता है ॥ २७१९ ॥ तदनन्तर कार्यके गौरवको समझकर भोजने एक सन्देश देकर दूतोंको उसके पिताके पास भेजा । उस सन्देशमें मिली-जुली नीतिकी कुछ ऐसी बाते थी कि जिनसे न अविश्वास प्रकट होता था और न उसकी बात स्वीकृत या अस्वीकृत की गयी थी ॥२७२०॥ तब राजवदनने दूतको उस सन्देशका उत्तर देते हुए कहलाया कि 'आप मुझे काम पड़नेपर देखेंगे कि मै विश्वसनीय हूँ या नही । इतने हीसे समझ लीजिए कि मै अब भी राजा जयसिंहका सलाहकार हूँ' ॥ १७२१ ॥ तदनन्तर अपनी दृढ़ताका सबूत देनेके लिये राजवदनने राजाके गोत्रीका वैरी बताकर नाग आदिके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ २७२२ ॥ युद्धसामग्रीकी कमी पड़ जानेपर वह उस युद्धको रोक देता था, सामान जुट जानेपर फिर भिड़ जाता था और जब प्रचुर सामग्री जुट जाती थी, तब पूरी शक्तिके साथ आक्रमण कर देता था ॥२७२३॥ ऐसा करके उसने वह प्रतिष्ठा प्राप्त की कि उसकी भूमिमे उत्पन्न होनेवाले नागके बन्धु-बान्धव उस अपूर्व पुरुषकी सेवा करके लज्जित नहीं हुए ॥२७२४॥ क्योंकि उसमें त्याग, क्षमा, अभिमान एवं लोभका अभाव आदि गुण विद्यमान थे। इसीलिए उसकी सतत उन्नति हो रही थी और सब लोग उसकी सेवाके लिए लालायित रहते थे ॥ २७२५ ॥ यदि पृथ्वीहर आदि साधारण लोगोंमे स्थैर्य था तो वह कोई कौतुककी बात नही थी । किन्तु निराधार राजवदनका आडम्बर स्तुत्य था ॥ २७२६ ॥ उसने चोरों, वनचरो और आभीरोंके बड़े बड़े गुटोंको मिलाकर अपने समर्थकोका एक बहुत बड़ा जत्था तैयार कर लिया और कई ग्रामोपर कब्जा करके भोज आदिके निर्देशोंका पालन करने लगा ॥ २७२७ ॥ पारस्परिक संघर्ष, ईर्ष्यालु मन्त्रियोकी सलाह अथवा

त्रिल्लको जयराजश्च राज्ञा संवर्धितावपि । अकार्ष्टां नैव तपसा विवशौ चक्रमीलनात् ॥२७३०॥
यो घूकानामिव श्वभ्रमामयानामिव क्षयः । दैत्यानामिव पातालं यादसामिव सागरः ॥२७३१॥
आश्रयः सर्वदस्यूनां त्रिल्लको माययोल्वणः ।
स देवसरसाधीशं संवध्नन्विप्लवं व्यधात् ॥ युग्मम् ॥२७३२॥
कांक्षन्तोऽथ तदाक्षेपं क्षोणीत्राणार्थिनो द्विजाः । प्रायं नृपतिमुद्दिश्य चक्रिरे विजयेश्वरे ॥२७३३॥
अकालदस्युनिर्माथं जानतोऽभ्यर्थनां न ते । राज्ञोऽगृह्णंस्ततः सोऽभूद्दाक्षिण्यात्तत्सभानुगः ॥२७३४॥
प्रस्थातुं पार्थिवे सज्जे ज्यायान्यो विप्लुतेष्वभूत् । स जातोत्पातपिटको जयराजो व्यपद्यत ॥२७३५॥
भाग्यवानेकतोजातदस्युवैकल्यमीशिता । ततो मडवराज्यं स विप्रप्रीत्यै विनिर्ययौ ॥२७३६॥
अमात्यदत्तवैमत्यैः स्वगाढ्यमठरैरथ । द्विजैर्निषिद्धोलंकारो मन्त्री राज्ञोज्झितोऽतिकात् ॥२७३७॥
स व्यवस्थापने दुःस्थदस्यूनां सोद्यमः सदा । सेर्ष्याणां प्रत्यभात्तेषां तद्दोषपरिपोषकः ॥२७३८॥
त्रिल्लकोन्मूलनं कुर्यां कृत्वा द्वैराज्यभञ्जनम् । प्रतिज्ञायेति नृपतिर्विप्रान्प्रायान्यवीवरत् ॥२७३९॥
त्रस्तोऽथ त्रिल्लकस्तैस्तैरप्रियैरुदवेजयत् । अनुद्भिन्नमुखो गूढामयो रोगान्तरैरिव ॥२७४०॥
जयराजानुजं राज्ञा यशोराजं निवेशितम् । तन्मतेनावचस्कन्द भ्रातृव्यं राजकाभिधः ॥२७४१॥
त्रातुं तं देवसरसं दृप्तारात्याश्रितं गतः । सज्जपालोऽल्पसैन्यत्वात्संदिग्धविजयोऽभवत् ॥२७४२॥

लूट-मारमे विशेष रुचि होनेके कारण अन्य डामरोंने भी अपनी नीति बदल दी ॥ २७२८ ॥ लोठनकी गिरफ्तारीके बाद डामरोंने ध्वंसकार्य तथा विप्लवकी आकांक्षावश जो नीति निर्धारित की थी, वह अब सैकड़ों शाखाओंमे विकसित हो चुकी थी ॥ २७२९ ॥ त्रिल्लक तथा जयराजको यद्यपि राजाने स्वयं आगे बढ़ाया था, तथापि उस नये गुटमे सम्मिलित होनेके कारण विवश होकर वे दोनों राजाकी ओर नहीं आकृष्ट हो सके ॥ २७३० ॥ जो उल्लुओंके लिए खन्दक, रोगोंके लिए क्षयरोग, दैत्योंके लिए पाताल और जलजन्तुओंके लिए समुद्रके समान दस्युओंका आश्रयदाता था, उस मायावी त्रिल्लकने देवसरसके राजाको मिलाकर विद्रोह कर दिया ॥ २७३१ ॥ २७३२ ॥ उसके आक्षेपकी आकांक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंने पृथिवीकी रक्षा करनेके लिए राजा जयसिंहके विरुद्ध विजयेश्वरमे अनशन आरम्भ कर दिया ॥ २७३३ ॥ यद्यपि राजाने असमयमे दस्युओंके विप्लवकी बात कहकर उनसे अनशन भंग कर देनेकी प्रार्थना की, किन्तु उन विप्रोंने राजाकी बात नहीं मानी। तब उदारतावश राजाने स्वयं उनकी सभामे उपस्थित होनेका संकल्प किया ॥ २७३४ ॥ जैसे ही राजाने वहाँ जानेकी तैयारी की, वैसे ही उस विप्लवका सर्वश्रेष्ठ प्रवर्तक एवं उत्पातका पेटारा जयराज सहसा मर गया ॥ २७३५ ॥ इस प्रकार उस भाग्यवान् राजाको दस्युओंके एक प्रमुखके मर जानेसे कुछ सुविधा प्राप्त हो गयी और ब्राह्मणोंको मनानेके लिए वह मडवराज्यकी ओर चल पड़ा ॥ २७३६ ॥ यद्यपि अन्यान्य मंत्री असहमत थे, तथापि ब्राह्मणोंकी प्रेरणा तथा अपनी शठतासे मंत्री अलंकारने अनशनके पक्षका समर्थन किया। इससे रुष्ट होकर राजाने उसे मंत्रिपदसे हटा दिया ॥२७३७॥ क्योंकि वह दुखी एवं ईर्ष्यालु दस्युओंको व्यवस्थित करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहता था और उनके दोषोंका पोषण करता था ॥ २७३८ ॥ तदनन्तर मडव-राज्यमे पहुँच तथा यह प्रतिज्ञा करके कि 'मैं द्वैराज्य भंग करके त्रिल्लकको उखाड़ फेकूँगा' राजाने उन ब्राह्मणोंका अनशन समाप्त करा दिया ॥ २७३९ ॥ यह समाचार सुनकर त्रिल्लक दहल गया और विविध प्रकारके उपद्रव करके राजाको उसी प्रकार तंग करने लगा, जैसे शरीरमे छिपा हुआ कोई रोग अन्यान्य रोगोंको उत्पन्न करके प्राणीको सताता है ॥ २७४० ॥ तदनन्तर त्रिल्लकके सलाहकार राजकने उसके भाईके पुत्र यशोराजपर आक्रमण कर दिया, जो जयराजका बड़ा भाई था और जिसे राजाने उसके पिछले पदपर नियुक्त कर दिया था ॥ २७४१ ॥ उसी समय राजसेनापति संजपाल अभिमानी शत्रुके वशीभूत देवसरसकी रक्षा करनेके लिए गया, किन्तु उसके पास बहुत कम सेना थी। अतएव उसकी विजय सन्दिग्ध हो गयी ॥ २७४२ ॥

ज्ञातोदन्तस्ततोऽभ्येत्य रिल्हणो रणमुल्बणम् । जयलक्ष्मीकटाक्षाणां प्रथमातिथितामगात् ॥२७४३॥
मन्दरेणाथ तेनारिवारिराशौ विलोडिते । कल्योऽभूत्सञ्जपालाब्दस्तुच्छारातिजलाहृतौ ॥२७४४॥
जितेऽपि राजके स्वोर्व्यां विनानुग्राहकं क्षमः । न बभूव यशोराजः शून्ये बाल इवासितुम् ॥२७४५॥
प्रतीक्षमाणो द्वैराज्यपर्याप्तिं क्ष्माभुजेऽकरोत् । त्रिल्लकः कालहरणं तैस्तैर्मायानतिक्रमैः ॥२७४६॥
यथाकालं ततो गूढोपोढान्मण्डलकण्टकान् । स्वपक्षसूचीविशिखान्दिक्षु श्वाविदिवाक्षिपत् ॥२७४७॥
अथ पार्थ्वीहरियोऽभूच्चतुष्को लोष्ठकानुजः । राज्ञा भ्रात्रा समं बद्धः कारागारात्पलायितः॥२७४८॥
स तेन निजजामात्रा रक्षितः स्वोपवेशने । असंख्यडामरयुतः शमालां संप्रवेशितः ॥ युग्मम्॥२७४९॥
आकर्ण्य कुररस्येव निनादं तस्य भेजिरे । व्यक्ततां दस्यवो गूढा ह्रदस्थाः शफरा इव ॥२७५०॥
दृप्यन्तं राजवदनं पष्ठचन्द्रोऽथ गग्गजः । रुरोध प्रलयोद्वृत्तं वेलाद्रिरिव वारिधिम् ॥२७५१॥
वर्धमानक्षीयमाणसंहती तौ त्वजायताम् । घर्मे सजम्बालहिमौ तुषाराद्रितटाविव ॥२७५२॥
पष्ठस्य जयचन्द्रश्च श्रीचन्द्रश्चानुजौ ततः । दूरविप्रकृतौ राजमन्दिरावाप्तवेतनौ ॥२७५३॥
ज्ञातनिर्वृत्त्यपर्याप्ती धुर्यकार्यवशप्रियात् । प्रतीक्ष्यादग्रजाद्राज्ञः शङ्कितावशुभागमम् ॥२७५४॥
कटकाद्विद्रुतौ राजवदनान्तिकमागतौ । श्वशुर्यावपि भूभर्तुरागतौ प्रतियोगिताम् ॥२७५५॥
शैलप्रस्थानपथिकैरसंख्यैरथ खाशकैः । स पूर्वराजकोशार्थी भूतेश्वरमलुण्ठयत् ॥२७५६॥
तस्कराक्रान्त्यशरणं बलवन्निहतावलम् । अराजकमिवाशेषं राष्ट्रं कष्टां दशामगात् ॥२७५७॥

यह समाचार पाकर रिल्हण वहाँ जा पहुँचा और जाते ही उसने घमासान युद्ध छेड़ दिया। ऐसा करके रिल्हण विजयलक्ष्मीका प्रथम अतिथि बना अर्थात् उसे विजय प्राप्त हो गयी ॥ २७४३ ॥ इस प्रकार मन्दराचलरूपी रिल्हणने जब शत्रुरूपी समुद्रको मथ दिया, तब संजपालरूपी मेघने तुरन्त शत्रुरूपी जलको सोख लिया ॥२७४४॥ इस प्रकार राजकके पराजित हो जानेपर यशोराज बिना किसीकी सहायताके अपनी भूमिपर नहीं टिक सका, जैसे कोई बालक सूनी जगहपर रहनेमे असमर्थ हो जाता है ॥२७४५॥ वह चाहता था कि राजा जयसिंह भी इस राज्यका साझेदार हो जाय और द्वैराज्यके क्रमसे देवसरसका शासन चले। उधर पराजित त्रिल्लक विभिन्न प्रकारकी माया रचता हुआ समय बिता रहा था ॥ २७४६ ॥ भीतर ही भीतर शक्ति संचय करते हुए त्रिल्लकने समय आनेपर राज्यके सभी विद्रोहियोंको एकत्र कर लिया और साहीके समान अपने पक्षके उन विद्रोही कण्टकोंको शहरकी गली-गलीमें फैला दिया ॥ २७४७ ॥ उसी बीच पृथ्वीहरका पुत्र एवं लोष्ठकका छोटा भाई चतुष्क कारागारसे निकल भागा। वह अपने भाईके साथ कारागारमें बन्द था ॥ २७४८ ॥ उसे उसके दामादने अपने घरमे छिपा लिया और कुछ दिन बाद असंख्य डामरोंके साथ शमाला भेज दिया ॥ २७४९ ॥ कुरर पक्षीके समान चतुष्ककी आवाज सुनकर अबतक छिपे हुए सभी लुटेरे प्रकट हो गये, जैसे पानी मिलते ही तालाबमें छिपे मत्स्य निकल आते हैं ॥ २७५० ॥ उसी समय गर्गके पुत्र पष्ठचन्द्रने अभिमानी राजवदनको घेर लिया, जैसे तटवर्ती पर्वत प्रलयकालीन समुद्रको घेर लेते है ॥ २७५१ ॥ उस अवसरपर दोनों पक्षके सैनिकोंका समुदाय कभी बढ़ता और कभी घटता था। जैसे बर्फ और कीचड़ भरे पहाड़के दोनो तट घटते बढते रहते है ॥ २७५२ ॥ पष्ठचन्द्रके दो भाई जयचन्द्र तथा श्रीचन्द्र पहले राजाके यहाँसे भत्ता पाते थे, किन्तु बादमें निकाल दिये गये ॥ २७५३ ॥ उनका भाई पष्ठचन्द्र प्रमुख कार्यकर्ता होनेके कारण राजाको प्रिय था, किन्तु जब राजा जयसिंहको यह मालूम हुआ कि जयचन्द्र-श्रीचन्द्र इस समय अपने भाई पष्ठचन्द्रके साथ रह रहे हैं, तब उसने उसका वहाँ रहना अशुभ समझा ॥ २७५४॥ जब यह बात उन दोनोंको मालूम हुई, तब वे भागकर राजवदनके पास चले गये। उसी बीच राजा जयसिंहके दो ससुर भी उसके प्रतिद्वन्द्वी हो गये ॥ २७५५ ॥ तदनन्तर असंख्य खशोंके साथ पर्वतीय मार्गसे जाते हुए राजवदनने भूतेश्वरको लूट लिया। क्योंकि उसे पूर्वकालीन राजकोश हस्तगत करनेकी बड़ी पुरानी लालसा थी ॥ २७५६ ॥ उस

उदयं कम्पनाधीशं रिल्हणं च ततो नृपः । चतुष्कयुद्धमादिश्य नगरं विवशोऽविशत् ॥२७५८॥
पार्थ्वीहरिस्तु दुःसाधो महाव्याधिरिवौषधैः । स्तम्भितोऽभूत्तयोः सैन्यैः संहन्तुं न त्वशक्यत ॥२७५९॥
कालापेक्षां स्वपक्ष्याणां दुर्बुद्धिं वानुरुन्धतः । आसीन्मन्दप्रतापत्वं रिल्हणस्यापि तत्क्षणम् ॥२७६०॥
विड्डसीहस्तु विज्ञातभोजोदन्तो व्यसर्जयत् । दूतानानेतुमुर्वीशान्सुबहूनुत्तरापथे ॥२७६१॥
अपि वित्तेशवनितारहोवैयात्यवेदिभिः । अपि किंमानुषपुरीगीतोद्गारिदरीगृहैः ॥२७६२॥
अप्यौष्ण्याद्वालुकाम्भोधेः शीतावेदिभिरेकतः । अपि शृङ्गानिलैः प्रीतान्कुर्वाणैरुत्तरान्कुरून् ॥२७६३॥

हिमाद्रिकच्छैर्म्लेच्छेशाः प्रधावन्तोऽधिशिश्रियुः ।
दिगस्तुरंगै रुन्धन्तः स्कन्धावारं दरत्पतेः ॥ तिलकम् ॥२७६४॥

राज्ञां संघटनं यावद्व्यधादेवं दरन्नृपः । दिग्भ्यो भोजान्तिकं तावत्तत्सामन्ताः प्रपेदिरे ॥२७६५॥
स पिप्रिये तानज्ञातालापान्वीक्ष्य गिरिव्रजात् । प्रीतिप्ररूढप्रणयानवरूढान्कपीनिव ॥२७६६॥
जयचन्द्रादयो राजवदनप्रहिता अपि । कीराः काश्मीरकाः पार्श्वमभजन्राजबीजिनः ॥२७६७॥
अभ्यर्णस्थान्वलहरप्रमुखांश्च विदूरगान् । अपुष्णात्साल्हणिः स्वर्णैः परां कोशेशतां भजन् ॥२७६८॥
ततः मुजनितोत्पिञ्जतया निश्चेष्टचक्रिकः । भोजेन राजवदनः समगंस्तापसाध्वसम् ॥२७६९॥
तयोरकृतकर्तव्यविशेषेणेतरेतरम् । जातसौष्ठवयोः क्षिप्रमविश्वासो व्यदर्शयत ॥२७७०॥
अभ्यमित्रीणतां तस्यानिच्छतो दरदं विना । मदात्साहायकार्येच्छन्मितानेव स तान्हयान् ॥२७७१॥

समय चोरों-डाकुओंके आक्रमणसे असहाय होनेके कारण बलवान् निर्बलोंका वध करने लगे। जिससे अराजकता-सी व्याप्त हो गयी और राज्य बड़े कष्टकी दशामें पहुँच गया ॥ २७५७ ॥ तब सेनापति उदय तथा रिल्हणको चतुष्कसे लड़नेका आदेश देकर विवशभावसे राजा जयसिंह राजधानी लौटा ॥ २७५८ ॥ जैसे कोई बड़ा रोग औषधिसे नहीं शान्त होता, उसी प्रकार पृथ्वीहरका पुत्र चतुष्क दुःसाध्य हो गया। यद्यपि उदय और रिल्हणकी सेनाने उसका बढ़ना रोक दिया, किन्तु परास्त नहीं कर सके ॥ २७५९ ॥ उस समय अपने पक्षवालोंकी ढिलवाही या दुर्बुद्धिका अनुसरण करनेके कारण रिल्हणका प्रभाव मन्द पड़ गया ॥ २७६० ॥ जब विड्डसीहको भोजका समाचार मिला, तब बहुतेरे राजाओंको बुलानेके लिए उसने उत्तरापथको दूत भेजे ॥ २७६१ ॥ जो लोग कुबेरकी स्त्रियोंके दुराचारको जान सकते हैं, तब मनुष्यलोककी कन्दराओंमें गानेवाली स्त्रियोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करना कौन कठिन काम था? ॥ २७६२ ॥ बालुकासिन्धुकी उष्णतासे भी ठंडकका अनुभव करनेवाले और हिमशृङ्गकी शिशिर वायुके झोंकोंसे उत्तरकुरु प्रदेशके लोगोंको तृप्त करनेवाले हिमालयकी तलैटीसे म्लेच्छ राजे दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे और अपने असंख्य अश्वोंसे उन्होंने दरददेशके राजाकी छावनीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २७६३ ॥ २७६४ ॥ इधर दरददेशके राजाने इस प्रकार अपना संगठन किया तो उधर विभिन्न देशोंसे बहुतेरे सामन्त भोजके पास आकर एकत्र होगये ॥ २७६५ ॥ गिरिव्रजसे आये हुए लोगोंकी बातका मतलब न समझते हुए भी वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि उनकी प्रीति अनोखी थी, उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि मानो प्रेमवश बहुतेरे बन्दर पर्वतोंसे उतर आये हों ॥ २७६६ ॥ राजवदनके भेजे हुए जयचन्द्र आदि तथा कश्मीरके बहुतेरे राजवंशज लोग भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७६७ ॥ आस-पास रहनेवाले वलहर आदि तथा दूर देशसे आये हुए लोगोंका सल्हणपुत्र भोज कुबेरके समान प्रचुर स्वर्ण व्यय करके खर्च चलाता था ॥ २७६८ ॥ विपक्षियोंके पास विशाल सैन्यसमुदाय एकत्र हो जानेके कारण जब मायाजालसे काम चलना असम्भव हो गया, तब सन्तप्त होकर राजवदन भोजसे जा मिला ॥ २७६९ ॥ उन दोनोंका कार्य तथा लक्ष्य एक दूसरेसे मिलता-जुलता था। अतएव दोनोंमें पूर्ण सद्भाव रहते हुए भी शीघ्र ही अविश्वासका अंकुर उग आया ॥ २७७० ॥ क्योंकि भोजने कभी सोचा ही नहीं था कि राजवदन शत्रुसे मिलनेको उद्यत है और राजवदन चाहता था कि थोड़ेसे घोड़े भोजसे मिल जायँ तो उन्हें भेटस्वरूप देकर मैं दरदराजके पक्षमें मिल

स्युश्चेत्सोढाग्रिमाटोपाः कटकस्यास्य नो द्विषः । तत्साम्यमुन्मिषेद्भद्धा भङ्गो भूयोऽपि योगभित् ॥२७७२॥
तस्मात्सर्वाभिसारेण रणमेकं ममेच्छतः । विजयावजयावाप्तिरेकाहान्तरिता मता ॥२७७३॥
व्याजहारेति यद्धोजस्तदेपोऽथ हसन्स्मयात् ।
निन्ये तद्दारदं सैन्यमुपेन्त्यागामिनीश्चमूः ॥ तिलकम् ॥२७७४॥
संकटान्ते वितीर्णानुयात्रस्तेषां प्रसर्पताम् । स राजवीजी शुश्राव दरद्राजमथागतम् ॥२७७५॥
तत्संगमाय व्यावृत्ते तस्मिन्कोट्टान्तिकं पुनः । प्रावेशयद्बलं लहरो मातृग्रामं स तद्बलम् ॥२७७६॥
दिशस्ततो वीक्ष्य वाहैर्भ्रान्तवातमृगा इव । निसर्गधीरधीर्गार्गिर्न धैर्यात्पर्यहीयत ॥२७७७॥
तस्य सर्वेऽपि नीलाश्वडामराः स्वे च सैनिकाः । विपक्षैः सह बद्धैक्याः सैन्यान्दुद्रुक्षवो ययुः ॥२७७८॥
स तथा विषमस्थोऽपि प्रस्थित्यै प्रार्थितो निजैः । म्लानाननः प्रभुं द्रष्टुं न क्षमोऽस्मीत्यभाषत ॥२७७९॥
स सूर्यवर्मचन्द्रस्य न जातः कश्चिदन्वये । उपयोगाय यो नागान्मल्लाभिजनजन्मनाम् ॥२७८०॥
भोजं सभाजयित्वाथ विड्डसीहः सपार्थिवः । सारैः समं स्वसामन्तैर्विजयाय व्यसर्जयत् ॥२७८१॥
ततो म्लेच्छगणाकीर्णा व्रजन्संवाहयंश्चमूः । प्रयाणमात्रान्तरितः पृष्ठे तस्य बभूव च ॥२७८२॥
प्रादुष्कृतजगत्क्षोभे बले तत्रानुयायिनि । उत्साहात्साल्हणिर्मेने कृत्स्नां हस्तगतां महीम् ॥२७८३॥
वाजिभिस्तर्जिते म्लेच्छराजैश्च बलमूर्जितम् । स्थाने समुद्रधाराख्ये निर्वध्नन्थाथ तत्पदम् ॥२७८४॥
य राजवदनस्तादृग्दुर्जयाश्रयबलोज्ज्वलः । मृत्युदन्तान्तरे दिष्टं पट्टचन्द्रमसन्यत ॥२७८५॥
ततः प्रावृट्पयोवाहकृतोदीपपरिप्लुता । संजायते स्म वसुधा समीभूतजलस्थला ॥२७८६॥
धरित्रीपानपात्रेऽम्भःसीधुपूर्णे द्रुधुर्द्रुमाः । मग्ना लक्ष्यशिखामात्रा बलन्नीलोत्पलोपमाम् ॥२७८७॥

जाऊँ ॥ २७७१ ॥ तब भोजने कहा—'यदि तुम दरदराजके पक्षमें मिलोगे तो हमारी और उसकी सेनाका सन्तुलन बिगड जायगा' हमारा-उसका बल समान हो जायगा और युद्धका निर्णय नहीं हो सकेगा। यह भी सम्भव है कि हमारी ही सेनामें फूट पड जाय ॥ २७७२ ॥ अतएव मैं चाहता हूँ कि हमलोग सगठितरूपसे एक साथ लड़ें। ऐसा करनेसे एक ही दिनमें विजय तथा पराजयका निपटारा हो जायगा' ॥ २७७३ ॥ भोजके वचन सुनकर राजवदन मुस्कराने लगा और भोजकी आनेवाली सेनाकी उपेक्षा करके वह दरदराजकी ओर जा मिला और उसकी सेना लाकर मोर्चेपर डटा दी ॥ २७७४ ॥ ऐसी परिस्थितिमें भोजके सैनिक पीछे हटने लगे। तभी भोजने सुना कि दरदराज स्वयं भी वहाँ आ गया है ॥ २७७५ ॥ उससे मुठभेड़के लिए जब भोजकी सेना दुग्धघाट किलेकी ओर बढ़ी, तब लहरने अपनी सेना मातृग्राममें घुसा दी ॥ २७७६ ॥ तदनन्तर स्वभावतः धैर्यशाली गर्गपुत्र पट्टचन्द्रने देखा कि सभी दिशाओंमें वातमृगके समान घोडोंके झुण्ड दौड़ रहे हैं। तब भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा ॥ २७७७ ॥ उस समय नीलाश्वके सभी डामर और उसकी सेनाके सैनिक शत्रुसे मिल गये और उसीकी बची-खुची सेनापर आक्रमण करनेके लिए आ पहुँचे ॥ २७७८ ॥ वैसी विषम स्थितिमें उसके निजी लोगोंने वहाँसे हट जानेका आग्रह किया। तब उदास होकर उसने कहा कि 'अब मैं प्रभुको अपना मुख नहीं दिखा सकता' ॥ २७७९ ॥ सूर्यवर्मचन्द्रके वंशमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं हुआ, जो मल्लोंके मुकाबलेमें कभी पीछे हटा हो ॥ २७८० ॥ उसी समय भोजका समादर करके विड्डसीहने अपनी सारी सेना और सामन्तोंको विजयके लिए भेज दिया ॥ २७८१ ॥ म्लेच्छोंसे भरी और समस्त संसारमें खलबली मचा देनेवाली वह विशाल वाहिनी आगे बढी तो उसके पीछे-पीछे चलनेवाले सल्हणतनय भोजने उत्साहित होकर सारी धरतीको हस्तगत मान लिया ॥ २७८२ ॥ २७८३ ॥ अनेक म्लेच्छ राजाओंकी उस उग्र सेनाने घोड़ोंकी जमघटसे भयावने समुद्रधारा नामक स्थानपर अपनी छावनी डाल दी ॥ २७८४ ॥ तब राजवदन ऐसी दुर्जय सेनाकी सहायतासे अपनेको विशेष शक्तिशाली समझकर पट्टचन्द्रको मृत्युके दाँतों तले पड़ा हुआ समझ बैठा ॥ २७८५ ॥ उसी समय जोरोंसे वर्षा होने लगी, जिससे कुछ ही देरमें वहाँकी सारी धरती जलमयी होकर समतल दीखने लगी ॥ २७८६ ॥ तब

पट्टस्य संकटं जानन्भूभृच्छेपैर्बलैः समम् । अथोदयद्वारपतिं तं च धन्यं व्यसर्जयत् ॥२७८८॥
वाहिनीरुद्धमार्गौ तौ पदवीमनुसस्रतुः । मार्गे धनंजयस्येव शैनेयपवनात्मजौ ॥२७८९॥
लम्बाम्बुदेऽम्बरे दूरं वारिपूर्णे च भूतले । स्यूतेव विद्युद्ददृशे भिन्नद्योतननिःस्वना ॥२७९०॥
शोभामात्रोदितागर्हपारिवर्हावहिष्कृतः । तत्राविभक्तकटकः पार्थिवः समजायत ॥२७९१॥
अनास्थो राजवदने सत्त्वावष्टम्भयोः पुरा । अत्रापरो न निक्षेप्यो गजवोजीति दारदान् ॥२७९२॥

त्रिल्लकः संदिशन्दूतैर्वृद्धिं पार्थ्वीहरिं नयन् ।
तयोरेकस्य सामर्थ्यदिच्छत्तं हस्तपातिनम् ॥ युग्मम् ॥२७९३॥

अभित्तिलिखितालेख्यकल्पं वलहरस्य तत् । तादृग्विलोक्य सामर्थ्यमथ राज्ञश्च सर्वतः ॥२७९४॥
विभक्ताशेपसैन्यस्य तत्र तत्रारिसङ्कटे । ज्ञात्वाप्रतिसमाधेयच्छिद्रमुन्मुद्रदुर्नयः ॥२७९५॥

अक्रशश्वाविदाचारश्चिरं स्वाङ्गैः स गोपितम् ।
बहिर्दुर्धर्पमत्याक्षीद्द्वितीयमपि कण्टकम् ॥ तिलकम् ॥२७९६॥

ध्वान्तेऽम्बुधरजालान्ध्यमहावाते रजोभरः । स्वपक्षभेदयोर्ज्ञातकर्णेजपमहोद्यमः ॥२७९७॥
कुलच्छेदकृतो राज्ञस्तत्र तत्रातिसंकटे । अशान्तजागरोऽत्यर्थमनर्थपरिपोषकः ॥२७९८॥
सोऽथ शूरपुरेऽकस्माद्बहुभिः सह डामरैः । तेन संपूरितः पृथ्वीहरजो लोठकोपतत् ॥तिलकम्॥२७९९॥
तस्य संघटतः कन्थां प्रयातं वैकृतं चिरात् । पालीभङ्गे तटस्येव प्रावृट्पूर्णस्य लक्ष्यताम् ॥२८००॥

भूमिरूपी पानपात्रमें जलरूपी मदिरा ढालकर वहाँके वृक्ष पीने लगे। क्योंकि वे जलमें इतने डूब गये थे कि उन शिखामात्र दिखायी देते थे। दूरसे देखनेपर नीलकमल सरीखे दीख रहे थे ॥ २७८७ ॥ उधर जब राजा जयसिंहको पट्टचन्द्रके संकटका पता चला तो तुरन्त उसने अपनी अवशिष्ट सेनाके साथ द्वाराधीश उदय और धन्यको भेजा ॥ २७८८ ॥ सेनासे अवरुद्ध मार्गपर वे दोनो वीर उसी प्रकार पीछे-पीछे चले, जैसे शिनी (सात्यकि) और पवनात्मज (भीमसेन) अर्जुनके पीछे-पीछे चले थे ॥ २२७८९ ॥ उस समय आकाशमें दूर तक जलभरे बादल घिरे हुए थे और धरती जलसे भरी हुई थी। बादलमें सँटी हुई बिजली कभी-कभी घनघोर गर्जनके साथ चमक उठती थी ॥ २७९० ॥ वहाँ पहुँचकर वह उच्चकोटिकी सैनिक सामग्री तथा विशालवाहिनी केवल शोभा मात्र रह गयी। क्योंकि राजाको पड़ाव डालने लायक कोई जगह ही नहीं मिल सकी ॥ २७९१ ॥ उधर त्रिल्लकको पराक्रम तथा ईमानदारीपर तनिक भी आस्था नहीं थी। इसीसे उसने दरदनरेशके पास दूतों द्वारा यह सन्देश भेजा कि 'अब यहाँ राजवंशजोंकी और कोई भी सेना न भेजिएगा'। तदुपरान्त उसने पृथ्वीहरके पुत्र चतुष्कको बढ़ावा दिया। क्योंकि त्रिल्लक चाहता था कि 'राजवदन या चतुष्क इन दोनोंमें किसी एककी सामर्थ्यसे भोज मेरी मुट्ठीमें आ जाय' ॥ २७९२ ॥ २७९३ ॥ उस समय त्रिल्लकने बिना भित्तिके लिखित चित्रके समान वलहरकी अद्भुत सामर्थ्य देखी, उसने अपने कौशलसे दरदराजकी सेनाको शत्रुसंकटके स्थलोंपर नियुक्त कर दिया। ऐसा करके उसने इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि जिससे शत्रुको कहीं कोई छिद्र न मिल सके ॥ २७९४ ॥ २७९५ ॥ उस वीर पुरुषने श्वाविद्वृत्ति (साही जैसे व्यवहार) का अवलम्बन करके चिरकाल तक अपने अंगसे रक्षित एवं दुर्धर्ष दूसरे खतरेको भी उसने पार कर लिया ॥ २७९६ ॥ तदनन्तर सहसा शूरपुरमें पृथ्वीहरका पुत्र लोठक आ पहुँचा, जिसपर त्रिल्लकने बहुतेरे डामरोंके साथ जाकर पहले ही कब्जा कर लिया था। उस समय उसने अपने आपको दो पक्षोंके बीचमें रक्खा था। बादलोंके कारण घोर अन्धकार छाया हुआ था। धूलभरी आँधी चल रही थी। जगह-जगह सूचकोंको नियुक्त करके उसने दोनों पक्षोंका भेद जाननेका समुचित प्रबन्ध कर लिया था। राजाके उन्मूलन करनेवाले विभिन्न संकटोंके अवसरपर रात-रातभर जागकर वह उन अनर्थोंका निवारण करता था ॥२७९७–२७९९॥ क्योंकि दोनों पक्षोंमें चिरकालसे मनमोटाव चला आ रहा था, उसको वह उसी प्रकार निवृत्त करनेका प्रयास कर रहा था, जैसे बरसातके दिनोंमें कगार गिरनेसे नदियोंका

निद्राणोपेन्द्रजठरप्रसादनिसृतं जगत् । समेतमिव तत्सैन्यं प्रत्यभाज्जलदागमे ॥२८०१॥
यावद्भिः पार्यते नेदृक्संख्यातुमपि तद्बलम् । भर्तव्यकल्पैः सुस्वल्पयोधमध्यगतैरपि ॥२८०२॥
तावद्भिरनुगैः पिङ्गदेवद्रङ्गाधिपो युधि । तद्योधान्यास्यहरितः सरितश्चातिथीन्व्यधात् ॥युग्मम्॥२८०३॥
तटोज्ज्वलैश्चिताचक्रैर्बिम्बितैस्तटिनीजले । मृतानामपि संस्कारः क्रियमाण इवाभवत् ॥२८०४॥
इति विस्मृतमृत्युः स कुर्वन्नेकाहमाहवम् । कथंचिदाप्तैरन्येद्युर्भयसारोऽपसारितः ॥२८०५॥
पुरे स शून्ये सैन्यानि संगृह्णंस्तत्र सर्वतः । द्वित्रैरहोभिर्नगरं सुखग्राह्यममन्यत ॥२८०६॥
इच्छां पद्मपुरास्कन्दे मन्दत्वं त्रिल्लकोऽनयत् । पृष्ठस्थयोर्यशोराजकम्पनाधीशयोर्भयात् ॥२८०७॥
न भृत्यैस्तद्विधः सिद्ध्यत्यस्यैकस्मिन्नसंमते । विधेयान्यलवन्यस्य डामरे होलडौकसि ॥२८०८॥
द्वैराज्ये सुस्सलस्यापि नैवादृश्यत तादृशः । अनर्थो यादृगुत्तस्थौ तत्सुतस्य समन्ततः ॥२८०९॥
चतुष्कमवधीर्याथ राजा पादगदोपमम् । रिल्हणः प्रैषि तं ग्रीवागण्डतुल्यं व्यपोहितुम् ॥२८१०॥
प्रस्थितस्तत्रमाथाय गमालैः सोऽन्ववध्यत । व्रजन्प्राग्ज्योतिषं हन्तुं पार्थः संसप्तकैरिव ॥२८११॥
अधावच्चाभ्यमित्रीणस्तान्व्यावृत्य निपातयन् । पद्माकरोन्मुखः पृष्ठलग्नान्भृङ्गानिव द्विपः ॥२८१२॥
रणश्रान्तेन गमिता त्रियामा तेन रामशे । गर्जत्कुल्यार्पितारातिपृतनानादसंस्क्रिये ॥२८१३॥
तं कल्याणपुरं प्राह्णे विशन्तं सोऽग्रमागतः । रुरोधाभ्येत्य भूयोऽपि बलैर्भरितदिङ्मुखः ॥२८१४॥
आपतन्नेव चारातिपदातीन्संमुखागतान् । दृष्टनष्टान्व्यधाच्छागानिवाग्रेऽजगलो गिलन् ॥२८१५॥

पेटा भर जाता है ॥ २८०० ॥ उस वर्षाकालमें उसकी सेनाके साथ जैसे सारा संसार सोये हुए भगवान् विष्णुके उदरसे निकलता हुआ दिखायी देता था ॥ २८०१ ॥ द्रंगके अधिपति, पिंजदेवके साथी और विभिन्न पर्य-वेक्षण चौकियों (शूरपुर-द्रंग आदि) पर नियुक्त उसके सेनानायकोंने अपने थोड़ेसे योद्धाओंको नदीके दक्षिणी तटके मोर्चोंपर इस ढंगसे फैला रक्खा था कि बहुत थोड़े होनेपर भी असंख्य दीखते थे ॥ २८०२ ॥ २८०३ ॥ नदीके किनारेपर पड़ी हुई छावनियोंका उजाला रात्रिके समय जब जलपर पड़ता था, तब ऐसा लगता था कि जैसे बहुतेरी चितायें धधक रही हैं और उनमें मृतकोंका दाहसंस्कार किया जा रहा है ॥ २८०४ ॥ इस प्रकार मौतको भूलकर लोठकने एक दिन युद्ध किया । किन्तु दूसरे दिन उसके विश्वस्त मित्रोंने ऐसी सलाह दी कि जिससे उसने अपनी सेना पीछे हटा ली ॥ २८०५॥ उस सूने नगरमें चारों ओरसे सैन्यसंग्रह करते हुए लोठकको दो ही तीन दिनमें नगरपर अधिकार हो जानेकी आशा हो चली ॥ २८०६ ॥ उधर त्रिल्लकने पद्मपुरपर आक्रमण करनेका विचार त्याग दिया । क्योंकि उसके पृष्ठभागमें यशोराज तथा सेनापति उदयकी सेना पड़ी हुई थी, जिससे बड़ा भय था ॥ २८०७ ॥ और फिर शत्रुसेनाके सभी लवन्य लोठकका सम्मान करते थे । अतएव जबतक उसके सभी सहयोगी किसी बातपर सहमत न हो जायँ, तबतक होलड ग्रामके डामर अपने मनसे कुछ नहीं कर सकते थे ॥ २८०८ ॥ राजा सुस्सलके द्वैराज्यमें वैसा संकट कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ था, जैसा कि इस समय उसके पुत्रपर चारों ओरसे आ उपस्थित हुआ था ॥ २८०९ ॥ तब पैरके रोग तथा गलगण्ड (घेघा) के समान दुखदायी चतुष्कको हटा देनेके विचारसे राजा जयसिंहने रिल्हणको भेजा ॥ २८१० ॥ रिल्हण जब उसे हटानेके लिये आगे बढ़ा, तब शमालाके निवासियोंने उसे ऐसा करनेसे रोका । जैसे पूर्वकालमें प्राग्ज्योतिषपुर जाते समय अर्जुनको संसप्तकोंने रोक लिया था ॥ २८११ ॥ किन्तु शत्रुसे टक्कर लेनेवाला वह वीर रोकनेवालोंको झटकारके आगे बढ़ा । जैसे कमलभरे सरोवरकी ओर जानेवाला गजराज पीछे लगे हुए भौंरोंको झटकार देता है ॥ २८१२ ॥ दिनभर युद्ध करनेके कारण थके हुए रिल्हणने रात्रि उस शमाला ग्राममें बितायी, जहाँ एक ओर वर्षाकालीन नदी गर्जन कर रही थी और दूसरी तरफ शत्रुसेनाका भीषण निनाद सुनायी देता था ॥ २८१३ ॥ प्रातःकालके समय जब वह कल्याणपुर जा रहा था, तब सभी दिशायें सेनाओंसे भर गयीं और उन्होंने चारों ओरसे रिल्हणको घेर लिया ॥ २८१४ ॥ शत्रुके पैदल सैनिकोंको सम्मुख देखते

उद्धृत्तमारुतस्येव तस्यापाते पदातिभिः । तत्यजे रिल्हणः पणहेँमन्त इव पादपः ॥२८१६॥
पश्यतस्तस्य ते विद्रवन्तो जिह्मा न जिह्रियुः । देहस्पृहापारमित्यै कस्यौचित्यमनत्ययम् ॥२८१७॥
आप्तैरथापसृत्य स्वैरर्थितो रिल्हणोऽब्रवीत् । नयन्प्रजसृजा साम्यं स्वामिभक्तिस्मृतेः स्मितम् ॥२८१८॥
ह्रीप्रभावाविशेषेऽपि जन्तोर्जन्तोर्यदीशिता । भृत्यभावेपि यो लुप्तकृत्यो धिक्तस्य जीवितम् ॥२८१९॥
जातं वक्त्रसरः श्मश्रुराजिनीलाब्जभाजनम् । जराकैरवगौरं च राज्ञः पादान्प्रपद्य यान् ॥२८२०॥
म्लायत्सु तेषु भ्रूभङ्गभृङ्गभ्राजिष्णुभिर्भवेत् ।
कथं लक्ष्मीविलासैस्तदखण्डैरविडम्बितम् ॥ युग्मम् ॥२८२१॥
एषा कापुरुषासेव्या धीराणां नैव पद्धतिः । यदायासलवत्रासात्सौख्यवैमुख्यभागिता ॥२८२२॥
वस्त्रोपासन एव शीतजनितत्रासोऽथ तीर्थाम्बुभिः स्नाने ह्लादसुखोपलब्धिरसमब्रह्मानुभावोपमा ।
वैह्वल्यं समरे वपुर्विजहतामेवं किलोपक्रमे कैवल्याख्यसुखोपलम्भपरमा पश्चात्पुनर्निर्वृतिः ॥२८२३॥
एवमुक्त्वा परानीकमेकाकी स व्यगाहत । गृह्णञ्शरान्हरिघ्रोथश्वाससंदिग्धशूत्कृतान् ॥२८२४॥
स्वर्णत्सरुप्रभाजालहरितालोज्ज्वलोऽभजत् । खड्गपट्टनटस्तस्य रणरङ्गोत्तरङ्गताम् ॥२८२५॥
तत्खड्गस्य ध्नतः खड्गाङ्गीवैर्जालच्छलाद्ध्रुवम् । उत्थाय लग्नं शत्रूणां तृणैस्तृणमणेरिव ॥२८२६॥
आजौ तमनुजग्मुस्ते येरगण्यन्त वैरिणः । तिर्यञ्चोलक्ष्यतां यातास्तेषां प्राणास्तृणान्यपि ॥२८२७॥
संप्रविष्टो मुखान्मृत्योः कैश्चिन्मार्गैः स निर्गतः । तिमेः संमीलितास्यस्य श्रोत्ररन्ध्रैरिवोदकम् ॥२८२८॥

ही उस वीरने इस प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे अजगर बकरेको निगलकर नष्ट कर देता है ॥ २८१५ ॥ भीषण अन्धड़के समान आये हुए रिल्हणको देखकर शत्रुके पैदल सैनिक उसी प्रकार हट गये, जैसे वसन्तमें पत्ते पेड़को छोड़कर हट जाते हैं ॥ २८१६ ॥ उसके सामनेसे भागनेमें वे धूर्त तनिक भी लज्जित नहीं हुए। ठीक ही है, अपनी देहकी रक्षाके लिए कुछ भी करना अनुचित नहीं होता ॥ २८१७ ॥ जब उसके आप्तजनोंने लौटनेकी प्रार्थना की, तब स्वामिभक्तिका स्मरण करके प्रजाके स्रष्टा ब्रह्माके समान मधुर मुस्कान करके रिल्हणने कहा—॥ २८१८ ॥ 'लज्जाका प्रभाव रहते हुए भी जो प्रत्येक जीवकी अपनी निजी प्रभुता रहती है, उसे उपयोगमें लाते हुए जो सेवक अपना कर्तव्य पालन नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है ॥ २८१९ ॥ दाढ़ीके बालोंसे नीलकमलके पत्र सरीखे दीखनेवाले एवं जरा (बुढ़ापा) रूपी कुमुदिनीसे गौरवर्ण प्रभुके मुखरूपी सरोवरमें यदि अखण्ड लक्ष्मीके विलासका अभाव हो और उपर्युक्त कमल-कैरव सूख जायँ तो उसके मुखपर भ्रूभंगरूपी भौंरोंकी शोभा कैसे परिलक्षित होगी ? ॥ २८२० ॥ २८२१ ॥ तनिक भी कष्टका सामना होते ही भयभीत होकर स्वामिसेवासे विरत हो जाना अथवा स्थायी सौख्यसे मुँह मोड़ लेना कायरोंका काम है, धैर्यशाली वीर पुरुषोंका नहीं ॥ २८२२ ॥ यात्रीको तीर्थके जलसे तभीतक ठंढकका भय लगता है, जबतक कि वह वस्त्र लपेटे बैठा रहता है। किन्तु जब साहस करके स्नान करने लगता है, तब उसे ब्रह्मानन्दके सदृश सुखकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार योद्धाको तभीतक भय लगता है, जबतक कि वह रणभूमिमें कूद नहीं पड़ता। वहाँ पहुँचकर मर-मिटनेवाले लोगोंको कैवल्य सुखकी उपलब्धि होती है और उसके बाद मुक्ति मिल जाती है' ॥२८२३॥ ऐसा कहकर रिल्हण सिंहकी नाक सदृश सूत्कार करनेवाले बाणोंको लेकर अकेला ही शत्रुसमुदायके बीचमें कूद पड़ा ॥ २८२४ ॥ सुनहली मूठवाली तलवारके दीप्तिसमूहमें उसके खड्गका परतलारूपी नट रणरूपी रंगभूमिमें हरतालकी भाँति उज्ज्वलवर्ण होकर अपनी निखार दिखा रहा था ॥ २८२५ ॥ उसकी तलवारकी मारसे मरे हुए जीवोंके समूह मरणके बाद उठकर फिर शत्रुओंसे चिपट जाते थे, जैसे तृण तृणमणि (तृणग्राही) से चिपटे रहते हैं ॥ २८२६ ॥ रणभूमिमें मरकर लोग उन मृतकोंका अनुसरण करने लगते थे, जिनको जीवनके समय अपना शत्रु समझते थे। देखते-देखते उन दोनोंके प्राण उसी प्रकार अलक्षित हो जाते थे, जैसे पशुओंके चर लेनेपर तृण अलक्षित हो जाते हैं ॥ २८२७ ॥ मृत्युके मुखमें गया हुआ प्राणी मृत्युके किसी अंगमें मार्ग बनाकर बाहर निकल आता था। जैसे तिमि मत्स्य मुँह बन्द कर लेता है, तब उसके पेटका पानी कानकी राहसे बाहर

शश्वत्कुर्वन्परावृत्तीः श्रमशान्त्यै विनिर्गतः । प्रक्षीणभूयिष्ठबलो लब्धोत्सेको रिपावभूत् ॥२८२९॥
पृष्ठतोऽथ पपाताथ चतुष्कः पुष्कलैर्बलैः । साहायकागतं ग्रास्स यं स्वं कंचिदमन्यत ॥२८३०॥
तस्योभयमुखस्यारिसैन्यस्याहेरिवेक्षणात् । न संरम्भः शिखण्डीव परं ताण्डवितोऽभवत् ॥२८३१॥
तौ व्यूहावथ पर्यायैर्मुखपृष्ठं प्रदर्शयन् । सोऽक्षिणोद्युधि मन्थाद्रिर्मथनेऽब्धितटाविव ॥२८३२॥
कीलनिश्चलयोर्भ्राम्यन्नसकृद्वान्तरे द्वयोः । कुविन्द इव पूरण्योस्तुरंगमत्वरान्वितः ॥२८३३॥
भासः प्रत्यग्रहीत्तस्य तमेकपृतनारयम् । एकतोऽम्भोभरं द्वीपस्येव कूलविलोद्गमः ॥२८३४॥
तेन वैरिचमूश्चक्रे ललितायुधकुण्डला । क्रीडता चण्डवेगेन पुरुषायितुमक्षमा २८३५॥
त्रासपाण्डून्द्विषां वक्त्रकुम्भान्स्वेदाम्भसाचितान् । स कुर्वन्भूभुजं जाने भूयो राज्येऽभ्यपेचयत् ॥२८३६॥
स च पार्थ्वीहरिश्चास्तामन्योन्यस्य क्षपाक्षणे । सज्जौ मान्त्रिकवेतालाविव रन्ध्रगवेषिणौ ॥२८३७॥
साहायकागतान्साक्षीकृत्य क्ष्मापतिसैनिकान् । अन्येद्युः सोऽकरोच्छत्रुं वनमार्गावगाहिनम् ॥२८३८॥
पर्यस्तशौचान्संचिन्त्य त्रिल्लकादीनथाययौ । सञ्जपालस्तृतीयस्मिन्दिवसे रिल्हणान्तिकम् ॥२८३९॥
नृपप्रतापग्लपितः स ताभ्यां पर्यशोष्यत । वनान्तः शुचिशुक्राभ्यां घुणक्षीण इव द्रुमः ॥२८४०॥
चितानल इवासारैर्युद्धैः शममनाश्रितः । उदयेन शनैर्निन्ये चतुष्कोऽपि मितोष्मताम् ॥२८४१॥
दारदं तद्बलं दृप्यद्धेमससंनाहवाहिभिः । हयैरवरुरोहाद्रिकुहरादाहवोन्मुखम् ॥२८४२॥

निकल जाता है ॥ २८२८ ॥ इस प्रकार रिल्हण रणभूमिमें पैंतरे वदलता हुआ वड़ी देरतक जूझता रहा । उसके वाद थकावट मिटानेके लिए वाहर निकल आया । अवतक उसकी वहुतेरी सेना कट चुकी थी, अतएव उसे शत्रुपर वड़ा कोध आ रहा था ॥ २८२९ ॥ उसी समय उसके पीछेसे वड़ी विशाल सेनाके साथ चतुष्क वहाँ जा पहुँचा । पहलेसे जिसे वह अपना सहायक मानता आया था, वही उस समय शत्रुरूपमें उसके समक्ष खड़ा था ॥ २८३० ॥ उस अवसरपर उभयमुखी शत्रुसेनाको दोमुँहे साँपकी तरह देख करके भी वह रिल्हणरूपी मयूर क्रुद्ध नहीं हुआ, वल्कि चतुष्कको देखकर मारे खुशीके नाचने लगा ॥ २८३१ ॥ अव दोनों सेनाओंके व्यूहोंको अपना मुख तथा पृष्ठभाग दिखाते हुए रिल्हणने काट गिराया । जैसे समुद्रमंथनके समय मन्दराचलने समुद्रके दोनों तटोंको काट डाला था ॥ २८३२ ॥ वह अपने घोड़ेपर सवार होकर उन दोनो सेनाओंके वीच कीलमें वँधे हुएकी तरह चक्कर काटता हुआ वैसे ही प्रहार कर रहा था, जैसे जुलाहा भरनीमें सूत भरकर करघा चलाता है ॥ २८३३ ॥ उसी समय भास भी रणभूमिमे कूदा और दोमेंसे एक सेनाका वेग उसने सम्हाल लिया । वह उस समय उस द्वीपके सदृश दीख रहा था, जो जलप्रवाहके विचसे एकाएक निकल पड़ा हो और उसके एक ओर वेगसे जल वह रहा हो ॥ २८३४ ॥ कुछ ही देरमे उसने शत्रुसेनाको इस तरह जड़ वना दिया कि उसके योद्धाओंके कुण्डलमात्र शस्त्रास्त्रकी भाँति हिल रहे थे । प्रचण्ड वगसे युद्ध करते हुए भासके आगे वे पुरुषार्थ प्रदर्शन करनेमें सर्वथा असमर्थ हो गये ॥ १८३५ ॥ उसने शत्रुओंके मुखोंको भयके कारण पीला तथा पसीनेसे भरा हुआ करके जैसे उसने पुनः अपने राजाका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २८३६ ॥ इस प्रकार भास तथा लोठक ये दोनों रात्रिके समय मान्त्रिक तथा वताल (पिशाच) की तरह शत्रुके छिद्रकी टोह लेनेके लिए सदा सन्नद्ध रहा करते थे ॥ २८३७॥ दूसरे दिन सहायताके लिए आये हुए राज्यसैनिकोंको साक्षीकी भाँति खड़ा करके उसने शत्रुओंको जंगलकी राहोंसे भाग जानेके लिए विवश कर दिया ॥ २८३८ ॥ त्रिल्लक आदिकी नीयतमे गड़वड़ीकी संभावना देखकर सञ्जपाल तीसरे दिन रिल्हण आदिके पास पहुँचा ॥ २८३९ ॥ राजाके प्रतापकी आगमें झुलसकर लोठक उन दोनोंके साथ सूख गया । जैसे आपाढ़ तथा ज्येष्ठ मासमें जंगलका कोई वृक्ष घुनकर क्षीण हो जाय ॥ २८४० ॥ युद्धरूपी वरसातसे शान्त चिताकी आगके समान धीरे-धीरे उदयके साथ चतुष्ककी भी गर्मी कुछ कम हुई ॥ २८४१ ॥ उसी समय वड़ी अभिमान-भरी दरदराजकी सेनाके सैनिक सुनहले साजके घोड़ोंपर सवार होकर पर्वतकन्दराओंसे युद्धके लिए चले और

तुरुष्कलोकेनाक्रान्तान्देशांस्तद्वशमीयुषः । गङ्कमानैर्जनैर्ज्ञाता कृत्स्ना म्लेच्छावृतेव भूः ॥२८४३॥
प्रयाणमात्रान्तरिते धन्ये द्वारपतावपि । साहसं निःसहायस्य तत्खड्गैरग्रतोऽभवत् ॥२८४४॥
ज्वलत्कनकसंनाहं तत्सैन्यं स द्विपोऽरुधत् । कचज्ज्वालावलिं दावं सनिर्झर इवाचलः ॥२८४५॥
विधूय जयचन्द्रादीनग्रप्रस्थानरोधिनः । वलवाहुल्यदृप्तास्ते व्यगाहन्ताहवावनिम् ॥२८४६॥
तेषां हयसहस्राणि त्रिंशद्विंशत्तुरंगमैः । रंहसा प्रतिजग्राह निजग्राह च गर्गजः ॥२८४७॥
तस्यासुहृद्भिर्ददृशे पौरुषं तदमानुषम् । एकैकस्याग्रतो यस्स वैश्वरूप्यमिवादधे ॥२८४८॥
अश्ववङ्क्षाग्रविन्यस्तवक्त्रास्ते विद्रुताः क्षणात् । जगाहिरे कापुरुषा गिरीन्किंपुरुषा इव ॥२८४९॥
अभूमिज्ञतया गाढ्याच्चैष जातः पराभवः । श्वस्तदस्मान्पुरस्कृत्य जयं प्रत्याहरिष्यथ ॥२८५०॥
इत्युक्ता राजवदनजयचन्द्रादिभिर्निशि । तथेति मिथ्याकथयन्दारदा विद्रवोन्मुखाः ॥युग्मम्॥२८५१॥
प्रवेश्य धन्यद्वारेशौ दूरं वलहरो वली । ऐच्छत्तत्सन्निभिसंघातुं रुद्ध्वा पाश्चात्यपद्धतीः ॥२८५२॥
स्कन्धावारेण सार्धं च दरदां राजवीजिनम् । विधातुं विदधे वुद्धिं तं ततस्तारमूलके ॥२८५३॥
चिकीर्षति ततस्तस्मिन्मत्तेष्वन्धेषु दस्युषु । उत्सेहे साल्हणिः कृत्स्नं राज्यं निश्चित्य निर्जितम् ॥२८५४॥
जयाभावेऽप्यनन्तेदृक्सामन्तसहितस्ततः । भव्योऽस्मि भवितेत्येवं विचिन्त्योत्सिपिचे च सः ॥२८५५॥

पद्मोन्माथाद्द्विरदरदनैरप्रियैः पद्मवन्धोरिन्दौ स्पर्धिन्युदयति वपुः खण्डगः स्वं भ्रियेत ।
तापस्त्यज्येत च रुचिरताभागिभिः सूर्यकान्तैर्भद्राभद्रं व्यसनसमये संभवेदप्रतर्क्यम् ॥२८५६॥

समरभूमिमे आकर उतर पड़े ॥ २८४२ ॥ तुर्क लोगोंने जिन-जिन देशोंपर आक्रमण किया था, उन्हें उनके अधीन हो जानेकी आशंकावश राज्यके नागरिकोंने जैसे सारी धरती म्लेच्छोंसे आच्छादित समझ ली ॥ २८४३ ॥ जबतक धन्य तथा द्वाराधीश उदय युद्धयात्रामे सम्मिलित नहीं हुए थे, तबतक पट्टचन्द्रने किसीकी कोई सहायता नहीं की। किन्तु जब वे दोनों रणके लिए चले, तब तलवार लेकर वह उनके आगे-आगे चला ॥ २८४४ ॥ दमकते हुए सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित शत्रुकी सेनाको उसने रोक लिया, जैसे ऊँची-ऊँची लपटोंवाली दावाग्निको झरनोंवाला पर्वत रोक ले ॥ २८४५ ॥ सेनाके आगे-आगे चलनेवाले जयचन्द्र आदिको ध्वस्त करके बलातिरेकसे दृप्त राज्यसैनिक रणभूमिमे उतर पड़े ॥ २८४६ ॥ शत्रुके हजारों घोड़ोंको गर्गके पुत्र पट्टचन्द्रने अपने बूतेपर केवल बीस-तीस घोड़ोंकी सहायतासे पकड़कर रोक दिया ॥ २८४७ ॥ उसका मानवोत्तर पुरुषार्थ देखते हुए शत्रुयोद्धाओं-मेंसे प्रत्येक सैनिकने विश्वरूप (विष्णुभगवान) के समान गर्गपुत्रको अपने समक्ष उपस्थित पाया ॥ २८४८ ॥ ऐसी स्थितिमे वे सभी कायर शत्रुसैनिक घोड़ोंकी गर्दनपर मुख रखकर किन्नरोंके समान क्षणभरमे भागकर पहाड़ोंपर चले गये ॥ २८४९ ॥ इसपर जयचन्द्र तथा राजवदन आदिने रात्रिके समय अपने सैनिकोंसे कहा कि 'स्थानका भली भाँति ज्ञान न होनेसे अकस्मात् यह पराजय हो गयी है। अतएव कल तुम लोग आकर इन लोगोंपर विजय प्राप्त कर लेना'। यह बात दरदराजके सेनानायकोंने झूठ-मूठ कही थी। वास्तवमे वे वहाँसे पलायन कर जानेकी योजना बना रहे थे ॥ २८५० ॥ २८५१ ॥ उसी समय बलवान् बलहरने धन्य तथा द्वाराधीश उदयको दूर ही रोककर चाहा कि इन्हें यहीं घेरकर पश्चिमका मार्ग अवरुद्ध कर दूँ ॥ २८५२ ॥ तदनन्तर सेनाशिविरके साथ-साथ सभी राजवंशज दरदवासियोंको यहाँसे तारमूलक भेज दिया जाय ॥ २८५३ ॥ जब कि बलहर ऐसा करना चाहता था, उसी समय मदान्ध दस्युओंके मध्यमे बैठे हुए सल्हणके पुत्र भोजने समस्त कश्मीर राज्यको उसने हस्तगत समझ लिया ॥ २८५४ ॥ यद्यपि दरदोंको अभी विजय नहीं मिली थी, तथापि बहुतेरे सामन्तोंके साथ बैठकर भोजने सोचा कि 'मैं भाग्यवान् हूँ, इस लिए मेरी विजय निश्चित है।' यह सोचकर वह मारे दर्पके फूल उठा ॥ २८५५ ॥ जब कि हाथियोंके झुण्ड अपने दाँतोंसे उसी तरह कमलवनको उजाड़ने लगे, जैसे सूर्यका प्रतिद्वन्द्वी चन्द्रमा उदित होकर धीरे-धीरे अपना मण्डल पूर्ण करता है और दीप्तिसे प्रीति रखनेवाले सूर्यकान्त मणि अपना ताप त्याग देते हैं। ठीक ही है, विपत्तिके समय कल्याण और अकल्याण

यौ डामरतया भिक्षोः शश्वत्कृच्छ्रेऽप्युपेक्षणम् । टिक्कादीनां च कौटुम्ब्याद्भर्तुर्द्रोग्धृमूर्धनि ॥२८५७॥
अलवन्यतयानन्यसामान्याश्चर्यवर्धनात् । ततः कृच्छ्रोपयोगाच्च विश्वासस्यैव मूर्धनि ॥२८५८॥
तौ नागराजवदनौ व्यसनावसरे तदा । चित्रं स्वकार्यतात्पर्यादद्भुतादरतां गतौ ॥तिलकम्॥२८५९॥
स्वयं विधेयं नागोऽन्यकृतं तं वीक्ष्य विप्लवम् । अदूरमर्थमन्येन कृतं कविरिवाशुचत् ॥२८६०॥
क्ष्माभृद्विपक्षं स्वं पक्षीकर्तुं छद्मानननं ततः । संत्यज्य राजवदनं मां भजस्वेत्यभाषत ॥२८६१॥
संप्राप्तं वः प्रतीक्षध्वं तेजोवलहरात्मजम् । युग्याधिरूढं किं नारीसेवतां यामिको यथा ॥२८६२॥
इति ते संदिशन्तं च व्यसहन्स विहाय तम् । कामधेनुसमं नागं छागाश्लेषाद्विधिर्न यत् ॥२८६३॥
सर्वः स्वकार्यतात्पर्यात्प्रवर्तेत प्रियाप्रिये । स्नेहवैरेऽन्यदीये तु न किंचिदधिगच्छति ॥२८६४॥
ज्योतिस्तर्जितकान्ति दन्तयुगलं वाध्यं सुधादीधितेर्दानास्वादधिया प्रिया मधुलिहां कुम्भस्थली कुम्भिनः ।
वासस्यैप विरोधभाक्सरसिजस्येत्यत्र नेन्दो रतिस्तस्याप्यायकृतो हितोयमिति नाप्यस्य द्विरेफा द्विपः ॥२८६५
प्रतिष्ठालोठनं कर्तुं ततो वलहरस्य सः । आजन्म वैरं संरेभे तेन भूभृद्धितेच्छया ॥२८६६॥
स तथा दारदान्भग्नानभिन्नो भृभुजेप वः । समोजान्राजवदनो हन्यादित्यभ्यधान्निजैः ॥२८६७॥
दरद्राजानकानीतनेतारौ कम्पनापती । प्रख्यातक्षेमवदनमधुभद्राभिधावुभौ ॥२८६८॥
त्रस्यन्नोजसनामा च कोट्टेशो मन्त्रितं रहः । ब्रुवाणास्तद्व्यहस्यन्त भोजेनान्तरवेदिना ॥२८६९॥
स्फाटिकेनेव सैन्येन तेनाग्रे रुद्धमप्यथ । दिवल्लु राजार्कमहो विड्डसीहेन्धनेऽपतत् ॥२८७०॥

अतर्कितरूपसे आ उपस्थित होते हैं ॥ २८५६ ॥ नाग और राजवदन इन दोनोंमें नाग डामर था। इस नाते विपत्तिके समय भी बारम्बार जिसने भिक्षुकी उपेक्षा की थी और जिसका सम्बन्ध टिक्काके साथ था, वह राजाके द्वारा विश्वासघातियोंका मूर्धन्य समझा गया। दूसरा राजवदन लवन्य न होनेपर भी आश्चर्यजनक रीतिसे आगे बढ़ गया था। विपत्तिके समय सहायता करके उसने राजाका विश्वास प्राप्त कर लिया था। इस तरह विचित्र ढङ्गसे स्वार्थ साधन करते हुए वे दोनों अद्भुत आदरणीय बन गये ॥ २८५७—२८५९ ॥ स्वयं अपने द्वारा किये हुए विप्लवको औरों द्वारा किया गया समझा जानेपर नाग उसी प्रकार दुखी हुआ, जैसे किसी कविकी सूझको कोई दूसरा व्यक्ति अपना ले ॥ २८६० ॥ तदनन्तर जिसे नागने राजाका विपक्षी बनाया था, उस भोजको अपने पक्षमें मिलानेके लिए उसने कपटपूर्ण शब्दोंमें कहा—'तुम राजवदनको त्यागकर मेरे साथ आ जाओ' ॥ २८६१ ॥ उसने फिर कहा—'अभी रथपर चढ़कर तेजोवलहरका पुत्र आ रहा होगा। सो तुम उसकी प्रतीक्षा करो। इस प्रकार स्त्रीके सेवक या चौकीदारकी तरह खड़े रहने क्या लाभ ?' ॥ २८६२ ॥ ऐसा कहनेपर भोजने राजवदनरूपी बकरेको छोड़कर नागरूपी कामधेनुकी सेवा आरम्भ कर दी। क्योंकि वह कार्य उसके अनुरूप नहीं था ॥ २८६३ ॥ इसी प्रकार संसारका प्रत्येक प्राणी अपने कार्यकी सिद्धिके लिए प्रिय या अप्रिय व्यक्तिसे सम्पर्क स्थापित करता है। अन्य लोगोंके साथ वैर या स्नेह करके उसे कुछ लाभ नहीं होता ॥ २८६४ ॥ अपनी दीप्तिसे अन्य दीप्तियोंको पछाड़ देनेवाले चन्द्रमाका आदर करनेके लिए हाथीके दोनों दाँत बाध्य हैं और मदकी सुगन्धिका आनन्द प्राप्त करनेके लिए भौंरोंको गजराजका गण्डस्थल प्रिय लगता है। कमलकी सुगन्धिका विरोधी होनेके नाते उसपर चन्द्रमाका स्नेह नहीं रहता, किन्तु उससे तृप्ति पानेके कारण भौंरा अपने प्रेमी कमलका कदापि वैरी नहीं बनता ॥ २८६५ ॥ तदनन्तर वलहरकी प्रतिष्ठा नष्ट करने तथा राजा जयसिंहका कल्याण करनेके लिए नागने जन्मभरके वास्ते उससे वैर कर लिया ॥ २८६६ ॥ उसके बाद उसने पराजित दरदसैनिकों द्वारा जनसाधारणसे कहलाया—'राजा राजवदनको अपने साथ नहीं ले गया था। वह तो भोजके साथ होकर तुम सब लोगोंको नष्ट कर देनेको उद्यत था' ॥ २८६७ ॥ तदनन्तर क्षेमवदन तथा मधुभद्रके साथ सारी सेना दरदराजके सेनापति द्वारा बुला ली गयी। तब दुर्गपति ओजसने अपने सलाहकारोंसे सलाह की। यह समाचार सुनकर भोजके पक्षवाले लोग हँसने लगे ॥२८६८।२८६९॥ उसी समय यह अफवाह फैली कि 'सूर्य सदृश तेजस्वी राजाको स्फटिकके समान देदीप्यमान किसी सेनाने रोक लिया है और वह बेचारा विड्डसीहरूपी

पार्थिवानर्थदुश्चिन्तामययक्ष्मपरिक्षतः । स यत्कृष्णक्षपाक्षीणसोमसाम्यं समाययौ ॥२८७१॥
रोगग्रस्ते रणग्रष्टे पृष्ठगोप्तरि भर्तरि । तथाभियोज्ये स्थाने च भयजर्जरतां गते ॥२८७२॥
आहारस्थं वल्हरं विहाय निखिलास्ततः । पलायिषत तेऽन्येद्युर्विगाह्य हरिभिर्गिरीन् ॥युग्मम्॥२८७३॥
दृष्ट्वा बहुमतं प्रातरागन्तारः पुनर्वयम् । कथयित्वेति संप्रार्थ्य साल्हणिं सह तेऽनयन् ॥२८७४॥
प्राक्पीतकोशो वैवश्यात्स तेषामनुगोऽभवत् । भ्रष्टकार्यस्तु वैह्वल्यं श्वभ्रे मज्जन्निवादधे ॥२८७५॥
मुहुः सर्वशिरोद्रिक्तरक्तपूर्णमिव ज्वलत् । अवरोहदनच्छाम्बुसोपानाश्मनिभं मुहुः ॥२८७६॥
ज्ञातेन पतितेनेव मुहुर्व्योम्ना महीसमम् । व्रजतस्तस्य वैलक्ष्याद्लक्ष्याक्षमभून्मुखम् ॥२८७७॥
दध्यौ च धिङ्नो ये शश्वत्प्रभावं वयमीदृगम् । राज्ञो दृष्ट्वाप्यनात्मज्ञा जानीमो मर्त्यधर्मताम् ॥२८७८॥
प्रतिभाप्रौढनिर्णीततत्त्वानां नान्यथा शिरः । महाकवीनामेतादृक्प्रतापानलवर्णने ॥२८७९॥
राज्ञः प्रतापशिखिनः कणाः क्षोणौ न सन्ति चेत् । तत्कस्माद्वयमायाताः पदन्यासेप्यधीरताम् ॥२८८०॥
अनेकशोऽङ्गैर्वीराणां पीतधाराम्बुडम्बरे । शोषः प्रादुष्कृतो न स्यात्तज्ज्वालासंज्वरं विना ॥२८८१॥
किमन्तरेण तद्धूममालान्ध्यं प्रोन्मिषद्दृशः । मार्गामार्गविभागस्य परिज्ञाने विमूढता ॥२८८२॥
मधुमत्यास्तटेऽन्यस्मिन्विवर्ज्य दरदः स्थितान् । वीचीजवनिकाच्छन्नः सोवाप्याथ तटेवसत् ॥२८८३॥
क्रमादुत्खातखेदस्तैर्नीत्वा स्वशिविरान्तरम् । तत्रैष्यतेति संधातुं रोहद्द्रोहस्पृहातुरैः ॥२८८४॥
नृपः तेषां ह्यगण्यार्थवर्षिणं नयनैपुणात् । उपजीवितुमिच्छाऽभूत्तद्रक्षणवणिज्यया ॥२८८५॥

भट्टीमें जा गिरा है' ॥ २८७० ॥ इस प्रकारके अनर्थसे उत्पन्न दुश्चिन्तारूपी क्षयरोगसे क्षीण होकर वह राजा कृष्ण-पक्षके चन्द्रमाकी तरह दुर्बल दिखायी देने लगा ॥ २८७१ ॥ उधर अपने पृष्ठपोषक स्वामीके रणभूमिमें बीमार तथा भयसे जर्जर हो जानेपर जब कि वल्हर भोजन कर रहा था, उसी समय सब सेनानायक तथा सैनिक घोड़ोंपर सवार हो होकर पहाड़ोंपर भाग गये ॥ २८७२ ॥ २८७३ ॥ 'इस बातपर विचार करनेके बाद यदि बहुमत लौटनेके पक्षमें हुआ तो कल सवेरे हम लोग फिर लौट आयेंगे' यह कहकर वे भगोड़े भोजको भी अपने साथ लेते गये ॥ २८७४ ॥ विवशभावसे उसने उनके साथ कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा की थी। अतएव वह उनका अनुगामी बन गया। इस प्रकार कार्यभ्रष्ट होकर भोज खन्दकमें गिर जानेके समान विह्वल हुआ ॥ २८७५ ॥ बार बार उसकी सभी शिराओंका रुधिर उफनकर खौलने लगता था। कभी-कभी उसे ऐसा अनुभव होता था कि वह किसी सोपानके पत्थरपर खड़ा है और उसके ऊपर गन्दा पानी गिर रहा है। उसे बार बार यह मालूम देता था कि वह आकाशसे धरतीपर गिर रहा है और जब वह रास्तेपर चलता था, तब उसे कुछ भी नहीं दिखायी देता था और लज्जासे उसका मुख अदर्शनीय हो जाता था ॥ २८७६ ॥ २८७७ ॥ उसने सोचा—'राजाके प्रभावको नित्य देखनेवाले आत्मज्ञानशून्य हम लोगोंने मानव धर्मतकको नहीं जान पाया। हमें धिक्कार है ॥ २८७८ ॥ जिनकी प्रतिभा प्रखर है और जिन्हें सभी तत्त्व ज्ञात हो चुके हैं, वे ही महाकवि ऐसे-ऐसे राजाओंके प्रतापरूपी अग्निका वर्णन करनेमें अपना मस्तिष्क सही अर्थमें लगा सकते हैं ॥२८७९॥ राजाके प्रतापरूपी अग्निके कण यदि धरतीपर न होते तो हम जैसे कवि पदोंका विन्यास करनेके लिए क्यों अधीर हो उठते ॥२८८०॥ यदि उस राजाके प्रतापा-नलकी आँच न होती तो उस समय जब कि उसके सैनिक मूसलधार वर्षामें भींग गये थे, उनके भीगे अंगोंको कौन सुखाता? ॥ २८८१ ॥ यदि राजाकी प्रतापाग्नि न होती तो उस आगके धुएँसे जब लोगोंकी आँखें भर जाती, तब सही या गलत रास्ता कौन बताता? ॥ २८८२ ॥ इसप्रकार मधुमती नदीके अन्य तटपर टिके हुए दरद सैनिकोंको छोड़कर भोज नदीकी तरंगरूपिणी जवनिकासे आच्छन्न दूसरे तटपर पहुँचकर वहीं रहने लगा ॥ २८८३ ॥ धीरे-धीरे उसके साथियोंने समझा-बुझाकर उसका खेद दूर किया और उसे अपने शिविरमें ले गये। वहाँ उन विद्रोहियों (सैनिकों) ने सोचा था कि राजाके मन्त्री लोग हमसे सन्धि करने अवश्य आयेंगे ॥२८८४॥ तदनन्तर अपनी नीतिके नैपुण्यसे अपरिमित धनवर्षी राजाकी सेवा करनेकी आकांक्षा फिर उन सबके मनमें जागी और वे अपनी रक्षाके आश्वासनपर यह सौदा पटानेको राजी हो गये ॥२८८५॥ किन्तु उन्हें राजाकी ओरसे

नानेहा विग्रहस्यायं प्रत्यासन्नो हिमागमः। मधुमासि विधास्यामः पुनरारब्धिमुत्तमाम् ॥२८८६॥
कालक्षेपेक्षमत्वं चेद्भुट्टराष्ट्राध्वनाऽधुना। त्वाऽन्तर्निर्दध्मो वलिनस्त्रिल्लकस्योपवेशने ॥२८८७॥
राजानं राजवदनः श्रितस्तैरित्यसावतः।
उक्त्वैष्यत स्वराष्ट्रान्तर्युक्त्या बद्धुं नराधमैः ॥ तिलकम् ॥२८८८॥
अपि राजपुरीयाणां कौटिल्यं तर्हि जीयते। दैर्घ्यं निदाघघस्राणां वियोगदिवसैरिव ॥२८८९॥
तथा यातमुपालेभे दूतैर्वलहरोऽथ तम्। ग्रहौ निहितवांस्त्वस्मीति त्रोटितवटाकरः ॥२८९०॥
उत्साहादाहवस्थोऽपि स तथा गार्गिसग्रिमम्। आयान्तं च नृपानीकमुत्साहान्न व्यचिन्तयत् ॥२८९१॥
अकस्माद्विद्रुतदरद्राजभोजादिवार्तया। न व्यदीर्यत यद्धैर्यपर्याप्तेस्तत्किलाङ्कनम् ॥२८९२॥
आडम्बरालम्बनस्य भेदेऽप्यच्छिन्नविग्रहः। यद्युद्धोद्धतं सिध्येत्तत्कस्यामानुषं विना ॥२८९३॥
कालानुरोधात्संधित्सु धान्यद्वाराधिपावथ। सोऽयोजयद्विलम्बेन भोजप्रत्यागमाशया ॥२८९४॥
ततोलंकारचक्रः स नेतुं सान्हणिमाययौ। ज्ञातेयादारदानेत्य प्रार्थिता परिपन्थिनीः ॥२८९५॥
बुद्ध्वा तदनुबन्धेऽपि द्रोहनिर्बन्धिनीः सभाः। अग्रहीन्मार्गसेत्वग्रे निधनाद्व्यवसायिताम् ॥२८९६॥
भृत्यैः सह युवप्रायैर्वीक्ष्य तं मर्तुमुद्यतम्। दरातुरं दरद्राजसैन्यं तद्दैन्यमाययौ ॥२८९७॥
व्यपोहन्ती वलहरी बाहुभिः कलहं सरित्। कल्लोलास्फालनोल्लापैर्निनिन्देव दरद्बलम् ॥२८९८॥
ह्रेपितः स्वावरोधैश्च सेर्ष्यैश्च म्लेच्छपार्थिवैः। सैन्यैः कदनभीतैश्च विड्डसीहोऽथ तं जहौ ॥२८९९॥
पुरःसरैर्भग्नसेतुपालैः पारं परं ततः। विद्राव्य तानि स प्राप भिन्दंस्तूर्यरवैर्दिशः ॥२९००॥

उत्तर मिला कि 'अब लड़ाईका समय नहीं रहा। क्योंकि हिमवर्षाके दिन समीप आ गये है। वसन्त ऋतुमे उच्चकोटिकी तैयारी की जायगी' ॥ २८८६ ॥ तब उन सब विद्रोहियोने सोचा कि यदि यहाँ समय विताना कठिन हो तो भुट्टराष्ट्रके मार्गसे होकर हम लोग वलवान् त्रिल्लकके यहाँ चले चले ॥ २८८७ ॥ क्योंकि राजवदन राजाके आश्रित हो गया है। अतएव यहाँ रहनेपर वह कुछ नराधमोंके साथ किसी युक्तिसे हमे पकड़नेके लिए अवश्य आयेगा ॥ २८८८ ॥ राजपुरीके लोगोका तो कुटिल कार्य करनेका धन्धा ही ठहरा। जैसें वियोगके दिन लम्बे होते हैं, वैसे ही गर्मीके भी दिन लम्बे होते है ॥ २८८९ ॥ तदनन्तर वलहरने दूतो द्वारा उलाहना भेजा कि 'आप लोगोंने मुझे विचित्र मायाजालमे फँसा दिया' ॥ २८९० ॥ अत्यधिक उत्साहके कारण युद्धभूमिमें रहते हुए भी उसने गर्गके पुत्र पञ्चचन्द्र तथा राजाकी सेनाके आगमनकी भी कोई चिन्ता नहीं की ॥ २८९१ ॥ इस प्रकार अकस्मात् दरद्राजके सेनानायकों तथा भोजके पलायनका समाचार सुन करके भी जो उसका धैर्य नहीं छूटा, वह उसके लिए बड़े महत्त्वकी बात थी ॥ २८९२ ॥ इस तरह युद्धका सारा आडम्बर छिन्न-भिन्न हो जानेपर भी जो उसने युद्ध बन्द नहीं किया और वीरताके साथ लड़ा। वह कार्य भी उस मानवोत्तर पुरुषके सिवाय और कौन कर सकता था ॥ २८९३ ॥ आगे चलकर समयके अनुरोधवश सन्धिके इच्छुक धन्य तथा द्वाराधीश उदयने वहुत विलम्ब करके योजना वनायी। क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि भोज स्वयं लौट आयेगा ॥ २८९४ ॥ उसके वाद भोजको ले आनेके लिए अलंकार स्वयं गया। वहाँ पहुँचकर उसने दरद सैनिकोंके समक्ष उसे वहुत ऊँचा-नीचा समझाया ॥ २८९५ ॥ इस प्रकार अनेक तरहसे समझानेपर भी जब अलंकार असफल रहा और द्रोहकी भावना ज्योंकी त्यों वनी देखी, तब उसने कहा कि जबतक आप लोग मेरे साथ चलनेको न राजी होंगे, तब तक मै यहीं मार्गमें पड़ा रहूँगा और अपने प्राण दे दूँगा ॥ २८९६ ॥ उसको जब युवकप्राय भृत्योंके साथ मरनेके लिए उद्यत देखा, तब दरद्राजके सैनिकोंका हृदय पसीजा और वे दैन्यका अनुभव करने लगे ॥ २८९७ ॥ इस प्रकार अपने हाथों कलहको दूर करनेके लिए उद्यत वलहररूपिणी नदी अपने कल्लोलसे हाहाकार करती हुई जैसे उन दरदसैनिकोंकी निन्दा करने लगी ॥ २८९८ ॥ तदनन्तर अपनी स्त्रियों द्वारा लजाये जानेपर, म्लेच्छ राजाओंमे ईर्ष्याका संचार होते तथा अपनी ही सेनामे फूट पड़ते देखकर विड्डसीहने भोजको अलङ्कारचक्रके साथ जानेकी अनुमति दे दी ॥ २८९९ ॥ वादसें

असामर्थ्ये वरूथिन्याः स्वस्य चार्थितसंधिना । आनीतो विड्डसीहेन दूतः प्रोक्तोऽथ भूपतेः ॥२९०१॥
अमानुषानुभावेन तावत्त्वत्स्वामिना भवेत् । प्रातिसीमिकसामन्तबुद्ध्या स्पर्धासु धीवरः ॥२९०२॥
अश्रद्धेयानुसंधान एव यान्तौ यमान्तिकम् । जयराजोऽस्मि चामुष्य प्रभावावेदकौ दिवि ॥२९०३॥
तेन दिव्यानुभावेन निर्जयोऽपि जयो मम । पान्थस्य कूलविभ्रंशात्तीर्थे पतनमुन्नतिः ॥२९०४॥
अथायातः पुरे स्थित्वा कंचित्कालं निजेविशत् । यमराष्ट्रमसत्कीर्तिलसद्वन्दनमालिकम् ॥२९०५॥
अबुद्ध्वा भोजमायान्तं संधिं तत्रैव वासरे । सार्धं द्वारेशधन्याभ्यां स राजवदनोऽप्यगात् ॥२९०६॥
अश्वागतं तं व्यावृत्य षष्ठं श्रेष्ठं मनस्विनाम् । आदाय तावथाभ्यर्णं प्राविक्षातां क्षमापतेः ॥२९०७॥
अहंकाराद्विमोहाद्वाऽविमर्शेन बहिष्कृतौ । उपेक्षामक्षते भोजेऽभजतां राजबीजिनि ॥२९०८॥
आहूतस्तु हठोत्कण्ठाभाजापि प्रभुणाऽसकृत् । अनिःशेषीकृतारातिर्न व्यावर्तत रिल्हणः ॥२९०९॥
प्रभोः पुरस्तात्कार्यान्ते तेन स्थातुमशक्यत । प्रसादाकांक्षिणा सूदेनेव भोक्तुं न हि क्वचित् ॥२९१०॥
द्विधा कृता येन युद्धे पृथ्वीहरसुतद्वयी । मगधेन्द्राकृतिर्भीमेनेव कार्याक्षमाऽभवत् ॥२९११॥
मातृकुक्षिमिव स्वोर्वीं तेनाजौ लोष्टकः कृतः । खाण्डवे खण्डितः सर्प इव गाण्डीविनाविशत् ॥२९१२॥
भजंश्चतुष्कः संकोचं दुर्भेदं त्रिल्लकालयम् । स्वकायकर्परं दर्पोज्झितः कूर्म इवाविशत् ॥२९१३॥
निःशेषीकृतकार्यः स शौर्येणैव महीपतेः । पार्श्वं पादनखज्योतिःपट्टबन्धाप्तये ययौ ॥२९१४॥
प्रतापैर्नृपतेरित्थं विप्लवः शोषितोऽप्यभूत् । अमात्यमतिदोषेण भूयः प्रादुष्कृताङ्कुरः ॥२९१५॥

सेतुपालोंको आगे करके और उनके द्वारा बाधकोंको दूर कराके अलङ्कारने नदी पार कर ली और तूर्य-ध्वनिसे दिशाओंका मौन भङ्ग करता हुआ वह भोजको लेकर अपने शिविरमे जा पहुँचा ॥ २९०० ॥ भोजके चले जानेपर अपनी सेनाकी कमजोरी देखकर सन्धिके लिए उत्सुक विड्डसीहने राजाके दूतको बुलाकर कहा ॥ २९०१ ॥ 'आपके महाराजका प्रभाव मानवोत्तर है। उसके समक्ष मुझ जैसे एक धीवरका प्रभाव स्पर्धा कैसे कर सकता है ?॥ २९०२ ॥ अनुचित रीतिसे उनके प्रभावका अनुसन्धान ही करते-करते हम और जयराज यमपुर जा पहुँचेंगे और वहाँ आपके महाराज जयसिंहका प्रभाव कह सुनायेंगे ॥ २९०३ ॥ उस दिव्य प्रभावसम्पन्न राजाके द्वारा यदि मेरी पराजय होती है तो वह भी मेरी विजय ही होगी। क्योंकि यदि कगार गिर जानेसे यात्री तीर्थमे गिर जायँ तो वह भी उनकी उन्नति ही मानी जाती है' ॥ २९०४ ॥ तदनन्तर विड्डसीह वहाँसे अपने नगरको चला गया और कुछ दिन वहाँ ही रहा। ऐसा करके उसने यमराजके राज्यको पार कर लिया, जहाँ कि उसके पातकोंकी पताकाये फहरा रही थीं ॥ २९०५ ॥ उधर भोजके आगमनका समाचार जाने बिना उसी दिन राजवदनने द्वाराधीश उदय तथा धन्यके साथ सन्धि कर ली ॥ २९०६ ॥ तदनन्तर मनस्वियोंमे श्रेष्ठ षष्ठचन्द्र अश्वारूढ होकर उन दोनोंके साथ राजा जयसिंहके पास पहुँचा ॥ २९०७ ॥ बादमे अहंकार, अज्ञान अथवा अविचारवश वे लोग सकुशल राजवंशज भोजकी उपेक्षा करने लगे ॥ २९०८ ॥ अनुत्कण्ठित भावसे यद्यपि राजाने कई बार बुलवाया, किन्तु शत्रुओंको समाप्त किये बिना रिल्हण नहीं लौटा ॥ २९०९ ॥ बिना काम पूरा किये वह राजाके समक्ष नहीं जा सकता था। जैसे अपने स्वामी-को प्रसन्न रखनेका अभिलाषी सूद (रसोइया) उसके भोजन किये बिना खाता ॥ २९१० ॥ जिसने युद्धमे भीमके समान मगधेन्द्र जरासन्ध जैसी आकृतिवाले पृथ्वीहरके दो पुत्रोंको दो भागोमे विभक्त करके बेकार कर दिया था ॥ २९११ ॥ जैसे खाण्डव वनमे अर्जुनने सर्पको काटकर बिलमे घुस जानेके लिए विवश कर दिया था। उसी प्रकार युद्धमे रिल्हणने लोष्टकको माताकी कोखके समान अपनी धरतीपर चले जानेके लिए बाध्य कर दिया ॥ २९१२ ॥ उधर त्रिल्लकके दुर्भेद्य भवनमे संकोचवश दर्पहीन चतुष्क उसी प्रकार प्रविष्ट हुआ, जैसे कछुआ अपने शरीरके खपड़ेमे घुस जाता है ॥ २९१३ ॥ अपने पराक्रमसे रिल्हणने जब राजाका सब काम पूरा कर लिया, तब अपने परतले पर प्रभुके चरणोंकी नखदीप्ति डालनेके लिए वह महाराज जयसिंहके पास पहुँचा ॥ २९१४ ॥ इस प्रकार कश्मीरनरेशके प्रतापसे यद्यपि वह विप्लव शान्त हो गया, किन्तु मंत्रियोंके दोषसे दूसरे

दण्डार्हो राजवदनो दानेनाप्यायितो यतः। निर्भयं भोजमायान्तं प्रतिजग्राह तं पुनः ॥२९१६॥
उत्कोचपरिणामात्तं सोऽथ स्थापयति स्म तम्। दिन्नाग्रामाभिधे स्थाने खाशकानां निवेशने ॥२९१७॥
इत्येनमब्रवीच्छ्वश्वेदायास्यो नानुगामिनः। मितानुयायी द्वारेशः आयास्यद्गोचरान्मम ॥२९१८॥
सोत्कम्पः साहसस्रोतःपातेऽनीयत नौरिव। त्रिल्लकेनापि स स्थैर्यं नीतिरज्जुप्रसारणात् ॥२९१९॥
व्यसनोल्लासवैवश्यं विशां पत्युर्व्यचिन्तयत्। येनाव्यवस्थाप्राथम्यं स जाल्मः पुनरग्रहीत् ॥२९२०॥
अलंकारादिभिः स्वास्थ्ये स्थाप्यमानोपि मन्त्रिभिः। अत्यजन्नैव कौटिल्यमजितात्मेव दुर्ग्रहम् ॥२९२१॥
गदं वैद्य इवापाकं तमवज्ञाय पार्थिवः। पक्वगण्डानिवारेभे रिपून्पाटयितुं परान् ॥२९२२॥
आगन्तव्यं त्वया पश्चाद्यात्स्वस्मासु प्रकम्पताम्। भोजमुक्त्वेत्यलंकारचक्रोऽगाद्विप्लवोद्यतः ॥२९२३॥
तं जयानन्दवाडाख्यो दस्युरानन्दवाडजः। अन्वयुर्विक्रमोदग्राः परेऽपि क्रमराज्यजाः ॥२९२४॥
अग्रस्थितो राजगृह्योऽलंकारः स्वल्पसैनिकः। वालुकासेतुकल्पस्तैर्जज्ञे सिन्धुरयैरिव ॥२९२५॥
स तु रामचराद्याजिक्षोभसंभावनां विशाम्। उदपादयदेकाकी कुर्वन्बहुभिराहवम् ॥२९२६॥
आपानरभसक्षुभ्यद्रक्षःसंभ्रमदक्षिणम्। रणं जगाम गञ्जात्वमञ्जसास्रपरिस्रुतः ॥२९२७॥
स तूलकूटमिव तत्कटकं विकटं द्विषाम्। किमन्यत्प्रैरयत्क्वापि प्रभञ्जन इवाञ्जसा ॥२९२८॥
ग्रासाय गृध्रकङ्कादिपत्त्रिव्रातस्य तत्यजे। आनन्दवाडसूनुः स हत्वा तेनेषुणा रणे ॥२९२९॥
भोजस्योत्थातुकामस्य जिघृक्षोः क्ष्माभुजश्च तत्। पङ्कप्रधावत्ककरव्याधन्यायो व्यवर्धत ॥२९३०॥
अनुड्डयनसामर्थ्यः श्राम्यति क्ककरो यथा। धावन्पङ्के पतन्व्याधोऽप्यनुधावत्यथान्वहम् ॥२९३१॥

अंकुर निकल आये ॥ २९१५ ॥ दण्डनीय राजवदनको धन देकर प्रसन्न किया गया था। अतएव निर्भय भावसे राजाके पास आये हुए भोजको वह फिर उकसाने लगा ॥२९१६॥ तदनुसार उसने भोजको घूसके रूपमें पुष्कल धन देकर दिन्नाग्राममें खशोंके घर टिका दिया ॥२९१७॥ साथ ही कहलाया कि कुछ अनुयायियोंके साथ द्वाराधीश उदय कल मेरे समक्ष आयेगा ॥ २९१८ ॥ जैसे जलकी धारामें कोई डगमगाती नाव सम्हाल ली जाय, उसी प्रकार त्रिल्लकने अपनी नीतिरूपिणी रज्जुका प्रसार करके भोजको स्थायित्व प्रदान किया ॥२९१९॥ इस प्रकार पुनः संकटकाल उपस्थित देखकर राजाने सोचा कि जिस धूर्तके कारण पहले व्यवस्था बिगड़ी थी, उसने फिर वही चाल अपनायी ॥ २९२० ॥ अलंकारचक्र आदि मंत्रियोंके साथ अच्छे पदपर नियुक्त हो करके भी यह अजितेन्द्रिय पुरुषके दुराग्रहकी भाँति अपनी कुटिलता नहीं त्यागता ॥२९२१॥ तब जैसे अपक्व रोगकी वैद्य उपेक्षा करता है, उसी प्रकार राजवदन आदिकी उपेक्षा करके राजा पके फोड़ेके समान अन्यान्य शत्रुओंको ध्वस्त करने लगा ॥ २९२२ ॥ 'जब हमारे पैर उखड़ने लगे, तब तुम पीछेसे आ पहुँचना' ऐसा भोजसे कहकर अलंकारचक्र विप्लव करनेके लिए आगे बढ़ा ॥ २९२३ ॥ उस समय आनन्दवाडका पुत्र दस्यु जयानन्द तथा क्रमराज्यके अन्यान्य पराक्रमी योद्धा उसके साथ हो गये ॥ २९२४ ॥ राजाका प्रधान न्यायाधीश अलंकार वालूके बाँधसदृश थोड़ी-सी सेना लेकर उन विद्रोहियोंके समक्ष जा डटा, जिनके पास नदीके बहाव जैसी असंख्य सेना थी ॥ २९२५ ॥ इस स्थितिमें वह अकेला कैसे लड़ सकता था, जब कि विपक्षमें बहुतसे लोग थे। तथापि उसने अकेले ही रामचर आदि बहुतेरे राजाओंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ २९२६ ॥ मदिरा पी-पीकर मतवाले एवं क्षुब्ध शत्रुसैनिकोंका वह प्रबल समुदाय रुधिरकी धारा बहाता हुआ झूम रहा था ॥ २९२७ ॥ फिर क्या था, अलंकारकी सेना रुईके ढेरकी भाँति शत्रुओंकी सेनाके झोंकेसे उड़ गयी ॥ २९२८ ॥ तदनन्तर अलङ्कारने रणभूमिमें अपने एक बाणसे आनन्दवाडके पुत्र जयानन्दको काट डाला और उसका मांस गृध्र-कङ्क आदि पक्षियोंको खानेके लिए सौंप दिया ॥ २९२९ ॥ भोज अपनी उन्नति चाहता था और राजा जयसिंह उसको पकड़नेके लिए वैसे ही प्रयत्नशील था। जैसे कोई तीतर दलदलमें भाग रहा हो और बहेलिया फँसानेके लिए उसका पीछा करता हो ॥ २९३० ॥ जैसे उड़नेमें

प्रसङ्गे साहसस्यैवं भोजः क्लैव्यमगात्सदा ।
तं प्राप्तुमिच्छुर्भूपोऽपि मतिमोहं मुहुर्मुहुः ॥ युग्मम् ॥२९३२॥

दिन्नाग्रामस्थिते भोजे स राजवदनोऽप्यगात् । पुनः किं चौरचण्डालाः श्रेयसीत्युक्तिमीशितुः ॥२९३३॥
डामरा भग्नसंघाता भूयः पूर्वाधिकां ततः । कन्थां ते ग्रन्थयामासुर्मुहुर्या शौर्यशालिनः ॥२९३४॥
ते द्वारपतिमायातं सोढुं शेकुर्न केवलम् । अशक्यैराहवैर्यावित्तात्पर्यादुदवेजयन् ॥२९३५॥
तेषां त्राणार्थमन्येषामुत्थानार्थमथाययौ । कृष्टोऽलंकारचक्रेण नीविं दत्त्वा स साल्हणिः ॥२९३६॥
तेषां परेद्युः पार्श्वं स यियासुरसकृद्यदा । हायाश्रमं श्रान्तसैन्यो द्वारेशोऽबुद्ध तं तदा ॥२९३७॥
अजानन्निव तेषां स व्याजसंधिं निवद्धवान् । मिपात्कुतोऽप्यगात्तिर्यक्स्थितं सत्तारमूलकम् ॥२९३८॥
तस्मिंस्तत्र स्थिते दूरात्कुतस्त्यामपि पूत्कृतिम् । श्रुत्वा भोजोऽवदत्सायं किमपि व्याकुलीभवन् ॥२९३९॥
निजैर्विहस्यमानोऽपि त्रासात्तस्मादहेतुकात् । व्यरंसीत्संभ्रमान्नासौ चक्रे सज्जांस्तु वाजिनः ॥२९४०॥
त्रस्तोऽलंकारचक्रोऽथ दशग्राम्यग्रतो द्रुतम् । क्व राजपुत्र इत्येवं कथयित्वा पलायितः ॥२९४१॥
उदतिष्ठत्ततो ग्राममध्यात्तूर्यध्वनिर्महान् । आस्कन्दावेदकः सेनानिनादश्च क्षपामुखे ॥२९४२॥
अलक्षितो ध्वान्तमध्ये भेजे भोजः पलायनम् । श्वः कर्तव्येष्वलंकारचक्रो युद्धाय संदधे ॥२९४३॥
दत्तो द्वाराधिपेनाग्निर्गिरिवर्त्म प्रकाशयन् । ध्यान्तध्वस्तात्मनां तेषां तदाऽभूदुपकारकः ॥२९४४॥
द्वाराधिपस्य क्षाम्यन्तः संधिं भोजप्रतीक्षया । श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं भङ्गं ते डामरा ययुः ॥२९४५॥
असंत्यजन्नपत्यादिवन्धं धीरोचलाश्रयात् । आजिं स भोजोऽलंकारचक्रेणामङ्गलावहम् ॥२९४६॥

असमर्थ तीतर थक जाता है और दलदलमें फँसता तथा गिरता हुआ वहेलिया फिर भी उसका पीछा करता रहता है ॥ २९३१ ॥ उसी प्रकार इस साहसके प्रसंगमें भोज थक गया, किन्तु मुग्धवुद्धि राजाने उसको पकड़नेका प्रयत्न नहीं छोड़ा ॥२९३२॥ तदनन्तर जव कि भोज दिन्नाग्राममें था, उसी समय राजवदन भी वहाँ पहुँच गया। जव इस प्रकार चोरों और चण्डालोंका जमावडा हो गया, तव कल्याणकी वात भला कौन सोच सकता था ॥ २९३३ ॥ यद्यपि शक्तिशाली डामरोंका संघ एक वार ध्वस्त हो चुका था, किन्तु इस समय उन्होंने पहलेसे भी अपना प्रवल सङ्गठन वना लिया ॥ २९३४ ॥ वे सव अकेले द्वाराधीश उदयको आते देखकर नहीं सह सके और दूपित अभिप्रायसे उन्होंने उसे उद्विग्न करनेके लिए वेढङ्गा युद्ध छेड़ दिया ॥ २९३५ ॥ तभी अपने सहयोगियोंकी रक्षा तथा उन्नतिके लिए पुष्कल धन देकर अलङ्कारचक्रके वुलावेपर सल्हणपुत्र भोज वहाँ आ गया ॥ २९३६ ॥ एक दिन वाद जव भोज उन लोगोंके पास जानेवाला था, तभी द्वाराधीश उदयको यह वात मालूम हो गयी। क्योंकि उस समय वह अपने थके हुए सैन्यके साथ हायाश्रममें विश्राम कर रहा था ॥ २९३७ ॥ उसी समय उदय तिरछे मार्गसे चलकर लोगोंके अनजानमे तारमूलक जा पहुँचा। वहाँ वह भोजसे मिला और उसके साथ व्याज सन्धि कर ली ॥ २९३८ ॥ जव भोज वहाँ टिका था, तभी सायंकालके समय उसने किसीके रोदनकी आवाज सुनी। सो सुनकर वह व्याकुल हो उठा और कुछ कहा ॥ २९३९ ॥ इस प्रकार अकारण भयभीत भोजको देखकर उसके साथियोंने हँसी भी उड़ाई, किन्तु वह इतना घवड़ा गया था कि तुरन्त घोड़े तैयार करनेकी आज्ञा दे दी ॥ २९४० ॥ इस वातसे अलङ्कारचक्र भी दहल उठा था और दशग्राममे शीघ्र पहुँच तथा 'राजपुत्र भोज कहाँ हैं ?' यह पूछकर भाग गया ॥ २९४१ ॥ सायंकालको मुँहअँधेरे उस संग्राममें वड़े जोरोंसे तूर्यध्वनि होने लगी और सेनाका आक्रमणसूचक निनाद सुनायी देने लगा ॥ २९४२ ॥ उसी समय घोर अन्धकारके मध्य भोज अलक्षित रूपसे भाग गया और अलङ्कारचक्र अगले दिनके युद्धकी योजना वनाने लगा ॥ २९४३ ॥ उसी अवसरपर द्वाराधीश उदयने पहाड़ी मार्गपर उजाला करनेके लिए आग जलवायी, जो इन लोगोंके लिए विशेप लाभदायक सिद्ध हुई ॥ २९४४ ॥ भोजकी प्रतीक्षामें वैठे हुए डामरोंको जब उदयके साथ सन्धि हो जानेका समाचार मिला तो वे सव छितरा गये ॥ २९४५ ॥ उस धैर्यशाली भोजने

संरम्भात्कर्तुमारेभे सामर्थ्यान्न च चक्षमे। भोजस्तत्राप्यभूत्तर्पान्नाहारादिसुखान्वितः ॥२९४७॥

बाणाग्निजस्त्रिपुरनिर्दहने प्रतापः पाथोनिधेः प्रमथने वडवाग्निजन्मा।
आसाद्य मन्दरनगेन समागमं हि न क्वापि पन्नगपतेः सुखसख्यमासीत् ॥२९४८॥

क्षुत्पिपासाश्रमं हन्तुं प्राप्तः स्वविषयावनौ। अलंकारात्मजैर्भूयो वद्धुं भोजोऽभ्यलप्यत ॥२९४९॥
पितुर्मतेन बुद्ध्या वा स्वया तत्ताद्विधित्सतः। सोऽभिसंधाय निर्यातः प्रापाथ विषयान्तरम् ॥२९५०॥
ततो वलहरेणैव कृत्यं निश्चित्य कार्यवित्। अनास्थोऽन्यलवन्येषु दिन्नाग्रामं पुनर्ययौ ॥२९५१॥
द्वाराधिपोऽहितोद्धारधीरोऽप्यत्रान्तरेऽक्षमः। चक्षूरोगेण भग्नाभियोगोऽकस्माद्व्यधीयत ॥२९५२॥
भोजाय दातुमैच्छद्यो डामरस्ते सुते ददौ। पर्माण्डये गुल्हणाय राजजाय च निर्जितः ॥२९५३॥
रोगोच्चण्डतया दण्डप्रयोगावसरे कृते। तत्र साम प्रयुज्येव द्वारेशो विवशोऽविशत् ॥२९५४॥
अभियोगक्षणे तस्मिन्नययौ भारसहः क्षयम्। दुर्नामकामयक्षामः षष्ठचन्द्रोऽपि गर्गजः ॥२९५५॥
तत्रामयाविन्येवात्तोद्रेकौ तदनुजौ निजौ। चक्राते वसुधां दुःस्थामास्कन्दाद्यैरुपद्रवैः ॥२९५६॥
त्रिल्लकः प्रवलैरन्यैः सहाभेदं प्रवर्धयन्। नाग्रहीद्विग्रहैकाग्रः सान्त्वनामपि भूपतेः ॥२९५७॥
षष्ठे निष्ठां गते रोगमग्ने द्वारपतावपि। नियुक्तः क्ष्माभुजा धन्यो निरगात्तारमूलकम् ॥२९५८॥
भोजश्च्युतोऽमुतोऽन्येषां वलिनां गोचरे पतेत्। प्राप्तप्रतिष्ठो निस्तीर्णो देशाद्वासाध्यतां व्रजेत् ॥२९५९॥

इति संचिन्त्य सामाद्यैरुपायैस्तं जिघृक्षुणा।
क्ष्माभुजामन्दसंरम्भो विदधे सोऽभियोगभाक् ॥युग्मम् ॥२९६०॥

एक उच्चकोटि (उदय) का आश्रय पाकर अपने स्त्रीपुत्र आदिका वन्धन तोड़े विना अलंकारचक्रके साथ अमंगलकारी युद्ध छेड़ दिया ॥ २९४६ ॥ उस समय आवेशमें आकर भोजने युद्ध तो छेड़ा, किन्तु सामर्थ्यने साथ नहीं दिया। अतएव भोजको वहाँ भी आहार आदिका सुख नहीं मिल सका ॥ २९४७ ॥ जव शंकरजीने त्रिपुरको भस्म किया, उस समय उनके सर्पको वाणकी अग्निका और समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलके साथ सम्पर्क होनेपर वडवानलका ताप सहना पड़ा। इस प्रकार शंकरजीके साथी नागपति (वासुकी) को कहीं भी सुखकी मैत्री नहीं मिल सकी ॥ २९४८ ॥ तदनन्तर भूख-प्यास तथा थकावट दूर करनेके लिए भोज फिर भागकर अपने देश जा पहुँचा और वहाँ अलंकारचक्रके पुत्रोंसे सन्धि करनी चाही ॥ २९४९ ॥ पिताकी सलाहसे अथवा अपनी ही वुद्धिसे अलंकारचक्रके पुत्रोंने भोजके साथ सन्धि कर ली। सन्धि करके भोज वहाँसे चलकर किसी दूसरे देशमें जा पहुँचा ॥ २९५० ॥ तदनन्तर कार्यके तत्त्वज्ञ भोजने वलहरके ही साथ काम करनेका निश्चय करके अन्य लवन्योंपरसे आस्था हटाकर फिर दिन्नाग्राम जा पहुँचा ॥ २९५१ ॥ यद्यपि वह द्वाराधीश उदयके शत्रुओंका उद्धार करना चाहता था, किन्तु सहसा उसकी आँखोंमें कोई रोग हो गया। जिससे वह कुछ भी करने योग्य नहीं रह गया ॥ २९५२ ॥ तव डामर अलंकारचक्रने अपनी जिन दो कन्याओंको भोजके साथ व्याहनेकी इच्छा की थी, युद्धमें हार जानेके वाद उसने उनमेंसे एक कन्या पर्माण्डि और दूसरी गुल्हणके साथ व्याह दी। ये दोनों जयसिंहके पुत्र थे ॥ २९५३ ॥ जव दण्डनीतिके प्रयोगका अवसर आया, तव रोगकी तीव्रतासे विवश होकर द्वाराधीश उदयने सामनीतिका प्रयोग किया और राजधानी लौट पड़ा ॥ २९५४ ॥ ठीक आक्रमणके समय युद्धका सारा भार ढोनेवाला गर्गतनय षष्ठचन्द्र भी दुर्नामक (ववासीर) रोगसे क्षीण होकर घर चला गया ॥ २९५५ ॥ जव कि वह व्याधिग्रस्त होकर शय्यापर पड़ा था, तव उसके दो उद्दण्ड भाई जयचन्द्र और श्रीचन्द्र आक्रमण आदि उपद्रवों द्वारा प्रजाको सताने लगे ॥ २९५६ ॥ उन दिनों युद्धके लिए सन्नद्ध एकमात्र त्रिल्लक अन्यान्य प्रवल लोगोंसे अपना सम्पर्क वढ़ा रहा था। उसने राजाके सान्त्वनात्मक प्रस्तावको भी नहीं माना ॥ २९५७ ॥ उधर जव षष्ठचन्द्र मर गया और द्वाराधीश रुग्ण हो गया। तव राजा जयसिंहने धन्यको उसके कामपर नियुक्त किया और वह तत्काल तारमूलककी ओर चल पड़ा ॥२९५८॥

अज्ञातोदर्कवैषम्या दुर्नीतिः सा महीभुजम् । व्यावृत्त्याबाधताच्छिन्नपुच्छकृष्टेव पन्नगी ॥२९६१॥
बलिनं राजवदनं नृपं चावेत्य निर्बलम् । आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च विक्रियां यत्क्रमाययुः॥२९६२॥
छिद्रान्तराणि सुलभानि सदैव हन्त पातालरन्ध्रसरणेरिव दण्डनीतेः ।
बह्वीभवन्प्रसरमन्तरसंप्रविष्टो यात्यप्रतर्क्यनियमात्पतनं भजेद्वा ॥२९६३॥
भोजत्यागोऽर्थितो राज्ञा क्षीणार्थोऽसौ व्रजेदितः । उक्त्वेत्यमुं बलहरस्तस्य वृत्तिमकारयत् ॥२९६४॥
तां लब्धप्रसरां मायां राजपत्ते विलोक्य सः । युक्त्यन्तराणि संलेभे प्रयोक्तुं नीतिकौशलात् ॥२९६५॥
संधिं पदे पदे बद्ध्वा सार्धं बलहरादिभिः । कुर्वन्गतागतं धन्यो जनस्यावाप हास्यताम् ॥२९६६॥
शश्वद्व्यावर्तमानस्य राजकार्यस्य नावधिम् । अरघट्टघटीयन्त्रगुणस्येवाससाद सः ॥२९६७॥
तस्य चक्र इवोद्भ्रान्ते कर्तव्ये तैक्ष्ण्यभागपि । भेत्तुं प्ररोढुं वाप्यासीन्नयो बाण इवाक्षमः ॥२९६८॥
नीतराजद्वयो व्यग्रः शेषस्यैकस्य विग्रहे । चतुरङ्ग इव क्रीडन्विवशोऽभूद्विशां पतिः ॥२९६९॥
बद्धलक्ष्यः प्रदानार्थं ततश्च छद्मना परान् । भञ्जतो वाजिपत्त्यादि नाप्यासीन्नाप्यजीगणत् ॥२९७०॥
दस्युषु स्यूतसङ्गेषु शीतापायप्रतीक्षिषु । नागाद्बलहरः स्वेषामुन्मूलनमशङ्कत ॥२९७१॥
सामर्थ्याशिथिलामित्रभावे सूत्रितविप्रिये । तस्मिन्धावति धन्ये च शश्वत्सोऽवेपताकुलः ॥२९७२॥
संमन्त्र्य सार्धं भोजेन धन्यं समदिशत्ततः । बद्ध्वार्पयत नागं मे भोजं दास्यामि वस्ततः॥२९७३॥

तदनन्तर राजाने सोचा कि भोज कहीं इन लोगोंके हाथसे निकल तथा किसी बलवान्के साथ मिलकर शक्तिशाली न हो जाय। अथवा यह देश ही छोड़कर कहीं अन्यत्र न चला जाय, जहाँसे फिर न मिले। अतएव साम आदि किसी भी उपायसे उसे अपने वशमें कर लेनेके लिए उसने धन्यको निर्देश दिया ॥ २९५९ ॥ २९६० ॥ परिणाम समझे बिना राजाने जिस विषम एवं दूषित नीतिका प्रयोग किया था, वह उसीके लिए वैसे ही घातक सिद्ध हुई। जैसे बिना कटी पूछवाली सर्पिणीको बिलसे खींचनेपर विपत्तिमें पड़ जाना पड़ता है ॥ २८६१ ॥ अब राजवदनको बलवान् तथा राजा जयसिंहको निर्बल देखकर बाहरी एवं भीतरी शासक मनमानी करने लगे ॥ २९६२ ॥ बड़े खेदकी बात है कि दण्डनीतिमें पातालरन्ध्र सदृश अनेक छिद्र सदैव सुलभ रहते हैं। वे छिद्र एकसे अनेक होकर बराबर फैलते जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप प्राणी तथ्यके भीतर प्रविष्ट हुए बिना ही किसी अतर्क्य नियमके अनुसार पतनोन्मुख हो जाता है॥ २९६३ ॥ जब राजाने बलहरसे भोजको छोड़ देनेके लिए कहा, तब उसने उत्तर दिया कि इस समय भोज धनहीन हो गया है। अतएव आप धन-धान्यसे उसकी सहायता करिए तो वह शायद चला जाय ॥ २८६४ ॥ जब राजवदनने देखा कि राजापर उसकी माया चल गयी अर्थात् उसे प्रचुर धन मिल गया, तब वह अपने नीतिकौशलसे अन्यान्य युक्तियोंके प्रयोगकी बात सोचने लगा ॥ २९६५ ॥ बलहर आदिके साथ पद-पदपर सन्धि करके और बार-बार आ-जाकर धन्य जनसाधारणके समक्ष उपहासका पात्र बन गया ॥ २९६६ ॥ उस राजाने नित्य परिभ्रमणशील राजकार्यकी कोई अवधि नहीं पायी। जैसे रहटमें बँधे घटीयंत्रकी रस्सीके सिरेको कोई नहीं पकड़ पाता ॥ २९६७ ॥ चक्रके समान परिवर्तनशील उसके कार्यकलाप यद्यपि तीक्ष्ण थे, तथापि बाणकी भाँति उसकी नीति भेदन करने या आगे बढाने योग्य नहीं थी ॥ २९६८ ॥ राजा जयसिंहने लोठन तथा विग्रहराज, ये दो राजे और बना लिये थे। अतएव वह असहाय होकर एक शत्रुके साथ चालू युद्धसे व्याकुल था। जैसे शतरंजके खेलमें खिलाड़ी दो राजा रखते हैं और तीसरेके लिए व्याकुल रहते है ॥ २९६९ ॥ उसने खेलकी कोई योजना नहीं बनायी थी। अतएव औरोंको देनेके लिए उसके पास कुछ नहीं रह गया था। जिससे उसके शत्रु उसके अश्वारोहियों, अश्वों एवं पैदल सैनिकों फोड़-फोड़कर अपनी ओर मिला रहे थे ॥ २९७० ॥ उधर दस्युगण संगठित होकर शीत ऋतु बीतनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय बलहरको नागके द्वारा अपना सर्वस्व नष्ट हो जानेका सन्देह हो गया ॥ २९७१ ॥ वह पहले अपनेको असाधारण शक्तिशाली और प्रबल शत्रु प्रदर्शित करता था। अतएव जब नाग और धन्यने एक साथ उसपर धावा बोल दिया, तब बलहर काँप उठा ॥ २९७२ ॥ तदनन्तर राजा जयसिंहने भोजके साथ मंत्रणा करके राजवदनके द्वारा धन्यके पास यह

भूरिकार्यकृतं स्वस्य बन्धनार्थविहां रिपोः । धन्यो व्यसनवैवश्याद्धियं नाबुद्ध तस्य ताम् ॥२९७४॥
पार्थिवाः स्वार्थसंसिद्धित्वराविरतसत्त्वया । धियाविशुद्धं यत्किंचित्कुर्वन्तीति न नूतनम् ॥२९७५॥
काकुत्स्थोऽपि प्रियाप्रार्थी व्यग्रः सुग्रीवसंग्रहे । वीरोविधेयं स्वार्थान्ध्याद्वधं व्यधित वालिनः ॥२९७६॥
संहृत्य सत्यनित्यत्वं राज्यगर्वाविशुद्धधीः । आचार्यं पाण्डवो राजा धर्मनिघ्नोप्यघातयत् ॥२९७७॥
आ भिक्षुविग्रहान्नित्यद्रोग्धुर्नागस्य विग्रहः । स्वार्थापेक्षी तटस्थस्य तत्कालं न विगर्हितः ॥२९७८॥
अगृहीत्वा तु भूभर्त्रा कंचिद्भोजार्पणे पणम् । सोवाप्टस्मीत्यभूत्तस्मिन्मन्युर्मतिमतां मनाक् ॥२९७९॥
यथा तत्कृत्यमायत्यां हितं जातं तथैव चेत् । विचार्याकारि राज्ञा तच्छेमुषीयममानुषी ॥२९८०॥
विभिन्न इव भोजस्तु नागं समदिशद्यथा । दित्सुर्वलहरो राज्ञे त्वदर्पणपणेन माम् ॥२९८१॥
बन्धमश्रद्दधानोऽस्य राज्ञस्त्रासादसौ श्रयेत् । स विदन्नथ माध्यस्थ्यमिति तं हि तथावदत् ॥२९८२॥
षष्ठचन्द्रे गते निष्ठां जयचन्द्रेण पार्थिवः । संगृहीतेन तं नागं पार्श्वं प्रावेशयत्ततः ॥२९८३॥
पक्षीकृतः क्ष्माभुजाऽयं हन्यादस्मान्भयादिति । चलन्तमपि तं भोजस्तन्मन्त्रिणमबोधयत् ॥२९८४॥
तथेति जानन्नपि तं कृष्टोऽस्म्येतैरनीशताम् । यातः किमपि हन्तेति दूतैर्नागोऽप्यभाषत ॥२९८५॥
नियतं नियतिस्रोतोगर्भे जन्तोर्निमज्जतः । कथ्यमानं तटस्थेन श्रोतुं न श्रवणौ क्षमौ ॥२९८६॥
नागे बद्धे तत्कुटुम्बैर्भीतैरेत्य समाश्रितः । मायाशाली बलहरो दुर्दर्शः समपद्यत ॥२९८७॥

सन्देश भेजवाया कि 'यदि तुम नागको कैद करके मेरे पास भेज दो तो मैं भोजको तुम लोगोंके हाथों सौंप दूँगा' ॥ २९७३ ॥ कठिन परिस्थितिमें पड़े हुए धन्यने जब यह सन्देश सुना तो बड़े असमंजसमें पड़ गया। राजाका बहुतेरा काम करनेवाला नाग शत्रुके समान कैद करने योग्य कैसे हो गया, राजाकी इस युक्तिका वह कुछ भी निर्णय नहीं कर सका ॥ २९७४ ॥ बादमें उसने सोचा कि यह कोई नई बात नहीं है। प्रायः राजे स्वार्थ-साधनकी हड़बड़ीमें पड़कर अपनी तत्त्वज्ञानहीन बुद्धिसे कभी-कभी गलत काम कर गुजरते हैं ॥ २९७५ ॥ क्योंकि भगवान रामने भी पत्नीको पानेके लिए व्यग्र होकर सुग्रीवको तो अपनी ओर मिला लिया और बादमें स्वार्थान्ध होकर असाधारण वीर वालिको मार डाला था ॥२९७६॥ उसी प्रकार सत्यकी नित्यताको एक ओर रखकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने राज्यके गर्ववश बुद्धि अशुद्ध हो जानेसे द्रोणाचार्यका वध करा दिया था ॥२९७७॥ जब राजाका भिक्षाचरके साथ युद्ध छिड़ा था, तबसे नाग बराबर राजाके साथ द्रोह करता आ रहा था। किन्तु स्वार्थवश तटस्थ राजाने उस समय कुछ नहीं कहा ॥ २९७८ ॥ किन्तु अब भोजको सौंपनेके लिए कोई भी शर्त न लगाकर वह राजा उसे योंही दे देना चाहता है। एकाएक उसपर वह क्यों रुष्ट हो गया, सो समझमें नहीं आता। अथवा बुद्धिमानोंका कोप शायद ऐसा ही होता होगा ॥ २९७९ ॥ यह भी हो सकता है कि भविष्यमें होनेवाली भलाईपर ध्यान रखकर उसने ऐसा निर्णय किया हो। यदि सोच-विचार करके राजाने यह आदेश दिया हो तो भी इसे अमानुषी बुद्धि कहेंगे ॥ २९८० ॥ जब कि भोज शत्रु था, तब उसने नागको सन्देश दिया था कि 'बलहर तुम्हारी जमानतपर मुझे राजाके हाथों सौंपना चाहता है' ॥ २९८१ ॥ अन्तमें धन्यने राजवदन द्वारा सुने हुए सन्देशपर अनास्था रखते हुए सोचा कि 'नागको कैद करनेकी बात ठीक नहीं जँचती। हो सकता है जि राजाने किसी कार्यमें मध्यस्थता करनेके लिए इसे बुलवाया हो' तदनुसार उसने कहा—॥ २९८२ ॥ षष्ठ-चन्द्रके मर जानेपर राजाने जयचन्द्रके द्वारा नागको बुलवाया और उसने उसे ले जाकर राजाके पास उपस्थित कर दिया ॥ २९८३ ॥ 'यदि राजाने इसे अपने पक्षमें मिला लिया तो भयवश यह हम सबको मार डालेगा'। यह सोचकर भोजने चलते समय मंत्री जयचन्द्रको सावधान कर दिया था ॥ २९८४ ॥ तब नागने दूतों द्वारा कहलाया—'मैं जानता हूँ कि आप लोग जो कह रहे हैं, वह यथार्थ है। तथापि ऐसा कुछ हो गया है कि मैं असहायकी तरह लोगोंके द्वारा खिंचा जा रहा हूँ' ॥ २९८५ ॥ भाग्यरूपिणी नदीके पेटमें डूबते हुए प्राणीके विषयमें यदि कोई तटस्थ मनुष्य कुछ कहता है तो उसे सुननेके लिए ये कान समर्थ नहीं होते ॥ २९८६ ॥ इस प्रकार नागके कैद हो जानेपर उसके सब कुटुम्बी भयभीत होकर मायावी बलहरके आश्रयमें चले गये, और

भोजनिष्क्रयविक्रेयं तमादाय ययौ ततः । रिल्हणेन समं धन्यो धावन्वलहरान्तिकम् ॥२९८८॥
सान्तर्हासोऽमोहयत्तौ प्राङ्नागं दत्त मे ततः । भोजं दास्यामि व इति ब्रुवन्भ्रामयति स्म सः ॥२९८९॥
बद्धमूलतया दूरं दुर्धर्षो योद्धुमागतम् । सर्वं तच्च तयोः सैन्यं निन्ये कृत्यविधेयताम् ॥२९९०॥
वर्षयुद्धापकर्षादिसंखिन्नौ तौ ततोऽभ्यधात् । इतोऽपसृतयोः कुर्यां युवयोर्मतमित्यसौ ॥२९९१॥
एकप्रयाणान्तरिते स्थितयोः पथि चाकरोत् । कार्यान्तःपातवैवश्ये तयोर्मतिविमोहनम् ॥२९९२॥
काचिद्वलहरस्यासीत्पर्याप्तिर्धैर्यसत्त्वयोः । निश्चोद्यद्यतने काले वीराणां विरलैव या ॥२९९३॥
तथा हारितमार्गाय साहसात्पार्श्वमीयुषे । द्रुह्यति स्म न धन्याय लोभाद्भोजाय नापि यः ॥२९९४॥
मतिमोहेन नागं चेद्द्युर्मे सचिवास्ततः । कुर्यां तं स्वपदेऽभ्यर्थ्य चक्रारेति च चेतसि ॥२९९५॥
नागासांनिध्यलब्धर्द्धिदार्ढ्यार्थं गूढवैकृतः । भ्रातृव्योऽपातयन्नागं धन्याद्यैर्लोष्ठकाभिधः ॥२९९६॥
सचिवैर्निहते नागे निर्हेत्वहितमोहितैः । दुर्मन्त्रितं नरपतेः स्वैः परैश्च व्यगर्ह्यत ॥२९९७॥
स्वजातीयवधक्रोधाद्विरुद्धैः सर्वडामरैः । नागानुगैश्चाश्रितोऽभूत्ततो वलहरो वली ॥२९९८॥
देहिनो व्यसनापातवैवश्याद्भ्रमतोऽपथि । अकार्यं कुर्वतः कार्यं सिद्धः संसाधयेद्विधिः ॥२९९९॥
उद्यद्दुःसहवित्ततानवतया बद्धावधाने मनस्युन्मार्गभ्रमणेऽवशस्य रभसाच्छ्वभ्रे परिभ्राम्यतः ।
अन्योपाहितकोशपृष्ठलुठनात्संदर्शिताङ्गक्षतेर्जन्तोर्हन्त तनोति दुर्गतिशमं रम्यानुलोम्यो विधिः ॥३०००॥
तथा निरनुसंधानं नागं धीसचिवैर्हतम् । नाबुद्ध भोजः संजातत्रासस्त्वेवं व्यकल्पयत् ॥३००१॥
लब्धवर्णस्य नावर्णावहं कर्मेदमीशितुः । अलब्धपणबन्धस्य वाञ्छिताप्त्यै विशङ्क्यते ॥३००२॥

उसके बाद वलहरका दर्शन दुर्लभ हो गया ॥ २९८७ ॥ भोजकी कीमतपर बिकनेवाले नागको लेकर रिल्हणके साथ भागता हुआ धन्य वलहरके पास जा पहुँचा ॥ २९८८ ॥ तब मन ही मन हँसते हुए वलहरने कहा कि 'आप लोग पहले मुझे नागको दे दीजिए, तब मैं भोजको दूँगा'। ऐसा कहकर उसने इन दोनोंको चक्करमें डाल दिया ॥ २९८९ ॥ अब भलीभाँति जड़ मजबूत हो जानेके कारण दुर्धर्ष वलहरने धन्य तथा रिल्हण दोनोंकी सेना बेकार कर दी ॥२९९०॥ वर्षा, युद्ध तथा अपमानसे खिन्न धन्य और रिल्हणसे उसने कहा – 'यदि आप दोनो यहाँसे चले जायँ तो मैं आपकी बात मान लूँगा' ॥ २९९१ ॥ तदनुसार जब वे दोनो वहाँसे चल पड़े और एक पड़ाव-पर विश्राम कर रहे थे, तब कार्यकी चपेटमें डाल एव विवश करके वलहरने उन्हें फिर भ्रममे डाला ॥ २९९२ ॥ क्योंकि वलहरमें धैर्य तथा पराक्रमकी कुछ ऐसी अनोखी पर्याप्तता थी कि जो आजकल विरले ही वीरोंमे देखी जाती है ॥ २९९३ ॥ इस प्रकार यात्रा भंग करके साहसपूर्वक अपने पास आनेवाले धन्य तथा लोभवश आनेवाले भोजके साथ वलहरकी कोई द्रोहबुद्धि नही थी ॥ २९९४ ॥ उसने सोचा था कि 'यदि मोहवश मंत्रिगण नागको मुझे दे दें तो मैं उसे फिर समझा-बुझाकर मंत्रिपदपर बिठा दूँ' ॥ २९९५ ॥ उसी समय नागके दूर रहनेसे प्राप्त समृद्धिको दृढ करनेके विचारसे विकारको छिपाये हुए उसके भतीजे लोष्ठकने धन्य आदिके द्वारा नागको मरवा डाला ॥२९९६॥ इस प्रकार शत्रुओंके द्वारा मोहित सचिवोंने अकारण नागका वध कर दिया, जिससे अपने और पराये सभी लोग राजाकी दुर्मन्त्रणाकी निन्दा करने लगे ॥ २९९७ ॥ तदनन्तर स्वजातीयके वधसे क्रुद्ध होकर सभी डामर तथा नागके अनुयायी बलवान् वलहरकी ओर जा मिले ॥ २९९८ ॥ जब कि मनुष्य दुःखमे पड़नेको होता है, तब वह विवश होकर कुपथपर चक्कर काटता हुआ कुकर्म करने लगता है और उसी समय विधाता अपना कार्य सिद्ध कर लेता है ॥ २९९९ ॥ धनकी कमीके कारण जब प्राणीके समक्ष दुःसह स्थिति आ जाती है, तब सावधानी रखनेपर भी मन अटपटे मार्गोपर भ्रमण करता हुआ बड़े वेगसे किसी दुःखरूपी गढ़ेमे गिर जाता है और उसीमे चक्कर काटने लगता है। तदनन्तर वह किसी अन्य पुरुषकी सहायतासे प्राप्त धनकोष्ठकी पीठपर लोटने लगता है। इससे उसके अंगोंमें घाव हो जाते है। किन्तु इस प्रकार रमणीय उलट-फेर करनेवाला विधाता सहसा उसकी दुर्गतिका अन्त कर देता है ॥ ३००० ॥ इस तरह बिना सोचे-समझे राजा जयसिंहके सचिवों द्वारा नागके मारे जानेकी बात भोजको नहीं मालूम थी। फिर भी उसे भय हुआ और सोचने

यश्च युद्धमिति व्यग्रं हर्षादाग्राममवापि यः । भोजमन्यकरस्थोऽयमशक्यो ह्यन्यथा मम ॥३००३॥
उक्त्वेति मोहयन्धन्यमुख्यान्मुग्धोऽस्मि संदिशेत् । इति मां राजवदनः स्थितस्तन्नूनमन्यथा॥युग्मम्॥३००४॥
आ भिक्षुविग्रहाद्द्रोहसुभिक्षस्यानुबन्धिनः । किं राजवदनोऽप्येष लोभात्संभाव्यते न भूः ॥३००५॥
अथाविशङ्किनस्त्रासव्युदासायाऽस्य खाशकाः । रक्तार्द्रकृत्तिसंस्तांघ्रि कोशपानं प्रचक्रिरे ॥३००६॥
प्रादुष्कृतभियः क्षिप्ररक्षिणोऽमुष्य तिष्ठतः । विश्वासार्थं वल्हरो विरलः पार्श्वमाययौ ॥३००७॥
अमात्यमतिजाड्येन नष्टे कृत्येऽथ कृत्यवित् । स्वयमुत्तम्भने नीतः संरेभेऽसंभ्रमो नृपः ॥३००८॥
चैत्रः पादपमण्डलस्य तटिनीतोयस्य वर्षागमः सत्कारो गुणगौरवस्य नयनप्रेम्णोऽन्तिकासेवनम् ।
ऐश्वर्यस्य महोद्यमो जयविधेर्गाढाविपादग्रहः कर्तव्यस्य च सिंहदेवनृपतिर्म्लानौ न तत्त्वावहः ॥३००९॥
प्रवाहेणेव कृत्यस्य हठेन हरतोऽन्तरे । प्रातिलोम्यं श्रितवता पारं गन्तुं न पार्यते ॥३०१०॥
अतो धूर्तो नृपो मुग्ध इति ज्ञातोऽरिभिर्मुधा । मौग्ध्यं प्रदर्शयंस्तेषां यततेस्माभिसंधये ॥३०११॥
स हि यत्तत्प्रदानेन भजन्भोजान्तिकस्थितीन् । तस्याविश्वासपात्रत्वं मन्त्रस्तस्याभितोनयत् ॥३०१२॥
गन्धेन वासितोत्सङ्गाः कुरङ्गार्यङ्गजन्मना । प्रज्वलन्त्यो विभाव्यन्ते तटिन्योपि करटिभिः॥३०१३॥
नीडस्थान्तः सरन्ध्रस्य सर्वतो हि भयं स्पृशन् । जाले द्वाराग्रबद्धे च निर्गमे पतनं विदन् ॥३०१४॥
ताम्येद्यथा खगो भोजस्तथान्तःस्थेष्वविश्वसन् । बहिर्भूपेन रुद्धाध्वा प्रस्थानेप्यभजद्भयम्॥युग्मम्॥३०१५॥
तदा स दौस्थ्यातिथितां प्राप्तः प्रैक्षत न क्षणम् । मनोविनोदनं किंचित्कृत्यं लोकद्वयोचितम् ॥३०१६॥

लगा—॥ ३००१ ॥ 'यह बात विश्वसनीय नहीं हो सकती कि इस अवर्णवहा (असम्मानित) विषयपर राजाने मंत्रणा की हो या उसने इसका अध्ययन किया हो और किसी निष्कर्षपर पहुँच गया हो ॥ ३००२ ॥ जिस राजाने युद्धका अवसर आते ही बड़ी व्यग्रताके साथ मुझे सहर्ष प्राप्त किया था। वही अब मुझे किसी अन्य पुरुषके हाथमें सौंप दे, यह बात नहीं हो सकती ॥३००३॥ अवश्य ही इसमें राजवदनकी कोई चाल है। उसीने मनमाना सन्देश देकर धन्य, रिल्हण और मुझको चक्करमे डाल दिया है ॥ ३००४ ॥ भिक्षुके विद्रोहसे लेकर अबतक शान्ति तथा सुभिक्षका बाधक राजवदन क्या लोभवश धरतीको अपने कब्जेमें न करना चाहता होगा ?' ॥ ३००५ ॥ तदनन्तर शंकितचित्त भोजका भय दूर करनेके लिए रक्ताक्त चर्मसे पैर ढाँककर खशोंने कोशपान किया ॥ ३००६ ॥ जिस भोजके चेहरेपर भयके लक्षण स्पष्ट दीख रहे थे और जिसे रक्षकगण घेरे हुए थे, उसे विश्वास दिलानेके लिए वल्हर अकेला ही उसके पास जा पहुँचा ॥ ३००७ ॥ इधर अपने मंत्रियोंकी जड बुद्धिके कारण काम बिगड़ जानेपर कार्यके मर्मज्ञ राजा जयसिंहने बड़ी सावधानीसे अगले कार्यक्रमके विषयमे विचार करना आरम्भ कर दिया ॥३००८॥ चैत्रमास वृक्षसमुदायका, वर्षाका आगमन नदीके जलका, सत्कार गुणगौरवका, समीप रहकर की जानेवाली सेवा नयनप्रीतिका, महान् उद्यम ऐश्वर्यका, पूर्ण प्रसन्नता विजयप्राप्तिका और राजा जयसिंह कर्तव्यका पालक था। ऐसे अवसरपर वह म्लान नहीं होता था ॥३००९॥ कार्यका प्रवाह जिस व्यक्तिको हठपूर्वक अपने पेटमें लिये जा रहा हो, वह यदि प्रवाहके विपरीत तैरे तो उसे कदापि पार नहीं कर सकता ॥ ३०१० ॥ अतएव शत्रुओं द्वारा धूर्त एवं मूढ समझा जानेवाला वह राजा उन्हें अपनी मूर्खता दिखाता हुआ चक्र रचने लगा ॥ ३०११ ॥ कभी-कभी कुछ देकर भोजके आस-पासकी स्थितिका पता लगाते हुए राजाने उसके चारों ओर अपने अविश्वसनीय मंत्रका संचार कर दिया ॥ ३०१२ ॥ हाथियोंके मदसे सुवासित एवं अवरुद्ध नदियाँ भी प्रज्वलित जैसी दिखायी देती हैं ॥ ३०१३ ॥ अनेक छिद्रोंयुक्त नीडमें बैठे हुए पक्षीको सब ओरसे भय बना रहता है और जब वह बहेलियेके द्वारबद्ध जालमे बन्द हो जाता है तो उसमेसे निकलनेपर उन्हें गिरनेका भय होने लगता है ॥ ३०१४ ॥ ऐसे चक्रमे पड़कर जैसे पक्षी दुखी होता है, उसी प्रकार भोजको भी अन्तरंगके लोगोंपर विश्वास नहीं था और बाहर निकल चलनेमे सैनिकों द्वारा अवरुद्ध मार्गपर राजाका भय बना रहता था ॥ ३०१५ ॥ उस समय भोज ऐसे संकटमे पड़ा हुआ था कि क्षणभरको भी दोनो लोकोंके लिए उपयोगी मनोविनोदका कोई साधन उसे

उग्राभिषङ्गमनुषङ्गि परस्य दुःखं हन्ताश्लथं व्यथयति प्रसभार्द्रभावम् ।
बद्धः सरोजकुहरे विरहार्तनादैश्चक्राभिधस्य मधुपोऽधिकमेति दैन्यम् ॥३०१७॥
रणे पूर्णव्रणाश्यानशोणितो लूनकुन्तलः । फेनोद्गार्याननः क्रन्दंस्तेनैकः प्रैक्ष्यत द्विजः ॥३०१८॥
स पृष्टो विप्लुतैर्नीतं सर्वस्वं विक्षतं तथा । स्वं डामरैर्निवेद्यैनं निनिन्द त्रातुमक्षमम् ॥३०१९॥
स्वदौःस्थ्यार्तमनास्तस्य दुःखेन व्यथितोऽन्वहम् । घट्टितार्द्रव्रण इव प्राह स्मेति स सान्त्वयन् ॥३०२०॥
गर्हार्होऽस्मि न ते ब्रह्मन्योऽनुग्राह्योऽहमीदृशः । विषमे वर्तमानश्चेत्यथ सोऽपि तमब्रवीत् ॥३०२१॥
दुर्ग्रहेणामुना ब्रूहि कोऽर्थः पार्थिवपुत्र ते । सारासारविदो यूनः कुले जातस्य मानिनः ॥३०२२॥
प्राणान्संदेहमारोप्य प्रणम्य प्राकृताशयान् । पीडयित्वा विशः क्लेशैः कार्यं किमिव पश्यसि ॥३०२३॥
यश्च ते प्रतिभात्येव जेतव्यो विदितो न किम् । अग्निशौचः स सारङ्गः परशौर्याग्निमज्जने ॥३०२४॥
यत्र शस्त्रशलाकापि विकला तद्विधीयते । इन्दीवरदलद्रोण्या घटनं स्फाटिकाश्मनः ॥३०२५॥
पृथ्वीहरावतारादिश्वत्यनीकिजितः परे । के नामास्य न संघर्षे क्षुद्रप्राया दरिद्रति ॥३०२६॥
किं दृप्या एव बुद्ध्वापि कृत्यं द्वैराज्यजीविनाम् । भृत्याशयाः फणिग्राहिगृहीता इव भोगिनः ॥३०२७॥
जातैः क्ष्मावलयोद्वहे फणिकुले धिग्भोगिडिम्भैर्मुदा व्यालग्राहिविकासितास्यकुहरैर्ग्रासस्य हा गृह्यते ।
एतान्भिक्षयितुं न तु प्रथयितुं ते जीविकायै जनत्रासार्थं ननु कारयन्ति हि दृतेर्निमज्जनोन्मज्जनम् ॥३०२८॥
इत्युक्तवन्तं तं सान्त्वयित्वा भोजो व्यसर्जयत् । तदैव चाशु व्याकोशविवेकः समपद्यत ॥३०२९॥

नहीं दिखायी देता था ॥ ३०१६ ॥ उग्र तिरस्कारसे परिपूर्ण पराया दुःख भी मनुष्यको विशेष आर्द्रभावापन्न करके पीडित कर देता है। जैसे सम्पुटित कमलमें आबद्ध भ्रमर विछोहके कारण करुणक्रन्दन करनेवाले चकवा-चकवीका आर्तनाद सुनकर और भी दुखी हो उठता है ॥ ३०१७ ॥ उसी समय भोजने एक दुखिया ब्राह्मणको देखा। रणमें उसके शरीरपर अनेक घाव हो गये थे और उनसे निकला हुआ रुधिर सूख गया था। उसके केश कटे हुए थे और मुँहसे फेन फेंकता हुआ वह जोर-जोरसे चिल्ला रहा था ॥ ३०१८ ॥ उससे जब भोजने रुदनका कारण पूछा, तब उसने कहा—'विप्लवी डामरोंने मेरा सर्वस्व लूट लिया और मुझे मार-मारकर घायल कर डाला'। ऐसा कहता हुआ आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ समझकर वह अपनी निन्दा करने लगा ॥३०१९॥ अपने ही दुःखसे दुखी भोजका मन उसका दुःख सुनकर और भी आर्द्र हो उठा। इस प्रकार घाव ताजा हो जानेके कारण व्यथित भोजने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा—॥ ३०२० ॥ 'हे ब्रह्मन्! स्वयं भीषण संकटमें पड़ा हुआ मैं एक निन्द्य प्राणी हूँ। इस समय तो मुझे ही आपका अनुग्रह अपेक्षित है'। इसपर ब्राह्मण बोला—॥ ३०२१ ॥ 'हे राजपुत्र! आप एक स्वाभिमानी एवं उच्चकुलमें उत्पन्न पुरुष हैं और सार तथा असार तत्त्व भी जानते हैं। ऐसी स्थितिमें आप इस दुराग्रहसे क्या लाभ उठाना चाहते हैं? सो बताइए ॥ ३०२२ ॥ प्राणोंको संशयमें डाल तथा नीच पुरुषोंको प्रणाम करके प्रजावर्गके लोगोंको क्लेश देकर आप अपना कौनसा काम बनाना चाहते हैं? ॥ ३०२३ ॥ क्या आप अपने उस शत्रुको नहीं जानते कि जिसे आपको जीतना है। जैसे दावाग्निसे झुलसकर शुद्ध मृग पराये शौर्यरूपी अग्निमें जाकर जल मरता है ॥ ३०२४ ॥ जहाँ शस्त्रकी एक सलाई भी नहीं प्रविष्ट हो सकती, वह काम आप उसी प्रकार कर रहे हैं, जैसे कोई कमलदलसे स्फटिक मणिके पत्थरको तोडनेका प्रयास करे ॥३०२५॥ शत्रुको परास्त करनेवाले पृथ्वीहर आदि कितने योद्धा ऐसे हुए हैं कि जो इस संघर्षमें कंगाल नहीं हो गये ॥ ३०२६ ॥ दो राजाओंके राज्यमें जीवन यापन करनेवालोंका कर्तव्य जानते हुए भी भृत्यभावको अंगीकार करके लोग सँपेरे द्वारा पकड़े गये सर्पकी भाँति भोगी बनकर गर्वका अनुभव करते हैं ॥ ३०२७ ॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले नागकुलमें जन्म पाये हुए सर्प बड़े हर्षके साथ सँपेरे द्वारा मुँह खोल कर दिये गये ग्रासको खाते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि सँपेरा उनसे भीख मँगवाकर अपनी जीविका चलानेके लिए उनको पालता है—उनकी ख्यातिके लिए नहीं पालता। ठीक उसी प्रकार जनतापर आतंक जमानेके लिए कुछ योद्धाओंको पालकर लोग उन्हींकी कमाईसे मशकके समान फूले-फूले फिरते हैं' ॥ ३०२८ ॥ तदनन्तर ऐसा कहनेवाले ब्राह्मणको सान्त्वना

भव्यात्मत्वं प्रशममहिमोल्लासने हन्त हेतुर्भावानां तु ध्रुवमपरथा मार्दवं क्रूरता वा ।
स्पृष्टं पादैरमृतमहसः स्यात्कठोरं हिमांशोर्याति ग्रावाप्यहह रभसादार्द्रतां चन्द्रकान्तः ॥३०३०॥

राजन्याभिजने जातोऽप्यलज्जत्वमशिक्षितः । सोऽन्तरं स्वस्य राज्ञश्च मुहुर्महदचिन्तयत् ॥३०३१॥

गुणैः शौर्यनयत्यागससत्यसत्त्वादिभिः प्रभोः । पूर्वेऽप्युर्वीभुजः सर्वाः क्षुद्राः स्पर्धासु के वयम् ॥३०३२॥

तस्य प्रभावदीप्तेऽपि समये क्षान्तिशीतला । शक्तिः क्षयजडत्वेऽपि मुग्धानां नो महोष्मता ॥३०३३॥

क्ष्वेडाग्नितापनिविडोरगसंगमेऽपि तुङ्गस्य चन्दनतरोरपि शीतलत्वम् ।
काले हिमर्तुपरिपिञ्जरसंज्वरेऽपि निम्नस्य कूपकुहरस्य महोष्मयोगः ॥३०३४॥

क्रमेऽपि पर्ययात्कार्यं सुप्तं नृपममुं विना । प्राप्य कस्य पुनः प्राप्यमप्यशुद्ध्या न बाधितम् ॥३०३५॥

भ्रष्टं निर्झरवारि शुभ्रमचलैः स्वीयेन भूयः कचिल्लभ्यं लभ्यमथाभ्रतः कलुषताद्दुष्टं प्रकृष्टं न तत् ।
निर्यन्निर्भरनिम्नगाम्बु नभसः प्राप्येत नित्यं द्युसत्यालेयत्वमुपेत्य शुद्धिमधिकां नाद्रेर्हिमाद्रेर्नगैः॥३०३६॥

तदर्थमेव ग्रथितो योनर्थोऽग्रथितात्मनः । स तेन स्वस्थतां नेतुमर्थितो न स्पृशेद्रुषम् ॥३०३७॥

सोपाय योऽस्य दववह्निमदादमुष्मिन्स्वस्थे स तेन शिखिना ग्लपितः समीपम् ।
अभ्येति चन्दनतरोर्दववह्निदाहशान्त्यै यदि प्रियकृदेप न तस्य किं स्यात् ॥३०३८॥

समग्रदुर्गतावर्हदुपकर्तैव भूपतिम् । लोकनाथं तमुद्धर्तुं धीरं धन्यः पुनः पुनः ॥३०३९॥

राजप्रसादनोपायान्वेषी बलहरान्तिकम् । राजदूतमथायान्तमेकदैकं व्यलोकयत् ॥३०४०॥

देकर भोजने विदा कर दिया और उसी समय उसका विवेकरूपी कमल सहसा खिल उठा ॥ ३०२९ ॥ शान्तरसकी महत्ताको बढ़ानेका मुख्य हेतु भव्यात्मता ही होती है । वही भावोंकी मृदुता और क्रूरताकी परिचायिका मानी जाती है । क्योंकि भव्य चन्द्रमाके अमृतमय प्रकाशसे परिपूर्ण किरणोंका संस्पर्श पाकर पाषाण चन्द्रकान्त भी तुरन्त पसीज जाता है ॥ ३०३० ॥ राजाओंके कुलमें जन्म एवं निर्लज्जतासे अपरिचित भोज बार बार अपने और राजा जयसिंहमें विद्यमान महान् अन्तरपर विचार करने लगा -॥ ३०३१ ॥ 'शौर्य, नीति, त्याग, सत्य तथा बलमें उस राजाने समस्त पूर्ववर्ती राजाओंको भी नीचा दिखा दिया है, फिर हम जैसे क्षुद्रजन उसके साथ स्पर्धा कैसे कर सकते हैं ? ॥ ३०३२ ॥ जिस समय उसका प्रभाव प्रदीप्त था, तब भी उसकी क्षमामयी शीतल शक्ति क्षीण एवं जड पुरुषोंमें भी बिना विशेष ऊष्मा उत्पन्न किये अपना सब काम करती रहती थी ॥ ३०३३ ॥ दावाग्निसे झुलसे और झुण्डके झुण्ड विषैले सर्पोंसे घिरे रहनेपर भी उच्च चन्दनतरुमें शीतलता रहती है । शीतकालमें जब कि जोरोंकी ठंडक पड़ा करती है, उस समय भी गहरे कुएँमें भीषण गर्मी विद्यमान रहती है ॥ ३०३४ ॥ किसी भी व्यतिक्रमसे सुप्त उस राजाके बिना काम नहीं चल सकता । उसे प्राप्त कर लेनेके पश्चात् उसकी मानसिक अशुद्धि किसी प्रकार बाधक नहीं हो सकती ॥ ३०३५ ॥ पर्वतीयके झरनेसे झरा हुआ शुभ्र जल अपने महत्त्वसे आदृत होता हुआ कुछ ही भाग्यवानोंको सुलभ होता है, किन्तु आकाशसे धरतीपर गिरा हुआ मटमैला पानी सर्वत्र प्राप्य रहता है । लेकिन कलुषताजनित दोषके कारण वह जल उतना उत्कृष्ट नहीं होता । इसी प्रकार देवनदी गंगाका जल भी यद्यपि मेघोंसे ही आता है, किन्तु हिमालयके भिन्न-भिन्न पर्वतोंकी हिमराशिको पाकर वह जल विशेष पुनीत हो जाता है ॥३०३६॥ अतएव ग्रन्थि विहीन हृदयवाले उस महात्माके विषयमें जिन-जिन अनर्थोंका आरोप किया जाता है, उनकी सफाई देनेके लिए यदि मैं उससे प्रार्थना करूँगा तो वह रुष्ट नहीं होगा ॥ ३०३७ ॥ जिसने उसका ताप बढानेके लिए उस स्वस्थ पुरुषके हृदयमें दावानल धधकाया था, वह व्यक्ति स्वयं उस आगमें जल मरेगा । कोई पुरुष यदि चन्दन वृक्षमें लगी दावाग्निको बुझाने जाय और उसे उसकी शीतलता न प्राप्त हो सके तो उसके परिश्रमसे क्या लाभ हुआ ? ॥ ३०३८ ॥ समस्त दुर्दशाओंको सहनेमें समर्थ, राजाका उद्धार एवं उपकार करनेमें तत्पर तथा धैर्यशाली धन्य पुनः पुनः प्रशंसाका पात्र है' ॥ ३०३९ ॥ इस प्रकार राजाको प्रसन्न करनेका अवसर

दरद्देशं व्रजन्दृष्टवान्प्राक्प्रज्ञातमन्तिकम् । स नमन्तं तमानीय ततः स्मेर इवाब्रवीत् ॥३०४१॥
राज्ञः किमन्यसंधानैः संधिं बध्नात्वसौ मया । प्राज्ञैर्हि भिषजा भोज्यमातुराय समर्प्यते ॥३०४२॥
तत्तस्याश्रद्दधानस्य नर्मस्मेरस्य जानतः । प्रत्ययोत्पादनं तैस्तैरालापैः किंचन व्यधात् ॥३०४३॥
निर्दम्भभाषितैरूढविस्रम्भः स कथान्तरे । अथाभिगम्य राजानं स्तुवन्भोजमभाषत ॥३०४४॥
राजपुत्राभिजातस्य पादच्छायास्य लभ्यते । स्वर्णाद्रेरिव कल्याणप्रकृतेः पुण्यभागिभिः ॥३०४५॥
अनुवृत्त्यातिमृद्व्यापि तस्यापोह्येत वैकृतम् । ज्योत्स्नयेव शरद्भानुपरितापोष्णयमम्भसः ॥३०४६॥
अपि स्मरसि चारत्वे नियुक्तोऽस्मि महीभुजा । विशतस्ते दरद्देशमभूवं पुरतः पुरा ॥३०४७॥
ततो निवृत्तो वृत्तान्तं मुख्यमाख्याय तावकम् । कालं क्षेप्तुं कथां दैन्यं नयन्मध्ये तमभ्यधाम् ॥३०४८॥
क्षुत्तृडध्वक्लमश्रान्तान्देव त्वामवलोक्य माम् । निन्दतः स्वानुगान्भोजो निर्भर्त्स्यैवं तदाब्रवीत् ॥३०४९॥
स दैवतमिवास्माकं कुलालंकरणं प्रभोः । वयं त्वसुकृतो यस्य नाप्नुमः पादसेवनम् ॥३०५०॥
गण्याः पर्यन्तनिःसारास्तत्संबन्धादिमे वयम् । चन्दनभ्रान्तिकृत्काष्ठं यत्स्यात्तद्गन्धवासितम् ॥३०५१॥
तच्छ्रुत्वैव दयार्द्रत्वं त्वयि यातः स लक्षितः । पृच्छन्पितेव किं गर्भरूपो वक्तीति मां पुनः ॥३०५२॥
तन्निशम्यैव भोजस्य द्रवीभूतमभून्मनः । सोन्तर्बाष्पोऽप्यपश्यत्तं सान्त्वयन्तमिवाग्रतः ॥३०५३॥
सव्यक्तमात्रासंबोधमुग्धत्वेन विहीयते । तत्त्ववित्कारणाज्ञानादन्तःकरणवेदनम् ॥३०५४॥
अश्रद्दधानस्तामिच्छां भोजस्याकृच्छ्रवर्तिनः । प्रतिदूतीकृते तस्मिन्धन्यो न प्रत्ययं दधे ॥३०५५॥

खोजनेवाले भोजने एक राजदूतको वलहरके पास जाते देखा ॥ ३०४० ॥ किसी समय दरद् देश जाते समय उससे पहले भी भेंट हो चुकी थी। अतएव उसने उसे देखते ही पहचान लिया। तदनन्तर प्रणाम करता हुआ दूत जब उसके समीप पहुँचा, तब मुसकाकर भोजने कहा—॥ ३०४१ ॥ 'राजाको अन्यान्य लोगोंसे सन्धि करनेकी क्या आवश्यकता ? सन्धि ही करनी हो तो मेरे साथ करे। क्योंकि वैद्यकी औषधि रोगीको ही दी जाती है' ॥ ३०४२ ॥ अपनेपर अश्रद्धालु दूतसे भोजने विश्वास उत्पन्न करानेवाली बहुतेरी बातें कीं, जिससे उसके मनमें कुछ विश्वास जमा ॥ ३०४३ ॥ उसकी बात समाप्त होनेपर दूतने तनिक समीप आकर स्तुति करते हुए कहा। क्योंकि भोजकी निष्कपट बातोंसे उसके हृदयमें उसके प्रति श्रद्धा जाग गयी थी ॥ ३०४४ ॥ वह बोला—'राजपुत्र ! जो लोग कुलीन होते हैं, उन्हें ही मेरे महाराजके चरणोंकी छाया सुलभ होती है। जैसे कल्याणमयी प्रकृतिके पुण्यात्माओंको ही स्वर्णाद्रि (सुमेरुपर्वत) के दर्शन मिलते हैं ॥ ३०४५ ॥ बहुत ही कोमल रीतिसे उसकी सेवा करनेपर उसके विकार दूर किये जा सकते हैं। जैसे शरत्कालीन सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त जल चन्द्रमाकी चाँदनीसे ठंढा हो जाता है ॥३०४६॥ यह आपको स्मरण है न कि मैं महाराजका दूत हूँ। पिछले समय जब आप दरददेशमें प्रविष्ट हुए थे, तब मैं ही आपके आगे-आगे चला था ॥ ३०४७ ॥ वहाँसे लौटकर महाराजको आपका मुख्य-मुख्य समाचार सुनानेके बाद समय बितानेके लिए बातको लम्बी करते हुए मैंने कहा—॥ ३०४८ ॥ 'देव ! भूख, प्यास तथा रास्ता चलनेकी थकावटसे खिन्न अपने अनुचरों-को आपकी निन्दा करते देख भोजने उन्हें डाँटा और मेरी ओर निहारकर कहा—॥ ३०४९ ॥ 'महाराज जयसिंह हमारे लिए देवता तुल्य हैं—मेरे कुलके तो अलंकार हैं। हमलोग अभागे हैं, इसीसे हमें उनकी चरण-सेवाका सुयोग नहीं मिलता ॥३०५०॥ अतएव हम सब उसी तरह व्यर्थ हैं, जैसे अपनी सुगन्धिसे चन्दनका भ्रम उत्पन्न करनेवाला काष्ठ व्यर्थ होता है' ॥ ३०५१ ॥ मेरी यह बात सुनते ही महाराजके चेहरेपर दयार्द्रभाव दृष्टि-गोचर होने लगा। बादमें पिताकी भाँति उन्होंने पूछा—'मेरे विषयमें भोज और क्या कह रहा था ?' ॥ ३०५२ ॥ यह सुनते ही भोजका हृदय द्रवीभूत हो गया और आँखोंमें आँसू भरके वह ऐसा अनुभव करने लगा कि मानो महाराज स्वयं आगे आकर उसे सान्त्वना दे रहे हैं ॥ ३०५३ ॥ यदि कोई मनुष्य अत्यन्त सरल प्रकृतिका हो और सीधी-सादी बात ही समझ सके तो वह औरोंके अन्तःकरणकी वेदना न समझ सकनेके कारण अपनेको परित्यक्त होनेसे नहीं बचा सकता ॥ ३०५४ ॥ उसकी आकांक्षापर श्रद्धा न रखते हुए भी बिना किसी कठि-

दर्विताभूद्यथा नागवृत्तान्ते न भवेत्तथा । महीभुजं मोहयितुं मायया दीव्यते मया ॥३०५६॥
मा भूद्भिन्नोऽयमित्येवमुक्त्वा वलहरं रहः ।
व्याजार्जवेन भोजस्तु संधिवन्धाय तत्वरे ॥ युग्मम् ॥३०५७॥
तत्कालयोग्यसाचिव्यश्चक्रिकाचतुरस्तथा । तेनाशु दैशिकापत्यमेको दूत्ये न्ययोज्यत ॥३०५८॥
स वालकतया नित्यस्वतन्त्रश्चक्रिकां स्वयम् । आचरेदिति नाशङ्कां भोजे वलहरोऽभजत् ॥३०५९॥
पार्थिवः प्रार्थितः संधिदूतमाप्तं प्रतीक्षते । प्रत्यागतेन तेनेति ततो भोजोऽभ्यधीयत ॥३०६०॥
तत्रासंनिहिताप्ताप्तः स्त्रीत्वादप्रतिभामपि । धात्रीं नोनाभिधानां स्वां राज्ञोभ्यर्णं व्यसर्जयत् ॥३०६१॥
मृतेन पित्रा मात्रा च हीनं तमनुयातया । मातृकृत्यं ययात्रासीच्छैशवे माननीयया ॥३०६२॥
पत्युः प्रीत्यै विसंधानध्वंसाकल्पादिकल्पनात् । सखीकृत्यं सपत्नीनां यया शान्तेर्ष्यया कृतम् ॥३०६३॥
ह्रासोल्लासे हि कार्याणां योग्यकृत्याप्तनिश्चयात् । न यां सुक्षत्रियां क्ष्माभृत्संभ्रान्तां जातु वीक्षते ॥३०६४॥
श्वशुरेण प्रजाभिश्च कृतं राज्ञोऽभिषेचने । आशास्यं या महादेवीपट्टवन्धं समादधे ॥३०६५॥
अपत्यप्रियताभोगलोभभर्तृप्रसादनैः । प्रेर्यमाणाऽप्यकार्येषु वुद्धिर्यस्या न धावति ॥३०६६॥
स्वे चान्यत्र च संधाने जाते भर्तुरभिन्नधीः । भाग्योदयेष्वनुत्सिक्ता या चाखण्डितसद्व्रता ॥३०६७॥
आ वाल्याद्भावविद्भर्तुः कुसृत्यनुसृतौ न सा । कार्यमध्यं विगाहेत मानाभिजनरक्षिणी ॥३०६८॥
इति कल्हणिकादेव्या माध्यस्थ्ये स धियं व्यधात् ।
प्रस्थानपदयात्रां सा सीमान्तप्रापणावधि ॥ कुलकम् ॥३०६९॥

नाईके भोजने जव उस दूतसे सम्पर्क स्थापित किया, तव धन्यने उस वातपर विश्वास नहीं किया ॥ ३०५५ ॥ जिस तरह कि नागके प्रसंगमें उसे नीचा देखना पड़ा था, उसकी पुनरावृत्ति न होने देनेके लिए धन्यने राजाको भ्रम डालनेके माया रची ॥ ३०५६ ॥ उसने एकान्तमें वलहरसे कहा कि 'यह अपने हाथसे निकलने न पाये'। उधर कृत्रिम सरलता दिखाता हुआ भोज राजासे सन्धि करनेके लिए उतावला हो उठा ॥ ३०५७ ॥ ठीक समयपर उचित साचिव्य करनेमें निपुण धन्यने तुरन्त अपने देशके एक लड़केको दूतके कार्यपर नियुक्त करा दिया ॥ ३०५८ ॥ वलहरको यह आशंका नहीं थी कि वालक भोज कोई चक्र रच सकेगा ॥ ३०५९ ॥ उधर राजा जयसिंह उस विश्वस्त सन्धिदूतकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसी समय दूतने वहाँ पहुँचकर भोजका मन्तव्य कह सुनाया ॥ ३०६० ॥ उस समय भोजके पास कोई विश्वस्त पुरुष नहीं था। अतएव उसने स्त्री होनेके कारण प्रतिभाविहीन नोना नामकी अपनी धायको राजाके पास भेजा ॥ ३०६१ ॥ जव भोजके माता-पिता मर गये थे, तव उसीने उसका मातृकृत्य (पालन-पोषण) किया था। अतएव वह उसकी माननीया धायमाँ थी ॥ ३०६२ ॥ वह महारानी कल्हणिकाको विशेष चाहती थी। उसीने रानी और राजाका सम्बन्ध गाढ़ किया था। उसमें ईर्ष्याभाव नहीं था और वह सदा राजाको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती रहती थी। ह्रास या उल्लासका कोई भी काम पड़नेपर वह तत्काल उचित निर्णय कर देती थी। राजाने उसे एक संभ्रान्त क्षत्राणी रूपमें कभी नहीं देखा ॥ ३०६३ ॥ ३०६४ ॥ जव उसके ससुर तथा प्रजाजनोंने राजाका अभिषेक किया, तव उसी धायने महारानीका पट्टवन्ध सम्हाला था ॥ ३०६५ ॥ पुत्रप्रेम, विविध भोग, लोभ तथा स्वामीके प्रेरित करनेपर भी उसकी वुद्धि कभी किसी कुकृत्यकी ओर अग्रसर नहीं हुई ॥ ३०६६ ॥ अपने स्वामीकी अभिन्नहृदया नोना निजी तथा अन्य लोगोंका मनमोटाव दूर करके परस्पर मिलानेका प्रयास करती रहती थी। भाग्योदयकी अवस्थामें भी उसे घमण्ड नहीं हुआ था और उसने अपने पतिव्रतको कदापि खण्डित नहीं होने दिया था ॥ ३०६७ ॥ वाल्यकालसे ही वह अपने प्रभुके मनोभावोंको जानती थी। किन्तु उसने कभी कुपन्थपर चलते समय उसका साथ नहीं दिया। कार्यकालमें अपने सम्मानकी रक्षा करती हुई वह अपने कुलके काममें भी हाथ वँटाती थी। राजा जव अपने महलको

गुप्त्यै लब्धवित्तादि पराध्र्यं मध्यपातिनाम्। पाथेयार्थं पृथुस्वर्णभाजि कोशादि चात्मनः ॥३०७०॥
ग्राहयामास किं चाष्टौ श्रेष्ठाभिजनोद्भवान्।
पालनार्थं राजपुत्रान्देवी यन्सर्वसंविदम्॥ युगलकम् ॥३०७१॥
वाचकं तद्गृहीत्वा तामागमत्पार्थिवेन सः। धात्रीं स कारयन्धन्यो वद्वेच्छासिद्धिनिश्चयाम्॥३०७२॥
विहितप्रत्ययस्तस्याः सद्यः स्यात्तु महीपतिः। राजधर्मस्य च वसन्नासीदोलाकुलाशयः ॥३०७३॥
स हि दध्यौ निर्विरोधो वैराग्येणाथ मायया। संकटान्मोचितव्योऽसौ यायात्कालेन विक्रियाम्॥३०७४॥
अनिःशेषितजीमूतजालमाविर्भवन्नविः। अनूनक्लेशशेषं च विवेको न स्फुरेच्चिरम् ॥३०७५॥
मुग्धान्निरनुसंधानान्नागबाधादवेत्य नः। स्वार्थस्य सिद्धये माया तेनेयं निरमायि वा ॥३०७६॥
लब्धलक्षेऽपरिक्षीणे शक्ते यूनि गणाश्रिते। क्षत्रधर्मस्थिते नेदृग्विवेकः क्वापि लक्ष्यते ॥३०७७॥
अवल्लि कुङ्कुमं पुष्पमपुष्पं क्षीरिणः फलम्। अकालपर्ययापेक्षं वैराग्यं वा महात्मनाम् ॥३०७८॥
न त्याज्यो राजपुत्रोऽमावेवं मायानिधिर्यदि। एवं विवर्तश्चेत्तस्मिन्नदृष्टे किं दृशोः फलम् ॥३०७९॥
राज्ञी राजात्मजाश्चैते प्रतिष्ठाभङ्गशंसिनः। ऋजुस्वभावात्सुस्पष्टमन्यत्कार्यं न मन्यते ॥३०८०॥
अटन्ती कुटिलं स्पष्टं सरित्मर्वैर्न लक्ष्यते। कान्ताकुन्तलविष्यन्दी तोयबिन्दुरिव क्रमः ॥३०८१॥
इति ध्यात्वा राजधर्मं सत्यप्रज्ञोचितं व्यधात्। धन्यरिल्हणयोः कार्यं श्रुतावन्यान्विसर्जयन् ॥३०८२॥
स्वस्यैवार्थस्य दार्ढ्याय सान्हणिस्त्वां दिदृक्षते। समागमाये-युक्त्वाऽथ धन्यो दूतैरनीयत ॥३०८३॥
मा भैर्षादेप संवित्सुः सैन्यादिति सितानुगः। अवर्तिष्ट तटिन्याः स द्वीपान्तस्तत्प्रतीक्षया ॥३०८४॥

जाने लगा था, तब सीमान्त तक वह भी उसके साथ गयी थी॥ ३०६८॥ ३०६९॥ मध्यवर्ती लोगोंके बहुमूल्य धन और अपने स्वर्णपूर्ण कोशकी रक्षा एवं पाथेय (राहखर्च) के वास्ते और अपने उच्च कुलमें उत्पन्न आठ पुत्रोंका भरण-पोषण करनेके निमित्त महारानीने जो धनराशि निर्धारित की थी। वह सब नोनाकी ही देखरेखमें भोजके पास आयी थी॥ ३०७०॥ ३०७१॥ नोना जब भोजका सन्देश लेकर पहुँची, तब उसे धन्यने महाराज जयसिंहसे मिलाया। नोनाको कार्यसिद्धिका पूर्ण विश्वास था॥ ३०७२॥ किन्तु धन्य सोचने लगा कि 'राजधर्मज्ञ राजा इसकी बातपर तुरन्त विश्वास कर लेगा'। यह सोचकर उसका चित्त दोलायमान हो उठा॥३०७३॥ उसने निर्विरोध भावसे विचार किया कि 'वैराग्योत्पादन अथवा किसी मायाके द्वारा मुझे राजाको इस संकटसे उबारना है। यदि देर होगी तो वह शत्रुके चंगुलमें फँस जायगा॥ ३०७४॥ जबतक कि समस्त मेघसमूह नष्ट नहीं हो जाता, तब तक सूर्यका प्रकाश नहीं फैलता। वैसे ही जब तक सारे क्लेशोंका अन्त नहीं हो जाता तबतक हृदयमें चिरस्थायी विवेकका उदय नहीं होता'॥ ३०७५॥ फिर उसे सहसा अपनी उस मूर्खताका स्मरण आया, जिससे नाग मारा गया और उसके काममें भी बाधा आ पड़ी थी। सो भली-भाँति विचार करके उसने एक माया फैलायी॥ ३०७६॥ लब्धलक्ष्य, अपरिक्षीण, सशक्त, युवागणाश्रित तथा क्षात्रधर्मपरायण किसी व्यक्तिमें ऐसा विवेक नहीं देखा जाता॥ ३०७७॥ केसरका पुष्प बिना वल्लरीके पौधोंमें फूलता है, बिना फूल लगे ही खिरनी फलती है और महात्मा पुरुषोंमें बिना किसी नियत समयके ही वैराग्य आ जाता है॥ ३०७८॥ 'यह राजपुत्र त्यागा न जाय' यदि मायाका यही उद्देश्य हो तो उसे अवश्य देखना चाहिए। यदि न देखा गया तो आँखोंके अस्तित्वसे क्या लाभ॥ ३०७९॥ कोमल स्वभाववाली रानी, राजा और राजपुत्र सबके प्रतिष्ठाहानिका भय है। इस प्रतिष्ठाको बचानेके सिवाय इनकी दृष्टिमें और कोई काम ही नहीं है॥ ३०८०॥ टेढ़ी-मेढ़ी बहनेवाली नदीके उद्भवको सब लोग नहीं देख पाते। जैसे स्त्रीके केशोंसे टपकनेवाले जलबिन्दुका कोई क्रम नहीं रहता॥ ३०८१॥ इस प्रकार राजधर्मकी पर्यालोचना करके धन्य तथा रिल्हणने अन्य सब लोगोंको हटाकर सत्य एवं प्रज्ञायुक्त एक कार्यक्रम बनाया॥ ३०८२॥ तदनुसार एक दूतने आकर धन्यसे कहा कि 'अपना स्वार्थ पक्का करनेके लिए भोज आपसे मिलना चाहता है'। यह

सरित्सा जानुदघ्नाम्भा भूत्वा घर्मद्रुते हिमे । गगनालिङ्गिभिर्भीमा तरङ्गैः समपद्यत ॥३०८५॥
अवाप्ता चेभ्यंयालङ्घ्यभावं यान्त्यपि दन्तिनाम् । रुद्धः सिन्ध्वाभवत्सोथ द्विषां रन्ध्रैषिणां वशे ॥३०८६॥
सिन्धोरुभयतस्तोयैर्व्याप्तैरन्तर्भुवोऽन्तरे । ते दिण्डीरोपमां प्रापुः पिण्डिताः पाण्डुवाससः ॥३०८७॥
खाशकानां सहस्राणि भोजस्य पतितं बले । स्थितवन्ति निहन्तुं तं तथास्थितमचिन्तयन् ॥३०८८॥
दृग्भ्यां संभ्रमदीनाभ्यामघशान्त्यै स्पृशन्निव । कर्णे सल्हणसूनुस्तां संतर्ज्यावृजिनोऽब्रवीत् ॥३०८९॥
निर्दम्भमस्य विस्रम्भाद्धावतो विहिते वधे । निरत्ययो निपातः स्यान्नियतं निरये पुनः ॥३०९०॥
हतेऽस्मिन्बहुभृत्यस्य न च शक्तिक्षयः प्रभोः । नैकपक्षक्षये तार्क्ष्यरंहः संहारमर्हति ॥३०९१॥
अपि वा वाच्यता राज्ञामेवं विस्रब्धबाधनात् । तुल्यस्तुल्येन कर्तव्यं किमनुध्याय बध्यते ॥३०९२॥
यथायं वृत्तयेऽनन्यकर्मा भूपं निषेवते । तथा ममापि यत्तोऽयं तत्सेवासादने यतः ॥३०९३॥
युक्तमित्यादि तेनोक्ता अपि निश्चलनिश्चयाः । ते न्यषिध्यन्त निर्बन्धात्प्रतिज्ञायात्मनो वधम् ॥३०९४॥
रात्रौ तथैवादरिद्राश्छिद्रं तद्रक्षितुं ततः । कारिताः कोशपानं ते तमर्थं सोऽपि बोधितः॥३०९५॥
तेनावेदितनिर्व्याजतया धीरो महीपतिः । अनुध्यायाथ संदिग्धं संधिसिद्धिममुग्धधीः ॥३०९६॥
अज्ञातनिश्चयः सिद्धेर्विनान्तःकरणं परैः । अथ प्रास्थापयद्देवीं सामात्यां तारमूलकम् ॥३०९७॥
राजधर्मविधेयत्वादवार्यक्रूरशङ्किनी । प्रस्थानप्रार्थनां भर्तुः सा स्वीकृत्य ततोऽब्रवीत् ॥३०९८॥

कहकर वह दूत धन्यको अपने साथ लेकर चला गया ॥ ३०८३ ॥ सन्धि करनेको उद्यत भोज डर न जाय, यह सोचकर धन्य बहुत ही थोड़े अनुचरोंको अपने साथ लेकर गया और भीमा नदीके एक द्वीपमें उसकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ३०८४ ॥ पहले वह भीमा नदी धूपसे बर्फके पिघलकर आनेवाले जलके कारण घुटने भर गहराईकी थी, किन्तु सहसा पानी बढ़ गया और उसकी तरंगे आकाशका स्पर्श करती हुई दिखायी देने लगीं ॥ ३०८५ ॥ अतएव वह हाथियों द्वारा भी पार करने योग्य नहीं रह गयी । इस प्रकार उस नदीके द्वारा अवरुद्ध होकर धन्य छिद्रान्वेषी शत्रुओंके वशीभूत हो गया ॥ ३०८६ ॥ उस द्वीपके दोनों ओर जल-भर जानेके कारण श्वेतवसनधारी धन्य तथा उसके साथी एकत्र होकर दिण्डीर जैसे दीखने लगे ॥ ३०८७ ॥ उसी समय हजारों खश भोजकी सेनामें सम्मिलित होकर वैसी विकट स्थितिमें फँसे हुए धन्यको मारनेके लिए नदीके तटपर आ पहुँचे ॥ ३०८८ ॥ घबड़ाहट तथा दैन्य भरी निगाहोंसे उन्हे निहार तथा उनका पाप शान्त करनेके लिए पुण्यात्मा भोजने अपने सैनिकोंको धमकाकर उनके कानमें कहा—॥३०८९॥ 'इस निर्दम्भ, विश्वस्त एवं प्राण बचानेके लिए भागते हुए धन्यका वध करनेसे बहुत बड़ा अनर्थ होगा और अन्तमें नरकगामी भी होना पड़ेगा॥ ३०९० ॥ और फिर इसको मार डालनेसे इसके प्रभुकी सारी शक्ति तो क्षीण न हो जायगी। जैसे गरुड़के एक-आध पंख गिर जानेसे उनके वेगमें कमी नहीं आ सकती ॥३०९१॥ इसके अतिरिक्त इस विश्वस्त पुरुषका वध करनेसे राजाओंमें हमारी बदनामी भी होगी । अतएव जो अपने समक्ष जिस भावसे आये, उसके साथ वसा ही व्यवहार करना चाहिए । हठात् इसका वध कर देनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ ३०९२ ॥ जिस तरह जीविकाके लिए यह राजाकी सेवा कर रहा है, उसी प्रकार मै भी तो उस राजाकी सेवा करना चाहता हूँ' ॥ ३०९३ ॥ यद्यपि भोजने उन खशोंको भलीभाति समझाया, किन्तु वे अपने निश्चयपर दृढ़ रहे । उन्होंने भोजको इस प्रकारका आग्रह करनेसे रोक दिया, किन्तु भोजने फिरसे उन्हें समझाया ॥ ३०९४ ॥ रात्रिके समय धन्यकी रक्षाका प्रयत्न करते हुए भोजने अपने साथियोंसे कोशपानपूर्वक प्रतिज्ञा करायी कि 'अब वे उसके वधका विचार त्याग देंगे' ॥ ३०९५ ॥ तदनन्तर धन्यने वहाँसे लौटकर जब राजा जयसिंहको सब हाल बताया, तब वह धैर्यशाली राजा शान्तचित्तसे इस समस्यापर विचार करके इस निष्कर्षपर पहुँचा कि 'अब सन्धि होनेमें सन्देह है' ॥ ३०९६ ॥ जब उसने देखा कि अन्य लोगोंके द्वारा यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, तब उसने कुछ मंत्रियोंके साथ रानी कल्हणिकाको तारमूलक भेजनेका निश्चय किया ॥ ३०९७ ॥ राजधर्मकी क्रूरताओंसे सशंक होती हुई भी रानीने राजाका आग्रह स्वीकार कर लिया और कहा—॥ ३०९८ ॥

असामान्येष्वमात्येषु कुसृत्यालोकनात्सकृत् । आर्यपुत्र विचार्योऽस्ति विस्रम्भः किं विरोधिनाम् ३०९९॥
यद्वा निर्मानुषोन्मेषं शेमुषीत्वं विगाहितुम् । प्रथते नु कथंकारं मूर्तत्वं मर्त्यधर्मिणाम् ॥३१००॥
देहोपकरणत्वं ते प्राणैर्मम विचिन्त्यते । सतीधर्मस्तु सहते राजधर्मस्य नोचितम् ॥३१०१॥
व्यञ्जितास्यसदाचारं कलिकृत्यं द्विपि त्वयि । प्रारब्धो देव भोजेन हिमाद्रौ हिमविक्रयः ॥३१०२॥
न गृह्णाति शमं वेत्ति स्वस्यान्यस्य न चान्तरम् । निर्व्यूढमददोषोऽद्य प्रायेण प्राकृतो जनः ॥३१०३॥
पुत्रमन्त्र्यविरोधादिबुद्ध्यशुद्ध्या प्रधावति । साध्वाचारोपि भूपालः क्रुध्यन्विस्रब्धबाधने ॥३१०४॥
समयालङ्घनामोघगिरा देवेन पीयते । लोकत्रयैकपात्रेऽस्मिन्यशो नूनं मया सह ॥३१०५॥
त्रातव्यसंक्षयोपेक्ष्यप्राणायास्त्वन्यदाशयः । ममैवास्वादयन्त्यादादात्मंभरिपुरास्थितिः ॥३१०६॥
इत्युक्त्वा विरतां सत्यसंधः साध्वीं धरापतिः । शान्तशङ्कामकृत्वा तां समामन्त्र्य न्ययोजयत् ॥३१०७॥
भङ्गं सर्वानयं त्रातुं प्रयोक्तुं वेतनं नृपः । संरम्भे किमयं ध्यायत्यन्तः सर्वोप्यचिन्तयत् ॥३१०८॥
उपायेषु प्रयुक्तेषु देवीसंप्रेषणावधि । नान्यदस्य प्रयोक्तव्यं यदवाशिष्यत क्वचित् ॥३१०९॥
स्वपक्षभेदाद्भर्तुः सबलत्वाबलत्वयोः । परीक्षकत्वाद्ये केचिन्माध्यस्थ्येनावसन्क्वचित् ॥३११०॥
तेऽप्यल्पे वा महान्तो वा क्षीणदाक्षिण्यशृङ्खलाः । भोजगृह्यैः सहाबध्नन्कन्थां सर्वेऽपि डामराः ॥३१११॥
ते ह्यच्छिन्नतटस्थत्वाद्द्वैराज्येऽस्माभिरीदृशः । भोजः संजात इत्याशु माध्यस्थ्यं परिजहिरे ॥३११२॥
त्रिल्लको भोजसविधं तनूजं प्राहिणोद्द्रुतम् । प्रावेशयच्छमालां च चतुष्कं पुष्कलैर्बलैः ॥३११३॥
ये भिक्षुविप्लवेऽप्यासन्राजदाक्षिण्यरक्षिणः । विरोधिसविधं प्रापुस्तेऽपि नीलाश्वडामराः ॥३११४॥

'महाराज ! इन असाधारण मन्त्रियोंके रहनेपर भी यदि शत्रुपक्षीय लोग कोई उपद्रव खड़ा कर दे तो क्या होगा ? आप इस बातपर विचार कर ले। शत्रुओंका क्या भरोसा ? ॥ ३०९९ ॥ अथवा यदि उनमे किसी प्रकारकी अमानुषी बुद्धिका प्रादुर्भाव हो गया तो उसका प्रतीकार कैसे किया जायगा ? मानव धर्मके नाते ऐसा होना स्वाभाविक भी है' ॥ ३१०० ॥ मै अपने प्राण दे करके भी आपका उपकार करना चाहती हूँ। यह सतीधर्मका मेरा अपना सिद्धान्त है। किन्तु राजधर्मकी दृष्टिमे यह अनुचित है ॥३१०१॥ आप सदा उससे द्वेष करते आये हैं और आपके असत् आचरण तथा पापमय कृत्य उसे भली भाँति ज्ञात हैं। इसी कारण हे देव ! अब उसने हिमालय पर्वतपर वर्फका विक्रय आरम्भ कर दिया है ॥ ३१०२ ॥ प्रायः निम्नश्रेणीके लोग उभड़े हुए मददोषसे अपने तथा दूसरेमे कोई अन्तर न मानते हुए शान्तनीतिका अवलम्बन नहीं करते ॥ ३१०३ ॥ जब बुद्धि अशुद्ध हो जाती है, तब सदाचारी राजा भी क्रुद्ध होकर अपने विश्वस्त बाधक पुत्र-मंत्री आदि तकको मारनेके लिए दौड़ पड़ता है ॥ ३१०४ ॥ समयका अतिक्रमण न करनेवाले अपने अमोघ वचनसे आप अवश्य इस त्रिलोकीरूपी पात्रमे मेरे साथ यशरूपी मद्यका पान करेंगे ॥ ३१०५ ॥ जिनकी रक्षा करनी चाहिए, उन प्राणोकी उपेक्षा करके मैं आपकी आज्ञाका पालन करती हुई आपको पुनः पुरातन स्थितिमें पहुँचा दूँगी' ॥ ३१०६ ॥ इतना कहकर जब रानी कल्हणिका चुप हो गयी, तब सत्यप्रतिज्ञ राजाने उसकी सभी शंकाओंका समाधान करके उसे उस काममे लगा दिया ॥ ३१०७ ॥ सब प्रकारकी अनीतियोंसे बचावका प्रबन्ध करके उसने खर्चके लिए प्रचुर धन साथ भेजते हुए इस बातको भी सोच लिया कि क्या क्या और कठिनाइयाँ आ सकती हैं ॥ ३१०८ ॥ रानीको भेजनेके समय तक राजाने सभी उपायोंका उपयोग कर लिया। अतएव अब कोई भी उपाय ऐसा नहीं रह गया था कि जिसका उसने प्रयोग न किया हो ॥ ३१०९ ॥ अपने पक्षमे भेद पड़ जानेके कारण सबलत्व एवं अबलत्वकी परीक्षा करनेके लिए मध्यस्थके रूपमे राजाके पास जो लोग थे ॥ ३११० ॥ वे छोटे रहे हों या बड़े, सबने उदारताकी शृंखला तोड़ डाली और सभी डामरोंने भोजके साथ सम्पर्क स्थापित कर लिया ॥ ३१११ ॥ उन्होंने द्वैराज्यमे तटस्थता भंग न करनेका परिणाम भोग लिया था। अतएव भोजके सिर उठाते ही उन्होंने मध्यस्थता त्याग दी ॥ ३११२ ॥ त्रिल्लकने तत्काल अपने पुत्रको भोजके पास तथा पुष्कल

लहरादेवसरसाद्धोलडातश्च डामराः । त्रयो नीलाश्वतश्चैका डामरी पर्यशिष्यत ॥३११५॥
न व्यरंसीद्धिमं तत्तल्लवन्ये साल्हणेर्बले । पतत्प्रावृट्प्रमत्तौघघोपोऽम्भोधाविवोद्गतः ॥३११६॥
भोजस्तु देवीमायान्तीं श्रुत्वा बलहरं ततः । भूत्रं संधित्सया बद्ध इति सुव्यक्तमभ्यधात् ॥३११७॥
एतावन्ति दिनान्यासीत्पुंसो भ्रमयिता पुमान् । संबन्धिनीनां माध्यस्थ्ये स्वकुल्यात्कोन्यथा भवेत्॥३११८॥
कुलचूडामणिः प्रेम्णा स यत्रैवं प्रवर्तते । किं स्यादगण्यप्रायाणां कार्कश्यं तत्र मादृशाम्॥३११९॥
यच्च मायामिमां ब्रूथ तत्तथास्त्वस्मि वञ्चितः । विश्वास्यैव भविष्यामि नाकीर्तीनां निकेतनम् ॥३१२०॥
मा च भूद्विजयाशा वः समेता निखिला इति । अद्राक्ष्म चेदृशान्व्यूहानवारुक्षाम वोन्नतेः ॥३१२१॥
युक्तियुक्तमिदं चान्यच्चोक्तवान्दृढनिश्चयात् । नाशक्यतान्यथा कर्तुं भोजो बलहरादिभिः ॥३१२२॥
द्वित्राहान्तरितेऽमित्रप्रमाथेऽपरथा कथम् । फलकालेऽसि संवृत्तमिति तं चावदन्नृपाः ॥३१२३॥
तारमूलस्थितौ राज्ञ्यांससैन्यौ धन्यरिल्हणौ । राजपुत्रैः सह ततः पाञ्चिग्राममवापतुः ॥३१२४॥
प्राप्ताववेत्य तौ नद्यास्तीरेऽवाचि कृतस्थिती । परस्मिन्कूलगहने भोजोऽप्येतावुपाविशत् ॥३१२५॥
अश्रान्तं विशतो दिङ्मुखेभ्यस्तत्कटकं भटान् । पश्यन्तः केऽपि संधिं न श्रद्दधुर्नृपतेर्बले ॥३१२६॥
हठाद्विष्टान्निर्यातुमक्षमानल्पसैनिकान् । धन्यादीन्राजवदनो हन्तुं गभ्यदचिन्तयत् ॥३१२७॥
छित्त्वा सुय्यपुरात्सेतुं राज्ञः सैन्यं जिघांसवः । महापद्मसरोनौषु निभृतं केचनावसन् ॥३१२८॥
अन्ये तु साहसोदन्तान्वेषिणः पतनोन्मुखाः । स्वैः स्वैर्मार्गैस्तत्र तत्र तस्थुर्भूभृदसंमताः ॥३१२९॥

सेनाके साथ चतुष्कको शमाला भेज दिया॥ ३११३ ॥ भिक्षुके विप्लवकालमें जो राजाकी उदारतासे संरक्षित थे, वे नीलाश्वके डामर भी विरोधी पक्षसे जा मिले॥ ३११४॥ अब राजाके पास लहर, देवसरस तथा होलडाके एक-एक करके केवल तीन डामर और नीलाश्वकी एक डामरी शेष रह गयी ॥ ३११५॥ उधर हिमपातका अन्त हुआ ही नहीं था कि इतनेमें लवन्यों तथा भोजकी सेनापर गम्भीर गर्जन करनेवाले समुद्रकी भाँति वर्षाकाल आ उपस्थित हुआ॥ ३११६॥ जब भोजने रानी कल्हणिकाके आगमनकी बात सुनी, तब उसने बल्हरको साफ-साफ बता दिया कि 'मैं राजाके साथ सन्धि करना चाहता हूँ ॥ ३११७॥ इतने दिनोंतक पुरुष पुरुषको नचाया करता था, किन्तु अब जब कि अपने कुलकी महारानी स्वयं मध्यस्थता करने आ रही हैं, तब उनकी उपेक्षा कौन कर सकता है ? ॥३११८॥ जब मेरे कुलचूडामणि महाराज जयसिंह स्वयं सन्धिप्रस्ताव कर रहे हों, तब हम जैसे नगण्य व्यक्ति उसकी उपेक्षा करते हुए शठताका व्यवहार कैसे कर सकते हैं ? ॥ ३११९॥ अब भी आप जिस मायाकी बात कर रहे है, वैसी मायाओंसे मैंने बहुत धोखा खाया। अब उन्हें विश्वास दिलाकर मैं अपयशका पात्र नहीं बनना चाहता ॥ ३१२० ॥ अब आप सब लोग एक साथ मिल करके भी विजयकी आशा नहीं कर सकते। क्योंकि मैंने ऐसे बहुतेरे व्यूह देखे हैं और इनसे मेरी अवनति ही हुई है'॥३१२१॥ दृढ़ निश्चय तथा युक्ति-संगत रीतिसे उसने ऐसी बहुत-सी बातें कहीं और बलहर आदि भोजको अपने निश्चयसे नहीं डिगा सके॥३१२२॥ दो-तीन दिन बाद जब शत्रुसेनाकी हलचल बढ गयी, तब बलहरपक्षके राजाओंने भोजसे कहा कि 'जब हमारे परिश्रमका फल निकट आ गया है, तब आप ऐसी गड़बड़ी क्यों कर रहे हैं' ॥ ३१२३॥ उधर जब रानी तारमूल पहुँची, तब धन्य और रिल्हण अपनी विशाल वाहिनी तथा अनेक राजपुत्रोंके साथ पांचिग्राममें जा पहुँचे ॥ ३१२४॥ जब भोजको यह समाचार मिला कि 'धन्य तथा रिल्हण आकर नदीके दक्षिणी तटपर डेरा डाले हुए हैं' तब भोज भी उत्तरी तटके जंगलमें उनके पास पहुँच गया॥ ३१२५॥ विभिन्न दिशाओंसे आनेवाली राज-सेनाके सैनिकोंको देखकर उन बलहर आदि विरोधियोंकी राजाके साथ सन्धि करनेकी तनिक भी इच्छा नहीं हुई ॥ ३१२६॥ हठपूर्वक प्रविष्ट और निकलनेमें असमर्थ थोड़ेसे सैनिकोंके साथ आये धन्य आदिको मार डालनेके लिए राजवदन बार बार संकल्प करने लगा ॥ ३१२७॥ तदनुसार राजाकी सेनाको समाप्त करनेके निमित्त उन लोगोंने सुय्यपुरका पुल तोड़ दिया और कुछ योद्धा महापद्म सरोवरकी नौकाओंमें जाकर रहने

आस्कन्दं भाङ्गिलेयाद्याः पुरे शंकरवर्मणः । शमालाक्षिप्तिकावाप्तिं डामराः समचिन्तयन् ॥३१३०॥
प्राप्य्यं महासरित्कूलं त्रिल्लकाद्यैरगण्यत । नीलाश्वडामरैरोप्यां कार्या च नगरान्तरे ॥३१३१॥
किमन्यद्राजगृह्याणां समं सर्वे जिघांसवः । कारण्डवानां तोयान्तर्वेष्टितानामिवाभवन् ॥३१३२॥
संदिग्धशिक्षितं कार्यं सर्वतः समतां तदा । प्राप वृष्टेरवग्राहग्रहयोगान्तरस्थितेः ॥३१३३॥
पदे पदे राजचमूपथायोत्थानमिच्छतः । छिन्दन्वलहरस्येच्छां भोजो व्यग्रत्वमग्रहीत् ॥३१३४॥
क्षणे क्षणे विसंधानध्यायिना तेन कथ्वन । बध्यमानास्त्वन्तरायः संविधात्तु व्यधीयत ॥३१३५॥
घटनामुभयो यो यो विरोधः कटकद्वयात् । सर्वैकाग्रः स्वयं भोजस्तं तं त्वरितमच्छिनत् ॥३१३६॥
दूत्ये च कल्यकत्वे वा येरुवन्राजरञ्जकाः । भयेन प्रययुस्ते यद्वैकल्यं कार्यसङ्कटे ॥३१३७॥

कर्णे तत्कथयन्ति दुन्दुभिरवै राष्ट्रे यदुद्घोपितं
तन्नम्राङ्गतया वदन्ति करुणं यस्मात्त्रपावान्भवेत् ।
श्लाघन्ते तदुदीर्यते यदरिणाप्युग्रं न मर्मान्तकृत्
ये केचिन्ननु शाठ्यमौग्ध्यनिधयस्ते भूभुजो रञ्जकाः ॥३१३८॥

भण्डस्ताण्डवमण्डपे कटुकथावीथीपु कन्थाकवि-
र्गोष्ठश्वा स्वगृहाङ्गणे शिखरिभूगर्ते खटाकुः स्फुटम् ।
पिण्डीशूरतया विटश्वपटुतां भूभृद्गृहे गाहते
गच्छन्ति ह्रदकूटकच्छपतुलां चित्रं ततोऽन्यत्र ते ॥३१३९॥

शूरोद्रेकविपर्यासाच्छान्तोष्मक्ष्माभृतस्ततः । वासरः शरणीचक्रे तुङ्गस्योत्तुङ्गमञ्जसा ॥३१४०॥

लगे ॥ ३१२८ ॥ अन्य पतनोन्मुख शत्रुसैनिक अपने-अपने मार्गोंपर राजाके साहसिक कार्योंकी सूचनाका संग्रह करनेके लिए डट गये ॥ ३१२९ ॥ उधर शंकरवर्माके नगरमें भागिलेय आदि डामर एकत्र होकर शमाला तथा क्षिप्तिकाको हस्तगत करनेके लिए आक्रमण करनेकी बात सोचने लगे ॥ ३१३० ॥ महानदीके तटपर कब्जा करनेके लिए त्रिल्लक आदि हिसाब लगाने लगे और नीलाश्वके डामरोंने नगरके मध्यमें पहुँच जानेकी योजना बनायी ॥ ३१३१ ॥ और अधिक कहाँतक कहा जाय, राजाके घरमे जितने भृत्य थे वे भी उसी तरह राजाके प्राणघातक हो गये, जैसे पानीके भीतर कोई कारण्डव पक्षी शत्रुओसे घिर गया हो ॥ ३१३२ ॥ जैसे किसी सन्देहास्पद विषयकी शिक्षा प्राप्त करनेके बाद सब विषय समान लगने लगते हैं, उसी प्रकार ग्रहोंका योग बदल जानेपर बरसात रुक गयी ॥ ३१३३ ॥ पद-पदपर बलहरकी सेना राजसैन्यके मार्गपर बढनेका प्रयास करती थी, किन्तु भोज उसका श्रम व्यर्थ कर देता था ॥ ३१३४ ॥ क्षण-क्षणपर बलहर कोई न कोई चाल चलना चाहता था, किन्तु भोज उनकी हर चाल बेकार कर दिया करता था ॥ ३१३५ ॥ दोनों सेनाओंमे जब भी कोई विरोध उपस्थित होता था, तब भोज अपनी शक्तिसे तुरन्त उसे शान्त कर देता था ॥ ३१३६ ॥ जो लोग राजाके गुप्तचर तथा खुशामदी थे, वे कठिनाई आनेपर मारे डरके विकल हो गये ॥ ३१३७ ॥ एक ओर जो बात डुग्गी पीटकर कही जाती थी, उसीको दूत लोग जाकर राजाके कानमे कहते थे। उस बातको वे शरीर झुकाकर बड़े करुण भावसे कहते थे, जिससे वह लज्जित हो जाय। उनके कहनेका ढंग ऐसा मर्मभेदी और श्लाघापूर्ण होता था कि जैसा कोई शत्रु भी नहीं कह सकता था। उस समय जितने लोग शठता और मूर्खताके निधान थे, वे ही सब राजाके मनोरंजक साथी बने हुए थे॥३१३८॥ राजाके टुकड़ोंपर पलकर तुकबन्दी करनेवाला कन्थाकवि जो पहले नाट्यशालामे भँड़ैतीका-काम करता था, वह अब गली-गली राजाकी निन्दाभरी कडवी बातें कहने लगा। जो कुत्तेकी तरह राजाकी गोशालाका रक्षक था, वह खटाकु तथा पर्वतकन्दराओं एवं राजाके महलमें रहनेवाले अन्य अनुचर मिलकर राजापर ऐसे आक्षेप करने लगे। जैसे तालाबसे निकाले हुए कछुए विचित्र ढङ्गसे उछल-कूद करने लगें॥ ३१३९॥ जब दिनका प्रकाश ऊँची-ऊँची पहाड़ियोंपर जाकर छुप गया। उस समय सूर्यकी गर्मीके

भानुर्दत्तपदोऽनूरोर्भ्रातुर्गोवलयान्तरे । क्ष्माभृच्छिरोर्पितकरो रक्तमण्डलतां दधे ॥३१४१॥
अहस्त्रियामामुखयोरपि मध्यस्थया दधे । संध्यया वन्दनीयत्वं जनस्य व्यञ्जिताञ्जलेः ॥३१४२॥
करटिदन्तैर्विस्फोटाश्चन्द्रकान्तैः सिरोद्गमः । श्वयथुः पयसां पत्या दधे राज्युदयोन्मुखे ॥३१४३॥
सदैन्येष्वरविन्देषु हीनद्वन्द्वोपजीवनैः । करटिनां घटेष्वेव षट्पदैर्घटितं पदम् ॥३१४४॥
अदृष्टकार्यपर्यन्तास्ततस्ते विषमस्थिताः । सरित्तटे सकटकाः पर्यतप्यन्त मन्त्रिणः ॥३१४५॥
न किंचित्प्रत्यभात्सर्वं लघु भ्रान्तं च जानताम् । ओघेन ह्रियमाणानामिवैषामवलम्बनम् ॥३१४६॥
तीरे परस्मिन्सरितो वसन्वल्हरः पुनः । रुद्धः कन्दलितास्कन्दबुद्धिः साल्हणिनाऽसकृत् ॥३१४७॥
कार्यातिपातादायातं मन्त्रिणां तन्मितं बलम् । तस्य प्रवर्धमानस्य सुखोच्छेद्यं बभूव यत् ॥३१४८॥
वितस्तासिन्धुसंभेदयात्रायां नगरे यथा । तथा तत्रापतन्रात्रौ लोकोऽश्रान्तो व्यवर्तत ॥३१४९॥
लेखैर्डामरसंहारखण्डनाय विसर्जितैः । सान्तरैर्ग्रथिता बाह्यैर्नानाग्रै राजबीजिनः ॥३१५०॥
शाठ्यान्वितैरनुसरैस्तुमुलोत्पादनैरपि । धीरो धैर्याद्विनिश्चयाद्वा स्वैः स क्रष्टुं न पारितः ॥३१५१॥
सामन्तानामागतानामविस्रम्भादसंभ्रमम् । न्यक्कृतोऽयं निपत्याशु कुर्यादत्याहितं रुषा ॥३१५२॥
कृते च कदनोंकारेऽपतद्रात्रौ समुन्मिषेत् । द्विजानामिव दस्यूनां समूहस्तेन सर्वतः ॥३१५३॥

इति निध्र्याय दुध्रुक्षुरिव भोजः क्षपात्यये ।
कुर्मः साहसमित्युक्त्वा निन्ये वल्हरं समम् ॥ तिलकम् ॥३१५४॥

एषां मदर्थायातानां सामन्तानामभोजने । दाक्षिण्यादिति नाभोजि तेनाप्यभिजनस्पृशा ॥३१५५॥

साथ ही राजाकी ऊष्मा भी शान्त हो गयी ॥ ३१४० ॥ सूर्यनारायणने अपना काम अनूरु (सारथी) को सौंप दिया और बादमें अनूरु अपने भ्राता प्रभातके साथ ऊँचे पहाड़ोंपर विश्राम करने चले गये और सूर्यका रक्तमंडल भी धीरे-धीरे आँखोंसे ओझल हो गया ॥ ३१४१ ॥ तब जनसाधारणके लोग हाथ जोड़-जोड़कर दिन और रात्रिकी मध्यस्थता करनेवाली देवी सन्ध्याकी वन्दना करने लगे ॥ ३१४२ ॥ जब कि चन्द्रमा निकलने लगा और राजाका अभ्युदय होनेको हुआ, तब हाथी अपने दाँतकी चमक दिखाने लगे, साथ ही चन्द्रकान्तमणि पसीजने और समुद्र उमड़ने लगा ॥ ३१४३ ॥ जब कमल उदास एवं सम्पुटित हो गये, तब निम्नकोटिके ढंगसे जीविकार्जन करनेवाले भौंरे हाथियोंके गण्डस्थलपर जा डटे ॥ ३१४४ ॥ भीषण विपत्तिमें पड़े हुए मंत्रियोंने जब देखा कि अभी कार्यका कोई अन्त नहीं है, तब वे अपनी-अपनी सैन्यटुकड़ियोंके साथ नदीके तटपर जाकर पछताने लगे ॥३१४५॥ उन्हें कहीं भी कोई सहारा नहीं मिला । जैसे पानीके बहावमें बहनेवाले व्यक्तिको सभी वस्तुयें छोटी और घूमती हुई दिखायी देती हैं ॥ ३१४६ ॥ नदीके दूसरे तटपर डटे हुए वल्हरने बार बार आक्रमण करनेकी इच्छा की, किन्तु हर बार भोजने उसे रोक दिया ॥ ३१४७ ॥ समय बीत जानेके कारण मंत्रियोंकी वे छोटी-छोटी सैन्यटुकड़ियाँ वल्हरकी बढ़ी हुई शक्तिके समक्ष अनायास छिन्न-भिन्न हो जानेके योग्य हो गयी ॥ ३१४८ ॥ वितस्ता और सिन्धु नदीके संगमपर एक मेला लगा हुआ था, जिसमें नगरके समान लोग रात-रात भर घूमते रहते थे ॥ ३१४९ ॥ विभिन्न पत्रों तथा अन्यान्य भीतरी और बाहरी लोगोंके बहकानेपर बहुतेरे राजपुत्र डामरोंके संगठनको छिन्न-भिन्न करनेके लिये भोजकी छावनीमें जा पहुँचे ॥ ३१५० ॥ वहाँ जाकर उन लोगोंने अनेक शठतापूर्ण कार्योंसे पारस्परिक कलह अवश्य उत्पन्न कर दिया, किन्तु वे उस धैर्यशाली भोजको उसके धैर्य तथा दृढ निश्चयसे विरत नहीं कर सके ॥ ३१५१ ॥ वहाँपर एकत्रित सामन्तोंपर अविश्वासकी भावना रखते हुए भोजने धैर्यके साथ कहा—'यदि वल्हरको निकाल दिया जाय तो यह क्रोधसे तुरन्त आक्रमण करके बड़ा अनर्थ उपस्थित कर सकता है ॥ ३१५२ ॥ और इसे काट डाला जाय तो इसके साथवाले डामर दस्यु अनशनकारी ब्राह्मणोंके समान चारों ओरसे आकर एकत्रित हो जायेंगे' ॥ ३१५३ ॥ अतएव एक विश्वासघातीके समान अभिनय करते हुए भोजने सान्त्वना प्रदानपूर्वक वल्हरसे कहा कि 'रात बीतते ही हमें आक्रमण कर

तथा स्वमत्या वैमत्यं तमज्ञात्वा तु मन्त्रिणः । निष्प्रत्ययास्तेन जातममन्यन्त नयात्ययम् ॥३१५६॥
पक्षिपक्षस्फुटास्फालशफरस्फुरितेऽप्यघात् । तेषामासविधास्कन्दः प्रधावद्दहितभ्रमम् ॥३१५७॥
कूले परस्मिन्कूलिन्याः स्वामिसंधाननिर्वृतैः । समभाव्यत तैर्नान्यो रथाङ्गेभ्योऽभिपङ्गभाक् ॥३१५८॥
मरुत्काकुत्स्थदूतस्य कपेस्तीर्णाम्बुधेः पिता । ततान तेषां दूतानां सरित्पारगतौ बलम् ॥३१५९॥
कीर्णकर्णज्वरांश्चारीन्पीत्कृतैस्तीरभूरुहाम् । आश्रित्योन्निद्रकेणेत्थं निन्युस्ते तां निशीथिनीम् ॥३१६०॥
क्षपान्ते क्ष्माधरोत्तंसहेमतामरसभ्रमम् । उद्गच्छतो रवेर्यावच्चिच्छिदुर्न करच्छटाः ॥३१६१॥
चक्राह्वविरहालोकसशोकानामिवागलत् । कुड्मलाक्षिपुटाद्यावन्नैशं नाम्भश्च वीरुधाम् ॥३१६२॥
मितपत्तियुतस्तावत्तरुकच्छाद्विनिर्गतः । स वीरस्त्वरयन्युद्धवाहान्मूर्ध्न्यङ्घ्रिणा स्पृशन् ॥३१६३॥
रोद्धुकामाण्डामरीयान्वीरान्दृष्टेर्विलोकितैः । सर्वतो धावतः कुर्वन्योधान्प्रतिहतौजसः ॥३१६४॥

पारश्वधी चारुवेषो युवा संमुखमापतन् ।
युग्याधिरूढस्तैः प्रैक्षि संप्राप्तः सरितस्तटम् ॥ कुलकम् ॥३१६५॥

अदृष्टपूर्वं तं दृष्ट्वा श्रीखण्डोल्लिखितालकम् । कुङ्कुमालेपिनं चैते भोजोऽयमिति मेनिरे ॥३१६६॥
अतिवाह्य निशां राजवदनं तं विमोहयन् । प्रातश्च तरसामन्त्र्य स तथा संमुखो ह्यभूत् ॥३१६७॥
प्रविष्टयुग्यं तोयान्तः पाराद्धावितवाजिनः । धन्यादयस्तमभ्येत्य मुदिताः पर्यवारयन् ॥३१६८॥
उदभूत्तुमुलः शब्दस्ततः कटकयोर्द्वयोः । एकत्राक्रन्दमुखरः परत्रानन्दनिर्भरः ॥३१६९॥
नादमाकर्ण्य संग्रामबुद्ध्या दिग्भ्यः प्रधावितैः । तं परैर्मिलितं वीक्ष्य मूर्ध्न्यताड्यत डामरैः ॥३१७०॥

देना चाहिए' ॥ ३१५४ ॥ 'मेरे कामसे आनेवाले सामन्तोंने भोजन नहीं किया है' यह सोचकर उदारतावश और अपने कुलवालोंपर ममता प्रकट करते हुए भोजने भी भोजन नहीं किया ॥३१५५॥ उधर भोजके मतसे अपना मत मिलते न देखकर राजाके मंत्रियोंका उसपर विश्वास नहीं रह गया और उन्होंने समझा कि यह हमारे साथ विश्वासघात कर रहा है ॥ ३१५६ ॥ जब कि पक्षी पंख फड़फड़ाने लगे और मछलियाँ पानीमें उछलने लगीं तो ऐसा लगा कि शत्रु दौड़े आ रहे हैं और शीघ्र ही आक्रमण होनेवाला है ॥ ३१५७ ॥ बादमें ऐसा सोचकर कि शत्रु पराजित हो गया है उन्हें यह विश्वास हो गया कि नदीके उस पार चकवा पक्षीके सिवाय और कोई भी दुखी नहीं है ॥ ३१५८ ॥ भगवान् रामके दूत हनुमान जब समुद्र पार करने लगे थे, तब उनके पिता पवनने सहायता की थी । उसी प्रकार इस समय पवनने उनके दूतोंको उस पार पहुँचनेमें सहायता की ॥ ३१५९ ॥ नदीके तटवर्ती वृक्ष हवाके झोंकेसे इतने हड़हडा रहे थे कि उनकी ध्वनिसे शत्रुओंके कान बहरे हो गये, जिससे उन्हें दूतोंके आगमनकी आहट नहीं मिली और उन दूतोंने उन्हींके पास जागकर रात वितायी ॥ ३१६० ॥ प्रातःकाल जब पर्वतोंके स्वर्णकुंडलस्वरूप एवं उदयोन्मुख भगवान सूर्यकी किरणे नहीं फूटी थीं, विरही चक्रवाक पक्षीके शोकका अन्त नहीं हुआ था और वृक्षोंकी नयी नयी कोपलोपर रातके समय पड़ी ओस नहीं गिरी थी ॥ ३१६१ ॥ ३१६२ ॥ उसी समय थोड़ेसे पैदल सैनिकोंको साथ लिये वह वृक्षोंकी झुरमुटसे निकला और युद्धके घोड़ोंके माथेपर पैरकी एड़ लगाकर उन्हे तेजीसे दौड़ाता, डामर योद्धाओंको आँखोंके संकेतसे रोकता और इधर-उधर दौड़नेवाले सैनिकोंको हतोत्साह करता हुआ सुन्दर वेष-भूषासे सुसज्जित एक युवक सहसा सब लोगोंके समक्ष प्रगटा और रथारूढ योद्धाओंके देखते-देखते वह नदीके तटपर आ पहुँचा ॥ ३१६३–३१६५ ॥ मस्तकपर श्रीखण्डचन्दन और केसर लगाये हुए उस अदृष्टपूर्व युवकको देखकर उन लोगोंने समझ लिया कि यह भोज है ॥ ३१६६ ॥ राजवदनको समझाते हुए उसने वह रात वहाँ ही वितायी और सवेरे उससे अनुमति लेकर वह फिर लौटनेको उद्यत हो गया ॥ ३१६७ ॥ जब कि रथारूढ भोजका घोड़ा पानीमें जोरोंसे दौड़ रहा था, उसी समय बड़े हर्षके साथ धन्य आदिने दौड़कर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३१६८ ॥ उसी समय दोनों सेनाओंमें तुमुल घोष होने लगा । एक ओर आक्रमणके कारण हाहाकार और दूसरी ओर आनन्दका जयजयकार

तस्याभिनन्दनालापप्रमुखा प्रक्रियाऽभवत् । अदैन्यशुद्धधन्यादिष्वनुज्झितनिजक्रमा ॥३१७१॥
स्रवमानं मनोहर्षं वेगात्संस्तभ्य सर्वतः । अथेत्थं स्तुवता तत्तस्य धन्येनाभ्यधीयत ॥३१७२॥
राजपुत्र पवित्रेयं पृथिवी स्थैर्यशालिना । त्वया धाम्ना सुमनसां मेरुणा वा महीभृता ॥३१७३॥
गवां जयति मर्त्यानां निर्विकारतया वसन् । विक्रियोपहतं गौस्ते क्षीरं च क्षीरवारिधेः ॥३१७४॥
कस्य पुंस्कोकिलस्येव त्वां विनाधममध्यतः । निर्गत्य निजकुल्यानां सिद्धं मध्यावगाहनम् ॥३१७५॥
सदाचारस्य भवता प्रथमं प्रहते पथि । न तच्चित्रं संचरामश्वरसं चेत्ततोऽधिकम् ॥३१७६॥
इत्यादिप्रसृतालापदत्तोल्लापोऽधिरोह्य सः । जयोत्तरङ्गं तुरगं स्तुवद्भिस्तैरनीयत ॥३१७७॥
लवन्याः कतिचित्क्रोशन्विक्रोशन्तस्तदा ययुः । स्वकुल्यैर्नीयमानं तं काका इव पिकान्तिकम् ॥३१७८॥
स एवमेकविंशेऽब्दे ज्यैष्ठस्य दशमेऽहनि । त्रयस्त्रिंशद्वर्षदेश्यः समगृह्यत भूभुजा ॥३१७९॥
राज्ञी द्रष्टुणामं तं प्रियं पुत्रमिवागतम् । अभ्यनन्दच्छ्रान्तभृत्यमस्याहारमकल्पयत् ॥३१८०॥
इन्दुवंशाविसंवादिगुणग्राममवेक्ष्य तम् । प्रागदृष्टवती मेने वञ्चिते सा विलोचने ॥३१८१॥
गुणैरशाठ्यदाक्षिण्यमाधुर्यौदार्यैरकृत्रिमैः । तस्या विशदशीलं स क्षमापतिममन्यत ॥३१८२॥
मुखरागो मनोवृत्तेर्द्वारोऽज्ज्वल्यं गृहश्रियः । भर्तृस्वभावस्याचारो योषितामनुमापकः ॥३१८३॥
दिनक्षयव्यञ्जिताध्वक्लमं प्रस्थातुमुत्सुकम् । राज्ञोऽभ्यर्णं विशेत्येनं दाक्षिण्यात्कोपि नाब्रवीत् ॥३१८४॥
कथंचिद्रुद्धमाध्यस्थ्यनर्मत्यैः सचिवैरथ । स त्वादिक्षत्रपतिरागान्तेष्योऽभ्यधीयत ॥३१८५॥

हो रहा था ॥३१६९॥ उस घोर निनादको सुनकर डामरोंने युद्धका आरम्भ समझा और वे चारों ओरसे दौड़ पड़े। किन्तु जब वहाँ पहुँचकर उन्होंने भोजको शत्रुओंमें सम्मिलित देखा, तब सहसा डामरोंने उसके मस्तकपर प्रहार कर दिया ॥३१७०॥ हर्षसे प्रफुल्लित धन्य आदि राजमंत्रियोंने अनवरत रूपसे भोजके अभिनन्दनका आयोजन किया था ॥३१७१॥ तब वेगसे बहनेवाले मानसिक हर्षको सब ओरसे रोककर भोजकी सराहना करते हुए धन्यने कहा –॥३१७२॥ 'राजपुत्र ! आप जैसे स्थैर्यशाली, देवताओं जैसे तेजस्वी पुरुष अथवा सुमेरुपर्वत-से यह पृथिवी धन्य हो गयी है ॥३१७३॥ निर्विकार भावसे आपके मुखसे उच्चरित वाणी वैसे ही सबसे श्रेष्ठ मानी जाती हैं, जैसे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न कामधेनुका दूध पवित्र तथा श्रेष्ठ समझा जाता है ॥३१७४॥ पुंस्कोकिल-के समान आपके सिवाय मध्यम स्वरमें आलाप करके कौन पुरुष अपने कुलरूपी पवित्र सरोवरमें अवगाहन करके उसकी विरुदावलीको भलीभाँति बखान सकेगा ॥३१७५॥ पहले ही आपने सदाचारका जो मार्ग बना दिया हैं, उसपर जो हमलोग आपसे तेज चालसे चल रहे है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है' ॥३१७६॥ इस प्रकार अनेक वाक्यों द्वारा उसका अभिनन्दन करके विजयसे उल्लसित एक घोड़ेपर सवार कराके विविध प्रकारकी स्तुतियें करते हुए वे उसे अपने साथ लेकर चले ॥३१७७॥ उस समय कुछ लवन्य रोते और कुछ कोसते हुए वहाँ एकत्र हो गये और अपने कुलवालोंके द्वारा उसे ले जाये जाते देखकर उसी प्रकार कोलाहल करने लगे, जैसे अपने घोंसलेमें पले कोकिलको ले जाते समय कौए शोर मचाने लगते हैं ॥३१७८॥ इस प्रकार लौकिक वर्ष ४२२१ के ज्येष्ठ कृष्णकी दशमीको तैंतीस वर्षीय युवक भोजको राजा जयसिंह-ने अपने वशमें कर लिया ॥३१७९॥ जब भोज महारानी कल्हणिकाको प्रणाम करने लगा, तब उसने अपने प्रिय पुत्रके समान समझकर उसका अभिनन्दन किया और तुरन्त उसके लिए भोजनकी व्यवस्था की ॥३१८०॥ चन्द्रवंशी राजाओंके सब गुण उसमें विद्यमान देखकर रानी पहले न देखनेवाले अपने नयनोंको वंचित मानने लगी ॥३१८१॥ शाठ्यहीन औदार्य-माधुर्य आदि स्वाभाविक गुणोंसे सम्पन्न राजा जयसिंहको भोजने महारानी-से भी अधिक गुणवान् समझा ॥३१८२॥ मुखकी श्री मनोवृत्तिका, द्वारकी स्वच्छता घरका और पतिका स्वभाव एवं आचार पत्नीके गुणोंका परिचायक होता है ॥३१८३॥ सायंकालके समय जिसके चेहरेपर मार्गकी थकावट साफ-साफ दिखायी दे रही थी, वह भोज जब उठने लगा तो उदारतावश किसीने उससे यह नहीं कहा कि 'अब

राज्ञोऽभ्यर्णं विशेत्युक्तेरुपोद्घातोपमं वचः । तत्तस्य श्रोत्रशष्कुल्यां तदा शङ्कुक्रियां व्यधात्॥३१८६॥
चिरात्ताडितमर्मैत्र समाश्वास्यैक्षताथ सः । मध्यस्थानां स्थितं स्थैर्यं दाक्षिण्यादोष्ठयोः परम्॥३१८७॥
प्राणान्मुमुक्षोस्ते रूक्षभाषिणस्तस्य सान्त्वनैः । मन्दत्वं विक्रियां निन्युर्विनयानतमौलयः ॥३१८८॥
आचारं चैनमस्निग्धमपि न्याय्यं वचस्विनम् । न कोऽपि प्रतिवाक्येन शक्यं जेतुममन्यत ॥३१८९॥
अथ स्वान्तस्थितस्वामिवैवश्यं दर्शयन्निव । दशनांशुवनैर्धन्यो वीरः स्निग्धमभाषत ॥३१९०॥
पद्धतिं राजधर्माणां सदाचारे स्थितां च ते । जानतोऽपि कथं मोहः क्रमायातेषु वस्तुषु ॥३१९१॥
किं संधिः सोऽभिधीयेत यत्र संधेयदर्शनम् । अकृत्वा गम्यत इति प्राङ्नो कथमजीगणः ॥३१९२॥
अनद्यतनभूभर्तृसुलभं भूभुजं तव । ज्ञात्वा सत्त्वोज्ज्वलं ज्ञातिधर्मजातप्रवर्तनम् ॥३१९३॥
नास्य दम्भस्मयस्तम्भाप्रीतिस्थैर्यखलोक्तयः । आदरादर्शवैशद्ये निःश्वासस्यापि काः श्रियः ॥३१९४॥
अस्योपजीवनाख्या श्रीः साम्राज्यासादनान्न सा । प्रकाशो विम्बितो योऽर्काद्दीपात्स्याज्ज्वलतः स किम्३१९५॥
निर्वाणगोष्ठीनिष्ठत्वं शमिनामाश्रयेषु यत् । तत्पर्षद्यस्य राजर्षेर्जनान्वृन्दादानुवन्धिनः ॥३१९६॥
एवं स्वगृहसंप्राप्यप्रायो निःश्रेयसस्य ते । स्थानैः श्रियः समाप्याथ किं स्यादन्यैर्महीधरैः ॥३१९७॥

मुग्धा न केचन परे गणिताः फणिभ्यः कालानुकूलनिजकुण्डजलत्यजो ये ।
श्लिष्यन्ति चन्दनतरूञ्शिशिरान्निदाघे माघेऽप्यशीतमनवं विवरं विशन्ति ॥३१९८॥

प्राणोपकरणं राज्ञो राज्ञी राजात्मजाश्च ये । तद्धिते यदनौचित्यं तेषामौचित्यमेव तत् ॥३१९९॥

महाराजके पास चलिए' ॥ ३१८४ ॥ किसी प्रकार मध्यस्थोंकी विमति दूर होनेपर राजाकी ईर्ष्या शान्त हो गयी और आदेशके स्वरमें उसने मंत्रियोंसे कहा—॥३१८५॥ 'अब राजाके पास चलिए' इस वचनकी भूमिकाके रूपमें कहा गया राजाका यह वाक्य भोजके कर्णकुहरमें शंकुके समान चुभ गया ॥३१८६॥ मर्मस्थानपर पहुँची हुई वह चोट बड़ी देर बाद शान्त हुई। तब आश्वस्त होकर उसने देखा कि मध्यस्थोंका स्थैर्य औदार्यवश उनके होठोंपर विद्यमान है ॥ ३१८७ ॥ रूक्षभाषी राजाके द्वारा सान्त्वना प्राप्त करके प्राण त्यागनेको उद्यत मंत्रियोंने विनयपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए अपने मनका विकार शान्त किया ॥ ३१८८ ॥ कुछ रूक्ष होते हुए भी आचारसम्पन्न, न्यायनिष्ठ एवं वाक्यनिपुण उस महापुरुषकी बातोंका उत्तर देकर कोई भी उसे जीतनेमें समर्थ नहीं हो सका ॥३१८९॥ तदनन्तर अपने मनमें विद्यमान स्वामीके प्रति विवशताके भावको अपनी दन्तज्योतिसे प्रकट करते हुए वीर धन्यने स्नेहपूर्वक कहा—॥ ३१९० ॥ 'राजधर्मविहित सदाचारके मार्गपर चलनेवाले और सब कुछ समझते-बूझते हुए भी आपको परम्परासे चले आते हुए पदार्थोंपर इस प्रकार मोह क्यों हो रहा है? ॥ ३१९१ ॥ जिसमें सन्धेय तत्त्व विद्यमान हो, ऐसी कौन-सी सन्धि है, जिसे सम्पन्न किये बिना जानेवालोंमें हमें आपने क्यों मान लिया था?॥ ३१९२ ॥ महाराज! आपमें सनातनसे राजसुलभ नृपतित्व विद्यमान रहा है। शक्तिसे उज्ज्वल आपकी जाति तथा धर्मके प्रति आस्थाको जानते हुए भी कौन आपकी आज्ञाके वशवर्ती न होगा?॥ ३१९३ ॥ दम्भ, स्मय (मद), स्तम्भ (जड़ता), अप्रीति, अस्थैर्य तथा खलोचित वाणीका तो आपमें सर्वथा अभाव है। आदरदानके कौशलमें तो कोई एक श्वासकी अवधि तक भी आपकी बराबरी नहीं कर सकता ॥ ३१९४ ॥ आपकी जो उपजीविकात्मिका श्री है, वह साम्राज्यकी प्राप्तिसे नहीं आयी है। क्योंकि सूर्यमें जो प्रकाश रहता है, वह प्रज्वलित दीपकमें कहीं आ सकता है? ॥ ३१९५ ॥ परलोकसम्बन्धी गोष्ठियोंमें निष्ठा, शान्तात्मा मुनियोंके साथ सत्संग एवं कोई भी परिषद् ऐसी नहीं हो सकती कि जिसमें आप न प्रतिबिम्बित दिखायी देते हों ॥ ३१९६ ॥ इस प्रकार आपके घरमें ही समस्त सुख-सुविधायें सुलभ रहनेके कारण लक्ष्मी यह सोचकर आपके पास चली आयी है कि अब अन्य राजाओंकी क्या आवश्यकता है ॥३१९७॥ समयानुसार अपने कुण्डका जल त्याग देनेवाले लोग उन सर्पोंसे कम मूर्ख नहीं होते, जो गर्मियोंमें ठण्ढे चन्दनवृक्षोंमें लिपटे रहते हैं और माघमासके आते ही किसी पुरानी और गरम बिलमें घुस जाते हैं ॥३१९८॥ रानी एवं राजपुत्र राजाके प्राणोंके उपकरण होते हैं। राजाके हितके लिए यदि उन उपकरणोंपर कोई अनुचित कार्यवाही की

त्यक्तोष्मवैकृतं पाथ इव क्वथितशीतलम् । अनुतापेन ते कृत्यं भूयो वैरस्यमेष्यति ॥३२००॥
तथा समर्था सामर्थ्यादप्रत्याख्याय भारतीम् । कुण्ठशाठ्यलवस्तस्थौ प्रस्थानार्थं स मन्थरः ॥३२०१॥
पथि संग्रथितस्तोत्रान्वास्तव्यान्वीक्ष्य सर्वतः । अजायताथ संरूढकृत्यसाधुत्वदार्ढ्यधीः ॥३२०२॥
पदातिचरणक्षुण्णरेणुव्याजाददृश्यत । वसुंधरातलं बद्धसंधीव नभसा समम् ॥३२०३॥
दध्यौ विज्ञतरो भोजः कच्चित्संप्राप्नुयां नृपम् । कच्चिदमुष्य विलम्बेत दर्शनं विप्रलम्बकैः ॥३२०४॥
आराधयन् प्रभुं धाम्नि नान्तरान्तरितो विटैः । स्वामिनां क इवाप्नोति गुणाविष्करणक्षणम् ॥३२०५॥

शीतोपचारकरणाद्दयितो भवेयमौर्वार्दितस्य जलधेः प्रसृतं धियेति ।
स्रोतो हिमाद्रिपयसो विनिपात एव ग्रासीकृतं तिमिभिराहतमेव तत्स्यात् ॥३२०६॥

इत्यादिचिन्तास्तैमित्यात्पुरक्षोभाद्यलक्षयन् । सैन्यस्य रुद्धाश्वतयाऽबुद्धासन्नं नृपास्पदम् ॥३२०७॥
नातिप्रांशुं नातिकृशं सूर्यांशुश्यामलाननम् । सरोजकर्णिकागौरं शिथिलश्लथविग्रहम् । ३२०८॥
ककुद्मत्ककुदोत्सेधि स्कन्धमायतवक्षसम् । श्मश्रुणाऽनतिदीर्घेण व्यक्तगण्डगलोन्नतिम् ॥३२०९॥
उन्नसं पक्वबिम्बोष्ठं विस्तीर्णोल्बणालिकम् । तिर्यग्विप्रेक्ष्यगंभीरधीरमन्थरगामिनम् ॥३२१०॥
समाहितांशुकोष्णीषमौलिं श्रीखण्डवर्द्धनम् । सीमन्तस्थानचुम्बिन्या रेखया चन्द्रगौरया ॥३२११॥

अश्वावरूढं हर्म्यस्थसचिवैः परिवारितम् ।
अनंगतुल्यमायान्तं तमवैक्षत पार्थिवः ॥ कुलकम् ॥३२१२॥

प्रीतिविस्फारितदृशा राज्ञा पृष्टस्ततः सभाम् । सोऽध्यारुरोह संबाधां कौतुकोत्कन्धरैर्जनैः ॥३२१३॥

जाय तो वह भी उचित मानी जाती है ॥ ३१९९ ॥ जिस जलका उष्णतारूपी विकार दूर कर दिया गया हो, उस क्वथित शीतल जलकी भाँति आपका विशुद्ध हृदय अनुताप करनेसे पुनः नीरस हो जायगा ॥ ३२०० ॥ इस प्रकार अर्थसंगत वाणीका अपनी सामर्थ्य भर उपयोग करके अपने अन्तर्मनमें विद्यमान कुछ शठताको नष्ट करनेके बाद वह वहाँसे प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गया ॥ ३२०१ ॥ भोज जब वहाँसे चला तो उसने मार्गमें अगणित नागरिकोंको स्तुति करते हुए खड़े देखा। इससे उसकी अन्तरात्मा सदाचारपर और दृढ़ हो गयी ॥ ३२०२ ॥ उसके साथ चलनेवाले पैदल सैनिकोंके पैरोंकी ठोकरसे उड़ी धूल गगनमण्डलमें छा गयी। जिससे ऐसा लगा कि मानो धरतीने आकाशसे सन्धि कर ली है ॥ ३२०३ ॥ विज्ञतर भोजने सोचा कि कैसे मैं राजाको शीघ्र प्राप्त कर लूँ। सम्भव है कि विलंबके कारण उसका दर्शन भी दुर्लभ हो जाय ॥ ३२०४ ॥ अपने प्रभुकी आराधना करते समय कहीं ऐसा न हो कि धूर्त लोग हमारे और उनके बीचमें कोई व्यवधान उपस्थित कर दें। क्योंकि स्वामीके समक्ष अपने गुणोंको प्रकट करनेका अवसर कभी ही कभी मिलता है ॥ ३२०५ ॥ बडवानलके तापसे पीडित समुद्र इसीलिए फैलता है कि मैं अपना शीतल जल प्रसारित करके उसका प्रेमपात्र बन जाऊँगा। हिमालयसे जल लेकर बहनेवाली नदी जैसे ही समुद्रमें प्रविष्ट होती है, उसी समय उसे वहाँके तिमि उदरस्थ कर लेते हैं। इस तरह उसपर आघात ही पहुँचता है ॥ ३२०६ ॥ ऐसी-ऐसी अनेक चिन्तनाओंमें व्यस्त रहनेके कारण वह नागरिकोंके क्षोभ आदिको भी नहीं देख सका। तभी सेनाके घोड़ोंसे घिरे हुए महलको देखकर उसने समझ लिया कि यही राजमहल है ॥ ३२०७ ॥ न बहुत ऊँचा, न दुर्बल, सूर्यकी किरणों सदृश श्यामल, कमलकी कर्णिका जैसा गौरवर्ण, परिपुष्ट शरीर, ककुत्सम्पन्न वृषभकी भाँति चौड़े कन्धे, विशाल वक्षस्थल, छोटी-छोटी मूँछोंसे व्यक्त होनेवाले उन्नत गण्डस्थल, ऊँची नासिका, पक्वबिम्बसदृश ओष्ठ तथा विस्तृत केशराशियुक्त भोज तिरछी आँखोंसे निहारता हुआ बड़ी गंभीरताके साथ धीरे-धीरे चल रहा था ॥ ३२०८–३२१० ॥ उसके मस्तकपर उच्चकोटिके वस्त्रकी पगड़ी बँधी हुई थी और मस्तकपर श्रीखण्ड चन्दन लगा था। चन्द्रमाके समान एक उज्ज्वल रेखा उसके सीमन्तभागका स्पर्श कर रही थी ॥ ३२११ ॥ वह घोड़ेपर सवार था और राजमहलके सचिव उसे घेरे हुए थे। उस मूर्तिमान् कामदेवके सदृश सुन्दर भोजको, राजा जयसिंहने आते देखा ॥ ३२१२ ॥

स्पृष्ट्वा पादौ निषण्णोऽग्रे नृपस्यानीय पाणिना । खड्गधेनुं पाणिबद्धामासनाग्रे समार्पयत् ॥३२१४॥
पाणिं सफणिवल्लीकं विवृताग्राङ्गुलिद्वयम् । ततोऽस्य चिबुकोपान्ते विन्यस्यन्पार्थिवोऽब्रवीत् ॥३२१५॥
न विगृह्य गृहीतोऽसि नाधुनाऽपि निबध्यसे । तदङ्ग कस्माद्गृह्णामः शस्त्रमेतत्त्वयार्पितम् ॥३२१६॥
व्यजिज्ञपत्स भूपालं देव शस्त्रस्य धारणम् । स्वामिसंरक्षणं स्वस्य परित्राणस्य कारणम् ॥३२१७॥
देवे निजप्रतापाग्निगुप्तसप्तसरित्पतौ । सेवावकाशो विरलः स्वशस्त्रस्यापि दृश्यते ॥३२१८॥
लोकान्तरेऽपि शरणं चरणाश्रयणं प्रभोः । तत्रात्र लोके किं कार्यं त्राणोपकरणैः परैः ॥३२१९॥
राजा जगाद तं सत्त्वसपर्यावन्ध्येऽधुना भवान् । निर्व्यूढकृत्यो वादीव कृत्यं नो वर्तते परम् ॥३२२०॥
भोजो बभाषे दाक्षिण्यजननायाधुना प्रभोः । दृष्टादृते मया किंचिन्नोपचारार्थमुच्यते ॥३२२१॥
किं ते न चिन्तितं दुष्टं किं किं न कृतमप्रियम् । यदसिद्धं न तद्व्यक्तिमगादित्यवधार्यताम् ॥३२२२॥
किं न मल्लान्वये कश्चित्कारणेप्युदितो भवान् । विद्मः स्मानन्यकुल्यं प्राग्यं वयं चर्मचक्षुषः ॥३२२३॥
यदा यदा देव वाञ्छामकार्ष्म भवदप्रिये । भूमिस्तदा तदा भूम्ना भूः प्रकम्पस्य भूयसः ॥३२२४॥
यावत्कवीनां निर्भाति प्रतिभानेन भास्वरः । देवाभवन्नः प्रत्यक्षः प्रतापस्तादृशस्तव ॥३२२५॥
न शेखरे न प्रदरे न दरेऽप्युज्झितो मया । प्रालेये भूभृतः कुञ्जे संज्वरस्त्वत्प्रतापजः ॥३२२६॥
ततः प्रभृत्यवनतिप्रणयः शरणैषिणः । सिद्धः संध्यादिवन्ध्यत्वाद्देव दूरस्थितेर्न मे ॥३२२७॥
अथाभेदाभिलापेण पापाद्यत्किल चेष्टितम् । स्फुरत्तामात्रकव्यक्त्यै न तु तद्विग्रहाग्रहात् ॥३२२८॥
त्वत्संबन्धादिमे दिक्षु प्रतीक्ष्याः क्ष्माभुजां वयम् । सङ्गाद्गङ्गाम्भसः काचकुम्भसंभावना भुवि ॥३२२९॥

प्रेमसे विस्फारित नयनोंवाले राजासे पूछकर वह खचाखच भरी हुई राजसभामें प्रविष्ट हुआ। उस समय लोग कन्धा उठा-उठाकर उसे देखने लगे ॥ ३२१३ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने राजाके चरणोंका स्पर्श किया और राजाने उसे अपने हाथों एक दिव्य आसनपर बिठाला। तदुपरान्त भोजने अपने हाथकी तलवार और कटार राजाकी कुर्सीके आगे रख दी ॥ ३२१४ ॥ तब सर्पके फन सदृश अपने पंजेकी दो उँगलियें उसके चिबुकपर रखकर राजाने कहा—॥ ३२१५ ॥ 'वत्स ! न तुम युद्धमें पकड़े गये हो और न तुम्हारे ऊपर किसी प्रकारका नियंत्रण है। ऐसी स्थितिमें तुम्हारे द्वारा अर्पित शस्त्रको मैं कैसे ले सकता हूँ' ॥ ३२१६ ॥ भोज बोला—'देव ! स्वामीकी अथवा अपनी रक्षाके लिए शस्त्र धारण किया जाता है ॥ ३२१७ ॥ जब कि श्रीमान् स्वयं अपने प्रतापकी अग्निसे सातों समुद्र पर्यन्त फैली हुई धरतीकी रक्षा कर रहे हैं, तब अपने शस्त्रको सेवाका अवसर कदाचित् ही मिल सके ॥ ३२१८ ॥ आपके श्रीचरण तो परलोकमें भी रक्षा कर सकते हैं, तब इस लोकमें आत्मरक्षाके अन्य उपकरणोंकी क्या आवश्यकता ?' ॥ ३२१९ ॥ तब राजाने कहा—'इस सर्वोंमें आप ही सब कुछ हैं। अब मुझे कुछ नहीं करना है' ॥ ३२२० ॥ भोज बोला—'महाराज ! मैं अपनी उदारता अथवा मुँहदेखा उपचार प्रदर्शित करनेके निमित्त नहीं कह रहा हूँ ॥ ३२२१ ॥ आपने कौनसे दूषित विचार नहीं किये और कौन-सा अप्रिय कार्य नहीं किया ? जो काम नहीं बना, वह प्रकाशमें नहीं आया ॥ ३२२२ ॥ मल्लवंशमें आप क्या किसी विशेष कारण वश नहीं उदित हुए हैं ? हाँ, पहले मैं अपने चर्मचक्षुओंसे आपको अपने कुलका एक राजामात्र समझता था ॥३२२३॥ किन्तु हे देव ! जब कभी भी मैंने आपका अहित करना चाहा, तब बड़े वेगसे बार बार धरती काँपने लगी ॥ ३२२४ ॥ हे महाराज ! जहाँतक कि कवियोंकी प्रतिभा जा सकती है, वहाँतक मैं गया और सर्वत्र आपका तेजस्वी प्रभाव प्रत्यक्ष विद्यमान देखा ॥ ३२२५ ॥ पर्वतशिखर, गिरिकन्दरा, बेहड़, हिमराशि तथा वननिकुंज सब जगह मैंने आपके प्रतापकी उष्णता उपस्थित पायी ॥ ३२२६ ॥ उसी समयसे मेरी इच्छा हुई कि आपकी शरणमें पहुँचकर श्रीचरणोंकी वन्दना करूँ ॥ ३२२७ ॥ इस प्रकार मिलनकी अभिलाषा उत्पन्न होनेके बाद मेरे द्वारा यदि कोई पापमयी चेष्टा हुई होगी तो वह केवल अपना अस्तित्व व्यक्त करनेके लिए, न कि युद्धके निमित्त ॥ ३२२८ ॥ उसी सम्बन्धसे आज मैं दिग्दिगन्तके नरेशोंके लिए दर्शनीय बन गया हूँ। जैसे गंगाजीके सम्बन्धसे

अद्यापि द्योतते शाहेराह्वयेन दिगन्तरे। तत्संतानभवोऽनन्तः समूहः क्षत्रजन्मनाम् ॥३२३०॥
त्वय्यर्पिते पार्वतीयभूभृत्सङ्गेन्यदादि नः। कदन्नागनदुर्भोगासुस्थैः खेदोन्मुखैरभूत् ॥३२३१॥
इतीदृग्गीभिर्वर्णाभिः प्रमाणमथ वा प्रभुः। इत्युक्त्वा भूपतेर्मूर्ध्ना सोऽगृह्णाच्चरणौ पुनः ॥३२३२॥
प्रणामसंभ्रमस्रस्तोष्णीपशीर्षं ततो नृपः। तस्योत्थितस्य स्वशिरोवाससा समवस्त्रयत् ॥३२३३॥
स्वां तां च शस्त्रीं तन्न्यस्तामुत्सङ्गे सान्त्वयन्व्यधात्।
तस्यासंक्षोभगाम्भीर्यस्तमूचे च निषेधिनम् ॥३२३४॥
दत्ते मया बिभृहि वा त्वमेते पूजयाथ वा। न शस्त्रग्रहवैमुख्यं कार्यं मच्छासनं त्वया ॥३२३५॥
अवन्ध्यशासने दत्तेत्यनुवध्नति ते व्यधात्। शस्त्र्यौ राजानुगत्यैव वन्दित्वाङ्के स कालवित् ॥३२३६॥
ततो निर्यन्त्रणत्वस्य नर्मणः सान्त्वनस्य च। चिरसेवीव तत्कालं राज्ञोऽजायत भाजनम् ॥३२३७॥
अन्यत्रविष्टो धन्योऽथ स्वार्चाममलयन्कृती। कृतप्रणामो भूपाल त्वद्गुणाकर्णनं विना ॥३२३८॥
न प्राणा द्रविणं नाद्य गण्यं निर्विक्रिया पुनः।
सत्क्रिया स्वामिनोऽप्यर्थे तस्मात्पार्थिव चिन्त्यताम् ॥३२३९॥
तथापि कथ्यमानं तन्न स्यात्संभावनासुवि। यदस्मिश्चिन्त्यतेऽस्माभिरिति भूपो व्यभाषत ॥३२४०॥
क्षणमुच्चावचां चर्चां विरचय्य विशां पतिः। भोजेन सार्धं शुद्धान्तं रड्डादेव्यास्ततो ययौ ॥३२४१॥
कृतप्रणामस्तां वीक्ष्य सौजन्यादिगुणोज्ज्वलाम्। स राजपारिजातं तं मेने कल्पलतायुतम् ॥३२४२॥
मान्योऽयं देवि सौजन्यज्ञातेयाभ्यासिहागतः। विशिष्यतेऽसौ पुत्रेषु क्ष्माभृद्योपेत्यभाषत ॥३२४३॥

काचका घड़ा भी पूज्य बन जाता है ॥ ३२२९ ॥ आज भी शाहीवंशमें उत्पन्न असंख्य क्षत्रिय सब दिशाओंमें विद्यमान देखे जाते हैं ॥ ३२३० ॥ इस समय भी कितने ही लोग आपके प्रतापसे भयभीत होकर पर्वतोंपर भाग गये हैं और वे वहाँ कुत्सित अन्न खाते हुए बड़ा दुखी जीवन बिता रहे हैं' ॥ ३२३१ ॥ ऐसी-ऐसी बहुतेरी बातोंसे स्तुति करनेके बाद 'आगेके लिए आपके श्रीचरण ही प्रमाण हैं' यह कह तथा अपना मस्तक उसके पाँवोंपर रखकर उसने पुनः प्रणाम किया ॥ ३२३२ ॥ प्रणाम करते समय हड़बड़ीमें उसकी पगड़ी अस्त-व्यस्त हो गयी। उसके उठनेपर महाराज जयसिंहने तुरन्त अपनी पगड़ी पहनाकर उसका मस्तक ढाँक दिया ॥ ३२३३ ॥ तदनन्तर अभी-अभी अपनी जो तलवार भोजने महाराजको अर्पित की थी, उसे राजाने सान्त्वना प्रदानपूर्वक उसकी गोदमें रख दी। ऐसा करते समय भोजने शस्त्र धारणके प्रति अनिच्छा व्यक्त करते हुए निषेध किया। तब क्षोभ-विहीन गंभीरताके साथ राजाने कहा—॥ ३२३४ ॥ 'मेरे प्रति आदर व्यक्त करते हुए अथवा मेरे देनेके कारण इसे तुम अंगीकार कर लो और जब तक मैं आज्ञा न दूँ, तब तक शस्त्रत्यागकी बात मनमें भी मत लाना ॥ ३२३५ ॥ इस प्रकार राजाका अमोघ आदेश पाकर समयके पारखी भोजने दोनों तलवारें अपनी गोदमें रखकर फिरसे वन्दना की ॥ ३२३६ ॥ तदुपरान्त नियन्त्रणके अभाव, राजाकी कृपा अथवा उसकी सान्त्वना पाकर भोज महाराज जयसिंहका चिरसेवीके समान कृपापात्र बन गया ॥ ३२३७ ॥ तनिक देर बाद विनम्र वाणीमें भोजने अपनी अर्चनाको विमल करते हुए कहा—'महाराज! आपके गुण सुने बिना मेरे प्राण, मेरा धन तथा मेरा निर्विकार मन ये सब व्यर्थ प्रतीत हो रहे हैं। अतएव आप मेरे लिए कोई काम तलाशिए। क्योंकि स्वामीका सत्कार किये बिना मेरी आत्माको सन्तोष नहीं प्राप्त होगा ॥ ३२३८ ॥ ३२३९ ॥ इसपर राजाने कहा—'इसके लिए अधीर होनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम कभी भी बेकार न रहोगे। मैं शीघ्र तुम्हारे योग्य कार्य खोजनेकी चेष्टा करूँगा' ॥ ३२४० ॥ तत्पश्चात् इधर-उधरकी बातें करता हुआ राजा भोजको अपने साथ लेकर रड्डा देवीके महलोंमें गया ॥ ३२४१ ॥ प्रणामके बाद भोजने सौजन्य आदि गुणोंसे सम्पन्न उस रानीको देखकर उस राजारूपी पारिजातको कल्पलतासे युक्त समझा ॥ ३२४२ ॥ तब राजाने कहा—'देवी! सौजन्य तथा ज्ञातिसम्बन्धके नाते भोज यहाँ आया है। इसको हमें अपने पुत्रोंसे भी उच्च स्थान देना चाहिए'

सभाजनाय सौजन्यनिधिर्भोजान्वितस्ततः। उदूढकार्यभाराणां दाराणामप्यगादृगृहान् ॥३२४४॥
अभाणीन्निपुणा राज्ञी भोजं राज्ञा सहागतम्। अधुनैव नृपस्याप्तः संवृत्तोऽसीति सस्मितम् ॥३२४५॥
लज्जास्मितमुखी पत्युः प्रणत्या स्वागतोक्तिषु। ददत्येवोत्तरं भोजं निर्दिशन्त्यप्यभाषत ॥३२४६॥
आर्यपुत्र न विस्मार्यं प्रत्याख्याताप्तमन्त्रितम्। मानैकशरणस्यास्य ज्ञातिप्रीतिप्रवर्तनम् ॥३२४७॥
पूर्वोपकर्तृ सलिलं वृद्धावस्पृशतोऽन्वहम्। पद्मान्स्वकुलपद्मानां युक्तं जेतुं भवादृशाम् ॥३२४८॥
कार्यकृच्छ्रेऽवसन्नानाममुष्यागमनं विना। सिद्धयेदौन्नत्यसंरक्षा नेह प्रत्यागमश्च नः ॥३२४९॥
उदीपे रक्षतस्तीरं शरीराश्रयिणी भवेत्। ध्रुवं वनस्पतेर्वीरुत्तन्निपातानुपातिनी ॥३२५०॥
पतिगत्यनुगामित्वं प्राणानां परिचिन्तितम्। तथा कार्यं यथा न स्यात्त्रातव्यस्यान्यथात्मनः ॥३२५१॥
राजा जगाद तां देवि सर्वकर्तव्यसाक्षिणी। अन्यथाप्रतिपत्त्यं मे त्वमप्यस्य न मन्यसे ॥३२५२॥
निगृहीतवतो दुष्टौ सुज्जिमल्लार्जुनावपि। निस्तापं मम नाद्यापि प्राप्तानुशयमाशयम् ॥३२५३॥

अथ राज्ञार्थितः स्थातुं परार्ध्ये धाम्नि सानुगः।
भोजो नामन्यतान्यत्र राजधान्याः स्थिरां स्थितिम् ॥३२५४॥

विदूराश्रयनिर्गोप्तृभावाप्रचुरदर्शनैः। आराधनं धराभर्तुरसाध्यं ध्यातवान्हि सः ॥३२५५॥
रक्षितृनग्रहीत्क्ष्मापात्स्थिरं च समकल्पयत्। अनयात्तं नृपं कार्या न सुराराधनागमे ॥३२५६॥
विज्ञाय भावं प्रीतेन राज्ञा दत्तं ततो गृहम्। सर्वोपकरणापूर्णं राजधान्यन्तरेऽभजत् ॥३२५७॥
राजापि ममतास्फीतप्रीतिभिः स्वैः परैस्तथा। उपासितस्तत्र रतिं चिराश्रित इवाययौ ॥३२५८॥

॥ ३२४३ ॥ तदनन्तर सौजन्यनिधि राजा जयसिंह भोजको साथ लिये हुए उन रानियोंके महलोंको गया, जिनके ऊपर रनिवासका कार्यभार था ॥ ३२४४ ॥ वहाँ निपुण रानी कल्हणिकाने मुसकाकर राजाके साथ आते हुए भोजसे कहा—'अब तुम एकाएक महाराजके विश्वस्त मित्र बन गये' ॥ ३२४५ ॥ स्वागत वचनके साथ प्रणाम करती एवं लज्जावश मन्द-मन्द मुसकाती हुई रानी कल्हणिकाने भोजकी ओर संकेत करके कहा—॥ ३२४६ ॥ 'आर्यपुत्र! इस बातको न भूलिएगा कि अपने विश्वस्त साथियोंकी सलाह ठुकराकर अपने बान्धवोंके प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए इसने आपकी शरण ली है ॥ ३२४७ ॥ जैसे कमल अपने उपकारी जलके सम्पर्कमें रहकर बराबर बढता रहता है, उसी प्रकार आपलोगोंको चाहिए कि अपने कुलरूपी कमलोंको नित्य बढाते हुए उन्हें अपने वशमें रक्खें ॥ ३२४८ ॥ यदि यह यहाँ न आया होता तो हमलोग विविध विपत्तियोंमें डूबते-उतराते रहते। वैसी परिस्थितिमें न हमारे अभ्युदयकी रक्षा होती और न हम यहाँ आ पाते ॥ ३२४९ ॥ नदीके कगारका रक्षक वृक्ष कदाचित् बादमें टह जाय तो उसपर लसी हुई लता भी उसके साथ ही धराशायिनी हो जाती है ॥ ३२५० ॥ स्त्रीकी उपयोगिता इसीमें है कि वह पतिका अनुगमन करती हुई अपनी रक्षाके अन्यान्य साधनोंको एकदम भूल जाय' ॥ ३२५१ ॥ राजाने कहा—'देवि! तुम सदा मेरे सभी कार्योंकी साक्षिणी रही हो और इस विषयमें मेरे भी वही विचार हैं, जो तुमने अभी कहा है ॥ ३२५२ ॥ यद्यपि मैंने सुज्जि और मल्लार्जुनको दण्ड दे दिया है, तथापि अबतक मेरी आत्माको शान्ति नहीं मिली है' ॥ ३२५३ ॥ तत्पश्चात् जब राजाने भोजसे अपने अनुचरोंके साथ एक बहुमूल्य भवनमें रहनेका अनुरोध किया, तब उसने सोचा कि 'अब राजधानीके सिवाय अन्यत्र कहीं भी मेरा स्थायी निवास नहीं हो सकेगा' ॥ ३२५४ ॥ बादमें उसके ध्यानमें यह बात भी आयी कि 'यदि दूर रहा जाय तो उसकी रक्षा तथा प्रचुर दर्शनसे वंचित रहनेके कारण राजाकी अच्छी सेवा नहीं की जा सकती' ॥ ३२५५ ॥ तत्पश्चात् उसने राजासे रक्षकोंको लेकर उसी भवनमें रहनेका सब प्रबन्ध कर लिया। अनीति समझकर उसने राजाके द्वारा दी हुई सुरासेवन आदिकी सुविधाको नहीं स्वीकार किया ॥ ३२५६ ॥ भोजके इस मनोभावको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बडी प्रसन्नताके साथ अपनी राजधानीमें ही भोजके लिए समस्त उपकरणोंसे परिपूर्ण एक भव्य भवनका प्रबन्ध कर दिया ॥ ३२५७ ॥ राजा स्वयं भी ममता भरे प्रेम द्वारा अपनों

भोगवेलोचिताश्चर्यदर्शनादौ नृपोऽपि तम्। प्रियं पुत्रमिवास्मार्षीद्दूतैः पार्श्वं निनाय च ॥३२५९॥
जग्राह दक्षिणे पार्श्वे भुञ्जानं ज्ञातिगौरवात्। स्पर्शास्वादितभोज्यादिदाने नैव व्यवर्जयत् ॥३२६०॥
अकृत्रिमं तथा स्नेहमुवाह जनको यथा। लडितं ज्ञातिवत्तस्मिंस्तद्बालापत्यकैः समम् ॥३२६१॥
तामेवालम्बत व्यक्तां सोऽपि वृत्तिं यथा यथा। राजा सपरिबर्होऽपि विस्रम्भमविगर्हितम् ॥३२६२॥

आसन्नाभ्यन्तरा भिन्ना ये द्वैधे तानदर्शयत्।
राजा विरक्तिं स्वस्यारिबाहुल्यं च व्यसर्जयत् ॥३२६३॥

अकृत्रिमात्समाधानात्करणानां सभान्तरे। न प्रत्यभाज्जडो नापि धृष्टो नापि वक्रव्रतः ॥३२६४॥
प्रमादस्खलिते हीनातिरिक्तत्वे च भूपतेः। कार्ये नावदधे क्षुद्रः कवितेव महाकवेः ॥३२६५॥
न विक्रमकथासत्रदानाद्यैः स्वं व्यकत्थत। प्राग्वृत्तमन्तरा पृष्टः सोपस्कारं च नाभ्यधात् ॥३२६६॥
विचारकात्प्रभोः साम्यसकुल्यत्वादिचाटुभिः। धीराधृष्टैर्दृष्टिपातैरपुनर्भाषिणो व्यधात् ॥३२६७॥
तथा स्पृष्टोऽप्यनुत्तानाशयोऽभूदवगाहितुम्। न शेकुस्तं यथा जाल्मनर्मवित्पिशुनादयः ॥३२६८॥
क्षणेष्ववसितालोकक्षोभादिविशरारुषु। प्राप्तोऽस्यावसथं गच्छञ्शङ्कां कामपि नातनोत् ॥३२६९॥
यथा यथास्य विस्रम्भाद्भूपोऽभूच्छिथिलाग्रहः। तथा तथैव सिद्धोश्व इव नाधावदुद्धतम् ॥३२७०॥
सदैवाग्रेसरोऽन्यत्र पश्चाद्रुद्धपदोऽभवत्। अनिषिद्धोऽपि शुद्धान्तमन्त्रागारावगाहने ॥३२७१॥
विज्ञप्त्यौपयिकावाप्तिप्रार्थनामादरात्स्वयम्। दूरीचक्रे परापेक्षां शश्वत्संशयिताशयः ॥३२७२॥

तथा परायोंसे सेवित होता हुआ भोजके प्रति इतना अधिक आकृष्ट हो गया कि जैसे वह उसका बहुत पुराना सेवक हो ॥ ३२५८ ॥ खान-पान तथा किसी आश्चर्यजनक वस्तुको देखनेके समय वह पुत्रके समान उसका स्मरण करके दूतों द्वारा बुलवा लेता था ॥ ३२५९ ॥ अपनी ज्ञातिका गौरव रखते हुए वह उसे भोजन आदिके अवसरपर अपने दाहिने बिठाता था और संस्पर्श, आह्लादन एवं भोज्य आदिके समय वह उसे कदापि नहीं छोड़ता था ॥ ३२६० ॥ राजा जयसिंह पिताके सदृश उसपर अकृत्रिम स्नेह रखता हुआ अपने छोटे-छोटे बच्चोंके साथ उसे भी दुलराता था ॥ ३२६१ ॥ भोज भी उस स्नेहके अनुरूप व्यवहार करता हुआ ज्यों-ज्यों राजाकी अन्तरात्माके समीप आता जाता था, त्यों-त्यों राजाका भी विश्वास उसपर बढ़ता जा रहा था ॥ ३२६२ ॥ जो लोग राजाके पार्श्ववर्ती, अन्तरंग अथवा इन दोनोंसे मिलते-जुलते हुए द्वैध वृत्तिके थे, उन सबका उसने भोजसे परिचय करा दिया। इसके बाद राजाने वैरभाव तथा शत्रुओंके आधिक्यपर ध्यान देना छोड़ दिया ॥ ३२६३ ॥ कार्यकर्ताओं एवं मंत्रियोंकी सभामें भोज उनकी बातोंका सीधी-सादी बातोंसे समाधान करता था। अतएव न वह जड़, न धृष्ट (ढीठ) और न वक्रव्रती (मौनी) ही समझा जाता था ॥ ३२६४ ॥ यदि राजा कभी प्रमादवश हीन अथवा कोई उत्तेजनात्मक बात कह देता था, तब भोज किसी महाकविकी क्षुद्र कविताके समान उसकी उपेक्षा कर देता था ॥ ३२६५ ॥ पराक्रमसम्बन्धी कथोपकथनके समय वह अपने दान आदिकी बातोंको बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहता था। पुरानी बातोंको भी वह बिना पूछे नहीं दुहराता था ॥ ३२६६ ॥ विचारशील राजाके समान कुल आदिकी बातें उभाड़कर वह व्यर्थ खुशामद नहीं करता था। धैर्य युक्त और अधृष्ट दृष्टिपातसे राजाके निहारनेपर वह अपनी बात नहीं कहता था ॥ ३२६७ ॥ इस प्रकार राजासे भरपूर समादर पा करके भी वह मनमानी नहीं करता था। अतएव धूर्त, हास्यरसकी बात कहनेमें निपुण, हँसोड़ तथा चुगलखोर लोग किसी प्रकारका भेदभाव नहीं कर सके थे ॥ ३२६८ ॥ यदि वह कभी क्षुब्ध वातावरणवाले जनसमुदायके बीच पहुँचता था, तब उस विकट स्थितिमें भी वह भयभीत नहीं होता था ॥ ३२६९ ॥ जैसे जैसे भोजपर विश्वास बढ़ता जाता था और राजाका आग्रह शिथिल होता जाता था। वैसे-वैसे सुशिक्षित अश्वके समान वह औद्धत्य युक्त होकर नहीं दौड़ता था ॥ ३२७० ॥ वह सदा राजाके आगे-आगे चलता था, किन्तु निषेध न करनेपर भी वह राजाके रनिवास तथा मंत्रणागार जानेके समय रुक जाता था ॥ ३२७१ ॥ सदा सशंक रहता हुआ भोज जानने योग्य मर्मकी बातोंका संग्रह करनेके लिए अनुरोध करनेके पहले ही सब बातें बिना किसीकी सहायताके मालूम कर लिया करता था

अनाप्तसमये तस्य न ययुः परिरक्षिणः । न स्वप्नवृत्तमप्यासीदनावेद्यं महीभुजे ॥३२७३॥
मन्त्र्यान्तःपुरिकादीनां परस्परविगर्हणम् । नावर्णयद्विस्मृतिं च दुष्टस्वप्नमिवानयत् ॥३२७४॥
सचेतनोऽपि दुर्नर्मगोष्ठीष्वनुरणन्वचः । अवदत्स्फुरदप्यन्तर्विटानां नाम लाघवम् ॥३२७५॥
एवं शुद्धानुभावस्य तस्य कृत्येन कृत्यवित् । पुत्रेभ्योऽप्यधिकां प्रीतिं स्विद्यन्भेजे क्रमान्नृपः ॥३२७६॥
कलिकालमहीपालदुस्तरः सिंहभूभुजा । सोऽयं गोत्रपरित्राणे नवः सेतुः प्रवर्तितः ॥३२७७॥
इत्थं विद्राविताशेषोपद्रवस्त्रिल्लकस्ततः । अग्निप्रोपमपि स्वास्थ्यहेतुं भूभृदचिन्तयत् ॥३२७८॥
असौ हि निर्हिमोर्वीभृन्मार्गे काले पलायनम् । शाठ्यं सत्त्वस्य दुःसाध्यं बद्धं ध्यायन्व्यलम्बत ॥३२७९॥
अतः सुमेधा यात्रायां यावत्क्षणमपैक्षत । सञ्जपालेनाविचारात्तावत्प्रारम्भि धावनम् ॥३२८०॥
अल्पाधिष्ठानसुभटः स देवसरसोद्भटैः । बहुभिः सहितः सैन्यैर्मार्तण्डे विदधे पदम् ॥३२८१॥
निर्निरोधप्रवेशः स प्रदेशः परिपन्थिनाम् । बाह्याश्च योधा निःसारा दर्पान्नेति विवेद सः ॥३२८२॥
त्रिल्लकानुचरा युद्धमसंनिहितसायकाः । तेन सार्धं विदधिरे न चाहीयन्त पौरुषम् ॥३२८३॥
निःसीमसैन्यसहितो लवन्योऽन्यत्र डामरे । तत्र सर्वाभिसारेण धावतो युयुधे क्रुधा ॥३२८४॥
लुण्ठितद्रविणापूर्णास्ते देवसरसौकसः । सर्वे ततः सञ्जपालं विद्रुताः परिजहिरे ॥३२८५॥
द्विषत्संवर्तवर्षार्त्या सर्वत्र त्रुडितेऽभवन् । अधिष्ठानभटा एव कुलशैला इवोद्धताः ॥३२८६॥
ते तीक्ष्णतीक्ष्णतरणौ सोढारातिरुपश्चिरम् । बहून्निहतवन्तोऽन्यांस्तत्र तत्राहवे हताः ॥३२८७॥
क्षतेषु युधि सर्वेषु विन्दानैर्मण्डलं निजैः । शूरेषु तत्र मार्तण्डोऽप्यासीदविरलव्रणः ॥३२८८॥

॥ ३२७२ ॥ असमयमें उसके अंगरक्षक भी उसके पास नहीं जा पाते थे और उसके स्वप्नतककी बात राजाको अज्ञात नहीं रहती थी ॥ ३२७३ ॥ मंत्रियों तथा अन्तःपुरके पारस्परिक कलहकी बातको कभी न कहकर वह बुरे स्वप्नकी तरह उसे एकदम भुला दिया करता था ॥ ३२७४ ॥ कभी-कभी धूर्तगण उसके समक्ष हँसी-मजाकके प्रसंगमें अश्लील बातें कह देते थे। किन्तु युवक होते हुए भी वह उन बातोंसे प्रभावित हुए बिना ही उन्हें वैसी बातें कहनेसे मना कर देता था ॥ ३२७५ ॥ इस प्रकार उसके शुद्ध विचारसे प्रसन्न होकर कर्मका मर्मज्ञ राजा जयसिंह भोजपर पुत्रसे भी अधिक स्नेह करने लगा ॥३२७६॥ कलिकालके राजाओं द्वारा कठिनाईसे अपने कुलकी मर्यादा रक्षित होनेकी संभावना देखकर उस राजाने भोजरूपी एक नया सेतु तैयार कर दिया था ॥ ३२७७॥ इस प्रकार समस्त उपद्रवोंका अन्त हो जानेपर त्रिल्लकने अग्निमें सर्वस्व जल जानेपर भी राजा जयसिंहके पुनः स्वस्थ हो जानेके कारणपर ध्यान दिया ॥ ३२७८ ॥ उसने सोचा कि 'इस समय हिमपात बन्द है। अतएव अभी चढ़ाई करनेपर राजाको भागनेके लिए अनेक मार्ग मिल जायँगे। अतः अपना काम दुःसाध्य हो जायगा'। यही सोचकर वह अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय बिना सोचे समझे सञ्जपालने धावा बोल दिया ॥ ३२७९ ॥ ३२८० ॥ उसके पास अच्छे योद्धा बहुत कम थे। तथापि देवसरसके उजड्डोंकी भारी संख्या-वाली सेनाको लेकर वह मार्तण्ड जा पहुँचा और वहीं छावनी डाल दी ॥ ३२८१ ॥ उस स्थानपर उसका निर्विरोध प्रवेश हो गया। क्योंकि वह प्रदेश ही ऐसा था। किन्तु दर्पवश उसने इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि बाहरी योद्धा निःसार होते हैं ॥ ३२८२ ॥ त्रिल्लकके भी कुछ सैनिक उस सेनामें थे, किन्तु उन्होंने धनुष-बाण धारण करके अपनी शक्ति नहीं खोयी थी ॥ ३२८३ ॥ उसी समय अपनी असीम सेना लेकर लवन्य (त्रिल्लक) उससे जा भिड़ा और सारी शक्ति लगाकर संजपालके साथी डामरोंपर भीषण प्रहार करने लगा ॥ ३२८४ ॥ इस प्रकारके आक्रमणसे जब देवसरसवालोंका सारा धन लुट गया, तब वे संजपालको छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ ३२८५ ॥ इस तरह शत्रुसेनाकी बाढ़में उसके सब सैनिक डूब गये, किन्तु उसकी सुरक्षित सेनाके कुछ योद्धा अब भी अवशिष्ट थे और वे कुलपर्वतके समान अचल होकर डटे हुए थे ॥ ३२८६ ॥ वे शत्रुके प्रबलसे प्रबलतर आघातको सहते रहे। इस प्रसंगमें उन्होंने बहुतोंको मारा और बहुतेरे मर गये ॥ ३२८७ ॥ इस प्रकार रणमें सब सैनिकोंके

राजाजौ साञ्जपालिर्गयापालो हतेपु यः । त्रिपु वाजिपु चातुर्यात्पदातिर्नोपलक्षितः ॥३२८९॥
तत्प्राथम्योपलब्धाजिर्जर्जस्तदनुजः शिशुः । निनाय विस्मयं वीरान्दृष्टासंख्यमहाहवान् ॥३२९०॥
दक्षिणं दोर्न तच्चक्रे यद्वामं कम्पनापतेः । महेभांस्तापयत्यर्कः कुर्याद्भग्नरदान्विधुः ॥३२९१॥
स धावन्वाजिनाराजदेकदोःस्फुरितायुधः । सधूमदण्डो दावाग्निः सपक्षेऽद्राविव स्थितः ॥३२९२॥
तं वैरितुमुले वागेव्रणभङ्गेष्वसौ पुनः । पृष्ठादलोठयद्वाजी तदन्वावद्धपद्धतिः ॥३२९३॥
वर्मगौरवभूपृष्ठकाठिन्याघातपीडितः । स विसंज्ञो द्विपन्मध्यात्तनयाभ्यां विनिर्हृतः ॥३२९४॥
कटके सर्वतो नष्टे मार्ताण्डप्राङ्गणान्तरे । विरोध्यसार्जि क्षिप्त्वा तं तावपासरतां ततः ॥३२९५॥
तत्रस्थं कंपना क्ष्माभृत्प्रस्थितः पृथुलैर्बलैः । तावद्भिः प्राप्यमप्याशु डामरं पिण्डितं व्यधात् ॥३२९६॥
क्ष्मापाले विजयक्षेत्रं प्राप्ते त्रोटितवेष्टनः । सञ्जपालो लवन्यस्य वसतीर्निरदाहयत् ॥३२९७॥
स तादृगपि भूपाले क्रुद्धे वक्रीकृतभ्रुवि । अदरिद्रो गिरिद्रोणीश्रेणिभूसुलभाशनः ॥३२९८॥
संवृत्तो निःसहायश्च परिग्रहबहिष्कृतः । आपत्सुलभपाण्डित्यभृत्योपालम्भभाजनम् ॥३२९९॥
निकृत्तकरशाखोऽथ क्ष्मापकोपकपेर्व्यधात् । निरालम्बतया तेन स स्वशीर्षफलार्थनाम् ॥३३००॥
रड्डादेवीतनूजानां ज्यायांसं गुल्हणाभिधम् । श्रीमांल्लोहरराज्येऽथ क्ष्मानृपा सोऽभ्यषेचयत् ॥३३०१॥
पट्सप्तहायनो राजतनयः स वयोधिकान् । चूताङ्कुरो जीर्णतरूनिवेशानजयद्गुणैः ॥३३०२॥
अभिपेक्तुं सुतं देव्या यातायाः क्ष्माभुजो व्यधुः । शिरःशोणाश्मकिरणैश्चरणौ यावकारुणौ ॥३३०३॥

मर जानेपर उन वीरोंमें प्रमुख मार्ताण्ड कम घायल नहीं हुआ ॥ ३२८८ ॥ उस युद्धभूमिमें सबके मर जानेपर संजपालका पुत्र गयापाल विशेपरूपसे चमका। क्योंकि उसके तीन-तीन घोड़े मार डाले गये। फिर भी उसे किसीने पैदल चलते नहीं देखा ॥ ३२८९ ॥ उसके छोटे भाई जर्ज द्वारा किया गया प्रथम श्रेणीका युद्ध देखकर वे वीर भी चकित हो गये, जिन्होंने जीवनमें असंख्य युद्ध देखे थे ॥ ३२९० ॥ उस सेनापतिके बाये हाथने जो कौशल दिखाया, वह दाहिना हाथ नहीं कर सका था। जैसे सूर्य बड़े-बड़े हाथियोंको केवल ताप पहुँचाता है, किन्तु चन्द्रमा उनके दाँत तोड़ देता है ॥ ३२९१ ॥ घोड़ेपर सवार होकर अपनी एक भुजामें शस्त्र धारण किये हुए वह पंखयुक्त पर्वतपर विद्यमान धूमदण्डधारी दवानलकी भाँति दिखायी देता था ॥ ३२९२ ॥ शत्रुओंके बीच तुमुल युद्ध करनेवाले उस वीरका शरीर जब शस्त्रोंके आघातसे लहू-लुहान हो गया, तब उसके घोड़ेने जमीनपर गिरा दिया॥३२९३॥ कवचके बोझके साथ गिरनेपर धरतीके आघातसे वह संज्ञाशून्य हो गया। तब उसके दो पुत्र शत्रुओं-के बीचसे उसको उठा ले गये ॥ ३२९४ ॥ इस प्रकार मार्तण्डके प्रांगणमें सेनाके सर्वथा नष्ट हो जानेपर उसे वहाँ ही छोड़कर वे दोनों वहाँसे हट गये ॥ ३२९५ ॥ उसी समय विशाल सेनाके साथ राजा जयसिंहका सेनानायक वहाँ जा पहुँचा और जाते ही उसने डामर और उसकी बची-खुची सेनाको घेर लिया ॥ ३२९६ ॥ जब कि राजा विजयक्षेत्रमें पहुँचा, तब घेरा तोड़कर संजपालने लवन्य (त्रिल्लक) के घरमें आग लगा दी ॥ ३२९७ ॥ किन्तु जब राजाने संजपालकी ओर वक्रदृष्टिसे देखा तो पर्वतोंपर अनायास भोजनकी प्राप्ति हो जानेके कारण अदरिद्र संजपालका बड़ा बुरा हाल हो गया ॥ ३२९८ ॥ उसके सब साथियोंने उसका साथ छोड़ दिया। जिससे वह असहाय हो गया, और उसकी पाण्डित्यसुलभ ख्यातिकी उसके सेवक ही भर्त्सना करने लगे ॥ ३२९९ ॥ उस राजारूपी कपिने उसके हाथ कटवा लिये और असहाय मस्तकरूपी फलकी अभिलाषा करने लगा ॥ ३३०० ॥ तदनन्तर राजा जयसिंहने रड्डादेवीके पुत्रोंमें सबसे बड़े पुत्र गुल्हणका लोहर राज्यमें अभिषेक करा दिया ॥ ३३०१ ॥ क्योंकि उस छः-सात वर्षके ही बालक राजपुत्रने अपने गुणोंसे अधिक वयवाले राजाओंको उसी प्रकार परास्त कर दिया था, जैसे आमका कोई नन्हासा पौधा उपवनके बड़े-बड़े वृक्षोंको पराजित कर दे ॥ ३३०२ ॥ गुल्हणका अभिषेक करानेके लिए रड्डादेवी लोहर पहुँची तो राजाओंने अपने किरीटपर जटित लालमणियोंकी दीप्तिके स्पर्शसे उसके महावरसे रंगे हुए लाल चरणोंको और भी लाल कर दिया ॥ ३३०३ ॥

तत्राभिषिक्ते वसुधामुग्रावग्रहशोषिताम् । देवीभावाभिषेकार्थमिवासिञ्चन्पयोमुचः ॥३३०४॥
भूयोपि राजवदनो विप्लवोत्पादनोत्सुकः । अमन्दमवचस्कन्द जयचन्द्रं नृपाज्ञया ॥३३०५॥
नागभ्रातृव्यसहिता गार्गेरनुप्रवेशिनः । पश्चात्प्रसर्पिणीः सेनाः सोऽवधीत्संकटेऽध्वनि ॥३३०६॥
गार्गिः परिभवम्लानाननं तिष्ठन्दिनैस्ततः । नागभ्रातृसुताग्रण्यमवध्नाल्लोष्ठकं मृधे ॥३३०७॥
दुर्गमत्वादनाक्रान्तमन्यैर्वेगात्प्रविश्य च । दग्ध्वा च दिन्नाग्रामं स निरगाल्लघुविक्रमः ॥३३०८॥
तथापि राजवदनो न शौर्यात्पर्यहीयत । न संदधे न चुक्रोध शक्यमस्य विनिर्गमम् ॥३३०९॥
अहन्यहनि हीनाभिः सेनाभिर्न्यपतन्नृपे । जयचन्द्रमुखाच्छश्वदसुखान्यवधीभवत् ॥३३१०॥
क्ष्मानायकोऽथ निःसीमनखबाहुप्रसारणः । रणान्तरेव तं तीक्ष्णैर्गूढन्यस्तैरघातयत् ॥३३११॥
तन्मुण्डगण्डलेखेन लुठता खण्डशः कृतः । झटिति त्रुटितः स्वास्थ्यविटप्यङ्कुरणोन्मुखः ॥३३१२॥
पृथ्वीहरकुलाच्छेदस्वच्छन्ना मेदिनीपतिः । अवधील्लोठनमपि छन्नदण्डप्रयुक्तिभिः ॥३३१३॥
एकवारं वेष्टितोऽपि रक्षितस्त्रिल्लकेन सः । भूमिभृन्नीतिपाशस्य निपातेनाभ्यवर्तत ॥३३१४॥
मल्लकोष्ठछुरजय्यसड्डचन्द्रादयोऽभवन् । जीवन्मृताश्च शान्ताश्च दारिद्र्योपप्लवार्दिताः ॥३३१५॥
अविचिन्त्योच्चलक्षोणिभृतः प्राणान्विनश्वरान् । ऐश्वर्यरूढिमूढत्वादनिर्व्यूढव्यवस्थितौ ॥३३१६॥

मठेऽनुमितकोशत्वं तत्तद्राजाश्रयाद्गते ।
कुलोद्वहो विहितवान्सिंहदेवो व्यवस्थितिम् ॥ युग्मम् ॥३३१७॥

मुल्लाविहारं पैतृव्यं पितुर्देवगृहत्रयम् । तच्चार्धसिद्धप्रासादं परिपूर्णं व्यधान्नृपः ॥३३१८॥
स एव ग्रामान्सामग्रीमहापणसमर्पणैः । निर्दोषपारिषद्यादिहृद्यान्निश्चोवधीर्व्यधात् ॥३३१९॥

जिस समय उस राजपुत्रका अभिषेक हुआ, तब जैसे महारानीके भावोंका अभिषेक करते हुए मेघ भीषण अनावृष्टिसे सूखी धरतीपर जल बरसाने लगे ॥ ३३०४ ॥ कुछ दिनों बाद राजवदन जब फिर विप्लवके लिए लालायित हुआ, तब राजा जयसिंहकी आज्ञासे उसने दुष्ट जयचन्द्रपर आक्रमण कर दिया ॥ ३३०५ ॥ नागके भतीजे लोष्टकके साथ गर्गपुत्र जयचन्द्रके पीछे-पीछे आनेवाली सेनाको एक सँकरे मार्गमें पाकर उसने वहीं नष्ट कर डाला ॥ ३३०६ ॥ इस पराजयसे म्लानमुख होकर जयचन्द्र कुछ दिन चुप बैठा रहा। उसके बाद सहसा धावा बोलकर उसने नागके भ्रातृपुत्रोंमें अग्रणी लोष्टकको रणभूमिमें कैद कर लिया ॥ ३३०७ ॥ औरोंके द्वारा अनाक्रम्य एवं दुर्गम दिन्नाग्राममें बड़े वेगसे जाकर उसने आग लगा दी और बड़ी तेजीसे लौट आया ॥ ३३०८ ॥ तथापि राजवदनका शौर्य न्यून नहीं होने आया। उसने न जयचन्द्रके साथ सन्धि की और न कोप किया। क्योंकि वह जब चाहता, तभी वहाँसे निकल आ सकता था ॥ ३३०९ ॥ इस प्रकार दिनोदिन सेना नष्ट होते रहनेपर जयचन्द्रके मुखपर चिरस्थायी विषाद दृष्टिगोचर होने लगा ॥ ३३१० ॥ उसी समय बड़े-बड़े नखोंयुक्त एवं विशाल बाहुवाले राजा जयसिंहने युद्धभूमिमें ही छिपे हुए घातकों द्वारा उसको मरवा डाला ॥ ३३११ ॥ जब उसका सिर कटकर धरतीपर गिरा तो जमीनमें लुढकते-लुढकते उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये। जैसे सद्यः अंकुरित होनेवाला कोई पौधा टूट जाय और उसके सैकड़ों खण्ड हो जायँ ॥ ३३१२ ॥ पृथ्वीहरके कुलको उच्छिन्न कर देनेके लिए उद्यत राजा जयसिंहने गुप्त रीतिसे दण्डनीतिका प्रयोग करके लोठनका भी वध करा दिया ॥ ३३१३ ॥ एक बार त्रिल्लकने राजाको घेर लिया था, किन्तु वह अपने नीतिकौशलसे साफ बच गया ॥ ३३१४ ॥ मल्लकोष्ठ, छुर, जय्य, सड्डचन्द्र आदि उस राजाके वैरी दारिद्र्य दुःखसे दलित होकर जीवन्मृतक तुल्य एवं शान्त हो गये ॥ ३३१५ ॥ अचिन्त्य शक्तिसमन्वित राजा उच्चलके ऐश्वर्यमदसे मत्त हो जानेपर वहाँकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी थी और इसीके कारण उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा था। विभिन्न राजाओंसे प्राप्त उस मठके कोशका दिमाग कराके राजा जयसिंहने वहाँकी समुचित व्यवस्था कर दी ॥ ३३१६ ॥ ३३१७ ॥ अपने पितृव्यके मुल्ला-

अवरोधेन्दुवदनां मृतामुद्दिश्य चन्दलाम् । अत्यष्ठापि मठोऽलूनश्रीर्द्वारेऽवारितातिथिः ॥३३२०॥
स्पृष्टो नगरनिर्दाहैः सोऽपि सूर्यमतीमठः । पूर्वाधिक्योपगर्वेण तेनैव निरमीयत ॥३३२१॥
संजाते सञ्जपालस्य ततो लोकान्तराश्रये । कम्पने निदधे राज्ञा गयापालस्तदात्मजः ॥३३२२॥
विपाकसुकुमारोऽपि दुःसहः सूनुनाऽभवत् । विस्मारितः स सौम्येन शरद्भानुरिवेन्दुना ॥३३२३॥

ग्रीष्मोष्मदोषविषमेष्वविशेषवृत्तेर्मेघोदये तटतरोस्तटिनीप्रवाहः ।
पश्यन्नकाण्डतडिदापतनेन नाशं नाशंसति स्वसलिलस्य विभूतिलाभम् ॥३३२४॥

आ भिक्षुक्षपणाद्भोजभञ्जनादपि भूभुजः । विधुरे कार्यभाराणां योऽभूदूढधुरः परम् ॥३३२५॥
तस्य तस्मिन्नुपरते क्षीणप्रक्षीणकण्टके । स धन्योऽनन्यसामान्यप्रेमा प्रमयमाययौ ॥३३२६॥
ताम्बूलमायाविकृतां नीत्वाऽमूनासयानिव । आर्पिपन्मधुरावट्टं जीवं यस्य निजः सुतः ॥३३२७॥
स जगज्जीवितेनापि रक्षणीयः क्षमापतिः । पदे पदे विपन्मग्नः प्रजोद्धरणधीरधीः ॥३३२८॥
व्याधितस्य विनिद्रोऽपि संसङ्गान्मङ्गलेच्छुभिः । नान्तक्षणे तस्य पार्श्वात्कृतज्ञो वाचलन्नृपः ॥३३२९॥
प्रियप्रजस्यामात्यस्य स्वरूपविपरीतता । तस्य कंचित्क्षणं जाता जनजीवितदा भवे ॥३३३०॥
भूभुजामपि मान्धातृमुखानां निधनेन याः । दुःखं ययुः प्रजास्तासां समभावि तदा सुखम् ॥३३३१॥
द्वैराज्योपप्लुते राष्ट्रे नवस्य नृपतेरभूत् । अव्याहतं यत्साचिव्यं तस्य सर्वाभिषङ्गभित् ॥३३३२॥

कालो वली व्यवहृतेर्ननु तद्वशेन पूर्वापराचरणविस्मरणे न कस्य ।
शक्तिः क्षितेर्वहनकर्मणि योग्यतायां निर्दारणे मुरजितस्तु वराहतायाम् ॥३३३३॥

विहार, पिताके तीन देवालयों तथा अधूरे अर्थसिद्धिप्रासादको भी उसने पूर्ण कराया ॥ ३३१८ ॥ उसने गाँव-गाँवकी सीमापर प्रचुर धन व्यय करके बड़े-बड़े बाजार लगाये और निर्दोष पंचोंका चुनाव कराके अच्छी पंचायतें स्थापित कीं ॥ ३३१९ ॥ उसके अन्तःपुरमें जब चन्द्रवदना चन्दला नामकी रानी मर गयी, तब उसके नामपर उस राजाने पुष्कल धन लगाकर एक विशाल मठ बनवाया। जिसमें यह व्यवस्था थी कि कोई भी अतिथि उस मठके द्वारसे निराश न लौटने पाये ॥ ३३२० ॥ पहले जब नगरमें अग्निकाण्ड हुआ था, तब सूर्यमतीमठ भी जल गया था। अब उसको राजाने पहलेसे भी सुन्दर रूपमें बनवा दिया ॥ ३३२१ ॥ जब सेनापति संजपाल मर गया, तब राजाने उसके पुत्र गयापालको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया ॥ ३३२२ ॥ वह संजपाल अन्तिम समयमें यद्यपि क्षीणबल हो गया था, पर उस सौम्य पुत्र गयापालके कारण उस अवस्थामें भी वह शत्रुओंके लिए दुःसह था। जैसे शरत्कालीन सूर्य चन्द्रमाके सहारे असह्य हो जाता है ॥ ३३२३ ॥ ग्रीष्मकालीन ऊष्माको अनायास सहनेवाले नदीतटवर्ती वृक्षपर यदि वर्षाकालके समय बिजली गिरे और वह नष्ट हो जाय तो नदीका प्रवाह उससे अपने जलकी समृद्धिवृद्धि नहीं मानता ॥ ३३२४ ॥ भिक्षुके मरण तथा भोजके सैन्य-भंग पर्यन्त जिसने राजाके विशाल कार्यभारका वहन किया था ॥ ३३२५ ॥ वह राजाका अनन्य भक्त प्रेमी तथा राज्यके कंटकोंको नष्ट करनेवाला धन्य स्वर्गवासी हो गया ॥ ३३२६ ॥ उसके दिवंगत हो जानेपर तांबूलवाहकके समान सुपरिचित एवं धन्यके निजी पुत्र मधुरावट्टको राजाने उसके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया ॥ ३३२७ ॥ समस्त जगतीतलके प्राणियोंके प्राण दे करके भी उस राजाकी रक्षा करनी चाहिए, जो पद-पदपर विपत्तिमें पड़कर प्रजाका उद्धार करनेके लिए तत्पर रहता हो ॥ ३३२८ ॥ धन्य जब बीमार पड़ा, तब अत्यधिक स्नेहके नाते वह कृतज्ञ राजा रात-रातभर जागता हुआ उसके पास बैठा रहा और अन्ततक उसके पाससे नहीं हटा ॥ ३३२९ ॥ उस लोकप्रिय राजाके मंत्रियोंमें कुछ समयके लिए विपरीत भावना आ गयी थी, किन्तु वह भी जनसाधारणके लिए जीवनदायिनी सिद्ध हुई ॥ ३३३० ॥ मांधाता आदि बड़े-बड़े नामी राजाओंके मरनेपर प्रजाको जो कष्ट हुआ था, वह राजा जयसिंहके शासनकालमें नष्ट हो गया और प्रजाको परम सुख प्राप्त हुआ ॥ ३३३१ ॥ दो राजाओंकी चपेटमें पड़कर राज्यकी प्रजा जब भीषण संकटमें पड़ी थी, तब नये-नये राजाका मंत्री

नगराधिकृतो भूत्वा सुज्जेर्निर्वापिते पुरा। चिरप्ररूढां यो देशस्याव्यवस्थां न्यवारयत् ।।३३३४।।
भ्रष्टः क्रयेषु दीन्नारव्यवहारोऽव्यवस्थया। निगृह्य तं भ्रंशकार्यनिर्वितण्डः प्रवर्तितः ।।३३३५।।
परिणीताङ्गनाशीलभ्रंशे गृहपतेरभूत्। दण्डप्रवृत्तिर्या तेन सा विचार्य निवारिता ।।३३३६।।
एकान्ततो हितो भूत्वा विशामेवं पुनर्व्यधात्। नगराधिक्रियां लब्ध्वा स एव परिपीडनम् ।।३३३७।।
बद्धाभिर्नर्तकीभिश्च परिणीतगृहस्थितौ। संप्रयुक्तान्क्रव्यमानान्हठेनादण्डयद्बहून् ।।३३३८।।
किं वा भवेद्बलेशानां तुषाणामिव चिन्तनैः। अद्रोहालोभयोर्भूमिर्न तादृगपरोऽभवत् ।।३३३९।।
भिक्षुमल्लार्जुनौ कालानुवृत्त्याश्रितवानपि। नासौ जहौ स्वामिहितं न तौ वृत्त्यै श्रुतावधीत् ।।३३४०।।
अक्षीणत्यागहीनस्य विभूतिसमयेऽप्यभूत्। संस्कारौपयिकं नास्य पर्याप्तं निधने धनम् ।।३३४१।।
कृतज्ञतायां राज्ञोऽन्यत्पर्याप्तं किमुदीर्यताम्। यो जीवित इवानीतान्संविभेजेऽनुजीविनः ।।३३४२।।
लोकान्तरातिथिं विज्ञाभिधामुद्दिश्य वल्लभाम्। धन्यस्य विज्ञनामाढ्यविहारारम्भकारिणः ।।३३४३।।
परलोकं प्रयातस्य निर्माणप्रतिपूरणम्। स्थितं व्यवस्थितेः कं च विनियोगं चकार सः ।। युग्मम् ।।३३४४।।
भूभृद्धार्मिकतावाप्तसुकृतोत्सेकवासवैः। युद्धैकवृत्तिभिरपि प्रवृत्ते पुण्यकर्मणि ।।३३४५।।
विपक्षाणां सुभिक्षेण तुरुष्कविषयाश्रयात्। जन्मभूमेर्वृत्तये यैः क्रौर्यादन्यन्न शिक्षितम् ।।३३४६।।
येऽपि वृत्तिं विरोध्याजिव्यग्रे सुस्सलभूभुजि। कलहावसरेष्वेव कश्मीरेषु प्रपेदिरे ।।३३४७।।

बनकर धन्यने जो निर्विघ्न मंत्रित्व किया, उससे सभी विपत्तियाँ दूर हो गयीं ।। ३३३२ ।। बलवान् कालने अपने वशवर्ती लोगोंमेंसे किसके पूर्वापर आचार-व्यवहारको नहीं भुला दिया। भगवान् विष्णु शेषरूपसे पृथ्वीका भार वहन करते हैं और वराहरूपसे हिरण्याक्षको विदीर्ण करके पृथ्वीको उससे छीन लाते हैं ।।३३३३।। पूर्वकालमें सुज्जिके मर जानेपर जो नगरका मुख्य अधिकारी बना, उस कुलराजने चिरकालसे व्याप्त अव्यवस्थाको दूर कर दिया ।। ३३३४ ।। अव्यवस्थाके कारण क्रय-विक्रयके व्यवहारमें दीनारकी कीमत घट गयी थी, उसपर नियंत्रण करके उसने दीनारको फिर मूल्यवान् सिक्का बना दिया ।। ३३३५ ।। पहले गृहस्थोंके घरमें ब्याहकर आयी हुई स्त्रियोंमें भी दुराचार घर कर गया था, किन्तु उसने दण्डकी ऐसी व्यवस्था की कि जिससे उसका अन्त ही हो गया ।। ३३३६ ।। कुलराजने नगराधिकारीका पद पाकर आरम्भमें तो प्रजाका बड़ा हित किया, किन्तु बादमें नागरिकोंको बहुत सताने लगा ।। ३३३७ ।। उसने कैदमें पड़ी हुई बहुतेरी वेश्याओंको छोड़ दिया और वे छलसे गृहस्थोंको फँसाके उनके घरोंमें ब्याहता बन बैठीं। बादमें कुलराजने उन गृहस्थोंको पकड़-पकड़कर बरबस दण्डित किया ।। ३३३८ ।। जो लोग बलवान् (समर्थ) हों, उनके विषयमें तुषचिन्तनके समान कुछ सोचना बेकार होता है। उसके जैसा अलोभी और अद्रोही अन्य कोई भी मनुष्य नहीं था ।। ३३३९ ।। किसी समय वह भिक्षु और मल्लार्जुनके आश्रयमें रहा। किन्तु उन दिनों न उसने अपने स्वामीके हितपर आघात किया और न अपनी जीविकाके लिए उन दोनोंको मारा ही ।। ३३४० ।। समृद्धिकालमें भी उसने कोई विशेष खर्च नहीं किया और मरनेके बाद अपने दैहिक संस्कारके लिए भी आवश्यक धन नहीं छोड़ा ।। ३३४१ ।। उस राजाकी कृतज्ञताके विषयमें और अधिक कहाँतक कहा जाय, जिसने अपने आश्रितोंके साथ ऐसा व्यवहार किया कि जैसे वे मरकर फिरसे जीवित हो गये हों ।। ३३४२ ।। मरनेसे पहले ही धन्यने अपनी दिवंगत प्रिय पत्नी विज्ञाकी स्मृतिमें विज्ञामठ बनवाना आरम्भ किया था, किन्तु उसी बीच उसका देहान्त हो गया। क्या उसने अपनी शक्तिभर ऐसी चेष्टा नहीं की थी कि वह मठ बनकर स्थायी हो जाय ? पर वह पूर्ण नहीं हुआ ।। ३३४३ ।। ३३४४ ।। राजाकी धार्मिकतासे जिन लोगोंने इतना पुण्य अर्जित कर लिया था कि जिसके समक्ष इन्द्र भी तुच्छ प्रतीत होता था। ऐसे एकमात्र युद्धकी आजीविकावाले लोग भी उसके प्रभावसे पुण्यकर्मा बन गये थे ।। ३३४५ ।। कमलियाके भाई संगियाने अपने नामसे बाणलिंगकी स्थापना की। वह क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुआ था और तुरुष्क (तुर्की) में रहता था। उसने अपनी जीविकाके लिए शत्रुपर क्रूरता

गोत्रे तेषां क्षत्रियाणां जातः कमलियानुजः । राजवीजी सङ्गियाख्यः प्रतिष्ठां स्वाख्ययाकरोत् ॥३३४८॥
वितस्तापुलिने बाणलिङ्गे तेन निवेशिते । जायते स्वर्धुनीरोधःसंप्ररूढविमुक्तधीः ॥३३४९॥
तदीयं च मठं चैव तपोधनविभूषितम् । दृष्ट्वा निवर्तते रुद्रलोकालोकनकौतुकम् ॥३३५०॥
लोठनेऽन्यप्रतिष्ठानामधन्यद्रविणार्पणे । न तेनाद्यतने काले संरब्धं शुद्धबुद्धिना ॥३३५१॥
उदयस्य प्रिया चिन्ताभिधाना कम्पनापतेः । पुलिनोर्वी वितस्ताया विहारेण व्यभूषयत् ॥३३५२॥
प्रासादपञ्चकव्याजात्तद्विहारस्थितः करः । उदस्त इव धर्मेण प्रोत्तुङ्गाङ्गुलिपञ्चकः ॥३३५३॥
सांधिविग्रहिको मङ्खकाख्योऽलंकारसोदरः । समठस्याभवत्स्रष्टः श्रीकण्ठस्य प्रतिष्ठया ॥३३५४॥
मठाग्रहारदेवौकोजीर्णोद्धारादिकर्मभिः । अनुजः सुमना नाम रिल्हणस्यासदत्तुलाम् ॥३३५५॥
भूतेश्वरे मठं कृत्वा त्रिग्राम्यामप्यपाययत् । तोयं कनकवाहिन्या वितस्तायाश्च यः पितॄन् ॥३३५६॥
प्रदेशे कश्यपागाराभिधाने नीलभूः सरित् । जिगीषयेव जाह्नव्या यत्र पूर्वां दिशं गता ॥३३५७॥
उत्ताराय गवादीनां यः सेतुं तत्र बन्धयन् । निर्ममे निर्मलं कर्म संसारोत्तरणक्षमम् ॥३३५८॥
नगरेऽपि स्वनामाङ्कनृपाङ्कागारकारिणा । मठो येन कृतोऽभ्रष्टजटाधरघटाश्रयः ॥३३५९॥
मम्मेश्वरं स सौवर्णामलसारं चकार यः । सोमतीर्थं तथा तोयोद्यानाद्युद्योतितान्तिकम् ॥३३६०॥
अत्र क्षमाभुजो वंशे वंशोन्नत्यधनादिषु । सासूयत्वादसान्यानां धनप्राणादिहारिणः ॥३३६१॥
क्रुध्यन्नवासनाध्यासासूयया वासवोऽपि वा । प्राभ्रंशयद्दिवो देवो मान्धातारं धराभुजम् ॥३३६२॥
अविलुप्तमतिर्भृत्यान्कृत्यैोन्नत्यवतोऽन्वहम् । दृष्ट्वा ध्यातरत्नमाहात्म्यवृद्धिस्तु प्रीयते नृपः ॥३३६३॥
कलशक्ष्मापतेः प्राज्ञोपज्ञं भृत्योऽस्य रिल्हणः । कुर्वन्स्वर्णातपत्राणां प्रतिष्ठां प्रीतिकार्यभृत् ॥३३६४॥

करनेके सिवाय और कुछ नहीं सीखा था। जब कि राजा सुस्सलके शत्रुओंने आक्रमण कर दिया, तब कश्मीरमें उसे नौकरी मिल गयी थी ॥३३४६–३३४८॥ वितस्ता नदीके तटपर उसने जिस बाण लिङ्गकी स्थापना की थी, उसे देखकर गंगातटपर विद्यमान विमुक्ततीर्थ (काशी) का स्मरण हो आता था॥ ३३४९ ॥ तपस्वियोंसे अलंकृत उसके मठको देखकर रुद्रलोकके अवलोकनका कौतूहल शान्त हो जाता था ॥ ३३५० ॥ उस शुद्धबुद्धि पुरुषने गरीबोंसे धन लेकर लोठनमें उस समय अन्य-अन्य प्रतिष्ठानोंकी नींव नहीं रक्खी ॥ ३३५१ ॥ सेनापति उदयकी पत्नी चिन्ताने भी एक विहार बनवाकर वितस्तानदीकी तटवर्तिनी भूमिको विभूषित किया॥ ३३५२॥ उस विहारमें उसने जो पाँच भवन बनवाये थे, वे साक्षात् धर्मके उठे हुए हाथकी पाँचों उंगलियों जैसे दिखायी देते थे ॥ ३३५३ ॥ अलंकारका सगा भाई मंखक जो राज्यका विदेशमंत्री था, उसने एक मठ और मन्दिर बनवाकर श्रीकण्ठ शिवकी स्थापना की ॥ ३३५४ ॥ मठ, अग्रहार (भूदान) तथा देवमन्दिरोंके जीर्णोद्धार आदि सत्कर्मोंसे रिल्हणका छोटा भाई सुमना भी सब धर्मात्माओंके समकक्ष हो गया॥ ३३५५॥ उसने भूतेश्वर और त्रिग्रामीमें एक-एक मठ बनवाया और वितस्ता नदीसे कनकवाहिनी नामकी एक नहर निकालकर उसीके जलसे अपने पितरोंका तर्पण किया॥ ३३५६ ॥ कश्यपागार प्रदेशमें नील नामकी एक नदी उत्पन्न होकर जैसे गंगाजीको पराजित करनेके लिए पूर्व दिशाकी ओर बहती है। उसपरसे गौ आदिको पार करनेके लिए उसने एक पुल बँधवाया। उसका वह निर्मल कर्म संसारसागरको पार करनेमें सहायक हुआ॥ ३३५७ ॥ ३३५८॥ नगरमें भी अपने नामसे एक मठ और शिवमन्दिर बनवाया, जिसमें अनेक शिवलिंग स्थापित किये॥ ३३५९ ॥ उसने मम्मेश्वर शिवके लिए सुवर्णछत्र अर्पित किया और सोमतीर्थका निर्माण कराके एक ऐसा उद्यान बनवाया, जिसमें नहरसे बराबर पानी आता रहता था॥ ३३६० ॥ उन दिनों इस वंशके राजे ईर्ष्यावश अपने मंत्रियोंकी सम्पत्ति, जीवन, उच्चपद, धन धान्य देखकर उनके प्राण तक ले लेते थे॥ ३३६१ ॥ नया राज्य पानेपर, ईर्ष्या तथा क्रोधवश देवराज इन्द्रने महाराज मान्धताको स्वर्गसे बाहर फेंक दिया था॥ ३३६२ ॥ किन्तु बुद्धिमान् राजा जयसिंह धार्मिक कृत्य करके भृत्योंको दिनोदिन आत्मोन्नति करते देखकर उससे अपने

स्वर्णपत्रं सुरेश्वर्यां शिवयोः समवेतयोः । सदीपारात्रिकामत्रमैत्रीमेति सघण्टिकम् ॥३३६५॥
बन्धोर्हिमाद्रेर्दयितः सुताजामातरौ शिवौ । स्वर्णच्छत्रच्छलान्मेरुर्मूर्ध्न्याघ्रातुमुपागतः ॥३३६६॥

उद्दिश्य यद्विदधदुद्यममात्मयोनिर्दग्धो मयाङ्गघटनं दयितेन गौर्याः ।
सिद्धं तदत्र करुणामुमयेति हेमच्छत्रच्छलाद्धरदृगश्वलितोऽग्निरूर्ध्वम् ॥३३६७॥

छत्रं तत्र च रिल्हणेन विहितं रौक्मं महद्रुक्मिणीप्रेयोमन्दिरमूर्ध्नि नद्धमधुनाऽदभ्रं परिभ्राजते ।
क्षैब्येन क्षतजावपानजनुषा नष्टं ततः स्वामिना प्राप्तं चक्रमवेक्षितुं स्वरुचिरं भास्वानिवाभ्यागतः ॥३३६८॥
तीर्थे मन्मथजित्खगध्वजदृढाजर्यो र्जिताचार्यके साधाराभरणं क्रियापरिणति स्वर्णातपत्रं प्रभोः ।
भात्येकस्य शिखाहिफूत्कृतिवलद्गङ्गाब्जरेणूपगं केशान्तस्थितमेघपार्श्वगतडित्पिण्डाभमन्यस्य च ॥३३६९॥
सौवर्णद्रुहिणाण्डकर्परपुरे संश्रिता छत्रकव्याकोशस्य समुद्गकप्रतिकृतौ दीर्घार्पितेऽर्घ्ये घने ।
सङ्केन्दुकिरीटकैटभरिपुश्यामासितालंक्रिया सद्रत्नाकरयोः पिधानकरणि स्वर्णातपत्रं गतम् ॥३३७०॥
तं लोहरमहीपालमन्वजायन्त भूभुजः । रड्डादेव्या गुणोदाराश्चत्वारश्चतुराः सुताः ॥३३७१॥
गुल्हणेनापरादित्यो राघवेणेव लक्ष्मणः । अभिन्नभावः संवृद्धिं वर्तते लोहरे श्रयन् ॥३३७२॥
ललितादित्यदेवेन जयापीडो हि दारकः । भरतेनेव शत्रुघ्नः पाल्यमानः प्रवर्तते ॥३३७३॥
पार्थिवाहस्कराच्चारुनमस्काराद्यशस्करः । पञ्चमः क्षितिभृद्धर्म्यां बालातप इवोदितः ॥३३७४॥
चपलैः शैशवाच्छुद्धानुभावत्वात्ससौष्ठवैः । लडितैर्ललितादित्यो भित्तीरप्यार्द्रयत्यहो ॥३३७५॥

महत्वकी वृद्धि समझता हुआ प्रसन्न होता था ॥ ३३६३ ॥ उसके सेवक रिल्हणने जब अपनी बुद्धिमत्तासे राजा कलशकी खोज करके राज्यके स्वर्णछत्रको ऊँचा किया, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३३६४ ॥ सुरेश्वरीके मन्दिरमें एक साथ विराजमान शिव-पार्वतीके ऊपर उसने जो स्वर्णछत्र लगवाया था, उसमें दीपककी छोटी-छोटी घंटियाँ और प्रकाश फैलानेवाले कटोरे लगे हुए थे ॥ ३३६५ ॥ हिमालयका प्रिय सम्बन्धी सुमेरु जैसे उस स्वर्णछत्रके छलसे पुत्री पार्वती तथा दामाद शंकरका माथा सूँघनके लिए वहाँ आ उपस्थित हुआ था ॥ ३३६६ ॥ उस स्वर्णछत्रके व्याजसे जिन शिवजीके नेत्रसे उत्पन्न अग्निकी लपटें ऊपरकी ओर उठ रही थीं, उन शिवजीने कहा—'जिस उद्देश्यको लेकर कामदेव प्रयत्नशील था, उसके पूर्ण होनेके पहले ही मैंने उसे जला डाला। बादमें उसका करुण प्रयत्न सफल हुआ, जब पार्वतीजीके साथ मेरा सम्बन्ध हो गया ॥ ३३६७ ॥ रिल्हणने रुक्मिणीपति कृष्णके मन्दिरपर एक विशाल स्वर्णछत्र लगवाया था। वह बहुत अधिक चमक रहा था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो साक्षात् विष्णु वह दृश्य देखनेके लिए वहाँ आ गये हों। अथवा जैसे विष्णुका सुदर्शन चक्र दानवोंका रुधिर पीनेके बाद मदमत्त होकर गायब हो गया हो और अब फिरसे विष्णुभगवान्‌ने उसे ढूँढ़ निकाला हो ॥ ३३६८ ॥ सुरेश्वरीकी तपोभूमि देखकर प्रेमके ईश्वर शिव और गरुड़पर सवार विष्णुभगवान्‌की मैत्रीका आभास मिलता है। एक ओर शिवपर लगे हुए स्वर्णछत्र एवं गंगामें उगे कमलके परागपर उनके आभूषणस्वरूप सर्प विचरते दीख रहे हैं। दूसरी ओर भगवान् विष्णुकी केशराशिके पीछे मेघगत विद्युत् सदृश तेजस्वी मंडल देदीप्यमान हो रहा है ॥ ३३६९ ॥ स्वर्णब्रह्माण्डके खप्परमें पिटारेकी आकृतिका लम्बा-चौड़ा अर्घा बना हुआ है। उसपर छत्रके समान फैलावका एक चँदवा तना है, जिसमें चन्द्रमा सदृश किरीटयुक्त कैटभरिपु विष्णु भगवानकी श्याम आभा शोभित हो रही है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो दो समुद्रोंको ढाँकनेके लिए यह स्वर्णछत्र लगा हुआ है ॥ ३३७० ॥ उस लोहरनरेशका रड्डा देवीके चार-चार गुणी एवं चतुर पुत्र अनुसरण करने लगे ॥ ३३७१ ॥ जैसे भगवान् रामका लक्ष्मण साथ देते थे, उसी प्रकार गुल्हणके साथ अपरादित्य रहता था। वे दोनों लोहरमें अभेदभावसे संग रहते हुए उत्तरोत्तर समृद्ध हो रहे थे ॥ ३३७२ ॥ ललितादित्यदेव जयापीड नामके बालकका उसी तरह पालन करता था, जैसे भरत शत्रुघ्नका पालन करते थे ॥ ३३७३ ॥ राजाके सूर्य भगवान्‌को नमस्कार करनेसे उन चार राजाओंके मध्य बालसूर्य सदृश देदीप्यमान एवं राजधर्मसे

दत्तरक्षाञ्जनं ताम्राधरं गौरं तदाननम् । सबालातपभृङ्गाङ्कस्वर्णपङ्केरुहायते ॥३३७६॥
आलापास्तस्य माहात्म्यगर्भा बाल्यास्फुटा अपि । अमृतार्द्रा इवोच्चारा मथ्यमानस्य वारिधेः ॥३३७७॥
महाभिजनसंजातो राजसूनुः स शैशवे । अभिधत्तेऽनुभावेन भव्येनागामि जृम्भितम् ॥३३७८॥

अत्यक्तमण्डनशिखण्डशिखोऽपि तोयस्पर्शासहाश्रितकलापिकलापभङ्ग्या ।
वापीं निपीतसलिलो वलितं प्रयाति चेष्टोक्तभावमहिमा वरवर्णिभावः ॥३३७९॥

चतस्रो मेनिला राजलक्ष्मीः पद्मश्रिया समम् । संजाताः कमला चास्य कन्याः सत्कृत्यवृत्तयः ॥३३८०॥
विनोदलीलोद्यानैस्तैर्नित्यकान्तैरपत्यकैः । विद्योतेतेऽनवद्यौ तौ प्रावृट्पुष्पाकराविव ॥३३८१॥
तीर्थायतनपूतेऽस्मिन्मण्डलेऽखण्डितैर्व्ययैः । रड्डादेव्या एव याता भाग्यभावं विभूतयः ॥३३८२॥
कृतानुयात्रा सा दैवयात्रासु क्षितिपाङ्गना । राजलक्ष्मीरिवाभाति राजसामन्तमन्त्रिभिः ॥३३८३॥
सतीदेशे तीर्थसार्थास्त्यजन्त्यस्या निमज्जने । स्नानासक्तसतीमूर्तिस्पर्शनौत्सुक्यमञ्जसा ॥३३८४॥
चित्रे कालेऽत्र यात्रासु द्रष्टुं वृष्ट्युत्तरैः सदा । यत्प्रावृडिव तैश्चेयं जीमूतैरनुगम्यते ॥३३८५॥
सा पार्थिवेषु तीर्थेषु स्नानाय प्रस्थिता भुवम् । दिव्यैर्वर्षमिषात्तीर्थैः प्राद्दश्येत तदीर्ष्यया ॥३३८६॥
अभ्रंलिहान्न च गिरीन्न च कूलंकपा नदीः । मृद्वङ्गी दुर्गमा मार्गे तीर्थौत्सुक्येन वेत्त्यसौ ॥३३८७॥
सुबह्वीभिः प्रतिष्ठाभिर्जीर्णोद्धारैश्च धीरया । तया चित्रं चतुरया पङ्गुर्दिद्दा विलङ्घिता ॥३३८८॥

परिपूर्ण पाँचवाँ यशस्कर नामका एक पुत्र जायमान हुआ ॥ ३३७४ ॥ अपने चंचल शैशव, श्रद्धा-परिपूर्ण सौष्ठव तथा स्नेहातिरेकसे बालक ललितादित्य भित्तियोंको भी द्रवीभूत कर देता था ॥ ३३७५ ॥ लाल अधरों युक्त उसके गोरे मुखमण्डलपर रक्षाके निमित्त काजलका एक काला टीका लगा रहता था। जिससे वह बालातपमें भृङ्गके द्वारा अंकित स्वर्णकमल जैसा लग रहा था ॥ ३३७६ ॥ माहात्म्यसे सराबोर एवं बचपनके कारण अस्फुट होते हुए भी उस बच्चेके वचन मथ्यमान क्षीरसागरकी अमृतसे आर्द्र ध्वनिके समान मधुर लगते थे ॥ ३३७७ ॥ एक महान् एवं उच्चकुलमे उत्पन्न वह राजपुत्र बाल्यकालमें अपने भव्य प्रभावसे भविष्यके अभ्युदयकी घोषणा कर रहा था ॥ ३३७८ ॥ जिसने अपनी शिखाका अलंकार (कलंगी) नहीं त्यागा है और जो जलका स्पर्श सहनेमें असमर्थ अपने पंखसमूहकी भंगिमा द्वारा एक अनोखा सौन्दर्य बिखेर रक्खा है, वह मयूर अपनी चेष्टाओंसे निजी मनोभावकी महिमा एवं मनोहर वर्ण (रंग) का भाव व्यक्त करता तथा बावलीमें जल पीकर इठलाता हुआ अपनी राह चला जाता है ॥ ३३७९ ॥ तदनन्तर राजा जयसिंहके यहाँ मेनिला, राजलक्ष्मी, पद्मश्री तथा कमला नामकी चार कन्यायें उत्पन्न हुई। उन चारोंका स्वभाव आदरणीय था ॥ ३३८० ॥ आनन्द लेनेके लिए निर्मित उद्यानों एवं सदा प्रिय उन बच्चोंसे राजा तथा रड्डा देवी ये दोनों बरसात और वसन्त ऋतुके समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ३३८१ ॥ बड़े बड़े तीर्थोंके कारण पुनीत कश्मीरमण्डलमें अखण्डित धनराशिके व्यय होनेपर रड्डा देवीके भाग्यसे सब विभूतियाँ जुट गयी थीं ॥ ३३८२ ॥ वह रानी जब देवयात्राके निमित्त निकलती थी, तब अनेक राजाओं-मंत्रियों तथा सामन्तोंके साथ रहनेके कारण साक्षात् राजलक्ष्मीके समान दीखती थी ॥ ३३८३ ॥ इस सतीदेशमें जब वह तीर्थस्नान करने लगती थी, तब उसके साथी अलग हो जाते थे। क्योंकि स्नानके समय उस सतीकी मूर्तिका दर्शन अनुचित था ॥ ३३८४ ॥ उस विचित्र समयमें यात्रा करते समय कभी-कभी वृष्टि भी हो जाया करती थी। तब ऐसा प्रतीत होता था कि रानीके रूपमें साक्षात् वर्षाऋतु चल रही है और मंत्री आदिके रूपमें मेघगण उसके पीछे-पीछे चल रहे हैं ॥ ३३८५ ॥ जब रड्डा रानी सारी पृथ्वीके तीर्थोंकी यात्राके लिए चली तो उसे यात्रा करते देखकर देवलोकके तीर्थ ईर्ष्यावश वर्षाके बहाने आकर उसको देखने लगे ॥ ३३८६ ॥ यात्राकालमें तीर्थदर्शनकी उत्सुकतावश वह सुकुमार रानी मार्गके गगनचुम्बी पर्वतों और बढ़ी होनेके कारण तटसे टकराकर बहनेवाली नदियोंकी दुर्गमताकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देती थी ॥ ३३८७ ॥ विभिन्न तीर्थोंमें देवताओंकी स्थापना तथा जीर्णोद्धार आदि सुकर्मोंको करके उस धैर्यशालिनी एवं चतुर रानीने पूर्वकालीन

अद्यापि विक्षरत्क्षीरार्णवकान्तिच्छटाच्छलात् । यो भातीव सुधासूतिसितश्वेताश्मनिर्गतः ॥३३८९॥
उपमन्योरुदन्याया दारिद्र्योपद्रवापहः । रुद्रो रुद्रेश्वरो नाम्ना श्रीमान्कश्मीरभूषणम् ॥३३९०॥
जगत्सौन्दर्यसारं स सस्वर्णामलसारकः । शान्तावसादप्रासादोद्धारश्च विहितस्तया ॥३३९१॥
सत्त्वानामिव भृत्यानां कोपौर्वविकृते नृपे । उदन्वतीव शरणं सिन्धुर्हैमवतीव सा ॥३३९२॥
स्थिरप्रसादे भूपाले निग्रहानुग्रहौ क्षणात् । भूभुजामपि संवृत्तावविच्छिन्नौ तदिच्छया ॥३३९३॥
सोमपालात्मजो भूभृद्भूपालः प्रापितस्तया । मानिन्या मेनिलादेव्या विवाहेन महार्हताम् ॥३३९४॥

उत्पत्तिभूमिसुलभानुभवो न भूम्ना कस्याप्यहो व्यभिचरत्यनुभावभावः ।
तेजस्तमोविलुठनव्रतमुष्णभानोरच्छेदं तदुत्थमकरोत्तमसोऽपि चक्रम् ॥३३९५॥

भुवनाद्भुतसाम्राज्यमार्जने भूभुजाऽभवत् । प्रातिभाव्यं दृढं रत्नाक्रान्तसन्मण्डलावनिः ॥३३९६॥
ऊढायां मेनिलादेव्यां परिणेतुरभूदपि । पिता वैमत्यमुत्सृज्य निर्व्याजं राज्यदायकः ॥३३९७॥
राज्ञः प्राजिधरस्याजौ तरसा भूभुजोऽनुजः । वैरिभिर्निहतस्याग्रे वैरसंशोधनोद्यतः ॥३३९८॥

रड्डां शरणमेत्योच्चमानौत्कव्यो घटोत्कचः ।
भेजे राज्यश्रियं प्राप्य चित्रं राज्यश्रियं पराम् ॥ कुलकम् ॥३३९९॥

कृतसाहायकोऽमात्यै राज्ञः सप्रज्जिमङ्गदम् । राज्यात्प्राभ्रंशयद्भ्रातृद्रुहं पञ्चवटं नृपम् ॥३४००॥
अलङ्घयत्तत्प्रभावात्स्फारदानाम्बुनिर्भरात् । सरितं खड्गवल्लीं च कृष्णां विद्वेषिगोचराम् ॥३४०१॥
द्वितीयस्योरशाभर्तुरकीर्तिं निजयाऽसृजत् । देवप्रभावाद्योधाग्रमत्युग्रपुरमग्रहीत् ॥३४०२॥

पंगु बिद्दा रानीको भी पिछाड़ दिया था ॥ ३३८८ ॥ आज भी हिलोरें लेते हुए क्षीरसागरकी कान्तिसदृश देदीप्यमान, उपमन्युके वरदाता, दारिद्र्यनाशक, चूनेके सदृश उज्ज्वल, श्वेत प्रस्तरघटित, कश्मीरके अलंकार एवं रुद्रेश्वरके नामसे विख्यात वे रुद्र भगवान् विद्यमान हैं, जिनको उस रानीने समस्त संसारके सौन्दर्यका सारस्वरूप स्वर्णामलसार नामक सोनेका अलङ्कारविशेष अर्पित किया था और यात्रियोंके विश्राम करनेके लिए वहाँ एक भव्य प्रासाद बनवाया था ॥ ३३८९—३३९१ ॥ जब कभी राजा जयसिंह भृत्योंके किसी अनाचारसे कुपित होकर बडवानलका रूप धारण कर लेता था, तब रड्डा रानी ही उसे शान्त करती थी। जैसे क्षुब्ध समुद्रका कोप भगवती गंगा शान्त करती हैं ॥ ३३९२ ॥ जब राजा प्रसन्न रहता था, उस समय भी अन्यान्य राजाओंके निग्रह एवं अनुग्रहका अधिकार एकमात्र उस रानीके ही हाथोंमें रहता था ॥ ३३९३ ॥ आगे चलकर जब राजपुत्री मेनिलाका विवाह राजा सोमपालके पुत्र भूपालके साथ हो गया, तब इस विवाहसे भूपालका महत्त्व बहुत बढ़ गया ॥ ३३९४ ॥ जिसका उच्चकुलमें जन्म हो और जन्मके साथ ही भूपतित्व प्राप्त हो जाय, उसका अत्यधिक प्रभाव बढ जाना स्वाभाविक ही है। जिन सूर्य भगवान्के तेजका व्रत हैं अन्धकारका नाश करना, तब उसके तेजसे जायमान तेज भी अन्धकारराशिका नाश करेगा ही ॥ ३३९५ ॥ जगतीतलके अद्भुत साम्राज्यकी रक्षा करनेके लिए राजा सोमपालको भी एक सहायककी अत्यन्त आवश्यकता थी। सो मेनिलाके साथ विवाह हो जानेके बाद पिता सोमपालने हृदयसे सारा कल्मष दूर करके निष्कपट भावसे अपना राज्यभार भूपालको सौंप दिया ॥ ३३९६ ॥ ३३९७ ॥ बहुत दिनों पहले प्राजिधरके युद्धमें राजा भूपालका छोटा भाई घटोत्कच शत्रुओं द्वारा मार डाला गया था। अब उस वैरका बदला लेनेके लिए उसने तैयारी की। तदनुसार उसने रड्डादेवीसे सहायता माँगी। इससे उसे इतनी प्रचुर सहायता मिली कि उस राज्यश्रीको प्राप्त करके उसकी राज्यश्री पराकाष्ठाको पहुँच गयी ॥ ३३९८ ॥ ३३९९ ॥ राजा जयसिंहके मंत्रियोंने भी भूपालकी भरपूर सहायता की, जिससे उसने प्रज्जि, अङ्गद तथा भ्रातृद्रोही पंचवटको राज्यच्युत कर दिया ॥ ३४०० ॥ रानीकी सहायताके प्रभावसे उसकी शक्ति बढ गयी और उसने खड्गवल्लीस्वरूपा उस नदीको पार कर लिया, जो शत्रुके समक्ष विद्यमान थी ॥ ३४०१ ॥ उरशाके द्वितीय राजाने अपने ही कर्मोंसे संसारमें अकीर्ति फैलायी थी। सो अब राजा जयसिंहके

शीतोष्णवारणशशिद्योतकल्लोलितास्ततः । बहवो वाहिनीनाथाः प्रथामित्थं प्रपेदिरे ॥३४०३॥
समा द्वाविंशती राज्यावासेः प्राग्भूभुजो गता । तावत्येवाप्तराज्यस्य पञ्चविंशतिवत्सरे ॥३४०४॥
इयद्दृष्टमनन्यत्र प्रजापुण्यैर्महीभुजः । परिपाकमनोज्ञत्वं स्थेयाः कल्पातिगाः समाः ॥३४०५॥
अम्भोऽपि प्रवहत्स्वभावमशनैराश्यानमश्मायते ग्रावाम्भः स्रवति द्रवत्वमुदितोद्रेकेषु चावेयुषः ।
कालस्यास्खलितप्रभावरभसं भाति प्रभुत्वेऽद्भुते कस्यामुत्र विधातृशक्तिघटिते मार्गे निसर्गः स्थिरः ॥३४०६॥
प्रयाते त्र्यधिकेऽप्यर्घसमाषट्कशते कलेः । कश्मीरेष्वास्त गोनन्दः पार्थानां सेवया नृपः ॥३४०७॥
सूनुर्दामोदरोऽस्याथ तस्य पत्नी यशोमती ।
गोनन्दोऽन्यस्तत्सुतोऽपि ततोऽतीत्य महीपतीन् ॥३४०८॥
पञ्चत्रिंशतमज्ञातानुग्रहाभिजनाभिधाम् । राजाऽभवल्लवो नाम सूनुस्तस्य कुशस्ततः ॥३४०९॥
द्वौ खगेन्द्रसुरेन्द्राख्यौ पुत्रपौत्रावमुष्य तु । गोधरोऽथान्यकुलजः सुवर्णाख्यस्तदात्मजः ॥३४१०॥
तज्जन्मा जनकोऽप्यासीत्सूनुः शच्याः शचीनरः । अथाशोकोऽभवद्भूद्राज्ञोऽस्य प्रपितृव्यजः ॥३४११॥
तज्ज्ञो जलौकाः संदिग्धवंशो दामोदरस्ततः ।
तुल्या त्रयोऽथ हुष्काद्यास्तुरुष्काभिजनोद्भवाः ॥३४१२॥
अभिमन्युस्तृतीयोऽथ गोनन्दोऽस्य विभीषणः । राजेन्द्रजिद्रावणश्च वंशे यः क्रमशोऽभवत् ॥३४१३॥
अन्यो विभीषणः सिद्ध उत्पलाक्षस्ततोऽभवत् । पश्चात्ततो हिरण्याक्षहिरण्यकुलयोरभूत् ॥३४१४॥
राजा वसुकुलस्तस्य सूनुः ख्यातस्त्रिकोटिहा । क्षितिनन्दो वकात्तज्जाद्वसुनन्दस्तदात्मजः ॥३४१५॥
नरोऽन्योक्षस्ततस्तस्माद्गोप्ता गोकर्णको नृपात् । तस्मान्नरेन्द्रादित्योऽभूत्सूनुरन्धयुधिष्ठिरः ॥३४१६॥

प्रभावसे अग्रणी योद्धा बनकर उसने अत्युग्रपुरको हस्तगत कर लिया ॥ ३४०२ ॥ चन्द्रमाके समान शुभ्र छत्र धारण करनेवाले बहुतेरे सेनानायक अब उसके प्रशंसक बन गये थे ॥ ३४०३ ॥ इस प्रकार राजा जयसिंहने अपने राज्यकालके बाईस वर्ष विताये । अर्थात् लौकिक वर्ष ४२२५वाँ वर्ष समाप्त हुआ ॥ ३४०४ ॥ प्रजाके पुण्यसे इतनी लम्बी अवधिका शासनकाल किसी अन्य राजाका नहीं देखा गया है । उसके परिपक्व शासनका सुयश कल्प-पर्यन्त स्थिर रहेगा ॥ ३४०५ ॥ बहता हुआ जल भी कभी कभी वज्र बन जाता है, मृदु वस्तु पत्थर बन जाती है, पत्थर पानी बनकर बहने लगता है और वह बहाव कभी बहुत ही प्रबल हो जाता है । क्योंकि कराल कालका अस्खलित प्रभाव सर्वत्र व्याप्त रहता है । विधाताकी शक्तिसे घटित एवं अद्भुत प्रभुत्वसम्पन्न मार्गमें कौन वस्तु या कौन प्राणी स्वभावतः स्थायी रह सकता है ? ॥ ३४०६ ॥ अब यहाँसे ग्रन्थकी अनुक्रमणिका आरम्भ होती है— जब कलिकालके ६५३ वर्ष बीते थे, उस समय गोनन्द कश्मीरका राजा था । पार्थों (पृथाके पुत्रों पाण्डवों) की सेवा करके उसने यह पद प्राप्त किया था ॥ ३४०७ ॥ उसका पुत्र दामोदर और पत्नी यशोमती थी । उसका अन्य पुत्र द्वितीय गोनन्दके नामसे विख्यात हुआ और उसने अपने प्रभावसे उस समयके सभी राजाओंको दबोच लिया था ॥३४०८॥ तदुपरान्त कश्मीरमण्डलमें अज्ञातनामा पैंतीस राजाओंके बाद लव नामका राजा हुआ और उससे कुशकी उत्पत्ति हुई ॥३४०९ ॥ उस कुशके पुत्र और पौत्र खगेन्द्र तथा सुरेन्द्र हुए । उसके अन्य कुलमें गोधर उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र सुवर्ण हुआ ॥३४१०॥ सुरेन्द्रका पुत्र जनक और जनककी पत्नी शचीसे शचीनर जाय-मान हुआ । तदनन्तर शचीनरके प्रपितृव्यका पुत्र अशोक कश्मीरका राजा हुआ ॥३४११॥ अशोकका पुत्र जलौका और संदिग्धवंशज दामोदर हुआ । तदनन्तर हुष्क, जुष्क और कनिष्क ये तीनों तुरुष्क वंशमें उत्पन्न हुए ॥३४१२॥ उसके बाद अभिमन्यु, तृतीय गोनन्द और उसका पुत्र विभीषण हुआ । उसका पुत्र इन्द्रजित् और उसका पुत्र रावण हुआ ॥ ३४१३ ॥ उसका पुत्र द्वितीय विभीषण हुआ । उसके पुत्र सिद्ध तथा उत्पलाक्ष हुए । उनके पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल हुए ॥ ३४१४ ॥ हिरण्यकुलका पुत्र वसुकुल हुआ । वसुकुलका पुत्र मिहिरकुल कश्मीरका बड़ा विख्यात राजा हुआ और उसने तीन करोड़ जनतापर शासन किया । मिहिरकुलका द्वितीय पुत्र

तस्य प्रभ्रंशितो भृत्यैरन्याभिजनसंभवः । भूपः प्रतापादित्योऽभूज्जलौकोऽपि तदात्मजः ॥३४१७॥
तुञ्जीने निःसुते तज्ञे विजयोऽन्यकुलोद्भवः । जयेन्द्रेऽस्य सुतेऽपुत्रे सचिवः संधिमानभूत् ॥३४१८॥
युधिष्ठिरस्य पौत्रेण भूपादित्यात्मजन्मना । श्रीमेघवाहनेनाथ गोनन्देऽभ्युदिते कुले ॥३४१९॥
ततः प्रवरसेनोऽन्यस्तोरमाणात्मजः क्षितिम् ।
लेभे हिरण्यभ्रातृव्यस्तस्य पुत्रो युधिष्ठिरः ॥३४२०॥
ततो नरेन्द्रादित्यश्च रणादित्यश्च भूपतिः । क्रमादभूतां तत्पुत्रो विक्रमादित्यभूपतिः ॥३४२१॥
वालादित्यश्चोद्भवद्रणादित्यस्य नन्दनः । वालादित्यस्य जामाता ततो दुर्लभवर्धनः ॥३४२२॥
सूनुर्दुर्लभकस्तस्य चन्द्रापीडोऽभवत्ततः । तारापीडोऽनुजन्मा च मुक्तापीडोऽस्य चानुजः॥३४२३॥
भूपावास्तां कुवलयापीडो द्वैमातुरोऽस्य च ।
वज्रादित्यः सुतो राज्ञो मुक्तापीडस्य तत्सुतौ ॥३४२४॥
पृथिव्यापीडसंग्रामापीडावनु नृपोऽभवत् । जयापीडोस्य मन्त्री च जज्जः पुत्रावपि क्रमात्॥३४२५॥
ललितापीडसंग्रामापीडौ ज्येष्ठात्मजस्ततः । श्रीचिप्पटजयापीडः कल्यपाल्युद्भवोऽभवत् ॥३४२६॥
अभिचारेण तं हत्वा सांमत्यादितरेतरम् । उत्पलाद्यैरसंप्राप्तराज्यैस्तन्मातुलैः कृतः ॥३४२७॥
भ्रातुः पुत्रोऽजितापीडो जयापीडस्य तत्पदे ।
अनङ्गापीडनामा च संग्रामापीडजस्ततः ॥३४२८॥
तमुत्पाट्योत्पलापीडोऽस्याजितापीडनन्दनः । अवन्तिवर्मा शूरेण तं निवार्याथ मन्त्रिणा ॥३४२९॥
नप्तोत्पलस्य विदधे साम्राज्ये सुखवर्मजः । शूरः शंकरवर्मा स गोपालस्तस्य चात्मजः ॥३४३०॥

चक और उसका पुत्र क्षितिनन्द हुआ। उसका पुत्र वसुनन्द हुआ ॥ ३४१५ ॥ वसुनन्दका पुत्र नर, उसका पुत्र अक्ष, अक्षका पुत्र गोप्तादित्य और उस राजाका पुत्र गोकर्ण हुआ। गोकर्णका पुत्र नरेन्द्रादित्य और उसका पुत्र अन्धयुधिष्ठिर हुआ ॥ ३४१६ ॥ उसके दिवंगत हो जानेपर मंत्रियोंने अन्यगोत्रज पुत्र प्रतापादित्यको कश्मीरका राजा बनाया। उसका पुत्र जलौका हुआ ॥ ३४१७ ॥ राजा जलौकाका पुत्र तुंजीन हुआ। उसके कोई पुत्र नहीं था। सो उसके मर जानेपर अन्य कुलमें जायमान विजय राजा बना। विजयका पुत्र जयेन्द्र हुआ। जयेन्द्रके जब कोई सन्तति नहीं हुई, तब सचिव सन्धिमान् कश्मीरका शासक बना ॥ ३४१८ ॥ तदनन्तर गोनन्दके कुलमें उत्पन्न मेघवाहन राजा बना। जो भूपादित्यका पुत्र एवं युधिष्ठिरका पौत्र था ॥ ३४१९ ॥ तदनन्तर द्वितीय प्रवरसेन कश्मीरका शासक बना, जो कि तोरमाणका पुत्र एवं हिरण्यका भतीजा था। प्रवरसेनका पुत्र द्वितीय युधिष्ठिर हुआ ॥ ३४२० ॥ तदनन्तर क्रमशः नरेन्द्रादित्य और रणादित्य ये दो राजे हुए। रणादित्यका पुत्र राजा विक्रमादित्य हुआ ॥ ३४२१ ॥ उसके बाद रणादित्यका दूसरा पुत्र बालादित्य राजा बना। उसके बाद बालादित्यका दामाद दुर्लभवर्धन कश्मीरनरेश बना ॥ ३४२२ ॥ उसका पुत्र दुर्लभक और दुर्लभकका पुत्र चन्द्रापीड राजा बना। उसका बड़ा भाई तारापीड और छोटा भाई मुक्तापीड था ॥ ३४२३ ॥ उसका पुत्र कुवलयापीड राजा हुआ और उसके बाद उसका सौतेला भाई वज्रादित्य कश्मीरका शासक बना ॥ ३४२४ ॥ तदनन्तर वज्रादित्यके दो पुत्र पृथिव्यापीड और संग्रामापीड ये दोनों क्रमशः यहाँके शासक बने। संग्रामापीडका पुत्र जयापीड और उसका मंत्री जज्ज था ॥ ३४२५ ॥ जयापीडके पुत्र ललितापीड तथा संग्रामापीड हुए। तदनन्तर चिप्पट जयापीड राजा बना जो ललितापीडकी पुत्रीका पुत्र था ॥ ३४२६ ॥ उसको उत्पल आदि उन मामाओंने मिलकर आभिचारिकी क्रियाके द्वारा मरवा डाला, जिन्हें राज्य नहीं मिल सका था ॥ ३४२७ ॥ उसके बाद अजितापीड राजा बना, जो जयापीडके एक भाईका पुत्र था। उसके बाद संग्रामापीडका पुत्र अनंगापीड कश्मीरका शासक बना ॥ ३४२८ ॥ उसे उखाड़कर अजितापीडके पुत्र उत्पलापीडने गद्दी सँभाली। कुछ समय बाद उसके मंत्री शूरने उसे हटा दिया और सुखवर्मन्के पुत्र एवं उत्पलके पौत्र अवन्तिवर्मन्को राजा बनाया। उसका

रथ्यागृहीतः आभूच्च तद्भ्राता संकटाभिधः । सुगन्धाख्या तयोर्माता तां विनाश्याथ भूभुजम् ॥३४३१॥
शूरवर्मप्रणप्तारं पार्थं तन्त्रिपदातयः । चक्रुर्निर्जितवर्माणं ततस्तस्य च तत्क्रमात् ॥३४३२॥
चक्रवर्मा शूरवर्मा चेति निर्जितवर्मजः । विहिता बहुशो राज्ये तस्तम्भे शंभुवर्धनः ॥३४३३॥
तदन्तरे लब्धराज्ये मन्त्री व्यापाद्य तं नृपम् । चक्रवर्मण्यतीतेऽथ पापी पार्थात्मजः क्रमात् ॥३४३४॥
उन्मत्तावन्तिवर्मासीत्तत्पुत्रे शूरवर्मणि । राज्याद्भ्रष्टे द्विजैश्चक्रे राज्ये मन्त्री यशस्करः ॥३४३५॥

अपितृव्यात्मजस्तस्य वर्णटस्तनयोऽनु तम् ।
राज्ये वक्रांघ्रिसंग्रामस्तस्थौ निष्पाद्य तं ततः ॥३४३६॥

अमात्यः पर्वगुप्ताख्यो राज्यं द्रोहेण लब्धवान् । क्षेमगुप्तः सुतोऽस्यासीदभिमन्यौ तदात्मजे ॥३४३७॥
शान्ते मात्रा पाल्यमाने नन्दिगुप्ते च तत्सुते । ततस्त्रिभुवने भीमगुप्ते च क्रूरचेष्टया ॥३४३८॥

पौत्रे तयैव निहते स्वयं दिद्दाख्यया कृतम् ।
राज्यं संग्रामराजोऽपि भ्रातृव्योऽन्ते नृपः कृतः ॥३४३९॥

हरिराजानन्तदेवावास्तां तस्यात्मजौ ततः । कलशोऽनन्ततनयः क्रमाद्भूपौ तदात्मजौ ॥३४४०॥
उभावुत्कर्षहर्षाख्यावपि निष्पाद्य भूपतिम् । हर्षदेवं तमुद्दामविक्रमोऽनन्यवंशजः ॥३४४१॥
भ्रातुः पुत्रस्य दिद्दाया जस्सराजस्य नप्तृतः । मल्लाभिधानाद्भूतो भूपतामुच्चलोऽभजत् ॥३४४२॥
द्रोहेण तं हतवतां भृत्यानामग्रतस्ततः । गड्डराजाऽन्यनामाभूद्रड्डाख्यः क्षणिको नृपः ॥३४४३॥

गर्गेण निहते तस्मिन्सल्हो द्वैमातुरोऽप्यभूत् ।
तस्योच्चलमहीभर्तुर्भ्राता निर्वध्य तं वली ॥३४४४॥

सुस्सलाख्योऽग्रहीद्राज्यं माल्लिरुच्चलसोदरः । विरक्तैः पाटिते तस्मिन्राज्याद्भृत्यैर्नृपः कृतः ॥३४४५॥

पुत्र वीर शंकरवर्मा तथा उसका पुत्र गोपाल हुआ ॥ ३४२९ ॥ ३४३० ॥ तदनन्तर राहमें मिला हुआ उसका भ्राता संकटा यहाँका राजा बना। कुछ समय बाद उसकी माता सुगन्धाने उसे मार डाला ॥ ३४३१ ॥ उसने शूरवर्माके प्रपौत्र पार्थको गद्दीपर बिठाला। तदनन्तर उसके मंत्रियोंने निर्जितवर्माको यहाँका शासक बनाया ॥ ३४३२ ॥ उसके पुत्र चक्रवर्मा और शूरवर्मा थे। उसके शासनकालमें बहुतेरे उलट-फेर हुए। अन्तमें शम्भुवर्धनने वहाँकी स्थिति सम्हाली ॥ ३४३३ ॥ तदनन्तर राजा शम्भुवर्धनको उसके मंत्री चक्रवर्माने मार डाला और स्वयं वहाँका शासक बन बैठा। उस चक्रवर्माके बाद पार्थका पुत्र उत्तम अवन्तिवर्मा राजा बना। उसका पुत्र शूरवर्मा जब राज्यच्युत हुआ, तब ब्राह्मणोंने उसके मंत्री यशस्करका राज्याभिषेक कर दिया ॥ ३४३४ ॥ ३४३५ ॥ तदनन्तर प्रपितृव्यके पुत्र वर्णटका राज्याभिषेक हुआ। उसके बाद यशस्करका पुत्र वक्रांघ्रिसंग्राम राजा बना। तदनन्तर उसे मारकर मंत्री पर्वगुप्त शासक बना। उसका पुत्र क्षेमगुप्त हुआ। क्षेमगुप्तका पुत्र अभिमन्यु मर गया, जो कि दिद्दारानीकी देख-रेखमें रहता था। जब उस क्रूर रानीने अभिमन्युके पुत्र नन्दिगुप्त तथा अपने पौत्र त्रिभुवन और भीमगुप्तको भी मरवा डाला। तब वह स्वयं कश्मीरकी शासिका बन गयी और मरते समय अपने भाईके पुत्र संग्रामराजको राजा बना गयी ॥ ३४३६–३४३९ ॥ तत्पश्चात् संग्रामराजके पुत्र हरिराज और अनंतदेवने राज्य किया। उसके बाद अनन्तके पुत्र कलशने राज्य सम्हाला। तदनन्तर कलशके पुत्र उत्कर्ष और हर्ष राजा बने। बादमें हर्षदेवको परास्त करके उच्चलने राज्य प्राप्त किया। वह उसी वंशमें उत्पन्न मल्लका पुत्र तथा दिद्दारानीके भाई जस्सराजका पौत्र था ॥ ३४४०—३४४२ ॥ जब कि उच्चलको उसके सेवकोंने क्रूरतापूर्वक मार डाला, तब सेवकोंमें सर्वश्रेष्ठ रड्डाने शंखराजके नामसे कुछ समयके लिए राज्यभार सम्हाला ॥ ३४४३ ॥ जब गर्गने रड्डाका वध करा दिया, तब राजा उच्चलका सौतेला भाई सल्हण राजा बना। राजा उच्चलके भाई मल्लके शक्तिशाली पुत्र सुस्सलने सल्हणको कैद करके शासनसूत्र अपने हाथमें ले लिया। इसके बाद वहाँके

षण्मासान्हर्षभूभर्तृनप्ता भिक्षाचराभिधः । पुनर्निर्वास्य तं प्राप्तराज्ये सुस्सलभूभृति ॥३४४६॥
क्रमाल्लवन्यैर्विश्वस्तैर्द्रैराज्योद्रेजिते हते । लवन्यान्निखिलांस्तं च हत्वा भिक्षाचरं नृपम् ॥३४४७॥
सुतः सुस्सलभूभर्तुः संप्रत्यप्रतिमक्षमः । नन्दयन्मेदिनीमास्ते जयसिंहो महीपतिः ॥३४४८॥

गोदावरी सरिदिवोत्तुमुलैस्तरङ्गैर्वक्त्रैः स्फुटं सपदि सप्तभिरापतन्ती ।
श्रीकान्तिराजविपुलाभिजनाब्धिमध्यं विश्रान्तये विशति राजतरङ्गिणीयम् ॥३४४९॥

इति श्रीमहामात्यचम्पकप्रभुसूनुमहाकविश्रीकल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्यामष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥

समाप्तेयं राजतरङ्गिणी ।

सुस्सलको राजगद्दीसे हटाकर हर्षदेवके पौत्र भिक्षाचरको छ महीनेके लिए कश्मीरका शासक बना दिया। तदनन्तर राजा सुस्सलने उसे हटाकर अपना राज्य पुनः प्राप्त किया और उसके बाद अभिमानी लवन्योंने विद्रोह करके राजा सुस्सलको मार डाला। तदनन्तर राजा सुस्सलके पुत्र जयसिंहने सभी लवन्यों तथा भिक्षाचरका वध कराके राज्य प्राप्त किया और असाधारण शक्तिशाली वह राजा आज पृथिवीको आनन्दित कर रहा है ॥ ३४४४–३४४८ ॥ जैसे गोदावरी नदी सात मुखोंसे निकल तथा अपनी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको उछालकर बहती हुई समुद्रमें जाकर विश्राम करती है। उसी तरह राजाओंकी नदी यह राजतरङ्गिणी अपने पहलेवाले सात तरङ्गोंके साथ बहती हुई उच्चकुलोत्पन्न श्रीकान्तिराजरूपी समुद्रमें विश्राम करनेके लिए प्रविष्ट हो रही है ॥ ३४४९ ॥

इति श्रीमहाकविकल्हणकृतराजतरङ्गिण्यां पं० रामतेजशास्त्रिकृतभाषाटीकायामष्टमस्तरङ्गः समाप्तः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

ज्येष्ठ कृष्ण ४ सं० २०१७



श्री सोमारूराम द्वारा गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर वाराणसीमें मुद्रित ।

मेरे विश्वविख्यात महाग्रन्थ–

(पुराण-इतिहास)

श्रीमद्भागवत 'सामयिकी' भाषा टीका पत्राकार (बहुतेरे दृष्टान्तों सहित)	३२–०
श्रीमद्भागवत 'सामयिकी' भाषा टीका सजिल्द (नित्यपाठोपयोगी घरेलू संस्करण)	१५–०
श्रीमद्भागवत 'श्रीधरी' संस्कृत टीका (बढ़िया कागज, स्वच्छ छपाई)	२४–०
श्रीमद्भागवत 'चूर्णिका' संस्कृत टीका (सप्ताहोपयोगी)	२४–०
श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध भा० टी० (माहात्म्य सहित)	८–०
श्रीमद्देवीभागवत भाषा टीका पत्राकार (बहुत अच्छा संस्करण)	३६–०
श्रीमद्देवीभागवत मूल (बढ़िया कागज, पक्की जिल्द और अच्छी छपाई)	८–०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण 'रामाभिनन्दिनी' भा० टी० (पक्की जिल्द-स्वच्छ छपाई)	२४–०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण मूल (नित्यपाठोपयोगी दिव्य संस्करण)	८–०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड भाषा टीका सहित	३–०
आनन्दरामायण 'ज्योत्स्ना' भाषा टीका (पक्की जिल्द और स्वच्छ छपाई)	१६–०
राजतरङ्गिणी (कल्हणकृत) 'शोभना' भाषा टीका	२०–०

(आयुर्वेद)

भैषज्यरत्नावली 'चूर्णिका' टिप्पणी सहित	४–०
रसेन्द्रसारसंग्रह 'रसायनी' भाषा टीका सहित	३–०
शार्ङ्गधरसंहिता 'श्यामा' भाषा टीका सहित (बढ़िया जिल्द और साफ छपाई)	४–०
माधवनिदान 'माधवी' भाषा टीका (नया संस्करण)	२–५०
भावप्रकाशनिघण्टु 'सटिप्पण' (परीक्षोपयोगी) ग्लेज, नया संस्करण	१–५०
नाड़ीज्ञानदर्पण भाषा टीका सहित (अपने विषयकी अनूठी पोथी)	०–५०

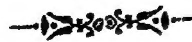
(काव्य-नाटक)

कादम्बरी (बाणभट्टकृत) भाषा टीका सहित सम्पूर्ण	७–०
रघुवंश महाकाव्य (कालिदासकृत) मल्लिनाथी संस्कृत टीका	३–०
रघुवंश महाकाव्य (कालिदासकृत) भाषा टीका सहित (सम्पूर्ण)	३–०
मेघदूत काव्य (कालिदासकृत) संस्कृत टीका और भाषाटीका सहित	०–७५

कुमारसंभव (कालिदासकृत) भाषा टीका सहित	२—०
अभिज्ञानशाकुन्तल (कालिदासकृत) भाषा टीका सहित	२—०

(प्रकीर्ण)

कौटिलीय अर्थशास्त्र (आचार्य चाणक्य कृत) भाषा टीका	८—०
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर बड़ा (स्तोत्रसंख्या ४००) नया संस्करण	३—०
हितोपदेश भाषा टीका सहित नवीन संस्करण	१—५०
पञ्चतन्त्र (विष्णुशर्माकृत) भाषा टीका सहित	४—०
सिद्धान्तकौमुदी 'सुगन्धा' (भट्टोजि दीक्षितकृत)	३—०
यजुर्वेदीय मंत्रसंहिता (कर्मकाण्डके मंत्रोंका विशाल संग्रह	१—०
श्रीशुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी (रुद्री)	०—३८
अमरकोष हिन्दी टिप्पणी सहित (सम्पूर्ण)	१—०
उपनयनपद्धति बड़ी भा० टी० सहित (प्रामाणिक संस्करण)	०—७५
मनुस्मृति भाषा टीका (भारतवर्षका प्रामाणिक धर्मशास्त्र ग्रन्थ)	३—०
श्रीदुर्गासप्तशती 'हैमवती' भाषा टीका सहित (द्वितीय संस्करण)	१—०
गरुडपुराण (प्रेतकल्प) भाषा टीका सहित ३४ अध्याय	१—५०
श्रीरामचरित मानस (तुलसीदासजी कृत) बड़ा अक्षर और गुटका साइज़	३—०
दृष्टान्तदीपक (दृष्टान्तसंख्या ४३२) द्वितीय संस्करण	२—०
राजसी कुण्डली (अनोखे जन्मपत्रफार्म) मोटा कागज, दोरंगी छपाई	५—० सैं०
श्रीशुभविवाहलग्नपत्रिका (वर-कन्या उभयपक्षके लिए उपयोगी) दोरंगी छपाई	१०—० सैं०



प्राप्तिस्थान—

पण्डित-पुस्तकालय, राजा

कृताह्निकं भोक्तुकामं तं दिनान्ते च भूपतिम् । अकालावेदनाद्भिभ्यत्क्षत्ता जातु व्यजिज्ञपत् ॥४२॥
देवः समाप्तकृत्योऽद्य विज्ञप्तौ श्वस्तव क्षणः । इत्युक्तो दर्शने प्राणत्यागो विप्रो बहिः स्थितः ॥४३॥
दत्तप्रवेशादेशोऽथ रुद्धसूदेन भूभुजा । द्विजः प्रविष्टः पृष्टश्च तीव्रार्तिरिदमब्रवीत् ॥४४॥
सुवर्णरूपकशतं भ्रान्त्वा देशान्तरेऽर्जितम् । गृहीत्वा श्रुतसौराज्यः स्वदेशमहमागतः ॥४५॥
त्वयि राजनि निश्चौरैरध्वभिर्विशतः सुखम् । ह्योऽभवल्लवणोत्से मे दिनान्ते श्राम्यतः स्थितिः ॥४६॥
दीर्घाध्वलङ्घनक्लान्तस्तत्राहमकुतोभयः । मार्गारामतरोर्मूले त्रियामामत्यवाहयम् ॥४७॥
वेतनं ग्रन्थिबद्धं तदुत्थास्नोरपतन्मम । अरघट्टे समीपस्थे कक्षयोगादलक्षिते ॥४८॥
तस्मिन्दुरवरोहेऽतिनिर्वसुत्वाज्जिहद्वपुः । सोऽहं हारितसर्वस्वः शोचन्रुद्धश्चिरं जनैः ॥४९॥

एकोऽध्यवसितः कोपि साहसे पुरुषोऽब्रवीत् ।
मह्यं दापितवित्ताय किं ददासीति मां ततः ॥५०॥

तमस्म्यवोचं विवशस्तस्यार्थस्यास्मि कः प्रभुः । तुभ्यं यद्रोचते मह्यं तत्ततो दीयतां त्वया ॥५१॥
अवरुह्याधिरूढोऽथ रूपकेभ्यो द्वयं मम । स प्रादात्स्पष्टमेवाष्टानवतिं स्वीचकार तु ॥५२॥
व्यवहारा वचोनिष्ठा एव राज्ञि यशस्करे । निन्दन्व्यवस्थां तां लोकैर्न्यकृतोऽस्मीति वादिभिः ॥५३॥
उपचारोक्तिसारल्यच्छलहारितवेतनः । सोऽहं जहाम्यसून्द्वारे दुर्व्यवस्थापकस्य ते ॥५४॥
पुंसस्तस्य स राज्ञाऽथ पृष्टः प्रकृतिनामनी । वदनप्रत्यभिज्ञैव ममास्तीत्यभ्यभाषत ॥५५॥

लिए अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया ॥ ४१ ॥ एक समय सायंकालीन संध्यावन्दन आदि दैनिक कार्योंसे निवृत्त होकर भोजन करनेके लिए उद्यत राजासे द्वारपालने निवेदन किया। कार्य असामयिक होनेके कारण द्वारपाल डर रहा था ॥ ४२ ॥ उसने कहा—'महाराज ! एक ब्राह्मण कुछ प्रार्थना करनेके लिए द्वारपर आया हुआ है। उसको मैंने समझाया कि 'इस समय महाराज अन्तःपुरमें हैं। अतएव आपको कल प्रार्थनाका समय मिलेगा'। मेरे यह कहनेपर वह प्राण देनेको तैयार हो गया है' ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजाने भोजन त्याग दिया और उस ब्राह्मणको बुलवाकर उसका वृत्तान्त पूछा। तब वह अत्यन्त दुःखित होकर दीनतापूर्वक अपनी करुण कहानी सुनाता हुआ बोला –॥ ४४ ॥ 'महाराज ! विदेशमें भ्रमण करके मैंने बड़े परिश्रमसे उपार्जित धनमेंसे सौ स्वर्णमुद्रायें बचा ली थीं। उनको लिये हुए मैं यह सुनकर स्वदेश लौटा कि अब इस राज्यमें सुराज्य हो गया है ॥ ४५ ॥ आपके शासनकालमें कहीं चोरोंका तो भय था नहीं, इस कारण सानन्द चलते-चलते थककर रातके समय लवणोत्स ग्राममें टिक गया ॥ ४६ ॥ लम्बा रस्ता तै करनेके कारण थका हुआ मैं निर्भयभावसे मार्गके एक बगीचेमें वृक्षके नीचे सोया ॥ ४७ ॥ मेरे स्थानके पास ही घास-फूससे ढँका एक कुआँ था, उसका मुझे पता नहीं था। सवेरे जब सोकर उठा तो मालूम हुआ कि मेरी वह स्वर्णमुद्राओंवाली पोटली उस कुएँमें गिर गयी है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार अपना सर्वस्व नष्ट हो जानेके कारण निर्धन होकर मैं बड़ी देरतक रोता रहा। अन्तमें मैं उसी दुरवरोह (जिसमें गिरकर कठिनाईसे निकला जा सके) कूपमें कूदकर प्राण त्यागनेको उद्यत हो गया, किन्तु वहाँपर एकत्रित लोगोंने मुझे वैसा नहीं करने दिया ॥ ४९ ॥ उसी जनसमुदायमेंसे एक साहसी एवं उत्साही युवकने कहा—'तुम्हारा धन यदि मैं इस कुएँमेंसे निकाल दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?' ॥ ५० ॥ तब विवश होकर मैंने कहा कि 'अब उस धनपर मेरा अधिकार ही क्या है ? तुम्हीं जो उचित समझना सो दे देना' ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उस साहसीने कुएँसे वह स्वर्णमुद्राओंवाली पोटली निकाली और उसमेंसे केवल दो मुद्रायें उसने मुझे दीं और स्वयं ९८ मुद्रायें ले ली ॥ ५२ ॥ तब मैं उससे झगड़ने लगा। इस बातपर वहाँवाले लोग मेरी बातकी आलोचना तथा मेरी निन्दा करके कहने लगे कि 'राजा यशस्करके राज्यमें सब व्यवहार मनुष्यकी बातपर चलते हैं' ॥ ५३ ॥ सिधाईके कारण वैसे औपचारिक वचन कह देनेपर कपटसे मेरा धन ले लिया गया है। अतएव ऐसे अन्याय्य व्यवहारके प्रचारक आपके द्वारपर मैं प्राण दे दूँगा ॥ ५४ ॥ जब राजाने उस साहसिक

प्रातस्तवेप्सितावाप्तिं करिष्यामीति भूभुजा । प्रतिज्ञाय कथंचित्स स्वपार्श्वे कारितोऽशनम् ॥५६॥
लवणोत्सौकसां दूताहूतानां स विशां ततः । स्थितमन्तर्द्विजोऽन्येद्युस्तं राज्ञेऽदर्शयन्नरम् ॥५७॥
पृष्टः स राज्ञा विप्रेण यथैवोक्तं तथैव तत् । सर्वमूचे वाक्प्रतिष्ठं व्यवहारमुदीरयन् ॥५८॥
सत्यवाक्पारतन्त्र्यस्य वस्तुवृत्तस्य चान्तरम् । अलक्षयन्तः प्रैक्षन्त दोलाकुलधियो धराम् ॥५९॥
धर्मासनस्थो राजाऽथ रूपकाणामभाषत । तमष्टानवतेः पात्रं विप्रमन्यं द्वयस्य तु ॥६०॥
अनुयोक्तृजगादापि दुःसंचिन्त्या महात्मनः । धर्मस्याधर्ममुद्वृत्तं निहन्तुं धावतो गतिः ॥६१॥
सायं हुताशं प्रविशन्नम्मयं चेन्दुमण्डलम् । स्वतेजसा संविभजन्प्रदीपैर्ज्योत्स्नयाऽप्यसौ ॥६२॥
तदुत्थाय यथा भानुर्निहन्ति ध्वान्तमुद्धतम् ।
अनन्यकर्मा धर्मोऽयं तथाऽधर्मं व्यपोहति ॥ युग्मम् ॥६३॥
दुःसंलक्ष्यस्तु धर्मोऽसावधर्मं बाधतेऽञ्जसा । तिष्ठन्नित्यमधिष्ठाय दाह्यं काष्ठमिवानलः ॥६४॥
ददाति यद्भवान्दत्तां तदित्याद्युक्तमुज्झतः । तुभ्यं रोचत इत्यादि वचोऽस्य निःसृतं तदा ॥६५॥
रुचितास्य बभूवाष्टानवतिर्लोभिनोऽस्य ताम् । नादादस्मायरुचितं रूपकाणां द्वयं ददत् ॥६६॥
इत्यादिसूक्ष्मेक्षिकया धर्माधर्मान्तरं विदन् । प्रत्यवेक्षापरः क्ष्माभृद्व्यधात्कृतयुगोदयम् ॥६७॥
इत्थं जनं स विनयन्हास्योऽभून्निजदुर्नयैः । परस्योपदिशन्पथ्यमपथ्याशीव रोगहृत् ॥६८॥
श्रोत्रियेणेव तेनापि मृदम्भःशौचशालिना । डोम्बोच्छिष्टभुजो भृत्याः पार्श्वान्न परिजह्रिरे ॥६९॥

व्यक्तिका नाम-पता पूछा, तव उसने कहा कि 'मै उसे देखकर पहचान सकता हूँ' ॥ ५५ ॥ इसपर राजाने कहा कि 'तुम्हारे मामलेका फैसला मै कल प्रातःकाल करूँगा'। इस वातपर राजाने वड़ी कठिनाईसे उसे राजी किया और अपने साथ भोजन कराया ॥५६॥ दूसरे दिन सवेरे राजाने दूत भेजकर लवणोत्स ग्रामके सभी लोगोंको वुलवाया, तव व्राह्मणने पहचानकर उस साहसिक व्यक्तिको दिखा दिया ॥ ५७॥ राजाके पूछनेपर उस व्यक्तिने भी वही वात कही, जैसा कि उस व्राह्मणने कहा था और उसके साथ ही उसने यह भी कहा कि 'इन्हींकी कही हुई वातके अनुसार मैंने व्यवहार किया है' ॥ ५८ ॥ अव वस्तुस्थिति एवं सत्य वचनकी परतंत्रताको न समझ सकनेवाले सभासदोंकी वुद्धि सन्देहके हिंडोलेपर झूला झूलने लगी और मारे लाजके वे लोग मस्तक नीचा करके धरतीकी ओर निहारने लगे ॥ ५९ ॥ ऐसी स्थितिमे धर्मासनपर वैठकर राजाने यह निर्णय दिया कि 'अट्ठानवे मुद्राये व्राह्मणको दे दी जायँ और दो मुद्राये इस साहसी युवकको मिलें' ॥ ६० ॥ इस विषयमे कुछ शंकित व्यक्तियोंने महाराजसे प्रश्न किया, तव उन्होंने कहा—'उत्कट अधर्मका दमन करनेके लिए दौड़ते हुए परम महिमामय धर्मकी गति वहुत गम्भीर चिन्तनके द्वारा निश्चित हो पाती है ॥ ६१ ॥ जैसे सायंकालके समय सूर्य अपना तेज अग्नि तथा जलमय चन्द्रमामें विभक्त कर देता है। उनमेसे अग्नि दीपकके द्वारा और चन्द्रमा अपनी चाँदनीसे अन्धकारको दूर करता है। उसी प्रकार अनन्यकर्मा धर्म अधर्मका नाश करता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ जैसे जलायी जानेवाली लकड़ीमे आग छिपी रहती है, वैसे ही अधर्ममे धर्म छिपा वैठा रहता है और मौका पाकर उसको नष्ट कर देता है ॥ ६४ ॥ उस समय इस व्राह्मणने यह नही कहा था कि 'आप जो देते हों सो दे दीजिए'। वल्कि इसने तो कहा कि 'जो उचित समझिए, सो दे दीजिएगा' ॥ ६५ ॥ इस लोभी व्यक्तिको अट्ठानवे मुद्राये अच्छी लगीं, उनको तो रख लिया और दो मुद्राये नहीं रुचीं, उन्हें इस व्राह्मणको दे दिया' ॥६६॥ इस तरह अनेक अवसरोंपर धर्म और अधर्मके सूक्ष्म भेदको वहुत सूक्ष्म दृष्टिसे देखकर तथ्यका पता लगाते हुए राजा यशस्करने इस कलिकालमे भी सत्ययुगका उदय कर दिया था ॥ ६७ ॥ किन्तु कुछ ही समय वाद वह राजा लोगोंको विनय अर्थात् न्यायमार्गका उपदेश देते हुए स्वयं कुपथपर चलकर उसी प्रकार उपहासका पात्र वनने लगा, जैसे कोई वैद्य औरोंको तो पथ्यका उपदेश दे और स्वयं कुपथ्य करे ॥ ६८ ॥ किसी श्रोत्रिय व्राह्मणकी तरह मिट्टी तथा जलसे पवित्रता रखते हुए भी उस राजाने डोमोंका जूठा खानेवाले राज-